

तुलसी-शब्दसागर

तुलसी-शब्दसागर

संकलनकर्त्ता

स्वर्गीय पंडित हरगोविंद तिवारी

संपादक

श्री भोलानाथ तिवारी

हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

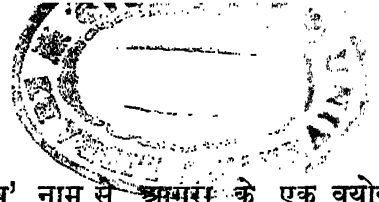
संपादक-मंडल

- डॉ० धीरेंद्र वर्मा, डी० लिट्० (पेरिस)
डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र, डी० लिट्० (नागपुर)
डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डी० लिट्० (इलाहाबाद)

प्रथम संस्करण : : ३००० : : मूल्य १२)

मुद्रक—श्री प्रेमचन्द मेहरा, न्यू ईरा प्रेस, इलाहाबाद

प्रकाशकीय



‘तुलसी-शब्दसागर’ का संग्रहकार्य ‘तुलसीग्रंथावली-कोष’ नाम से आगरा के एक वयोवृद्ध सज्जन स्वर्गीय श्री हरगोविंद तिवारी ने किया था। आप आगरा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के एकाउंटेंट थे और यह कार्य आपने लगभग ५० वर्षों में धीरे-धीरे पूरा किया था। कार्य संपन्न होने पर आपने इसके प्रकाशन के संबंध में एकेडेमी से पत्र-व्यवहार किया जिसके फलस्वरूप कोष की सामग्री ३०००) रुपये में एकेडेमी द्वारा खरीद ली गई।

यद्यपि स्वर्गीय श्री हरगोविंद तिवारी ने सामग्री बहुत परिश्रम और विस्तार से तैयार की थी किंतु वस्तुतः वह व्यवस्थित कोष के रूप में न थी। नियमित कोष-सामग्री के अतिरिक्त उसमें पुरानी टीकाओं के ढंग की कुछ अन्य सामग्री भी मिश्रित थी। एकेडेमी ने इसके संपादन पर विचार करने के लिए डा० धीरेंद्र वर्मा, डा० बलदेवप्रसाद मिश्र और डा० माताप्रसाद गुप्त, इन तीन व्यक्तियों का एक संपादक-मंडल बनाया, जिसने संपादन के संबंध में कुछ सिद्धांत निर्धारित किए। संपादन का कार्य एकेडेमी के साहित्य-सहायक श्री भोलानाथ तिवारी को सौंपा गया। उन्होंने मई सन् १९४९ में निर्धारित सिद्धांतों के आधार पर संपादन-कार्य आरंभ किया और लगभग चार वर्षों के अनवरत परिश्रम के बाद अत्यंत योग्यता से इसे पूर्ण किया।

प्रस्तुत कोष में लगभग २२,००० शब्द हैं। इनमें से लगभग १६,००० शब्द तो श्री हरगोविंद तिवारी की सामग्री से लिए गए हैं और शेष ६,००० श्री भोलानाथ तिवारी ने संगृहीत किए हैं। इन शेष शब्दों के संग्रह में जहाँ तक रामचरितमानस के शब्दों का संबंध है डा० सूर्यकांत की ‘रामायण-शब्दसूची’ से पूर्ण सहायता ली गई है। यदि गोस्वामो जी के अन्य ग्रंथों की भी इसी प्रकार पूर्ण शब्दसूचियाँ होतीं तो निस्संदेह यह शब्दसागर और भी समृद्ध हो सकता।

शब्दों का क्रम सामान्य कोषों की भाँति है किंतु एक शब्द के आधार पर काल, पुरुष, लिंग अथवा वचन आदि की दृष्टि से बने रूप अथवा यौगिक रूप पृथक्-पृथक् नहीं रक्खे गए हैं। कोष में आए हुए इस प्रकार के शब्दों में अक्षर-क्रम से प्रथम आनेवाले शब्द मुख्य शब्द के रूप में दे दिए गए हैं और शेष शब्द उनके पेटे में रक्खे गए हैं। उदाहरणार्थ ‘अघाना’ क्रिया से बने विभिन्न रूपों में ‘अघाइ’, अक्षर-क्रम की दृष्टि से प्रथम आता है, अतः उसे मुख्य-शब्द के रूप में दिया गया है और ‘अघाई’, ‘अघाउँगो’, ‘अघाति’ तथा ‘अघाहीं’ आदि उसके पेटे में दिए गए हैं। इसी प्रकार ‘अनुज’ के पेटे में ‘अनुजनि’ तथा ‘अनुजन्ह’ आदि रखे गए हैं। छंद की आवश्यकता-पूर्ति के लिए प्रयुक्त शब्दों के विकृत रूप पृथक् रक्खे गए हैं, जैसे ‘अभिराम’ और ‘अभिरामा’, आदि।

यदि किसी शब्द का एक अर्थ है तो वह बिना संख्या के दे दिया गया है, किंतु यदि अनेक अर्थों में शब्द प्रयुक्त होता है तो वे क्रम से संख्या देकर लिखे गए हैं। अर्थ के बाद तुलसी की रचनाओं से उदाहरण दिए गए हैं। अनेक अर्थवाले शब्दों में उदाहरण देते समय अर्थ की क्रम-संख्या का उल्लेख कर दिया

गया है। इस संबंध में इतना और बतला देना आवश्यक है कि जिन अर्थों के उदाहरण नहीं दिए गए हैं उनमें कुछ ऐसे भी निकल सकते हैं जो प्रयुक्त न हुए हों। इसी प्रकार यह भी असंभव नहीं कि ऐसे अर्थों में भी कुछ शब्दों का प्रयोग तुलसी-ग्रंथावली में मिले जो इस कोष में नहीं दिये गए हैं। आशा है आगामी संस्करण में इन त्रुटियों को दूर किया जा सकेगा।

उदाहरणों के आगे कोष्ठक में संदर्भ दिया गया है। संदर्भ के आरंभिक अक्षर तो तुलसी की रचनाओं के संक्षिप्त नाम हैं, जिनका पूरा रूप संक्षेप-सूची में दिया गया है। उनके आगे दिए गए अंकों के संबंध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं। 'मानस', 'कवितावली' तथा 'गीतावली' के आगे दी गई पहली संख्या क्रम से कांडों की द्योतक है, अर्थात् बालकांड के लिए १, अयोध्या के लिए २, अरण्य के लिए ३, किष्किंधा के लिए ४, सुंदर के लिए ५, लंका के लिए ६, और उत्तर के लिए ७की संख्या प्रयुक्त हुई है। 'मानस' के संदर्भों की दूसरी संख्या दोहे की तथा तीसरी संख्या चौपाई की है। यदि तीसरी संख्या के साथ दो०, श्लो०, छंद अथवा सो० है तो वह क्रम से दोहा, श्लोक, छंद अथवा सोरठा की संख्या है। 'कवितावली' तथा 'गीतावली' की दूसरी संख्या छंद की है, अर्थात् यदि क० ७१४ लिखा है तो इसका आशय है कवितावली के उत्तरकांड का चौथा छंद और यदि मा० २।१५६।२ लिखा है तो इसका अर्थ है रामचरित-मानस के अयोध्याकांड के १५६ वें दोहे की दूसरी चौपाई। 'रामललानहञ्जू', 'वैराग्यसंदीपनी', 'बरवै-रामायण', 'पार्वतीसंगल', 'जानकीसंगल', 'दोहावली', 'कृष्णगीतावली', 'विनयपत्रिका', तथा 'तुलसी-सतसई' में संक्षिप्त रूप के बाद केवल एक संख्या है और वह छंद की संख्या है। 'रामाज्ञा-प्रश्न' में संक्षिप्त रूप के बाद तीन संख्याएँ हैं। पहली संख्या वर्ग की, दूसरी सप्तक की और तीसरी दोहे की है।

प्रस्तुत कोष में यथासंभव व्युत्पत्ति भी दी गई है। किंतु यदि एक व्युत्पत्तिवाले एक से अधिक शब्द पास-पास ही हैं तो कुछ अपवादों को छोड़कर किसी एक के साथ व्युत्पत्ति दी गई है। व्युत्पत्ति अज्ञात होने पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया गया है। व्युत्पत्ति के साथ प्रश्नवाचक चिह्न अथवा तारा, क्रम से, अनिश्चित व्युत्पत्ति अथवा व्युत्पत्ति-संबंधी कल्पित शब्द का द्योतक है।

प्रस्तुत कोष के प्रणयन में 'मानस' का गीता प्रेस का संस्करण, 'सतसई' का एकेडेमी द्वारा प्रकाशित डा० श्यामसुंदरदास के 'सतसई-सप्तक' का संस्करण तथा अन्य ग्रंथों के लिए नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी की 'तुलसी-ग्रंथावली' के संस्करण काम में लाए गए हैं।

यह अत्यंत संतोष का विषय है कि अब गोस्वामी तुलसीदास के समस्त ग्रंथों में प्रयुक्त शब्दों का यह महत्त्वपूर्ण कोष हिंदुस्तानी एकेडेमी की रजत-जयंती के अवसर पर विशेष प्रकाशन के रूप में हिंदी संसार के समक्ष जा रहा है।

धीरेंद्र वर्मा

मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश

इलाहाबाद :
जनवरी, १९५४

संदेप-सूची

!	= संदिग्ध	ध्व०	= ध्वन्यात्मक
• ❁	= कल्पित शब्द	पा०	= पार्वतीमंगल
अनु०	= अनुकरणात्मक	प्र०	= रामाज्ञा-प्रश्न
अप०	= अपभ्रंश	प्रा०	= प्राकृत
अर०	= अरबी	फ्रा०	= फ़ारसी
अ०मा०	= अर्धभागधी	ब०	= बरवै रामायण
उ०	= उदाहरण	मं०	= मंगोल
क०	= कवितावली	मा०	= रामचरितमानस
कृ०	= कृष्ण-गीतावली	मु०	= सुहावरा
गी०	= गीतावली	रा०	= रामललानहछू
ग्री०	= ग्रीक	वि०	= विनयपत्रिका
छं०	= छंद	वै०	= वैराग्यसंदीपनी
जा०	= जानकीमंगल	श्लो०	= श्लोक
तु०	= तुलना कीजिए	स०	= तुलसी-सतसई
तुर०	= तुर्की	सो०	= सोरठा
दे०	= देखिए	ह०	= हनुमानबाहुक
दो०	= दोहा, दोहावली	हिं०	= हिंदी

तुलसी-शब्दसागर

अ

अंक-(सं०)-१ चिह्न, २. गिनती के १, २, ३ इत्यादि अंक, ३. गोद, ४. नाटक का एक अंश, ५. शरीर, ६. दुःख, ७. पाप, ८. दाग, टीका, ९. लेख, १०. भाग्य, ११. वार, १२. नौ की संख्या । उ० १. भौहैं बंक मयंक-अंक रुचि । (गी० ७।१७) २. अंक अगुन आखर सगुन समुक्थिय उभय प्रकार । (दो० २५२) ३. तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता । (मा० २।१६४।२) अंके-गोद में । उ० यस्यांके च विभाति । (मा० २।१।०१)

अंकमाल-(सं०)-आलिगन, भेंट, गले लगाना । मु० अंकमाल देत-भेटते, गले लगाते । उ० आशु जाये जानि सब अंकमाल देत हैं । (क० ५।२६)

अंका-दे० 'अंक' । उ० ६. तुम्ह सन मिटहि कि बिधि के अंका । (मा० १।१२१।४)

अंकित-(सं०)-१ चिह्नित, २. मुद्रित, ३. परखा हुआ, ४. लिखित, ५. वर्णित, ६. चित्रित । उ० १. भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित । (वि० २४) ४ राम नाम अंकित अतिसुंदर । (मा० ५।१३।१) ६ रामायुध अंकित गृह । (मा० ५।५)

अंकुर-(सं०)-१. अंशुआ, कोपल, २. डाम, कल्ला, ३. आँख, ४. कजी, ५. खिबर, ६. रोआँ, ७. पानी, ८ मांस के छोटे लाल-लाल दाने जो घाव भरते समय उत्पन्न होते हैं । ६. अंशुआ निकले हुए जौ । उ० १. पाइ कपट जलु अंकुर जामा । (मा० २।२३।३) २. कंदमूल अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाइ । (गी० ७।३३) ६ अच्छत अंकुर लोचन लाजा । (मा० १।२४।६।२)

अंकुरे-अंकुर की भाँति उपजे हुए, अंकुरित । उ० मर्दाहि दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भूभट अंकुरे । (मा० ६।६।६०) अंकुरेउ-अंकुरित हुआ, उदय हुआ । उ० उर अंकुरेउ गरव तरु भारी । (मा० १।१२।६।२)

अंकुस-(सं० अंकुश)-अंकुश, हाथी को काबू में करने का एक दोमुँहा हथियार । उ० महामत्त गजराज कहुँ बसकर अंकुस खर्व । (मा० १।२५।६)

अंकोर-(सं० अङ्कपालि)-१. घुस, रिशवत, २. गोद, छाती । उ० १. जनु सभित दै अंकोर । (गी० ७।३)

अंखियनु-(सं० अक्षि)-आँखें, आँखों के । उ० चित्तवनि बसति कनखियनु अंखियन, बीच । (ब० ३०) अंखियाँ-आँखें । उ० तिथ की लखि आतुरता पिय की अंखियाँ अति चारु चलीं जल चै । (क० २।११)

अंग-दे० 'अंग' उ० २. पालइ पोसइ सकइ अंग, (मा० २।३।१५)

अंग-(सं०)-१. शरीर, २. अवयव, ३. भाग, अंश, ४.

मित्र का संबोधन, ५. शास्त्र-विशेष, ६. एक देश का नाम, ७. प्रकार, ८. उपाय, ९. सहायक, १०. ओर, तरफ, ११. स्वभाव, १२. प्यारा, १३. वेद के ६ अंग, १४. राज्य के ७ अंग, १५. योग के ८ अंग, १६. जन्मलक्षण, १७. ध्रुव के वंश का एक राजा, १८ अंग-प्रत्यंग । उ० १. अंग अनंग देखि सत लाजे । (मा० ७।११।४) ७. राखै सरनागत सब अंग बल-बिहीन को । (वि० २७४) ८. दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ । (वि० ४१) ९. रउरे अंग जोगु जग को है । (मा० २।२८।३) १८. महिष-मद भंग करि अंग तोरे । (वि० १५) मु० अंग लगाय-लिपटा कर । उ० अंग लगाय लिए बारे तें, (गी० २।८।६) अंगन-अंगों, 'अंग' का बहुवचन । अंगनि-अंगों में । उ० बाल-विभूवन-बसन मनोहर अंगनि विरचि बनैहौं । (गी० १।८)

अंगइ-(सं० अंग)-स्वीकार करके, अंगीकार करके, सहकर, सहन करके । उ० सहि कुबोल, साँसति सकल, अंगइ अनट अपमान । (दो० ४६६)

अंगकरथौ-(सं० अंगीकार)-हृदय से लगाया, अपनाया । उ० जाको हरि दइ करि अंगकरथो । (वि० २३२)

अंगद-(सं०)-१ बाहु पर पहिने का एक गहना, विजायठ, २. बालि नामक बन्दर का पुत्र जो राम की सेना में था । ३. लक्ष्मण के दो पुत्रों में से एक । उ० २. अंगद नाम बालि कर बेटा । (मा० ६।२१।२) अंगदहि-अंगद को । उ० इहाँ राम अंगदहि बोलावा । (मा० ६।३।२)

अंगन-(सं० अंगण)-१. आँगन, २. स्थान । उ० २. संग्राम अंगन सुभट सोवहि । (मा ६।८।८ छंद)

अंगना-(सं० अंगण)-आँगन । उ० छगन मगन अंगना खेलिहौ मिलि । (गी० १।८)

अंगना-(सं०)-छी । उ० अइ अंग अंगना अनंग को महनु है । (क० ७।१६०)

अंगनाई-(सं० अंगण)-आँगन, घर के भीतर का सहन । उ० बरनि न जाइ खिबर अंगनाई । (मा० ७।७।६।२)

अंगनैया-(सं० अंगण)-दे० 'अंगनाई' । उ० छुवि छलकिहै भरि अंगनैया । (गी० १।६)

अंगरी-(सं० अंग + रत्न)-कवच, अंग की रक्षा करनेवाली । उ० अंगरी पहिरि कूँडि सिर धरहीं । (मा० २।१६।१।३)

अंगवनिहार-सहन करनेवाले । उ० सुल कुलिस असि. अंगवनिहारे । (मा० २।२।५।२)

अंगहीन-दे० 'अंगहीन' । उ० १. दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ । (वि० ४१)

श्रंगहीन-(सं०)-१ असहाय, २. लुंज, जिसका कोई श्रंग नष्ट हो गया हो। ३. कामदेव।
 श्रंगा-(सं० श्रंग)-१. श्रंग, २. श्रंगरखा, श्रवकन। उ० १. कीन्ह्यौं गरलसील जो श्रंगा। (वे० ४७)
 श्रंगार-दे० 'श्रंगार'।
 श्रंगार-(सं०)-दहकता कोयला, चिनगारी। उ० जनु अन्तेक श्रंगार दीन्ह हरपि उठि कर गहेउ। (मा० २११२)
 श्रंगारा-दे० 'श्रंगारा'।
 श्रंगारा-दे० 'श्रंगार'। उ० देखित प्रगट गगल श्रंगारा। (मा० २१२१४)
 श्रंगारू-दे० 'श्रंगार'। उ० पाके छत जनु लाग श्रंगारू। (मा० २१६११३)
 श्रंगारू-दे० 'श्रंगार'।
 श्रंगीकार-(सं०)-स्वीकार, ग्रहण। उ० किये श्रंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को। (क० ७१३३)
 श्रंगीकारा-दे० 'श्रंगीकार'। उ० करहु तासु अत्र श्रंगीकारा। (मा० ११८६१२)
 श्रंगुरिन-(सं० श्रंगुनि)-१. उँगलियों से, २ उँगलियाँ। उ० १. श्रंगुरिन खंडि अकास। (ब० २८)
 श्रंगुरियाँ-उँगलियाँ। उ० सिखयति चलन श्रंगुरियाँ लाए। (गी० ११२६) मु० श्रंगुरियाँ लाए-उँगलियाँ पकड़कर।
 श्रंगुरी-उंगली।
 श्रंगुलि-(सं०)-उँगली। उ० चितव जो लोचन श्रंगुलि लाए। (मा० ११११७२)
 श्रंगुली-उँगली। उ० सुभग श्रंगुष्ट श्रंगुली अबरिल। (गी० ७१७)
 श्रंगुलिदान-(सं० श्रंगुलिदान)-गोह के चमड़े का बना हुआ एक दस्ताना, जिसे बाण चलाने के समय उँगलियों को रगड़ से बचाने के लिए पहिन्ते हैं। उ० श्रंगुलिदान कमान वान छवि। (गी० ७१७)
 श्रंगुष्ट-(सं० श्रंगुष्ट)-श्रंगुली। उ० सुभग श्रंगुष्ट श्रंगुली अबरिल। (गी० ७१७)
 श्रंगि-(सं०)-१. पैर, २. वृद्ध की जड़। उ० १. भवदंष्ट्रि निरादर के फल ए। (मा० ७१४६४)
 श्रंचइ-(सं० आचमन) १. आचमन करके, पीकर के, २. भोजन के बाद हाथ मुँह धोकर के। उ० २. श्रंचइ पान सब काहुँ पाए। (मा० ११३२११) श्रंचइ-आचमन कीजिए, पीजिए। उ० श्रंचइअ नाथ कहहि मृदुवानी। (मा० २१११२११) श्रंचइ-१. पी गया, २. पीकर। उ० १. लाज श्रंचइ घोरि। (वि० १२८) श्रंचइ-आचमन करते ही, पीते ही। उ० जो श्रंचवत नृप मातहि तेई। (मा० २१२३१४) श्रंचइ-आचमन करते हैं, पीते हैं। श्रंचवै-पीता है। उ० जो श्रंचवै जल स्वाति को। (दो० ३०६)
 श्रंचल-(सं०)-१. साड़ी का छोर, श्रंचल २. सीमा के समीप के देश का भाग ३. किनारा, तट। उ० १. श्रंचल बात बुझावहि दीपा। (मा० ७११८४) मु० श्रंचल पसारि-किसी बड़े या देवता से कुछ माँगते समय बियाँ श्रंचल फैताती हैं। दीनता दिखा, विनती कर। विनय से माँग। उ० पुरनारि सकल पसारि श्रंचल विधिहि बचन सुनावहीं। (मा० ११३१११ छं०)

श्रंचवाइ-(सं० आचमन) आचमन करवा कर, हाथ धुलाकर। उ० श्रंचवाइ दीन्हें पान गवने बास जहें जाको रह्यो। (मा० ११६१ छं०) श्रंचवाइ-आचमन करवाया। उ० पूजि कीन्ह मधुपर्क अमी श्रंचवायउ। (पा० १३२)
 श्रंजन-(सं०)-१. श्रंखों में नगाने का काजल या सुरमा, २. रात, ३. स्याही, ४. माया, ५. एक पर्वत का नाम, ६. छिपकली, ७. लेप, ८. एक सर्प का नाम। उ० १. तुलसी जनरंजन रंजित श्रंजन नयन सुखंजन जातक से। (क० १११) श्रंजनकेस-(सं० श्रंजनकेस) दीप, चिराग, जिसका केश श्रंजन हो। उ० श्रंजनकेस-विद्या जुवती तहें लोचन-सलभ पठावै। (वि० १४२)
 श्रंजना-(सं०)-१. कुंजर नामक बंदर की पुत्री और केशरी नामक बंदर की भार्या जिसके गर्भ से हनुमान उत्पन्न हुए थे। कहीं-कहीं इन्हें गौतम की पुत्री भी कहा गया है। २. श्रंख की पलक पर होनेवाली लाल फुंसी। ३. दो रंगों की छिपकली, ४. एक मोटा धान। उ० १. जयति लस-दंजनादिदिज। (वि० २६) श्रंजनादिदिज-(सं० श्रंजना + अदिति + ज)-श्रंजनारूपी देव माता (अदिति) से जन्मे हुए, हनुमान। उ० जयति लसदंजनादिदिज। (वि० २६)
 श्रंजना-(सं०) श्रंजना, हनुमान की माता। उ० जयति श्रंजनी-गर्भ-श्रंशोधि-संभूत-विशु। (वि० २५)
 श्रंजनाकुमार-(सं०)-श्रंजनी के पुत्र, हनुमान। उ० बिगरी संधार श्रंजनीकुमार बीजे मोहि। (ह० १२)
 श्रंजलि-(सं०)-हाथ का संपुट, श्रंजलि। उ० सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोष जल श्रंजलि दिए। (मा० ११३२६ छं० १) श्रंजलिगत-हस्तगत, श्रंजलि में रखे हुए या प्राप्त हुए। उ० श्रंजलिगत सुभसुमन जिमि। (मा० ११३८)
 श्रंजलि-दे० 'श्रंजलि'।
 श्रंजि-(सं० श्रंजन)-श्रंजन लगाकर, श्रंजकर। उ० जथा सुश्रंजन श्रंजि हग। (मा० १११)
 श्रंजलि-(सं० श्रंजलि)-हाथ का संपुट, श्रंजलि, श्रंजुरी।
 श्रंजोर-(सं० उज्ज्वल)-प्रकाश।
 श्रंजोरि-(सं० श्रंजलि)-१. खोज, निकाल, २. छीन, छीनकर। उ० १. वैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत श्रंजोरि। (वि० १५८)
 श्रंजोरि-(सं० उज्ज्वल)-प्रकाश कर।
 श्रंजोरी-प्रकाश, उजाला। उ० रवि संमुख खद्योत श्रंजोरी। (मा० ३११११)
 श्रंइ-(सं०)-१. ब्रह्मायड, २. अंडा, ३. अंडकोश, ४. वीर्य, ५. कस्तूरी का नाफा, ६. पंच आवरण, ७. कामदेव, ८. मकानों के ऊपर के कनरा। उ० १. अंड अनेक अमल जसु छावा। (मा० २११२६११) श्रंइन्हि-अंडों का। उ० अंडन्हि कमल हृदय जेहि भाँती। (मा० २१७४)
 श्रंइकटाइ-(सं०)-१. ब्रह्मांड, विरव २. ब्रह्मांड का अर्ध-भाग। उ० १. एहि बिधि देखत फिरउँ में अंडकटाइ अनेक। (मा० ७१८०४)
 श्रंइकोस-(सं० अंडकोश)-१. ब्रह्मांड, २. फोता, ३. सीमा। उ० १. अंडकोस समेत गिरि कानन। (मा० ११२१३)
 श्रंइज-(सं०)-अंडे से उत्पन्न होनेवाले जीव, १. पक्षी, २.

मच्छली, ३. सर्प । उ० १. उदर माफ सुनु अंडजराया । (मा० ७।८०।२)

अंडजराया-(सं० अंडज + राजन्)-पक्षियों के राजा । गरुड़ । उ० उदर माफ सुनु अंडजराया । (मा० ७।८०।२)

अंतः-(सं०)-१. अंतःकरण, मन, २. भीतर । उ० १. स्वांतःसुखाय तुलसीरघुनाथगाथा । (मा० १।१।२।खो०७)

अंतःकरण-(सं०)-भीतरी इंद्रिय, जो दुःख, सुख, निश्चय, विकल्प आदि का अनुभव करती है । मन, चित्त ।

अंतःकरण-दे० 'अंतःकरण' ।

अंत-(सं०)-१. समाप्ति, अवसान, २. सीमा, ३. मृत्यु, ४. परिणाम, ५. शेष, बाकी । उ० १. जो पै अलि ! अंत इहै करिबे हो । (कृ० ३६) २. अंत नहीं तव चरित्रं, (वि० ५०) अंतहु-अंत में, अंत में भी । उ० अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी । (मा० २।१८।२।२)

अंतअगार-(सं० अंत + आगार) अगार = धाम । धाम का अंतिम अक्षर 'म' । उ० दूसर अंतअगार । (सं० २३७)

अंतक-(सं०) १. काल, २. यम, ३. नाशकर्ता, ४. सन्निपात का एक भेद, ५. ईश्वर, ६. शिव । उ० १. अन्त भगवंत जगदंत-अंतक-त्रास-समन । (वि० ४६)

अंतकारी-(सं०)-अंत करनेवाला, संहारकारी, नाशकारी । उ० कलातीत कल्याण कल्पांतकारी । (मा० ७।१०।८।०।६)

अंतकाल-(सं०) मृत्यु, अंतिम समय ।

अंतकृत-(सं०)-अंत करनेवाला, यमराज, धर्मराज । उ० भूमिजा-दुःख-संजात-रोपांतकृत जातनाजंतु-कृत-जातुधानी । (वि० २६)

अंतर-(सं०)-१. अलगवा, २. भेद, क्रक, ३. भीतर, ४. बीच, ५. बीच की दूरी, ६. मन, ७. मद, ८. लुप्त, ९. ओट, आड़, १०. छेद । उ० १. सत-भगवंत अंतर निरंतर नहीं । (वि० ५७) २. ग्यानहि भगतिहि अंतर केता । (मा० ७।११।२।६) ३. बसइ गरुड़ जाके उर अंतर । (मा० ७।१२।०।१) ४. उभय अंतर एक नारि सोही । (गी० २।१६)

अंतरअयन-(सं०)-१. काशी का मध्य भाग, २. अंतरगृही, ३. तीर्थों की एक परिक्रमा विशेष, ४. एक देश का नाम । उ० १. अंतरअयन अयन भल, थन फल वच्छ बेद-बिस्वासी । (वि० २२)

अंतरगत-(सं० अंतर्गत)-१. हृदयस्थ, हृदय के भीतर, २. भीतर आया हुआ, ३. गुप्त । उ० १. सगुन रूप लीला-विलास-सुख सुमिरन करति रहति अंतरगत । (गी० ५।६)

अंतरगति-(सं० अंतर्गति)-१. मन या हृदय की गति, २. अंतर्वासना । उ० १. यह विचारि अंतरगति हारति । (गी० ५।१६)

अंतरजामिहूँ-(सं० अंतर्जामी) १ अंतःकरण में स्थित होकर प्रेरणा करनेवाले भी, २ अंतःकरण की बात जाननेवाले भी । उ० १. अंतरजामिहूँ ते-बड़ बाहरजामि हैं । (क० ७।१२।६) अंतरजामी-हृदय की बात जाननेवाला । उ० मैं अपराध-सिद्ध करुणाकर जानत अंतरजामी । (वि० १।७)

अंतरदांठि-(सं० अंतर्दंष्ट्रि)-अंतर्दंष्ट्रि, विवेक ।

अंतरधान-(सं० अंतर्धान)-छिप जाना, गुप्त हो जाना । उ०

बहु विधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तव भए अंतरधान । (मा० १।१३।८)

अंतरधाना-दे० 'अंतरधान' । उ० तुरत भयउ खल अंतर-धाना । (मा० ६।७।६।६)

अंतरबल-(सं० अंतर्बल)-भीतरी बल, हिम्मत । उ० गर्जा अति अंतरबल थाका । (मा० ६।६।२।१)

अंतरसाखी-(सं० अंतर्साँची)-मन या हृदय का साँची, भगवान । उ० प्रगट कीन्हि चह अंतरसाखी । (मा० ६।१०।८।७)

अंतरसाल-रसाल = आम । आम का अंतिम अक्षर 'म' । उ० बरन दुतिय नासक निरय तुलसी अंतरसाल । (सं० २८५)

अंतरहित-(सं० अंतर्हित) दृष्टि से ओझल, गुप्त । उ० कहि अस अंतरहित प्रभु भयउ । (मा० १।१३।३।१)

अंतरात्मा-(सं०)-जीवात्मा, जीव, आत्मा ।

अंतरिक्ष-(सं०)-१. पृथ्वी और सूर्यादि लोकों के बीच का स्थान, दो ग्रहों या तारों के बीच का स्थान, २. आकाश, ३. स्वर्ग, ४. तीन प्रकार के केतुओं में से एक, ५. अंतर्धान, गायब ।

अंतर-दे० 'अंतर' । उ० २. ईस अनीसहि अंतर तैसैं । (मा० १।७।०।१)

अंतर्जामिहि-अंतर्जामी को, भगवान को । उ० तुलसी क्यों सुख पाहए अंतर्जामिहि धृति ? (दो० ४११)

अंता-अंत, समाप्ति । उ० सतसंगति संसृति कर अंता । (मा० ७।४।२।३)

अंतावरि-(सं० अंत्र + अवरली) अंतड़ी । उ० धरि गाल फारहि उर बिदारहि गल अंतावरि मेलही । (मा० ६।८।१।६।०।२)

अंतावरीं-अंतै, अंतर्द्वियाँ । उ० अंतावरीं गहि उड़त गीध, (मा० ३।२।०।६।०।२)

अंतिम-(सं०)-आखिरी, अंत का, अंतवाला ।

अंथइहि-(सं० अस्त)-अस्त होगा, छिपेगा । उ० उदित सदा अंथइहि कबहूँ ना । (मा० २।२०।६।१) अंथयउ-१. अस्त हो चला, २ अस्त हो गया । उ० १. रविकुल रवि अंथयउ जियँ जाना । (मा० २।१५।४।२) २. अंथयउ आजु भानुकुल भानू । (मा० २।१५।६।३)

अंदेश-दे० 'अंदेश' । उ० कमठपीठ धनु सजनी कठिन अंदेश । (व० १४)

अंदेशा-दे० 'अंदेश' । उ० असमंजस अस मोहि अंदेशा । (मा० १।१४।५)

अंदेशा-(फा० अंदेशः)-संदेह, खटका, सोच, डर ।

अंध-सं०)-१. अंधकार, २. अज्ञानी, ३. अंधा, नेत्रहीन, ४. जल, ५ उल्लू, ६. चमगादड़ । उ० १. मोह अंध रवि बचन बहावै । (वै० २२) २. अंध मैं मंद व्यालाद गामी । (वि० ५६) ३. अंध कहे दुख पाइहै, डिठियारो केहि डीठि ? (दो० ४८१) अंधउ-अंधा भी । उ० अंधउ बधिर न अस कहहि । (मा० ६।२।१) अंधहि-अंधे को । उ० अंधहि लोचन लाभु सुहावा । (मा० १।३।५।४)

अंधक-(सं०)-१. कश्यप और दिति का पुत्र, एक दैत्य जिसके सहस्र सिर थे । यह मद के कारण अंधों की भाँति चलने से अंधक कहलाता था । स्वर्ग से पारिजात लाते समय यह शिव द्वारा मारा गया । इसी कारण शिव

अंधकरिपु कहे जाते हैं। २. एक यादव, ३. अंधा, ४. महाताप नामक एक ऋषि। उ० १. त्रिपुर-मद-भंगकर, मत्स्यगज-धर्म-धर, अंधकोरग-असन-पद्मगारी। (वि० ४६) अंधकार-(सं०)-१. अंधेरा, २. अज्ञान, ३. उदासी। उ० १. मोहनिसि-निबिड यमनांधकार। (वि० ५२)

अंधकारि-(सं०)-अंधक का शत्रु, अंधक को मारनेवाला, शिव।

अंधकार-दे० 'अंधकार'। उ० १. अंधकार बरु रबिहि नसावै। (मा० ७।१२२।६)

अंधकूप-(सं०)-१. अंधा कूआँ, जिसका जल सूख गया हो। २. अंधेरा, ३. एक नरक।

अंधतापस-दे० 'अंधमुनि'।

अंधमुनि-श्रवण कुमार के पिता। एक दिन महाराज दशरथ सरयू के तट पर किसी जंगल में शिकार खेलने गये थे। समीप ही श्रवणकुमार अपने अंधे माता-पिता को रखकर पानी लाने गया था। घड़ा डुबोने की आवाज सुनकर दशरथ को किसी हिंस्र जन्तु के होने का संदेह हुआ और उन्होंने बाण चला दिया। श्रवणकुमार के कराहने पर दशरथ को तथ्य का पता चला और वे उसे वहीं मरा छोड़कर उसके माता-पिता को पानी पिलाने चले। उन लोगों से इन्हें पूरी कहानी बतलानी पड़ी, जिसके फल-स्वरूप पुत्र-वियोग में दोनों ने बिना जल ग्रहण किए शरीर छोड़ दिया। श्रवणकुमार के पिता ने मरते समय दशरथ को शाप दिया कि तुम भी पुत्र-वियोग में मरोगे। उ० विधि-बस बन मृगया फिरत दीन्ह अंधमुनि साप। (प्र० १।२।३)

अंधिआर-दे० 'अंधकार'। अंधिआरें-अंधेरे में, अंधेरा होने पर। उ० अवध प्रबेसु कीन्ह अंधिआरें। (मा० २।१४७।३)

अंधिआरी-(सं० अंधकार)-अंधकारमयी, अंधेरी। उ० मानहु कालराति अंधिआरी। (मा० २।२३।३)

अंधियार-(सं० अंधकार)-अंधकार, अंधेरा। उ० असुरन कहँ लखि लागत जग अंधियार। (व० ३६)

अंधियारो-अंधेरा। उ० अंधियारो मेरी बार क्यों त्रिभुवन-उजियारे। (वि० ३३)

अंधेर-(सं० अंधकार)-१. अनीति, २. उपद्रव, ३. गड़बड़। अंध-(सं०)-माता, अंधा। उ० कबहुक अंध अवसर पाइ। (वि० ४१) अंधनि-१. माताओं को, २. माताएँ। उ० १. देत परम सुख पितु अरु अंधनि। (गी० १।२८)

अंधक(१)-(सं०)-१. आँख, २. ताँबा, ३. पिता। उ० १. नव अंधुज अंधक छवि नीकी। (मा० १।१४७।२)

अंधक(२)-(सं० अंध + क)-माता का।

अंधर-(सं०)-१. कपड़ा, २. आकाश, ३. एक-कपास, ४. अभ्रक, ५. बादल। उ० १. वरषि दिये मनि अंधर सबहीं। (मा० ६।११७।३)

अंधरीष-(सं०) १. एक सूर्यवंशी राजा। इक्ष्वाकु से २८ वीं पीढ़ी में नाभाग के पुत्र राजा अंधरीष बहुत बड़े भक्त थे। एक बार द्वादशी के दिन वे पारण करने जा ही रहे थे कि दुर्वासा अपनी शिष्यमंडली के साथ आ पहुँचे। राजा ने भोजन के लिए उन्हें निमंत्रित किया पर वे संध्या-बंदन के लिए चले गये और वहाँ जानकर अधिक देर कर दी। इधर द्वादशी केवल एक पल बाकी रह गई। द्वादशी

में पारण न करने से दोष लगता है इस कारण राजा घबराए और अंत में विद्वान् ब्राह्मणों के परामर्श से भगवान् का चरणामृत ग्रहण किया। थोड़ी देर में दुर्वासा आये और उस अवज्ञा के लिए बहुत विगड़े। उन्होंने अपनी जटा से एक बाल तोड़कर पृथ्वी पर पटक दिया जो राक्षसी बनकर राजा के विनाश के लिए दौड़ी। उसी समय विष्णु के सुदर्शन चक्र ने प्रकट होकर, उस कृत्या नाम की राक्षसी को मार राजा की रक्षा की और कुपित होकर ऋषि के पीछे दौड़ा। ऋषि दुर्वासा क्रम से भागते हुए ब्रह्मा, शिव और विष्णु के पास अपनी रक्षा के लिए गये, पर सभी ने अपनी असमर्थता प्रकट की। अंत में उन्हें अंबरीष की शरण में आना पड़ा और अंबरीष की प्रार्थना पर चक्र शांत होकर लौट गया। अंबरीष अब तक प्रतीक्षा कर रहे थे इस कारण दुर्वासा ने भोजन स्वीकार किया। और फिर उनकी प्रशंसा करते हुए अपने आश्रम पर लौट गये। २. भडभूँजे का मिट्टी का बर्तन जिसमें वह अन्न भूनता है। ३. विष्णु, ४. शिव, ५. सूर्य, ६. ११ वर्ष से छोटा बालक, ७. पश्चाताप, ८. लज्जा। उ० १ सुधि करि अंबरीष दुरबासा। (मा० २।२६५।२)

अंधा-(सं०)-१. माता, २. दुर्गा, ३. पार्वती, ४. अन्नफल, ५. काशिराज इंद्रधुम्न की सबसे बड़ी लड़की जो विचित्र-वीर्य की विवाहिता बनाई गई। उ० १. जगदंबा जहँ अवतरी। (मा० १।६४)

अंधारी-(अर० अंधारी)-१. हाथी की पीठ पर रखने का हौदा, २. छज्जा। अंधारी-हौदे। उ० १. कनिष्ठ करिधरनिः परी अंधारी। (मा० १।३००।१)

अंधिका-(सं०)-१. पार्वती, २. दुर्गा, ३. माता, ४. धृतराष्ट्र की माता। उ० १. बासी नरनारि ईस अंधिका सरूप हैं। (क० ७।१७१) अंधिके-(सं०)-हे माता, हे पार्वती! उ० १. छमुख-देरं च अबासि जगदंधिके। (वि० १२)

अंधिकापति-(सं०) शिव, महादेव। उ० अंधिकापतिमभीष्ट-सिद्धिदम्। (मा० ७।१२लो०३)

अंधु-(सं०)-१. जल, २. सुगंधवाला, ३. जन्मकुंडली का चौथा घर, ४. चार की संख्या। उ० १. अंधु तू हौं अंधु-चर, अंध तू हौं डिभ। (ह० ३४) अंधुचर-पानी का जीव, जलचर। उ० अंधु तू हौं अंधुचर। (ह० ३४)

अंधुज-(सं०)-१. कमल, २. वंत, ३. ब्रह्मा। उ० १. नव अंधुज अंधक छवि नीकी। (मा० १।१४७।२)

अंधुद-(सं०)-१. बादल, २. नागरभोग्या। उ० १. विधि महेस मुनि सुर सिहात सब, देखत अंधुद आँट दिये। (गी० १।७)

अंधुधर-(सं०)-यादल, जो जल धारण करे। उ० नव अंधु-धर बर गात अंधर पीत सुर मन मोहई। (मा० ७।१२। छ० २)

अंधुधि-(सं०)-समुद्र, सागर। उ० नदी उसगि अंधुधि कहुँ धाई। (मा० १।२५।१)

अंधुनाथ-(सं०)-समुद्र। उ० भवाअंधुनाथ मंदरं। (मा० ३। ४। श्लो० २)

अंधुनिधि-(सं०)-समुद्र। उ० कृपा अंधुनिधि अंतरजामी। (मा० २।२६७।१)

अंबुपति-(सं०)-१. वरुण, २. समुद्र। उ० १. आनन अनल अंबुपति जीहा। (मा० ६।१५३)

अंबोज-(सं०)-१. कमल, २. चंद्रमा, ३. सारस पक्षी, ४. शंख, ५. कपूर। उ० १. अरुन अंबोज लोचन विसाल। (वि० ५१)

अंबोद-(सं०)-बादल, मेघ। उ० अचल अनिकेत अविरल अनामय अनारंभ अंबोदनादन्न-बंधो। (वि० ५६)

अंबोदनाद-(अंबोद+नाद)-मेघनाद, रावण का पुत्र, बादल की भाँति गरजनेवाला। उ० अनारंभ अंबोदनादन्न-बंधो। (वि० ५६) अंबोदनादन्न-(सं० अंबोद+नाद+न्न)-लक्ष्मण, मेघ की तरह गरजनेवाले मेघनाद को मारनेवाले। उ० अनारंभ अंबोदनादन्न बंधो। (वि० ५६)

अंबोधर-(सं०)-बादल, मेघ।

अंबोधि-(सं०)-समुद्र। उ० जयति अंजनी-गर्भ-अंबोधि-संभूत-विधु, (वि० २५) अंबोधेः-(सं०)-समुद्र का। उ० भवांबोधेस्तितीर्षावतां। (मा० १।१। श्लो०६)

अंबोरुह-(सं०) कमल, जल से उत्पन्न। उ० बदन इंदु अंबोरुह लोचन, (गी० १।५२)

अंबोराई-(सं० आभराजि)-आम की बगीचियाँ। उ० संत सभा चहुँ दिसि अंबोराई। (मा० १।३।७।६)

अंस-(सं० अंश)-१. अंश, भाग, २. स्कंध, ३. कला, ४. चौथा भाग। उ० १. उपजहि जासु अंस तें नाना। (मा० १।१४।३) अंसनि-कंधों पर। उ० अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर, तून कटि, मुनि पट लूटक पटनि के। (क० २।१६) अंसन्ह-अंश का बहुबचन, अंशों, कलाओं, भागों। उ० अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। (मा० १।१८।१)

अंसु-(सं० अंशु)-किरण, प्रभा। उ० लेत अवनि रवि अंसु कहै देत अमिय अप-सार। (सं० ४।३)

अंसुवन-(सं० अंशु)-१. आंसुओं से, २. आंसुओं को। उ० १. अंसुवन पथिक निरास तें तट मुहँ सजल सरूप। (सं० ६२४)

अंसुक-(सं० अंशुक)-१. रेशमी वस्त्र, २. महीन, कपड़ा ३. डुपट्टा। उ० १. किसुक बरन सुअंसुक सुयमा सुखनि समेत। (गी० ७।२१)

अइहहि-आएँगे। उ० कपिन्ह सहित अइहहि रघुवीरा। (मा० १।१६।२)

अउर-(सं० अपर)-और, अन्य। उ० नहि जानउँ कहु अउर कबारू। (मा० २।१००।४) अउरउ-और भी। उ० अउरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रवीन। (मा० ७।११६ ख)

अकंटक-(सं०)-निर्भय, निर्विघ्न, निष्कंटक। उ० जोगी अकंटक भए पति गलि सुनत रति मुरुछित भई। (मा० १।८७। छ० १)

अकंपन-(सं०) १. रावण का एक सेनापति। यह रावण का अनुचर था। खर-दूषण के मारे जाने का समाचार रावण को सर्वप्रथम इसी ने सुनाया था। लंका के युद्ध में यह और अतिकाय दो प्रधान सेनापति थे। उसी युद्ध में हनुमान के हाथ से यह मारा गया। २. दृढ़। उ० १. अनिप अकंपन अरु अतिकाथा। (मा० ६।४६।५)

अक-(सं०) १. दुःख, २. पाप। उ० २. बरबस करत विरोध हटि होन चहत अकहीन। (सं० ५८८)

अकथ-(सं०)-जो कहा न जा सके, अवर्णनीय। उ० सब बिधि समर्थ महिमा अकथ तुलसिदास संसयसमन। (क० ७।१५१)

अकथनीय-(सं०)-जिसका वर्णन न हो सके। उ० अकथनीय दारुन दुखु भारी। (मा० १।६०।१)

अकनि-(सं० आकर्ण)-सुनकर। उ० पुरजन आवत अकनि बराता। (मा० १।३।४।२)

अकरुन-(सं० अकरुण)-दयारहित, निर्दय। उ० खर कुठार मैं अकरुन कोही। (मा० १।२७।३)

अकरा-(सं० अक्रय्य)-महँगा, न लेने योग्य। अकरे-न मोल लेने योग्य, महँगे। उ० नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ छोटैउ बाढ़े। (क० ७।१२७)

अकलंकता-(सं०)-निर्दोषता, निष्कलंकता। उ० अकलंकता कि कामी लहई। (मा० १।२६।२)

अकलंका-(सं० अकलंक)-कलंकरहित, निर्दोष। उ० सबहि भाँति संकर अकलंका। (मा० १।७।२।२)

अकल-(सं०)-१. अवयव रहित, २. कलारहित, ३. संपूर्ण, ४. जिसका खंड न हो, ५. कल्पना में न आनेवाला। उ० १. व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुण नाम न रूप। (मा० १।२०।५)

अकस-(अर०)-१. बैर, २. बुरी उच्छेजना। उ० १. एते मान अकस कीवे को आपु आहि को ? (क० ७।१००) २. बंदि बोले बिरद अकस उपजाइ कै। (गी० १।८२)

अकसर-(सं० एक+सर)-अकेला, एकाकी। उ० कचन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आयहु तात। (मा० ३।२४)

अकसर-(अर०)-बहुधा, अधिकतर, प्रायः।

अकाज-(सं० अकार्य)-१. बुराई, २. हर्ज, ३. विघ्न, ४. खोटा काम, ५. निष्प्रयोजन। उ० १. मनहुँ अकाज आनै ऐसो कौन आज है। (क० ५।२२) मु० अकाल काज-बनाव-बिगाड़। उ० तुलसी अकाज काज रामही के रीमे खीमे। (वि० ७६)

अकाजा-दे० 'अकाज'। उ० २. जौ न कहउँ बड़ होइ अकाजा। (मा० १।४५।४)

अकाजू-दे० 'अकाज'। उ० २. जौ न जाउँ तव होइ अकाजू। (मा० १।१६।३)

अकाजेउ-१. मरे हैं, २. अकाज हुआ है, हर्ज हुआ है। उ० १. मानहुँ राजु अकाजेउ आजू। (मा० २।२४।३)

अकाथ-(सं० अकार्यार्थ) अकारथ, व्यर्थ, बूथा। उ० भयो सुगम तो को अमर-अगम तनु समुभि धौं कत खोवत अकाथ। (वि० ८४)

अकाम-(सं०)-१. निष्काम, कामनारहित, २. व्यर्थ। उ० १. अवटै अनल अकाम बनाई। (मा० ७।११।७)

अकामा-दे० 'अकाम'। उ० १. पट विकार जित अनघ अकामा। (मा० ३।४५।४)

अकामिना-(सं०) किसी बात की इच्छा न रखनेवालों को। उ० भजामि ते पदांबुज अकामिना स्वधामदं। (मा० ३। ४। छ० १)।

अकारन-(सं० अकारण) बिना कारण के। उ० काहि प्रनत

पर प्रीति अकारन ? (वि० २०६) अकारनहीं-बिना कारण के ही । उ० अभिमान विरोध अकारनहीं । (मा० ७।१०२।२)

अकाल-(सं०)-१. वे समय, वे मौसिम, २. दुर्मिच्छ, ३. कमी । उ० १. जिमि अकाल के कुसुम भवानी । (मा० ३।२४।४) मु० अकाल के कुसुम-बिना ऋतु के फूल । ऐसे फूल अशुभ समझे जाते हैं ।

अकास-(सं० आकाश)-आकाश, नभ, गगन, शून्य । उ० नृषावंत सुरसरि बिहाय सठ, फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो । (वि० २४५)

अकासवानी-(सं० आकाशवाणी)-देव वाणी, जो वाणी आकाश से सुनाई पड़े । उ० मैं अकासवानी तेहि काला । (मा० १।१७३।३)

अकासा-दे० 'अकास' । उ० मैं बहोरि बर गिरा अकासा । (मा० १।१७४।२)

अकिंचन-(सं०) १. अहंकार, ममता और मान इत्यादि से रहित, २. सर्वत्यागी, ३. निर्धन, ४. आवश्यकता से अधिक धन न संग्रह करनेवाला । उ० १. परम अकिंचन प्रिय हरि केरे । (मा० १।१६।१।२) २. अचल अकिंचन सुचि सुखधामा । (मा० ३।४५।४)

अकुंठ-(सं०) १. जो कुंठित न हो, तीव्र, तेज, पैना, २. श्रेष्ठ, उत्तम । उ० १. मति अकुंठ हरि भगति अखंडा । (मा० ७।६३।१)

अकुंठा-दे० 'अकुंठ' । उ० २. लाभकि रघुपति भगति अकुंठा । (मा० ६।२६।४)

अकुल-(सं०)-परिवार रहित, कुलहीन । उ० अकुल अगेह दिगंबर ब्याली । (मा० १।७५।३)

अकुलाइ-(सं० आकुल)-व्याकुल होकर । उ० समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ । (मा० २।२७)

अकुलाई-व्याकुल होकर, आकुल होकर । उ० मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई । (मा० २।२७।३) अकुलाति-आकुल होती हैं, घबड़ाती हैं । अकुलार्ति-आकुल होती है, व्याकुल होती है । अकुलान-अकुलाया, व्याकुल हुआ । उ० सर पैठत कपिपद गहा, मकरी तब अकुलान । (मा० ६।२७)

अकुलाना-१. व्याकुल हुआ, घबराया, २. उबा, ३. आवेग में आया । उ० १. कहि न सकइ कछु अति अकुलाना । (मा० २।१००।२) अकुलानी-व्याकुल हो उठी, व्याकुल हुई । उ० अति सुकुमारि देखि अकुलानी । (मा० २।२८।१) अकुलाने-१. मग्न हुए, २. व्याकुल हुए, ३. लुब्ध । उ० १. जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं । (गी० १।२६) अकुलाई-व्याकुल होते हैं । छुटपटाते हैं । उ० पुनि पुनि मुनि उकसाहि अकुलाई । (मा० १।१३।५)

अकुलीन-(सं०) नीच कुल का, बुरे कुल का । उ० कुल अकुलीन को सुन्यो है, बेद साखि है । (वि० ६६)

अकूपार-(सं०)-१. समुद्र, २. बड़ा कछुआ । वह कच्छप जो पृथ्वी के नीचे माना गया है । ३. पत्थर या चट्टान । अकूपाल-दे० 'अकूपाल' ।

अकूपालु-(सं०)-निर्दय, क्रुपा रहित । उ० प्रभु अकूपालु, कृपालु अलायक जहँ-तहँ चितहि डोलावों । (वि० २३२)

अकेल-(सं० एक+हिं ला)-अकेला, एकाकी । उ० अति

अकेल बन बिपुल कलेसू । (मा० १।१२७।३) अकेलि-अकेली, एकाकी, उ० बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू । (मा० १।२३।४) अकेले-एकाकी । अकेला । उ० को तुम्ह कस बन फिरहु अकेले । (मा० १।१२६।२)

अकोविद-(सं० अकोविद)-मूर्ख, अज्ञानी । उ० अग्य अकोविद अंध अभागी । (मा० १।११२।१)

अकूर-(सं०)-१. दयालु, सरल, २. एक यादव जो श्रीकृष्ण के चचा लगते थे ।

अद-द-(सं०)-१. रावण का पुत्र अक्षुमार जिसे हनुमान ने लंका का प्रमोदवन उजाड़ते समय मारा था । २. आँख, ३. गाड़ी, ४. व्यवहार, ५. इंद्रिय, ६. आत्मा, ७. चौसर, पासों का खेल । उ० १. रुख निपातत, खात फल, रचक अक्ष निपाति । (प्र० ५।२।१)

अदत-(सं०)-१. चावल, २. अखण्डित, ३. जिसमें क्षत या घाव न किया गया हो ।

अदय-(सं०)-जिसका क्षय या नाश न हो । कल्प के अंत तक रहनेवाला । उ० अक्षय अकलंक सरद-चंद-चंदिनी । (गी० २।४३)

अद्वार-(सं०)-१. नित्य, अविनाशी, ब्रह्म, २. अकारादि वर्ण । अक्षि-(सं०)-आँख ।

अखंड-(सं०)-१. संपूर्ण, २. लगातार, ३. बेरोक । उ० १. अगुन अखंड अनंत अनादी । (मा० १।१४।१।२)

अखंडल-(सं० अखंड)-१. अखंड, पूरा, २. इंद्र । उ० १. पुर खरभर, उर हरपेउ अचलु अखंडल । (पा० १।१४)

अखंडा-दे० 'अखंड' । उ० १. सोहमस्मि इतिवृत्ति अखंडा । (मा० ७।११८।१)

अखंडित-(सं०)-जिसके टुकड़े न हुए हों । उ० सोह गुन-गुह विग्यान अखंडित । (मा० ७।४६।४)

अखत-(सं० अक्षत)-चावल, पूजा के लिए उपयुक्त चावल जो टूटा नहीं रहता ।

अखय-(सं० अक्षय) अक्षय, जिसका नाश न हो । उ० परसि अखय ददु हरपहि गाता । (मा० १।४४।३) अखय-बटु-(सं० अक्षयवट)-वह वरगद का पेड़ जिसका नाश न हो । प्रयाग का प्रसिद्ध वट वृक्ष । उ० छत्रु अखयवटु मुनि मनु मोहा । (मा० २।१०२।४)

अखारा-(सं० अक्षवाट)-१. नाचने-गानेवालों की मंडली, २. मल्लयुद्ध के लिए बना स्थान, ३. स्नाथुओं का झुंडा, ४. रंगभूमि, ५. आँगन । उ० १. अति विचित्र तह होइ अखारा । (मा० ६।१०।४) अखारेह-अखाड़ों में, मल्ल-शालाओं में । उ० नाना अखारेह भिरहि बहुविधि एक एकन्ह तर्जहीं । (मा० ५।३। छं० २) अखारो-दे० 'अखारा' ।

अखिल-(सं०)-१. संपूर्ण, बिलकुल, पूरा, २. अखंड, सर्वांगपूर्ण । उ० १. अनरथ असगुन अघ असुभ अनमल अखिल अकाज । (प्र० ३।१।४) २. सुखद नर्मद वरद विरज अनवद्य अखिल, विपिन-आनंद-वीथिन-विहारी । (वि० ४६) अखिलविग्रह-(सं०)-समस्त शब्दांड जिसका शरीर हो । उ० अखिलविग्रह, उग्ररूप शिव भूपसुर, (वि० १०) अखिलेश्वर-(सं० अखिलेश्वर)-समस्त संसार के ईश्वर । उ० पूजे रिपि अखिलेश्वर जानी । (मा० १।४८।१)

अखेटकी-(सं० आखेटक)-शिकारी । उ० अटत गहन गन
अहन अखेटकी । (क० ७।१६)

अग-(सं०)-क. न चलनेवाला, १. पहाड़, २. पेड़। ख. टेढ़ा
चलनेवाला, ३. सर्प, ४. सूर्य । उ० १. गये पूरि सरधूरि,
भूरि भय अग थल जलधि समान । (गी० १।२२) अगजग-
जड़ और चेतन, चराचर । उ० अगजग जीव नाग नर
देवा । (मा० ७।१४) अगजगनाथ-चराचर के स्वामी,
भगवान । उ० अगजगनाथ अतुल बल जानहु । (मा० ६।
३।४) अगजगपालिके-हे स्थावर-जंगम को पालनेवाली
देवी पार्वती, हे पार्वती । उ० रचत विरवि, हरि पालत,
हरतहर, तेरे ही प्रसाद जग अगजगपालिके । (क० ७।१७३)
अगजगरूप-जड़ चैतन्यमय, सर्वव्यापी परमात्मा । उ०
नयन निरखि कृपासमुद्र हरि अगजगरूप भूप सीतावरु ।
(वि० २०५)

अगणित-(सं०) जिसकी गणना न हो सके, अपार । उ० कंदर्प-
अगणित-अमित छवि, नवनील-नीरज-सुंदर । (वि० ४५)

अगति-(सं०)-दुर्गति, बुरी दशा । उ० अवि, सिधि, विधि
चारि सुगति जा विनु गति अगति । (गी० २।८२)

अगनित-दे० 'अगणित' । उ० लावन्य-वपुष अगनित-अनंग ।
(वि० ६४)

अगनी-(सं० अग्नि)-आग ।

अगनी-(सं० अगणित)-दे० 'अगणित' ।

अगम-(सं०)-१. जहाँ कोई जा न सके, २. न जानने योग्य,
दुर्बोध । ३. कठिन, विकट, ४. दुर्लभ, अलभ्य, ५. अपार,
बहुत, ६. अथाह, गहरा । उ० १. एक अङ्ग मग अगम
गवन कर. बिलसु न छिन-छिन छाहैं । (वि० ६५) २.
कविकुल अगम भरतगुन गाथा । (मा० २।२३३।१) ३.
तुलसी महेश को प्रभाव भाव ही सुगम, निगम अगम हूँ
को जानिबो गहन है । (क० ७।१६०) ४. अगम जो
अमरनि हूँ सो तनु तोहि दियो । (वि० १३५) अगमै-
दे० 'अगम' । उ० ५. ताकी महिमा क्यों कही है जाति
अगमै । (क० ७।७६)

अगमनो-(सं० अग्रवान्)-आगे करके । उ० रावन करि
परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहैं । (गी० ५।१५१)

अगमु-दे० 'अगम' । उ० ३. अगमु न कहु प्रतीति मन
मोरें । (मा० १।३४३।२)

अगम्य-(सं०)-दुर्गम, न जाने योग्य, अवघट ।

अगर-(सं० अग्रह)-१. एक प्रकार की सुगंधित लकड़ी ।
२. एक पेड़ का नाम जिसकी लकड़ी सुगंधित होती है ।
३. उस लकड़ी का चूर्ण । उ० ३. कुंकुम अगर अरगजा
छिरकहि भरहि गुलाल अबीर । (गी० १।२)

अगरज-(सं० अग्रज)-१. जो पहिले जन्मा हो, अग्रज, २.
नायक, नेता, ३. ब्राह्मण । उ० १. ताहीतें अगरज भएउ
सब विधि तेहि प्रचार । (स० ५३५)

अगरु-(सं०)-दे० 'अगर' । उ० अगरु प्रसंग सुगंध बसाई ।
(मा० १।१०।५)

अगवान-(सं० अग्र + वान)-स्वागत के लिए नियुक्त व्यक्ति
या व्यक्तियों का समूह, अगवानी करनेवाला या करने-
वाले । उ० सजि गज रथ पदचर तुरग. लेन चले अग-
वान । (मा० १।३०४)

अगवाना-अगवानी करनेवाले । उ० चले लेन सादर अग-
वाना । (मा० १।६५।१)

अगवानी-स्वागत, अभ्यर्थना, आगे बढ़कर लेना । उ०
नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए । (जा० १।३५)

अगस्ति-(सं० अगस्त्य)-१. अगस्त्य ऋषि, २. एक तारा
जो भादों में सिंह के सूर्य के १७ अंश पर उदय होता है ।
इसका रंग पीला होता है । ३. एक पेड़ । उ० १. सुनत
अगस्ति तुरत उठि धाए । (मा० ३।१२।५) २. उदित
अगस्ति पंथ जल सोषा । (मा० ४।१६।२)

अगस्त्य-(सं०) एक ऋषि । मित्रावरुण एक बार उर्वशी को
देखकर काम-पीड़ित हो गए । उन्हें वीर्यपात हुआ जिसे घड़े में
रखा गया । इसी घड़े से अगस्त्य ऋषि का जन्म हुआ इसी
कारण कुंभज, घटयोनी आदि भी इनके नाम हैं । एक बार
विंध्याचल को इस बात की ईर्ष्या हुई कि सुमेरु की प्रद-
विद्या सभी करते हैं और उसकी कोई नहीं । वह रुष्ट
होकर इतना बढ़ा कि सूर्य का मार्ग बंद हो गया और
अंधेरा फैल गया । देवताओं की प्रार्थना पर अगस्त्य ऋषि
उसके पास गए । विंध्य शाप के डर से इनके चरणों में
गिर गया और योग्य सेवा के लिए प्रार्थना की । अगस्त्य
यह कहकर कि जब तक मैं न आऊँ इसी प्रकार रहो उजैन
की ओर चले गए और फिर न लौटे । तब से विंध्य उसी
प्रकार पड़ा है । एक बार अगस्त्य समुद्र के किनारे पूजा
कर रहे थे । समुद्र इनकी कुछ सामग्री बहा ले गया । इस
पर रुष्ट होकर ऋषि उसे पी गए । फिर जब देवताओं ने
प्रार्थना की तो लघुशंका के द्वारा समुद्र को अपने उदर
से बाहर किया । इसी कारण समुद्र का जल नमकीन है ।
कई बार इन्होंने ऋषियों की राक्षसों से रक्षा की । अगस्त्य
अपने लोक-कल्याणकारी चरित्र के लिए प्रसिद्ध हैं ।

अगह-(सं० अग्राह्य)-जो गहने योग्य न हो, जो पकड़ा न
जा सके । उ० नृपगति अगह, गिरा न जाति गही है ।
(गी० १।८५)

अगहु-दे० 'अगह' । उ० सब विधि अगहु अगाध दुराज ।
(मा० २।४७।४)

अगहुँड़-(सं० अग्र + हि० हुड़)-१. अगुआ, आगे चलने-
वाला, २. आगे, आगे की ओर । उ० १. मन अगहुँड़ तन
पुलकि सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर । (गी० २।६६)
२. भय बस अगहुँड़ परइ न पाऊ । (मा० २।२५।१)

अगाऊ-(सं० अग्र + हि० आऊ)-आगे, आगे ही । उ० यह
तो मोहि खिक्काइ कोटि विधि, उलटि बिबादन आइ अगाऊ ।
(क० १२)

अगाध-(सं०)-१. अथाह, २. बहुत, ३. गंभीर । उ० १.
ऐसेउ अगाध बोध रावरे सनेह-बस । (गी० १।८५)

अगाधनि-अगाध का बहुवचन । उ० २. व्याध को साधुपनो
कहिए, अपराध अगाधनि मैं ही जनाई । (क० ७।६३)

अगाधा-दे० 'अगाध' । उ० १. बरनब सोई बर बारि
अगाधा । (मा० १।३७।१)

अगाधु-दे० 'अगाध' । उ० १. तुलसी उतरि जाहु भव
उदधि अगाधु । (ब० ६१)

अगाधू-दे० 'अगाध' । उ० २. वेद मध्य गुन विदित अगाधू ।
(बै० २२)

अगार-अघात]

अगार-(सं० आगार)-१. आगार, घर, धाम, २. डेर, राशि, ३. अगाड़ी, ४. प्रथम । उ० १. नगर नारि भोजन सचिव सेवक सखा अगार । (दो० ४७२)

अगिन-(सं० अग्नि)-आग ।

अगिनि-(सं० अग्नि)-आग । उ० अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ । (जा० १६१) अगिनिसमाऊ-[सं० अग्नि + सामग्री (सं०) या सामान (फा०)] अग्निहोत्र की सारी सामग्री । उ० अरुंधती अरु अगिनिसमाऊ । (मा० २१८७३)

अगिले-(सं० अग्र)-१. आगे आनेवाले, आगामी, २. प्राचीन, पुरखे । उ० १. न कह बिलंब थिचार चारुमति, बरष पाछिले सम अगिले पलु । (वि० २४)

अगुआई-(सं० अग्र) अग्रणी होने की क्रिया, मार्ग-प्रदर्शन । उ० कियउ निषादनाथु अगुआई । (मा० २१२०३१)

अगुण-(सं०)-१. गुणरहित, मूर्ख, २. निर्गुण, ब्रह्म ।

अगुन-(सं० अगुण)-१. निर्गुण, सत रज और तम गुणों से रहित, ब्रह्म, २. मूर्ख, ३. दोष । उ० १. पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुन अनघ अमाय । (वि० २२०) २. अगुन अलायक आलसी जानि अग्रम अनेरो । (वि० २७२)

अगुनहिं-१. अगुन या निर्गुण में, २. अगुन या निर्गुण को । उ० सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा । (मा० १११६११)

अगुनी-[सं० अ + गुण (वर्णन)]-जिस पर गुना न जा सके, जिसका वर्णन न हो सके, अयाह, गंभीर । उ० ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन-गाहैं । (क० ७११)

अगुह्य-(सं०)-जो गुह्य न हो, प्रकट ।

अगोह-(सं०)-बिना घरबार का, जिसका ठिकाना कहीं न हो । उ० अकुल अगोह दिगंबर ब्याली । (मा० १७६३)

अगोहा-दे० 'अगोह' । उ० तुम्ह सम अग्रन भिखारि अगोहा । (मा० ११६११२)

अगोचर-(सं०)-जो इंद्रियों से न जाना जा सके, अदृश्य । उ० मन बुद्धि बर बानी अगोचर, प्रगट कवि कैसे करै । (मा० ११२३१२)

अग्र्य-(सं० अग्र)-मूर्ख, बेसमझ । उ० कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जइ अग्र्य । (मा० ११२७ क)

अग्र्यता-(सं० अज्ञता)-अज्ञान, मूर्खता । उ० तय कृतज्ञ अग्र्यता भंजन । (मा० ७३४३)

अग्र्या-(सं० आज्ञा)-आदेश, आज्ञा, हुकम । उ० अग्र्या सिर पर नाथ तुम्हारी । (मा० १७७३)

अग्र्याता-(सं० अज्ञात)-अनजान में, न जानने से । उ० अनुचित बहुत कहेउ अग्र्याता । (मा० ११२८१३)

अग्र-(सं०)-१. आगे, २. मुख्य, ३. एक वैश्य राजा का नाम, ४. सिरा, ५. अग्र की भिन्ना का एक परिमाण जो मोर के ४८ अडों के बराबर होता है । उ० १. चली अग्र करि प्रिय सखि सोई । (मा० ११२२६४) अग्रकृत-

(सं०)-आगे का किया हुआ, पहले का बनाया हुआ । अग्रगण्य-(सं०)-जिसकी गणना पहले हो, श्रेष्ठ । उ० दुनुज बनकृशातु ज्ञानिनामग्रगण्यम् । (मा० ११११०३)

अग्रणी-(सं०)-अग्रया, श्रेष्ठ । उ० जयति रुद्राग्रणी विश्व-विद्याग्रणी । (वि० २७)

अव-(सं०) १. पाप, २. दुःख, ३. व्यसन, ४. कंस के

सेनापति का नाम । उ० १. केहि अघ अवगुन आपनो करि डारि दिया रे । (वि० ३३) २. बरषि बिस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास । (दो० ३७८) अघमोचन-(सं० अघ + मोचन)-पापों का नाश करनेवाली । उ० कीरति बिमल बिस्व-अघमोचनि रहिहि सकल जग छाई । (गी० १११३) अघरूप-जिसका स्वरूप ही पाप हो, बहुत बड़ा पापी । उ० तदपि महीसुर आप बस भये सकल अघरूप । (मा० १११७६) अघहारी-(सं० अघ + हर)-पापों के नाश करनेवाले । उ० गुनगाहकु अवगुन अघहारी । (मा० २१२६८२)

अघट-(सं० अ + घट)-१. जो घटित न हो सके, २. कठिन, ३. अयोग्य, ४. जो कम न हो, ५. एक रस । उ० १. अघट-घटना-सुघट, सुघट-विघटन-विकट । (वि० २५)

अघटें-१. असंभव, २. जो हुआ न हो, ३. अशक्य होने-वाला, अनिवार्य, ४. अनुचित, ५. बहुत अधिक । उ० १. तिन्हहि कहत कछु अघटित नार्हीं । (मा० १११५३)

३. काल कर्म गति अघटित जानी । (मा० २१६५३) अघटित-घटन-असंभव को संभव करनेवाले । उ० अघटित-घटन, सुघट-विघटन, ऐसी विरुद्धावलि नहीं आन की । (वि० ३०)

अवाह-(सं० आवाण = नाक तक)-१. छक्कर, पेट भरकर, तृप्त होकर, २. पूर्णतम, ३. ऊबकर । उ० १. सां तनु पाइ अवाह किये अघ । (वि० १६४) २. दीन सब अंगहीन झीन मलीन अवी अवाह । (वि० ४१) अवाह-१. प्रसन्न होकर, तृप्त होकर, २. पूर्णतम । उ० १. गुरु साहिव अनुकूल अवाहैं । (मा० २१२६०११) २. जनम लाभ कइ अवाधि अवाहैं । (मा० २१२२४४) अवाहंगो-अवाहंगा, तृप्त होऊंगा । उ० धरिहैं नाथ हाथ माथे पहि तें केहि लाभ अवाहंगो ? (गी० ५३०) अवाह-तृप्त होऊँ, तृप्ति पाऊँ । उ० प्रभु बचनानुत् सुनि न अवाहैं । (मा० ७१८११) अवात-अवाते, तृप्त होते । उ० देत न अवात, रीकि जात पात आकही के, भोला नाथ जोगी जब औढर दरत हैं । (क० ७११६६) अवाता-तृप्त होता या तृप्त होते । उ० परम प्रेम लोचन न अवाता । (मा० ३१२१२) अवाति-तृप्ति होती है, तृप्ति होती । उ० चाहत सुनि-मन-अगम सुकृत-फन, मनसा अघ न अवाति । (वि० २३३) अवाती-तृप्त होती । उ० जासु कृपा नहि कृपा अवाती । (मा० ११२८२) अवाने-तृप्त हुए । उ० भाव भगति आनंद अवाने । (मा० २११०८१) अवानो-अवाया हुआ, तृप्त । उ० लखे अवानो भूख ज्यों, लखे जीति में हारि । (दो० ४४३) अवाथ-अवाकर, पूर्णतः । अवाधि-अवाती हैं, तृप्त होती हैं या तृप्त होते हैं । उ० नहि अवाहि अनुराग भाग भरि भामिनि । (जा० १५०) अवाहीं-तृप्त होते हैं, भरते हैं या भरती हैं । उ० नहि पट कटि नहि पेट अवाहीं । (मा० २१२५१३) अवाहूँ-तृप्त हों । उ० रामभगत अब अमिअ अवाहूँ । (मा० २१२०६३)

अवाउ-तृप्ति, सतुष्टि । उ० भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अवाउ । (वि० १००)

अवात-(सं० आवात)-चोट, आवात । उ० लात के अवात सड़े जो में कई 'कुर हैं' । (क० ५३)

अघी-(सं०)-पापी, अधर्मी । उ० लाले पाले पोषे तोषे
आलसी अभागी अघी । (वि० २५३)
अचंचल-(सं०)-चंचलता रहित, स्थिर, शांत । उ० भए
बिलोचन चारु अचंचल । (मा० १२३०२)
अचंभव-(सं० असंभव)-अचंभा, आश्चर्य । उ० सुर मुनि
सबहि अचंभव माना । (मा० ६७११४)
अचंभा-आश्चर्य, अचरज ।
अचइ-(सं० आचमन)-आचमन करके, पी करके । उ० पैठि
बिवर मिलि तापसिहि, अचइ पानि, फलु खाइ । (प्र०
३१७३) अचवैत-आचमन करते ही पीते ही । उ० जो
अचवैत नृप मातहि तेई । (मा० २२३११४) अचवै-आच-
मन करे ।
अचगरि-(?)-१. चपलता, नटखटी, शरारत, अत्याचार ।
उ० १. जो लरिक कळु अचगरि करहीं । (मा० १२७७२)
अचर-(सं०)-जो चल न सके, स्थावर, जड़, अचल । उ०
अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति वासना
धूप दीजै । (वि० ४७)
अचरज-(सं० आश्चर्य) अचंभा, तअज्जुब । उ० बहुरि
कंहहु करुनाथतन कीन्ह जो अचरज राम । (मा० ११११०)
अचरजु-दे० 'अचरज' । उ० आजु हमहि बड़ अचरजु
लागा । (मा० २३६११)
अजल-(सं०)-१. पहाड़, जो न चले, स्थिर, २. चिरस्थायी,
सब दिन रहनेवाला, दृढ़, ३. आवागमन से मुक्त, ४. स्थिर-
बुद्धि । उ० १. भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै ।
(क० ६१५५) २. रघुपति-पद परम प्रेम तुलसी यह अचल
नेम । (वि० १६) ३. होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ।
(मा० ४११४४) ४. अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ।
(मा० ३१४५४) अचलअहेरी-अचूक निशाना लगाने-
वाला शिकारी । उ० चित्रकूट जनु अचलअहेरी । (मा०
२१३३२) अचलसुता-(सं०)-पर्वत की लड़की, पार्वती ।
उ० अचल-सुता-मन-अचल बयारि कि डोलइ ? (पा० ६५)
अजला-(सं०)-पृथ्वी ।
अजलु-दे० 'अचल' । उ० उचके उचकि चारि अंगुल अचलु
गो । (क० ४११)
अचानक-सहसा, अकस्मात्, बिना पूर्व सूचना के । उ०
तुलसी कवि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिर-
छोहैं । (क० २१२५)
अचार-(सं० आचार)-१. आचार, आचरण, व्यवहार,
२. धर्म-व्यवहार, ३. तरीका । उ० १. स्वारथ-सहित सनेह
सब, रुचि-अनुहरत अचार । (दो० ५४८) २. जे मद्-
मार विकार भरे ते अचार-विचार समीप न जाहीं । (क०
७१६४) आचारविचार-(सं० आचार-विचार)-इन दो शब्दों
का आज भी एक साथ प्रयोग मिलता है पर अर्थ वही होता
है जो 'आचार' का । धार्मिक कृत्य, शौच, पूजा-पाठ इत्यादि ।
अचारा-दे० 'अचार' । उ० १. अस अष्ट अचारा भा
संसारा धर्म सुनिअ नहि काना । (मा० ११८३) छं ३)
अचारू-दे० 'अचार' । उ० २. दुहुँ कुल गुर सब कीन्ह
अचारू । (मा० १३२३४)
अचित (१)-(सं०)-निश्चित, चिंता रहित ।
अचित (२)-(सं० अचित्य)- दे० 'अचित्य' ।

अचित्य-(सं०)-१. जिसका चिंतन संभव न हो । २. अतुल,
३. चिंता रहित, ४. आशा से अधिक, ५. अकस्मात् ।
अचेत-(सं०) १. अज्ञात, २. बेसुध, संज्ञाहीन, ३. व्याकुल,
४. मूर्ख, अज्ञानी, बेसमझ, ५. अचेतन, जड़ । उ० १.
रावन भाइ जगाइ तब, कहा प्रसंगु अचेत । (प्र०
५१७१) ३. बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि
अचेत । (मा० ११७६) ४. समुझी नहि तसि बालपन तब
अति रहेउँ अचेत । (मा० १३० क) ५. छोटे बड़े जीव
जेते चेतन अचेत हैं । (ह० ३२)
अचेता-दे० 'अचेत' । उ० २. चले जाहि सब लोग अचेता ।
(मा० २३२०४)
अच्छ-(सं० अत्त)-रावण का पुत्र, अक्षयकुमार । उ०
अच्छ-बिमर्दन कानन-भान दसानन आनन भान निहारे ।
(ह० १६)
अच्छकुमारा-(सं० अक्षयकुमार)-रावण का पुत्र अक्षय-
कुमार । उ० पुनि पठ्यउ तेहि अच्छकुमारा । (मा० ५१
१८४)
अच्छत-(सं० अत्त)-अत्त, चावल । जो अत्त न हो ।
उ० अच्छत अंकुर लोचन लाजा । (मा० १३४६३)
अच्छम-(सं० अत्तम)-असमर्थ, अयोग्य, शक्तिहीन । उ०
सबहि समरथहि सुखद प्रिय, अच्छम प्रिय हितकारि ।
(दो० ७४)
अच्छर-(सं० अक्षर)-१. अक्षर, क, ख, ग आदि, २. जिसका
बाध न हो । उ० १. द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहि सहित
अनुराग । (मा० ११४३)
अच्युत-(सं०) १. जो गिरा न हो, २. दृढ़, अटल, ३.
अविनाशी, ४. विष्णु और उनके अवतारों का नाम ।
उ० ३. तज सर्वज्ञ यज्ञेश अच्युत, विभो । (वि० १०)
अछत-(सं० अत्त)-१. अत्त, चावल, २. जो दूटा न
हो, पूर्ण, ३. रहते हुए, उपस्थिति में । उ० ३. तुम्हहि
अछत को बरवै पारा । (मा० १२७४३)
अछोभ-(सं० अक्षोभ)-गंभीर, शांत, क्षोभ-रहित, ग्लानि-
शून्य ।
अछोभा-दे० 'अछोभ' । उ० बीर ब्रती तुम्ह धीर अछोभा ।
(मा० १२७४४)
अज-(सं०)-१. अजन्मा, जन्म-रहित, २. ब्रह्मा, ३. विष्णु,
४. शिव, ५. कामदेव, ६. दशरथ के पिता का नाम, ७.
बकरा, ८. माया, ९. रोहिणी नक्षत्र, १०. मेघ । उ० १.
अकल निरुपाधि निरगुन निरंजन ब्रह्म कर्म-पथमेकमज
निर्विकारं । (वि० १०) २. करता को अज जगत को,
भरता को हरि जान । (सं० २७३) ४. चंद्रसेखर सूल-
पानि हर अनघ अज अमित अविच्छिन्न नृपभेयगामी । (वि०
४६) ७. तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यों फिरत विषय
अनुरागे । (वि० ११७) अजधामा-(सं० अजधाम)-ब्रह्म-
लोक । उ० पद पाताल सीस अजधामा । (मा० ६१२११)
अजहि-अज को, ब्रह्मा को । उ० मसकहि करइ विरंचि
प्रभु अजहि मसक ते हीन । (मा० ७१२२ ख)
अजगर-(सं०)-१. एक प्रकार का बहुत मोटा सर्प, २.
आलसी आदमी । उ० १. बैठ रहसि अजगर ह्व पापी ।
(मा० ७१०७४)

अजगव-(सं०)-शिव का धनुव, पिनाक ।
 अजय-(सं०) जिसे कोई न जीत सके । उ० खल अति अजय देव दुखदाई । (मा० ११७०।३) अजयमख-(सं०)-ऐसा यज्ञ जिसे कर देने से करनेवाला अजय हो जाय । उ० करौं अजय मख अस मन धरा । (मा० ६। ७२।१)
 अजर-(सं०) १. जो जीर्ण या बूढ़ा न हो, २. जो न पचे, अजीर्ण, ३. ईश्वर का एक विशेषण, ४. ब्रह्मा, ५. देवता । उ० १. काल काल, कलातीतमजर हरं । (वि० १२)
 अजस-(सं० अयश)-अपयश, बदनामी, निंदा । उ० अजस पेठारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि । (मा० २।१२)
 अजसी-(सं० अयशिन-अपयशी, यशरहित, निर्दिष्ट । उ० अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा । (मा० ६।३ १।१)
 अजसु-दे० 'अजस' । उ० मोर मरन राउर अजसु नृप समुक्थिय मन माहि । (मा० २।३३)
 अजहुँ-(सं० अद्य)-अब भी, आज भी, अब तक । उ० अजहुँ आपने राम के करतब समुभक्त हित होइ । (वि० १।६३)
 अजहुँ-आज भी, अब भी । उ० सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहुँ । (वि० ८६)
 अजाँची-(सं० अयाचिन्)-याचनारहित, पूर्ण काम, संपन्न । उ० कपि, सवरी, सुश्रीव, विभीषन को नहिं कियो अजाँची । (वि० १।६३)
 अजा-(सं०)-१. अजन्मा, जिसका कभी जन्म न हो, २. बकरी । उ० १. अजा अनादि सक्ति अविनासिनि । (मा० १।६८।२) २. जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन, होत अजा-खुर बारिधि बादे । (क० २।२) अजाखुर-(सं०)-बकरी के खुर का चिह्न ।
 अजाचक-(सं० अयाचक)-अयाचक, जिसे कुछ माँगने की आवश्यकता न हो । उ० जाचक सकल अजाचक कीन्हे । (सा० ७।१२।४)
 अजाची-(सं० अयाचिन्)-जो न माँगे, जिसके यहाँ सब कुछ हो ।
 अजाति-(सं० अ + जाति, -विना जाति का, जातिरहित । उ० अगुन अमान अजाति मातु-पितु-हीनहि । (पा० ५२) ।
 अजान-(सं० अ + ज्ञान -अनजान, अबोध, अनभिज्ञ, ना-समझ । उ० पूँछत जानि अजान जिमि व्यापेउ कोपु सरीर । (म० १।२६६)
 अजानी-अज्ञानी, मूर्ख । उ० रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हूँ ते कठोर हियो है । (क० २।२०)
 अजान्यो-मूर्ख । उ० देखत विपति विपय न तजत हौं, तातें अधिक अजान्यो । (वि० ६२)
 अजामिल-(सं०)-एक पापी ब्राह्मण । अजामिल कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इन्होंने समस्त वेद-वेदांगों का अध्ययन किया था । एक दिन समिधा लेने जंगल में गये और वहीं एक बेश्या से प्रभावित होकर उससे फँस गये । धीरे-धीरे सारा आचार-विचार जाता रहा और उसे रखनी बनाकर घर लाये । उनकी पतितावस्था यहाँ तक पहुँची कि शराब, खवा, चोरी और हिंसा से भी प्रेम हो गया । एक दिन कुछ साधु उनकी अनुपस्थिति में आये । उनकी गर्भवती पत्नी ने साधुओं का स्वागत किया । साधु जाते समय भावी

पुत्र का नाम नारायण रख गए । लड़का पैदा हुआ और धीरे-धीरे बड़ा हुआ । मरते समय अजामिल के चारों ओर यम के दूत आकर खड़े हो गए । डरकर उसने अपने पुत्र 'नारायण' को पुकारा । किंतु 'नारायण' नाम लेने का इतना प्रभाव हुआ कि स्वर्ग के दूत आकर उसे स्वर्ग में ले गए । इतना पापी होने पर भी नाम लेने के कारण वह मुक्ति का भागी हुआ । उ० जो सुतहित लिए नाम अजामिल के अघ अमित न दहते । (वि० ६७)
 अजित-(सं०) १. जो जीता न गया हो, २. विष्णु, ३. शिव, ४. बुद्ध । उ० दीन हित अजित सर्वज्ञ समरथ प्रनत-पाल । (वि० २।११) अजित-दे० 'अजित' । अजित को । उ० योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् । (मा० ६। २।० १)
 अजिन-(सं०)-१. बत्कल, छाल, २. मृगछाला, ३. चर्म, खाल । उ० १. अजिन बसन फल असन महि सयन डसि कुस पात । (मा० २।२११) ३. गज अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै । (पा० ६३)
 अजिर-(सं०)-१. आँगन, सहन, २. वायु, ३. शरीर, ४. मंडक, ५. इंद्रियों का विषय । उ० १. कवि उर अजिर नचावहि बानी । (मा० १।१०।२।३)
 अजीता-(सं० अजित)-जो जीता न जा सके । उ० सव-दरसी अनवद्य अजीता । (मा० ७।७२।३)
 अजीरन-(सं० अजीर्ण)-१. अजीर्ण, अपच, बदहज्मी, २. अधिकता, ३. नया । उ० १. असन अजीरन को समुक्ति तिलक तज्यौ । (गी० २।३३)
 अजे-(सं० अजय)-अजेय, जो जीता न जा सके । उ० रघुबीर महा रनधीर अजे । (मा० ७।१।६)
 अजै-(सं० अजय)-१. अजय, न जीतने योग्य, २. हार, उ० १. हौं हारयो करि जतन विविध विधि, अतिसय प्रबल अजै । (वि० ८६)
 अजोध्या-(सं० अयोध्या)-अयोध्या नगरी । उ० दिन प्रति सकल अजोध्या आवहि । (मा० ७।२७।१)
 अजौ-(सं० अद्य) अजहुँ, अब भी, अब तक ।
 अज्ञ-(सं०)-१. अज्ञानी, मूर्ख, २. अनजान, अपरिचित । उ० २. जेहि अपराध असाधु जानि मोहि तजेहु अज्ञ की नाई । (वि० १।१२)
 अज्ञता-(सं०)-मूर्खता, मूर्खता, अज्ञान ।
 अज्ञा-(सं० अज्ञा)-आदेश, हुक्म ।
 अज्ञाता-अनजान में ।
 अज्ञान-(सं०) १. अविद्या, मोह, ज्ञान का अभाव, २. मूर्ख नासमझ । उ० भक्त-हृदि-भवन अज्ञान-तम-हारिनी । (वि० ४८)
 अज्ञान-दे० 'अज्ञान' ।
 अज्ञानी-(सं०)-जिसे ज्ञान न हो ।
 अज्ञानु-दे० 'अज्ञान' ।
 अज्ञानू-दे० 'अज्ञान' ।
 अट-(सं० अट्)-१. नाना धोनियों में भ्रमण, २. घूमना, अटन । उ० १. अट घट लट नट नादि जहँ, तुलसी रहित न जान । (स० ५७६)
 अटक-(?) रोक, रुकावट, अड़चन । उ० को करै अटक कपि-कटक अमरया ? (क० ६।७)

अटकठ-(अनु०)-बेहंगा, देदा-मेदा, अटखट ।
अटकत-अटकते हैं, रुकते हैं, उलझ जाते हैं । उ० भटकत
पद अद्वैतता अटकत ग्यान गुमान । (स० ३४७) अटकै-
१. फँसे, २. अड़े, रुके । उ० तुलसिदास भवत्रास मिटै तब
जब मति यहि सरूप अटकै । (वि० ६३)

अटकल-(?) अनुमान, कल्पना, अंदाज़ ।

अटखट-(अनु०)-अटसट्ट, अंड-बंड, टूटा-फूटा । उ० बाँस
पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे ।
(वि० १८६)

अटत-धूमता फिरता है । उ० जोग, जाग, जप, विराग,
तप, सुतीरथ, अटत । (वि० १२६) अटो-धूमो । उ० न
मिटै भवसंकट दुर्घट है तप तीरथ जन्म अनेक अटो ।
(क० ७८६)

अटन-(सं०)-धूमना, यात्रा करना । उ० चले राम बन
अटन पयादें । (मा० २।३।१।२)

अटनि-(सं० अट्ट)अट्टालिकाओं पर, अटारियों पर । उ० निज-
निज अटनि मनोहर गान करहि पिकबैनि । (गी० ७।२।१)
अटन्ह-अटारियाँ, अट्टालिकाएँ । उ० प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह
पर भामिनि । (मा० १।३।७।२)

अटपटि-(?) १. अट-पटी, टेढ़ी, २. गूढ़, कठिन । उ० १.
जदपि सुनिहिं मुनि अटपटि बानी । (मा० १।१३।४।३)
अटपटे-अनोखा, विचित्र । उ० सुनि केवट के बैन प्रेम
लपेटे अटपटे । (मा० २।१००)

अटल-(सं०)-जो न टले, दृढ़, स्थिर । उ० तुलसीस पवन
नंदन अटल लुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत । (क० ६।४७)

अटवाँ-(सं०)-बन, जंगल । उ० वृष्णि कुल कुमुद-राकेस
राधारमन कंस बंसाटवी-धूमकेतू । (वि० ५२)

अटारिन्ह-(सं० अट्टाली)-अटारियों पर । उ० बहुतक चढ़ीं
अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान । (मा० ७।३।ख) अटारीं-
कोठे पर, अटारियों पर । उ० निबुकि चढ़ेउ कपि कनक
अटारीं । (मा० १।२।१।५) अटारीं-कोठा, बुर्ज, घर के
ऊपर की कोठरी या छत ।

अट्टनि-(सं० अट्ट)-अटारियों पर । उ० हाट, बाट, कोट,
ओट, अट्टनि अगार पौरि, खोरि-खोरि दौरि-दौरि दीन्ही
अति आगि है । (क० १।१४)

अट्टहास-(सं०)-ज़ोर की हँसी, खिलखिलाकर हँसना । उ०
अट्टहास करि गर्जा कपि बड़ि लाग अकास । (मा० १।२।५)

अठारह-(सं० अष्टादश)-एक संख्या, १८ । उ० पदुम
अठारह जूथप बंदर । (मा० १।१।१।२)

अडोल-(सं० अ + डोल)-नहीं डोलने वाला, स्थिर, अटल ।
अडुक-(?) ठोकर चोट । उ० फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे
अडुक पहार । (दो० ५६०)

अडुकि-लुढ़क कर, ठोकर खाकर । उ० अडुकि परहिं फिरि
हेरहिं पीछे । (मा० २।१४।३।३)

अणिमा-(सं०)-अष्ट सिद्धियों में पहली सिद्धि जिससे योगी
अणुवत् सूक्ष्मरूप धारण कर लेते हैं और किसी को दिखाई
नहीं देते । अणिमादि-अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ-१.
अणिमा-बहुत छोटा होने की शक्ति । २. महिमा-बहुत
बड़ा हो जाने की शक्ति । ३. गरिमा-बहुत भारी बन
जाने की शक्ति । ४. लघिमा-बहुत हलका बन जाने की

शक्ति । ५. प्राप्ति-सब कुछ पा जाने की शक्ति । ६. प्राकाम्य-
सभी मनोरथ पूरा कर लेने की शक्ति । ७. ईशित्व-सब
पर शासन करने की शक्ति । ८. वशित्व-सब को वश में
करने की शक्ति । उ० ज्ञान विज्ञान बैराग्य ऐश्वर्य-निधि,
सिद्धि अणिमादि दे भूरि दानम् । (वि० ६१)

अणु-(सं०)-परमाणु से बड़ा कण, अतिसूक्ष्म, रजकण ।
अतंक-(सं० आतंक)-आतंक, भय, डर ।

अतनु-(सं०) १. तनरहित, बिना तन का, २. कामदेव ।
उ० रति अति दुखित अतनु पति जानी । (मा० १।२।४।३)

अतर्क-(सं० अतर्क्य)-जिसके विषय में तर्क न किया जा सके ।
अतर्क्य-(सं०)-तर्करहित, जिसके विषय में तर्क न किया जा
सके । उ० राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । (मा० १।१२।१।२)

अति-(सं०)-बहुत, अधिक, ज्यादा । उ० मैं अतिदीन,
दयालु देव, सुनि मन अनुरागे । (वि० १।१०) अतिनास-

(सं० अति + नाश -समूल नाश । उ० रामचरन-अनुराग-
नीर बिनु मल अतिनास न पावै । (वि० ८२) अतिबल-

(सं० अति + बल)-अत्यंत बलवान । उ० बहुरूप निस्सिचर
जूथ अतिबल सेन वरनत नहिं बनै । (मा० १।३। छं० १)

अतिबलो-अत्यन्त बलवान भी । उ० गनी-गरीब, बड़ो-
छोटो, बुध मूढ़, हीनबल अतिबलो । (गी० १।४२) अति-

बलौ-(सं०)-दोनों अत्यंत बलवान । उ० कुंदेन्दीवर
सुन्दरवतिबलौ विज्ञान धामाबुभौ । (मा० ४।१। श्लो० १)

अतिहि-अत्यंतही, बहुत ही । उ० ठाकुर अतिहि बड़ो सील
सरल सुठि । (वि० १३५) अतिही-अत्यंत ही, बहुत ही ।

उ० अतिही अनूप काहु भूप के कुमार हैं । (क० २।१४)
अतिउकृति-(सं० अत्युक्ति)-बड़ा-चढ़ाकर कही गई बात ।

उ० सुनि अतिउकृति पवन सुत केरी । (मा० ६।१।२)

अतिकल्प-(सं०)-महाकल्प, पुराणानुसार उतना काल
जितने में एक ब्रह्मा की आयु पूरी होती है । ३१ नील १०

खरब ४० अरब वर्ष । उ० सत्य संकल्प, अतिकल्प, कल्पांत
कृत, कल्पनातीत अहितल्पवासी । (वि० ५४)

अतिकाय-(सं०)-रावण का पुत्र, जो स्थूलकाय होने के
कारण अतिकाय नाम से प्रसिद्ध था । ब्रह्मा की तपस्या

करके इसने वरदान में कवच, अस्त्र दिव्य रथ और सुरों
तथा असुरों से अवध्यत्व प्राप्त किया था । एक बार इसने

इंद्र को परास्त किया था और वरुण पाश नामक अस्त्र
उनसे छीन लिया था । कुंभकर्ण के मारे जाने पर इसने घोर

युद्ध किया और अंत में लक्ष्मण के हाथ से मारा गया ।
उ० मेघनादु अतिकाय भट, परे महोदर खेत । (प्र०

१।७।१)

अतिकाया-दे० 'अतिकाय' । उ० अनिप अकंपन अरु अति-
काया । (मा० ६।४।६।२)

अतिकाल-(सं०)-१. कालों के भी काल, महाकाल, २.
कुसमय, ३. देर । उ० १. काल अतिकाल, कलिकाल,

व्यालाद-खग त्रिपुर मर्दन, भीम-कर्म भारी । (वि० ११)

अतिक्रम-(सं०)-सीमा पार कर जाना नियम या मर्यादा
का उलंघन । उ० कालु सदा दुरतिक्रम भारी । (मा०

७।१४।४)

अतिथि-(सं०)-१. अभ्यागत, जिसके आने की कोई तिथि
न हो, मेहमान, पाहुन, २. एक प्रकार के संन्यासी, ३.

अग्नि का एक नाम, ४. कुश के पुत्र का नाम । उ० १. सोइलंका लखि अतिथि अनवसर राम वृनासन ज्यों दई । (गी० १३८)

अतिवात-(सं०)-आँधी, तूफान । उ० प्रतिमा रुदहि पविपात नभ अतिवात बह डोलति मही । (मा० ६१०२१ ३० १)

अतिमति-अत्यंत बुद्धिमान । उ० जौ अतिमति चाहसि सुगति तौ तुलसी कर प्रेम । (सं० २४६)

अतिरिक्त-(सं०)-१. सिवाय, अलावा, २. अधिक, ज्यादा, ३. न्यारा, अलग ।

अतिसय-(सं० अतिशय)-१. अतिशय, बहुत अधिक, २. बढ़ा । उ० १. सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा । (मा० ११७१४) २. जेहि समान अतिसय नहि कोई । (मा० ३१६१४)

अतिसै-दे० 'अतिसय' ।

अतीत-(सं०) १. बीता हुआ, २. ल्यागी, ३. परे, ४. अलग, ५. मृत, ६. निर्लेप, ७. अतिथि, ८. अतिरिक्त, ९. बाहर । उ० २. तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति सांति लयलीन । (वै० ४८) ३. तुलसिदास दुख सुखातीत हरि । (गी० ११७)

अतीता-दे० 'अतीत' । उ० ३. अगुन अदभ्र गिरा गोतीता । (मा० ७७२१३)

अतीति-बीती । उ० रोग-वियोग-सोक-सम-संकुल, बड़ि बय बृथहि अतीति । (वि० २३४)

अतीव-(सं०)-अधिक, अतिशय । उ० शंखेन्द्राभमतीव सुदर तनु शार्दूलचमाम्बरं । (मा० ६११ श्लो० २)

अतीवा-दे० 'अतीव' । उ० देखि भरत गति अकथ अतीवा । (मा० २१२३८३)

अतुल-(सं०)-१. जो तोला या कूता न जा सके, अमित, अधिक, असीम, २. बेजोड़, अद्वितीय, ३. एक प्रकार का नायक । उ० १. देखत कोमल कल अतुल बिपुल बल । (गी० ११७२) २. अतुल मृगराज वपु धरित विहरित अरि । (वि० ५२) अतुलबल-(सं० अतुल + बल)-अत्यंत बलवान । उ० राजन रामु अतुलबल जैसे । (मा० ११२६३१२) । अतुलनीय-(सं०)-१. जिसकी तुलना न हो सके, अद्वितीय, २. अपरिमित ।

अतुलित-(सं०)-१. जिसकी तुलना न हो सके, २. अपार, ३. अनेक । उ० १. अतुलित अतिथि राम लघु भाई । (मा० २१२१४१) २. अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेह । (मा० १११ श्लो० ३)

अत्यंत-(सं०)-अतिशय, बहुत । उ० नियम यम सकल-सुरलोक-लोकेश, लंकेश बस नाथ ! अत्यंत भीता । (वि० १८)

अत्युक्ति-(सं०)-किसी बात को बहुत बढ़ाकर कहना ।

अत्र-(सं०)-यहां, इसमें, इस स्थान पर । उ० ब्रजंति नात्र संशय । (मा० ३१४१२)

अत्रि-(सं०)-१. सप्तर्षियों में से एक ऋषि जो ब्रह्मा की आँख से उत्पन्न हुए थे । ये विभिन्न मन्वंतरों में प्रजापति और सप्तर्षि के रूप में रहते हैं । भारत के दक्षिण प्रांत के रहनेवाले थे । अनसूया इनकी पत्नी थीं । ये इतने बड़े

तपस्वी थे कि एक बार राहु के आक्रमण के कारण सूर्य पृथ्वी पर गिर रहे थे पर इन्होंने रोक दिया । कहा जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने इनके यहाँ पुत्र होकर दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम नाम से जन्म ग्रहण किया था । वैदिक मंत्रों में इनका नाम है । इनकी एक अत्रि-संहिता भी है । २. सप्तर्षि-मंडल का एक तारा । उ० १. अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं । (मा० २१३२१४) अत्रितिय-(सं० अत्रि + स्त्री)-अत्रि मुनि की पत्नी अनसूया । कथा के लिए देखिए 'अनसूया' । उ० दिष्ट अत्रितिय जानकिहि, बसन बिभूषन भूरि । (प्र० २१६१४) अत्रिप्रिया-(सं०)-अत्रि ऋषि की स्त्री, अनसूया । कथा के लिए 'अनसूया' देखिए । उ० अत्रिप्रिया निज तपबल आनी । (मा० २१३२१४)

अथ-(सं०) १. आरंभ, अब, २. एक मंगल-सूचक शब्द जो पहले ग्रंथारंभ में लिखा जाता था ।

अथइहि-(सं० अस्तमन)-अस्त होगा । अथयउ-हूब गया, अस्त हो गया । अथवत-अस्त होते ही, अस्त होने पर । उ० उदय विकस, अथवत सकुच, मिटै न सहज सुभाउ । (दो० ३१६)

अथर्वणी-(सं० अथर्वणि)-१. अथर्ववेद का जाननेवाला, कर्मकांडी, पुरोहित, यज्ञ करानेवाला, २. वशिष्ठ जी । उ० १. बाल बिलोकि अथर्वणी हँसि हरहि जनायो । (गी० ११६)

अथर्वन-(सं० अथर्वन्)-अथर्वण, ४ था वेद जिसमें यज्ञ आदि का विधान कम है । शांति, पौष्टिक अभिचार, तथा मंत्र-तंत्र इसमें अधिक हैं ।

अथर्वनी-(सं० अथर्वणि)-अथर्वणी, पुरोहित ।

अथवा-(सं०)-या, वा, किंवा । उ० सरस होउ अथवा अति फीका । (मा० ११८६)

अथाई-(सं० स्थायि)-१. बैठक, चौपाल, घर के बाहर का कमरा जहाँ लोग बैठते हैं । २. सभा, ३. घर के सामने का चबूतरा । उ० १. हाट बाट घर गली अथाई । (मा० २१११२)

अथाह-(सं० अ + स्था)-जिसे थाहा न जा सके, गहिरा, गंभीर ।

अदंड-(सं०)-१. जो दंड के योग्य न हो, २. जिस पर कर न लगे, ३. निर्भय । उ० केसरीकुमार सो अदंड ऐसे डौंढिगो । (क० ६१२४)

अद-(सं० अद्)-भोजन, खाना, अंदन ।

अदन-(सं०)-अच्छण, भोजन, आहार । उ० भारती बदन, विष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावकनयन । (क० ७११२२)

अदमुत-(सं० अद्मुत)-अनोखा, अपूर्व । उ० अदमुत सलिल सुनत गुनकारी । (मा० ११४३११)

अदभ्र-(सं०)-१. बहुत, अधिक, २. अपार अनंत, ३. समूह, ४. महान । उ० १. अगुन अदभ्र गिरा गोतीता । (मा० ७७२१३)

अदरस-(सं० अदश्य)-अदृश्य, न दिखाई देने योग्य । उ० भरत हरत दरसत सबहि, पुनि अदरस सब काहु । (सं० ४२४)

अदर्भ-(सं० अ + दर्भ)-१. पाखंडरहित, २. अभिमान रहित ।

अदाग-(सं० अ + अर० दाग)-बिना दाग का, निर्मल ।

उ० त्याग को भूषण शांति पद, तुलसी अमल अदाग ।
(वि० ४४)
अदाया-(सं० अ + दया)-निर्दयता, कठोरता, निष्ठुरता ।
उ० भय अबिबेक असौच अदाया । (मा० ६।१६।२)
अदिति-(सं०)-अदिति दक्ष प्रजापति की पुत्री और प्रजापति
कश्यप की पत्नी थीं । पति-पत्नी ने तप के बल से भगवान को
पुत्र रूप में पाने का वरदान भगवान से प्राप्त किया था ।
त्रेता में अदिति कौसल्या हुई और कश्यप दशरथ । वामन
अवतार भी इसके पूर्व इन्हीं के गर्भ से हुआ था । सूर्य
आदि ३३ देवताओं की माता भी यही कही जाती हैं ।
उ० सदगुण सुरगण अब अदिति सी । (मा० १।३।१।७)
अदिनु-(सं० अ + दिन)-बुरा दिन, कुसमय, अभाग्य । उ०
अदिनु मोर नहीं दूषण काहू । (मा० २।१८।१।४)
अदूषण-(सं० अदूषण)-दोष-रहित, शुद्ध । उ० मनहुँ मारि
मनसिज पुरारि दिय, ससिहि चापसर मकर अदूषण ।
(गी० ७।१६)
अदृश्य-(सं० अदृश्य)-अदृश्य, छिपा हुआ, लुप्त । उ० तब
अदृश्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ । (मा०
१।१८।६)
अदेख-(सं० अ + हि० देख)-बिना देखा हुआ । उ०
देखेउ करइ अदेख इव अनदेखेउ बिसुझास । (सं० ३।४३)
अदेय-(सं०)-जो देने योग्य न हो । उ० मेरे कछु न अदेय
राम बिनु । (गी० १।४७)
अदेह-(सं०)-बिना देह का, कामदेव ।
अदोष-(सं०)-निदोष, दोषरहित ।
अदोषा-दे० 'अदोष' । उ० राम प्रेम बिधु अचल अदोषा ।
(मा० २।३२।३)
अद्भुत-(सं०)-अनोखा, अपूर्व । उ० पालन सुर धरनी
अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई । (मा० १।१८।६।छं०१)
अद्य-(सं०)-आज, अब ।
अद्रस्य-(सं० अद्रस्य)-अद्रस्य, अलख, जो दिखाई न दे ।
अद्रि-(सं०)-पहाड़, पर्वत । उ० तुषाराद्रि संकाश गौर
गभीर । (मा० ७।१०।८।३) । अद्रिचारी-(सं० अद्रिचारिन्)-
पर्वतों पर विचरनेवाला । उ० जयति निरुपाधि भक्ति-
भावयंत्रित-हृदय, बंधुहित-चित्रकूटाद्रिचारी । (वि० ३।६)
अद्रितीय-(सं०)-जिसके जैसा कोई दूसरा न हो, बिलक्षण,
अनुपम । उ० अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त विभुमेक
मनवद्यमजमद्वितीयं । (वि० ६२)
अद्वैत-(सं०)-१. द्वितीय रहित, एकाकी, एक, २. अनुपम,
बेजोड़ । उ० २ अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म
सुमिरामि नरभूपरूपं । (वि० ६०) अद्वैतदरसी-(सं० अद्वैत-
दर्शिन्)-सर्वत्र एक को ही देखनेवाले । ब्रह्मदर्शी, चराचर
को ब्रह्म माननेवाला । उ० प्रबल भवजनित-त्रैव्याधि-
भेषज भक्ति भैषज्यमद्वैतदरसी । (वि० ६७)
अधंग-(सं० अर्द्धांग)-आधा अंग, अर्द्धांग । उ० सीस
गंग, गिरिजा अधंग, भूषण भुजंगवर । (कं० ७।१४६)
अध(१)-(सं० अधः)-नीचे, तले । उ० अध उर्द्ध बानर,
बिदिसि दिसि बानर है । (कं० १।१७) अधगो-(सं० अधः
+ गो)-नीचे की ईद्रियाँ, गुदा आदि । उ० उदर उदधि
अधगो जातना । (मा० ६।१६।४) अधराधर-(सं० अधः

+ अधर)-नीचे का ओठ । उ० बर दंत की पंगति कुंद
कली, अधराधर-पल्लव खोलन की । (कं० १।४)
अध(२)-(सं० अर्द्ध)-आधा, दो बराबर भागों में से एक ।
अधजरति-(सं० अर्द्ध + ज्वल)-आधी जलती हुई । उ०
निकसि चिता तें अधजरति, मानहुँ सती परानि । (दो०
२।६३) अधबिच-(सं० अर्द्ध + बीच)-बीच में । उ० तरु
तमाल अधबिचजनु त्रिविध कीर पाँति रुचिर । (गी० ७।३)
अधगति-(सं० अधोगति)-अधोगति, नीची गति, बुरी
गति, दुर्दशा । उ० रहु अधमाधम अधगति पाई ।
(मा० ७।१०।७।४)
अधन-(सं० अ + धन)-निर्धन, गरीब । उ० तुगह सम
अधन भिखारि अगोहा । (मा० १।१६।१।२)
अधम-(सं०)-नीचे, बुरा, खोटा, पापी । उ० अधम आरत
दीन पतित पातक पीन, सकृत नत मात्र कहे पाहि पाता ।
(वि० ४४) । अधमउँ-१. अधम भी, २. अधम-को भी ।
अधमाधम-अधम से भी अधम, नीचे से भी नीचे । उ०
रहु अधमाधम अधगति पाई । (मा० ७।१०।७।४)
अधमई-अधमता, खोटापन ।
अधमाई-नीचता, अधमता, कमीनापन । उ० पर पीड़ा सम
नहि अधमाई । (मा० ७।४।१।१) । अधमाईहू-अधमाई भी,
नीचता भी । उ० तुलसी अधिक अधमाईहू अजामिल तें ।
(कं० ७।८२)
अधमारे-(सं० अर्द्ध + मारण)-अधमारे, आधे मारे, बुरी
तरह घायल, आधे मारे हुए । उ० गये पुकारत कुछ अध-
मारे । (मा० १।१८।३)
अधर-(सं०)-१. ओठ, २. नीचे का ओठ, ३. बीच, ४.
नीच, ५. छोटा, ६. आकाश, ७. बिना आधार का, ८.
पाताल, ९. द्विविधा में पड़ने की स्थिति । उ० १. अधर
बिंबोपमा मधुर हासं । (वि० ५१) अधरबुधि-(सं०
अधर + बुद्धि)-धारणा रहित या चंचल बुद्धि, जिसकी
बुद्धि स्थिर न हो । उ० गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय
अधरबुधि रानि । (मा० २।१६)
अधरम-(सं० अधर्म)-अधर्म, पाप, कुकर्म । उ० उंचे नीचे
करम धरम अधरम करि । (कं० ७।६६)
अधर्म-(सं०)-धर्मदिरुद्ध कार्य, पाप । उ० नर विविध कर्म
अधर्म बहुमत सोकप्रद सब त्यागहू । (मा० ३।३।६।छं०१)
अधार-(सं० आधार)-आश्रय, सहारा । उ० बारि अधार
मूल फल त्यागे । (मा० १।१४।१।१)
अधारा-दे० 'अधार' । उ० रहेउ एक दिन अवधि अधारा ।
(मा० ७।१।१)
अधारी-१. आश्रय, सहारा, २. साधुओं का ढंडा लगा
हुआ काठ का पीड़ा, ३. कंधे पर रखने का झोला ।
अधिक-(सं०)-१. बहुत, ज्यादा, २. अतिरिक्त, फालतू ।
उ० १. मंदोदरी अधिक अकुलानी । (मा० १।३।६।२)
अधिकई-अधिकाई, अधिकता । उ० हितनि के लाह की,
उझाह की बिनोद मोद, सोभा की अवधि नहि, अब
अधिकई है । (गी० १।६४)
अधिका-दे० 'अधिक' ।
अधिकाइ-१. अधिकता से, बढ़ती से, २. बढ़ती है । उ० १. तिरस
भूरुह सरस फूलत-फलत अति अधिकाइ । (गी० ७।३।३)

२. बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकार्ह । (ब०३६)
अधिकाति-बढ़ती जाती है । उ० उमगी अवध अनंद भरि
अधिक-अधिक अधिकाति । (मा० १३२६) अधिकान-
बढ़ गया । उ० छूट जानि बन गवतु मुनि उर अनंद
अधिकान । (मा० २१२१) अधिकानी-अधिक हो गई ।
उ० गावत नाचत सो मन भावत सुख सो अवध अधि-
कानी । (गी० ११४) अधिकाने-१. अधिक, बढ़े हुए ।
२. बढ़ गये । उ० १. सुक से मुनि, सारद से बकता,
जिरजीवन लोमस तें अधिकाने । (क० ७१४३)
अधिकार्ह-१. ज्यादाती. अधिकता, २. बढ़ाई, महिमा, महत्व,
३. अधिक । उ० १. जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकार्ह ।
(मा० ६१०२१) २. उमा न कछु कपि कै अधिकार्ह ।
(मा० २३३५) ३. तपइ अर्वा इव उर अधिकार्ह । (मा०
११५२२)
अधिकार-(सं०)-१. कार्य-भार २. प्रभुत्व, ३. प्रकरण,
४. क्षमता, ५. हक । उ० १. यह अधिकार सौंपिए
औरहि । (वि० ५)
अधिकारी-(सं० अधिकारिन्)-१. उपयुक्त पात्र, २. स्वामी,
३. स्वत्वधारी । उ० १. रामभगत अधिकारी चीन्हा ।
(मा० १३०१२)
अधिकु-दे० 'अधिक' । उ० अधिकु कहा जेहि सम जग-
नाहीं । (मा० २१२०६४)
अधिकृत-(सं०)-१. अधिकार में आया हुआ, उपलब्ध,
२. अधिकारी ।
अधिकौहै-अधिक, जो अधिक हो । उ० धँसति लसति
हंससेनि सकल अधिकौहै । (गी० ७१४)
अधिप-(सं०)-स्वामी, राजा, मालिक । उ० परम सती
असुराधिप नारी । (मा० ११२३१४)
अधिपति-(सं०)-स्वामी, मालिक ।
अधिभूत-(सं० आधि + भूत)-१. आधिभौतिक. शरीर
धारियों द्वारा प्राप्त, २ शरीरधारी । उ० १. अधिभूत
बेदन विषम होत, भूतनाथ ! (क० ७१६६)
अधिभौतिक-(सं० आधिभौतिक)-आधिभौतिक, शरीर-
धारियों द्वारा प्राप्त तीन व्याधियों में से एक । उ० अधि-
भौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे । (वि० ८)
अधिवास-(सं०)-ठहरने का स्थान । उ० प्रसीद प्रभो सर्व
भूताधिवास । (मा० ७१०८१७)
अधिष्ठाता-(सं०)-अध्यक्ष, मुखिया, देख भाल करने-वाला ।
अधीत-(सं०)-पढ़ा हुआ, बाँचा हुआ ।
अधीन-(सं०)-आधीन, मातहत, आश्रित । उ० दम दुर्गम,
दान दया मख कर्म सुधर्म अधीन सबै धन को । (क० ७१८७)
अधीनता-(सं०)-परवशता, आज्ञाकारिता, अधीनता,
परतंत्रता । उ० परि पाँय सखिमुख कहि जनयो आप
बाप-अधीनता । पा० ८३,
अधीना-दे० 'अधीन' । उ० मम जीवन तिमि तुम्हहि
अधीना । (मा० ११२१३)
अधीर-(सं०)-धैर्यरहित, व्यग्र, बेचैन । उ० बोले जनक
बिलोकि सीय तन दुखित सरोष अधीर । (गी० ११८७)
अधीस्ता-(सं०)-व्याकुलता, बेचैनी, आतुरता ।
अधीरा-दे० 'अधीर' । उ० अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा,

मुख नहि आवइ बचन कही । (मा० १२४४१ छं० १)
अधीश-(सं०)-स्वामी, मालिक । उ० मृगाधीश चर्मांबरं
मुण्डमालं । (मा० ७१०८१ श्लो० ४)
अधीस-(सं० अधीश)-स्वामी, मालिक, राजा । उ० माया-
धीस ग्यान गुन धामू । (मा० १११७१४)
अधीसा-दे० 'अधीस' । उ० दरसन लागि कोसलाधीसा ।
(मा० ७१२७११)
अधीस्वर-सं० अधीश्वर । प्रभु, मालिक, राजा ।
अधीमुख-सं०)-नीचे मुख किए हुए, औंधा, उलटा ।
अध्यक्ष-(सं०)-स्वामी, मालिक । उ० सर्वरक्षक सर्वभक्ष-
काध्यक्ष कूटस्थ गूढाचि भक्तानुकूलं । (वि० ५३)
अध्ययन-(सं०)-१. पठन-पाठन, विद्याभ्यास, २. गंभीरता
के साथ विचार ।
अध्यात्म-(सं०)-ब्रह्म-विचार, आत्मज्ञान ।
अध्याहार-(सं०)-तर्क-वितर्क, उहापोह, बहस ।
अनंग-(सं०)-कामदेव । उ० आछे मुनि वेष धरे लाजत अनंग
हैं । (क० २१२) अनंगअराती-(सं० अनंग + आराति)-
कामदेव के शत्रु. शिव । उ० सादर जपहु अनंग अराती ।
(मा० ११०८१४) अनंगअरि-(सं० अनंग + अरि)-
शिव, कामदेव के शत्रु । उ० गंग-जनक, अनंगअरि-प्रिय,
कपडु बडु बलि छरन । (वि० २१८)
अनंत-(सं०) १. जिसका अंत न हो, अपार, २. वि श्रु, ३.
शेषनाग, ४. लक्ष्मण, ५. बलराम, ६. अन्नक ७. बाहु का
एक गहना, ८. सूत का १४ गाँठों का गंडा । उ० १.
अनंत भगवत जगदंत अंतक-त्रास-समन । (मा० वि० ४६)
४. सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत । (मा० ६१०७)
अनंतबंधु-सं० अनंत + बंधु)-लक्ष्मण के भाई, राम । उ०
सुनु हनुमंत ! अनंतबंधु करुना सुभाव सीतल कोमल
अति । (गी० २१६)
अनंता-दे० 'अनंत' । उ० १. कह हुइ कर जोरी अस्तुति
तोरी केहि विध करौ अनंता । (मा० ११६२१ छं० २)
अनंद-(सं० आनंद)-दे० 'आनंद' । उ० कहि न सकहि सत
सेष अनंद अनूपहि । (जा० १३७)
अनंदा-दे० 'अनंद' । उ० प्रति संबत अति होइ अनंदा ।
(मा० ११४५१)
अनंदित-(सं० आनंदित)-प्रसन्न । उ० खग मृग बृंद अनं-
दित रहहीं । (मा० ३११४२)
अनंदु-दे० 'अनंद' । उ० एहि सुख ते सत कोटि गुन पावहि
मातु अनंदु । (मा० १३२००क)
अनंद-आनन्दित हुए । उ० तब मयना हिमवंतु अनंदे ।
(मा० ११ ६६११)
अन(१)-(सं० अन्य)-अन्य, और, दूसरा । उ० चातक बतियाँ
ना रुचीं, अन जल सींचे रुख । (दो० ३११)
अन(२)-(सं० अन्न)-बिना, बगैर । अनअहिवातु-(सं० अन्न +
अभिवाद्य)-विधवापन, रंडापा । उ० अनअहिवातु सूच जनु
भावी । (मा० २१२५४) अनइच्छित-(सं० अन्न +
इच्छित)-बिना इच्छा के । उ० अनइच्छित आवइ वीरआई ।
(मा० ७११६१२) अनकुसल-(सं० अन्न + कुशल)-अमं-
गल । उ० निडर अनय करि अनकुसल वीसबाहु सम
होय । (सं० ६२१)

अनइस-(स० अनिष्ट)-बुरा । उ० करत नीक फल अनइस पावा । (मा० २।१६३।३)
 अनक-(सं० आनक)-१. ढोल, मृदंग, २. गरजता बादल । उ० १. पनवानक निर्कार, अलि उपंग । (गी० २।४८)
 अनख-(सं० अन् + अखि) १. क्रोध, २. ईर्ष्या, द्वेष, ३. अप्रसन्नता, ४. ग्लानि, ५. डिठौना । उ० १. काको नाम अनख आलस कहे अघ अवगुननि विछोहे । (वि० २३०) २. किमि सहि जाहि अनख तोहि पाहीं । (मा० ३।३०।८)
 अनखानि-क्रोध, नाराज़गी । उ० रोवनि, धोवनि, अनखानि, अनरसनि, डिठि-मुठि निडुर नसाइहौं । (गी० १।१८)
 अनखैहैं-अनख मानेंगे, बिगड़ेंगे । उ० खल अनखैहैं तुम्हें सज्जन न गमिहैं । (क० ७।७१)
 अनखौहीं-क्रोध पैदा करनेवाली । उ० रम सदा सरनागत की अनखौहीं अनैसी सुभाय सही है । (क० ७।६)
 अनगनी-(सं० अन् + गणना)-अगणित, असंख्य, बहुत । उ० निज काज सजत सँवारि पुर-नर-नारि रचना अनगनी । (गी० १।५)
 अनघ-(सं०)-निष्पाप, शुद्ध । उ० अनघ, अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज, अमित अविकार आनंदसिंधो । (वि० ५६)
 अनचह्यो-बिना चाहा हुआ, आदर विहीन, अप्रिय । उ० नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं । (वि० २६०)
 अनचाह-(सं० अन् + चाह)-१. अप्रिय, अनचाहा, २. घृणा । अनछिन्न-(सं० अन् + छिन्न)-पूर्ण, अखंड । अनजान-(सं० अन् + जान)-१. अज्ञ, नादान, २. बिना जाना, ३. भोला-भाला । अनजानत-बिना जाने, अज्ञानतः । उ० श्रीमद नृप-अभिमान मोहबस जाचत अनजानत हरि लायो । (गी० ६।२)
 अनट-(सं० अन्त)-उपद्रव, अत्याचार । उ० सो सिर धरि धरि करिहैं सबु मिठिहैं अनट अवरेव । (मा० २।२६६)
 अनत-(सं० अन्यत्र)-अन्यत्र, और कहीं उ० उपजाहैं अनत अनत छवि लहहौं । (मा० १।११।२)
 अनन्य-(सं०)-अन्य से संबंध न रखनेवाला, एकनिष्ठ । उ० सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत । (मा० ४।३) अनन्यगति-(सं०)-जिसको दूसरा सहारा या उपाय न हो । उ० भवाहैं भगति मन, बचन करम अनन्यगति हरचरन की । (पा० २७)
 अनपायनी-(सं० अनपायिनी)-सदा एक रस रहनेवाली । उ० प्रेम भगति अनपायनी, देहु हमहि श्रीराम । (दो० १२५)
 अनपावनी-(सं० अन् + प्रापण)-अप्राप्य, जो दूसरे को न मिले । अनवन-(सं० अन् + वणन)-१. भिन्न-भिन्न, नाना, अनेक, २. बिगाड़ । उ० १. कंदमूल, जल-थलरूढ अगनित अनवन भाँति । (गी० २।४७)
 अनबोल-(सं० अन् + प्रा० बुल्लइ)-१. मौन, २. गूंगा, ३. बेहोश । अनभाएँ-(सं० अन् + भवन)-बिना हुए । उ० जागेउ नृप अनभाएँ बिहाना । (मा० १।१७२।१)
 अनभल-(सं० अन् + भद्र)-अहित, असंगल । उ० अनभल देखि न जाइ तुम्हारा । (मा० २।१६।४)

अनभले-बुरे, निन्दित उ० करहिं अनभले को भलो आपनी भलाई (वि० ३५) । अनभलो-बुरा, जो अच्छा न हो । उ० तो तुलसी तेरो भलो, नतु अनभलो अवाइ । (दो० १५५)
 अनभाई-(सं० अन् + ?)-न भानेवाली, अप्रिय । उ० रुचि-भावती भभरि भागहिं, समुहाहिं अमित अनभाई । (वि० १६५)
 अनभाएँ-असुहावने, बुरे । उ० अवध सकल नर नारि बिकल अति, अँकनि बचन अनभाएँ (गी० २।८८)
 अनमानि-(सं० अन्यन्मनस्क)-उदास । उ० का अनमनि हसि कह हँसि रानी । (मा० २।१३।३)
 अनमायो-(?)-जिसकी माप न हो सके, बहुत । उ० क्यों कहीं प्रेम अमित अनमायो । (गी० ६।२१)
 अनमिल-बेमेल, बे जोड़, अटपट । उ० अनमिल आखर अस्थ न जापू । (मा० १।१५।३)
 अनमोल-(सं० अन् + मूल्य)-जिसका मूल्य गणना से परे हो, अमूल्य । उ० बिकटी मृकुटी बड़री अखियाँ अनमोल कपोलनि की छवि है । (क० २।१३)
 अनय-(सं०)-१. अनीति, अन्याय, २. विपत्ति, ३. दुर्भाग्य । उ० १. अनय-असौधि-कुंभज, निशाचर-निकर-तिमिर-घन-घोर-खर-किरण माली । (वि० ४४)
 अनयन-(सं० अ + नयन) बिना नेत्र के, बिना आँख के । उ० गिरा अनयन नयन बिनु बानी । (मा० १।२२।१)
 अनयास-(सं० अनायास)-१. अनायास, बिना उद्योग, बिना परिश्रम, २. अकस्मात् । उ० १. करिहैं राम भावतो मन को, सुख-साधन अनयास महाफलु । (वि० २४)
 अनयासा-दे० 'अनयास' । उ० नाम सप्रेम जपल अनयासा । (मा० १।२४।३)
 अनरथ-(सं० अनर्थ)-अनर्थ, उत्पात । उ० लखन लखेउ भा अनरथ आजू । (मा० २।७४।४)
 अनरथु-दे० 'अनरथ' । उ० अनरथु अवध अरंभेउ जब तैं । (मा० २।१५।३)
 अनरस-(सं० अन् + रस)-१. निरस, शुष्क, २. खलाई, कोप । उ० १. तौ नवरस, षटसर-रस अनरस हँ जाते सब सीटे । (वि० १६६)
 अनरसत-क्रोधित होते हैं । उ० हँसे हँसत अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों काँहें । (गी० १।१६) अनरसे-१. क्रोधित होने पर, २. क्रोधित, क्रोधित हुए । उ० १. हँसे हँसत, अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों काँहें । (गी० १।१६) २. आजु अनरसे हैं भीर के, पय पियत न नीके । (गी० १।१२)
 अनरसनि-१. उदासीनता, २. शुष्कता ३. मनोमालिन्य । उ० १. रोवनि-धोवनि अनखानि अनरसनि, डिठि-मुठि निडुर नसाइहौं । (गी० १।१८)
 अनर्थ-(सं०)-१. उत्पात, उपद्रव, २. उलटा अर्थ, अयुक्त अर्थ । उ० १. जानत अर्थ अनर्थ रूप, तमकूप परब यहि लागे । (वि० ११७) अनर्थकारी-(सं० अनर्थकारिन्) १. उपद्रवी, २. हानिकारी, ३. उलटा अर्थ निकालनेवाला । अनल-(सं०)-१. आग, २. तीन की संख्या, ३. विभीषण का मंत्री, ४. चीता, ५. भिलावा । उ० १. अक्टै अनल अकाम बनाई । (मा० ७।११।७) अनलहि-आग को ।

उ० तव प्रभाव बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल । (मा० १।३३) । अनलहु-अनल भी, आग भी । उ० सब जगु ताहि अनलहु ते ताता । (मा० ३।२।४)

अनवद्य-दे० 'अनवद्य' । उ० अमलमखिलमनवद्यमपारं । (मा० ३।१।१।२।०६)

अनवद्य-(सं०)-निदोष, अनिन्द्य, स्वच्छ । उ० अज अनवद्य अकाम अभोगी । (मा० १।१६०।२)

अनवरत-(सं०)-१. लगातार, अटूट, २. सदैव, अविराम । उ० १. देहि कामारि श्रीराम पद पंकजे भक्तिमनवरत गत भेद माया । (वि० १०)

अनवरषे-(सं० अन् + वर्षा)-पानी न बरसने पर, वर्षा न होने पर । उ० अति बरषे अनवरषे हूँ देहि दैवहि गारी । (वि० ३४)

अनविचार-(सं० अन् + विचार)-नासमझी से, बिना विचारे । उ० अनविचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी । (वि० १२१)

अनवसर-(सं०)-कुसमय, बुरे वक्त में । उ० सोइ लंका अतिथि अनवसर राम तुनासन ज्यो दुई । (गी० १।३८)

अनवस्थित-(सं०)-अस्थिर, अशांत, चंचल ।

अनसमुक्के-(सं० अन् + ?)-बिना समझे, न समझने पर । उ० अनसमुक्के, अनुसोचनो, अवसि समुक्ति आप । (दो० ४८६)

अनसुया-(सं०)-१. अत्रि मुनि की स्त्री, ये दक्ष की चौबीस कन्याओं में से एक थीं । इनकी आराधना से प्रसन्न होकर विष्णु दक्षत्रेय के रूप में, ब्रह्मा चन्द्रमा के रूप में, और शिव दुर्वासा के रूप में इनके पुत्र हुए और इनकी गोद में खेले । अपने पातिव्रत धर्म के लिए अनसुया बहुत प्रसिद्ध हैं । मानस में जानकी से इनकी अंत दुई है । जानकी ने इनसे उत्तम शिष्टाई ग्रहण की और इनको नाना प्रकार के उपहार दिए । २. पराए गुण में दोष न देखना ।

अनहित-(सं० अन् + हित)-१. अहित, उपकार, बुराई, २. अहितचित्तक, शत्रु । उ० १. अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा । (मा० २।२६।१) २. बंदुँ संत समानचित्त हित अनहित नहि कोय । (मा० १।३६) अनहितन-बैरियों, शत्रुगण । उ० याते बिपरीत अनहितन की जानि लीवी । (गी० १।१६४) अनहितौ-बुराई भी, अहित भी, अनिष्ट भी । उ० विज गुन अरिहृत अनहितौ दास-दोष सुरति चित रहित न दिए दान की । (वि० ४२)

अनाचार-(सं०)-निन्दित आचरण, अष्टता, दुराचार ।

अनाज-(सं० अन्नाद)-अन्न, गल्ला ।

अनाथ-(सं०)-१. जिसका कोई नाथ न हो, नाथहीन, २. असहाय, ३. दीन, दुखी, मुहताज । उ० १. जरइ नगर अनाथ कर जैसा । (मा० १।२६।३) अनाथनाथ-(सं० अनाथ + नाथ)-अनाथों के नाथ, भगवान, दीनानाथ । उ० हाथ उठाइ अनाथ नाथ सो, पाहि पाहि प्रसु पाहि पुकारि । (कृ० ६०) अनाथनि-अनाथों की । उ० हति नाथ अनाथनि पाहि हरे । (मा० ७।१३। ४) अनाथपति-अनाथों के स्वामी, भगवान । उ० हौं सनाथ हौं सही तुमइ अनाथपति, जे लघुतहि न जितैही । (वि० २७०)

अनाथपाल-अनाथों की रक्षा करनेवाले । उ० आलसी-अभागी अधी-आरत-अनाथपाल, साहेब समर्थ एक नीके मन गुनी मैं । (क० ७।२१)

अनाथा-दे० 'अनाथ' । उ० तात कवहुँ मोहि जानि अनाथा । (मा० १।७।१)

अनादर-(सं०)-असम्मान, बेइज्जती । उ० एते अनादर हूँ तोहि ते न होतो । (वि० १७६)

अनादि-(सं०)-जिसकी आदि न हो । जो सर्वदा से हो । उ० अकथ अगाध अनादि अनूपा । (मा० १।२३।१) विशेष-शास्त्रकार ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों को अनादि मानते हैं ।

अनादी-दे० 'अनादि' । उ० कहहि राम कहुँ ब्रह्म अनादी । (मा० १।१०।८।३)

अनाम-(सं०) बिना नाम का । उ० नाम अनेक अनाम निरंजन । (मा० ७।३४।३)

अनामय-दे० 'अनामय' । उ० रन जीति रिपुदल बंधुजुत -पस्यामि राममनामयं । (मा० ६।१०।७। १)

अनामय-(सं०)-१. रोग रहित, स्वस्थ, २. विकार रहित, ३. स्वास्थ्य । उ० २. ब्रह्म अनामय अज भगवंता । (मा० १।३१।१)

अनामा-दे० 'अनाम' । उ० एक अनीह अरूप अनामा । (मा० १।१३।२)

अनायास-(सं०)-बिना परिश्रम, बैठे-बिठाए । उ० अनायास उधरी तेहि काला । (मा० २।२६।२)

अनारंभ-(सं०)-१. कार्य आरंभ न करना, २. आसक्तिपूर्वक कार्य आरंभ न करना । उ० २. अनारंभ अनिकेत अमानी । (मा० ७।४६।३)

अनिन्दिता-(सं०)-निन्दा रहित, उत्तम । उ० जगदंबा संततमनिन्दिता । (मा० ७।२४।१)

अनिकेत-(सं०)-स्थानरहित, बिना घर बार का, सर्वत्र विचरनेवाला, विरक्त । उ० अनारंभ अनिकेत अमानी । (मा० ७।४६।३)

अनित्य-(सं०)-विनाशी, क्षणिक, नश्वर ।

अनिप-(सं० अणिप)-सेनापति, सेनानी । उ० अक्षिप अरुपन अरु अतिकाया । (मा० ६।४६।२)

अनिमा-दे० 'अणिमा' । उ० तिय-बरवेष अली रमा सिधि अनिमादि कमाहि । (गी० १।२)

अनियत-(सं० अनयन) लाते, धारण करते । उ० महिमा समुक्ति उर अनियत है । (वि० प० १८३) अनिहै-ले आवेंगे । उ० जौ जमराज काज सब परिहरि यही ख्याल उर अनिहै । (वि० ६५) अनिहै-ले आवेंगा ।

अनियारे-(सं० अणि + हि आर)-अनीदार, नोक्रीले, पैने तेज । उ० कटितट पटपीत तून सायक अनियारे । (गी० १।३।७)

अनिर्वाच्य-(सं०) अकथनीय, बहुत । उ० पावा अनिर्वाच्य विश्रामा । (मा० १।८।१)

अनिल-(सं०)-वायु, पवन, हवा । उ० सोइ जल अनल अनिल संघाता । (मा० १।७।६)

अनिश्चय-(सं०)-जिसका निश्चय न हो ।

अनिशं-(सं०)-सर्वदा, लगातार, रोज । उ० ब्रह्मा शंशु पृथीन्द्र सेध्यमनिशं । (मा० ५।१। १।०।१)

अनिष्ट-(सं०)-अहित, बुरा, हानि, अमंगल ।
 अनिस-(सं० अनिश)-तिरंतर, लगातार, सर्वदा ।
 अनी-(सं० अनीक)-१. सेना, २. समूह, ३. नोक, सिरा ।
 उ० १. सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसि-
 चर अनी । (मा० २।१२६।५० १)
 अनीक-(सं०)-१. सेना, २. युद्ध, ३. समूह, ४. बुरा,
 खराब । उ० १. रहे निज निज अनीक रचि रूरी । (मा०
 १।१२६।३)
 अनीत-(सं० अनीति)-अनीति, नीति के विरुद्ध ।
 अनीति-(सं०) १. नीति के विरुद्ध कार्य, २. अन्याय,
 अत्याचार । उ० १. कहि अनीति ते मूर्दाहि काना । (मा०
 १।२६३।४)
 अनीती-(सं० अनीति)-अत्याचार, अन्याय । उ० अति नय
 निपुन न भाव अनीती । (मा० २।४६।३)
 अनीप-(हि० अनी + सं० प)-सेनापति, सेनाध्यक्ष ।
 अनीस-(सं० अनीश)-१. अनीश, अनाथ, २. असमर्थ, ३.
 सबसे ऊपर, सर्वश्रेष्ठ, ४. बुरे स्वामी, ५. जीव, जो ईश्वर
 न हो । उ० १. अति अनीस नहीं जाए गनाए । (वि०
 १३६) ४. सुर स्वारथी, अनीस, अलायक, निदुर दया
 चित नाहीं । (वि० १४५) अनीसहिं-जीव में । उ० ईस
 अनीसहिं अंतरु तैसैं । (मा० १।७०।१)
 अनीह-(सं०)-१. इच्छारहित, निस्पृह, २. बेपरवाह । उ०
 १. व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप । (मा०
 १।२०५)
 अनीहा-१. निष्कामता, अनिच्छा, २. निरचेष्टता ।
 अनु-(सं०)-१. हाँ, २. पीछे (अनुकरण), ३. सदृश
 (अनुकूल), ४. साथ (अनुकंपा), ५. प्रत्येक (अनुदिन),
 ६. बारंबार (अनुशीलन) । उ० १. देहु उतरु अनु करहु
 कि नाहीं । (मा० २।३०।२)
 अनुकंपा-(सं०)-दया, अनुग्रह ।
 अनुकथन-(सं०)-क्रमबद्ध वचन, कथा, वार्तालाप । उ०
 सुनि अनुकथन परस्पर होई । (मा० १।४१।२)
 अनुकरण-(सं० अनुकरण)-अनुकरण, नकल ।
 अनुकूल-(सं०)-१. सुआफिक, २. प्रसन्न, ३. हितकर । उ०
 १. है अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै ।
 (वि० ८६)
 अनुकूला-दे०-‘अनुकूल’ । उ० २. मिलइ जो संत होई
 अनुकूला । (मा० ३।१६।२)
 अनुकूलेउ-अच्छे लगे, रुचिकर लगे । उ० मध्य बरात बिरा-
 जत अति अनुकूलेउ । (जा० १।४०) अनुकूलो-१. अनुकूल
 हो, २. प्रसन्न हो । उ० १. राम गुलाम तुही हनुमान
 गुसाई गुसाई सदा अनुकूलो । (ह० ३६)
 अनुक्रम-(सं०) क्रम, सिलसिला, तरतीब ।
 अनुगंता-(सं० अनु + गंत)-पीछे-पीछे चलनेवाला, आज्ञा-
 कारी । उ० बचन चय-चातुरी परसुधर-गर्वहर, सर्वदा
 राम भद्रानुगंता । (वि० ३८)
 अनुग-(सं०)-पीछे-पीछे चलनेवाला, आज्ञाकारी । उ० लै
 धावौ, भंजौ मृनाल ज्यौ तौ प्रभु अनुग कहावौ ।
 (गी० १।८७) अनुगनि-सेवक गण । उ० उतरि अनुज
 अनुगनि समेत प्रभु, गुरु द्विजगन सिर नायो । (गी० ६।२१)

अनुगत-(सं०)-पीछे-पीछे चलनेवाला । उ० अहि अनुगत
 सपने बिबिध जाइ पराय न जाहि । (स० ४६८)
 अनुगामी-(सं० अनुगामिन्)-१. दास, सेवक, २. पीछे-पीछे
 चलनेवाला, ३. सहवास करनेवाला । उ० १. मोहि जानिअ
 आपन अनुगामी । (मा० १।२८।१४) २. सब सिधि तव
 दरसन अनुगामी । (मा० १।३४।३)
 अनुग्रहीत-(सं०)-उपकृत, जिस पर अनुग्रह किया गया हो ।
 अनुग्रह-(सं०)-१. दया, कृपा, २. अनिष्ट-निवारण । उ० १.
 करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ गुन सदन । (मा०
 १।१।सो० १) २. साप अनुग्रह होइ जेहि नाथ थोरेहीं
 काल । (मा० ७।१०८८ घ)
 अनुचर-(सं०)-दास, सेवक । उ० मैं तुम्हार अनुचर मुनि-
 राया । (मा० १।२७८।१) अनुचरन्ह-अनुचरों ने, सेवकों
 ने । उ० मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा । (मा०
 ७।५६।२)
 अनुचरी-(सं०)-दासी, सेविका । उ० तव अनुचरी करउँ पन
 मोरा । (मा० ५।६।३)
 अनुचित-(सं०) जो उचित न हो, अयोग्य । उ० यह अनुचित
 नहिं नेवत पठावा । (मा० १।६२।१)
 अनुज-(सं०)-जिसका जन्म पीछे हो, छोटा भाई । उ०
 रिपु को अनुज विभीषन निसिचर, कौन भजत अधिकारी ।
 (वि० १६६) अनुजनि-छोटे भाइयों को । उ० गिरि युद्ध-
 रुचनि देकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूष देखाए ।
 (गी० १।२६) अनुजन्ह-छोटे भाइयों को । उ० आपु कहहि
 अनुजन्ह समुझाई । (मा० १।२०।३) अनुजवधू-(सं०
 अनुज + बधू) छोटे भाई की स्त्री । उ० अनुजवधू भगिनी
 सुतनारी । (मा० ४।६।४) अनुजहि-अनुज को । उ० राम
 देखावहि अनुजहि रचना । (मा० १।२२।२)
 अनुजा-(सं०)-बहिन, छोटी बहिन । उ० नहिं मानत क्यौ
 अनुजा तनुजा । (मा० ७।१०।२३)
 अनुतत-(सं०)-१. उत्तम, गरम, २. खेदयुक्त ।
 अनुताप-(सं०)-१. पछतावा, २. तपन, दाह, ३. दुःख
 खेद ।
 अनुदिन-(सं०)-नित्य प्रति, प्रतिदिन । उ० हेतुरहित
 अनुराग रामपद बढौ अनुदिन अधिकार्ह । (वि० १०३)
 अनुपम-(सं०) उपमारहित, बेजोड़ । उ० कटितट रहति
 चारु किंकिनि रव अनुपम बरनि न जाई । (वि० ६२)
 अनुपमेय-(सं०)-अनुपम, उपमा रहित, बेजोड़ ।
 अनुपान-(सं०)-वह वस्तु जो औषधिके साथ या उसके बाद
 खाई जाय ।
 अनुबंध-(सं०)-१. संसर्ग, लगाव, २. आरंभ, ३. अनुसरण,
 ४. होनेवाला शुभ या अशुभ ।
 अनुवादा-(सं० अनुवाद)-पुनर्कथन, फिर से कहना । २.
 उत्था, ३. कीर्तन । उ० ३. सुनत फिरउँ हरि गुन अनुवादा ।
 (मा० ७।११।०।६)
 अनुभए-(सं० अनुभव)-१. पीछे हो गए, २. प्राप्त हुए, ३.
 अनुभव किए, ४. उत्पन्न हुए । उ० ३. नए-नए नेह अनुभए
 देहगेह बसि, परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो । (वि०
 २६४) अनुभयउ-अनुभव किया । उ० मोहि सम
 यह अनुभयउ न दूजैं । (मा० २।३।३) अनुभवत-अनुभव

करता है। उ० तुलसिदास अनुराग अवध आनंद, अनुभवत तब को सो अजहुँ अवाई। (गी० १२७) अनुभवति-अनुभव कर रही है, अनुभव करती है। उ० उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। (मा० १२४२१४) अनुभवहि-अनुभव करते हैं। उ० ब्रह्मसुखहि अनुभवहि अनूपा। (मा० १२२११) अनुभवही-अनुभव कर रहे हैं। उ० बचन अगोचर सुख अनुभवही। (मा० २१०८२) अनुभवे-अनुभव किए। उ० वंचक बिषय बिबिध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे। (वि० १६१) अनुभवै-अनुभव हो, जान पड़े, समझ में आवे। उ० सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत-बियोगी। (वि० १६७) अनुभो-अनुभव करो, अनुभव कीजिए। उ० ऋषिराज-जाग भयो महाराज अनुभो। (गी० १६४)

अनुभव-(सं०) साक्षात् करने से प्राप्त ज्ञान, परीक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान। उ० जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित दारुन भव-बिपति सतावै। (वि० ११६) अनुभवगम्य-(सं०) अनुभव से जानने योग्य। उ० अनुभवगम्य भजहि जेहि संता। (मा० ३१३६)

अनुभाऊ-(सं० अनुभाव) प्रभाव, महिमा। उ० बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। (मा० २१२६१२)

अनुभाव-(सं०)-१. प्रभाव, २. महिमा, बढ़ाई।

अनुमत-(सं० अनुमति)-१. आज्ञा, अनुमति, २. सम्मति।

अनुमति-(सं०)-१. चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा जिसमें चंद्रमा की कला पूरी नहीं होती। २. आज्ञा, हुक्म।

अनुमान-(सं०) १. अटकल, अंदाज, २. अटकल लगालो, अनुमान करो। उ० २. सीतल बानी संत की, ससि हू ते अनुमान। (वै० २१) अनुमानि-अनुमान कर, विचार कर। उ०

अव अनेक अवलोकि आपने अनव नाम अनुमानि डरौ। (वि० १४१) अनुमानी-१. अनुमान करके, विचार करके, २. अनुमान किया। उ० १. पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी। (मा० २१४२२) अनुमाने-१. अनुमान किया, २. अनुमान से, ३. अनुमान या विचार करते हुए। उ० १. ते सब सिव पहि मैं अनुमाने। (मा० ११६१२) ३. पूजा खेत देत पलटे सुख हानि लाभ अनुमाने। (वि० २३६१२)

अनुमाना-दे० 'अनुमान'। उ० १. करत कोटि बिधि उर अनुमाना। (मा० २१२११२)

अनुमोदन-(सं०)-१. प्रसन्नता का प्रकाशन, २. समर्थन, ताईद। उ० १. कहहि सुनिहि अनुमोदन करहीं। (मा० ७१२६३)

अनुरक्त-(सं०)-आसक्त, लीन।

अनुराग-(सं०)-प्रीति, प्रेम, आसक्ति। उ० जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं। (गी० ११६६)

अनुरागइ-प्रेम करता है। उ० सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ। (पा० ६७) अनुरागऊँ-अनुरागी होऊँ, प्रेम करूँ। उ० जेहि जोनि जन्मौ कर्म बस तहँ रामपद अनुरागऊँ। (मा० ४१०१०१) अनुरागत-प्रेममय हो जाता है, प्रसन्न हो जाता है। उ० बरषा ऋतु प्रवेश बिसेष गिरि देखन मन अनुरागत। (गी० २१६०) अनुरागही-अनुराग कर, प्रेम कर। उ० मन बचन कर्म बिकार तजि

तव चरन हम अनुरागहीं। (मा० ७१३१६) अनुरागहू-अनुराग करो, प्रेम करो। उ० विस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू। (मा० ३१३६१) अनुरागिहू-प्रेम करेगा। उ० मन रामनाम सौँ स्वभाव अनुरागिहू। (वि० ७०) अनुरागी-प्रेममय हो गई। उ० प्रेम पुलकि तन मन अनुरागी। (मा० २१८११) अनुरागु-प्रेम कर। उ० अब नाथहि अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें। (वि० १६८) अनुराग-१. प्रेम के कारण, २. प्रेम किए। उ० १. सकहि न कछु कहि अति अनुरागे। (मा० ७१७११) अनुरागेउँ-अनुरक्त हो गया, प्रेम में पड़ गया। अनुरागै-प्रेम होता है, प्रेम करता है। अनुरागों-प्रेम करूँ। उ० परिहरि पाँय काहि अनुरागों। (वि० १७७) अनुराग्यो-अनुरक्त, अनुराग में डूबा। उ० ज्यों छल छुँवि सुभाव निरंतर रहत बिषय अनुराग्यो। (वि० १७०)

अनुरागा-दे० 'अनुराग'। उ० भयउ रमापति पद अनुरागा। (मा० ११२२१२)

अनुरागी-प्रेम करनेवाले। उ० की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। (मा० २१६१४)

अनुरूप-(सं०)-१. समान, सदृश, २. योग्य, अनुकूल, उपयुक्त। उ० २. मति अनुरूप कहउँ हित ताता। (मा० २१३८१)

अनुरोध-(सं०)-१. रुकावट, बाधा, २. प्रेरणा, ३. आग्रह, दबाव, ४. विनय।

अनुरोधु-दे० 'अनुरोध'। उ० १. सोधु बिनु अनुरोध ऋतु के, बोध बिहित उपाउ। (गी० २१४)

अनुरोधू-दे० 'अनुरोध'। उ० १. राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। (मा० २१६१२)

अनुलेपन-(सं०)-१. लेपन, २. सुगंधित द्रव्यों का शरीर में मर्दन। उ० १. भृगुपद-चिह्न पदिक उर सोभित, मुकुट-माल कुंकुम अनुलेपन। (गी० ७११६)

अनुवर्ती-(सं० अनुवर्तिन्)-१. रक्षक, २. सेवक, ३. अनुयायी। उ० १. सामगाताअनी कामजेताअनी, रामहित रामभक्तानुवर्ती। (वि० २७)

अनुवाद-(सं०)-१. बार-बार कहना, २. तर्जुमा, उल्था, ३. निन्दा।

अनुशासन-(सं०)-१. आज्ञा, २. उपदेश, ३. व्याख्यान।

अनुष्ठान-(सं०)-१. आरंभ, २. प्रयोग।

अनुसंधाना-(सं० अनुसंधान)-१. अनुसंधान, खोज, २. इच्छा, कामना, ३. प्रयत्न। उ० २. हृदय न कछु फल अनुसंधाना। (मा० ११२६११)

अनुसर-(सं० अनुसार)-अनुसार, समान, मुआफिक। उ० जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं। (मा० २१४१३)

अनुसरई-(सं० अनुसरण)-अनुसरण करता, पीछे-पीछे चलता। उ० जो नहि गुरु आयसु अनुसरई। (मा० २१७२१४) अनुसरऊँ-१. अनुसरण करूँ, अनुसरण करता, २. जारी रखता। उ० २. तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ। (मा० ७११०११) अनुसरही-अनुसरण करते हैं, अनुसर काम करते हैं। उ० फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं। (मा० ११३१५) अनुसरहुगे-अनुसार करोगे, अनुसरण करोगे। उ० दीन हित अजित सबै संमरथ प्रनतपाल, चित-मृदुल निज गुनि अनुसरहुगे। (वि० २११) अनु-

सरहू-अनुसरण करो, अनुसार कार्य करो। उ० सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। (मा० २।१७६।३) अनुसरिए-अनुसरण कीजिए। उ० कपि केवट कीन्हें सखा जेहि सील सरल चित तेहि सुभाव अनुसरिए। (वि० २७१) अनुसरी-१. अनुसरण करे, २. अनुसार बताव करनेवाली। उ० १. धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी। (मा० ७।१२७।३) अनुसर-अनुसरण कर, पीछे पीछे चल। उ० सवन कथा, मुखनाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम सेवा कर अनुसरह। (वि० २०५) अनुसर-अनुसार व्यवहार किया, अनुसरण किया। उ० अब प्रभु पाहि सरन अनुसरै। (मा० ६।११०।६) अनुसरहू-अनुसरण करना, अनुसार चलना। उ० मन क्रम बचन धर्म अनुसरहू। (मा० ७।२०।१) अनुसर-अनुसार व्यवहार करते हैं, अनुकूल व्यवहार करें। उ० नीच ज्यों टहल करै राखै रुख अनुसरै। (गी० १।६६)

अनुसार-(सं०)-अनुकूल, सदृश, समान, सुआफिक। उ० कहउँ नाम, बड़ राम तें निज विचार अनुसार। (मा० १।२३)

अनुसारा-दे० 'अनुसार'। उ० सो सब कहिहउँ मति अनुसारा। (मा० १।१४।१३)

अनुसारी-(सं०)-१. आरंभ की, २. पीछे-पीछे चलनेवाला, ३. अनुकूल। उ० १. पुलकित तन अस्तुति अनुसारी। (मा० ७।३४।१) २. तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी। (मा० ७।६६।३) ३. देसकाल अवसर अनुसारी। (मा० २।४५।३)

अनुसासन-(सं० अनुशासन) १. अनुशासन, आज्ञा, २. उपदेश, ३. व्याख्यान। उ० १. बोला बचन पाइ अनुसासन। (मा० १।३६।२)

अनुसासन-दे० 'अनुसासन'। उ० १. बैठे सब सुनि मुनि अनुसासन। (मा० २।२५।७।३)

अनुसुइया-(सं० अनसूया)-दे० 'अनसूया'। उ० अनुसुइया के पद गहि सीता। (मा० ३।५।१)

अनुसृत्य-(सं०)-१. अनुसार, २. पीछे चलते हुए, ३. अनुसरण, ४. प्रतिच्छाया, ५. प्रतिलिपि।

अनुसोचनो-(सं० अनु + सोचन)-बार बार सोचना, मनन करना। उ० अनसमुके अनुसोचनो, अवसि समुझिए आपु। (दो० ४८६)

अनुहर-(सं० अनुहार)-सदृश, समान, अनुहार।

अनुहरइ-बराबरी करता, समानता करता, समानता करता है। उ० सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। (मा० १।२७७।४)

अनुहरत-१. जो अनुसार हो, समानता करते हुए, २. उपयुक्त, योग्य, अनुकूल। उ० १. स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार। (दो० ५४८) २. मोहि अनुहरत सिखावन देहू। (मा० २।१७७।४) अनुहरति-सदृश, समान, मिलती-जुलती, समानता रखती हुई। उ० बर अनुहरति बरात बनी हरि हंसि कहा। (मा० १।१२) अनुहरि-अनुसार, समान, अनुसार काम करके। उ० अनुहरि ताल गतिहि नदु नाचा। (मा० २।२४।१२) अनुहरिया-समानता करनेवाला, बराबरी करनेवाला। उ० मुख अनुहरिया केवल चंद समान। (ब० ६) अनुहारि-(सं० अनुहार)-१. समान, २. समानता करके, ३. अनुसार, योग्य, उप-

युक्त। उ० १. चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि। (ब० १६) ३. मति अनुहारि सुबारि गुन, गन गनि मन अन्हवाइ। (मा० १।४३क)

अनुहार-(सं०)-१. सदृश, तुल्य, समान, २. आकृति। अनुहारी (१)-(सं० अनुहार)-दे० 'अनुहार'। उ० १. सुकवि कुकवि निज मति अनुहारी। (मा० १।२८।४) अनुहारी (२)-(सं० अनुहारिन्)-अनुकरण करनेवाला। अनूठा-(सं० अनुत्थ)-१. अपूर्व, विचित्र, २. सुन्दर। अनूप-(सं०)-१. उपमारहित, अपूर्व, विचित्र, अनुपम, २. सुन्दर, ३. जलप्रायदेश, ४. भैंस। उ० १. अरथ अनूप सुभाव सुभासा। (मा० १।३७।३) अनूपहि-अनूप को, अनोखे को। उ० कहि न सकहि सत सेष अनंद अनूपहि। (जा० १३७)

अनूपम-(सं० अनुपम)-उपमारहित, सुन्दर। उ० अगुन अनूपम गुन निधान सो। (मा० १।१६।१)

अनूपा-दे० 'अनूप'। उ० पन्नगारि यह रीति अनूपा। (मा० ७।११६।१)

अनूपान-(सं० अनुपान)-अनुपान, दवा के साथ खाए जानेवाला पदार्थ। उ० अनूपान श्रद्धा मति पूरी। (मा० ७।१२२।४)

अनूपान-(सं० अनुमान)-अनुमान, अंदाज। उ० अनूपान साङ्गी रहित होत नहीं परमान। (स० ५०६)

अनृत-(सं०)-१. मिथ्या, असत्य, २. अन्यथा। उ० १. साहस अनृत चपलता माया। (मा० ६।१६।२)

अनेक-(सं०)-एक से अधिक, बहुत, असंख्य। उ० सुनहु तात मायाकृत गुन अर दोष अनेक। (मा० ७।४१)

अनेका-दे० 'अनेक'। उ० मनिगन मंगल वस्तु अनेका। (मा० २।६।२)

अनेरे-(सं० अनुत्)-१. झूठ, व्यर्थ, २. झूठा। उ० २. निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर नारिअ अनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं। (क० ७।१७४)

अनेरो-दे० 'अनेरे'। उ० २. अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो। (वि० २७२)

अनै-(सं० अनय)-अनीति। उ० नाम-प्रताप पतित-पावन किये जे न अघाने अघ अनै। (गी० १।४०)

अनैसी-(सं० अनिष्ट)-अप्रिय, अनिष्ट, बुरी। उ० राम सदा सरनागत की अनखौंहीं अनैसी सुभाय सही है। (क० ७।६)

अनैसैं-टेढ़े, कुदृष्टि से, बुरी भाँति से। उ० अजहुँ अनुज तब चितव अनैसैं। (मा० १।२७६।४)

अनैसो-बुरा, अप्रिय। उ० नाम लिए अपनाइ लियो, तुलसी सों कहौ जग कौन अनैसो। (क० ७।४)

अनोखा-(सं० अन् + ईच्छ)-१. अनूठा, निराला, २. नूतन, नया, ३. सुन्दर।

अन्न-(सं०)-१. अनाज, २. पकाया अनाज, ३. सर्वभक्षी, ४. सूर्य, ५. पृथ्वी, ६. विष्णु, ७. प्राण, ८. जल। उ० १. अन्न कनक भाजन भरि जाना। (मा० १।१०।१४)

अन्नपूरना-(सं० अन्नपूर्णा)-अन्नपूर्णा, अन्न की अधिष्ठात्री देवी। उ० जौलों देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना। (क० ७।१४८)

अन्नप्रासन-(सं० अन्नप्राशन)-बच्चों को सर्वप्रथम अन्न

चटाने का संस्कार । उ० नामकरण सुअन्नप्रासन वेद बाँधी नीति । (गी० ७।३५)
 अन्ने-(सं० अन्न)-और, दूसरे ।
 अन्य-(सं०)-दूसरा, भिन्न, और कोई ।
 अन्यतः-(सं०)-१. किसी और जगह से, अन्यत्र से, २. किसी और से । उ० १. रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि । (मा० १।१।२।७)
 अन्यथा-(सं०)-१. विपरीत, उलटा, २. झूठ, असत्य । उ० १. किएँ अन्यथा होइ नहिं विप्र आप अति घोर । (मा० १।१।७४)
 अन्याई-(सं० अन्यायिन्)-१. अन्याय करनेवाला, अधर्मी, २. नटखट । उ० २. या ब्रज में लारिका घने हौही अन्याई । (क० ८)
 अन्याउ-(सं० अन्याय)-१. अन्याय, २. शरारत । उ० २. जे अन्याउ करहिं काहू को, ते सिसु मोहिं न भावहिं । (क० ४)
 अन्याय-(सं०)-न्याय के विरुद्ध, अधर्म, अनीति, अत्याचार ।
 अन्याव-(सं० अन्याय)-दे० 'अन्याय' । उ० अन्याव न तिनको हौं अपराधी सब केरो । (वि० २७२)
 अन्ये-(सं० अन्न)-अन्न, और दूसरे । उ० असुर सुर नाग-नर यक्ष गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये । (वि० ५७)
 अन्वहं-(सं०)-नित्य, सर्वदा, निरंतर । उ० समं सुसेव्य-मन्वहं । (मा० ३।४।७०।१०)
 अन्वित-(सं०)-युक्त, सहित, शामिल ।
 अन्वेषण-(सं०)-खोज, ढूँढ़, तलाश । उ० सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः । (मा० ४।१।२।१०)
 अन्हवाइ-(सं० स्नान)-स्नान कराकर । उ० मति अनुहारि सुवारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ । (मा० १।४।३६)
 अन्हवाइय-स्नान करावाइए । उ० जुवतिन्ह मंगल गाइ राम अन्हवाइय हो । (रा० ३) अन्हवाई-१ स्नान कराकर, २. स्नान कराया । उ० २. बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई । (मा० २।६।४४) अन्हवाएँ-१. स्नान कराए, २. स्नान कराए हुए । उ० २. रामचरित सर विनु अन्हवाएँ । (मा० १।१।१३) अन्हवाए-स्नान कराया । उ० एक बार जननी अन्हवाए । (मा० १।२०।१।१)
 अन्हवावउँ-१. स्नान कराता हूँ, २. नहलाऊँ । उ० १. शंकर-चरित-सुसरित मनहिं अन्हवावउँ । (पा० ३) अन्हवावहु-स्नान कराओ । उ० प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई । (मा० ७।१।१।१) अन्हवावा-स्नान कराया । उ० नृपतनु वेद विदित अन्हवावा । (मा० २।१७।०।१)
 अन्हवैया-नहानेवाले, स्नान करनेवाले । उ० भरत, राम, रिपुदवन, लखन के चरित-सरित अन्हवैया । (गी० १।६)
 अपंडित-(सं०)-ज्ञानशून्य, मूर्ख ।
 अप(१)-(सं० अप्)-जल, पानी । उ० रज अप अन्नल अनिल नभ जड़ जानत सब कोइ । (स० २०३)
 अप(२)-(सं०)-एक उपसर्ग जिसके लगाने से उलटा, विरुद्ध, बुरा, अधिक आदि का भाव आ जाता है ।
 अपकर्ष-(सं०)-अवनति, घटाव, पतन ।
 अपकार-(सं०)-१. अनुपकार, बुराई, अहित, २. अनादर,

अपमान, ३. अत्याचार । उ० १. मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी । (मा० १।१।३।७।४)
 अपकारा-दे० 'अपकार' । उ० १. तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा । (मा० ६।२।४।३)
 अपकारी-(सं० अपकारिन्)-हानि या अपकार करनेवाला, विरोधी । उ० जे अपकारी चार तिनकर गौरव मान्य तेइ । (दो० ५५१)
 अपकीरति-(सं० अपकीर्ति)-अपकीर्ति, बदनामी, अपयश । उ० बधे पाप अपकीरति हारें । (मा० १।२।७।३।४)
 अपगत-(सं०)-१. भागा हुआ, २. नष्ट, मृत । उ० १. अपगत खे सोई अवनि सो पुनि प्रगट पताल । (स० १।६०)
 अपगति-(सं०)-दुर्दशा, नीची गति ।
 अपचार-(सं० अपचार)-१. अपचार, अनुचित बर्ताव, २. अहित, अनिष्ट, ३. अनादर, निन्दा, ४. भूल, भ्रम, ५. कुपथ्य । उ० १. बिबुध बिमल बानि गगन, हेतु प्रजा अपचार । (प्र० ६।५।३)
 अपछरा-(सं० अप्सरा)-अप्सरा, रंडी । उ० नृत्य करहिं अपछरा प्रवीना । (मा० ६।१।०।५)
 अपजस-(सं० अपयश)-अपयश, बदनामी । उ० अपजस नहिं होय तुम्हारा । (वि० १२५)
 अपजसु-दे० 'अपजस' । उ० तजहु सत्य जग अपजसु लेहू । (मा० २।३।०।३)
 अपडर-(सं० अप + डर)-१. मिथ्या डर, २. डर, भय । उ० १. अपडर डरेउँ न सोच समूल । (मा० २।२।६।७।२)
 अपडरनि-भूटे डरों से, मिथ्या डरों से । उ० अब अपडरनि डर्यो हौं । (वि० २।६६) अपडरे-मिथ्या डर से डरे । डर गए । उ० बहु राम लछिमन देखि मर्कट भाखु मन अति अपडरे । (मा० ६।८।६।७।१)
 अपत (१)-(सं० अपात्र)-अपवित्र, अधम, पातकी, नीच । उ० पावन किय रावन रिपु तुलसिहु से अपत । (वि० १।३०)
 अपत (२)-(सं०) अ + पत्र)-नम्र, निर्लज्ज, बेशर्म ।
 अपत (३)-(सं० अपत्)-विपत्ति, आपत्ति ।
 अपति (१)-(सं० अ + पति) पतिहीन, विधवा ।
 अपति (२)-(सं० अ + पति)-दुर्दशा, दुर्गति ।
 अपतु-दे० 'अपत' (१) । उ० अपतु अजामिछु गखु गनि-काऊ । (मा० १।२।६।४)
 अपथ-(सं०)-वह मार्ग जो चलने योग्य न हो, कुसार्ग ।
 अपदेश-(सं०)-१. बहाना, ध्याज, २. छल, ३. लक्ष्य ।
 अपन-(सं० आत्मनो)-अपना । उ० अपन करम बरमानि कै आपु बंधेउ सब कोइ । (स० ५८२)
 अपनपउ-आत्मीयता, अपनापन । उ० हेतु अपनपउ जानि जिय थकित रहे धरि मौनु । (मा० २।१।६०)
 अपनपा-१. अपनापन, २. आत्मसम्मान । अपनपो-अहं, अपनापन । उ० पितु माहु गुरु स्वामी अपनपो तिय तनय, सेवक सखा । (वि० १।३५) अपनपौ-१. अपनापन, आत्मीयता, २. आत्मभाव, ३. संज्ञा, सुधि, ज्ञान, ४. अहंकार, गर्व, ५. आत्मगौरव । उ० ४. सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ । (मा० १।१।६।१।१)
 अपना-निज का । उ० सीतहिं सेइ करहु हित अपना । (मा० ५।१।१।१)

अपनाइ-अपनाकर, निज का बनाकर । उ० राखे अपनाइ, सो सुभाव महाराज को । (क० ७।१३) अपनाइअ-अपना लीजिए । उ० सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ । (मा० ६।११६।४) अपनाइए-अपना लीजिए, अपना कीजिए । उ० देव ! दिनहुँ दिन बिगरिहै बलि जाउँ, बिलंब किए अपनाइए सबेरो । (वि० २७२) अपनाई-१. वश में कर लिया, २. अपना लिया । उ० १. रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई । (मा० २।१८।३) अपनाए-अपना लिया । उ० आगे परे पाहन कृपा, किरात कोलनी, कपीस, निसचिर अपनाए नाए माथ जू । (क० ७।१६) अपनाय-अपना करके । अपनायहि-अपना बना लेने ही । उ० ज्यों ल्यों तुलसिदास कोसलपति अपनायहि पर बनिहैं । (वि० ६५) अपनाया-अपना लिया, अपना बना लिया । उ० जब ते रघुनायक अपनाया । (मा० ७।८६।२) अपनायो-अपना बना लिया, अपना लिया । उ० अरुनि, रवनि, धन, धाम, सुहृद, सुत, को न ईद्रहि अपनायो । (वि० २००) अपनाव-१. अपनाने का भाव, २. अपना लेना, अपनाओ । अपनावा-अपना लिया । उ० निज जन जानि ताहि अपनावा । (मा० १।५०।१)

अपनायत-आत्मीयता । उ० देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी । (वि० १४७)

अपनियाँ-अपनी । उ० तुलसिदास प्रभु देखि मगन भई प्रेम बिबस कछु सुधि न अपनियाँ । (गी० १।३१)

अपनी-निजी, निज की । उ० लागि अगम अपनी कदराई । (मा० २।७२।१)

अपने-निज के । उ० कहउँ न तोहि मोह बस अपने । (मा० २।२०।३) अपनेनि-अपने का बहुवचन, अपनों । उ० अपनेनि को अपनो बिलोकि बल सकल आस बिस्वास बिसारी । (क० ६०)

अपनो-अपना । उ० महरि तिहारे पाँय परौं अपनो ब्रज लीजै । (क० ७)

अपनौ-अपनी बात भी, अपना भी । उ० तुलसी प्रभु जिय की जानत सब, अपनौ कछु जनारों । (वि० २३२)

अपवर्ग-(सं० अपवर्ग)-अपवर्ग, मोक्ष, मुक्ति (४ प्रकार की मुक्ति-सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य) । उ० जनु अपवर्ग सकल तनुधारी । (मा० १।४१।३)

अपवर्गु-दे० 'अपवर्ग' । उ० सरगु नरकु अपवर्गु समाना । (मा० २।१३।१४)

अपवर्ग-(सं० अपवर्ग)-मुक्ति, मोक्ष । उ० नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी । (मा० ७।१२।१५)

अपवर्गा-दे० 'अपवर्ग' । उ० तृन सम विषय स्वर्ग अपवर्गा । (मा० ७।४६।४)

अपवाद-(सं० अपवाद)-कलंक, निन्दा, बुराई । उ० पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपवाद । (मा० ७।३६)

अपवादा-दे० 'अपवाद' । उ० संत संभु श्रीपति अपवादा । (मा० १।६४।२)

अपवादू-दे० 'अपवाद' । उ० जसु जग जाइ होइ अपवादू । (मा० २।७७।२)

अपभय-(सं०)-१. अकारण भय, व्यर्थ भय, २. निर्भयता, ३. भय, डर । उ० १. अपभय कुटिल महीप डेराने ।

(मा० १।२८।४) अपभयहुँ-भय ही, डर ही । उ० विनय करौं अपभयहुँ ते तुम्ह परम हितै हौ । (वि० २७०)

अपमान-(सं०)-अनादर, तिरस्कार, बेइज्जती । उ० अति अपमान बिचारि आपनो, कोपि सुरेस पठाए । (क० १८)

अपमानहि-१. अपमान को, २. अपमान से । उ० २. जौ न राम अपमानहि डरजै । (मा० ६।३०।४)

अपमानता-निरादर, अपमान । उ० अति अघ गुर अपमानता, सहि नहि सके महेस । (मा० ७।१०६।ख)

अपमाना-दे० 'अपमान' । उ० सीता तैं ममकृत अपमाना । (मा० १।१०।१)

अपमानु-दे० 'अपमान' ।

अपमाने-अपमान करते हुए । उ० बोले पर सुधरहि अपमाने । (मा० १।२७।१३)

अपर-(सं०)-१. जो परे न हो, पहिला, २. पूर्व का, पिछला, ३. अन्य, दूसरा । उ० ३. अपर तिन्हहि पूँछहि मगु जाता । (मा० २।१३।२)

अपरना-(सं० अपरणा)-पार्वती का नाम । शिव जी को वर रूप में पाने के लिए पार्वती ने अन्न छोड़कर पत्ते खाना आरंभ किया फिर पत्ता भी छोड़ दिया । इस कारण उनका नाम 'अपरना' या 'अपरणा' पड़ा । उ० उमहि नामु तब भयउ अपरना । (मा० १।७४।४)

अपरा-(सं०)-१. अध्यात्म विद्या के अतिरिक्त अन्य विद्या, २. पश्चिम दिशा, ३. ज्येष्ठ के कृष्ण पक्ष की एकादशी ।

अपराध-(सं०)-१. दोष, पाप, २. भूल, चूक । उ० १. तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता । (मा० २।४३।२)

अपराधा-दे० 'अपराध' । उ० कहेउ जान बन केहि अपराधा । (मा० २।५४।४)

अपराधिनि-(सं० अपराधिनी)-अपराध करनेवाली । उ० जद्यपि हौं अति अधम कुटिल मति, अपराधिनि को जायो । (गी० २।७४)

अपराधिहि-अपराधी को । उ० जदहि बिबेक, सुसील खलहि अपराधिहि आदर दीन्हों । (वि० १७१)

अपराधिहु-अपराधी भी । उ० अपराधिहु पर कोह न काऊ । (मा० २।२६।३)

अपराधी-(सं० अपराधिन्)-अपराध करनेवाला, दोषी । उ० जद्यपि मैं अनभल अपराधी । (मा० २।१८।३)

अपराधु-दे० 'अपराध' । उ० १. समरथ कोउ न राम सों, तीथ-हरन अपराधु । (दो० ४४८)

अपराधू-दे० 'अपराध' । उ० १. कछु तजि रोषु राम अपराधू । (मा० २।३२।३)

अपरिमित-(सं०)-असीम, बेहद, अगणित ।

अपलोक-(सं०)-१. अयश, अपयश, बदनामी, २. मिथ्या दोष । उ० १. लहत सुजस अपलोक बिभूती । (मा० १।५४)

अपलोकु-दे० 'अपलोक' । उ० अब अपलोकु सोकु सुत तोरा । (मा० ६।६१।७)

अपवर्ग-(सं०)-मोक्ष, मुक्ति । उ० दे० 'अपवर्गद' ।

अपवर्गद-(सं० अपवर्ग+द)-१. मोक्षदाता, २. ईश्वर, राम । उ० १. जयति धर्मार्थकामापवर्गद विभो ! (वि० २६)

अपवाद-(सं०)-१. निन्दा, २. प्रतिवाद, विरोध, ३.

पाप, कलंक, ४. जो नियम के विरुद्ध हो । उ० १. निसि दिन पर-अपवाद बृथा कत रति-रति राग बढ़ावहि । (वि० २३७)

अपसार-(सं०)-पानी के छींटे, शीतलता । उ० लेत अवनि रवि अंसु कहँ देत अमिय अपसार । (सं० ४५३)

अपहं-(सं०)-नाश करनेवाला । उ० मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमांशु पूरं शुभम् । (मा० ७।१३।१श्लो०२)

अपहन-(सं०)-दूर करनेवाला, नाशक । उ० दनुज सूदन दयासिंधु दंभापहन दहन दुदौष दुःपापहर्ता । (वि० ५६)

अपहर-(सं०)-हरनेवाला, दूर करनेवाला । उ० जयति मंगलागार, संसार भारापहर बानराकार, बिग्रह-पुरारी । (वि० २७)

अपहरई-अपहरण कर लेती है, हर लेती है । उ० जो ग्या-निन्ह कर चित अपहरई । (मा० ७।५६।३) अपहरत-हरता, हरण करता । उ० दुख दाह दारिद्र दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को । (मा० २।३२६।१) अपहरति-अपहरण करती है, छीनती है । उ० यत्र संभूत अति पूत जल सुर-सरी दर्शनादेव अपहरति पापं । (वि० ५५) अपहरहीं-छीन लेते हैं, अपहरण कर लेते हैं । उ० भानु जान सोभा अपहरहीं । (मा० १।२६६।२)

अपहरन-(सं० अपहरण)-अपहरण, छीनना, ले लेना । उ० मार-करि-मत्त-मृगराज त्रयनयन हर नौमि अपहरन-संसार ज्वाला । (वि० ४०)

अपहर्त्ता-(सं०)-अपहरण करनेवाला, छीननेवाला । उ० उअभागावागर्व-गरिमापहर्त्ता । (वि० ५०)

अपहारी-(सं० अपहारिन्)-अपहरण करनेवाला, लेने-वाला । उ० व्यापक व्योम बंधांघ्रि बामन बिभो ब्रह्मविद्-ब्रह्मचितापहारी । (वि० ५६)

अपहु-(सं० आत्मन्)-आपही, स्वयं ही । उ० तुलसिदास तब अपहुँ से भय जड़ जबू पलकनि हठ दगा दई । (कृ० २४)

अपाउ-(सं० अपाव)-नटखटी, उपद्रव, अन्याय । उ० खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ । (वि० १००)

अपान (१)-(सं०)-१. दस या पाँच प्राणों में से एक जो गुदा में रहता है । गुदा से निकलनेवाला वायु, अपान वायु, २. ईश्वर का एक विशेषण ।

अपान (२)-(सं० आत्मन्)-आत्मभाव, अपनत्व । उ० भरत राम की मिलनि लिखि बिसरे सबहि अपान । (मा० २।२४०)

अपाय (१)-(सं० अ + पाद)-१. बिना पैर का, व्यर्थ । उ० १. कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए । (वि० १८४)

अपाय (२)-(सं०)-१. विश्लेष, अलगाव, २. नाश, ३. उपद्रव, अत्याचार, विघ्न । उ० ३. अकनि याके कपट करतब अमित अनय अपाय । (वि० २२०)

अपार-(सं०)-जिसका पार न हो, सीमारहित, बहुत । उ० सुख जन्मभूमि महिमा अपार । (वि० १३)

अपारा-दे० 'अपार' । उ० चिता यह मोहि अपारा । (वि० १२५)

अपारु-दे० 'अपार' । उ० राम बियोग पयोधि अपारु । (मा० ३।१५६।३)

अपारो-दे० 'अपार' । उ० मद, मत्सर, अभिमान, ज्ञान-रिपु इनमें रहनि अपारो । (वि० ११७)

अपावन-(सं०)-अपवित्र, अशुद्ध । उ० तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें । (मा० १।६३।१)

अपावनि-(सं० अपावनी)-अपवित्र, अशुद्ध । 'अपावन' का स्त्रीलिंग । उ० सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ । (मा० ३।५८)

अपावनी-(सं०)-दे० 'अपावनि' । उ० कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी । (मा० ६।८७।१)

अपि-(सं०)-१. भी, ही, २. निश्चय, ठीक । उ० १. रिपु तेजसी अकेल अपि लक्षु करि गनिय न ताहु । (मा० १।१७०)

अपी-दे० 'अपि' । उ० धनवंत कुलीन मलीन अपी । (मा० ७।१००।४)

अपीह-(सं० अपि + इह)-१. यह भी, २. यहाँ भी ।

अपुनीत-(सं०)-अपावन, अपवित्र । उ० सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई । (मा० १।६६।४)

अपूर्व-(सं०)-१. अद्भुत, अलौकिक, २. श्रेष्ठ, उत्तम ।

अपेत्ता-(सं०)-१. आकांक्षा, इच्छा, २. आवश्यकता, ३. आश्रय, भरोसा, ४. निस्वत्, तुलना ।

अपेल-(सं० अ + पीड़)-अचल, अटल, अमित । उ० विनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल । (मा० ७।१२२क)

अप्रतिहत-(सं०)-१. अपराजित, २. बिना रोक टोक की । उ० २. अप्रतिहत गति होइहि तोरी । (मा० ७।१०६।८)

अप्रमेय-(सं०)-अत्यंत विशाल, जो नापा न जा सके । उ० प्रभोऽप्रमेय वैभवं । (मा० ३।१।४।३)

अप्रवीन-(सं० अप्रवीण)-मूर्ख, मूढ़ । उ० सुनत समुक्त कहत हम सब भई अति अप्रवीन । (कृ० ५५)

अप्रिय-(सं०)-जो प्रिय न हो, कटु, बुरा । उ० सुनि राजा अति अप्रिय बानी । (मा० १।२०८।१)

अप्सरा-(सं०)-१. स्वर्ग की नर्तकी, २. वेश्या, नर्तकी ।

अफल-(सं०)-निष्फल, व्यर्थ । उ० परमारथ स्वारथ-साधन भए अफल सकल, नहि सिद्धि सई है । (वि० १३६)

अच-(?) -१. इस समय, इस क्षण, २. भविष्य में । उ० १. करहु कतहु अब ठाहर ठाढ़ । (मा० २।१३३।१)

अवध-(सं० अयोध्या)-अवध, अयोध्या, वह देश जिसकी राजधानी अयोध्या थी ।

अवध्य-(सं०)-न मारने योग्य ।

अवर्त-(सं० आवर्त)-आवर्त, पानी का भँवर । उ० दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त बहति भयावनी । (मा० ६।८७।१)

अबल-(सं०)-निर्बल, कमज़ोर । उ० अबला अबल सहज जड़ जाती । (मा० ७।११५।८)

अबलानि-(सं० अबला)-अबला का बहुवचन, अबलाओं, स्त्रियाँ । उ० तौ अतुलित अहीर अबलानि को हठि न हियो हरिबे हो । (कृ० ३६) अबलान्ह-अबलाओं, स्त्रियों । उ० अबलान्ह उर भय भयउ विसेषा । (मा० १।६६।२) अबला-(सं०)-१. स्त्री, २. बलहीना । उ० १. अबला बालक बुद्ध जन कर-मीजहि पछिताहि । (मा० २।१२१)

अबलोकत-१. देखते ही, २. देखते हैं।
 अबलोकन-(सं० अबलोकन)-देखना।
 अबलौ-(सं० अब + लौ)-अब तक, इतने दिन तक।
 उ० अबलौ नसानी अब न नसैहौं। (वि० १०५)
 अबसहि-(सं० अब + वश)-वश में न होनेवाले को। उ०
 निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति अबसहि बसकरी।
 (मा० ३१२६। छं० १)
 अबहै-दे० 'अबहीं'। उ० अबहिं मातु मैं जाउँ लेवाई।
 (मा० २११६। २)
 अबहीं-अभी, तुरत। उ० अबहीं समुक्ति परा कछु मोहीं।
 (मा० ६१२४। ५)
 अबहुँ-अब भी। उ० का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना।
 (मा० २११६। १)
 अबाधा-(सं० अबाध)-१. बाधा रहित, निर्बाध, २. अपार।
 उ० २. रघुपति महिमा अगुन अबाधा। (मा० ११३७। १)
 अबाधी-बिना बाधा के, बे रोक-टोक। उ० बसइ जासु उर
 सदा अबाधी। (मा० ७११६। ३)
 अबासू-(सं० आवास)-आवास, घर। उ० बिनु रघुवीर
 बिलोकि अबासू। (मा० २११७। ३)
 अबिकारी-(सं० अबिकारिन्)-विकाररहित, शुद्ध। उ०
 अस प्रभु हृदय अद्भुत अबिकारी। (मा० ११२३। ४)
 अबिगत-(सं० अबिगत)-अबिगत, जो जाना न जा सके।
 उ० अबिगत अलख अनादि अनूपा। (मा० २१३३। ४)
 अबिगति-न जाना जाने का भाव, अबिगति। उ० तुलसी
 राम-प्रसाद बिन, अबिगति जानि न जात। (सं० ५१५)
 अबिचल-(सं० अबिचल)-जो विचलित न हो, अचल,
 अटल। उ० जनु कमठ खपर सपरराज सो लिखत अबिचल
 पावनी। (मा० ५१३५। छं० २)
 अबिचारे-(सं० अ + विचार)-बिना विचार किये हुए,
 अज्ञान से। उ० लग महँ सर्प बिपुल भयदायक, प्रगत
 होइ अबिचारे। (वि० १२२)
 अबिच्छीन-(सं० अबिच्छिन्न)-एकतार, जो बीच से विच्छिन्न
 या टूटी न हो। उ० जो सुनि होइ रामपद प्रीति सदा
 अबिच्छीन। (मा० ७११६। ख)
 अबिद-(सं० - अ + विद)-अविद्वान, मूर्ख। उ० कारन
 अबिरल अल अपितु तुलसी अबिद भुलान। (सं० ३२२)
 अबिद्या-(सं० अबिद्या)-अज्ञान, एक प्रकार की माया जो
 बंधन में रखती है। उ० प्रथम अबिद्या निसा नसानी।
 (मा० ७१३१। २)
 अबिध-(सं० अबिधि)-विधि या नियम के विरुद्ध।
 अबिनय-(सं० अबिनय)-धृष्टता, ढिठाई। उ० स्वामिनि
 अबिनय छमबि हमारी। (मा० २११६। ४)
 अबिनासिनि-(सं० अबिनाशिनि)-जिसका विनाश न हो,
 अबिनाशिनी। उ० अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि।
 (मा० ११६२। २) अबिनासिहि-अविनाशी को, ईश्वर को।
 उ० सदा एक रस अज अबिनासिहि। (मा० ७१३०। ५)
 अबिनासी-(सं० अबिनाशिन्)-अविनाशी, जिसका नाश
 न हो। उ० राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। (मा०
 ११२०। ३)
 अबिवेक-(सं० अबिवेक)-अज्ञान। उ० प्रभु अपने अबिवेक

ते बूझै स्वामी तोहि। (मा० ७१६३। ख) अबिवेकहि-
 अबिवेक को, अज्ञान को। उ० विधि बस हठि अबिवेकहि
 भजई। (मा० ११२२। २)
 अबिवेका-दे० 'अबिवेक'। उ० कहत सुनत एक हर अबि-
 वेका। (मा० ११२१। १)
 अबिवेकी-(सं० अबिवेकिन्)-अज्ञानी, मूर्ख। उ० जिमि
 अबिवेकी पुरुष सरीरहि। (मा० २११४। १)
 अबिरल-(सं० अबिरल)-१. घना, २. अखंड। उ० २.
 कारन अबिरल अल अपितु तुलसी अबिद भुलान। (सं०
 ३२२)
 अबिरलि-दे० 'अबिरल'।
 अबिरुद्ध-(सं० अबिरुद्ध)-जिसका कोई विरोधी न हो।
 उ० नाम सुद्ध अबिरुद्ध अमर अनवद्य अदूषन। (कं०
 ७१५१)
 अबिरोध-(सं० अबिरोध)-१. अनुकूल, मुवाफिक, २. अनु-
 कूलता, मेल।
 अबिरोधा-दे० 'अबिरोध'। उ० १. समय समाज धरम
 अबिरोधा। (मा० २१२६। २)
 अबिहित-(सं० अबिहित)-अनुचित, अयोग्य। उ० तहँ
 अम अति अबिहित तव बानी। (मा० १११६। ३)
 अबीर-(अर०)-लाल रंग की बुकनी जिसे होली में इष्ट
 मित्रों पर डालते हैं। उ० उडइ अबीर मनहुँ अरुनारी।
 (मा० १११६। ३)
 अबुझ-(सं० अबुझ)-मूर्ख। उ० कहेउ न सो समुक्त
 अबुझ। (सं० ३४१)
 अबुध-(सं०)-बुद्धिहीन, मूर्ख। उ० निपट निरंकुस अबुध
 असकू। (मा० ११२७। १)
 अबुझ-दे० 'अबुझ'। उ० अयमय खाँड न उखमय अजहुँ
 न बूझ अबुझ। (मा० ११२७। ५)
 अबेर-(सं० अबेला)-देर, विलंब।
 अबै-अभी, इसी समय। उ० जाको ऐसो दूत सो साहब
 अबै आवनो। (कं० ५१६)
 अबोध-(सं०)-१. मूर्ख, अज्ञानी, २. अज्ञान, मूर्खता।
 अबोल-(सं० अ + ब्रू)-१. अवाक, मौन, चुप, २.
 बेहोश।
 अबज-(सं०) जल से उत्पन्न, १. कमल, २. शंख, ३.
 चंद्रमा, ४. धन्वंतरि। उ० १. पदाब्ज भक्ति देहि मे।
 (मा० ३१४। श्लो० ११)
 अबद-(सं०)-१. वर्ष, साल, २. भेष, बादल, ३. एक
 पर्वत, ४. कपूर, ५. आकाश।
 अबिध-(सं०)-१. समुद्र, सागर, २. सात की संख्या।
 उ० १. यत्र तिष्ठंति तत्रैव अजशर्व हरि सहित गच्छंति
 क्षीराब्धिवासी। (वि० ५७)
 अब्यक्त-(सं० अब्यक्त)-जो प्रकट न हो, गुप्त। उ० अब्यक्त
 मूलमलनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने। (मा०
 ७१३। छं० ५)
 अब्याहत-(सं० अब्याहत)-न रोकने योग्य, अबाध। उ०
 अब्याहत गति संभु प्रसादा। (मा० ७११०। ६)
 अभंगा-(सं० अभंग)-जो भंग न हो, अटूट अखंड। उ०
 धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा। (मा० ७१२७। ४)

अभंगू-अभिषेकः]

अभंगू-दे० 'अभंगा' । उ० मितइ न मलिन सुभाव अभंगू ।
(मा० १७१२)

अभगत-(सं० अभक्त)-जो भक्त न हो, दुष्ट । उ० भगत
अभगत हृदय अनुसारा । (मा० २१२११३)

अभच्छ-(सं० अभक्ष्य)-अखाद्य, न खाने योग्य । उ० असुभ
बेव भूवन धरै भच्छ अभच्छ जे खाहि । (दो० ११०)

अभय-(सं०)-निर्भय, बेडर, बेखौफ । उ० सदा अभय, जय-
मुदु-मंगल मय जो सेवक रनरोर को । (वि० ३१)-सु० अभय

बाँह दीन्ही-भय से बचाने का बचन दिया । उ० लछिमन
अभय बाँह तेहि दीन्ही । (मा० ४१२०११) अभयदाता-(सं०)

अभय देनेवाला, भय को दूर भगानेवाला । उ० मांडवी-
चित्तचातक-नवांबुदवरण, सरन तुलसीदास-अभयदाता ।

(वि० ३६) अभयदान-(सं०)-भय से बचाने का बचन
देना । उ० जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभयदान

देवन दीन्हों । (वि० १३८)

अभाग-(सं०-अभाग्य) दुर्दशा, दुर्भाग्य । उ० राम-बिमुख
विधि बामगति, सगुन अघाय अभाग । (दो० ४२०)

अभागहि-अभाग को । उ० देइ अभागहि भाग को, को
राखै सरन समीत । (वि० १६१)

अभागा-(सं०-अभाग्य)-भाग्यहीन, बदकिस्मत । उ० एहि सर
निकट न जाहि अभागा । (मा० १३८२)

अभागिनि-(सं०-अभागिनी)-बुरे भाग्यवाली । उ० परम
अभागिनि आपुहि जानी । (मा० २१७३)

अभागी-(सं०-अभागिन्)-बुरे भाग्यवाला, अभागा । उ०
होइहि जब कर कीट अभागी । (मा० ११६३३)

अभागु-दे० 'अभाग' । उ० बूझिअ मोहि उपाउ अब सो
सब मोर अभागु । (मा० २१२५५)

अभागे-१. अभाग्यवान लोग, २. रे अभागा ! ऐ अभागे !
उ० २. करिआ मुहँ करि जाहि अभागे । (मा० ६१६११)

अभाग्य-(सं०)-दुर्भाग्य, बुरा भाग्य । उ० मोर अभाग्य
जिआवत ओही । (मा० ६१६६३)

अभारू-(सं०-आभार)-आभार, ज़िम्मेवारी । उ० देवँ दीन्ह
सबु मोहि अभारू । (मा० २१२६६२)

अभाव-(सं०) १. अविद्यमानता, असत्ता २. कमी, टोटा,
३. कुभाव, दुर्भाव ।

अभास-(सं०-आभास)-झलक । उ० तव मूरति बिधु उर
बसति, सोइ स्यामता अभास । (मा० ६१२२८)

अभि-(सं०)-एक उपसर्ग, १. सब ओर से, २. सामने, ३.
बुरा, ४. इच्छा, ५. समीप, ६. बारंबार, ७. दूर, ८.
ऊपर । उ० १. अभि अंतर मल कबहुँ न जाई । (मा०
७४६३)

अभिचार-(सं०) १. पुरश्चरण, मारने के लिए मंत्र का
प्रयोग, २. छः प्रकार के तंत्र प्रयोग । उ० १. जयति पर-जंत्र
मंत्राभिचार असन, कारमनि-कृत-कृत्यादि-हंता । (वि० २६)

अभिजित-(सं०)-१. एक नक्षत्र जिसमें तीन तारे मिलकर
सिंघादे के आकार के होते हैं । २. दिन में पौने बारह से

से लेकर साढ़े बारह तक का समय । ३. विजयी । उ० १.
सुकल पच्छु अभिजित हरिप्रीता । (मा० ११९६१११)

अभिज्ञ-(सं०)-चतुर, होशियार, विज्ञ ।

अभिनंदनु-(सं०-अभिनंदन)-१. सेवा तथा गुणों की प्रशंसा,

२. आनंद, ३. संतोष, ४. उत्तेजना, प्रोत्साहन, ५. विनीत
प्रार्थना । उ० ४. गुरट के बचन सचिव अभिनंदनु । (मा०
२१७६१४)

अभिप्राय-(सं०)-तात्पर्य, आशय, अर्थ ।

अभिमत-(सं०)-१. मनोनीत, पसंद का, चाहा हुआ, २.
मत, सम्मति, विचार । उ० १. तौ अभिमत फल पावहि

करि त्नु साधक । (पा० ३५)

अभिमान-(सं०) घमंड, गर्व । उ० मोहमूल बहु सूलप्रद
त्यागहु तम अभिमान । (मा० १२३३)

अभिमाना-दे० 'अभिमान' । उ० फिर आवइ समेत अभि-
माना । (मा० १३६१२)

अभिमानि-(सं०-अभिमानिन्) घमंड करनेवाला, दुर्पी, अंह-
कारी । उ० बोला बिहँसि महा अभिमानि । (मा० ५१२४११)

अभिमानु-दे० 'अभिमान' । उ० अति अभिमानु हृदयँ तब
आवा । (मा० १६०१४)

अभिमानू-दे० 'अभिमान' । उ० कहउँ सुभाव न कछु अभि
मानू । (मा० ११२५३१२)

अभिरक्ष्य-(सं०)-रक्षा करो । उ० मामभिरक्ष्य रघुकुल
नाथक । (मा० ६११११११)

अभिराम-(सं०)-१. आनंददायक, सुंदर, २. सुख, आनंद,
३. मुक्ति । उ० २. सेए सोक समर्पई, विमुख भए अभिराम ।

(दो० २५८) अभिरामकारी-(सं०-अभिरामकारिन्) आनंद-
दायी, प्रसन्न करनेवाले । उ० संत संतापहर विश्वविश्राम

कर राम कामारि-अभिरामकारी । (वि० ५५) अभिरामहिं-
आनंददायक को । उ० हरिमुख निरखि परष बानी सुनि

अधिक अधिक अभिरामहिं । (कृ० ५)

अभिरामा-आनंद देनेवाला, आनंददायी । उ० लोचन अभि-
रामा तनु घनस्थामा निज आयुष मुज चारी । (मा०
११६२१ छं० १)

अभिरामिनी-(सं०)-आनंद देनेवाली, प्रसन्न करनेवाली ।
उ० हरित गंभीर वानीर हुहुँ तीरवर, मध्य धारा विशद

विश्व अभिरामिनी । (वि० १८)

अभिलाष-(सं०) इच्छा, मनोरथ, कामना । उ० उर अभि-
लाष निरंतर होई । (मा० ११४४१२)

अभिलाषा-(सं०)-इच्छा, कामना, आकांक्षा । उ० सब के
हृदयँ मदन अभिलाषा । (मा० ११८५११)

अभिलाषिहि-चाहेगा, इच्छा करेगा । उ० अस सुकृती नर
चाहु जो मन अभिलाषिहि । (जा० ७६) अभिलाष-लाला-
पित हुए, चाहते हुए । उ० नृप सब रहहि कृपा अभिलाषे ।

(मा० २१२१२)

अभिलाषी-(सं०-अभिलाषिणी)-इच्छा चाहनेवाली, इच्छुक ।
उ० रहीं रानि दरसन अभिलाषी । (मा० २१७०११)

अभिलाषु-दे० 'अभिलाष' । उ० अब अभिलाषु एकु मन
मोरे । (मा० २१३१४)

अभिषेक-(सं०) १. राजतिलक के समय का स्नान, २. जल
से सींचना, ३. यज्ञ की समाप्ति का स्नान, ४. शिवलिंग के

के ऊपर छेदवाले घड़े से पानी टपकाना । उ० १. वेद
पुरान बिचारि लगन सुभ महाराज अभिषेक कियो । (गी०
७३३८) ४. सिव अभिषेक करहि बिधि नाना । (मा०
२११५७४) अभिषेकतः-(सं०)-अभिषेक से, अभिषेक के

निरचय से । उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मग्ने
वनवासदुःखतः । (मा० २।१। श्लो० २)
अभिषेका-दे० 'अभिषेक' । उ० १. जो जग जोग भूप अभि-
षेका । (मा० २।६।२)
अभिषेकु-दे० 'अभिषेक' । उ० १. रामराज अभिषेकु सुनि
हियँ हरषे नरनारि । (मा० २।८)
अभिषेकु-दे० 'अभिषेक' । उ० १. बंधु विहाय बडेहि अभि-
षेकु । (मा० २।१०।४)
अभीष्ट-(सं०)-अभिलषित, चाहा हुआ, मनोनीत । उ०
ब्रह्मभवन सनकादि गो अति अभीष्ट बर पाइ । (मा० ७।३५)
अभूत-(सं०)-१. जो न हुआ हो, २. अपूर्व, विलक्षण, ३.
वर्तमान । अभूतरिपु-(सं०)-जिसका कोई संसार में बैरी न
हो । उ० सम अभूतरिपु विमद विरागी । (मा० ७।३८।१)
अभेद-(सं०)-१. भेदरहित, ऐक्य, एकत्व, २. समानता ।
उ० १. ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद ।
(मा० १।५०) अभेदवादी-(सं०) अभेदवादिन्-अद्वैतवादी,
जीव और ब्रह्म को एक मानने वाले । उ० तेह अभेदवादी
म्यानी नर । (मा० ७।१००।१)
अमेरा-(?) १. धक्का, टक्कर, २. मट्टी के सूखने पर फटी हुई
दरार । उ० १. मंद बिलद अमेरा ढलकन पाइय दुख
भक्तमोरा । (वि० १८६)
अभै-(सं०) अभय-निर्भय, निडर ।
अभोगी-(सं०) अभोगिन्-भोग न करनेवाला, विरक्त । उ०
अज अनवद्य अकाम अभोगी । (मा० १।६०।२)
अभ्यंतर-(सं०)-१. मध्य, बीच २. बीच की, हृदय की ।
उ० २. बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटे ।
(वि० ११६)
अभ्यास-(सं०)-१. बार बार करना, अनुशीलन, २. आदत,
बान । उ० जनमजनम अभ्यास-निरत चित अधिक अधिक
लपटाई । (वि० ८२)
अभ्र-(सं०)-१. मेघ, २. आकाश, ३. अन्नक, ४. सोना,
स्वर्ण ।
अमंगल-(सं०)-अशुभ, अकल्याण, बुराई । उ० मिटिहहि
पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार । (मा० २।२६३)
अमर-(सं०)-१. जो मरे नहीं, चिरंजीवी, २. देवता, ३.
उनचास पवनों में से एक । उ० १. मंत्र सो जाइ जपहि
जो जपत भे, अजर अमर हर अँचह हलाहलु । (वि० २४)
२. कहेन्हि बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब । (पा० १००)
अमरउ-देवता भी । उ० सकउँ तोर अरि अमरउ मारी ।
(मा० २।२६।२) अमरनि-१. देवताओं ने, २. देवताओं को ।
उ० १. बालमीकि व्याध हे अगाध अपराध-निधि मरा मरा
जपे पूजे मुनि अमरनि । (वि० २४७) २. रूप-सुधा-सुख
देत नयन अमरनि बरु । (जा० ४८) अमरपति-(सं०) देव-
ताओं के राजा, इन्द्र । उ० ते भाजन सुख सुजस के,
बसाहि अमरपति ऐन । (दो० ५४१) अमरपुर-(सं०)-
अमरों की पुरी, स्वर्ग, इंद्रलोक । उ० वेद-बोधित करम
धरम बिनु, अगम अति जदपि, जिय लालसा अमरपुर
जानकी । (वि० २०६)
अमरता-दे० 'अमरता' । उ० सुधा सराहिअ अमरताँ गरल
सराहिअ मीनु । (म० १।५)

अमरता-(सं०)-अमरत्व, अमर करने का धर्म, मरण-
हीनता । उ० मीच तें नीच लगी अमरता, छल को न बल
को निरखि थल परुष-प्रेम पायो । (गी० २।१५)
अमरष-(सं०) अमर्ष-१. अमर्ष, क्रोध, २. असहिष्णुता ।
अक्षमा । उ० लोभामरष हरष भय त्यागी । (मा०
७।३८।१)
अमरषत-क्रोध करते हैं । उ० बारहि बार अमरषत करषत
करकै परीं सरीर । (गी० ५।२२) अमरषा-क्रोधित हुआं
या हुई । उ० को करै अटक कपि-कटक अमरषा । (क०
६।७)
अमराई-(सं०) आमराजि-आम की बगीची, आम का बाग ।
अमरावति-(सं०) अमरावती-देवपुरी, इन्द्रपुरी । उ० जाइ
कीन्ह अमरावति बासा । (मा० १।१५२।४) अमरावतिपाल-
(सं०) अमरावती + पाल-अमरावती के पालन करनेवाले,
इन्द्र । उ० जेहि सिहात अमरावतिपाल । (मा०
२।१६६।४)
अमरेश-(सं०)-अमरपति, इन्द्र ।
अमर्ष-(सं०)-१. क्रोध, २. एक प्रकार का द्वेष, ३. अक्षमा ।
अमल-(सं०)-१. निर्मल, स्वच्छ, २. पाप शून्य, निर्दोष,
३. अन्नक । उ० १. अतुल बल विपुल विस्तार, विग्रह
गौर, अमल अति धवल धरणी धरामं । (वि० ११) २.
अमल अविचल अकल सकल संतस कलि-विकलता-भंजना-
नंदरासी । (वि० ५५)
अमाइ-(सं०) आ + मान-समाता है । उ० सुनि-सुनि मन
हनुमान के, प्रेम उमंग न अमाइ । (प्र० ४।४।१) अमाई-
१. समाता था, २. अट्टा है । उ० २. हृदय न अति
आनंदु अमाई । (मा० १।३०।७।२) अमाए-समाए, अट्टे ।
उ० बाल-केलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनंद
न अमाए । (गी० १।२६) अमात-समाता । उ० जोरि
पानि बोले बचन हृदय न प्रेसु अमात । (मा० १।२८।४)
अमाय-अट्टे, समाय । अमाया-समाया, अट्टा । अमायो-
समाया । उ० लै लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद
न अमायो । (गी० १।१४)
अमान-(१) १. मानरहित, गर्वरहित, बिना अहंकार का, २.
अपरिमित, बेहद, ३. अप्रतिष्ठित, तुच्छ । उ० १. गुरु पद
पंकज सेवा तीखरि भगति अमान । (मा० ३।३५) २.
अगुन अलेप अमान एकरस । (म० २।२१६।३) ३. अगुन
अमान अजाति मातु-पितु हीनहि । (पा० ५५)
अमान (२)-(अर०)-१. रक्षा, बचाव, २. शरण ।
अमाना-दे० अमान (१) । उ० २. माया गुन म्यानातीत-
अमाना, बेद पुरान भनता । (मा० १।१६३।०२)
अमानी-दे० 'अमान' (१) । उ० १. अनारंभ अनिकेत
अमानी । (मा० ७।४६।३)
अमानुष-(सं०)-जो मनुष्य से न हो सके । उ० सकल
अमानुष करम तुम्हारे । (मा० १।३५।७।८)
अमाय (१)-(सं०) अमाया-१. मायारहित, निर्लिस, २.
निष्कपट, निःस्वार्थ । उ० १. पेखि प्रीति प्रतीति जन पर
अगुन अनघ अमाय । (वि० २२०)
अमाय (२)-(सं०)-अपरिमित, बेहद, बहुत ।
अमाया-(सं०)-१. मायारहित, निर्लिस, २. निष्कपट,

निःस्वार्थ । उ० २. प्रेसु नेसु व्रत धरसु अमाया । (मा० २।२१६।३)
 अभिन्न-(सं० अमृत)-दे० 'अमृत' । उ० १. कोउ प्रगट कोउ हिय कहिहि, 'मिलवत अभिन्न माहुर बोरि कै' । पा० ६३) अभिन्नमूरि-(सं० अमित + मूल)-अमृत की मूल, संजीवनी जड़ी । उ० अभियमूरिमय चूरन चारु । (मा० १।१।१)
 अमिट-(?) जो न मिटे, स्थायी, अटल ।
 अमित-(सं०)-जिसका परिमाण न हो, असीम । उ० अनघ अद्वैत अनवध अभ्यक्त अज अमित अविकार आनंद सिंधो । (वि० २६) अमितबोध-(सं० अमित + बोध) अनन्तज्ञान वाला । उ० अमितबोध अनीह मितभोगी । (मा० ३।४५।४)
 अमिति-(सं० अमित)-असीम । उ० महिमा अमिति बेद नहि जाना । (मा० ७।४८।३)
 अभिय-(सं० अमृत)-१. अमृत, २. पवित्र, ३. रोगी, ४. जीवन । अभियहु-अमृत भी । उ० अनुपम अभियहु तें अबक अवलोकत अनुकूल । (गी० ३।१७)
 अभिसदन-(सं० अमृत + सदन)-अमर पद । उ० संतन को लै अभिसदन, समुर्कहि सुगति प्रबीन । (सं० ४३३)
 अमी-(सं० अमृत)-दे० 'अमृत' । उ० २. पूजि कीन्ह मधुपर्क, अमी अचवायड । (पा० १३५)
 अमुक-(सं०)-वह, फलां, ऐसा-ऐसा ।
 अमृत-(सं०)-१. जिसके पीने से पीनेवाला अमर हो जाय, सुधा । पुराणानुसार समुद्र-मंथन से निकले १४ रत्नों में यह माना जाता है । २. जल, ३. घी, ४. यज्ञ का बँचा अंश, ५. अन्न, ६. मुक्ति, ७. दूध, ८. औषध, ९. विष, १०. स्वर्ण, ११. मीठी वस्तु । उ० १. परिहरि अमृत लेहि बिषु मागी । (मा० २।४२।२)
 अमृषा-(सं०)-सत्य, जो झूठ न हो । उ० यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकल रज्जो यथाहेअमः । (मा० १।१। श्लो० ६)
 अमेठत-(सं० उद्वेष्टन)-उमेठता है, एठता है ।
 अमोघ-(सं०)-१. जो व्यर्थ न जाय, अचूक, २. अटल । उ० १. जिमि अमोघ रघुपति कर बाना । (मा० १।१।४)
 अमोल-(सं० अमूल्य)-उत्तम, श्रेष्ठ । उ० सुचि अमोल सुंदर सब भाँती । (मा० २।१।२)
 अमोलिक-अमूल्य, कीमती । उ० तुलसी सो जानै सोई जासु अमोलिक चोप । (सं० ५३३)
 अमोले-अमूल्य । उ० देखि प्रीति सुनि बचन अमोले । (मा० १।१५०।१)
 अम्ल-(सं०)-१. खट्टा, २. खटाई ।
 अयं-(सं०)-यह । उ० हुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं । (मा० १।८५। छं० १)
 अय-(सं० अयस्)-लोहा । उ० अय इव जरत धरत पग धरनी । (मा० १।२६८।३) अयमय-लोहे की बनी हुई । उ० अयमय खौद न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ । (मा० १।२७५)
 अयन-(सं०)-१. घर, २. गति, ३. सूर्य या चंद्र की उत्तर या दक्षिण की गति या प्रवृत्ति जिसे उत्तरायण तथा दक्षिणायण कहते हैं । ४. मार्ग, ५. एक यज्ञ, ६. गाय-भैंस के थन का ऊपरी भाग, ७. अंश, ८. काल । उ० १. ऊँद इंदु सम

देह, उमारमन, करुना अयन । (मा० १।१। सो० ४) ३. दिनमनि गवन कियो उतर अयन । (गी० १।४६) ६. अंतरअयन अयन भल, थन फल, बच्छ वेद-विस्वासी । (वि० २२)
 अयना-दे० 'अयन' । उ० १. सुनि सीतादुख प्रभु सुख अयना । (मा० १।३२।१)
 अयश-(सं०)-कलंक, निन्दा, अपयश ।
 अयशी-बदनाम, कलंकी ।
 अयसु-(सं०)-लोहा ।
 अयाची-(सं० अयाचिन्)-अयाचक, न माँगनेवाला, संपन्न ।
 अयान-(सं० अज्ञान)-अज्ञानी, मूर्ख, बेसमझ । उ० कहै सो अधम अयान असाधु । (मा० २।२०७।४) अयाने-मूर्ख, अज्ञानी । उ० अति ही अयाने उपखानो नहि बूमै लोग । (क० ७।१०७)
 अयानप-१. अज्ञानता, मूर्खता, २. भोलापन । उ० १. यहाँ को सयानप अयानप सहस सम, सूधौ सत भाय कहे मिटति मलीनता । (वि० २६२)
 अयाना-दे० 'अयान' । उ० तौ कि बराबरि करत अयाना । (मा० १।२७७।१)
 अयानि-दे० 'अयानी' । उ० पापिनि चेरि अयानि रानि, नृप हित अनहित न बिचारो । (गी० २।६६)
 अयानी-(सं० अज्ञानी)-मूर्ख । उ० सो भावी बस रानि अयानी । (मा० २।२०७।३)
 अयान्यो-मूर्ख, अज्ञानी ।
 अयुत-(सं०)-दस हजार । उ० अयुत जन्म भरि पावहि पीरा । (मा० ७।१०७।३)
 अयुध-(सं० आयुध)-हथियार, शस्त्र ।
 अयोग्य-(सं०)-जो योग्य न हो, अनुपयुक्त, अकुशल ।
 अयोध्या-(सं०)-अवधपुरी, सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी । पुराणानुसार यह हिन्दुओं की सप्तपुरियों में से है ।
 अरंडु-(सं० अरंड)-रंड का पेड़ । उ० सेवहि अरंडु कलप-तरु त्यागी । (मा० २।४२।२)
 अरंभ-(सं० आरंभ)-शुरू, प्रारंभ । उ० कथा अरंभ करै सोइ चाहा । (मा० ७।६३।३)
 अरंभा-दे० 'अरंभ' । उ० बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा । (मा० १।३५।३)
 अरंभेउ-आरंभ हुए । उ० अनरथु अवध अरंभेउ जब तें । (मा० २।१५७।३)
 अरगजाँ-अरगजा से । उ० गली सकल अरगजाँ सिंचाई । (मा० १।३४४।३)
 अरगजा-(सं० अरु + जा)-केशर चंदन कपूर आदि को मिलाकर बनाया गया एक सुगंधित द्रव्य । उ० कुंजम अरग अरगजा छिरिहि, भरहि गुलाल अबीर । (गी० १।२)
 अरगाई-(सं० अलग्न)-१. अलग करके, २. चुप होकर । उ० १. तहँ राखइ जननी अरगाई । (मा० ३।४३।३) २. अस कहि राम रहे अरगाई । (मा० २।२५१।४) अरगानी-१. अगल हुआ, २. चुप हुआ । अरगानी-१. चुप हुई, चुप, २. अलग । उ० १. सुकी रानि अब रहु अरगानी । (मा० २।१४।४)
 अरधु-(सं० अर्ध)-१. पूजा की सामग्री, २. सोलह उपचारों

में से एक, ३. वह जल जिसे फूल अक्षत दूब आदि के साथ किसी देवता के सामने गिराते हैं। उ० २. करि आरती अरधु तिन्ह दीन्हा। (मा० १३११२) अरधनि-अर्धों से, जल से, पूजा करने से। उ० बरषत करषत आयु-जल, हरषत अरधनि भानु। (दो० ४५५)

अरचना-(सं० अर्चन)-१. पूजा, २. सेवा।

अरज-(अ० अर्ज)-विनय, बिनती, निवेदन। उ० गरज आपनी सबन को, अरज करत उर आनि। (दो० ३००)

अरणि-(सं०)-एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत-जलती है।

अरथ-(सं०)-जंगल, बन। उ० सीताराम गुणग्राम पुण्या-रथविहारिणौ। (मा० १११श्लो० ४)

अरत-(सं० अरत)-अड़ जाता है, मचल जाता है। उ० तदपि कबहुँक सखी ऐसेहि अरत जब परत दृष्टि दुष्ट ती के। (गी० ११२) अरनि-अड़ना, हठ करना। उ० मेरे तो माय बाप दोउ आखर हौँ सिसु-अरनि अरो। (वि० २२६) अरे-अड़ गए, अड़े। उ० बिरुमे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैर बढ़ावन के। (क० ६३४) अरे-अड़ते हैं, हठ करते हैं। उ० कबहुँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि खेत सोई जेहि लागि अरे। (क० ११४) अरो-अड़ता हूँ, हठ करता हूँ। उ० मेरे तो माय बाप दोउ आखर हौँ सिसु-अरनि अरो। (वि० २२६) अरयो-अड़ गया, ठहर गया। उ० हौँ मचला लै झाँदिहौँ जेहि लागि अरयो हौँ। (वि० २६७)

अरति-(सं०)-१. विराग, २. जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार का कर्म जिसके उदय से चित्त किसी कार्य में नहीं लगता। उ० १. रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाडु। (मा० २१२१५)

अरथ-(सं० अर्थ)-१. अभिप्राय, भाव, आशय, २. काम ३. हेतु, लिप, निमित्त, ४. धन, संपत्ति। अर्थ धर्म काम मोक्ष, चार फलों में से एक। उ० १. अरथ अनूप सुभाव सुभासा। (मा० १३७३) ४. अरथ धरम कामादि सुख सेवइ समय नरेसु। (मा० ११५५)

अरधंग-(सं० अर्द्धांग)-अर्द्धांग, आधा शरीर। उ० सदा संसु अरधंग निवासिनि। (मा० ११६८२)

अरध-(सं० अर्द्ध)-आधा। उ० अरध निमेष कलपसम बीता। (मा० ११२७०१४)

अरधजल-(सं० अर्द्धजल)-श्मशान में शव को नहलाकर आधा बाहर और आधा जल में डाल देने की क्रिया। उ० सुरसरिहु को बारि, भरत न माँगेउ अरधजल। (दो० ३०५)

अरनव-(सं० अर्णव)-समुद्र, सागर।

अरनी-(सं० अरणी)-वह लकड़ी जिसे रगड़कर आग पैदा की जाती है। उ० पुनि विवेक पावक कहँ अरनी। (मा० १३१३)

अरन्य-(सं० अरण्य)-बन, जंगल।

अरप-अर्पण, देना।

अरपि-(सं० अर्पण)-अर्पणकर, देकर। उ० जो संपति दस-सीस अरपि करि रावन सिव पहुँ लीन्ही। (वि० १६२)

अरविंद-(सं० अरविंद)-नील कमल को। उ० न यावद् उमा-

नाथ पादारविंद। (मा० ७१०८ श्लो० ७) अरविंद-(सं० अरविंद)-नील कमल, कमल। उ० राम पदारविंद रति करति सुभावहि खोइ। (मा० ७१२४)

अरविंदु-दे० 'अरविंद'। उ० राम पदारविंदु अनुरागी। (मा० ७११२)

अरभक-(सं० अर्भक)-१. बालक, २. छोटा, ३. मूर्ख।

अरह-(?)-त्यौरी फेरना, क्रोध करना।

अराती-(सं० आराति)-शत्रु, मारनेवाला। उ० तदपि न कहँउ त्रिपुर अराती। (मा० ११५७४)

अराधन-(सं० आराधना)-उपासना, पूजा, ध्यान।

अरि-(सं०)-१. शत्रु, बैरी, २. चक्र, ३. काम-क्रोध आदि विकार, ४. छः की संख्या। उ० १. बसन पूरि, अरि दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। (वि० ६३) अरिन्ह-बैरियों, दुश्मनों। उ० भगतनि को हित कोटि मालु-पिठु, अरिन्ह को कोटि कसानु हैं। (गी० ५३५) अरिमर्दन-(सं०)-शत्रुनाशक। उ० दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन। (मा० ७६११४) अरिहि-१. शत्रु को, २. शत्रु के भी। उ० २. जासु सुभाउ अरिहि अनुकला। (मा० २३२१०) अरिहुक-शत्रु का भी। उ० अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। (मा० २१८३३)

अरिष्ट-(सं०)-१. दुःख, पीड़ा, २. विपत्ति, ३. दुर्भाग्य, ४. अशुभ, ५. नीम, ६. लका के पास का एक पर्वत, ७. कौवा, ८. गिद्ध, ९. एक ऋषि। उ० ३. सूचत सगुन विषादु बड़ असुभ अरिष्ट अचेत। (प्र० ३३३४)

अरी (१)-(सं० अरि)-बैरी, शत्रु, मारनेवाले। उ० बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। (वि० ६३)

अरी (२)-स्त्रियों के लिए संबोधन।

अरुंधती-(सं०)-१. वशिष्ठ मुनि की स्त्री, २. एक दक्ष-कन्या जो धर्म से ब्याही गई थी, ३. एकतारा। उ० १. अरुंधती मिलि मैंनहि बात चलाइहि। (पा० ८८)

अरु(सं० अपर)-और, फिर। उ० दानि कहाउब अरु कृपनाई। (मा० २३५३)

अरुचि-(सं०)-१. रुचि का अभाव, अनिच्छा, २. एक रोग, ३. घृणा, नकरत।

अरुभाई-(सं० अरुंधन)-उलझ गई, उलझ जाती है। उ० छूट न अधिक अधिक अरुभाई। (मा० ७११७३)

अरुभान्यो-उलझ गया, फँस गया। उ० जदपि विषय सँग सहे दुसह दुःख, विषम जाल अरुभान्यो। (वि० ८८)

अरुभि-उलझ, फँस। उ० सखि! अरुभि परी यहि लेखे। (गी० २१६) अरुभौ-उलझे, फँसे, लिपटे, लिपट गए।

अरुण-(सं०)-१. लाल, रक्तवर्ण, २. सूर्य, ३. सिंदूर।

अरुन-(सं० अरुण)-१. सूर्य, २. लाल, ३. सूर्य का सारथी, ४. सिंदूर, ५. कश्यप के पुत्र। उ० १. मनहुँ उभय अंभोज अरुन सौँ बिधु-भय विनय करत अति आरत। (गी० ११२०) २. अरुन-बन-धूमध्वज, पान-आजानु-भुजदंड-कोदंडवर-चंड-बानं। (वि० ४६)

अरुनचूड-(सं० अरुणचूड)-मुर्गा, एक पक्षी जो प्रातः बहुत सवेरे बोलता है। उ० अरुनचूड बर बोलन लागे। (मा० १३५८३)

अरुनता-(सं० अरुणता)-अरुणाई, लालिमा । उ० बसी मानहुँ चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि । (गी० १।२४)
 अरुनमय-(सं० अरुणमय)-लालिमामयी, लालिमापूर्ण ।
 उ० मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी । (मा० २।२३७।३)
 अरुनसिखा-(सं० अरुणशिखा)-सुर्ग, एक बहुत सवरे जग-
 जानेवाला पत्नी । उ० उठे लखनु निसि विगत सुनि
 अरुनसिखा धुनि कान । (मा० १।२२६)
 अरुनाई-लालिमा, रक्तता । उ० अरुन चरन, अंगुली
 मनोहर, नख हुतिवंत कलुक अरुनाई । (गी० १।४६)
 अरुनारी-अरुणाई, ललाई । उ० उदई अवीर मनहुँ अरु-
 नारी । (मा० १।१६५।३)
 अरुनारे-अरुण, लाल । उ० दुइ दुइ दसन अधर
 अरुनारे । (मा० १।१६६।४)
 अरुनोदय-(सं० अरुणोदय)-अरुणोदय के समय,
 उषाकाल में, तड़के । उ० अरुनोदय सकुचे कुमुद
 उदगन जोति मलीन । (मा० १।२३८)
 अरुढ़ा-(सं० आरुढ़)-चढ़ा, आरुढ़, तैयार । उ० सो कि
 होइ अब समरारुढ़ा । (मा० ६।२३।२)
 अरूप-(सं०) बिना रूप का, निराकार । उ० एक अनीह
 अरूप अनामा । (मा० १।१३।२)
 अरूपा-(सं० अरूप)-१. रूपरहित, निराकार, २. कुरूप ।
 उ० १. अकल अनीह अनाम अरूपा । (मा० ७।११।२)
 अरुष-(सं०)-क्रोधहीन, शांत । उ० अनघ अरुष दच्छ
 बिन्यानी । (मा० ७।४६।३)
 अर्क (१)-(सं०)-१. आक, मंदार, २. सूर्य, ३. इंद्र, ४. ताँबा,
 ५. विष्णु, ६. ज्येष्ठ भाई, ७. आदित्यवार, ८. बारह की
 संख्या । उ० १. अर्क जवास पात बिलु भयऊ । (मा०
 ४।१५।२) २. कोटि-मदनाक अगणित प्रकाशम् ।
 (वि० ६०)
 अर्क (२)-(अ० अर्क)-निचोड़ा हुआ रस ।
 अर्घ-(सं०)-१. देवता या बड़े को अर्पण करने का पदार्थ,
 २. जलदान, ३. हाथ धोने के लिए जल ।
 अर्घ्य-(सं०)-१. पूजनीय, २. बहुमूल्य, ३. अर्घ देने के
 योग्य ।
 अर्चा-(सं०)-१. पूजा, उपासना, २. प्रतिमा ।
 अर्चि (१)-पूजन करके । उ० अर्चि भवदंघ्रि सर्वाधिकारी ।
 (वि० १०)
 अर्चि (२)-(सं०)-१. अग्नि की शिखा, २. तेज, दीप्ति,
 ३. किरण ।
 अर्जित-(सं०) पूजित, सम्मानित ।
 अर्च्य-(सं०) पूज्य, पूजनीय ।
 अर्जुन-(सं०)-पांडु पुत्र जो प्रसिद्ध धनुर्धर थे । इनकी
 उत्पत्ति इंद्र के अश से मानी जाती है । अभिमन्यु इन्हीं
 के पुत्र थे । २. एक पेड़, ३. उज्ज्वल, ४. हैहयवंशी
 एक राजा का नाम ।
 अर्णव-(सं०)-१. समुद्र, २. सूर्य, ३. इंद्र, ४. अंतरिक्ष ।
 अर्णव-समुद्र में । उ० पतति नो भवार्णवे । (मा०
 ३।४।२।००७)
 अर्थ-(सं०) १. धन, २. अभिप्राय, मतलब, ३. हेतु, ४.
 इंद्रियों के विषय, ५. अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चार

फलों में से एक । उ० अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति
 नहि जाइ गुसाई । (वि० १२०) २. वर्णानामर्थसंवानां
 रसानां छुदसामपि (मा० १।१। श्लो० १)
 अर्द्ध-(सं०) आधा । उ० तुलसी अर्द्ध सुमिरि रघुनाथहि
 तरो गयंद जाके अर्द्धनाथ । (वि० ८३)
 अर्द्धांग-(सं०) आधा अंग । उ० भस्म सर्वांग, अर्द्धाङ्ग
 शैलात्मजा । (वि० १०)
 अर्द्धाली-अर्धाली, २ छंदों से मिलकर एक चौपाई होती
 है । आधी चौपाई को अर्द्धाली कहते हैं । चौपाई-रहेउ
 एक दिन अवधि अधारा । समुक्त मन दुख भयउ
 अपारा । कारन कवन नाथ नहि आयउ । जानि कुटिल
 किधौ मोहि बिसरायउ । (मा० ७।१।२) अर्द्धाली-रहेउ
 एक दिन अवधि अधारा । समुक्त मन दुख भयउ अपारा ।
 अर्ध-(सं० अर्द्ध) आधी, अर्द्ध । उ० अर्धराति गइ कपि
 नहि आयउ । (मा० ६।६।११)
 अर्णव-(सं० अर्णव) समुद्र ।
 अर्पण-(सं० अर्पण) उपहार, भेंट ।
 अर्पी-अर्पण कर दिया, दे दिया । उ० विस्व असिहि जनु
 एहि बिधि अर्पी । (मा० ६।६७।३)
 अर्पि-अर्पण कर, देकर । उ० भगति-बैराग-विज्ञान-दीपावली,
 अर्पि नीराजनं जगनिवासं । (वि० ४७)
 अर्पित-(सं०) दिया हुआ, अर्पण किया हुआ । उ० वासु-
 देव अर्पित नृप ग्यानी । (मा० १।१५।११)
 अर्बुद-(सं०) १. दश कोटि, दस करोड़, २. एक पर्वत, ३.
 बादल, ४. एक सर्प विशेष । अर्बुद-करोड़ों, असख्यों ।
 दे० 'अर्बुद' । उ० सैन के कपिन को को गनै अर्बुद, महा-
 बलवीर हनुमान जानी । (क० ६।२०)
 अर्भक-(सं०)-१. छोटा शिशु, २. अल्प, छोटा । उ० गर्भन
 के अर्भक दलन परसु मोर अतिघोर । (मा० १।२७२)
 अर्वाक-(सं०)-१. पूर्व, आदि, २. निकट, समीप, ३. पीछे ।
 उ० १. वेदगर्भात्मकादभ्रगुण-गर्व-अर्वागपर-गर्व-निर्वाप-
 कर्ता । (वि० ५४)
 अर्ल-(सं०)-दे० 'अलम्' ।
 अर्लंकार-(सं०) १. अर्थ या ध्वनि की वह युक्ति जिससे
 काव्य की शोभा हो । २. आभूषण । उ० १. विसिष्टा-
 धलंकार महँ संकेतादि सु-रीति । (सं० ३०२)
 अर्लंकृत-(सं०)-१. विभूषित, सजाया हुआ, २. काव्या-
 लंकारयुक्त । उ० २. कोस अर्लंकृत संधि गति, मैत्री बरन
 बिचार । (सं० ३०३)
 अर्लंकृति-(सं०)-१. अर्लंकार, २. अर्लंकारयुक्त । उ० १.
 आखर अर्थ अर्लंकृति नाना । (मा० १।६।५)
 अर्लंपट-(सं०)-अव्यभिचारी, जो विषयों में लिस न हो ।
 उ० विषय अर्लंपट सील गुनाकर । (मा० ७।३।१)
 अर्ल-(सं० अर्ल) समर्थ, शक्तिसंपन्न । उ० कारन अर्बिल
 अर्ल अपितु, तुलसी अर्बिद भुलान । (सं० ३२२)
 अर्लक-(सं०)-मस्तक के उधर-उधर लटकते हुए घुँघराखे
 बाल । उ० मुकुट कुंडल तिलक, अर्लक अलिआत इव ।
 (वि० ६१) अर्लक-केशपाश, बालों का समूह । उ०
 अर्लक कुटिल, ललित लटकन भ्रू । (गी० १।२०)
 अर्लख-(सं० अर्लक्ष्य)-जो दिखाई न पड़े, अप्रत्यक्ष, अयो-

चर । उ० की अज अगुन अलख गति कोई । (मा० ११०८४)
 अलखित-(सं० अलखित)-जो देखा न गया हो, बेपता ।
 उ० कवि अलखित गति बेषु बिरागी । (मा० २११०४)
 अलखु-दे० 'अलख' । उ० व्यापक ब्रह्म अलखु अविनासी ।
 (मा० ११३४१३)
 अलग-(सं० अलग)-भिन्न, दूर, पृथक्, न्यारा । उ० सो
 स्वासा तजि रामपद तुलसी अलग न खोई । (स० ४६)
 अलच्छि-(सं० अ+लक्ष्मी)-दरिद्रता, गरीबी । उ० लच्छि
 अलच्छि रंक-अवनीसा । (मा० ११६४)
 अल्प-(सं० अल्प)-थोड़ा, लघु । उ० अल्प तद्धित जुगरेख
 इंदु महँ रहि तजि चंचलताई । (वि० ६२)
 अल्प्य-(सं०)-न मिलने योग्य, अप्राप्य, दुर्लभ । उ०
 मुनिहुँ मनोरथ को अगम अल्प्य लाभ । (गी० २१३२)
 अलम्-(सं०)-यथेष्ट, पर्याप्त ।
 अलल-(?)-१. पत्नी-विशेष, २. अनुभवहीन व्यक्ति, ३.
 घोड़े का जवान बच्चा ।
 अलसात-(सं० आलस्य)-आलस्य करते हैं । उ० जानत
 रघुबर भजन तें तुलसी सठ अलसात । (स० १२६) अल-
 सातो-आलस्य करते । उ० जपत जीह रघुनाथ को नाम
 नहिँ अलसातो । (वि० १२१)
 अलसी-आलसी । उ० राम सुभाव सुने तुलसी हुलसे
 अलसी, हमसे गलगाजे । (क० ७११)
 अलान-(सं० आलान)-हाथी बाँधने का खूँटा या सिक्कड़,
 जंजीर । उ० नव गयहु रघुवीर मनु राखु अलान समान ।
 (मा० २१५१)
 अलाप-(सं० आलाप)-१. आलाप, संगीत के सात स्वरों
 का साधन, २. बातचीत ।
 अलायक-(सं० अ+अर० लायक)-अयोग्य, निकम्मा ।
 उ० सुर स्वारथी अनीस अलायक, निठुर दया चित नाहीं ।
 (वि० १४५)
 अलिगिनी-अमरी, भँवरी, अमर की स्त्री । उ० मंद-मंद गुंजत
 हैं अलि अलिगिनी । (गी० २१४३)
 अलि-(सं०) १. भौरा, अमर, २. कोयल, ३. सखी, आली,
 ४. मदिरा, ५. श्रेणी, समूह । उ० १. गुंजत अलि लै
 चलि मकरदा । (मा० ७१२३२) ३. कुंवर सो कुसल-
 छेम अलि ! तेहि पल कुलगुरु कहँ पहुँचाई । (गी० २१८६)
 ५. भूत अह बेताल खग मृगालि-जालिका । (वि० १६)
 अलिन-भौरों का समूह । अलिनि-(सं० अलिनी)-अमरी,
 अमर की स्त्री । उ० गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी ।
 (मा० ११२६११)
 अली-(सं० आली)-सखियाँ । उ० करहिँ सुमंगल गान
 उमँगि आनँद अली । (जा० १५४) अली (१)-(सं०
 आली)-१. सखी, २. श्रेणी, पंक्ति, ३. सखी उदार
 या दानी (फारसी में) । उ० १. एहि भाँति गौरि
 असीस सुनि सिय सहित हिय हरषी अली । (मा०
 ११२३६। छ० १) ३. सुख-सागर नागर ललित बली अली
 पर-धाम । (स० २५३)
 अली (२)-(सं० अलि)-अमर, भँवरा ।

अलीक-(सं०)-विना सर पैर का, मिथ्या, झूठा । उ० सुनेहि
 न श्रवन अलीक प्रलापी (मा० ६१२५४)
 अलीका-दे० 'अलीक' । उ० बचन तुम्हार न होइ अलीका ।
 (मा० ११२१६३)
 अलीहा-(सं० अलीक)-मिथ्या, झूठ । उ० एक कहहिँ यह
 बात अलीहा । (मा० २१४८४)
 अलुष्मि-(सं० अवरुन्धन)-उलझकर, एक में एक होकर ।
 उ० खप्परिन्ह खगा अलुष्मि-जुष्महिँ सुभट भटन्ह ढहा-
 वहीँ । (मा० ६१८८ छ० १)
 अलेख-(सं०) १. अधिक, बहुत, २. अज्ञेय, दुर्बोध । उ०
 १. भए अलेख सोच बस लेखा । (मा० २१२६४४)
 अलेखी-(सं० अलेख)-१. अन्यायी, गड़बड़ करनेवाला,
 २. अज्ञेय, दुर्बोध । उ० १. बड़े अलेखी लखि परै, परिहरे
 न जाहीं । (वि० १४७)
 अलेप-(सं० अ+लेप) निर्लेप, विरक्त, संसार में जो
 लीन न हो । उ० अगुन अलेप अमान एक रस । (मा०
 २१२१६३)
 अलोने-(सं० अ+लवण)-विना नमक का, फीका, बेमज़ा,
 व्यर्थ । उ० तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस-सालन साग
 अलोने । (वि० १७५)
 अलोल-(सं०)-स्थिर, अचंचल । उ० एकौ पल न कबहुँ
 अलोल-चित हित दै पद-सरोज सुमिरौ । (वि० १४१)
 अलोला-दे० 'अलोल' । उ० नाथ कृपा मन भयउ अलोला ।
 (मा० ४१७८)
 अलौकिक-(सं०)-जो इस लोक में न दिखाई दे, असा-
 धारण, अद्भुत । उ० कथा अलौकिक सुनहिँ जे ग्यानी ।
 (मा० ११३३२)
 अल्प-(सं०)-१. थोड़ा, कुछ, कम, न्यून । २. थोड़ी अव-
 स्था, कच्ची अवस्था । उ० २. अल्पमृत्यु नहिँ कवनिउ
 पीरा । (मा० ७१२१३)
 अव-(सं०)-एक उपसर्ग, इसके लगने से निश्चय, अनादर,
 न्यूनता, व्यासि आदि अर्थों की योजना होती है ।
 अवकलत-ज्ञात होता, सूझ पड़ता, विचार में आता । उ०
 मोहि अवकलत उपाय न एकू । (मा० २१२६३१)
 अवकलन-(सं०)-१. इकट्ठा करके मिला देना, २. ग्रहण,
 ३. जानना ।
 अवकलना-दे० 'अवकलन' ।
 अवकलित-१. देखा हुआ, २. ज्ञात, ३. निश्चित ।
 अवकास-(सं० अवकाश)-१. स्थान, जगह, २. आकाश,
 अंतरिक्ष, शून्य, ३. फुसंत, छुट्टी । उ० १. कोउ अवकास
 कि नभ बिनु पावइ । (मा० ७१६०२)
 अवकासा-दे० 'अवकास' । उ० नभ सत कोटि अमित
 अवकासा । (मा० ७१६१४)
 अवगत-(सं०) विदित, ज्ञात, मालूम ।
 अवगति-(सं०) १. ज्ञान, २. बुरी गति, दुर्गति ।
 अवगत-(सं० अप+गाथा)-अपवाद, बुराई, निंदा ।
 अवगाहति-(सं०) स्नान करते हैं । उ० श्री मद्रामचरित्र
 मानसमिदं भक्त्यावगाहति ये । (मा० ७१३१। श्लो० २)
 अवगाहत-डूबता हुआ । उ० अवगाहत बोहित नौका
 चदि कबहुँ पार न पावै । (वि० १२२) अवगाहहिँ-स्नान

करते हैं। उ० जे सर सरित राम अवगाहहिं। (मा० २।११३।३) अवगाहि-१. स्नानकर, २. डुबकर, ३. झुसकर, ३. मथकर। अवगाही-१. स्नानकर, गोता लगाकर, २. सोचकर, मनन करके। उ० १. भई कवि छुडि बिमल अवगाही। (मा० १।३६।५)

अवगाह-(सं० अवगाध)-१. अथाह, गंभीर, २. अनहोनी, कठिन, ३. संकट का स्थान, उ० १. प्रेम बारि अवगाह सुहावन। (मा० १।२६२।१) अवगाहै-दे० 'अवगाह'। उ० १. सुंदर-स्याम-सरीर-सैल तैं धँसि जनु जुग जमुना अवगाहै। (गी० ७।१३)

अवगाहा-दे० 'अवगाह'। उ० १. उभय अपार. उदधि अवगाहा। (मा० १।६।१)

अवगाहन-(सं०)-१. पानी में हल कर स्नान करना। २. प्रवेश, पैठ, ३. मथन, ४. खोज, ५. चित्त धँसाना। अवगाहू-दे० 'अवगाह'। उ० १. नारि चरित जलनिधि अवगाहू। (मा० २।२७।४)

अवगुन-(सं० अवगुण)-१. दोष, ऐब, २. अपराध, ३. निर्गुण। उ० १. जो अपने अवगुन सब कहहूँ। (मा० १।१२।३) अवगुनन्हि-अवगुणों को, बुराइयों को। उ० गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा। (मा० ४।७।२)

अवघट-(सं० अव + घट)-अटपट, दुर्घट, कठिन, अडबड़। उ० सरिता बन गिरि अवघट घाटा। (मा० ३।७।२)

अवचट-१. अनजान में, अचानक, अचक्का। उ० अवचट चितपु सकल भुआला। (मा० १।२४।३)

अवच्छिन्न-(सं०)-१. अलग किया हुआ, पृथक्, २. विशेषणयुक्त। अवच्छिन-दे० 'अवच्छिन्न'।

अवज्ञा-(सं०) १. अपमान, अनादर, २. अज्ञा का उल्लंघन, ३. पराजय, हार।

अवटत-(सं० आवर्तन)-१. मथन करते हैं, २. जलाते हैं, झौटते हैं। अवटि-१. झौटकर, पकाकर, २. मथकर, ३. जलकर। उ० ३. जो आचरन बिचारहु मेरो कलप कोटिलगि अवटि मरौं। (वि० १।४१) अवटै-आग पर रखकर गाढ़ा करे। उ० अवटै अनल अकाम बनाई। (मा० ७।११७।७)

अवडेर-(सं० अव + राट) १. झूल, धोखा, २. भाग्यहीन, ३. संभट, बखेड़ा।

अवडेरि-धोखा देकर, चकर में डालकर। उ० पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही। (मा० १।७।६) अवडेरि-निकाल दीजिए। उ० पोषि तोषि थापि आपने न अवडेरिए। (ह० ३।४)

अवडेर-चकरदार, बेढब। उ० जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु विधिहु सज्यो अवडेरै। (वि० २।२७)

अवडर-(सं० अव + धार)-१. दया करनेवाला, उदार, २. मुँहमाँगा देनेवाला। ३. सीधा, भोला। उ० १. आसुतोष तुम्ह अवडर दानी। (मा० २।४।४)

अवतंस-(सं०)-१. भूषण, शिरोभूषण, शोभायमान करनेवाले, २. मुकुट, ३. माला, ४. कर्णपूर, कर्णफूल। उ० १. राम कस नतुम्ह कहहुअस हंस बंस अवतंस। (मा० २।६) अवतंसा-दे० 'अवतंस'। उ० १. भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा। (मा० १।मन।३)

अवतरइ-(सं० अवतार) अवतार लेते हैं, जन्म लेते हैं। उ० निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लाग। (मा० ४।२६) अवतरही-अवतार लेते हैं, पैदा होते हैं। उ० कलप-कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। (मा० १।१४०।१) अवतरिहउं-अवतार लूँगा, जन्म धारण करूँगा। उ० परम सक्ति समेत अवतरिहउं। (मा० १।१८७।३) अवतरिहि-अवतार लेगी, उतरेगी, अवतीर्ण होगी। उ० सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। (मा० १।१५२।२) अवतरी-अवतार लिया, जन्म लिया। उ० जगदंबा जहँ अवतरी। (मा० १।६४) अवतरे-अवतार लिया, अवतार लिया है। उ० जेहि मारे सोइ अवतरे, कृपा सिन्धु भगवान्। (दो० १।१५) अवतरेउ-अवतार लिया है। उ० प्रभु अवतरेउ हरन महि-भारा। (मा० १।२०।३) अवतरेहु-अवतार लिया है। उ० धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। (मा० ४।६।३)

अवतार-(सं०)-१. उतरना, नीचे आना, २. जन्म, ३. सृष्टि। उ० २. एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार। (मा० १।१३।६) विशेष-पुराणों के अनुसार विष्णु के २४ अवतार हैं। उनमें से दस (मत्स्य, कच्छप, बाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम और कृष्ण आदि) प्रधान हैं। अवतारा-दे० 'अवतार'। उ० २. पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। (मा० १।११०।३)

अवतारी-अवतार लेनेवाला, उतरनेवाला। उ० यद् ब्रह्म-बिग्रह-व्यक्त लीलावतारी। (वि० ४३)

अवदातं-(सं०)-१. पवित्र, २. सुंदर, ३. उज्वल। उ० २. वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्। (मा० ६।१।१)

अवद्य-(सं०)-१. अधम, पापी, २. निच, गर्हित। अवध (१)-(सं० अयोध्या)-१. अयोध्या, २. कोशल, एक देश जिसकी प्रधान नगरी अयोध्या थी। उ० १. बंदुँ अवध पुरी अति पावनि। (मा० १।१६।१) अवधहि-अवध को, अयोध्या को। उ० चले हृदयँ अवधहि सिरु-नाई। (मा० २।मन।१)

अवध (२)-(सं० अबध्य)-न मारने योग्य। अवधनाथु-(सं० अयोध्यानाथ)-१. राम, २. दशरथ। उ० १. अवधनाथु गवने अवध। (प्र० ६।१।२)

अवधपति-दे० 'अवधनाथु'। उ० १. राम अनादि अवध-पति सोई। (मा० १।१२७।३)

अवधि-(सं०)-१. सीमा, २. समय, ३. अंत समय। उ० २. बीती अवधि काज कछु नाहीं। (मा० ४।२६।१)

अवधूत-(सं०)-१. संन्यासी, एक प्रकार के साधु, २. कंषित, ३. विनष्ट, नाश किया हुआ। उ० १. धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ। (क० ७।१०।६)

अवधेस-(सं० अवधेश)-१. दशरथ, २. राम। उ० १. अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद के भूपति लै निकसे। (क० १।१) अवधेसाहि-राजा दशरथ को। उ० जाइ कहैउ 'पगु धारिय' मुनि अवधेसाहि। (जा० १।४३)

अवधेसा-दे० 'अवधेस'। उ० २. भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। (मा० ७।१११।६)

अवन-(सं०)-१. रचा, बचाव, २. प्रसन्न करना, ३. रचा

करनेवाले, खुश करनेवाले । उ० ३. सीय-सोच-समन, दुरित-दोष-दमन, सरन आए अवन, लखन प्रिय प्रान सो । (ह० ८)

अवनति-(सं०)-१. घटती, कमी, २. विनय, ३. दुर्दशा, तनझुली ।

अवनि-(सं०)-पृथ्वी, ज़मीन । उ० सुचि अवनि सुहावनि आलबाल । (वि० २३) अवनिद्रोही-(सं० अवनि + द्रोहिन्)-पृथ्वी से द्रोह करनेवाले, राक्षस । उ० धीर, सुर-सुखद, मर्दन अवनिद्रोही । (गी० २।१८)

अवनिप-(सं० अवनि + प)-राजा, नृप । उ० गर्भं खर्वहि अवनिप रवनि, सुनि कुमार गति घोर । (मा० १।२७६)

अवनिकुमारा-(सं०)-पृथ्वी की पुत्री, जानकी, सीता । उ० धरि धीरजु उर अवनिकुमारी । (मा० २।६४।२)

अवनी-(सं० अवनि)-पृथ्वी, धरा, ज़मीन । उ० त्रसित परेउ अवनी अकुलाई । (मा० १।१७४।४)

अवनीस-(सं० अवनीश)-१. अवनीश, राजा, २. भगवान । उ० १. विचरहि अवनि अवनीस-चरन-सरोज मन मधुकर किए । (वि० १३५)

अवमान-(सं०)-अपमान, अनादर । उ० गुर अवमान दोष नहिं दूषा । (मा० २।२०६।३)

अवमाना-दे० 'अवमान' । उ० सब तें कठिन जाति अवमाना । (मा० १।६३।४)

अवमानी-अपमान करनेवाला । उ० सोचिय सुहु विप्र अवमानी । (मा० २।१७२।३)

अवयव-(सं०)-१. अंश, भाग, हिस्सा, २. शरीर का एक देश, अंग, ३. वाक्य का एक अंश ।

अवर (१)-(सं० अपर)-अन्य, दूसरा, और ।

अवर (२)-(सं० अ + वर)-अधम, जो वर न हो ।

अवराई-(सं० अंबराजि)-आमों का बगीचा । उ० गये जहाँ सीतल अवराई । (मा० ७।५०।३)

अवराधक-(सं० आराधक)-आराधना करनेवाला, सेवक । उ० कर्हि संत तव पद अवराधक । (मा० ४।७।६)

अवराधन-(सं० आराधन)-उपासना, पूजा, सेवा । उ० सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान । (मा० ७।११० घ)

अवराधना-(सं० आराधना)-सेवा, पूजा ।

अवराधहि-आराधना करें, प्रसन्न करें । उ० कहिय उमर्हि मनु लाइ जाइ अवराधहि । (पा० २३) अवराधहु-उपासना करती हो । उ० केहि अवराधहु का तुम्ह चहहु । (मा० १।७८।२) अवराधिए-उपासना कीजिए । उ० बीर महा अवराधिए साधे सिधि होय । (वि० १०८) अवराधे-आराधना की, पूजा की । उ० इन्ह सम काहुँ न सिव अवराधे । (मा० १।३१०।१)

अवरेखी-(सं० अवलेख)-१. लिखी, चित्रित की, खींचा, २. अनुमान किया, ३. अनुभव किया, माना । उ० १. रहि जनु कुअरि चित्र अवरेखी । (मा० १।२६४।२) अवरेखु-चित्रित कर लो, लिख लो । उ० चित्त-भीति सुप्रीति-रंग सुरूपता अवरेखु । (गी० ७।६)

अवरेव-(सं० अव + रेव = गति)-१. तिरछा, वक्र, २. उलझन, पेच, ३. बिगाड़, खराबी, ४. झगड़ा, ५. वक्रोक्ति,

काकूक्ति । उ० ५. धुनि अवरेव कबित गुन जाती । (मा० १।३७।५)

अवरोध-(सं०)-१. रुकावट, अड़चन, २. अनुरोध, दबाव, ३. अंतःपुर ।

अवर्त्त-(सं० आवर्त्त)-भँवर, पानी का चक्कर ।

अवलंब-(सं०) आश्रय, आधार, सहारा । उ० बूकिए बिलंब अवलंब मेरे तेरिए । (ह० ३४)

अवलंबन-(सं०)-आश्रय, आधार, सहारा । उ० रामनाम अवलंबन एकू । (मा० १।२७।४)

अवलंबा-दे० 'अवलंब' । उ० फिर इत होइ प्रान अवलंबा । (मा० २।८२।३)

अवलंबु-दे० 'अवलंब' ।

अवलि-(सं० आवलि)-१. श्रेणी, पंक्ति, २. समूह । उ० १. कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं । (मा० १।२४३।३)

अवली-श्रेणी, समूह । उ० बचन नखत अवली न प्रकासी । (मा० १।२५५।१)

अवलोकत-देखते ही, दर्शन करते ही । उ० राम तुम्हहि अवलोकत आजू । (मा० २।१०७।३) अवलोकन-(सं०)

देखना, देखने की क्रिया । उ० सो धनु कहि अवलोकन भूप किसोरहि । (जा० १०५) अवलोकनि-देखना, अवलोकन करना । उ० अवलोकनि बोलनि मिलनि,

प्रीति परसपर हास । (मा० १।४२) अवलोक्य-देखिए, देख । उ० मामवलोक्य पंकज लोचन । (मा० ७।५१।१) अवलोकहि-देखते हैं । उ० निसि दिनु

नहिं अवलोकहि कोका । (मा० १।८५।३) अवलोकहु-देखो । उ० उयउ अरुन अवलोकहु ताता । (मा० १।२३८।४) अवलोकि-देखकर । उ० गावहिं छवि अवलोकि

सहेली । (मा० १।२६४।४) अवलोकी-१. देखकर, २. देखा । उ० १. कासी मरत जंतु अवलोकी । (मा० १।११६।१) अवलोकु-दर्शन करो, देखो । उ० सब अंग सुभग बिहु

माधव छवि तजि सुभाउ अवलोकु एक पलु । (वि० ६३) अवलोके-देखा । उ० अवलोके रघुपति बहुतेरे । (मा० १।५५।२) अवलोक्य-देखकर । उ० येन श्रीराम-नामामृतं

पानकृतमनिशमनवद्यम् अवलोक्य कालं । (वि० ४६)

अवश-(सं०)-१. जो किसी के वश में न हो, २. लाचार, विचर ।

अवशेष-(सं०)-बाकी, शेष ।

अवश्य-(सं०)-निस्संदेह, ज़रूर ।

अवसर-(सं०)-१. समय, काल, मौका, २. अवकाश, फुर-सत, ३. इच्छा । उ० १. कबहुँक अब अवसर पाइ । (वि० ४१)

अवसर-दे० 'अवसर' । उ० १. कहेहु मोरि सिख अवसर पाई । (मा० २।८२।२)

अवसान-(सं०)-१. विराम, ठहराव, २. समाप्ति, अंत, ३. सीमा, ४. मरण, ५. सायंकाल । उ० २. जो पहुँचाव रामपुर तनु अवसान । (ब० ६७)

अवसाना-दे० 'अवसान' । उ० २. नहिं तव आदि मध्य अवसाना । (मा० १।२३५।४)

अवसि-(सं० अवश्य)-ज़रूर । उ० अवसि दूतु मैं पठइब प्राता । (मा० २।३१।४)

अवसेख-(सं० अवशेष)-बाकी, शेष ।
 अवसेरी-(सं० अवसेह)-१. अटकाव, उलझन, २. देर, विलंब, ३. चिंता, व्यग्रता, ४. उल्टा। उ० ४. भए बहुत दिन अति अवसेरी। (मा० २।७३)
 अवसेषा-(सं० अवशेष)-शेष, बाकी। उ० उहाँ राम रजनी अवसेषा। (मा० २।२२६।२)
 अवसेषित-बचा हुआ, शेष। उ० अजहुँ देत दुख रबिससिहि, सिर अवसेषित राहु। (मा० १।१७०)
 अवस्था-(सं०)-१. दशा, स्थिति, २. समय, ३. आयु, उम्र, ४. मनुष्य की अवस्थाएँ। वेदांत दर्शन के अनुसार मनुष्य की चार अवस्थाएँ होती हैं-जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। स्मृतिग्रंथों के अनुसार आठ तथा निरुक्त के अनुसार छः अवस्थाएँ होती हैं। प्रसिद्ध तीन अवस्थाएँ जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति हैं। उ० ४. तीन अवस्था तीन गुण तेहि कपास तें काढ़ि। (मा० ७।११७ग)
 अवहेला-(सं०)-अनादर, निरादर।
 अवाँ-(सं० आपाक)-आवाँ, वह गड्ढा जिसमें कुम्हार मिट्टी का बर्तन पकाते हैं। उ० तपई अवाँ इव उर अधिकाई। (मा० १।५८।२)
 अवाई-(सं० आयन)-आगमन, आने की क्रिया।
 अवास-(सं० आवास)-घर, मकान। अवासहि-घर में, घर को। उ० दूलह दुलहिनि गे तब हास-अवासहि। (पा० १४८)
 अवास-दे० 'आवास'।
 अविकल-(सं०)-ज्यों का त्यों, पूर्ण, पूरा।
 अविकार-(सं०)-जिसमें विकार न हो, निर्दोष। उ० अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज अमित अविकार आनंद सिन्धो। (वि० ५६)
 अविकृत-(सं०)-जो विकृत या बिगड़ा न हो।
 अविगत-(सं०)-१. जो जाना न जाय, अज्ञात, २. जो नष्ट न हो।
 अविचल-(सं०)-अचल, स्थिर, अटल। उ० अमल अविचल अकल सकल, संतस-कलि-विकलता-भंजनानंदरासी। (वि० ५५)
 अविचार-(सं०)-१. विचार का अभाव, अज्ञान अविवेक, २. अन्याय।
 अविच्छिन्न-(सं० अविच्छिन्न)-१. पूर्ण, अखंड, लगातार। उ० १. चंद्रसेखर सूलपानि हर, अनव अज अमित अविच्छिन्न वृषभेशगामी। (वि० ४६)
 अविद्यमान-(सं०)-अनुपस्थित, जो न हो, असत्। उ० अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहि जाई गोसाईं। (वि० १२०)
 अविद्या-(सं०)-१. अज्ञान, मिथ्या ज्ञान, २. माया, ३. माया का एक भेद, ४. प्रकृति, जड़।
 अविनय-(सं०)-ढिंढाई, गुस्ताखी।
 अविनाशिन-(सं० अविनाशिनी)-जिसका कभी नाश न हो। 'अविनासी' का स्त्रीलिंग। अविनासी-(सं० अविनाशिन)-जिसका विनाश न हो, नित्य। उ० दनुज-वन-दहन, गुणपहन, गोविंद, नंदादिआनंददाताऽविनासी। (वि० ४६)

अविरल-(सं०)-मिला हुआ, जो विरल या अलग-अलग न हो, घना, प्रगाढ़। उ० अचल अनिकेत अविरल अनामय, अनारंभ अमोद नादन्न बंधो। (वि० ५६)
 अविरोध-(सं०)-जिसके विरुद्ध कोई न हो।
 अविरोध-(सं०)-मेल, विरोध रहित, अनुकूलता।
 अविवेक-(सं०)-अज्ञान, मूर्खता।
 अविवेकी-(सं० अविवेकिन)-अज्ञानी, मूर्ख।
 अविहित-(सं०)-जो विहित न हो, विरुद्ध, अनुचित।
 अव्यक्त-(सं०)-१. अस्पष्ट, जो साफ न हो, जो प्रत्यक्ष न हो, अज्ञात, २. विष्णु, ३. कामदेव, ४. ब्रह्म। उ० १. अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त। (वि० ५३) अव्यक्तगुण-(सं०)-निर्गुण, गुणों (सत् रज् तम्) से परे। उ० सकल-लोकांत-करुपांतशूलाग्रकृत दिग्गाजाव्यक्तगुण नृत्यकारी। (वि० ११)
 अव्यय-(सं०)-१. व्यय न होनेवाला, अक्षय, नित्य, २. ब्रह्म। उ० १. ब्रह्माभोधि समुद्रवं कलिमलप्रध्वसनं चाव्ययं। (मा० ४।१। श्लो० २)
 अव्याहत-(सं०)-१. अप्रतिरुद्ध, बेरोक, २. सत्य।
 अशक्त-(सं०)-निर्बल, शक्तिहीन।
 अशुभ-(सं०)-१. अमंगल, २. पाप, अपराध। उ० १. अशुभ इव भाति कल्याणराशी। (वि० १०)
 अशेष-(सं०)-शेषहीन, सब, समूचा, समग्र। उ० वंदेऽहं तमशेष कारण परं रामाख्यमीशं हरिम्। (मा० १।१। श्लो० ६)
 अश्वमेध-(सं०)-एक यज्ञ जिसमें घोड़े के मस्तक पर जय-पत्र बाँधकर उसे विश्व भर में घूमने के लिए छोड़ देते थे। साथ में रक्षा के लिए सेना रहती थी। जो कोई रोकता उससे युद्ध होता था। अंत में घोड़ा जब घूमकर लौटता तो उसको मारकर उसकी चर्बी से हवन किया जाता था। प्रतापी और बड़े राजा इसे करते थे।
 अष्ट-(सं०)-आठ। उ० अष्ट सिद्धि नव निद्धि भूति सब भूपति भवन कर्माहि। (गी० १।२)
 अष्टक-(सं०)-आठ वस्तुओं का संग्रह, वह काव्य या स्तोत्र जिसमें आठ श्लोक हों। उ० रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रैर्लं हरतोषये। (मा० ७।१०८। श्लो० ६)
 अष्टदश-(सं० अष्टादश)-अठारह।
 अष्टांग-(सं०)-१. योग की क्रिया के आठ भेद-यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। २. आयुर्वेद या शरीर के आठ अंग।
 अष्टादश-(सं० अष्टादश)-अठारह। उ० रोमराजि अष्टादस भारा। (मा० ६।१५।४)
 अष्टोत्तरसत-(सं० अष्टोत्तरशत)-एक सौ आठ। उ० अष्टोत्तर सत कमलफल, मुष्टी तीन प्रमान। (प्र० आरंभ का छंद)
 असंक-(सं० अशंक)-निर्भय, निडर, निर्भीक। उ० अति असंक मन सदा उच्छाहू। (मा० १।१३।७।२)
 असंका-(सं० आशंका)-सन्देह। उ० अस विचारि तुम्ह तजहु असंका। (मा० १।७।२।२)
 असंकू-दे० 'असंक'। उ० निपट निरंकुस अबुध असंकू। (मा० १।२७।११)

असंग-(सं०)-१. संगरहित, अकेला, एकाकी, २. निर्लिंग
माया रहित। उ० २. भस्म अंग मर्दन अनंग, संतत असंग
हर। (क० ७११४६)

असंगत-(सं०)-अनुचित, अयुक्त, बेठीक। उ० परम दुर्घट
पंथ, खल असंगत साथ, नाथ नहीं हाथ बर बिरति-यष्टी।
(वि० ६०)

असंत-(सं०)-असाधु, दुष्ट। उ० संत असंत मरम तुम्ह
जानहु। (मा० ७१२११३) असंतन्ह-असंत लोगों,
दुष्टों। उ० संत असंतन्ह के गुण भाषे। (मा० ७१४११४)

असंभव-(सं०)-जो संभव न हो, नासुमकिन।

असंभावना-(सं०)-अनहोनापन, संभावना का अभाव।
उ० दारुन असंभावना बीती। (मा० १११११४)

असंशय-(सं०)-निश्चय, निःसंदेह।

अस-(सं० एष)-१. इस प्रकार का, २. ऐसा, तुल्य, समान।
उ० २. तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ।
(मा० २११२५)

असक्त-(सं० अशक्त)-निर्बल, शक्ति रहित।

असक्य-(सं० अशक्य)-असाध्य, न होने योग्य।

असगुन-(सं० अशकुन)-अपशकुन, अमंगलसूचक चिह्न।
उ० असगुन भयउ भयकर भारी। (मा० ६११४११)

असज्जन-(सं०)-दुष्ट, दुर्जन, कुपात्र। उ० बंदउ संत
असज्जन चरना। (मा० १११२)

असत-(सं० असत)-मिथ्या, झूठ।

असत्य-(सं०)-मिथ्या, झूठ। उ० जदपि असत्य देत दुख
अहई। (मा० ११११८१)

असाथर (१)-(सं० स्थिर)-स्थिर, जड़। उ० रवि रजनीस
धरा तथा, यह असाथर असथूल। (स० ४४०)

असाथर (२)-(सं० स्थिर)- जो चले, चल, स्थिर न
रहनेवाला।

असथूल (१)-(सं० स्थूल)-स्थूल, जो सूक्ष्म न हो। उ० रवि
रजनीस धरा तथा, यह असाथर असथूल। (स० ४४०)

असथूल (२)-(सं० असथूल)-जो स्थूल न हो, सूक्ष्म।

असन-(सं० अशन)-अशन, भोजन, आहार। उ० तहँ न
असन नहीं बिप्र सुआरा। (मा० ११७४१४) असनदं न-
(सं० अशन हीन)-भूखा, जिसे भोजन न मिले। उ० जैसे
कोउ इक दीन दुखी अति असनहीन दुख पावै। (वि० १२३)

असनि-(सं० अशनि)-बज्र, बिजली। उ० लूक न असनि
केतु नहि राहू। (मा० ६१३२५)

असबाब-(अर०)-सामान, वस्तु। उ० सब असबाब ढाढो,
मैं न काढो तैं न काढो। (क० २११२)

असमंजस-(सं०)-१. दुविधा, पसोपेश, २. अद्वचन, कठि-
नाई, ३. राजा सगर का पुत्र जो केशी से उत्पन्न था। उ०
१. करौं काह असमंजस जी कें। (मा० २१२६४३) २.
बना आइ असमंजस आजू। (मा० १११६७३)

असम-(सं०)-१. जो सम था तुल्य न हो, विषम, ऊँचा-
नीचा, २. नष्ट। उ० १. जे अगम सुगम प्रभाव निर्मल
असम सम सीतल सदा। (मा० ३१३२५)

असमय-(सं०)-बुरा समय, विपत्ति का समय, कुअवसर,
बेमौका, बेवक्त। उ० आपन अति असमय अनुमानी।
(मा० १११५८२)

असमर्थ-(सं०)-अशक्त, सामर्थ्यहीन, अयोग्य।

असमसर-(सं० असमशर)-पंचवायु, कामदेव। उ० सकल
असमसर कला प्रबीना। (मा० ११२२६१२)

असमाकं-(सं० अस्माकं)-हमको। उ० अनघ अवि-
च्छिन्न सर्वज्ञ सर्वस खलु सर्वतोभद्र दाताऽस्माकं।
(वि० २१)

असम्मत-(सं०)-विरुद्ध, जो स्वीकार्य न हो, प्रतिकूल। उ०
कहहिं ते बेद असम्मत बानी। (मा० ११११२१२)

असयानी-(सं० अ+सजान)-जो सयानी (छलवादी या
चतुर) न हो, सरल, सीधी, भोली। उ० बिबुध-सनेह-
सानी बानी असयानी सुनी। (क० २११०)

असरन-(सं० अशरण)-असहाय, अनाथ। उ० असरन सरन
दीन जन गाहक। (मा० ७१५११२)

असवारा-(फा० सवार)-सवार, चढ़ा हुआ। उ० बर
बौराह बसहँ असवारा। (मा० ७१६५१४)

असहाई-(सं० असहाय)-निरवलंब, जिसका कोई सहारा न
हो। उ० निदरे रासु जान असहाई। (मा० २१२२६१२)

असहाय-(सं०)-जिसकी सहायता करनेवाला कोई न हो,
निराश्रय, निःसहाय। उ० संबर निसंबर को, सखा
असहाय को। (वि० ६६)

असही-(सं० असह) दूसरे की बढ़ती न सहनेवाला,
ईर्ष्यालु। उ० असही दुसही, मरहु मन, बैरिन बढ़हु
बिषाद। (गी० ११२)

असह्य-(सं०)-न सहा जाने योग्य, असहनीय।

असाँचा-(सं० असत्य)-झूठ, मिथ्या। उ० बिप्र आप किमि
होइ असाँचा। (मा० १११७५१४) असाँचा-असाँचा का
खीलिंग, दे० 'असाँचा'। उ० हसेउँ जानि बिधि गिरा
असाँची। (मा० ६१२६१)

असा-(सं० एष)-ऐसा। उ० कलपांत न नास गुमानु
असा। (मा० ७१०२१२)

असाध-(सं० असाध्य)-दुष्कर, कठिन।

असाधक-(सं०)-१. अनभ्यासी, २. साधनहीन।

असाधि-(सं० असाध्य), कठिन, जो साधा न जा सकें।
उ० देखी व्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।
(मा० २१३४)

असार्धा-(सं० असाध्य)-जिसके दूर होने की आशा न हो,
जो साध्य न हो।

असाधु-(सं०)-दुष्ट, बुरा, खल। उ० साधु असाधु सदन
सुक सारी। (मा० ११७५१)

असाधू-दे० 'असाधु'। उ० कहै सो अधम अयान असाधू।
(मा० २१२०७५)

असाध्य-(सं०)-कठिन, लाइलाज, दुष्कर।

असार-(सं०)-सारहीन, झूठा, पोला, निःसार।

असि (१)-(सं०)-१. तलवार, खंग, २. समान, ऐसी, ३.
एक नदी जो काशी के समीप गंगा से मिली है। उ० १.
त्रिय चढ़िहहिं पतिव्रत असि धारा। (मा० ११६७३) २.
सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा। (मा० ११६४१२) असिन-
तलवार, असि का बहुवचन। असिन्ह-तलवार।

असि (२)-(सं०)-हो। उ० विश्वमूलासि, जन-सानुकूलासि।
(वि० १५)

असि (३)-(सं० एष)-ऐसी, समान । उ० सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा । (मा० १६४२)

असित-(सं०)-१. श्याम, काला, २. दुष्ट, बुरा, ३. शनि, ४. भरत का पुत्र, ५. एक ऋषि का नाम, ६. पिंगला नाम की नाड़ी । उ० १. सबिधि सितसित नीर नहाने । (मा० २१२०४२)

असिद्ध-(सं०)-१. जो पका न हो, २. जो सिद्ध न हो, अप्रमाणित, ३. अधूरा, ४. व्यर्थ ।

असिव-(सं० अशिव)-अमंगल, अशुभ । उ० असिव बेष सिवधाम कृपाला । (मा० ११६२२२)

असीम-(सं०)-जिसकी सीमा न हो, बेहद, अधिक ।

असीस-(सं० आशिव)-आशीर्वाद, दुआ । उ० जननिहि बहुरि मिलि चली, उचित असीस सब काहुँ दई । (मा० ११०२१ छं० १)

असीसत-१. आशीर्वाद देते हुए, २. आशीर्वाद देते हैं । उ० १. जोरी चारि निहारि असीसत निकसहि । (जा० २१५) २. सकल असीसत ईस निहोरी । (गी० ११०३)

असीसा-दे० 'असीस' । उ० पुर पगु धारिअ देइ असीसा । (मा० २१३१६२)

असुभ-(?) १. अधेरा, अधकारमय, २. अधिक, अपार, ३. अदृश्य । उ० ३. तेरेहि सुभाए सुभे असुभ सुभाउ सो । (वि० १८२)

असुद्ध-(सं० अशुद्ध)-अष्ट, खराब ।

असुभ-(सं० अशुभ)-अमंगल, जो शुभ न हो । उ० असुभ रूप श्रुति नासा हीनी । (मा० ३११८२)

असुर-(सं०)-१. सुर का विरोधी, राक्षस, २. रात्रि, ३. नीच वृत्ति का पुरुष, ४. पृथ्वी, ५. सूर्य, ६. बादल, ७. राहु, ८. एक प्रकार का उन्माद । उ० १. खग मृग सुर नर असुर समेते । (मा० १११८२) असुरन-राक्षसों, असुर-गण । उ० असुरन कहँ लखि लागत जग अधियार । (बा० ३६)

असुरसेन-(सं०)-एक राक्षस का नाम जिसके ऊपर गया नगर बसा हुआ माना जाता है । इसने तप करके यह वर प्राप्त किया था कि इसके शरीर को जो छूवे उसके पूर्वज तर जायँ ।

असुरारि-(सं०)-राक्षसों के बैरी, विष्णु ।

असुरारी-दे० 'असुरारि' । उ० गो द्विज हितकारी, जय असुरारी । (मा० १११८६ छं० १)

असुर-दे० 'असुर' । उ० तारकु असुर समर जेहि मारा । (मा० ११०३१४)

असुभ-(?)-जो न सुभे, अदृश्य, जो दिखाई न दे । उ० सरखप सुभत जाहि कहँ ताहि सुमेरु असुभ । (सं० ३४१)

असुभ-(सं० असुभ)-रक्त, रुधिर, लोह ।

असेषा-(सं० अशेष)-सब, पूरा । उ० अहइ ग्रान बिनु बास असेषा । (मा० १११८६४)

असैली-(सं० अ + शैली)-शैली के विरुद्ध, रीति के प्रति-कूल, अनुचित । उ० मैं सुनी बातै असैली जे कही निसिचर नीच । (गी० ११६)

असैले-शैली छोड़कर चलनेवाले, कुमार्गी । उ० अबुध असैले मन-मैले महिपाल भए । (गी० ११७१)

असोक-(सं० अशोक)-१. अशोक वृक्ष, २. शोक रहित, दुःखशून्य । उ० १. तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ । (मा० ३१२६ क)

असोका-दे० 'असोक' । उ० १. सुनिहि बिनय मम बिटप असोका । (मा० २१२२५)

असोकी-शोक रहित । उ० मागि अगम बर होउँ असोकी । (मा० ११६४४)

असोच-(सं० अ + शोच)-शोच रहित, चिन्ता रहित, निश्चित । उ० रहइ असोच बनइ प्रभु पोसै । (मा० ४१३२)

असौ-(सं०)-यह । उ० खलानाँ दण्डकृशोऽसौ शंकरःशं तनोतु मे । (मा० ६११ श्लो० ३)

असौच-(सं० अशौच)-अपवित्रता । उ० भय अविबेक असौच अदाया । (मा० ६१६२)

अस्त-(सं०)-छिपा हुआ, तिरोहित, डूबा । उ० आसन दीन्ह अस्त रबि जानी । (मा० ११२५११)

अस्तु-(सं०)-१. अच्छा, भला, २. जो हो, चाहे जो हो, ३. इसलिये । उ० १. एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ । (मा० ११२५१४)

अस्तुति (१)-(सं० स्तुति)-स्तुति, बड़ाई । उ० अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू । (मा० ११८३१४)

अस्तुति (२)-(सं०) निंदा, अपकीर्ति ।

अस्त्र-(सं०)-वह हथियार जिसे फेंककर शत्रु पर चलाया जाय । जैसे बाण, शक्ति । उ० ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा, कपि मन कीन्ह बिचार । (मा० २११६)

अस्त्रधर-(सं०)-अस्त्र धारण करनेवाला, अस्त्रधारी ।

अस्थान-(सं० स्थान)-स्थान, जगह । उ० अति ऊँचे भूधरनि पर, भुजगन के अस्थान । (वै० ३६)

अस्थाना-दे० 'अस्थान' । उ० गये रामु सबके अस्थाना । (मा० ६१२०११)

अस्थावर-(सं० स्थावर)-जो चले न, स्थिर, अटल । उ० अस्थावर गति अपर नहि, तुलसी कहहि प्रमान । (सं० ३३८)

अस्थि-(सं०)-हड्डी । उ० अस्थि सैल सरिता नस जारा । (मा० ६१२५४)

अस्थिर (१)-(सं०) चलनेवाला, चलायमान ।

अस्थिर (२)-(सं० स्थिर)-स्थायी, एक स्थान पर रहनेवाला ।

अस्थूल (१)-(सं०)-सूक्ष्म, जो स्थूल न हो ।

अस्थूल (२)-(सं० स्थूल)-जो सूक्ष्म न हो, मोटा ।

अस्नाना-(सं० स्नान)-नहाना, स्नान । उ० पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना । (मा० ११२०१११)

अस्मदीये-(सं०)-मेरे, मेरे में, हमारे में । उ० नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये । (मा० २१११ श्लो० २)

अस्माकं-(सं०)-हमारा, हमको, हमें ।

अस्व-(सं० अश्व)-घोड़ा, तुरंग । उ० होइअ नाथ अस्व असवारा । (मा० २१२०३३)

अस्विनि-(सं० अश्विनी)-१. २७ नक्षत्रों में प्रथम नक्षत्र, २. घोड़ी । उ० १. अस्विनि विरचेउँ मंगल, सुनि सुख छिनु छिनु । (पा० ५)

अस्विनीकुमारा-(सं० अश्विनीकुमार)-अश्विनी के लड़के । त्वष्टा की पुत्री प्रभा (इसका नाम संज्ञा भी मिलता है)

एक बार अपने पति सूर्य के तेज को न सह सकने के कारण अपनी दो संतति (यम और यमुना) तथा अपनी छाया को सूर्य के पास छोड़कर चली गई और अश्विनी रूप-धारण करके तप करने लगी। उसकी छाया से भी सूर्य को दो संतति शनि और ताप्ती हुईं। जब छाया प्रभा के पुत्रों का अनादर करने लगी तो प्रभा के भगने की बात खुली। सूर्य अरव का रूप धारण करके उसके पास गये और वहीं अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई। ये दोनों बहुत सुंदर और देवताओं के वैद्य हैं। माद्री पुत्र नकुल और सहदेव इन्हीं लोगों के अंश से उत्पन्न कहे जाते हैं। इन लोगों ने राजा शर्याति की कन्या सुकन्या के पातिव्रत से प्रसन्न होकर च्यवन ऋषि को दृष्टि, यौवन और सौंदर्य प्रदान किया था। दध्यंग ऋषि के सिर को फिर से जोड़ने का श्रेय भी इन्हीं को प्राप्त है। उ० जासु ग्रान अश्विनी-कुमार। (मा० ६।१५।२)

अहं-(सं०)-१. मैं, २. अहंकार, गर्व। उ० १. नतोऽहं रामवल्लभाम्। (मा० १।१। श्लो ५) २. अहं-अग्नि नहि द्वाहै कोहै। (वै० ५२)

अहंकार-(सं० अहंकार)-गर्व, घमंड। उ० अहंकार-निहार-उदित-दिनेस। (वि० १३)

अहंकार-(सं०)-१. अभिमान, घमंड, २. वेदांत के अनुसार अंतःकरण की एक वृत्ति, मैं और मेरा का भाव, ३. संख्यानुसार महत्त्व से उत्पन्न एक द्रव्य, ४. योग के अनुसार एक वृत्ति जिसे अस्मिता कहते हैं। उ० १. अहंकार सिव बुद्धि अज मनःससि चित्त महान। (मा० ६।१५ क)

अहंकारी-घमंडी, अहंकारी, अहंभाव रखनेवाला। उ० सुना दसानन अति अहंकारी। (मा० ६।४०।१)

अहंकारी-(सं० अहंकारिन्)-अहंकार करनेवाला, घमंडी।

अहंवाद-(सं०)-अहंकार, डींग मारना। उ० अहंवाद, 'मैं' 'तै' नहीं, टुष्ट संग नहि कोह। (वै० ३०)

अहं-(सं० अहन्)-१. दिन, २. अहंकार, ३. खेद, ४. सूर्य, ५. विष्णु। उ० १. अहं निसि बिधिहि मनावत रहहीं। (मा० ७।२५।३) २. कविहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु। (मा० २।२२५)

अहह-(सं० अस्ति) है। उ० जदपि अहह असमंजस भारी। (मा० १।८३।२) अहह-दे० 'अहह'। उ० जदपि असत्य देत दुख अहह। (मा० १।११८।१) अहह-हूँ। उ० तब लागि बैठ अहह बटझहीं। (मा० १।५२।१) अहह-हूँ। उ० परम चतुर मैं जानत अहह। (मा० ६।१७।४) अहहसि-है। उ० को तू अहसि सत्य कहु मोही। (मा० २।१६।२।४) अहहि-है। उ० दुगराध्य पै अहहि महसू। (मा० १।७०।२) अहही-है। उ० भरत आगमनु सूचक अहहीं। (मा० २।७।३) अहहू-हो। उ० तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू। (मा० २।४३।२) अहहै-है। उ० एहि घाट तैं थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू। (क० २।६)

अहन-(सं० अहन)-दिन, दिवस। उ० अटत गहन-गन अहन अखेट की। (क० ७।६६)

अहनाथ-(सं० अहन+नाथ)-सूर्य, दिन के नाथ। उ०

महि मयंक अहनाथ को आदि ज्ञान भव भेद। (सं० ४८२) अहमिति-(सं० अहम्मति) १. गर्व, घमंड, २. अविद्या। उ० १. रोषरासि भृगुपति धनी अहमिति ममता को। (वि० १५२)

अहर्निश-(सं० अहः+निशि)-दिन रात, आठे प्रहर।

अहलाद-(सं० आह्लाद)-आनंद, प्रसन्नता, हर्ष। उ० अतुल मृगराजवपु धरित, विहरित अरि, भक्त-प्रह्लाद-अहलाद कर्ता। (वि० ५०)

अहल्या-(सं०)-१. गौतम ऋषि की पत्नी। विश्व की सारी सुंदरता लेकर ब्रह्मा ने सर्वांग सुंदरी अहल्या की रचना की और गौतम के पास धरोहर रख दी। एक वर्ष तक गौतम के मन में कोई विकार न आया इससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने अहल्या का विवाह गौतम से कर दिया। एक दिन चंद्रमा की सहायता से इंद्र ने गौतम को धोखा देकर आश्रम के बाहर कर दिया और अहल्या के साथ संभोग किया। गौतम ने आकर इंद्र को सहस्रभंग और अहल्या को पत्थर हो जाने का शाप दिया। अहल्या के बहुत अनुनय करने पर उन्होंने अनुग्रह किया और कहा कि त्रेता में जब भगवान् राम अवतार लेंगे और अहल्या को चरणों का स्पर्श प्राप्त होगा तो वह मुक्त हो जायगी। तभी से वह पत्थर हो गई थी। रामावतार में चरणस्पर्श से मुक्त होकर अहल्या पतिलोक में गई। स्वयंवर के पश्चात् राम को दुलहे के रूप में देखकर इंद्र के भी सहस्र भंग नेत्र हो गये। २. जो धरती जोती न जा सके। उ० १. चरन-कमल-रज-परस अहल्या, निज पति-लोक पठाई। (गी० १।५०)

अहह-(सं०)-अत्यंत दुःखसूचक शब्द, हाय, आह। उ० अहह मंद मनु अवसर चूका। (मा० २।१४।३)

अहार-(सं० आहार)-भोजन, खाना। उ० करहि अहार साक फल कंदा। (मा० १।१४।१) अहारन-बहुत भोजन, खाने का समूह। उ० चाहत अहारन पहार दारि कूरना। (क० ७।१४८)

अहारा-दे० 'अहार'। उ० आज सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। (मा० ५।२।२)

अहारी-आहार करनेवाले, खानेवाले, भक्षक। उ० धावहि सठ खग मांस अहारी। (मा० ६।४०।५)

अहार-आहार, भोजन। उ० वरष चारिदस बासु बन मुनि व्रत बेषु अहार। (मा० २।८८)

अहारू-आहार, भोजन। उ० जौ एहि खल नित करब अहारू। (मा० १।१७।४)

अहिंसा-(सं०)-किसी को दुःख न देना, किसी की हिंसा न करना। जैन और बौद्ध धर्म में इसका विशेष स्थान है।

उ० परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। (मा० ७।१२।१।१)

अहि-(सं०)-१. साँप, २. खल, वंचक, ३. राहु, ४. एक नक्षत्र, ५. वृत्रासुर, ६. पृथिवी। उ० १. अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी। (मा० १।१।१।१) अहितल्पवासी-(सं० अहि+तल्प+वासी) सर्प की सेज पर वास करनेवाला, विष्णु। उ० सत्य संकल्प अतिकल्प कल्पान्तकृत कल्पना-तीत अहि-तल्पवासी। (वि० ५४) अहिन-सर्पों, सर्प का

बहुवचन । उ० सुरसा नाम अहिन कै माता । (मा० १।२।१) अहिनाथ-(सं०)-शेषनाग, सर्पों के राजा । उ० जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि-सोभित सहस्रफनी । (गी० ७।२०) अहिनाह-(सं० अहिनाथ)-शेष नाग । अहिनाहा-दे० 'अहिनाह' । अहिनाहू-दे० 'अहिनाह' । उ० सकहिन न बरनि गिरा अहिनाहू । (मा० १।३६।१।३) अहिनी-अहि की स्त्री, सर्पिणी । उ० दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी । (मा० ३।१७।२) अहिप-(सं०)-सर्पों के राजा, शेषनाग । उ० अहिप महिप जहँ लग प्रभुताई । (मा० २।२५।४) अहिपत (सं०)-शेष नाग । उ० सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहि मोहई । (मा० १।३३। छं०२) आहभूषन-(सं० अहिभूषण)-जिसका भूषण सर्प हो, शिव, शंकर । उ० अहिभूषन, दूषन-रिपु-सेवक, देव-देव त्रिपुरारी । (वि०६) अहिरसना-(सं० अहि+रसना) १. साँप की जीभ, २. साँप को दो जीभें होती हैं इसलिए २ की संख्या, दो । उ० २. अहिरसनाथनधेनु रस गनपति द्विज गुरु बार । (स० २।१) अहिराजा-(सं० अहि+राजन्)-सर्पराज, शेषनाग । उ० सो बन बरनि न सक अहिराजा । (मा० ३।१४।२) अहे-(सं०)-अहि के, सर्प के । उ० रज्जौ यथाहेअमः । (मा० १।१। रत्नो०६) अहित-(सं०)-१. शत्रु, बैरी, विरोधी, २. हानि, बुराई । उ० १. भे अति अहित रामु तेउ तोही । (मा० २।१६।२।४) अहिवात-(सं० अभिवाद्य)-सौभाग्य, सोहाग । उ० चिरु अहिवात असीस हमारी । (मा० १।३३।४।२) अहिवातु-दे० 'अहिवात' । उ० अन अहिवातु सूच जनु भाबी । (मा० २।२।५) अहिबेलि-(सं० अहिवल्ली)-नाग बेल, पान की लता, पान । उ० कनक कलित अहिबेलि बनाई । (मा० १। २८।१) अहिरिनि-(सं० आभीर)-अहीर की स्त्री, ग्वालिन । दे०

'अहीर' । उ० अहिरिनि हाथ दहँडि सगुन लेइ आवइ हो । (रा०५) अहिल्या-दे० 'अहल्या' । अहिवाता-दे० 'अहिवात' । उ० सदा अचल एहि कर अहि-वाता । (मा० १।६।७।२) अहीर-(सं० आभीर)-एक जाति जिसका कार्य गाय आदि पालना और दूध, दही, घी का व्यापार करना है । गोप, ग्वाला । उ० निर्मल मन अहीर निज दासा । (मा० ७।११।७।६) अहीश-(सं० अहि+ईश)-सर्पराज, शेष । अहीस-(सं० अहीश)-सर्पराज, शेष । उ० दानव देव अहीस महीस महा मुनि तापस सिद्ध समाजी । (क० ७।६५) अहीसा-दे० 'अहीस' । उ० कहि न सकहि सतकोटि अहीसा । (मा० १।१०।५।२) अहेर-(सं० आखेट)-शिकार, मृगया । उ० तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब । (मा० २।१३।६।४) अहेर-अहेर में, शिकार में, शिकार को, शिकार के लिए । उ० फिरत अहेरें परेउँ मुलाई । (मा० १।१५।६।३) अहेर-दे० 'अहेरें' । उ० राम अहेरें चलहिगो । (गी० १।१६) अहेरि-अहेरी, शिकारी । उ० चित्रकूट अचल अहेरि बैद्यो घात मानों । (क० ७।१४।२) अहेरी-शिकारी । उ० चित्रकूट जनु अचल अहेरी । (मा० २।१३।२) अहो-(सं०)-एक अव्यय जिसका प्रयोग कभी (१.) संबोधन की तरह और कभी (२.) आश्चर्य, (३.) खेद, (४) करुणा, (५.) प्रशंसा, (६.) हर्ष इत्यादि सूचित करने के लिए होता है । उ० ६. अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा । (मा० १।१०।४।२) अहोरात्र-(सं०)-दिन और रात । अहि-(सं० अहन)-दिन ।

आ

आँक-दे० 'अंक' । निश्चय, पक्की बात । उ० हाँकि आँक एक ही पिनाक छीनि लई है । (गी० १।८।३) आँकरो-(सं० आकर)-१. बहुत, अधिक, २. गहरा । उ० १. बिसारि बेद लोक-लाज आँकरो अचेतु है । (क० ७।८।२) आँकु-दे० 'अंक' । उ० मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ । (पा० ७।१) आँकुरे-(सं० अंकुर)-१. अंकुरित हुए, २. अँखुए, अंकुर । आँखि-(सं० अक्षि)-१. देखने की इंद्रिय, नेत्र, नयन, २. अँखुवा, अंकुर । आँखि-दे० 'आँख' । उ० अब न आँखि तर आवत कोऊ । (मा० १।२६।३।३) मु० आँखि देखाए-क्रोध दिखाया, क्रोध से आँखें लाल करके देखा । उ० बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए । (मा० १।२६।३।१) आँखिन-

आँखें, आँख का बहुवचन । आँखिन्ह-१. आँखों से, २. आँखों ने, ३. आँखों में, ४. आँखों को । उ० १. बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा । (मा० १।२८।०।४) आँखी-आँखें । आँगन-(सं० अंगण)-घर के भीतर का सहन, चौक, अजिर । उ० भौन में भाँग, धतूरोई आँगन, नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े । (क० ७।१५।४) आँच-(सं० अर्चि)-१. ताप, गरमी, २. आग की लपट । उ० २. कोप-क्रसानु गुमान-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे । (क० ७।११।८) आँचर-(सं० अंचल)-१. धोती आदि बिना सिले वस्त्रों के दोनों छोरों पर का भाग, पल्ला, २. साधुओं के पहनने-ओढ़ने के छोटे वस्त्र । उ० १. सोभित दूखह राम सीस पर आँचर हो । (रा० ६) आँचरनिह-अंचलों में,

छोरो में। उ० दुहूँ आँचरन्हि लगे मनि मोती। (मा० १३२७।४)
 आँचे-तपे, जले। उ० कोप-कसानु गुमान-अवाँ घट ज्यो
 जिनके मन आँच न आँचे। (क० ७।११८)
 आँजन-(सं० अंजन)-सुरमा, काजल, आँखों में लगाने की
 एक काली वस्तु।
 आँजहि-अंजन लगाती हैं। उ० लोचन आँजहि फगुआ
 मनाइ। (गी० ७।२२) आँजी-आँजने की क्रिया, अंजन
 लगाना। उ० लोक रीति फूटी सहेँ आँजी सहेँ न कोइ।
 (दो० ४२३) आँजे-अंजन लगाया। उ० चुपरि उबटि
 अन्हवाइके नयन आँजे। (गी० १।१०)
 आँत-(सं० अंत्र)-पेट के भीतर की एक लंबी नली जो
 गुदा तक रहती है। अँतडी। उ० खैचहि गीध आँत तद
 भये। (मा० ६।८८।३) आँतनि-आँतें, आँत का बहुवचन।
 उ० ओझरी की ओरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे।
 (क० ६।५०)
 आँधर-(सं० अंध)-अंधा, जिसके आँख न हो। आँधरे-
 अंधे, बिना आँखवाले। उ० पाँगुरे को हाथ पाँय, आँधरे
 को आँखि है। (वि० ६६)
 आँधरो-अंधा, नेत्रहीन। उ० ते नयना जनि देहु, राम करहु
 बरु आँधरो। (दो० ४४)
 आँधी-(अंध)-वेगपूर्ण हवा जिसमें धूल भरी हो। अंधड़।
 उ० जनु कज्जल कै आँधी चली। (मा० ६।७८।४)
 आँब-(सं० आम्र)-आम, रसाल, चूत। उ० आँब छाँह
 कर मानस पूजा। (मा० ७।५७।३)
 आँवा-(सं० आपाक)-वह गड्ढा जिसमें कुम्हार बरतन
 पकाते हैं।
 आ-(सं०)-१. आद्रा नक्षत्र, २. ब्रह्मा, ३. एक उपसर्ग
 जिसका अर्थ पूरा, चारों ओर, तक तथा अधिक होता
 है। उ० १. उगुन पूगुन वि अज कृ म आ भ अ मू गुनु
 साथ। (दो० ४५७)
 आइ (१)-(सं० आयु)-उम्र, जीवन। उ० असगुन असुभ
 न गनहि गत, आइ कालु नियरानु। (प्र० २।६।६)
 आइ (२)-१. आकर, आकर के, २. आया या आई। उ०
 १. कोमल बानी संत की खैवै अमृतमय आइ। (वै० १६)
 आइअ-आवे। उ० जाइ जनकपुर आइअ देखी। (मा०
 १।२।८।१) आइन्ह-आई। उ० लहेउ जनम फल आजु
 जनमि जग आइन्ह। (जा० ६२) आइयहु-आवो, आइए।
 उ० बालमीकि मुनीस-आस्रम आइयहु पहुँचाइ। (गी०
 ७।२७) आइहि-आएगा। उ० तिन्हहि विरोधि न आइहि
 पूरा। (मा० ३।२५।४) आइहै-आवेंगे। उ० कै वै भाजे
 आइहै, कै बाँधे परिनाम। (दो० ४२२) आइहै-आवेगा।
 उ० भरोसो और आइहै उर ताके। (वि० २२५) आइहौ-
 आऊँगा। उ० प्रतिपाल आयसु कुसल देखन पाय पुनि
 फिरि आइहौ। (मा० २।१५१।१) आइँ-आ गई।
 उ० सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आइँ। (मा०
 २।२१३।४) आइँ-आ पहुँची, आ गई। उ० बरषा विगत
 सरद रिनु आइँ। (मा० ४।१६।१) आउ (१)-आओ।
 उ० असुभ अमंगल सगुन सुनि, सरन राम के आउ।
 (प्र० ७।५।५) आउव-आवेंगे, आऊँगा। उ० पुनि

आउव एहि बेरिआँ काली। (मा० १।२३।३) आए-आ
 गए। उ० मृग बधि बंधु सहित हरि आए। (मा० १।४६।३)
 आतो-(अ०)-आता, पहुँचता। आयउँ-आया, आया हूँ।
 उ० आयउँ इहाँ समाजु सकेली। (मा० २।२६।३) आयउ-
 आया। उ० सुनि रघुबर आगमनु सुनि आगँ आयउ
 लेन। (मा० २।१२४) आयऊ-आए। उ० तब जनक
 आयसु पाय कुलकुरु जानकिहि लै आयऊ। (जा० ६०)
 आयक-आने का। उ० तुलसिदास सुरकाज न साध्यौ
 तौ तो दोष होय मोहि महि आयक। (गी० २।४) आयहु-
 आये, आये हो। उ० द्विज आयहु केहि काज। (मा०
 ७।११० ग) आया-'आना' का भूतकालिक रूप। पहुँचा।
 उ० कामरूप केहि कारन आया। (मा० २।४३।३) आये-
 आ गये, 'आना' के भूतकालिक रूप 'आया' का बहुवचन
 या आदरसूचक रूप। आयो-(अ०)-आया, आए। उ०
 मंदोदरी सुन्यौ प्रभु आयो। (मा० ६।६।१) आव-आती
 है, आ रही है। उ० प्रेम बिबस मुख आव न बौनी।
 (मा० १।१०।४।२) आवइ-आती है। उ० पेखत प्रगट
 प्रभाउ प्रतीति न आवइ। (पा० ७८) आवई-आती है।
 उ० अति खेद-व्याकुल अरुप बल छिन एक बोलि न
 आवई। (वि० १३६) आवउँ-आता हूँ, आ जाता हूँ।
 उ० निज आश्रम आवउँ खग भूपा। (मा० ७।११।४।७)
 आवत-१. आते हुए, आते, २. आते हैं। उ० १. रावन
 आवत सुनेउ सकोहा। (मा० १।१८।३) आवति-आती
 है। उ० सुमिरत सारद आवति धाई। (मा० १।१।१।२)
 आवन-आना, पहुँचना। उ० नृप जोबन छबि पुरई चहत
 जनु आवन। (जा० ६६) आवनो-१. आनेवाला, आ
 जानेवाला, २. आना, उपस्थित होना। उ० १. जाको
 ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो। (क० २।६) २. एक
 औंजि पानी पी कै कहै बनत न आवनो। (क० २।१८)
 आवहि-आते हैं। उ० फिरिहि प्रेम बस पुनि फिरि आवहि।
 (मा० २।८३।२) आवहीं-आते हैं। उ० सब साजि
 साजि समाज राजा जनक-नगरहि आवहीं। (जा० ६)
 आवहुँ-आवें। उ० आवहुँ बेगि नयनफलु पावहि। (मा०
 २।१।१।१) आवा-आया। उ० तेहि अवसर एक तापसु
 आवा। (मा० २। १।१।४) आवौँ-१. आ सकता हूँ,
 २. आता हूँ, ३. आऊँ। उ० १. जो करनी आपनी
 विचारौ तौ कि सरन हौँ आवौँ। (वि० १।४२) आवौ-
 आओ, आ जाओ।
 आउ (२)-(सं० आयु)-उम्र, जीवन। उ० लिए बेर बदलि
 अमोल-मनि-आउ में। (वि० २६१)
 आउज-(सं० वाद्य)-ताशा, एक बाजा जो कपड़े से ढँकी
 थाली सा होता है और बाँस की पतली तीली से बजाया
 जाता है। उ० घंटा-घंटी पखाउज-आउज भाँक बेनु डफ-
 तार। (गी० १।२)
 आउबाउ-(अ०)-व्यर्थ की बात, अंड-बंड। मु० आउ बाउ
 बक्यो-व्यर्थ की बात की। उ० जीह हू न जय्यो नाम,
 बक्यो आउ बाउ में। (वि० २६१)
 आक-(सं० अक)-मंदार, अकवन, एक जंगली पौदा।
 उ० ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आक को।
 (ह० १२) आको-आक या मंदार के पेड़ को भी। उ०

राम नाम-महिमा करै काम-भूरुह आको । (वि० १५२)
 आकरं-(सं०)-खान, घर । उ० सुखाकरं सतां गति । (मा० ३।४।श्लो० ६) आकर-(सं०)-१. खानि, उत्पत्ति-स्थान, २. भंडार, खजाना, ३. भेद, जाति, किस्म, ४. श्रेष्ठ, उत्तम, ५. कुशल, दक्ष । उ० ३. आकर चारि लाख चौरासी । (मा० १।८।१)
 आकरषति-(सं० आकर्ष)-खींचती है । उ० अरुन अधर द्विज पाति अनूपम ललित हंसनि जनु मन आकरषति । (गी० ७।१७) आकरषे-आकर्षित करे, खींचे । उ० आकरषे सुख संपदा संतोष विचार । (वि० १०८) आकरष्यो-आकर्षित किया, अपनी ओर खींचा । उ० आकरष्यो सिय-मन समेत हरि । (गी० १।८८)
 आकरी-खान खोदने का काम । उ० चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख । (क० ७।६७)
 आकर्ष-(सं०)-१. खिचाव, कशिश, २. पासे का खेल, ३. इंद्रिय, ४. कसौटी, ५. धनुष चलाने का अभ्यास, ६. चुंबक । आकर्षन-(सं० आकर्षण)-खींचने की शक्ति । आकसमात-(सं० अकस्मात्)-अचानक, एकाएक, सहसा, तत्क्षण । उ० जो पै आकसमात तें उपजै बुद्धि बिसाल । (स० ४८०)
 आकांक्षा-(सं०)-१. इच्छा, अभिलाषा, चाह, २. खोज, अनुसंधान । आकार-(सं०)-स्वरूप, आकृति, रूप । उ० कनक भूधरा-कार सरीरा । (मा० २।१६।४)
 आकाश-(सं०)-आसमान, गगन, अंतरिक्ष । पंचतत्वों में से एक जिसका गुण शब्द है । शून्य । उ० चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं । (मा० ७।१०८। श्लो० १)
 आकास-दे० 'आकाश' । आकासबानी-(सं० आकाशवाणी)-देववाणी, वह वाणी या शब्द जो आकाश से सुनाई दे । आकिचन-(सं०)-१. किसी वस्तु की इच्छा न रखना, २. दरिद्रता । उ० १. आकिचन इंद्रियदमन, रमन राम इक्तार । (वै० २६)
 आकु-दे० 'आक' । उ० खोजत आकु फिरहिं पय लागी । (मा० ७।११।१)
 आकुलं-(सं०)-दे० 'आकुल' । उ० १. जरत सुर असुर नरलोक शोकाकुलं । (वि० ११) आकुल-(सं०)-१. व्यग्र, व्यस्त, व्याकुल, घबराया हुआ, २. विह्वल, कातर, ३. व्याप्त, भरा हुआ । उ० १. देखि परम बिरहाकुल सीता । (मा० २।१४।४)
 आकुलित-(सं०)-१. व्याकुल, घबराया हुआ, २. व्याप्त । उ० १. लूमलीला-अनल ज्वालमालाकुलित । (वि० २५)
 आकृति-(सं०)-आकार, रूप, बनावट, सूरत । उ० कपि आकृति तुन्ह कीन्हि हमारी । (मा० १।१३।७)
 आकृष्ट-(सं०)-आकर्षित, खिंचा हुआ । आक्रांत-(सं०)-१. आवृत्त, घिरा हुआ, २. वशीभूत, विवश, पराजित, ३. जिस पर आक्रमण किया गया हो । आचिस-(सं०)-कैंका हुआ, निम्बित, वृषित । उ० द्रव

आचिस तव विषम माया, नाथ ! अंध मैं मंद व्यालाद्-गामी । (वि० ५६)
 आक्षेप-(सं०)-१. फेंकना, गिराना, २. आरोप, दोष लगाना, ३. निन्दा, ताना, कदूक्ति । आखत-(सं० अक्षत)-१. चावल, तण्डुल, २. चंदन या केसर में रंगा चावल जो विवाह या पूजा के अवसर पर काम में आता है । ३. शुभ अवसर पर नेगी या पवनी को दिया जानेवाला अन्न । उ० १. आखत आहुति किए जातु-धान । (गी० २।१६)
 आखर-(सं० अक्षर)-वर्ण, क, ख, ग आदि अक्षर, हरफ । उ० अनमिल आखर अरथ न जापू । (मा० १।१५।३)
 आखरजुग-(सं० अक्षर + युग)-दो अक्षर, अर्थात् 'राम' । आखु-(सं०)-१. चूहा, मूस, २. देवताल, ३. सूअर, ४. कंजूस । आखेट-(सं०)-अहेर, शिकार, मृगया । आख्य-(सं०)-नामक, नाम के । उ० वन्देऽहं तमशेष-कारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् । (मा० १।१। श्लो० ६)
 आगत-(सं०)-१. आया हुआ, प्राप्त २. अतिथि, मेहमान । उ० १. सरनागत मागत पाहि प्रभो । (मा० ७।१४।१)
 आगम-(सं०)-१. अवाह, आगमन, २. भविष्य, ३. जन्म, ४. शब्द प्रमाण, ५. वेद, ६. तंत्रशास्त्र, ७. नीति । उ० ५. आगम निगम पुरान अनेका । (मा० ७।४६।२)
 आगमन-(सं०)-१. आना, अवाह, २. प्राप्ति, लाभ । उ० १. मुनि आगमन सुना जब राजा । (मा० १।२०।७।१)
 आगमनु-दे० 'आगमन' । उ० १. भरत आगमनु सूचक अहहीं । (मा० २।७।३)
 आगमनू-दे० 'आगमन' । उ० १. सेवक सदन स्वामि आगमनू । (मा० २।६।३)
 आगमी-(सं० आगम = भविष्य)-ज्योतिषी, भविष्य का जाननेवाला, सामुद्रिक विचारनेवाला । उ० अवध आहु आगमी एकु आयो । (गी० १।१४)
 आगर-(सं० आकर)-खान, भंडार, समूह, ढेर, घर । उ० करुना सुखसागर सब गुन आगर । (मा० १।१६।२।छं० २)
 आगारि-दे० 'आगरी' । उ० लषन अनुज श्रुतिकीरति सब गुन आगारि । (जा० १।७३)
 आगरी-'आगर' का स्त्रीलिंग । उ० जेहि नामु श्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी । (मा० १।३२।३।छं० ३)
 आगर्व-(सं०)-विशेष गर्व, बहुत बड़ा घमंड । उ० उग्र-भागवागर्व-गरिमापहर्ता । (वि० ५०)
 आगवन-(सं० आगमन)-दे० 'आगमन' । आगवनु-दे० 'आगवन' । आगवनू-दे० 'आगवन' । उ० १. कारन कवन भरत आग-वनू । (मा० २।२२।७।१)
 आगार-(सं०) १. घर, मंदिर, मकान, २. स्थान, जगह, ३. खजाना, कोष, ४. ढेर, भंडार । उ० ४. सुनु व्याखारि काल कलि मल अवगुन आगार । (मा० ७।१०।२क)
 आगि-(सं० अग्नि)-आग । उ० औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो । (क० २।१८)
 आगिल-(सं० अग्र) आगे का, अग्रज । उ० आगिल चरित सुनहु जल भयक । (मा० १।७।१।१) आगिलि-'आगिल'

का खीखिंग, अगली । उ० आगिलि कथा सुनहु मन लाई ।
(मा० ११२०६११)
आगिली-दे० 'आगिलि' ।
आगिलो-दे० 'आगिल' । उ० घरनि सिधारिए सुधारिए
आगिलो काज । (गी० ११८२)
आगी-दे० 'आगि' । उ० जीवन तें जागी आगी, चपरि
चौगुनी लागी । (क० १११६)
आगु-दे० 'आगे' ।
आगे-दे० 'आगे' । उ० १. सैल बिसाल देखि एक आगे ।
(मा० ११३१४)
आगे-(सं० अद्य)-१. सामने, सम्मुख, २. पहिले, ३.
जीते जी, ४. अनंतर, बाद, ५. अतिरिक्त, अधिक, ६.
गोद में ।
आग्रह-(सं०)-१. अनुरोध, हठ, जिद, २. तत्परता, पराय-
णता, ३. बल, जोर ।
आघात-(सं०)-१. चोट, प्रहार, २. धक्का, ठोकर, ४. बध-
स्थान । उ० १. गर्जा बज्राघात समाना । (मा० ६१६४११)
आचमन-(सं०)-१. जल पीना, २. शुद्धि के लिए मुँह में
जल लेना, ३. धर्म संबंधी कर्म के लिए दाहिने हाथ में
जल लेकर मंत्र पढ़कर पीना, ४. पीने या हाथ मुँह धोने
के लिए दिया गया जल ।
आचमनु-दे० 'आचमन' । उ० ४. आदर सहित आचमनु
दीन्हा । (मा० ११३२६१४)
आचरज-(सं० आश्चर्य)-१. अचानक, विस्मय, तन्त्रजुब, २.
आश्चर्य भरी बात । उ० २. कहेसि अमित आचरज
बखानी । (मा० १११६३१३)
आचरजु-दे० 'आचरज' । उ० १. जनि आचरजु करहु मन
माहीं । (मा० १११६३११)
आचरत-१. आचरण करता, २. आचरण करता है । उ० १.
छोटे छोटे आचरन आचरत अपनायो अंजनीकुमार, सोध्यो
रामपनि पाक हौं । (ह० ४०) आचरनि-आचरण करना ।
उ० १. सकल सराहैं निज निज आचरनि । (वि० १८४)
आचरनी-दे० 'आचरनि' । उ० जिमि कुठार चंदन
आचरनी । (मा० ७१३७१४) आचरहि-आचरण करते
हैं, व्यवहार करते हैं । उ० जे आचरहि ते नर न घनेरे ।
(मा० ६१७८११) आचरही-दे० 'आचरहि' । आचरिबे-
करना, आचार करना । उ० जौ प्रपंच परिनाम प्रेम
फिरि अनुचित आचरिबे हो । (क० ३६) आचर-आचरण
करो, करो । उ० हरि-तोषन यह सुभ ब्रत आचरहा
(वि० २२५) आचरे-१. करने से, आचरण करने से, २.
आचरण किया । उ० १. बिहालु भंज्यो भवजालु परम
मंगलाचरे । (वि० ७४)
आचरन-(सं० आचरण)-१. चाल-चलन, व्यवहार,
बर्ताव, २. शुद्धि, आचार संबंधी सफाई । उ० १. देखि
देखि आचरन तुम्हारा । (मा० ७१४८२२)
आचरनु-दे० 'आचरन' । उ० १. सुभ. आचरन कीन्ह
नहि काऊ । (मा० ११४७१४)
आचरनु-दे० 'आचरन' । उ० भायप भगति भरत आचरनु ।
(मा० २१२२३११)
आचार-(सं०)-१. व्यवहार, चलन, रहन-सहन । २.

चरित्र, ३. शील, ४. शुद्धि, सफाई । उ० १. जयति
वर्णाश्रमाचार-पर-नारिनर । (वि० ४४)
आचारही-करते हैं, आचार करते हैं ।
आचारा-दे० 'आचार' । उ० १. सुमति सुसील, सरल
आचारा । (मा० ७१६४११)
आचारी-आचारवान, शुद्धि से रहनेवाला, चरित्रवान । उ०
जो कर दुंभ सो बड़ आचारी । (मा० ७१६८३३)
आचार-दे० 'आचार' । उ० १. बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुरु
बेद विदित आचार । (मा० ११२८६)
आचारु-दे० 'आचार' । उ० १. बेद विहित अरु कुल
आचारु । (मा० ११३१६११)
आचार्य-(सं०)-१. गुरु, उपदेशक, २. पुरोहित, ३. पूज्य,
४. ब्रह्मसूत्र के चार प्रधान भाष्यकार ।
आच्छन्न-(सं०)-१. ढका हुआ, आवृत, २. छिपा हुआ,
तिरोहित ।
आच्छादन-(सं०)-१. जो ढके या आच्छादित करे, ढकना,
वस्त्र, २. छप्पर, छाजन ।
आच्छादित-ढका हुआ, छिपा, तिरोहित ।
आच्छिप्त-(सं० आक्षिप्त)-दे० 'आक्षिप्त' ।
आच्छन्न-(सं० आच्छन्न)-ढका, तिरोहित, छिपा । उ०
मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुण ब्रह्म । (मा० ३१३६ क)
आच्छी-(सं० अच्छ)-अच्छी, उत्तम, सुघर, बढ़िया, भली ।
उ० मति अति नीचि उँचि रुचि आच्छी । (मा० ११८४)
आच्छे-अच्छे, सुन्दर । उ० आच्छे मुनि बेष धरे लाजत
अनंग हैं । (क० २१५)
आज-(सं० अद्य)-वर्तमान दिन, जो दिन बीत रहा हो ।
उ० आज बिराजत राज है दसकंठजहाँ को । (वि० १५२)
आजन्म-(सं०)-जीवन भर, आजीवन, जब तक जीवित
रहे । उ० आजन्म ते परद्रोह रत । (मा० ६११०४) छं० १)
आजानु-(सं०)-जाँघ तक लंबा, घुटने तक । उ० आजानु
भुज सरचाप-धर । (वि० ४५)
आजु-दे० 'आज' । उ० यहि मारग आज किसोर बधु ।
(क० २१२४)
आजू-दे० 'आज' । उ० मुनिपद बंदि करिअ सोइ आजू ।
(मा० २१२१४२)
आज्ञा-(सं०)-१. आदेश, हुक्म, बड़ों का छोटों को किसी
काम के लिए कहना । २. स्वीकृति, अनुमति । उ० १.
हौं पिलु-आज्ञा प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति-दामिनि ।
(गी० २१५)
आज्ञाकारी-(सं० आज्ञाकारिन्)-आज्ञा या आदेश मानने-
वाला, दास, सेवक । उ० लोकपाल, जम, काल, पवन,
रवि, ससि, सब आज्ञाकारी । (वि० ६८)
आज्य-(सं०)-घी, घृत ।
आटोप-(सं०)-१. आच्छादन, फैलाव, २. गर्व, अहंकार ।
उ० १. घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी । (मा० ६१३६१५)
आठ-(सं० अष्ट)-८ की संख्या, चार का दूना । उ० अवगुन
आठ सदा उर रहहीं । (मा० ६१९६११)
आठहँ-आठवीं, अष्टमी, दोनों पक्षों की आठवीं तिथि । उ०
आठहँ आठ-प्रकृति-पर निर्बिकार श्रीराम । (वि० २०३)
आठव-आठवीं ।

आडंबर-(सं०)-१. ऊपरी बनावट, टीमटाम, ढोंग, २. गंभीर शब्द, गर्जन, नाद ।
 आडु (सं० अल)-रोक, ओट, अडान, वारण ।
 आडेहु-रोकना भी, आडना भी, वारण करना भी । उ० भागे भल आडेहु भलो, भलो न घाले घाउ । (दो० ४२४)
 आडु-(सं० अल)-आसरा, अवलंब, शरण । उ० ज्यों-ज्यों जल मलीन त्यों-त्यों जमगन मुख मलीन लहै आड न । (वि० २१)
 आढ्य-(सं०)-संपन्न, पूर्ण, युक्त । उ० शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिज नयनं । (मा० ७।१।श्लो० १) आढ्यौ-(सं०)-आढ्य के द्विवचन का रूप, दोनों परिपूर्ण । उ० शोभाढ्यौ वर धन्विनौ । (मा० ४।१।श्लो० १)
 आतंक-(सं०)-१. रोष, दबदबा, प्रताप, २. डर, भय ।
 आततायी-(सं० आततायिन्)-१. महापापी, अनिष्टकारी, २. आग लगानेवाला, ३. बंधके लिए उद्यत, ३. विष देनेवाला ।
 आतनोति-(सं० आ + तनोति)-विस्तार करते हैं । उ० भाषा निबंध मति मंजुलमातनोति । (मा० १।१।श्लो० ७)
 आतप-(सं०)-१ धूप, घाम, २. गर्मी, उष्णता, ३. सूर्य का प्रकाश, ४. ज्वर । उ० १. सहत दुसह बन आतप बाता । (मा० ४।१।२)
 आतम-(सं० आत्म)-अपना, स्वकीय, निज का ।
 आतमवादी-(सं० आत्मवादी)-आत्मा को ही संपूर्ण जगत रूप में माननेवाला, वेदांती । उ० जे मुनि नायक आतमवादी । (मा० ७।७।३)
 आतमा-(सं० आत्मा)-१. जीव, २. ब्रह्म । उ० १. संसय-सिंधु नाम-बोहित भजि निज आतमा न तार्यो । (वि० २०२)
 आतिथ्य-(सं०)-अतिथि का सत्कार, पहुंचनाई, मेहमान-दारी ।
 आतुर-(सं०)-१. व्याकुल, व्यग्र, अधीर, २. उत्सुक, ३. दुःखी, आतं । उ० १. चला गगनपथ आतुर भयं रथ हाकि न जाइ । (मा० ३।२८)
 आतुरता-(सं०)-अबराहट, बेचैनी, व्याकुलता । उ० तिय की लखि आतुरता पिय की अखियाँ अति चाह चलीं जल चै । (क० २।११)
 आतुरताई-उतावलापन, जरदबाज़ी । उ० मुदित महरि लखि आतुरताई । (क० १३)
 आत्म-(सं०)-निज, अपना, स्वकीय ।
 आत्मघात-(सं०)-आत्महनन, अपने को मारना ।
 आत्मज-(सं०)-१. पुत्र, लड़का, २. कामदेव, काम, ३. रक्त । उ० २. भजहु तरनि-अरि-आदि कहँ तुलसी आत्मज अंत । (सं० २२७)
 आत्मजा-(सं०)-पुत्री, बेटी । उ० संग जनकात्मजा, मनुज-मनुस्य । (वि० २०)
 आत्मा-(सं०)-१. जीव, २. ब्रह्म, ३. मन । आत्माहन-(सं० आत्माहन)-अपने को मारनेवाला, आत्म-घातक । उ० सो कृतनिदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ । (मा० ७।४४)
 आदर-(सं०)-सम्मान, सत्कार, प्रतिष्ठा । उ० तात बचन

मम सुनु अति आदर । (मा० ६।६४) आदरेण-आदर-पूर्वक । उ० नरादरेण ते पदं । (मा० ३।४।१२)
 आदरणीय-(सं०)-आदर के योग्य, सम्मान्य ।
 आदरत-आदर करते हैं । उ० इन्हहिं-बहुत आदरत महा-मुनि । (गी० २।४२) आदरहिं-आदर करते हैं । उ० सरल कबित, कीरति बिमल सोइ । आदरहिं सुजान । (मा० १।१।४क) आदरहिं-आदर करते हैं । उ० जो प्रबंध बुध नहिं आदरहिं । (मा० १।१।४४) आदरिअ-आदर करना चाहिए । उ० सो आदरिअ करिय हित मानी । (मा० २।१७।६।१) आदरिए-आदर कीजिए । उ० निज अभिमान मोह ईषाँ बस, तिनहिं न आदरिए । (वि० १८६) आदरित-जिसका आदर किया गया हो, सम्मानित, आदर । आदरियत-आदर करते हैं । उ० रावरे आदरे लोक बेद हूँ आदरियत । (वि० १८३) आदरी-आदर किया । उ० जे ग्यान मान बिमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी । (मा० ७।१३ कं० ३) आदरे-आदर करने से । उ० रावरे आदरे लोक बेद हूँ आदरियत । (वि० १८३) आदरेहु-आदर किया । उ० नहिं आदरेहु भगति की नाईं । (मा० ७।११।२) आदरै-आदर करते हैं । उ० जेहिं सररीर रति राम सो सोइ आदरै सुजान । (दो० १।४२) आदरौ-आदर करो । उ० सोइ आदरौ आस जाके जिय बारि बिलोवत घी की । (क० ४३) आदर्यो-आदर किया । उ० तुलसी राम जो आदर्यो खोटे खरो खरोइ । (दो० १।०६) आदरु-दे० 'आदर' । उ० जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा । (मा० १।१०।७।२)
 आदर्श-(सं०)-१. नमूना, अनुकरण करने योग्य, उच्च, २. शीशा, दर्पण ।
 आदा-(सं० अद्)-खानेवाला, भत्तक । उ० दोउ हरि भगत काग उरगादा । (मा० ७।५।२।३)
 आदान-(सं०)-ग्रहण, लेना, स्वीकार ।
 आदि-(सं०)-१. प्रथम, पहला, आरंभ का, २. परमेश्वर, ३. आरंभ, शुरु, ४. इत्यादि, वगैरह, आदिक । उ० ४. व्यास आदि कवि पुंगव नाना । (मा० १।१।१।१) आदिअंभोज-(सं०)-प्रथम कमल जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । उ० मनहुँ आदिअंभोज बिराजत । (गी० २।५०) आदिहु-आरंभ ही, शुरु ही । उ० आदिहु तें सब कथा सुनाई । (मा० ५।१।३।३)
 आदिकं-(सं०)-आदि, इत्यादि । उ० निरस्य इंद्रियादिकं । (मा० ३।४।श्लो० ८) आदिक-(सं०)-आदि, वगैरह । उ० होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ । (मा० १।२।२।२)
 आदिकवि-(सं० आदि + कवि)-प्रथम कवि, १. वाल्मीकि, २. शुक्राचार्य । उ० १. जान आदिकवि नाम प्रताप । (मा० १।१।६।३)
 आदित-(सं० आदित्य)-दे० 'आदित्य' । उ० १. दंड द्वै रहे हैं रघु आदित उवन के । (क० ६।३)
 आदित्य-(सं०)-अदिति से उत्पन्न, १. सूर्य, २. देवता ।
 आदिबराह-(सं० आदि + वाराह)-वाराह रूपधारी विष्णु का अवतार, वाराह भगवान, शूकर भगवान । उ० आदि-बराह बिहरि बारिधि मनो उख्यो है दसन धरि धरनी । (गी० २।५०)

आदी-(सं० आदि)-वगैरह, आदि । उ० अज महेश नारद सनकादी । (मा० ६१०५११)
 आदेव-(सं० आदेय)-लाने के योग्य, स्वीकार्य ।
 आदेश-(सं०)-१. आज्ञा, हुकम, २. उपदेश, ३. प्रणाम ।
 उ० १. आयसु आदेश बाबा भलो भलो भाव सिद्ध ।
 (क० ७११४०)
 आध-(सं० अर्ध)-आधा, किसी वस्तु के दो बराबर भागों में से एक । उ० मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आध के ।
 (वि० १७६)
 आधा-दे० 'आध' । उ० आधा कटकु कपिन्ह संचारा ।
 (मा० ६१८२२)
 आधार-(सं०)-१. आश्रय, सहारा, अवलंब, २. नींव, बुनियाद, ३. आश्रय देनेवाला, पालनकर्ता । उ० १. लच्छन-धाम राम प्रिय सकल जगत आधार । (मा० ११९६७)
 आधार-दे० 'आधार' । उ० १. जय अनंत जय जगदाधारा । (मा० ६१७७२)
 आधि-(सं०)-मानसिक व्यथा, चिंता, शोच, फिक्र । उ० आधि-मगन मन, ब्याधि-बिकल तन । (वि० १६५)
 आधिदैविक-(सं०)-देवों द्वारा प्रेरित, देवताकृत ।
 आधिभौतिक-(सं०)-भूतों या शरीरधारियों द्वारा प्रेरित या किया गया । उ० आधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे ।
 (वि० ८)
 आधीन-(सं० अधीन)-आश्रित, जो किसी के अधिकार में हो, विवश, लाचार, मातहत । उ० नाम-आधीन साधन अनेकं । (वि० ४६)
 आधीना-दे० 'आधीन' । उ० जानि नृपहि आपन आधीना ।
 (मा० ११९६८१)
 आधीश-(सं० अधीश)-स्वामी, मालिक, राजा ।
 आधु-दे० 'आध' । उ० बिगरी जनम अनेक की, सुधरत पल लगे न आधु । (वि० १६३)
 आधे-दे० 'आध' । उ० उभय भाग आधे कर कीन्हा ।
 (मा० ११९६०११)
 आधेय-(सं०)-१. आधार पर स्थित वस्तु, किसी के सहारे रहनेवाला, २. स्थापनीय, ठहराने योग्य ।
 आनंद-(सं० आनंद)-दे० 'आनंद' । उ० तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेश आनंद-रंग-मगे । (पा० ६६)
 आनंदकंद-दे० 'आनंदकंद' । आनंदहू-आनंद भी ।
 उ० आनंदहू के आनंददाता । (मा० ११२१७११)
 आनंदु-दे० 'आनंद' । उ० आनंदु अब अनुग्रह तोरें ।
 (मा० २१३३४)
 आनंद-(सं०)-हर्ष, प्रसन्नता, आह्लाद, खुशी । उ० नयना-नंद दान के दाता । (मा० २१४२११) आनंदकंद-सुख की जड़, जिससे आनंद हो, सुखमूल । आनंदकर-आनंद देनेवाला सुखकारी । आनंदकारी-सुखकारी, सुख देनेवाला । आनंदद-आनंद देनेवाला, सुखप्रद । उ० सदा शंकर, शंप्रद सज्जनानंदद । (वि० १२) आनंदनि-आनंद करना । उ० हंसनि, खेलनि, किलकनि, आनंदनि भूपति-भवन बसाइहैं । (गी० १११८) आनंदप्रद-आनंद प्रदान करनेवाला । उ० जय जनकनगर-आनंदप्रद, सुखसागर सुखमाभवन । (क० ७१११२)

आनंदवन-(सं०) काशी, बनारस, सप्तपुरियों में से एक ।
 उ० शेष सर्वेश आसीन आनंदवन । (वि० ११)
 आनंदा-दे० 'आनंद' । उ० जय जय अविनासी सब घट बासी, ब्यापक परमानंदा । (मा० ११८६१४० २)
 आन (१)-(सं० आधि)-१. मर्यादा, सीमा, २. प्रतिज्ञा, ३. क्रम, शपथ ।
 आन-(२)-(फा०)-१. प्रतिष्ठा, शान, २. अदा, ३. अकड़, ४. विजय घोषणा । उ० ४. बिस्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल की । (क० ७११६६)
 आन (३)-(अर०)-१. समय, २. पल, क्षण ।
 आन (४)-(सं० अन्य)-दूसरा, और । उ० तौ घर रहहु न आन उपाई । (मा० २१९६४) आनहिं (१)-दूसरे को ।
 उ० बूढ़हिं आनहिं बोरहिं जेई । (मा० ६१३१४)
 आनक-(सं०)-१. डंका, भेरी, दुंदुभी, नगाड़ा, २. गरजता हुआ बादल । उ० १. पनवानक निर्भर, अलि उपंग । (गी० २१४८)
 आनत-१. ले आता है, २. लाते ही, ले आते ही । उ० २. उर अस आनत कोटि कुचाली । (मा० २१२६१२)
 आनति (१)-१. ले आती हैं । २. ले आने से । आनब-लाऊंगा, ले आऊंगा । उ० हरि आनब मैं करि निज माया । (मा० ११९६१२) आनधी-ले आओ, लाओ ।
 आनसि-लाता है, ले आता है । उ० उत्तर प्रति उत्तर बहु आनसि । (मा० ७११२१७) आनहिं (२)-१. लावे, ले आवे । २. ले आते हैं । उ० १. आनहिं नृप दूसरथहि बोलाई । (मा० ११२८७१) आनहुँ-ले आऊँ । आनहु-ले आओ, लाओ । उ० आनहु रामहि बेगि बोलाई । (मा० २१३६१) आना (१)-लाया, ले आया । उ० कुल कलंकु तेहि पावँर आना । (मा० ११२८४२) आनि (१)-लाकर, ले आकर । उ० छोटे सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को । (क० २११०) आनिअ-ले आइए । उ० बेगि चलिअ प्रसु आनिअ भुजबल खलदल जीति । (मा० २१३१) आनिए-ले आइए, लाइए । उ० परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिणुँ । (मा० २१२०११) आनिवी-लावेंगे, ले आवेंगे । उ० रिपुहि जीति आनिवी जानकी । (मा० २१३२१२) आनिय-लाइए, ले आइए । उ० देवि ! सोच परिहरिय, हरष हिय आनिय । (जा० मं० ८५) आनियहि-ले आओ, लाओ । उ० ब्रज आनियहि मनाइ पाँय परि कान्ह कूबरी रानी । (क० ४८) आनिहि-लाया, ले आया । उ० सूनं हरि आनिहि परनारी । (मा० ६१३०३) आनिहँ-लाएँगे, ले आएँगे । उ० कपि सेन संग सँघारि निसिचर रासु सीतहि आनिहँ । (मा० ४१३०१४) आनिहौं-लाऊँगा, ले आऊँगा । उ० जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं । (क० ७१६३) आनी-आनकर, लाकर, ले आकर । उ० अस बह तुम्हहि मिलाउब आनी । (मा० ११८०१२) आनु-लाओ, ले आओ । उ० बेगि आनु जल पाय पखारु । (मा० २११०११) आनु-ले आओ, लाओ । उ० लछिमन बान सरासन आनु । (मा० २१५८१) आने-लाये, ले आए । उ० सादर अरघ देइ घर आने । (मा० २१६१२) आनेउ-लाए, ले आए । उ० आनेउ भवन समेत तुरता । (मा० ६१५५४)

आनेसु-लाना, ले आना । उ० तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी । (मा० ११८२१२) आनेहि-लाया है, ले आया है । उ० सठ सूने हरि आनेहि मोही । (मा० २१६१४) आनेहु-लाए हो, ले आए हो । उ० आनेहु मोल बेसाहि कि मोही । (मा० २१३०११) आनों-लाऊँ, ले आऊँ । उ० विबुध-बैद बरबस आनों धरि । (गी० ६१८) आनों-ले आऊँ । उ० करि बिनती आनों दोउ भाई । (मा० ११२०६१४) आन्यो-लाया, ले आया । उ० निज हित नाथ पिता गुरु हरि सौं हरधि हृदय नहि आन्यो । (वि० ८८)

आनति (२)-(सं०)-विनम्र, झुका हुआ, अति नम्र । आनन-दे० 'आनन', आनन को । उ० प्रसन्नाननं नील-कंठं दयालं । (मा० ७१०८१ श्लो० ४) आनन-(सं०)-मुख, मुँह । उ० आनन अभित मदन छवि छाई । (मा० ११९६१४)

आननु-दे० 'आनन' । उ० आननु सरद चंद छवि हारी । (मा० ११९०६१४)

आना (२)-दे० 'आन (४)' । उ० अस पन तुम्ह विनु करइ को आना । (मा० ११५७१३)

आनाकानी-(सं० अनाकर्णन्)-सुनी अनसुनी करने का कार्य, टालमटोल । उ० आनाकानी, कंठ, हँसी मुँहचाही होन लगी । (गी० ११८२)

आनि (२)-दे० आन (१), आन (२), आन (३), तथा आन (४) ।

आप (१)-(सं० आत्मन्)-१. स्वयं, खुद, २. तुम और वे के स्थान पर आदरसूचक प्रयोग, ३. ईश्वर, परमात्मा । आप (२)-(सं० आपः)-पानी, जल । उ० पिंगल जटा कलाप, माथे पै पुनीत आप । (क० ७११५६)

आपगा-(सं०) नदी, सरिता । उ० घोर अवगाह भव-आपगा । (वि० ५६)

आपत्ति-(सं०)-दुःख, कलेश, विघ्न, संकट । आपद-(सं० आपद)-विपत्ति, कष्ट, दुःख । उ० आपद काल परिलखिहि चारी । (मा० ३१५१४)

आपदा-(सं०)-दे० 'आपत्ति' या 'आपद' । उ० हरि सम आपदा हरन । (वि० २१३)

आपन-(सं० आत्मनो)-१. अपना, निज का, स्वकीय, २. अपना ने । उ० १. आपन रूप देहु प्रभु मोही । (मा० ११३२१३) २. आपन छोड़ो साथ जब । (दो० ५३४)

आपनि-अपनी, 'आपन' का स्त्रीलिंग । उ० आदिहु तें सब आपनि करनी । (मा० २११६०१४)

आपना-दे० 'आपन' । उ० १. भजि रघुपति करु हित आपना । (मा० ६१५६१३)

आपनी-दे० 'आपनि' । उ० अघ अवगुन छमि आदरहि, समुक्ति आपनी ओर । (मा० २१२३३) आपने-अपने । उ० आपने निवाजे की तौ लाज महाराज को । (क० ७१४)

आपनो-अपना । उ० केहि अघ अवगुन आपनो करि डारि दिया रे । (वि० ३३) आपनोई-अपना ही । उ० पाँच की प्रतीति न, भरोसो मोहि आपनोई । (क० ७१६३)

आपन्न-(सं०)-आपद्ग्रस्त, दुःखी, विपत्तिग्रस्त । उ० द्वास

तुलसी खेदखिन्न, आपन्न, इह सोक संपन्न अतिसय सभितं । (वि० ५६)

आपान-स्वयं, खुद, आप । उ० भूप मोहि सक्ति आपान की । (वि० २०६)

आपु-दे० 'आप (१)' उ० १. आपु गए अरु तिन्हहु घालहि । (मा० ७१००१२) आपुहि-अपने, अपने को । उ० आपुहि परम धन्य करि मानहि । (मा० २१२०१४)

आपुन-स्वयं, खुद, अपने आप । उ० १. सोइ सोइ भाव देखावै आपुन होइ न सोइ । (मा० ७१७२ ख) आपुने-अपने । उ० जानि पहिचानि विनु आपु ते आपुने हुतें । (गी० २१३८)

आपुनु-आप भी, आप । उ० म्यान अंजुनिधि आपुनु आजू । (मा० २१२६३२)

आपुस-आपस, एक दूसरे के साथ, परस्पर । उ० सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ, कल आपुस में कछु पै कहिहैं । (क० २१२३)

आपू-दे० 'आपु' । उ० जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू । (मा० ११२६१२)

आप्त-(सं०) १. प्राप्त, मिला हुआ, २. कुशल, दक्ष, ३. ऋषि, ४. शब्द प्रमाण ।

आवरन-(सं० आवरण)-१. अच्छादन, ढकना, वस्त्र, परदा, २. जल, वायु, अग्नि, तेज, अहंकार, महत्त्व और प्रकृति, ये आवरण कहे जाते हैं । उ० २. सप्तारवन भेद करि जहाँ लगे गति मोरि । (मा० ७१७६ ख)

आवाहन-(सं० आवाहन)-मंत्र द्वारा किसी देवता को बुलाना । उ० तीरथ आवाहन सुरसरि जस । (मा० २१२४८२)

आभं-दे० 'आभ' । उ० शंखेन्द्राभमतीवसुंदरतनुं । (मा० ६११ श्लो० २) आभ-(सं० आभा)-कांति, शोभा, चमक, दीप्ति । उ० केकीकण्ठाभनील । (मा० ७११ श्लो० १)

आभरण-(सं०)-गहना, भूषण, जेवर, अलंकार । आभरन-(सं० आभरण)-दे० 'आभरण' । आभा-(सं०)-दे० 'आभ' । उ० कुटिल कच, कुंडलनि परम आभा लही । (गी० ७१६)

आभार-(सं०)-१. बोझ, २. गृहस्थी का भार, ३. एह-सान, उपकार । आभास-(सं०)-१. प्रतिबिंब, छाया, २. पता, संकेत, ३. मिथ्या ज्ञान, अज्ञान । आभीर-(सं०)-अहीर, ग्वाल, गोप । उ० आभीर जमन किरात खस, स्वपचादि अति अवरूप जे । (मा० ७१३० छं० १)

आभूषण-(सं०)-गहना, जेवर, अलंकार । आभ्यान्तर-(सं० आभ्यन्तर)-भीतरी, अंदरूनी । आम (१)-(सं०)-कच्चा, जो पका न हो । उ० बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम धरो सो । (वि० १७३)

आम (२)-(सं० आम्र)-एक पेड़ और उसके फल का नाम, रसाल । आम (३)-(अर०)-१. साधारण, सामान्य, मामूली, २. प्रसिद्ध, विख्यात ।

ग्राम्य-(सं०)-रोग, व्याधि, बीमारी। उ० संसारामयभेषजं सुखकरं श्री जानकीजीवनं। (मा० ३११ श्लो० २)
 ग्रामरष-(सं० ग्रामरष)-१. क्रोध, गुस्सा, कोप, २. असहन-शीलता। उ० १. लोभामरष हरष भय त्यागी। (मा० ७। ३८११)
 ग्रामरषि-क्रोध करके, ग्रामरषित होकर, क्रोधित होकर। उ० उठे भूप ग्रामरषि सगुन नहि पायउ। (जा० ६८)
 ग्रामलक-(सं०)-ग्रामला, आँवला। उ० करतल गत ग्रामलक समाना। (मा० १३०१४)
 ग्रामिष-(सं०)-मांस, गोशत। उ० विविध मृगन्ध कर ग्रामिष राँधा। (मा० ११७३२२)
 ग्रामुखर-(सं०)-बहुत शब्द करनेवाले, बोलनेवाले। उ० जुगल पद नूपुरामुखर कलहंसवत। (वि० ६१)
 ग्रामोद-(सं०)-१. आनंद, हर्ष, प्रसन्नता, २. दिल बह-लाव, तक्ररीह, ३. सुगंधि। उ० ३. अमत ग्रामोदवस मत्त मधुकर-निकर। (वि० ५१)
 ग्राय (१)-(सं०)-१. ग्रामदनी, लाभ, ग्रामद, २. आग-मन, ग्राना।
 ग्राय (२)-(सं० ग्रायसु)-जीवन, उन्न, अवस्था, जीवन की अवधि। उ० धन्य ते जे मीन से अवधि-अंजु-ग्राय हैं। (गी० २।२८)
 ग्रायत-(सं०)-विस्तृत, दीर्घ, विशाल, लंबा-चौड़ा। उ० उर ग्रायत उर भूषण राजे। (मा० १३२७३२)
 ग्रायतन-(सं०)-दे० 'ग्रायतन'।
 ग्रायतन-(सं०)-१. मकान, घर २. विश्रामस्थल, ३. देवताओं की चंदना की जगह। उ० १. निर्मल सांत सुबि-सुद्ध बोधायतन, क्रोध-मद-हरन करुना-निकेतं। (वि० ५३)
 ग्रायतना-दे० 'ग्रायतन'। उ० १. कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना। (मा० ५३। ६० १)
 ग्रायसु-(सं० आदेश)-आज्ञा, हुकम। उ० नाइ चरन सिरु ग्रायसु पाई। (मा० ११२७११)
 ग्रायस-(सं०)-परिश्रम, मेहनत।
 ग्रायु-(सं०)-वय, उन्न, जीवनकाल। उ० जानियतु ग्रायु भरि येई निरमए हैं। (गी० ११११)
 ग्रायुध-(सं०)-हथियार, शस्त्र। उ० लोचन अभिरामा तनु घन स्यामा निज आयुध भुज चारी। (मा० ११६२। ६० १) आयुधधर-(सं०)-हथियार धारण करनेवाला।
 आयुष-(सं० आयुष्य)-आयु, उन्न।
 आयू-दे० 'आयु'। उ० आयू हीन भये सब तबहीं। (मा० ११२११)
 आरंभ-(सं०)-शुरु, प्रारंभ, आदि। उ० मिथ्यारंभ दंभरत जोई। (मा० ७। ६८२२)
 आर-(अर०)-१. धृणा, नफरत, २. लज्जा, शर्म, ३. बैर, अदावत।
 आरज-(सं० आर्य)-१. श्रेष्ठ, बड़ा, पूज्य, उत्तम, २. ससुर। उ० २. आरज सुत पद कमल विनु, बादि जहाँ लगी नात। (मा० २। ६७)
 आरत-(सं० आरती)-१. दुःखपूर्ण, व्याकुल, २. अत्यंत दुःखी, ३. दुःख। उ० १. कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ। (मा० २। ६४)

आरति (१)-(सं० आरती) दुःख, व्याकुलता। उ० १. करहि आरती आरतिहर के। (मा० ७। ६१४)
 आरति (२)-दे० 'आरती (२)। उ० करि आरति नेवझावरि करहीं। (मा० ११६४। ३)
 आरति (३)-(सं०)-१. विशेष प्रेम, २. विरक्ति।
 आरती (१)-दे० 'आरति (१)। उ० हरति सब आरती आरती राम की। (वि० ४८)
 आरती (२)-(सं० आरात्रिक)-मूर्ति, वर, राजा या किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के ऊपर दीपक घुमाना। नीराजना। उ० हरति सब आरती आरती राम की। (वि० ४८)
 आरन्य-(सं० अरण्य)-जंगल, बन। उ० यातुधान-प्रचुर-मत्तकरि-कैसरी, भक्त-मनपुन्य-आरन्यवासी। (वि० ५६)
 आरव-(सं०)-शब्द, कोलाहल, रव, आवाज़।
 आराति-(सं०)-शत्रु, बैरी, दुश्मन। उ० रातिचर-जाति आराति सब भाँति गत। (गी० ५। ४३)
 आराती-(सं० आराति)-दे० 'आराति'। उ० तदपिन कहेउ त्रिपुर आराती। (मा० १। ५७। ४)
 आराधक-(सं०)-उपासक, पुजारी।
 आराधन-(सं०)-पूजा, उपासना, सेवा।
 आराधना-(सं०)-पूजा, सेवा, उपासना।
 आराध्य-(सं०)-पूज्य, पूजनीय, जिनकी आराधना हो। उ० दुराराध्य पै अहहि महेसु। (मा० १। ७०। २)
 आराम (१)-(सं०)-बाग, बगीचा, उपवन। उ० आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं। (मा० ७। २६। ६०। १)
 आराम (२)-(क्रा०)-चैन, सुख।
 आरामु-(सं० आराम)-दे० 'आराम (१)। उ० परम रम्य आरामु यह जो रामहि सुख देत। (मा० १। २२। ७)
 आरि-(सं० हठ > अड्ड > आरि) हठ, टेक, ज़िद। उ० कबहुँ ससि माँगत आरि करै। (क० १। ४)
 आरुढ़-(सं०)-१. सवार, चढ़ा हुआ, २. दृढ़, स्थिर। उ० १. खर आरुढ़ नगन दससीसा। (मा० ५। ११। २)
 आरैसु-(?)-ईर्ष्या, डाह। उ० कबहुँ न कियहु सवति आरैसु। (मा० २। ४। ६४)
 आरौ-(सं० आरव)-दे० 'आरव'।
 आरोग्य-(सं०) निरोग, स्वस्थ, तन्दुरुस्त।
 आरौप-(सं०)-१. स्थापित करना, लगाना, मढ़ना, २. वृक्ष आदि को एक स्थान से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना।
 आरौपण-(सं०)-लगाना। लगाने, मढ़ने या स्थापित करने की क्रिया।
 आरौपित-(सं०)-लगाया हुआ, स्थापित किया हुआ, बैठाया हुआ। उ० सीता समारौपित काम भागम्। (मा० २। १। श्लो० ३)
 आरौहण-(सं०)-१. चढ़ना, सवार होना, २. अंकुरित होना, ३. सीढ़ी।
 आरौहैं-चढ़ते हैं, आरोहण करते हैं। उ० दरसन लागि लोग अटनि आरौहैं। (गी० १। ६०)
 आरौ-(सं० आरव)-दे० 'आरव'। उ० धुरधुरात हय आरौ पाएँ। (मा० १। १६। ४)

आर्त-(सं० आर्त)-दुखी, पीड़ित, कादर ।
 आर्ति-(सं० आर्ति)-पीड़ा, दुःख । उ० चरित-निरुपाधि
 त्रिविधाति-हर्ति । (वि० ४३)
 आर्द्र-(सं०)-गीला, भीगा हुआ ।
 आर्य-(सं०)-श्रेष्ठ, उत्तम, भला, बड़ा ।
 आलय-(सं०)-घर, मकान, गृह । उ० सर्व सर्वगत सर्व
 उरालय । (मा० ७।३४।४)
 आलबाल-(सं० आलबाल)-थाला, पेड़ में पानी देने के
 लिए मिट्टी की बनी मेंड़, थाँवला । उ० मनिमय आल-
 बाल कल करनी । (मा० १।३४।४)
 आलस (१)-(सं० आलस्य)-सुस्ती, काहिली, अक-
 र्मस्यता । उ० आलस, अनख, न आचरज, प्रेमपिहानी
 जानु । (दो० ३२७)
 आलस (२)-(सं०)-आलसी, सुस्त, काहिल । आलसबंत-
 आलस्य से भरे हुए । उ० आलसबंत सुभग लोचन
 सखि, छिन मूँदत, छिन देत उवारी । (कृ० २२) आलसहूँ-
 आलस्य से भी, आलस्य में भी । उ० भायँ कुभायँ अनख
 आलसहूँ । (मा० १।२८।१)
 आलसि-आलसी, काहिल । उ० भागत अभाग, अनुरागत
 विराग, भाग जागत, आलसि तुलसी हू से निकास को ।
 (क० ७।७६)
 आलसी-सुस्त, काहिल, अकर्मस्य । उ० आलसी अभागे
 मोसे तै कृपाळु पाले पोसे । (वि० २५०) आलसिन्ह-
 आलसियों, आलसी का बहुवचन । उ० आलसिन्ह की
 देव सरि सिय सेइयहु मन मानि (गी० ७।३२)
 आलसु-दे० 'आलस' । उ० तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं ।
 (मा० १।५१।२)
 आलान-(सं०)-१. हाथी बाँधने का खंभा या रस्सा, २.
 बंधन ।
 आलि-१. सखी, संगिनी, सहेली, २. पंक्ति, अवलि । उ०
 धरि धीरजु एक आलि सयानी । (मा० १।२३।१)
 आली (१)-(सं०)-दे० 'आलि' । उ० १।।अस कहि
 मन विहसी एक आली । (मा० १।२३।१३)
 आली (२)-(सं० ओल)-नम, भीगा ।
 आले-(सं० ओल)-गीला, नम, कच्चा, जो पका न हो ।
 उ० आले ही बाँस के माँड़व मनिगन पूरन हो । (रा० ३)
 आलोक-(सं०)-प्रकाश, रोशनी, चमक । उ० बक्त्र-
 आलोक त्रैलोक्य-सोकापहं । (वि० ५१)
 आवरण-(सं०)-ढँकना, परदा, दीवाल ।
 आवर्त्त-(सं०)-१. पानी का भँवर, भँवर, २. संसार । उ०
 १. फिरि गर्भगत-आवर्त्त संसृति-चक्र जेहि होइ सोइ
 कियो । (वि० १३६)
 आवलि-(सं०)-पंक्ति, श्रेणी, क्रतार । उ० नयनन्हि नीरु
 रोमावलि ठाढ़ी । (मा० १।१०।४।१)
 आवली-(सं०)-पंक्ति, श्रेणी । उ० रोमावली लता जनु
 नाना । (मा० ६।१६।३)
 आवी-(सं० आपाक)-बर्तन पकाने का गड्ढा ।
 आवागमन-(आवा + सं० गमन)-१. आना जाना, २.
 बार-बार मरना और जन्म लेना । उ० २. सोइ व्रत कर
 फल पावै आवागमन नसाइ । (वि० २०३)

आवाहन-(सं०) मंत्र द्वारा किसी देवता को बुलाना,
 आमंत्रित करना ।
 आविर्भाव-(सं०)-आना, पैदा होना, प्रकट होना, जन्म ।
 आवृत-(सं०)-छिपा हुआ, ढका हुआ, चिरा हुआ,
 अच्छादित ।
 आवृत्ति-(सं०)-बार-बार किसी कार्य को करना, अभ्यास ।
 आवेश-(सं०)-आतुरता, चित्त की प्रेरणा, वेग, जोश ।
 आवै-आवे, आ जावे । उ० जौ आवै मर्कट कटकाई । (मा०
 २।३७।२)
 आशंका-(सं०)-१. डर, भय, २. शक, संदेह ।
 आशय-(सं०)-१. अभिप्राय, मतलब, २. वासना, इच्छा
 ३. गड्ढा, ४. स्थान, जगह ।
 आशा-(सं०)-१. आसरा, भरोसा; उम्मीद, अप्राप्त के
 पाने की इच्छा और थोड़ा बहुत निश्चय, २. दिशा ।
 आशिष-(सं०)-आशीर्वाद, आसीस, दुआ ।
 आशु-(सं०)-शीघ्र, जल्दी, तुरत ।
 आशुतोष-(सं०)-शीघ्र संतुष्ट होनेवाला, तुरत प्रसन्न होने-
 वाला, शिव ।
 आश्चर्य-(सं०)-विस्मय, अचंभा, तअज्जुब ।
 आश्रम-(सं०)-१. ऋषियों का निवासस्थान, तपस्या की
 जगह, कुटीर, २. ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और
 संन्यास आश्रम । उ० १. पुनि सब निज निज आश्रम
 जाहीं । (मा० १।४५।१) २. जयति वर्णाश्रमाचार-पर-
 नारिनर, सत्य-शम-दम-दया-दान-शीला । (वि० ४४)
 आश्रमनि-आश्रमों में । उ० भुवन कानन आश्रमनि रहि
 मोद मंगल छाइ । (गि० ७।३४) आश्रमन्ह-१. बहुत से
 आश्रम, आश्रम का बहुवचन, २. आश्रमों को । उ० २. ब्रह्म
 मुनीस आश्रमन्ह सिधाए । (मा० १।४५।२) आश्रमन्हि-
 आश्रमों में । उ० करहि जोग जप जाग तप निज आश्र-
 मन्हि सुछंद । (मा० २।१३४) आश्रमहि-आश्रम में ।
 उ० करि सनमानु आश्रमहि आने । (मा० २।१२।१)
 आश्रमी-१. आश्रम में रहनेवाला, २. ब्रह्मचर्य आदि
 आश्रमों में से किसी को धारण करनेवाला । उ० २. जिमि
 हरि भगति पाइ श्रम तजहि आश्रमी चारि । (मा०
 १।१६)
 आश्रमु-दे० 'आश्रम' । उ० १. आश्रमु देखि नयन जल
 छाए । (मा० १।४५।३)
 आश्रय-(सं०)-आधार, सहारा, स्थान । उ० जप तप नेम
 जलाश्रय आरी । (मा० ३।४४।१)
 आश्रित-(सं०)-सहारे पर टिका हुआ, भरोसे पर रहने-
 वाला, शरणागत । उ० एहि विधि जग हरि आश्रित
 रहई । (मा० १।११।१) आश्रितः-(सं०)-संस्कृत में
 आश्रित का प्रथमा एकवचन का रूप, आश्रित । उ०
 यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रःसर्वत्र वन्द्यते । (मा०
 १।१।श्लो०३)
 आस्वासन-(सं०)-दिलासा, तसल्ली, साँत्वना ।
 आषे-(सं० आख्यान)-कहे । उ० सत्यसंध साँचे सदा जे
 आखर आषे । (गी० १।६)
 आसंका-(सं० आशंका)-दे० 'आशंका' ।
 आस (१)-(सं० आस)-निवास, बास, रहने की जगह ।

उ० जासु आस सर देष को, अरु आसन हरिबाम । (स० २७८)
 आस (२)-(सं० आशा)-१. उम्मीद, आसरा, आशा, २. लालच, ३. लाखसा, कामना । उ० १. आस पियास मनोमलहारी । (मा० १४३।१)
 आसक्त-(सं०)-१. अनुरक्त, लीन, लिप्त, फँसा हुआ, २. मुग्ध, लुब्ध, मोहित । उ० १. काम क्रोध मद लोभ रत गुहासक्त दुखरूप । (मा० ७।७३क)
 आसन-(सं०)-१. वह वस्तु जिसपर बैठा जाय, २. बैठने या रति करने की विधि । योग में पाँच प्रकार के आसन हैं और कामशास्त्र में ८४ प्रकार के । उ० १. अति पुनीत आसन बैठारे । (मा० १४५।३) आसनन्दि-आसनो पर । उ० सुभग आसनन्दि मुनि बैठाए । (मा० १।३५६।२)
 आसन-दे० 'आसन' । उ० १. बाम भाग आसन हुर दीन्हा । (मा० १।१०७।२)
 आसन्न-(सं०)-निकट आया हुआ, समीपस्थ, प्राप्य ।
 आसय-(सं० आशय)-दे० 'आशय' ।
 आसरा-(सं० आश्रय)-सहारा, आधार, अवलंब ।
 आसरो-(अ०)-दे० 'आसरा' । उ० झूठे सँचे आसरो साहिब रघुराउ में । (वि० २६१)
 आसा-(सं० आशा)-दे० 'आशा' । उ० १. नृपन्ह केरि आसा निसि नासी । (मा० १।२५५।१) २. देखु बिभीषन दच्छिन आसा । (मा० ६।१३।१)
 आसिरबचन-(सं० आशीर्वाचन)-आशीर्वाद, आसीस । उ० आसिरबचन लहे प्रिय जी के । (मा० २।२४६।२)
 आसिरवाद-(सं० आशीर्वाद)-आशीर्वाद, आसीस, हुआ । उ० बड़ी वयस बिधि भयो दाहिनो सुरगुह आसिरवाद । (गी० १।२)
 आसिरवाद-दे० 'आसिरवाद' । उ० आसिरवादु विप्रवर दीन्हा । (मा० २।१२५।१)
 आसिष-(सं० आशिष)-आशीर्वाद, आसीस, हुआ । उ० तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्हा पुनि आसिष देई । (मा० २।७५। छं० १)
 आसिषा-दे० 'आसिष' । उ० औरउ एक आसिषा मोरी । (मा० ७।१०६।८)
 आसीन-(सं०)-बैठा हुआ, विराजमान, स्थापित, स्थित । उ० सुख आसीन तहाँ द्वै भाई । (मा० ४।१३।३)

आसीना-दे० 'आसीन' । उ० जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना । (मा० १।२४।३)
 आसु-(सं० आशु)-शीघ्र, जल्दी, तुरत ।
 आसुतोष-(सं० आशुतोष)-शीघ्र प्रसन्न होनेवाले । उ० आसुतोष तुम्ह अवढर दानी । (मा० २।४४।४)
 आसु-दे० 'आसु' । उ० जारइ भुवन चारिदस आसु । (मा० ६।२५।१)
 आस्पद-(सं०)-१. स्थान, मूल स्थान, २. कार्य, ३. पद, ४. कुल, जाति, गोत्र, वंश, ५. कुंडली में दसवाँ स्थान । उ० १. सर्व सुखधाम गुनग्राम विश्रामपद नाम सर्वास्पद मति पुनीत । (वि० २३)
 आस्रम-दे० 'आश्रम' । उ० १. आस्रम आवत चले, सगुन न भए भले । (गी० ३।६) आस्रमनि-दे० 'आश्रमनि' । उ० रामसीय-आस्रमनि चलत त्यों भए न श्रमित अभागे । (वि० १७०)
 आस्रमी-दे० 'आश्रमी' ।
 आस्वाद-(सं०)-रस, ज्ञायका, स्वाद ।
 आह-(सं० अहह)-पीडा, खेद, दुःख, ग्लानिसूचक शब्द, कराहना, हाय । उ० आह दइअ में काह नसावा । (मा० २।१६३।३)
 आहट-(हि० आ (आना)+हट (प्रत्यय))-१. आने का शब्द, पाँव की चाप, २. पता, टोह ।
 आहन-(फ्रा०)-लोहा । उ० चुंबक आहन रीति जिमि संतन हरि सुख-धाम । (स० ४२३)
 आहहिं-हैं । उ० जद्यपि ब्रह्मनिरत मुनि आहहिं । (मा० ७।४२।४) आहिं-हैं । उ० कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता । (मा० १।३१२।४) आहि-(अव०)-१. है, २. हैं, ३. हो । उ० २. एते मान अकस कीबे को आप आहि को ? (क० ७।१००) आही-था । उ० राजधनी जो जेठ सुत आही । (मा० १।१२३।३)
 आहार-(सं०)-खाना, भोजन । उ० रुचिर रूप-आहार-बस्य उन पावक लोह न जान्यो । (वि० ६२)
 आहुति-(सं०)-हवन की सामग्री, हव्य, हवन, आग को बढ़ाने के लिए उसमें डाली जानेवाली सामग्री । उ० लखन उतर आहुति सरिस भृगुवर कोपु कृसानु । (मा० १।२७६)
 आह्लाद-(सं०)-आनन्द, खुशी ।

४

इंगित-(सं०)-अभिप्राय को व्यक्त करने की तदनु रूप चेष्टा, संकेत, इशारा ।
 इंदारुन-(सं० इन्द्रवारुणी)-एक लता और उसका फल । फल देखने में बहुत ही सुन्दर नारंगी जैसा पर जहरीला होता है । इन्द्रायन ।

इंदिरा-(सं०)-१. लक्ष्मी, २. शोभा, कान्ति । उ० १. सती विद्यात्री इंदिरा देखी अमित अनूप । (मा० १।२४)
 इंदीवर-(सं०)-१. नील कमल, २. कमल । उ० १. कुन्दे-न्दीवर सुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामाद्भुभौ । (मा० ४।१। श्लो० १)

इंद्र-(सं०)-१. चन्द्रमा, २. कपूर। उ० २. कुंद इंद्रु सम देह उमारमन करना अयन। (मा० १।१। सो० ४)
 इंद्रुकर-(सं०)-चन्द्रमा की किरण, चाँदनी। उ० प्रनतजन-कुमुदवन-इंद्रुकर-जालिका। (वि० ४८)
 इंद्र-(सं०)-१. एक पानी के देवता जो अन्य देवताओं के राजा हैं। मघवा। इंद्र का स्थान इंद्रलोक है। ये बहुत ही ऐश्वर्यशाली एवं कामुक हैं। विश्व-सुन्दरी अहल्या जब इनसे नहीं ब्याही गई तो ये उसके पीछे पड़े और अंत में छल से रतिदान (दे० 'अहल्या') प्राप्त किया, जिसके फलस्वरूप मुनि-आप से सहस्र भगवाले हो गए। राम-स्वयंवर में उनके दर्शन से इनके भग नेत्र हो गए और ये सहस्राक्ष कहलाए। एक बार गुरु बृहस्पति का सत्कार न करने के कारण देवताओं के साथ इन्हें असुरों से परास्त होना पड़ा था। फिर ब्रह्मा की शरण में जाने पर विश्व-रूप ऋषि इनके गुरु बने और ये विजयी हुए। इंद्र अर्जुन के पिता माने जाते हैं और बहुत ही वीर कहे जाते हैं। मेघनाद ने भी इनको परास्त किया था। २. ऐश्वर्य, ३. श्रेष्ठ, ४. स्वामी, मालिक। उ० ३. योगीन्द्र ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्। (मा० ६।१। श्लो० १)
 इंद्रजाल-(सं०)-१. मायाकर्म, जादूगरी, तिलस्म, बाजी-गरी, २. माया, मोह। उ० २. सोनर इंद्रजाल नहिं भूला। (मा० ३।३। १२)
 इंद्रजालि-(सं०) इंद्रजालिन-इंद्रजाल करनेवाला, बाजी-गर, जादूगर, मायावी। उ० इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। (मा० ३।६। १२)
 इंद्रजित-(सं०) इंद्रजित्-इंद्र को जीतनेवाला, मेघनाद। उ० चला इंद्रजित अतुलित जोधा। (म० १।११। २)
 इंद्रजीत-दे० 'इंद्रजित'। उ० इंद्रजीत आदिक बलवाना। (मा० ६।३। १६)
 इंद्रजीता-दे० 'इंद्रजित'। उ० लछिमन इहाँ हत्यो इंद्र-जीता। (मा० ६।११। १२)
 इंद्रनील-(सं०)-नीलम, नील मणि। उ० इंद्रनील-मजि स्याम सुभग अग, अंग मनोजनि बहु छबि छाई। (गी० १।१०। ६)
 इंद्रानी-(सं०) इंद्राणी-१. इंद्र की पत्नी, शची, २. इंद्रायन।
 इंद्रिन-'इंद्रियाँ'। उ० निसि दिन अमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इंद्रिन-तान्यो। (वि० ८८)
 इंद्रिय-(सं०)-वह शक्ति या शरीरावयव जिससे बाहरी विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। इंद्रियों के दो विभाग किए गए हैं। ज्ञानेंद्रिय (चक्षु, श्रोत्र, नासिका, त्वचा और रसना) तथा कर्मेन्द्रिय (जाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिंग)। कुछ लोग मन को भी इंद्रिय मानते हैं। उ० बुद्धि मन इंद्रिय प्राण-चित्तात्मा, काल परमातु चिच्छक्ति गुर्वी। (वि० ५४)
 इंद्री-(सं०) इंद्रिय-दे० 'इंद्रिय'।
 इंद्रीजित-(सं०) इंद्रियजित्-जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो, सिद्ध।
 इंद्रीजीता-दे० 'इंद्रीजित'। उ० अति अनन्य गति इंद्री-जीता। (वे० १४)

इंधन-(सं०)-जलाने की लकड़ी। उ० दहन राम गुन आम जिमि इंधन अनल प्रचंड। (मा० १।३। २ क)
 ईनारुन-दे० 'ईंदारुन'। उ० विनु हरि भजन ईनारुन के फल, तजत नहीं करआई। (वि० १७५)
 इ (१)-(सं०)-१. कामदेव, २. क्रोध।
 इ (२)-(अव०)-१. यह, २. ही।
 इक-(सं०) एक-एक। उ० मुदित माँगि इक धनुही नृप हँसि दीन। (ब० १६)
 इकीस-(सं०) एकविंशत्-१. इक्कीस, बीस और एक की संख्या, २. अधिक। उ० १. तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि, इकीस सबै। (क० १।७)
 इखु-(सं०) इषु-बाण, तीर। उ० तुलसी इखु-सह राग-धर तारन तरन अधार। (स० २३७)
 इगारहों-(सं०) एकादश-ग्यारहवाँ। उ० तुलसी कियो इगारहों बसनबेष जदुनाथ। (दो० १६८)
 इच्छत-चाहता हुआ, इच्छा करता हुआ। उ० जद्यपि मगन-मनोरथ विधि-बस, सुख इच्छत दुख पावै। (वि० ११६)
 इच्छा-(सं०)-अभिलाषा, कामना, चाह, स्वाहिश। उ० हरि इच्छा भावी बलवाना। (मा० १।२। ६। ३) इच्छाचारी-(सं०) इच्छा + चारिन्-इच्छानुसार चलनेवाला, मनमानी करनेवाला। उ० चले गगन महि इच्छाचारी। (मा० २।३। २। २) इच्छामय-(सं०)-इच्छायुक्त, इच्छानुरूप। उ० इच्छामय नरबेष सँवारें। (मा० १।१२। २। १)
 इच्छित-(सं०)-चाहा हुआ, मनोवांछित, अभिप्रेत। उ० इच्छित फल विनु सिव अवराधें। (मा० १।७। ०। ४)
 इच्छुक-(सं०)-अभिलाषी, चाहनेवाला।
 इत-(सं०) इतः-इधर, इस ओर। उ० इत विधि उत हिमवान सरिस सब लायक। (पा० १।३०) इतहि-इधर, इस ओर। उ० आयसु इतहि स्वामि-संकट उत, परत न कछु कियो है। (गी० ६।१०)
 इतना (१)-इस मात्रा का, इस कदर।
 इतनो-इस मात्रा का, इस कदर, इतना। उ० सबकी न कहैं, तुलसी के मते, इतनो जग जीवन को फलु है। (क० ७।३७) इतनोइ-इतना ही। उ० जीवन-जनम-लाहु लोचन-फल है इतनोइ, लछ्यो आजु सही री। (गी० १।१०। ४) इतनोई-केवल इतना, इतना ही। उ० मन इतनोई या तनु को परम फलु। (वि० ६३)
 इतर-(सं०)-१. और, अन्य, दूसरा, २. नीच, पतित। उ० २. जनु देत इतर नृप कर-विभाग। (गी० २।४६)
 इतराई-(सं०) इतर-इतरा जाते हैं, ऐंठने लगते हैं, घसंटी हो जाते हैं। उ० जस थोरेहु धन खल इतराई। (मा० ४।११। ३)
 इतराज-(अ०) एतिराज-विरोध, बिगाड़, नाराजी। उ० देत कहा नृप काज पर, लेत कहा इतराज। (स० २६१)
 इताति-(अ०) इताअत-आज्ञापालन, ताबेदारी, दबाव, आज्ञा। उ० निसि बासर ताकहँ भलो मानै राम इताति। (दो० १४८)
 इति-(सं०)-१. समाप्तिसूचक अव्यय, समाप्ति, पूर्णता, २. अतः, अतएव, ३. सीमा, हद, ४. ऐसा, ५. इस। उ०

४. इति वदत तुलसीदास संकट-सेष-मुनि-मनरंजनं ।
 (वि० ४५) ५. अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत,
 इति बासना धूप दीजै । (वि० ४७)
 इतिहास-(सं०)-अतीत का काल-क्रम से वर्णन, तवारीख ।
 उ० कहहि वेद इतिहास पुराना । (मा० ११६२)
 इतिहासा-दे० 'इतिहास' । उ० बरनत पंथ विविध इति-
 हासा । (मा० ११८३)
 इते-इतने । उ० इते घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि-
 नेह ? (दो० ५६३) इतो-(सं० इयत)-इतना, इस मात्रा
 का । उ० छमि अपराध छमाइ पाई परि, इतौ न अनत
 समाउ । (वि० १००)
 इत्थं-(सं०)-इस प्रकार से, ऐसे, यों । उ० इदमित्थं कहि
 जाइ न सोई । (मा० ११२१११)
 इदं-(सं०)-यह, यही । उ० इदमित्थं कहि जाइ न सोई ।
 (मा० ११२१११)
 इदानीं-(सं०)-इस समय, अधुना, संप्रति ।
 इन-इस' का बहुवचन या आदरसूचक रूप । उ० निव-
 छावरि प्रान करे तुलसी बलि जाउ लला इन बोलन की ।
 (क० ११५) इनहि-इनको ।
 इनाशन-(सं० इन्द्रवारुणी)-इंद्रायन, एक लता जिसका फल
 देखने में नारंगी की भाँति सुंदर पर विषाक्त होता है ।
 इन्ह-इन । 'इस' का बहुवचन या आदरसूचक रूप । उ०
 इन्ह के दसान कहेउँ बखानी । (मा० ११८५४) इन्हहि-
 इनको । उ० इन्हहि हरषप्रद बरषा एका । (मा० ३१४४२)
 इन्है-इनको । उ० आखिन में सखि ! राखिवे जोग, इन्है
 किमि कै बनबास दियो है ? (क० २१२०)
 इभ-(सं०)-हाथी । उ० रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं
 कालमत्तेभसिहं । (मा० ६१११)
 इमि-(सं० एवम्)-इस प्रकार, इस तरह । उ० होहि प्रेम-
 बस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहि । (मा० २१२१)
 इया-(सं० इदम्)-यह । उ० तौ क्यों बदन देखावतो कहि

बचन हुआ रे । (वि० ३३)
 इयार-(फ्रा० यार)-दोस्त, मित्र, संगी ।
 इरषा-(सं० ईर्ष्या)-डाह, जलन, हसद, दूसरी की बढ़ती
 देखकर जलना ।
 इरषाई-ईर्ष्या, डाह । उ० ममता दादु कुंडु इरषाई । (मा०
 ७१२१११७)
 इरिषा-दे० 'इरषा' । उ० तुम्हरे इरिषा कपट बिसेषी ।
 (मा० ११३६१४)
 इव-(सं०)-समान, सदृश, तुल्य । उ० तपइ अर्वा इव उर
 अधिकाई । (मा० ११५८२)
 इष्ट-(सं०)-१ चाहा हुआ, वांछित, २. अभिप्रेत, ३.
 पूजित । उ० ३. इष्ट देव इव सब सुखदाता । (मा० १।
 २४२।३)
 इस-(सं० एषः)-'यह' शब्द में जब कोई विभक्ति लगानी
 होती है तो उसे 'इस' का रूप दे देते हैं ।
 इसान-(सं० ईशान)-शिव, शंकर, महादेव । उ० तुलसीस
 तोरिपु सरासन इसान को । (गी० १।८६)
 इसानु-दे० 'इसान' । उ० दोस निधानु, इसानु सत्य सब
 भाषेउ । (पा० ७१)
 इह-(सं०)-१. यहाँ, इस स्थान में, २. इस लोक और पर-
 लोक में । उ० १. भजतीह लोके परे वा नराणां । (मा०
 ७।१०।८।श्लो०७)
 इहइ-(?) यह ही, यही । उ० इहइ सगुन फल दूसर
 नाहीं । (मा० २।७।४)
 इहाँ-(सं० इह)-यहाँ, इस स्थान पर । उ० इहाँ न लागिहि
 राउर माया । (मा० २।३३।३)
 इहि-१ इस, २. इसमें, ३. इसके । उ० १. इहि आँगन
 विहरत मेरे बारे ! (गी० २।४) ३. कहा प्रीति इहि
 लेखे ? (गी० २।४)
 इहे-यही । उ० धरनी धन धाम सरीर भलो, सुर लोकहु
 चाहि इहै सुख स्वै । (क० ७।४१)

७५

ईधन-(सं० ईंधन)-जलाने की लकड़ी ।
 ईधनु-दे० 'ईधन' । उ० ईधनु पात किरात मित्ताई ।
 (मा० २।२५।११)
 ई (१)-(सं० हि)-१. निकट का संकेत, यह । २. ज्ञोर
 देने का शब्द, ही । उ० १. रावरी ई गति बल-विभव
 विहीन की । (क० ७।१७७)
 ई (२)-(सं०)-लक्ष्मी ।
 ईछा-(सं० इच्छा)-चाह, अभिलाषा । उ० बिसरी सबहि
 छुड़ के ईछा । (मा० ६।२०।४)
 ईडा-(सं० ईडा)-स्तुति, प्रशंसा ।
 ईडयं-(सं०)-पूजनीय, पूजा के योग्य । उ० नौमीडयं
 गिरिजापति गुणनिधि कदपैहं शंकरम् (मा० ६।१।श्लो०२)

ईति-(सं०)-१. खेती को हानि पहुँचानेवाले छः प्रकार
 के उपद्रव । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहा, पक्षी तथा
 अन्य राजा की चढ़ाई । २. बाधा । उ० १. ईति भीति
 जनु प्रजा दुखारी । (मा० २।२३।१२)
 ईदश-(सं०)-ऐसे, इस प्रकार, इस भाँति ।
 ईरषा-(सं० ईर्ष्या)-डाह, हसद, जलन । उ० राग रोष
 ईरषा कपट कुटिलाई भरे । (क० ७।११।६)
 ईर्षणा-(सं० ईर्ष्याण)-ईर्षा, हसद, डाह ।
 ईर्षा-दे० 'ईरषा' ।
 ईर्ष्या-(सं०)-डाह, हसद, दूसरे की बढ़ती देखकर जलना ।
 ईश-(सं०)-१. स्वामी, मालिक, २. राजा, ३. परमेश्वर,
 ईश्वर, ४. शिव, महादेव ।

ईशान-(सं०)-१. पूरब और उत्तर के बीच की दिशा, २. शिव, ३. ग्यारह की संख्या, ४. स्वामी । उ० १. नमा-मीशमीशान निर्वाणरूप । (मा० ७१०८ श्लो० १)
 ईश्वर-(सं०)-१. स्वामी, मालिक, २. भगवान्, ईश । उ० १. निरीहमीश्वरं विभुं । (मा० ३।४। श्लो० ६)
 ईषण-(सं० एषण)-इच्छा, आकांक्षा, अभिलाषा ।
 ईषणा-दे० 'ईषण' ।
 ईषत्-(सं०)-थोड़ा, कम, कुछ, अल्प ।
 ईषना-(सं० एषण)-दे० 'ईषण' । उ० सुत वित्त लोक ईषना तीनी । (मा० ७।७।१३)
 ईस-(सं० ईश)-दे० 'ईश' । उ० ३. अंबु ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु । (मा० २।२४४) ईसनि-ब्रह्मा और

शिव । उ० ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि, मुनीसनिहूँ । (वि० २४६) ईसहि-शिव जी को । उ० ईसहि चदाय सीस बीसबाहु बीर तहाँ । (क० २।३२)
 ईसा-(ईश)-दे० 'ईश' । उ० ४. एहि बिधि भए सोचबस ईसा । (मा० १।४६।२)
 ईसु-दे० 'ईस' । उ० ३. तहँ-तहँ ईसु देउ यह हमहीं । (मा० २।२४।३)
 ईस्वर-(ईश्वर)-दे० 'ईश्वर' । उ० २. मुधा बचन नहि ईस्वर कहई । (मा० ७।६४।३) ईस्वरहि-ईश्वर पर, ईश्वर को । उ० कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ । (मा० ७।४३)
 ईहा-(सं०)-इच्छा, लोभ, चाह, वांछा ।

उ

उँजिआरा-(सं० उज्ज्वल)-उजाला, प्रकाश । उ० तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा । (मा० ७।११८।२)
 उ (१)-(सं०)-१. ब्रह्मा, २. नर ।
 उ (२)-(?)-भी । उ० औरउ एक कहउँ निज चोरी । (मा० १।१६।२)
 उअहि-(सं० उदयन)-उदय हों, उगें । उ० राकापति षोडस उअहि तारागन समुदाई । (मा० ७।७।८।१०) उएँ-उदय हुए, उदय होने पर । उ० राम वान रवि उएँ जानकी । (मा० २।१६।१) उए-उगे, उदित हुए । उ० मनहूँ इन्द्रधनु उए सुहाए । (मा० ६।८।३)
 उकठा-(सं० अक्+काष्ठ)-सूखा, शुष्क । उकठे-सूखे, शुष्क हुए । उ० मिलनि बिलोकि स्वामि सेवक की उकठे तरु फूले-फले । (गी० २।४१) उकठेउ-उकठे हुए भी, सूखे भी । उ० उकठेउ हरित भए जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई । (गी० २।४६)
 उकसहि-(सं० उत्कर्षण)-उचकते हैं, उठते हैं । उ० पुनि-पुनि मुनि उकसहि अकुलाहीं । (मा १।१३।२।१)
 उकार-(सं० ओंकार)-ओं३म् । उ० गहु उकार बिबिचार पद मा फल हानि बिमूल । (स० ७।११)
 उकुति-(सं० उक्ति)-कथन, वचन । उ० सुनि-कति उकुति पवन सुत केरी । (मा० ६।१।२)
 उक्त-(सं०)-कहा हुआ, कथित ।
 उक्ति-(सं०)-१. कथन, वचन, २. अनोखा वचन ।
 उखरैया-(सं० उत्खिदन)-उखाड़नेवाले । उ० भूमि के हरैया उखरैया भूमि-वरनि के । (गी० १।८।३)
 उखल-(सं० उलूखल)-लकड़ी या पत्थर का एक पात्र जिसमें मूसल से अन्न आदि कूटते हैं । ओखल ।
 उखारे-(सं० उत्खिदन)-उखाड़ना, निकालना । उ० गाढ़े भली, उखारे अनुचित, बनि आए बहिबे ही । (कृ० ४०)
 उखारी-उखाड़ना, निकालना । उ० जरि तुम्हारि चह सवति उखारी । (मा० २।१७।४)

उगिलत-(सं० उद्विलन)-उगलते हैं, मुँह में से निकालते हैं । उ० मनहूँ क्रोध बस उगिलत नाही । (मा० १।१२।६।३)
 उगिल्यो-उगल दिए, बाहर निकाल दिए । उ० ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं, त्योही तिहारे हिये न हितैहौं । (क० ७।१०।२)
 उगो-(सं० उद्गमन)-उदय हुआ । उ० 'मैं तैं' मेटयो मोहतम, उगो आतम-मानु । (वै० ३३)
 उग्र-(सं०)-१. प्रचंड, उत्कट, तेज, २. महादेव, शिव, ३. वत्सनाग विष, ४. विष्णु, ५. सूर्य, ६. कठिन, विकट । उ० ६. परम उग्र नहि बरनि सो जाई । (मा० १।१७।१) उग्रकर्मा-निदय, उग्रकर्म का करनेवाला ।
 उग्रसेन-(सं०)-१. मथुरा का राजा, कंस का पिता, कृष्ण का नाना । उ० तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बँत-कर धारी । (वि० ६८)
 उघटत-(सं० उद्घाटन)-कहते हैं, प्रकट करते हैं । उ० धीर धीर सुनि समुक्ति परसपर, बल उपाय उघटत निज हिय के । (गी० ४।१) उघटहि-कहते हैं, बार-बार कहते हैं । उ० उघटहि छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान । (गी० १।२)
 उघरत-(सं० उद्घाटन)-प्रकट हो जाता है, स्पष्ट हो जाता है, प्रकाश में आ जाता है । उ० छीर-नीर-बिबरन समय बक उघरत तेहि काल । (दो० २३३) उघरहि-उघरने पर, प्रकट होने पर । उ० उघरहि अंत न होइ निबाहू । (मा० १।७।३) उघरे-खुल गए, अनावृत्त हो गए । उ० उघरे पटल पर सुधर मति के । (मा० १।२८।३)
 उघार-नंगे बदन, नग्न, बिना वस्त्रादि के । उ० द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी । (मा० ७।१०।१४)
 उघारा-खोला । उ० तब सिव तीसर नयन उघारा । (मा० १।८।३) उघारि-उघारकर, खोलकर । उ० नयन उघारि सकल दिसि देखी । (मा० १।८।२) उघारी-नग्न, अनावृत । उ० ते हटि देहि कपाट उघारी । (मा० ७।११।६)

उघारे-खोले । उ० धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे रायें । (मा० २।३०) ।
 उचकि-(सं० उच्च + करण)-उचक कर, ऊँचे होकर । उ० उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो । (क० ४।१) उचके-ऊँचे हुए, कूदे । उ० उचके उचकि चारि अंगुल अचलुगो । (क० ४।१)
 उचाट-(सं० उच्चाट)-१. मन का न लगना, विरक्ति, उदासीनता, २. उच्चाटन मंत्र पढ़कर वश में करना ।
 उचाटि-उच्चाटन करके, दूर करके, हटा करके । उ० अघ उचाटि मन बस करै, मारै मद मार । (वि० १०८)
 उचाटे-उच्चाटन कर दिया, उदासीन कर दिया । उ० लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसह पाइ । (मा० २।३।१६)
 उचाटु-दे० 'उचाट' । उ० १. सो उचाटु सबके सिर मेला । (मा० २।३०२।२)
 उचारही-(सं० उच्चार)-१. बोलने लगे, उच्चारण करने लगे, २. उच्चारण करते हैं, बोलते हैं । उ० १. कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारही । (मा० १।२६।१।३०१)
 उचारा-उच्चारण किया, कहा । उचारी-उच्चारण किया, बोले । उ० हरषि सुधा सम गिरा उचारी । (मा० १।११२।३) उचारे-बोले, कहे । उ० मधुर मनोहर बचन उचारे । (मा० १।२६।१।२)
 उचित-(सं०)-योग्य, ठीक, मुनासिब । उ० कह सिव जदपि उचित अस नाही । (मा० १।७७।१) उचिता-नुचिन्हि-उचित और अनुचित को । उ० उचितानुचितहि हेरि हिय करतब करइ सँभार । (सं० ६८६)
 उच्च-(सं०)-ऊँचा, श्रेष्ठ, उत्तम । उ० सिंहासन अति उच्च मनोहर । (मा० ६।११।१।२)
 उच्चरत-बोलते हैं, उच्चारण करते हैं । उ० लंगूर लपेटत पटक भट, 'जयति राम जय' उच्चरत । (क० ६।७७)
 उच्चरही-उच्चारण करते हैं, बोलते हैं । उ० बंदी विरिदावलि उच्चरही । (मा० १।२६।२।२) उच्चरै-उच्चारण करता है, बोलता है । उ० यह दिन रैन नाम उच्चरै । (वि० ४१)
 उच्चाटन-(सं०)-१. लगी वस्तु को अलग करना, विरलेषण, २. अनमनापन, विरक्ति ।
 उच्छलित-(सं० उच्छलन)-उच्छलते हुए, उचकते हुए । उ० चलित महि मेह, उच्छलित सायर सकल । (क० ६।४४)
 उछंग-(सं० उत्संग)-गोद, क्रोड़, अंक । उ० सखी उछंग बैठी पुनि जाई । (मा० १।६८।३)
 उछंगा-दे० 'उछंग' । उ० प्रभुकृत सीस कपीस उछंगा । (मा० ६।११।३)
 उछरत-उछलते हैं । उ० उछरत उतरात हहरात मरि जात, (क० ७।१७६) उछरि-उछलकर, कूदकर । उ० ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो । (वि० १६१)
 उछरि-उछलकर, कूदकर । उ० तुलसि उछरि सिंधु मेह मसकतु है । (क० ६।१६)
 उछाह-(सं० उत्साह)-उत्साह, उमंग, प्रसन्नता, हर्ष । उ० ताकत सराध कै विबाह कै उछाह कछु । (क० ७।१४८)
 उछाहा (१)-दे० 'उछाह' ।
 उछाहा (२)-(सं० उत्सव)-शुभ अवसर, पर्व । उ० संगसंग सब भए उछाहा । (मा० २।१०।३)

उछाहु-दे० 'उछाह' । उ० सकल सुरन्ह के हृदयँ अस संकर परम उछाहु । (मा० १।८८)
 उछाहु-दे० 'उछाह' । उ० अति असंक मन सदा उछाहु । (मा० १।१३।७।२)
 उजयार-(सं० उज्वल)-उजाला, प्रकाश, रोशनी ।
 उजरउ (?)-उजड़े, उजड़ जावे । उ० बसउ भवतु उजरउ नहि डरऊँ । (मा० १।८०।४) उजरै-१. उजड़ने पर, उजड़ जाने पर, उजड़ने में, २. उजड़ गए । उ० १. उजरै हरष विषाद बसेरै । (मा० १।४।१)
 उजागर-(सं० जागर)-१. प्रकाशित, जाज्वल्यमान, जग-मगाता हुआ, २. प्रसिद्ध, नामवर । उ० २. पंडित मूढ़ मलीन उजागर । (मा० १।२८।३)
 उजागरी-उजागर का स्त्रीलिंग, १. प्रकाशित, उज्वल, २. प्रसिद्ध । उ० २. सिय लघु भगिनि लखन कहँ रूप-उजागरी । (जा० १।७३)
 उजार-उजाड़ रहे हैं । उ० जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज । (मा० १।२८) उजारा-उजाड़ दिया । उ० भवतु मोर जिन्ह बसत उजारा । (मा० १।६७।१) उजारि-१. उजाड़, नष्ट-भ्रष्ट, जीर्ण-शीर्ण, २. उजाड़कर, नष्ट कर । उ० १. होइहि सब उजारि संसारु । (मा० १।१७।४) २. बन उजारि, पुर जारि । (मा० ६।२६) उजारी-१. उजाड़ दिया, नष्ट कर दिया, २. उजाड़नेवाला । उ० १. तेहि असोक बाटिका उजारी । (मा० २।१८।२) उजारे-उजाड़ दिया, उजाड़ा । उजारी-उजाड़ा, नष्ट किया । उ० कुल गुरु सचिव साधु सोचतु विधि को न बसाइ उजारी । (गी० २।६६) उजार्यो-उजाड़ा, उजाड़ दिया । उ० कानन उजार्यो तौ उजार्यो न बिगारेउ कछु । (क० २।११)
 उजियरिया-(सं० उज्वल)-उजियाली, प्रकाश पूर्ण, उजेली । उ० डहक न है उजियरिया निसि नहि धाम । (ब० ३७)
 उजियार-(सं० उज्वल)-प्रकाश, उजाला । उ० तुलसी भीतर बाहिरौ जो चाहसि उजियार । (दो० ६)
 उजियारे-१. प्रकाशमान, २. प्रसिद्ध, ३. प्रकाशित करने-वाले, प्रकाश फैलानेवाले । उ० ३. अंधियारे मेरी बार क्यों त्रिभुवन-उजियारे ! (वि० ३३)
 उजेनी-(सं० उज्जयिनी)-उज्जैन, मालवा की प्राचीन राजधानी । उ० गयउँ उजेनी सुनु उरगारी । (मा० ७।१०।२।१)
 उज्जारि-उजाड़कर । उ० गहन उज्जारि पुर जारि सुत मारि तव । (क० ६।२१)
 उज्वल-(सं०)-१. प्रकाशमान, २. शुभ, स्वच्छ, निर्मल, ३. सफेद, श्वेत ।
 उठई-(सं० उत्थान)-उठता । उ० उठइ न कोटि भाँति बधु करहीं । (मा० १।२५०।४) उठत-उठते ही, खड़े होते ही । उ० अवासि राम के उठत सरासन दूटिहि । (जा० ६८)
 उठति-उठती हुई, चढ़ती हुई, यौवन को प्राप्त होती हुई । उ० उठति बयस, मसि भीजति, सखोने सुटि । (गी० २।३७) उठन-उठना, खड़ा होना । उ० चाहत उठन करत मति धीरा । (मा० १।१६।२) उठब-उठना, खड़ा होना । उ० प्रेम मगन तेहि उठब न भावां । (मा० २।३३।१) उठहु-उठो, खड़े हो, उठिए, खड़े

होइए। उ० उठहु राम भंजहु भव चापा। (मा० १२२४३) उठा-खड़ा हुआ। उ० सुनत दसानन उठा रिसाई। (मा० १४११) उठि-उठकर, खड़ा होकर। उ० गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं। (मा० १७२३) उठीं-खड़ी हुईं। उ० सादर उठीं भाग्य बड़ जानी। (मा० १३२२१) उठी-खड़ी हुई। उ० पुनि सँभारि उठी सो लंका। (मा० १४३) उठे-खड़े हुए। उ० तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा। (मा० १४६११) उठेउ-खड़े हुए, उठे। उ० उठेउ गवहि जेहि जान न रानी। (मा० ११७२२) उठेसि-खड़ा हुआ। उठै-उठते हैं। उ० सगन मनोरथ मोद नारिनर प्रेम-बिबल उठै गाइकै। गी० १६८) उठ्यो-उठा। उ० उठ्यो मेघनाद सविषाद कहै रावनी। (क० १६) उठ्यो-दे० 'उठ्यो'।

उठाइ-उठाकर, उपर कर के। उ० कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। (मा० १३३२) उठाई-उठाकर, उपर कर के। उ० सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई। (मा० ११६१३) उठाएँ-उठाकर, उपर कर के। उ० चकित बिलोकत कान उठाएँ। (मा० ११२६४) उठाए-उठाया, उपर कर लिया। उ० तुरत उठाए करुनापंजा। (मा० ११४८४) उठाव-उठाने लगा। उ० पर्यो बीर बिकल उठाव दस-मुख अतुल बल महिमा रही। (मा० ६८३) उ० १) उठावन-उठाना, उपर करना। उ० तेहि चह उठावन सूढ़ रावन, जान नहि त्रिभुअन धनी। (मा० ६८३) उ० १) उठावा-उठाना, उपर करना। उ० बार-बार प्रभु चहइ उठावा। (मा० १३३१) उठावौं-उठाऊँ, उपर करूँ। उ० कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं। (मा० १२२३२)

उड़- (सं० उड़ु)-नक्षत्र, तारा।

उड़इ- (सं० उड़ुयन)-उड़ता है, उड़ रहा है। उ० उड़इ अभीर मनहुँ अरुनारी। (मा० ११६१३) उड़त-१. उड़ता है, २. उड़ते हुए। उड़न-उड़ना। उ० चहै मेरु उड़न बड़ी बयारि बही है। (गी० १२४) उड़ि-उड़कर। उ० संधानि धनु सर निकर छाड़ैसि उरग जिमि उड़ि लागहीं। (मा० ६८२) उ० १)

उड़ाइ-उड़कर। उ० रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो उपर भूरि उड़ाइ। (मा० ६१३) उड़ाई-१. उड़कर, २. उड़ गई। उ० १. अस जानहि जियँ जाउँ उड़ाई। (मा० २१२८१) उड़ाउँ-उड़ता हूँ। उ० लरिकाई जहँ जहँ फिरहि तहँ जहँ संग उड़ाउँ। (मा० ७७२ क) उड़ात-१. उड़ते हुए, उड़ने में, २. उड़ते हैं। उ० १. बोलत मधुर उड़ात सुहाए। (मा० ७२८) उड़ानी-उड़ी है। उ० लिए अपनाइ लाइ चंदन तन, कछु कटु चाह उड़ानी। (क० ४७) उड़ाव-उड़ाता है। उ० मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। (मा० ७१०६६) उड़ावहीं-उड़ा रहे हों, उड़ाते हों। उ० संश्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं। (मा० ३२०) उ० २) उड़ाहि-१. उड़ने लगे, २. उड़ते हैं। उ० १. सेतुबंध भइ भीर अति, कपि बभ पंथ उड़ाहि। (मा० ६४) उड़ाहीं-उड़ जाते हैं। उ० जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। (मा० ११२१६) उड़ावन-उड़ाना। उ० चहत उड़ावन फूँकि पहारू। (मा० १२७३१)

उड़ावनिहारी-उड़ा देनेवाली। उ० संसय बिहग उड़ावनिहारी। (मा० १११४१)

उड़ु- (सं०)-नक्षत्र, तारा। उ० जिमि उड़ुगन मंडल बारिद पर नवअह रची अथाई। (वि० ६२)

उड़ुपति- (सं०)-चंद्रमा, राकेश। उ० प्रेमपियूषरूप उड़ुपति विनु कैसे हो अलि पैयत रबि पाहीं। (क० १८)

उड़ु-दे० 'उड़ु'।

उतग- (सं० उतुंग)-ऊँचा, बुलंद। उ० अति उतंग जल-निधि चहुँ पासा। (मा० १३३६)

उत- (?) -वहाँ उस ओर, उधर। उ० सुत सनेह इत बचसु उत संकट परेउ नरेसु। (मा० २४०)

उतकंठा-दे० 'उत्कंठा'। उ० सिय हियँ अति उतकंठा जानी। (मा० १२२६२)

उतकरष-दे० 'उत्कर्ष'। उ० रिपु उतकरष कहत सठे दोऊ। (मा० १४०२)

उतपति- (सं० उत्पत्ति)-पैदाइश, जन्म, उद्गम। उ० आदि सृष्टि उपजी जबहि तब उतपति भै मोरि। (मा० ११६२)

उतपात-दे० 'उत्पात'। उ० समन अमित उतपात सब भरत चरित जपजाग। (मा० १४१)

उतपाती- (सं० उत्पातिन)-उत्पात करनेवाला, उपद्रवी। उ० अब दुइ कपि आए उतपाती। (मा० ६४४२)

उतपातु-दे० 'उत्पात'। उ० सब उतपातु भयउ जेहि लागी। (मा० २२०१३)

उतर-दे० 'उत्तर'। उ० १. केवट कुसल उतर सबिवेका। (मा० १४११)

उतरअयन- (सं० उत्तरायण)-सूर्य की मकर रेखा से उत्तर कर्क रेखा की ओर गति। उ० दिनमनि गवन कियो उतर अयन। (गी० १४६)

उतरइ- (सं० अवतरण)-उतरे, नीचे आवे। उतरत-उतरने में, नीचे आने में। उ० उदधि अपार उतरत नहि लागी बार, (क० ६२४) उतरहि- (सं० उत्तरण)-पार उतरते हैं, पार करते हैं। उ० उतरहि नर भवसिंधु आपारा। (मा० २१०१२) उतरि-१. उतर, पार हो, २. उतर कर। उ० १. तुलसी उतरि जाहु भव उदधि अगाधु। (ब० ६१) उतरिबो-उतरना, उतरना है। उ० सोखि कै खेत कै बाँधि सेतु करि, उतरिबो उदधि न बोहित चाहिबो। (गी० २१४) उतरिहि-उतर जायेगी, पार हो जावेगी। उ० उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई। (मा० १२६१४)

उतरी-अवतरित हुई, उतर आयी। उ० मनहुँ करुनरस कटकई उतरी अवध बजाइ। (मा० २४६) उतरें-उतर पड़े, नीचे आए। उ० उतरे राम देवसरि देखी। (मा० २८७१) उतरै-उतरे, नीचे आवे। उ० जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ। (मा० १२६६)

उतराई-नदी के पार उतरने का महसूल। उ० पद कमल धोइ चड़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं। (मा० २१००) उ० १)

उतरात- (सं० उत्तरण)-पानी पर तैरते हैं। उ० उकरत उतरात हहरात मरि जात। (क० ७१७६)

उतर-दे० 'उतर'। उ० जाइ उतर अब देहउँ काहा। (मा० १२४१)

उताइल-(सं० उत् + स्वरा)-उतावली से, जल्दी। उ० चला उताइल त्रास न थोरी। (मा० ३।२६।१२)
 उताना-(सं० उत्तान)-उतान, चित्त, पीठ को भूमि पर लगाए हुए। उ० जिमि टिटिभ खग सूत उताना। (मा० ६।४०।३)
 उतार-१. ढाल, नीचा, २. नीच, पापी। उ० २. अपत, उतार, अपकार को अगार जग। (क० ७।६८)
 उतारहिं-(सं० अवतरण)-उतारती हैं। उ० कनक धार आरती उतारहिं। (मा० ७।७।२) उतारहि-(सं० उत्तरण)
 उतार दो, उस पार कर दो। उ० होत बिलंबु उतारहि पारू। (मा० २।१०।१।१) उतार-उतारकर, निकालकर। उ० चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। (मा० २।२७।१)
 उतारिहैं-उतारूंगा। उ० तब लगी न तुलसीदास नाथ कृपाल पाह उतारिहैं। (मा० २।१००।१) उतारी-उतारा, निकाला। उ० मनिमुदरी मन मुदित उतारी। (मा० २।१०२।२)
 उतारा-१. नदी आदि पार करने की क्रिया, २. पड़ाव, टिकने का कार्य, ३. प्रेत-वाधा आदि की शांति।
 उतारू-उद्यत, तत्पर संनद्ध।
 उतायल-दे० 'उताइल'।
 उतावल-दे० 'उताइल'।
 उतुंग-दे० 'उत्तुंग'।
 उत्कांठा-(सं०)-प्रबल इच्छा, लालसा।
 उत्कांठित-उत्सुक, इच्छुक।
 उत्कट-(सं०)-उग्र, विकट, प्रचंड, दुःसह।
 उत्कर्ष-(सं०)-१. श्रेष्ठता, उत्तमता, २. बढ़ाई, प्रशंसा, ३. परिपूर्णता, समृद्धि।
 उत्कृष्ट-(सं०)-उत्तम, श्रेष्ठ।
 उत्तम-(सं०)-१. श्रेष्ठ, अच्छा, भला, २. छोटी रानी सुरुचि से उत्पन्न राजा उत्तानपाद का पुत्र, ध्रुव का सौतेला भाई। उ० १. उत्तम मध्यम नीच गति, पाहन सिकता पानि। (दो० ३।२२)
 उत्तर-(सं०)-१. किसी प्रश्न का जवाब, २. दक्षिण के सामने की दिशा, ३. पिछला, बाद का। उ० २. कियो गमन जनु दिन नाथ उत्तर संग मधु माधव लिए। (जा० ३।६)
 उत्तरायण-(सं०)-सूर्य की मकर रेखा की ओर से कर्क रेखा की ओर गति।
 उत्तान-(सं०)-उपर मुख किए, चित्त, सीधा।
 उत्तानपाद-(सं०)-महात्मा ध्रुव के पिता। राजा उत्तानपाद स्वार्थधुव मनु के पुत्र थे। इनके छोटे भाई का नाम श्रियन्न था। उत्तानपाद की सुनीति और सुरुचि दो रानियाँ थीं। सुनीति से ध्रुव, कीर्तिमान् और आयुष्मान् तथा सुरुचि से उत्तम, ये चार इनके पुत्र थे। उ० नृप उत्तानपाद सुत तासू। (मा० १।१४।२।२)
 उत्तुंग-(सं०)-ऊँचा, बहुत ऊँचा।
 उत्पत्ति-दे० 'उत्पत्ति'। उ० अनुभव सुख-उत्पत्ति करत, भवभ्रम धरै उठाह। (दो० २०)
 उत्पत्ति-(सं०)-पैदाइश, जन्म, उद्भव।
 उत्पन्न-(सं०)-जन्मा हुआ, पैदा।

उत्पल-(सं०)-१. कमल, जलज, २. नील कमल। उ० १. नीलोत्पल तन स्थाम, काम कोटि सोभा अधिक। (मा० ४।३०।ख)
 उत्पात-(सं०)-उपद्रव, आक्रान्त, अशांति, हलचल। उ० जलधि-लंघन-सिंह, सिंहिका-सद-मथन, रजनिचर-नगर उत्पात केतू। (वि० २।५)
 उत्पाती-(सं०-उत्पातिन्)-उत्पात करनेवाला, उपद्रवी।
 उत्पादक-(सं०)-उत्पन्न करनेवाला।
 उत्प्रेक्षा-(सं०)-उद्भावना, आरोप।
 उत्फुल्ल-(सं०)-विकसित, फूला हुआ, प्रफुल्लित।
 उत्सर्ग-(सं०)-१. त्याग, न्यौछावर, बलिदान, २. समाप्ति।
 उत्सव-(सं०)-१. मंगल-कार्य, धूम-धाम, २. पर्व, त्यौहार। उ० १. पिताभवन उत्सव परम, जौ प्रभु आयसु होइ। (मा० १।६।१)
 उत्साह-(सं०)-१. उमंग, उछाह, जोश, हौसला, २. साहस, हिम्मत।
 उथपन-(सं०-उत्थापन)-उजड़े या उखड़े हुए, स्थान-भ्रष्ट। उ० रघुकुल-तिलक सदा तुम्ह उथपनथापन। (जा० १।६३) उथपनहार-उखाड़नेवाले, स्थानभ्रष्ट करनेवाले। उ० उथपे-थपन, थिरथपे-उथपनहार, केसरीकुमार बल आपनो सँभारिए। (ह० २।२) उथपे-उखड़े, उजड़े, स्थानभ्रष्ट। उ० उथपे-थपन, थिरथपे उथपनहार। (ह० २।२) उथपे-उखाड़े, हटावे। उ० उथपे तेहि को जेहि राम थपे ? (क० ७।४७)
 उदउ-(सं०-उदय)-ऊपर आना, निकलना, प्रकट होना। उ० दिन दिन उदउ अनंद अब, सगुन सुमंगल देत। (प्र० ७।१।७)
 उदक-(सं०)-जल, पानी। उ० पद पखारि पादोदक लीन्हा। (मा० ७।४८।१)
 उदघाटी-(सं०-उदघाटन)-प्रकाशित किया, खोला, प्रकट किया। उ० तब भुजबल महिमा उदघाटी। (मा० १।२३।६।३)
 उदधि-(सं०)-१. समुद्र, २. मेघ, ३. घड़ा। उ० १. बाँधो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस। (मा० ६।२)
 उदपान-(सं०)-१. कुआँ, २. कुएँ के समीप का गड्ढा, खाता।
 उदवस-(सं०-उद्वासन)-उजाड़, सूना। उ० उदवस अवध नरेस बिनु, देस दुखी नर नारि। (प्र० ७।६।१)
 उदवेग-(सं०-उद्देग)-१. चित्त की व्याकुलता, २. भय, डर। उदवेग-दे० 'उदवेग'। उ० मुनि उदवेग न पावै कोई। (मा० २।१२।६।१)
 उदभव-(सं०-उद्भव)-उत्पत्ति, जन्म, सृष्टि। उ० उदभव पालन प्रलय कहानी। (मा० १।१६।३।३)
 उदभासित-(सं०-उद्भासित)-१. उत्तेजित, उद्दीप्त, २. प्रकट, प्रकाशित।
 उदय-उदय के समय। दे० 'उदय'। उ० १. अरुणोदय सङ्घे कुसुद, उदगन जोति मलीन। (मा० १।२३।८)
 उदय-(सं०)-१. ऊपर आना, निकलना, २. प्रातः, सूर्यो-

दय, ३. उन्नति, बढ़ती। उ० १. रवि निज उदय ब्याज रघुराया। (मा० १।२३।३)

उदयगिरि-(सं०)-पुराणानुसार उदयाचल नामक एक पर्वत जो पूरब दिशा में है और जिस पर सूर्य का उदय होता है। इसी प्रकार अस्ताचल पर सूर्यास्त होता है। उ० उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग। (मा० १।२५४)

उदयसैल-(सं० उदयशैल)-दे० 'उदयगिरि'। उ० उदय-सैल सोहैं सुंदर कुँवर, जोहैं। (गी० १।८२)

उदर-(सं०)-१. पेट, जठर, २. भीतरी भाग, अंदर। उ० १. त्रिबली उदर गँभीर नाभि-सर, जहँ उपजे बिरचि ज्ञानी। (वि० ६३)

उदरगत-(सं०)-पेट में, उदर में।

उदररेख-(सं० उदररेखा)-पेट पर की तीन रेखाएँ, त्रिबली। उ० तत्रित विनिन्दक पीत पट उदर रेख बर तीनि। (मा० १।१४७)

उदवेग-दे० 'उद्वेग'।

उदार-(सं०)-१. दाता, दानशील, २. श्रेष्ठ, बड़ा, ३. दयालु, कृपालु, ४. सरल, सीधा। उ० २. सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगे कहब। (मा० १।१२० ग) उदारहि-१ उदार को, २. उदार, दयालु। उदारहि-१. उदार को, २. उदार, दयालु। उ० २. तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि। (मा० ७।३०।५)

उदारा-दे० 'उदार'। उ० १. एहि महँ रघुपति नाम उदारा। (मा० १।१०।१)

उदार-दे० 'उदार'।

उदास-(सं०)-१. जिसका चित्त किसी चीज़ से हट गया हो, विरक्त, २. भगड़े से अलग, तटस्थ, ३. दुखी, खिन्न। उ० १. एक उदास भायँ सुनि रहहीं। (मा० २।४८।३)

उदासा-दे० 'उदास'। उ० १. तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा। (मा० १।७१।३)

उदासी-१. विरक्त, त्यागी, संन्यासी, २. एक संप्रदाय विशेष तथा उसके माननेवाले, ३. खिन्नता, उत्साह व आनंद का अभाव। उ० १. तापस बेप विलेपि उदासी। (मा० २।२१।२)

उदासीन-(सं०)-१. शत्रु-मित्र भाव से रहित, विरक्त, निष्पक्ष, २. रूखा, उपेक्षायुक्त। उ० १. उदासीन तापस बन रहहीं। (मा० २।२१।२)

उदित-(सं०)-१. जो उदय हुआ हो, निकला हुआ, २. प्रकट, ज्ञाहिर, ३. प्रसन्न, प्रफुल्लित। उ० १. द्वार भीर सेवक सचिव कहहिँ उदित रवि देखि। (मा० २।३७)

उदिताचल-(सं०)-दे० 'उदय गिरि'।

उदै (सं० उदय)-दे० 'उदय'।

उदोत-(सं० उद्योत)-१. प्रकाश, रोशनी, २. प्रकाशित, दीप्त, ३. शुभ्र, उत्तम। उ० १. हाथ लेत पुनि मुकुटा करत उदोत। (ब० १)

उदौ-(सं० उदय)-दे० 'उदय'। उ० १. दुइज न चंदा देखिए, उदौ कहा भरि पाख। (दो० ३४४)

उदगम-(सं०)-१. उत्पत्ति का स्थान, निकास, २. उदय, अविर्भाव।

उद्घाटन-(सं०)-उघाड़ना, खोलना, प्रकट करना। उद्घाटी-१. खोला, प्रकट किया, २. खोलनेवाली, प्रकट करनेवाली।

उहंड-(सं०)-१. निडर, अकलब, २. उद्धत, उजड़।

उदित-(सं० उदित)-प्रकाशित, ज्ञाहिर, प्रकट।

उद्देश्य-(सं०)-लक्ष्य, प्रयोजन, इष्ट।

उद्धत-(सं०)-उग्र, प्रचंड, उहंड। उ० यालुधानोद्धत-कृष्ण-कालाग्निहर, सिद्ध-सुर-सज्जनानंद सिंधो। (वि० २७)

उद्धरन-(सं० उद्धरण)-१. मुक्त होने की क्रिया, बुरी अवस्था से अच्छी अवस्था में आना। २. मुक्त करनेवाला, उद्धार करनेवाला। उ० २. भूमि-उद्धरन भूधरन-धारी। (वि० ५६)

उद्धरहुगे-उद्धार करोगे, मुक्ति दोगे। उ० तिन्हहिँ सम मानि मोहिँ नाथ उद्धरहुगे। (वि० २११)

उद्धव-(सं०)-१. उत्सव, २. यज्ञ की आग, ३. कृष्ण के एक यादव मित्र। रिशते में ये कृष्ण के मामा लगते थे। इनका दूसरा नाम देवश्रवा था। ये बृहस्पति के शिष्य कहे जाते हैं। इनके पिता का नाम सत्यक था। इनको कृष्ण ने गोपियों को समझाने के लिए भेजा था।

उद्धार-(सं०)-छुटकारा, मुक्ति, त्राण।

उद्धारन-उद्धार करनेवाला, मुक्तिदाता। उ० जय माया मृगमथन गीध-सबरी-उद्धारन। (क० ७।११४)

उद्धृत-(सं०)-१. उगला हुआ, २. अन्य स्थान से ज्यों का त्यों लिया हुआ।

उद्धृत्य-निकालकर। उ० सार-सतसंगमुद्धृत्य इति निरिचतं बदति श्रीकृष्ण वैदर्भिभर्ता। (वि० ५७)

उद्धट-(सं०)-प्रबल, प्रचंड, श्रेष्ठ। उ० रिच्छ मर्कट विकट सुभट उद्धट, समर सैल-संकासरिपु-त्रासकारी। (वि० ५०)

उद्धव-(सं०)-उत्पत्ति, जन्म। उ० उद्धवस्थिति संहार-कारिणी कलेशहारिणीम्। (मा० १।१। श्लो० ५)

उद्धिज-ज-उद्धिज्ज-वनस्पति, वृक्ष, लता गुल्म आदि जो भूमि फाड़कर निकलते हैं।

उद्यत-(सं०)-तैयार, तत्पर, मुस्तैद।

उद्यम-१. काम, धंधा, २. प्रयास, उद्योग। उ० १. जस सुराज खल उद्यम गयऊ। (मा० ४।१५।२)

उद्यान-(सं०)-बगीचा, उपवन।

उद्योग-(सं०)-१. प्रयत्न, कोशिश, २. काम, उद्यम।

उद्योत-(सं०)-१. प्रकाश, उजाला, २. चमक, आभा, झलक। उ० १. रत्नहाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भानुसत-सहस-उद्योतकारी। (वि० ५१)

उद्देग-(सं०)-१. व्याकुलता, धबराहट, २. आवेश, चित्त की आकुलता।

उधरी-(सं० उद्धार)-उद्धार कर दिया। उ० अनायास उधरी तेहि काला। (मा० २।२६।२) उधरेउ-उद्धार किया, मुक्ति दी। उधरयो-उबारा, उद्धार किया। उ० बिनु अवगुन कृकलास कृप-मज्जित कर गहि उधरयो। (वि० २३६)

उधारन-१. उद्धार करनेवाले, २. उद्धार करने के लिए। उ० १. तुलसिदास तजि आस सकल भञ्ज कोसलपति

मुनिबधू-उधारन। (वि० २०६) २. ज्यों धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि। (गी० ६।६)

उधारि-उद्धार करके, मुक्त करके। उ० ऋषिनारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही। (क० ७।१०) उधारिहैं-उद्धार करंगे। उ० पुर पाँउ धारिहैं उधारिहैं तुलसी हूँ से जन। (गी० २।४१) उधारी-उद्धार किया, मुक्ति दी। उ० जानि प्रीति वै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी। (वि० १६६) उधारे-बचाए, उद्धार किया। उ० कौने देव बराय बिरद-हित हठि-हठि अधम उधारे। (वि० १०१) उधारयो-उबारा, बँचाया। उद्धार किया। उ० तुलसिदास एहि त्रास सरन राखिहि जेहि गीध उधारयो। (वि० २०२)

उन-(१)-'उस'का बहुवचन या उसके स्थान पर प्रयुक्त होनेवाला आदरसूचक शब्द। उन्होंने। उ० रुचिर रूप-आहार-बस्य उन पावक लोह न जान्यो। (वि० ६२) उनकी-अन्य पुरुष 'वह' के रूप 'उस' के बहुवचन या आदर सूचकरूप 'उन' का संबंध कारक की विभक्ति 'की' के साथ का संयुक्त रूप। उ० उनकी कहनि नीकी, रहनि लषन सी की। (गी० २।३१) उनहिं-उनको।

उनए-दे० 'उनये'।

उनचास-(सं० एकोनपंचाशत)-चालिस और नव की संख्या। एक कम पचास। उ० हरि प्रेसित तेहि अवसर चले मरुत उनचास। (मा० १।२५) उनचास पवन-सिद्धांत शिरोमणि में आवह, प्रवह, उदह आदि ८ प्रकार के पवनों का उल्लेख है। कहीं कहीं पवन रुद्र के पुत्र माने गये हैं और इनकी संख्या १८० मानी गई है। पुराणों में पवन करपप और दिति के पुत्र माने गये हैं। इनके वैमात्रिक भाई इंद्र ने गर्भ काटकर एक से उनचास टुकड़े कर डाले थे। ये ही उनचास पवन हुए।

उनमाय-(सं० उन्मत्त)-बेसुध, मस्त। उ० ऋषिवर तहँ छंद बास, गावत कलकठ हास, कीर्तन उन्माय काय क्रोधकदिनी। (गी० २।४३)

उनमेखु-(सं० उन्मेष)-१. खुलना, आँखों का खुलना, २. खिलना, विकास, ३. थोड़ा प्रकाश। उ० अमर इं रवि किरनि ल्याए करन जनु उनमेखु। (गी० ७।६)

उनये-(सं० उन्नमन)-१. झुके, लटके, २. छाए, घिरे। उ० २. गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनये धन सावन के। (क० ६।३४) उनयेउ-उमड़ा, घिरा।

उनरत-(सं० उन्नरण)-उठता हुआ, चढ़ता हुआ। उ० उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो। (रा० ५)

उनवनि-(सं० उन्नमन)-झुकती हुई, आती हुई, आरंभ होती हुई। उ० लाज गाज उनवनि कुचाल कलि परी बजाइ कहूँ कहूँ गाजी। (क० ६१)

उनहास-(सं० अनुसार)-समान, सदृश।

उनीदे-नींद भरे, ऊँघते हुए। उ० आजु उनीदे आए मुरारी। (क० २२)

उनीद-(सं० उन्निर)-अर्द्ध निद्रा, ऊँघ। उ० लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ। (मा० १।३५५) उनीदे-नींद भरे, निद्रायुक्त। उ० सिय रघुबर के भए उनीदे नैन। (ब० १८)

उन्नत-(सं०)-१. ऊँचा, ऊपर उठा हुआ, २. बड़ा हुआ, समृद्ध, ३. श्रेष्ठ, महत्। उ० १. अधर अरुन उन्नत नासा। (वि० ६३)

उन्नमित-(सं०)-ऊपर उठा हुआ, उत्तेजित।

उन्मत्त-(सं०)-१. मत्वाला, मदाँध, २. पागल, बावला।

उन्मना-(सं० उन्मनस)-चितित, ध्याकुल, चंचल।

उन्माद-(सं०)-पागलपन, बावलापन।

उन्मेष-(सं०)-१. खुलना, आँख का खुलना, २. खिलना, ३. प्रकाश, थोड़ी रोशनी।

उन्ह-उन, 'वह' का विभक्ति लगाने के लिए बना हुआ अवधी रूप। उ० साचेहुँ उन्ह के मोह न माया। (मा० १।६७।२) उन्हहिं-उन्हें, उनको। उ० तस फलु उन्हहि देवें करि साका। (मा० २।३३।४)

उपंग-(सं० उपांग)-एक बाजा, नसतरंग। उ० पनवानक निर्भर अलि उपंग। (गी० २।४६)

उप-(सं०)-एक उपसर्ग। जिन शब्दों के पूर्व लगता है, उनमें समीपता, सामर्थ्य, गौणता तथा न्यूनता आदि अर्थों की विशेषता कर देता है।

उपकार-(सं०)-भलाई, नेकी, हित। उ० पर उपकार बचन मन काया। (मा० ७।१२।१७)

उपकारा-दे० 'उपकार'। उ० श्रुति कह, परम धरम उपकारा। (मा० १।८१।१)

उपकारिनी-(सं० उपकारिणी)-उपकार करनेवाली, भलाई करनेवाली। उपकारी-(सं० उपकारिन्)-उपकार या भलाई करनेवाला। उ० उपकारी की संपति जैसी। (मा० ४।१५।३)

उपखान-(सं० उपाख्यान)-१. पुरानी कथा, पुराना वृत्तांत, २. कथा के अंतर्गत कोई कथा, ३. वृत्तांत, हाल। उ० १. साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान। (दो० ५५४) उपखानो-उपखान भी, कहानी भी। उ० अति ही अयाने उपखानो नहिँ बूझै लोग। (क० ७।१०७)

उपखानु-दे० 'उपखानु'। उ० १. संगति न जाइ पाछिले को उपखानु है। (क० ७।६४)

उपचार-(सं०)-१. व्यवहार, प्रयोग, २. दवा, इलाज, ३. सेवा, ४. धर्म के विविध अनुष्ठान, ५. पूजन के आवाहन, आचमन, स्नान आदि सोलह अंग, ६. उपाय, ७. घूस, रिशवत, ८. छेड़छाड़। उ० २. कियो बैदराज उपचार। (गी० ६।६) ६. तब लग सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार। (मा० २।१०७) ८. भरत हमहि उपचार न थोरा। (मा० २।२२।४)

उपचार-दे० 'उपचार'।

उपज-(सं०)-१. उत्पत्ति, पैदावार, २. मन में आई हुई नई बात, ३. मनगढ़त बात, ४. उत्पन्न होता था। उ० ४. तिमि तिमि नृपहि उपज विस्वासा। (मा० १।१६।२।३) उपजइ-पैदा हो, उत्पन्न हो। उपजत-उत्पन्न होते हैं, पैदा होते हैं। उ० निमिष निमिष उपजत सुख नए। (मा० ७।८।५) उपजहिं-उपजते हैं, पैदा होते हैं। उ० उपजहिं अनत अनत झबि लहहीं। (मा० १।११।२) उपजा-उत्पन्न हुआ। उ० उपजा हियँ अति हरषु बिसैषा। (मा०

१।५०।१) उपजि-उत्पन्न हो । उ० उपजि परी ममता मन मोरें । (मा० १।१६४।२) उपजिहि-उत्पन्न होगी । उ० राम भगति उपजिहि उर तोरें । (मा० ७।१०६।५) उपजिहु-पैदा हुई हो । उ० तीयरतन तुम उपजिहु भवरतनागर । (पा० ४६) उपजी-पैदा हुई । उ० प्रेम सरीर प्रपंच-रुज, उपजी अधिक उपाधि । (दो० २४२) उपजे-पैदा हुए । उ० उपजे जदपि पुलस्त्य कुल । (मा० १।१७६) उपजेउ-उत्पन्न हो गया, पैदा हो गया । उ० राम चरन उपजेउ नव नेहा । (मा० ७।१२६।४) उपजेहु-पैदा हुआ । उ० उपजेहु बंस अनल कुल घालक । (मा० ६।२१।३) उपजै-पैदा हो, उत्पन्न हो । उ० एहि विधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुखमूल । (मा० १।२४७)

उपजाए-पैदा किए, उत्पन्न किए । उ० भलेउ पोच सब विधि उपजाए । (मा० १।६।२) उपजाया-पैदा किया, उत्पन्न किया । उ० आदि सक्ति जेहि जग उपजाया । (मा० १५२।२) उपजावसि-पैदा कर । उ० अब जनि रिस उपजावसि मोही । (मा० ६।३१।३) उपजावहि-उत्पन्न करते हैं । उ० जय जय धुनि करि भय उपजावहि । (मा० ६।६३।४) उपजावा-पैदा कर रहा है । उ० प्रियाहीन मोहि भय उपजावा । (मा० ३।३७।५) उपजावै-१. पैदा करता है, २. पैदा करे । उ० १. निज भ्रम तें रबिकर-संभव सागर अति भय उपजावै । (वि० १२२)

उपजायक-पैदा करनेवाला । उ० यह दूसन विधि तोहि होत अब रामचरन-बियोग-उपजायक । (गी० २।३)

उपदेश-(सं०)-१. शिक्षा, सीख, नसीहत, २. गुरु-मंत्र, दीक्षा । उपदेस-दे० 'उपदेश' । उ० १. पर उपदेस कुसल बहुतेरे । (मा० ६।७८।१)

उपदेसत-उपदेश करते हैं, शिक्षा देते हैं । उ० कासी हू मरत उपदेसत महेस सोई । (क० ७।७४) उपदेसहिं-उपदेश देते थे, उपदेश देते हैं । उ० कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना । (मा० १।७६।१) उपदेसहीं-उपदेश देते हैं, उपदेश करते हैं । उपदेसिअ-उपदेश करना चाहिए । उ० धरम नीति उपदेसिअ ताही । (मा० २।७२।४) उपदेसिन्ह-दे० 'उपदेसेनिह' । उपदेसिन्हि-दे० 'उपदेसेनिह' । उपदेसिबे-उपदेश देने, शिक्षा देने । उ० तजहि तुलसी समुक्ति यह उपदेसिबे की बानि । (क० ५२) उपदेसिबो-उपदेश देना, शिक्षा देना । उ० उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ । (दो० ४८६) उपदेसे-उपदेश किया, समझाया । उ० मुनि बहु भौति भरत उपदेसे । (मा० २।१६६।४) उपदेसेउ-उपदेश दिया है । उ० सुंदर गौर सुबिप्रवर अल उपदेसेउ मोहि । (मा० १।७२) उपदेसेनिह-उपदेश किया था, शिक्षा दी । उ० दच्छसुतन्ह उपदेसेनिह जाई । (मा० १।७६।१)

उपदेसा-दे० 'उपदेश' । उ० १. जौ तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा । (मा० १।१७।१।२)

उपदेसु-१. दे० 'उपदेश', २. उपदेश दो, उपदेश करो । उ० १. उपदेसु यहु जेहि तात तुम्हें राम सिय सुखपावहीं । (मा० २।७५।छं०१)

उपदेसु-दे० 'उपदेश' । उ० १. कासीं मुकुति देणु उपदेसु । (मा० १।१६।२)

उपद्रव-(सं०)-१. उत्पात, उधम, गड़बड़, अत्याचार, २. आकस्मिक बाधा, हलचल । उ० १. करहि उपद्रव असुर निकाया । (मा० १।१८३।२)

उपधान-(सं०)-१. तकिया, सर के नीचे रखने का गद्दा, २. सहारा, ३. प्रेम, ४. विशेषता । उ० १. विविध बसन उपधान तुराई । (मा० २।११।१)

उपधि-(सं०)-१. समीप, निकट, २. जालसाज़ी, बेइमानी, ३. भय, धमकी, ४. कारण ।

उपनयन-(सं०)-यज्ञोपवीत संस्कार, व्रतबंध, जनेऊ ।

उपनिषद-(सं० उपनिषद्)-१. पास बैठना, २. ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिए गुरु के पास बैठना, ३. वेद की शाखाओं के ब्राह्मणों के अंतिम भाग, जिनमें आत्मा परमात्मा आदि का निरूपण है । यों तो इनकी संख्या २०० से ऊपर कही जाती है पर प्रसिद्ध १०८ हैं, उनमें भी प्रधान १० हैं । उ० ३. संत पुरान उपनिषद गावा । (मा० १।४६।१)

उपपातक-(सं०)-छोटा पाप । मनु के अनुसार परस्त्री-गमन, गोबध आदि उपपातक हैं । उ० जे पातक उपपातक अहहीं । (मा० २।१६७।४)

उपबन-(सं० उपवन)-१. बाग, बगीचा, २. छोटे-छोटे जंगल । उ० १. बन बाग उपबन बाटिका सरकूप बापीं सोहहीं । (मा० ५।३।छं०२)

उपबरहन-(सं० उपवर्ह)-उपधानों, तकियों, 'उपबरह' का बहुवचन । उ० उपबरहन बर बरनि न जाहीं । (मा० १।३५६।२)

उपबासा-(सं० उपवास)-भोजन छोड़ देना, वह व्रत जिसमें भोजन नहीं किया जाता । उ० किए कठिन कछु दिन उपबासा । (मा० १।७४।३)

उपवीत-(सं० उपवीत)-१. यज्ञोपवीत या जनेऊ संस्कार, २. जनेऊ, यज्ञसूत्र । उ० १. करनबेध उपवीत विआहा । (मा० २।१०।३)

उपमा-(सं०)-१. तुलना, मिलान, पटतर, सादृश्य, २. एक अर्थालंकार जिसमें दो वस्तुओं में भेद रहते हुए भी उनका समान धर्म बतलाया जाता है । उ० तीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिए उपमा को समाउ न आयो । (क०-६।५४)

उपमाई-सादृश्यता, समानता, बराबरी । उ० मृदुलचरन सुभ चिह्न पदज नख अति अदभुत उपमाई । (वि० ६२)

उपमान-(सं०)-१. वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय, २. उपमा, पटतर ।

उपमेय-(सं०)-उपमा के योग्य, जिसकी उपमा दी जाय ।

उपयो-(सं० उपज)-उत्पन्न हुआ, पैदा हुआ । उ० मुनि हरि हिय गरब गूड़ उपयो है । (गी० ६।११)

उपयोगी-(सं० उपयोगिन)-काम देनेवाला, प्रयोजनीय, लाभकारी ।

उपर-(सं० उपरि)-ऊँचाई पर, ऊपर, ऊँचे स्थान में, चोटी पर । उ० लंका सिखर उपर आगारा । (मा० ६।१०।४)

उपरना-ऊपर से ओढ़ने का दुपट्टा, चादर । उ० पिअर उपरना काखा सोती । (मा० १।३२७।४)

उपरति-(सं०)-बाद, अगन्तर ।

उपरागा-(सं० उपराग)-१. किसी वस्तु पर पास की वस्तु का आभास पड़ना, ग्रहण। २. व्यसन, ३. निन्दा। उ० भयङ्कर परब विनु रवि उपरागा। (मा० ६१०२१५)
 उपराजा-(सं० उपारजन)-पैदा किया, उत्पन्न किया। उ० अग जगमय जग मम उपराजा। (मा० ७६०३३)
 उपराम-(सं०)-१. त्याग, विराग, २. आराम, विश्राम। उपरि-(सं०)-ऊपर। उ० सैलोपरि सर सुंदर सोहा। (मा० ७१५६१५)
 उपरीउपरा-१. एक ही वस्तु के लिए कई आदमियों का उद्योग, चढ़ाउपरी, उपराचढ़ी, २. एक दूसरे से बढ़ जाने की इच्छा। उ० २. रन मारि मची उपरीउपरा, भले बीर रघुपति रावन के। (क० ६३४)
 उपरोहित-(सं० पुरोहित)-कर्मकांड करनेवाला, कृत्य करानेवाला ब्राह्मण। वह ब्राह्मण जिसके यजमान हों। उ० समय जानि उपरोहित आवा। (मा० ११७२१४)
 उपरोहितहि-उपरोहित को, पुरोहित को। उ० उपरोहितहि देख जब राजा। (मा० ११७२३३)
 उपरोहित्य-पुरोहित का, पुरोहिती। उ० उपरोहित्य कर्म अति मंदा। (मा० ७१४२३३)
 उपल-(सं०)-१. पत्थर, २. ओला, ३. रत्न, ४. मेघ, बादल, ५. बालू, ६. चीनी। उ० २. जलु हिम उपल बिलग नहि जैसे। (मा० १११९६१२)
 उपवन-(सं०)-बाग, बगीचा, कुंज, फुलवारी।
 उपवास-(सं०)-१. भोजन का छूटना, फाका, २. वह व्रत जिसमें भोजन छोड़ दिया जाता है।
 उपवियो-(सं० उप + यमन)-ऊपर आया, उदय हुआ। उ० देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है। (गी० १११०)
 उपवीत-(सं०)-१. जनेऊ, यज्ञसूत्र, २. उपनयन संस्कार। उ० २. उपवीत व्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं। (जा० २१६)
 उपसम-(सं० उपशम)-शानि, निग्रह, निवृत्ति। उ० चित्तवत् भाजन करि लियो उपसम समता को। (वि० १५२)
 उपस्थित-(सं०)-वर्तमान, हाज़िर, मौजूद। उ० सपने व्याधि विविध बाधा भइ, मृत्यु उपस्थित आई। (वि० १२०)
 उपहार-(सं०)-भेंट, नज़र, सौगात। उ० दधि चिउरा उपहार अपारा। (मा० १३०५३३)
 उपहास-(सं०)-१. हँसी, ठट्ठा, २. निन्दा। उ० २. पैहहि सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहि उपहास। (मा० ११८)
 उपहासी-दे० 'उपहास'। उ० १. मम उर सो बासी यह उपहासी, सुनत धीर मति थिर न रहै। (मा० ११६२१३०३)
 उपहासू-दे० 'उपहास'। उ० २. रहे प्रान सहि जग उपहासू। (मा० २१७६३३)
 उपही-(सं० उपरि)-अपरिचित व्यक्ति, अजनबी, परदेशी। उ० प्रानहुँ तें प्यारे प्रियतम उपही। (गी० २३८)
 उपाइ-(सं० उपाय)-युक्ति, साधन, तदवीर। उ० तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ। (मा० ११५६)
 उपाई-दे० 'उपाइ'। उ० मोर कहा सुनि करहु उपाई। (मा० ११८३११)
 उपाउ-दे० 'उपाइ'। उ० रूँधहुँ करि उपाउ बरवारी। (मा० २१७७४)

उपाऊ-दे० 'उपाइ'। उ० भामिनि करहु त कहौ उपाऊ। (मा० २१२११४)
 उपाएँ-उपाय का बहुवचन, युक्तियाँ। उ० सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ। (मा० ११११३) उपाए-दे० 'उपाया (२)'
 उ० जे विरंचि निरलेप उपाए। (मा० २३१७४)
 उपाटो-(सं० उत्पाटन)-उखाड़ कर। उ० लीन्ह एक तेहि सैल उपाटी। (मा० ६१७०१५)
 उपाधे-(सं०)-१. और वस्तु को और बतलाने का छल, कपट, २. उपद्रव, उत्पात, ३. वह जिसके संयोग से कोई वस्तु और की और दिखाई दे। ४. प्रतिष्ठासूचक पद, खिताब, ५. कर्तव्य का विचार, धर्मचिन्ता।
 उपाधी-दे० 'उपाधि'। उ० २. तौ बहोरि सुर करहि उपाधी। (मा० ७११२५५)
 उपाय-(सं०)-१. युक्ति, तरीका, साधन, २. निकट आना, पास पहुँचना। उ० १. जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही। (मा० २१५०१) उपायन-उपायों, उपाय का बहुवचन।
 उपाया (१)-दे० 'उपाय'।
 उपाया (२)-(सं० उपज)-उपजाया, पैदा किया। उ० अखिल बिस्व यह मोर उपाया। (मा० ७१८७४)
 उपाये-दे० 'उपाए'।
 उपारउँ-(सं० उत्पाटन)-उखाड़ूँ, उखाड़ फेंकूँ। उपारहिं-उपारते हैं, उखाड़ते हैं। उ० उदर बिदारहि भुजा उपारहि। (मा० ६१८१३) उपारा-उखाड़ा। उ० महासैल एक तुरत उपारा। (मा० ६१५११) उपारि-उखाड़ कर। उ० मारि कै पछारे कै उपारि भुजदंड चंड। (क० ६१४८) उपारिउँ-उखाड़ लूँ। उ० जौ न उपारिउँ तव दस जीहा। (मा० ६३४४४) उपारी-उखाड़, उत्पाट, उपार। उ० मोह विटप नहि सकहि उपारी। (मा० ६१-३४७) उपारू-उखाड़ लो। उ० सीस तोरि गहि भुजा उपारू। (मा० ६१३३३) उपारे-उखाड़ा, उखाड़ डाला। उ० खाएसि फल अह विटप उपारे। (मा० ५१८२२)
 उपालंभ-(सं०)-१. उलाहना, २. निन्दा, शिकायत।
 उपास-(सं० उपवास)-दे० 'उपवास'। उ० १. तीसरे उपास बनबास सिधुपास सो समाज महाराज जू को एक दिन दान भो। (क० ५३२)
 उपासक-(सं०) पूजा करनेवाला, भक्त, सेवक। उ० रघुपति चरन उपासक जेते। (मा० ११८२२)
 उपासन-(सं०)-१. सेवा करना, २. पूजा करना, ३. उपस्थित रहना। उ० २. सगुन उपासन कहहु मुनीसा। (मा० ७११११४)
 उपासना-(सं०) उपासन, सेव करना, पूजा करना, आराधना। उ० दूसरो भरोसो नाहि बासना उपासना को। (वि० ७५)
 उपासा-दे० 'उपास'। उ० २. सम दम संजम नियम उपासा। (मा० २३२५१२)
 उपेक्षणीय-(सं०)-१. त्यागने योग्य, २. घृणा के योग्य।
 उपेक्षणीय-दे० 'उपेक्षणीय'। उ० त्यागब, गहब उपेक्षणीय अहि हाटक लून की नाहै। (वि० १२४)

उपम-(सं० उपमा)-दे० 'उपमा' । उ० कीर के कागर ज्यों
नृपचीर बिभूषन उपम अंगनि पाई । (क० २११)

उफनात-(सं०)-उबलता है, उठता है, उफनता है । उ०
आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ । (गी० ७)

उवटि-(सं० उद्धर्तन)-उबट कर, उबटन लगाकर । उ०
भाइन्ह सहित उवटि अन्हवाए । (मा० १३३६१२)

उवटौ-उबटन।कहँ । उ० उवटौ, न्हाहु, गुहौँ चोटिया ।
(क० १३)

उबर-(सं० उद्धारण)-उद्धार पा जाय, बच जाय, मुक्त
हो जाय । उ० तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी । (मा०

१३३६६) उबरन-उबरने, उद्धार, मुक्ति । उ० इन्हके
लिपु खेलिबो झूँड्यौ तज न उबरन पावहि । (क० ४)

उबरसि-बचेगा, शेष रहेगा । उ० राम बिरोध न उबरसि
सरन बिधु अज ईस । (मा० १३३६६ क) उबरा-बचा, शेष

रहा । उ० उबरा सो जनवासेहि आवा । (मा० १३३६६४)

उबरिहिं-बचेंगे । उ० ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं
प्रान । (मा० ४६) उवरी-बची, शेष । उ० उवरी जूठनि

आउँगो । (गी० १३०) उवरे-बचे रहे । उ० जे राखे
रखीवर ते उवरे तेहि काल महुँ । (म० १६५) उवर्यो-

दे० 'उबरा' । उ० देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिँ जाँचत
कोउ उबरयो । (वि० ६१)

उबारा-१ बचा, २. बचानेवाला, ३. बचाव । उ० १. स्त्री-
कर तम-हर बरन बर तुलसी सरन उबारा । (स० २४२)

उबारा-बचाया, बचा लिया उद्धार किया । उ० भागोहु
नहिँ नाथ उबारा । (वि० १२५)

उबीठे-(सं० अघ + इष्ट)-उबे, उकताए । उ० यह जानत
हौँ हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे । (वि० १६८)

उबैने-(सं० उ + उपातह)-नंगे पैर, बिना जूते का । उ०
तब लौँ उबैने पायँ फिरत पैटै खलाय । (क० ७१२५)

उभय-(सं०)-दोनों । उ० दुखप्रद उभय बीच कहु बरना ।
(मा० १३१२) उभौ-दोनों, दो । उ० कुँदेंदीवरसुंदरावति-

बलौ विज्ञानधामावुभौ । (मा० ४। श्लो० १)

उभै-(सं० उभय)-दोनों । उ० सजनी ससि में समसील
उभै नवनील सरोरुह से बिकसे । (क० १११)

उमंग-दे० 'उमंग' । उ० १. अधिक अधिक अनुराग उमंग
उर । (वि० ६५)

उमंग-(सं० मंग्)-१. जोश, मौज, आनंद, उल्लास, २.
उभाड़, बाढ़, ३. पूर्णता । उ० १.जोवन उमंग अंग उदित

उदार है । (क० २१४४)

उमग-दे० 'उमंग' । उ० २. सो सुभ उमग सुखद सब
काहु । (मा० १४१३)

उमगत-१. उमड़ पड़ता है, बढ़ जाता है, २. आनंदित या
उत्साहित होता है । उ० १. उमगत पेसु मनहुँ चहुँ

पासा । (मा० २१२०।३) उमगहिं-उमड़ रहे हैं । उ०
पेलेउ जनमफल भा वियाह उछाह उमगहिं दस दिसा ।

(पा० १४७) उमगा-उमड़ पड़ा, उमड़ आया । उ० मुनि
सनेहमय बचन गुर उर उमगा अनुरागु । (मा० २१२५५)

उमगि-उमड़कर, उमड़-उमड़कर । उ० उमगि अक्व अंबुधि
कहुँ आई । (मा० २११२) उमगी-उमड़ी, उमड़ पड़ी ।
उ० उमगी अक्व अनंद भरि अधिक अधिक अचिकाति ।

(मा० १३३६६) उमगे-उमड़ आए । उ० उमगे भरत
बिलोचन बारी । (मा० २१३६६१) उमगेउ-उमड़ा,

उमड़ आया । उ० उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाह । (मा०
१३३६६५)

उमरि-(अ० उम्र)-उम्र, अवस्था, वय, आयु । उ० उमरि
दराज महाराज तेरी चाहिए । (क० ७७६)

उमहिं-दे० 'उमहि' । उमाहिं-उमा को । उ० बहुरि कृपा
करि उमहि सुनावा । (मा० १३३०२) उमहुँ-उमा भी ।

उ० उमहुँ रमा तें आछे अंग अंग तीके हैं । (गी० २३०)

उमा-(सं०)-शिव की स्त्री, पार्वती, भवानी । उ० नाम
उमा अंबिका भवानी । (मा० १६७११)

उमाकंत-(सं०)-शिव, महादेव । उ० देखो देखो बन बन्यो
आजु उमाकंत । (वि० १४)

उमाकंत-(सं०)-शिव, महादेव ।
उमापति-(सं०)-महादेव, शिव ।

उमारमन-(सं० उमारमण)-शिव, महादेव । उ० कुंद हूँ
सम देह उमारमन करुना अयन । (मा० १११ सो० ३)

उमारवन-(सं० उमारमण)-शिव, महादेव । उ० कंदर्पदर्प-
दुर्गम-दवन, उमारवन गुनभवन हर । (क० ७१५०)

उमावर-(सं०)-शिव, महादेव ।
उमेश-(सं० उमेश)-शिव, महादेव । उ० सो उमेश मोहिं

पर अनुकूला । (मा० ११५१४)

उयउ-(सं० उदय)-उदय हुआ है, उदय होता है । उ० सो
कह पच्छिम उयउ दिनेसा । (मा० ७७३१२) उयेउ-

उगा, उदय हुआ, निकला ।

उर-(सं० उरस्)-१. वक्षस्थल, छाती, २. मन, चित्त,
दिल, हृदय । उ० २. देखत गरब रहत उर नाहिन । (मा०

२१४१२) उरन्हि-छातियों पर, उरों पर । उ० कुंजरमनि
कंठ कलित उरन्हि तुलसिकामाल । (मा० ११२४३)

उरसि-छाती पर, उर पर । उ० यज्ञोपवीत विचित्र हेम-
मय, मुक्तामाल उरसि मोहिं भाई । (गी० १११०६)

उरग-(सं०)-साँप, जो उर (वक्ष) से गमन करे । उ० उरग
स्वास सम त्रिविध समीरा । (मा० २११५१२) उरग-

आराती-(सं० उरग + आराति)-गरुड़ । उ० करत बिचार
उरगआराती । (मा० ७१६६३) उरगईस-लक्ष्मण, शेष

के अवतार । उ० जनक-सुता दस-जान-सुत उरग-ईस
अ-म जौर । (स० २१४) उरगरिपु-गरुड़ । उरगरिपु-

गामी-उरग के रिपु गरुड़ पर चढ़कर चलनेवाले,
विष्णु । उ० तुलसिदास भव व्याल-असित तव मरन उरग-

रिपु-गामी । (वि० ११७)

उरगा-दे० 'उरग' । उ० चले बान सपच्छु जनु उरगा ।
(मा० ६।६२।१)

उरगादः-(सं०)-उरग को खानेवाले, गरुड़ । उ० संशय
सर्व असन उरगादः । (मा० ३।११।२)

उरगादा-दे० 'उरगादः' । उ० दोउ हरि भगत काग उर-
गादा । (मा० ७।५५।३)

उरगाय-(सं० उरगाय)-१. विष्णु, २. सूर्य, ३. स्तुति, ४.
जिसका गान किया जाय । उ० १. दसचारि-पुर-पाल
आली उरगाय हैं । (गी० २।२८)

उरगारि-(सं०)-गरुड़ पड़ी, उरग (सर्प) के अरि ।

उरगारियानम्-गरुड़ की सवारी पर चलनेवाले, विष्णु ।
 उ० श्री राम उरगारियानम् । (वि० ६१)
 उरगारी-दे० 'उरगारि' । उ० लोचन सुफल करवै उरगारी ।
 (मा० ७।७५।३)
 उरमिला-दे० 'उर्मिला' ।
 उरवि-(सं० उर्वी)-पृथ्वी, ज़मीन ।
 उरविज-(सं० उर्वी + ज)-पृथ्वी का जन्मा हुआ । मंगल
 तारा । मंगल अर्थात् कल्याण । उ० जौ उरविज चाहसि
 ऋदिति तौ करि कटित उपाय । (सं० २३८)
 उरबी-(सं० उर्वी)-पृथ्वी, जमीन । उ० उरबी परि क्लृहीन
 होइ, ऊपर कला प्रधान । (दो० ५३५)
 उरवि-(सं० उर्वी)-पृथ्वी, भूमि ।
 उरविजा-(सं० उर्वीजा)-भूमिसुता, सीता ।
 उरहनो-(सं० उपाखंभ)-शिकायत, उलाहना । उ० भाजन
 फोरि बोरि कर गोरस देन उरहनो आवर्हि । (क० ४)
 उराउ-(सं० उरसु + आव)-उत्साह, उमंग, हौसला ।
 उ० तुलसी उराउ होत राम को सुभाव सुनि । (क०
 ७।१५)
 उराहनो-दे० 'उरहनो' ।
 उरिण-दे० 'उरिन' ।
 उरिन-(सं० उत् + ऋण)-ऋण रहित, ऋणमुक्त । उ०
 गुरहि उरिन होतेवै अम थोरे । (मा० १।२७।१४)
 उर (१)-(सं०)-विस्तीर्ण, लंबा चौड़ा, बड़ा ।
 उर (२)-(सं० ऊर)-जंघा, जाँघ । उ० उर करि-कर
 करभहि बिलखावति । (गी० ७।१७)
 उरगाय-(सं०)-१. विष्णु, २. सूर्य, ३. स्तुति ।
 उर्मिला-(सं० उर्मिला)-सीता की छोटी बहिन जिनका
 विवाह लक्ष्मण से हुआ था । उ० बल्लभ उर्मिला के
 सुलभ सनेहवस, धनी धनु तुलसी से निरधन के । (वि०
 ३७)
 उर्मिलारमण-दे० 'उर्मिलारवन' । उ० उर्मिलारमण,
 कल्याण मंगल भवन । (वि० ३८)
 उर्मिलारमन-दे० 'उर्मिलारवन' ।
 उर्मिलारवन-(सं० उर्मिलारमण)-लक्ष्मण, उर्मिला के पति ।
 उर्वि-(सं० उर्वी)-पृथ्वी, धरित्री, भूमि । उ० डिगति उर्वि
 अति गुर्वि, सर्व पन्वे समुद्र सर । (क० १।११)
 उर्विजा-दे० 'उरविजा' । उ० नतोऽहसुर्विजापति ।
 (मा० ३।४। श्लो० ११) उर्विजापति-सीता पति को,
 राम को ।
 उर्विधर-(सं० उर्वीधर)-१. महीधर, शेषनाग, २. पर्वत ।
 उ० १. निगम-आगम-अगम, गुर्वि तव गुणकथन उर्विधर
 करै सहस जीहा । (वि० १५)
 उर्वी-(सं०)-पृथ्वी, भूमि । उ० वन्दे कन्दावदातं सरसिज-
 नयनं देवसुवीशरूपम् । (मा० ६। श्लो० १)
 उलटउँ-(सं० उल्लोठन)-उलट ढूँगा, पलट ढूँगा । उ०
 उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू । (मा० १।२७।१२)
 उलटा-औंधा, पलटा हुआ, फेरा हुआ, विपरीत । उ०
 भयउ सुद्ध करि उलटा जापू । (मा० १।११।३) उलटी-

'उलटा' का स्त्रीलिंग । उ० उलटी रीति प्रीति अपने की
 तजि प्रभुपद अनुरागिहै । (वि० २२४)
 उलटि-१. उलटकर घूम-फिरकर, २. उलटा, औंधा, नीचे
 का ऊपर और ऊपर का नीचे । उ० २. करइ त उलटि
 परइ सुरराया । (मा० २।२१।१)
 उलटे-दे० 'उलटा' । उ० विधि करतब उलटे सब अहहैं ।
 (मा० २।११।११)
 उलटो-दे० 'उलटा' ।
 उलटै-(सं० उल्लोठन)-उडेलते हैं । उ० बारिधारा उलटै
 जलद ज्यों न सावनो । (क० ५।८)
 उलीचा-(सं० उल्लुचन)-थोड़ा थोड़ा करके जल निकाला,
 जल फेंका, जल फेंक डाला । उ० मीन जिअन निति बारि
 उलीचा । (मा० २।१६।१४)
 उलूक-(सं०)-१. उलू नामक चिड़िया, २. इंद्र । उ० १.
 राग द्वेष उलूक सुखकारी । (मा० १।४७।२) उलूकहि-उलू
 को, उलू का । उ० जथा उलूकहि तम पर नेहा । (मा०
 १।४५।४)
 उलूखल-(सं०)-१. ओखली, २. खल, खरल ।
 उल्का-(सं०)-१. प्रकाश, २. लूका, तारे जो आकाश में
 द्रुते दिखाई देते हैं ।
 उल्लास-(सं०)-प्रसन्नता, हर्ष, हुलास ।
 उवन-(सं० उद्गमन)-उगना, उदय होना । उ० रघुकुल-
 रवि अब चाहत उवन । (गी० १।४८)
 उवर्हि-उदय हो, निकलें । उ० राकापति षोडस उवर्हि ।
 (दो० ३८६)
 उषा-(सं०)-१. प्रभात, २. वाणासुर की कन्या जिसका
 विवाह अनिरुद्ध से हुआ था ।
 उष्ण-(सं०)-१. गर्म, तात, २. गर्मी की ऋतु ।
 उष्णकाल-(सं०)-ग्रीष्म ऋतु । उ० उष्णकाल अरु देह
 खिन, मगपंथी तन ऊख । (दो० ३११)
 उसन-(सं० उष्ण)-दे० 'उष्ण' । उ० कहु केहु कारन तें
 भएउ सूर उसन ससि सीत । (सं० ५८४)
 उसर-(सं० ऊषर)-ऊसर, ऐसी भूमि जहाँ रहे अधिक हो
 और कुछ न पैदा होता हो ।
 उसास-(सं० उत् + श्वास)-लंबी साँस, ऊपर को चढ़ती
 हुई साँस । उ० सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि
 मोहि कुठायँ । (मा० २।३०)
 उसासा-दे० 'उसास' । उ० जबर्हि रासु कहि लेहि उसासा ।
 (मा० २।३२०।३)
 उसासू-दे० 'उसास' । उ० उतरु देइ न लेइ उसासू । (मा०
 २।१३।३)
 उसीले-(अर० वसीला)-१. आश्रय, सहायता, २. संबंध,
 ३. ज़रीया, मार्ग, द्वार ।
 उहाँ-(सं० सः) वहाँ, उस जगह । उ० इहाँ उहाँ दुइ बालक
 देखा । (मा० १।२०।१४)
 उहार-(सं० अवधार)-ओहार, परदा । शिचिका रथ था
 पालकी के ऊपर पड़ा परदा । उ० नारि उहार उचारि
 दुलाहिनिन्ह देखहि । (जा० २।११)

ऊ

ऊँच-(सं० उच्च)-ऊँचा, ऊपर उठा हुआ, उन्नत। उ० दानव देव ऊँच अरु नीच। (मा० १।६।३) ऊँचि-ऊँची, बड़ी, ऊपर उठी। उ० मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी। (मा० १।८।४) ऊँची-१. उन्नत, नीची का उलटा, २. भली। उ० १. सीलसिधु ! तोसों ऊँची नीचियौ कहत सोभा। (वि० २५७) मु० ऊँची नीचियौ-भली खुरी भी, ऊँची और नीची भी। उ० हे० 'ऊँची'। ऊँचै-ऊपर, ऊर्ध्व। उ० तब केवट ऊँचै चढ़ि धाई। (मा० २।२३७।१) ऊँचे-ऊपर, ऊर्ध्व। उ० ऊँचे नीचे कहँुँ मिलै हरि-पद परम पिपूख। (सं० ५२)
ऊँट-(सं० उष्ट्र)-एक रेगिस्तानी जानवर जिसकी गर्दन लंबी होती है, कहा। उ० ठेक महोख ऊँट बिसराते। (मा० ३।३८।३)
ऊ-(?) १. भी, २. वह। उ० १. तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागरमनि नंदललाऊ। (कृ० १२)
ऊक-(सं० उक्का)-१. दूटता तारा, लुक, उक्का, २. जलन, ताप, तपन। उ० १. ऊकपात, दिकदाह दिन, फेकरहि स्वान सियार। (प्र० १।६।३)
ऊख (१)-(सं० उख)-ईख, गन्ना। उ० अयमय खाँड न ऊखमय, अजहुँ न बूक अबूक। (मा० १।२७।५)
ऊख (२)-(सं० उष्ण)-तपा हुआ, जला। उ० उष्णकाल अरु देह खिन, मगपंथी, तन ऊख। (दो० ३।१।१)
ऊखल-(सं० उखल)-ओखली, पत्थर या काठ का बना एक गहरा बरतन जिसमें मूज से अन्नादि कूटते हैं।
ऊगुन-उ से आरंभ होनेवाले तीन नक्षत्र, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, तथा उत्तरा भाद्रपद। उ० ऊगुन पूगुन वि अज कृ म, आ म अ मू गुनु साथ। (दो० ४५७)
ऊतर-(सं० उत्तर)-जवाब, उत्तर। उ० बूकिये कहा रजाइ पाइ नय धरम सहित ऊतर दप। (गी० १।३२)
ऊतर-दे० 'ऊतर'। उ० ऊतर देइ न लेइ उसासू। (मा० २।१३।३)
ऊतरे-(सं० अवतरण)-उतरे हुए, जो पहनकर उतार दिए जायें। उ० तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहीं। (गी० १।३०)
ऊधो-(सं० उद्धव)-दे० 'उद्धव'। उ० ऊधो या अज की दसा बिचारो। (कृ० ३३)

ऊना-(सं० ऊन)-१. कम, थोड़ा, छोटा, २. तुच्छ, नाचीज़। उ० १. जनि जननी मानहु जियँ ऊना। (मा० १।१४।५) ऊपजै-दे० 'उपजै'। उ० हुख ते हुख नहिँ ऊपजै। (सं० ३०)
ऊपर-(सं० उपरि)-पर, ऊँचाई पर, ऊँचे स्थान में। उ० गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। (मा० ४।२।८)
ऊपरि-दे० 'ऊपर'।
ऊव-(सं० उद्वेजन)-उद्वेग, घबराहट, कुछ काल तक निरंतर एक ही अवस्था में रहने से चित्त की व्याकुलता। उ० सबकी सहत उर अंतर न ऊव है। (क० ७।१०।८)
ऊवरै-(सं० उद्धारण)-बचे, बच सके। उ० कह तुलसिदास सो ऊवरै जेहि राख राम राजिवनयन। (क० ७।११।७)
ऊमरि-(सं० उदुंबर)-गूलर, एक वृक्ष जो काफ़ी बड़ा होता है। उ० ऊमरि तरु बिसाल तब माया। (मा० ३।१३।३)
ऊरधरेख-(सं० ऊर्ध्वरेखा)-१. पुराणानुसार अवतारों के ४८ चरण-चिह्नों में से एक। २. शुभसूचक हस्त रेखा। उ० १. सकल सुचिन्ह सुजन सुखदायक ऊरधरेख बिलेख बिराजति। (गी० ७।१७)
ऊरु-(सं० उरु)-जंघा, जानु, रान। उ० चरन-सरोज, चारु जंघा जानु ऊरु कटि। (गी० १।७।१)
ऊर्द्ध-(सं० ऊर्द्धव)-१. ऊपर, ऊपर की ओर, २. ऊँचा, खड़ा। उ० १. अध ऊर्द्ध बानर, विदिसि दिसि बानर है। (क० १।१७)
ऊर्ध्वरेता-(सं० ऊर्द्धवरेता)-जो अपने वीर्य को गिरने न दे। ब्रह्मचारी। उ० जयति विहगोस-बल-बुद्धि-बेगाति-मद-मथन, ऊर्ध्वरेता। (वि० २४)
ऊर्मि-(सं०)-१. लहर, तरंग, २. दुःख, पीड़ा।
ऊपर-दे० 'ऊसर'। उ० ऊपर बरषइ तुन नहिँ जामां। (मा० ४।१५।५)
ऊसर-(सं० ऊसर)-वह भूमि जिसमें रेह अधिक होती है और कुछ नहीं पैदा होता। उ० राख को सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो। (वि० २६।४) ऊसरो-ऊसर भी। उ० तेरो नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो। (वि० १।८०)

श्रु

श्रुच-(सं०)-१. भालू, २. तारा, नक्षत्र, ३. रैवतक पर्वत का एक भाग।
श्रुचपति-(सं०) १. भालुओं का सरदार जांबवान।
श्रुगु-(सं० श्रुगु)-प्रथमवेद, श्रुग्वेद। उ० पदिवो परयो म

छठी छ मत श्रुगु, जजुर अथर्वन साम को। (वि० १।५५)
श्रुचा-(सं०)-१. वेद मंत्र जो पद्य में हो, २. स्तोत्र, स्तुति। उ० १. लगे पढ़न रच्छा श्रुचा श्रुविराज बिराजे। (गी० १।६)

ऋच्छ-दे० 'ऋच्छ' । उ० हरवित सकल ऋच्छ अस बनधर ।
 (गी० ६११६)
 ऋच्छपति-दे० 'ऋच्छपति' ।
 ऋच्छ-(सं०)-सीधा, सरल ।
 ऋच्छ-(सं०)-क्रुद्ध, उधार ।
 ऋच्छिया-दे० 'ऋच्छिया' ।
 ऋच्छी-(सं० ऋच्छिन्)-कज्जदार, ऋच्छ लेनेवाला ।
 ऋच्छु-(सं०)-१. प्राकृतिक अवस्थाओं के अनुसार वर्ष के दो-दो महीनों के छः विभाग । वसंत (चैत्र, वैशाख), ग्रीष्म (जेठ, आसाढ़), वर्षा (सावन, भादों), शरद (वृषार, कात्तिक), हेमंत (अगहन, पूष) और शिशिर (माघ, फागुन) । २. रजोदर्शन के बाद का समय जब स्त्रियाँ गर्भ-धारण के योग्य रहती हैं । उ० १. मनो देखन तुमहि आई ऋच्छु बसंत । (वि० १४) ऋच्छुन्ह-ऋच्छुएँ, ऋच्छु का बहुवचन । उ० सकल ऋच्छुन्ह सुखदायक तामहँ अधिक बसंत । (गी० ७१२१)
 ऋच्छुनाथ-(सं०)-वसंत ऋच्छु, ऋच्छुराज । उ० मानहुँ रति ऋच्छुनाथ सहित मुनि-बेष बनाए है मैंन । (गी० २१२४)
 ऋच्छुपति-(सं०)-वसंत ऋच्छु, ऋच्छुराज । उ० जनु रतिपति ऋच्छुपति कोसलपुर बिहरत सहित समाज । (गी० ११२)
 ऋच्छुराज-वसंत ऋच्छु, सर्वोत्तम ऋच्छु ।
 ऋच्छि-(सं० ऋच्छि)-समृद्धि, बढ़ती । उ० ऋच्छि, सिधि, विधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति । (गी० २१२२)

ए

ए-(सं० एष)-१. यह, ये, २. इस । उ० १. जौ ए मुनि पटधर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार । (मा० २१११६) २. भूरि भाग हम धन्य, आलि ए दिन, एरवन । (गी० ११७३) एइ-ये ही । उ० बल विनय विद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहँ । (मा० ११३१११ छं०१) एई-ये ही, यही । उ० एई बातैं कहत गवन कियो घर को । (गी० ११६७) एउ-ये भी, यह भी । उ० एउ देखि हैं पिनाकु नेकु जेहि नृपति लाज-उवर जारे । (गी० ११६६)
 एरुअंग-१. एकांगी, एक तरफा, एक ओर का, २. अनन्य, पूर्ण योग । उ० एकअंग जो सनेहता, निसि दिन चातक-नेह । (दो० ३१३)
 एक-(सं०)-एक । उ० अज व्यापकमेकमनादि सदा । (मा० ६११११ छं०४) एक-(सं०)-१. सबसे छोटी पूर्ण संख्या, १, केवल एक, गिनती की पहली संख्या, २. अद्वितीय, बेजोड़, ३. अकेला, एकाकी, ४. कोई, अनिश्चित । उ० १. मिलत एक दुख दारुन देहीं । (मा० ११५२) एकइ-एक ही, केवल एक । उ० एकइ धर्म एक व्रत नेमा । (मा० ३१५१) एकउ-एक भी । उ० एकउ जुगुति न मनउहरानी । (मा० २१२५३४) एकन-एक ने, किसी ने । एकन्ह-एक को, किसी को । एकहि-दे० 'एकहि' । उ० अति बल जल बरषल दोउ लोचन दिन अर रैन रहत एकहि तक । (गी०

ऋच्छ-दे० 'ऋच्छ' । उ० पाही खेती, लगनवट ऋच्छ कुश्याज, मग-खेत । (दो० ४७८)
 ऋच्छियाँ-कज्जदार, रूपया या ऋच्छ लेनेवाला । उ० ऋच्छियाँ कहाये हौ बिकाने ताके हाथ जू । (क० ७११६)
 ऋच्छिय-ऋच्छि-समूह, मुनिगण, मुनि लोग । उ० ऋच्छिय सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर अपर जीव जग माहीं । (वि० ६)
 ऋच्छि-(सं०)-मुनि, तपस्वी, संसार से विरक्त पुरुष । उ० सुरुष ऋच्छि सुख सुतनि को, सिय सुखद सकल सहाइ । (गी० ७१३४) विशेष-ऋच्छि सात प्रकार के माने गए हैं-महर्षि, परमर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, श्रुतर्षि, राजर्षि और कांडर्षि । व्यास, भेल, नारद, वशिष्ठ, सुश्रुत, ऋत्तपर्ण या जनक, तथा जैमिनि क्रमशः सातों के लिए उदाहरण लिए जा सकते हैं । सप्तर्षि-सात ऋच्छि । कुच्छ लोग कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, वशिष्ठ, यमदग्नि को तथा कुच्छ लोग मरीचि, अत्रि, आंगिरस्, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ को सक्षर्षि मानते हैं । ऋच्छिनारि-गौतम ऋच्छि की पत्नी अहल्या । दे० 'अहल्या' । उ० ऋच्छिनारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही । (क० ७११०)
 ऋच्छि-रवनी-(सं० ऋच्छि-रमणी)-दे० 'ऋच्छिनारि' । उ० परत पद-पंकज ऋच्छि-रवनी । (गी० ११२६) ऋच्छिराज-१. बहुत बड़ा ऋच्छि, २. वशिष्ठ मुनि । उ० २. दे० 'ऋच्छा' । ऋच्छयमूक-(सं०)-मद्रास के अनागुंडी स्थान से आठ मील दूर तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित एक पर्वत ।

२१६) एकहि-एक ही । उ० भूप सहस दस एकहि बारा । (मा० ११२५११) एकहुँ-एक भी । उ० प्रभु के एकहुँ काज न आयउँ । (मा० ६१६०१२) एकै-१. एक ही, २. एक को, ३. एक है । उ० १. तुलसी तोहि बिसेष बूझिए एक प्रतीति, प्रीति, एकै बलु । (वि० २४) एकौ-एक भी । उ० गये दुख दोष देखि पद-पंकज अब न साध एकौ रही । (गी० २१३१)
 एकंत-दे० 'एकंत' ।
 एकंत-(सं० एकंत)-अलग, एकंत में, एकाकी । उ० सदा रहैं एहि भाँति एकंत । (दो० ४७)
 एकटाई-(सं० एकस्थ)-एकत्रित, इकट्ठा, एक जगह ।
 एकतीस-(सं० एकत्रिंशति)-तीस और एक, बत्तीस में एक कम एकरस-१. समान, न सुखी न दुखी, एक ढंग का, परिवर्तित न होनेवाला, २. ईश्वर । उ० १. सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहि । (मा० ३१३६४)
 एकला-(सं० एकल)-अकेला, एकाकी ।
 एकंत-(सं०)-१. अलग, पृथक्, अकेला, २. अत्यन्त, नितांत । उ० १. जब एकंत बोलाइ सब कथा सुनावौ तोहि । (मा० १११६६)
 एका-(सं० एक)-दे० 'एक' । उ० १. समिटे सुमट एक तें एक । (मा० ११२५२१२)

एकाकार-(सं०)-मिलकर एक होने की क्रिया, एकमय होना ।
 एकाकिन्ह-(सं० एकाकिन)-अकेले रहने वालों, एकाकियों ।
 उ० सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहि ।
 (मा० १।७६) एकाकी-(सं० एकाकिन)-अकेला, तनहा ।
 उ० जानि राम बनबास एकाकी । (मा० २।२२८२)
 एकाग्र-(सं०)-१. चंचलता रहित, स्थिर, चंचलता रहित ।
 एकादशी-(सं० एकादशी)-प्रत्येक चांद्रमास के शुक्ल और
 कृष्ण पक्ष की ग्यारहवीं तिथि, या उस दिन रखा जाने
 वाला व्रत जिसमें लोग फलाहार पर रहते हैं । कभी-
 कभी इसमें अन्न, फल, जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया
 जाता, जिसे निर्जला कहते हैं । वर्ष भर में चौबीस
 एकादशियाँ होती हैं, जिनके उत्पन्ना, प्रबोधिनी तथा
 भीमसेनी आदि अलग-अलग नाम हैं । उ० एकादशी
 एक मन बस कै सेवहु जाह । (वि० २०३)
 एक-दे० 'एक' । उ० १. अब अभिलाषु एक मन मोरें ।
 (मा० २।३।४)
 एक-दे० 'एक' । उ० १. विमल बंस यह अनुचित एक ।
 (मा० २।१०।४)
 एतत्-(सं०)-यह ।
 एत-(सं० आवित्य)-सूर्य, रवि । उ० एत-बंस बर बरन
 जग सेतु जगत सब जान । (स० २६६)
 एतनेहि-इतना ही ।
 एतना-(सं० एतावत्)-इतना, इस मात्रा का । उ० एतना
 कहत नीति रस भूला । (मा० २।२२६।३) एतनिअ-इतनी
 ही, केवल इतनी । उ० जनु एतनिअ विरंचि करतूती ।
 (मा० २।१।३) एतनेइ-इतना ही । उ० एतनेइ कहेहु
 भरत सन जाई । (मा० २।१५७।१) एतनेहि-इतने ही ।
 उ० जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं । (मा० ५।१५।४)
 एतनो-(सं० एतावत्)-इतना । उ० एतनो परेखो सब भाँति
 समरथ आखु । (ह० २६) एतनोई-इतना ही । उ० राज-
 धरम सरबसु एतनोई । (मा० २।३१६।१)

एताइस-(सं० एताइश)-इसके समान, ऐसा । उ० ससुरु
 एताइस अवध निवासु । (मा० २।६८।३)
 एती-(सं० इयत्)-इतनी, इस मात्रा की । उ० तुलसी अरि
 उर आनि एक अब एती गलानि न गलतो । (गी० ५।१३)
 एते-१. इतने, इस परिमाण के, २. इससे । उ० १. सहि
 न जात मोपै परिहास एते । (वि० २४१) एतेहु-इतने
 भी । उ० एतेहु पर करिहहि जे असंका । (मा० १।१२।४)
 एतो-इतना । उ० एतो बडो अपराध, भो न मन बाँवों ।
 (वि० ७२)
 एन-(सं० अयन)-घर, स्थान ।
 एरंड-(सं०)-रंड, रंडी, एक पेड़ जिसके बीज से तेल
 निकाला जाता है ।
 एवं-(सं०)-ऐसा ही, इसी प्रकार । उ० एवमस्तु करना-
 निधि बोले । (मा० १।१५०।१) एवमस्तु-ऐसा ही हो,
 यही हो । उ० दे० 'एवं' । एव-(सं०)-१. एक निश्च-
 यार्थक शब्द, ही, २. भी । उ० १. सुए मार सुविचार-इत
 स्वारथ-साधन एव । (दो० ३४६)
 एह-(सं० एषः)-यह । उ० सुनु अजहुँ सिखावन एह ।
 (वि० १६०) एहि-इसने । उ० पालव बैठि पेवु एहि
 काटा । (मा० २।४७।३) एहि-(सं० एषः)-१. इसे,
 इसको, २. इसी, ३. इसे । उ० १. सदा रासु एहि प्रान
 समाना । (मा० २।४७।३) एहीं-इसी । उ० लोचन लाहु
 लेहु छन एहीं । (मा० २।११४।३) एही-इसी । उ० रीकि
 बूझी सबकी, प्रतीति प्रीति एही द्वार । (वि० २६०)
 एहा-दे० 'एह' । उ० एक जनम कर कारन एहा । (मा०
 १।१२४।२)
 एहु-यही । उ० अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित
 मत एहु । (मा० २।२०७)
 एहूँ-इसी । उ० एहूँ मिस देखौ पद जाई । (मा० १।२०६
 ।४) एहु-यही, यह । उ० तुम्ह तौ भरत मोर मत एहु ।
 (मा० २।२०८।४)

ए

ऐ-(सं०)-१. शिव, २. एक संबोधन ।
 ऐक-(सं० ऐक्य)-१. एक का भाव, २. समता । उ० २.
 कीन्ह बहुत अम ऐक न आप । (मा० २।१२०।३)
 ऐन (१)-(सं० अयन)-घर, भंडार । उ० बिहसे करुना-
 ऐन चित्तह जानकी लखन तन । (मा० २।१००)
 ऐन (२)-(अर०)-१. अरबी, फारसी तथा उर्दू का एक
 अक्षर (६) २. ठीक-ठीक, पूरा । उ० १. दे० 'गैत' ।
 ऐना-दे० 'ऐन (१)' ।
 ऐनी-दे० 'ऐन (१)' । उ० बड़े भाग मख-भूमि प्रगट भइ
 सीय सुमंगल-ऐनी । (गी० १।७६)
 ऐपन-(सं० लेपन)-एक मांगलिक द्रव्य जो चावल और
 हरी को एक साथ गीला पीसने पर बनता है । पूजादि

में इससे थापा लगाते हैं । उ० अपनो ऐपन मिजहवा तिय
 पूजाहि निज भीति । (दो० ४५४)
 ऐरापति-(सं० ऐरावत्)-इंद्र का हाथी जो पूर्व दिशा का
 दिग्गज है । समुद्र-मंथन करने पर यह निकला था ।
 ऐरावत्-दे० 'ऐरापति' ।
 ऐश्वर्य-(सं०)-१. विभूति, धन, संपत्ति, २. प्रभुत्व,
 आधिपत्य । उ० १. ज्ञानविज्ञान-बैराग्य ऐश्वर्य निधि ।
 (वि० ६१)
 ऐसइ-दे० 'ऐसेइ' ।
 ऐसा-(सं० ईश)-इस प्रकार का, इस ढंग का । उ० साहु
 अवग्या कर फलु ऐसा । (मा० ५।२६।३) ऐसि-इस प्रकार
 की, ऐसी । उ० ताहि कि सोइइ ऐसि जावाई । (मा०

६।६।१) ऐसिअ-इसी प्रकार का, ऐसे ही। उ० ऐसिअ प्रख बिहगपति कीन्हि काग सन जाइ। (मा० ७।२५) ऐसिउ-ऐसी भी, इस प्रकार की भी। उ० ऐसिउ पीर बिहसि तेहि गोई। (मा० २।२७।३) ऐसिय-ऐसी ही। उ० ऐसिय हाल भई तोहि धौं। (क० ६।१२) ऐसी-इस प्रकार की। उ० अवटित-घटन, सुघन-बिघटन, ऐसी बिरुदावलि नहि आन की। (वि० ३०) ऐसे-इस प्रकार के। उ० ऐसे को ऐसो भयो कवहुँ न भजे बिन बानर के चरवाहै। (क० ७।२६) ऐसेइ-ऐसा ही, इसी प्रकार। उ० ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी। (मा० १।८।३।३) ऐसेउ-ऐसे भी। उ० ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें जो प्रभुता कवि कोविद गावैं। (क० ७।२) ऐसेऊ-ऐसे भी, इस प्रकार के भी। उ० जानकी जीवन जाने बिना जग ऐसेऊ जीव न जीव कहाए। (क० ७।४५) ऐसेहि-इसी प्रकार, ऐसा ही। उ० ऐसेहि करब धरहु मन धीरा। (मा० १।५।१।३) ऐसेहि-दे० 'ऐसेहि'। ऐसेहु-ऐसे भी,

इस प्रकार के भी। उ० जौ न जाउँ बन ऐसेहु काजा। (मा० २।४२।१) ऐसेहुँ-ऐसे भी। उ० ऐसेहुँ थल बामता, बडि बाम बिधि की बानि। गी० ७।३२) ऐसो-ऐसा, इस प्रकार का। उ० सौंउ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम रे। (वि० ७१) ऐसोइ-ऐसा ही, इस प्रकार का ही। उ० मानत नहि परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन बाम को। (वि० १५५) ऐहउँ-आऊँगा, आ जाऊँगा। उ० ऐउँ बेगिहि होउ रजाई। (मा० २।४६।२) ऐहहिं-आवेंगे, आयेंगे। उ० ऐहहिं बेगि सुनत दोउ आता। (मा० २।३।१।४) ऐहहु-आवोगे, आवोगी। उ० जब लगि तुहहु ऐहहु मोहि पाहीं। (मा० १।५२।१) ऐहै-आवेंगे। उ० काज के कुसल फिर एहि मग ऐहै? (गी० २।३७) ऐहै-आवेगा। उ० ऐहै कहा, नाथ आयो ह्यौं, क्यों कहि जाति बनाइ है। (गी० १।३४) ऐहौ-आओगे। उ० तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुवीर न ऐहौ। (गी० २।७६)

ओ

ओंकार-(सं०)-१. ओंकार, एक पवित्र शब्द जो वेदाध्ययन के पूर्व और अंत में कहा जाता है। २. प्रणव, ब्रह्म। उ० १. निराकारमोंकारमूलं सुरीयं। (मा० ७।१०।८।२) ओं-(सं०)-१. ब्रह्मा, विधाता, २. संबोधनसूचक एक शब्द। ओउ-वे भी, वह भी। ओऊ-वह भी, वे भी। उ० जद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहि नहि पूजहि ओऊ। (वि० ६२) ओक-(सं०)-१. घर, स्थान, निवास, २. आश्रय, ठिकाना, ३. समूह, ग्रहों या नक्षत्रों का समूह। उ० १. ओक की नीव परी हरिलोक, बिलोकत गंग तरंग तिहारे। (क० ७।१४५) २. ओक दै बिसोक किए लोकपति लोकनाथ। (वि० २४८) ओष-(सं०)-१. समूह, ढेर, २. किसी वस्तु का घनत्व, ३. धारा, बहाव। उ० १. जो बिलोकि अघ ओष नसाहीं। (मा० २।२४।२) ओज-(सं०)-१. बल, प्रताप, २. दीप्ति, तेज। ओफ (१)-(सं० उदर)-पेट की थैली, आँत। ओफ (२)-(सं० उपाध्याय)-ब्राह्मण, पंडित। उ० तुलसी रामहि परिहरे निपट हानि सुनु ओफ। (दो० ६८) ओफरी-पेट के भीतर की थैली, पचौनी। उ० ओफरी की भोरी काँधे, आँतानि की सेवही बाँधे। (क० ६।५०) ओट-(सं० उट=तृण)-१. आड़, २. शरण, सहारा। उ० २. नाम ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल। (क० ७।१७) मु० ओट लेत-बहना हड़ते, सहारा लेते। ओटा-दे० 'ओट'। उ० १. लखेउ न लखन सघन बन ओटा। (मा० २।२३।१) ओठ-(सं० ओष्ठ)-होंठ, अधर, लब। उ० दसन ओठ कारहि अति तर्जहि। (मा० ६।४।१।३)

ओड़न-(सं० ओष्ण)-रोकने में, वारण करने में। उ० एक कुसल अति ओड़न खाँड़ि। (मा० २।१६।१।३) ओड़ि-अहिं-१. रोकें जाते हैं, २. रोकेंगे। उ० १. ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाए। (मा० २।३०।६।४) ओड़िअत-ओड़ते हैं, रोकते हैं। उ० पलक पानि पर ओड़िअत समुक्ति कुवाह सुवाह। (दो० ३२५) ओड़िये-कैला-इए, पसारिए। उ० तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िये। (क० ७।२५) ओढ़न-(सं० उपवेष्टन)-ओढ़ने या शरीर ढकने के लिए कपड़ा। रजाई, हुपट्टा, चादर या ओढ़नी आदि। उ० लोभइ ओढ़न लोभइ बासन। (मा० ७।४०।१) ओढ़ाई-ढकी हुई, आच्छादित। उ० हेमलता जलु तरु तमाल दिग नील निचोल ओढ़ाई। (वि० ६२) ओढ़िहौं-ओढ़ूँगा, अपना शरीर ढकूँगा। उ० तुलसी पट उतरे ओढ़िहौं। (गी० १।३०) ओत (?)-१. आराम, चैन, सुख, २. आलस्य, ३. ताना बाना। उ० होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो। (क० १।२५) ओतो-(सं० तावान्)-उतना, उस मात्रा का। उ० क्यों कहि आवत ओतो। (वि० १६१) ओदन-(सं०)-पका हुआ चावल, भात। उ० भाजि खले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ। (मा० १।२०।३) ओधे-(सं० आबंधन)-बंध गए, लग गए। उ० निज-निज काज पाइ सिख ओधे। (मा० २।३२।१) ओप-(?) १. दीप्ति, चमक, २. सुन्दरता, ३. यश, ४. प्रताप। उ० ४. खल नर गुन मानै नहीं भेटहि दाता-ओप। (सं० ६२७) ओर-(सं० अवार)-१. तरफ, दिशा, २. अंश, झोर, ३.

आरम्भ । उ० २. होउ नात यह ओर निबाह । (मा० २।२४।३)
 ओरहने-(सं० उपालम)-उलाहना, शिकायत । उ० ठाली ग्वालि ओरहने के मिस आह बेकामहि । (क० ५)
 ओरा-दे० 'ओर' । उ० १. मुगी देखि वव जनु चहु ओरा । (मा० २।७३।३)
 ओरी-दे० 'ओर' । उ० १. बंस-बखान करै दोउ ओरी । (गी० १।१०३)
 ओरे-(सं० उपल)-ओले, वर्षा में गिरे हुए मेह के जमें पथरवत् हिम के गोले । उ० गरहि गात जिमि आतप ओरे । (मा० २।१४७।४)
 ओरे-(?)-किसी का अपने किसी प्रिय प्राणी को दूसरे के पास इसलिए रख छोड़ना कि यदि वह प्रतिज्ञा न पूरी करे तो दूसरा उस प्राणी के साथ जो चाहे करे । जमानत में किसी व्यक्ति या वस्तु को रखना । उ० बाजे-बाजे राजनि के बेटा-बेटी ओल है । (क० २।२१)
 ओषध-दे० 'ओषधि' ।

ओषधि-(सं०)-वह बनस्पति या जड़ी-बूटी जो दवा के काम आवे ।
 ओषधी-(सं०)-दे० 'ओषधि' ।
 ओषधीश-(सं०)-१. चंद्रमा, २. कपूर ।
 ओस-(सं० अवश्याय)-शीत, शबनम, हवा में मिली भाप जो रात में सरदी के कारण जमकर जल-बिंदु बनकर जाड़े के दिनों में बाहर की चीजों पर लग जाती है । उ० पंकज कोस ओसकन जैसे । (मा० २।२०४।१)
 ओसरिन्ह-(सं० अवसर)-बारी-बारी से । उ० फूलहिं फुलार्हि ओसरिन्ह गावैं सुहो गौंड मस्तार । (गी० ७।१८)
 ओहार-(सं० अवधार)-रथ या पालकी के ऊपर का ढपड़ा या परदा । उ० सिबिका सुभग ओहार उधारी । (मा० १।३४८।४)
 ओहि-(सं० सः)-उसको, उसे ।
 ओही-१. उससे, २. उसको, ३. उसका । उ० २. सादर पुनि-पुनि पूँछति ओही । (मा० २।१७।१)
 ओहू-उस, वह भी । उ० पिता बचन मनसेई नहिं ओहू । (मा० ६।६१।३)

ओ

औजि-(सं० आवेजन)-ऊबरकर, घबराकर । उ० एक औजि पानी पीकै कहै 'बनत न आवनो' । (क० ५।१८)
 औ (१)-(सं०)-१. शेष, २. पृथ्वी ।
 औ (२)-(सं० अपर)-और । उ० तुलसी मुनि ग्रामबधू बियकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन चै । (क० २।१८)
 औगुण-(सं० अवगुण)-दोष, बुराई ।
 औगुन-दे० 'औगुण' । उ० निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर । (क० ७।१७४)
 औघट-(सं० अव + घट)-कुघट, अटपट, विकट ।
 औचक-(सं० चक)-अचानक, पकापक, सहसा ।
 औचट (१)-(उच्चाटन)-अंडस, संकट, कठिनाई ।
 औचट (२)-(?)-१. अचानक, अकस्मात्, २. भूल से, अनचीते में ।
 औटत-(सं० आवर्त्तन)-१. औटने पर, उबालने पर, २. औटता है । उ० १. इंधन अनल लगाइ कल्प सत औटत नास न पावै । (वि० १।१५) औटि-औटकर, उबालकर ।
 औटर-(सं० धार)-१. जख्द बलनेवाला, मनमौजी, २. बिना ध्यान दिये, जल्द । उ० २. भोखानाथ जोगीजब औटर हरत हैं । (क० ७।१५३)
 औतार-दे० 'अवतार' ।
 औतेहु-आते, पधारते । उ० जौ तुम्ह औतेहु मुनि की नाई । (मा० १।२८२।२)
 औध-दे० 'अवध' । उ० औध तजी मगबास के रूप उयै । (क० २।१)
 औनिप-(सं० अवनिप)-राजा, छप । उ० औनिप अनेक

ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै । (क० ७।१६४) औनिपन-राजाओं ने, राजा लोगों ने । उ० माति आस औनिपन मानो-मौनता गही । (क० १।१४)
 और-(सं० अपर)-१. अन्य, भिन्न, दूसरा, २. एक संयोजक शब्द, तथा, ३. अधिक, ज्यादा । उ० १. और आस बिस्वास भरोसो हरौ जीव जइताई । (वि० १०३)
 औरउ-और भी, इसके अतिरिक्त अन्य भी । उ० औरउ कथा अनेक प्रसंगा । (मा०-१।३७।८) औरनि-औरों, दूसरों । उ० औरनि की कहा चली एकै बात भले-भली । (वि० २५१) औरहिं-दे० 'औरहि' । औरहि-दूसरे को, किसी अन्य को । उ० जानकी जीवन को जन है जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि । (क० ७।२६) औरहु-और भी, अन्य भी । उ० सीता अरु लखिमन संग लीन्हें औरहु जिते दास आए । (गी० ७।३८) औरे-और से, अन्य से । उ० बनिहै बात उपाइ न औरे । (गी० २।११) औरै-१. और ही, दूसरी ही, २. दूसरे को, किसी अन्य को । उ० १. औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो । (क० २।१८) औरै-और भी, और भी कुछ । उ० अवधि आहु किधौ औरो दिन है हैं । (गी० ६।१७)
 औरस-(सं०)-अपनी धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र, स्मृत्यनुसार १२ प्रकार के पुत्रों में सर्वश्रेष्ठ ।
 औरैबै-(सं० अव + बैव)-देही चालें, चाल की बातें । उ० हमहूँ कछुक लखी ही तब की औरैबै नंदलला की । (क० ४३)
 औषध-(सं०)-दवा, रोग नाशकद्रव्य । उ० विनु औषध बिआधि बिधि खोई । (मा० १।१७।१३)

औषधी-दे० 'औषध' । उ० कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन । (मा० ६।२५)
 औषधु-दे० 'औषध' । उ० एहि कुरोग कर औषधु नाहीं । (मा० २।२१२।१)
 औसर-(सं० अवसर)-समय, मौका । उ० तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि नौ, तीनि, इकीस सबै । (क० १।७)

औसरा-दे० 'औसर' । उ० अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिबे मंद । (दो० ४६६)
 औसान-(सं० अवसान)-अंत, आखीर, समाप्ति ।
 औसि-(सं० अवश्य)-जरूर, निश्चित ।
 औसेर-(सं० अवसेह)-१. खटका, अटकाव, २. देर, विलंब, ३. चिंता ।

क

कं-(सं०)-१. पानी, जल, २. मस्तक, ३. कामना, ४. अग्नि, ५. सुख, ६. सोना । उ० १. कारन को कं जीव को खं गुन कह सब कोय । (स० २७७)
 कंक-(सं०)-१. एक मांसाहारी पक्षी, सफेद चील, २. बगुला, ३. यमराज, ४. कंस का एक भाई, ५. क्षत्रिय । उ० १. काम कंक बालक कोलाहल करत हैं । (क० ६।४६)
 कंकण-दे० 'कंकन' ।
 कंकन-(सं० कंकण)-१. कलाई में पहनने का एक आभूषण, कड़ा, चूड़ा । २. विवाह के समय लोहे की अँगूठी आदि के साथ कलाई में बाँधे जानेवाला धागा । उ० १. कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । (मा० १।२३०।१)
 कंगूरिह-कंगूरों पर, बुजों पर । उ० कोट कंगूरिह सोहहि कैसे । (मा० ६।४१।१) कंगुरा-(फा० कुंगरः)-१. शिखर, चोटी, २. कोट, किला या बड़े मकानों की दीवार में थोड़ी थोड़ी दूर पर बने कुछ ऊँचे बुज । उ० २. रचे कंगुरा रंग रंग बर । (मा० ७।२७।२)
 कंगाल-दे० 'कंगाल' ।
 कंगाल-(सं० कंगाल)-१. भुक्खड़, मंगन, २. गरीब, दीन । उ० १. इकनि को घर-घर डोलत कंगाल बोलि । (ह० २६)
 कंचन-(सं० कंचन) सोना, सुवर्ण । उ० । किंकर कंचन कोह काम के । (मा० १।१२।२) कंचनहिं-सोने को । उ० स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं । (वि० १०५)
 कंचुक-(सं०)-१. जामा, अचकन, २. चोली, ३. वस्त्र, ४. केशुक । उ० २. बहु बासना विविध कंचुक-भूषण-लोभादि भरयो । (वि० ६१)
 कंचुकि-(सं० कंचुकी)-अँगिया, चोली । उ० श्रीफल, कुच, कंचुकि लताजाल । (वि० १४)
 कंचुकी-(सं०) दे० 'कंचुकि' ।
 कंज-(सं०)-१. कमल, पंकज, २. ब्रह्मा, ३. अमृत, ४. सिर के बाल, ५. विष्णु के चरण में मानी जानेवाली एक रेखा । उ० १. बंदुँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि । (मा० १।१। सो० ५) कंजनि-कमलों में । उ० कर-कंजनि पहुँची मंजु । (गी० १।१६)
 कंजनाभ-कमलनाभ, विष्णु, जिसकी नाभी से कमल उत्पन्न हो । उ० परमकारन, कंजनाभ, जलदाभतनु, सगुन निर्गुन, सकल-हरय-ब्रह्मा । (वि० ५३)

कंजा-दे० 'कंज' । उ० १. सिर परसे प्रभु निज कर कंजा । (मा० १।१४।४)
 कंजु-दे० 'कंज' । उ० बंदुँ सुनि पद कंजु, रामायन जेहिं निरमयउ । (मा० १।१४ घ)
 कंट-(सं० कंटक)-काँटा ।
 कंटक-(सं०)-१. काँटा, २. कष्ट देनेवाला, ३. बाधा, विघ्न । उ० १. ध्वज कुलिस अंकुस कंज सुत बन फिरत कंटक किन लहे । (मा० ७।१३। छं० ४)
 कंटकित-(सं०)-काँटदार, कंटकयुक्त । उ० कमल कंटकित सजनी कोमल पाइ । (ब० २६)
 कंठ-(सं०)-१. गला, ग्रीवा, गर्दन, २. मुँह, गले के भीतर की भोजन नालिका जिससे होकर अन्न तथा जल आदि पेट में पहुँचता है । ३. स्वर, आवाज़ । उ० १ तथा ३. नीलकंठ कलकठ सुक चातक चक्क चकोर । (मा० २।१३७) कंठ-हँसी-भीतर ही भीतर हँसना, सुस्कराना । उ० आनाकानी कंठहँसी मुँहा-चाह होन लगी । (गी० १।८२) कंठे-(सं०)-कंठ में, गले में । उ० लसज्जाल बालेन्दु कंठे भुजंगा । (मा० ७।१०। रलो० ३)
 कंठि-कंठवाली । [जैसे कलकंठि = मधुर कंठवाली = कोयल] उ० सुनि कलरव कलकंठि लजानी । (मा० १।२६।१२)
 कंठु-दे० 'कंठ' । उ० २ कंठु सूख मुख आव न बानी । (मा० २।३५।१)
 कंठु-(सं०)-खुजली, खाज । उ० ममता दाद कंठु हरषाई । (मा० ७।१२।१।७)
 कंत-(सं० कान्त)-पति, स्वामी, मालिक । उ० कंतराम विरोध परिहरहू । (मा० ६।१४।४) कंता-दे० 'कंत' । उ० जीव अनेक एक श्रीकंता । (मा० ७।७।४)
 कंतार-(सं० कान्तार)-दे० 'कान्तार' । उ० २. संसार कंतार अतिघोर गंभीर । (वि० ५६)
 कंद (१)-(सं०)-१. जड़, मूल, खाने के काम आनेवाली जड़ें । २. बादल, ३. समूह । उ० १. सिय सुमंत्र आता सहित कंद मूल फल खाइ । (मा० २।८६)
 कंद (२)-(फा०)-मिश्री, एक मिठाई ।
 कंदर-(सं०)-गुफा, गुहा, पर्वतों में रहने योग्य सुरचित स्थान । उ० कंदर खोह नदी नद नारे । (मा० २।६२।४)
 कंदरिह-कंदराओं, गुफाओं । उ० सदमंथ पर्वत कंदरिह महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे । (मा० १।८४। छं० १)
 कंदरा-कंदरा में । उ० विरिंकंदरा सुनी संपाबी । (मा०

३२७१) कंदरा-(सं०)-दे० 'कंदर'। उ० गिरि कंदरा खोह अनुमाना। (मा० ६१११३)
 कंदर्प-(सं०)-१. कामदेव, मनोज। उ० कंदर्पदर्प-दुर्गम-दवन, उमारवन गुनभवन हर। (क० ७११५०) कंदर्पहं-कामदेव को भस्म करनेवाले, शंकर। उ० नौमीढ्य गिरि-जापति गुणनिधि कंदर्पहं शंकरम्। (मा० ६१११०२)
 कंदा-दे० 'कंद'। उ० १. करहि अहार साक फल कंदा। (मा० ११४०११)
 कंदाकर-(सं०) आकाश, मेघों का घर।
 कंदिग-कं=सिर, दिग=दिशा=१०। अर्थात् दस सिरवाला, रावण। उ० कंदिग दून नछत्र हनि गुनी अनुज तेहि कीन। (सं० २२१)
 कंदिनी-(सं०) कंदन-नाश करनेवाली।
 कंदु-दे० 'कंदुक'।
 कंदुक-(सं०) १. गेंद, २. गोल तकिया, ३. सुपारी, पुं गी-फल। उ० १. कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौ। (मा० ११२५३२)
 कंदैलो-(सं०) कंदम-कौंचड़वाला, मलयुक्त, गंदा। उ० जनम कोटि को कंदैलो हृद-हृदय थिरातो। (वि० १५१)
 कंध-(सं०) स्कंध-१. कंधा गला और भुजमूलों के बीच का स्थान, २. डाली, मोटी डाली। उ० १. वृषभकंध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु बिसाल। (मा० ११२४३)
 कंधर-(सं०)-१. गदैन, गला, २. बादल। उ० १. केहरि कंधर चारु जनेज। (मा० ११४७४)
 कंधरा-दे० 'कंधर'।
 कंधा-(सं०) स्कंध-शरीर का वह भाग जो गले और मोढ़े के बीच में रहता है।
 कंप-(सं०)-कांपना, थरथराहट, कँपकँपी। उ० हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। (मा० ११५१३)
 कंपत-कांपता है। उ० कंपत अकंपन, सुखाय अतिकाय काय। (क० ६१४३) कंपति (१)-१. कांपता है, हिलता है, २. कांप उठा, कांप गया। उ० १. मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे। (मा० ६१६११) कं० १) कंपहि-कांपते हैं, कांप उठते हैं। उ० कंपहि भूप बिलोकत जाके। (मा० ११२६३२) कंपेउ-कांप उठे, कांप गए। उ० भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोक। (मा० ११८७३)
 कंपति (२)-(सं०)-समुद्र, पानी का स्वामी। उ० सत्य तोय निधि कंपति उदधि पयोधि नदीस। (मा० ६१५)
 कपती-दे० 'कंपति (१)'
 कंपन-(सं०)-कांपना, कँपकँपी।
 कंषित-(सं०)-१. कांपता हुआ, २. भयभीत, डरा। उ० १. कहहि बचन भय कंषित गात्ता। (मा० ११६५३)
 कँपै-कँपाकर, कंषित कर। उ० कँपै कलाप बर बरहि फिरा-बत। (गी० ३११)
 कंबल-(सं०)-१. ऊन का बुना हुआ बहुत मोटा कपड़ा जो ओढ़ने के काम आता है। २. एक बरसाती कीड़ा। ३. गाय या बैल के गले के नीचे खटकती हुई झालर। उ० ३. गलकंबल बहना विभाति। (वि० २२)
 कंबु-(सं०)-१. शंख, २. घोंघा, ३. हाथी। उ० १. कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। (मा० १११६१४)
 कंठ-(सं०)-१. मथुरा के राजा उग्रसेन का पुत्र जो कृष्ण

का मामा था और जिसे कृष्ण ने मारा था। यह बहुत ही अत्याचारी था। यहाँ तक कि राज्य के लोभ से इसने पिता अपने को भी इसने बंदी बना दिया था। उ० विपुल कंसादि निर्वसकारी। (वि० ४८)
 क (१)-(सं०)-१. ब्रह्मा, २. कामदेव, ३. विष्णु, ४. प्रकाश।
 क (२)-(सं०) कृतः-संबंधकारक का चिह्न, का, के।
 क (३)-(?) के लिए, को। उ० जो यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक। (मा० ११२६ ख)
 कइ (१)-(सं०) क-की। उ० सोभा दसरथ भवन कइ को कवि बरनै पार। (मा० ११२६७)
 कइ (२)-(सं०) कति-कई, एक से अधिक, अनेक।
 कइकइ-(सं०) कैकेयी-राजा दशरथ की रानी और भरत की माता कैकेयी।
 कच-(सं०)-१. बाल, चिचुर, केश, २. बादल। उ० १. चिक्कन कच कुंचित गमुआरे। (मा० १११६१५) कचनि-कचों ने, बालों ने। उ० कचनि अनुपम छवि पाई। (गी० १११०६)
 कचुमर-(?) कुचलकर बनाया हुआ अचार, कुचला।
 कच्छ-(सं०) कच्छप-१. कछुआ, २. तुन का पेड़ जो बहुत जल्दी जलता है। उ० २. राम-भ्रताप हुतासन कच्छ विप-च्छ समीर समीर दुलारो। (ह० १६)
 कच्छप-(सं०)-कछुआ, कच्छ।
 कच्छपु-दे० 'कच्छप'। उ० परम रूपमय कच्छपु सोई। (मा० ११२४७४)
 कछु-(सं०) किंचित-कुछ, ज़रा, थोड़ा सा, थोड़ी मात्रा या संख्या का। उ० दुखप्रद उभय बीच कछु बरना। (मा० ११५२) कछुअ-कुछ भी, तनिक भी। उ० तब तें कछुअ न पाए। (गी० ११६६) कछुएक-थोड़ी सी, थोड़ी। उ० एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछुएक है कही। (मा० ११६) कछुवै-कुछ भी। उ० तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जइताबस ते न कहैं कछुवै। (क० ७१७०)
 कछुक-दे० 'कछु'। उ० कछुक बनाइ भूप सन भाषे। (मा० ११३१३)
 कछु-दे० 'कछु'। उ० नाथ न कछु मोरि प्रभुताई। (मा० ११३३५)
 कछौटी-(सं०) कच-लँगोटी, कछनी, कछौटा। उ० छोटिऐ कछौटी कटि छोटिऐ तरकसी। (गी० ११४२)
 कज्जल-(सं०)-१. काजल, अंजन, २. काला, श्याम, ३. स्याही, रोशनाई। उ० १. सहित प्रान कज्जलगिरि जैसे। (मा० ६११६२)
 कटक-(सं०)-१. सेना, फौज, २. समूह, ३. कंकण, कड़ा, ४. चक्र, पहिया, ५. चटाई। उ० १. सुभट-मकंद-भाछु-कटक-संघट सजत। (वि० ४३) ३. यथा पट-तंतु घट-श्रुतिका, सर्प-स्रग, दारु-करि, कनक-कटकंगदादी। (वि० ५४) कटकहि-सेना में, फौज में। उ० गजेंउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास। (मा० ६१७२)
 कटकई-सेना, फौज। उ० बिजय हेतु कटकई बनाई। (मा० ११२४३)
 कटककारी-सेना का बनाने या सजानेवाला, सेनापति।

कड़हारू-दे० 'कड़हारू' । उ० चहत पाहू नहिं कोउ कड़-
हारू । (मा० ११२६०१४)
कड़ाह- (सं० कटाह)-द्रव पदार्थ पकाने का एक लोहे का
गोल और बड़ा बर्तन ।
कड़हार-दे० 'कड़हार' ।
कड़आ- (सं० कड़क)-१. स्वाद में उग्र और अप्रिय, कड़ु,
अमधुर, २. बुरा ।
कड़ाह- (सं० कषण)-कड़वाकर, खिचवाकर । उ० खाल
कड़ाह बिपति सहि मरई । (मा० ७१२११६) कड़ावउं-
निकलवा लूंगा, कड़वा लूंगी । उ० तब धरि जीभ कड़ावउं
तोरी । (मा० २११४४)
कड़ैया-निकालनेवाला, खींचनेवाला । उ० खाल को कड़ैया
सो बड़ैया उरसाल को । (क० ७१३५)
कड़ोरि- (सं० कषण)-घसीटकर, खींचकर । उ० तोरि जमका-
तरि मँदोदरी कड़ोरि आनी । (ह० २७)
कण- (सं०) -रवा, ज़रा, किनका, अत्यन्त छोटा टुकड़ा ।
कत- (सं० कृतः)-१. क्यों, किसलिए, २. कैसे, ३. किधर,
कहाँ, किस ओर । उ० १. नाथ करिअ कत बादि बिषादु ।
(मा० २१२०१४) कतहुँ-कहीं, कहीं भी, किसी स्थान पर ।
उ० कतहुँ न दीख संसु कर भागा । (मा० ११६३२)
कति- (सं०)-१. कितनी, २. कौन । उ० १. यह लघु जलधि
तरत कति बारा । (मा० ६१११)
कथ- (सं०)-१. कैसे, किस प्रकार, २. एक आश्चर्यसूचक
शब्द ।
कथइ- (सं० कथन) कहता था, कहता है । उ० जिमि-
जिमि तापसु कथइ उदासा । (मा० १११६२३) कथत-
(सं० कथन)-कहने में, कथन मात्र में । उ० भरम प्रतिष्ठा
मानि मन तुलसी कथत मुलान । (स० ३५५)
कथहिं-कहते हैं, वर्णन करते हैं ।
कथक- (सं०)-१. एक जाति जिसका काम गाना, बजाना
तथा नाचना है । २. कथा कहनेवाला ।
कथन- (सं०)-कहना, वर्णन, बखान । उ० कलि अन्न खल
अवरुन कथन ते जलमल बग काग । (मा० ११४१)
कथनीय- (सं०)-कहने योग्य, वर्णनीय ।
कथनीया-दे० 'कथनीय' । उ० सो सनेहु सुखु नहिं कथ-
नीया । (मा० ११२४२३)
कथरी- (सं० कथा)-गुदड़ी, फटे कपड़ों को सिलकर बनाया
हुआ बिछावन या ओढ़ना । उ० पातक पीन, कुदारिद
दोन, मलीन धरे कथरी करवा है । (क० ७१५६)
कथा- (सं०)-बात या कहानी, जो कही जाय, वृत्तांत, इति-
हास । उ० कहिसि कथा सत सवति कै । (मा० २११८)
कथिक-दे० 'कथक' । उ० १. कियो कथिक को दंड हौं जड़
कर्म कुचालि । (वि० १४७)
कथित-वर्णित, भाषित, कहा हुआ ।
कदंब- (सं०)-१. कदम का पेड़, २. समूह, झुंड । उ० २.
खेती बनिज न, भीख भलि, अफल उपाय कदंब । (प्र०
७१५३)
कदंबा-दे० 'कदंब' । उ० २. एहि बिधि करेहु उपाय
कदंबा । (मा० २०८२३)
कदन- (सं०)-१. मरण, विनाश, २. पाप, ३. दुःख, कष्ट,

४. युद्ध, ५. हिंसा; घात । उ० १. जयति दस-कंठ-घटकरन
बारिदनाद-कदन-कारन, कालनेमि-हंता । (वि० २५)
कदन-दे० 'कदंब' ।
कदरज-दे० 'कदर्य' ।
कदराह- (सं० कातर)-कायर बने, भीरुता दिखलावे । उ०
सुनि रजाइ कदराह न कोऊ । (मा० २११६१११)
कदराई- 'कदराई' का बहुबचन । उ० १. लागि अगम
अपनी कदराई । (मा० २१७२११) कदराई-१. काय-
रता, भीरुता, २. हिचकता है, भीरुता दिखलाता है । उ०
१. सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई । (मा० ११२६०३३)
कदराहू-कायरता दिखलाओ, अधीर हो । उ० तात प्रेम
बस जनि कदराहू । (मा० २१७०१४)
कदरी- (सं० कदली)-केला, एक पेड़ जिसका फल भी इसी
नाम से पुकारा जाता है । उ० काठेहि पड़ कदरी फरइ
कोटि जतन कोउ सींच । (मा० ११५८)
कदर्यना- (सं० कदर्यन)-दुर्गति, दुर्दशा, बुरी दशा । उ०
कासी की कदर्यना कराल कलिकाल की । (क० ७१५८२)
कदर्य- (सं०)-१. एक प्रसिद्ध पापी, २. कंजूस, मकलीचूस ।
कदलि- (सं० कदली)-केला । उ० बिरचे कनक कदलि के
खंभा । (मा० ११२८७४)
कदली- (सं०)-केला । उ० तन पसेउ कदली जिमि काँपी ।
(मा० २१२०११)
कदाचि-दे० 'कदाचित्' । उ० जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ
पुनि होउं सनाथ । (मा० ४१७)
कदाचित-दे० 'कदाचित्' । उ० तबहुँ कदाचित सो निरु-
अरई । (मा० ७११७७४)
कदाचित- (सं०)-१. शायद, २. कभी, शायद कभी ।
कदापि- (सं०)-कभी भी, हर्गिज ।
कद्रू-कद्रू ने । दे० 'कद्रू' । उ० कद्रू बिनतहि दीन्ह दुखु,
तुम्हहि कौसिखौ देब । (मा० २११६)
कद्रू- (सं०)-महर्षि कश्यप की कई पत्नियों में से एक जिससे
सर्पों की उत्पत्ति हुई थी । कश्यप की दूसरी स्त्री विनता
से और कद्रू से एक बार सूर्य के घोड़ों के सफेद और काले
होने के संबंध में बहस हो गई और अंत में शर्त यह लगी
कि जिसकी हार होगी वह दूसरे की दासी बनेगी । बाद
में कद्रू को पता चला कि सूर्य के घोड़े सफेद हैं तो उसने
हार के भय से अपने काले पुत्रों (सर्पों) को ऊपर भेज
दिया । वे जाकर सूर्य के घोड़ों से लिपट गये । फल यह
हुआ कि कद्रू की जीत हो गई और विनता को दासी
बनना पड़ा । बाद में विनता के पुत्र गरुड़ ने इस रहस्य
का उद्घाटन कर अपनी माता को दासीपन से छुड़ाया ।
कन- (सं० कण)-अत्यल्प टुकड़ा, किनका, कण । उ०
सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा । (मा० ११२५८३)
कनै-कण को, कन को । उ० हुतो ललात कसगात खात
खरि मोद पाइ कोदो-कनै । (गी० ११४०) विशेष-चावल
आदि को कूटने के बाद, साफ करने पर कुछ रही धूल
की तरह एक वस्तु निकलती है जिसे कन या कण कहते हैं ।
दीन लोग इसकी रोटी खाते हैं ।
कनउड़- (?) -आभारी, यहसानमंद, कृतज्ञ । उ० हमहिं
आजु लागि कनउड़ काहु न कीन्हैउ । (पा० ८१)

कनक-(सं०)-१. सोना, स्वर्ण, २. धनूरा, ३. पलाश, ४. नागकेशर । उ० १. कनक सिंघासन सीय समेता । (मा० २।११।३) कनकउ-सोना भी । उ० कनकउ पुनि पपान तं होई । (मा० १।८०।३) कनकहिं-सोने पर, सोने में । उ० कनकहिं वान चढ़इ जिमि दाहें । (मा० २।२०।३) कनकौ-दे० 'कनकउ' ।
 कनककाशिपु-(सं०)-हिरण्यकशिपु, ब्रह्माद का पिता । दे० 'हिरण्यकशिपु' ।
 कनककशिपु-दे० 'कनककशिपु' । उ० रामनाम नरकेसरी कनककशिपु कलिकाल । (मा० १।२७)
 कनकपुरी-सोने का नगर, लंका । उ० कनकपुरी भयो भूप विभीषन । (गी० ५।२०)
 कनकफूल-सोने का फूल, एक सोने का बना हुआ फूल की तरह का आभूषण जिसे कान में पहनते हैं । उ० कानन्हि कनकफूल छवि देहीं । (मा० १।२१।४)
 कनकमय-सोने का बना हुआ । उ० तासु कनकमय सिखर सुहाए । (मा० ७।२६।४)
 कनकलोचन-दे० 'हिरण्यकशिपु' । हिरण्यकशिपु का भाई, एक दैत्य । उ० सोक कनकलोचन मति छोनी । (मा० २।२६।२)
 कनखियनु-(सं० कोश + अखि)-तिरछी आँखों से, आँख के कोनों से । उ० चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच । (ब० ३०)
 कनगुरिया-(सं० कनीनी + अँगुली)-सबसे छोटी उँगली, छिगुनी, कनिष्ठिका उँगली । उ० कनगुरिया कै मुदरी ककन होइ । (ब० ३८)
 कनसुई (१)-(सं० कर्ण + अश्रवण)-आहट, टोह, छिपकर बातें सुनना ।
 कनसुई (२)-(?) -खियाँ चलनी और गोबर की सहायता से एक सगुन निकालती हैं, जिसे कनसुई कहते हैं । इसमें गोबर की गौरी बनाकर उसे चलनी में रखकर उलाट दिया जाता है । यदि गौरी सीधी गिरती हैं तो शकुन माना जाता है और नहीं तो अपशकुन । मु० कनसुई लेत-सगुन बिचारते । उ० लेत फिरत कनसुई सगुन । (गी० १।६८)
 कनहार-दे० 'कड़हार' ।
 कना-(सं० कण)-१. मकरा, मडुवा नाम का अन्न जो कण के समान छोटा होता है । २. कण, कन । उ० १. कना समुक्ति क वरन हनु अंत-आदि-जत सार । (सं० २४२)
 कनावड़े (?) -१. काना, २. अंपग, जिसका कोई अंग खंडित हो, ३. कलंकित, निर्दित, ४. तुच्छ, नीच, ५. लज्जित, संकुचित, ६. उपकृत, आभारी । उ० ६. बानर विभीषन की ओर के कनावड़े हैं । (क० ७।१२२)
 कनिगर-(?) -अपनी मर्यादा का ध्यान रखनेवाला । उ० देखिए न दास दुखी तो से कनिगर के । (क० ३३)
 कनियाँ-(सं० स्कंध)-कोर, गोद, उछंद, कंधा । उ० सादर सुसुखि बिलोकि राम-सिंखुरूप, अनूप भूप लिए कनियाँ । (गी० १।३१)
 कनिष्ठ-(सं०)-१. बहुत छोटा, सबसे छोटा, २. जो बाद में उत्पन्न हुआ हो, ३. नीच ।
 कनिहार-दे० 'कड़हार' ।

कनी-(सं० कण)-छोटा टुकड़ा, अति सूक्ष्म भाग, कण बँद । उ० अमर्बिदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी । (मा० ६।७१।४० १)
 कनौड़ा-(?) -१. श्रृण्णी, उपकृत, २. अपङ्ग, जिसका कोई अंग खंडित हो, ३. कलंकित, बदनाम । कनौड़े-दे० 'कनौड़ा' । उ० १. तुलसी प्रभु तरु तर बिलंब किये प्रेम कनौड़े कै न । (गी० २।२४) कनौड़ो-दे० 'कनौड़ा' । उ० १. भलो भले सों छल किये जनम कनौड़ो होइ । (दो० ३।६४) कनौड़ो-श्रृण्णी को । उ० तुलसी अपनी और जानियत प्रभुहिं कनौड़ो भरिहैं । (वि० १७१)
 कन्या-(सं०)-१. अविवाहिता लड़की, २. पुत्री, बेटी, ३. एक राशि, ४. एक तीर्थ । उ० २. जह्नु-कन्या धन्य पुन्य-कृत सगरसुत । (वि० १८)
 कन्यादान-(सं०)-विवाह में वर को कन्या देने की एक रीति । उ० कन्यादान संकल्प कीन्ह लीन्ह जल कुस कर । (पा० १४४)
 कन्हैया-दे० 'कन्हैया' ।
 कन्हैया-(सं० कृष्ण)-१. श्री कृष्ण, २. प्रिय व्यक्ति, ३. सुंदर लड़का । उ० १. 'लै कन्हैया' 'सो कब ?' 'अबहिं तात' । (क० २)
 कपट-(सं०)-१. धोखा, दंभ, छल, स्वार्थ-साधन के लिए हृदय की बात छिपाने की वृत्ति, २. छिपाव, दुराव । उ० १. कपट चतुर नहिं होइ जनाई । (मा० २।१८।२)
 कपटी-छली, दगाबाज, धूर्त । उ० मन कपटी तन सज्जन चीन्हा । (मा० १।७६।२)
 कपटु-दे० 'कपट' । उ० २. गंग-जनक, अमंग-अरि-प्रिय, कपटु बडु बलि-छरन । (वि० २१८)
 कपर्द-(सं०)-१. कौड़ी, २. शिव की जटा ।
 कपाट-(सं०)-किवाड़, पट, द्वार । उ० ते हटि देहिं कपाट उवारी । (मा० ७।११८।६)
 कपाटा-दे० 'कपाट' । उ० सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा । (मा० १।२१।११)
 कपाटी-दे० 'कपाट' । उ० जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी । (मा० २।१४।२)
 कपार-(सं० कपाल)-दे० 'कपाल' । उ० १. मेरोई फोरिबे जोग कपाट, किचौं कछु काहु लखाइ दियो है । (क० ७।१२७)
 कपारु-दे० 'कपाल' ।
 कपारु-दे० 'कपाल' । उ० १. कृबर टूटेउ फूट कपारु । (मा० २।१६।३)
 कपाल-(सं०)-१. सर, खोपड़ी, २. ललाट, मस्तक, ३. भाग्य, ४. एक वर्तन जिसमें यज्ञों के समय देवताओं के लिए पुरोडाश पकाया जाता था । उ० २. ब्याल कपाल बिभूषन छारा । (मा० १।६५।४)
 कपाला-दे० 'कपाल' । उ० १. जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला । (मा० ६।२६।१)
 कपाली-(सं० कपालिन्)-नर-कपालों की माला पहनने-वाला, शिव, महादेव । उ० निर्गुन निलज कुबेष कपाली । (मा० १।७६।३)
 कपास-(सं० कपास)-१. रुई का पेड़, २. रुई, तूल, ३. कपास

का फल जिसमें रुई होती है। उ० ३. तीनि अवस्था तीनि गुण तेहि कपास में काढ़ि। (मा० ७।११७ ग)
 कपास-दे० 'कपास'। उ० १. साधुचरित सुभ सरिस कपासु। (मा० १।२।३)
 कर्पिदा-(सं० कपीन्द्र)-बन्दरों में श्रेष्ठ, बंदरों के राजा, श्रेष्ठ बन्दर। उ० राम कृपा बल पाइ कर्पिदा। (मा० २।३।२।२)
 कपि-(सं०)-१. बंदर, २. सूर्य, ३. हनुमान, ४. सुग्रीव, ५. बालि। उ० १. चित्रलिखित कपि देखि डेराती। (मा० २।६।०।२) ५. सठ संकट-भाजन भए हठि कुजाति कपि काक। (दो० ४।१५) कपिन-कपि का बहुवचन, बंदरों। कपिन्ह-दे० 'कपिन'। उ० कपिन्ह सहित अह-हहि रघुबीरा। (मा० ५।१६।२) कर्पिहि-कपि के लिए, हनुमान के लिए। उ० सो छन कर्पिहि कलप सम बीता। (मा० ५।१२।६)
 कपिकच्छु-(सं०)-केवाँच, करेँच, मर्कटी, बन्दरों का एक प्रिय फल और उसका पेड़। उ० बात तरूमूल, बाहुसूल कपिकच्छु बेलि। (ह० २४)
 कपिलेख-केवाँच। उ० कंदुक ज्यों कपिलेख बेल कैसो भल भो। (ह० ६)
 कपिल-(सं०)-१. पीला, मटमैला, २. सांख्य शास्त्र के आदि प्रवर्तक कपिल मुनि, ३. चूहा, ४. शिव, ५. सूर्य। उ० २. जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला। (मा० २।१४।२।३)
 कपिलहि-कपिला या सीधी गाय को। उ० जिमि कपिलहि घालइ हरहाई। (मा० ७।३६।१) कपिला-(सं०)-१. कपिल या पीले रंग की, २. पीले रंग की सीधी और भोली गाय, ३. सफेद गाय, ४. जौक, ५. चीटी। उ० २ जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई। (मा० ३।२६।४)
 कपिश-(सं०)-काला और पीला मिश्रित रंग का, भूरा, मटमैला, बादासी।
 कपिस-दे० 'कपिश'। उ० कपिस केस, करकस लँगूर, खल-दुख-बल-भानन। (ह० २)
 कपीश-(सं०)-बन्दरों का स्वामी, १. हनुमान, २. सुग्रीव, ३. बालि।
 कपीश्वरी-(सं०)-कपियों के राजा हनुमान को। उ० वन्दे विश्वविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरी। (मा० १।१। श्लो० ४) (कवीश्वर के साथ आने से यहाँ कपीश्वर के द्विवचन का रूप है।)
 कपीश-दे० 'कपीश'। उ० १. ताहि राखि कपीस पहि आये। (मा० ५।४३।२) कपीस-कपीश-बालि पुत्र अंगद।
 कपीमा-दे० 'कपीश'। उ० २. मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा। (मा० ५।२६।२)
 कपूत-(सं०) कुपुत्र)-बुरा लडका, नालायक लडका, कुल के विरुद्ध जानेवाला। उ० कूर कपूत मूढ़ मन माखे। (मा० १।२६।११)
 कपूर-(सं०) कर्पूर)-एक श्वेत जमा हुआ द्रव्य जो सुगंधित होता है और जलाने से जलता है। घनसार, सिताभ।
 कपोल-(सं०)-१. कबूतर, एक चिड़िया, २. पत्नी, चिड़िया, ३. भूरे रंग का कच्चा सुरमा। उ० २. हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर। (गी० २।४७)
 कपोल-(सं०)-गाल। उ० चार कपोल चिबुक दर ग्रीवा।

(मा० १।१४७।१) कपोलन-कपोल का बहुवचन, गालों। उ० बिकटी भुकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छुबि है। (क० २।१३)
 कपोला-दे० 'कपोल'। उ० सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। (मा० १।१६६।५)
 कफ-(सं०)-बलगम, श्लेष्मा, खाँसी आदि बीमारियों में मुँह या नाक से निकलनेवाली गाढ़ी लसीली वस्तु। उ० काम बात कफ लोभ अपारा। (मा० ७।१२१।१५)
 कबंध-(सं०)-१. बादल, २. वेद, ३. जल, ४. बिना सिर का धड़, हंड, ५. एक दानव। यह दानव देवी का पुत्र था। इसके मुँह और पैर इसके पेट में थे। कहा जाता है कि एक बार देवराज इंद्र ने इसे वज्र से मारा जिसका फल यह हुआ कि सिर और पैर पेट में घुस गए। दंडक बन में इससे रामचन्द्र से युद्ध हुआ जिसमें यह मारा गया। राम के द्वारा इसका शरीर जलाया गया और अंत में यह गंधर्व के रूप में अग्नि से बाहर निकल आया। रावण के साथ युद्ध में राम ने इससे भी राय ली थी। उ० ५. बधि विराध खर दूषनहि लीलाँ हथ्यो कबंध। (मा० ६।३६)
 कब-(?)-किस समय, किस वक्त। उ० सकल कहहि कब होइहि काली। (मा० २।११।३) कबहि-कभी, कभी भी। उ० कबहि देखाइहौ हरि चरन ? (वि० २।१८) कबहुँ-कभी, किसी समय, कभी भी। उ० जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई। (मा० २।१२।११) कबहुँक-कभी, किसी समय। उ० कबहुँक ए आवाहि एहि नाते। (मा० १।२२।४)
 कबहीं-कभी, किसी वक्त, किसी समय भी। उ० गनिका कबहीं मति पेस पगाई ? (क० ७।६३)
 कबहुँ-दे० 'कबहुँ'।
 कबार-(१)-(फा० कारबार)-काम-काज, उद्यम, व्यवसाय।
 कबार-(२)-(?)-यश-चरण, बड़ाई। उ० मागध सूत भौट नट जाचक जहँ-तहँ करहि कबार। (गी० १।२)
 कबार-दे० 'कबार'। उ० दे० 'किसब'।
 कबार-दे० 'कबार' (१)। उ० नहि जानउँ कछु अउर कबार। (मा० २।१००।४)
 कवि-(सं०) कवि)-कविता करनेवाला, काव्यकार। उ० कवि न होउँ नहि बचन प्रवीनू। (मा० १।६।४)
 कबकोकिल-दे० 'कविकोकिल'। वात्मीकि। उ० राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कबिकोकिल हू की। (क० ७।८६) कबिन्ह-कवियों को। उ० कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। (मा० १।१४।२) कविहि-कवि के लिए। उ० कविहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु। (मा० २।२२।५)
 कविता-(सं०) कविता)-काव्य, कवित्त, मन पर प्रभाव डालनेवाला सुन्दर पद्यमय वर्णन। उ० गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाय की। (मा० १।१०। छं० १)
 कवित्त-(सं०) कवित्त)-१. कविता, काव्य, २. एक छंद जिसमें ४ चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में ८, ८, ८, ७ के विराम से ३१ अक्षर होते हैं। उ० १. निज कवित्त केहि लाग न नीका। (मा० १।८।६)

कवी-दे० 'कवि' । उ० गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कवी ।
(मा० ६।१११। छं० २)।

कबूतर-(फा०)-एक पक्षी, परेवा । उ० हंस कपोत
कबूतर बोलत चक्क चकोर । (गी० २।४७)

कबुल-दे० 'कबूल' ।

कबूल-(अर० कबूल)-स्वीकार, मंजूर ।

कबूलत-स्वीकार करता, कबूल करता, मानता । उ० हौं न
कबूलत बाँधि कै मोल करत करेरो । (वि० १४६)

कबुली-१. बलि का पशु, बलिदान के लिए प्रस्तुत
पशु । जो पशु किसी पर चढ़ाने के लिए पहले से कबूल
किया जाय या माना जाय । २. राजी, स्वीकारावस्था में,
३. चने की दाल की खिचड़ी । उ० १. कुबरीं करि कबुली
कैकेई । (मा० २।२२।१)

कबै-कब, किस समय, उ० गगन गिरह करिबो कबै तुलसी
पढ़त कपोत । (स० १५६)

कमंडल-(सं० कमंडलु)-साधु-संन्यासियों का जलपात्र जो
बहुधा पीतल, दरियाई नारियल या लौकियों का बनता
है । उ० मांगा जल तेहि दीन्ह कमंडल । (मा०
६।१७।४)

कमंडलु-दे० 'कमंडल' ।

कम-(फा०)-१. थोड़ा, न्यून, अल्प, २. बुरा ।

कमठ-(सं०)-१. कछुआ, कच्छप, २. एक दैत्य का नाम,
३. साधुओं की तुमड़ी । उ० १. अंडिन्ह कमठ
हृदउ जेहि भाँती । (मा० २।७।४) विशेष-कछुआ
की स्त्री अपने अंडे को नहीं सेती । वह उसे जल
से बाहर नदी या तालाब के किनारे रेत या पोली
मिट्टी में ढक आती है । वहाँ स्वाभाविक गर्मी से अंडे
अपने आप सेवित होते रहते हैं । अवधि पूरी होने पर
स्वयं अंडे फूट जाते हैं बच्चे निकलकर स्वाभाविक प्रवृत्ति
के कारण स्वयं पानी में चले जाते हैं । इस बीच में उनकी
माँ उनको देखने भी कभी नहीं जाती, पर ऐसी प्रसिद्धि
है कि दूर रहने पर भी उसका दिल अंडों पर ही सर्वदा
लगा रहता है । कच्छप की इस प्रकृति की तुलना के लिए
कवियों ने उचित उपयोग किया है । उपर्युक्त चौपाई में
भी तुलसी ने इधर ही संकेत किया है । कमठ अवतार-
मत्स्ययुग या प्रथम युग में विष्णु, कच्छप, कूर्म या कमठ के
रूप में प्रलय के समय खोई हुई कुछ वस्तुओं का उद्धार
करने के लिए अवतरित हुए । चौरसागर में समुद्रमंथन के
समय कमठ भगवान ही आधार बने थे जिस पर मंदरा-
चल रखा गया और वासुकि नाग के सहारे सुरों और
असुरों ने मंथन किये, जिसके फलस्वरूप खोई हुई १४
वस्तुएँ प्राप्त हुईं । कमठी-कमठ की स्त्री, कछुई । उ०
सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों हहरी हृदय बिकल भइ
आरी । (छं० ६०)

कमनीय-(सं०)-१. कामना करने योग्य, चाहने योग्य, २.
सुन्दर, मनोहर । उ० १. कुञ्जरी मनोहर बिजय बड़ि
करंति अति कमनीय । (मा० १।२५।१) कमनीया-
'कमनीय' का स्त्रीलिंग, सुंदरी । उ० २. जग असि जुवति
कहाँ कमनीया । मा० १।२४।२)

कमल-(सं०)-१. पानी में होनेवाला एक पौधा और उसका

फूल । जलज, कंज, अरबिंद । २. जल, पानी, ३. ताँबा,
४. मृग की एक विशेष जाति, ५. सारस, ६. एक रोग, ७.
आँख । उ० १. बंदउँ सबके पद कमल सदा जोरि जुग
पानि । (मा० १।७ ग) विशेष-कमल के पुष्प लाल, सफ़ेद,
नीले और पीले होते हैं । सुन्दर और सुकुमार होने के
कारण कवि लोग आँख, कपोल, चरण तथा हाथ-आदि
की इससे उपमा देते हैं । कमल का फूल संध्या होते ही
बंद हो जाता है, इसी कारण इसे सूर्य या दिन का प्रेमी
माना जाता है और सूर्य को कमलपति आदि कहा जाता
है । कमल की गंध भँवरे को बहुत पसंद है । कमल के
ढंठल में छोटे-छोटे कंठे होते हैं जिनके सहारे भी कवियों
ने दूर तक उड़ने का प्रयास किया है । चौर सागर-शापी
भववान् विष्णु की नाभी से कमल निकला था जिससे ब्रह्मा
का जन्म हुआ इसी विश्वास के आधार पर विष्णु को
कमलनाभ या पद्मनाभ तथा ब्रह्मा को कमलसुत आदि
कहते हैं । वह नाभी से निकलनेवाला कमल ही प्रथम
कमल माना जाता है । कमलनि-१. कमलों में, २. कमलों से,
कमलों के द्वारा, ३. कमलों को । उ० १. सोहहिं कर कमलनि
धनुतीरा । (मा० २।११।४) २. पंथ चलत मृदु पद कम-
लनि दोउ सील-रूप-आगार । (गी० २।२६) कमलन्ह-
कमल का बहुवचन । कमलन्हि-कमल का बहुवचन,
कमलों । उ० पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर
करि बास । (मा० ६।२२ख) कमलपति-सूर्य, रवि । कमल-
भव-(सं०)-कमल से होनेवाले, ब्रह्मा, कमलयोनि ।
कमलफल-कमल का बीज, कमलगद्दा । उ० अष्टोत्तर
सत कमल फल, सुष्टी तीनि प्रमान । (प्र० १)

कमलनाभ-(सं०)-विष्णु । विष्णु का यह नाम इस कारण
है कि उनकी नाभी से सृष्टि के आरंभ में कमल उत्पन्न
हुआ था ।

कमला-(सं०)-१. लक्ष्मी, रमा, २. धन, ऐश्वर्य । उ० १.
सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिभवै सुर-
मौरहि । (क० ७।२६)

कमलापति-(सं०)-विष्णु, लक्ष्मी के पति । उ० सपदि चले
कमलापति पाहीं । (मा० १।१३।१)

कमलारमन-(सं० कमलारमण)-कमला के पति, विष्णु ।
कमलारवन-दे० 'कमलारमन' ।

कमलासन-(सं०)-१. ब्रह्मा, २. योग का एक आसन, पद्मा-
सन । उ० २. बैठे बट तर करि कमलासन । (मा० १।१८।४)

कमलिनी-(सं०)-१. कमल, २. छोटा कमल ।

कमातो-(सं० कर्म)-१. कमाई करता, पैदा करता, संग्रह
करता । २. सेवा संबंधी छोटे-छोटे कार्य करता ३. काम
करता । उ० १. जौ तू मन मेरे कहे राम-नाम कमातो ।
(वि० १५१) कमाहिं-१. पैदा करते हैं, कमाते हैं, २.
काम करते हैं, ३. सेवा करते हैं । उ० ३. तिय-बरबेप अली
रमा सिधि अनिमादि कमाहिं । (गी० १।५)

कमान-(फा०)-धनुष, वह हथियार जिसके सहारे बाण
छोड़ा जाता है । उ० जीभ कमान बचन सर नाना ।
(मा० २।४१।१)

करंत-करता । उ० काइत वंत, करंत हहा है । (क० ७।३६)
कर (१)-(सं० कृ)-१. करो, २. कर के, ३. करता है,

करते हैं, ४. करेगा, ५. करनेवाला, कर्ता । उ० ३. कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा । (वि० २) करइ-१. करे, २. करता है, ३. करना, करने की युक्ति, ४. कर । करई-१. करती है, २. करे, ३. करने की युक्ति । उ० १. सुंदरता कहुँ सुंदर करई । (मा० ११२३०४) २. बल अनुमान सदा हित करई । (मा० ४१७३) करउँ-कहूँ । उ० अब जो कहहु सो करउँ बिलंब न यहि घरि । (पा० ८२) करउ-करो, करिए, कीजिए । उ० करउ सो मम उर धाम सदाँ छीर सागर सयन । (मा० १११ सो०३) करउँ-कहूँ । उ० कुआँरि कुआँरि रहउ का करउँ । (मा० ११२५२३) करत-१. करते ही, करने पर, २. करता है, करते हैं, ३. करते हुए । उ० १. कौसल्या कल्याणमयि मूरति करत प्रनाम । (दो० २१२) करतहि-कर रखा है । उ० निज गुण सील रामबस करतहि । (मा० २१ २६५४) करति-करती है, कर रही है । उ० बिबिध बिलाप करति बैदेही । (मा० ३१२३१२) करते-किए होते । उ० करते नहि बिलंबु रघुराई । (मा० ५१४१२) करतेउँ-करता । उ० बूढ़ भयउँ न त करतेउँ, कलुक सहाय तुम्हार । (मा० ४१२८) करतेहु-करते । उ० करतेहु राखु त तुम्हहि न दोष । (मा० २१२०७४) करब-१. कहूँगा, २. करोगे, ३. करना, कीजिएगा । उ० १. कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि । (मा० २१२१) २. समुक्कब कहब करब तुम्ह जोई । (मा० २३२३४) ३. करब सदा लरि-कन्ह पर छोह । (मा० १३६०४) करबि-१. कीजिएगा, २. कहूँगा । उ० १. करबि जनक जननी की नाई । (मा० २१२०३) करसि-१. करता है, २. करते हो, ३. करो । उ० तू छल बिनय करसि कर जोर । (मा० ११२८११) करहि-करते हैं, कर देते हैं । उ० करहि अनभले को भलो आपनी भलाई । (वि० ३५) करहिगे-करेंगे । उ० राम कृपानिधि कलु दिन बास करहिगे आइ । (मा० ४१२) करहि-१. कर, २. करेगा, ३. करता है । उ० १. अजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग । (मा० ३१४६४) करही-करते हैं । उ० राजकुमारि बिनय हम करही । (मा० २११६३) करही-करता, करता है । उ० सत्य बचन बिस्वास न करही । (मा० ७११२१०) करहु-करो, कीजिए, करें । उ० तात कुतरक करहु जनि जाएँ । (मा० २१२६४१) करहुगे-करोगे, अमल में लाओगे । करहु-दे० 'करहु' । उ० चलहु सफल श्रम सब कर करहु । (मा० २१३२१४) करि-(सं० कृ)-१. करके, २. करनी, ३. करते । उ० १. महि पत्री करि सिंधु मसिं । (बै० ३५) करिअ-करें, की जाय । उ० कहूँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा । (मा० १११८५१) करिअहि-१. कीजिए, २. करेंगे । उ० १. नाथ रामु करिअहि जुबराजू । (मा० २१४१) करिए-१. कीजिए, २. कहूँ, ३. करनी चाहिए, ४. बनाइए, उत्पन्न कीजिए । उ० ३. कौन जतन बिनती करिए । (वि० १८६) करित-करता । उ० तो बिनु जगदंब गंग ! कलिजुग का करित ? (वि० १६) करिबे-करने, करना । उ० करिबे कहूँ कटु कटोर, सुनत मधुर नरम । (वि० १३१) करिबो-कहूँगा । उ० कियो न कछु, करिबो न कछु । (क० ७६२) करिय-१. कीजिए, करिए, २. करना, ३.

करती हैं, करता हूँ । उ० १. करिय सँभार कोसलराय ! (वि० २२०) करिहउ-कहूँगा । उ० अबसि काज मैं करिहउँ तोरा । (मा० ११६८२) करिहहि-करेंगे । उ० करिहहिं बिप्रहोम मख सेवा । (मा० ११६६१) करिहहुँ-कहूँगा । करिहहु-१. करोगे, २. करना । उ० १. रामकाजु सहु करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान । (मा० ५१२) करिहि-करेगा । उ० पारबतिहि निरमयउ जेहि सोइ करिहि कल्याण । (मा० ११७१) करिहीँ-करेंगी, करेंगे । करिही-करेंगे, करेगा । उ० मिलन कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही । (मा० ५१५७३) करिहैं-करेंगे । उ० करिहैं राम भावतो मन को । (वि० २४) करिहैं-दे०-करिहउँ । करिहौ-१. करोगे, २. करना । उ० १. फिरि बृभति हैं "चलनो अब केतिक, पराँकुटी करिहौ कित हैं ?" (क० २११) करी (१)-१. की, किया, २. करें । करीजे-कर दीजिए, कीजिए । उ० दीन जानि तेहि अभय करीजे । (मा० ४१४२) कर-कर, करो । उ० सोइ कर जेहि तव नाव न जाई । (मा० २१०११) करसि-किया । करसु-करना । उ० कार्य बचन मन मम पद करसु अचल अनुराग । (मा० ७१५४) करहु-१. कीजिए, २. कीजिएगा, करना, कर लेना । उ० १. सेवा करहु सनेह सुहाएँ । (मा० २१७५४) करहु-दे० 'करहु' । उ० २. संबत भरि संकल्प करहु । (मा० ११६८४) करैं-१. करें, २. करते हैं । उ० २. आरत दीन अनाथन को, रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं । (क० ७११) करै-१. करना, करने, २. करे, ३. करने के लिए । उ० १. मैं हरि साधन करै न जानी । (वि० १२२) करैगे-कर देंगे, करेंगे, करेगा । उ० आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगे तोहि । (मा० ६१२०) करैहु-कराओगे, कराओगे । उ० हँसी करैहु पर पुर जाई । (मा० ११३११) करो-करना का आज्ञासूचक रूप । कीजिए । उ० जेहि जो रुचै करो सो । (वि० १०३) करौ-कहूँ । उ० करइ विचार करौ का भाई । (मा० ५१६१) करथो-किया, किया था । उ० निज दास ज्यो रघुबंस भूषन कबहुँ मम सुमिरन करथो । (मा० ७१२) कर्यो-१) करथो-दे० 'करथो' । किए-१. करने पर, करने से, २. किया, किए किया है, ३. कर सकता है, उ० १. सुनु प्रभु बहुत अवन्या किए । (मा० १११८) किए-दे० 'किए' । उ० २. नाम सुप्रेम विधुष हृद तिन्हहुँ किए मन मीन । (मा० ११२२) किएहुँ-करने पर भी । उ० किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू । (मा० ११७४) किय-किया था, निबटाया, कर दिया । उ० जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा । (मा० २१०१२) कियहुँ-किया । उ० कबहुँ न कियहु सवति आरेसू । (मा० २१४६४) किया-१. कर दिया, करना किया का सामान्य भूत किया है, २. किया हुआ काम । उ० १. अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दाहन तप किया । (मा० ११६८) छं० १) किये-१. करना किया का बहुवचन या आदर-सूचक सामान्य भूत, कर दिए । २. किए हुए, ३. करने पर, करने से । उ० १. जथायोग सनमानि प्रभु बिदा किये मुनिबुँद । (मा० २१३४) कियेउ-१. किया, २. करके, ३. किया हुआ । उ० १. कियउ निषाद नाथु अगुआई । (मा० २१२०३१) कियो-१. किया, कर लिया, २. किया

हुआ। उ० १. सब कें उर अनंद कियो बासु। (मा० १।३२४।३) कीज-१. कीजिए, २. कीजिएगा। कीजहु-१. कीजिए, २. करते रहना। उ० २. कीजहु इहै बिचार निरंतर राम समीप सुकृत नहि थोरे। (गी० २।११) कीजअ- (सं० कृ)-१. करे, हम करे, २. कीजिए, करो। उ० १. कीजअ काजु रजायसु पाहै। (मा० २।३८।१) कीजिए-दे० 'कीजिये'। उ० गहि बाँह सुरनर नाह आपन दास अंगद कीजिए। (मा० ४।१०।२) कीजिय-दे० 'कीजअ'। उ० २. तजि अभिमान अनख अपनो हित कीजिय मुनि-वर बानी। (कृ० ४८) कीजिये-करिए, 'करना' क्रिया का आदरार्थ आज्ञासूचक रूप। कीजे-कीजिए। उ० गै निसि बहुत सयन अब कीजे। (मा० १।१६६।४) कीजे-१. कीजिए, क्रिया करिए, २. कर रहे हैं। उ० २. हरष समय बिसमउ कत कीजे। (मा० २।७७।२) कीनि-क्रिया। उ० जातिहीन अघ-जनम महि, सुकृत कीनि असि नारि। (दो० १।५६) कीन्ह-क्रिया, क्रिया है। उ० जौं तुम्हरे मन छाडि छहु कीन्ह रामपद ठाउँ। (मा० २।७४) कीन्हा-क्रिया, क्रिया है। उ० केवट उतरि दंडवत कीन्हा। (मा० २।१०२।१) कान्हि-क्रिया, क्रिया है। उ० कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी। (मा० १।५०।१) कीन्हिउ-की, की थी, की है। उ० आखु लगे कीन्हिउं तुअ सेवा। (मा० १।२५।४) कीन्हिसि-की। उ० उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। (मा० २।११।२) कीन्हिहु-क्रिया, क्रिया है। उ० कीन्हिहु प्रसन्न मनहुँ अति मूढ़ा। (मा० १।४७।२) कीन्ही-की। उ० एहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्ही। (मा० २।१७०।३) कीन्हे-१. किए, २. करने पर, करने से। उ० २. जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। (मा० २।१६७।३) कीन्हेउ-दे० 'कीन्हिउं'। कीन्हेउ-क्रिया, क्रिया था। उ० हमरे जान जनेस बहुत भल कीन्हेउ। (जा० ७२) कीन्हेसि-क्रिया। उ० कीन्हेसि अस जस करइ न कोई। (मा० २।२५।२) कान्हहु-क्रिया। उ० अब अति कीन्हहु भरत भल, तुम्हहि उचित मत एहु। (मा० २।२०७) कीन्ह्यौ-क्रिया। उ० कीन्ह्यौ गरलसील जो अंगा। (बै० ४७) कीबी-कीजिए, करे, कीजिएगा। उ० कीबी कृमा नाथ आरति तें कहि कुजुगुति नई है। (गी० २।७८) कीबे-करना, कीजिएगा। उ० मोपर कीबे तोहि जो करि लोहि भिया रे। (वि० ३३) कीबो-क्रिया जायगा, करेंगे, करूँगा। उ० उधोजू कछो तिहारोइ कीबो। (कृ० ३४) कीय-क्रिया हुआ, क्रिया, करनी। उ० परखी पराई गति, आपने हूँ कीय की। (वि० २६३) कर (१)-(सं०) करो। उ० भक्ति प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरं मेकामादिदोषरहितं कुह मानसं च। (मा० ५।१।१।०२) कुर्वति-(सं०)-करते हैं, कर रहे हैं। उ० अरुण-पदकंज-मकरंद-मंदाकिनी मधुप-मुनिवृंद कुर्वति पानम्। (वि० ६०) कर (२)-(सं०)-१. हाथ, २. हाथी की सूँड़, ३. किरण, ४. प्रजा से राजा द्वारा लिया जानेवाला अंश, महसूल, ५. पत्थर। उ० १. विबुध बिप्र बुध गृह चरन बंदि कहउँ कर जोरि। (मा० १।१४६) ३. महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर। (मा० १।२) ४. जनु देत इतर नृप

कर-विभाग। (गी० २।४६) करकर (१)-हाथों हाथ, हर एक के पास। उ० तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर-कर न बिक तो। (वि० १।५१) करगत-हाथ में, सुट्टी में, अधिकार में। उ० करगत वेदतत्त्व सजु तोरें। (मा० १।४५।४) कर-गुन-हस्त (कर) से तीन नक्षत्र, अर्थात्, हस्त, चित्रा और स्वाती। उ० सुति-गुन कर-गुन, पु-खुग-मृग, हय, रेवती सखाउ। (दो० ४५६) करतल-(सं०)-१. हाथ का तल, हथेली, २. हाथ में, अधिकार में। उ० २. तुलसी फल चारो करतल, जस गावन गहँ-बहोर को। (वि० ३१) करतलगत-प्राप्त प्राप्त, हाथ में, हथेली पर रखा हुआ। उ० करतलगत न परहि पहिचानें। (मा० १।२१।३) करन्हि-हाथों में। उ० कनकथार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिएँ मात। (मा० १।३४६) करसम्पुट-१. जुड़ा हाथ, २. अंजलि, अँजुरी। कर (३)-(सं० कृतः)-संबंध कारक का चिह्न, का। उ० जग विस्तारहि बिसद जस राम जन्म कर हेतु। (मा० १।१२१) करक (१)-(ध्व०)-पीड़ा, रुक-रुककर होनेवाली पीड़ा, कसक। उ० जानै सोई जाके उर कसकै करक सी। (गी० १।४२) करकै-'करक' का बहुवचन। दे० 'करक'। उ० बारहि बार अमरषत करपत करकै परीं सरीर। (गी० ४।२२) करक (२)-(सं०)-१. कमंडलु, २. अनार, ३. पलास, ४. करील, ५. मौलसिरी, ६. ठठरी। करकर (२)-(ध्व०)-किर-किरा, दरदर। करकस-(सं० कर्कश)-१. कठोर, कड़ा, २. देढ़ा, ३. सुरिकल, कठिन। उ० २. कहाँ न कबहूँ करकस भौहँ कमान। (ब० १२) करके-करकने लगे, करक या पीड़ा उत्पन्न कर दी। उ० सर सम लगे मातु उर करके। (मा० २।५४।१) करखइ-(सं० कर्षण)-१. खिंच गया, २. खिंचता था। उ० १. बहुरि निरखि रघुबरहि प्रेम मन करखइ। (जा० ८८) करकखत-खींचते हैं। उ० कतहुँ बाजि सों बाजि, मर्दि गजराज करकखत। (क० ६।४७) करकुली-(तु० सं० कर+रक्षा)-लोहे या पीतल आदि का द्रव पदार्थ निकालने के लिए चम्मच की तरह का एक पात्र, कलकुल, कलछी। उ० लकड़ी डौआ करकुली सरस काज अनुहारि। (दो० ५२६) करज-(सं०)-१. नख, नाखून, २. उँगली, अंगुलि, ३. करंज, कंजा। उ० २. अरुन पानि नख करज मनोहर। (मा० ७।७७।१) करटा-(सं० करट)-कौआ, काग। उ० कटु कुठाय करटा रटहि, फेररहि फेरु कुभाँति। (प्र० ३।१।५) करण-(सं०)-करनेवाले। उ० भुवन-पर्यंत पद-तीनिकरण। (वि० ५२) करण (१)-(सं०)-१. कार्य सिद्धि का उपाय, साधन, २. हथियार, ३. इन्द्रिय, ४. देह, ५. स्थान, ६. हेतु, कारण, ७. पतवार, ८. कर्ता, करनेवाला, ९. क्रिया, कार्य। उ० ६. जयति संग्राम-सागर-भयकर-तरण-रामहित-करण-बरबाहु-सेतू। (वि० ३८)

करण (२)-(सं० कर्ण) १. कान. २. महाभारत का एक प्रसिद्ध योद्धा ।
 करणीय-(सं०)-करने योग्य, कर्तव्य ।
 करतब-(सं० कर्तव्य)-१. कार्य, करनी, करतूत, २. कला, हुनर, ३. करामात, जादू । उ० १. अब तौ कठिन कान्ह के करतब, तुम्ह हौ हँसति कहा कहि लीबो ? (क० ६)
 करतबु-दे० 'करतब' । उ० १. जौ अंतहुँ अस करतब रहेऊ । (मा० २।३५।२)
 करतव्य-(सं० कर्तव्य)-जिसका करना आवश्यक हो, कर्तव्य । उ० सब विधि सोह करतव्य तुम्हारे । (मा० २।६।१)
 करतव्य-दे० 'करतव्य' ।
 करता-दे० 'कर्ता' । उ० २. जो करता भरता हरता सुर साहिब, साहब दीन दुनी को । (क० ७।१४६)
 करतार-(सं० कर्तार)-१. सृष्टि करने वाला, ब्रह्मा, २. ईश्वर, भगवान् । उ० २. विविध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार । (मा० २।११६)
 करतारा-दे० 'करतार' । उ० १. अबधौँ कहा करहि करतारा । (मा० ६।१८।५)
 करतारी-(सं० कर + ताल)-हाथ की ताली, थपड़ी । उ० रामकथा सुँवर करतारी । (मा० १।११४।१)
 करताल-(सं०)-१. एक बाजा, २. हाथ की ताली, थपड़ी । उ० २. कबहुँ करताल बजाइ कै नाचत । (क० १।४)
 करतालिका-दे० 'करताल' । उ० २. उदत अघ विहग सुनि ताल करतालिका । (वि० ४८)
 करताली-दे० 'करताल' ।
 करतूत-१. कर्म, करनी, २. कारीगरी, कला, हुनर ।
 करतूति-दे० 'करतूत' । उ० १. कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति-कला सी । (वि० २२)
 करतूती-दे० 'करतूत' । उ० २. जनु एतनिअ बिरंचि करतूती । (मा० २।१।३)
 करदा-(फा० शब्द)-धूल, झड़ा । उ० राँकसिरोमनि काकि-निभाग बिलोकत लोकप को करदा है । (क० ७।१५५)
 करन (१)-(सं० कर्ण)-दे० 'करण (२)'
 करन (२)-(सं० कर)-१. हाथों को, २. हाथों से ।
 करन (३)-(सं० करण)-दे० 'करण (१)' तथा 'करण (२)'
 उ० २. (करण २)-निंदहि बलि हरिचंद को का कियो'-
 करन दधीच ? (दो० ३८२)
 करनघंट-(सं० कर्ण + घंटा)-काशी में एक पवित्र स्थान जहाँ एक प्रसिद्ध शंकर-उपासक घंटाकर्ण रहता था । उ० लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा सी । (वि० २२) विशेष-घंटाकर्ण या करनघंट शिवजी के एक उपासक का नाम था । ये उपासक विष्णु आदि किसी दूसरे का नाम सुनना पसंद न करते थे इसीलिए अपने कामों में घंटा बाँधकर चला करते थे जिससे उसकी गंभीर ध्वनि के कारण अन्य ध्वनि इन्हें कर्णगोचर न हो । इसी कारण इनका नाम घंटाकर्ण था । घंटाकर्ण काशी में रहते थे । आज भी इनका स्थान इसी नाम से पुकारा जाता है और शिव-भक्तों के लिए एक पवित्र तीर्थस्थान है ।

करनधार-(सं० कर्णधार)-नाविक, मल्लाह, माँझी । उ० करनधार बिनु जिमि जलजानू । (मा० २।२७।३)
 करनबेध-(सं० कर्णबेध)-बच्चों के कान छेदने का एक संस्कार या रीति । उ० करनबेध उपबीत बिआहा । (मा० २।१०।३)
 करनलिपि-(सं० करण + लिपि) १. लिपि कर्ता, २. भाष्यकार, अर्थ करनेवाला । उ० १. तथा २. जयति नियमागम-व्याकरण-करणलिपि काव्य-कौतुक कला-कौटि-सिंधो । (वि० २८)
 करनहार-करनेवाला, कर्ता । उ० करनहार करता सोई भोगै कर्म निदान । (सं० ३७८)
 करना (१)-(सं० कर्ण)-सुदर्शन, एक फूल ।
 करना (२)-(सं० करण)-एक पहाड़ी नीबू, जो गोल न होकर लंबा होता है ।
 करना (३)-(सं० करण)-किया हुआ काम ।
 करनि (१)-दे० 'करनी' । उ० १. सब बिपरीत भए माधव बिनु, हित जो करत अनहित की करनि । (क० ३०)
 करनि (२)-(सं० कर)-१. हाथों में, २. हाथों में । उ० १. लैति भरि-भरि अंक सँतति पैत जनु दुहुँ करनि । (गी० १।२५)
 करनिहार-करनेवाला, कर्ता, बनानेवाला । उ० विधि से करनिहार । (गी० ५।२५)
 करनी-१. कर्म, करतूत, करतब, २. मृतक संस्कार, अंत्येष्टि कर्म । ३. स्थिति । उ० २. पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी । (मा० २।१७।११)
 करनीय-(सं० करणीय)-करने योग्य, कर्तव्य ।
 करनीया-करता है, करनेवाला है । उ० अब धौँ बिधिहि काह करनीया । (मा० १।२६।४)
 करनू-करनेवाला । उ० मधुर मंजु मुद मंगल करनू । (मा० २।३२६।३)
 करपल्लव-(सं०)-१. उँगली, २. हथेली ।
 करपुट-(सं० कर + पुट)-दोनों हाथ की हथेलियाँ, जोड़ा या मिला हुआ हाथ । उ० १. जोहि जानि जपि जोरि कै करपुट 'सर राखे । (गी० १।६)
 करबर-दे० 'करवर' ।
 करबाल-(सं०)-तलवार, कटारी । उ० जोगिनि गहँ करबाल । (मा० ६।१०।१ छं० २)
 करभ-(सं०)-१. हाथी का बच्चा, २. ऊँट का बच्चा, ३. हथेली के पीछे का भाग, करपृष्ठ, ४. ऊँट, ५. कर्मर ।
 करभहि-१. हाथी के बच्चे को, २. ऊँट या ऊँट के बच्चे को । उ० १. उरु करि-कर करभहि बिलखावति । (गी० ७।१७)
 करम (१)-(सं० कर्म)-१. कर्म, काम, करनी, २. कर्म का फल, भाग्य, किस्मत, ३. कर्मकांड, पूजा आदि, ४. पुण्य । उ० ३. करम उपासना कुबासना बिनास्यो, ज्ञान बचन, बिराग बेष जगत हंरो सो है । (क० ७।८४) ४. चारिषु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी । (वि० २२)
 करमन-'करम' का बहुबचन । उ० १. करमन कूट की, कि जंत्र मंत्र बूट की । (ह० २६) करमविपाकु-(सं० कर्म + विपाक)-कर्म का फल । उ० कुसमय जाय उपाय सब, केवल करमविपाकु । (प्र० ७।६।५)

करम (२)-(अर०)-दया, कृपा ।
 करम (३)-(सं० क्रम)-एक-एक, तरतीब । उ० भजन विवेक बिराग लोग भले करम-करम करि स्यावौ । (वि० १४५)
 करमचंद-कर्म, कर्म के लिए व्यंग्योक्ति । उ० हमहिं दिहल करि कुलिल करमचंद गंद मोल बिनु बोला रे । (वि० १८७)
 करमठ-(सं० कर्मठ)-दे० कर्मठ । उ० २. करमठ कठम-लिया कहै ज्ञानी ज्ञान बिहीन । (दो० ६६)
 करमनास-(सं० कर्मनाशा)-एक नदी जो चौसा के पास गंगा से मिली है । उ० करमनास जल सुरसरि परई । (मा० २।१६४।४) विशेष-लोगों का विरवास है कि इसके जल के स्पर्श से पुण्य का नाश हो जाता है । इसके लिए कई कराण बतलाए जाते हैं । (१) यह नदी राजा त्रिशंकु के लार से उत्पन्न हुई है । (२) रावण के मूत्र से इसकी उत्पत्ति है । (३) किसी अश तक यह मगध (मगह) की सीमा बनाती है । प्राचीन काल में ब्राह्मण आदि सनातनी इसे पार कर मगध में प्रवेश नहीं करते थे । इसी कारण यह अशुद्ध मान ली गई ।
 करमाली-(सं०)-सूर्य, किरणों की माला धारण करने-वाला ।
 करमी-कर्म करनेवाला । उ० करमी, धरमी, साधु, सेवक बिरत, रत । (वि० २५६)
 करमु-दे० 'करम (१)' । उ० २. फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली । (मा० २।२०।२)
 कररट-(ध्व०)-कर्म शब्द करता है । उ० ऊहू ऊहू कल-कंठ रव, काका कररत काग । (दो० ४३६)
 करवत-(सं० करवत)-हाथ के बल छेदने की मुद्रा । मु० करवट लीन्ह-एक करवट बदलकर दूसरी करवट ली । उ० गई मुरुछा रामहि सुमिरि, नृप फिर करवट लीन्ह । (मा० २।४३)
 करवर-(१)-विपत्ति, संकट, कठिनाई । उ० आखु परीकुसल कठिन करवर तैं । (क० १७) करवर-विघ्नों को, बाधाओं को । उ० ईस अनेक करवरें टारि । (मा० १।३५।१)
 करवा-(सं० करक)-पानी रखने का टोंटीदार मिट्टी या धातु का बर्तन । उ० पातक पीन, कुदारीद दीन, मलीन धरे क्यरी करवा है । (क० ७।५६)
 करवाई-कराई करवायी । उ० महामुनिन्ह सो सब कर-बाई । (मा० १।१०।१) करवाउब-कराउंगा, करवाउंगा, करा दूंगा, करा दूंगे । उ० करवाउब बिबाहु बरिआई । (मा० १।८३।३) करवाए-करा दिए । उ० मुनिन्ह सकल सादर करवाए । (मा० १।१४३।४) करवायउ-करवाया, कराया । उ० मारि निसाचर-निकर यज्ञ करवायउ । (गी० ४२) करवावहिं-१. करवाते थे, कराते थे, २. करवाते हैं । उ० १. साधुन्ह सन करवावहिं सेवा । (मा० १।१८।१) करवावा-कराया, करवाया । उ० बिबिध भौति भोजन करवावा । (मा० १।२०।२)
 करवाल-(सं०) तलवार ।
 करवालिका-(सं०)-छोटी तलवार, कटार ।

करष-(सं० कर्ष)-१. खिचाव, मनमोटाव, २. विरोध, भगड़ा, ३. क्रोध, ४. ताव, जोश । उ० १. कंत करष हरि सन परिहरहू । (मा० ५।३६।३) २. बातहिं बात करष बढ़ि आई । (मा० ६।१८।२)
 करषक-(सं० कृषिक)-किसान, हलवाहा ।
 करषत-(सं० कर्ष)-१. खींचता है, खींचते हैं, २. बढ़ता है, बढ़ता, ३. खींचते हुए, ४. खिंचता है । उ० १. बारहिं बार अमरषत करषत करकै परीं सरीर । (गी० १।२२) करषहिं-खींचते हों, खींचते हैं । उ० मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं । (मा० १।३४।१) करषा-(१)-खींचा । करषि-खींचकर, खींच । उ० १. निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्ह । (मा० १।१३।७) करषा-१. खींची, २. खिंच गई । उ० २. सुनि प्रबचन मोहैं मति करषी । (मा० २।१०।१३) करष-१. खींचें, अपनी ओर खींचें, २. बढ़ोरें, ३. निमंत्रित करें, बुलावें, ४. सुखावें । करष-खींचें, खींचता है । उ० बिप्रचरन चित्त कहैं करष । (वि० ६३)
 करषतु-दे० 'करषत' ।
 करषा (२)-दे० 'करष' । उ० ४. एकहि एक बढ़ावइ करषा । (मा० २।१६।१)
 करसइ-(सं० कर्षण)-१. खिंचता है, २. खींचता है ।
 करसी-(सं० करीष)-१. कंडों की आग, २. उपले का चूर । उ० १. गनिका, गीध, बधिक हरिपुर गए लै करसी प्रयाग कब सीमे ? (वि० २४०) विशेष-लोगों का विश्वास है कि कंडों की आग में जल मरना भारी तप है । इसके अतिरिक्त पंचाग्नि भी कंडों या उपलों के पाँच ढेर के बीच में बैठ कर ली जाती है । इस प्रकार करसी से दोनों ही अर्थ लिए जा सकते हैं ।
 करह-(सं० कर्हि)-कली, नई कोपल । उ० दस-रथ सुकृत-मनोहर-बिरवनि रूप-करह जनु लाग । (गी० १।२६)
 कराइ-कराकर, करवाकर । उ० तब असोक पादप पर राखिसि जतन कराइ । (मा० ३।२६) कराई (१)-१. कराया, करवाया, २. करवाकर, कराकर । उ० २. नृपहि नारि पहिं सयन कराई । (मा० १।१७।१) कराएहु-कराना, कराते रहना । उ० बार बार रघुनाथ कहि सुरति कराएहु मोरि । (मा० ७।१६) कराएहु-कराया, करवाया । उ० सुरन्ह प्रेरि बिषपान कराएहु । (मा० १।१३।४) कराव-१. करवाया, २. करवाओ । उ० १. गोद राखि कराव पयपाना । (मा० ७।८।४) करावन-कराना । उ० चले जनकर्मदिर मुदित बिदा करावन हेतु । (मा० १।३३) करावहु-करवाओ, कराओ । उ० लरिका श्रमित उनीद बस, सयन करावहु जाइ । (मा० १।३५) करावा-करवावा, कराया । उ० सीय बोलाइ प्रनासु करावा । (मा० १।२६।२) करावौ-बनवाऊँ, तैयार करवाऊँ । उ० निज कर खाल खींचि या तनु तैं जौ पितु पग पानही करावौ । (गी० २।७२) कराहिं-१. करते हैं, बनाते हैं २. बनवाते हैं । उ० २. अति अपार जे सरितबर जौ नृप सेतु कराहिं । (मा० १।१३) कराहीं-करते हैं । उ० जे मनि लागि सुजतन कराहीं । (मा० ७।१२।५)

कराई (२)-(सं० किरण = कण)-सूप में अन्न रखकर फटकने पर निकल हुई खुदी-भूली आदि ।
 कराई (३)-(सं० काल)-कालापन, श्यामता ।
 करामाति-(अर० करामत)-आश्चर्यजनक कार्य, चमत्कार ।
 उ० कासी करामाति, जोगी जागत मरद की । (क० ७१५८)
 करारा (१)-(सं० कराल)-ऊँचा तथा दुर्गम किनारा, किनारा । उ० लखन दीख पय उतर करारा । (मा० २। १३३।१) करारे-किनारे, किनारे पर । उ० सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे हँ ठाढ़े । (क० २।५)
 करारा (२)-(सं० करट)-कौआ । उ० रटहिँ कुभाँति कुखेत करारा । (मा० २।१५८।२)
 करारा (३)-(सं० कटक)-१. कड़ा, २. भयंकर, ३. इद्विचिंत ।
 कराल-(सं०)-१. भयानक, डरावना, भयंकर, २. ऊँचा, लंबा, ३. कठिन, कठोर । उ० १. लखी महीप कराल कठोरा । (मा० २।३१।२)
 कराला-दे० 'कराल' । उ० १. रामकथा कालिका कराला । (मा० १।४७।३)
 करालिका-भयावनी, डरावनी, विकराल रूप धारण करने वाली । उ० धरनि, दलनि दानवदल रनकालिका । (वि० १६)
 कराह (१)-(सं० कटाह)-बड़ी कड़ाही, कड़ाहा । उ० घृत पूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिंब दिखावै । (वि० ११५)
 कराह (२) (?) -पीड़ा के आह, उह आदि शब्द, दुःख में निकले शब्द ।
 कराहत-(करना + सं० अहह)-कराहते हैं, आह करते हैं, दुःख प्रकट करते हैं । उ० भूमि परे भट घूमि कराहत । (क० ६।३२)
 कराही-(सं० कटाह)-छोटा कड़ाह, कड़ाही । उ० कनक-कराही लंक तलफति ताय सौं । (क० ५।२४)
 करि (१)-(सं० करिन्)-हाथी । उ० जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबरबदन । (मा० १।१)
 करि (२)-(?) -रुचि ।
 करि (३)-(?) -को । उ० सत्रु न काहू करि गनै । (वै० १३)
 करिआ-(सं० काल)-काला, श्याम । उ० करिआ मुह करि जाहिँ अभागे । (मा० ६।४६।१)
 करिण-(सं० करिणी)-हाथी । करिणी-(सं०)-हथिनी, हस्तिनी ।
 करिणि-दे० 'करिणी' ।
 करिनि-दे० 'करिनी' । उ० फरत करिनि जिमि हतेउ समूला । (मा० २।२६।४)
 करिनी-(सं० करिणी)-हाथिनियाँ, हथिनियों को । उ० संग लाहू करिनी करि लेहीं । (मा० ३।३७।४)
 करिया (१)-दे० 'करिआ' ।
 करिया (२)-(सं० कर्ण)-१. पतवार, २. मल्लाह, पार लगाने वाला । उ० २. तुलसी करिया करम बस बूढ़त तरंत न बार । (सं० १२६)
 करी-करनेवाले को । उ० सर्व श्रेयस्करिं सीता न तोऽहं

रामबल्लभाम् । (मा० १।१।३।०।५) करी-(३)-करनेवाली, करनेवाले । उ० निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति अव-सहि बसकरी । (मा० ३।२६।७०।१)
 करी (२)-(सं० करिन्)-हाथी, गज ।
 करीर-(सं०)-१. बाँस का अँखुवा, २. करील का पेड़ ।
 करील-(सं० करीर)-ऊसर और कंकरीली भूमि में होनेवाली एक झाड़ी जिसमें पत्ती नहीं होती । ब्रज में यह झाड़ी बहुत पाई जाती है ।
 करीला-दे० 'करील' । उ० सोह कि कोकिल बिपिन करीला । (मा० २।६३।४)
 करीसहिं-(सं० करीश)-गजराज को । दे० 'गजराज' । उ० सोकसरि बूढ़त करीसहिं दुई काहुन टेक । (वि० २।१७)
 करुआई-(सं० कटकु)-कहुआपन । उ० धूमउ तजइ सहज करुआई । (मा० १।१०।५)
 करुइ-कहुई, अमधुर । उ० ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई । (मा० ३।१६।२)
 करुई (१)-दे० 'करुइ' ।
 करुई (२)-(सं० करक)-टोटीदार बर्तन, छोटा करवा ।
 करुण-(सं०)-१. करुणा उत्पन्न करनेवाला, करुणायुक्त, २. काव्य के नव रसों में से एक रस, जिसका स्थायी भाव शोक है ।
 करुणा-(सं०)-दूसरे का दुःख देखने पर पैदा हुआ मनो-विकार, दया, रहम ।
 करन-दे० 'करुण' । उ० २. मनहुँ करनरस कटकई उतरी अवध बजाइ । (मा० २।४६)
 करना-दे० 'करुणा' ।
 करेजो-(तु० सं० यकृत, फा० जिगर)-कलेजा, हृदय । उ० पै करेजो कसकतु है । (क० ६।१६)
 करेर-(सं० कठोर)-कड़ा, कठिन, इढ़ ।
 करेरी-कड़ा, कठोर, खरी । उ० वाहि न गनत बात कहत करेरी सी । (क० ६।१०)
 करेरा-कड़ा । उ० हौं न कबूलत बाँधि कै मोल करत करेरो । (वि० १।४६)
 करैया-करनेवाला, कर्ता । उ० माया जीव काल के, करम के, सुभाव के, करैया राम, बेद कहैं, साँची मन गुनिए । (ह० ४४)
 करोरि-(सं० कोटि)-करोड़, सौ लाख, अगणित । उ० नाथ की सपथ किए कहत करोरि हौं । (वि० २।५८)
 करोरी-दे० 'करोरि' । उ० जिअहु जगतपति बरिस करोरी । (मा० २।५।३)
 करकेश-(सं०)-१. तलवार, २. कड़ा, कठोर, ३. खुरखुरा, कटिदार, ४. तेज, प्रचंड, ५. अधिक ।
 करकस-दे० 'करकेश' । उ० ३. जयति बालार्क-वर-बदन, पिंगल नयन, कपिस-करकस-जटाजूटधारी । (वि० २८)
 कर्या-(सं०)-१. कान, २. कुंती का सबसे बड़ा पुत्र । कुंती के कन्याकाल में यह सूर्य के अंश से उत्पन्न हुआ था । महाभारत युद्ध में कर्ण कौरवों की ओर था ।
 कर्याधार-(सं०)-१. नाविक, मल्लाह, पतवार थामनेवाला, २. पतवार ।
 कर्णघंट-(सं०)-दे० 'करनघंट' ।

कर्णलिपि-(सं०)-दे० 'करनलिपि' ।
 कर्णिका-(सं०)-१. कान का एक गहना, कर्णफूल, २. कमल का छत्ता, ३. कलम, लेखनी, ४. हाथ की बिचली अँगुली, ५. सफेद गुलाब, ६. हाथी के सूँड़ की नोक ।
 कर्तव्य-(सं०, कर्त्तव्य)-करने योग्य, करणीय ।
 कर्त्तव्य-(सं० कर्त्तव्य)-करने योग्य, करणीय ।
 कर्ता-(सं० कर्त्ता)-१. करनेवाला, २. सृष्टि की रचना करनेवाला । उ० २. जो कर्ता पालक संहर्ता । (मा० ६।७।२)
 कर्तार-(सं० कर्त्तार)-१. करनेवाला, बनानेवाला, २. विधाता, ब्रह्मा, ३. ईश्वर । कर्त्तारी-(सं०)-दोनों कर्त्ताओं को । उ० मंगलानाच कर्त्तारौ वंदे वाणीविनायकौ । (मा० १।१।१ श्लो० ३)
 कर्द-(सं०)-कर्दम, कीचड़ ।
 कर्दम-(सं०)-१. कीचड़, २. पाप, ३. मांस, ४. छाया, ५. एक प्रजापति, जो सूर्य और छाया के पुत्र से पैदा हुए थे । इनकी पत्नी का नाम देवहूति और पुत्र का नाम कपिल था । उ० ५. जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी । (मा० १।१।४।३)
 कर्णिका-(सं०, कर्णिका)-दे० 'कर्णिका' ।
 कर्पूर-(सं०)-कर्पूर । एक सफेद रंग का सुगंधित द्रव्य जो दवा तथा पूजा आदि के काम में आता है । उ० कर्पूरगौर करना उदार । (वि० १३)
 कर्म-(सं०)-वह जो किया जाय, कार्य । दे० 'करम' ।
 कर्मना-(सं० कर्मणा)-कर्म से । उ० मनसा वाचा कर्मना, तुलसी बंदत ताहि । (वै० २६) कर्महि-कर्म पर, कर्म को । कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोस लगाइ । (मा० ७।४३)
 कर्मठ-(सं०)-१. कर्मनिष्ठ, जी तोड़कर काम करनेवाला, २. कर्मकांड करनेवाले ।
 कर्मनाश-दे० 'करमनास' ।
 कर्मनासा-दे० 'करमनास' ।
 कर्मा-१. दे० 'कर्म' । काम, कार्य, २. करनेवाला, कर्मा । जैसे क्रूरकर्मा । उ० १. सत्व बहुत रज कछुरति कर्मा । (मा० ७।१०।१२)
 कर्मा-कर्म करनेवाला, किसी फल की इच्छा से यज्ञादि कर्म करनेवाला ।
 कर्ष-(सं०)-१. उमंग, जोश, ताव, २. खिंचाव, घसीटना, ३. मनाड़ा, तनाव, बैर ।
 कर्षण-१. खींचना, २. जोतना, खेती करना, ३. खींचनेवाला ।
 कर्षण-दे० 'कर्षण' । उ० ३. जयति मंदोदरी-केसकर्षण विद्यमान-दसकंठ-भटसुकुट-मानी । (वि० २६)
 कर्षा-दे० 'कर्ष' ।
 कर्लक-(सं०)-दे० 'कलंका' ।
 कर्लका-(सं० कर्लक)-१. दाग, धब्बा, २. लांछन, बदनामी, दोष । उ० २. मातु व्यर्थे जनि लेहु कर्लका । (मा० १।६।७।४)
 कर्लक-दे० 'कलंका' ।
 कल (१)-(सं०)-१. मधुर ध्वनि, मधुर, कोमल, २. सुंदर, मनहर, ३. बीज । उ० १. कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहि, काम कोकिल लाजहीं । (मा० १।३।२।२। छं० १)

कल (२)-(सं० कल्य)-१. वैरोग्य, आरोग्यता, २. आराम, सुख, चैन, ३. आनेवाला दिन, ४. बीता हुआ दिन, ५. संतोष, तुष्टि ।
 कल (३)-(सं० कला)-१. कला, २. युक्ति, ढंग ।
 कल (४)-(१)-यात्रा ।
 कलई-(अर० कलई)-१. रांगा, रांगे का पतला लेप, जो बर्तन पर देते हैं । २. तड़क-भड़क के लिए कोई लेप, ३. बाहरी शोभा या चमक, ४. चूना । उ० ३. साति सत्य सुभ रीति गई घटि-बढ़ी कुरीति कपट-कलई है । (वि० १३६)
 कलकंठ-कोयल । उ० काक कहहि कलकंठ कठोरा । (मा० १।६।१) कलकंठि-मधुर कंठवाली, कोयल । उ० दे० 'कंठि' ।
 कलत्र-(सं०)-१. स्त्री, पत्नी, २. निर्वंश, चूतड़, ३. दुर्गा, गढ़ । उ० १. देह, गेह, सुत, बित, कलत्र महँ मगन हीत बिनु जतन किए जस । (वि० २०४)
 कलधौत-(सं०)-१. सोना, स्वर्ण, २. चाँदी, ३. सुंदर ध्वनि । उ० १. जयति कलधौत-मनि मुकुट-कुंडल । (वि० ४४)
 कलन-(सं०)-१. उत्पन्न करना, बनाना, २. धारण करना, ३. आचरण, ४. लगाव, संबंध, ५. गणित की क्रिया, ६. कौर, आस, ७. ग्रहण, ८. बंत, ९. गर्भ संबंधी एक क्रिया या विकार ।
 कल्प-(सं० कल्प)-दे० 'कल्प' । उ० १. जदुपति मुखझुबि कल्प कोटि लागि, कहि न जाइ जाके मुख चारी । (कृ० २२)
 कल्पत-(सं० कल्पन)-१. विलाप करता, रोता, बिलखता, २. सोचता । उ० १. करम-हीन कल्पत फिरत । (सं० १।१६)
 कल्पि-१. विचार कर, २. कल्पना कर, ३. दुःखी होकर, रोकर, ३. रचकर, झूठ-मूठ बनाकर । उ० १. फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं प्रभु कल्पि कुटिलता मोरि । (गी० २।७०)
 ३. कोटि प्रकार कल्पि कुटिलाई । (मा० २।२२।२।३)
 कल्पतरु-दे० 'कल्पतरु' । उ० कोसलपाल कृपालु कल्पतरु द्रवत सकुंत सिर नाए । (वि० १६३)
 कल्पना-(सं० कल्पना)-दे० 'कल्पना' । उ० १. जागि करहि कटु कोटि कल्पना । (मा० २।१५।७।३)
 कल्पबल्ली-दे० 'कल्पबल्ली' । उ० तेरि कुमति कायर कल्पबल्ली चहति बिपफल फली । (वि० १३५)
 कल्पबेलि-दे० 'कल्पबेलि' । उ० कल्पबेलि जिमि बहुविधि लाली । (मा० २।५।१।२)
 कल्पलता-दे० 'कल्पलता' । उ० सींची मनहुँ सुधारस कल्पलता नई । (जा० १६)
 कल्पित-दे० 'कल्पित' । उ० १. मिटी मलिन मन कल्पित सूला । (मा० २।२६।७।१)
 कलबल (१)-(सं० कला + बल)-दाँव-पेंच, अस्पष्ट उपाय, छल । उ० कलबल छल करि जाय समीपा । (मा० ७। १।१।४)
 कलबल (२)-(ध्व०)-१. शोर-गुल, २. बच्चों की अस्पष्ट बोली । उ० २. कलबल बचन तोतरे बोखत । (गी० १।२।८)
 कलभ-(सं०)-१. हाथी का बच्चा, २. हाथी, ३. ऊँट का बच्चा । उ० १. काम कलभ कर भुज बलसीवा । (मा० १।२।३।४)

कलमले-(ध्वं कलमलाना)-कलमलाए, छटपटाए, हिले डुले, छटपटा उठे । उ० चिक्करहि दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले । (मा० ११२६१। छं० १) कलमल्यो-दे० 'कलमल्यौ' । कलमल्यौ-छटपटाए, हिले डुले । उ० कोल कमठ अहि कलमल्यौ । (क० ११११)

कलरव-(सं०)-१. मधुर शब्द, २. कोयल, ३. कबूतर । उ० १. नूपुर किंकिनि कलरव-विहंग । (वि० १४)

कलवार-(सं० कल्यपाल)-शराब बनाने और बेचनेवाली एक जाति ।

कलवारा-दे० 'कलवार' । उ० स्वपच किरात कोल कलवारा । (मा० ७।१००।३)

कलश-(सं०)-१. घड़ा, गागर, २. शुभ अवसरों पर पानी भर कर रखा जानेवाला घड़ा, ३. मन्दिर आदि के शिखर पर लगा हुआ पीतल आदि का कंगूरा, ४. चोटी, सिरा, प्रधान, ५. न सेर के बराबर की एक तौल ।

कलस-दे० 'कलश' । उ० २. मंगल कलस दसहुँ दिशि साजे । (मा० १।६१।४) कलसजोनि-(सं० कलश + योनि)-घड़े से पैदा होनेवाले अगस्त्य ऋषि । दे० 'अगस्ति' । उ० कलसजोनि जिय जानेउ नामप्रमतापु । (ब० ५५) कलसभव-कलस या घड़े से होनेवाले अगस्त्य ऋषि । दे० 'अगस्ति' । उ० सकुचि सम भयो ईस-आयसु-कलसभव जिय जोइ । (गी० ५।५)

कलहंस-(सं०)-१. हंस, २. राजहंस, ३. श्रेष्ठ राजा, ४. परमात्मा, ब्रह्म । उ० १. सुनहु तमचुर सुखर, कीर कलहंस पिक । (गी० १।३४)

कलह-(सं०)-१. विवाद, झगड़ा, २. रास्ता, पथ, ३. तलवार की म्यान । उ० १. कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी । (मा० २।१६८।१)

कलहीन-कलारहित, अकलारमक ।

कला-(सं०)-१. अंश, भाग । ३. चंद्रमा का १६ वाँ भाग । चंद्रमा की अमृता, मानदा, पूषा आदि १६ कलाएँ मानी गई हैं । ३. सूर्य का १२ वाँ भाग, ४. किसी कार्य को करने का कौशल, हुनर । कामशास्त्र के अनुसार ६४ कलाएँ हैं । उपयोगी तथा ललित कला । ५. शोभा, ६. ऐश्वर्य, ७. बहाना, ८. कपट, ९. खेल । उ० ४. सकल कला सब विद्या हीनू । (मा० १।६।४) कलातीत-कलाओं से परे, ईश्वर ।

कलाधर-(सं०)-१. कलाओं के धारण करनेवाले, चंद्रमा, २. शिव । उ० २. ललित लल्लाट पर राज रजनीश कल, कलाधर, नौमि हर धनद-मित्रं । (वि० ११)

कलाप-(सं०)-१. झुंड, २. मोर की पूँछ, ३. बाण, ४. तरकश, ५. करधनी, ६. चंद्रमा, ७. व्यापार, ८. आभूषण । उ० २. कँपै कलाप बर बरहि फिरावत, गावत, कल कोकिल-किसोर । (गी० ३।१)

कलापा-दे० 'कलाप' । उ० १. बरनि न जाहि बिलाप कलापा । (मा० २।५७।४)

कलापी-(सं० कलापिन)-१. मोर, २. कोकिल, ३. बट ।

कलिद-(सं०)-१. सूर्य, २. एक पर्वत जिससे यमुना निकली है ।

कलिदजा-(सं० कलिद + जा) सूर्य-पुत्री या कलिद पर्वत

से निकलने वाली जमुना नदी । उ० जनु कलिदजा सुनील सैल तें धसी समीप । (गी० ७।७)

कलिदजात-दे० 'कलिदजा' ।

कलिदनेदिनि-कलिद की पुत्री, यमुना, जमुना नदी ।

कलि-(सं०)-१. चार युगों में से अंतिम युग जो ४३-२००० वर्षों का होता है । कलियुग । इसमें अधर्म का प्राधान्य होता है । २. युद्ध, कलह, ३. वीर, ४. पाप, ५. शिव, ६. दुःख, ७. तरकश, ८. काला, श्याम । उ० १. सकल कलुष कलि साउज नाना । (मा० २।१३३।२)

कलिकाल-(सं०)-कलियुग, पाप का समय या युग । उ० कठिन कलिकाल-कानन कृपानुं । (वि० १२) कलिमल-कलियुग का पाप । कलिमलसरि-कलियुग के पापों की नदी । कर्मनाशा नदी । उ० गरल अनल कलिमलसरि ब्याधू । (मा० १।५।४) कलिमलो-कलियुग के पाप भी । उ० नाम-प्रताप दियाकरकर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो । (गी० ५।४२) कलिहि-१. कलियुग को, २. कलिका को । उ० १. कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं । (मा० ४।१५।५)

कलिका-(सं०)-१. कली, फूल की प्रथमावस्था, २. अंश, भाग, ३. कला, सुहृत् ।

कलिजुग-दे० 'कलियुग' ।

कलित-(सं०)-१. सुन्दर, सजाया हुआ, २. विदित, ३. प्राप्त । उ० १. कुंजरमनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल । (मा० १।२४३)

कलितरु-बबूल का पेड़, लुरा पेड़, पाप का पेड़ । उ० कलितरु कपि निसिचर कहत, हमहि किए विधि बाम । (दो० २।१५)

कालन-कलियाँ, कलो का बहुवचन । कली-कली का बहुवचन, कलियाँ । उ० जनु बिगसीं रवि-उदय कनक-पंकज-कलीं । (जा० १।४८) कली-(सं०)-१. बिना लिखा फूल, कलिका, २. अक्षतयोनि कन्या, ३. चिंदियों का नया पर, ४. वैष्णवों का एक तिलक । उ० १. गुच्छु बीच बिच कुसुम कली के । (मा० १।२३३।१)

कलियुग-(सं०)-चार युगों में से चौथा जिसकी आयु देवताओं के वर्षों में १२०० वर्ष तथा मनुष्यों के वर्षों में ४३२००० है । कलिजुग ।

कलिल-(सं०)-१. मिला-जुला, मिश्रित, २. गहन, दुर्गम, ३. ढेर, समूह । उ० २. मोह कलिल ब्यापित मति मोरी । (मा० ७।८२।४)

कलु-(सं० कल्य)-सुख, सैन ।

कलुख-दे० 'कलुष' ।

कलुष-(सं०)-१. मलिनता, २. पाप, दोष, ३. क्रोध, ४. भैंसा, ५. मैला, ६. पापी, ७. निर्दित । उ० २. बरनई रघुबर बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ । (मा० १।२६ ग)

कलुषाई-१. गदलापन, २. पाप, ३. कालिमा । उ० २. राम-दरस मिदि गइ कलुषाई । (गी० २।४६)

कलेऊ-दे० 'कलेवा' ।

कलेवर-(सं०)-शरीर, देह । उ० मरकत भृदुल कलेवर

स्यामा । (मा० ७।७६।३) कलेवरनि-शरीरों से । उ० नीले पीले कमल से कोमल कलेवरनि । (गी० २।३०)
 कलेवा-(सं० कल्यवर्त)-१. सबेर खाया जानेवाला हलका खाना, ठंडा या बासी खाना, २. खाना । उ० २. नाथ सकल जगु काल कलेवा । (मा० ७।६४।४)
 कलेश-(सं० कलेश)-दुःख, पीड़ा, कष्ट ।
 कलेस-दे० 'कलेश' । उ० काय न कलेस लेस, लेत मानि मन की । (वि० ७१) कलेसन-कूपों, दुखों । उ० सकल कलेसन करत प्रहारा । (वै० ४५)
 कलेसा-दे० 'कलेस' ।
 कलेसु-दे० 'कलेस' ।
 कलेसु-दे० 'कलेस' ।
 कलारे-(सं० कल्या)-गाय के बच्चे । उ० मानों हरे तुन चारु चरें बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे । (क० ७।१४४)
 कलोल-(सं० कलोल)-आमोद-प्रमोद, क्रीड़ा, केलि । उ० ज्यों सुखमा-सर करत कलोल । (गी० १।१६)
 कल्कि-(सं०)-विष्णु का दसवाँ अवतार, जिसके संबंध में लोगों की यह धारणा है कि इसका जन्म कुमारी कन्या के गर्भ से होगा ।
 कल्की-दे० 'कल्कि' । उ० विष्णुयश-पुत्र कल्की दिवाकर उदित दास तुलसी हरन विपति-भारं । (वि० ५२)
 कल्प (१)-(सं०)-१. ब्रह्मा का एक दिन जिसमें १४ मन्वन्तर या ४३२०००००० वर्ष होते हैं । २. विधि, विधान, ३. वेद का एक अंग, ४. प्रातःकाल, ५. विभाग, ६. उपाय, ७. तुल्य, समान, ८. मनोरथ । उ० १. बहु कल्प उपाय करिय अनेक । (वि० १३) कल्पहिं-१. कल्प को, २. कल्पना करते हैं, गढ़ते हैं, ३. रोते हैं । उ० २. तेहि परिहरहिं बिमोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक । (दो० ५५५)
 कल्प (२)-(सं० कल्पना)-१. विचार, कल्पना, २. रचना । कल्पत-सोचते हैं, विचार करते हैं, कल्पना करते हैं । उ० राज-समाज कुसाज कोटि कट्ट कल्पत कलुष कुचाल नई है । (वि० १३६) कल्प-कल्पना कर, निराधार गढ़कर । उ० दम्भिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ । (मा० ७।६७ क)
 कल्पतरु-(सं०)-कल्पना करते ही या सोचते ही सब वस्तुओं को प्रदान करनेवाला पेड़ । कल्पवृक्ष, देववृक्ष । उ० कैवल्य सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस । (क० ७।११५) विशेष-पुराणानुसार कल्पतरु देवलोक का एक पेड़ है जो समुद्र-मंथन के समय निकले १४ रत्नों में से एक है । इसे इंद्र ने लिया था । यह वृक्ष सभी कुछ का दाता समझा जाता है । कल्पद्रुम, कल्पतरु, कल्पवृक्ष, कल्पबेलि, कल्पलता, देवतरु आदि इसके पर्याय हैं । कल्पना करते ही सब कुछ देनेवाला तथा कल्प (१४ मन्वन्तर) तक जीवित रहनेवाला होने के कारण यह कल्पतरु या कल्पलता आदि नामों से पुकारा गया है ।
 कल्पद्रुम-दे० 'कल्पद्रुम' । उ० काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं । (मा० ६।१२।खो०२) कल्पद्रुम-(सं०)-दे० 'कल्पतरु' । उ० धर्म-कल्पद्रुमाराम, हरिधाम-पथि-संचलं, मूलमिदमेव एकं । (वि० ४६)
 कल्पना-(सं०)-१. विचार, सोचना, २. रचना, बनावट,

३. वह शक्ति जो अनुमान के आधार पर अप्रत्यक्ष वस्तुओं के विषय में भी सोच सकती है । ४. बिना किसी आधार के बना लेना, अनुमान, ५. संकल्प, ६. आरोप, स्थापन, ७. नकल, ८. तर्क, ९. दुःख, कष्ट । उ० ६. लोक कल्पना वेदकर, अंग-अंग प्रति जासु । (मा० ६।१४)
 कल्पपादप-दे० 'कल्पतरु' ।
 कल्पवल्ली-(सं० कल्प + वल्ली)-दे० 'कल्पतरु' ।
 कल्पबेलि-(सं० कल्पबेलि)-दे० 'कल्पतरु' ।
 कल्पलता-दे० 'कल्पतरु' ।
 कल्पसाखी-(सं० कल्प + शाखा)-दे० 'कल्पतरु' । उ० राम विरहार्कसंतस-भरतादिनरनारि-सीतल करन-कल्प-साखी । (वि० २७)
 कल्पसाषी-दे० 'कल्पसाखी' ।
 कल्पांत-कल्प का अंत, प्रलय । उ० सकल-लोकांत-कल्पांत शूलामकृत दिग्गाज्यक्त-गुण नृत्यकारी । (वि० ११)
 कल्पांतकृत-१. प्रलय करनेवाला, २. रुद्र, शिव । उ० १. सत्य संकल्प अतिकल्प कल्पांतकृत, कल्पनातीत अहि-तल्पवासी । (वि० ५४)
 कल्पित-(सं०)-१. जिसकी कल्पना की गई हो, २. मन-गढ़त, मनमाना, ३. बनावटी, नकली । उ० २. सब नर कल्पित करहिं अचारा । (मा० ७।१००।५)
 कल्पमष-(सं०)-१. पाप, २. मैल, ३. एक नरक का नाम, ४. मवाद, पीब । उ० १. साधुपद-सलिल-निर्धूत-कल्पमष सकल, स्वपच यवनादि कैवल्यभागी । (वि० ५७)
 कल्याण-(सं०)-१. मंगल, शुभ, २. सोना, ३. एक राग का नाम ।
 कल्याण-दे० 'कल्याण' । उ० १. कर कल्याण अखिल कै हानी । (मा० ५।४२।१)
 कल्याना-दे० 'कल्याण' । उ० १. जो आपन चाहै कल्याणा । (मा० ५।३८।३)
 कल्यानि-हे कल्याणी, हे कल्याणमयी । उ० कालिही कल्याण कौतुक कुसल तव कल्यानि । (गी० ७।३२)
 कल्याण-दे० 'कल्याण' । उ० १. जेहि विधि होइ राम कल्याण । (मा० २।८।३)
 कल्लोलिनी-(सं०)-कल्लोल करनेवाली नदी, नदी । उ० स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा । (मा० ७।१०।३)
 कवैल-(सं० कमल)-कमल, सरोज । उ० नवल कवैल हू ते कोमल चरन हैं । (क० २।१७)
 कवच-(सं०)-१. आवरण, छिलका, २. जिरहबस्तर, लड़ाई के समय पहने जानेवाला एक लोहे की कड़ियों का बना पहनावा । उ० २ कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा । (मा० ६।८०।५)
 कवन-(प्रा० कवण)-किस, कौन । उ० कहहु कवन बिधि भा संवादा । (मा० ७।५५।३) कवनि-'कवन' का स्त्री-लिंग । उ० होइ अकाञ्च कवनि बिधि राती । (मा० २।१३।२) कवनिउं-दे० 'कवनिउ' । कवनिउ-१. किसी को, २. कोई । उ० १. अल्पमृत्यु नहि कवनिउ पीरा । (मा० ७।२१।३) कवनिहुं-किसी भी । उ० तुलसी काम मथुख तें लागै कवनिहुं रुख । (सं० ५२) कवनिहु-किसी भी, कोई भी । उ० चित्ता कवनिहु बात कै जाल करिअ

जनि मोर । (मा० २।६५) कवनी-कौन सी, किस । उ० कहहु तात कवनी विधि पाए । (मा० ६।३८।४)

कवनु-दे० 'कवन' ।

कवने-किस, कौन से । उ० कवने अवसर का भयउ गयउ नारि विस्वास । (मा० २।२६) कवने-दे० 'कवने' । कवनेहु-किसी भी, किसी । उ० तोर नास नहि कवनेहु काला । (मा० १।१६।१३)

कवल (१)-दे० 'कवल' ।

कवल (२)-(सं०)-ग्रास, कौर, लुकमा ।

कवलित-(सं०)-कौर किया हुआ, प्रसित । उ० सकुल सदल रावन सरिस, कवलित काल कराल । (प्र० ६।३।६)

कवल-दे० 'कवल (२)' । उ० कालकवलु होइहि छन माहीं । (मा० १।२७।४२)

कवि-(सं०)-१. काव्य करनेवाला, शायर, २. सूर्य, ३. पंडित, ४. शुक्राचार्य, ५. उल्लू, ६. ऋषि । कविकोकिल-कवियों में कोयल के समान, वास्तवीकि ।

कवित-दे० 'कवित्त' ।

कविता-(सं०)-रमणीय पद्यमय वर्णन, काव्य ।

कवित्त-(सं० कवित्व)-१. कविता, काव्य, २. दंडक के अंतगत ३१ अक्षरों का एक छंद ।

कवी-दे० 'कवि' ।

कवीश्वर-कवियों के ईश्वर, वात्मीकि । उ० वन्दे विशुद्ध-विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ । (मा० १।१। श्लो० ४)

कश्यप-(सं०)-१. एक ऋषि, २. एक प्रजापति, जो सृष्टि के और साथ ही गरुड, नाग, भगवान (वामन, कृष्ण, राम) तथा ४६ वायु के पिता कहे गये हैं । ३. कञ्जुआ, ४. सप्तर्षि मंडल का एक तारा, ५. एक ऋग । विशेष-कश्यप ऋषि ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के पुत्र थे । इनसे वामन, राम और श्रीकृष्ण भगवान रूप में पैदा हुए थे । इनकी पत्नी अदिति थी । दे० 'अदिति' । कश्यपप्रभव-कश्यप ऋषि से उत्पन्न देव और दैत्य ।

कषाय-(सं०)-१. कसैला, कसाव, २. सुगंधित, ३. गौरिक, गेरु के रंग का, जोगिया, लाल, रंजित, ५. बबूल का गोद । उ० ३. अरुन मुख, अ्रु विकट, पिंगल नयन रोष कषाय । (वि० २२०)

कष्ट-(सं०)-१. दुःख, क्लेश, २. संकट, आपत्ति । उ० १. करत कष्ट बहु पावइ कोऊ । (मा० ७।४।१२)

कष्टी-दुखित, कष्टरत, दुखिया । उ० दरशनारत दास, असित-माया-पास, त्राहि त्राहि ! दास कष्टी । (वि० ६०)

कस (१)-(सं० कीदृश)-१. कैसा, कैसे, किस प्रकार, २. क्यों । उ० १. सपनेहु धरमभुद्धि कस काज । (मा० २।२५।१३)

कस (२)-(सं० कष)-परीक्षा, कसौटी । उ० द्वंद-रहित, गत-मान, ज्ञानरत विषय-विरत खटाइ नाना कस । (वि० २०४)

कस (३)-(सं० कषण)-१. बल, जोर, २. बश, काबू, ३. रोक, अवरोध ।

कस (४)-(सं० कषाय)-कसैला, कसाव ।

कस (५)-(सं० कांस्य)-तंबू और जस्ते के संयोग से बनी एक धातु, कसकट, काँसा ।

कसक-(सं० कष)-१. पीड़ा, टीस, मीठा-मीठा दर्द, २. पुराना बैर, ३. सहायुभूति, ४. अरमान, हौसला ।

कसकतु-कसकता, दर्द करता । उ० आयो सोई काम पै करेजो कसकतु है । (क० ६।१६) कसकै-कसकता है, दर्द करता है । उ० जानै सोई जाके उर कसकै करक सी । (गी० १।४२)

कसम-(अर० कसम)-शपथ, सौगंध । उ० भुजा उठाइ साखि संकर करि कसम खाइ तुलसी भनी । (गी० ५।३६)

कसमसत-(ध्व०)-१. एक दूसरे से रगड़ खाते हैं, हिलते-डोलते हैं । २. हिचकते हैं, आगा-पीछा करते हैं । ३. विचलित होते हैं । उ० १. किल-किलात, कसमसत, कोलाहल होत नीरनिधितौर । (गी० ५।२२) कसमसात-

१. आपस में रगड़ खाती हुई, २. हिलती हुई, ३. हिचकती हुई, ४. विचलित होती हुई । उ० कसमसात आई अति घनी । (मा० ६।८७।१) कसमसे-आतुर हुए, घबराने लगे । उ० भए क्रुद्ध लुद्ध बिरुद्ध रघुपति भौन सायक कसमसे । (मा० ६।६१। छं० १)

कसहीं-१. बाँधते हैं, २. परीक्षा करते हैं, ३. कष्ट देते हैं । उ० ३. करहि जोग जप तप तन कसहीं । (मा० २।१३।२।४)

कसाई-(अर० कस्साब)-१. अधिक, बूचड़, गोश्त बेंचने-वाला, २. निर्दयी । उ० १. कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है । (क० ७।१८।१)

कसि-दे० 'कस' । कसकर, जोर देकर । कसें-१. कसने से, बाँधने से, २. परीक्षा करने से, परखने से, ३. कष्ट देने से, ४. बाँधे हुए हैं, ५. बाँधे, कसे हुए । उ० २. कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ । (मा० २।२८।३।३) ४. मुनिपट कटिन्ह कसें तुनीरा । (मा० २।११।५।४) कसे-१. कसने से, २. परीक्षा करने से, ३. कष्ट पहुँचाने से, ४. बाँधे हुए । उ० ४. हृदय आनु धनुवान-पानि प्रभु लसे मुनिपट कसे माथ । (वि० ८४) कसैहौं-१. कसवाऊँगा, बंध-वाऊँगा, २. परीक्षा कराऊँगा । उ० २. स्वाम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहि कसैहौं । (वि० १०।१।२)

कस्यो-कस लिया । उ० कटितट परिकर कस्यो निषंगा । (मा० ६।८।६।५) कस्यौ-१. कसा, बाँधा, २. परीक्षा की, जाँचा ।

कसौटी-(सं० कषपट्टी)-एक प्रकार का काला पत्थर जिस पर सोने-चाँदी की परख की जाती है । उ० दे० 'कसैहौं' ।

कस्यप-(सं० कश्यप)-एक ऋषि । दे० 'कश्यप' । उ० कस्यप अदिति महातप कीन्हा । (मा० १।१८।७।२)

कह (१)-(सं० कुहः)-कहाँ, किस ठौर । उ० कहँ सिय रासु लखनु दोउ भाई । (मा० २।१६।४।२)

कह (२)-(सं० कच)-के लिए, वास्ते । अवधी में यह कर्म तथा सम्प्रदान कारकों का चिह्न है ।

कहंत-१. कहते हैं, २. कहता हुआ । उ० १. 'झूठे है, झूठे है झूठे सदा जग' संत कहंत जे अंत लहा है । (क० ७।३।६) कहंता-१. कहता है, २. कहते हुए, कहता हुआ । उ० २. सापत ताड़त परुष कहंता । (मा० ३।३।४।१)

कह (१)-(सं० कथन)-१. कहो, बोलो, २. कहकर, ३. कहता है, ४. कहा । उ० ४. बरषि सुमन कह देवसमाजू । (मा० २।१३४।२) कहइ-१. कहने लगा, कहा, २. कहने में, वर्णन में । उ० १. धरि धीरजु तब कहइ निषादू । (मा० २।१४३।१) कहई-१. कहता, २. कहेगा । उ० १. सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई । (मा० १।६६।४) कहउँ-१. कहूँ, वर्णन करूँ, २. कहता हूँ, कह रहा हूँ । उ० २. कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । (मा० २।२६४।१) कहउ-१. कहो, कहिए, २. कहें । उ० २. लोग कहउ गुर साहिब द्रोही । (मा० २।२०५।१) कहऊँ-कहूँ । उ० तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ । (मा० २।६५।४) कहत (१)-१. कहते हैं, कहता हूँ, २. कहते ही, ३. कहते हुए, ४. कहता, कहते, ५. कह देने से । उ० १. दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू । (मा० २।३२६।२) कहति-‘कहत’ का स्त्रीलिंग रूप । उ० ४. कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसाजु । (मा० २।३६) कहतु-दे० ‘कहत’ । उ० ४. तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतसु कहतु हौँ सौहैं कियँ । (मा० २।२०१। छं० १) कहते-वर्णन करते, बखानते । उ० जौ जहँ-तहँ पन राखि भगत को भजन-प्रभाव न कहते । (वि० १७) कहतेउ-कहता, कहते । उ० कहतेउ तोहि समय निरबहा । (मा० ६।६३।३) कहव-१. कहेंगे, कहा जायगा, २. कहा हुआ, ३. कहना । उ० ३. कहव मोर मुनि नाथ निबाहा । (मा० २।२६०।२) कहवि-१. कहेंगी, कहा करंगी, २. कहियेगा, ३. कहना । उ० १. हमहुँ कहवि अब ठकुरसोहाती । (मा० २।१६।२) कहसि-१. कहा, २. कहती है, कहता है, कह रहा है, ३. कहेगा । उ० २. प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती । (मा० २।३१।३) कहसी-दे० ‘कहसि’ । उ० २. छोटे बदन बात बड़ि कहसी । (मा० ६।३१।४) कहहिं-१. कहते हैं, २. कहे । उ० २. बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी । (मा० २।१२८।१) कहहि-१. कहता है, २. कहेगा । कहहीं-कहते हैं, कह रहे हैं । उ० ते प्रभु समाचार सब कहहीं । (मा० २।२२४।३) कहहुँ-दे० ‘कहउँ’ । कहहु-कहो, बतलाओ, बोलो, कहिए, आज्ञा दीजिए । उ० करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा । (मा० ७।४६।२) कहहु-दे० ‘कहहु’ । उ० मोहि पद पदुम पखारन कहहु । (मा० २।१००।४) कहा (१)-१. बोला, सुनाया, २. कहा हुआ, कथन, ३. उपदेश, ४. आदेश । कदि-कहकर । उ० कुसलप्रसन्न कहि बारहिं बारा । (मा० १।२१५।२) कहिअ-१. कहता, २. कहना चाहिए, ३. कहिए । उ० १. कहिअ न आपन जानि अकाजा । (मा० १।६४।१) कहिआयो-१. कहने में आया, कहना पड़ा, २. कहता आया । कहिउँ-कहा, कहे । उ० कहिउँ तात सब प्रसन्न तुम्हारी । (मा० ७।११४।८) कहिबीं-कह देना, बतला देना । उ० बूझिहैं ‘सो है कौन ?’ कहिबीं नाम दसा जनाइ । (वि० ४१) कहिवे-१. कहोगी, कहोगे, २. कहने । उ० १. कहिवे कछु, कछु कहि जैहै, रहौ, आलि अरगानी । (क० ४७) कहिवो-१. कहना, २. कहने के लिए, ३. कहूँगा । उ० ३. कहिवो न कछु मरिबोइ रहो है । (क० ७।६१) कहिय-१. कहना चाहिए, २. कहिए,

बतलाइए । कहियत-१. कहते हैं, २. कहा जाता है । उ० २. घर बाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी । (पा० १२१) कहिसि-कहा, कह सुनाया । उ० कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाद बिरोधु । (मा० २।१८) कहिहउँ-कहूँगा । उ० कहिहउँ कवनसँदेस सुखारी । (मा० २।१४६।१) कहिहिं-कहेंगे । कहिहिं-कहेगा, कहेगी । उ० पुनि कछु कहिहि मातु अतुमानी । (मा० २।४५।२) कहिहु-कहा था । उ० स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं । (मा० २।२२।२) कहिहै-१. कहेगा, २. कह सकता है । कहिहौं-दे० ‘कहिहउँ’ । उ० और मोहि को है काहि कहिहौं ? (वि० २३१) कही-१. वर्णित, कथित, कही हुई, २. कहा, कह सुनाई । उ० २. चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ । (मा० २।१३२) कहीजै-कहिए, कहनी चाहिए । उ० मेरे मरिबे समन चारि फल होहि तौ क्यों न कहीजै ? (गी० ३।१५) कहु-१. कहकर, २. कहो, बोलो । उ० २. कहु केहि कहिए कृपानिधे ! भवजनित विपति अति । (वि० ११०) कहे-१. कहने पर, २. कहा, वर्णन किया, ३. कहने । उ० ३. भरत कहे महुँ साधु सयाने । (मा० २।२२७।३) कहेउ-मैंने कहा, वर्णन किया । उ० तब लागि जो दुख सहेउ कहेउ नहिं, जद्यपि अंतरजामी । (वि० ११३) कहेउ-कहा । उ० राम सचिव सन कहेउ सप्रीती । (मा० २।८५।४) कहेऊँ-१. कहा, २. कह रहा हूँ । उ० २. अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ । (मा० १।१८५।२) कहेऊँ-कहा था, कहा । उ० तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊँ । (मा० १।६३।३) कहेन्हि-१. कहे, बोले, कहने लगे, २. कहा था । उ० २. देन कहेन्हि मोहि दुह बरदाना । (मा० २।४०।४) कहेसि-कहा, बोला । उ० बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु । (मा० २।२२) कहेसु-१. कहा, २. कह देना, ३. कहो । उ० २. कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई । (मा० ४।१।२) कहेहु-१. कहा, कहा था, २. कहियेगा, कहना । उ० १. देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु । (मा० २।२७) कहेहु-१. कहा, २. कहना, कहियेगा । उ० २. तात प्रनाम तात सन कहेहु । (मा० २।१५१।३) कहैं-कहते हैं, वर्णन करते हैं । उ० सारद, सेस, साधु महिमा कहैं । (वि० १५७) कहैं-कहे, कथन करे, कहते । उ० कहैं सो अधम अयान असाधू । (मा० २।२०७।४) कहैगो-कहेगा । उ० अपने अपने को तौ कहैगो घटाइको ? (क० ७।२२) कहौ-वर्णन करूँ, कहूँ । उ० कहँ लागि कहौ दीन अगनित जिन्हकी तुम विपति निवारी । (वि० १६६) कह्यो-१. कहना, २. कहा, ३. कहा हुआ । उ० १. ऊधोषू क्यो तिहारोइ कीवो । (क० ३५) २. इहै क्यो सुत बेद चहुँ । (वि० ८६) कह्यौ-१. कहा हुआ, कथन, २. कहना, ३. कहा, कहा है ।

कइ (२)-[तु० सं० कियति] कितना, किस मात्रा का ।

कहत (२)-(अ० कहत)-अकाल, दुर्भिक्ष ।

कहतव-कथन, कहना, उपदेश ।

कहन-१. कहना, कहने, २. कहने में । उ० १. लगे कहन कछु कथा पुनीता । (मा० २।१४१।४) कहनि-१. कथन, कहना, उच्चारण करना, २. उक्ति, बात, कहावत, कविता । उ० १. सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय सुखराम । (वै० १७)

कहरत-दे० 'कहरत' । उ० १. मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहरत परे । (मा० ३।२०। छं० २)
 कहर (१)-(अर० कहर)-१. विपत्ति, आफत, २. बलपूर्वक किया गया अत्याचार ।
 कहर (२)-(अर० कहर)-अगम, अपार ।
 कहरत-(दे० कराहत)-१. कराहते हैं, कराहता है, कराह रहा है, २. कराहते हुए । कहरि-कराह कर, कराहते हुए । उ० ठहर-ठहर पर कहरि कहरि उठे । (क० ६।४२)
 कहरी-(अर० कहर)-कहर या शज़ब दानेवाली, क्रोधी । उ० लंक से बंक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे को कहरी है । (क० ६।२३)
 कहर-दे० 'कहर' । उ० डरत हौं देखि कलिकाल को कहर । (वि० प० २५०)
 कहीं-(सं० कुहः)-किस जगह, कुत्र, किस स्थान पर, कहुँ । उ० कहु कहुँ तात कहाँ सब माता । (मा० २।१५६।४)
 कहा (२)-(सं० कः)-क्या, कैसा, कैसे । उ० पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाईहौं आयसु होत कहा है ? (क० २।७)
 कहाइ-१. कहलाए, २. कहलाकर, कहाकर । उ० २. कुकबि कहाइ अजसु को लेई । (मा० १।२४७।२) कहाइ-१. कहलाकर, २. कहलायी, कहलाए । उ० १. विरिद बाँधि बर वीरु कहाई । (मा० २।१४४।४) कहाउब-१. कहलाऊँगा, २. कहलाना । उ० २. दानि कहाउब अरु कृपनाई । (मा० २।३५।३) कहाए-कहलाए, कहे गए, प्रसिद्ध हुए । कहाओ-कहलाओ । कहाय-कहाकर, कहलाकर । उ० जीवौं जग जानकी जीवन को कहाय जन । (ह० ४२) कहायहु-कहलाया, कहलाए, कहे गए । उ० निज मुख तापस वृत कहायहु । (मा० ६।२१।३) कहाये-दे० 'कहाए' । कहायो-कहलाया, कहाया । उ० पेट भरिबे के काज महाराज को कहायो । (क० ७।१२।१) कहावत-कहलाऊँ, कहाउँ । कहावत (१)-कहलाते हैं । उ० सबै कहावत राम के, सबहि राम की आस । (दो० १।४१) कहावौं-कहलाता हूँ, २. प्रकट करता हूँ । कहावौं-कहलाऊँ । उ० कहाँ कहावौं का अब स्वामी । (मा० २। २६।१) कहावती-कहलाती, कहलाती हैं । उ० घरही सती कहवाती, जरती नाह-बियोग । (दो० २।५४) कहावहि-कहवाते हैं, कहलाते हैं, कहलवाते हैं । उ० बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहि । (मा० ७।२६।३) कहावा-१. कहलाया, कहला भेजा, २. कहलाता है । उ० २. सिव द्रोही मम भगत कहावा । (मा० ६।२।४) कहाहीं-१. कहाते हैं, कहलाते हैं, २. कहते हैं, वर्णन करते हैं । उ० २. श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं । (मा० ७।१२।७) कहैहौं-कहलाऊँगा, कहाऊँगा ।
 कहार-(सं० क+हार)-एक जाति जो पानी भरने या बर्तन धोने का काम करती है । डोली या सामान और बैहगी आदि ढोना भी इनका काम है । उ० बिषय कहार मार मदमाते, चलाहि न पाउँ बढोरा रे । (वि० १८३) कहारा-दे० 'कहार' । उ० भरि भरि काँवरि चले कहारा । (मा० १।३०।३)
 कहानी-१. कथा, किस्सा, बात, २. झूठी बात, गद्दी बात । उ० १. लखन रामसिय पंथ कहानी । (मा० २।२१।३)

कहावत (२)-(सं० कथन)-१. बोलचाल में बहुत प्रयुक्त होनेवाले अनुभव वाक्य, लोकोक्ति, मसल । २. कही हुई बात, उक्ति ।
 कहीं-(सं० कुहः)-१. किसी ठौर, किसी स्थान पर, अनिश्चित स्थान पर, २. शायद, कदाचित्, ३. अत्यंत, बहुत । उ० १. नर पीडित रोग न भोग कहीं । (मा० ७।१०।२।२)
 कहुँ (१)-१. के लिए, २. को । उ० १. राखु देन कहुँ सुभ दिन साधा । (मा० २।५४।४) उ० २. तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया । (मा० १।१६६।२)
 कहुँ (२)-कहीं । कहुँ कहुँ-१ कहीं-कहीं, किसी स्थान पर, २. कभी-कभी, किसी-किसी समय ।
 कहुँ-१. कहीं, किसी जगह, २. किसी जगह से, कहीं से । उ० १. साहब कहुँ न राम से । (वि० ३२)
 कहैया-कहनेवाला । उ० वृजो को कहैया औ सुनैया चष चारिखो । (क० १।१६)
 काँकर-(सं० ककर)-ककड़, रोड़ा । उ० कुस कंटक मग काँकर नाना । (मा० २।६२।३)
 काँकरी-छोटा ककड़, ककड़ी, छोटे रोड़े । उ० कुस कंटक काँकरी कुराई । (मा० २।३१।३)
 काँकाँ-(ध्व०) कौए की बोली, काँव काँव ।
 काँकिनिभाग-जिसके भाग्य में कौड़ी का मिलना ही लिखा हो । अभागा ।
 काँकिनी-(सं० काकणी)-१. गुंजा, घुँघची, २. कौड़ी, ३. एक तौल, माशे का चौथा भाग, ४. पण का चौथा भाग । उ० १.सो पर कर काँकिनी लागि सठ बैचि होत सठ चरो । (वि० १।४३)
 काँख-(सं० कख)-बगल, बाहुमूल के नीचे की ओर का गढ़वा । उ० काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सीव । (मा० ६।६५)
 काँखासोती-दे० 'काखासोती' ।
 काँच (१) (सं० काँच)-१. शीशा, बालू रेह आदि से मिलकर बनी एक पारदर्शक वस्तु, २. दुर्पण । उ० २. ज्यों गज काँच बिलोकि । (वि० ६०) काँचहि-काँच के, शीशे के । उ० कंचन काँचहि सम गवै । (वै० २७) काँचै-काँच को, शीशे को । उ० सम कंचन काँचै गिनत, सत्रु मित्र सम दोइ । (वै० ३१) काँचो-१. काँच भी, शीशा भी, २. कच्चा भी, दुबल भी । उ० १. किए बिचार सार कदली ज्यों मनि कनक संग लछु लसत बीच बिच काँचो । (वि० २७७)
 काँच (२)-(?) कच्चा, जो पका न हो । अपक्व ।
 काँच(३)-(?)-गुदेन्द्रिय का भीतरी भाग ।
 काँचन-(सं०)-१. स्वर्ण, सोना, २. कचनार, ३. चंपा, ४. नागकेसर । उ० १. तप्तकाँचन-वस्त्र शक्यविद्या-निपुन सिद्ध सुर-सेव्य पाथोजनामं । (वि० ५०)
 काँचा-१. काँच, कच्चा, कमज़ोर, २. शीशा, रत्न, मणि । उ० १. मंगल महुँ भय मन अति काँचा । (मा० २। ३७।१) २. महि बहुरंग रचित गच काँचा । (मा० ७। २७।३) काँचै-कच्चा, अपरिपक्व । उ० काँचै घट जिमि डारौं फोरी । (मा० १।२५।३)

काँजी-(सं० काँजिक)-एक प्रकार का खट्टा रस जो अँवार, बड़े या पाचन आदि के लिए कई प्रकार से बनाया जाता है। उ० कबहुँ कि काँजी सीकरनि क्षीर सिंधु बिनसाइ। (मा० २।२३१)

काँट-(सं० कंट)-कंटक, काँटा। उ० काँट कुरायँ लपेटन लोटन ठाँवहिँ ठाँवँ बभाऊ रे। (वि० १८६)

काँठा-(सं० कंठ)-१. गला, २. तोते आदि के गले की रंगीन रेखा, ३. किनारा, तट, ४. समीप, पास। काँटे-किनारे, तट पर। उ० भाइ बिभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आई परे सुनी सायर-काँटे। (क० ६।२८)

काँड़िगो-(सं० कंडन)-१. रौंदा, कुचला, २. ज्ञात मारा, पीटा। उ० १. भारी भारी रावरे के चाउर से काँड़िगो। (क० ६।२४)

काँतार-(सं०)-१. भयानक स्थान, २. घना और भयानक जंगल, ३. दुर्गम पथ, ४. छेद, दरार, ५. एक प्रकार की ईख, ६. बाँस।

काँति-(सं०)-१. दीप्ति, प्रकाश, २. शोभा, सौंदर्य, ३. चंद्रमा की एक कला। उ० २. तुलसी प्रभु सुभाउ सुरतस्र सो ज्यों दरपन मुख काँति। (वि० २३३)

काँदलो-दे० 'कंदौलो'।

काँदो-(सं० कदम)-कीच, कीचड़, पंक।

काँध-(सं० स्कंध)-कंधा, कान्धि। उ० कूँवरि लागि पितु काँध ठाहि भइ सोइइ। (पा० १३) काँधे-कंधे पर। उ० तन कसैं कर सरु धनु काँधे। (मा० २।२३६।३)

काँधी-१. कंधे पर लो, शिरोधार्य करो, स्वीकार करो, २. स्वीकार किया। उ० १. उठि सुत पितु अनुसासन काँधी। (मा० १।१८२।२) काँधे-स्वीकार किया। काँधो-काँधना-(सं० स्कंध)-१. काँध लगाना, भार उठाना, कंधे पर रखना, २. स्वीकार करना, ३. ठानना-ठाना है। उ० आनि पर बाम बिधिवाम तेहि राम सों सकत संग्राम दसकंध काँधो। (क० ६।४)

काँपहिं-(सं० कंपन)-काँपते हैं, काँप रहे हैं। उ० थर थर काँपहिं पुर नर नारी। (मा० १।२७८।३) काँपी-काँपने लगी, कंपित हुई। काँपना का सामान्यभूत। उ० तन पसेउ कदली जिमि काँपी। (मा० २।२०।१)

काँपु-काँपा, कंपित हुआ, काँपने लगा। उ० बोली फिरि लखि सखिहि काँपु तनु थरथर। (पा० ६६)

काँवर-(सं० स्कंध)-काँध-बाँस का एक छिला हुआ फट्टा जिसमें रस्सियाँ बँधी रहती हैं और जिस पर सामान रख कर कँहार लोग कंधे पर रखकर ले जाते हैं। बहूँगी। यात्री लोग इसी प्रकार की काँवर पर जल आदि ले जाते हैं।

काँवरि-दे० 'काँवर'। उ० कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। (मा० १।३००।४)

का (१)-(सं० कः)-क्या, कौन वस्तु। उ० बातुल मातुल की न सुनी सिख, का तुलसी कपि लंक न जारी? (क० ६।५)

का (२)-(सं० कृतः)-संबंध कारक का चिह्न। उ० बेद बिदित संमत सबही का। (मा० २।१७६।२)

काइ-(सं० काव)-शरीर, काया। उ० प्रभुहि न प्रसुता

परिहरै, कबहुँ बचन मन काइ। (दो० ५१७)

काई (१)-(सं० कावार) १. जल में जमनेवाली एक महीन घास, सेवार, २. मैल, मुर्चा। उ० १. काई कुमति केकई केरी। (मा० १।४१।१)

काई (२)-(सं० कः) किसी को, कोई को।

काउ (१)-दे० 'काँऊ (२)' उ० १. कहत राम-विधु-बदन रिसौहैं, सपनेहुँ लख्यो न काउ। (वि० १००)

काउ (२)-दे० 'काऊ (१)'।

काऊ (१)-(सं० कदा)-कभी, किसी समय। उ० सोउ देखा जो सुना न काऊ। (मा० १।२०२।१)

काऊ (२)-(सं० कः)-१. कोई, २. किसी को, किसी पर, ३. कैसा, किस प्रकार का, ४. कुछ। उ० २. निज अपराध रिसाहि न काऊ। (मा० २।२१८।२)

काक-(सं०)-१. कौआ, काग, २. जयंत। उ० १. काक कंक बालक कोलाहल करत हैं। (क० ६।४६) २. सट संकट-भाजन भए हठि कुजाति कपि काक। (दो० ४१५)

काकी (१)-(सं०) कौए की स्त्री, मादा काक।

काकपच्च-(सं०)-१. बालों के पड़े जो दोनो ओर कानों के ऊपर रहते हैं। २. कौवे के पर।

काकपच्छ-दे० 'काकपच्च'। उ० १. काकपच्छ सिर, सुभग सरोरुह लोचन। (जा० ५६)

काकभुशुंडि-(सं०)-एक ब्राह्मण जो लोमश के शाप से कौआ हो गये थे और राम के बड़े भक्त थे। गरुड़ से राम की कथा इन्होंने ही कही थी।

काकासिखा-(सं० काकशिखा)-दे० 'काकपच्च'। उ० १. काक-सिखा सिर, कर केलि-तून-धनु-सर। (गी० १।६४)

काकसुता-(सं०) कोकिल, कोयल। उ० काकसुता गृह ना करै यह अचरज बड़ बाय। (स० १६०) विशेष-ऐसा कहा जाता है कि कोयल अपना घर नहीं बनाती और न अपने बच्चों को पालती है। वह अपना बच्चा किसी कौए के घोंसले में रख आती है और कौए की स्त्री ही उसके बच्चे को पालती है। इसी कारण कोयल को काक-सुता आदि नामों से पुकारा जाता है।

काका-(ध्व०)-काँव-काँव, कौए की बोली। उ० ऊहू ऊहू कलकंठ काका रव कररत काग। (दो० ४३६)

काकिणी-(सं०)-१. गुंजा, घुँघची, २. माशे का चौथाई भाग, ३. कौड़ी, ४. पण का चतुर्थ भाग।

काकिन-दे० 'काकिणी'।

काकिनिभाग-दे० 'काँकिनिभाग'। उ० काँक सिरामनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को करदा है। (क० ७।१५५)

काकिनी-दे० 'काकिणी'।

काकी (२)-(सं० कः+कृतः)-किसकी।

काकी (३)-(?)-चाची, पिता के भाई की स्त्री।

काकु-(सं०)-छिपी हुई छुटीली धात, व्यंग्य, ताना, कठोर बचन। उ० कहियत काकु कृबरी हूँ को। (क० २७)

काकु-दे० 'काकु' उ० जागिउँ जायँ जननि कहि काकु। (मा० २।२६१।३)

काके-किसके, कौन के। उ० काके भए गए;सँग काके। (वि० २००)

काको-१. किसका, २. किसको। उ० १. प्रतीति मानि तुलसी बिचारि काको थरु है ? (क० ७११३६)

काखासोती-(सं० कञ्च + श्रोत्र)-दुपट्टा डालने का एक ढंग जिसमें दुपट्टे को बाएँ कंधे और पीठ पर से ले जाकर दाहिनी बगल के नीचे से निकालते हैं फिर बाएँ कंधे पर डाल लेते हैं। जनेऊ की तरह दुपट्टा डालने का एक ढंग। उ० पित्रर उपरना काखासोती। (मा० ११३२७५)

काग-दे० 'काक'। उ० १. तुरत भयउँ मैं काग तब, पुनि मुनि पद सिरु नाइ। (मा० ७१११२ क)

कागद-(अर० कागज)-कागज, लिखने के काम आनेवाला पत्र। यह कई चौड़ाई को मिलाकर बनाया जाता है। उ० सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे। (मा० १११६)

कागर (१)-(अर० कागज)-१. पत्र, पर, पंख, पक्ष, २. कागज, ३. सर्प की केंचुल। उ० १. कीर के कागर ज्यों वृषचीर बिभूवन, उषम अंगनि पाई। (क० २११)

कागर (२)-(सं० क + अग्र)-१. पानी के सामने की उठी भूमि, किनारा, २. मेंड, डाँड़, ३. ओठ, अघर, ४. कागा-दे० 'काक'। उ० १. अति खल जे बिषई बग कागा। (मा० ११३२२)

कागू-दे० 'काक'। उ० १. बैनतेय बलि जिमि चह कागू। (मा० ११२६७१)

काचो-१. कच्चा, अपक, कच्चे ही, २. बुद्धिहीन, ३. शीशा भी, काँच भी। उ० १. सहबासी काचो गिलहि, पुरजन पाक-प्रवीन। (दो० ४०४)

काछिअ-[काछना (सं० कञ्च)-कमर में लपेटे वस्त्र के लटकते भाग को जंघों पर से ले जाकर कसना या खोंसना। सँवारना] सँवारे, श्वांग भरे। उ० जस काछिअ तस चाहिअ नाचा। (मा० २१२७१५) काछे-दे० 'काछे'। उ० १. तापस बेव बिराजत काछे। (मा० २१२३११)

काछे (१)-१. सँवारे कर पहने हुए, बनाये हुए, २. सँवारे, बनाया। उ० १. चौतनी चोलना काछे, सखि ! सोहैं आगे पाछे। (गी० ११७२)

काछे (२)-(सं० कञ्च)-समीप, पास।

काज-(सं० कार्य)-१. कार, काम, कृत्य, कार्य, २. पेशा, रोजगार, धंधा, ३. प्रयोजन, उद्देश्य, मतलब, ४. विवाह, ५. मृतक के लिए किया जानेवाला प्रेतकर्म। उ० ५. दूसरथ ते दसपुन भगति, सहित तासु करि काज। (प्र० ३१३६) काजहि-काम के। उ० सिरधरि मुनिवर बचन सङ्ग निज निज काजहि लाग। (मा० २१६)

काजा-दे० 'काज'। उ० १. करत रामहित मंगल काजा। (मा० २१७१)

काजु दे० 'काज'। उ० १. जनमंगल भल काजु बिचारा। (मा० २१६४)

काजू-दे० 'काज'। उ० १. जौ बिधि कुसल निबाहै काजू। (मा० २११०२)

काटइ-(सं० कर्षण)-१. काटे, अलग करे, २. काट डालता है, काटता है। उ० २. काटइ निज कर सकल सरीरा। (मा० ६१२६१) काटत-१. काटता है, २. काटते समय, काटने के बाद तुरत। उ० २. काटत हीं पुनि भए त्रवीने। (मा० ६१२६१) काटा-काटना का भूत काल, काट

डाला। उ० पालव बैठि पेहु एहिं काटा। (मा० २१७७३) काटि-काटकर, नष्ट कर। उ० पेड़ काटि तैं पालव सींचा। (मा० २१६१५) काटिअ-१. काटकर, २. काटे, काट ले। उ० २. काटिअ तासु जीभ जो बसई। (मा० ११६४२) काटियत-१. काटता, २. काटते। उ० १. हँधिबे को सोइ सुरतरु काटियत है। (क० ७१६६) काटिये-नष्ट कीजिए, कर्त्तन कीजिए, 'काटना' का आज्ञा-सूचन आदरार्थ रूप। उ० औ काटिये न, नाथ ! विषहू को रख लाइकै। (क० ७१६१) काटु-१. काटो, २. काटना। उ० १. माह काटु धुनि बोलहि नाची। (मा० ६१२११) काटै-काटने से। उ० काटै सीस कि होइअ सूर। (मा० ६१२६१) काटे-१. काटा, काट डाला, २. नष्ट किया, ३. काटने पर, नष्ट करने पर। उ० १. छन महुँ प्रशु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच। (मा० ६१६८) काटिसि-काटा, काट लिया। उ० काटिसि दसन नासिका काना। (मा० ६१६६३) काटेहि-१. काटने, काटने पर, २. काटें, काट डालें। उ० १. काटेहि पड़ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच। (मा० ६१६८) काटै-१. काटते हैं, २. काटने। उ० २. श्रवन नासिका काटै लागे। (मा० ६१६४२) काटै-दे० 'काटइ'। उ० १. जौ सपने सिर काटै कोई। (मा० १११८१)

काठ-(सं० काष्ठ)-१. लकड़ी, पेड़ का कोई अंग, २. बंधन, लकड़ी की बेड़ी। उ० १. पाहन ते न काठ कठिनाई। (मा० २११००३)

काढ़इ-(सं० कर्षण) काढ़ना-१. निकालना, २. खींचना, ३. लकड़ी, पत्थर या कपड़े पर चित्रकारी करना, ४. ऋण लेना। १. निकालता है, खींचता है, २. निकालने, निकालने के लिए। काढ़त-१. निकाल रहा है, २. निकालते हुए। उ० १. प्रति उत्तर सबसिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस। (मा० ६१२३६) मु० काढ़त दंत-दाँत निकालता है, विनय करता है, धिधियाता है। उ० ताको सहे सठ संकट-कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है। (क० ७१६६) काढ़न-१. काढ़ने, निकालने, लेने। उ० ल्यों ल्यों सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहि काढ़न। (वि० २१) काढ़ि-१. निकालते हैं, २. लेते हैं, ३. बनाते हैं। उ० १. कथा सुधा मथि काढ़ि भगति मधुरता जाहि। (मा० ७१२० क) काढ़ा-१. ऋण लिया था, ऋण लिया, २. निकाला था, निकाला। उ० १. सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। (मा० ११२७६२) काढ़ि-१. निकालकर, २. लेकर, ३. बनाकर, चित्रकारी करके। उ० १. निजकर नयन काढ़ि चह दीखा। (मा० २१७७२) काढ़िय-१. निकाल डालिए, २. बनाइए, ३. लीजिए। उ० १. बिहंग-राज-बाहन तुरत काढ़िय मिटइ कलेस। (दो० २३६) काढ़ी-१. निकाली, २. ली, ३. बनायी। उ० ३. सुर-प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ी। (मा० ११२८८३) काढ़ा-काढ़ी का एकबचन। काढ़े-१. निकाले, निकालने पर, २. बनाए, चित्रित किये। उ० १. मीनु दीन जनु जल तैं काढ़े। (मा० २१७०२) काढ़ेसि-१. निकाली, २. ली, ३. बनाई। उ० १. काढ़ेसि परम कराल कूपाना। (मा० ३१२६११) काढ़ो-१. निकाला, २. निकालो, ३. लो;

४. ली, ५. बनाओ। उ० १. सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो। (क० ११२) काढ़यो-१. निकाला, २. लिया, ३. बनाया। उ० १. रोषि बान काढ़यो न दलैया दस सीस को। (क० १२२)

कातर-(सं०)-१. डरपोक, कादर, कायर, २. आर्त, कष्ट से भरा हुआ, दुःखित, ३. व्याकुल, अधीर। कातरि-'कातर' का स्त्रीलिंग। दे० 'कातर'। उ० ३. लखि सनेह कातरि महतारी। (मा० २१६११)

कातिबो-(सं० कर्त्तन)-कातना, रुई से सूत कातना। उ० तुलसी लोग रिभाहबो करपि कातिबो नान्ह। (दो० ४६२)

काते-(सं० कः + तच्)-किससे, किस कारण से। उ० स्वारथहि प्रिय स्वारथ सो काते, कौन बेद बखानई। (वि० १३५)

कादर-दे० 'कातर'। उ० १. कादर मन कहूँ एक अधारा। (मा० १५११२)

कान (१)-(सं० कर्ण)-श्रवणेंद्रिय, वह इंद्रिय जिससे सुना जाय। उ० कान मूदिकर रद गहि जीहा। (मा० २१४५४) मु० कान उठाएँ-आहट लेते, सुनने के लिए तैयार। उ० चकित बिलोकत कान उठाएँ। (मा० १११५६४) कान-दिए-कान लगाकर, ध्यान देकर। उ० सुनु कान दिए नित। (क० ७२६) कान नहिं करिअ-ध्यान न देना, न सुनना। उ० बालक बचनु करिअ नहिं काना। कानन (१)-'कान' का बहुवचन, कानों। कानन्हि-कानों में। उ० कानन्हि कनकफूल छबि देहीं। (मा० ११२१६४) काने (१)-कान में। उ० काने कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो। (रा० ११)

कान (२)-(सं० काण)-काना, जिसकी एक ही आँख ठीक हो। काने (२)-(सं० काण)-काने लोग, एक आँख-वाले। उ० काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। (मा० २११४)

काम (३)-(१)-१. लोकलज्जा, मर्यादा का ध्यान, २. शपथ।

कानन (२)-(सं०)-बन, जंगल। उ० कानन बिचित्र, बारी बिसाल। (वि० २३) काननचारी-बन में बिचरने-वाले, जंगल में घूमनेवाले। उ० धन्य बिहग मृग कानन-चारी। (मा० २११३६११) काननहिं-बन में, बन को। उ० सहित समाज काननहिं आयउ। (मा० २१३१६११)

काना (१)-(सं० कर्ण)-कान, श्रवणेंद्रिय। उ० पर अघ सुनहिं सहस दस काना। (मा० ११४५५)

काना (२)-(सं० काण)-कान, एक आँख का।

कानि (१)-(१)-१. लोक लज्जा, मर्यादा का ध्यान, २. संकोच, दबाव, लेहाज। उ० २. सेवक सेवकाई जानि जानकीस मानै कानि। (ह० १२)

कानि (२)-(सं० काण)-एक आँखवाली, कानी।

कानि (३)-(सं० खानि)-उत्पत्ति स्थान, जहाँ ढेर हो, समूह।

कानि (४)-(१)-बहाना।

कानी-दे० कानि (१), कानि (२), कानि (३), कानि (४)।

कान्ह-(सं० कृष्ण)-कृष्ण। उ० मधुकर ! कान्ह कहा ते न होहीं। (कृ० ४१)

काम (१)-(सं०)-१. इच्छा, मनोरथ, २. कामदेव, प्रेम तथा वासना आदि के देवता जिन्हें शंकर ने भस्म कर दिया था। ३. भोग-विलास, वासना, ४. सुंदर, ५. वीर्य, ६. चतुर्वर्ग या चार पदार्थों में से एक। उ० १. करि कृपा हरिय अमरफंदकाम। (वि० १४) २. तैपि काम बस भए बियोगी। (मा० ११८५४) विशेष-काम को शंकर ने भस्म किया था अतः शंकर को कामारि, कामरिपु आदि नामों से भी पुकारा जाता है। कामः-दे० 'काम'। उ० ३. तर्जन क्रोध लोभ मद कामः। (मा० ३१११७) कामअरि-काम के अरि, शिव। उ० नील तामरस स्याम काम अरि। (मा० ७१५११) कामप्रद-कामनाओं को प्रदान करनेवाला, इच्छा पूरी करनेवाला। उ० सकल कामप्रद तीरथराज। (मा० २१२०४३) कामभूरुह-(सं० काम + भू + वृत्)-कामनाओं को देनेवाला वृत्, कल्पवृत्। उ० राम नाम-महिमा करै काम-भूरुह आको। (वि० १५२) काममदमोचन-कामदेव के मद का मोचन करनेवाले शिव, महादेव। उ० काममदमोचन, तामरस-लोचन वामदेव भजे भाव गप्यं। (वि० १२) कामरिपु-काम के शत्रु, महादेव। उ० देहु कामरिपु रामचरन-रति तुलसीदास कहँ कृपानिधान। (वि० ३) कामरूप-(सं०)-१. इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला, मायावी, २. कामदेव का स्वरूप। उ० १. कामरूप केहि कारन आया। (मा० ११४३३) कामसुरमि-दे० 'कामधेनु'। कामहि-कामदेव को। उ० कामहि बोलि कीन्ह सनमाना। (मा० ११२५३) कामारि-(सं० काम + अरि) महादेव, शिव। उ० सोइ राम कामारि-प्रिय अवधपति सर्वदा दास तुलसी-त्रासनिधि वहिअं। (वि० ५०) कामो-काम भी। उ० सकुचत समुक्ति नाम-महिमा मद लोभ मोह कोह कामो। (वि० २२८)

काम (२)-(सं० कर्म)-कार्य, कर्म, कार, धंधा। मु० काम आयो-१. काम में आया, २. सहारा दिया, ३. लड़ाई में मारा गया। उ० २. आयो सोई काम, पै करेजो कसकहु है। (क० ६११६) काम-काज-(सं० कर्म + कार्य)-कार-बार, काम-धंधा। उ० पाल्यो नाथ सब सो सो भयो काम-काज को। (क० ७१३)

कामतद-(सं०)-दे० 'कल्पवृत्'। उ० सुरसरि निकट सोहावनी अवनि सौहै, रामरमनी को बट कलि कामतद है। (क० ७१३६)

कामता-(सं० कामद)-१. चित्रकूट के पास का एक गाँव, २. चित्रकूट पर्वत का एक भाग जिसे कामतानाथ पर्वत भी कहते हैं। उ० २. कामदमन कामता-कल्पतरु सो जुग-जुग जागत जगतीतलु। (वि० २४) विशेष-कामतानाथ पर्वत सभी मनोरथों को पूरा करनेवाला समझा जाता है।

कामद-(सं०)-कामनाओं को पूरा करनेवाला। मनचाही वस्तु देनेवाला। उ० कामद मे गिरि रामप्रसादा। (मा० २१२७६११) कामदगाई-(सं० कामद + गो)-दे० 'कामधेनु'। उ० रामकथा कलि कामदगाई। (मा० ११३११४) कामदगिरि-(सं०)-चित्रकूट पर्वत। इसे सभी कामनाओं

को पूरा करनेवाला समझा जाता है। कामदमणि-(सं०)-
१. चिंतामणि, इच्छानुकूल फल देनेवाला रत्न। २. मना-
नुसार फल देनेवालों के मणि या शिरोभूषण, वाञ्छित
फल देनेवालों में श्रेष्ठ। कामदमन-दे० 'कामदमणि'।
उ० दे० 'कामता'। कामदमनि-दे० 'कामदमणि'।
कामदेव-कामाग्नि, काम की उष्णता।
कामदुहा-(सं० काम + दोहन)-दे० 'कामधेनु'। उ० धेनु
अलंकृत कामदुहा सी। (मा० १।३२६।२) कामदुहागो-
दे० 'कामधेनु'।
कामदेव-१. अन्नग, मदन। स्त्री-पुरुष संयोग की प्रेरणा
करनेवाला एक पौराणिक देवता। २. वीर्य, ३. संभोग
या स्त्री-प्रसंग की इच्छा। विशेष-कामदेव एक पौराणिक
देवता हैं जिनकी स्त्री रति, साथी वसंत, वाहन कोकिल,
अस्त्र फूलों का धनुष-वाण तथा ध्वजा मछली से अलंकृत
है। सती के परलोकवास के बाद शिव ने विवाह न
करने की सोच समाधि लगाई और उधर तारकासुर को
बर मिला कि शिव के पुत्र से ही केवल उसकी मृत्यु होगी।
अंत में देवताओं ने कामदेव से शिव की समाधि भंग करने
के लिए प्रार्थना की। कामदेव ने प्रयास किया और अंत
में शिव के तीसरे नेत्र के खुलने से वह भस्म हो गया। इस
पर उनकी स्त्री रति रोने लगीं, जिसे देख शिव ने द्रवित होकर
कहा कि कामदेव बिना शरीर के भी जीवित रहेंगे (इसी
कारण उनका अन्नग आदि नाम है) और द्वापर में कृष्ण
के पुत्र प्रद्युम्न के घर उनका जन्म होगा। इसी कारण प्रद्युम्न-
पुत्र अनिरुद्ध कामदेव के अवतार कहे जाते हैं।
कामधुक-(सं० काम + दोहन + क)-इच्छानुसार फल देने-
वाला। कामधुक-गो-इच्छानुसार कमी भी दूही जाने-
वाली गाय, कामधेनु। कामधुकधेनु-दे० 'कामधेनु'।
उ० भक्ति प्रिय भक्तजन-कामधुकधेनु हरि हरन-विकट-
बिपति भारी। (वि० ४६)
कामधेनु-(सं०) १. एक गाय जो पुराणानुसार समुद्र-मंथन
के फलस्वरूप निकले १४ रत्न में से एक है। इसकी कई
विशेषताएँ कही जाती हैं जैसे यह अत्यंत सुंदरी है,
इसे जब इच्छा हो दूहा जा सकता है तथा यह जो
कुछ भी माँगा जाय देती है। २. वशिष्ठ की एक गाय,
जिसके कारण उनसे विश्वामित्र से युद्ध हुआ था। ३.
दानार्थ सोने की बनी हुई छोटी सी गाय। उ० १.
कल्याण-अखिलप्रद कामधेनु। (वि० १३)
कामना-(सं०)-इच्छा, मनोरथ। उ० कौं करि कोटिक
कामना पूजै बहुदेव ? (वि० १०७)
कामरि-(सं० कंबल)-कमरी, एक ऊनी मोटा वस्त्र जो
ओढ़ने के काम आता है। उ० तुलसी त्यों त्यों होइगी
गहई ज्यों ज्यों कामरि भीजै। (कृ० ४६)
कामरां-दे० 'कामरि'। उ० काम जु आवै कामरी, का लै
करे कुमाच। (दो० २७२)
कामा-दे० 'काम'। उ० ३. जिमि हरिजन हियँ उपज न
कामा। (मा० ४।१५।२)
कामारी-दे० 'कामारि'।
कामिनि-दे० 'कामिनी'।
कामिनी-(सं०)-१. काम की इच्छा रखनेवाली स्त्री, २.

स्त्री, सुंदरी। उ० २. यह गंधर्व मुनि किन्नरोग दनुज
मनुज मज्जहि सुकृतपुंज जुत कामिनी। (वि० १८)
कामिन्ह-कामियों, कामी का बहुवचन। उ० कामिन्ह कै
दीनता देखाई। (मा० ३।३६।१) कामिहि-१. कामी को,
२. कामी से। उ० २. क्रोधिहि सम कामिहि हारकथा।
(मा० १।५८।२) कामी-(सं० कामिन्)-१. कामना रखने-
वाला, इच्छुक, २. विषयी, कामुक, ३. चकवा, ४. कबूतर
५. सारस, ६. चंद्रमा, ७. विष्णु। उ० २. जे कामी
लोलुप जग माहीं। (मा० १।१२।४)
कामु-दे० काम (१), काम (२),। उ० काम (१) २.
अब भा भूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस। (मा०
१।८६)
कामुक-(सं०)-कामी, विषयी।
काय-(सं०)-१. शरीर, देह, २. मूर्ति, ३. समुदाय, संघ,
४. स्वभाव, लक्षण, ५. मूलधन, असल, ६. लक्ष्य।
उ० १. सठ सहि साँसति पति लहर, सुजन कलेस न
काय। (दो० ३६२)
कायर-(सं० कातर)-डरपोक, कादर, भीरु, असाहसी। उ०
ते कायर कलिकाल बिगोए। (मा० १।४३।४)
काया-दे० 'काय'। उ० जौ मोरें मन बच अरु काया। (मा०
६।२६।३)
कायिक-शरीर संबंधी, शरीर से किया हुआ, शरीर का।
कारक-(सं०)-१. कर्ता, करनेवाला, २. व्याकरण के कर्ता,
कर्म तथा करण आदि कारक। उ० १. नृप हितकारक
सचिव सयाना। (मा० १।१२।१)
कारखी-(सं० कलुष)-१. कालिमा, स्याही, २. कलंक,
धब्बा। सु० मुँह कारखी लागै-बदनाम हो, कलंक लगे।
उ० जानि जिय जोवो जो न लागै मुँह कारखी। (क०
१।१२)
कारज-(सं० कार्य)-१. कार्य, काम, जो कारण से उत्पन्न
हो, २. फल, परिणाम, ३. पंच भूत (पृथ्वी, जल, तेज,
वायु, तथा आकाश)। उ० १. गृहकारज नाना जंजाला।
(मा० १।३८।४)
कारजु-दे० 'कारज'। उ० १. कारन तें कारजु कठिन, होइ
दोसु नहि मोर। (मा० २।१७।६)
कारण-(सं०)-१. जिसके बिना कार्य की सिद्धि न हो,
हेतु, सबब, वजह। २. हेतु, अर्थ, लिए, वास्ते, ३.
आदि, मूल, बीज, ४. साधन, उपाय, ५. शिव, ६. विष्णु।
कारणपरं-कारणों से परे या कारणों के भी कारण।
जिनके लिए स्वयं किसी कारण की अपेक्षा न हो। उ०
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्। (मा० १।१।
श्लोक० ६)
कारन-(सं० कारण)-दे० 'कारण'। उ० १. दे० 'कारजु'।
२. निज गिरा पावनि करन कारन रामजसु तुलसी कयो।
(मा० १।३६।१ छं० १)
कारनी-१. प्रेरक, करानेवाला, २. मेदक, मेद कराने
वाला।
कारनु-दे० 'कारन'। उ० १. कहु कारनु निज हरष कर पूछिहि
सब मृदु बैन। (मा० १।२२।८)
कारमन-दे० 'कामिणी'।

कारमनि-दे० 'कार्मण्य' । उ० जयति पर-जंत्रमंत्राभिचार-असन, कारमनि-कूट-कृत्यादि-हंता । (वि० २६)
 कारमुक-(सं० कार्मुक)-१. धनुष, चाप, २. इंद्रधनुष, ३. योग का एक आसन । उ० १. तव प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा । (मा० ६।६३।३)
 कारा-(सं०)-१. बंधन, कैद, २. पीड़ा, क्लेश ।
 कारागृह-(सं०)-कैदखाना, जेल, बंदीगृह । उ० निःकाज राज बिहाय नृपद्वय स्वप्न-कारागृह परयो । (वि० १३६)
 कारिख-(सं० कलुष)-कजली, कालिख, कालिमा, दोष, कलंक । उ० कहौगो मुख की समरसरि कालि कारिख धोइ । (गी० २।२)
 कारिणी-(सं० कारिणी)-करनेवाली । कारिणी-करनेवाली को । उ० उन्नवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहरिणीम् । (मा० १।१।३।०२)
 कारिनि-दे० 'कारिण्य' । उ० भव भव विभव पराभव कारिनि । (मा० १।२३।२।१३)
 कारी (१)-(सं० कारिन्)-करनेवाला । उ० मधुर मनोहर मंगलकारी । (मा० १।३।६।२)
 कारी (२)-(सं० काल)-काली, श्याम, काले रंगवाली ।
 कारी (३)-(फा०)-१. गहरा, २. घातक, मर्मभेदी ।
 कारुणिक-(सं०)-करुणा करनेवाले, कृपाळु, दयाळु ।
 कारुणीक-दे० 'कारुणिक' ।
 कारुनिक-दे० 'कारुणिक' ।
 कारुनीक-दे० 'कारुणिक' । उ० कारुनीक दिनकर कुल केतू । (मा० ६।३।७।१)
 कारुण्य-(सं०)-करुणा का भाव, दया ।
 कारुण्य-दे० 'कारुण्य' । उ० नीलकण्ठ कारुण्य सिंधु हर दीन बंधु दिनदानि हैं । (गी० १।७।८)
 कारे-(सं० काल)-काले, काले रंग वाले । उ० महावीर निसिचर सब कारे । (मा० ६।४।६।४)
 कार्तिकेय-(सं०)-महादेव के ज्येष्ठ पुत्र । चंद्रमा की स्त्री कृत्तिका के दूध से पाले जाने के कारण ये कार्तिकेय कह-लाए । इन्होंने तारकासुर को मारा था । स्कंद, षडानन, महासेन, कुमार, गुह, गंगा-पुत्र आदि इनके बहुत से नाम हैं ।
 कार्मण्य-(सं०)-जंत्र-मंत्र द्वारा मार डालना, मंत्र-संत्रआदि के प्रयोग । मूल कर्म जिनमें मंत्र और ओषधि आदि से मारण, मोहन, उच्चाटन आदि किया जाता है ।
 कार्मन-दे० 'कार्मण्य' ।
 कार्मुक-(सं०)-१. धनुष, २. इंद्रधनुष, ३. बाँस, वेखु, ४. काम में वृत्त ।
 कार्य-(सं०)-१. काम, काज, २. प्रयोजन, हेतु, ३. आरो-ग्यता, ४. परिणाम, फल ।
 काल-दे० 'काल' । उ० २. करालं महाकाल कालं कृपालं । (मा० ७।१०।८।३।०२) काल (१)-(सं०)-१. वक्त, समय, अवसर, २. अंतिम काल, मृत्यु, ३. यमराज, ४. काले रंग का, काला, ५. अकाल, दुर्भिक्ष, ६. शिव का एक नाम । उ० १. काल सुभाउ करम बरिआई । (मा० १।७।१) १. तथा २. काल न देखत कालबस, बीस-

विलोचन-अंधु । (प्र० २।३।६) कालउ-१. काल भी, मृत्यु या यमराज भी, २. काल को भी । उ० १. कालउ तुअ पद नाइहि सीसा । (मा० १।१६।२।१) कालऊ-दे० 'कालउ' । उ० २. कालऊ करालता बहाईजीतो बावनो । (क० २।६) कालकाल-कलिकाल, कलियुग । उ० काल-कलि-पाप-संताप-संकुल-सदा-प्रनत-तुलसीदास-तात-माता । (वि० २।८) काल-जोग (सं० काल + योग)-संयोग से, समय के फेर से । उ० सु-हित सुखद गुन-सुत सदा काल-जोग दुख-होय । (स० ७०७) कालहि-१. समय को, २. काल को, मृत्यु को, यमराज को । मु० कालहि पाई-कुछ समय बीतने पर, कुछ दिन बाद । उ० १. भए निसाचर कालहि पाई । (मा० १।१३।१।४) कालहुँ-दे० 'कालहु' । कालहु-१. काल भी (क. समय भी ख. मृत्यु भी), २. 'काल' का भी (क. समय का भी, ख. मृत्यु का भी) । उ० २. ख. भुवनेस्वर कालहु कर काला । (मा० २।३।१।१) कालहु-दे० 'कालहु' । उ० २. ख. कबहुँ कह्यो न 'कालहु को काल कालिह है ।' (क० ७।१२०) कालौ-१. काल भी, समय भी, २. मृत्यु भी ।
 काल (२)-(सं० कल्प)-आनेवाला या बीता हुआ दिन, कल ।
 कालकार्मुक-(सं०)-खर-दूषण का एक सेनापति जिसे राम ने मारा था ।
 कालकूट-(सं०)-एक प्रकार का अत्यंत भयंकर विष । यह एक पर्वतीय पौदे का गोंद होता है । हलाहल । उ० कालकूट मुख पयमुख नाहीं । (मा० १।२७।७।१)
 कालकेतु-(सं०)-एक राक्षस का नाम । उ० कालकेतु निसि-चर तहँ आवा । (मा० १।१७।०।२)
 कालछेप-(सं० कालछेप)-समय बिताना, दिन काटना । उ० कालछेप केहि मिलि करहि, तुलसी खग भृग मीन । (दो० ४०४)
 कालनाथ-(सं०)-१. महादेव, शिव, २. काल भैरव, काशी में स्थित भैरव विशेष । उ० २. कालनाथ कोतवाल, दंड-कारि दंडपानि, सभासद गनप से अमित अनूप हैं । (क० ७।१७।१)
 कालनिसा-(सं० कालनिशा)-१. दीवाली की रात, २. भयावनी रात, काल रात्रि । उ० २. कालनिसा सम निसि ससि भानू । (मा० २।१२।१)
 कालनेमि-(सं०)-१. एक राक्षस जो रावण का मामा था । यह पूर्व जन्म का इंद्र-सभा में गानेवाला एक गंधर्व था । एक बार गाते समय दुर्वासा ऋषि की वाह-वाही न पाने पर इसने दुर्वासा को मूर्ख समझकर हँस दिया । इस पर क्रोधित होकर दुर्वासा ने इसे राक्षस होने का शाप दे दिया । गंधर्व बहुत दुखी होकर प्रार्थना करने लगा जिससे प्रभावित होकर दुर्वासा ने त्रेता में हनुमान द्वारा मारे जाने पर मुक्त होने का उसे वर दिया । लक्ष्मण की शक्ति लगने के बाद जब हनुमान संजीवनी लेने जा रहे थे तो इसने कपट वेष में उन्हें छलना चाहा था, पर हनुमान इस छल को जान गये और इसे मारकर अपना रास्ता लिया । २. एक दानव जिसने देवों को पराजित करके स्वर्ग पर अधिकार कर लिया था और अपने शरीर को चार

भागों में बाँटकर सब काम करता था। अंत में यह विष्णु के हाथ से मारा गया और दूसरे जन्म में कंस हुआ।
 उ० १. कालनेमि जिमि रावन राहु। (मा० १।७।३)
 कालराति-(सं० कालरात्रि)-दे० 'कालनिसा'।
 काला-दे० 'काल'।
 कालाग्नि-(सं०)-प्रलय की आग, प्रलयकाल की आग।
 उ० यालुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर। (वि० २७)
 कालि-(सं० कल्प)-१. बीता हुआ दिन, कल, २. आने-वाला दिन, कल, ३. शीघ्र ही। उ० १. सबको भावतो हूँ है मैं जो कछो कालि री। (क० १।१२) ३. खरवृषन मारीच ज्यों, नीच जाहिगे कालि। (दो० १४२) कालिहि-१. कल ही, कल के दिन ही, २. जल्दी ही। कालिहु-कल भी। उ० ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागन होहिगे नेवते दिये। (गी० ५)
 कालिका-(सं०)-चंडी, काली, एक देवी विशेष। उ० राम कथा कालिका कराला। (मा० १।४७।३) विशेष-शुंभ और निशुंभ के अत्याचारों से पीड़ित इंद्रादिक देवों की प्रार्थना पर एक मातंगी प्रकट हुई जिसके शरीर से काली का आविर्भाव हुआ। पहले इनका वर्ण काला था अतः काली या कालिका कही गई तथा उग्र भयों से रक्षा करने के कारण उग्रतारा। सिर पर एक जटा होने के कारण एकजटा भी इनका नाम है। काली के साथ महाकाली, रुद्राणी, उमा आदि आठ योगिनियाँ भी हैं।
 कालिमा-(सं० कालिमन्)-१. कालापन, २. कालिख, ३. अप्पेरा, ४. कलंक, दोष, लाँछन। उ० ४. तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई। (गी० ६।६)
 काली (१)-(सं० कल्प)-दे० 'कालि'। उ० १. पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। (मा० १।२३।३)
 काली (२)-(सं०)-१. दे० 'कालिका', २. पार्वती, ३. दस महाविद्याओं में से प्रथम, ४. अग्नि की सात जिह्वाओं में प्रथम।
 काली (३)-(सं० काल)-१. काले रंगवाली, २. मेघों की घटा।
 कालीन (१)-(अर० कालीन)-ऊन या सूत के मोटे तागों का बुना हुआ मोटा और भारी बिछावन। गलीचा।
 कालीन (२)-(सं०)-१. काल संबंधी, समय का, दिन का। २. पुराना, अधिक दिन का, दिनी।
 कालीना-दे० २. 'कालीन'। उ० १. देखत बालक बहु कालीना। (मा० ७।३२।२)
 कालीय-(सं० कालिय)-एक सर्प, जिसे कृष्ण ने वश में किया था। कालिया नाग। उ० कृष्ण करुनाभवन, दवन-कालीय-खल। (वि० ४६)
 कालु-दे० 'काल'।
 कालु-दे० 'काल'।
 कालिद-(सं० कल्प)-दे० 'कालि'। उ० २. कथहुँ कछो न कालहु को काल कालिह है। (क० ७।१२०)
 काव्य-१. वह रचना जिसे सुन या पढ़कर चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो। कविता। २. कविता की कोई पुस्तक, ३. दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य। उ० १. जयति निगमागम-व्याकरण करनलिपि काव्य-कौतुक-कला-कोटि-सिंधो। (वि० २८)

काशी-(सं०)-वरुणा और अस्ती के बीच गंगा पर बसी हुई एक नगरी। बाराणसी, बनारस। इसे शिव का प्रधान स्थान तथा उनके त्रिशूल पर स्थित माना जाता है और ऐसा कहा जाता है कि काशी में मरनेवाले की अनायास मुक्ति हो जाती है। उ० काशीशं कलिकलमषौघशमनं। (मा० ६।१।२) काशीपति-काशी के नाथ, शंकर, शिव। काशीशं-काशी के ईश अर्थात् शंकर को, महादेव को। उ० दे० 'काशी'। काशीश-(सं०)-शिव, महादेव, काशी के ईश।
 काष्ठ-(सं०)-काठ, लकड़ी। उ० कामिनि काष्ठ सिला पहचानत। (बै० २८)
 कास-(सं० काश)-एक लंबी घास जो वर्षा ऋतु के अंत में फूलती है। इसके फूल सफेद होते हैं। उ० फूले कास सकल महि छाई। (मा० ४।१६।१) कासन-कास का, कासों का। उ० का कासन आसन किए, सास न लहे उपास। (स० २३।१)
 कासी-दे० 'काशी'। उ० जाचिए गिरिजापति कासी। (वि० ६)
 कासीस-दे० 'काशीश'। उ० गिरिजा-मन-मानस-मराल, कासीस, मसान-निवासी। (वि० ६)
 कासु-(सं० कस्य)-किसको, किसका। उ० तुलसी अपनो आचरन भलो न लागत कासु। (दो० ३५५)
 कासों-(सं० कः + सह)-किससे, कौन से। उ० बलि जाउँ, और कासों कहौं? (वि० २२२)
 कासों-दे० 'कासों'।
 काह-(सं० कः)-१. क्या, २. किसको। उ० १. भगतहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ। (वि० २।१७) २. ब्रह्मत कहहु काह हनुमाना। (मा० ७।३६।२)
 काहली-(अर० काहिल)-सुस्त, आलसी। उ० मोसे दीन दूबेर कुपत कूर काहली। (क० ७।२३)
 काहा-(सं० कः)-क्या, काह। उ० जाइ उतर अच देहउँ काहा। (मा० १।२४।१)
 काहि-(सं० कः)-१. किसको, किसे, २. किस, ३. किससे, ४. किसी से, ५. कौन। उ० २. व्यर्थ काहि पर कीजिअ रोसु। (मा० २।१७।१)
 काहीं (१)-(सं० कचं)-को, के लिए। उ० सो माया न दुखद मोहि काहीं। (मा० ७।७८।१)
 काहीं (२)-(सं० कुहः)-कहाँ।
 काहीं (३)-दे० 'काहि'। उ० २. राज तजा सो वृषण काहीं। (मा० १।११।३)
 काही-दे० 'काहि'। उ० १. अस प्रभु छादि भजिअ कहु काही। (मा० १।२०।३)
 काहुँ-(सं० कः)-कोई भी, किसी ने भी। उ० सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। (मा० १।१३।४)
 काहु-१. कोई, कोई भी, किसी, किसी भी, २. किसी को, ३. किसी ने। उ० १. हरिपद-विमुख लखो न काहु सुख सठ यह समुक्ति सबेरो। (वि० ८७) काहुक-किसी का। उ० अपने चखत न आजु लागि अनभल काहुक कीन्ह। (मा० २।२०) काहुहि-किसी को, किसी को भी। काहुहि-किसी को। उ० काहुहि बादि न उहैअ दोसु। (मा० २।६३।१)

काहूँ-दे 'काहु'। काहूँ-दे 'काहु'। उ० १. लोकहूँ वेद विदित सब काहु। (मा० १७१४)
 काहे-(सं० कथं)-क्यों, किस लिए। उ० कृपासिंधु ! जन दीन दुवारे दादिन पावत काहे ? (वि० १४५)
 किं-(सं० किम्)-१ क्या, २. कौन सा।
 किंकर-(सं०) १. दास, सेवक, २. राक्षसों की एक जाति जिसे हनुमान ने प्रमदा बन को उजाड़ते समय मारा था। उ० १. जानि कृपाकर किंकर मोहू। (मा० ११८२।)
 किंकारे-दे० किंकारी। उ० अब मोहि आपनि किंकारि जानी। (मा० ११२०।२) किंकारी-(सं०)-दासी। उ० नाथ उमा मम प्राण सम गृह किंकारी करेहु। (मा० ११९०१)
 किंकिणी-(सं०)-१. छोटी घंटी, २. बुँधुरुदार करधनी, करधनी, कमरबंद।
 किंकिन-दे० 'किंकिणी'।
 किंकिनि-दे० 'किंकिणी'। उ० कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। (मा० ११२३०।१)
 किंकिनी-दे० 'किंकिणी'। उ० सुभग श्रीवत्स केयूर कंकन हार किंकिनी-रतनि कटितट रसालं। (वि० ५१)
 किंचित-(सं० किंचित्)-थोड़ा, कुछ, अल्प।
 किंजल्क-(सं०)-१. कमल की रज, पद्मकेशर, कमल के फूल का पराग, २. कमल के केशर की भाँति पीत वर्ण का, पीला। उ० २. किंजल्क बसन, किसोर मूरति, भूरि गुन करुनाकरं। (कृ० २३)
 किंनर-दे० 'किन्नर'। उ० अमर नाग किंनर दिसिपाला। (म० २।१३४।१)
 किंवा-(सं० किंवा)-या, वा, अथवा, या तो। उ० नृप अभिमान मोह बस किंवा। (मा० ६।२०।३)
 किंशुक-(सं०)-पलास, ढाक, टेसू। इसके पेड़ बड़े होते हैं और इसमें फाल्गुन में लाल फूल लगते हैं।
 किंसुक-दे० 'किंशुक'। उ० कुसुमित किंसुक के तरु जैसे। (मा० ६।१४।१)
 कि (१)-(सं० किम्)-१. किस प्रकार, कैसे, २. क्या। उ० जगदंबा जहँ अचतरी सो पुरु बरनि कि जाय। (मा० १।६४)
 २. भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है ? (क० २।४)
 कि (२)-(सं० किंवा) अथवा, या। उ० कष्टसाध्य पुनि होहि कि नार्हीं। (मा० १।१६७।१)
 कि (३)-(फा०)-एक संयोजक जो कहना, देखना, सुनना, वर्णन करना आदि बहुत क्रियाओं के बाद उनके विषय वर्णन के पहिले आता है।
 किञ्चारी-(सं० केदार)-क्यारियाँ, खेत आदि में पानी देने के लिए पतली मेढ़ों द्वारा बनाये गए छोटे-छोटे हिस्से। उ० महाब्रुष्टि चलि फूटि किञ्चारी। (मा० ४।१२।४)
 किञ्चु-(किंचित्)-१. कुछ, थोड़ा, जरा, २. कुछ और, दूसरा, अन्य, कोई दूसरा। उ० १. जो किञ्चु कहब थोर सखि सोई। (मा० २।२२३।१) २. लाभु कि किञ्चु हरिभगति समाना।
 कित-(सं० कुत्र)-१. कहाँ, २. किधर, किस ओर। उ० १. कुलिस कठोर कहाँ संकर-धनु, मृदु मूरति कित ए, री। (गी० १।७६) कितहूँ-किधर भी, किसी ओर भी। उ० हौं बलि जाउँ जाहु कितहूँ जनि मातु सिखावति स्यामहि। (कृ० ५)

कितक-(सं० कियत्)-कितना, किस कदर, किस परिमाण या मात्रा का।
 कितना-(सं० कियत्)-१. किस परिमाण, मात्रा या संख्या का, २. अधिक, बहुत ज्यादा।
 कितिक-दे० 'कितक'। उ० कोटि-कला-कुसल कृपालु नत-पाल, बलि, बातहू कितिक तिन तुलसी तनक की। (क० ७।२०)
 कितौ-(सं० कियत्) कितना। उ० राजकुँवर-मूरति रचिबे को रुचि सुबिरचि खम कियो है कितौ, री। (गी० १।७५)
 किधौ-(१)-अथवा, या, या तो, न जाने। उ० जम कर धार किधौ बरिआता। (मा० १।६५।४)
 किन (१)-(सं० कस्य) किस का बहुवचन। कौन लोग। किसने। उ० सीस उघारन किन कहेउ, बरजि रहे मिय लोग। (दो० २।५४)
 किन (२)-(सं० किण)-किसी वस्तु के चुभने या लगने का चिह्न। उ० ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे। (मा० ७।१३। कृ० ४)
 किन (३)-(सं० किम् + न)-क्यों न, क्यों नहीं। उ० कहहू करहु किन कोटि उपाया। (मा० २।३३।३)
 किन्नर (१)-(सं०)-एक प्रकार के देवता जिनका मुँह घोड़े की तरह माना गया है और जो संगीत शास्त्र में अत्यंत कुशल कहे गए हैं। इनके पूर्वज पुलस्त्य ऋषि थे। उ० यक्ष गंधर्व मुनि किन्नरोरग मनुज दनुज मज्जहि सुकृत पुंज जुतकामिनी। (वि० १८)
 किन्नर (२)-(?)-विवाद, दलील, तकरार।
 किन्नरी-(सं०)-१ किन्नर जाति की स्त्री, २. किंगरी, सारंगी, वीणा। उ० २. नाउ. किन्नरी, तीर, असि लोह बिलोकहु लोह। (दो० ३।५८)
 किमपि-(सं० किम् + अपि)-कुछ भी, जरा भी। उ० हरि तजि किमपि प्रयोजन नार्हीं। (मा० १।१६२।१)
 किमि-(सं० किम्)-१. कैसे, किस प्रकार, २. क्यों। उ० १. बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। (मा० २।१४३।४)
 किम्-(सं०)-१. क्या, २. कौन सा, ३. कुछ।
 कियत्-(सं० कियत्)-कितना। उ० जेहि सुख सुख मानि खेत सुख सो समुक्त कियत्। (वि० १३२)
 कियारी-दे० 'किञ्चारी'।
 किरण-(सं०)-किरन, सूर्य या चन्द्रमा आदि से आता हुआ प्रकाश, रश्मि, मरीचि। किरणोः-(सं०)-किरणों से। उ० ते संसारपतंगधोरकिरणैर्दंडंति नो मानवाः। (मा० ७।१३।१ श्लो० २)
 किरणमाली-(सं०)-सूर्य, रवि। उ० अनय अंभोधि-कुंभज, निशाचर-निकर-तिमिर-घनघोर-खर-किरणमाली। (वि० ४४)
 किरन-दे० 'किरण'। उ० रामकथा ससि किरन समाना। (मा० १।४७।४) किरनकेत्-(सं० किरण + केत्)-सूर्य, रवि। उ० जयति जय सन्नु-कीर-केसरी सन्नुहन सन्नु-तम-तुहिनहर-किरनकेत्। (वि० ४०) किरनमालिका-१. सूर्य, रवि, किरणों की माला धारण करनेवाला, २. किरणों का समूह। उ० १. ताप-तिमिर-तरुनतरनि-किरन-मालिका। (वि० १६) किरनमाली-दे० 'किरणमाली'।

किरात-(सं०)-एक प्राचीन जंगली जाति, भील, निषाद तथा कोल आदि से मिलती-जुलती एक जाति। उ० कोल किरात कुंरंग विहंगा। (मा० २।१८।४) किरातन्ह-१. किरातों ने, २. किरातों को। उ० १. यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। (मा० २।१३।११) किरातांह-किरात को। उ० लोभ मोह मृगजृथ किरातहि। (७।३०।३) किरातिनि-किरातिनी, किरात की स्त्री। उ० भूषण सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद। (मा० २।२६) किरातां-किरात की स्त्री, भीलनी। उ० देखि लागि मधु कुटिल किरासी। (मा० १।३।२) किरातो-१ किरात भी, २. किरात को भी। उ० २ महिमा उलट नाम की मुनि कियो किरातो। (वि० १।११)

किरिच-(सं० कृति)-१. टुकड़ा, कड़ी वस्तु का छोटा टुकड़ा, २. एक अस्त्र। उ० काँच किरिच बदले ते लेहीं। (मा० ७।१२।१६)

किरीट-(सं०)-एक प्रकार का प्राचीन मुकुट जो बाँधा जाता था। मुकुट। उ० नृप किरीट तरुनी तनु पाई। (मा० १।११।१)

किल-(सं०)-निश्चय, अवश्य। उ० कहत काल किल सकल बुध ताकर यह व्यवहार। (सं० ५७२)

किलकत-(सं० किलकिला)-१. किल-किल शब्द कर आनंद प्रकट करते हैं। २. किलकते हुए, आनंद के साथ शब्द करते हुए। उ० २. किलकत मोहि धरन जब धावहि। (मा० ७।७७।१) किलकनि-किलकना, किलकारी मारना, प्रसन्नता से किलकिल शब्द करना। उ० किलकनि चित्त-वनि भावति मोही। (मा० ७।७७।४) किलकानियाँ-दे० 'किलकनि'। उ० मनमोहनी तोतरी बोलनि, मुनिमन हरनि हँसनि किलकानियाँ। (गी० १।३।१) किलकहों-किलकारी मारते हैं, प्रसन्नतासूचक शब्द करते हैं। उ० देखि खेलौना किलकहीं। (गी० १।१।६) किलाकि-किलक-कर, सानंद शब्द कर। उ० कृदि कृदि किलकि किलकि ठाढ़े-ठाढ़े खात। (कृ० २)

किलकिला-(सं०)-दे० 'किलकिला'।

किलकारी-१ प्रसन्नतासूचक शब्द, २. बंदर की आवाज़। उ० २. गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि, हनुमान पहिचानि भये सानंद सचेत हैं। (क० ५।२६)

किलकिलाइ-किलकिलाकर, आनंद या क्रोधसूचक ध्वनि कर। उ० किलकिलाइ धाए बलवाना। (मा० ६।६।१२) किलकिलात-प्रसन्नता या क्रोधसूचक ध्वनि करते हैं, गर-जते हैं। उ० किलकिलात, कसमसत, फोलाहल होत नीरनिधि तीर। (गी० ५।२२)

किलविषी-(सं० किल्विष)-१. पापी, २. रोगी, ३. अन-गुणी। उ० १. मन-मलीन, कलि किलविषी होत सुनत जासु कृत काज। (वि० १।६१)

किलिकिला-१. हर्षध्वनि, २. बंदरों की आनंद या क्रोध-सूचक ध्वनि। उ० २. सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा। (मा० ५।२८।१)

किल्विष-(सं०)-१. पाप, दोष, २. रोग।

किशलय-(सं०)-नया निकला पत्ता, कोमल झोदा पत्ता, अंकुर, कन्ना।

किशोर-(सं०)-१. लड़का, ११ से १५ वर्ष की अवस्था का लड़का, २. पुत्र, बेटा, लड़का, ३. नवयुवक।

किशोरी-१. बालिका, किशोर का स्त्रीलिंग, २. कुमारी, अविवाहिता। दे० 'किशोर'।

किस-(सं० कस्य)-'कौन' का एक रूप जो उसे विभक्ति लगाने के पूर्व प्राप्त होता है। जैसे किसने, किसको आदि। कौन।

किसब-(अर० कस्ब)-कारीगरी, परिश्रम से कुछ करना। उ० जानत न कूर कछु किसब कबारु है। (क० ७।६७)

किसबी-कारीगर, परिश्रमी, मज़दूर। उ० किसबी, किसान-कुल, बनिक, मिखारी, भाँट, चाकर, चपल, नट चोर चार चेटकी। (क० ७।६६)

किसलय-दे० 'किशलय'। उ० नव तरु किसलय मनहुँ कृसान्। (मा० ५।११।१)

किसाना-(सं० कृषाण)-किसान, कृषक। उ० कृषी निरा-वहि चतुर किसाना। (मा० ४।११।४)

किसु-(सं० कस्य)-१. किसका, कौन व्यक्ति का, २. किसको, ३. किसी। उ० १. नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह। (मा० १।७८)

किसु-दे० 'किसु'।

किशोर-दे० 'किशोर'। उ० १. स्यामल गौर किशोर बर सुंदर सुषमा ऐन। (मा० २।११।६) किशोरहि-किशोर को, बच्चे को। उ० मनहुँ मत्त गजगन निरखि, सिंघ-किशोरहि चोप। (मा० १।२६।७) किशोरी-दे० 'किशोरी'। उ० जय-जय गिरिराज किशोरी। (मा० १।२३।३)

किशोरकु-(सं० किशोरक)-बच्चा, छोटा बालक, शिशु। उ० ससिहि चकोर किशोरकु जैसें। (मा० १।२६।३।४)

किशोरा-दे० 'किशोर'। उ० १. कहँ स्यामल मृदुगात किशोरा। (मा० १।२५।२)

किहनी-(सं० कथन > प्रा० कहन)-किस्सा, कहानी, कहा-वत। उ० साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान। (दो० ५।५४)

की (१)-(सं० कृतः)-१. सम्बन्ध कारक का चिह्न, 'का' का स्त्रीलिंग रूप, २. से। उ० १. कासी की कदुर्धना कराल कलिकाल की। (क० ७।१८।२) २. दे० 'कौ'।

की (२)-(सं० किम्)-क्या।

की (३)-(सं० किंवा)-अथवा, या।

की (४)-(फा० कि)-दे० 'कि (२)'।

कीच-(सं० कच्छ)-कीचड़, पंक, कर्दम। उ० नीच-कीच बिच मगन जस मीचहि सखिल संकोच। (मा० २।२५।२)

कीचहि-१. कीच से, कीच में, २. कीच को। उ० १. कीचहि मिलइ नीच जल संग। (मा० १।७।५)

कीचा-दे० 'कीच'। उ० मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। (मा० १।६।४)

कीट (१)-(सं०)-१. कीड़ा-मकोड़ा, कृमि, बहुत छोटे-छोटे जीव, २. तुच्छ। उ० १. काह कीट बपुरे नर नारी। (मा० २।२६।२)

कीट (२)-(सं० किट्ट)-मैल, मल।

कीती-(सं० कीर्ति)-यश, ख्याति, नेकनामी। उ० जासु सकल मंगलमय कीती। (मा० ५।३।३)

कीदहुँ-(?)—किधौं, या, या तो। उ० कीदहुँ रानि कौसिलहि परिगा भोर हो। (रा० १२)
 कीधौं-(?)—या तो, या। उ० काल की कराखता, करम-कठिनाई कीधौं, पाप के प्रभाव, की सुभाय बाय बावरे। (ह० ३७)
 कीर-(सं०)—शुक, तोता। उ० कीर के कागर ज्यौं नृप-चीर बिभूषन, उप्पम अंगनि पाई। (क० २।१) कीरै-तोते को, तोते के लिए। उ० मोहिं कहा ब्रूक्त पुनि-पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै। (गी० ६।१५)
 कीरत-दे० 'कीरति'।
 कीरति-(सं० कीर्त्ति)—१. कीर्त्ति, यश, बड़ाई, ख्याति, २. पुण्य, ३. राधिका की माता का नाम। उ० १. करहि राम कल कीरति गाना। (मा० १।३।४।४)
 कीरा-(सं० कीट)—कीड़ा, सबी चीजों में पैदा हो जानेवाले सूत की तरह पतले और छोटे छोटे कीड़े। उ० गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा। (मा० २।१६२।१)
 कीर्त्तन-(सं० कीर्त्तन)—१. गुणकथन, यशवर्णन, २. हरि कीर्त्तन, भजन आदि।
 कीर्त्ति-(सं०)—१. यश, ख्याति, नामवरी, २. पुण्य, ३. विस्तार, फैलाव। उ० १. कीर्त्ति बड़ो, करतूति बड़ो जन, बात बड़ो, सौं बड़ोई बजारी। (क० ६।५)
 कील (?)—(सं०)—१. लोहे या काठ की खँटी, काँटा, २. चाक के बीच की लकड़ी, जिस पर वह घूमता है, ३. नृण, तिनका।
 कील (२)—(सं० कीलक)—१. किसी मंत्र का मध्य भाग, २. वह मंत्र जिससे किसी अन्य मंत्र का प्रभाव नष्ट किया जाय। ३. ज्योतिष में प्रभव आदि ६० वर्षों में से ४२ वाँ जिसमें मंगल और सुख का प्राधान्य होता है।
 कीले—(सं० कीलन > कीलना)—१. कील लगाना, जड़ना, २. मंत्र आदि के प्रभाव को नष्ट करना, ३. साँप को ऐसा मोहित करना कि किसी को काट न सके, ४. अधीन करना, बश में करना, ५. बंद करना, रूकावट डालना, बाँध देना। बाँध दिया है, रोक दिया है। उ० जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले। (वि० ३२)
 कीश—(सं०)—बंदर, लंगूर।
 कीस—(सं० कीश)—१. बानर, २. हनुमान, ३. सुग्रीव। उ० १. कीस कुत-अंकर बनहि उपजत करत निदान। (सं० १।६६) कीसन्ह—१. बन्दरों ने, २. बन्दरों को। उ० १. बिचलाह दल बलवंत कीसन्ह वेरि पुनि रावनु लियो। (मा० ६।१००। छं १)
 कीसनाथ—१. बानरराज, हनुमान, २. सुग्रीव। उ० १. तुलसी के माथे पर हाथ फेरी कीसनाथ। (ह० ३३)
 कीसपति-दे० 'कीसनाथ'।
 कीसा-दे० 'कीस'। उ० १. जहँ-तहँ भजे भालु अरू कीसा। (मा० ६।६६।२)
 कुंअर—(सं० कुमार)—लड़का, पुत्र, राजकुमार।
 कुंकुम—(सं०)—१. केसर, ज़ाक्रान, २. रोरी, रोली, लाल रंग की अबीर जिसे घोलकर होली में एक दूसरे पर डालते हैं या थोंही मुँह पर मलते हैं। ३. कुंकुमा, किन्ही या लाख का बना हुआ पोला गोला जिसके भीतर रंग

या गुलाल भरकर होली के दिनों में मारते हैं। उ० १. कुंकुम रंग सुअंग जितो, सुख चंद सौं चंद सौं होइ परी है। (क० ७।१८०)
 कुंकुमा-दे० 'कुंकुम'।
 कुंचित—(सं०)—घूमा हुआ, घुँघराला, बक्र। उ० कुंचित कच मेचक छबि छाप। (मा० ७।७७।३)
 कुंज—(सं०)—१. लताओं का मंडप, पेड़ तथा लता आदि से घिरा स्थान, २. हाथी का दाँत। उ० १. मंजु कुंज, सिलातल, दल फूल पूर हैं। (गी० २।४५)
 कुंजर—(सं०)—१. हाथी, गज, २. श्रेष्ठ, उत्तम, ३. बाल, केश। उ० १. मत्त मंजु वर कुंजर गामी। (मा० १।२५५।३) उ० २. सुनत कोपि कपि कुंजर धाप। (मा० ६।४७।१) कुंजरहि—१. कुंजर को, २. श्रेष्ठ को। उ० २. कपि कुंजरहि बोलि लै आप। (मा० ६।१६।२) कुंजरहु—ए हाथियो। उ० विसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। (मा० १।२६०।१) कुंजरांर—(सं०)—हाथी का शत्रु, सिंह। उ० महाबल-पुंज कुंजरांरि ज्यौं गरजि भट जहाँ-तहाँ पटके लंगूर फेरि-फेरि कै। (क० ६।४२) कुंजरांरी-दे० 'कुंजरांरि'। उ० बिकट भृकुटि, बज्र दसन नख, वैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजरांरी। (वि० २८) कुंजरोनरो-दुविधा, संदेह। उ० स्वारथ औ परमारथ हू को नहि कुंजरोनरो। (वि० २२६) विशेष—महाभारत में जब द्रोणाचार्य कौरवों के पक्ष से पांडवों का संहार करने लगे तो कृष्ण ने अर्जुन से आचार्य के बध के लिए कहा। अर्जुन को इसमें हिचक मालूम हुई। द्रोणाचार्य को वरदान था कि पुत्र-शोक में ही उनका प्राण निकलेगा। कृष्ण ने यह सलाह दी कि संत्यवादी युधिष्ठिर यदि आचार्य से कह दें कि उनका पुत्र मर गया तो उनकी मृत्यु हो जाय, परन्तु इस पर युधिष्ठिर भी तैयार न हुए। तब अश्वत्थामा नाम के हाथी को भीम ने मार डाला और युधिष्ठिर ने द्रोण के समीप 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा' कहा। बीच में कृष्ण के शंखध्वनि के कारण द्रोण को केवल 'अश्वत्थामा हतो' सुनाई पड़ा। उनके पुत्र का नाम अश्वत्थामा था अतः वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े और घृष्टद्युम्न ने उनका सर काट लिया। 'नरो वा कुंजरो वा' इसी आधार पर दुविधा के अर्थ में प्रयुक्त होता है।
 कुंजरमनि—(सं० कुंजरमणि)—गजमुक्ता, हाथी के सर में पाया जानेवाला एक बहुमूल्य रत्न। उ० कुंजरमनि कंठा कलित उरन्दि तुलसिका माल। (मा० १।२४३)
 कुंठ—(सं०)—१. जो चौखा न हो, भोथर, २. मूर्ख।
 कुंठित—(सं०)—१. जिसकी धार तेज़ न हो, कुंद, २. मंद, सुस्त, ४. लज्जित, ५. नाराज। उ० १. भा कुंठरु कुंठित नृपवाती। (मा० १।२८०।१)
 कुंड—(सं०)—१. चौड़े मुँह के गहरे और बड़े बर्तन, २. हौज, ३. हवन आदि के लिए बना गड्ढा। उ० १. रावन आगे परहि ते जनु फूटहि दधिकुंड। (मा० ६।४४)
 कुंडलं-दे० 'कुंडल'। उ० १. चलत्कुंडलं अ सुनेत्रं विशालं। (मा० ७।१०८।श्लो० ४) कुंडल—(सं०)—१. सोने चाँदी आदि का बना एक मंडलाकार कानों का आभूषण, सुरकी, वाली, २. योगियों द्वारा कान में धारण किया

जानेवाला सींग, लकड़ी, या काँच आदि का बना एक आभूषण । ३. कोई भी कड़ा, चूड़ा आदि गोल आभूषण, ४. किसी लचीली वस्तु की कई गोल फेरों में खिमतकर बैठने की स्थिति, मंडली, ५. बदली में चंद्रमा-सूर्य आदि के चारों ओर दिखाई देनेवाला मंडल, ६. मेखला, मेढ़री । उ० १. कल कपोल श्रुति कुंडल लोला । (मा० १।२४३।२)

कुंडि-(सं० कुंडिन)-१.कमंडलु, २.घड़ा, ३.लड़ाई में पहनने की लोहे की टोपी ।

कुंत-(सं०)-१. भाला, बरछा, २. एक कटिदार वृत्त । उ० १. कुबलय विपिन कुंतवन सरिसा । (मा० २।१५।२)

कुंद-दे० 'कुंद (१)' । उ० १. रुचिर सुकपोल, दरश्रीव सुख-सीव, हीर इंदुकर-कुंदमिव मधुरहासा । (वि० ६१)

कुंद (१)-(सं०)-१. जूही की तरह का एक पौधा जिसमें सफेद फूल लगते हैं । कवि लोग दाँतों की उपमा कुंद के फूल या कली से देते हैं । २. खराद का यंत्र, खराद । उ० १. कुलिस-कुंद कुडमल-दामिनि-दुति दसननि देखि लजाई । (वि० ६२) २. गदि गुदि छोलि छालि कुंद 'कोसी भाई बाते' । (क० ७।६३)

कुंद (२)-(फा०)-कुंडित, गुठला, मंद ।

कुंदम-(?)—स्वच्छ सुवर्ण, बढ़िया सोना ।

कुंभ (१)-(सं०)-१. घड़ा, कलश, घट, २. हाथी के सिर के दोनों ओर ऊपर उभड़े हुए भाग, ३. एक राशि जो क्रम में दसवीं है । ४. एक पर्व जो प्रति बारहवें वर्ष हरिद्वार, प्रयाग, नासिक तथा उज्जैन में होता है । ५. एक दैत्य जो प्रहलाद का पुत्र था । ६. कुंभकर्ण का पुत्र एक राक्षस । उ० २. मत्त नाग तम कुंभ विदारी । (मा० ७।१२।१)

कुंभ (२)-(सं० कुंभक)-प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं । यह क्रिया पूरक के बाद और रेचक के पूर्व की जाती है ।

कुंभऊकरण-कुंभकरण भी । दे० 'कुंभकरण' । उ० कंत अकंपन, सुखाय अतिकाय काच, कुंभऊकरण आइ रह्यो पाइ आह सी । (क० ६।४३) कुंभकरण-दे० 'कुंभकर्ण' । उ० अतिबल कुंभकरण अस आता । (मा० १।१८०।२)

कुंभकरण-दे० 'कुंभकर्ण' । उ० बारिदनाद अकंपन कुंभकरण से कुंजर केहरि-बारो । (ह० १।६)

कुंभकर्ण-(सं०)-रावण का भाई एक राक्षस जिसे घटकर्ण भी कहते हैं । यह छः महीने सोता और एक दिन जागता था । यह उसे ब्रह्मा का वरदान था । इसने सुग्रीव को बंदी बनाया था । राम-रावण युद्ध में राम द्वारा यह मारा गया ।

कुंभकर्ण-दे० 'कुंभकर्ण' । उ० को कुंभकर्ण कीट जब राम रन रोषिहै । (क० ६।२)

कुंभज-(सं०)-१. घड़े से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि जिन्होंने समुद्र सोख लिया था । दे० 'अगस्त्य' । २. वशिष्ठ, ३. द्रोणाचार्य । उ० १. कुंभज लोभ उदधि अपार के । (मा० १।३२।३)

कुंभजात-दे० 'कुंभजात' । उ० १. बचन मन कर्मगत सरन दुलसीदास, त्रास-पाथोत्रि-इव कुंभजात । (वि० ५३)

कुंभजात-दे० 'कुंभज' ।

कुंभसंभव-(सं०)-दे० 'कुंभज' । उ० १. मिले कुंभसंभव सुनिहि, लषन सीय रघुराज । (प्र० २।६।७)

कुंभलाइ-(सं० कु + स्लान)-सुरकाता है, कुम्हलाता है । उ० जानि परै सिथ हियरे जब कुंभलाइ । (ब० ५)

कुंभीश-(सं० कुंभी + ईश)-हाथियों के राजा, गजराज । उ० शुभ निःशुभ कुंभीश रणकेशरिणि, क्रोधवारिधि बैरिबुद बोरे । (वि० १५)

कुँवर-(सं० कुमार)-१. पुत्र, कुमार, २. राजकुमार । उ० २. ये उपही कोउ कुँवर अहेरी । (गी० २।४२) कुँवारे-

(सं० कुमारी)-अविवाहिता कन्या, राजा की अविवाहिता कन्या, राजकुमारी । उ० कुँवरि सयानि बिलोकि मातु पितु सोचहि । (पा० १०)

कुं-(सं०)-१. एक उपसर्ग जो संज्ञा के पहले लगता है । इसका अर्थ बुरा, नीच, कठिन, कड़ा तथा कुत्सित आदि होता है । कुचाव, कुचाह, कुचाल, कुचरचा आदि, २.

पृथ्वी, धरती । उ० १. मेदत कठिन कुअंक भाल के । (मा० १।३२।५) २. मनु दोउ गुरु सुनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए । (गी० १।२३) कुअंक-

बुरे अक्षर, बुरी रेखा । दे० 'कु' । कुघरी-(सं० कु + घटी) बुरी बड़ी, बेमौका, कुसमय । उ० घरी कुघरी सुसुम्भि जियँ देख । (मा० २।२६।४) कुचाह-(सं० कु + उसाह)-१. अमंगल, अशुभ बात, २. बुरी ईच्छा, ३.

अनिच्छित । उ० १. कठिन कुचाह सुनाइहि कोई । (मा० २।२२६।४) कुचाहै-बुरी खबरें, अमंगल । उ० जातुधान-

तिय जानि वियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहै । (गी० ७।१३) कुजंतु-(सं० कु + जंतु)-बुरे जीव । उ० त्रिजग-

जोनि-गत गीध जनम भरि खाइ कुजंतु जियो हैं । (गी० ३।१४) कुजंत्र-(सं० कुअंत्र)-बुरा यंत्र, अभिचार, टोटका, टोना । उ० कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्र । (मा० २।२१२।२) कुजन-(सं० कु + जन)-बुरे लोग, दुष्ट

जन, वन्दर । उ० कुजन-पाल, गुन-वर्जित, अकुल, अनाथ । (ब० ३।५) कुजाति-(सं० कु + जाति)-नीच, भ्रष्ट, दुराचारी । उ० सब जाति कुजाति भए मगता । (मा० ७।१०२।३) कुजाती-दे० 'कुजाति' । उ० करइ

बिचार कुबुद्धि कुजाती । (मा० २।१३।२) कुजोग-(सं० कुयोग)-१. कुसंग, कुमेल, २. बुरा अवसर, प्रतिकूल अवस्था । उ० २. ब्रह्म भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग । (मा० १।७ क) कुजोगनि-कुयोगों ने, बुरे संयोगों ने । उ० घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुजोगनि ज्यौं । (ह० ३।५) कुजोगी-(सं० कुयोगी)-असंयमी, विषयी । उ० पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी । (मा० ६।

३।७) कुठाट-(सं० कु + स्थाट)-१. बुरा साज, बुरा प्रबंध, २. उपद्रव, षडयंत्र । उ० १. काया नहि छौंदि देत ठाटिबो कुठाट को । (क० ७।६६) कुठाट-दे० 'कुठाट' । उ० २. सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाट । (मा० २।२६।५) कुठाथै-(सं० कु + स्थाथ)-१. कुठौर में, बुरे स्थान में, २. कुअवसर, बेसमय । उ० १. सिरु धुनि लीन्ह उसास असि मारेसि मोहि कुठाथै । (मा० २।३०) कुठाथ-१. बुरा स्थान, २. बुरा अवसर ।

उ० २. कड़ कुणय करटा रटहि । (प्र० ३।१।५) कुतर-
(सं० कु + तर)-बुरा वृत्त, बबूल आदि । उ० तहँ तहँ
तरनि तकत उलूक ज्यों भदकि कुतर-कोटर गहौं । (वि०
२२२) कुदाँउ-दे० 'कुदाव' । कुदाँव-दे० 'कुदाव' ।
कुदाउ-दे० 'कुदाव' । उ० १. नृप सनेह लखि धुनेउ
सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ । (मा० २।७३) कुदान (?)-
(सं०)-बुरा दान, कुपात्र या अयोग्य को दिया गया दान ।
कुदाम-(सं० कु + दाम (ग्रीक शब्द)-खोटा सिक्का, खोटा
रुपया । उ० तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर-कर न विकालो ।
(वि० १५१) कुदाय-दे० 'कुदाव' । सु० कुदायदेत-चोट
करते । उ० १. स्योहि रामगुलाम जानि निकाम देत
कुदाय । (वि० २२०) कुदाव-(सं० कु + दा (दाच्
प्रत्यय)-१. बुरा दाव, कुघात, विश्वासघात, धोखा,
दगा, २. बुरा स्थान, विकट स्थान, ३. संकट की स्थिति,
४. दुःख, चोट । कुदिन-(सं०)-आपत्ति का समय, कष्ट
के दिन । उ० कुदिन हितू सो हित सुदिन, हित अनहित
किन होइ । (दो० ३२२) कुदिति-दे० 'कुदिति' । कुदिति-
(सं०)-बुरी दिति, पाप-दिति । उ० इन्हहि कुदिति बिलो-
कइ जोई । (मा० ४।१।४) कुदेव-(सं० कु + देव)-बुरे
देवता, दानव । उ० ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेए
बपु बचन हिये हूँ । (वि० १७०) कुदेस-(सं० कु +
देश)-बुरे देश, जंगली प्रांत । उ० बसहि कुदेस कुगावँ
कुबामा । (मा० २।२२३।४) कुधरम-दे० 'कुधर्म' । उ०
तुलसी बिकल बलि कलि कुधरम । (वि० २४६) कुधर्म-
(सं० कु + धर्म)-बुरा धर्म, पाप, बुरा आचरण । कुधातु-
(सं०)-१. बुरी धातु, २. लोहा । उ० २. पारस परस
कुधातु सुहाई । (मा० १।३।५) कुनारी-कुलदा, वेरया, दुष्टा
स्त्री । उ० सेवक सठ नृप कृपन कुनारी । (मा० ४।७।५)
कुनीति-(सं० कु + नीति)-बुरी नीति, अत्याचार । कुपथ-
(सं० कुपथ)-बुरा रास्ता । उ० चलत कुपथ बेदमग
छाँड़े । (मा० १।१२।१) कुपथ (?)-(सं०)-बुरा रास्ता,
बुरा आचरण, कुचाल । कुपथ (२)-(सं० कुपथ्य)-अयोग्य
भोजन, उस दशा में न खाने योग्य भोजन । उ० कुपथ
भाग रज व्याकुल रोगी । (मा० १।१३।१) कुपथ्य-
(सं०)-बुरा खाद्य, अयोग्य या अस्वास्थ्यकर भोजन । उ०
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे । (मा० ७।१२।२) कुपूत-(सं०
कुपुत्र)-कपूत, नालायक बेटा, अयोग्य पुत्र । उ० कूर
कुजाति, कुपूत अघी सबकी सुधरै जो करै नर पूजो । (क०
७।५) कुफल-(सं०)-बुरा फल, कुपरिणाम । कुफेर-(सं०
कु + फेरणा)-अनवसर, बुरा समय, पेचीदा चक्र । उ०
सुमति विचारे बोलिये समुक्ति कुफेर सुफेर । (दो० ४३७)
कुफेर-बुरे फेर से, पेचीदा चक्र से, कुचक्र से । उ० भाई
को सो करौ डरौ कठिन कुफेर । (गी० ५।२७) कुवरन-
(सं० कुवर्ण)-बुरे रंग का, बुरा । उ० हौं सुवरन कुव-
रन कियो । (वि० २६६) कुबल-(सं० कु + बल)-
तुच्छ बल, बुरा बल, अनुचित दबाव । उ० मैन फेरियत
कुतक कोटि करि कुबल भरोसे भारि । (क० २७) कुबलि-
(सं० कु + बलि)-तामसी देवों के समूह की जानेवाली
निकुष्ट बलि, बुरा बलिदान । कुवानि-(सं० कु + ?)-
बुरी आदत, कुदेव, बुरा अभ्यास, स्वभाष की दुर्बलता ।

उ० दे० 'कुबरी' । कुवामा-दे० 'कुनारी' । उ० बसहि
कुदेस कुगावँ कुबामा । (मा० २।२२३।४) कुवासना-
(सं० कु + वासना)-बुरी इच्छा । उ० करम उपासना
कुवासना विनास्यो, ज्ञान बचन, विराग वेष जगत हरो
सो है । (क० ७।८।४) कुविचारी-बुरे विचारवाले, जिनकी
भावना खोटी हो । उ० हँसिहहि कूर कुटिल कुविचारी ।
(मा० १।८।५) कुबिहग-(सं० कु + विहग)-बुरा पत्नी,
बाज । उ० कुमत कुबिहग कुलह जलु खोली । (मा०
२।२।४) कुबुद्धि-(सं०)-१. सूख, अष्टबुद्धि, २. कुमं-
त्रणा, बुरी सलाह, ३. सूखता । उ० १. करइ विचार
कुबुद्धि कुजाती । (मा० २।१३।२) कुबुद्धे-(सं०)-हे कुबुद्धि
वाले, हे सूख । उ० रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे । (मा०
६।६।३) कुबेष-दे० 'कुबेष' । कुबेष-(सं० कु + वेष)-
बुरा वेष, गंदे या फटे कपड़े, बुरा हाल । उ० सब विधि
कुसल कुबेष बनाएँ । (मा० १।१६।१) कुबेषता-
बुरे वेष में होने का भाव, बुरे वेष में होना । उ०
कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी । (मा० २।२।४) कुबेषू-
(सं० कु + वेष)-बुरे वेष, गंदे या रद्दी कपड़े । उ० बेगि
प्रिया परिहरहि कुबेषू । (मा० २।२।४) कुबोल-(सं०
कु + ब्र)-कठोर बचन, बुरा बचन । उ० सहि कुबोल,
सौसति सकल, अंगइ अन्ट अपमान । (दो० ४६६)
कुभाँति-(कु + भेद)-बुरी तरह, बुरी दशा । उ० देखि
कुभाँति कुमति मन माखा । (मा० २।३।१) कुभाँती-
दे० 'कुभाँति' । उ० प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती ।
(मा० २।३।३) कुभाउ-दे० 'कुभाव' । उ० सबके उर
अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ । (मा० २।२।७) कुभाग्य-
(सं० कु + भाग्य)-१. अभाग्य, बुरा भाग्य, २. बुरे भाग्य
वाला, अभाग्य । उ० २. रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे । (मा०
६।६।३) कुभामिनि-(सं० कु + भामिनि)-दुष्टा, कुलटा
स्त्री । उ० बचन कुभामिनि के भूपहि क्यों भाए । (गी०
२।३।६) कुभायँ-बुरे भाव से । उ० भायँ कुभायँ अनख
आलसहँ । (मा० १।२।१) कुभाय-दे० 'कुभाव' ।
कुभाव-(सं० कु + भाव)-बुरे भाव, बुरा विचार । कुभोग-
(सं० कु + भोग)-दुर्व्यसन, बुरे भोग । दे० 'भोग' । उ०
सृग लोग कुभोग सरेन हिए । (मा० ७।१।४) कुमंत-
दे० 'कुमंत्र' । उ० १. कत बीस लोचन विलोकिए कुमंत-
फल । (क० ६।२।७) कुमंत्र-(सं० कु + मंत्र)-१. कुमंत्रणा,
बुरी सलाह, बुरा विचार, २. बुरा या खोटा मंत्र, बुराई
के लिए प्रयुक्त मंत्र । दे० 'मंत्र' । कुमंत्र-दे० 'कुमंत्र' ।
उ० १. करि कुमंत्रु मन साजि समाजू । (मा० २।२।२।३)
कुमंत्र-दे० 'कुमंत्र' । उ० २. गाढ़ि अवधि पढ़ि कठिन
कुमंत्र । (मा० २।२।२।२) कुमग-(सं० कु + मार्ग)-
कुपथ, बुरा रास्ता, निपिद्ध मार्ग । उ० चलेहुँ कुमग पग
परहि न खालें । (मा० २।३।५।३) कुमत-(सं० कु +
मत)-बुरा विचार, बुरी राय । उ० जब तँ कुमत सुना मैं
स्वामिनि । (मा० २।२।३) कुमति-(सं० कु + मति)-
१. बुरी मति, अष्ट बुद्धि, २. बुरी राय । उ० १. सुई भइ
कुमति कैकई केरी । (मा० २।२।३) कुमतिहि-१. दुर्बुद्धि
को, सूख को, २. सूखता को । उ० १. कुमतिहि कसि
कुबेषता फाबी । (मा० २।२।४) कुमतिही-दे० 'कुम-

तिहि' । उ० १. क्त समुक्ति मन तजहु कुमतिही । (मा० ६।३६।१) कुमया-(सं० कु+माया)-अकृपा, क्रोध, अप्रसन्नता । उ० कुमया कहु हानि न औरन की जोपै जानकी नाथ मया करिहै । (क० ७।४७) कुमाता-दे० 'कुमाता' । उ० साहँ दोह मोहि कीन्ह कुमाता । (मा० २।२०।१।३) कुमाता-(सं०)-खोटी माता, अधम जननी । कुमातु-दे० 'कुमाता' । उ० ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तनु मरम कुवाउ । (वि० १००) कुमारग-दे० 'कुमार्य' । उ० मारग मारि, महीपुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो । (क० ७।१७।३) कुमार्ग-(सं० कु+मार्ग)-बुरा रास्ता, अशुचित मार्ग, निषिद्ध पथ । कुमित्र-(सं० कु+मित्र)-बुरा दोस्त, खोटा साथी । उ० अस कुमित्र परिहरोहि भलाई । (मा० ४।७।३) कुमुख (१)-(सं० कु+मुख)-बुरा मुख, अशुभ मुँह । उ० लागहि कुमुख बचन सुभ कैसे । (मा० २।४३।४) कुयाचक-(सं० कु+याचक)-नीच मंगन, अपात्र भिक्षुक । कुयोग-(सं० कु+योग)-१. दुष्ट योग, बुरा अवसर, दुखदायक ग्रह, २. बुरी संगत । कुयोगिनां-कुयोगियों के लिए । दे० 'कुयोगी' । उ० कुयोगिनां सुदुर्लभं । (मा० ३।४।१।१०) कुयोगी-(सं० कु+योगी)-जो योगी या संयमी न हो, भोगी, नियमित व्यवहार न रखनेवाला । कुराई-दे० 'कुराह' । उ० कुस कंटककाँकरी कुराई । (मा० २।३।१।३) कुराज-(सं० कु+राज्य)-बुरा राज्य, जिस राज्य में व्यवस्था न हो । उ० करम, धरम, सुख संपदा ल्यों जानिबे कुराज । (दो० ५।३) कुराय-दे० 'कुराह' । उ० काँट कुराय लपेटन ठाँहि ठाँहि बभाऊ रे । (वि० १८३) कुराह-(सं० कु+फा० राह)-१. बुरा रास्ता, तंग रास्ता, २. रही स्थान, ऊँचा-नीचा स्थान । कुरीति-(सं० कु+रीति)-कुप्रथा, अनिती, कुचाल । उ० सांति सत्य सुखरीति गई घटि, बढी कुरीति कपट-कलई है । (वि० १३।६) कुरुचि-(सं० कु+रुचि)-बुरी प्रवृत्ति, नीच अभिलाषा, बुरी इच्छा । उ० जौ पै कुरुचि रही अति तोही । (मा० २।१६।१।४) कुगोग-(सं० कु+रोग)-बुरा रोग, बुरी बीमारी । उ० राम बियोग कुरोग बिगोप । (मा० २।१५।५) कुरोगी-दे० कुरोगों में, कुरोग से । उ० हहरि मरत सब लोग कुरोगी । (मा० २।३।१।१) कुलक्षण-(सं०)-१. बुरा लक्षण, बुरा चिह्न, २. कुचाल, बद-चलनी । कुलच्छन-दे० 'कुलक्षण' । कुलषन-दे० 'कुलक्षण' । उ० १. मिटे कलुष कलेस कुलषन कपट कुपथ कुचाल । (गी० ७।१) कुलिपि-१. बुरी लिपि, अस्पष्ट लिपि, २. अशुभ लिपि, खोटी लिपि । उ० २. लोपति बिलोकत कुलिपि भोंड़े भाल की । (क० ७।१८२) कुलोग-(सं० कु+लोक)-दुष्ट लोग, बुरे लोग । उ० रोगनिकर तनु, जरठपनु, तुलसी संग कुलोग । (दो० १७८) कुलोगनि-बुरे लोगों ने, बुरे लोग । उ० बेरि लिखो रोगनि कुलोगनि कुजोगनि ज्यों । (ह० ३।५) कुवरन-(सं० कु+वर्य)-बुरा, नीच जाति का । कवामा-(सं० कु+वामा)-खोटी स्त्री । कुवेष-(सं० कु+वेष)-बुरा वेष, रही पोशाक । कुवेषता-वेष का बुरा होना, वेष के बुरेपन का भाव । कुसंकट-(सं० कु+संकट)-बुरे-बुरे संकट, महात्र

दुःख । उ० मिटहि कुसंकट होहि सुखारी । (मा० १।२।३) कुसंघट-(सं० कु+संघट)-बुरा योग, अशुभ संयोग, अशुचित मेल । कुसमय-(सं० कु+समय)-बुरे दिन, आपत्ति काल, बुरा समय । उ० कुसमय दूसरथ के दानि, तैं गरीब निवाजै । (वि० ८०) कुसर-(सं० कु+सर)-बुरा तालाब । कुसाज-(सं० कु+फा० साज)-१. बुरे सामान, बुरी सजावट, २. बुरी तैयारी, ३. बुरी बात, बुरा काम, ४. बुरी हालत, बुरा बेष, ५. बुराई । उ० ३. राज करत बिनु काजही, करै कुचालि कुसाज । (दो० ४।१६) कुसाज-दे० 'कुसाज' । उ० ४. जाइ दीख रघु बंसमनि नरपति निपट कुसाज । (मा० २।३।६) कुसाहब-(सं० कु+अर० साहब)-बुरे स्वामी, अयोग्य मालिक । उ० व्योम रसातल भूमि भरे नृप कूर कुसाहब सैं तिहँ खारे । (क० ७।१२) कुसूत-(सं० कु+सूत)-कुप्रबंध, कु व्योत, असुबिधा, उलझन । उ० रोग भयो भूत सो, कुसूत भयो तुलसी को । (क० ७।१६७) कुअर-(सं० कुमार)-१. लड़का, पुत्र, बालक, २. राज-कुमार, राजपुत्र । उ० २. आयउँ कुसल कुअर पहुँचाई । (मा० २।१४।६।४) कुअरि-कुअर का स्त्रीलिंग, पुत्री, राज-कुमारी । उ० सादर सकल कुअरि समुझाई । (मा० १।३।३।४) कुअरोटा-(सं० कुमार)-बेटा, लड़का, राज-पुत्र । उ० कोसलराय के कुअरोटा । (गी० १।६०) कुअरी-दे० 'कुआरि' । कुआरि-(सं० कुमारी)-अविवाहिता, जिसका विवाह न हुआ हो । उ० कुअरि कुआरि रहउ का करऊँ । (मा० १।२।५।३) कुआरी-(सं० कुमारी)-कुमारी, पुत्री, राजपुत्री । उ० बरउँ संभु नत रहउँ कुआरी । (मा० १।८।१।३) कुकरम-(सं० कु+कर्म)-बुरा काम । ककरमू-दे० 'कुकरम' । उ० आरत काह न करइ कुकरमू । (मा० २।२०।४।४) कुकट-(सं०)-मुर्गा, एक विद्विधा । उ० बोलत जल कुकट कल हंसा । (मा० ३।४।०।१) कुघाव-दे० 'कुघाव' । उ० पलक पानि पर ओद्विअत समुक्ति कुघाव सुचाइ । (दो० ३।२५) कुघाउ-दे० 'कुघाव' । उ० ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तनु मरम कुघाउ । (वि० १००) कुघात-(सं० कु+घात)-१. बुरा दाँव, बुरी चाल, झल-कपट, २. बेमौका, कुअवसर, ३. बुरी चोट । कुघातु-दे० 'कुघात' । उ० बव कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोप गृह जाहु । (मा० २।२२) कुघाय-दे० 'कुघाव' । कुघाव-(सं० कु+घाव)-बुरा घाव, बुरे जगह का घाव, भयानक घाव, गहरा जखम, गहरी चोट । कुच-(सं०)-स्तन, छाती । उ० श्रीफल कुच, कंचुकि लताजाल । (वि० १४) कुचाल-(सं० कु+चलत्)-बुरा आचरण, दुष्टता, पाप्मी-पन । उ० कलि सकोप लोमी सुचाल, निज कटिन कुचाल चलाई । (वि० १।६५) कुचालि-दे० 'कुचाली' । कुचालिहि-१. कुचाली को, दुष्ट

को, २. कुचाली ने । उ० देहि कुचालिहि कोटिक गारीं ।
(मा० २।२१।२) कचाली-१. उपद्रवी, कुकर्मी, २. उप-
द्रव, कुकर्मा । उ० २. फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली ।
(मा० २।२०।२)

कुजा-(सं० कु+जा)-पृथ्वी से उत्पन्न सीता, अवनिजा ।
कुटिल-(सं०)-१. ब्रह्म, टेढ़ा, लच्छेदार, २. कपटी, झुली,
खल । उ० २. हंसिहहि कूर कुटिल कुविचारी । (मा०
१।२।२)

कुटिलई-दे० 'कुटिलाई' ।

कुटिलपन-दे० 'कुटिलाई' ।

कुटिलपनु-दे० 'कुटिलपन' । उ० कैकयनदिनि मदमति
कठिन कुटिलपनु कीन्ह । (मा० २।६।१)

कुटिलाई-कुटिलता, वक्रता, कपट, झल । उ० हरउ भगत
मन कै कुटिलाई । (मा० २।१०।४)

कुटी-(सं०)-घास आदि का बना हुआ छोटा घर, कुटिया ।

कुटीर-(सं०)-छोटी कुटी, कुटिया । उ० सानुज सीय समेत
प्रभु राजत परन कुटीर । (मा० २।३२।१)

कुटीरा-दे० 'कुटीर' । उ० नदिगाँव करि परन कुटीरा ।
(मा० २।३२।१।१)

कुटुंब-(सं० कुटुम्ब)-परिवार, कुल, खानदान । उ० बरे
तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत । (मा० १।१७।२)

कुटुंबी-(सं० कुटुम्बिन्)-१. परिवारवाला, कुटुंबवाला, २.
सम्बन्धी, रिश्तेदार । उ० १. अबुध कुटुंबी जिमि धन-
हीना । (मा० १।१६।४)

कुटुम्-दे० 'कुटुंब' ।

कुटुम्-दे० 'कुटुम्' । उ० हौ जग-
नायक लायक आज्ञ, पै मैरियौ टेव कुटुम् महा है । (क०
७।१०।१)

कुठार-(सं०)-१. कुल्हाड़ी, २. परशु, फरसा, ३. नाशक,
समाप्त करनेवाला । कुठारी-कुठार का स्त्रीलिंग । दे०
'कुठार' । उ० १. जनि दिनकरकुल होसि कुठारी । (मा०
२।३।३)

कुठारधर-कुठार या परशु को धारण करनेवाले परशुराम ।
उ० जय कुठारधर-दर्पदलन, दिनकर कुल-मंडन । (क०
७।१।२)

कुठारपानि-(सं० कुठार+पाणि)-परशुराम, हाथ में कुठार
लेनेवाले । उ० वीर करि-केसरी कुठारपानि मानी हारि ।
(क० ६।१।१)

कुठारा-दे० 'कुठार' । उ० २. व्यर्थ धरहु धनुबान कुठारा ।
(मा० १।२७।३।४)

कुठारु-दे० 'कुठार' । उ० २. धनु सर कर कुठारु कल काँधे ।
(मा० १।२६।२।४)

कुठारु-दे० 'कुठार' । उ० २. पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारु ।
(मा० १।२७।३।१)

कुठारु-दे० 'कुठार' । उ० २. कुठार, बुरा स्थान, २.
मर्मस्थल, नाशक जगह, ३. बेमौका, बुरा अवसर । उ०
३. भयउ कुठारु जेहि बिधि बामू । (मा० २।३।६।१)

कुडमल-(सं० कुडमल)-१. कली, अशखिला फूल, मुकुल,
२. इक्कीस नरकों में से एक । उ० १. कुलिस कुडकुडमल-
वामिनि-दुति दसननि देखि लजाई । (वि० ६२)

कुणप (१)-(सं०)-१. शव, मृतक, २. भाला, बरछा ।

कुणप (२)-(सं० कौणप)-राक्षस, निशाचर ।

कुतरक-(सं० कु+तर्क)-बेदंगा तर्क, बकवाद, व्यर्थ की
दलील । उ० कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाषंड ।
मा० १।३२।२ क)

कुतरकी-कुतर्क करनेवाला, बकवादी, वितंडावादी । उ०
हरिहर पदरति मलिन कुतरकी । (मा० १।६।३)

कुतर्क-(सं०)-बुरा तर्क, वितंडा, बकवाद । उ० नहीं कुतर्क
भयंकर नाना । (मा० १।३।२।५)

कुतस-(सं० कुतः)-कहाँ से ।

कुतसित-दे० 'कुत्सित' । उ० उदित सदा अथवत न सो
कुतसित तमकर हान । (सं० १२)

कुत्र-(सं०)-कहाँ, कहीं । उ० यत्रकुत्रापि ममजन्म निज
कर्मवश भ्रमत जगयोनि संकट अनेकम् । (वि० ५७)

कुत्सित-(सं०)-नीच, गहित, खराब ।

कुथि-(सं० कथ्)-कहता हुआ, कहकर । उ० कुथि रटि
अटत बिमूढ लट घट उदघटत न ग्यान । (सं० ३७२)

कुदान (१)-(सं० स्कंदन)-१. कूदने की क्रिया, कूदने का
भाव, २. कूदने का स्थान ।

कुदाना-बुरे दान । उ० मेलि जनेऊ लेहि कुदाना । (मा०
७।६।१।१)

कुदारी-(सं० कुहाल)-कुदाली, मिट्टी खोदने का एक औजार ।
उ० ममीं सज्जन सुमति कुदारी । (मा० ७।१२।०।७)

कुधर-(सं० कुध्र) पर्वत, पहाड़ । उ० पूरहि न त मरि कुधर
बिसाला । (मा० २।२६।३) कुधर-कुमारिका-पर्वत की
कुमारी, हिमालय की पुत्री, पार्वती, उमा । उ० चाहति
काहि कुधर-कुमारिका । (पा० ४५) कुधरधारी-पर्वत को
धारण करनेवाले, १. हनुमान, २. कृष्ण ।

कुनप (१)-(सं० कुणप)-१. मृतशरीर, शव, २. शरीर,
देह, ३. भाला । उ० १. कुनप-अभिमान-सागर भयंकर
भोर बिपुल अवगाह हुस्तर अपारम् । (वि० ५८)

कुनप (२)-(सं० कौणप)-राक्षस ।

कुनय-(सं० कु+नय)-बुरी नीति, अनीति । उ० मरहि
कुनप करि करि कुनय सौ कुचालि भव भूरि । (दो० ५१४)

कुपित-(सं०)-कुब्ध, क्रोधित, अप्रसन्न, रुष्ट ।

कुबरिहि-१. कुबरी को, २. कुबरी ने, कुबरी से । दे०
'कुबरी' । उ० १. कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी । (मा०
२।२३।१) कुबरी-कुबरी ने, मंथरा ने । उ० कुबरीं करि
कबुली कैकेई । (मा० २।२२।१) कुबरी-(सं० कुब्ज)-१.
कंस की एक कुब्जा नामकी नाई जाति की दासी जिसकी
पीठ टेढ़ी थी । २. मंथरा, कैकेयी की दासी । उ० १. पंडु-
सुत, गोपिका, विदुर, कुबरी सबहिं सोध किए सुद्धता
लेस कैसो । (वि० १०६)

कुबलय-(सं० कुबलय)-१. नील कमल, २. एक प्रकार के
असुर । उ० १. कुबलय विपिन कुंतवन सरिसा । (मा०
२।१९।२)

कुबेर-(सं०)-एक देवता जो इंद्र की नौ निधियों के
भंडार तथा शंकर के मित्र समझे जाते हैं । इनके पिता
विश्रवस् ऋषि तथा माता इलविला थीं । ये रावण के
सौतेले भाई थे । कुबेर संसार के समस्त धन के स्वामी समझे

जाते हैं। उ० एक बार कुबेर पर धावा। (मा० ११७६१४)
कुबेर-१. कुबेर से, २. कुबेर को। उ० १. कृपानिधि को मिलौ पै मिलि कै कुबेरै। (गी० १२२७)

कुमाच-(अ० कुमाय)-एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। उ० काम तु आवै कामरी, का लै करै कुमाच। (दो० १७२)

कुमार-(सं०)-१ पाँच वर्ष की आयु का बालक, २. छोटा या अविवाहित लड़का, ३. पुत्र, बेटा, लड़का, ४. राजकुमार, युवराज, ५. सनक, सनंदन, सनत् और सुजात आदि कई ऋषि जो सदा बालक ही रहते हैं। उ० १. भए कुमार जबहि सब आता। (मा० १२०४१५) कुमारिका-(सं०)-कुमारी, लड़की, कन्या। कुमारी-(सं०) १. बारह वर्ष की अवस्था तक की कन्या, लड़की, २. पुत्री, बेटा, ३. धीकुआँर, ४. नवमल्लिका, ५. बड़ी इलायची, ६. सीता, ७. पार्वती, ८. भारत के दक्षिण में एक प्रसिद्ध अंतर्राप, ९. चमेली, १०. बिना व्याही लड़की। उ० १. सब लच्छन संपन्न कुमारी। (मा० ११६७१२)

कुमारा-दे० 'कुमार'। उ० ४. एक राम अवधेस कुमारा। (मा० ११४६१४)

कुमारि-दे० 'कुमारी'। उ० सैलकुमारि निहारि मनोहर मूरति। (पा० ७६)

कुमुख (२)-(सं०)-रावण का एक योद्धा, जिसका नाम दुर्मुख भी था। उ० कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय। (मा० १११८०)

कुमुद-(सं०)-१. कुमुदनी, कोई, नलिनी। एक फूल जो कमल के उलटे रात में खिलनेवाला माना गया है। इसे चन्द्रमा का स्नेही माना जाता है। २. एक बंदर का नाम जो राम-रावण युद्ध में लड़ा था। ३. दक्षिण पश्चिम कोण में रहनेवाला दिग्गज, ४. कृष्ण, कंजूस, ५. लोभी, लालची। उ० १. रघुबर किकर कुमुद चकोरा। (मा० २१२०११) कुमुदबंधु-(सं०)-चंद्रमा। उ० कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा। (मा० ११२४३१२) कुमुदिनी-कुमुदिनी ने। उ० जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी। (मा० २११८१२) कुमुदिनी-(सं०)-कुमुद, कुई, कमलिनी, नलिनी। उ० नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति विरह दिनेस। (मा० ७१६ क)

कुमुदिनि-दे० 'कुमुदिनी'। उ० बिलखित कुमुदिनि चकोर चक्रवाक हरष भोर। (गी० ११३७)

कुमुलानी-दे० 'कुम्हिलानी'। उ० हृदय कंप मुखदुति कुमुलानी। (मा० ११२०८११)

कुम्हड़-(सं० कृष्णारु) कुम्हड़ा, सीताफल, काशीफल, एक बेल और उसमें लगनेवाला भारी गोल फल। कुम्हड़बतिआ-(सं० कृष्णारु + वसिक)-कुम्हड़े के फल का शिशु रूप। कुम्हड़े का नया फल जो बहुत कमजोर माना जाता है और लोगों का विश्वास है कि अँगुली दिखा देने से भी सूख जाता है। इसी आधार पर निबल या अशक्त आदमी के लिए भी इसका प्रयोग होता है। उ० इहाँ कुम्हड़ बतिआ कोउ नाहीं। (मा० ११२०३१२) कुम्हड़े-दे० 'कुम्हड़'। उ० सरुष बरजि तीजिष तरजनी, कुम्हड़ैहै कुम्हड़े की जई है। (वि० १३६)

कुम्हारा-(सं० कुंभकार)-मिट्टी का बरतन बनानेवाली

एक जाति, कुम्हार। उ० जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। (मा० ७११००३)

कुम्हिलानी-(सं० कु + म्लान)-म्लान हो गई, कुम्हिला गई, सूख गई। कुम्हिलानी-कुम्हिलाती है, सूखती है, सूख रही है। उ० बागन्ह विटप बेलि कुम्हिलानी। (मा० २१८३१४) कुम्हिलैहै-सुरक्षा जायगा, सूख जायगा। उ० दे० 'कुम्हड़े'।

कुरंग-(सं०)-हिरण, मृग। उ० कोल किरात कुरंग विहंगा। (मा० २१६८१४) कुरंगिनि-हरिणी, मृग की स्त्री। उ० चितवत चकित कुरंग कुरंगिनि सब भए मगन मदन के भोरे। (गी० ३१२)

कुरंगा-दे० 'कुरंग'। उ० १. करि केहरि कपि कोलकुरंगा। (मा० २११३८११)

कुररी-(सं०)-१. एक जलपक्षी, टिटिहरी, २. कौंच पक्षी, करँकुल। उ० १. बिलपति अति कुररी की नाई। (मा० ३१३१२)

कुरव-(सं० कुरवक)-कटसरैया नामक पेड़, जिसके फूल सुन्दर होते हैं। उ० कुसुमित तरु-निकर कुरव तमाल। (गी० २१४८)

कुरी-(सं० कुल)-वर्ग, बंश, घराना, खानदान। उ० हरषित रहहि लोग सब कुरी। (मा० ७११५४)

कुरु (१)-(सं०)-१. कौरवों के बंश का नाम, या उस बंश में उत्पन्न पुरुष। २. कर्ता, करनेवाला, ३. पका चावल, भात।

कुरुखेत-(सं० कुरुखेत्र)-सरस्वती नदी के बाएँ किनारे पर अंबाला और दिल्ली के बीच में स्थित एक प्राचीन तीर्थ। अब भी ग्रहण आदि के अवसर पर यहाँ बड़े बड़े मेले लगते हैं। उ० धनही के हेतु दान देत कुरुखेत रे। (क० ७१६२)

कुरुपति-कौरवों का स्वामी, दुर्योधन। उ० बायों दियो विभव कुरुपति को, भोजन जाइ बिदुर घर कीन्हो। (पि० २४०)

कुरराज-दुर्योधन, कुरुपति। उ० भारत में पारथ के रथ केतु कपिराज, गाज्यो सुनि कुरराज दल हलबल भो। (ह० ५) कुरराजबंधु-दुर्योधन का भाई, दुःशासन। उ० लोभ ग्राह दनुजेह क्रोध, कुरराज-बंधु खल मार। (वि० ६३)

कुरुप-(सं० कु + रूप)-भद्रा रूप, असुन्दर, बदसूरत। उ० दीन्ह कुरुप न जाइ बखाना। (मा० १११३३१४)

कुरुपता-(सं०)-कुरुप का भाव, बदसूरती। उ० तनु-तडाग बलबारि सूखन लाग्यो परी कुरुपता-काई। (क० २६)

कुरुपा-'कुरुप' का स्त्रीलिंग, भद्दी। उ० सूपनखा जिमि कीन्हि कुरुपा। (मा० ७१६१२)

कुल (१)-(सं०)-१. बंश, खानदान, २. समूह, ढेर, ३. जाति, ४. मकान, घर। उ० २. सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा। (मा० ११३७३) कुलघाती-कुल का हनन या नाश करनेवाला। कुलघालक-दे० 'कुलघाती'। उ० हम कुलघालक सत्य तुम्ह कुलपालक दससीस। (मा० ७१२१) कुलपालक-कुल या कुटुंब का पालन या रक्षा करनेवाला। उ० दे० 'कुलघालक'। कुलरीति-(सं० कुल + रीति)-

वंश-परंपरा, कुल में बहुत दिनों से होते आए आचार-विचार, कुल के व्यवहार, कुलधर्म । उ० वेदविहित कुलरीति, कीर्ति दुर्ह कुलगुर । (जा० १४२) कुलहि-१. कुल को, खांदान को, २. खान्दान के लिए, ३. कुल की । उ० १. देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी । (मा० २। २२।४) ३. कहउ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी । (मा० १।२८४) २) कुलहीन-१. अकुलीन, नीच कुल का, नीच, २. जिसके कुल में कोई न हो, बिना जाति तथा खान्दान का । उ० १. कर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन । (वि० २१२)

कुल (२)-(अर०)-समस्त, तमाम, पूरा ।
 कुलटा-(सं)-बहुत पुरुषों से प्रेम रखनेवाली स्त्री ।
 कुलपति-(सं०) १ घर का मालिक, खांदान का मुखिया, सरदार, २. वह ऋषि जो दस हजार मुनियों तथा ब्रह्मचारियों का भरण-पोषण करे और शिक्षा दे । ३. महंत ।
 कुलवंत-(सं०)-कुलीन, श्रेष्ठ, अच्छे कुल का, अच्छे आचार विचार का ।
 कुलवंति-‘कुलवंत’ का स्त्रीलिंग । दे० ‘कुलवंत’ । उ० कुलवंति निकारहि नारि सती । (मा० ७।१०।१।२)
 कुलह-(फा० कुलाह)-टोपी, आँखों पर की टोपी । उ० कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली । (मा० २।२८।४)
 कुलही-(फा० कुलाह)-लड़कों की टोपी । उ० कुलही चित्र-बिचित्र भंगूली । (गी० १.२८)
 कुलाल-(सं०)-मिट्टी का बरतन बनानेवाला, कुम्हार । उ० मृन-मय घट जानत जगत बिन कुलाल नहि होइ । (स० २०४)
 कुलाहल-दे० ‘कोलाहल’ ।
 कुलि-(अर० कुल)-समस्त, सब, पूरा । उ० हरि-बिरंचि हरपुर सोभा कुलि कोसलपुरी लोभानी । (गी० १।४)
 कुलिश-(सं०)-१. हीरा, हीरा की भाँति कठोर, २. वज्र, बिजली, ३. इंद्र का एक हथियार ।
 कुलिस-दे० ‘कुलिश’ । उ० १. ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की । (वि० ३०) कुलिमहु-वज्र से भी । उ० कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि । (मा० ७।१६ ग)
 कुलीन-(सं०)-१. उत्तम कुल में उत्पन्न, खान्दानी, २. पवित्र, शुद्ध । उ० १. जिमि कुलीन तिय साधु सयानी । (मा० २।१४।१)
 कुलीना-दे० ‘कुलीन’ । उ० १. कहहु कवन मैं परम कुलीना । (मा० १।७।४)
 कुलु-(सं० कुल)-कुल, खान्दान । उ० जौ घरु बरु कुलु होइ अनूप । (मा० १।७।१।२)
 कुवलय-(सं०)-१. नील कमल, कमल, २. कुमुद, कोई ।
 कुवेर-(सं०)-दे० ‘कुवेर’ ।
 कुश-(सं०)-१. कास की तरह की एक घास जो यज्ञादि के समय काम में आती थी। कुश बहुत पवित्र घास मानी जाती है और कर्मकांड की लगभग सभी क्रियाओं में इसकी आवश्यकता पड़ती है । कुशा । २. जल, पानी ३. तीक्ष्ण, तेज, ४. रामचन्द्र का एक पुत्र ।

कुशकेतु-(सं०)-कुशध्वज, राजा जनक के छोटे भाई, जिनकी कन्याएँ मांडवी और श्रुतिकीर्ति भरत और शत्रु-घ्न को ब्याही गई थीं ।
 कुशल-(सं०)-१. भलाई, कल्याण, मंगल, २. चतुर, दक्ष, ३. श्रेष्ठ, भला अच्छा, ४. शिव का एक नाम ।
 कुशा-(सं०)-१. कुश, २. रस्सी ।
 कुष्ठी-(सं० कुष्ठिन)-कोढ़ी, कुष्ठ रोग से पीड़ित । उ० जैसे कुष्ठी की दसा गलित रहत दोउ देह । (स० १७५)
 कुसंग-(सं० कु + संग)-बुरा साथ, निन्दित संग, बुरों का साथ । उ० कठिन कुसंग कुपथ कराला । (मा० १।३।४)
 कुसंगति-दे० ‘कुसंग’ । उ० यह बिचारि तजि कुपथ कुसंगति । (वि० ८४)
 कुस-दे० ‘कुश’ । उ० १. कुस किसलय साथरी सुहाई । (मा० २।६।१)
 कुसकेतु-दे० ‘कुशकेतु’ । उ० कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई । (मा० १।३२।५ छ० २)
 कुसल-दे० ‘कुशल’ । उ० २. खल बृ द निकंद महा कुसल । (मा० ६।११।३ छ० ५)
 कुसल-दे० ‘कुशल’ । उ० २. करिहहिं चाह कुसल कवि मोरी । (मा० २।१२।४)
 कुसलाई-कुशल-मंगल, शुभ समाचार । उ० करि प्रनाम पूछी कुसलाई । (मा० २।६।३)
 कुसलात-कुशल, शुभ-समाचार । उ० गईं समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात । (मा० १।२५)
 कुसलाता-दे० ‘कुसलात’ । उ० दच्छन कछु पूछी कुसलाता । (मा० १।६।३।२)
 कुसली-(सं० कुशल)-सुखी, सानंद । उ० तुलसी करेहु सोइ जतनु जोहि कुसली रहहि कोसलधनी । (मा० २।१५।१।१ छ० १)
 कुसुंभि-(सं० कुसुंभ)-बरें के फूल या केसर के रंग का, लाल और पीला मिला हुआ रंग, जर्द । उ० कुसुंभि चीर तनु सोहहिं भूषन बिबिध सँवारि । (गी० ७।१६)
 कुसुम-(सं०)-१. फूल, पुष्प, २. एक प्रकार का जर्द रंग का पुष्प विशेष, जिससे रंग बनाया जाता है । कुसुंभ । उ० १. बार-बार कुसुमांजलि कृती । (मा० १।२६।२)
 कुसुमहु-फूल से भी । उ० कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि । (मा० ७।१६ ग)
 कुसुमित-(सं०)-खिला हुआ, फूला हुआ । उ० कुसुमित नव तरराज विराजा । (मा० १।८।३)
 कुहड़-दे० ‘कुम्हड़’ ।
 कुहत-(सं० कु + हनन। कुहना = मारना)-मारता, पीड़ता । उ० कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है । (क० ७।१८।१)
 कुहर-(सं०)-छेद, बिल, गड्ढा, गुहा, गुफा । कुहरनि-कुहर में, छेद में । उ० रहे कुहरनि, सखिल नभ उपमा अपर दुरि डरनि । (गी० १।२४)
 कुहवर-दे० ‘कोहवर’ ।
 कुहु-(सं०)-दे० ‘कुहू’ ।
 कुहु-(सं०)-१. अमावस्या की रात, जिसमें चन्द्रमा बिल्कुल न दिखाई दे । २. मोर या कोयल की कक । उ० १

मोहमय कुहू-निसा विसाल काल बिपुल सोयो ।
(वि० ७४)
कुहो-१. मारो, मार डालो, २. मारे, मार डाले । उ० २.
आपु ब्याध को रूप धरि, कुहो कुरंगहि राग । (दो० ३१४)
कूच-(सं० कूच)-प्रस्थान, रवानगी, सफर ।
कूडि-(सं० कूड)-सिर पर रखने का एक टोपी की भाँति
का लोहा, टोप । उ० अँगरीं पहिरि कूडि सिर धरहीं ।
(मा० २१६१३)
कूक-(सं० कू)-ध्वनि, दुःखपूर्ण ध्वनि, मोर या कोयल
की ध्वनि ।
कूकर-(सं० कूकर)-कुत्ता, श्वान । उ० जनि डोलहि
लोखुप कूकर ज्यों, तुलसी भज कोसल राजहि रे । (क०
७३०)
कूकर-दे० 'कूकर' । उ० ताको कहाय, कहै तुलसी, तू
लजाहि न माँगत कूकर कौरहि । (क० ७३२६)
कूच-(सं० कूच)-प्रस्थान, यात्रा, चला जाना, पयान करना ।
उ० तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच सुकाम
को । (वि० १२६)
कूजत-(सं० कूजन)-१. कोमल और मधुर शब्द करते हैं,
२. कूजते हुए, कोमल और मधुर शब्द करते हुए । उ०
१. कूजत कल बहुवरन बिहंगा । (मा० १२१२४)
विशेष-अमर कोकिल तथा कुछ अन्य पक्षियों की मधुर
और कोमल ध्वनि को कूजना कहते हैं । कूजहिं-कूजते हैं,
बोलते हैं । उ० कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा । (मा०
११२६१९)
कूट (१)-(सं०)-१. पहाड़ की चोटी, २. ढेर, समूह,
राशि, ३. हलकी लकड़ी, जिसमें फल लगता है, ४. लोहे
का हथौड़ा, ५. हिरन आदि फँसाने का एक जाल, ६.
लकड़ी के म्यान में छिपा हथियार, ७. छल, धोखा, ८.
मिथ्या, असत्य, ९. अगस्त्य मुनि का एक नाम, १०.
चढ़ा, ११. गुप्त बैर, १२. रहस्य, गुप्त भेद, गूढ़, १३. वह
हास या व्यंग्य जिसका अर्थ आसानी से समझ में न
आवे । १४. निहाई, १५. मँडौती, १६. नकली, कृत्रिम,
१७. निश्चल, १८. विष, १९. धर्मभ्रष्ट, २०. गुप्त मारण
प्रयोग आदि । २१. श्रेष्ठ, २२. कूट नाम की ओषधि ।
उ० १. कमठ पीठि पबि कूट कठोरा । (मा० १३५७२)
२०. जयति पर-जंत्रमंत्राभिचार-असन, कारमनि-कूट-कृत्यादि
हंता । (वि० २६)
कूट (२)-(सं० कूटन)-कूटकर, टुकड़े-टुकड़े करके,
मारकर ।
कूटस्थ-(सं०)-१. सर्वोपरि स्थित, सबसे ऊँचा, २. अचल,
अटल, ३. अविनाशी, ४. अंत न्यास, छिपा हुआ । उ० १.
सर्वरक्षक सर्वभक्षकाध्यक्ष कूटस्थ गूढार्चि भक्तानुकूल ।
(वि० ५३)
कूटि (१)-दे० 'कूट (१)' । उ० १३. करहिं कूटि नारदहि
सुनाई । (मा० ११३४२)
कूटि (२)-(सं० कूटन)-कूटकर, पीटकर ।
कूटी (१)-(सं० कूट)-व्यंग्य वचन ।
कूटी (२)-(सं० कूटन)-कूटी हुई, कुचली या पीसी हुई ।
कूटी (३)-(सं० कूटी)-कूटिया, भोंपड़ी ।

कूट्यो-नष्ट किया, मारा, संहार किया, कूटा । उ० हाँकि
हनुमान कुलि कटक कूट्यो । (क० ६१४६)
कूदि-(सं० स्कुंदन)-कूदकर, उछल कर, उल्लंघनकर, लाँच
कर । उ० कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर । (मा० २११३)
कूदिए-उछलिये, छलाँग मारिए । उ० कूदिए कृपाल तुलसी
सुप्रेम पब्वइ तें । (ह० २३) कूदे-कूद पड़े, उछले, प्रवेश
किया । उ० कूदे जगल विगत श्रम आए जहँ भगवंत ।
(मा० ६१४५)
कूप-(सं०)-१. कुआँ, झनारा, २. छिद्र, छेद, सूराख, ३.
कुंड, गहरा गड्ढा । उ० १. परउँ कूप तुअ बचन पर
सकउँ पूत पति त्यागि । (मा० २१२१) कूपहि-कूप या
कूपँ के, कूपँ को । उ० सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर
कूपहि । (पा० १४०)
कूपक-(सं०)-छोटा कुआँ, कूप । कूपकहिं-छोटे कूप में, कूपँ
में । उ० नरक अधिकार मम घोर संसार-तम-कूपकहिं ।
(वि० २०६)
कूबर-(सं०)-१. पीठ का टेढ़ापन, २. किसी चीज़ का टेढ़ा-
पन, वक्रता । उ० १. कूबर दूटेउ फूट कपारू । (मा०
२१६३३) कूबर की लात-कुछ ऐसा जिससे बिगड़ा काम
भी बन जाय । उ० भइ कूबर की लात, बिधाता राखी
बात बनाइकै । (गी० २१२८) कूबरे-जिनकी पीठ टेढ़ी
हो, वक्र । उ० काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
(मा० २१४)
कूबरी-दे० 'कूबरी' । उ० १. घरी कूबरीं सान बनाई ।
(मा० २३११) कूबरी-दे० 'कूबरी' । १. कैकेयी की दासी
मंथरा, २. कंस की दासी कुब्जा । कूबरीरवन-कूबरी के
साथ रमण करनेवाले, कृष्ण । उ० कूबरीरवन कान्ह कही
जो मधुप सों । (क० ३७)
कूबहा-(सं० कुब्ज)-टेढ़ा ।
कूर (१)-(सं० कूर)-१. निर्दय, भयंकर, २. मूर्ख, अक-
र्मण्य, निकम्मा, ३. नीच, दुष्ट, बुरा, ४. टेढ़ा, वक्र । उ०
४. गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ
की । (मा० ११०० छं० १)
कूर (२) (सं० कूट)-कूड़ा, कतवार, मैल, गंदगी ।
कूरम-दे० 'कूर्म' ।
कूरो-दे० 'कूर(२)' ।
कूर्म-(सं०)-कच्छप, कछुआ । उ० कुलिस कठोर कूर्म पीठ
तें कठिन अति । (क० १११०)
कूल-(सं०)-१. किनारा, तीर, २. समीप, नज़दीक, ३.
नहर, नाला, ४. तालाब । उ० १. दोउ बर कूल कठिन
हट धारा । (मा० २३४२)
कूला-दे० 'कूल' । उ० १. लोक बेद मत मंजुल कूला ।
(मा० १३६६)
कूवरी-दे० 'कूबरी' ।
कृ-कृत्तिका नक्षत्र । उ० उगुन पूगुन वि अज कृ म, आ भ
अ मू गुनु साथ । (दो० ४५७)
कृकलास-(सं०)-गिरगिट, गिरगिटान । उ० विनु अबगुन
कृकलास कूप-मज्जित कर गहि उधरयो । (वि० २३६)
कृकाटिका-(सं०)-कंधे और गले का जोड़ । उ० सुगढ़ पुष्ट
उन्नत कृकाटिका कंठु कंठ सोभा मन मानति । (गी० ७१७)

कृज्जातना-(सं० कृत+यातना)-दुर्दशा किया हुआ, दुःखग्रस्त ।
 कृत-(सं०)-किए हुए, कर लिए । उ० तेन तसं हुतं दत्त-
 मेवाखिलं, तेन सर्वे कृतं कर्मजालं । (वि० ४६) कृत-
 (सं०)-१. किया हुआ, रचित, संपादित, २. तत्संबंधी,
 संबंध रखनेवाला, ३. चार युगों में से प्रथम युग, सत-
 युग, ४. एक प्रकार का दास, ५. चार की संख्या, ६.
 कर्ता, करनेवाला, ७. उपकार, एहसान, ८. किया । उ०
 ८. जलु वरषा कृत प्रगट बुडाई । (मा० ४१६११)
 कृतकाज-(सं० कृतकार्य)-जिसका मनोरथ सिद्ध हो चुका
 हो, कामयाब । उ० मन-मलीन, कलि किलविषी होत
 सुनत जासु कृतकाज । (वि० १६१)
 कृतकृत्य-(सं०)-सफलमनोरथ, निहाल, धन्य । उ०
 मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई । (मा० ११२८६३)
 कृतग्य-दे० 'कृतज्ञ' । उ० तम्य कृतग्य अग्यता भंजन ।
 (मा० ७३४३)
 कृतघ्न-(सं०)-किए उपकार को न माननेवाला, अकृतज्ञ,
 नमक-हराम ।
 कृतयुग-(सं० कृतयुग)-सतयुग, प्रथम युग । उ० कृत-
 युग सब जोगी विज्ञानी । (मा० ७१०३११)
 कृतज्ञ-(सं०)-एहसान माननेवाला, उपकार को स्वीकार
 करनेवाला, कृतविज्ञ ।
 कृतयुग-(सं०)-सत्ययुग, पहला युग । इसकी आयु सत्रह
 लाख अट्ठाइस हजार वर्ष है ।
 कृतांत-(सं०)-१. अंतकर्ता, समाप्त करनेवाला, २. यम,
 धर्मराज, ३. पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्मों का फल, ४.
 सिद्धान्त, ५. मृत्यु, ६. पाप, ७. देवता, ८. दो की
 संख्या । उ० २. आवत देखि कृतांत समाना । (मा०
 ३१२६६)
 कृतार्थ-दे० 'कृतार्थ' । उ० १. भए कृतार्थ जनम जानि
 सुख पावहि । (पा० १४१)
 कृतार्थ-(सं०)-१. कृतकृत्य, सफल, संतुष्ट, २. कुशल,
 निपुण, ३. मुक्त, मोक्ष-प्राप्त ।
 कृति-(सं०)-१. करतूत, करनी, काम, २. आघात, क्षति,
 ३. जादू, इंद्रजाल, ४. कटारी, ५. चुकैल, डाकिनी, ६.
 विप्लव ।
 कृतिनः-(सं०)-पुण्यवान, योग्य, पंडित । उ० धन्यास्ते
 कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् । (मा०
 ४११ श्लो० २)
 कृत्-दे० 'कृत' । कृत, बनाया हुआ । दे० 'कृत' ।
 कृत्य-(सं०)-१. कर्म, वेदविहित कर्म, २. भूत, प्रेत
 जिनका पूजन अभिचार के लिए होता है । ३. बौद्धों के
 मतानुसार प्रतिसंधि, भवांग आदि १४ प्रकार के कृत्य
 होते हैं ।
 कृत्या-(सं०)-१. तंत्रानुसार एक राक्षसी जिसे तांत्रिक
 लोग अपने अनुष्ठान से उत्पन्न करके किसी शत्रु को
 विनष्ट करने के लिए भेजते हैं । यह बहुत भयंकर मानी
 जाती है । हयका वर्णन वेदों तक में आया है । कहीं-कहीं
 इसकी उत्पत्ति बाल से होने का भी वर्णन मिलता है ।
 २. अभिचार, ३. दुष्टा तथा कर्कशा छी । उ० १. जयति

पर-जंत्रमंत्राभिचार-असन, कारमनि-कृत-कृत्यादि हंता ।
 (वि० २६)
 कृत्रिम-(सं०)-१. जो असली न हो, नकली, बनावटी, २.
 रसौत, रसांजन, ३. कचियानमक, एक प्रकार का नमक ।
 कृपण-(सं०)-१. कंजूस, सूम, २. नीच, चुद्र ।
 कृपण-दे० 'कृपण' । उ० १. तै उदार, मैं कृपण, पतित मैं,
 तैं पुनीत सृति गावै । (वि० ११३)
 कृपनाई-'कृपनाई' का बहुवचन । उ० अगम लाग मोहि
 निज कृपनाई । (मा० ११४६१२) कृपनाई-कृपणता,
 कंजूसी । उ० दानि कहाउव अरु कृपनाई । (मा०
 २१३५३)
 कृपणु-दे० 'कृपण' । उ० कृपणु देह, पाइय परो, बिन साधन
 सिधि होइ । (प्र० ७४३३)
 कृपा-(सं०)-१. अनुग्रह, दया, मेहरबानी, २. क्षमा,
 माफी । उ० १. तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी ।
 (वि० ३४) कृपानिधे-हे कृपा के घर, हे कृपा-निधान । उ०
 कहु केहि कहिए कृपानिधे भवजनित बिपति अति ।
 (वि० ११०) कृपापात्र-(सं०)-जिस पर कृपा की जाय,
 कृपा का अधिकारी । उ० जेहि निसि सकल जीव सुतहि
 तव कृपापात्र जन जागै । (वि० ११६) कृपाभाजन-दे०
 'कृपापात्र' । उ० राम कृपाभाजन तुम्ह ताता । (मा०
 ७७४१२) कृपायतन-(सं० कृपा + आयतन)-कृपा के घर,
 अत्यन्त कृपावाले, कृपा के धाम । उ० तौ मैं जाउँ कृपा-
 यतन, सादर देखन सोइ । (मा० ११६१) कृपाहि-१.
 कृपा से ही, २. कृपा के लिए ही । उ० १. रामसीय-रहस्य
 तुलसी कहत राम कृपाहि । (गी० ७१२६) कृपाही-दे०
 'कृपाहि' । उ० १. तात बात फुरि राम कृपाही ।
 (मा० २१२५६१)
 कृपाण-(सं०) तलवार, कटार, छुरा, एक शस्त्र विशेष ।
 कृपान-दे० 'कृपाण' । उ० सूल कृपान परिध गिरि खंडा ।
 (मा० ६४०१४)
 कृपाना-दे० 'कृपाण' । उ० कदिहँ तव सिर कठिन कृपाना ।
 (मा० ५१०११)
 कृपानि-दे० 'कृपाण' ।
 कृपाल-दे० 'कृपालु' । उ० तिनकी गति कासी पति कृपाल ।
 (वि० १३)
 कृपाला-दे० 'कृपालु' । उ० ईस अंस भव परम कृपाला ।
 (मा० ११२८४)
 कृपालु-(सं०)-कृपा करनेवाला, दयालु । उ० सठ सेवक
 की प्रीति रुचि, रखिहहि राम कृपालु । (मा० ११२८ क)
 कृपालुहि-कृपा करनेवाले को । उ० दे० 'केवट पालहि' ।
 कृपालु-दे० 'कृपालु' । उ० कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालु ।
 (मा० २१३५५१)
 कृपिण-दे० 'कृपण' ।
 कृपिन-दे० 'कृपण' । उ० प्रेमहू के प्रेम, रंक कृपिन के धन
 हैं । (गी० २१२६) कृपिनतर-अधिक कृपिण, अपेक्षाकृत
 ज्यादा कंजूस । उ० हमरि बेर कस भयो कृपिनतर । (वि० ७)
 कृमि-(सं०)-छोटा कीड़ा, कीड़ा । उ० तुम्ह सों कपट करि
 कलप कलप कृमि हैंहौं नरक घोर को हौं । (वि० २२६)
 कृश-(सं०) १. दुबला-पतला, क्षीण, २. अल्प, छोटा ।

कृशानु-(सं०)-आग, पावक, अग्नि। कृशानुः-दे० 'कृशानु'।
 उ० मोहविपिन घन दहन कृशानुः। (मा० ३१११३)
 कृषक-(सं०)-१. किसान, खेतिहर, २. हल का फाल।
 कृषानु-दे० 'कृशानु'।
 कृषि-(सं०)-खेती, काश्त, किसानी।
 कृषी-दे० 'कृषि'। उ० कृषी सफल भल सगुन सुभ, समउ
 कहब कमनीय। (प्र० ७।६।७)
 कृष्ण-(सं०)-१. रयाम, काला, २. नीला, ३. वसुदेव के
 पुत्र, कन्हैया, विष्णु का पूर्णावतार, ४. हर महीने का
 पहिला पक्ष, कृष्ण पक्ष, ५. वेदव्यास, ६. अर्जुन, ७.
 कोयल, ८. कौवा, ९. सुरमा, १०. लोहा, ११. एक राक्षस
 का नाम, १२. कलियुग, १३. चन्द्रमा का धब्बा, १४.
 सबको आकर्षित करनेवाला। उ० ३. तुलसी को न होइ
 सुनि कीरति कृष्ण कृपालु-भगतिपथ राजी। (कृ० ६१)
 विशेष-यदुवंशी वसुदेव के पुत्र के रूप में कृष्ण नाम से
 विष्णु का पूर्ण अवतार हुआ था। इनकी माँ का नाम
 देवकी था जो भोजवंशी कन्या थीं। कृष्ण के मामा कंस
 ने वसुदेव और देवकी को मृत्यु-भय से बंदी बना रखा
 था। वहीं कारागार में कृष्ण का जन्म हुआ। गोकुल में
 नंद के घर इनका पालन-पोषण हुआ। बाद में कंस ने
 कृष्ण को मरवा डालने के बहुत से उपाय किए पर अंत में
 स्वयं वही मारा गया। रुक्मिणी से कृष्ण का विवाह हुआ।
 महाभारत के युद्ध में कृष्ण पांडवों के पक्ष में थे। एक
 बहेलिये के तीर लगने से इनकी मृत्यु हुई। ये विष्णु के
 दस अवतारों में से आठवें माने जाते हैं। इनके पुत्र का
 नाम प्रद्युम्न था जो कामदेव का अवतार था। इनका युग
 द्वार है। कृष्णतनय-कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न जो कामदेव
 का अवतार था।
 कृष्णा-(सं०)-१. कालेरंग की स्त्री, २. द्रोपदी जो जन्म के
 समय काली थी अतः इस नाम से पुकारी गई।
 कृष्ण-दे० 'कृष्ण'। उ० ३. जब जदुवंस कृष्ण अवतारा।
 (मा० १।८।१) कृष्णतनय-दे० 'कृष्णतनय'। उ०
 कृष्णतनय होइहि पति तौरा। (मा० १।८।१)
 कृस-दे० 'कृश'। उ० १. कृस तनु सीस जटा एक बेनी।
 (मा० ५।८।४)
 कृसानु-दे० 'कृशानु'। उ० हेतु कृसानु भातु हिमकर को।
 (मा० १।१६।१) कृसानुहि-अग्नि को, पावक को। उ०
 दनुज गहन घन दहन कृसानुहि। (मा० ७।३।०४)
 कृसानू-दे० 'कृशानु'। उ० को दिनकर कुल भयउ कृसानू।
 (मा० २।५।४)
 केंचुरि-(सं० कंचुक)-सर्प आदि के शरीर पर की खोल जो
 प्रति वर्ष आप से आप अलग हो जाती है। उ० तुलसी
 केंचुरि परिहरे होत साँपहूँ डीठि। (दो० ८२)
 केंचुरी-दे० 'केंचुरि'। उ० तजे केंचुरी उरग कहँ होत अधिक
 अति दीठि। (सं० १३०)
 के (१)-(सं० कृत)-संबंध कारक का चिह्न, का।
 के (२) (सं० कः)-१. कौन, किसने, २. क्या। उ० १.
 कहहु कहिहि के कौन्ह भलाई। (मा० २।१८।३)
 केई-(सं० कः) किसने, कौन। उ० अनहित तोर प्रिया केई
 कीन्हा। (मा० २।२६।१)

केइ-दे० 'केई'।
 केउ-कोई, कोई भी। उ० मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा।
 (मा० २।६।३)
 केकई-दे० 'कैकयी'।
 केकई-दे० 'कैकयी'। उ० काई कुमति केकई केरी। (मा०
 १।४।१४)
 केकय-(सं०)-काश्मीर या उसके आस-पास के देश का प्रा-
 चीन जनपद। केकयी इसी देश के राजा की राजकुमारी थी।
 केकि-(सं० केकिन्)-मोर, मयूर। उ० केकिंठ दुति
 स्यामल अंगा। (मा० १।३।१६।१) केकिहि-मोर को। उ०
 सुंदर केकिहि पेखु, बचन सुधासम असन अहि। (मा०
 १।१६।१ ख) केकी-दे० 'केकि'। उ० तुलसी कामी कुटिल
 कलि, केकी काक अनंत। (वै० ३२)
 केत-(सं०)-१. घर, भवन, २. केतु, ध्वजा, ३. बुद्धि।
 केतकि-दे० 'केतकी'। उ० सीय बरन सम केतकि अति हिय
 हारि। (वै० ३२)
 केतकी-(सं०)-एक प्रकार का छोटा सा पौधा जिसकी
 पत्तियाँ लंबी नुकीली और काँटदार होती हैं। बरसात में
 इसमें फूल लगते हैं, जो लंबे सफेद रंग के बहुत सुगंधित
 होते हैं। प्रसिद्धि के अनुसार इस पर भौरा नहीं बैठता।
 इसका पुष्प शिवजी को नहीं चढ़ाया जाता।
 केतन-(सं०)-१. निर्मंत्रण, आह्वान, २. ध्वजा, झंडा, ३.
 चिह्न, ४. घर, ५. क्रीड़ा, ६. काम।
 केता-(सं० कियत्)-कितना, किस मात्रा का। उ० ग्यानहि
 भगतिहि अंतर केता। (मा० ७।११।६) केते-(सं०
 कियत्)-कितने, किस संख्या में, बहुत। उ० देखे जिते
 हते हम केते। (मा० ३।१६।२)
 केतिक-(सं० कति + एक)-कितना, कितने, किस कदर।
 उ० कालि लगन भलि केतिक बारा। (मा० २।११।२)
 केतु-(सं०)-१. ज्ञान, २. दीप्ति, प्रकाश, ३. ध्वजा, पताका,
 विष्णु के पैर का पताका, ४. निशान, चिह्न, ५. पुराणा-
 नुसार एक राक्षस कबंध। यह राक्षस समुद्र मंथन के
 समय देवताओं के साथ बैठकर अमृतपान कर गया था,
 इसलिए विष्णु ने इसका सर काट डाला। अमृत-पान के
 कारण राक्षस अमर हो गया था अतः सिर और कबंध
 दोनों जीवित रहे। सिर का नाम राहु हुआ और कबंध का
 केतु। पान करते समय सूर्य और चंद्रमा ने पहचनवाया
 था अतः अब तक ये उनके ग्रहण का कारण बनते हैं।
 ६. एक पुच्छल तारा, जिसका उदय अशुभ माना जाता
 है। ७. नवग्रहों में एक ग्रह, ८. श्रेष्ठ, शिरोमणि। उ०
 ३. कुलिस-केतु-जव-जलज रेख वर। (वि० ६३) ६. उदय
 केतु सम हित सबही के। (मा० १।४।३)
 केतुमती-(सं०)-रावण की नानी अर्थात् सुमाली राक्षस
 की पत्नी का नाम।
 केतुजा-(सं० सुकेतु + जा)-सुकेतु यक्ष की पुत्री ताड़का
 राक्षसी। उ० बाहुक-सुबाहु नीच, लीचर-मरीच मिलि,
 मुँहपीर केतुजा, कुरोग-जातुधान हैं। (हं० ३६)
 केतू-दे० 'केतु'। उ० ६. प्रगट भये नभ जहँ तहँ केतू।
 (मा० ६।१०।२।४) ८. कहि जय जय जय रघुकुल केतू।
 (मा० १।२८।४)

केतो-कितना । उ० काहू कान कियो न में कहो केतो कालि है । (क० ११०)

केदली-(सं० कदली)-केले का पेड़ ।

केदार-(सं०)-१. खेत के छोटे छोटे भाग, कियारी, २. आलवाला, थाला, थाँवला, ३. हिमालय का एक शिखर जहाँ केदारनाथ नाम का शिवलिंग है । उ० २. कनक कुंभर-केदार, बीज सुंदर सुरमनिवर । (क० ७१११५)

केन-(सं०)-१. किससे, किसी से, २. एक प्रसिद्ध उपनिषद् । उ० १. जेन केन विधि दीन्हें दान करइ कल्याण । (मा० ७११०३ ख)

केयूर-(सं०)-बाँह में पहनने का एक आभूषण, बिजावट, अंगद । उ० सुभग श्रीवल्ल केयूर कंकन हार किंकिनी रटनि कटित रसालं । (वि० ५१)

केर-(सं० कृतः, प्रा० केरो)-संबंध कारक का चिह्न, का, की, के । विशेष-केर केरे, या केरो आदि संबंध सूचक चिह्न केवल अवधी में प्रयुक्त होते हैं । उ० निसि सुंदरी केर सिंगारा । (मा० ६१२१२)

केरा (१)-दे० 'केर' । उ० परम मित्र तापस नृप केरा । (मा० ११७०१२) केरी-दे० 'केर', की । उ० सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी । (मा० २१७१३) केरे-दे० 'केर', के । उ० समय सिंधु गहि पद प्रभु केरे । (मा० १५६११)

केरा (२)-सं० कदल-केला । उ० सफल रसाल पूगफल केरा । (मा० २१६१३)

केरि-दे० 'केर' । उ० नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकह केरि । (मा० २११२)

केरो-दे० 'केर' । उ० और और साहिबी होति है ख्याल कालकलि केरो । (वि० १४६)

केलि-(सं०)-१. खेल, क्रीड़ा, २. रति, मैथुन, स्त्री-प्रसंग, ३. हँसी, मजाक, ४. पृथ्वी, धरित्री । उ० १. भोजन सयन केलि लारिकाई । (मा० २११०३)

केलिगृह-(सं०)-१. नाटक का घर, रंगशाला, २. कोहबर, ३. स्त्री-प्रसंग करने का सुसज्जित भवन । उ० २. सोभा सील सनेह सोहावनो, समउ केलिगृह गौने । (गी० ११०५)

केवट-(सं० कैंवत्त)-१. क्षत्रिय पिता और वैश्य माता से उत्पन्न जाति-विशेष, मल्लाह, निषाद । २. राम का भक्त गुहाराज या निषाद, जिसने अपनी नाव पर उन्हें गंगा पार किया था । उ० २. सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे । (मा० २११००)

केवटपालहि-केवट के पालनेवाले राम को, भगवान को । उ० सोफि कृपाछुहि देइगो केवटपालहि पीठि ? (दो० ४६) केवटहि-केवट का, मल्लाह का । उ० सोह कृपाछु केवटहि निहोरा । (मा० २११०१२)

केवटु-दे० 'केवट' । उ० मागी नाव न केवटु आना । (मा० २११०१२)

केवल-दे० 'केवल' । उ० १. हुरीयमेव केवलं । (मा० ३१४ कृ० ६) केवल-(सं०)-१. एकमात्र, अकेला, सिर्फ, २. शुद्ध, पवित्र, ३. असहाय, ४. एक प्रकार का ज्ञान, ५. निश्चित । उ० १. जौ जप-जाप-जोग-ब्रत-बरजित केवल प्रेम न चहते । (वि० ६७)

केश (१)-(सं०)-१. ररिम, किरण, २. बाल, कच, ३.

ब्रह्म की एक शक्ति, ४. वरुण, ५. विश्व, संसार, ६. विष्णु, ७. सूर्य, ८. संपूर्ण ।

केश (२)-(सं० क + ईश)-१. ब्रह्म और महादेव । क = ब्रह्मा, ईश = महादेव । २. पृथ्वी के ईश, भगवान । उ० १. केशवं क्लेशहं केश वंदित पदद्वंद्व-मंदाकिनी-मूलभूतं । (वि० ४६)

केशरिणि-सिंह की स्त्री, शेरनी । उ० शुभ निःशुभ कुंभीश रणकेशरिणि, क्रोध बारिधि बैरिवृंद बोरे । (वि० १५)

केशरी-दे० 'केशरी' ।

केशरीकुमार-दे० 'केशरीकुमार' ।

केशवं-दे० 'केशव' । उ० १. दे० 'केश (२)' । केशव (सं०)-१. विष्णु का एक नाम, कृष्ण, २. सुंदर बाल-वाला ।

केस (१)-दे० 'केश' । उ० १. जयति मंदोदरी केस कर्षन विद्यमान-दसकंठ-भटसुकुट-मानी । (वि० २६)

केस (२)-दे० 'केश (२)' ।

केसरि-दे० 'केशरी' । केसरिहि-केशरी को, सिंह को । उ० हरष विपाद न केसरिहि, कुंजर-गंज निहार । (दो० ३८१)

केसरिकिसोर-दे० 'केशरीकिसोर' । उ० नाम कलिकामतर केसरिकिसोर को । (ह० ६)

केशरी-(सं० केशरिच)-१. सिंह, शेर, २. घोड़ा, ३. हनुमान के पिता का नाम । उ० १. दे० 'केशरीसुवन' ।

केशरीकिसोर-(सं० केशरीकिसोर)-हनुमान ।

केशरीकुमार-(सं०)-हनुमान । उ० सकैं ना बिलोकि भेष केशरीकुमार को । (क० ११२)

केशरीसुवन-(सं०-केशरी+सुत)-केशरी के पुत्र हनुमान । उ० जयति निर्भरानंद-सदोह, कपिकेशरी केशरी-सुवन सुचनैकभर्ता । (वि० २६)

केशव-दे० 'केशव' । उ० १. केशव कहि न जाय का कहिए ? (वि० १११)

केसा-दे० 'केश' । उ० २. अवन समीप भए सित केसा । (मा० २१२४)

केहरि-(सं० केशरी)-१. सिंह, शेर, २. घोड़ा, हनुमान के पिता केशरी । उ० १. मनहुँ सुगी सुनि केहरि नादू । (मा० २१५४२)

केहरी-दे० 'केहरि' । उ० १. आयउ कपि केहरी असंका । (मा० ६३६१२)

केहि-दे० 'केहि' । उ० ३. असि मति सठ केहि तोहि सिखाई । (मा० ६१०११)

केहि(१)-(सं० कः)-१. किस, कौन, २. किसे, कौन को, ३. किसी ने, किसने, ४. कोई भी । उ० १. जिमि गर्व तकह लेउँ केहि भाँती । (मा० २१३१२)

केहि (२)-(सं० कच्च)-'के' का कर्म, संप्रदान तथा अधि-करण कारक में अवधी रूप ।

केहीं-दे० 'केहि' । उ० १. सो मैं बरनि कहौं विधि केहीं । (मा० २१३६१४)

केही-दे० 'केहि' । उ० २. उतर देउँ केहि विधि केहि केही । (मा० २१८११२)

केहूँ-(सं० कथम्) १. किसी प्रकार, २. कहीं भी ।

कैहू-१. किसी को, २. कोई, ३. किसी भी, किसी। उ०
१. काहुहि लात चपेटन्हि कैहू। (मा० ६।४४४)
कै-दे० 'कै (१)। उ० १. नर नाग सुरासुर जाचक जो
तुम सों मन भावत पायो न कै। (क० ७।३८)
कै (१)-(सं० कः)-१. कौन, किसने, २. किसके। उ० कहु
जइ जनक धनुष कै तोरा। (मा० १।२७०।२) २. तुलसी
प्रभु तरु तर बिलंब किए प्रेम कनौड़े कै न। (गी० २।२४)
कै (२)-(सं० कति < प्रा० कइ)-कितना, कितनी संख्या में।
कै (३)-(सं० किं)-या, अथवा, या तो। उ० बल कैधौ
बीररस, धीरज कै, साहस, कै तुलसी सरीर धरे सबनि
को सार सो। (ह० ४)
कै (४)-(सं० कृतः)-का, की, के, संबंध कारक का चिह्न।
उ० घोबी कै सो ककर न घर को न घाट को। (क०
७।६६) रामकथा कै मिति जग नाहीं। (मा० १।३३।३)
कै (५)-(फा० किं)-कि। उ० तुलसी सरल भाय रघुराय
माय मानी, काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है।
(क० २।३)
कै (६)-(सं० कृते)-के लिए, को।
कै (७)-(सं० कृ)-करके, काम करके, काम कर। उ०
गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै। (क० २।६)
कै इ-दे० 'कैकेई'। उ० भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। (मा०
२।३७।२) कैकइहि-कैकेई को, रानी केकयी को। उ०
जहँ तहँ देहि कैकइहि गारी। (मा० २।४७।१)
कैकइ-दे० 'कैकेई'। उ० साँक समय सानंद नृपु गयउ
कैकइ गेहँ। (मा० २।२४)
कैकय (१)-(सं० केकय)-आज के काश्मीर के पास का
प्राचीन देश या जनपद। कैकेयी यहीं की राजकुमारी
थी। उ० बिस्वविदित एक कैकय देसू। (मा० १।१२३।१)
कैकय (२)-(सं० कैकेय)-केकय देश का राजा। कैकेयी
के पिता। कैकयनंदिनि-कैकय की पुत्री, कैकेयी। उ०
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। (मा० २।१२३।१)
कैकयसुता-कैकेयी। उ० कैकयसुता सुमित्रा दोउ। (मा०
१।१६५।१)
कैकेई-दे० 'कैकेई'।
कैकेई-(सं० कैकेयी)-राजा दशरथ की सबसे छोटी रानी और
भरत की माता जिसने अपनी दासी मंथरा के बहकाने से
रामचंद्र को बनवास दिलवाया था। यह केकयराज की
पुत्री और अग्निन्ध सुन्दरी थी। उ० गए जेहिं भवन भूप
कैकेई। (मा० २।३८।३)
कैकेय-(सं०)-कैकय गोत्र उत्पन्न पुरुष, केकय देश का राजा।
कैकेयी-(सं०)-दे० 'कैकेई'।
कैटभ-(सं०)-मधु नामक दैत्य का छोटा भाई जिसे विष्णु
ने मारा था। उ० अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे। (मा०
६।६।४) कैटभारे-(सं० कैटभ + अरि)-कैटभ को मारने-
वाले भगवान्, हे भगवान्! उ० बहत जय जय जय
जयति कैटभारे। (गी० १।३६)
कैतव-(सं०)-१. घोखा, छल, २. जुआ, धूर्त, क्रीड़ा, ३.
एक मणि, ४. धूर्ता।
कैधौ-(सं० किं + ?)-अथवा, या, वा, किधौ। उ० सुखमा
को बेह कैधौ, सुकृत सुमेरु कैधौ। (क० ७।१३६)

कैर-(?)-कोई।
कैरव (१)-(सं०)-१. कुमुदिनी, कमलिनी, कोई, २. सक्त दे
कमल, ३. शत्रु, ४. जुआरी, ५. धूर्त। उ० १. सखी
मनहुँ विधु-उदय मुदित कैरव-कली। (जा० १।२४)
कैरव (२)-(सं० कैरवी)-चाँदनी रात।
कैलास-(सं०)-१. हिमालय की एक चोटी का नाम।
पुराणों के अनुसार यह शिवजी का स्थान है। शिव-
लोक। एक पर्वत जिस पर शिवजी निवास करते हैं। २.
कुबेर का निवास। उ० १. कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि
जाइ उठाइ। (मा० १।१७६) कैलासहि-कैलास पर,
कैलास पर्वत के ऊपर। उ० जबहि संभु-कैलासहि आए।
(मा० १।१०३।२)
कैलासा-दे० 'कैलास'। उ० १. गनन्ह समेत बसहि
कैलासा। (मा० १।१०३।३)
कैलासू-दे० 'कैलास'। उ० १ परम रम्य गिरिबहू कैलासू।
(मा० १।१०२।४)
कैवल्य-(सं०)-१. शुद्धता, निर्लिप्तता, २. मोक्ष, निर्वाण,
मुक्ति, अपवर्ग। उ० २. सो कैवल्य परमपद लहई।
(मा० ७।११६।१) कैवल्यपति-मोक्ष के स्वामी, भगवान्।
उ० कैवल्यपति, जगपति, रमापति, प्रानपति
गति कारनं। (वि० १।३६) कैवल्यम्-दे० 'कैवल्य'। उ०
२. यो द्वाति सतां शंभुः कैवल्यमति दुर्लभम्। (मा०
६।१।२।३)
कैसउ-कैसा भी, किसी प्रकार का भी। कैसहु-दे०
'कैसउ'। कैसा-(सं० कीदृश)-१. किस प्रकार का, किस
दङ्ग का। २. की भाँति। उ० १. तुम्हहि रघुपतिहि अंतर
कैसा। (मा० ६।६।३) कैसी-'कैसा' का कर्लिंग। दे०
'कैसा'। किस प्रकार की। उ० भरतदसा तेहि अवसरं
कैसी। (मा० २।२३।४) कैसे-दे० 'कैसे'। उ० १. उभय
बीच सिय सोहति कैसें। (मा० २।१२३।१) कैसे-१.
किस प्रकार, किस प्रकार से, २. क्यों, किस लिए। उ०
१. कैसे कहै तुलसी बृषासुर के बरदानि ! (क० ७।१७०)
कैसेउ-कैसे भी, किसी प्रकार भी। उ० कैसेउ पाँवर
पातकी जेहि लई नाम की ओट। (वि० १।६१) कैसेहुं-
१. किसी भी प्रकार से, कैसे भी। २. कैसा भी, किसी
भी प्रकार का। उ० १. कैसेहुं नाम लेहि कोउ पामर
सुनि सादर आगे हूँ लेते। (वि० २।४१) कैसेहु-दे०
'कैसेहुं'। उ० २. ज्ञान परसु है मधुप पठायो बिरह बेलि
कैसेहु कठिनाई। (क० २।६)
कैसो-१. का सा, की भाँति, की तरह, के समान, २. कैसा,
किस प्रकार का, किस प्रकार से। उ० १. नीच निसाचर
बैरी को बंधु विभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो। (क० ७।४)
कैहुं (१)-(सं० कुहः)-किसी जगह, किसी स्थान पर।
कैहु (२)-(?)-१. किसी तरह, किसी प्रकार, २. किसी
भी। उ० १. पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहु कहुँ।
(क० ७।१३५)
कोछे-दे० 'कोछ'। गोद में। उ० गयउ तुम्हारेहि कोछे
घाली। (मा० ७।१८।१)
को (१)-(सं० कः)-१. कौन, किसने, २. क्या, ३. किससे,
४. कैसे। उ० १. उपमा को को है ? (गी० १।८०)

को (२)-(सं० कच)-के लिए, को, कर्म तथा संप्रदान कारक का चिह्न । उ० उपमा को को है ? (गी० १।८०)
 को (३)-(सं० कृतः)-का, के, संबंध कारक का चिह्न । उ० मनहूँ को मन मोहूँ । (गी० १।८०)
 कोइ-दे० 'कोई' । उ० १. गुप्त रूप अवतरेण प्रभु गएँ जान सबु कोइ । (मा० १।४८ क) कोइ कोई-बिरले, कम लोग, शायद ही कोई । उ० कहै कौन रसन मौन जाने कोइ कोई । (कृ० १) कोई-(सं० कोपि)-१. ऐसा एक जो अज्ञात हो, न जाने कौन एक, २. बहुत में से चाहेजो एक, ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो । ३. एक भी, एक भी आदमी, ४. बिरले ही, बहुत कम, ५. लोग । उ० ३. यह कुचालि कछु जान न कोई । (मा० २।२३।४)
 कोउ-दे० 'कोई' । उ० १. सबु कोउ कहइ रासु सुठि साधु । (मा० २।३२।३) कोउ कोउ-दे० 'कोइ कोई' । उ० यह प्रसंग जानइ कोउ कोउ । (मा० ७।४।२) कोउ-दे० 'कोई' । उ० ६. मिलत धरें तन कह सबु कोउ । (मा० २।११।१।१)
 कोए-(सं० कोय)-आँख के देखे, आँख के कोने । उ० हचिर पइक-लोचन जुगतारक स्याम, अरुन सित कोए । (गी० ७।१२)
 कोक-(सं०)-१. चकवा पक्षी, चक्रवाक, सुरझाव, २. विष्णु, ३. भेड़िया, ४. रतिशाख के एक प्रसिद्ध आचार्य, ५. मेढक । उ० १. मनहूँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि । (मा० २।८६) कोकी-कोक या चकवा की स्त्री । उ० दे० 'कोक' ।
 कोकनद-(सं०)-१. लाल कमल, कमल, २. लाल कुमुद । उ० १. लोक-लोकप-कोक-कोकनद-सोकहर-इंस हनुमान कल्याणकर्ता । (वि० २६)
 कोका-१. चकवा-चकई, २. दे० 'कोक' । उ० १. निसि विडु नहिँ अवलोकहिँ कोका । (मा० १।८५।३)
 कोकिल-(सं०)-कोयल पक्षी, कोकिला । इसकी चाखी बड़ी मधुर होती है । उ० गावहिँ मंगल कोकिल बयनी । (मा० २।८।४) कोकिलन-कोकिल का बहुवचन, कोयलें । उ० तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन । (दो० ५६४)
 कोकिला-(सं०)-कोयल, पिक । उ० मधुप निकर कोकिला प्रबीना । (मा० ३।३०।५)
 कोकू-दे० 'कोक' । उ० ससि कर लुअत विकल जिमि कोकू । (मा० २।२३।२)
 कोखि-(सं० कुचि)-१. उदर, पेट, जठर, २. गर्भ, गर्भाशय । उ० २. कौसिला की कोखि पर तोषि तन वारिये री । (का० १।१२) मु० कोखि जुडानी-पुत्रवती हुई । उ० आनंद अवनि, राजशानी सब माँगहु कोखि जुडानी । (गी० १।४)
 कोछ-(सं० कच)-१. गोद, २. स्त्रियों के अंचल का एक कोना ।
 कोट (१)-(सं०)-१. दुर्ग, गढ़, किला, २. शहर-पनाह, प्राचीर, परकोटा, ३. राजमहल । उ० २. कनक कोट कर परम प्रकासा । (मा० ५।३। छं० १)
 कोट (२)-(सं० कोटि)-समूह, मुंड ।
 कोटर-(सं०) पेड़ का खोखला भाग, खोखली जगह, पेड़

का तने आदि का वह खोखला भाग जिसमें पक्षी रहते हैं । उ० महा बिटप कोटर महुँ जाई । (मा० ७।१०।७।४)
 कोटि-(सं०)-१. सौ लाख की संख्या, करोड़, २. अमित, मुंड, बहुत अधिक, ३. धनुष का अगला भाग, ४. त्रिभुज का एक भुजा, ५. किसी अस्त्र की नोक या धार, ६. उत्तमता, उत्कृष्टता, ७. किसी वादविवाद का पूर्वपक्ष, ८. वर्ग, श्रेणी, दर्जा । उ० २. कहइ करहु किन कोटि उपाया । (मा० २।३३।३) कोटिक-(सं० कोटि)-करोड़ों, अमित, बहुत । उ० गिरिसम होहिँ कि कोटिक गुंजा । (मा० २।२८।३) कोटिन-करोड़ों, अनेक । कोटिन्ह-करोड़ों, कोटि का बहुवचन । उ० हय गय कोटिन्ह केलि मुग पुर पसु चातक मोर । (मा० २।८३) कोटिहुँ-करोड़ों भी, असंख्य भी । उ० जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी । (मा० १।१००।४) कोटिहु-करोड़ों भी । उ० मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि, कोटिहु जतन न जाई । (वि० ८२) कोटिहुँ-करोड़ों भी, अनेक भी । उ० जेवँत जो बख्यो अनंदु सो मुख कोटिहुँ न परै कख्यो । (मा० १।६३। छं० १) कोटिहु-दे० 'कोटिहु' ।
 कोटी-दे० 'कोटि' ।
 कोठरी-(सं० कोष्ठक)-छोटा कमरा, छोटा घर । उ० अघ अवगुनहिँ की कोठरी करि कृपा मुदसंगल भरी । (गी० ३।१७)
 कोठि-(सं० कोष्ठ)-१. अनाज रखने का कोठिला, बखार, गंज, २. ढेर, समूह । उ० २. सोक कलंक कोठि जधि होइ । (मा० २।५०।१)
 कोठिला-(सं० कोष्ठ) अनाज भरने का बड़ा सा कच्ची मट्टी का बना बतन । कच्ची बखार । उ० लुपकि न रहत, कख्यो कछु चाहत, हूँहै कीच कोठिला घोए । (कृ० १।१)
 कोढ़-(सं० कुष्ठ)-एक प्रकार का रक्त और त्वचा संबंधी रोग जो प्रायः संक्रामक और पुरुषाणुक्रमिक होता है । वैद्यक शास्त्रानुसार यह १८ प्रकार का होता है । गलित कोढ़ में अंग सड़-गलकर गिरने लगता है । कुष्ठ रोग । कोढ़ की खाजु-[कोढ़ तो स्वयं अत्यंत दुखदायी रोग है, उसमें भी खुजली हो जाय तो परिस्थिति और भी दुखदायी हो जाती है] दुःख परं दुःख, विपत्ति पर विपत्ति । उ० एक तो कराल कलिकाल सुल-सुल तामें, कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की । (क० ७।१७७)
 कोतल-(फा०)-१. सजा-सजाया घोड़ा, जिस पर कोई सवार न हो, जल्सी घोड़ा, २. राजा की सवारी का घोड़ा । उ० २. कोतल संग जाहिँ डोरिआए । (मा० २।२०।३।२)
 कोतवाल-(फा० कुतवाल, तु० सं० कोट्टपाल) नगर में पुलिस का एक बड़ा अफसर । उ० कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि, सभासद गनप से अमित अनूप हैं । (क० ७।१७१)
 कोदंड-(सं०)-धनुष, कमान । उ० कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं । (मा० १।२६।१। छं० १)
 कोदंडा-दे० 'कोदंड' । उ० कटि निपंग कर सर कोदंडा । (मा० १।१४।७।४)
 कोदव-(सं० कोद्रव)-कोदो, एक प्रकार का धान जिसका

खाना बुरा समझा जाता है। वैद्यक के अनुसार भी इसका खाना बर्जित है। उ० फरद कि कोदव बालि सुसाली। (मा० २।२६१।२)

कोदो-दे० 'कोदव'। उ० हुतो ललात कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदो-कनै। (गी० १।४०)

कोन (१)-(सं० कोण)-कोना।

कोन (२)-(प्रा० कवण)-कौन।

कोना-किनारा, छोर, गोशा, कोण। उ० लोचन जलु रह लोचन कोना। (मा० १।२५६।१)

कोने (१) कोना, किनारा, एक छोर। उ० तैसिये ललित उरमिला, परसपर लखत सुलोचन-कोने। (गी० १।१०५)

कोने (२)-(प्रा० कवण)-किसको, किसे।

कोप-(सं०)-क्रोध, गुस्सा। उ० जब तेहिं जानेउ मरम तब आप कोप करि दीन्ह। (मा० १।१२३)

कोपर (१)-(सं० कपाल)-किसी धातु का बड़ा थाल, जिसमें एक ओर उसे सरलता से उठाने के लिए कुंदा लगा रहता है। उ० कनक कलस भरि कोपर थारा। (मा० १।३०५।१)

कोपर (२)-१. कोपल, अंकुर, कल्ला।

कोपहिं-क्रोध करे, क्रोध करते हैं। उ० जौ हरि हर कोपहिं मनमाहीं। (मा० १।१६६।२) कोपि (१)-क्रोधित होकर। उ० सुनत कोपि कपि कुंजर धाप। (मा० ६।४७।१)

कोपिहिं-१. क्रोधित होंगे, २. क्रोधित हुए। उ० १. जबहिं समर कोपिहिं रघुनाथक। (मा० ६।२७।३) कोपे-१. क्रोधित हुए, २. कुपित, क्रोधित। उ० १. रिपु परम कोपे जानि। (मा० ३।२०। छं० ४) कोपेउ-कुड़ हुए, कुपित हुए। उ० कोपेउ समर श्रीराम। (मा० ३।२०। छं० १)

कोपा-दे० 'कोप'। उ० सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा। (मा० ७।६।२)

कोपि (२)-१. कोई, कोई भी, २. कौन। उ० १. गुन दूषक आत न कोपि गुनी। (मा० ७।१०१।५)

कोपी-(सं० कोपिन्)-कोप करनेवाला, क्रोधी। उ० रन दुमैद रावन अति कोपी। (मा० ६।२२।२)

कोपु-दे० 'कोप'। उ० बीरभद्रु करि कोपु पठाए। (मा० १।६५।१)

कोविद-(सं० कोविद्)-पंडित, विद्वान्। उ० सत्यसार कवि कोविद जोगी। (मा० ३।१५।१)

कोमल-दे० 'कोमल'। उ० १. कपालु शील कोमलं। (मा० ३।४। छं० १) कोमल-(सं०)-१. नरम, मुलायम, नाञ्जक, २. अपरिपक्व, कच्चा, ३. सुंदर, ४. स्वर का एक भेद, ५. मन्त्र। उ० १. सुनि उमा बचन विनीत कोमल सकल अबला सोचहीं। (मा० १।६७। छं० १) कोमलौ-दोनों कोमल। उ० कोसलेन्द्र पदकंजमंजुलौ कोमलाधज महेश-वन्दिता। (मा० ७।१। श्लो० २)

कोमलता-(सं०)-१. मृदुलता, नरमी, २. मधुरता, नम्रता। उ० १. मति थोरि कठोरि न कोमलता। (मा० ७।१०२।१)

कोमलताई-दे० 'कोमलता'। उ० १. भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। (मा० ७।११।३)

कोय-(सं० कोपि)-१. कोई, २. कोई ही, शायद ही कोई।

उ० १. सकल काम पूरन करै जानै सब कोय। (वि० १०८) २. तुलसी कहत सुनत सब समुक्त कोय। (ब० ६३)

कोये-(सं० कोण)-आँख का कोना। उ० तुलसी नेवछावरि करति मातु अति प्रेम-मगन मन, सजल सुलोचन कोये। (गी० १।१२)

कोर (१)-(सं० कोण)-१. किनारा, छोर, २. कोना, अंतराल, ३. बैर, द्वेष, ४. दोष, ऐब, ५. पंक्ति, कतार। उ० २. लोकपाल अनुकूल बिलोकियो चहत बिलोचन-कोर को। (वि० ३।१)

कोर (२)-(सं० कवल)-कलेवा, झाक, मजदूरों या कुलियों को दिए जानेवाला जलपान।

कोरि (१)-(सं० कोण)-किनारा।

कोरि (२)-(सं० कुंड)-कोदना = खोदना, कुरेदना)-कुरेदकर, खोदकर, खुरचकर, झीलकर। उ० चीरि कोरि पचि रचे सरोजा। (मा० १।२८८।२)

कोरी (१)-(सं० कोटि)-करोड़, अनेक। उ० रघुपति विमुख जतन कर कोरी। (मा० १।२००।२)

कोरी (२)-(सं० कोडी)-बीस।

कोरी (३)-(?) -हिन्दू जुलाहा, कपड़े बुननेवाली एक जाति।

कोरी (४)-(?) -जो काम में न लाई गई हो। अछूती।

कोरे-(?) -कोरा, सादा, जिस पर कुछ न किया गया हो, अछूता। उ० सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे। (मा० १।६।६)

कोरे-दे० 'कोरे'।

कोल-(सं०)-१. एक जंगली जाति, भील, २. सूअर, शूकर, ३. गोद, उस्संग, ४. शनैश्चर ब्रह्म, ५. बेर। उ० १. उलटा जपत कोल ते भए ऋषिराउ। (ब० ५४) २. कोल कराल दसन छुबि गाई। (मा० १।१५६।४) कोलनी-भीलनी, शबरी। उ० आगे परे पाहन कृपा, किरात, कोलनी, कपीस निसिचर अपनाए नाए माथजू। (क० ७।१६) कोलन्दि-कोलों ने, भीलों ने। उ० सब समाचार किरात कोलन्दि आइ तेहि अवसर कहे। (मा० २।२२६। छं० १) कोलिनि-कोल जाति की स्त्री। उ० कोलिनि कोल किरात जहाँ तहाँ बिलखात। (गी० ३।२)

कोला-दे० 'कोल'। उ० २. दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। (मा० १।२६०।१)

कोलाहल-(सं०)-बहुत से लोगों की अस्पष्ट चिल्लाहट, शोर, हल्ला। उ० काक कंक बालक कोलाहल करत हैं। (क० ६।४६)

कोलाहलु-दे० 'कोलाहल'। उ० राउर नगर कोलाहलु होई। (मा० २।२३।४)

कोल्हु-दे० 'कोल'।

कोल्हुन-कोल्हु का बहुवचन। उ० भूक्यो सूल कर्म-कोल्हुन तिल ज्यों बहु बारनि पैरो। (वि० १।४३) कोल्हु-(?) -तेल या उखल पेरने का यंत्र जो डमरू के आकार का, पथर या काठ का होता है। कष्ट देने के लिए कोल्हु में पेलना या पेरना आदि का प्रयोग होता है। उ० पेरत कोल्हु मेखि तिल तिली सनेही जानि। (दो० ४०३)

कोविद-(सं०)-१. पंडित, विद्वान्, २. काव्यकार । उ०
१. सिद्ध-कवि-कोविदानंददायक पदद्वंद्वं, मंदात्ममनुजैर्हृ-
रापं । (वि० ५५)
कोश-(सं०)-१. भंडार, खजाना, समूह, २. फूलों की
बंधी कली, ३. तलवार या कटार आदि का म्यान, ४.
अभिधान, वह ग्रंथ जिसमें अर्थ तथा पर्याय आदि दिए
गये हों । ५. अंडकोश, ६. रेशम का कोया, रेशम, ७.
खोल, थैली ।
कोशल-(सं०)-१. सरयू के दोनों किनारों पर बसा एक
प्राचीन जनपद, जिसकी राजधानी अयोध्या थी । २.
अयोध्या नगर, ३. कोशल देश में बसनेवाली क्षत्रिय जाति ।
उ० १. रघुनंद आनंदकंद कोशल चंद्र दशरथ-नंदन ।
(वि० ४५)
कोशलपुर-अयोध्या ।
कोशलसुता-कौशल्या, राम की माता । उ० जयति कोशला-
धीश-कल्याण, कोशलसुता-कुशल, कैवल्य-फल-चार
चारी । (वि० ४३)
कोशला-(सं०)-कोशल की राजधानी, अयोध्या ।
कोशलाधीश-१. दशरथ, २. राम ।
कोष-दे० 'कोश' ।
कोषला-दे० 'कोशला' ।
कोस (१)-दे० 'कोश' । उ० ६. हठि सठ परबस परत
जिमि कीर, कोस-कमि, कीस । (दो० २४३)
कोस (२)-(सं० क्रोध)-दूरी की एक नाप जो लगभग २.
मील के बराबर होती है ।
कोसल-दे० 'कोशल' ।
कोसलधनी-कोशल के राजा, दशरथ । उ० १. तुलसी करेहु
सोइ जततु जेहि कुसली रहहि कोसलधनी । (मा०
२।१५१। छ० १)
कोसलपुर-दे० 'कोशलपुर' । उ० ब्रह्म भयउ कोसलपुर
भूप । (मा० १।१४। १। १)
कोसलसुता-दे० 'कोशलसुता' ।
कोसला-दे० 'कोशला' । उ० प्राननाथ देवर सहित कुसल
कोसला आइ । (मा० २।१०३)
कोसा-(सं० कोश-खजाना)-दे० 'कोश' । उ० १. मागहु
भूमि धेनु धन कोसा । (मा० १।२०। ८। २)
कोसला-दे० 'कोशला' ।
कोसु-(सं० कोश)-खजाना । दे० 'कोश' । उ० १. देसु
कोसु परिजन परिवारु । (मा० २।३। १। ४)
कोह-(सं० क्रोध)-गुस्सा, क्रोध । उ० किंकर कंचन कोह
काम के । (मा० १।१२। २। २)
कोहबर-(सं० कोष्ठवर)-ब्याह का घर जहाँ कुल देवता
स्थापित किए रहते हैं । उ० बर तुलहिनिहि लेवाइ सखी
कोहबर गई । (जा० १।६४) कोहबरहि-कोहबर में । उ०
कोहबरहि आने कुंअर कुंअरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै ।
(मा० १।३२। ७। छ० २)
कोहा-दे० 'कोह' । उ० ता कहूँ उमा कि सपनेहुँ कोहा ।
(मा० ४।१। ३। ३)
कोहातो-क्रोध करते, क्रोधित होता । उ० काल करम कुल
कारनी कोऊ न कोहातो । (वि० १।५। १) कोहानी-क्रोधित

हो गईं । क्रुद्ध हो गईं । उ० कीरति, कुसल, भूति, जय
अधि सिधि तिन्ह पर सबै कोहानी । (गी० १।४) कोहाव-
(सं० क्रोध)-कोहाना, मान करना, खटना, क्रोधित होना ।
उ० तुम्हहि कोहाव परम प्रिय अहई । (मा० २।२८। १)
कोही-कोधी, क्रोध करनेवाला । उ० खर कुठार में अकरन
कोही । (मा० १।२७। ३। ३)
कौ-(सं० कव)-को । कर्म तथा संप्रदान का चिह्न । उ०
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्याण । (मा०
१।२०। ७)
कौ-(दे० 'कव')-कव । उ० क्यों कहि जात महा सुखमा,
उपमा तकि ताकत है कवि कौ की । (क० ७।१४। ३)
कौड़िहू-कौड़ी भी । उ० लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहे,
केहि काज ? (दो० १०८) कौड़ी-(सं० कपर्दिका)-१.
समुद्र का एक कीड़ा जो घोंघे की तरह एक अस्थिकोश
के अंदर रहता है । वराटिका । २. धन, द्रव्य, ३.
तुच्छ, व्यर्थ, ४. कम मूल्य, थोड़ा लाभ । उ० ४. कौड़ी
लागि लोभ बस करहि विप्र गुर घात । (मा० ७।१६। ६)
मु० दू कौड़ी को-तुच्छ, निरर्थक । उ० कूर कौड़ी दू को
हौ आपनी ओर हेरिए । (ह० ३४)
कौतुक-(सं०)-१. कुतूहल, २. अचंभा, आश्चर्य, ३. विनोद,
दिल्लगी, ४. आनंद, खुशी, ५. तमाशा, खेल, इश्य,
बिना परिश्रम किया गया काम । उ० २. कहहु मोहि
अति कौतुक भारी । (मा० ७।२५। १। १) ५. कौतुक सागर
सेतु करि आये कृपानिधानु । (प्र० २।३। ५) कौतुकि-दे०
'कौतुकहि' । कौतुकाह-खेल ही में, हँसी में ही । उ०
गहि करतल, मुनि पुलक सहित, कौतुकहि उठाइ लियो ।
(गी० १।८८) कौतुकी-खेल ही में, आसानी से । उ०
कौतुकी प्रभु काटि निवारे । (मा० ६।२। १। ३) कौतुकी-
दे० 'कौतुकी' ।
कौतुकिअन्ह-खिलवाड़ करनेवालों को, कौतुकियों को । उ०
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं । (मा० १।८। १। २) कौतुकि-
अन्हि-दे० 'कौतुकिअन्ह' ।
कौतुकी-(सं०)-कौतुक-प्रिय, खिलवाड़ी, विनोदप्रिय । उ०
मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ । (मा० १।१३। ०। ४)
कौतुकु-दे० 'कौतुक' । उ० सती दीख कौतुक मग जाता ।
(मा० १।२। ४। २)
कौतुहल-१. तमाशा, लीला, खेलवाड़, २. आश्चर्य, ३.
उत्सुकता । उ० १. यह कौतुहल जानइ सोई । (मा०
६।२। १। २)
कौन-(सं० कः पुनः, प्रा० कवण)-एकप्रश्न वाचक सर्व-
नाम जो अभिप्रेत व्यक्ति या वस्तु की जिज्ञासा करता है ।
उस मनुष्य या वस्तु को सूचित करने का शब्द जिसको
पूछना होता है । उ० तहँ तुलसी के कौन कों काको
तकिया रे ? (वि० ३३)
कौनप-(सं० कौणप)-१. राक्षस, निशाचर, २. पापी । उ०
१. केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल संग
भाई । (वि० १।६। ५)
कौनि-'कौन' का खीलिग । उ० तुलसिदास मोको बड़ो
सोच है तु जनम कौनि बिधि भरिहै । (गी० २।६०)
कौनै-किसने, कौन ने । दे० 'कौने' । उ० रघुवीर चरित

अपार बारिधि पारु कबि कौनें लख्यो । (मा० १।३६।१।
 छं० १) कौने-१. किसने, २. कौन, किस, ३. किससे ।
 उ० १. कासों कहैं, कोने गति पाहनहिं दहैं है ?
 (वि० १८१) कौनेउ-किसी भी । कौनो-१. कौन, २.
 कोई भी, किसी भी । उ० १. कौन जानै कौनो तप, कोने
 जोग जाग जप, कान्ह सो सुवन तो को महादेव दियो है ।
 (कृ० १६)
 कौमार-(सं०) कुमार अवस्था, जन्म से पाँच वर्ष तक की
 अवस्था । उ० कौमार, संसव अरु किसोर अपार अघ को
 कहि सकै । (वि० १३६)
 कौमुदी-दे० 'कौमुदी' । उ० १. जलु कुमुदिनी कौमुदीं
 पोषीं । (मा० २।११८।२) कौमुदी-(सं०)-१. चाँदनी,
 चन्द्रप्रभा, २. कार्तिकी पुष्पिमा, ३. कुमुद, कुमुदिनी ।
 कौमोदकी-(सं०)-विष्णु की गदा । उ० बसन-किजत्क-घर
 चक्र सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति बिसाला । (वि०
 ४६)
 कौर-(सं०) कुवल)-आस, निवाल, उतना. भोजन जितना
 एक बार मुँह में डाला जाय । उ० तुलसी परोसो त्यागि
 माँगै कूर कौर रे । (वि० ६७)
 कौरव-(सं०)-कुरु राजा की संतान, कुरु-वंशज, दुर्योधन
 आदि ।
 कौल-(सं०)-१. बामनागी, शराबी, २. अच्छे कुल में
 उत्पन्न, कुलीन । उ० १. कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा ।
 (मा० ६।३।१।१)
 कौशल-(सं०)-१. कुशलता, चतुराई, निपुणता, २.
 मंगल, ३. अयोध्या का निवासी ।
 कौशलेश-(सं०)-अयोध्या के राजा । १. राम, २. दशरथ ।
 कौशल्य-(सं०)-कौशल के राजा दशरथ की प्रधान स्त्री
 और रामचंद्र की माता ।
 कौशिक-(सं०)-१. विरवामित्र (कुशिक राजा के वंशज),
 २. कुशिक राजा के पुत्र गाधि, जो इंद्र के अंश से उत्पन्न
 हुए थे । ३. इंद्र, ४. उल्लू पक्षी, ५. गूगुल, ६. मदारी,
 साँप पकड़नेवाला ।
 कौशेय-(सं०)-रेशमी वस्त्र । उ० नीलनव-वारिधर सुभग
 सुभ कांतिकर पीत कौशेय-बर बसन-धारी । (वि० ५१)
 कौशल-दे० 'कौशल' ।
 कौसलेस-दे० 'कौशलेश' । उ० १. को है रन रारि को
 जौ कौसलेस कोपिहैं ? (क० ६।१)
 कौसल्यहि-१. कौशल्य को, २. कौशल्य ने । उ० १. कौस-
 ल्यहि सब कथा सुनाई । (मा० २।१२।१।२) कौसल्यीं-
 कौशल्य ने । उ० कौसल्यीं अब काह बिगारा । (मा०
 २।४।४) कौसल्यीं-दे० 'कौशल्य' ।
 कौसिक-दे० 'कौशिक' । उ० १. कौसिक, मुनि तीर्थ, जनक
 सोच-अनल जरत । (वि० १३४) कौसिकहि-कौशिक को,
 विश्वामित्र को । उ० जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा ।
 (मा० १।२८।३)
 कौसिकी-(सं०) कौशिकी)-१. चंडिका, २. राजा कुशिक की
 पोती और अर्चक मुनि की स्त्री, जो अपने पति के साथ
 सदेह स्वर्ग गई थी । ३. काव्य में चार प्रकार की वृत्तियों
 में से पहली वृत्ति । इसमें करुण, हास्य या शृंगार रस

का वर्णन रहता है । वर्णों में केवल कोमल वर्णों का
 प्रयोग होता है ।
 कौसिला-कौशल्य ने । उ० जस कौसिलाँ मोर भल
 ताका । (मा० २।३।४) कौसिला-दे० 'कौशल्य' ।
 कौसिलाहु-कौशल्य भी । उ० कौसिलाहु ललकि लपन
 लाल लए हैं । (गी० १।११)
 कौसेय-दे० 'कौशेय' ।
 कौस्तुभ-(सं०)-पुराणानुसार एक रत्न जो समुद्र-मंथन से
 निकला था । इसे विष्णु अपने वक्षस्थल पर पहने रहते हैं ।
 क्या-(?)-एक प्रश्न वाचक शब्द जो उपस्थित या अभिप्रेत
 वस्तु की जिज्ञासा करता है ।
 क्यां-(सं०)केव>अप०केव)-किस कारण, किस कारण से,
 किस लिए । उ० तौ क्यां बदन देखावतो कहि बचन
 इया रे । (वि० ३३) क्यांकर-१. किसलिए, २. कैसे,
 किस तरह । क्यांकरि-दे० 'क्यांकर' । उ० २. सकुचत हौं
 अति, राम कृपानिधि ! क्यांकरि बिनय सुनावौ ? (वि०
 १४२) क्यांहुँ-कैसे भी, किसी प्रकार भी । उ० खीकि
 रीकि बिहँसि अनख क्यांहुँ एक बार, 'तुलसी तू मेरो'
 बलि, कहियत किन ? (वि० २५३)
 क्यां-दे० 'क्यां' ।
 क्रतु-(सं०)-१. यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, २. निश्चय, ३. इच्छा,
 ४. विवेक, ५. इंद्रिय, ६. विष्णु, ७. जीव, आत्मा, ८.
 कृष्ण के एक पुत्र का नाम, ९. ब्रह्मा के एक मानस पुत्र
 का नाम जो सप्तर्षियों में से एक है । उ० १. सुमिरिए
 छाँडि छल भलो क्रतु है । (वि० २५४)
 क्रम (१)-(सं०)-१. पैर रखने की क्रिया, २. तरतीब,
 सिलसिला शैली, ३. बामन अवतार का एक नाम ।
 क्रमक्रम-शनैः शनैः, धीरे-धीरे, एक-एक करके ।
 क्रम (२)-(सं०) कर्म)-कर्म, काम । उ० मन क्रम बचन
 सत्य अतु पृहू । (मा० १।२६।४)
 क्रमनासा-दे० 'करमनासा' । उ० कासी मग सुरसरि क्रम-
 नासा । (मा० १।६।४)
 क्रय-(सं०)-मोल लेने की क्रिया, खरीदने का काम ।
 क्रव्याद-(सं०)-१. मांसभक्षी, राक्षस, सिंह, गिद्ध, २.
 चित्ता की आग ।
 क्रांति-१. एक दशा से दूसरी दशा में परिवर्तन, उलट-फेर ।
 २. एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन ।
 क्रियन-'क्रिया' का बहुवचन । क्रियन्ह-दे० 'क्रियन' ।
 क्रिया-(सं०)-१. किसी प्रकार का व्यापार, किसी काम
 का होना या किया जाना, कर्म, २. प्रयत्न, ३. अनुष्ठान,
 आरम्भ, ४. व्याकरण का एक अंग, जिसमें किसी व्यापार
 का होना या करना पाया जाय, जैसे आना, जाना आदि ।
 ५. शौच, स्नान आदि नित्य के कर्म, ६. श्राद्ध आदि
 प्रेतकर्म, ७. प्रायश्चित्त आदि कर्म, ८. उपचार, उपाय,
 ९. मुकदमे की कार्यवाही । उ० ५. नित्य क्रिया करि गुरु
 पहि आए । (मा० १।२३।४)
 क्रीडत-१. खेलते हैं, खेल रहे हैं, २. खेलते हुए, खेल में । उ०
 १. प्रसु क्रीडत सुर सिद्ध मुनि ब्याकुल देखि कलेस ।
 (मा० ६।१०।१ ख) क्रीडहिं-खेलते हैं, क्रीडा करते हैं ।
 उ० बहुबिधि क्रीडहिं पाणि पतंगा । (मा० १।१२।३)

क्रीडा-(सं०)-१. कल्लोल, तमाशा, खेल-कूद, २. हँसी, ३. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक, ४. केलि, संभोग।
 उ० १. मोहि सन करहि बिबिध बिधि क्रीडा। (मा० ७।७७।५)
 क्रुद्ध-(सं०)-कोपयुक्त, क्रोध में भरा हुआ। उ० भय क्रुद्ध तीनिउ भाह। (मा० ३।२०। छं० २)
 क्रुद्धा-दे० 'क्रुद्ध'। उ० सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा। (मा० ६।६७।१)
 क्रुद्धे-क्रोधित हुए। उ० क्रुद्धे कृतांत समान कपि, तन अचत सोनित राजहो। (मा० ६।६१। छं० १)
 क्रूर-(सं०)-१. निष्ठुर, निर्दय, कठोर, पर-पीडक, तीखा, तेज, २. भात, पका चावल, ३. बाज़ पत्नी। उ० १-द्वेष मत्सर-राग प्रबल प्रयूह प्रति, भूरि निर्दय, क्रूर कर्म-कर्ता। (वि० ६०)
 क्रोड़-(सं०)-१. आलिंगन में दोनों बाहों के बीच का भाग, अंक, गोद, २. वक्षस्थल, ३. शूकर, सूअर। उ० ३. सकल यज्ञसमय उग्र-विग्रह क्रोड़, मदि दनुजसे उद्धरन उवौ। (वि० ५२)
 क्रोध-(सं०)-१. कोप, रोष, गुस्सा, २. साठ संवत्सरों में से ५६ वाँ संवत्सर। इस संवत्सर में आकुलता और क्रोध की वृद्धि होती है। उ० १. शुंभ निःशुंभ कुंभीश रण-केशरिणि, क्रोध बारिधि बैरिद्वंद बोरे। (वि० १५)
 क्रोधवंत-(सं० क्रोध + मत्)-क्रोधवाला, क्रोधी, क्रोधपूर्ण। उ० क्रोधवंत अति भयउ कपिदा। (मा० ६।३२।१)
 क्रोधा-दे० 'क्रोध'। उ० सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। (मा० १।१३६।३)
 क्रोधिहि-क्रोधी के लिए, क्रोधी को, क्रोधी से। क्रोधिहि-क्रोधी के लिए, क्रोधी से। उ० क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। (मा० १।५८।२) क्रोधी-(सं०)-गुस्साघर, क्रोध करनेवाला। उ० कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। (मा० २।१६८।१)
 क्रोधु-दे० 'क्रोध'।
 क्लेश-(सं०)-१. दुःख कष्ट, व्यथा, २. भगड़ा, लड़ाई, वंटा। क्लेशहं-क्लेश हरनेवाले, दुखों को दूर करनेवाले। उ० केशवं क्लेशहं केश-वंदित-पदद्वंद्व-मंदाकिनी-मूलभूतं। (वि० ४६)
 क्लेशित-व्यथित, दुखित, जिसे कष्ट हो, पीड़ित।
 क्लेश-दे० 'क्लेश'। उ० १ तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावह संसृति क्लेश। (मा० ७।११८। क)
 क्वचित्-कुछ, बहुत कम, कोई। उ० नाना पुराण निगमा-गम समत यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि। (मा० १।१। श्लो० ७)
 क्वारा-(सं० कुमार)-बिना ब्याहा, कुँआरा, जिसकी शादी न हुई हो।
 क्व (१)-(सं० कोपि)-कोई। उ० धन-धाम-निकर, करनि हू न पूजै क्व। (क० ७।१६३)
 क्व (२)-(सं० कः)-कौन, क्या, कहाँ।
 क्वौ-(सं० कः) कौज, कोई। उ० नहि मानत क्वौ अनुजा तनुजा। (मा० ७।१०२।३)
 क्वई-(सं० क्वय)-राजयक्ष्मा, तपेदिक।

क्वण-(सं०)-काल का एक छोटा भाग, छन, थोड़ी देर।
 क्वणिक-(सं०)-क्षणभंगुर, अनित्य, अस्थायी।
 क्वल-(सं०)-घाव, जखम, आघात, चोट।
 क्वलि-(सं०)-हानि, नुकसान, क्षय।
 क्वत्र-(सं०)-१. बल, ज़ोर, २. राष्ट्र, ३. धन, ४. शरीर, ५. पानी।
 क्वत्रिय-(सं०)-हिंदुओं के चार वर्णों में से दूसरा वर्ण। इन लोगों का काम देश का शासन तथा रक्षा करना है।
 क्वम-(सं०)-१. समर्थ, योग्य, उपयुक्त, २ पराक्रम, शक्ति।
 क्वमता-(सं०)-योग्यता, सामर्थ्य।
 क्वमा-(सं०)-१. चित्त की एक वृत्ति जिससे मनुष्य दूसरे द्वारा पहुँचाए गए कष्ट को चुपचाप सह लेता है, और बदला या वंद की भावना नहीं होती। २. सहनशीलता, ३. पृथिवी, ४. दक्ष की एक कन्या का नाम, ५. दुर्गा।
 क्वय-(सं०)-१. नाश, हास, २ प्रलय, कल्पांत, ३. राज-यक्ष्मा, तपेदिक, ४. अन्त, ५. मकान।
 क्वरण-(सं०)-१. धीरे धीरे चूना, खाव होना, २. छलना, धोखा देना, ३. नाश होना।
 क्वाम-(सं०)-१. क्षीण, कृश, पतला, २. कमज़ोर, निर्बल, ३. थोड़ा।
 क्वार-(सं०)-१. छार, खार, नमक, २ भस्म, राख, ३. सज़्जी।
 क्वालित-(सं०)-धुला हुआ, साफ किया हुआ, शुद्ध।
 क्विति-(सं०)-१. पृथिवी, २. नाश, ३. रहने की जगह।
 क्वितिपति-राजा, भूपाल।
 क्वितिपाल-दे० 'क्वितिपति'।
 क्वीण-(सं०)-१. दुर्बल, पतला, घटा हुआ, २. सूक्ष्म।
 क्वीणता-(सं०)-१. दुर्बलता, कमज़ोरी, २. सूक्ष्मता।
 क्वीर-(सं०)-१. दूध, दुग्ध, २. पानी, जल, ३. वृक्ष का दूध, ४. दूध में पका चावल।
 क्वीरसागर-(सं०)-दे० 'क्वीरसिंधु'। उ० उरग-नाथक-सयन, तरुन-पंकज-नयन, क्वीर सागर-अयन, सर्ववासी। (वि० ५५)
 क्वीरसिंधु-(सं०)-पुराणों के अनुसार सात समुद्रों में से एक जो दूध से भरा माना जाता है। विष्णु इसी समुद्र में शेष-शय्या पर सोते हैं।
 क्वीराब्धि-(सं०)-दे० 'क्वीरसिंधु'। क्वीराब्धिवासी-क्वीर के समुद्र में वास करनेवाले, विष्णु। उ० यत्र तिष्ठंति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छंति क्वीराब्धिवासी। (वि० ५७)
 क्वृण-(सं० क्वृण)-पिसा हुआ, चूर-चूर, टूटा।
 क्वृद-(सं०)-१. छोटा, २. नीच, ३. कृपण, ४. निर्दय, क्रूर, ५. दरिद्र, कंगाल।
 क्वृधा-(सं०)-भूख, भोजन करने की इच्छा।
 क्वृधित-भूखा, जिसे भूख लगी हो।
 क्वृर-(सं०)-१. छुरा, उस्तरा, चाकू, २. तेज़ बाण, ३. गोखुर। उ० १. विकटतर बक्र क्वृरधार प्रमदा, तीव्र दुर्ष कंदर्प खर खंगधारा। (वि० ६०) क्वृरधार-तेज़, छुरे की तरह धारवाला। उ० दे० 'क्वृर'।
 क्वेत्र-(सं०)-१. खेत, अन्न बोने की जगह, २. स्थान, प्रदेश, ३. तीर्थ, ४. शरीर, ५. पत्नी।

क्षेम-(सं०)-१. कल्याण, कुशल, मंगल, २. आनंद, ३. मोक्ष, ४. उन्नति, ५. हिक्राजित, सुरक्षा।
क्षेमकरी-(सं० क्षेमकरी)-एक प्रकार की चील जिसका गला सफेद होता है। सगुन का पत्नी। कुशल करनेवाला पत्नी।

क्षोभ-(सं०) १. घबराहट, व्याकुलता, रंज, २. शोक, ३. क्रोध, ४. भय।
क्षोभित-१. व्याकुल, घबराया, २. भयभीत, ३. क्रुद्ध, ४. शोकाकुल।
क्षमा-(सं०)-पृथ्वी, धरती।

ख

खं-(सं० खम्)-शून्य, आकाश। उ० कारन को कंजीव को खंगुन कह सब कोय। (सं० २७७)
खंग-(सं०)-१. तलवार, कटार, २. गौडा। उ० १. खंग कर चमेवर बसेधर, रुचिर कटित्ण. सर-सक्ति-सारंगधारी। (वि० ५५)
खँचाइ-खँचकर, खँचवाकर। उ० रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी। (मा० २।१६।४)
खंजन-(सं०)-एक प्रसिद्ध पत्नी जिसके ऊपर काली तथा सफेद धारियाँ होती हैं। चंचलता के कारण इसकी उपमा नेत्रों से दी जाती है। खँडरिच, ममोला। उ० बालसृग मंजु-खंजन-बिलोचनि, चंद्रवदनि, लखि कोटि रतिभार लाजै। (वि० १५)
खंजरीट-(सं०)-खंजन, खँडरिच, ममोला। दे० 'खंजन'। उ० मनहुँ हँडु पर खंजरीट दोउ कछुक अरुन बिधि रचे खँवारी। (कृ० २२)
खंड-(सं०)-१. भाग, टुकड़ा, हिस्सा, २. अपूर्ण, छोटा, ३. शककर, चीनी, ४. दिशा, ५. देश, प्रांत, ६. नौ की संख्या, ७. काला नमक। उ० १. प्रभु दोउ चाप खंड महि डारे। (मा० १।२६२।१)
खंडन-दे० 'खंडन'। खंडन-(सं०)-१. तोड़ना, तोड़ने-फोड़ने की क्रिया, भंजन, २. किसी बात को काटने या अप्रमाणित करने की क्रिया, निराकरण, प्रतियाद, ३. खंडन करनेवाला, नाशकर्ता। उ० ३. कारुणीक ब्यलीक मद खंडन। (मा० ७।५१।४) खंडनि-खंडन करनेवाली, नाश करनेवाली। उ० चंड-भुजदंड-खंडनि विहंडनि, महिष मद-भंग करि भंग तोरे। (वि० १५)
खंडहिं-तोड़ते हैं, टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं। उ० रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा। (मा० ३।२०। छं० १) खंडि-तोड़ करके, खंडित करके। खंडेउ-खंडन किया, तोड़ा। उ० कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं। (मा० १।२६१। छं० १) खंड्यौ-खंडित किया, तोड़ा। उ० भूपमंडली प्रचंड चंडीस-कोदंड खंड्यौ। (क० १।१८)
खंड-दे० 'खंड'। उ० १. सूख कृपान परिध गिरिखंडा। (मा० ६।४०।४)
खंडित-(सं०) १. टूटा हुआ, भंग, २. जो पूरा न हो, अपूर्ण, ३. अशुद्ध, जिसका निराकरण किया जा चुका हो। ४. खंडन करनेवाला, नाश करनेवाला।

उ० ४. भुजबल बिपुल भार महि खंडित। (मा० ७। ५१।३)
खंभ-(सं० खंभ)-१. स्तंभ, खंभा, २. सहारा, आसरा। उ० १. कनक खंभ, चहुँ ओर मध्य सिंहासन हो। (रा० ४) खंभा-दे० 'खंभ'। उ० १. विरचे कनक कदलि के खंभा। (मा० १।२८७।४)
खंभार-(सं० क्षोभ, प्रा० खोभ)-१. चिंता, २. घबराहट, खलबली, व्याकुलता, ३. डर, भय, ४. शोक। उ० १. कौतुक बिलोकि सुरपाल हरिहर बिधि, लोचननि चका-चौधी चित्तनि खंभार सो। (ह० ४)
ख-(सं०)-१. गड्ढा, गर्त, २. शून्य, खाली जगह, ३. आकाश, ४. इंद्रिय, ५. शरीर, ६. मुख।
खई-(सं० क्षयी)-१. क्षयी रोग, २. लड़ाई, झगड़ा। उ० १. याते बिपरीत अनहितन की जानि लीबी, गति, कहे प्रगत खुनिस खासी खई है। (गी० १।६४) २. काहू सो न खुनिस खई। (गी० ५।३७)
खग-(सं०)-आकाश में चलनेवाला, १. ग्रह, २. हवा, ३. तीर, ४. पत्नी, ५. बादल, ६. देवता, ७. सूर्य, ८. जटायु। उ० ४. खग मृग चरनसरोरुह सेवी। (मा० २। ५६।२) ८. निज लोक दियो सबरी खगको। (क० ७।१०)
खगी-(सं० खग)-पत्नी की स्त्री, चिड़िया। उ० 'हा धुनि-खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिए बड़े बधिक हठि मीन। (गी० ५।२०)
खगकेतु-(सं०)-पक्षियों में श्रेष्ठ, गुरुड़।
खगकेतु-दे० 'खगकेतु'। उ० बरनि न जाइ समर खगकेतु। (मा० ६।७२।६)
खगनाथ-(सं०)-गुरुड़। उ० खगनाथ जथा करि कोप गहा। (मा० ७।१११।२)
खगनाथक-गुरुड़।
खगनाथकु-दे० 'खगनाथक'। उ० गति बिलोकि खगनाथकु लाजै। (मा० १।३१६।४)
खगनाहा-(सं० खगनाथ)-गुरुड़। उ० सुनि सब रामकथा खगनाहा। (मा० ७।६८।४)
खगपति-गुरुड़। उ० आरत गिरा सुनत खगपति तजि चलत बिलंब न कीन। (वि० ६३) खगपतिनाथ-गुरुड़ के नाथ अर्थात् विष्णु। उ० चाहत अभय भेक सरनागत खगपति-नाथ बिसारी। (वि० ६२)
खगराज-(सं० खग + राजा, प्रा० राव)-पक्षियों के राजा,

गरुड । उ० पुनि सप्रेम बोलेउ खगराज । (मा० ७।१२१।१)
 खगराज-गरुड । उ० सुनि मम बचन विनीत मृदु, मुनि
 कृपालु खगराज । (मा० ७।११० ग)
 खगराया-दे० 'खगराज' । उ० नट कृत विकट कपट खगराया ।
 (मा० ७।१०४।४)
 खगसाई-(सं० खग + स्वामी)-गरुड । उ० तुम्ह निज मोह
 कही खगसाई । (मा० ७।७०।३)
 खगहा-(सं० खंग)-खांगवाला, मँडा । उ० खगहा करि
 हरि बाघ बराहा । (मा० २।२३६।२)
 खगे-(सं० खंग)-धँसे, धँसने से, घुसने से । उ० तुलसी
 करि कैहरि-नाद भिरे, भट खग खगे खपुवा खरके । (क०
 ६।३५)
 खगेश-(सं० खग + ईश)-गरुड ।
 खगेश-दे० 'खगेश' । उ० सुनु खगेश नहि कछु रिषि
 वृषन । (मा० ७।११३।१)
 खगोसा-दे० 'खगेश' । उ० चतुरानन पहि जाहु खगोसा ।
 (मा० ७।५६।४)
 खग (१)-(सं० खड्ग, प्रा० खग्ग)-तलवार, कटार । उ०
 दे० 'खगे' ।
 खग (२)-(सं० खग)-पत्नी, चिड़िया । उ० खपरिन्ह
 खग अलुखि कुम्हि सुभट भटन्ह दहावहीं । (मा०
 ६।८।४० १)
 खचा-(सं० खच्)-१. खचित, जडित, २. खींचा हुआ ।
 खचाई-जड़वाई, सुन्दर रूप से बनवाई, खिंचवाई ।
 खचित-जड़ा हुआ, खींचा हुआ । उ० कनककोट मनि खचित
 दृढ़ बरनि न जाइ बनाव । (मा० १।१७८ क)
 खची-जड़ी, मढ़ी, लगी, खिची । उ० मनिखंभ भीति
 बिरचि बिरची कनक मनि मरकत खची । (मा० ७।२७।४० १)
 खचे-जड़े, मढ़े, लगाए, खींचे हुए । उ० प्रति द्वार द्वार
 कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे । (मा० ७।२७।४० १)
 खचर-(?)-गढ़े और घोड़े के संयोग से उत्पन्न एक पशु
 जो घोड़े से मिलता जुलता होता है । उ० गज बाजि खचर
 निकर पदचर रथ बरुथन्हि को गनै । (मा० ५।३।४० १)
 खटाई-(सं० कटु)-परीक्षा में पूर्ण उत्तरे, ठीक उत्तरे, स्थिर
 रहे, ठिके रहे, निभा लिया । उ० इंद-रहित, गत-मान,
 ज्ञानरत, विषय-विरत खटाई नाना कस । (वि० २०४)
 खटाहिं-ठिक सकती हैं, परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकती हैं,
 रुक सकती हैं, स्थिर रह सकती हैं, स्थिर रहते हैं । उ०
 सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं ।
 (मा० १।७६)
 खटाई-(सं० कटु)-वह वस्तु जिसका स्वाद खट्टा हो,
 जैसे दही, नीबू, तथा इमली आदि । उ० बिलग होइ रसु
 जाइ, कपट खटाई परत पुनि । (मा० १।५७ ख)
 खटोला-(सं० खट्वा)-छोटी चारपाई, छोटा खाट । उ०
 बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे ।
 (वि० १।८६)
 खता-(अर० खता)-१. धोखा, २. अपराध । उ० १. राम-
 राम रदिवो भलो, तुलसी खता न खाय । (सं० ११६)
 खद्योत-(सं०)-१. शुगनू, रात को चमकनेवाला एक कीड़ा,

२. सूर्य । उ० १. सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा । (मा०
 ५।१।४)
 खनत-(सं० खनन)-१. खनते हैं, २. खोदते हैं, ३. खोदते समय,
 खोदते ही । उ० १. कूप खनत मंदिर जरत आए धारि बबुर ।
 (दो० ४८७) खनतहिं-खोदते ही, खोदते समय, खोदने
 में ही । उ० तुलसिदास कब तृषा जाइ सर खनतहिं
 जनम सिरान्यो । (वि० ८८) खनि (१)-खोदकर, खन-
 कर । उ० जयति पाकारिसुत-काक-करतूति-फलदानि, खनि
 गर्त गोपित चिराधा । (वि० ४३) खने-खोदे, गर्त
 बनाये । उ० जासु प्रसाद जनमि जग पुरुषनि सागर सजे,
 खने अरु सोखे । (गी० ५।१२) खनै-खोद डाले, समूल
 नष्ट कर दे । उ० मंगल मूल प्रनाम जासु जग मूल अम-
 गल से खनै । (गी० ५।४०) खनैगो-खनेगा, खोदेगा ।
 उ० जो-जो कूप खनैगो पर कहँ सो सठ फिरि तेहि कूप
 परै । (वि० १३७) खन्यो-खोदा । उ० यह जलनिधि
 खन्यो, मथ्यो, लँथ्यो, बाँध्यो, अँच्यो है । (गी० ६।११)
 खनावत-खुदवाते, खनवाते । उ० नतरु सुधासागर परिहरि
 कृत कूप खनावत खारे । (गी० १।६६) खनावौ-खुदवाता
 हूँ, खनवाता हूँ, खुदवाऊँ । उ० हाटक घट भरि धरयो
 सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौ । (वि० १४२)
 खनि (२)-(सं०)-खान, रत्नादि निकलने का स्थान, कान ।
 खप-(सं० खेपण > खपना = व्यथ होना)-खपकर, लगकर,
 पचकर । उ० जापकी न, तप खप कियो न तमाइ जोग,
 जाग न, विराग त्याग तीरथ न तन को । (क० ७।७७)
 खपत-खप जाता है, समा जाता है, समाप्त हो जाता है ।
 उ० कलिजुग बर बनिज विपुल नाम नगर खपत । (वि०
 १३०)
 खपर-दे० 'खप्पर' । उ० २. कमठ खपर मढ़ि खाल निसान
 बजावहिं । (पा० १११) .
 खपुआ-दे० 'खपुवा' ।
 खपुवा-(सं० खेपण)-भगनेवाला, कायर, दरपोक । उ०
 दे० 'खगे' ।
 खप्पर-(सं० खर्पर)-१. तसखे के आकार का मिट्टी का
 पात्र, भिच्छापात्र, २. खोपड़ी । उ० २. जोगिनि भरि-भरि
 खप्पर संचहिं । (मा० ६।८।४०) खप्परिन्ह-खोपड़ियों में,
 खप्परों में । उ० दे० 'खग (२)' ।
 खबर-(अर० खबर)-समाचार, हाल, वृत्तांत ।
 खबरि-दे० 'खबर' । उ० भूपट्टार तिन्ह खबरि जनाई ।
 (मा० १।२६०।१)
 खभार-दे० 'खँभार' । उ० २. देखि निबिड तम दसहुँ
 दिसि कपिदल भयउ खभार । (मा० ६।४६)
 खभारू-दे० 'खँभार' । उ० १. फिरहु त सब कर मिट्टे
 खभारू । (मा० २।६७।२)
 खयकारी-(सं० खयकारिन्)-नाश करनेवाला, खय करने-
 वाला । उ० दुसह-रोष-मूरति श्रुगुपति अति नृपति-निकर-
 खयकारी । (गी० १।१०७)
 खये-(सं० स्कंध)-बाहुमूल, भुजा । उ० खये ठोकि-ताल
 ठोकर । उ० कंदुक-केलि-कुसल हय चढ़ि-चढ़ि, मन कसि-
 कसि, ठोकि-ठोकि खये । (गी० १।४३)
 खर (१)-(सं०)-एक राक्षस । यह सुमाली मुनि की कन्या

राखा, तथा विश्ववसु मुनि का पुत्र था। दूषण, रावण एवं सूर्यपुत्र का भाई लगता था। लक्ष्मण द्वारा सूर्यपुत्र का नाक काटे जाने पर यह पंचवटी में युद्धार्थ आया और राम द्वारा मारा गया। उ० सखर सुकोमल मंजु दोष-रहित दूषण सहित। (मा० ११४ ख)

खर (२)-(सं०)-१. कड़ा, सख्त, २. तेज, तीक्ष्ण, ३. अशुभ, अमांगलिक, ४. गदहा, ५. खच्चर, ६. बगला, ७. कौवा, ८. तृण, घास, ९. सफेद चील, १०. क्रूर पत्नी, ११. उत्तम, श्रेष्ठ। उ० १. अनय-अभोधि-कुंभज, निशा-चर-निकर तिमिर-घनघोर-खर-किरणमाली। (वि० ४४) ४. तदपि न तजत, स्वान, खर ज्यों फिरत बिषय-अनुरागे। (वि० ११७) खरखौकी-(सं० खर = तृण + खद्)-तृण खाने वाली, आग, अग्नि। उ० लागि दवारि पहार ढही लहकी कपि लंक जथा खरखौकी। (क० ७१४३) खरतर-अपेक्षाकृत अधिक खर, बहुत तेज, अधिक तीक्ष्ण। उ० अवलोकि खरतर तीर। (मा० ३१२०। छं० २) खरनि-खरों पर, गदहों पर। उ० चढ़े खरनि बिदूषक स्वाँग साजि। (गी० ७१२२) खरो (१)-१. तृण भी, २. गदहा भी। खरके-(ध्र०)-१. भगे, चल दिए, सरके, २. खर-खर ध्वनि किए। उ० १. दे० 'खपुवा'।

खरखोट-(सं० खर + खोट)-खरा-खोटा, भला-बुरा। उ० गाँठी बाँधो दाम सो परयो न फिरि खरखोट। (वि० १३१)

खरगोशु-(फा० खरगोश)-खरगोश, खरहा। उ० चहत केहरि-जसहिं सेइ सगाल ज्यों खरगोशु। (वि० १५६) खरब-(सं० खर्व)-नाश, अंगभंग। उ० खरब आतमा बोध बर खर बिनु कबहुँ न होइ। (सं० ५७६)

खरबर-दे० 'खरभर'। खरभर-(ध्र०)-१. हलचल, खलबली, उथल-पुथल, गड़बड़, २. चोभ।

खरभर-दे० 'खरभर'। उ० १. होनिहार का करतार को रखवार जग खरभर परा। (मा० ११८४। छं० १)

खरभरे-खलबला उठे। उ० चिक्करहिं दिगज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे। (मा० ११३५। छं० १)

खरारि-(सं० खर + अरि)-खर नामक राक्षस के शत्रु, राम, २. विष्णु, ३. कृष्ण, ४. बलराम।

खरारी-दे० 'खरारि'। उ० १. भए बहुरि सिसुरूप खरारी। (मा० ११२०। २। ३)

खरि (१)-(सं० खलि)-तेल निकाल लेने पर तेलहन की बची हुई सीठी, खली। उ० है-है सुमन तिल बासि कै अरु खरि परिहरि रस लेत। (वि० १६०)

खरि (२)-(सं० खर)-१. तेज, कठोर, अधिक कड़ु, २. गदही। उ० १. पवि, पाहन, दामिनि, गरज, ऋरि, ऋकोर, खरि खीकि। (दो० २८४)

खरि (३)-(सं० खटी)-खरिया मिट्टी। खरिया-(सं० खटिका)-खडिया मिट्टी। उ० खरिया, खरी, कपूर सब, उचित न पिय ! तिय त्याग। (दो० २५५)

खरी (१)-(सं० खर)-१. पकी हुई, २. तेज, चोखी, ३. उत्तम, ४. गर्वभी, गदही। उ० ४. खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी। (मा० ७११०। ४)

खरी (२)-(सं० खर)-एक प्रकार का चंदन जिसे गोपी चंदन कहते हैं। उ० दे० 'खरिया'।

खरी (३)-(सं० खलि)-खली, तेल निकालने के बाद बची हुई सीठी।

खरी (४)-(मा० खड)-खड़ी, खड़ी हुई। उ० मंदिरनि पर खरी नारि आनंद-भरी। (गी० ७। ५) खरे (१)-(मा० खड)-खड़े। उ० जनु चित्रलिखित समेत लक्ष्मिन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे। (मा० ६। ८६। छं० १) खरो-(२)-खड़ा।

खर-दे० 'खर'। खरे (२)-(सं० खर)-उत्तम, अच्छे, चोखे।

खरो (३)-अच्छा, चोखा, श्रेष्ठ, निष्कपट। उ० राम सों खरो है कौन मोसों कौन खोदो ? (वि० ७२)

खर्पर-(सं०)-१. खोंपड़ी, सिर, पीठ, २. खपर, ३. एक धातु विशेष, उ० १. कटकटाहँ जनुक भूतप्रेत पिसाच खर्पर संचहीं। (मा० ३। २०। छं० १) १. जनु कमठ खर्पर सर्प-राज सो लिखत अविचल पावनी। (मा० १। ३५। २)

खर्व-(सं० खर्व)-१. लघु, तुच्छ, २. सौ अरब, खरब, ३. धानन, धौना। उ० १. रे कपि बर्बर खर्व खल अब जाना तव ग्यान। (मा० ६। २५)

खरयो-१. खड़ा, २. खड़ा होकर। उ० २. तुलसिदास रघुनाथ कृपा को जोवत पंथ खरयो। (वि० २३६)

खरयो-दे० 'खरयो'। खर्वीकरण-तुच्छ करनेवाला, तोड़नेवाला। उ० राहु-रवि-सक्र-पवि-गर्व-खर्वीकरण। (वि० २५)

खल-(सं०)-१. क्रूर, कठोर, २. नीच, अधम, दुष्ट, ३. धोखेबाज, ठग, ४. खरल, खरल में घोटने की क्रिया। उ० १. स्वपच खल भिन्न यवनादि हरिलोक-गत नाम बल विपुल मति मलिन-परसी। (वि० ४६) खलउ-खल भी, दुष्ट भी। उ० खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। (मा० १। ७। २) खलनि-खलों के लिए, दुष्टों को। उ० रघुबर की रति सज्जननि सीतल, खलनि सुताति। (दो० १६४)

खलन्ह-दुष्टों के, खलों के। उ० खलन्ह हृदय अति ताप विसेपी। (मा० ७। ३६। २) खलहु-१. ये खलो, दुष्टो, २. खल भी। उ० १. खलहु जाहू कहीं मोरें आगे। (मा० ६। ६७। ४) खलानां-(सं०)-दुष्टों के। उ० खलानां दंड-कृचोऽसौ शंकरः शं तनोतु मे। (मा० ६। १। श्लो० ३)

खलो-खल भी, दुष्ट भी। खलई-दुष्टता, पाजीपन। उ० सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है। (वि० १३६)

खलक-(अर० खलक)-संसार, सृष्टि। उ० कियो कलि-काल कुलि खलल खलक ही। (क० ७। ६८)

खलतो-खल या खरल में डालकर घोंट डालता। कृष्टता। उ० रावन सो रसरज सुभद-रस सहित लंक खल खलतो। (गी० १। १३)

खलल-(अर० खलल)-गड़बड़, बाधा, विघ्न, अस्त-व्यस्तता। उ० दे० 'खलक'।

खलाई (१)-दुष्टता, खलता। उ० कान्ह कृपालु बड़े नत-पाहु, गए खल खेचर खीस खलाई। (क० ७। १३। १)

खलाई (२)-(अर० खाली)-१. खाली करके, रिक्त करके,

२. खलाकर, गढ़वा बनाकर, पचका कर । खलाय-खलाकर, धँसाकर, गहराकर । उ० तब लौ उबैने पायँ फिरत पेटँ खलाय । (क० ७।१२५) खलाये-१. पचकाए, नीचे की ओर धँसाए, २. पचकाकर, नीचे की ओर धँसाकर । खलायो-गहरा किया, नीचे की ओर धँसाया, पचकाया । मु० पेट खलायो-अपने को भूखा प्रकट किया । उ० महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु-खिनु पेट खलायो । (वि० २७६)

खलु-(सं०)-१. एक निश्चयसूचक अव्यय, निश्चय, २. प्रार्थना, ३. नियम, ४. प्रश्न, ५. निषेध । उ० १. आउ करउँ खलु काल हवाले । (मा० ६।६०।४)

खल्ल-(सं० खलि + तेल)-तेल की मैल, खली आदि का तेल में मिला भाग । उ० सुख सनेह सब दियो दसरथहि खरि खल्लेख थिरथानी । (गी० १।४)

खवास-(अर० खवास)-नौकर, राजाओं आदि के यहाँ कपड़ा पहनाने, पान आदि लगाने के लिए रखे हुए नौकर । उ० पठ्यो है छपद छबीले कान्ह कैहू कहुँ खोजि कै खवास खासो कबरी सी बाल को । (क० ७।१३५)

खस (१)-(सं०)-गढ़वाल के आस-पास प्राचीन काल में रहनेवाली ब्राह्मण क्षत्रियों से उत्पन्न एक जाति । उ० कोल, खस, भिल्ल, जमनादि खल राम कहि नीच हँ अँच पद को न पायो । (वि० १०६)

खस (२)-(फा० खस)-एक घास जिसकी जड़ सुगंधित होती है ।

खस (३)-(प्रा० खस)-गिर पड़ा, सरक पड़ा । खसत-खसकता है, गिर पड़ता है, सरक जाता है । उ० पट उड़त भूषन खसत हँसि हँसि अपर सखी भुलावहीं । (गी० ७।१६) खसि-खसक, सरक, गिर । उ० मोर कठोर सुभाय, हृदय खसि आयउ । (पा० ४६) खसी (१)-सरकी, खसकी, नीचे आई । उ० खसी माल मूरति मुसुकानी । (मा० १।२३६।३) खसे-गिर पड़े, गिरे । उ० डोलत धरनि सभासद खसे । (मा० ६।३२।२) खसेउ-दे० 'खसेऊ' । खसेऊ-खसका, गिर पड़ा । उ० जब ते श्रवनपूर कहि खसेऊ । (मा० ६।१४।३) खसै-गिरे, खसके । उ० न्हात खसै जनि बार, गहरु जनि लावहु । (जा० ३२) मु० बाल खसै-थोड़ी हानि हो । उ० दे० 'खसै' ।

खसम-(अर० खसम)-१. स्वामी, मालिक, २. आकाश, सूक्ष्म । उ० लसम के खसम तुही पै दसरथ के । (क० ७।२४)

खसाई-(प्रा० खस)-फेंकना, नष्ट करना, बर्बाद करना । उ० मीछु बस नीच सोऊ चहत खसाई है । (क० ७।१८।१) खसैहौं-फेंकूंगा, गिरने दूंगा, जाने दूंगा । उ० पायो नाम चारु चिंतामनि, उर-कर तें न खसैहौं । (वि० १०५)

खसी (२)-(अर० खासा)-अच्छी, सुंदर, बढ़िया ।

खाँगि-कमी, घाटा । खाँगे-कमी के लिए, न्यूनता के लिए । उ० राखौं देह नाथ केहि खाँगे । (मा० ३।३।१।४)

खाँगिहँ-(सं० खंज)-कम होगा, घटेगा । उ० तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहँ । (वि० ७०) खाँगो-कमी हो गई है, कमी है । उ० नाँगो किँ कहे माँगतो देखि "न खाँगो कछु जनि माँगिए थोरो" । (क० ७।१५३)

खाँचि-(सं० खच)-खाँचकर । खाँची-१. खींचा, बनाया, २. खींचकर । उ० २. पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची । (मा० २।२।१।४) खाँचो-खाँचो । उ० स्वामि सहित सबसों कहों सुनि गुनि-बिसेवि कोउ रेख दूसरी खाँचो । (वि० २७७)

खाँड़ (१)-(सं० खंड)-कच्ची चीनी, शक्कर । उ० अथमथ खाँड़ न ऊखमथ अजहूँ न बूझ अबूझ । (मा० १।२७।५)

खाँड़ (२)-(सं० खडग)-एक प्रकार की तलवार । उ० दे० 'खाँड़ (१)' । खाँड़े-तलवार के । उ० एक कुसल अति ओढ़न खाँड़े । (मा० २।१६।१।३)

खाइ-(सं० खादन)-१. खाकर, भोजन करके, २. भोजन किया, ३. खा जायगा । उ० ३. धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा । (मा० २।३।२।२) खाई (१)-१. खाई हुई, २. खाया, भोजन किया, ३. खाकर । उ० २. तहँ बसि कंद मूलफल खाई । (मा० २।१२।४।२) खाउँ-१. खाता हूँ, २. खाऊँ । उ० १. जूठनि परइ अजिर महँ, सो उठाइ करि खाउँ । (मा० ७।७।५ क) खाउ-१. खाये, खा जाय, २. खाओ, भक्षण करो । उ० मोद न मन, तन पुसक, नयन जल सो नर खेहर खाउ । (वि० १००) खाएसि-खाया, भोजन किया । उ० फल खाएसि तरु तोरँ खागा । (मा० २।१।८।१) खात (१)-१. खाता है, भोजन करता है, २. खाते हुए । उ० २. चलत पयादँ खात फल पिता दीन्ह तजि राखु । (मा० २।२।२।२) खाती-खा जाती, भक्षण करती, खाती है । उ० खाती दीप मालिका टठाइ-यत सुपहँ । (क० ७।१७।१) खातेउँ-खाता, खा डालता । उ० पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही । (मा० ६।२।४।५) खातो-१. खाता, २. खाना पड़ता । उ० २. बाजीगर के समज्यों, खल खेह न खातो । (वि० १।५।१) खाब-खा लेंगे, खायेंगे । उ० सो भनु मनुज खाब हम भाई । (मा० ६।६।३) खायउँ-खाया, खाये । उ० खायउँ फल प्रभु लागी भूखा । (मा० २।२।२।२) खायगो-खा जायगा, भक्षण करेगा । उ० हँहै विष भोजन जो सुधा सानि खायगो । (वि० ६।८) खाया-भक्षण किया, खा लिया । उ० चिंता सौंपिनि को नहिं खाया । (मा० ७।७।१।२) खाये-खाया, भोजन किया । खायो-खाया, खा लिया । उ० खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि । (ह० ३।५) खायो-दे० 'खायो' । खावा-खाना, भोजन करना, भक्षण करना । उ० पुरोडास सह रासभ खावा । (मा० ३।२।६।३) खाहिं-खाते हैं, खा लेते हैं । उ० अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं । (मा० १।७।६) खाहिगो-खायगा, भोजन करेगा । उ० आए नाथ ! भागे तें खिरिरे खेह खाहिगो । (क० ६।२।३) खाहीं-खाते हैं, भोजन करते हैं । उ० जौ ए कंद मूल फल खाहीं । (मा० २।१२।०।१) खाहु-खाओ, भोजन करो । उ० रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु । (मा० २।१।७) खाहु-दे० 'खाहु' । उ० जो मन भाव मधुर कछु खाहु । (मा० २।५।३।१)

खाईं-खाईयाँ । उ० खाईं सिंधु गभीर अति चारिहूँ विसि फिरि आव । (मा० १।१।७।८ क) खाईं (२)-(सं०

खानि)-नगर या किले के चारों ओर रक्षा के लिए खोदी गई नहर ।
 खाको-(फा० खाक)-खाक भी, धूल भी, राख भी । उ० बालिस बासी अवध को बूमिण न खाको । (वि० १५२)
 खाज-(सं० खजु)-खुजली, एक रोग जिसमें शरीर खुजलाती है । उ० नीच जन, मन ऊँच, जैसी कोढ़ में की खाज । (वि० २१८) मु० कोढ़ की खाज-दुःख में दुःख बढ़ानेवाली वस्तु ।
 खाजी-(सं० खाद्य)-भोजन, खाद्य पदार्थ । मु० खाजी खाइ-मुँहकी खाकर । उ० सानुज सगन ससिचव सुजोधन भए मुख मखिन खाइ खल खाजी । (क० ६१)
 खाटी-(सं० कट्ट) खटा, अम्ल के स्वाद का । खाटी मीठी-खटा-मीठा, भला-बुरा । उ० रहि गए कहत न खाटी मीठी । (मा० १२६०३)
 खात (१)-(सं०)-१. खोदना, खोदाई, २. तालाब, ३. कुआ, ४. गाँव, गड्ढा ।
 खान (१)-(सं० खद्)-१. खाना, भोजन करना, खाने की क्रिया, २. खाने की सामग्री । उ० १. मुखिया मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक । (मा० २।३१५)
 खान (२)-(सं० खानि)-वह स्थान जहाँ से धातु, पत्थर आदि खोदकर निकाले जायें । खदान ।
 खान (३)-(सं० काङ्क)-सरदार, उमराव ।
 खानि-(सं०)-१. उत्पत्ति स्थान, खान, २. खजाना, भंडार, ३. और, तरफ, ४. प्रकार, ढंग । उ० १. तुलसी कपि की कृपा-बिलोर्कानि खानि सकल कह्यान की । (वि० ३०)
 खानिक-खानि का, खदान का, खानि । उ० गुप्त प्रगट जहँ जो जेहि खानिक । (मा० १।१।४) खानि चारि-चार प्रकार के जीव । स्वेदज, अंडज, पिंडज तथा जम्भज । उ० खानि चारि संतत अवगाही । (वि० १३६)
 खानी-१. खान, खदान, १. भंडार, घर । उ० २. हरिहरसंकरी-नाम मंत्रावली द्वादश-हरनि आनंद खानी । (वि० ४६)
 खारा-(सं० चार) १. चार या नमक के स्वाद का, २. कड़ुआ, कट्ट, अरुचिकर, बुरा । उ० १. रूख कलपतरु सागर खारा । (मा० २।११६।२) खारे-दे० 'खारा' । उ० २. ब्योम रसातल भूमि भरे नृप क्रूर कुसाहिब सँ तिहुँ खारे । (क० ७।१२)
 खारो-दे० 'खारा' । उ० १. हारयो हिय, खारो भयो भूसुर-डरनि । (वि० २४७)
 खाल-(सं० चाल) मानव-शरीर या वृक्ष आदि का उपरी आवरण, चमड़ा, छाल । उ० खाल कड़ाइ बिपति सहि मरई । (मा० ७।१२।६)
 खाले-(अ० खाली) गड्ढे में, नीचे गहराई में । उ० चलेहुँ कुमग पग परहि न खाले । (मा० २।३१५।३)
 खास-(अ० खासा)-१. विशेष, मुख्य, प्रधान, २. आत्मीय, प्रिय, ३. स्वयं, खुद । उ० १. खास दास रावरो, निवास तेरो तासु उर । (ह० २४)
 खासो-(अ० खासा) अच्छा, भला, उमदा । उ० खोजि कै खास खासो कूबरी सी बालको । (क० ७।१३५)
 खिमाइ-(सं० खिमाते, प्रा० खिमाइत)-चिदाकर, दिक्क करके,

परोशन कर । उ० यह तो मोहिं खिमाइ कोदि बिधि उलटि बिबादन आइ अगाऊ । (क० १२) खिमावतो-चिदाता, खिमाता, अप्रसन्न करता । उ० तौ हौं बार-बार प्रमुहिं पुकारि कै खिमावतो न । (वि० २५०) खिमावै-चिदावै, अप्रसन्न करे । उ० जरै बरै अरु खीमि खिमावै । (वै० ५७)
 खिमे-१. क्रोधित हुए, २. क्रोध करने, खीमने । उ० १. किए निहारो हँसत, खिमे तँ डाटत नयन बरेरे । (क० ३)
 खिन (१)-(सं० खीण)-दुर्बल, पतला, बलहीन, खीण । उ० उष्णकाल अरु देह खिन, मगपंथी, तन ऊख । (दो० ३११)
 खिन (२)-(सं० चण)-समय का एक छोटा भाग, क्षण, लम्हा ।
 खिनु-दे० 'खिन(२)' । मु० खिनु खिनु-प्रत्येक क्षण, हरदम, सर्वदा । उ० महिमा मान प्रियप्राण ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायो । (वि० २७६)
 खिन-(सं०)-१. उदास, चिंतित, २. थकित, ३. दीन, असहाय । उ० ३. बंदुई सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन । (मा० १।१८)
 खिरिरे-(अ०) खरोचकर, खुरचकर, खोदकर । उ० दे० 'खाहिगो' ।
 खिलवार-(सं० केलि)-क्रीड़ा, खेल, तमाशा, दिह्वगी । उ० संपति चकई, भरत चक, मुनि आयसु खिलवार । (दो० २०६)
 खिलाये (१)-(सं० केलि) खेलाया, खेल में नियोजित किया । उ० जियत खिलाये राम, रामबिरह तनु परिहरेउ । (दो० २२१)
 खिलाये (२) भोजन कराए, खाना खिलाए ।
 खिलौना-दे० 'खेलौना' ।
 खिसिआइ-(सं० किष्क)-रुष्ट होकर, क्रुद्ध होकर । उ० जगदाधार शेष किमि उठै चलै खिसिआइ । (मा० ६।५४)
 खिसिआइ-दे० 'खिसिआइ' । उ० छाड़िसि तीव्र सकि खिसिआइ । (मा० ६।६१।२) खिसिआन-खिसिआया हुआ, गुस्से में । उ० परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन । (मा० ५।६) खिसिआना-खिसिआया हुआ, रुष्ट होकर । उ० तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना । (मा० ६।६२।२) खिसिआनि-नाराज, खिसियायी हुई । उ० तब खिसिआनि राम पहि गई । (मा० ३।१७।१०)
 खिसियाना-दे० 'खिसिआना' ।
 खीजन-दे० 'खीमन' ।
 खीम-खीमना, रुष्ट होना । उ० खीमहू में रीमबे की बानि । (क० ७।१३६)
 खीमत-१. क्रोधित होता, क्रोधित होता है, खीजता, २. खीमते हुए, रुष्ट होते हुए । उ० १. दारो बिगारो मैं काको कहा ? केहि कारन खीमत हौं तो तिहारो । (ह० १६) खीमति-खीमती है, रुष्ट होती है । उ० खीमति मँदोवै सबिषाद देखि मेघनाद । (क० ५।१२) खीमन-खीमने, रुष्ट होने । उ० निज सारथि सन खीमन लागा । (मा० ६।१००।४) खीमि-१. खीमना, रुष्ट होना, रोष, २. रुष्ट होकर । उ० १. रीमि आपनी बूमि पर, खीमि

विचार-बिहीन । (दो० ४८५) खीन्निवे-खीन्निने, अप्रसन्न होने । उ० खीन्निवे लायक करतब कोटि कोटि कटु । (वि० २५२) खीन्नि-खीन्नि, अप्रसन्न होइए । उ० काहे को खीन्नि रीन्नि पै, तुलसीहु सोहै बलि सोहै सगाई । (क० ७१३) खीन्नि-१. चिढ़े, खट्ट हुए, २. नाराज़ होने पर । उ० २. रीन्नि बस होत, खीन्नि देत निज धाम रे ! (वि० ७१)

खान-(खं० खीण)-पतला, दुबल, खीण, कमज़ोर, अस-हाय । उ० निज निज अवसर सुधि किए बलि जाउँ, दास आस पूजि है खासखीन की । (वि० २७८)

खीर-(खं० खीर)-१. दूध, २. दूध में पकाया हुआ चावल । उ० १. खीर नीर बिबरन गति हसी । (मा० २।२।१४।४) खीरै-खीर को, दूध को । उ० उपमा राम-लषन की प्रीति को क्यों दीजै खीरै-नीरै । (गी० ६।१५)

खीर-दे० 'खीर' । उ० १. सगुनु खीर अवगुन जलु ताता । (मा० २।२।२।३)

खास (१)-(खं० किष्क) नष्ट, बरबाद । उ० बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत । (क० ६।१०)

खास (२)-(खं० कीश)-झोठ से बाहर के दाँत ।

खीस (३)-(फा० खिसारा)-घाटा, हानि, कमी, न्यूनता ।

खीस (४)-(फा० कीसा)-थैला, थैली, जेब ।

ख सा-दे० 'खीस' ।

खुआर-(फा० खवार)-बबाद, दुर्वशा-अस्त, खराब, बुरा । उ० बचन बिकार, करतबउ खुआर, मन, निगत-बिचार कलि मल को निधातु है । (क० ७।६४)

खुआरी-(फा० खवारी)-१. बरबादी, खराबी, नाश, २. अनादर, अप्रतिष्ठा ।

खुआरु-दे० 'खुआर' । उ० हमहि सहित सङ्ग होत खुआरु । (मा २।३।५।३)

खुयानी-(खं० खुड)-समाप्त हो गई, खतम हो गई । उ० सो जानइ जनु आइ खुयानी । (मा० १।२।६।१।२)

खुन-(खं० खिन्नमनस)-क्रोध, गुस्सा, रिस ।

खुनसात-क्रोधित होते हैं, गुस्सा करते हैं । उ० खात खुनसात साँधे दूध की मलाई है । (क० ७।७४)

खुनिस-दे० 'खुनस' । उ० खेलत खुनिस न कबहूँ देखी । (मा० २।२।६।०।३)

खुनुस-दे० 'खुनस' ।

खुर-(खं०)-१. चौपायों के पैर का कड़ा नाखून, सूम, २. खुर का भूमि पर चलने से बना हुआ चिह्न । खुरनि-१. खुरों में, २. खुर के बने निशानों में । उ० २. कुंभज के किकर बिकल बड़े गोखुरनि । (ह० ३८)

खुलाहिं-(खं० खुल)-१. खुल जाते हैं । २. निकल आते हैं । स्पष्ट हो जाते हैं । ३. खुल जायगा । उ० ३. जो कछु करिय सो होइ सुभ, खुलाहिं सुमंगल खानि । (प्र० १।१।२)

खुलाहि-१. खुलती है, २. खुल जायेगी, खुले, ३. सुन्दर लगती है, सुन्दर लगे । उ० २. महरि महर जीवाहिं सुख-जीवन खुलाहि मोद मनि खानी । (क० ४८) खुलि-खुलकर, स्वतंत्रता के साथ, बिना डर-भय के । उ० जो दससीस महीबर-ईस को, बीस भुजा खुलि खेलन हारो । (क० ६।३८) खुली-१. खुल गई, उन्मुक्त हुई, २. सुशो-

भित हुई, फबी । उ० २. पियरी भीनी भँगुली साँवरे सरीर खुली । (गी० १।३०) खुलेउ-१. खुले, खुल गए, २. सुन्दर लगे, फबे । उ० १. भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु । (मा० २।२।२३) खुलेगो-खुलेगा, उन्मुक्त होगा । उ० तुलसी को खुलेगो खजानो खोटे दाम को । (क० ७।७०)

खुलावौं-खुलवाऊँ । उ० बाल-बिनोद-मोद-मंजुलमनि किलकनि खानि खुलावौं । (गी० १।१५)

खुवार-दे० 'खुआर' ।

खूट (१)-(खं० खंड)-झोर, कोना, खंड, टुकड़ा ।

खूट (२)-(खं० लोड)-१. लकड़ी का छोटा टुकड़ा जो कपड़ा टाँगने या पशु बाँधने के लिए गाड़ा जाता है । २. फसल काट लेने के बाद खेत में लगा हुआ डंठल का निम्न भाग, खूँटी । उ० २. देखि अति लागत अनंद खेत खूँट सो । (क० ७।१४१)

खूँद-(?)-घोड़े की उछल-कूद की चाल, थोड़ी जगह में झुंघर-उधर घोड़े का चलते रहना । उ० तुलसी जौ मन खूँद सम कानन बसहु कि गोह । (दो० ६२)

खूब-(फा० खूब)-अच्छा, भला, उमदा, पूर्ण । उ० फोज कहै राम को गुलाम खरो खूब है । (क० ७।१०८)

खूसर-(खं० कौशिक)-उल्लू, घुघू । उ० राजमराल के बालक पेखि कै, पालत लालत खूसर को । (क० ७।१०३)

खूसरो-खूसर भी, उल्लू भी । उ० सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो । (क० ७।१६)

खे-(खं० ख)-१. आकाश में, २. आकाश के । उ० १. अपगत खे सोई अविनि सो पुनि प्रगत पताल । (स० १६०) २. गोखग, खेखग, बारिखग तीनों माहिं बिसेक । (दो० ५३८)

खेखग-आकाश के पत्नी । उ० दे० 'खे' ।

खेचरं-दे० 'खेचर' । उ० १. डाकिनी-शाकिनी-खेचरं-भूचरं यंत्रमंत्र-भंजन, प्रबल कल्मषारी । (वि० ११) २. बानर-बाज बड़े खलखेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा से । (ह० १८) खेचर-(खं०)-१. वह जो आसमान में चले, २. पत्नी, ३. राक्षस, ४. विमान, ५. पवन, ६. देवता, ७. तारा, ८. शिव, ९. पारा ।

खेत-(खं० खेत)-१. रणक्षेत्र, लड़ाई का मैदान, २. पृथ्वी भूमि, ३. खेती करने की भूमि, ४. योनि, ५. चौरस, बराबर, समतल । उ० १. हतौं न खेत खेलाइ खेलाइ । (मा० ६।३।५।६) सु० खेत के धोषे-फसल को हानि पहुँचानेवाले जानवरों को डराने के लिए आदमी के स्वरूप के बने पुतले जो खेतों में खड़े किए रहते हैं । इनका प्रयोग ऐसे लोगों के लिए किया जाता है जो देखने भर के लिए हों और कुछ कर न सकें । उ० परसुराम से सूर-सिरोमनि फल में भए खेत के धोषे । (गी० ५।१२)

खेता-दे० 'खेत' । उ० १. साजुज निदरि निपातउँ खेता । (मा० २।२।३।०।४)

खेद-(खं०)-१. अप्रसन्नता, दुःख, रंज, कष्ट, २. थकावट । उ० १. भव खेद जेदन दच्छ हभ कहुँ रच्छ राम नमामहे । (मा० ७।१३। क० २) २. जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर विसद जसु । (मा० १।१४ क)

खेदा-दे० 'खेद' । उ० १. मम प्रसाद नहि साधन खेदा ।
(मा० ७।२।४)
खेम-(सं० खेम)-कुसल, खेम, रखा । उ० खेम कुसल
जय जानकी, जय जय जय रघुराय । (प्र० २।१।३)
खेरे-(सं० खेट)-छोटा गाँव, दो चार गाँवों का पुरा । उ०
बैरव बाँह बसाइए पै, तुलसी-धरु व्याध अजामिल खेरे ।
(क० ७।६२)
खेरो-दे० 'खेरे' । उ० आप आप को नगर बसावत, सहि
न सकत पर खेरो । (वि० १४३)
खेल-(सं० केलि)-१. कौतुक, तमाशा, २. अत्यंत मुच्छ,
हलका या बिना श्रम का काम, ३. काम-क्रीड़ा, ४. कोई
अभूत कार्य, ५. लडकों का खेल, तमाशा, ६. शिकार ।
उ० ५. हारेहुँ खेल जितावहि मोही । (मा० २।२६०।४)
खेलही-खेल ही में, बिना श्रम के । उ० उपजी, सकेलि,
कपि, खेलही उरवारिपु । (ह० २४)
खेलउ-१. खेलूँ, २. खेलता, खेलता था । उ० २. खेलउँ
तहूँ बालकन्ह मीला । (मा० ७।११०।२) खेलत-१.
खेलते हैं, २. खेलता हुआ, ३. खेल में, खेलने में । उ०
३. खेलत खुनिस न कबहुँ देखी । (मा० २।२६०।३)
खेलनि-१. खेलना, खेलने का भाव २. खेलों में । उ० १.
परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि ।
(गी० १।२५) खेलहि-१. खेल में, खेल ही में, बिना
श्रम के, २. खेलते हैं । उ० २. खेलहि खेल सकल नृप
लीला । (मा० १।२०४।३) मु० खेलहि खेल-खेल ही
खेल में, बिना परिश्रम के, हँसी-हँसी में । खेलहीं-१. खेलते
हैं, क्रीड़ा करते हैं, २. खेल में ही, बिना परिश्रम के
ही । उ० १. प्रह्लाद पति जनु विविध तनु धरि समर
अंगन खेलहीं । (मा० ६।२१।४) खेलि-१. खेल
करके, २. खेल, तमाशा । उ० १. खेलि बसंत कियो
प्रभु मज्जन सरजू नीर । (गी० ७।२१) खेलिबे-खेलने,
विनोद करने । उ० खेलिबे को खग मृग तरु किंकर हूँ
रावरो राम हौं रहिहौं । (वि० ३३१) खेलिहहि-खेलोगे ।
उ० खेलिहहिं भालु कीस चौगाना । (मा० ६।२७।३)
खेलिही-खेलोगे । उ० छगन-मगन अंगना खेलिहौ मिलि
दुमुक दुमुक कब पैहौ । (गी० १।२) खेलु-१. खेल,
तमाशा, २. खेलो, खेल करो । उ० २. तुलसी दुइ मई
एक ही खेल, खाँदि छल, खेलु । (दो० ७६)
खेलक-खेल करनेवाले, खिलाड़ी । उ० व्योम बिमाननि
बिबुध बिलोकत खेलक पैखक छाँह छये । (गी० १।४३)
खेलन-१. खेलने के लिए, शिकार करने के लिए, २. खेल
की वस्तु । उ० १. पुरुष सिंव बन खेलन आए । (मा०
६।२२।२)
खेलवार-१. खेल करनेवाला, खिलाड़ी, २. शिकारी, ३.
खेल, तमाशा, मन-बहलाव, ४. शिकार । उ० २. संपति
चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार । (मा० २।२१।५)
खेला-दे० 'खेल' । उ० ५. जिमि कोउ करै गरुड सैं खेला ।
(मा० ६।५१।४)
खेलाइ-दे० 'खेलाइ' । खेलाइ खेलाई-खेला खेलाकर,
तमाशा कर करके । उ० इतौ न खेत खेलाइ खेलाई ।
(मा० ६।३५।६) खेलाई-१. खेलाकर, खेल करवाकर, २.

खेल करवाते । खेलाउब-१. खेलाना, खेल कराना, २.
खेलाऊंगा । उ० २. तहूँ तहूँ तुम्हहि अहेर खेलाउब । (मा०
२।१३६।४) खेलावत-१. खेलाते समय, खेलाने में, २.
खेलाते हैं । उ० १. जुआ खेलावत कौतुक कीन्ह सथा-
निन्ह । (जा० १६२) खेलावहु-खेलाइए, खेल करवाइए ।
उ० अब जनि राम खेलावहु पही । (मा० ६।२६।३)
खेलावा-खेल खेलाया । उ० एहि पापिहि में बहुत
खेलावा । (मा० ६।७६।७)
खेलारू-खेलाड़ी, खेलनेवाला । उ० चढ़ी चंग जनु खैच
खेलारू । (मा० २।२४०।३)
खेलौना-दे० 'खेलौना' ।
खेलौना-(सं० कैमि)-लडकों को खेलने के लिए मिट्टी आदि
की बनी छोटी-छोटी सुन्दर चीज़ें । खेलवाइ । खेलने के
लिए बनी मूर्ति । उ० देखि खेलौना किलकहीं । (गी०
१।१६)
खेवाँ-खेवे में, बार में (२) । उ० २. प्रात पार भए एकहि
(मा० २।२२१।२)
खेवा (१)-(सं० खेपण, प्रा० खेवण, हिन्दी खेना)-१.
नाव का किराया, उत्तराई ।
खेवा (२)-(सं० खेप)-१. एक बार में जितना, माल ले
जाया जा सके, २. दफा, बार, समय ।
खेवैया-नाव खेनेवाला, मल्लाह । उ० जहँ धार भयंकर
वार न पार न बोहित नाव, न नीक खेवैया । (क०
७।५२)
खेसंभवं-आकाश से उत्पन्न ।
खेस-(?)-पुरानी रूई का बना खुरदुरा कपड़ा, मोटा
कपड़ा । उ० साथरी को सोइबो, ओढ़ियो मूने खेस को ।
(क० ७।१२५)
खेह-(?)-धूल, मिट्टी, राख । उ० दे० 'खाहिगो' ।
मु० खेह-खाहिगो-दुर्दशा-ग्रस्त होंगे, बुरी दशा में होंगे ।
उ० दे० 'खाहिगो' ।
खेहर-(?)-राख, धूल, भस्म । उ० मोद न मन, तन
पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ । (वि० १००)
खैचत-१. खींचते हैं, २. खींचते हुए । उ० २. खेत चदा-
वत खैचत गाढ़े । (मा० १।२६१।४) खैचहिं-खींचते हैं,
खींच रहे हैं । उ० खैचहिं गीध अत तट भए । (मा०
६।२२।३) खैचहु-खींचो, खींचिए । उ० खैचहु मिटै मोर
संदेह । (मा० १।२८४।४) खैचि-खींचकर । उ० खैचि
धनुष सर सत संधाने । (मा० ६।७०।४)
खैवो-१. खा लेना, २. खाओगे । उ० १. माँगि कै खैवो
मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ । (क०
७।१०६) खैवौं-खाऊँगा । उ० सिगरियै हौं हीं खैवौं, बल-
दाऊ को न देहौं । (क० २)
खौच-(सं० खज)-किसी तुकीली चीज़ से छिलने का
आघात, कटि आदि से लगाकर वख का तिकोना फट
जाना । उ० तुलसी चातक प्रेमपट भरतहु लगी ज खौच ।
(दो० ३०२)
खौची-(?)-वह थोड़ा अन्न, फल आदि जो भिखमंगों को
देते हैं । उ० खायो खौची माँगि में तेरो नाम लिखा रे ।
(वि० ३३)

खोइ-(सं० ज्ञेयण)-खोकर, गँवाकर, दूरकर, नष्ट कर, फँककर । उ० पूँछ बुझाइ खोइ भ्रम धरि लघु रूप बहोरि । (मा० ११२६) खोई-१. खोकर, गँवाकर, २. खोया, गँवाया । उ० २. रथ सारथी तुरग सब खोई । (मा० ६११२) खोए-खोने, त्यागने, गँवाने । उ० खोए राखे आपु भल, तुलसी चारु विचार । (दो० २५२)

खोज-(आ०खोज=पदचिह्न)-१. तलाश, खोजने की क्रिया, अनुसंधान, २. पता, निशान, चिह्न, गाड़ी या पैर आदि का चिह्न । उ० २. सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ । (मा० २१२५) मु० खोज मारि-चिह्न मिटा कर । उ० खोज मारि रथु हाँकहु ताता । (मा० २१२५४)

खोजइ-१. खोजते हैं, ढूँढते हैं, २. खोजेंगे, तलाश करेंगे । उ० १. खोजइ सो कि अग्य इव नारी । (मा० ११२१११) खोजत-१. खोजते हैं, ढूँढ रहे हैं, २. खोजते-खोजते, खोजते हुए, ३. खोज करने पर । उ० २. खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिबु भयउ अचेत । (मा० ११२५७) खोजन-१. खोजना, २. खोजने, तलाश करने । उ० २. सुमीवहि तब खोजन लागा । (मा० ६१६१२) खोजहु-खोजो, तलाश करो । उ० जनकसुता कहँ खोजहु जाई । (मा० ४१२२४) खोजि-खोजकर । उ० तौ जमभट साँसति हर हम से बृषभ खोजि-खोजि नहते । (वि० ६७) खोजौ-खोजूँ, ढूँँ । उ० आपु सरिस खोजौ कहँ जाई । (मा० ११२५०११)

खोट-(सं०)-१. दुर्गुण, दोष, बुराई, २. बुरा, कपटी, दोषयुक्त, खोटा । उ० २. छोट कुमार खोट अति भारी । (मा० ११२७८३)

खोटा-दुर्गुणी, बुरा, बुराचारी । खोटी-दुष्टा, बुरी, ऐबी । उ० सुनि रिपु हन लखि नख सिख खोटी । (मा० २११६३१४) खोटे-बुरे, खरे के उलटे, दुष्ट, कलुषित । उ० तुलसी से खोटे खरे होत ओट नाम ही की । (क० ७११६) खोटेउ-खोटे भी, खराब भी, दुष्ट भी । उ० नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छोटैउ बाढ़े । (क० ७१२७)

खोटाई-नीचता, दुष्टता, बुराई, बुरा । उ० अहह बंधु तें कीन्हि खोटाई । (मा० ६१३६१२)

खोटो-बुरा, दुष्ट । उ० राम साँ खरो है कौन ? मो साँ कौन खोटो ? (वि० ७२) खोटोखरो-भला बुरा, जैसा कुछ भी । उ० तुम से सुसाहिब की ओट जन खोटो खरो, काल की करम की कुसाँसति सहत । (वि० २५६)

खोइस-(सं० षोडश)-सोलह, १६ ।

खोय (?)-(सं० ज्ञेयण)-१. खोकर, गँवाकर, २. खोया, गँवाया, खो दिया । खोयो-खो दिया, गँवा दिया । उ० खोयो सो अनूप रूप स्वप्नहू परे । (वि० ७४) खोवत-खोता है, गँवाता है । उ० भयो सुगम तो को अमर-अगम तनु समुक्ति धौं कत खोवत अकाथ । (वि० ८४) खोवै-१. खो दे, गँवा दे, २. खोना, गँवाना । उ० २. सो खोवै चह कृपानिधाना । (मा० ७१६२४) खवैहौं-खोजँगा, गँवाऊँगा । उ० खवैहौं न पठावनी के हँसाइ कै ? (क० २१६)

खोय (२)-(फा० ख)-आवत, बान ।

खोरि (१)-(सं० चालन)-नहाकर, स्नान करके । उ० तीर तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कै । (क० ६१५०)

खोरि (२)-(सं० खोर)-१. ऐब, दोष, नुस्स, बुराई, २. कोर-कसर, कमी, न्यूनता । उ० १. कहँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं । (मा० ११२७४२)

खोरि (३)-(?)-गली, पतली सड़क. रारता । उ० खेलत अवध खोरि, गोली भौरा चक डोरि । (गी० ११४१)

खोरि (४)-(सं० खौर)-मस्तक पर लगा चंदन का त्रिपुंड, टीका ।

खोरि (५)-सं० खुड-खोलकर । खोरौं-१. खोखूँ, २. स्नान करूँ, नहाऊँ, ३. तोड़ूँ, खंडित करूँ । उ० २. आयसु भंग तें जौ न डरौं सब भींजि सभासद सोनित खोरौं । (क० ६११४)

खोरी-दे० 'खोरि (४)' । उ० तन अनुहरत सुचंदन खोरी । (मा० ११२१६१२)

खोरे-१. दुर्गुणी, दोषी, ऐबी, २. लँगड़े, ३. नहाए, स्नान किए । दे० 'खोरि' । उ० ३. स्यामल तनु स्रम-कन राजत ज्यों नव घन सुधा-सरोवर खोरे । (गी० ३१२)

खोलि-(सं० खुड)-खोलकर, आवरण हटाकर, मुक्तकर । उ० कालि की बात बालि की सुधि करि समुक्तिहि ता हित खोलि करोषे । (गी० १११२) खोलिए-उन्मुक्त कीजिए, स्वतंत्र कीजिए । मु० रसना खोलिए-बुरा भला कहिए, क्रोध में गाली दीजिए । उ० रोष न रसना खोलिए, बरु खोलिय तरवारि । (दो० ४३५) खोलिय-खोलिए, अनावरण कीजिए । खोली-१. उन्मुक्त की, खोल दी, २. खोलकर । उ० १. कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली । (मा० २१२८४) खोलै-खोलते हैं, निकालते हैं । उ० बोलै खोलै सेल असि चमकत चोखे हैं । (गी० ११६३)

खोइ-(सं० गुहा)-गुफा, कंदरा । उ० लै राखेलि गिरि-खोइ महुँ मायाँ करि मति भोरि । (मा० १११७१)

खोहा-दे० 'खोइ' । उ० देवन्ह तके मेरुगिरि खोहा । (मा० ११२२३)

खोही-(सं० खोलक)-पत्तों का बना हुआ छाता । उ० तैसिये लसति नव परलव खोही । (गी० २१२०)

खौदि-(सं० खुद्व)-खोदकर, नष्ट-अष्ट कर, उथल-पुथल कर । उ० भारी भीर डेलि पेलि रौदि खौदि डारहीं । (क० १११५)

खौरि-(सं० खौर)-मस्तक पर लगा चंदन का टीका, त्रिपुंड । उ० कलित कंठ मनि-माल, कलेवर चंदन खौरि सुहाई । (गी० ११५०३)

खौरी-दे० 'खौरि' ।

ख्यात-(सं०)-प्रसिद्ध, विदित, मशहूर । उ० ख्यात सुअन तिहुँ लोक महुँ महा-प्रबल अति सोइ । (स० ६३४)

ख्याल (१)-(अर० ख्याल)-१. ध्यान, २. अनुमान, अंदाज, ३. विचार, भाव, सम्मति, ४. लिहाज आवर, ५. एक विशेष प्रकार का गान जिसमें अनेक राग और रागिनियाँ होती हैं । उ० ३. जौ जमराज काज सब परिहरि यही ख्याल उर अनिहँ । (वि० ६५)

ख्याल (२)-(सं० केलि)-खेल, क्रीड़ा, हँसी, दिहगी ।

उ० कंत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत-फल,
ख्याल खंका लाई कपि राई की सी भोपरी। (क०
६।२७)

ख्याली-खिलाड़ी, कौतुकी, तमाशा करनेवाला। उ० ब्याली
कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिन को परदा
है। (क० ७।१५६)

ग

गंग-दे० 'गंगा'। उ० तो बिनु जगदंब गंग ! कलिजुग का
करित ? (वि० १६) गंगजनक-विष्णु, विष्णु के राम,
कृष्ण आदि अवतार। उ० गंगजनक, अर्जुन-अरि-प्रिय,
कपटु बटु बलि-छरन। (वि० २१८) विशेष-गंगा विष्णु
के चरणों से उत्पन्न मानी जाती है।

गंगा-(सं०)-गंगा नदी जो हिमालय से निकलकर १५६०
मील बहकर हिमालय की खाड़ी में गिरती है। हिन्दू इसे
अत्यन्त पवित्र मानते हैं, और इसमें स्नान का फल मुक्ति
मानते हैं। उ० ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। (मा० १।
६२।२) विशेष-पुराणों के अनुसार गंगा हिमालय और
मनोरमा की पुत्री हैं। ये पहले स्वर्ग में थीं। सगर के
साठ सहस्र पुत्रों को कपिल मुनि ने भस्म कर डाला तो
उन्हें मुक्ति प्रदान करने के लिए दिलीप-पुत्र भगीरथ तप
करने लगे। तप के फलस्वरूप गंगा स्वर्ग से चलीं। बीच में
शिव ने उन्हें अपनी जटा में धारण कर लिया। गंगा वहाँ
से फिर गिरीं तो जहू ऋषि ने पी लिया और भगीरथ की
प्रार्थना से प्रभावित हो ऋषि ने उन्हें अपने जातु से
निकाला। भगीरथ इन्हें ले जाकर सगर-पुत्रों को मुक्ति
दिलाने में सफल हुए। गंगा स्वर्ग से नीचे आते समय
विष्णु के चरण से निकली थीं अतः विष्णु इनके जनक
माने जाते हैं। इन्हीं सब आधारों पर विष्णुपदी, विष्णुपुत्री,
भागीरथी, जहूसुता तथा जाह्नवी आदि इनके नाम हैं।
पुराणों के अनुसार गंगा की तीन धाराएँ-आकाश, पृथ्वी
और पाताल में हैं। इसी कारण इन्हें त्रिपथगा भी कहते
हैं। भीष्म की माता और शांतनु की बड़ी रानी का
नाम भी गंगा था। इनसे उत्पन्न होने से कारण ही भीष्म
गंगासुत तथा गांगेय आदि कहे जाते हैं।

गंगाधर-(सं०)-गंगा को धारण करनेवाले, शिव,
महादेव। उ० नौमि कह्याकरं, गरल गंगाधरं, निर्मलं,
निर्गुणं निर्विकारं। (वि० १२)

गंगेउ-(?) गंगाजल, गंगोदक।

गंगोक्त-(सं० गंगोदक)-गंगाजल, गंगा का पानी। उ०
सुरसरिगत सोई सलिल; सुरा सरिस गंगोक्त। (दो० ६८)

गंगोद-(सं० गंगोदक)-गंगाजल, गंगा का पानी। उ०
जिमि सुरसरि गत सलिल बर सुरा सरिस गंगोद।
(सं० ६१)

गंज (१)-(क्रा०)-१. खज़ाना, कोष, २. डेर, समूह,
मुंड।

गंज (२)-(सं० गंजन)-नाश करनेवाला।

गंजन-दे० 'गंजन'। उ० १. नित नौमि राम अकाम प्रिय

कामादि खल दल गंजन। (मा० ३।३२।छं० २) गंजन-
(सं०)-१. नाश करनेवाला, विजयी, २. अवज्ञा, तिरस्कार,
अनादर, ३. नाश करना, चूर-चूर करना। उ० १. जो
भव भय भंजन, मुनिमन रंजन, गंजन बिपति बरूथा।
(मा० १।१८६।छं० ३)

गंजना-पीड़ा, यातना, कष्ट।

गंजय-गंजन कीजिए, नष्ट कीजिए, नाश करो। उ० हृदि
बसि राम काम मद गंजय। (मा० ७।३४।४) गंजा-तोड़ा,
नाश किया, चूर-चूर किया। उ० तेहि समेत नृपदलमद
गंजा। (मा० ५।२१।४) गंजेउ-१. मारा, तोड़ा, नष्ट किया,
२. मारा हो, नष्ट किया हो। उ० २. जनु मृग-राज
किसोर महा गज गंजेउ। (जा० १।१६)

गंजनिहार-मारनेवाला, नष्ट करनेवाला। उ० हरष विषाद
न केसरिहि कुंजर-गंजनिहार। (दो० ३८१)

गंजु-दे० 'गंज (१)। उ० २. हिय हरिनख अदभुत बन्धों
मानों मनसिज मन-गन-गंजु। (गी० १।१६)

गंड-(सं०)-१. कपोल, गाल, २. कनपटी, ३. गले में
पहनने का गंडा, ४. फोड़ा, ५. चिह्न, निशान, लकीर,
६. गाँठ। उ० १. सत्रन कुंडल, विमल गंड मंडित
चपल। (गी० ७।५) गंडमंडल-(सं०)-कनपटी, कान,
गाल और आँख के बीच का भाग। उ० ललित गंड
मंडल, सुविस्माल भाल तिलक भ्रूलक। (गी० ७।४)

गंडकि-(सं० गंडकी)-एक नदी जो नेपाल में है। इसी नदी
में पाये जानेवाले काले पत्थर विष्णु के प्रतीक मान कर
शालग्राम नाम से पूजे जाते हैं। उ० गढ़ि गुढ़ि पाहन
पूजिए, गंडकि-सिला सुभाय। (दो० ३६२)

गंता-(सं० गंत)-जानेवाला गमन करनेवाला। उ० अघट-
घटना-सुघट-विघटन-विकट भूमि-पाताल-जल-गगन-गंता।
(वि० २५)

गंध-(सं०)-१. मँहक, वास, २. सुगंध, खुशबू, ३. दुर्गंध,
बदबू, ४. लेश, अणुमात्र, ५. संस्कार, ६. संबंध। उ० १.
बिनु महि गंध कि पावहू कोई। (मा० ७।६०।२) विशेष-
न्याय शास्त्र में गंध को पृथ्वी का गुण कहा गया है।

गंधन-(सं० कंदल)-सोना, स्वर्ण। उ० गंधन मूल उपाधि
बहु भूखन तन गन जान। (सं० ४६०)

गंधरव-दे० 'गंधर्व'।

गंधर्व-दे० 'गंधर्व'। उ० १. देव दनुज नर नाग खग प्रेत
पितर गंधर्व। (मा० १।७ घ)

गंधर्वा-दे० 'गंधर्व'। उ० १. किनर नाग सिद्ध गंधर्वा।
(मा० १।६१।१)

गंधर्व-(सं०)-१. देवताओं का एक भेद। पुराणों के अनुसार ये लोग स्वर्ग में रहते हैं और वहाँ गाने का काम करते हैं। एक बार गंधर्वों ने भरत के ननिहाल केकय देश पर आक्रमण किया। भरत अपने ननिहाल वालों की सहायता के लिए गए और उन्होंने गंधर्वों को मार भगाया। इसी कारण उन्हें गंधर्वों को जीतनेवाला कहा जाता है। २. मृग, ३. घोड़ा, ४. प्रेत, ६. एक जाति जिसकी कन्याएँ गाती और वेश्यावृत्ति करती हैं। ७. विधवा स्त्री का दूसरा पति।

गंभीर-दे० 'गंभीर'।

गंभीर-(सं०)-१. जिसकी थाह जह्दी न मिले, गहरा, अथाह, बहुत, अर्थवाला, २. भारी, घोर, ३. शांत सौम्य, अचंचल, ४. गहन, घना, अगम्य, ५. शिव, महा-देव, ६. एक राग। उ० १. गंभीर गवध्न गूढार्थवित्त गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान चाता। (वि० ५४)

गंभीरा-दे० 'गंभीर'। उ० ब्रह्मगिरा भै गगन गंभीरा। (मा० १७४१४)

गँवाइ-(सं० गमन)-गँवाकर, खोकर। उ० गए गँवाइ गरुर पति, धनु मिस हये महेस। (प्र० ११२५) गँवाइ-१. गँवाया, २. गँवाकर, खोकर। उ० १. मध्य बयस धनहेतु गँवाइ कृषी बनिज नाना उपाय। (वि० ८३) गँवायो-गँवाया, बिताया। उ० जनम गँवायो तेरेहि द्वार, मैं किंकर तेरो। (वि० १४६) गँवावै-खोवे, व्यतीत करे। उ० राग द्वेष महेँ जनम गँवावै। (दो० ५७) गँवावौ-१. खोऊँ, व्यर्थ जाने दूँ, गँवाऊँ, २. गँवाता हूँ। उ० १. जो तनु धनु धरि हरिपद साधहिँ जन सो विनु काज गँवावौ। (वि० १४२)

गँवार-(सं० आम)-गाँव का रहनेवाला, असंस्कृत, मूर्ख, बेसमझ। उ० गाँइ गँवार नृपाल भहि, यमन महा-महि-पाल। (दो० ५५६)

गँवारि-गँवार का स्त्रीलिंग। दे० 'गँवार'। गाँव की रहनेवाली, वे समझ। उ० जुगुति भूमयघारिबे की समुक्तिहँ न गँवारि। (कृ० ५३)

गँवारी-दे० 'गँवारि'।

गँस-(सं० ग्रंथि)-१. गाँठ, २. द्वेष, बैर, गाँस, ३. लगनेवाली बात, ताना। उ० २. मानी राम अधक जननी तें जननिहु गस न गही। (गी० ७३७)

ग-(सं०)-१. स्वर्ग, २. सुमेरु, ३. गणेश, ४. गंधर्व, ५. गीत, ७. गवैया, ८. नभ, आकाश, ९. गमन करनेवाला, १०. गुरुमात्रा।

गई-(सं० गतः)-१. गई, जाना क्रिया का सामान्य भूत में अन्य पुरुष का आदरसूचक रूप। २. नष्ट हो गई। उ० १. कपट नारि-बर-बेष विरचि मंडप गई। (जा० १४७) गइ-१. गई। जाना क्रिया का सामान्य भूत अन्य पुरुष एक बचन का रूप, २. नष्ट हो गई। उ० १. भए सब साधु किरात किरातिनि, राम-दरस मिटि गइ कलु-वाई। (गी० २१६) गइउँ-१. गई, २. नष्ट हुई। उ० १. गइउँ न संग न प्रान पठाए। (मा० २१६६३) गई-गई का बहुवचन। उ० सखी लवाइ गई जह रानी। (मा० १२६७३) गई-(सं० गतः)-१. गुजरी, हाथ से

निकली, दे० 'गइ'। २. नष्ट हो गई। उ० १. गई बहोर गरीब नेवाजू। (मा० ११३१४) गएँ-१. जाने पर, वीतने पर, २. गए, समाप्त हो गए। उ० १. कछु दिन गएँ भरत जुबराजू। (मा० २१२२२) गएँ-१. चले गए, समाप्त हो गए। २. जाने पर, समाप्त हो जाने पर। उ० २. निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह। (मा० ७१ ११४ क) गएहु-गया हुआ भी, नष्ट हुआ भी, समाप्त हुआ भी। उ० देहि लेहि धन धरनि घर, गएहु न जाइहि काउ। (दो० ४५६)

गगन-(सं०)-आकाश, शून्य स्थान। उ० जगु भय मगन गगन भइ बानी। (मा० २१२३११) गगनगिरा-आकाशवाणी, देववाणी, वह शब्द जो आकाश से देवता लोग बोलें। उ० गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह। (मा० ११८६)

गच-(फा०)-१. चूने सुरखी आदि के मेल से बना मसाला जिससे जमीन पक्की की जाती है। २. पक्का फर्श, सुरखी अदि देकर पिटी हुई चिकनी जमीन। पक्की छत। उ० १. नाना रंग रुधिर गच ढारी। (मा० ७२७१२)

गच्छंति-(सं०)-जाते हैं, चलते हैं। उ० यत्र तिष्ठंति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छंति श्रीराशिधवासी। (वि० ५७)

गज-(१)-(सं०)-१. हाथी, करी, २. एक बंदर का नाम जो राम की सेना में था। ३. एक राक्षस का नाम जो महिषासुर का पुत्र था। ४. आठ की संख्या, ५. वह हाथी जिसको भगवान् ने आह से छुड़ाया था। उ० १. गज बाजि खचर निकर पदचर रथ वरुथन्हि को गनै। (मा० ५३३ छं० १) ५. वृत्र बलि बाण प्रहलाद मय व्याध गज गृह द्विज बंधु निजधर्म-त्यागी। (वि० ५७) कथा-राजा इंद्रद्युम्न किसी अपराध के कारण ऋषि-शापवश गज हो गए थे। एक दिन वे त्रिकूट पर्वत के सरोवर में हथिनियों के साथ विहार कर रहे थे। उसी सरोवर में ऋषियों के शापवश हू हू नामक गंधर्व आह होकर रहता था उसने गज (इंद्रद्युम्न) को पकड़ लिया। युद्ध के बाद थकित गज ने एक कमल तोड़कर आर्तस्वर से भगवान् की प्रार्थना की और विष्णु गरुड़ को छोड़ स्वयं दौड़ आए और दोनों का उद्धार किया। गंधर्व (आह) अपने लोक में गया और गज भगवान् का पार्षद हो गया। गज-गवनि-(सं० गजगामिनी)-हाथियों की भाँति मस्त होकर धीरे-धीरे चलनेवाली (गमन करनेवाली) स्त्री या स्त्रियों का समूह। सुंदरी। उ० मदनमत्त गजगवनि चलीं बर परिछन। (पा० १३२) गजगामिनि-दे० 'गजगवनि'। उ० चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि। (मा० १२१७) गजगाह-हाथी की झूल, पाखर। उ० साजि कै सनाह गजगाह सउछाह दल, महाबली धाये बीर जातुधान धीर के। (क० ६१३१) गजदसन-(सं० गज + दशन)-हाथी का दाँत, १. खाने के दाँत और होते हैं और दिखाने के और अतः 'गजदसन' का अर्थ दोहरी नीतिवाला या बाहर से और, भीतर से और लिया जाता है। २. हाथी के बाहर निकले दाँत फिर भीतर नहीं जा सकते अतः गजदसन का अर्थ हृद अक्खड़ लिया जाता

हैं। उ० १. जिमि गज-दसन तथा मम-करनी सब प्रकार तुम जानहु। (वि० ११८) २. बज्ररेख गजदसन जनक-पन बेद-बिदित, जग जान। (गी० ११८७)

गज-(२)-(फा गज)-लम्बाई नापने की एक नाप जो सोलह गिरह या तीन फुट की होती है।

गजबदन-दे० 'गजबदन'। उ० जय गजबदन षडानन माता। (मा० १। २३६।३)

गजमणि-(सं०)-दे० 'गजमुक्ता'।

गजमनि-दे० 'गजमणि'। उ० गजमनि-भाल बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई। (वि० ६२) गजमनियों-गज मणियों का समूह। दे० 'गजमणि'। उ० पहुँची करनि, पदिक हरिनख उर, कठुला कंठ, मंजु गजमनियों। (गी० १। ३१)

गजमनी-दे० 'गजमणि'। उ० माल सुविसाल चहुँ पास बनी गजमनी। (गी० ७।२)

गजमुकुता-दे० 'गजमुक्ता'। उ० गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो। (रा० ४)

गजमुक्ता-(सं०)-एक प्रकार की मोती या मणि जिसका हाथी के मस्तक से निकलना प्रसिद्ध है।

गजमोति-(सं० गजमौक्तिक)-दे० 'गजमुक्ता'। उ० अरुन कंज महुँ जुग-जुग पाँति रुचिर गजमोति। (गी० ७।२१)

गजराज-(सं०)-१. बड़ा हाथी, २. हाथियों का मालिक, पुरावत, ३. वह हाथी जिसे ग्राह ने पकड़ लिया था। दे० 'गज'। उ० ३. कौन धौँ सोम जागी अजामिल अधम ? कौन गजराज धौँ बाजपेई ? (वि० १०६)

गजवदन-(सं०)-हाथी की भाँति मुँहवाले। दे० 'गयोश'।

गजानन-(सं०)-हाथी के से मुँहवाले। दे० 'गयोश'।

गजाननु-दे० 'गजानन'। उ० सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। (मा० १। ३३६।४)

गजारि-(सं०)-सिंह, हाथी का बैरी। उ० नहि गजारि जसु बधे सुगला। (मा० ६। ३०।२)

गजारी-(सं० गज + अरि)-सिंह। उ० अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिले, फिरि बुझिहै को गज कौन गजारी। (क० ६।२)

गजेन्द्र-(सं०)-१. बड़ा हाथी, गजराज, २. इन्द्र का हाथी। पुरावत, ३. वह हाथी जिसे विष्णु ने तारा था।

गजजत-(सं० गर्जन)-गजरते हैं, गर्जन करते हैं। उ० बिकट कटक बिहरत वीर बारिद जिमि गजजत। (क० ६। ४७)

गठिबंध-दे० 'गठिबंध'। उ० गठिबंध तें परतीति बधि, जेहि सबको सब काज। (दो० ४६३)

गाठेबंध-(सं० ग्रंथिबंधन)-गठजोड़ा। ब्याह के समय बर के दुपट्टे और बधू के अंचल में गाँठ ली जाती है। उ० बधि प्रतीति गठिबंध तें, बढो जोग तें छेम। (दो० ४७३)

गड़त-(सं० गर्त)-धँस जाते हैं, गड़ जाते हैं, भीतर चला जाता है। उ० गड़त गोड़ मानो सकुच-पंक महुँ, कड़त प्रेम-बल धीर। (गी० २। ६६) गड़ी-धँसी, घुसी। उ० ऊँकल-तिलक-झवि गड़ी कवि जियरे। (गी० १। ४१) गड़े-

धँसे, खज्जित हो। उ० तापर तिनकी सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े। (वि० १३६)

गढ़-(सं० गड)-१. खाँई, २. जिसके पास या चारों ओर खाँई हो, किला, कोट, दुर्ग। उ० २. सेन साजि गढ़ धेरेसि जाई। (मा० १। १७६।२)

गढ़ाइहौं-गढ़वाँगा, बनवाँगा। उ० सब परिवार मेरो याही लागि, राजाजू ! हौं दीन बिचहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ? (क० २। ८) गढ़ायो-१. गढ़ाया, बनवाया, २. गढ़ाया हुआ, बनाया हुआ। उ० २. आपु हौं आपुको नीके के जानत, रावरो राम ! भरयो गढ़ायो। (क० ७। ६०) गढ़ि-गढ़कर, काट-छाँटकर। उ० सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। (मा० १। २८८।३) मु० गढ़ि गढ़ि-काट-छाँटकर, भली भाँति बनाकर। उ० गढ़ि गढ़ि पाहन पूजिप, गंडकि सिला सुभाय। (दो० ३। ६२) मु० गढ़ि छोलि-सँवारकर, अच्छी तरह बनाकर। उ० हृदय कपट, बर बेष धरि, बचन कहै गढ़ि छोलि। (दो० ३। ३२) गढ़ीबै-गढ़ने में, बनाने में। उ० हौ भले नग-फाँग परे गढ़ीबै, अब ए गढ़त महरि-सुख जोए। (क० ११) गढ़े-(सं० घटन, हिन्दी गढ़ना)=१. किसी वस्तु को काट-छाँट या ठोक-पीटकर ठीक करना, रचना, २. छीलना, काटना, ३. बातें बनाना, कपोल कल्पना करना)-१. गढ़कर, २. गढ़ा, बनाया, ३. गढ़ेंगे, काट-छाँट करेंगे। उ० ३. चतुरंग चमू पल में दलि कै रन रावन राढ़ के हाड़ गढ़े। (क० ६। ६)

गढ़ु-दे० 'गढ़'। उ० २. छेत्रु अगम गढ़ु गढ़ सुहाषा। (मा० २। १०६।३)

गढ़ैया-गढ़नेवाला, बनानेवाला। उ० ज्ञान को गढ़ैया, बिबु गिरा को पढ़ैया, बार, खाल को बढ़ैया सो बढ़ैया उरसाल को। (क० ७। १३६)

गण-(सं०)-१. समूह, झुंड, २. श्रेणी, जाति, ३. किसी भी प्रकार की समानता रखनेवाले मनुष्यों का समुदाय, ४. सेना का वह भाग जिसमें तीन गुल्म हों, ५. छंदशास्त्र के ८ गण, ६. शिव के पारिषद, ७. दूत, सेवक, सेवकों का दल। उ० १. यस्यगुणगण गनति बिमलमति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११)

गणक-(सं०)-गणना करनेवाला, ज्योतिषी।

गणति-दे० 'गनति'।

गणनायक-(सं०)-दे० 'गयोश'।

गणपति-(सं०)-दे० 'गयोश'।

गणराज-(सं० गण + राजा)-दे० 'गयोश'।

गणराज-(सं० गण + राजन)-दे० 'गयोश'।

गणिका-(सं०)-१. वेश्या, रंडी, २. जीवन्ती नाम की वेश्या जो राम नाम के कारण ही मोक्ष-गामिनी हुई। कथा-प्राचीनकाल में एक जीवन्ती नाम की वेश्या हो गई है। उसने एक तोता पाल रक्खा था। वह उसे बहुत प्यार करती थी। एक दिन एक महात्मा उधर से निकले और वेश्या के घर भिच्चा माँगने गए। महात्मा के कहने से उसी दिन से वह गणिका फुरसत के समय तोते को राम नाम पढ़ाने लगी। उसे राम नाम का प्रभाव ज्ञात नहीं था पर अनजान में ही सही, नाम तो लेती थी। इसका फल यह हुआ कि मरते समय भी उसके मुँह

से राम-नाम निकलता रहा और वह भवसागर पार हो गई।

गणेश-(सं०)-एक देवता जिनका सारा शरीर तो मनुष्य का है पर सिर हाथी का है। इनके चार हाथ और एक दाँत है। ये महादेव के पुत्र कहे जाते हैं। इनकी सवारी चूहा है। पुराणों के अनुसार पहले इनका सिर मनुष्य का था पर शनैश्चर की दृष्टि से वह कट गया और विष्णु ने एक हाथी का सिर काटकर उसके स्थान पर जोड़ दिया। कुछ पुराणों के अनुसार परशुराम, कुछ के अनुसार रावण, तथा कुछ के अनुसार कार्तिकेय ने इनका एक दाँत तोड़ दिया था इसीलिए ये एकरदन भी कहे जाते हैं। ये महादेव के गणों के अधिपति होने के कारण गणेश नाम से प्रसिद्ध हैं। सभी मंगल कामों में सबसे पहले इनकी पूजा की जाती है। हिन्दुओं के पाँच प्रधान देवों में इनकी गणना होती है। गणेश लेखक भी बड़े भारी हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि व्यास के महाभारत को पहले पहल इन्होंने ही लिखा था।

गत-गए हुए को, चलते हुए को। उ० सीता लक्ष्मण संयुक्त पथिगतं रामाभिरामं भजे। (मा० ३।१। श्लो० २)

गत (१)-(सं०)-१. समाप्त, नष्ट, बीता हुआ, २. में, गया हुआ, पड़ा हुआ, ३. रहित, हीन, खाली, बिना, ४. क्षीण, दुर्बल, गया-गुजरा। उ० ३. शक्र-प्रेरित-घोर-मारमद-भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी। (वि० ६०)

गता-गई, प्राप्त हुई। उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकत स्तथा न मन्त्रे वनवास दुःखतः। (मा० २। श्लो० २)

गती-गए हुए, जाते हुए। विचरते हुए। यह द्विवचन का रूप है। उ० सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः। (मा० ४।१। श्लो० १)

गत (२)-(सं० गति)-१. अवस्था, दशा, २. रूप, रङ्ग, वेष, ३. सुगति, उपयोग, ४. दुर्गति, दुर्दशा, नाश, ५. अभिय, बुरा। उ० ५. सूपनखा सध भक्ति गत, असुभ अमंगल-मूल। (प्र० ३।२।५)

गति-दे० 'गति'। उ० ४. प्रयाति ते गतिं स्वकं। (मा० ३।४। श्लो० ८)

गति-(सं०)-१. चाल, गमन, २. हिलने-डोलने की क्रिया, हरकत, ३. अवस्था, दशा, हालत, ४. रूप, रंग, वेष, ५. पहुँच, प्रवेश, दखल, ६. प्रयत्न की सीमा, अंतिम उपाय, ७. सहारा, अवलंब, ८. चाल, करनी, चेष्टा, ९. लीला, विधान, माया, १०. ढङ्ग, रीति, ११. जीव का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन, १२. मृत्यु के उपरांत जीवात्मा की दशा, १३. मोक्ष, मुक्ति, १४. ताल और स्वराणुसार नृत्य आदि में अङ्ग-चालन। उ० १. सूचति कटि केहरि, गति मराल। (वि० १४)

१३. जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति सोइ निसि बासर कीजै। (वि० ११७)

गती-दे० 'गति'। उ० १०. गृह आनर्हि चेरि निबेरि गती। (मा० ७।१०।१२)

गथ-(सं० ग्रन्थ)-१. गाँठ में बँधा दाम, रुपया पैसा, २. माल, ३. झुंड, समूह, गरोह। उ० १. बाजार खचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए। (मा० ७।२८। छं० १)

गद-(सं०)-१. रोग, २. राम की सेना में एक बंदर जो

सेनापति था। ३. एक राक्षस का नाम। उ० २. संगनील नल कुसुद गद, जामवतु सुवराज। (प्र० ३।७।२)

गदगद-(सं० गद्गद)-१. एक अवस्था जिसमें मनुष्य अधिक हर्ष, प्रेम, अन्धा आदि के आवेग से इतना पूर्ण हो कि शब्दोच्चारण न कर सके। २. पुलकित, प्रसन्न, ३. प्रेमपूर्ण। उ० १. गद्गद कंठ नयन जल, उर धरि धीरहि। (जा० ११६) ३. गद्गद बचन कहति महतारी। (मा० २।५।३)

गदा-(सं०)-एक प्राचीन अस्त्र जिसमें एक डंढा और उसके सर पर बड़ा सा लट्ठू रहता है। हनुमान का प्रधान अस्त्र यही था। उ० गदा-कंज-दर-चारु-चक्रधर, नाग सुंद समभुज चारी। (वि० ६३)

गन-दे० 'गण'। उ० १. मनिगन पुर नर नारि सुजाती। (मा० २।१।२) गनन्ह-गणों, 'गन' का बहुवचन। उ० गनन्ह समेत बसहि कैलासा। (मा० १।१०।३।३)

गनइ-(सं० गणन)गिनता है। उ० सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ। (पा० ६७) गनई-गिनता, गिनता है। गिनती करता है। गनत-१. गिनते ही, २. गिनते हैं, ३. गिनते हुए। उ० २. ज्ञान-बैराग्य-बिज्ञान भाजन विभो! बिमल गुन गनत सुक नारदादी। (वि० २४) गनति-१. गिनती, शुमार, हिसाब, २. गिनती है, वयन करती है, वखानती है। उ० २. यस्यगुणगण गनति बिमलगति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११) गनहि-गिनते हैं, गणना करते हैं। उ० घोर निसाचर विकट भट समरहि गनहि नहि काहु। (मा० १।३।५)

गनहि-(सं० गण)-समूह को, झुंड को। उ० दे० 'गन-नाथहि'। गनहीं-गिनते हैं। उ० तुन समान त्रैलोकहि गनहीं। (मा० ५।५।११) गनि-गिनकर, गणना कर। उ० कहे नाम गनि मङ्गल नाना। (मा० २।६।१) गनिअ-गिनना चाहिए। उ० रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु। (मा० १।१७०) गनिगनि-गिन गिनकर। उ० नेम तें खिसुपाल दिन प्रति देत गनिगनि गारि। (वि० २।१४) गनिबो-गिनने, गणना करेंगे। उ० न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम। (वि० ७७) गनिय-१. गिनिय, २. गिनना चाहिए। गनियत-१. गिनता है, २. गिना जाता है। उ० २. सूर सुजान सपूत सुख-च्छन गनियत गुन गरु आई। (वि० १७५) गनिहि (१)-गिनते हैं, गणना करते हैं। गनिहि-१. गिनने, २. गिन सकेंगे। उ० २. तऊ न मेरे अघ अचगुन गनिहि। (वि० ६५) गनी (१)-(सं० गणन)-गिना, हिसाब लगाया, जोड़ा। उ० गनी जनक के गनकन्ह जोई। (मा० १।३।१२।४) गने-१. गिने, गिने हुए, २. गिने हैं, गिने गए हैं, ३. गिने-खुने, थोड़े, कम संख्या में, ४. गिना, गणना की। उ० ३. महिसुर मंत्री मातुगुर गने लोग खिए साथ। (मा० २।२४५) गनै-गिनता है, २. गिने, गणना करे। उ० गनै को पार निसाचर जाती। (मा० १।१८।१२) गनौ-गिनो, गणना करो। उ० तदपि सांति-जल जनि गनौ, पावकतेज प्रमान। (वै० ५६)

गनक-दे० 'गणक'। उ० सुनि खिस पाइ असीस बड़ि गनक बोधि दिनु साधि। (मा० २।३।२३) गनकन्-गणक लोग,

ज्योतिषियों । उ० गनी जनक के गनकन्ह जोई । (मा० १।३१२।३)
 गनती-गणना, गिनती, शुमार । उ० साधु गनती में पहि-
 लेहि गनावौ । (वि० २०८)
 गनन-(सं० गणन)-गिनना, गिनती ।
 गननाथ-(सं० गणनाथ)-गणेश । गननाथहि-गणेश को ।
 उ० बिनइ गुरुहि, गुनिगानहि, गिरिहि गननाथहि ।
 (पा० १)
 गननायक-दे० 'गणनायक' । उ० जो सुमिरत सिधि होइ
 गननायक करिबर बदन । (मा० १।१। सौ० १)
 गनप-(सं० गणप)-गणेश । उ० समासद गनप से अमित
 अनूप हैं । (क० ७।१७।१)
 गनपु-दे० 'गनप' ।
 गनपति-दे० 'गणपति' । उ० गाहए गनपति जगबंदन ।
 (वि० १) गनपात-द्विज-गणेश जी का दांत अर्थात् एक ।
 एक की संख्या । उ० अहिरसना थनधेनु रस गनपति-द्विज
 गुरु बार । (स० २१) गनपतिहि-गणेश को । उ० मुनि
 अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संसु भवानि । (मा० १।१००)
 गनराज-दे० 'गनराज' । उ० रामनाम को प्रभाउ पूजियत
 गनराज । (वि० २४७)
 गनराज-दे० 'गणराज' । उ० महिमा जासु जान गनराज ।
 (मा० १।११।२)
 गनराज-दे० 'गणराज' । गनराजहि-गणराज अर्थात् गणेश
 को । उ० चलेउ बरात बनाइ पूजि गनराजहि । (जा० १३३)
 गनराजां-दे० 'गनराज' । उ० सुमिरि संसु गिरिजा गन-
 राजा । (मा० १।३४७।४)
 गना-दे० 'गण' । उ० १. सुखभवन संसय समन दवन
 बिषाद रघुपति गुन गना । (मा० १।६०।छं० १)
 गनाए-१. गिनवाया, गणना कराया । उ० अति अनीस
 नहि जाए गनाए । (वि० १३६) गनावौ-गिनवाऊँ, गिन-
 वाता हूँ । उ० ताहू पर निज मति-बिलास सब संतन
 माँक गनावौ । (वि० १४२)
 गनिका-दे० 'गणिका' । उ० २. गनिका अजामिल ब्याध
 गीष गजादि खल तारे घना । (मा० ७।१३०। छं० १)
 गनिकाऊ-गणिका भी । दे० 'गणिका' । उ० अपतु अजा-
 मिलु गनु गनिकाऊ । (मा० १।२६।४)
 गनिहि (२)-(अर० गनी)-धनी को, धनवान् को । उ०
 गनिहि गुनिहि साहिब लहै सेवा समीचीन को । (वि०
 २७४) गनी (१)-धनिक, धनवान । उ० गनी गरीब आम
 नर नागर । (मा० १।२८।३)
 गनेस-दे० 'गणेश' । उ० सेस गनेस गिरा गमु नाहीं ।
 (मा० २।३२।४)
 गनेसु-दे० 'गणेश' । गणेश शुभ के प्रतीक हैं अतः इनका
 अर्थ शुभ भी लिया जाता है । उ० राम भगति रस सिद्धि
 हित भा यह समय गनेसु । (मा० २।२०८)
 गनेसु-दे० 'गणेश' । उ० बेद बिरचि महेश गनेसु । (मा०
 १।३६।३)
 गपकना-(ध्व० गप+हिन्दी करना)-रूट से खा लेना,
 निगल जाना ।
 गपत-(सं० कल्प)-१. गप मारते हुए, झूठी बात कहते

हुए, २. गप मारता है, अनाप-शनाप बकता है । उ०
 १. हारहि जनि जनम जाय गालगूल गपत । (वि० १३०)
 गभीर-(सं० गंभीर) शांत, सौम्य । दे० 'गंभीर' । उ०
 तुपाराद्रि संकाश गौरं गभीरं । (मा० ७।१०८। छं० ३)
 गभुआरी-(सं० गर्भ)- गर्भ की, पेट की, जन्म से न काटी
 गई, धुँधराली, कुंचित । उ० गभुआरी अलकावली लसै ।
 (गी० १।१६) गभुआरे-गर्भ के, जन्म के समय से रक्ते,
 धुँधराले । उ० चिकन कच कुंचित गभुआरे । (मा०
 १।१६।६)
 गम (१)-(सं०)-१. रास्ता, पथ, २. मैथुन, सहवास, ३.
 गमन, जाना, प्रस्थान । उ० १. सिव उदास तजि बास
 अनत गम कीन्हैउ । (पा० ३१)
 गम (२)-(सं० गम्य)-किसी वस्तु या बिषय में प्रवेश,
 पहुँच, पैठ, गुजर ।
 गम (३)-(अर० गम)-दुःख, शोक, रंज ।
 गमन-(सं०)-१. जाना, चलना, यात्रा करना, प्रस्थान,
 २. पथ, रास्ता, ३. संभोग, मैथुन । उ० १. कियो गमन
 जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव खिपु । (जा० ३६)
 गमु-दे० 'गम' । उ० (गम (२) सेस गनेस गिरा गमु
 नाहीं । (मा० २।३२।४) (गम (१) ३. जिमि जलहीन
 मीन गमु धरनी । (मा० २।२८।१)
 गमिहै-(अर० गम)-गम न करेंगे, परवा न करेंगे, ध्यान
 देंगे । उ० खल अनलहैहैं, तुम्हें सज्जन न गमिहै । (क०
 ७।७।१)
 गम्यं-दे० 'गम्य' । उ. ३. योगीन्द्र ज्ञान गम्यं गुणनिधि-
 मजित निर्गुणं निर्विकारम् । (मा० ६।१ श्लो० १) गम्यं-
 (सं०)-१. जाने योग्य, २. पाने योग्य, ३. जानने योग्य,
 समझने योग्य, ४. संभोग करने योग्य, ५. साध्य, सहल ।
 उ० ३. अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय
 रघुराई । (मा० १।२१। छं० २)
 गयंद-(सं० गजेन्द्र)-१. बड़ा हाथी, गजेन्द्र, २. वह हाथी जिसे
 भगवान ने ब्राह्मण से छुड़ाया था । उ० २. तुलसी अजहुँ सुमिरि
 रघुनाथहि तरो गयंद जाके अर्द्ध नार्य । (वि० ८३)
 गयंदु-दे० 'गयंद' । उ० १. नव गयंदु रघुबीर मनु राज
 अलान समान । (मा० २।५।१)
 गय (१)-(सं० गज)-हाथी । उ० अगनित हय गय सेन
 समाजा । (मा० १।१३०।१)
 गय (२) (सं० गम)-गये, गया, नष्ट हो गया । गयउँ-
 १. गया, २. मैं गया, ३. मैं नष्ट हो गया । उ० १. कवने
 अवसर का भयउ गयउँ नारिबिस्वास । (मा० २।२६)
 गयउ-१. गया, २. नष्ट हो गया । उ० २. नाथ कृपाँ अब
 गयउ बिषादा । (मा० १।१२०।२) गयऊ-१. गए, २.
 नष्ट हो गए । उ० १. एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ ।
 (मा० १।१०६।२) गयऊँ-१. गया, मैं गया, २. मैं नष्ट
 हो गया । उ० १. काहू के गृह आम न गयऊँ । (मा०
 १।१६७।२) गयहु-१. गया, २. नष्ट हो गया, समाप्त हो
 गया । उ० २. गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु ।
 (मा० ६।२१।३) गया (१)-(सं० गम्)-१. चला गया,
 २. बीता, ३. नष्ट, समाप्त । गये-१. जाना क्रिया का भूत-
 कालिक रूप, प्रस्थान किया, २. नष्ट हो गए, ३. बीतने पर,

चले जाने पर, नष्ट हो जाने पर, ४. नष्ट, गया-बीता ।
 गयो-दे० 'गये' । उ० १. तुलसी इहाँ जो आलसी गयो
 आलु की कालि । (दो० १२)
 गया (२)-(सं०)-विहार का एक तीर्थस्थान जहाँ श्राद्ध
 तथा पिबदान आदि के लिए हिंदू जाते हैं । लोगों का
 विश्वास है कि बिना वहाँ जाकर पिबदान आदि किए
 पिबरो को मोक्ष नहीं होता । उ० मगहँ गयादिक तीरथ
 जैसे । (मा० २।४३।४)
 गर (१)-(सं० गल)-गला, गर्दन । उ० मरु गर काटि
 निलज कुलघाती । (मा० ६।३३।२)
 गर (२)-(सं०)-१. ज्वर, विष, २. रोग, बीमारी ।
 गर (३)-(फा०)-किसी काम को बनाने या करनेवाला ।
 जैसे बाज़ीगर, सौदागर आदि ।
 गरई-(सं० गरण)-१. गल जाता है, २. लज्जित होता है,
 ३. नष्ट होता है, ४. नष्ट हो जाता है ।
 गरज (१)-(अर० गरज्ज)-१. आशय, प्रयोजन, मतलब,
 २. स्वार्थ साधने की चिन्ता । उ० २. गरज आपनी सबन
 को । (दो० ३००)
 गरज (२)-(सं० गर्जन)-१. भयानक शब्द, घोरनाद, २.
 गर्जन कर, गरजकर, ३. गर्जन करो । गरजइ-गरजता है,
 गर्जन कर रहा है । उ० मधुर मधुर गरजइ घन घोरा ।
 (मा० ६।१३।१) गरजत-गरजता है, गर्जन करता है । उ०
 उपल बरषि गरजित तरजि, डारत कुलिस कठोर । (दो०
 २८३) गरजनि-बादल या सिंह आदि का शब्द, गड़-
 गढ़ाना, गर्जन । उ० मानत मनहुँ सतकित ललित घन,
 धनु सुरधनु, गरजनि टंकोर । (गी० ३।१) गरजहि-दे०
 'गर्जहि' । गरजि-गर्जन कर, गरज कर । उ० गरजि
 अकास चलेउ तेहि जाना । (मा० ६।६।३) गरजि
 तरजि-(सं० गर्जन, सं० तर्जन)-डॉट डपट कर, छुड़की
 आदि देकर । उ० गरजि तरजि पाषान बरपि पवि प्रीति
 परखि जिय जानै । (वि० ६५)
 गरजी (१)-(अर० गरजी)-१. चाहनेवाला, इच्छा करने-
 वाला, २. मतलबी । उ० १. अजराज कुमार बिना सुनु
 भृंग ! अलंग भयो जिय को गरजी । (क० ७।१३३)
 गरजी (२)-(सं० गर्जन)-गरजनेवाला, केवल बकने या
 कहनेवाला, कुछ काम न करनेवाला ।
 गरत-(सं० गरण)-१. गलता है, पिघलता है, २. पिघते हुए,
 ३. क्षीण होता है, गल जाता है, कृश होता है ४. क्षीण होते
 हुए, ५. बहुत सरदी आदि स ठिठुरता है, ठिठुरते हुए ।
 उ० ३. बंधुबैर कपि विभीषन गुरु गलानि गरत । (वि० १३४)
 गरहि-गलते हैं, गले जा रहे हैं । उ० गरहि गात जिमि
 आतप ओरे । (मा० २।१४।४) गरहीं-गलते हैं, गल
 रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं, नाश होते हैं, समाप्त हो जाते
 हैं । उ० जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं । (मा० १।
 ४।४) गरि-१. द्रवीभूत होकर, गल गलकर, पिघलकर,
 दुबल होकर, नष्ट होकर, २. गली, गल गई । उ० २. गरि
 न जीह मुहँ परेउ न कीरा । (मा० २।१६।१) गरै (१)-
 गले, पिघले, पिघल गए, नष्ट हुए । उ० अंबरीष की
 साप सुरति करि अजहुँ महासुनि गलानि गरै । (वि०
 १३७) गरैगी-गल जायगी, नष्ट हो जायगी । उ० गरैगी

जीह जो कहौ और को हौं । (वि० २२६) गरो-१. गल
 जाय, गले, २. गल गई । उ० १. संकर साखि जो
 राखि कहौ कछु तौ जरि जीह गरो । (वि० २२६)
 गरयो-गला, गल गया, पिघल गया । उ० तुम दयालु
 बनिहै दिए बलि, बिलंब न कीजिए जात गलानि गरयो
 हौं । (वि० २६७)
 गरद (१)-(फा० गर्द)-धूलि, गर्द, रज । उ० खायो काल-
 कूट भयो अजर अमर तनु, भवन मसान, गथ गाँठरी गरद
 की । (क० ७।१५८)
 गरद (२)-सं०)-विष देनेवाला ।
 गरदन-(फा०)-गला, ग्रीवा, धड़ और सिर को जोड़ने-
 वाला अंग । गरदनि-दे० 'गरदन' । उ० सो जानइ जनु
 गरदन मारी । (मा० २।१८।३)
 गरन-१. गलनेवाला, पिघलनेवाला, २. गलना, पानी
 पानी होना । उ० २. तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन ।
 (वि० २४८)
 गरब-दे० 'गर्व' । उ० देखत गरब रहत उर नाहिन ।
 (मा० २।१४।२)
 गरबित-दे० 'गर्वित' । उ० गरबित भरत मालु बल पी कें ।
 (मा० २।१८।२)
 गरबु-दे० 'गरब' ।
 गरभ-दे० 'गर्भ' । उ० बाँधौ हौं करम जइ गरभ गुद
 निगइ । (वि० ७६)
 गरम-(फा० गर्म)-१. उष्ण, तप्त, जलता हुआ, २. प्रचंड,
 तेज, ३. उग्र, ४. आवेशपूर्ण, ५. क्रोधित । उ० १. जूड़े
 होत थोरे ही थोरे ही गरम । (वि० २४६)
 गरल-(सं०)-ज्वर, विष, माहुर । उ० गरल अनल कलि
 मल सरि ब्याधु । (मा० १।५।४) विशेष-गरल या विष
 समुद्र-मंथन में निकला था । इसे शंकर ने पान किया
 अतः गरकंठ आदि कितने ही शंकर के नाम गरल पर
 आधारित हैं ।
 गरलकंठ-जिसके कंठ में विष हो । शंकर । विशेष-शिव के
 चित्रों में विष के कारण ही उनका गला गरल का रंग श्याम
 होने के कारण कुछ श्यामता लिए दिखाया जाता है ।
 गरलसील-ज्वर का सहनेवाला, ज्वरमोहरा । उ० कीन्हीं
 गरलसील जो अंगा । (वै० ४७)
 गरह (१)-(सं० ग्रह)-१. ग्रह, २. अरिष्ट, बाधा ।
 गरह (२)-(सं० गल)-गले का रोग, कंठमाला । उ० हरष
 विषाद गरह बहुताई । (मा० ७।१२।१।१७) विशेष-इस
 में प्रयुक्त 'गरह' के अर्थ के विषय में लोगों के कई
 मत हैं । हिंदी शब्द सागर इसका अर्थ बाधा या
 अरिष्ट मानता है । डा० श्यामसुंदर दास ने इसका अर्थ
 घेवा आदि गले का रोग माना है । डॉ० सूर्यकांत
 इसका अर्थ वायुविकार या गठिया मानते हैं । 'तुलसी
 शब्द सागर' के संप्रहर्कर्ता श्री हरगोविन्द तिवारी ने भी
 इसका अर्थ गठिया माना है पर गले के रोगवाला अर्थ
 अधिक ठीक जान पड़ता है अतः यहाँ वही दिया जा
 रहा है ।
 गरिमा-(सं० गरिमन्)-१. गुरुत्व, भारीपन, बोर, २. गौरव,
 महत्त्व, महिमा, ३. गर्व, अहंकार, ४. शेखी, अपनी बीग

हाँकना, ५. आठ सिद्धियों में से एक जिससे साधक अपना बोझ चाहे जितना भारी कर सकता है। उ० २. जनकनुप-सदसि-सिवाप-भंजन, उन्न-भार्गवागर्भ-गरिमा पहत्ता। (वि० ५०)

गरीब-(अर० गरीब)-१. नन्न, दीन, हीन, २. दरिद्र, निर्धन, कंगाल। उ० १. गहँ बहोर गरीब नेवाजू। (मा० १। १३।४) गरीब निवाज-(अर० गरीब + फा० नवाज)-दीनों पर कृपा करनेवाला, दीनदयाल। उ० सो तुलसी महँगो कियो राम गरीब निवाज। (दो० १०८)

गरीब नेवाज-दे० 'गरीब निवाज'। उ० कायर कूर कपू-लन की हृद तेउ गरीब नेवाज नेवाजे। (क० ७।१)

गरीबी-१. दीनता, अधीनता, २. नन्नता, ३. दरिद्रता कंगाली। उ० १. लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता। (वि० २६२)

गरीसा-(सं० गरीयस)-१. भारी, गुरु, २. महान, प्रबल। उ० १. पर निंदा सम अघ न गरीसा। (मा० ७।१२१।११)

गरु-(सं० गुरु)-भारी, वजनी। उ० न टरै पग मेरहु तें गरु भो, सो मनोँ महि संग बिरंचि रचा। (क० ६।१५)

गरुअ-(सं० गुरु)-१. भारी, वजनी, बोझवाला, २. श्रेष्ठ, उत्तम, भला, ३. गंभीर, शांत, सहनशील। उ० १. गरुअ कठोर बिदित सब काहु। (मा० १।२५०।१)

गरुआइ-भारी होता जाता है, वजनी होता है, भारी हो जाय। उ० मनहुँ पाइ भट बहु बलु अधिहु अधिहु गरुआइ। (मा० १।२५०)

गरुआइ-भार, बोझ, भारीपन, गुरुता। उ० भृगुपति केरि गरव गरुआइ। (मा० १।२६०।३)

गरुइ-(सं० गुरु) भारी, गंभीर, महत्त्वपूर्ण। उ० जानि गरुइ गुरगिरा बहोरी। (मा० २।२१३।१)

गरुइ-दे० 'गरुह'।

गरुइ-(सं० गरुइ)-एक पत्नी। विष्णु के वाहन जो पत्नियों के राजा माने जाते हैं। गरुइ विनता के गर्भ से उत्पन्न कश्यप के पुत्र हैं। एक बार कश्यप ने पुत्रप्राप्ति की इच्छा से यज्ञ किया। इंद्र, बालखिल्य तथा अन्य देवता सामग्री इकट्ठा करने लगे। इंद्र ने शीघ्र ही लकड़ियों की ढेर लगादी और बालखिल्यों को बिढ़ाने लगे। इस पर बालखिल्य क्रोधित हुए और कश्यप के पुत्र रूप में दूसरा इंद्र उत्पन्न करने के प्रयत्न में लगे। अंत में कश्यप ने उन्हें शांत किया और कहा कि तुम लोग जिस इंद्र को उत्पन्न करना चाहते हो वह पत्नियों का इंद्र होगा। तदनुसार विनता के गर्भ से कश्यप ने अग्नि और सूर्य के समान गरुइ और अरुण दो पुत्र उत्पन्न किए। गरुइ विष्णु के वाहन हुए और अरुण सूर्य के सारथी। गरुइ सर्पों के शत्रु हैं, इसीलिए उन्हें पन्न-गारि आदि नाम दिए गए हैं। उ० कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहगनायक गरुइ। (मा० १।१२०।ख) गरुइगामी-गरुइ पर गंमन करनेवाले। विष्णु। गरुइहि-गरुइ को। उ० प्रभु प्रताप तें गरुइहि खाइ परम लघु व्यजल। (मा० ५।१६)

गरुता-१. भारीपन, बोझ, २. गौरव, बड़ाई, ३. गंभीर्य। गरु-भारी, गंभीर, उत्तम। उ० जोग ज्ञानहु तें गरु गनि-यत है। (वि० १।३३)

गरु- (अर० गरु)- गर्भ, घमंड, अभिमान। उ० गोरो गरु गुमान अरो कही कौसिक छोडो सो डोडो है काको? (क० १।२०)

गरे (१)-(सं० गल)-१. गले में, गर्दन में, २. गले। उ० १. साँपनि साँ खेलै, मेलै गरे छुराधार साँ। (क० ५।११)

गरे (२)-(सं० गरण)-गले, पिचले, द्रवित हुए। उ० हवाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात। (क० ५।२०)

गरे-(२) (सं० गल)-गले में।

गर्जहि-गरजते हैं, गरज रहे हैं। उ० गर्जहि मकट भट समु-दाई। (मा० ६।४।१) गर्जा-गरजा, गर्जन किया, जोर का शब्द किया। उ० मुठिका मारि महाधुनि गर्जा। (मा० ४।८।१) गर्जि-गर्जकर, गंभीर शब्द करके। गर्जहि-गरज रहे हैं, गरजते हैं। उ० कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहि। (मा० ५।३।छं० २) गर्जउ-गर्जना की, गर्जे। उ० तिनहि देखि गर्जे हनुमाना। (मा० ५।१८।३) गर्जेसि-गर्जन किया, गर्जे। उ० चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। (मा० ५।२८।१)

गर्त-(सं०)-१. गड्ढा, २. दरार, ३. बर, ४. रथ, ५. जलाशय, ६. एक नरक। उ० १. खनि गर्त गोपित बिराधा। (वि० ४३)

गर्द-(फा० गर्द)-धूल, गर्दा, रज। उ० मर्दि गर्द मिलवहि दस सीसा। (मा० ५।५५।४)

गर्दा-दे० 'गर्द'। उ० कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा। (मा० ६।६७।२)

गर्ब-दे० 'गर्व'। उ० तासु गर्ब जेहि देखत भागा। (मा० ६।२६।२)

गर्बित-दे० 'गरबित'।

गर्भ-(सं०)-१. पेट, हमल की दशा, पेट में बच्चे का होना, २. पेट के भीतर का वह स्थान जहाँ गर्भ रहता है, ३. गर्भ का बच्चा, ४. कौंटा, ५. कटहल। उ० २. जयति अंजनी-गर्भ-अंबोधि-संभूत-विषु बिबुध कुल-कैरवानंदकारी। (वि० २५) गर्भन्ह-गर्भ का बहुवचन, गर्भों। उ० गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मारे अति घोर। (मा० १।२७२) गर्भहि-१. गर्भ में, २. गर्भ को। उ० १. जा दिन तें हरि गर्भहि आए। (मा० १।१६०।३)

गर्व-(सं०)-घमंड, अहंकार, अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा समझने का भाव। गर्वण-गर्व का नाश करने-वाला। उ० गंभीर गर्वण गूढार्थवित गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता। (वि० ५४)

गर्वित-गर्वयुक्त, घमंड से भरा हुआ।

गल-(सं०)-गला, कंठ, गरदन। उ० गलकंबल बरुना विभाति, जनु लूम लसति सरिता सी। (वि० २२)

गले-(सं० गल)-गले में, कंठ में। उ० भाले बाल विधुगले च गरलं यस्वोरसि न्यालराट्। (मा० २।१। रलो० १)

गलकंबल-(सं०)-भालर, गाय के गले के नीचे लटकनेवाला भाग। उ० दे० 'गल'।

गलगाजे-(सं० गंड, गल्ल + गर्जन)-१. प्रसन्न हों, प्रसन्न हुए, २. डींग मारें, डींग मारने लगे, ३. डींग मारनेवाले,

बकवादी। उ० ३. राम सुभाव सुने तुलसी हुलसे अलसी, हमसे गलगाजे। (क० ७११)

गलतो-गलता, पिघलता, पानी पानी होता। उ० तुलसी अरि उर आनि एक अब एती गलानि न गलतो। (गी० ११३)

गलबल-(ध्व०)-कोलाहल, खलबली, हो-हल्ला, शोरगुल। उ० निपट निसक परपुर गलबल भो। (ह० ६)

गलानि-दे० 'ग्लानि'। उ० २. धुवें सगलानि जपेउ हरि-नाऊँ। (मा० १२६१३)

गलानी-दे० 'ग्लानि'। उ० २. हरत सकल कलि कलुष गलानी। (मा० १४३१२)

गलित-(सं०)-१. गला हुआ, बिगड़ा हुआ, २. नष्ट, समाप्त, जीर्ण-शीर्ण, खंडित, रहित, शून्य, ३. परिपक्व, परिपुष्ट। उ० २. तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना। (मा० ११६१११)

गलिन्ह-१. गली का बहुवचन, गलियों, २. गलियों में। उ० २. राम-कृपा तें सोइ सुख अवध गलिन्ह रह्यो पुरि। (गी० ७२१) गली-गलियों। दे० 'गली'। उ० चौहट सुंदर गलीं सुहाई। (मा० १२१३१२) गली-(सं० गल)-घरों की पंक्तियों के बीच से होकर जानेवाला पतला रास्ता, खोरी, कूचा। उ० सींचि सुगंध रचै चौके गृह आंगन गली बजार। (गी० १११)

गवँ-(सं० गम्य)-१. घात, दौंव, मौका, अवसर, २. मतलब, प्रयोजन, ३. डब, चाल, ४. धीरे, चुपके। उ० १. जिमि गवँ तकह लेउं केहि भाँती। (मा० २१३१२) मु० गवँ तकह-घात खोजते रहता। उ० दे० 'गवँ'। गवँहि (१)-(सं० गम्य)-१. धीरे से, चुपके से, २. मौका देखकर, गौं देखकर। उ० १. देखि सरासनु गवँहि सिधारे। (मा० १२२०११)

गवँहि (२)-(सं० गम्य)-जाते हैं।

गवन-(सं० गमन)-जाना, कूच करना, प्रस्थान। उ० राम लखन सुनि साथ गवन तब कीन्हेउ। (जा० ३४)

गवनत-१. जाते हैं, २. जाते समय, जाते वक्त। उ० २. बरबस गवनत रावनिहि, असगुन भए अपार। (प्र० ३१२१६) गवनब-१. जाइए, २. जाइएगा। उ० २. कहाँ गवाँइअ छिनकु अमु गवनब अबहि कि प्रात। (मा० २१११४) गवनहि-जाते हैं। उ० मकर मज्जि गवनहि सुनि वृदा। (मा० १४५११) गवनहु-गमन करो, जाओ। उ० तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। (मा० २१२६१२) गवनि-१. चलनेवाली, २. चली गई, ३. चली, ४. चलकर। उ० ४. गृह तें गवनि परसिपद पावन घोर साप तें तारी। (वि० १६६) गवने-गए, चले गए। उ० हरषि ससरिषि गवने गेहा। (मा० ११८२१२) गवनेउ-चला गया, गया। उ० निज भवन गवनेउ सिंधु श्री रघुपतिहि यह मत भायऊ। (मा० १६०१ छं० १) गवनिहि-चला जायगा। उ० गवनिहि राज समाज नाक असि फूटिहि। (जा० ६८) गवनी-दे० 'गवनि'।

गवनु-(सं० गमन)-जाना, प्रस्थान, गमन। उ० सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ। (मा० २११०४)

गवनू-दे० 'गवन'।

गवाँइअ-गँवा लीजिए, मिटा लीजिए। उ० कहाँ गवाँइअ छिनकु अमु गवनब अबहि कि प्रात। (मा० २१११४) गवाँइ-१. गँवाया, २. गँवाकर। उ० २. जसु प्रतापु बखु तेजु गवाँइ। (मा० १२४५१२) गवाँए-खोए, खो दिए, बिताये, हाथ से निकल जाने दिए। उ० सागु खाइ सत बरष गवाँए। (मा० ११७४१२) गवाँयउ-गँवाया, बिताया। उ० तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउ। (मा० ७८२११) गवाँवा-खोया, बिताया, खतम किया। उ० बैठि विटप तर दिवसु गवाँवा। (मा० २१४७१२)

गवारी-दे० 'गँवारी'। उ० बिलगु न मानब जानि गवारी। (मा० २११६१४)

गवाँर-(सं० ग्राम)-गाँव का रहनेवाला, मूर्ख, गँवार। उ० बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँर। (मा० १११०३)

गवासा-(सं० गवाशन)-गाय खानेवाला, कसाई। उ० मरु मारव महिदेव गवासा। (मा० ११६१४)

गव्य-(सं०)-गो से उत्पन्न, दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र आदि। उ० पंचाच्छरी प्राण, मुद माधव, गव्य सुपंचनदा सी। (वि० २२)

गह-(सं० ग्रहण)-१. गहने, पकड़ने, २. पकड़कर। उ० १. गह सिसुबच्छ अनल अहि धाई। (मा० ३१४३१३) गहइ-१. पकड़ लेती थी, स्वीकार कर लेती थी, २. पकड़ता है, ग्रहण करता है, धारण करता है। ३. पकड़कर, ४. पकड़ने के लिए। उ० १ गहइ छाँ सक सोन उडाई। (मा० ११३१२) गहई-दे० 'गहइ'। उ० २. भगत हेतु लीलातनु गहई। (मा० ११४४१४) गहत-(सं० ग्रहण)-पकड़ता है, ग्रहण करता है, अपनाता है। उ० सुनि मन गुनि समुक्ति क्यो न सुगम सुमग गहत। (वि० १३३) गहति-पकड़ती है। 'गहत' का स्त्रीलिंग। उ० छोड़ति छोड़ाये तें, गहाए तें गहति। (वि० २४६) गहते-पकड़ते, अपनाते, ग्रहण करते। उ० जो पै हरि जन के अवगुन गहते। (वि० १७) गहनि (१)-(सं० ग्रहण)-१. पकड़ने या ग्रहण करने का भाव, अपनाना, २. हठ, टेक, ज़िद। उ० १. सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम। (वै० १७) गहब-पकड़ूंगा, ग्रहण करूँगा, अपनाऊँगा। उ० त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि हाटक तुन की नाई। (वि० १२४) गहसि-१. पकड़ता, २. पकड़ ली, पकड़ी। उ० १. गहसि न राम चरन सठ जाई। (मा० ६३५१२) गहहि-ग्रहण करते हैं, पकड़ते हैं। उ० गहहि न पाप पुनु गुन दोष। (मा० २१२११२) गहहीं-ग्रहण करते हैं, अपनाते हैं, पकड़ते हैं। उ० अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। (मा० २१३१११) गहहु-ग्रहण करो, पकड़ो। उ० दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। (मा० ६१२०४) गहहु-दे० 'गहहु'। उ० सुनि मम बचन हृदय हृद गहहु। (मा० ७१४५११) गहा-१. पकड़ा, ग्रहण किया, २. जकड़ा हुआ, अस्त, पकड़ में आया हुआ। उ० १. खगनाथ जथा करि कोप गहा। (मा० ६११११२) गहि-पकड़कर, थामकर, असकर। उ० गहि पद भरत मातु सब राखीं। (मा० ११७०११) गहिबे-१. पकड़ना होगा, धारण करना

होगा, २. पकड़ने, ग्रहण करने। उ० १. ज्ञान गिरा कृबरीरचन की सुनि विचारि गहिबे ही। (क० ४०)
 गहिबो-१. पकड़ना, पकड़ लेना, २. पकड़ोगे। उ० १. प्रबल दनुज दल दलि पल आध में, जीवत दुरित-दसानन गहिबो। (गी० ११४) गहियतु-पकड़ता, पकड़ लेता। उ० ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है। (क० २१४)
 गहिसि-१. पकड़ ली, पकड़ी, २. पकड़ता। उ० १. गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। (मा० ६।६१३) गहिहो-पकड़ूँगा। उ० इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहो। (वि० २३१) गही-ग्रहण की, पकड़ी। उ० गये बिसारि रीति गोकुल की, अब निर्गुन गति गही है। (क० ४२) गहु-पकड़, पकड़ो, ग्रहण करो। उ० सखी कहहि प्रभुपद गहु सीता। (मा० १।२६१४) गहे-१. पकड़े हुए, २. पकड़े, ग्रहण किए। उ० २. पुनि गहे पद पाथोज मयनां प्रेम परिपूरन हियो। (मा० १।१०।१। छं० १) गहेउ-पकड़ा। गहेसि-पकड़ लिए, ग्रहण कर लिए। उ० आतुर समय गहेसि पद जाई। (मा० ३।२।६) गहेहू-पकड़ना, पकड़िएगा। उ० बार बार पद पंकज गहेहू। (मा० २।१२।१।३) गहौंगो-ग्रहण करूँगा, पकड़ूँगा। उ० श्री रघुनाथ-कृपाल-कृपा ते संत सुभाव गहौंगो। (वि० १०२) गहौ-ग्रहण किया, पकड़ा। उ० तुलसिदास त्रैलोक्य मान्य भयो कारन इहै गहौ गिरिजा-वर। (क० ३१)
 गहगह-(सं० गद्गद)-असन्नतापूर्वक, आनंद से भरा, घमा-घम। उ० गहगह गगन दुंदुभी बाजी। (क० ६१)
 गहगहि-दे० 'गहगह'। उ० गहगहि गगन दुंदुभी बाजी। (मा० १।१६।१।४)
 गहगही-दे० 'गहगह'। उ० सुर सुमन बरषहि हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही। (मा० ६।१०३। छं० २)
 गद्गहे-दे० 'गहगह'। उ० अति गहगहे बाजने बाजे। (मा० १।२८६।१)
 गहडोरिहो-(?)—मथकर गदला कर दूँगा। उ० सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहो। (वि० २५८)
 गहन (१)-(सं० ग्रहण)-१. ग्रहण, पकड़ना, २. सूर्य तथा चंद्र आदि का ग्रहण, ३. कलक, ४. दुःख, कष्ट, ५. बंधक, रेहन।
 गहन (२)-(सं०)-१. गम्भीर, गहरा, २. दुर्गम, घना, ३. कठिन, भयंकर, दुर्लभ, ४. कुंज, निकुंज, ५. जल। उ० ३. सकल संघट पोच, सोचबस सबदा दास तुलसी विषय-गहन-अस्तम्। (वि० ५६)
 गहनि (२)-(सं० गहन)-घोर, विकराल, भयंकर। उ० आह अति गहनि गरीबी गाढ़े गहो हौं। (वि० २६०)
 गहनु (१)-(सं० ग्रहण)-ग्रहण, पकड़ना। दे० 'गहन(१)। उ० समउ राहु रवि-गहनु-मत, राजहिं पुजहिं कलेस। (प्र० ७।२।४)
 गहनु (२)-(सं० गहन)-गंभीर, कठिन। दे० 'गहन(२)।
 गहवर-(सं० गह्वर)-१. दुर्गम, विषम, २. व्याकुल, उद्विग्न, दुखी, ३. बेसुख, ४. किसी ध्यान में मग्न, ५. गुफा, ६. कुंज, वृक्षों से ढका स्थान। उ० १. नगरु सफल बनू गह-वर भारी। (मा० २।८४।१)

गहवरि-दुःख से भरकर, व्याकुल होकर। उ० गहवरि हिथँ कइ कौसिला मोहि भरत कर सोनु। (मा० २।२८२)
 गु० गहवरि आयो-गला भर आया, कल्याण से पूर्ण हो गए। उ० कपि के चलत सिय को मनु गहवरि आयो। (गी० १।१५)
 गहर-(?)—देर, बिलंब।
 गहप-दे० 'गहर'। उ० बूमिप बिलंब कहा कहूँ न गहर। (वि० २५०)
 गहाए-पकड़ाए, धराए। उ० छोड़ति छोड़ाए तें, गहाए तें गहत। (वि० २४६)
 गहागह-(सं० गद्गद)-बड़ी धूमधाम से। उ० बाज गहा-गह अवध बधावा। (मा० २।७२)
 गहागहे-धूमधाम से बजने लगे, धूमधाम होने लगी। उ० नभ पुर मंगल गान निसान गहागहे। (जा० १।१८)
 गहिराए (सं० गंभीर)-गहरे हो गए। अथाह हो गए। उ० गए सोक-सर सूखि, मोद-सरिता-समुद्र गहिराए। (गी० ६।२२)
 गहीले-(सं० ग्रहण)-१. गहनेवाले, पकड़नेवाले, अपना-ने-वाले, २. ज़िद्दी, ३. घमंडी। उ० २. सो बल गयो, किबौ भए अब गर्ब-गहीले। (वि० ३२)
 गह्वर-(सं०)-१. अंधकारमय या गूढ़ स्थान, गुप्त स्थान, २. बिल, माँद, ३. गुफा, कंदरा, ४. खतागृह, कुंज, ५. झाड़ी, ६. जंगल, ७. पाखंड, ८. जल, ९. कठिन, दुर्गम, १०. गुप्त, छिपा।
 गाँठ-(सं० ग्रंथि)-१. रस्सी डोरी या तागे आदि में पड़ी उलझन जो खिंचने पर कड़ी और दृढ़ हो जाती है, गिरह, २. कपड़े आदि में दी गई गाँठ जिसमें पैसा या कोई अन्य चीज़ बँधी हो। ३. मनमोटाव, बैर-भाव, ४. अंग का जोड़, ५. गठरी, गह्वर।
 गाँठरी-(सं० ग्रंथि)-गाँठरी, गह्वर। उ० भवन मसान, गथ गाँठरी गरद की। (क० ७।१५८)
 गाँठि-दे० 'गाँठ'। उ० १. गाँठि बिनु गुन की कठिन जड़ चेतन की। (गी० १।८६)
 गाँठी-दे० 'गाँठ'। उ० २. मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी। (मा० १।१३।१।३)
 गाँडर-(सं० गंडाली)-सूँज की तरह की एक घास जिसकी पत्ती पतली और लम्बी होती है। इसी की जड़ को खस कहते हैं। उ० बाज सुराग कि गाँडर ताँती। (मा० २।२४।१।३)
 गाँथे-(सं० ग्रंथन)-गूथे, गूँथे।
 गाँव-(सं० ग्राम)-देहात में वह स्थान जहाँ बहुत से किसानों-मजदूरों आदि का घर हो, छोटी बस्ती। उ० गाँव बसत, वामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे। (वि० ८)
 गाँसी-(सं० ग्रंथन)-हथियारों के आगे का तेज भाग, धार, नोक।
 गाँहक-दे० 'गाहक'। उ० १. गाँहक गरीब को दयालु दानि दीन को। (वि० ६६)
 गा-(सं० गम्)-१. गया, जाना क्रिया का भूतकालिक रूप, २. जाना, ३. गामिनी, जानेवाली। उ० १. नाम लेत कलिकाल हूँ हरि पुरहिं न गा को ? (वि० १।२२)

२. जो प्रभु पार अवसि गा चहहू । (मा० २१००४४)
 ३. त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पापछालिका । (वि० १७)
 गाइ (१)-(सं० गान)-गाकर, गुणगान कर, प्रशंसा कर ।
 उ० तरे तुलसीदास भव तन-नाथ-गुन गान गाइ । (वि०
 ४१) गाइए-दे० 'गाइए' । उ० १. जहँ भूप रमानिवास
 तहँ की संपदा किमि गाइए । (मा० ७१२८८ छं० १)
 गाइवी-गाऊंगा, यश का वर्णन करूंगा । उ० तुलसी
 सो तिहँ भुवन गाइवी नंद सुवन सनमानी । (क० ४८)
 गाइय-१. गाइए, बखानिए, वर्णन कीजिए, २. गाता हूँ,
 वर्णन करता हूँ । गाइयत-गाता है, गाते हैं । उ० बाँकी
 बिरुदावलि बिदित बेद गाइयत । (ह० ३१) गाइये-
 दे० 'गाइए' । गाइहँ-गान करूँगे, वर्णन करूँगे । उ०
 भूरि भाग तुलसी तेउ जे मुनिहँ, गाइहँ, बखानिहँ ।
 (गी० ११७८) गाइहौं-गाऊँगा । उ० चारु चरित रघुबंस-
 तिलक के तहँ तुलसी मिलि गाइहौं । (गी० १११८)
 गाई (१)-(सं० गान)-१. गीत गाया, वर्णन किया, २.
 गाई हुई, बखानी हुई, ३. गा करके, बखान कर । उ०
 १. मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई । (मा० ११३१५)
 गाउ-गाओ, वर्णन करो । उ० परम पावन प्रेम-परमिति
 समुक्ति तुलसी गाउ । (गी० ७१२५) गाउव-गावेंगे,
 गाऊँगा । उ० ब्याह उछाह सुमंगल त्रिभुवन गाउव ।
 (जा० ७६) गाऊँ (१)-गान करूँ । गाए-१. गाया, गाया
 है, २. गाने से । उ० १. भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ।
 (मा० ११३३१४) गायंति-गाते हैं, गान करते हैं । उ०
 गायंति तव चरित सुपवित्र श्रुति सेस सुक संसु
 सनकादि मुनि मननसीखा । (वि० ५२) गायऊ-
 गाया है, गाते हैं । उ० यह चरित कलिमलहर जथा
 मति दास तुलसी गायऊ । (मा० ११६०१ छं० १) गाय-
 गान किया, गान किया है । उ० सिव विश्राम बिटप श्रुति
 गाया । (मा० १११०६१२) गाये-१. गान किया, बखाना,
 २. गाने से, वर्णन करने से । गायो-गान किया, बखाना,
 प्रशंसा की । उ० बाजिमेष कब कियो अजामिल, गज
 गायो कब साम को ? (वि० ६६) गाव-(सं० गान)-
 गाते हैं, कहते हैं, प्रशंसा करते हैं । उ० संत कहहि असि
 नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव । (मा० ११४५) गावई-
 गाता है, बखानता है, कहता है । उ० रघुबीर पद पाथोज
 मधुकर दास तुलसी गावई । (मा० ४३३०१ छं० १)
 गावउ-१. गाता हूँ, बतलाता हूँ, २. गाऊँ, बतलाऊँ । उ०
 १. परम रहस्य मनोहर गावउ । (मा० ७१७४१२) गावत-
 १. गाता है, बखानता है, २. गाते हुए, वर्णन करते हुए,
 ३. गाने पर । उ० १. अलिगन गावत नाचत मोरा ।
 (मा० २१२३६१४) गावति-१. गाती है, २. गाते हुए,
 बखानते हुए, ३. गाने पर, वर्णन करने पर । गावती-१.
 गाती हैं, २. गाती हुई । उ० २. आरती सँवारि बर
 नारि चलीं गावतीं । (क० १११३) गावहि-गाते हैं,
 वर्णन करते हैं । उ० रामकथा गावहि श्रुति
 सूरी । (मा० ७१२२६११) गावहि-१. गाता है, २.
 गा । उ० २. तजि सकल आस भरोस गावहि सुनिहि
 संतत सठ मना । (मा० ११६०१ छं० १) गावही-गाते हैं,
 वर्णन करते हैं । उ० उपवीत ब्याह उछाह जे सिध राम

मंगल गावहीं । (जा० २१६) गावा-गाते हैं, गान किया
 है, कहा है । उ० संत पुरान उपनिषद गावा । (मा०
 ११४६११) गावै-१. गाता है, २. गाये । गावौं-१. गान
 करता हूँ, वर्णन करता हूँ, २. गाऊँ, बखानूँ । उ० २.
 तौन सिराहि कल्प सत लागि, प्रभु, कहा एक मुख गावौं ?
 (वि० १४२)
 गाइ (२)-(सं० गो)-गाय, धेनु । गाइगोठ-दे० 'गाय-
 गोठ' । उ० गाइगोठ महिसुर पुर जारें । (मा० २१६७३६)
 गाइन्ह-गाय का बहुवचन, गायों । उ० अंबर अमर हर-
 षत वरषत फूल, सनेह-सिथिल गोप गाइन्ह के टट हैं ।
 (क० २०)
 गाई (२)-(सं० गो)-गाय, धेनु । उ० राम कथा कलि
 कामद गाई । (मा० १३११४)
 गाउँ-(सं० ग्राम)-गाँव, छोटी बस्ती । उ० नगर गाउँ पुर
 आगि लगावहि । (मा० १११८३३)
 गाऊँ (२)-गाँव, छोटी बस्ती । उ० करि अनाथ जन परि-
 जन गाऊँ । (मा० २१५७१२)
 गाज (१)-(?)-पानी आदि का फेन, झाग ।
 गाज (२)-(सं० गर्ज)-१. गर्जन, शोर, २. बिजली । उ०
 २. गाज्यो कपि गाज ज्यो । (क० १८८)
 गाजत-(सं० गर्ज)-१. गरजते हैं, प्रसन्न होते हैं, २. गर्जन
 करते हुए, हुंकारते हुए, खुश होते हुए । उ० २. तुलसी
 ते गाजत फिरहि राम-छत्र की छाँह । (स० ७२) गाजहि-
 प्रसन्न होते हैं, गरजते हैं । उ० हय गय गाजहि हने
 निसाना । (मा० ११३०४१२) गाजी-गरजी, तबतडा कर
 गिरी, प्रसन्न हुई । उ० लाज गाज उनवनि कुचाल कलि
 परी बजाइ कहुँ कहुँ गाजी । (क० ६१) गाजे-१. गर्जे,
 २. प्रसन्न हुए, ३. गर्जने पर, प्रसन्न होने पर ।
 गाज्यो-गर्जना की, हुंकारा, प्रसन्न हुए । उ०
 गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि । (क० ६१६)
 गाज्यौ-१. गर्जन किया, प्रसन्न हुआ, २. गरजता हुआ,
 प्रसन्न होता हुआ । उ० २. गाज्यौ मृगराज गजराज ज्यो
 गहतु हौं । (क० १११८)
 गाजन-(सं० गर्जन)-१. प्रसन्न होना, गर्जना, २. गर्जने-
 वाला, ३. नाथ करनेवाला ।
 गाडर (१)-(सं० गड्ढरी)-भेंड़ । उ० गाडर लाए ऊन कों
 लाग्यो चरन कपास । (स० ५३) मु० गाडर के डरन-
 भेंड़ियाघसान । बिना सोचे समझे किसी एक को एक ओर
 जाते देख सभी का उधर ही चल देना । उ० तुलसी
 गाडर के डरन जानो जगत विचार । (स० ३५८)
 गाडर (२)-(सं० गंडाली)-मूँज की तरह की एक घास ।
 गाड़-(सं० गर्त)-गड्ढा, खत्ता । उ० रुधिर गाड़ भरि-भरि
 जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ । (मा० ६१५३)
 गाड़हि-(सं० गर्त)-गाड़ देते हैं, गाड़ते हैं । उ० निसिचर
 भट महि गाड़हि भालू । (मा० ६१८१४) गाड़ि-१. गाड़
 कर, २. गाड़ दिया । उ० २. गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन
 कुमत्रु । (मा० २१२१२१२) गाड़ि-१. गाड़ दिया, ढक
 दिया, १. गाड़ना, ढकना, तोपना । उ० २. गाड़े भली,
 उखारे अनुचित, बनि आपु बहिबे ही । (क० ४०)
 गाड़ी-(सं० शकट)-पहियों के ऊपर ठहरा हुआ ढाँचा जिसे

आदमी, बैल, घोड़े, या मशीन आदि से खींचा जाता है। यान, शकट। उ० गाढ़ी के स्वान की नाई माया मोह की, बड़ाई छिनहिं तजत, छिन भजत बहोरिहौं। (वि० २५८)

गाढ़-गढ़े। उ० कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाढ़े मानौ। (ह० ७)

गाढ़-(सं०)-१. अतिशय, बहुत, २. दृढ़, मजबूत, ३. घना गाढ़ा, ४. गहरा, अथाह, ५. कठिन, विकट, ६. आपत्ति, संकट, ७. जुलाहों का करघा। गाढ़ी (१)-'गाढ़' का स्त्रीलिङ्ग। उ० २. देखी माया सब विधि गाढ़ी। (मा० १२०२२)

गाढ़ा-दे० 'गाढ़'। उ० २. कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। (मा० ३१२८७)

गाढ़ी (२)-(सं० घटन)-गाढ़ी हुई।

गाढ़े-दे० 'गाढ़'। ज़ोर से, दृढ़ता से। उ० लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। (मा० १२६११४)

गात-(सं० गात्र)-शरीर, अंग। उ० गरहिं गात जिमि आपतप ओरे। (मा० २१९७७४) गातहि-शरीर को। उ० जलज बिलोचन स्यामल गातहि। (मा० ७३०२)

गाता (१)-(सं० गान)-गावैया, गानेवाला। उ० जयति रानअजिर-गंधर्वगनगर्वहर फेरि किये राम-गुन गाथ-गाता। (वि० ३३)

गाता (२)-दे० 'गात'। उ० सतिहि बिलोकि जरे सब गाता। (मा० ११६३२)

गातु-दे० 'गात'। उ० नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि-पुनि हरषत गातु। (मा० ११८१)

गात्र-(सं०)-शरीर, गात।

गाथ-(सं०)-१. गान, गीत, २. स्तोत्र, प्रशंसा, स्तुति, ३. गाथा कथा। उ० ३. देहिं असीस जो हारि सब गावहिं गुन गन गाथ। (मा० १३२१)

गाथा-(सं०)-१. स्तुति, प्रशंसात्मक गीत, स्तोत्र, २. गीत, गाना, ३. कथा, ४. कथनी, वार्ता। उ० ३. बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा। (मा० १११०५१७)

गाथे-(सं० ग्रंथन) १. गूँथे हुए, लगाए हुए, २. गूँथे। उ० १. मंगलमय मुकुता मनि गाथे। (मा० १३२७१५)

गाथे-दे० 'गाथे'। उ० १. गाथे महामनि मौरमंजुल अंग सब चित चोरहीं। (मा० १३२७१ छं० १)

गादुर-(?)-चमगादड़। उ० ते नर गादुर जानि जिय करिय न हरष विवाद। (दो० ३८७)

गाधि-(सं०)-विश्वामित्र के पिता का नाम। ये कुशिक राजा के पुत्र थे। उ० जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुल चंडु। (मा० १३६०)

गाधी-दे० 'गाधि'।

गाधेय-(सं०)-विश्वामित्र, गाधि-पुत्र। उ० जयति गाधेय-गौतम-जनक सुखजनक विश्वकंटक-कुटिल कोटिहंता। (वि० ३८)

गानं-(सं०)-१. गाने की क्रिया, गाना, २. गाने की चीज़, गीत। उ० १. अमत् आमोद बस मत्त मधुकर-निकर मधुरतर मुखर कुर्यति गानं। (वि० ५१) गानहिं-१. गान

को, २. गान। उ० २. पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं। (मा० ७४२३)

गाना-(सं० गान)-१. ताल-स्वर के नियम के साथ शब्दोच्चारण करना, २. मधुर ध्वनि करना, ३. वर्णन करना, ४. प्रशंसा करना, ५. गीत, ६. गाने की क्रिया। उ० ३. कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। (मा० ११११४)

गापत-(सं० कल्प)-१. गप मारता है, बकता है, २. गप मारते हुए।

गामिनि-दे० 'गामिनी'। उ० १. चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि। (मा० १३१७)

गामिनी-(सं०)-१. चलनेवाली, चालवाली, २. जानेवाली। उ० २. अमित महिमा अमितरूप भूपावली मुकुटमनि-वांढते लोकत्रयगामिनी। (वि० १८)

गामी-(सं० गामिन्)-१. चलनेवाले, चालवाला, २. गमन करनेवाला, संभोग करनेवाला। उ० २. सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी। (मा० ७११२२)

गाय-(सं० गो)-एक मादा चौपाया जिसके नर को साँड़ या बैल कहते हैं। उ० रोगसिंधु क्यों न डारियत गाय-खुर कै। (ह० ४३)

गायक-(सं०)-गावैया, गानेवाला। उ० पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। (मा० २३७३)

गायगोट-(गो + गोष्ठी)-गोशाला, गायों के रहने की जगह।

गारा-(सं० गालन)-१. मिट्टी या चूने आदि को पानी में सानकर बनाई गई गीली चीज़, जिससे ईंट की जुड़ाई होती है। २. निचोड़ा, ३. गलाया।

गारि (१)-(सं० गालन)-१. गारकर, निचोड़कर, २. गलाकर, घोलकर। उ० १. अमिय गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार। (दो० ३२८)

गारि (२)-(सं० गालि)-गाली। निंदा या व्यंग्य भरे शब्द। उ० दे० 'गारि (१)'।

गारी-दे० 'गारि (२)'। उ० दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी। (मा० २१३०२)

गारुड-(सं० गारुड)-वह मंत्र जिसका देवता गरुड हो। साँप का विष उतारनेवाला मंत्र।

गारुडि-(सं० गारुडिन्)-साँप का विष उतारनेवाला, साँप झाड़नेवाला। उ० तवस्वरूप गारुडि रघुनायक। (मा० ७३३४)

गारुडी-दे० 'गारुडि'।

गारो (१)-(सं० गर्व)-१. घमंड, अहंकार, २. मान, गौरव, ३. गुरु, बड़ा। उ० १. तौ हरि रोस भरोस दोस गुन तेहिं भजते तजि गारो। (वि० ६४)

गारो (२)-(सं० गालन)-१. गलाया, २. गार दिया, निचोड़ा।

गारो (३)-(सं० गालि)-निंदा, जुलाई, गाली देना। उ० गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो। (गी० २६६)

गारो (४)-(अर० गार)-गड्ढा, कन्दरा, गुफा।

गाल-(सं० गाल्ल) १. कपोल, चेहरे के दोनों ओर का कोमल भाग, २. बढ़वड़ाने का स्वभाव, बकवाद करने की आदत,

३. मध्य, बीच, ४. मुँह, ५. आस, कौर, वह अन्न जो एक बार मुँह में डाला जा सके। मु० गाल करब-मुँहजोरी करूँगा, बढ़ बढ़ कर बातें करूँगा। उ० गालु करब केहि कर बलु पाई। (मा० २।१४।१) मु० गाल फुलाउब-१. अभिमान प्रकट करूँगा, २. नाराज हूँगा। उ० २. हँसब ठाढ़ फुलाउब गाला। (मा० २।३५।३) गाल बजाई-डींग मार कर, बढ़ बढ़ कर बातें कर। उ० व्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। (मा० १।२४।१) गाल बड़-बड़ बढ़ बढ़ कर बात करनेवाला। उ० हँसि कह रानि गाल बड़ तोरें। (मा० २।१३।४) गाल मारै-डींग मारै, सीटे, बढ़ बढ़कर बातें करे। उ० क्यों न मारै गाल बैठो काल-डाढ़नि बीच। (गी० ५।६)

गालगूल-(सं० गल्ल)-व्यर्थ की बात, गपशप, अनाब शनाब। उ० हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत। (वि० १३०)

गालव-(सं०)-पुराणों में गालव नाम के कई व्यक्तियों का उल्लेख है। जो गालव अधिक प्रसिद्ध हैं, विश्वामित्र के अंतैवासी थे। विद्या समाप्त करने पर इन्होंने अपने गुरु विश्वामित्र से दक्षिणा माँगने का आग्रह किया। इनके हठ से चिढ़ कर विश्वामित्र ने ८०० स्यामकर्या घोड़े मंगे। गालव ने अपने मित्र गरुड़ के साथ जाकर राजा ययाति से इसके लिए प्रार्थना की। ययाति ने अपनी पुत्री माधवी को उन्हें सौंप दिया। गालव ने क्रमशः हय्येश्वर, द्विवोदास और उशीनर को माधवी को देकर उनसे दो दो सौ घोड़े लिए। इस प्रकार ६०० घोड़े तो इकट्ठे हो गए पर २०० का प्रबंध वे न कर सके। अंत में ६०० घोड़े और माधवी उन्होंने गुरु विश्वामित्र को दिए। इस प्रकार वे गुरुदक्षिणा से मुक्त हुए। अपने इस हठ के कारण उन्हें इतनी परेशानी उठानी पड़ी अतः उनका यह हठ प्रसिद्ध है। उ० हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस। (मा० २।६१)

गाला-दे० 'गाल'। उ० दे० 'गाल फुलाउब'।

गालु-दे० 'गाल'।

गालू-दे० 'गाल'।

गावन-गान करना, गाना, बखानना। उ० हरषित लगीं सुवासिनि मंगल गावन। (पा० ६६) गावनि-गान करना, गाना। उ० सो निसि सोहावनि, मधुर गावनि, बाजने, बाजहि भले। (जा० १८०)

गाह (१)-(सं० ग्रहण)-१. पकड़, २. घात, ३. ग्राहक, चाहनेवाला।

गाह (२)-(सं० ग्राह)-मगर, पानी का एक जानवर।

गाहक-(सं० ग्राहक)-१. खरीदार, मोल लेनेवाला, अभिलाषी, प्रेमी, २. अवगाहन करनेवाला। उ० १. जन गुन गाहक राम दोष दलन करुनायतन। (मा० १।३३।६)

गाहकताई-ग्राहकता, कदरदानी। उ० कह कपि तव गुन गाहकताई। (मा० ६।२४।३)

गाहा (१)-(सं० गाथा)-कथा, वर्णन, वृत्तांत। उ० करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। (मा० १।८।३)

गाहा (२)-(सं० ग्रहण)-खरीदार, ग्रहण करनेवाला। उ० खल अघ अगुन साधु गुन गाहा (मा० १।६।१)

गिद्ध-(सं० गृध)-१. एक प्रकार का बड़ा पक्षी जो मांसाहारी होता है। २. जटायु। रामायण का प्रसिद्ध गिद्ध। दे० 'जटायु'। उ० २. सद्गति सबरी गिद्ध की सादर करता को ?

गिनत-(सं० गणन)-१. गिनता है, २. समझता है, ३. प्रतिष्ठा करता है, ४. गिनते हुए, ५. समझते हुए, ६. प्रतिष्ठा करते हुए। उ० २. सम कंचन काँचै गिनत, सधु मित्र सम दोइ। (वै० ३।१) गिन्यो-१. गणना की, गिना, २. प्रतिष्ठा की।

गिनती-गणना, शुमार, संख्या, तादाद। उ० केहि गिनती महँ गिनती जस वनघास। (ब० ५६)

गिर (१)-(सं० गिरि)-१. पहाड़, पर्वत, २. एक प्रकार के गोसाईं।

गिर (२)-(सं० गिरा)-वाणी, ज़बान। गिरहु (१)-(सं० गिरा)-वाणी में, ज़बान में, भाषा में। उ० हरि-हर-जस सुर-नर-गिरहु, बरनहि सुकवि-समाज। (दो० १६७)

गिरजा-दे० 'गिरिजा'।

गिरन-गिरने, नीचे आने। उ० रघुबीर तीर प्रचंड लागहि भूमि गिरन न पावहीं। (मा० ६।६२) गिरहिं-१. गिरते हैं, २. गिर पड़तीं। उ० २. गिरहिं न तव रसना अभिमानी। (मा० ६।३३।४) गिरहु (२)-(सं० गलन)-गिरो। गिरि (१)-१. गिरकर, नीचे आकर, २. अवनतिकर। उ० १. गिरि घुटुखनि टेकि उठि अनुजनि, तोतरि बोलत पूष देखाए। (गी० १।२६) गिरिगो-गिर गया। उ० गिरिगो गिरिराज ज्यों गाज को मारो। (क० ६।३८) गिरि परनि-गिर पड़ना, लुढ़क जाना। उ० परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि। (गी० १।२५) गिरिहिं-गिरेंगी, गिरेंगे। उ० गिरिहिं रसना संसथ नाहीं। (मा० ६।३३।५) गिरी (१)-(सं० गलन)-१. गिर पड़ी, २. गिरी हुई। गिरे-१. गिरने में, गिरने से, २. गिरे हुए, ३. गिर पड़े, असफल हुए। उ० १. सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। (मा० ६।१४।२) गिरौ-(सं० गलन)-गिरूँ, गिर पड़ूँ, गिर पड़ूँगी। उ० दे० 'गिरि'।

गिरवान-(सं० गीर्वाण)-देवता, देव, सुर।

गिरह-(फ़ा०)-१. गाँठ, अन्थि, २. कलैया, उलटी। उ० २. गगन गिरह करिबो कबै तुलसी पदत कपोत। (स० १।५६)

गिरा-(सं०)-१. बोलने की शक्ति, २. जीभ, ज़बान, ३. वाणी, भाषा, बोली, बोल, बचन, ५. सरस्वती देवी। उ० ४. गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। (मा० १।१८) ५. सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू। (मा० १।३६।१३) गिरापति-(सं०)-सरस्वती के पति, ब्रह्मा, विधाता। उ० गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति। (जा० १)

गिरिद-(सं० गिरि + इन्द्र)-१. बड़ा पहाड़, २. सुमेर पर्वत, ३. हिमालय।

गिरिदा-दे० 'गिरिद'। उ० २. भए पच्छुलत मनहुँ गिरिदा। (मा० ५।३५।२)

गिरि (१)-(सं०)-१. पर्वत, पहाड़, २. एक प्रकार के संन्यासियों का संप्रदाय, ३. पार्वती के पिता, ४. हिमाचल,

४. चित्रकूट पर्वत । उ० १. तुम्ह सहित गिरि तें गिरौ पावक जरीं जलनिधि महुँ परौ । (मा० ११६६। छं० १)
 ३. कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए । (मा० ११६६।३) गिरिन-
 १. गिरि का बहुवचन, २. पहाड़ों से । उ० २. मानहुँ गिरिन गेरु-भरना करत हैं । (क० ६१४६) गिरिनाथा-
 (सं० गिरिनाथ)-१. शिव, महादेव, २. हिमाचल पर्वत । उ० १. कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा । (मा० ११४८।३) गिरिनारि-(सं०)-हिमाचल की स्त्री तथा पार्वती की माता । मैना । उ० भईं बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि । (मा० ११६६) गिरिनारिहि-मैना (पार्वती की माता) को । उ० जुआ खेलावत गारि देहि गिरिनारिहि । (पा० १५०) गिरिन्ह-पर्वतों, गिरि का बहुवचन । उ० मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा । (मा० ४३०।४) गिरिपतिहि-गिरिपति को, हिमाचल को । उ० सबु प्रंसंगु गिरिपतिहि सुनावा । (मा० ११६१।१) गिरिभव-पर्वत से उत्पन्न । उ० सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा । (मा० ११८०।३) गिरिसुता-पार्वती । उ० बिज्ञान-भवन, गिरिसुता-रमन । (वि० १३) गिरिहिं-दे० 'गिरिहि' । गिरिहि-गिरि को, हिमाचल को । उ० सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी । (मा० ११७३।३) गिरिजहि-गिरिजा को, पार्वती को । उ० अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस । (मा० ११७०) गिरिजा-(सं०)-१. हिमालय की कन्या, पार्वती, गौरी, २. गंगा । उ० १. गिरिजा-मन-मानस-मराल, कासीस, मसान-निवासी । (वि० ६) गिरिजापति-(सं०) पार्वती के पति, शंकर, शिव । उ० गिरिजा-पति कल आदि इक नकखत हरि जुध जान । (सं० २४८) गिरिजारमन-(सं० गिरिजारमण)-महादेव । उ० चरित सिधु गिरिजारमन बेदन पावहि पारु । (मा० ११७३) गिरिजावर-पार्वती के वर या पति, महादेव । उ० तुलसिदास त्रैलोक्यमान्यभयो कारन इहै गहौ गिरिजावर । (क० ३१) गिरिधारी-(सं० गिरिधारिन्)-पहाड़ को धारण करनेवाले, श्री कृष्ण । विशेष-ब्रज पर जब इन्द्र रुष्ट हो गए, और सुसलाधार वर्षा करने लगे तो कृष्ण ने अपनी उँगली पर पर्वत उठाकर ब्रजवालों की रक्षा की थी । तभी से इनका नाम गिरिधर तथा गिरिधारी आदि पड़ा । गरिबर-(सं० गिरिवर)-१. हिमालय, हिमाचल, २. चित्रकूट, ३. सुमेरु, ४. कैलाश, ५. गोवर्द्धन पर्वत, ६. कामदनाथ पर्वत, ७. कोई बड़ा पहाड़ । उ० १. चले सुदित सुनिराज गए गिरिवर-पहँ । (पा० ६१) २. रामदेहु गौरव गिरिवरहु । (मा० २१३२।४) गिरिवरहु-गिरिवर को भी । उ० दे० 'गिरिवर' । गिरिवर-दे० 'गिरिवर' । उ० ६. गिरिवरु दीख जनक पति जवहीं । (मा० २१२७।१) गिरिराज-(सं०)-१. बड़ा पर्वत, २. हिमालय, पार्वती के पिता, ३. सुमेरु, ४. गोवर्द्धन । गिरिराजकुमारि-दे० 'गिरिराजकुमारी' । उ० सुख गिरिराजकुमारि भ्रम तम रवि कर बचन मम । (मा० १११५) गिरिराजकुमारी-

हिमाचल की बेटी, पार्वती । उ० धन्य धन्य गिरिराज-कुमारी । (मा० १११२।३) गिरी (२)-(सं० गिरि)-१. पहाड़, पर्वत, २. एक प्रकार के संन्यासी । उ० १. जो करत गिरी तें तरु वृन तें तनक को । (क० ७।७३) गिरीशं-दे० 'गिरीश' । उ० ५. गिरा ज्ञान गोतीतमीशं गिरीशं । (मा० ७।१०८। श्लो० २) गिरीश-(सं०)-१. बड़ा पर्वत, २. सुमेरु, ३. हिमालय, हिमाचल, ४. कैलाश, ५. शिव, महादेव । गिरीस-दे० 'गिरीश' । उ० ३. होइहि यह कल्याण अब संसय तजहु गिरीस । (मा० ११७०) गिरीसा-दे० 'गिरीश' । उ० ५. चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा । (मा० ११५१।४) गिलई-(सं० गिरण)-किसी चीज को बिना दाँतों से तोड़े निगल जाय, लील जाय, भीतर कर ले, छिपा ले । उ० तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई । (मा० २।२३।१) गिलहि-निगल जाय, निगल जाते हैं । उ० सहबासी काचो गिलहि, पुरजन पाक-प्रवीन । (दो० ४०४) गिल्यो-निगल लिया, खा लिया । उ० नाम सों प्रीति-प्रतीति बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको । (क० ७।६०) गीत-(सं०)-१. गाने की चीज, गाना, २. यश, कीर्ति, बढ़ाई, ३. जिसका यश गाया जाय । उ० १. नाचहि गावहि गीत परम तरंगी भूत सब । (मा० ११६३) गीता-दे० 'गीत' । उ० १. गावहि सुंदरि मङ्गल गीता । (मा० १।२६७।४) गीध-(सं० गृध्र)-१. पक्षी विशेष, गिद्ध, २. जटायु । उ० २. कीस, केवट, उपल, भालु, निसिचर, सबरि, गीधसम-दम-दया-दान-हीनै । (वि० १०६) गीधपति-गिद्धों के राजा जटायु । उ० तुलसी पाई गीधपति मुकुति मनोहर मीच । (दो० २२२) गीधराज-दे० 'गीधपति' । उ० गीधराज सुनि आरत बानी । (मा० ३।२६।४) गीधहि-गिद्ध की, गीध पक्षी की । उ० मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार । (मा० ४।२८) गीरवान-दे० 'गीर्वाण' । उ० तेरे गुनगान सुनि गीरवान पुलकित । (ह० ३३) गीर्वाण-(सं०)-देवता, सुर । गीर्वा-श्रीवा पर, श्रीवा या गर्दन में । उ० रेखें रुचिर कंबुकल गीर्वा । (मा० १।२४३।४) गीवा-दे० 'श्रीवा' । गर्दन । उ० उर मनिमाल कंबुकल गीवा । (मा० १।२३३।४) गुंज (१)-(सं०)-१. औरों के मनभनाने का शब्द, गुंजार, आनंद, ध्वनि, २. गुंजार करते हैं । उ० २. गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी । (मा० २।१३७।४) गुंज (२)-(सं० गुंजा)-धुंघुची । गुंजनि-गुंजा का बहुवचन, धुंघुचियों का समूह । उ० उलटे-पलटे-नाम-महातम गुंजनि जितो ललामो । (वि० २२८) गुंजत-गुंजार करते हैं, गुंजते हैं, हर्षध्वनि करते हैं । उ० बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पूंज मंजुल मधुकरा । (मा० १।८६। छं० १) गुंजहि-गुंजार करते हैं । उ० कूजहि कोकिल गुंजहि शृंग । (मा० १।१२६।१) गुंजन-(सं०)-भँवरों के गुंजने की क्रिया, भनभनाहट ।

गुंजा-(सं०)-वृषुची, एक लता जो झाड़ियों पर चढ़ती है। इसके फल का कुछ भाग लाल और कुछ काला होता है। उ० गुंजा ग्रहद परम मनि खोई। (मा० ७।४३।२)
 गुंजारहीं-गुंजार करते हैं, गुंजन कर रहे हैं। उ० बहुरंग कंज अनेक खग कूजहि मधुप गुंजारहीं। (मा० ७।२६। छं० १) गुंजारे-गुंजार किए, गुंजन किए। उ० मंजुतर मधुर मधुकर गुंजारे। (गी० १।३२)
 गुंड-(?)-मलार राग का एक भेद। उ० राम-सुजस सब गावहीं सुसुर सुसारंग गुंड। (गी० ७।१६)
 गुंइयाँ-दे० 'गोइयाँ'।
 गुच्छ-(सं०)-एक में लगे या बँधे कई फूलों, फलों या पत्तों का समूह, गुच्छा। उ० गुच्छ बीच बिच कुसुमकली के। (मा० १।२३।१)
 गुड़ी-(?)-गुड़ी, पतंग, चंग, कागज़ की बनी एक चौकोर चीज़ जिसे लोग सूत में बाँधकर उड़ाते हैं। उ० संभ्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं। (मा० ३।२०। छं० २)
 गुड़ी-दे० 'गुड़ी'।
 गुढ़ि-(सं० घटन)-गढ़कर, काट-छाँटकर। उ० गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिए, गंडकि-सिला सुभाय। (दो० ३६२)
 गुण-(सं०) १. किसी चीज़ में पाई जानेवाली वह बात जिसके द्वारा वह चीज़ दूसरी चीज़ से पहिचानी जाय। धर्म, स्वभाव, सिफ़त, २. निपुणता, ३. कला, हुनर, ४. तासीर, प्रभाव, फल, ५. अच्छा स्वभाव, शील, सद्वृत्ति, ६. रस्सी, सूत, डोरा, ७. प्रकृति के तीन गुण, सत्व, रज और तम, ८. वह रस्सी जिससे मल्लाह नाव खींचते हैं। ९. कविता के गुण (ओज, प्रसाद, माधुर्य) विशेष, १०. वासना, ११. धनुष की रस्सी, १२. तीन की संख्या, १३. गुना (जैसे दुगुना)। उ० ५. यस्थ गुण गण गनति बिमल मति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११)
 गुणज-(सं०)-गुणों को जाननेवाला, गुणों को पहचानने वाला, गुणों का आदर करनेवाला।
 गुणद-(सं०)-गुण देनेवाला, गुणकारी, लाभकर।
 गुणातीत-(सं०) सत्व, रज और तम गुणों से परे, निर्गुण। यह शब्द भगवान के लिए प्रयुक्त होता है।
 गुथये-(सं० गुत्सन)-पिरोये, गुँथे हुए। उ० कहत सशोक बिलोकि बंधु-मुख बचन प्रीति गुथये हैं। (गी० ६।२)
 गुदरत-(फा० गुजर)-१. अलग करना, छोड़ना, अलग करता है, २. निवेदन करना, हाल कहना, निवेदन करता है। उ० १. मिलि न जाइ नहि गुदरत बनई। (मा० २।२४०।३) गुदरि-१. निवेदन कर, कहकर, २. अलग कर, टालकर। उ० १. चीन्हों चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा सुनि, प्रसु सों गुदरि निबरयो हौं। (वि० २६६)
 गुदारा-(फा० गुजारा)-नाव पर नदी पार करने की क्रिया, उतारा। उ० २. भा भिनुसार गुदारा लाग। (मा० २।२०२।४)
 गुन-दे० 'गुण'। उ० ६. धुनि अवरैब कबित गुन जाती। (मा० १।३७।४) १३. देत एक गुन खेत कोटिगुन भरिसो। (वि० २६४) गुनउ (१)-गुण भी। उ० गुनउ बहुत कलि-

जुग कर बिनु प्रयास निस्तार। (मा० ७।१०२ क) गुनद-दे० 'गुणद'। उ० स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहि सब पान। (मा० १।१० ख०) गुनान-गुन का बहुबचन, गुणों। उ० भवपंथ अमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे। (मा० ७।१३। छं० २) गुन-वर्जित-निर्गुण, गुणरहित। उ० कुजन-पाल गुन-वर्जित, अकुल, अनाथ। (ब० ३२) गुनहि (१)-१. गुण को, २. गुण में। उ० २. तब तजि दोष गुनहि मनु राता। (मा० १।७।१) गुनानी-(सं०) गुण + अणी-गुणों के समूह। उ० राम अनंत अनंत गुनानी। (मा० ७।६२।२)
 गुनइ-(सं०) गुणन) विचार करता है, सोच रहा है। उ० अस मन गुनइ राउ नहि बोला। (मा० २।४६।२) गुनउँ-विचारता, विचारता हूँ। सोचता था। उ० समझउँ सुनउँ गुनउँ नहि भावा। (मा० ७।११०।३) गुनऊँ-विचारता, सोचता था। उ० एहि बिधि अमिति जुगति मन गुनऊँ। (मा० ७।११२।६) गुनत-१. सोचते हुए, सोचते, २. विचार करता है। उ० १. असमन गुनत चले मग जाता। (मा० २।२३४।२) गुनहि (२)-सोचते हैं। गुनहु (१)-(सं०) गुण) विचारो, समझो, समझ लेना, सोच लेना। गुनहु (१)-दे० 'गुनहु (१)। उ० आन भौंति जियँ जनि कछु गुनहु। (मा० २।६१।१) गुनि-विचार कर, समझकर, सोचकर। उ० धरिअ नाम जो सुनि गुनि राखा। (मा० १।१६७।२) गुनिअ-१. गुनो, विचारो, २. विचारने में। उ० १. देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। (मा० २।६२।४) गुनिए-सोचिए, विचारिए। उ० मेरे जान और कछु न मन गुनिए। (क० ३७) गुनिय-१. विचारिए, २. विचारना चाहिए, ३. विचारता हूँ, विचारा। उ० ३. सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा हृदय नहि आवै। (वि० १।१६) गुनु-समझ लो, विचार लो। उ० उगुन पूगुन वि अज क म, आ भ अ भू गुनु साथ। (दो० ४२७)
 गुनय-दे० 'गुणय'। उ० सोइ गुनय सोई बड़ भागी। (मा० ४।२३।४)
 गुननिधि-(सं०) गुणनिधि)-१. गुणों का घर, २. एक ब्राह्मण का नाम, जिसने शिवरात्रि के दिन दर्शन के बहाने शिव मंदिर में जाकर शृंगार के आभूषण चुराए और भाग निकला। पुजारियों ने उसका पीछा किया और पकड़कर इतना मारा कि वह मर गया। शंकर ने दया करके यह समझकर कि उसने अपने प्राण मुझको अर्पित कर दिए, उसे यम-यातना से मुक्त करके कैलाश पर स्थान दिया। उ० २. कवनि भगति कीन्हों गुननिधि द्विज। (वि० ७)
 गुनवंत-गुणवाला, गुणी। उ० कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना। (मा० ७।६८।३)
 गुनवंता-दे० 'गुनवंत'। उ० धरमसील ग्यानी गुनवंता। मा० १।२१२।३)
 गुनह-(फा० गुनाह)-अपराध, पाप, कुसूर, दोष। उ० गुनह लखन कर हम पर रोष। (मा० १।२८।३) गुनहु (२)-गुनाह भी, दोष भी। गुनहु (२)-दे० 'गुनहु (२)।

गुनातीत-दे० 'गुणातीत' । उ० गुनातीत सचराचर स्वामी । (मा० ३ ३११)
 गुनानि-दे० 'गुनानी' ।
 गुनित-गुना, गुणित । उ० गृह तें कोटि-गुनित सुख मारग चलत, साथ सत्तु पावोंगी । (गी० २।६)
 गुनिन्ह-गुणियों से । उ० पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची । (मा० २।२१।४) गुनिहिँ-गुणी को, गुणवान को । उ० गनिहिँ गुनिहिँ साहिब लहै सेवा समीचीन को । (वि० २७४) गुनी-गुणी, गुणशाला, कारीगर । उ० पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना । (मा० १।२८७।४)
 गुपुत-दे० 'गुप्त' । उ० १. तातें गुपुत रहउ जग माहीं । (मा० १।१६२।१)
 गुप्त-(सं०)-१. छिपा हुआ, पोथीदा, २. रक्षित, ३. गूढ़ । उ० १. गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गहँ जान सब कोइ । (मा० १।४८ क)
 गुमान-(फा०)-१. अनुमान, अंदाज, कयास, विचार, २. गर्व, घमंड, अहंकार, ३. संदेह । उ० २. ताहि मोह माया नर पावैर करहि गुमान । (मा० ७।६२ क)
 गुमानी-(फा० गुमान)-घमंडी, गर्व करनेवाला । उ० सुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी । (मा० २।१७२।३)
 गुमानु-दे० 'गुमान' । उ० २. कलपांत न पास गुमानु असा । (मा० ७।१०२।२)
 गुरु-(सं० गुरु)-१. गुरु, आचार्य, २. मूलमंत्र, वह साधन जिससे कार्य शीघ्र सिद्ध हो जाय । उ० १. धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह । (मा० ७।१।२) गुरहि-गुरु को । उ० तुम्ह तें अधिक गुरहि जियै जानी । (मा० २।१२१।४)
 गुरु-(सं०)-गुरु को । उ० वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम् । (मा० १।१। श्लो० ३) गुरु-(सं०)-१. गुरु, आचार्य, विद्या सिखानेवाला, उस्ताद, २. देवताओं के गुरु बृहस्पति, ३. अपने से बड़े, पिता आदि, ४. बड़ा, भारी, वजनी, ५. गरिष्ठ, जो खाने पर शीघ्र न पचे, ६. ब्रह्मा, ७. विष्णु, ८. महेश । उ० १. बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि । (मा० १।१। सो० ५) ३. हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू । (मा० २।२५३।३) गुरहिँ-गुरु को । गुरहिँ-गुरु को । गुरुआ-(सं० गुरु) गुरु का हीनता द्योतक रूप, झरे गुरु, अथोभ्य और ढोंगी आचार्य । उ० ते तुलसी गुरुआ बनहि कहि इतिहास पुरान । (सं० ३६४)
 गुरुता-१. भारीपन, गुरुत्व, २. बड़प्पन । उ० १. करहु चाप गुरुता अति थोरी । (मा० १।२५७।४)
 गुरुमुख-दीक्षित, जिसने गुरु से मंत्र लिया हो ।
 गुरुविनी-(सं० गुर्विणी)-गर्भवती, सगर्भा । उ० गुरुविनी सुकुमारि सिय तियमनि समुझि सकुचाहि । (गी० ७।२६)
 गुरु-दे० 'गुरु' । उ० १. कोटि कुटिल मनि गुरु पदाई । (मा० २।२७।३)
 गुर्वि-(सं० गुर्वी)-१. गर्भवती, २. बड़ी, महान, भारी, उत्तम, ३. श्रेष्ठ स्त्री । उ० ३. निगम-आगम-अराम, गुर्वि तव गुण कथन उर्विधर करै सहस जीहा । (वि० १५)
 गुर्विणी-(सं०)-गर्भवती, सगर्भा ।
 गुर्वी-दे० 'गुर्वि' । उ० २. वारिचर-व्युपधर, भक्त-निस्तार-पर, धरनि कृत नाव महिमाति गुर्वी । (वि० ५२)

गुल (१)-(फा०)-१. गुलाब का फूल, २. फूल, पुष्प ।
 गुल (२)-(फा० गुल)-शोर, हल्ला ।
 गुलाम-(अर०)-मोल लिया हुआ दास, नौकर, दास, सेवक । उ० सुभाव समुक्त मन मुदित गुलाम को । (क० ७।१४) गुलामनि-गुलाम का बहुवचन, गुलामों, सेवकों । उ० कामरिपु राम के गुलामनि को कामतरु । (क० ७।१६७)
 गुलुफ-(सं० गुल्फ)-एड़ी के ऊपर की गाँठ । उ० चरन पीठ उन्नत नत-पालक, गूढ़ गुलुफ, जंघा कदली जति । (गी० ७।१७)
 गुल्म-(सं०)-१. ऐसा पौधा जो जड़ से कई होकर निकले, २. सेना का एक समुदाय जिसमें ६ हाथी, ६ रथ, २७ घोड़े और ४५ पैदल होते हैं । ३. पेड़ का एक रोग ।
 गुसई-(सं० गोस्वामी)-१. जितेन्द्रिय, संन्यासी, बहुत बड़ा साधु, २. स्वामी, मालिक, ३. प्रभु, ईश्वर, ४. श्रेष्ठ, बड़ा, ५. गौश्रों का स्वामी ।
 गुहँ-गुह ने, निषाद ने । उ० यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई । (मा० २।८८।१) गुह-(सं०)-१. कार्तिकेय, २. घोड़ा, ३. निषाद जाति का एक नायक जो शृंगवेरपुर में रहता था और राम का भक्त था । ४. मील, ५. मल्लाह, माँझी । गुहहि-गुह को, निषाद को । उ० ग्राम वासु नहिँ उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु । (मा० २।८८)
 गुहा (१)-(सं०)-गुफा, कंदरा । उ० हिम गिरि गुहा एक अति पावनि । (मा० १।१२५।१)
 गुहा (२)-(सं० गुह)-निषाद, मल्लाह, केवट । उ० सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल । (मा० ६।१२१।५)
 गुहारी-दे० 'गोहारी' ।
 गुहिवे-(सं० गुंफन)-गुथने, एक में पिरोने । उ० तेइ अनु-राग ताग गुहिवे कहँ मति भृगनयनि बुलावौ । (गी० १।१५) गुहौ-गुथँ, बनाऊँ, पिरोऊँ । उ० उबटौ न्हाहु, गुहौ चोटिया, बलि, देखि भलो वर करिहि बड़ाई । (क० १३)
 गुँगेहि-(फा० गुंग)-गुँगे पर, न बोलनेवाले पर । उ० भा जनु गुँगेहि गिरा प्रसादू । (मा० २।३०७।२)
 गुँजहि-(सं० गुंजन)-गुंजार करते हैं, मधुर ध्वनि करते हैं ।
 गूढ़-(सं० गूढ)-गुप्त, छिपा हुआ, रहस्ययुक्त, जटिल, अबोधगम्य । उ० गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीथ अधर बुधि रानि । (मा० २।१६) गूढ़उ-गूढ़ भी, रहस्यमय भी । उ० गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहि । (मा० १।११०।१)
 गूढ़ा-दे० 'गूढ़' । उ० चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा । (मा० १।४७।२)
 गूढ़ा-(सं० गुप्त)-१. किसी चीज का सार भाग जो छि्लके या ऊपरी आवरण के भीतर रहता है । २. भेजा, मग्ज, खोंपड़ी का सार भाग । उ० २. सोनित सों सानि सानि गूढ़ा खात सत्तुआ से । (क० ६।५०)
 गून-(सं० गुण)-१. गुण, हुनर, २. गुना, गुणा, जैसे हु-गुना, चौगुना आदि । उ० २. अंक रहित कछु हाथ नहि, अंक सहित दस गून । (सं० १३४)
 गूलर-(उदुंबर)-बट-पीपल वर्ग का एक पेड़ जिसमें गोल-गोख फल लगते हैं । पकने पर फल लाल और सुंदर होते

हैं, पर भीतर फोड़ने पर बहुत से कीड़े निकलते हैं। इन कीड़ों का संसार वह गूलर का फल ही होता है। इसी लिए बाहरी बातों को न जाननेवाले को 'गूलर का कौट' कहा जाता है।

गूलरि-दे० 'गूलर'। उ० गूलरि फल समान तव लंका। (मा० ६।३१२)

गुध्र-(सं०)-१. गिद्ध, गीध, चील से बड़ा एक पक्षी, २. जटायु। उ० २. गुध्र-शवरी-भक्ति-विशय करुणासिंधु। (वि० ४३) गुध्रराज-गिद्धों में श्रेष्ठ अर्थात् जटायु।

गृह-(सं०)-१. घर, मंदिर, मकान, २. वंश, कुटुंब। उ० १. गौतम सिंधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै। (क० २।६)

गृहप-(सं०)-१. घर का मालिक, २. चौकीदार, घर का रक्षक। गृहपशु-दे० 'गृहपशु'। गृहपसु-(सं० गृहपशु)-घर का जानवर, कुत्ता। उ० लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै। (वि० ८६)

गृहपाल-(सं०)-१. घर का रक्षक, चौकीदार, २. कुत्ता। उ० १. या २. गृहपाल हूँ तँ अति निरादर, खान पान न पावई। (वि० १३६)

गृहस्थ-(सं०)-१. ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त कर, विवाह करके घर में रहनेवाला व्यक्ति, घरवाला, बाल-बच्चोंवाला आदमी, २. वह जिसके यहाँ खेती आदि होती हो।

गृहस्वामिनि-(सं० गृहस्वामिनी)-घर की मालकिन, स्त्री, घरनी। उ० सादर सासु घरन सेवहु नित जो तुम्हरे अति हित गृहस्वामिनि। (गी० २।५)

गृही-(सं० गृही)-गृहस्थ, गृहस्वामी, घरवाला, बाल-बच्चोंवाला। उ० गृही विरति रत हरष जस विष्णु भगत कहूँ देखि। (मा० ४।१३)

गेंडुआ-(सं० गेंडुक)-तकिया, सिरहाना। उ० करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास। (दो० ४६१)

गै-(सं० गम्)-१. गप, गमन किए, २. नष्ट हुए। उ० १. सुर मुनि गंधर्वा मिलि करि सर्वा गे विरंचि के लोका। (मा० १।१८४।३० १) गेते-गए थे, गए रहे। उ० तिन्ह के काज साधु-समाज तजि कृपासिंधु तब तब उठि गेते। (वि० २४२) गै-गाई, जाती रही, नष्ट हो गई। उ० गै श्रम सकुज सुखी नृप भयऊ। (मा० १।१६१।१) गो(१)-(सं० गम्)-१. गया, खला गया, २. नष्ट हो गया। उ० १. उचके उचकि बारि अंगुल अचलु गो। (क० ४।१)

गेह-(सं० गवेहक)-एक प्रकार की लाल मिट्टी। उ० मानहुँ गिरिन गेह-करना भरत हैं। (क० ६।४६)

गेहू-दे० 'गेह'।

गेहँ-गेह को, गेह में। हे० 'गेह'। उ० साँझ समय सानंद नृप गयउ कैकई गेहँ। (मा० २।२४) गेह-(सं० गृह)-घर, मकान, धाम, महल। उ० देह गेह सब सन तुनु तोरें। (मा० २।७।३)

गेहनी-दे० 'गेहिनी'।

गेहा-दे० 'गेह'। उ० जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। (मा० १।६२।३)

गेहिनी-गृहिणी; घरनी, स्त्री। उ० ज्ञान अत्रधेस,

गृह-गेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभार हर्ता। (वि० ५८)

गेहु-दे० 'गेह'। उ० बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु। (मा० २।१३।१)

गेहु-दे० 'गेह'। उ० भयउ पुनीत आजु यहु गेहु। (मा० २।६।४)

गैन-(अर० गैन)-अरबी, फारसी तथा उर्दू का एक अक्षर (ं)। उ० बिन्दु गए जिमि गैन तँ रहत ऐन को ऐन। (सं० ३।६२)

गैहहिं-(सं० गान)-गावेंगे। उ० तिहूँ पुर नारदादि जसु गैहहिं। (मा० २।१६।३) गैहै-गावेंगे। उ० प्रेम पुलकि आनंद मुदित मन तुलसिदास कल कीरति गैहै। (गी० ५।५१)

गैहै-गावेगा। उ० तुलसिदास पावन जस गैहै। (गी० ५।५०) गैहौं-गाऊँगा, बखान करूँगा। उ० खवननि और कथा नहि सुनिहौं, रसना और न गैहौं। (वि० १०४)

गोंड-(सं० गोयड)-१. एक जंगली जाति, २. एक राग। उ० १. गोंड गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल। (दो० ५५६)

गो(२)-(सं०)-१. गाय, २. किरण, ३. वृषराशि, ४. इंद्रिय, ५. बोलने की शक्ति, वाणी, ६. सरस्वती, ७. आँख, दृष्टि, ८. बिजली, ९. पृथ्वी, १०. दिशा, ११. माता, जननी, १२. दूध देनेवाले पशु। बकरी, भैंस आदि, १३. जीभ, १४. बैल, १५. घोड़ा, १६. सूर्य, १७. चंद्रमा, १८. बाण, १९. गवैया, २०. प्रशंसक, २१. आकाश, २२. स्वर्ग, २३. जल, २४. वज्र, २५. शब्द, २६. नौ का अंक, २७. शरीर के रोम। उ० १. सँग गौतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका। (मा० १।१८४।३० १)

१. गोखग, खेखग, बारिखग तीनों माहिं विसेक। (दो० ५३८)

गो(३)-(फा०)-१. यद्यपि, २. कहनेवाला। गोइ-(सं० गोपन)-१. छिपाकर, २. छिपा हुआ, गुप्त, ३. छिपा लिया, छिपाया। उ० २. नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहि कछु गोइ। (मा० ७।१२३।३) गोइहहिं-छिपावेंगे। उ० निरखि नगर नर नारि बिहंसि मुख गोइहहिं। (पा० ६४) गोइ-दे० 'गोइ'। उ० ३. ऐसिउ पीर बिहंसि तेहि गोइ। (मा० २।२७।३) गोऊ-छिपाओ, छिपाइए। उ० कृपन ज्यों सनेह सो हिए-सुगोह गोऊ। (गी० २।१६) गोए-१. छिपाए, छिपाए हुए, २. छिपे रहते हैं, ३. छिपाने से। उ० २. जे हर हृदय कमल महुँ गोए। (मा० १।३२।३) गोवति-(सं० गोपन)-छिपाती है। उ० सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों हहरी हृदय, बिकल भइ भारी। (क० ६०) गोये-(सं० गोपना) छिपाए। गोयो-छिपाया, दुराया। उ० तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछु नहि गोयो। (वि० २४५)

गोइर्या-(सं० गोधन)-साथ गाय चरानेवाले, साथ खेलनेवाले, साथी, सहचर। उ० सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल, गनि गनि गोइर्याँ बाँटि लये। (गी० १।४३)

गोकुल-(सं०)-१. गौश्रों का झुंड, २. गौशाला, गौश्रों के रहने की जगह, ३. मथुरा के पूर्व-दक्षिण एक प्राचीन गाँव

जहाँ कृष्ण ने अपनी बाल्यावस्था बिताई थी। उ० ३.
गोकुल प्रीति नित नई जानि। (कृ० ५२)
गोखुर-(सं०)-१. गाय के पैर का नाखून, २. गाय के
खुर का जमीन पर बना हुआ निशान। गोखुरनि-गायों के
खुर के चिह्नों में, खुर के बने चिह्नों में भरे हुए जल में।
उ० कुंभज के किंकर बिकल बड़े गोखुरनि। (ह० ३८)
गोघात-गोहत्या, गाय मारना। उ० होइ पाप गोघात
समाना। (मा० ६३२।१)
गोचर-(सं०)-१. गौओं के चरने का स्थान, चरागाह, २.
वह विषय जिसका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा हो सके, इन्द्रियों
का विषय। उ० २. गो गोचर जहँ लागि मन जाइ।
(मा० ३।१५।२)
गोठ-(सं० गोष्ठ)-गायों के रहने का स्थान, गोशाला।
उ० गाइ गोठ महिसुर पुर जारें। (मा० २।१६।३)
गोड़-(सं० गम्)-पैर, पाँव, टाँग। उ० माँगी मधुकरि खात
ते, सोवत गोड़ पसारि। (दो० ४६४) गोड़नि-पैरों।
चरणों। उ० कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ें मानौ।
(ह० ७) सु० गोड़ पसारि-निश्चित होकर। उ० दे०
'गोड़'। गोड़ की किए-दूध दूहते समय गाय के पैर
बाँधने से। उ० हाथ कड़ू नहिँ लागिहै किए गोड़ की
गाइ। (दो० ५१२)
गोड़ियाँ-गोड़ का छोटा रूप, छोटे पैर, छोटी टाँगें। उ०
छोटी-छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीलीं छोटी। (गी० १।३०)
गोड़िये-कोड़िए, मिट्टी को उलटिए, पेड़ की सेवा कीजिए।
उ० तुलसी बिहाइ कै बबूर रँड गोड़िये। (क० ७।२५)
गोत-दे० 'गोत्र'। उ० साह ही को गोत गीत होत है
गुलाम को। (क० ७।१०७)
गोतीत-दे० 'गोतीत'। उ० अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं
माया रहित मुकुंदा। (मा० १।१८६।छं० ३) गोतीत-
(सं०)-इन्द्रियों से परे, अगोचर, जो इन्द्रियों से न जाना
जा सके। उ० सुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत।
(मा० १।१६६)
गोतो-(अर० गोतः)-पानी में डूबने की क्रिया, डूबकी।
उ० ज्यों सुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत
गोतो। (वि० १६१)
गोत्र-(सं०)-कुल, वंश, खान्दान, एक प्रकार का जाति
विभाग।
गोद-(सं० क्रोड़)-वह स्थान जो वृक्षस्थल के पास एक या
दोनों हाथों का घेरा बनाने से बनता है। उल्संग, कोरा,
ओली। उ० गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। (मा० २।५२।२)
गोदाहिं-गोदावरी नदी को। उ० पंचबटी गोदाहिं प्रनाम
करि कुटी दाहिनी लाइ। (गी० ३।११)
गोदावरि-दे० 'गोदावरी'। उ० मेकल सुता गोदावरि
धन्या। (मा० २।१३८।२)
गोदावरी-(सं०)-दक्षिण भारत की एक नदी विशेष। यह
पवित्र मानी जाती है।
गोप-(सं०)-गायों की रक्षा करनेवाला, ग्वाला, अहीर,
ब्रज के अहीर। उ० तौ कत सुर सुनिबर बिहाय ब्रज
गोप गेह बसि रहते ? (वि० ६७) गोपहिं (१)-गोप को,
ग्वाले को।

गोपद-(सं० गोपद)-१. गौओं के रहने का स्थान, २.
पृथ्वी पर बना गाय के खुर का चिह्न जिसमें पाषी भर
जाता है। उ० २. भववारिधि गोपद इव तरहीं। (मा०
१।११६।२)
गोपनीय-(सं०)-छिपाने योग्य, गोप्य।
गोपर-इन्द्रियों से परे। उ० गोविंद गोपर इंद्रहर बिग्यानघन
धरनीधरं। (मा० ३।३२।छं० १)
गोपहिं (२)-(सं० गोपन)-छिपाते हैं, छिपाते थे। उ० प्रेम
प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं। (जा० ६५) गोपि (१)-
छिपाकर, दुरा कर, झोट करके।
गोपार-इन्द्रियों से परे, गोपर। उ० ज्ञान-गिरा-गोतीत,
अज, माया-गुन-गोपार। (दो० ११४)
गोपाल-(सं०)-१. गो का पालन करनेवाला, अहीर, २.
कृष्ण, ३. इन्द्रियों का पालनेवाला, मन।
गोपि (२)-(सं० गोपी)-ग्वालिन, ब्रज के अहीरों की स्त्रियाँ,
गोपिका।
गोपिका-(सं०)-गोप की स्त्री, गोपी। उ० पंडसुत,
गोपिका, बिदुर, कुबरी सबहिं सोध किए सुद्धता बेस
कैसो। (वि० १०६)
गोपित-(सं०)-छिपा हुआ, गुप्त। उ० जयति पाकारि सुत-
काक-करतृति-फलदानि, खनि गर्त गोपित बिराधा।
(वि० ४३)
गोपी-(सं०)-गोप की स्त्री, गोपिका, अहिरिन, ग्वालिन।
उ० सीत-सभीत पुकारत आरत गो गोसुत गोपी ग्वाल।
(कृ० १८)
गोप्य-(सं०)-छिपाने योग्य, गोपनीय, रक्षणीय। गोप्यम्-
दे० 'गोप्य'। उ० पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं
प्रकास। (मा० ७।६६ ख)
गोविंद-(सं० गोपेन्द्र)-१. कृष्ण, २. परब्रह्म, परमेश्वर,
३. वेदान्तवेत्ता, ४. इन्द्रियों का नियंत्रण करनेवाला,
इन्द्रियों का ज्ञाता, ५. वेदों द्वारा जानने योग्य। उ० ५.
गोविंद गोपर इंद्रहर बिग्यानघन धरनीधरं। (मा०
३।३२। छं० १)
गोमती-गोमती नदी में। उ० सई उतरि गोमती नहाए।
(मा० २।३२२।३) गोमती-(सं०)-एक नदी, जो पीली-
भीत के निकट एक पहाड़ी भील से निकलकर गाज़ीपूर
जिले में गंगा से मिलती है।
गोमर-गाय को मारनेवाला, कसाई। उ० गोमर-कर सुरधेनु,
नाथ ! ज्यों-त्यों पर-हाथ परी हौं। (गी० ३।७)
गोमाय-दे० 'गोमायु'। उ० गोमाय गीध कराल खर रव
स्वान बोलहिं अति घने। (मा० ६।७८।छं० १)
गोमायु-(सं०)-गीदड़, सियार, शृगाल।
गोमुख-(सं०)-१. गाय का मुख, २. सीधा, दीन मुख-
वाला। गोमुख नाहर न्याय-ऊपर से गाय की तरह
सीधा, पर असल में व्याघ्र की तरह क्रूर। उ० देखिहैं
हनुमान गोमुख-नाहरनि के न्याय। (वि० २२०)
गोर-(सं० गौर)-गोरा, उज्ज्वल वर्ण का, साफ़। उ०
काहे रामजिउ साँवर, लछिमन गोर हो। (रा० १२)
गोरख-(सं० गोरक्ष)-गोरखनाथ, एक प्रसिद्ध सिद्ध जो
१५ वीं शताब्दी में हुए थे। इनका चलाया संप्रदाय

अब तक जारी है। उ० गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग। (क० ७८८४)

गोरस—(सं०)—१. दूध, २. इन्द्रियों का रस या सुख। उ० १. गोरस-हानि सहैँ न कहौं कछु यहि ब्रजबास बसेरे। (क० ३)

गोरी—(सं० गौरी)—गोरे वर्षा की सुन्दर स्त्री, सुन्दरी। उ० साँवरो किसोर, गोरी सोभा पर वृष तोरि। (क० १११४)

गोरे—दे० 'गौर'। उ० सहज सुभाय सुभग तन गोरे। (मा० २११७३)

गोरो—दे० 'गौर'। उ० गोरो गंवर गुमान अरो कहौ कौसिक छोटो सो डोटो है काको। (क० ११२०)

गोरोचन—(सं०)—पीले रङ्ग का एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य जो गौ के हृदय के पास उसके पित्त से निकलता है। यह बहुत पवित्र माना जाता है, और इसका तिलक आदि दिया जाता है। उ० आजत भाल तिलक गोरोचन। (मा० ७१७३)

गोलक—(सं०)—आँख का देला, पलक से ढकनेवाले आँख के सफेद और काले भाग। उ० पलक बिलोचन गोलक जैसैं। (मा० २११४२२)

गोला—(सं० गोल)—१. जिसका घेरा या परिधि वृत्ताकार हो, २. तोप आदि में भरा जानेवाला गोला जिससे शत्रुओं को मारते हैं। उ० २. ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले। (मा० ६१४१)

गोली—१. किसी चीज का छोटा गोलाकार पिंड, २. दवा की बटी, ३. मिट्टी, काँच आदि के छोटे गोले जिसे लड़के खेलते हैं, ४. सीसे आदि का गोल या लंबा पिंड जो बंदूक में भरकर मारा जाता है। उ० ३. खेलत अवध-खोरि, गोली भौरा चक डोरि। (गो० ११४१)

गोष्ठ—(सं०)—गोशाला, गाय का बाड़ा।

गोसाँइहि—गोस्वामी के, प्रभु के। उ० स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाँइ। (मा० २१२६२२) गोसाँइ—दे० 'गुसाँइ'। उ० २. बिहसि कहा रघुनाथ गोसाँइ। (मा० ६११०८६)

गोस्वामी—(सं०)—१. इन्द्रियों को वश में करनेवाला, जितेन्द्रिय, २. वैष्णव संप्रदाय में आचार्यों के वंशधर या उनकी गद्दी के अधिकारी, ३. गुरु, ४. ईश्वर, ५. राजा।

गोहार—(सं० गो + हरण)—१. पुकार, दुहाई, २. हल्ला-गुल्ला, शोर, ३. वह भीड़ जो रक्षा के लिए पुकार सुनकर इकट्ठी हुई हो।

गोहारी—१. सहायक, रक्षक, २. पुकार, ३. पुकारा, ४. शोर। उ० १. बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी। (मा० २१३१७२)

गौ—दे० 'गव'। उ० ३. कल कुंडल, चौतनी चारु अति, चलत मत्त-गज-गौ हैं। (गी० ११६१) ४. स्याम सो गाहक पाइ सयानी खोलि देखाई है गौ हीं। (क० ४१)

गौंड—दे० 'गौंड'। उ० २. झूलहि झुलावहि ओसरिन्ह गावैं सुहो गौंड-मलार। (गी० ७१८)

गौ—(सं० गो)—गज, गाय।

गौतम—(सं०)—एक ऋषि जिन्होंने अपनी स्त्री अहल्या को ईद्र के साथ अनुचित संबंध करने के कारण शाप देकर पत्थर बना दिया था। दे० 'अहल्या'। गौतमतिय—गौतम की स्त्री अहल्या। उ० गौतमतिय गति सूरति करि नहि

परसति पग पानि। (मा० ११२६५) गौतमनारि—गौतम की स्त्री अहल्या। उ० गौतमनारि आप बस उपलदेह धरि धीर। (मा० ११२१०) गौतमनारी—दे० 'गौतमनारि'।

गौन (१)—(सं० गौण)—१. अप्रधान, जो प्रमुख न हो, २. अधीन, ३. कम, घटी हुई। उ० ३. तुलसिदास प्रभु! दसा स्त्रीय की मुख करि कहत होति अति गौन। (गी० ५१२०)

गौन (२)—(सं० गमन)—१. गमन करना, जाना, २. गौना, पत्नी का विवाह के बाद प्रथम बार पति के घर जाना, ३. गति।

गौनु—दे० 'गौन (२)। उ० १. भरतहि बिसरेउ पितुमरन सुनत राम बन गौनु। (मा० २११६०)

गौने—(सं० गमन)—१. गए, चले, चले गए, २. गौना, ब्याह के बाद स्त्री का पति के घर जाना। उ० १. गौने मौन ही बारहि बार परि-परि पाय। (गी० ७३१)

गौर—गोरा, गौर वर्षा। उ० तुषाराद्रि संकाश गौर गभीरं। (मा० ७११०८) छं० ३) गौर (१)—(सं०)—१. गोरा, साफ चमड़े का, २. श्वेत, उज्ज्वल, ३. लाल रङ्ग, ४. पीला, ५. चंद्रमा, ६. कैलास के उत्तर में स्थित एक पर्वत। उ० १. कपूर गौर, करुना उदार। (वि० १३)

गौर (२)—(अ० गौर)—सौच-विचार, चित्तन, ख्याल।

गौरव—(सं०)—१. बड़प्पन, महत्त्व, २. गुरुता, भारीपन, ३. सम्मान, आदर, ४. उन्नति, बढ़ती, उ० १. राम देहु गौरव गिरिबरह। (मा० २११३२१४)

गौरा—(सं० गौर)—१. पार्वती, गौरी, २. गोरे रङ्ग की स्त्री।

गौरानाथ—पावती के पति, शंकर।

गौरि—(सं० गौरी)—पार्वती, शंकर की स्त्री। उ० सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौ हर गौरि पसाउ। (मा० १११५)

गौरी—(सं०)—१. पार्वती, २. गोरे रङ्ग की स्त्री। उ० १. सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस गौरी। (वि० २५०)

गौरीनाथ—शिव, शंकर।

गौरीश—(सं०)—पार्वती के पति, महादेव, शंकर।

गौरीस—दे० 'गौरीश'। उ० सिंधुसुत-गर्व-गिरि-वज्र, गौरीस, भव, दत्तमख-अखिल-विष्वंसकर्ता। (वि० ४६)

गौरीसा—दे० 'गौरीश'। उ० तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा। (मा० १११०४२)

गौरोचन—दे० 'गोरोचन'।

ग्याता—(सं० ज्ञात्)—जाननेवाला, ज्ञानी। उ० तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। (मा० २११४३११)

ग्याति—(सं० जाति)—भाई-बंधु। सगोत्रीय, जाति या कुंडुब के लोग। उ० अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु। (मा० १११८६)

ग्यान—(सं० ज्ञान)—१. बोध, जानकारी, प्रतीति, २. आत्म-ज्ञान, तत्त्वज्ञान, ३. पहिचान। उ० २. प्रनवउ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन। (मा० १११७) ग्यानहि—ज्ञान में, तत्त्वज्ञान में। उ० ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। (मा० ७१११५६)

ग्यानवन्त—ज्ञानवान, ज्ञानवाला। उ० ग्यानवन्त अपि सो नर पशु बिनु पूँछु विषान। (मा० ७१७८ क)

ग्याना-दे० 'ज्ञान' । उ० १. कवनेउ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना । (मा० ७।१०६४)

ग्यानातीत-(सं० ज्ञानातीत)-ज्ञान से परे, जो ज्ञान द्वारा न जाना जा सके । उ० माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनंता । (मा० १।१६२। छं० २)

ग्यानिन्ह-ज्ञानियों, ज्ञानी का बहुवचन । उ० जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई । (मा० ७।१६३) ग्यानिहु-ग्यानी भी । उ० ग्यानिहु ते अति-प्रिय बिग्यानी । (मा० ७।८६३) ग्यानी-(सं० ज्ञानी)-ज्ञानवाले, बुद्धिमान । उ० कथा अलौकिक सुनहिं, जे ग्यानी । (मा० १।३३।२)

ग्यानु-दे० 'ग्यान' । उ० अबला बिबस ग्यानु गुन गा जनु । (मा० २।४८।२)

ग्रंथ-(सं०)-पुस्तक, किताब । उ० सदग्रंथ पबंत कंदरनिह महुं जाइ तेहि अवसर दुरे । (मा० १।८४। छं० १) ग्रंथनिह-ग्रंथ का बहुवचन, ग्रंथों, पुस्तकों । उ० सृष्टि हेतु सब ग्रंथनिह गाए । (मा० १।१६।२)

ग्रंथि-(सं०)-१. गाँठ, दो रस्सी या किसी चीज का आपस में उलझ जाना । २. बंधन, माया, जाल, ३. विवाह की एक रीति, गठबंधन, जिसमें पति का डुपट्टा और पत्नी का अंचल बाँध दिया जाता है । उ० १. जइ चेतनहिं ग्रंथि परि गई । (मा० ७।११७।२) ३. बंदन बंदि ग्रंथिविधि करि धुव देखेउ । (पा० १।४६)

ग्रंथित-(सं० ग्रंथन)-१. गूँथा हुआ, पिरोया हुआ, २. गाँठ दिया हुआ, जिसमें गाँठ लगी हो ।

ग्रथित-दे० 'ग्रथित' । उ० २. मंगलमय दोउ, अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी । (गी० १।१०३)

ग्रसइ-(सं० असन)-१. असता है, पकड़ता है, २. पकड़े, ग्रसे । उ० १. बक्र चंद्रमहिं असइ न राहू । (मा० १।२८।३) ग्रसत-पकड़ता है, असता है, निगलता है । उ० जब लागि असत न तब लागि जतनु करहु तजि टेक । (मा० १।३६) ग्रससि-१. पकड़े, पकड़ ले, २. खावे । उ० २. ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना । (मा० १।२।३) ग्रसि-१. पकड़कर, २. खाकर, भक्षणकर । उ० १. जनु बन दुरेउ ससिहिं असि राहू । (मा० १।१६।३) ग्रसे-१. पकड़े, पकड़ लिए, दबा लिए, २. जकड़े हुए, पकड़े हुए । उ० १. कहाँ सुनहिं अस अधम नर असे जे मोह पिसाच । (मा० १।११४) ग्रसेउ-अस लिया, भक्षण कर लिया, जकड़ लिया था । उ० संसय सर्प असेउ मोहि ताता । (मा० ७।१३।३) ग्रसै-पकड़े, जकड़े, पकड़ लेता है । उ० बदनहीन सो असै चराचर पान करन जे जाहीं । (वि० १।११) ग्रसौ-पकड़ लिया । ग्रस्यो-पकड़ लिया, पकड़ा । उ० पसु पाँवर अभिमान-सिधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह । (वि० १।४४)

ग्रसन-(सं०)-१. ग्रहण, पकड़, २. भक्षण, निगलना, ३. इतनी दृढ़ता से पकड़ना की छूट न सके । ४. एक असुर का नाम । उ० १. संशय सर्प असन उरगादः । (मा० ३।११।२)

ग्रसित-पकड़ा हुआ, अस्त, फँसा हुआ । उ० किमि समुझौं मैं जीव जइ कलि मल ग्रसित बिमूढ़ । (मा० १।३० ख)

ग्रस्त-(सं०)-१. पकड़ा हुआ, २. पीड़ित, ३. खाया हुआ ।

ग्रस्तम्-दे० 'ग्रस्त' । उ० १. सकल संघट षोच, सोच बस सबदा दास तुलसी विषय-गहन-ग्रस्तम् । (वि० १६)

ग्रह-(सं०)-१. सूर्यादि नवग्रह । ये कभी कभी विपरीत स्थान पर आकर आदमियों को कष्ट देते हैं, २. नक्षत्र, तारे, ३. बुरी तरह सतानेवाला, ४. ग्रहण, पकड़, थाम, ५. बालकों के एक प्रकार के रोग, ६. ६ की संख्या । उ० १. पूतना पिसाच भेत डाकिनि साकिनि समेत, भूत ग्रह बेताल खग मृगालि-जालिका । (वि० १६) विशेष-सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु, ये नवग्रह हैं ।

ग्रहइ-पकड़ता है, ग्रहण करता है । उ० गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई । (मा० ७।४४।२) ग्रहत-पकड़ता है, ग्रहण करता है, खाता है । ग्रहै-१. पकड़े, स्वीकार करे, ले, २. पकड़े हुए, लिए हुए, ३. पकड़ता है, ग्रहण करता है ।

ग्रहण-(सं०)-दे० 'ग्रहन' ।

ग्रहदसा-(सं० ग्रह + दशा)-१. नवग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी मनुष्य की भली या बुरी अवस्था, २. अभाग्य, ३. अहों का बुरा होना । उ० ३. जनु ग्रह दसा दुसह दुख-दाई । (मा० २।१२।४)

ग्रहन-(सं० ग्रहण)-१. सूर्य तथा चंद्र का ग्रहण, उनका या उनके किसी भाग का छाया पड़ने से दृष्टि से ओझल होना । २. पकड़ना, पकड़ने की क्रिया, ३. स्वीकार, मंज़ूर । उ० २. पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा । (मा० १।१०।१२)

ग्रहीत-(सं० गृहीत)-ग्रस्त, पकड़ा हुआ, ग्रहण किया हुआ । उ० ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार । (मा० २।१८०)

ग्राम-(सं०)-१. छोटी बस्ती, गाँव, २. समूह, मुंड । उ० १. गनी गरीब ग्राम नर नागर । (मा० १।२८।३) ग्रामहिं-१. ग्रामों को, २. समूहों को । ग्रामहि-१. ग्राम को, गाँव को, २. समूह को । उ० २. प्रेम समेत गाव गुन-ग्रामहि । (मा० ७।१०३।३) ग्रामै-१. गाँव को, २. समूह को । उ० २. जाको जस सुनत, गावत गुन ग्रामै । (गी० १।२४)

ग्रामा-दे० 'ग्राम' । उ० २. सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा । (मा० ७।११६।४)

ग्रामु-दे० 'ग्राम' ।

ग्राम्य-(सं०)-१. ग्रामीण, ग्राम का, २. गाँवार, मूर्ख, ३. असली, छल-कपट रहित, ४. एक काव्य दोष, ५. अरलील वाक्य या शब्द, ६. मैथुन । उ० १. गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान । (मा० १।१० ख)

ग्रस-(सं०)-१. उतना भोजन जो एक बार मुँह में डाला जा सके, कौर, २. पकड़, गिरफ्त, पकड़ने की क्रिया, ३. सूर्य या चंद्रमा का ग्रहण लगना । उ० २. जयति जय बाल कपि-केलि-कौतुक-उदित-चंडकर मंडल-ग्रसकर्ता । (वि० २५)

ग्रसन-१. असनेवाले, २. असने के लिए । उ० १., २. अज्ञान-राकेस-ग्रसन बिधुतुद, गर्ब-काम-करिम-हरि दूष नारी । (वि० ५८)

ग्राह-(सं०)-१. मगर, चड़ियाल, २. ग्रहण करना, पक-

डना, ३. वह ग्राह जिसने गज को पकड़ा था और जिसे विष्णु ने मारकर गज को मुक्त किया था। दे० 'गज'।
 उ० १. लोभ ग्राह दनुजसे क्रोध, कराराज-बंधु खल मार। (वि० ६३)
 ग्राहक-(सं०)-ग्रहण करनेवाला, खरीददार।
 ग्राही-(सं०)-१. वह जो ग्रहण करे, संग्रही, २. प्रशंसा करनेवाला, पहचाननेवाला, चाहनेवाला, ३. कब्ज करनेवाली चीज़, ४. कपित्थ, कैत।
 ग्रीव-दे० 'ग्रीवा'। उ० सोभा सीवँ ग्रीव चिबुकाधर बदन अभित छवि छाई। (वि० ६२)
 ग्रीवा-दे० 'ग्रीवा'। ग्रीवा-(सं०)-सिर और धड़ को जोड़नेवाला अंग, गर्दन, गला। उ० चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा। (मा० ११४७।१)
 ग्रीष्म-दे० 'ग्रीष्म'। उ० ग्रीष्म दुसह राम बन गवनू। (मा० १४२।२)
 ग्रीष्म-(सं०)-१. गर्मी की ऋतु, गर्मी। यह ऋतु कुछ लोगों के अनुसार बैसाख और जेठ तथा कुछ लोगों के अनुसार जेठ और अषाढ़ में मानी गयी है। २. उष्ण, गरम।

ग्लानि-(सं०)-१. शारीरिक या मानसिक शिथिलता अनुत्साह, २. खेद, दुःख, ३. मन की एक वृत्ति जिसमें अपने किसी कार्य की खुराई या दोष आदि को देखकर अनुत्साह, अरुचि और खिन्नता उत्पन्न होती है। अरुचि, अनास्था। ४. लज्जा। उ० २. अंबरीष को साप सुरति करि अजहूँ महामुनि ग्लानि गरै। (वि० १३७)
 ग्लानी-दे० 'ग्लानि'। उ० ३. अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। (मा० ११८४।२)
 ग्वाल-(सं० गोपाल)-अहीर, गोप, ब्रज के अहीर। उ० करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि नाच नचायो। (वि० ६८) ग्वालान-ग्वाल की स्त्री, अहिरिन, गोपिका। उ० विनु आषर को गीत गाइ गाइ चाहत ग्वालिनि ग्वाल रिभाए। (कृ० ५०) ग्वालिन-दे० 'ग्वालिन'। उ० जोग-जोग ग्वालिनो बियोगिनि जान-सिरोमनि जानी। (कृ० ४७)
 ग्वालिन-ग्वालिनो, गोपी। उ० ग्वालिन बचन सुनि कहति जसोमति भलो न भूमि पर वादर छीबो। (कृ० ६)

घ

घंट-(सं० घट)-१. घड़ा, मिट्टी या लोहे का बड़ा बर्तन, गगरा, २. मृतक-क्रिया में प्रयुक्त होनेवाला वह जल-पात्र जो पीपल के पेड़ में टांगा जाता है। ३. धातु का बना औंधे बर्तन के आकार का घंट या घंटी जिसमें एक ललरी लटकती रहती है और जो हिलने से घंट की दीवाल से टकराकर आवाज़ उत्पन्न करती है। ऐसे घंट शिवमंदिरों में टँगे रहते हैं तथा हाथियों पर लटकाए जाते हैं। घंटी या घंटी गाय-बैल आदि जानवरों के गले में बाँधी जाती है। घंट से टन-टन और घंटी से टन-टन की आवाज़ निकलती है। ४. समय की सूचना या पूजा आदि के लिए बजाया जानेवाला चपटा एवं वृत्ताकार धातुखंड, घड़ियाल। यह मुँगरी या लकड़ी से बजाया जाता है। उ० ३. चले मत्त गज घंट बिराजी। (मा० १।३००।१)
 घंटा-दे० 'घंट'। उ० ३. लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा सी। (वि० २२)
 घंटी-दे० 'घंट'।
 घ-१. घंटा, २. घुँघरू, ३. तीर, ४. बादल।
 घई (१)-(गंभीर)-१. गंभीर भँवर, पानी का चक्कर, २. जिसकी थाह न लग सके, अत्यंत गहरा, अथाह। उ० २. ग्रीति-प्रवीति-रीति-सोभासरि थाहत जहँ जहँ तहँ घई। (गी० ५।३८)
 घई (२)-(?)-थूनी, टेक।
 घट (१)-(सं०)-१. कुंभ, कलश, घड़ा, २. शरीर, पिंड, ३. उर, हृदय, मन, ४. कुंभ राशि। उ० १. यथा पट-तंतु,

घट-मृत्तिका, सर्प-स्रग, दारु-करि, कनक-कटकागदादी। (वि० ५४)
 घट (२)-(सं० कर्त्तन)-घटा हुआ, कम, थोड़ा, छोटा। उ० अट घट लट नट नादि जहँ तुलसी रहित न जान। (सं० ५७६)
 घट (३)-(सं० घट्ट)-नदी का घाट, नदी का किनारा। उ० तौ घर घट बन बाट महँ कतहुँ रहे किन देह। (सं० ११२)
 घट (४)-(सं० घटन)-सटीक, सुन्दर, शोभायमान।
 घटई (१)-(सं० कर्त्तन)-१. कम होता है, कटता है, २. कम होगा, ३. कम हो जाय। उ० १. घटइ बड़इ बिरहिनि दुखदाई। (मा० १।२३८।१) घटत (१)-(सं० कर्त्तन)-कम होता है। उ० साँवरे बिलोके गर्ब घटत घटनि के। (क० २।१६) घटति (१)-(सं० कर्त्तन)-घटती है, कम होती है। उ० राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह। (दो० ६६) घटह-(सं० कर्त्तन)-कम हो, घट जाय। उ० सवन घटहु, पुनि इग घटहु, घटहु सकल बल देह। (दो० ५६३) घटा (१)-कम हुआ, क्षीण हुआ। घटि-१. घटकर, कम होकर, कम, २. नीच, छुद्र, ३. हानि, लुकसान। उ० १. चातकु रयनि घटै घटि जाई। (मा० २।२०।२) २. तौ सहि निपट निरादर निसि दिन रटि लट ऐसो घटि को तो। (वि० १६१) घटिहै-घटेगा, कम होगा। उ० दे० 'घटे'। घटे-घटने से, घटने पर। उ० दे० 'घटि'। घटे (१)-१. घटने से, कम होने से, क्षीण होने पर, २. घट गए, कम हो गए। उ०

१. इते घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि-नेह ? (दो० ५६३) घटै-(१)-घटे, कम हो। उ० दे० 'घटे'। घटो (१)-कम हुआ, क्षीण हुआ, घट गया। घट्यो (१)-घटा, कम हुआ।

घटइ (२)-(सं० घटन)-१. उपस्थित होता है, लगता है, २. आ जायगा, लगेगा, ३. लगे, हो जाय। उ० २. दारुन दोष घटइ अति मोही। (मा० ११६२।२) घटत (२)-१. काम आता है, २. होता है, घटित होता है। उ० १. काय, बचन, मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराए। (वि० २०१) घटति (२)-होती है, घटित होती है। घटब-लगूँगा, उपस्थित हूँगा। उ० सब बिधि घटब काज मैं तोरे। (मा० ४।७।५) घटा (२)-१. उपस्थित हुआ, हुआ, २. सटीक बैठ, मेल मिल गया। घटिहि-लग जायगा, करेगा। उ० सो सब भाँति घटिहि सेवकाई। (मा० २।२५।३) घटे (२)-घटित हुए, हुए। घटै (२)-घटित हो, हो। उ० सपने नृप कहुँ घटै विप्रबध, बिकल फिरै अथ लागे। (वि० १२२) घटो (२)-हुआ, घटित हुआ, घटा। घट्यो (२)-१. लगा, उपस्थित हुआ, २. हुआ। उ० २. समौ पाइ कहाइ सेवक घट्यो तौ न सहाय। (गी० ६।१४)

घटकरन-(सं० घटकर्ण)-कुंभकर्ण। रावण का भाई। उ० जयति दसकंठ-घटकरन-बरिदनाद-कदन-कारन, कालनेमि-हंता। (वि० २५)

घटज-(सं०)-घड़े से उत्पन्न होनेवाले अगस्त्य मुनि। दे० 'अगस्त्य'। उ० बद्ध विधि जिमि घटज निवारा। (मा० २।२६।१)

घटजोनी-(सं० घट+योनि)-घड़े से पैदा होनेवाले अगस्त्य ऋषि। दे० 'अगस्ति'। उ० बालमीक नारद घटजोनी। (मा० १।३।२)

घटन (१)-(सं०)-१. होना, उपस्थित होना, २. उपस्थित करनेवाला, ३. गढ़ा जाना, ४. गढ़नेवाला। उ० २. अघटित-घटन, सुघट-बिघटन ऐसी बिरुदावलि नहिँ आन की। (वि० ३०)

घटन (२)-(सं० कर्त्तन)-घटना, कम होना।

घटना (१)-(सं०)-कोई बात जो हो जाय, वाक्या, वार-दांत। उ० अघट-घटना-सुघट, सुघट-विघटन-विकट। (वि० २५)

घटनि-(सं० घटा)-घटाओं। उ० दे० 'घटत (२)। घटा (३)-(सं०)-१. बादल, मेघमाला, २. समूह, झुंड, ३. अंधेरा। उ० २. रजनीचर मत्तगयंद-घटा बिघटै मृगराज के साज लरै। (क० ६।३६)

घटयोनि-दे० 'घटजोनी'।

घटसंभव-(सं०)-दे० 'घटसंभव'। उ० तज्जमज्ञानपाथोधि-घटसंभव, सर्वगं, सर्वसौभाग्य-मूलं। (वि० १२) घटसंभव-(सं०)-अगस्त्य ऋषि। उ० जहूँ घट संभव मुनिबर ग्यानी। (मा० ७।३२।४)

घटाइ-घटा करके, कम करके। उ० अपने-अपने को तौ कहैगो घटाइ को ? (क० ७।२२)

घटाटोप-(सं०)-१. बादलों की घटा जो चारों ओर से घेरे हो, २. गाड़ी या पालकी आदि ढकने के लिए एक प्रकार

का कपड़ा, ओहार, ३. बादलों की भाँति चारों ओर से ढक लेनेवाला ढल या समूह। उ० ३. घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। (मा० ६।३६।५)

घटित-(सं०)-रचित, निर्मित, बना हुआ। उ० हाटक-घटित जटित ;मनि कटित रट मंजीर। (गी० ७।२१)

घटा-(सं० घटा)-१. बादलों का समूह, २. समूह, झुंड। उ० २. प्रलयकाल के जनु घन घटा। (मा० ६।८।१)

घठा-(सं० घट्ट)-शरीर पर वह उभरा हुआ चिह्न, जो किसी वस्तु की रगड़ लगते-लगते पड़ जाता है। उ० कमठ कठिन पीठि, घठा परो मंदर को। (क० ६।१६)

घन-(सं०)-१. मेघ, बादल, २. लोहा, ३. बड़ा भारी हथौड़ा, ४. मुख, ५. समूह, ६. कपूर, ७. घंटा, घड़ियाल, ८. लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई, तीनों का विस्तार, ९. घना, गहन, १०. ठोस, ११. डढ़, १२. निरंतर, १३. पिंड, शरीर, १४. अद्भुत, १५. बड़ा हथौड़ा, १६. गहरा। उ० १. वेद पुरान उदधि घन साधू। (मा० १।३६।२) ५. नित्य निर्भम, नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञान घन सच्चिदानंद मूलं। (वि० ५३) घनहिँ-१. घन से, हथौड़े से, २. घन को। उ० १. अनल दाहि पीटत घनहिँ परसु बदन यह दंड। (मा० ७।३७) घनै-घन को, बादल को। उ० सो तुलसी चातक भयो जाँचत राम स्याम सुंदर घनै। (गी० ५।४०)

घनघोर-(सं० घन+घोर)-१. भीषण ध्वनि, २. विकट, विकराल, भयावना, ३. बादल की गरज, ४. अत्यन्त घना। उ० २. पाप संताप घनघोर संसृति दीन अमत जगयोनि नहिँ कोपि त्राता। (वि० ११)

घननाद-(सं०)-१. बादलों की गरज, २. रावण का पुत्र मेघनाद। उ० २. कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार। (मा० ६।६७ ख) घननादहि-१. मेघनाद को, २. मेघ की गर्जना को। उ० १. कुंभकरन घननादहि मारैहु। (मा० ६।६०।३)

घननादा-दे० 'घननाद'। उ० २. रघुपति निकट गयउ घननादा। (मा० ६।५१।३)

घनपदवी-(सं० घन+पदवी)-आकाश, अंतरिक्ष, नभ।

घनश्याम-(सं०)-दे० 'घनस्याम'। उ० ४. राम घनश्याम तुलसी पपीहा। (वि० १५)

घनस्याम-(सं० घनश्याम)-१. बादल की तरह काला, २. कृष्ण, ३. राम, ४. काला बादल। उ० १. लोचना-मिराम घनस्याम रामरूप सिसु। (क० १।१२) घनस्यामहि-१. बादल की तरह काले का, २. कृष्ण का, ३. राम का, ४. काले बादल का, ५. बादल की तरह काले को, ६. कृष्ण को, ७. राम को, ८. काले बादल को। उ० १. सीता लखन सहित घनस्यामहि। (मा० २।१३।३)

घना-(सं० घन)-१. सघन, गम्भिर, २. घनिष्ठ, नज़दीकी, निकट का, ३. अधिक, ज्यादा, अनेक। उ० ३. गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना। (मा० ७।१३।०।१)

घनी-(सं० घन)-१. सघन, अविरल, २. ज़ोर से, ३. बहुत,

अधिक । उ० २. अति हरषु राजसमाज दुहुँ दिस दुहुँभी बाजहि घनी । (मा० १३१७। छं० १)
घनु (१)-(सं० घन)-१. बादल, २. घना, अधिक ।
घनु (२)-(सं० शत्रुघ्न) लक्ष्मण के छोटे भाई । उ० रघु-
नन्दन बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि घनु दुसरे हैं । (गी०
६।१३)
घने-(सं० घन)-१. बहुत, अधिक, २. सघन, अविरल, ३.
अनेक, अगणित । उ० ३. कह दास तुलसी कहि न सक
छवि सेश जेहि आनन घने । (मा० ६।७१। छं० १)
घनेरा-(सं० घन)-बहुत, अधिक, अत्यन्त, अगणित (संख्या
में) । उ० जानइ सो अति कपट घनेरा । (मा० १।१७०। २)
घनेरी-घनेरा का स्त्रीलिंग, बहुत, अधिक । उ० सुनु मुनि
बरनी कबिन्ह घनेरी । (मा० १।१२४। २) घनेरे-दे०
'घनेरा' । उ० सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे । (मा० १।१४०। १)
घनेरो-दे० 'घनेरा' । उ० जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता
तिहुँपुर सुजस घनेरो । (वि० ८७)
घवरि-दे० 'घवरि' ।
घमंड-(?)-१. अभिमान, गर्व, २. उमड़कर, घुमड़-घुमड़
कर, उमंग से भरकर । उ० २. घन घमंड नभ गरजत
घोरा । (मा० ४।१४। १)
घमंडु-दे० 'घमंड' । उ० २. सावनघन घमंडु जनु ठयऊ ।
(मा० १।३४७। १)
घमोइ-(?)-१. एक कटिदार जंगली पौधा, भड़माँड,
सत्यानाशी । यह पौधा खंडहरों में उगता है । २. बाँस
का एक रोग, ३. घमोइ रोग से पीड़ित बाँस । उ० १.
कहत मन तुलसीस लंका करहु सवन घमोइ । (गी० ५।५)
घमोई-दे० 'घमोइ' । उ० ३. बेनुमूल सुत भयहु घमोई ।
(मा० ६।१०। २)
घर-(सं० गृह)-१. दीवाल आदि से घेरकर बनाया हुआ
रहने का स्थान, मकान, आवास, २. निवासस्थान,
जहाँ घर के लोग रहते हों, ३. स्वदेश, जन्मस्थान, ४.
वंश, कुल, खान्दान, ५. कार्यालय, घरबार, ६. कोष,
खज़ाना, भंडार, ७. गृहस्थी, घरबार, ८. उत्पत्ति स्थान,
मूल कारण, जड़ । उ० २. हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं ।
(मा० १।७५। २) सु० घर को न घाटको-कहीं का भी नहीं,
जिसके लिए कहीं जगह न हो । उ० धोबी कैसे कूकर न
घर को न घाट को । (क० ७।६६) घरतर-श्रेष्ठ घर, अच्छा
घर । उ० ते तुलसी तजि जात किमि निज घरतर
पर-देस । (स० ७) घरनि (१)-१. घरों में, २. घरों
को । उ० १. जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं । (वि०
१७६) २. घरनि सिधारिण सुधारिण आगिलो काज ।
(गी० १।८२) घर बन बीच-गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थ
के बीच । तपस्वीवत् गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए ।
उ० तुलसी घर बन बीच ही राम-प्रेमपुर छाइ । (दो०
२५६) घर बसी-(सं० गृह + वास)-१. घर बसानेवाली,
२. ब्यंग्य अर्थ में घर उजाड़नेवाली । उ० २. डारि दे घर-
बसी लकड़ी बेगि कर तैं । (क० १७) घरबात-घर की
सामग्री, घर की सम्पत्ति । उ० घरबात घरनि समेत कन्या
आनि सब आगे धरी । (पा० ६२) घरवात-घर का सा-
मान, घर की संपत्ति । उ० कूसमत्त लल्लत जो रोदिन को,

घरवात घरे खुरपा खरिया । (क० ७।४६) घरहि-घर ही ।
उ० द्विजदेवता घरहि के बाढ़े । (मा० १।२७६। ४) घरे-
१. घर में, २. घर को । उ० १. दे० 'घरवात' । घरे-दे०
'घरे' । घरो (१)-(सं० गृह)-१. घर, २. घर भी ।
घरणी-दे० 'घरनि' ।
घरनि (२)-(सं० गृहिणी)-घरनी, स्त्री, गृहस्थिनी । उ०
मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि । (पा० ६)
घरनिहि-स्त्री को । उ० प्रभु रख पाइ कै बोलाइ बाल
घरनिहि । (क० २।१०) घरनी-दे० 'घरनि' । उ० तबहिं
गर्भ रजनीचर घरनी । (मा० १।३६। ४) घरन्यौ-घरनी
भी, स्त्री भी । उ० सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़यो
बरदा, घरन्यौ बरदा है । (क० ७।१५५)
घरफोरी-(सं० गृह + स्फोटन) घर में फूट डालनेवाली,
घर में मगड़ा डालनेवाली । उ० पुनि अस कबहुँ कहसि
घरफोरी । (मा० २।१४। ४)
घरा-(सं० घट)-घड़ा, कलश ।
घरि-दे० 'घरी (१)' ।
घरिक-दे० 'घरीक' । उ० घरिक बिलंबु कीन्ह बटछाहीं ।
(मा० २।१५। २)
घरी (१)-(सं० घटी)-१. समय का एक मान, २. अवसर,
समय, ३. अच्छा अवसर, ठीक समय । उ० २. सुभ
दिन, सुभ घरी, नीको नखत, लगत सुहाइ । (गी०
७।३४) ३. घरी कुघरी समुक्ति जिय देखू । (मा० २।२६। ४)
घरी कुघरी-मौला बे मौला, समय कुसमय । उ० दे०
'घरी (१)' ।
घरी (२)-(?)-तह, परत, लपेट । उ० है निर्गुणसारी
बारिक, बलि, घरी करौ, हम जोही । (क० ४१)
घरीक-(सं० घटी + एक)-एक घड़ी, थोड़ी देर । उ० जल को
गए लखन हैं लरिका परिसौ, पिय ! छाँह घरीक है
ठाढ़े । (क० २। १२)
घर-दे० 'घर' । उ० २. घर न सुगमु बनु विषसु न लागा ।
(मा० २।७८। ३)
घरी (२)-दे० 'घरा' । उ० विगरत मन संन्यास लेत जल
नावत आम घरो सो । (वि० १७३)
घरौधा-(सं० गृह)-१. छोटा घर, साधारण घर, २.
कागज़, मिट्टी, धूल या ऐसी ही चीज़ों का घर जिसे लड़के
बनाकर खेलते हैं । उ० २. बापुरो विभीषन घरौधा हुतो
बाखु को । (क० ७।१७)
घमीसु-(सं० घमीशु) सूर्य, रवि । उ० जयति घमीसु-संदग्ध
संपाति-नवपच्छ-लोचन-दिब्य-देह दाता । (वि० २८)
घर्म-(सं०)-घाम, धूप ।
घलतो-(?)-बर्बाद करता, मटियामेट करता । उ० करि
पुटपाक नाक-नायक हित घने-घने घर घलतो । (गी०
५।१३)
घवरि-(?)-१. फलों का गुच्छा, २. पत्तियों का गुच्छा ।
उ० १. हेम बौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोरि ।
(मा० १।२८८)
घसीटन-(सं० घृष्ट) घसीटने, खुरी तरह खींचने । उ० लगे
घसीटन धरि-घरि भौंटी । (मा० २।१६३। ४)
घहरात-(ध्व०)-१. चिगवाड़ते हैं, गरजते हैं, शब्द करते हैं ।

२. गरजते हुए, भयंकर शब्द करते हुए, ३. गरजते ही, चिंगाड़ते ही । उ० १. घहरात जिमि पविपात गर्जत जनु प्रलय के बादले । (मा० ६।४६।१)

घाउ-दे० 'घाव' । उ० हतहि कोपि तेहि घाउ न बाजा । (मा० ६।७६।४)

घाऊ-दे० 'घाव' । उ० यह सुनि परा निसानहि घाऊ । (मा० १।३१३)

घाए-दे० 'घाव' । उ० ओढ़िअहि हाथ असनिहु के घाए । (मा० २।३०६।४)

घाट (१)-(सं० घट्ट)-१. नदी, तालाब या पोखरे आदि के किनारे जहाँ लोग स्नान आदि करते हैं, या धोबी कपड़े धोते हैं । कहीं कहीं घाट पक्के होते हैं, और सीढ़ियाँ बनी होती हैं । २. नदी का वह किनारे का स्थान जहाँ लोग पार करते हैं या नाव पर चढ़ते, उतरते हैं । ३. ओर, दिशा, तरफ, ४. रंग-डंग, तौर-तरीका, ५. भेद, मर्म, ६. तलवार की धार, ७. तंग पहाड़ी रास्ता, उ० १. तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि । (मा० १।३६) घाटारोह-नदी आदि के घाट को रोक देना, घाट बंद कर देना । घाटारोह-दे० 'घाटारोह' । उ० हथवाँसहु बोरहु तरनि, कीजिअ घाटा-रोहु । (मा० २।१८६)

घाट (२)-(सं० घात)-१. धोखा, छल, कपट, २. बुरा काम, कुकर्म, नीचता ।

घाट (३)-(सं० कर्त्तन)-१. कम, थोड़ा, २. न्यूनता, कमी ।

घाटा-दे० 'घाट (१), घाट (२), घाट (३)' । उ० १. का० । -धावहि गर्नहि न अवघट घाटा । (मा० ६।४१।३)

घाटि (१)-दे० 'घाट (३)' । उ० १.स्वारथ को परमारथ को, परिपूरन भो फिरि घाटि न हो सो । (क० ७।१३७)

घात-(सं०)-१. प्रहार, चोट, मार, २. बध, हत्या, ३. अहित, बुराई, ४. अभिप्राय सिद्ध करने का उपयुक्त स्थान और अवसर या, ताक, ५. दौंव-पेंच, चाल, छल, धोखा । उ० २. कौड़ी लागि ते मोहबस करहि बिभ्र-गुरु-घात । (सो० २५२) ४. चित्रकूट अचल अहेरि बैद्योघात मानों । (क० ७।१४२)

घातक-(सं०)-१. मार डालनेवाला, हत्यारा, हिंसक, बधिक । २. शत्रु, वैरी ।

घाता-दे० 'घात' । उ० २. देखि भालुपति निज दल घाता । (मा० ६।६८।८)

घातिनी-(सं०)-मारनेवाली, बध करनेवाली । उ० बीर घातिनी झाड़िसि साँगी । (मा० ६।६४।४)

घाती-मारनेवाला, बधिक । उ० हम जड़ जीव जीवगन घाती । (मा० २।२५।२)

घान-(सं० घन)-१. उतनी वस्तु जितनी कोल्हू में एक बार डालकर पेरी जाय या चक्की में पीसी जाय, २. उतनी वस्तु जितनी एक बार में भूनी या पकाई जाय । घानी-दे० 'घान' । उ० १. मारि दहपट कियो जम की घानी । (क० ६।२०)

घाम-(सं० घर्म)-१. धूप, सूर्यातप, २. गर्मी, उष्णता, ३. संकट, दुःख । उ० ३. सुमिरे त्रिविध घाम हरत, पूरत

काम । (वि० २५५) घामो-घाम भी । उ० १. राम नाम-जप-विरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो । (वि० २२८)

घामा-दे० 'घाम' । उ० मध्य दिवस अति सीत न घामा । (मा० १।१६१।१)

घाय-दे० 'घाव' । उ० नाम लै राम दिखावत बंधु को, धूमत घायल घाम घने हैं । (क० ६।३६)

घायल-जिसको घाव लगा हो, आहत, जख्मी । उ० दे० 'घाय' । घाल (१)-(?)-बलुआ, सौदे की उतनी वस्तु जो ग्राहक को तौल, नाप या गिनती के ऊपर दी जाय । मु० घाल न-गिन्यो-कुछ न समझा ।

घाल (२)-(सं० घटन)-१. नष्ट करके, घाल कर, २. बुराई, बिगाड़, अपकार । उ० २. घरघाल चालक कलह-प्रिय कहियत परम परमारथी । (पा० १२१)

घालइ-(सं० घटन)-१. नष्ट करता, नष्ट करता था, २. बिगाड़ता है, विध्वंस करता है । उ० १. आपुनु उठि घावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा । (मा० १।१८३।१) घालत-१. बिगाड़ता है, नष्ट करता है, २. नष्ट करते हुए, ३. कर डालता है, । उ० ३. कोप तेहि कलिकाल कायर मुपहि घालत घाय । (वि० २२०)

घालति-१. नष्ट करती, २. रखती, ३. फेंकती, डालती । उ० १. तुलसी यही कुभाँति घने घर घालि आई, घने घर घालति है घने घर घालि है । (क० ७।१२०) घालसि-१. नष्ट-अष्ट कर, २. नष्ट करता है । उ० १. बातन मनहि रिफाइ सठ जनि घालसि कुल खीस । (मा० ६।५६ क) घालहि-१. नष्ट करते हैं, २. करते हैं, ३. डालते हैं, रखते हैं । उ० १. आपु गए अह घालहि आनहि । (मा० ७।४०।३) घाला-१. नष्ट किया, २. रखा । उ० १. चित्र-केतु कर घर उन घाला । (मा० १।७६।१) घालि (२)-१. नष्ट कर, २. डालकर, धरकर, रखकर । उ० १. दे० 'घालति' । २. कबहुँ पालनें घालि भुलावै । (मा० १।२००।४) घालिहै-१. नष्ट करेगी, २. धरेगी, रखेगी । उ० १. दे० 'घालति' । घाली-१. डाली, फेंकी, २. उजाड़ा, नष्ट किया, ३. की, कर ली । उ० ३. राम सेन निज पाछें घाली । (मा० ६।७०।३) घाले-१. नष्ट किए, नष्ट करने से, २. रखे, धरे । उ० १. तेरे घाले जातुधान भए घर घर के । (ह० ३३) घालेसि-१. नष्ट-अष्ट किया, उजाड़ा, २. रखा, डाला, ३. किया, कर दिया । उ० ३. घालेसि सब जगु बारह बाटा । (मा० २।२१२।३) घाले-दे० 'घाले' ।

घालक-नष्ट करनेवाला, नाशकर्ता, बिगाड़नेवाला । उ० परघर घालक लाज न भीरा । (मा० १।६७।२)

घालि (२)-(?)-दे० 'घाल (१)' । मु० घालि नहि गनै-कुछ न समझे । उ० रघुबीर बल दुर्पित बिभीषनु घालि नहि ताकहुँ गनै । (मा० ६।६४।१)

घाव-(सं० घात)-चोट, ब्रण, जख्म ।

घावी-(सं० घास)-घास, चारा, वृण । उ० चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी । (वि० २२)

घाहें-(सं० गभस्ति)-उँगलियों के बीच की संधि, गहुआ, गावा, घाई । उ० धारैं बान, कुल धनु, भूषन जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं । (गी० ७।१३)

घिन-(सं० घृणा)-नफरत, घृणा । उ० काल-चाल हेरि होति हिये घनी घिन । (वि० २५३)
 घिनात-घृणा करते हैं, नफरत करते हैं । उ० आप से कहुँ सौंपिए मोहिं जौ पै अतिहि घिनात । (वि० २१७)
 घिय-दे० 'घी' । उ० स्वामिदसा लखि लपन सखा कपि, पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के । (गी० ४११)
 घी-(सं० घृत)-घृत, दूध का सार जो मक्खन या नवनीत से तपाकर पानी का अंश निकालकर बनाया जाता है । सरपि । उ० जानि अंध अंजन कहै वन-वाघिनि-घी को । (वि० २६५)
 घीय-दे० 'घी' । उ० १. हूँहीं माखी घीय की । (वि० २६३)
 मु० घीय की माखी-१. शीघ्र नष्ट हो जानेवाली चीज़ । घी में मक्खी गिरकर तुरत मर जाती है । २. व्यर्थ या फेंक देने लायक वस्तु । उ० १. दे० 'घीय' ।
 घुँघुरारि-दे० 'घुँघुरारी' ।
 घुँघुरारी-(?) -घुँघुराले, कुंचित, घूमे हुए । उ० घुँघुरारी लटै लटकै मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की । (क० १५५)
 घुटुरुवनि-(सं० घुट)-घुटनों के बल, घुटनों से । उ० गिरि घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूष देखाए । (गी० १२६)
 घुणात्तर न्याय-(सं०)-ऐसी कृति या रचना जो अनजान में उसी प्रकार हो जाय जैसे घुनों के खाते-खाते लकड़ी में अक्षर की तरह कुछ लकीरें पड़ जाती हैं । अक्षरमात सिद्ध कार्य । बिना परिश्रम के प्राप्त कोई वस्तु ।
 घुन-(सं० घुण)-एक प्रकार का लाल-लाल छोटा कीड़ा जो अनाज, पीधे और लकड़ी आदि में लगता है और उसे अंदर ही अंदर खोखला कर देता है । भीतर ही भीतर खोखला करके नाश कर देनेवाला । उ० जेहि न लाग घुन को अस धीरा । (मा० ७७१३) घुनात्तर न्याय-दे० 'घुणात्तर न्याय' । उ० होइ घुनात्तर न्याय जौ, पुनि प्रत्यूह अनेक । (दो० २७३)
 घुनिए-भीतर ही भीतर खोखला होते रहिए, नष्ट होते रहिए । उ० सुमिरि-सुमिरि बासर निसि घुनिए । (क० ३७)
 घुमरहिं-(?) घोर आवाज़ कर रहे हैं, गरज रहे हैं ।
 घुर-(सं० कूट)-१. कूड़ा करकट, रही चीजें, २. वह जगह जहाँ कूड़ा फेंका जाय । उ० २. तुलसी मन परिहरत नहिं घुर बिनिआ की बानि । (दो० १३) घुरबिनिआ-कूड़ेखाने या घूरे पर से दाना चुनना, गंदी जगह से अन्नादि बिनना या लेना । उ० दे० 'घुर' ।
 घुरुघुरात-(ध्व०)-१. घुर-घुर का शब्द करता हुआ, २. घुरघुराता है । उ० १. घुरुघुरात हय आरौ पाएँ । (मा० ११५६१४)
 घुर्मि-(सं० घूर्णन)-घूमकर, चक्कर खाकर । उ० घुर्मि-घुर्मि घायल महि परहीं । (मा० ६१६८३)
 घुर्मित-चक्कर खाया हुआ, घूमा हुआ । उ० परा भूमि घुर्मित सुरघाती । (मा० ६७४४)
 घुमरहिं-घोर शब्द कर रहे हैं, गरज रहे हैं । उ० निदरि वनहि घुमरहिं निसाना । (मा० १३०१११)

घुँघट-(सं० गुंठ)-स्त्रियों की साड़ी या चादर के किनारे का वह भाग जिसे वे लज्जावश सिर से आगे मुँह ढकने के लिए खींच लेती हैं । उ० का घुँघट मुख मुँदहु नबला नारि ? (ब० १६)
 घुँट-(ध्व०) पानी या किसी अन्य द्रव का उतना अंश जितना एक बार में गले से नीचे उतारा जा सके ।
 घुँटक-एक घुँट । दे० 'घुँट' । उ० देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घुँटक पानि । (दो० २८७)
 घुँघरवारे-घुँघराले, कुंचित । उ० बिकट भृकुटि कच घुँघर-वारे । (मा० १२३३२)
 घुँटी-(दे० घुँट)-वालकों की एक ओषधि जो उनके स्वास्थ्य को ठीक रखती है । उ० लोचन-सिसुन्ह देहु अमिय घुँटी । (गी० २१२१)
 घूमत-(सं० घूर्णन)-१. घूमता है, चक्कर लगाता है, २. लौटता है, वापस आता है, ३. सँवरता है, टहलता है । उ० १. नाम लै राम दिखावत बंधु को, घूमत घायल घाय घने हैं । (क० ६१३६) घूमि-१. घूमकर, चक्कर लगाकर २. लौटकर, ३. टहलकर । उ० १. भूमि परे भट घूमि कराहत । (क० ६३२)
 घूमिं-(सं० घूर्णन)-घूमकर, चक्कर लगाकर ।
 घूमित-दे० 'घुर्मित' ।
 घृत-(सं०)-घी, दे० 'घी' । उ० घृतपूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिंब दिखावै । (वि० ११५)
 घृत-दे० 'घृत' । उ० सतकोटि चरित अपार दयानिधि मथि लियो काढ़ि बामदेव नाम-घृत है । (वि० २५४)
 घेरइ-घेरता है, रोकता है, छँकता है । उ० सावन सरित सिंधुरुख सूप सों घेरइ । (पा० ६६) घेरत-(?)-घेरते हैं, रोकते हैं, चारों ओर से छँकते हैं । घेरहिं-घेर लेते हैं, चारों ओर से छँक लेते हैं । उ० कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं । (मा० ४२४१) घेरा-१. घेरा हुआ, वश में, २. घेर लिया, चारों ओर से छँक लिया, ३. चारों ओर की सीमा, परिधि, वह वस्तु जो किसी के चारों ओर हो । उ० १. काल कर्म सुभाव गुन घेरा । (मा० ७४४३) घेरि-घेरकर, चारों ओर से छँककर । उ० घेरि सकल बहु नाच नचावहिं । (मा० ६१५४) घेरी-घेर लिया, घेरा, छँक लिया । उ० घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी । (मा० ६३६५) घेरे-१. घेर लिए, २. घेरे हुए, चारों ओर से रोके हुए । घेरेन्हि-घेर लिया, छँक लिया । उ० घेरेन्हि नगर निसान बजाई । (मा० ११७५३) घेरेसि-घेरा, चारों ओर से घेर लिया । उ० सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई । (मा० ११७६२) घेरो-१. घेरा, छँका, वश में कर लिया, चारों ओर से रोक लिया, २. घेराव, वह वस्तु जो किसी के चारों ओर हो, परिधि । उ० १. भगति हीन, बेद-बाहिरों लखि कलिमल-घेरो । (वि० २७२) घेरोइ-घेरा हुआ ही । उ० घेरोइ पै देखिबो लंक गढ़ बिकल जातुधानी पछितैहैं । (गी० २५१)
 घैया (१)-(?)-कोख, पेट, उदर । उ० मथि मथि पियो बारि चारिक में भूख न जाति अवाति न घैया । (क० १६)
 घैया (२)-(?)-थन से निकली हुई दूध की धार । उ०

तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया ।
(गी० ११७)
घैया (३)-(१)-ओर, तरफ़, दिशा ।
घैर-(१)-१. निन्दामय चर्चा, बदनामी, २. चुगुली,
गुप्त शिकायत, ३. कहर, हाहाकार । उ० ३. समुक्ति तुल-
सीस कपिकर्म घर घर घैर । (क० ६१४)
घोर (१)-(सं०)-१. भयंकर, डरावना, २. सघन, दुर्गम,
३. कठिन, कड़ा, ४. गहरा, गाढ़ा, ५. बुरा, ६. अधिक,
ज्यादा । उ० १. पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत
जगयोनि नहिं कोपि ज्ञाता । (वि० ११) घोरतर-अधिक
घोर । दे० 'घोर (१)' ।
घोर (२)-(सं० घुर)-गर्जन, ध्वनि, शब्द ।
घोर (३)-(सं० घोटक)-घोड़ा, अश्व ।
घोरत (१)-(सं० घोर)-१. गरजते हैं, शब्द करते हैं, २.
शब्द करते हुए । उ० २. सौहत स्याम जलद मृदु घोरत
धालु रंगमने सृगनि । (गी० २१५०) घोरि (१)-(सं०
घोर)-१. गरज, भीषण शब्द करना, २. ध्वनि करना ।
उ० १. बरघैँ सुसलाधार बार बार घोरि कै । (क० ५१६)
घोरि घोरी (१)-(सं० घोर)-१. गरज गरजकर, घोर
शब्द करके, २. ध्वनि करके । उ० १. कंद-वृंद बरषत
छवि मधुर घोरि घोरी । (गी० ७१७)
घोरत (२)-(सं० घूर्णन)-१. घोलते हैं, मिलाते हैं, २.
घोलते हुए । घोरि (२)-(सं० घूर्णन)-घोलकर, किसी
द्रव पदार्थ में मिलाकर । उ० देउ आपने हाथ जल मीनहिं
माहुर घोरि । (दो० ३१७) घोरि घोरी (२)-(सं०
घूर्णन)-घोल घोल कर, द्रव में मिला-मिला कर । घोरी
(२)-(सं० घूर्णन)-१. घोला, किसी द्रव में मिलाया,
२. घोलकर, मिलाकर । उ० २. देति मनहुँ मधु माहुर
घोरी । (मा० २१२१२) घोरे (२)-(सं० घूर्णन)-घोला,
मिलाया ।

घोरमारी-महामारी; ताउन, हैजा आदि रोग । उ० ईति
अति भीति-अह-प्रेत-चौरानल-ब्याधि बाधा समन घोर-
मारी । (वि० २८)
घोरसारही-(सं० घोटक + शाला)-घोड़सार में ही, घोड़ा
बाँधने के स्थान में ही । उ० हाथी हथिसार जरे, घोरे
घोरसारहीं । (क० ११३३)
घोरा (१)-(सं० घोर)-दे० 'घोर (१)' तथा,
'घोर (२)' ।
घोरा (२)-(सं० घोटक)-घोड़ा । उ० हाथी छोरो, घोरा
छोरो, महिष बृषभ छोरो । (क० ११६) घोरी (१)-
घोड़ी, घोड़ा की स्त्री । घोरे (१)-घोड़े, अश्व । उ० चरफ-
राहि मग चलहि न घोरे । (मा० २१४३।३)
घोरी (३)-(सं० घोर)-१. भयंकर, २. घना, सघन, ३.
कठिन, कड़ा, ४. गहरा, ५. बुरा ।
घोष-(सं०)-१. ग्वाला, गोप, अहीर, २. अहीरों की बस्ती,
३. गोशाला, गौओं के रहने का स्थान, ४. तट, किनारा,
५. शब्द, आवाज़, ६. उच्च स्वर से किसी बात की घोषणा,
ज़ोर-ज़ोर से कहना ।
घोषु-दे० 'घोष' ।
घोस-दे० 'घोष' ।
घोसु-दे० 'घोष' । उ० ६. संभु-सिखवन रसन हूँ नित राम
नामहिं घोसु । (वि० १२६)
घोरि-(?)-फूल या फलों का गुच्छा । उ० तोरन बितान
पताक चामर धुज सुमन फल-घोरि । (गी० ७१८)
घ्न-(सं०)-मारनेवाला, हत्या करनेवाला, नाशक । जैसे
शत्रुघ्न, कृतघ्न ।
घ्राण-(सं०)-१. नाक, नासिका, २. सूँघने की शक्ति, ३.
गंध, सुगंध, ४. सूँघना ।
घ्रान-दे० 'घ्राण' । उ० १. अहइ घ्रान विनु बास असेषा ।
(मा० १११८।४)

च

चंग (१)-(फ़ा०)-१. डफ के आकार का एक छोटा सा
बाजा, मुरचंग, २. सितार का चढ़ा हुआ सुर, ३. जिद,
हठ ।
चंग (२)-(?)-पतंग, गुड्डी, कागज और वाँस की पतली
सीकियों से बनी एक चीज़ जिसे डोरे में बाँधकर उड़ाते
हैं । उ० चढ़ी चंग जनु खैच खेलाऊ । (मा० २१४०।३)
चंगु-(सं० चतुर + अंगुल)-१. चार अंगुलियाँ, चंगुल,
पंजा; २. पकड़, वश, अधिकार । उ० १. चरग चंगुगत
चातकहि नेम प्रेम की पीर । (दो० ३०१)
चंगुल-(सं० चतुर + अंगुल)-१. चार अंगुलियाँ, पंजा,
२. अधिकार, पकड़, वश । उ० १. गहि चंगुल चातक चतुर
डारयो बाहिर बारि । (दो० ३०३)
चंचरीक-दे० 'चंचरीक' । उ० कौशलेन्द्र नवनील कंजाभ

तनु मदनरिपु-कंजहृद-चंचरीकं । (वि० ४६) चंचरीक-
(सं०)-अमर, भौरा । उ० चंचरीक जिमि चंपक बागा ।
(मा० २१२४।४)
चंचल-(सं०)-१. चलायमान, हिलता-डोलता, अस्थिर,
२. अधीर, जो एकाग्र न हो, ३. घबराया, उद्विग्न, ४.
नटखट, तुलतुला, ५. वायु, हवा, ६. पारा, ७. खेलाही,
८. लोल । उ० १. कपि चंचल सबहीं विधि हीना । (मा०
११७।४) ६. चंचल तिय भलु प्रथम हरि जो चाहसि परधाम ।
(स० २८०) ८. रवि चंचल अह ब्रह्म-द्रव बीच सु-बास
बिचारि । (स० २६४)
चंचला-(सं०)-१. लक्ष्मी, २. बिजली, ३. स्त्री, वामा ।
उ० ३. चंचल सहितऽरु चंचला अंत अंत-जुत जान ।
(स० २६४)

चंचु-(सं०)-१. चोंच, चिड़ियों का मुँह, ठोर, २. मृग, हिरन, ३. रेंडू का पेड़ । उ० १. चरग चंचु-गत जातकहि नेम प्रेम की पीर । (स० १०३)
 चंड-(सं०)-१. तेज, प्रखर, घोर, २. बलवान, शक्तिशाली, ३. कठोर, कठिन, विकट, ४. क्रोधी, उद्धत, ५. गर्मी, ६. एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था । उ० १. चंड वेग-सायक नौमि राम-भूष । (वि० ५२) ६. चंड-भुजदंड-खंडनि विहंडनि, महिषमद-भंग करि अंग तोरे । (वि० १५)
 चंडकर-(सं०)-तीक्ष्ण किरणवाला, सूर्य । उ० चंदिनि कर कि चंडकर चोरी । (मा० २।२६५।३)
 चंडाल-(सं०)-१. चंडाल, स्वपच, डोम । मनु के अनु-सार शूद्र पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न हुई संतान जो अत्यन्त नीच मानी जाती है । २. कुकर्म, पतित, दुरात्मा ।
 चंडाला-दे० 'चंडाल' । उ० सपदि होहि पच्छी चंडाला । (मा० ७।११२।म)
 चंडिका-(सं०)-१. दुर्गा, काली, देवी, २. लड़ाकी या क्रोध करनेवाली स्त्री, कर्कशा ।
 चंडी-(सं०)-दे० 'चंडिका' ।
 चंडीपति-महादेव, शिव ।
 चंडीश-(सं०)-शिव, महादेव ।
 चंडीस-दे० 'चंडीश' । उ० चंड बाहुदंड बल चंडीस-कोदंड खंड्यौ । (क० १।२१)
 चंडोल-(?)-एक प्रकार की पालकी जो हाथी के हौदे की तरह खुली और डंडे के ऊपर छाई रहती है । चौपहला ।
 चंद (१)-(सं०)-चंद्रमा, चाँद, शशि । उ० आननु सरद चंद छवि हारी । (मा० १।१०६।४) चंदनिसि-(सं०) चन + निसि-चाँदनी रात । उ० चकहहि सरद चंदनिसि जैसै । (मा० २।६४।१) चंदबदन-चंद्रमा के समान सुन्दर मुख । चंदबदनि-चंद्रमा की तरह सुन्दर मुखवाली स्त्री, चंद्रमुखी । उ० चंदबदनि दुखु कानन भारी । (मा० २।६३।४) चंदबदनियाँ-चंद्रमा की तरह सुन्दर मुखवाली स्त्रियाँ । उ० सुनि कुलबधू भरोखनि भाँकति रामचंद्र-छवि चंदबदनियाँ । (गी० १।३१)
 चंद (२)-(क्रा०)-थोड़े से, कुछ ।
 चंदन-(सं०)-एक पेड़ जिसके हीर की लकड़ी बड़ी सुगंधित होती है । इस पेड़ की लकड़ी या उसके हीर या पानी मिलाकर घिसे लेप को भी चंदन कहते हैं । पूजा आदि में उसका उपयोग होता है । लोग इसके लेप का शीश, बाहु, कंठ तथा उर आदि में तिलक भी लगाते हैं । उ० मृगमद चंदन कुंकुम कीचा । (मा० १।१६४।४)
 चंदिनि-दे० 'चंदिनी' । उ० जय जय भगीरथ नंदिनि, सुनिचय-चकोर चंदिनि । (वि० १७)
 चंदिनी-चाँदनी रात, उजेली रात । उ० अक्षय अकलंक सरद-चंद-चंदिनी । (गी० २।४३)
 चंदु-दे० 'चंद (१)' । उ० रामचंद्र मुख चंदु निहारी । (मा० २।१।३)
 चंदु-दे० 'चंद (१)' । उ० देखि भानुकुल कैरव चंदु । (मा० २।१२२।१)
 चंदोवा-(सं०) चंद्रा-एक प्रकार का छोटा मंडप जो

राजाओं या वर के आसन के ऊपर तना रहता है । चंदोवा, चितान । उ० रतनदीप सुठि चारु चंदोवा । (मा० १।३५६।२)
 चंद्र-(सं०)-१. चंद्रमा, शशि, २. सोना, स्वर्ण, ३. मोर की पूँछ की चंद्रिका, ४. कपूर, ५. सुंदर, ६. एक द्वीप, उ० १. रामचंद्र चंद्र तू ! चकोर मोहि कीजै । (वि० ८०)
 चंद्रअवतंस-चंद्रमा जिसके भूषण हों, महादेव, शिव ।
 चंद्रअवतंसा-दे० 'चंद्रअवतंस' । उ० भए प्रसन्न चंद्र अव-तंसा । (मा० १।८८।३)
 चंद्रभूषण-(सं०)-महादेव, शिव ।
 चंद्रभूषण-दे० 'चंद्रभूषण' । उ० सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्रभूषण भालहीं । (पा० ६)
 चंद्रमहि-चंद्रमा को, चाँद को । उ० बक्र चंद्रमहि असइ न राहु । (मा० १।२८।१।३) चंद्रमा-(सं०) चंद्रमस्य-१. चन्द्र, शशि, २. एक मुनि । उ० २. मुनि एक नाम चंद्रमा ओही । (मा० १।२८।३) कथा-पुराणानुसार चंद्रमा ससुद्र-मंथन के समय निकले चौदह रत्नों में से एक हैं । मंथन के बाद एक असुर देवों की पंक्ति में बैठकर अमृत पी रहा था । चंद्रमा और सूर्य ने इसका पता विष्णु को दिया तो विष्णु ने उसके दो खंड कर दिए, पर वह अमृत पी चुका था अतः दोनों खंड जीवित रहे और राहु-केतु कह-लाए । उसी पुराने बैर से राहु चंद्रमा को असता है जिसे ग्रहण कहा जाता है । चंद्रमा के बीच के धब्बे के संबंध में कई तरह की बातें प्रचलित हैं । १. चंद्रमा ने अपनी गुस्पत्नी के साथ भोग किया था, अतः शापवश काला दाग पड़ गया । २. अहल्या का सतीत्व भंग करने में चंद्रमा ने मुर्गा बनकर इंद्र की सहायता की थी, अतः गंगा से लौटने पर क्रोधित होकर गौतम ने त्रिशूल या कमंडल और मृगचर्म से उन्हें मारा और दाग पड़ गया । कवि लोग कुमुदिनी को चंद्रमा की प्रेमिका मानते हैं । इसी प्रकार चकोर का भी चंद्रमा से प्रेम प्रसिद्ध है ।
 चंद्रमललाम-शिव, महादेव । उ० चपरि चदायो चाप चंद्रमाललाम को । (क० १।६)
 चंद्रमौलि-शिव, महादेव, मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाला । उ० उरघरि चंद्रमौलि वृषकेतु । (मा० १।६४।४)
 चंद्रहास-(सं०)-१. तलवार, खंग, २. रावण की तलवार का नाम, ३. चमेली, ४. कुमुदिनी । उ० २. चंद्रहास हरु मम परितारपं । (मा० ५।१०।३)
 चंद्रिका-(सं०)-चाँदनी, चंद्रमा का प्रकाश, ज्योत्स्ना । उ० कहे चंद्रिका चंदु तजि जाई । (मा० २।६७।३)
 चंपक-(सं०)-मझोले क्रद का एक पेड़ या उसका फूल । फूल हलके पीले रंग के होते हैं, जिनमें बड़ी तेज गंध होती है । ऐसा प्रसिद्ध है कि चंपक के पुष्प पर अमर नहीं बैठते । उ० जनु तनु हुति चंपक-कुसुममाल । (वि० १४)
 चँवर-दे० 'चँवर' ।
 च-(सं०)-१. कच्छप, कलुआ, २. चंद्रमा, ३. चोर, ४. दुर्जन, ५. और, तथा । उ० ५ मंगलानां चकर्तारौ चंदे व वाष्पी-विनायकौ । (मा० १।१। श्लो० १)
 चउहट्ट-(सं०) चतुर + हट्ट-चौराहा, चौहट्ट । उ० चउहट्ट

हृद सुबह बीथीं चार पुर बहुविधि बना । (मा० ५३। कृ० १)

चए-(सं० चयन)-समूह, राशि, ढेर । उ० नाचहि नभ अपसरा मुदित मन पुनि-पुनि बरपहि सुमन चए । (गी० १।३)

चक (१)-(सं० चक्र)-१. चकई नाम का खिलौना, २. चक्रवाक पत्नी, चकवा, ३. चक्र नाम का अस्त्र, चक्का, पहिया, ४. भूमि का एक भाग, ६. छोटा गाँव, ७. अधिकार, दुखल, ८. भरपूर, अधिक, ज्यादा । उ० १. खेलत अवध खोरि, गोली भौरा चकडोरि । (गी० १।४१) २. संपति चकई भरतु चक, मुनि आयस खेलवार । (मा० २।२१५)

चक (२)-(सं०)-चकपकाया हुआ, भौचक्का, आंत । चकहहि-चकई को । उ० चकहहि सरद चंद निसि जैसे । (मा० २।६४१) चकई (१)-(दे० 'चकवा') चकवा की स्त्री । उ० सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि । (मा० २।७८)

चकई (२)-(सं० चक्र)-घिरनी या गडारी के आकार का एक खिलौना जिसके घेरे में डोरी लपेटकर लड़के नचाते हैं ।

चकचौधी-(सं० चक (= चमकना) + चतुः, प्रा० चउ + अंध)-चकाचौध, अधिक चमक के कारण पूरी आँख से न देख सकना, प्रकाशाधिक्य के कारण नजर का न ठहरना । उ० चाहे चकचौधी लागै, कहौं का तोही ? (गी० २।२०)

चकडोरि-(सं० चक्र + डोर)-चकई नामक खिलौने में लपेटा हुआ सूत । चकई और उसे नचाने का सूत या डोरा । उ० खेलत अवध खोरि, गोली भौरा चकडोरि । (गी० १।४१)

चकवा-(सं० चक्रवाक) नदियों या जलाशयों के किनारे रहने-वाले एक प्रकार के पत्नी । इस पत्नी के जोड़ों में बड़ा प्रेम रहता है, पर ऐसा प्रसिद्ध है कि रात्रि के समय ये अलग-अलग हो जाते हैं । इसी कारण चाँदनी रात इन्हें बहुत सताती है । चकवा-चकई को लेकर कवियों ने बहुत कुछ कहा है ।

चकार-(सं०)-किया, बनाया । उ० भाषा बद्धमिदं चकार तुलसी दासस्तथा मानसम् । (मा० ७।१३१। रत्न० १)

चकि-चकित होकर, विस्मित होकर । उ० तुलसी प्रभुमुख निरखि रही चकि, रझो न सयानप तन मन ती के । (कृ० १०)

चकित-(सं०)-१. चकपकाया हुआ, विस्मित, भौचक्का, हैरान, घबराया हुआ, २. चौकड़ा, सावधान, संशंकित, ३. डरपोक, कायर, ४. आशंका, व्यर्थ भय, ५. कायरता । उ० १. चकित बिप्र सब सुनि नभवानी । (मा० १।१७४३)

चकई-१. चकित होते हैं, २. चकित होकर । उ० १. अव-लोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौकि चकई चितवै चित है । (क० २।२७)

चकोट-(?)-चुटकी काटना, चिकोटी काटना, छिउकी काटना । उ० चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं । (क० ६।४०)

चकोर-(सं०)-एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर । इसके ऊपर का रंग कुछ कालिमा लिए होता है, जिस पर सफेद सफेद चित्तियाँ होती हैं । भारत में यह प्राचीन काल से प्रसिद्ध है । इसे चन्द्रमा का प्रेमी कहा जाता है । रात को यह चन्द्रमा की ओर उड़ता है । इसका चंद्रमा के प्रति प्रेम इतना विचित्र है कि लोक-प्रसिद्धि के अनुसार यह आग की चिनगारी को चंद्रमा की किरण समझकर खा जाता है । यह चंद्रमा के प्रति अपने प्रेम के लिए प्रसिद्ध है । उ० पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर । (मा० २।८३) चकोरी-चकोर की स्त्री । दे० 'चकोर' । उ० चंदकिरन रस रसिक चकोरी । (मा० २।६१४)

चकोरक-दे० 'चकोर' । उ० कैसरी-चार-लोचन-चकोरक-सुखद, लोकपन-सोक संतापहारी । (वि० २५)

चकोरा-दे० 'चकोर' । उ० रामचंद्र मुख चंद चकोरा । (मा० २।११६३)

चकोरु-दे० 'चकोर' । उ० मनु तव आनन चंद चकोरु । (मा० २।२६।२)

चक (१)-(सं० चक्र)-१. चक, पहिया, २. चाक का बर्तन बनाने के लिए कुम्हारों का चपटा गोला पत्थर का टुकड़ा, ३. चकर, ४. सुदर्शन चक्र, विष्णु का एक हथियार ।

चक्र (२)-(सं० चक्रवाक)-चकवा पत्नी । उ० चक्र चकि जिमि पुर नर नारी । (मा० २।१८६।१)

चक्रवह-दे० 'चक्रवै' । उ० ससुर चक्रवह कोसल राज । (मा० २।६८।२)

चक्रवनि-चक्रवों को, चक्रवाक पत्नियों को । उ० ज्यों चकोर-चय चक्रवनि तुलसी चाँदनि राति । (दो० १।६४)

चक्रवै-(चक्रवर्तिन)-चक्रवर्ती राजा, आसमुद्रांत पृथ्वी का राजा । उ० चक्रवै-लोचन राम रूप-सुराज-सुख भोगी भए । (जा० १।२३)

चकि-चकई, चकवा की स्त्री । उ० दे० 'चक्र' ।

चक्र-(सं०)-१. सुदर्शन चक्र, विष्णु का अस्त्र विशेष, २. पहिए के आकार का एक लौह अस्त्र, ३. पहिया, चक्रा, ४. कुम्हार का चाक, ५. चकवा पत्नी, ६. सेना, दल, मुंड, ७. एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक फैला हुआ प्रदेश, ८. घोड़ा, भुलावा, ९. आवत, घुमाव, १०. गाँवों का समूह, ११. वृत्त, घेरा, १२. दिशा, प्रांत, १३. कछुआ, १४. कोल्हू, १५. राजचक्र, राजपुरुषों के साथ राजा । उ० १. कालदंड, हरिचक्र कराला । (मा० ७। १०।६।७) १५. कलि-कुचालि सुभ मति हरनि, सरलै दंडै चक्र । (दो० ५।३७)

चक्रधर-(सं०)-१. जो चक्र धारण करे, २. विष्णु, ३. राजा, ४. सर्प, साँप, ५. कृष्ण, ६. बाज़ीगर, इन्द्रजाल करनेवाला । उ० २. देहि अवलंब न बिलंब अंभोजकर-चक्र-धर तेज-बलशर्म-राशी । (वि० ६०)

चक्रपाणि-(सं०)-जिसके हाथ में चक्र हो । विष्णु । चक्रपाणि-दे० 'चक्रपाणि' । उ० बारी वरानसी बिनु कहे चक्र चक्रपाणि । (क० ७।१७२)

चक्रपानी-दे० 'चक्रपाणि' । उ० दक्ष, समहक स्वहक विगत-अति-स्वपरमति तव बिरति चक्रपानी । (वि० ५७)

चक्रवर्ति-दे० 'चक्रवर्ती' । उ० चक्रवर्ति के लच्छन तोरें । (मा० ११२६१२)
 चक्रवाक-दे० 'चक्रवाक' । उ० चक्रवाक बक खग समुदाई । (मा० ३१४०१२)
 चक्रवर्ति-दे० 'चक्रवर्ती' ।
 चक्रवर्ती-(सं० चक्रवर्त्तिन्)-बहुत बड़ा राजा, आसमुद्रांत पृथ्वी पर राज्य करनेवाला । उ० जयति रुद्राग्रणी, विरय विद्याग्रणी, विरवविख्यात भट चक्रवर्ती । (वि० २७)
 चक्रवाक-(सं०)-चक्रवा पक्षी । उ० देखिअत चक्रवाक खग नाही । (मा० ४११२५५)
 चक्राकुल-(सं०)-१. भँवर से भरा हुआ, २. जहाँ बहुत कछुये हों । चक्राकुला-(सं०)-१. भँवरवाली, २. कछुओं से भरी हुई । उ० १. मकर पङ्कग, गो नक्र चक्राकुला, कूल सुभ-असुभ दुखतीव धारा । (वि० ५६)
 चक्रित-चकित, अचभित ।
 चक्रु-(सं०)-आँख, नेत्र ।
 चख-(सं० चक्रु)-आँख; नेत्र । उ० लेहि दससीस अब बीस चख चारिरे । (क० ५११६) चखकोर-कटाक्ष, कृपादृष्टि । उ० कीजै राम बार यहि मेरी ओर चखकोर । (क० ७१२३) चख चारिको-दे० 'चख चारिखो' । चख चारिखो-दो भीतर और दो बाहर चार आँखवाला । बुद्धि-मान् । चखपूतरि-दे० 'चपपूतरि' ।
 चट (१)-(सं० चटुल)-तुरत, जल्दी से, भट, शीघ्र ।
 चट (२)-(सं० चित्र)-१. दाग, धब्बा, २. ऐब, दोष ।
 चटक-(सं०)-गौरैया, गौरा पक्षी । उ० ते नृप-अजिर जानुकर धावत धरन चटक चल काग । (गी० ११२६)
 चटकन-(ध्व०)१. तमाचा, थपड़, २. चट-चट की ध्वनि, चटकना । उ० १. विकट चटकन चपट, चरन गहि पटक महि । (क० ६१४६)
 चटाक-(ध्व०)-तोड़ने का शब्द, लकड़ी आदि टूटने का शब्द । चटाकू दै-चट से, तोड़ने का शब्द करके । उ० महाभुज-दंड द्वै अंड कटाह चपेट की चोटचटाकदै फोरौ । (क० ६११४)
 चढ़-१. चढ़कर, ऊपर जाकर, उन्नति कर, २. असर कर, ३. देवता की भेंट चढ़कर, ४. आक्रमण कर । उ० १. मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई । (मा० ५१२६११) चढ़इ-(सं० उच्चलन)-१. चढ़ता है, ऊपर जाता है, बढ़ता है, उन्नति करता है, २. असर करता है, ३. देवता आदि की भेंट चढ़ता है, ४. आक्रमण करता है । उ० १. कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहें । (मा० २१२०५१३) चढ़त-१. चढ़ता है, उन्नति करता है, ऊपर जाता है, २. असर करता है, प्रभावित करता है, ३. देवता की भेंट चढ़ता है, ४. आक्रमण करता है । उ० २. चढ़त न चातक-चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख । (दो० २८१) चढ़ा-१. चढ़ गया, ऊपर चला गया, २. उन्नति की । दे० 'चढ़त' । उ० १. मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई । (मा० ५११६१४) चढ़ि-१. चढ़कर, २. चढ़ गए । उ० १. चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई । (मा० २१२३११) चढ़िहहि-चढ़ेंगे, चढ़ेंगी । उ० त्रिय चढ़िहहि पतिव्रत असिधारा । (मा० ११६७३) चढ़ी-१. चढ़ गई, २. चढ़ी हुई । उ० १. बहुतक चढ़ी अटारिन्ह

निरखहि गगन विमान । (मा ७३ ख) चढ़ी-१. चढ़ गई, २. चढ़कर, चढ़ी हुई । उ० २. चढ़ी अटारिन्ह देखहि नगर नारि नर वृंद । (मा० ७५ ख) चढ़ु-चढ़ो, चढ़ जाओ । उ० चढ़ु मम सायक सैल समेता । (मा० ६१ ६०३) चढ़े-ऊपर गए, बढ़े । उ० चढ़े दुर्ग पुनि जहँ-तहँ बानर । (मा० ६१४२११) मु० चढ़े न हाथ-हाथ नहीं आता, हाथ नहीं लगता । उ० हरो धरो गाड़ो दियो धन फिर चढ़ै न हाथ । (दो० ४५७) चढ़ेउ-चढ़े, चढ़ गए । उ० रन बाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल । (मा० ६१४३) चढ़यो-१. चढ़ा, २. चढ़ा हुआ । उ० २. सीस बसै बरदा, बरदानि; चढ़यो बरदा, धरन्यौ बरदा है । (क० ७११५५)
 चढ़ाइ-१. चढ़ाकर, २. उन्नति कराकर । दे० 'चढ़त' । उ० १. रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि । (मा० २१ ८१) चढ़ाइन्हि-चढ़ाथी । उ० भार्थी बाँधि चढ़ाइन्हि घनहीं । (मा० २११११२) चढ़ाइहि-१. चढ़ाया, २. चढ़ावेगा । उ० २. जो गंगाचलु आनि चढ़ाइहि । (मा० ६१३११) चढ़ाइही-चढ़ाऊँगा । उ० बरु भारिए मोहि, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू । (क० २१६) चढ़ाई-चढ़ाया । उ० कुअरि चढ़ाई पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस । (मा० ११३३८) चढ़ाई-१. चढ़ने की क्रिया या भाव, २. ऊँचाई की ओर ले जानेवाली धरती, २. आक्रमण, धावा, ४. किसी देवता को अर्पण की हुई वस्तु, ५. चढ़ाकर, ६. चढ़ाया । उ० ५. कटि भाधी सर चाप चढ़ाई । (मा० २१६०१२) चढ़ाउब-१. चढ़ाऊँगा, २. चढ़ाना । उ० २. रहउ चढ़ाउब तोरब भाई । (मा० ११२५२११) चढ़ाए-चढ़ाया । उ० करि बिनती रथ रामु चढ़ाए । (मा० २१८३११) चढ़ावत-चढ़ाते, चढ़ाते हुए । उ० लेत चढ़ावत खैचत गाढ़े । (मा० ११२६११४) चढ़ावा-चढ़ाया । उ० काहुँ न संकर चाप चढ़ावा । (मा० ११२५२११) चढ़ावौ-चढ़ाऊँ । उ० कमल-नाल जिमि चाप चढ़ावौ । (मा० ११२५३१४)
 चतुरंग-(सं०)-१. घोड़, हाथी, रथ और पैदल चार अंगों में बटी हुई सेना । चतुरंगिनी, २. सेना के घोड़ा, हाथी, रथ और पैदल चार अंग । उ० २. सेन संग चतुरंग न थोरी । (मा० २१२७११)
 चतुरंगिणी-(सं०)-हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चार अंगों-वाली सेना ।
 चतुरंगिनि-दे० 'चतुरंगिणी' ।
 चतुरंगिनी-दे० 'चतुरंगिणी' । उ० चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें । (मा० ३१३८५)
 चतुर-(सं०)१. टेढ़ी चाल चलनेवाला, २. फुरतीला, तेज़, ३. प्रवीण, होशियार, निपुण, ४. धूर्त, चालाक । उ० ३. चतुर गँभीर राम महतारी । (मा० २११८११)
 चतुरता-चतुराई, चतुर होने का भाव, होशियारी । उ० मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव । (मा० १११६३)
 चतुराई-चतुरता, होशियारी, चतुर होने का भाव । उ० लखाहि न भूप कपट चतुराई । (मा० २१२७३)

चतुरानन-(सं०)-चार मुखवाला, ब्रह्मा । उ० अगनित रवि ससि सिव चतुरानन । (मा० ११२०२।१)
 चतुर्दश-(सं०)-चौदह ।
 चतुर्दश-दे० 'चतुर्दश' । उ० सुमत् चतुर्दश-सहस-दलन त्रिसिरा खर दूपन । (क० ७।१३३)
 चतुर्भुज-(सं०)-चार भुजावाला, विष्णु ।
 चनक-(सं० चणक)-चना, रहिला, एक अन्न । उ० जानत हो चारि फल चारि ही चनक को । (क० ७।७३)
 चना-(सं० चणक)-एक अन्न, रहिला, बूट । चना चनाय हाथ चाटियत-अत्यधिक कंजूसी करते । उ० गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचि हू को, आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है । (क० ७।१६६)
 चनार-(सं० कांचनार)-एक पेड़, कचनार । उ० बर बिहार चरन चारु पाँदर चपक चनार करनहार बार पार पुर पुरंगिनी । (गी० २।४३)
 चप-अष्टाध्यायी का चप प्रत्याहार जिसमें क्रमशः च, ट, त, क अक्षरों आती हैं । उ० तुलसी बरन विकल्प तें और चप-तृतीय समेत । (सं० २७६)
 चपट-(सं०)-१. चपत, थप्पड़, २. धक्का-धक्का । उ० २. बिकट चटकन चपट, चरन गहि पटक महि । (क० ६।४६)
 चपट (१)-(सं० चपट)-१. थप्पड़, तमाचा, २. धक्का, ३. हानि, नुकसान ।
 चपट (२)-(सं० चपन)-१. दबता है, दबता हुआ, २. झंपता है, शरमाता है, शरमाता हुआ । उ० २. निज करना करतूति भगत पर चपट चलत चरचाउ । (वि० १००)
 चपरि-(सं० चंचल)-१. शीघ्र, तुरत, तेज़ी से, सहसा, २. साहस के साथ । उ० १. चपरि चलेउ हय सुदुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु । (मा० १।१५६)
 चपल-(सं०)-१. चंचल, अस्थिर, बहुत हिलने डोलने-वाला, २. क्षणिक, बहुत काल तक न रहनेवाला, ३. उतावला, जल्दबाज़, ४. छुट्ट, चालाक, ५. पारा, ६. पपीहा । उ० १. जद्यपि परम चपल श्री संतत, थिर न रहति कतहुँ । (वि० ५६)
 चपलता-(सं०)-१. चंचलता, उतावली, २. छुट्टा, ढिठाई । उ० २. चूक चपलता मेरिये, तू बड़ो बड़ाई । (वि० ३५)
 चपला-(सं०)-१. लक्ष्मी, २. बिजली । उ० २. चपला चमकै धन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलन की । (क० १।५)
 चपेट-(सं० चपन)-१. चपत, तमाचा, थप्पड़ २. झोंका, रगड़ा, धक्का, आघात, विस्सा, ३. दबाव, संकट, ४. डाँट, फटकार । उ० १. महाभुज-दंड है अंडकटाह चपेट की चोट चटाक है फोरौं । (क० ६।१४) चपेटन्हि-चपत, धक्के । उ० बानर भालु चपेटन्हि लागे । (मा० ६।३३।४) चपेटे-चपेट का बहुवचन । दे० 'चपेट' । उ० १. चपरि चपेटे देत नित केस गहे कर मीसु । (दो० २४८) चपेटा-दे० 'चपेट' । उ० १. प्राण लेहि एक एक चपेटा । (मा० ४।२४।१) चबेना-(सं० चर्वण)-चबाकर खाने के लिए सूखा या भुना हुआ अन्न । भूँजा, दाना । उ० जानेहु लेइहि मागि चबेना । (मा० २।३०।३)

चर्मकहि-(अनु० चमचम, चमकन)-चमकती हैं, चमक रही है । उ० बहु कृपान तरवार चर्मकहि । (मा० ६।८७।२) चर्मकहि-चमकते हैं ।
 चमगादर-दे० 'चमगादुर' ।
 चमगादुर-(सं० चर्मचटका)-एक उड़नेवाला जन्तु, चमगादड़ । उ० ते चमगादुर होइ अवतरहीं । (मा० ७।१२।१४)
 चमगीदड़-दे० 'चमगादुर' ।
 चमर-दे० 'चर्वर' । उ० १. ध्वज पताक पट चमर सुहाए । (मा० १।२८।११)
 चमुत-दे० 'मुचत' । उ० अति चमुत समकन मुखनि विशुदे चिकुर बिलुलित हार । (गी० ७।१८)
 चमुष-(सं० चमूष)-एक प्रकार का मृग ।
 चमू-(सं०)-१. सेना, फौज, २. नियत संख्या की फौज जिसमें ७२६ हाथी, ७२६ रथ, २१८७ सवार, तथा ३६४५ पैदल होते हैं । उ० १. भीषम-द्रोन-करनादि-पालित, कालदक, सुयोधन-चमू-निधन हेतु । (वि० २८)
 चय-(सं०)-१. समूह, ढेर, राशि, २. टीला, इह, ३. गढ़, किला, ४. चहार-दीवारी, कोट, ५. चबूतरा, ६. यज्ञ के लिए अग्नि आदि का एक विशेष संस्कार । उ० १. जय जय भगीरथ नंदिनि, मुनि चय चकोरिचंदिनि । (वि० १७)
 चयन (१)-(सं०)-१. इकट्ठा करने का कार्य, संग्रह, २. चुनने का कार्य, चुनाई, ३. यज्ञ के लिए अग्नि का संस्कार ।
 चयन (२) (सं० शयन (१))-१. चैन, सुख, आराम, २. आनंद के लिए, आनंद मनाने के लिए । उ० २. मानहुँ चयन मयन-पुर आयउ प्रिय ऋतुराज । (गी० २।४७) चये-दे० 'चय' ।
 चर-(सं०)-१. राजा की ओर से नियुक्त आदमी जो गुप्त रूप से बातों का पता लगावे, २. दूत, किसी विशेष कार्य के लिए भेजा गया आदमी, ३. वह जो चले, चलनेवाला, जंगम, ४. कौड़ी, ५. खानेवाला, आहार करनेवाला । उ० ३. रामु चराचर नायक अहहीं । (मा० २।७७।३) चरनि (१)-(सं० चर)-चरों, दूतों । उ० चरचा चरनि सों चरची जानमनि रघुराइ । (गी० ७।२७)
 चरइ-(सं० चर्, फा० चरीदन)-चरता है, चर रहा है । उ० चरइ हरित नृन बलि पसु जैसें । (मा० २।२२।१) चरत-(सं० चर्)-चरता है, खाता है । उ० बभ्रत बिनहि पास सेमर-सुसन-आस, करत चरत तेइ फल बिनु हीर । (वि० १६७) चरति-चरती है, खाती है । उ० चारिहु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी । (वि० २२) चरहि-१. चरते हैं, खाते हैं, २. चलते हैं, विचरते हैं, ३. खावें, चरें, ४. विचरे, घूमें । उ० २. जेहि बस जन अनुचित करहि चरहि बिस्व प्रतिकूल । (मा० १।२७७)
 चरग-(फा०)-एक प्रकार का बाज पक्षी । उ० चरग चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर । (दो० ३०१)
 चरचा-दे० 'चर्चा' । उ० २. दे० 'चरनि' । चरचाउ-चर्चा भी । उ० निज करना करतूति भगत पर चपट चलत चरचाउ । (वि० १००) चरचौ-चरचा भी, जिक्र भी । उ० मिलि मुनिवृंद फिरत दंडकवन, सो चरचौ न चलाइ । (वि० १६५)

चरची-१. बातें की, चर्चा की, २. पोता, लगाया, ३. भाँपा, अनुमान किया । उ० दे० 'चरनि' ।
 चरण-(सं०)-१. पैर, पैर, पाँव, २. बड़ों की समीपता, ३. किसी छंद का एक पद, ४. मूल, जड़, ५. किसी चीज का चौथाई भाग, ६. गोत्र, ७. क्रम, ८. आचार, ९. धूमने की जगह, १०. किरण, ११. गमन, जाना, १२. भक्षण, चरने का काम । उ० १. सिद्ध-सनकादि-योगीन्द्र-वृंदारका-विष्णु-विधि-वंश चरणारविंद । (वि० १२) । ६. मरजादा चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुर बासी । (वि० २२)
 चरणपीठ-(सं०)-१. चरणपादुका, खड़ाऊँ, २. पैर का ऊपरी भाग ।
 चरणोदक-(सं०)-चरणामृत, पैर धोया पानी ।
 चरन-दे० 'चरण' । उ० १. तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहूँ देह न गेह । (मा० ३।४५) चरनन्दि-चरणों, चरणों पर । उ० बार बार सिसुचरनन्दि परहीं । (मा० १।१३३३)
 चरनपीठ दे० 'चरणपीठ' । उ० १. चरनपीठ करुना-निधान के । (मा० २।३१६।३)
 चरना-दे० 'चरण' । उ० १. बंदुँ संत असज्जन चरना । (मा० १।५।२)
 चरनि (२)-(सं० चल)-चलना, चलने का भाव । उ० लसत कर प्रतिबिंब मनि-आंगन घुटुरुचनि चरनि । (गी० १।२४)
 चरनोदक-दे० 'चरणोदक' ।
 चरफराहिं-(?)-तड़फड़ाते हैं । उ० चरफराहिं मग चलहिं न घोरे । (मा० २।१४३।३)
 चरम (१)-(सं०) १. अंतिम, आखिरी, चोटी का, २. अंत, ३. पश्चिम । उ० १. चरम देह द्विज कै मैं पाई । (मा० ७।११०।२)
 चरम (२)-(सं० चर्म)-१. चाम, त्वचा, खाल, २. ढाल, तलवार के धाव से बचने की वस्तु विशेष, ३. भ्रूगर्भ, भ्रूगच्छाला । उ० ३. चामर चरम बसन बहुभाँती । (मा० २।६।२)
 चरवाहै-चरवाहे को । उ० ऐसे को ऐसे भयो कबहुँ न भजे जिन बानर के चरवाहै । (क० ७।५६)
 चरवाहां-(सं० चर, फा० चरीदन)-चरवाहा, चरानेवाला । उ० कहुँ कोऊ भो न चरवाहो कपि भालु को । (क० ७।१७)
 चरहि-१. भ्रमण करे, विचरे, घूमे, २. खाय, भोजन करे । उ० १. दुइज द्वैत-मति छाँड़ि चरहि महि-मंडल धीर । (वि० २०३) चरहीं-१. विचरते हैं, घूमते हैं, २. चरते हैं, खाते हैं । उ० १. बिरहित बैर मुदित मन चरहीं । (मा० २।१२४।४)
 चरि-१. चलकर, भ्रमण कर, २. खाकर, चरकर । उ० २. धरनि-धेनु चरि धरम-तिनु प्रजा-सु-बत्स पिन्हाइ । (सं० ६६२) चरिए-१. चरने की क्रिया कीजिए, २. चलिए, भ्रमण कीजिए, ३. विचरता हूँ, भ्रमण करता हूँ । उ० ३. दुख सो सुख मानि सुखी चरिए । (मा० ६।१११।१०)
 चरै-१. भ्रमण करै, विचरण करै, २. खाय, भक्षण करे ।

चराचर-(सं०)-१. चर और अचर, जड़ और चेतन, स्थावर और जंगम, २. जगत, संसार । उ० १. जीव चरा-चर जाचत तेही । (मा० ७।१२१।५) चराचरराया-चर और अचर का स्वामी, ईश्वर, भगवान् । उ० बोले बिहसि चराचरराया । (मा० १।१२८।३)
 चरित-(सं०)-१. रहन-सहन, आचरण, २. काम, करनी, कृत्य, ३. किसी के जीवन की विशेष घटनाओं या कार्यों आदि का वर्णन, जीवनी, जीवन-चरित, ४. कथा, वृत्तांत । उ० ४. चरित-सुर सरित कवि-मुख्य-गिरि निःसरित पिवत मज्जत मुदित सत समाजा । (वि० ४४)
 चरिता-दे० 'चरित' । उ० ४. जुगल पुनीत मनोहर चरिता । (मा० १।१५।१)
 चरित्र-(सं०)-१. स्वभाव, व्यवहार, २. वह जो किया जाय, कार्य, ३. करनी, करतूत, ४. कथा, वृत्तांत, ५. भेद । उ० ५. सो चरित्र लखि काहुँ न पावा । (मा० १।१३३।४)
 चरु (१)-(सं०)-१. यज्ञ या हवनादि के लिए पकाया अन्न, हविष्यान्न, २. वह पात्र जिसमें उक्त अन्न पकाया जाता है, ३. पशुओं के चरने की ज़मीन, ४. यज्ञ, ५. यज्ञ का भाग ।
 चरु (२)-दे० 'चर' ।
 चरुआ-दे० 'चरु (१)' ।
 चरु-दे० 'चरु (१)' । उ० १. प्रगटे अग्नि चरु कर लीन्हें । (मा० १।१८६।३)
 चरेरीए-(अनु० चरचर)-१. कड़ा ही, कठोर ही, २. कर्ण-कट्ट ही, कर्कश ही । उ० २. यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरीए रही है । (क० ४२)
 चर्चा-(सं०)-१. जिक्र, वर्णन, बयान, २. बात, वार्तालाप, ३. अफवाह, शोर, ४. लेपना, पोतना ।
 चर्चित-(सं०)-१. पोता हुआ, लगाया हुआ, लेपित, २. जिसकी चर्चा की गई हो । उ० १. स्याम सरीर सुचंदन-चर्चित, पीत दुकूल अधिक छवि छाजति । (गी० ७।१७)
 चर्म-(सं०)-१. चमड़ा, चाम, खाल, २. ढाल । उ० २. चर्म-असिशूलधर, डमरु शर चाप कर, यान वृषभेश, कहुणा निधान । (वि० ११)
 चल (१)-(सं०)-१. चंचल, अस्थिर, २. कंपन, कँपकपी, ३. कपट, छल, ४. दोष, बुराई, ५. विष्णु, ६. शिव, ७. पारा ।
 चल (२)-(सं० चलन)-१. चलने का भाव, चलना, चल सकना, २. चलो । उ० १. चल न ब्रह्मकुल सन बरि-आई । (मा० १।१६५।३)
 चलह-(सं० चल)-चलता है, जाता है । उ० चलह जोक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समन । (मा० २।४२) चलहै-चलता है, जाता है । चलउँ-१. चलूँ, २. चलता, जाता । उ० २. चलउँ भागि तब पूष देखावहि । (मा० ७।७७।५)
 चलत-१. चलते हुए, जाते हुए, डोलते हुए, २. बश भर, ३. चलता है, जाता है, ४. मरते हुए, महाप्रयाण करते हुए, ५. मरता है । उ० ४. चलत न देखन पायउँ तोही । (मा० २।१६०।३) चलति-चलती हैं, चल रही हैं । उ० धरति चरन मग चलति समीता । (मा० २।१२३।३)

चलतो-चलता, चला होता। उ० जो हौं प्रभु-आयसु लै चलतो। (गी० १।१३) चलत्-हिलते हुए, डोलते हुए, चलते हुए। उ० चलकुंडलं अ सुनेत्रं विशालं। (मा० ७।१०८।४) चलव-१. चलूंगा, चलेंगे, २. चलना होगा। उ० १. जौ न चलव हम कहें तुम्हारे। (मा० १।१६६।४) चलाहि-१. चलते हैं, जाते हैं, २. चलें। उ० २. हम संग चलाहि जो आयसु होई। (मा० २।११२।४) चलाही-१. चलें, २. चलते हैं, जाते हैं। उ० २. तजि श्रुति यंशु बाम पय चलाही। (मा० २।१६८।४) चलाहु-चलो, चलिए। उ० चलहु सकल भ्रम सब कर करहु। (मा० २।१३२।४) चला-चल पड़ा, निकला, आगे बढ़ा। उ० चला बिलोचन बारि प्रवाह। (मा० २।४४।२) चलि (१)-(सं० चल)-१. चलकर, गमनकर, २. चलो, चलिए। उ० १. चरन राम तीरथ चलि जाहीं। (मा० २।१२६।३) चलिअ-चलिए। उ० बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति। (मा० १।३१) चलिय-चलिए, गमन कीजिए। उ० प्रीति राम सों, नीति पथ चलिय राग रिस जीति। (दो० ८६) चलिहउं-चलूंगा। उ० चलिहउं बनहि बहुरि पग लागी। (मा० २।४६।२) चलिहहिं-चलेंगे। उ० किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर। (मा० २। १२०) चलिहिं-चलेगी, जायगी। उ० पुरबासी सुनि चलिहि बराता। (मा० १।३३।१) चलिहैं-चलेंगे। उ० जबै जमराज रजायसु तें सोहि लै चलिहैं भट बांधि नटैया। (क० ७।२१) चलिहैं-चलेगा। उ० जातें तब हित होइ कुसल कुल अचर राज चलिहैं न चलायो। (गी० ६।२) चलिहौ-चलोगे। उ० पगनि कब चलिहौ चारौ भैया ? (गी० १।६) चलीं-‘चली’ का बहुवचन। चलु-चलो। उ० अब चित चेति चित्रकूटहि चलु। (वि० २४) चले-चल पड़े, निकले, छूटे, प्रचलित हुए। उ० राम-सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हवावरि फूटी। (क० ६।२१) चलेउं-चला। मैं चला। उ० सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउं उदाह। (मा० ७।११२ क) चलेउ-चला, चला गया, चल पड़ा। उ० चलेउ हरषि मम पद सिरु नाई। (मा० ७।६२।३) चलेऊ-चले। उ० कपिन्ह सहित रघुपति पहि चलेऊ। (मा० १।२६।३) चलेसि-१. चल रहा है, चला जा रहा है, २. चला। उ० १. सो कह चलेसि मोहि निदरी। (मा० १।४।१) चलेहुं-चलने से भी, चलने पर भी। उ० चलेहुं कुमग पग परहि न खालें। (मा० २।३१।३) चलैं-चलते हैं। चलैं-चलता है। उ० तेरी महिमा तें चलैं चिचिनी-चियाँ रे। (वि० ३३) चलौ-१. चलने लगे, चले, २. चलो, चलिए। उ० १. चरन चोंच लोचन रंगौ, चलौ मराली चाल। (दो० ३३३) २. दे० ‘चलिहौ’।

चलदल-(सं०)-पीपल का वृक्ष। उ० चलदल को सो प्रात करै चित खर को। (गी० १।६७)

चलन-१. चलने का भाव, गति, चलना, जाना, २. रिवाज, रस्म, व्यवहार, ३. प्रचार। उ० १. सकल चलन के साज जनक साजत भए। (जा० १८४)

चलनि-दे० ‘चलन’। उ० १. परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि। (गी० १।२४)

चलनी-चलना, चलने की रीति। उ० राम बिलोकनि बोलनि चलनी। (मा० ७।१६।२)

चलाई-१. चलाकर, बढ़ाकर, प्रचलित कर, २. चला, बढ़ा। उ० २. आगें किए निषादगन दीन्हेउ कटकु चलाई। (मा० २।२०२) चलाईहि-१. चलावेगी, आरंभ करेगी, बढ़ावेगी, २. चलाया। उ० १. अरुंधती मिलि मैनिहि बात चलाईहि। (पा० ८८)

चलाई-१. चलाया, चला दिया, बढ़ाया, शुरू किया, २. चलने का भाव, चलना। उ० १. केवट पारहि नाव चलाई। (मा० २।१६३।१) चलाए-१. चलाया, बढ़ाया, प्रचलित किया, २. चलाने से, हिलाने से, बढ़ाने से। उ० २. परमधीर नहिं चलाई चलाए। (मा० १।१४२।२) चलायहु-१. चलाना, आरंभ करना, २. चलाया। उ० जाहु-हिमाचल-गेह प्रसंग चलायहु। (पा० ८७) चलाये-दे० ‘चलाए’। चलायो-१. चलाया, २. चलाने से। उ० दे० ‘चलिहैं’। चलावहिं-चलाते हैं, चला रहे हैं, फेंक रहे हैं, प्रचलित कर रहे हैं। उ० लंका सन्मुख सिखर चलावहिं। (मा० ६।५।३) चलावा-चलाया, फेंका, बढ़ाया, प्रचलित किया। उ० तकि तकि तीर महीस चलावा। (मा० १।१२७।२)

चलाकी-(फा० चालाकी)-होशियारी, चतुराई, चालाकी। उ० जोग कथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी। (क० ७।१३४)

चलि (२)-(सं०)-१. चादर, ओढ़नी, २. ढका हुआ, चुपड़ा हुआ।

चलित-(सं०)-अस्थिर, चलायमान, चलता हुआ। उ० चलित महि मेरु, उच्छलित सायर सकल, बिकल बिधि बधिर विसि बिदिसि माँकी। (क० ६।४४)

चवैर-(सं० चामर)-१. सुरा गाय की पूँछ के बालों का या अन्य बालों का डंडे में लगा हुआ गुच्छा जिसे पीछे या बगल से राजाओं या मूर्तियों के सिर पर डुलाया जाता है। २. घोड़ों और हाथियों के सिर पर लगाने की कलगी। उ० १. चवैर जमुन अरु गंग तरंगा। (मा० २।१०१।४)

चवह-दे० ‘चवै’। चवहीं-चुवा देते हैं, नीचे गिरा देते हैं, टपका देते हैं। उ० लता बिटप मागें मधु चवहीं। (मा० ७।२३।३) चवै-(सं० च्यवन)-१. चूवे, बरसे, गिरे, २. चूता है, गिरता है, २. बरसावे, गिरावे, चुवावे। उ० ३. चहु चवै बरु अनल कन सुधा होइ विषतूल। (मा० २।४८)

चष-(सं० चक्षु)-आँख, नेत्र, नयन। चषचारिखो-दे० ‘चल-चारिखो’। उ० दूजो को कहैया और सुनैया चषचारिखो। (क० १।१६) चषपूतरि-(सं० चक्षु + पुत्तली)-आँखों की पुतली, बहुत प्यारा।

चषु-दे० ‘चष’।

चहै-दे० ‘चहुँ’।

चह-(सं० इच्छा का विपर्यय)-चाहता है, चाहे। उ० गा चहपार जतनु हिथै हेरा। (मा० २।२५।२) चहई-चाहे, चाहता है। चहई-चाहे, चाहता है। उ० लोभि लोभुप कल कीरति चहई। (मा० १।२६।२) चहउं-चाहा,

चाहता हूँ। उ० अक्सि जो कहहु चहुँ सोइ कीन्हा। (मा० २१२६४४) चहत-१. चाहता, चाहता है, चाहते हैं, २. जिसे चाहा जाय, जिसके साथ प्रेम किया जाय, ३. चाहिए। उ० १. मघवा महा मलीन, मुए मारि मंगल चहत। (मा० २१३०१) चहति-१. चाहती है, चाहती, २. देखती है। उ० १. बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि। (मा० २१२१७) चहते-चाहते। उ० जौ जप-जाप-जोग-व्रत-वरजित केवल प्रेम न चहते। (वि० १७) चहनि-चाहना, प्रेम करने का भाव। उ० तुलसी तजि उभय लोक राम चरन-चहनि। (गी० २१२१) चहसि-चाहता है, चाहती है। उ० महा मंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि? (दो० १२६) चहसी-चाहता है, चाहती है। उ० छोटे बदन बात बड़ि चहसी। (मा० ६१३१४) चहहि-चाहते हैं। उ० रामु चहहि संकरधनु तोरा। (मा० ११२५२) चहहीं-चाहते हैं। उ० नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। (मा० ११२१२) चहुँ-चाहता हूँ। चहुँ-चाहो, चाहते हो। उ० पठवहु कंत जो चहुँ भलाई। (मा० ११३६४) चहुँ-चाहते हो, चाहती हो। उ० जौ प्रभु पार अक्सि गा चहुँ। (मा० २११००) चहिवो-१. चाहना, २. चाहता है, ३. चाहना है, ४. चाहिए, चाहना होगा। उ० ४. सोखि कै खेत कै, बाँधि सेतु करि, उतरिवो उदधि न बोहित चहिवो। (गी० २११४) चहिय-चाहिए, आवश्यकता है। उ० तुलसी जो राम-पद चहिय प्रेम। (वि० २३) चहियौ-चाहूँगा। उ० मोको अगम, सुगम तुम्ह को प्रभु! तउ फल चारि न चहियौ। (वि० २३१) चहै-चाहें, चाहते हैं। चहै-चाहे, चाहते हैं। उ० उपजा जब ज्ञाना, प्रभु मुसकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै। (मा० १११६२) चहैगो-चाहेंगा। उ० तोहि बिनु मोहि कबहुँ न कोऊ चहैगो। (वि० २२६) चहौ-चाहूँ, चाहता हूँ। चहौगो-चाहूँगा। चहौ-चाहूँ, चाहता हूँ। उ० जठनि को लालची चहौ न दूध नखो हौं। (वि० २६०) चहौगो-चाहूँगा, इच्छा करूँगा। उ० यथालभ संतोष सदा काहुँ सां कछु न चहौगो। (वि० १७२) चह्यो-१. चाहना, २. प्रेमी, ३. जिसको चाहा जाय या चाहा गया हो, ४. चाहता हूँ। उ० १. अनत चह्यो न भलो, सुपथ सुचाल चह्यो। (वि० २६०) चहुँ-(सं० चतुर)-चार, चारों। उ० मरजादा चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुर बासी। (वि० २२) चहुँ-दे० 'चहुँ'। उ० चितवति चकित चहुँ दिसि सीता। (मा० ११२३२१) चाँउर-(सं० तंदुल)-चावल। झिलका उतारा हुआ धान। चाँकी-[चाँकना-(सं० चतुर + अंक)-खलिहान में अनाज की राशि पर मिटटी, राख या टप्पे से निशान लगाना जिससे यदि कोई निकाले तो ज्ञात हो जाय। सीमा बाँधने के लिए किसी वस्तु को रेखा या चिह्न खींचकर चारों ओर से घेरना, हद बाँधना] हद बना दी गई है, सीमा बाँध दी गई है। उ० तिलक रेख सोभा जनु चाँकी। (मा० ११२१६४) चाँचर-दे० 'चाँचरि'। चाँचरि-(सं० चर्चरी)-वसंत ऋतु

में गाया जानेवाला एक राग। होली, फाग आदि इसी के अंतर्गत हैं। उ० चाँचरि भूपक कहैं सरस राग। (गी० ७१२२)

चाँड़-दे० 'चाड़'। उ० १. हित पुनीत सब स्वारथहि, अरि असुद्ध बिनु चाँड़। (दो० ३३०) चाँद-(सं० चंद्र)-चंद्रमा, शशि। उ० चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि। (ब० १६) चाँदिनि-१. चाँदनी, २. चंद्रमायुक्त। चाँपत-(सं० चंपन)-दबाते हैं, चाँपते हैं। चाँपन-चाँपना, दबाना। चाँपि-१. चाँपकर, दबाकर, २. दबा, कमकर। उ० २. सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। (मा० ११२६४) चाँपी-१. दबाया, २. दबाकर। उ० १. कुबरी दसन जीभ तब चाँपी। (मा० २१२०१) चाँपे-१. दबाए, २. दबाने से। उ० २. चारिहु चरन के चपेट चाँपि चिपिटि गो। (क० ४११) चाउ-दे० 'चाऊ'। उ० ३. रोप्यो पाउँ चपरि चमू को चाउ चाहिगो। (क० ६१२३) चाउर-दे० 'चाँउर'। उ० भारी-भारी रावरे के चाउर से काँड़िगो। (क० ६१२४) चाऊ-(सं० इच्छा > चाह > चाव)-१. प्रबल इच्छा, अभिलाषा, अरमान, २. प्रेम, अनुराग, चाह, ३. उमंग, उत्साह, ४. आनंद। उ० ३. राम चरन आश्रित चित चाऊ। (मा० २१२५४) चाकरी-(फा०)-१. नौकरी, पैसे के लिए कहीं काम करना, २. सेवा, खिदमत। उ० १. चाकरी न आकरी न खेती न बनज भीख। (क० ७१६७) चाका-(सं० चक्र)-१. पहिया, २. चाक। उ० १. सौरज धीरज तेहि रथ चाका। (मा० ६१८०३) चाकि-(सं० चतुर + अंक = चाँक)-घेरकर, अपने लिए सुरक्षित कर। उ० सकैलि चाकि राखी रासी, जाँगर जहान भयो। (क० २१३२) चाकी-दे० 'चाँकी'। चाख (१)-(सं० चप्)-चख, चखकर, स्वाद लेकर। चाखा (१)-(सं० चप्)-१. चखता है, २. चखा, भोगा। उ० १. जो जस करइ सो तस फलु चाखा। (मा० २१२१२) चाख (२)-(सं० चाप)-नीलकंठ पत्नी। चाखा (२)-(सं० चाष)-नीलकंठ पत्नी। चाटत-(अनु० चटचट = जीभ चलाने का शब्द)-चाटता, चाटता है। उ० चाटत रछ्यो स्वान पातरि ज्यो कबहुँ न पेट भरो। (वि० २२६) चाड़-(सं० चंड)-१. प्रबल इच्छा, गहरी चाह, २. उग्र, उद्धत, ३. बढ़ा-बढ़ा, श्रेष्ठ, ४. तुष्ट, संतुष्ट, ५. स्वार्थ। उ० १. तोरें धनुषु चाड़ नहि सरइ। (मा० ११२६६२) चातक-(सं०)-पपीहा, वर्षाकाल का एक प्रसिद्ध पत्नी, इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह केवल स्वाती का बरसता जल पीता है। चाहे मर जाय पर और कोई पानी नहीं पी सकता। उ० धूम समूह निरखि चातक ज्यो नृषित जानि मति धन की। (वि० ६०) चातकही-चातक को। उ० हँसहि बक दादुर चातकही। (मा० ११६११) चातकी-

चातक की स्त्री । उ० जनु चातकी पाई जलु स्वाती ।
(मा० १२६३।३)
चातकि-चातक की स्त्री । उ० जिमि चातक चातकि त्वित
वृष्टि सरद रिनु स्वाति । (मा० २।५२)
चातकु-दे० 'चातक' । उ० दे० 'घटि' ।
चातुरी-(सं०)-१. चतुरता, चतुराई, २. छल, ३. चालाकी,
धूर्तता, ४. शठता । उ० ३. सुनहु राम स्वामी सन, चल
न चातुरी मोरि । (मा० ४।६)
चाप (१)-(सं०)-१. धनुष, कमान, २. दबाव, ३. आहट,
पैर की आहट, ४. संकोच । उ० १. चर्म-असिशूलधर,
डमरु शर चाप कर । (वि० ११)
चाप (२)-(?) -अनुमान, अन्दाज़ ।
चापत-(सं० चपन)-१. चाँपते हैं, मीढ़ते हैं, दबाते हैं, २.
दबाते ही । उ० १. चापत चरन लखनु उर लाएँ । (मा०
१।२२६।४) चापन-(सं० चपन)-१. दबाना, मीढ़ना,
पैर दबाना, २. कम करना । उ० १. लगे चरन चापन
दोउ भाई । (मा० १।२२६।२) चापि(१)-(सं० चपन)-१.
दबाकर, मीढ़कर, २. दबा, छू । उ० १. पुलकि गात बोले
बचन चरन चापि ब्रह्मांडु । (मा० १।२५६) २. तिनकी न
काम सकै चापि छाँह । (वि० ४६) चापी-दाबी, दबायी ।
चापौगी-चाँपौगी, दबाऊँगी । उ० थाके चरन कमल
चापौगी, स्रम भए बाउ डोलावौगी । (गी० २।६)
चापधर-धनुषारी, धनुष धारण करनेवाला ।
चापमख-धनुषयज्ञ । उ० आप देखन चापमख सुनि हरषीं-
सब नारि । (मा० १।२२१)
चापलता-चंचलता, ठिठाई । उ० लघुमति चापलता कबि
छुमई । (मा० २।३०४।१)
चापा-दे० 'चाप (१)' । उ० १. राम बरी सिय भंजैउ चापा ।
(मा० १।२६३।३)
चापि (२)-(सं० च + आपि)-और भी, फिर भी । उ०
असुर सुर नाग नर यज्ञ गंधर्व खग, रजनिचर सिद्ध ये
चापि अन्ये । (वि० ५७)
चापू-चाप, धनुष । उ० भंजैउ राम आपु भव चापू । (मा०
१।२४।३)
चाम-(सं० चर्म)-खाल, चमड़ा । उ० ताके पग की पग-
तरी, मेरे तनु को चाम । (वि० ३७)
चामर (१)-(सं०)-दे० 'चर्वर' । उ० चामर चरम बसन बहु
भाँती । (मा० २।६।३)
चामर (२)-(सं० चामरी)-सुरा गाय, वह पहाड़ी गाय
जिसकी पूँछ का चँवर बनता है ।
चामर (३)-(सं० तंडुल ?)-चावल ।
चामीकर-(सं०)-१. सोना, स्वर्ण, २. धतूरा । उ० १.
मनि चामीकर चारु थार सजि आरति । (पा० १३१)
चामुंडा-(सं०)-एक देवी का नाम जिन्होंने शुंभ और
निशुंभ नामक दो दैत्यों का वध किया था । उ० चामुंडा
नाना विधि गावहि । (मा० ६।८।४)
चाय (१)-(सं० चय)-संचय, समूह ।
चाय (२)-(सं० हृच्छा > चाह)-१. उत्साह, उमंग, आनंद,
प्रेम, २. उत्कंठा, हृच्छा, ३. शौक, रुचि । उ० १. हनुमान
सनमानि कै जेवाये चित चाय सों । (क० ५।२४)

चाय (३)-(सं० चतुर)-१. चार, २. चार अंगुल ।
चार (१)-(सं० चतुर)-चार की संख्या, तीन और एक ।
चार (२)-(सं०)-१. गति, चाल, २. बंधन, कारागार, ३.
गुप्त दूत, चर, जासूस, ४. दूत, हलकारा, ५. सेवक, दास,
६. आचार, रीति, ७. प्यार । उ० ३. चले चित्रकूटहि
भरतु चार चले तेरहृति । (मा० २।२७।१) ४. लोभी जसु
चह चार गुमानी । (मा० ३।१७।८)
चार (३)-(?) -सुगुली खानेवाला, चुगला । उ० जे अपकारी
चार, तिनकर गौरव, मान्य तेइ । (दो० ५५१)
चारण-(सं०)-भाट, बंदीजन, बंश की कीर्ति गानेवाली
राजपूताने की एक जाति ।
चारन-दे० 'चारण' ।
चारा (१)-(सं० चर)-पक्षियों और पशुओं का खाना, घास
आदि । उ० चारा चाषु बाम दिसि लेई । (मा० १।
३०३।१)
चारा (२)-(फा०)-१. उपाय, इलाज, २. वश ।
चारा (३)-(?) -चालाक ।
चारि-(सं० चतुर)-१. चार, दो और दो, २. अर्थ धर्म
काम तथा मोक्ष आदि चर फल, ३. जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति
और तुरीयावस्था, ४. अंडज, पिंडज, स्वेदज तथा उद्भिज
आदि चार प्रकार के जीव, ५. दो भीतर तथा दो बाहर के
चार नेत्र । उ० १. जगपतिव्रता चारि विधि अहई । (मा०
३।५।६) चारिउ-चारों । उ० करत फिरत चारिउ सुक-
मारा । (मा० १।२०३।२) चारिहुँ-चारो । उ० लगे भालु
कपि चारिहुँ द्वारा । (मा० ६।७।२) चारिहु-चारो । उ०
चारिहु को छहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ
ज्यों फारै । (क० ७।१०।४) चारिहुँ-चारो । उ० चारिहुँ
बिलोचन बिलोकु तू तिलोक मई । (वि० २६४) चारो-
चारो । चारो (१)-सब के सब चार । उ० पतित पुनीत
दीनहित असरन-सरन देखिबो कहत श्रुति चारो । (वि०
६४) चारथो-चारो ही । उ० राम लषन भावते भरत
रिपुदवन चारु चारथो भैया । (गी० १।८) चारुथौ-चारों
ही । उ० गयो छाँड़ि छल सरन राम की जो फल चारि
चारथौ जनै । (गी० ५।४०) चारथौ-चारो ही ।
चारिक-कोई चार, थोड़े से ।
चारित-(सं०)-१. जो चलाया गया हो, २. स्वभाव,
व्यवहार, ३. कुलाचार, ४. भबके द्वारा उतारा हुआ अर्क ।
चारितु-चारा, घास आदि । उ० वरनि-धेनु चारितु चरत,
प्रजा सुबच्छ पेन्हाई । (दो० ५१२)
चारिदस-चार और दस, चौदह । उ० बरष चारिदस
बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान । (मा० २।५३)
चारिपद-चार पदवाला, चौपाया ।
चारी (१)-(सं० चारिन्)-१. चलनेवाला, २. आचरण
करनेवाला, ३. पैदल सिपाही ।
चारी (२)-(सं० चार)-सुन्दर, चारु ।
चारी (३)-(सं० चतुर)-चार, चारो । उ० त्रिभुवन तिहुँ
काल विदित, बदत बेद चारी । (वि० ७८)
चार (१)-(सं० चतुर)-चार, दो और दो ।
चार (२)-(सं०)-सुन्दर, मनोहर । उ० चौके चार सुमित्राँ
पूरी । (मा० २।८।२) चारतरं-अधिक सुन्दर । उ० महि-

मंडल मंडन चारुतरं । (मा० ७१४३) चारुतर-अधिक अच्छा, अधिक सुन्दर । उ० हास चारुतर, कपोल नासिका सुहाई । (गी० ७३)

चार (३)-(सं० चरु)-वर्तन, हाँसी, चेहना । चारु-दे० 'चारु (२)', 'चारु (३)' । उ० [चारु (२)] होहि कवित मुकुतामनि चारु । (मा० ११११५)

चारो (२)-दे० 'चारा (२)' । उ० २. तो सुनिबो बहुत अब, कहा करम सौ चारो ? (क० ३४)

चाल-(सं० चार)-१. गति, गमन, चलने की क्रिया, २. चलने का ढङ्ग, ३. आचरण, चलन, बर्ताव, व्यवहार, ४. चलन, रीति, रवाज, ५. आकृति, बनावट, ६. धूर्तता, चालाकी, ७. प्रकार, विधि, तरह, ढङ्ग, ८. आन्दोलन, धूम, ९. आहट, खटका । उ० ६. जोगकथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी । (क० ७१३४)

चाल चलाकी-चालाकी की चाल । उ० जोगकथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी । (क० ७१३४)

चालि-१. चाल, रीति, नियम, २. चालाकी, धूर्ततापूर्ण चाल या षडयंत्र, ३. चलन । उ० १. नीति श्री प्रतीति-प्रीति-पाल चालि प्रभु मान । (क० ७१२२)

चालक-(सं०)-१. चलानेवाला, संचालक, २. नटखट हाथी, ३. चालाक, धूर्त, ४. डिगानेवाला, खींचनेवाला, चलानेवाला । उ० ३. घरघाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी । (पा० १२१)

चालत-(सं० चालन)-१. चलाते हैं, चलाता है, आगे बढ़ाता है, २. प्रचलित, व्यवहार में आनेवाला । उ० १. चालत सब राज-काज, आयसु अनुसरत । (गी० २१८०)

चालति-चलाती है, हिलाती डुलाती हैं । उ० चालति न मुजबत्ली बिलोकनि विरह भय बस जानकी । (मा० ११२३७)

चालहीं-चलाते हैं । उ० निज लोक बिसरे लोकपति, घर की न चरचा चालहीं । (गी० ११५)

चालही-१. चलाते हैं, २. चलाओ, ३. चला, चली । उ० २. हठि फेर रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही । (मा० २१४०)

चाली-१. गति, चाल, २. चालाकी, धूर्तता, ३. धूर्त, चालबाज़ । उ० सीखु सनेहु सरिस सम चाली । (मा० २१२२१)

चालु-१. चालू, चलता आदमी, २. चाल, गति, ३. चालाकी, ४. चलाओ, चलावे, गमन करावे, ५. व्यवहार करे । उ० ४. जपहि नाम रघुनाथ को चरचा दुसरी न चालु । (वि० १६३)

चाव-(सं० इच्छा, हिन्दी चाह)-१. प्रबल इच्छा, अभिलाषा, २. प्रेम, अनुराग, ३. शौक, चाव, ४. प्रेम, दुलार, ५. उमंग, उत्साह, आनंद ।

चावल-(सं० तंडुल)-धान के भीतर का दाना जिसका भात बनता है । अन्न ।

चाष (१)-(सं०)-नीलकंठ पक्षी ।

चाष (१)-?)-उत्साह ।

चाषु-दे० 'चाष (१)' । उ० चारा चाषु बाम दिसि लेई । (मा० १३०३१)

चाह (१)-(सं० इच्छा)-१. इच्छा, २. प्रीति, ३. आदर, ४. चाहो, देखो, इच्छा करो ।

चाह (२)-(सं० चार)-खबर । उ० पुर घर-घर आनंद महासुहिन चाह सुहाई । (गी० ११०११५)

चाहइ-१. चाहे, २. चाहता है । चाहउँ-चाहता हूँ । उ० चाहउँ तुम्हहि समानसुत प्रभुसन कवन दुराउ । (मा० ११४६)

चाहत-१. चाहता है, प्यार करता है, २. चाह से देखता है । उ० २. मिले भरत जननी गुरु परिजन चाहत परम अन्नद भरे । (गी० ७३८)

चाहति-चाहती है । उ० चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुवीर । (मा० ११२१०)

चाहन-१. चाहना, प्यार करना, चाहने, २. देखना, देखने । चाहनि-१. चाहना, प्यार करना, २. देखना, ३. चाह से, प्रेम से, ४. चाह का बहुवचन, चाहें, इच्छाएँ । उ० ४. जहँ-जहँ लोभ लोल लालच बस, निज-हित चित चाहनि चै हौं । (वि० २२२)

चाहसि-चाहता है, इच्छा करता है । उ० तुलसी भीतर बाहेरहूँ जौं चाहसि उजिभार । (मा० ११२१)

चाहहिं-१. चाहते हैं, प्रेम करते हैं, २. देखते हैं, ३. चाहना, प्रेम करना । उ० १. मधुर मनोहर मूरति सादर चाहहिं । (जा० २२)

चाहहु-१. चाहो, २. चाहते हो । उ० २. चाहहु सुनै रामगुन गूढ़ा । (मा० १४७१२)

चाहा-१. इच्छा किया, प्रेम किया, २. देखा, ३. चाहे । उ० ३. हरिपद विमुख परमगति चाहा । (मा० ११२६७१२)

चाहि-१. चाहकर, प्रेम कर, २. चाहो, ३. देखकर, देख लो, ४. अपेक्षाकृत अधिक, उससे बढ़कर, ५. चाह, इच्छा, ६. इष्टि । उ० ४. कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा । (मा० ११२५८२)

चाहिअ-चाहिए, उचित है । उ० चाहिअ कीन्हि भरत पटुनाई । (मा० २१२१३३)

चाहिए-उचित है, उपयुक्त है । उ० मुखिया मुख सो चाहिए, खान-पान कहँ एक । (मा० २१३१५)

चाहिगो-१. देख गया, २. चाह गया, प्रेम कर गया । उ० १. रोप्यो पाँउ, चपरि चमू को चाउ चाहिगो । (क० ६१२३)

चाहिय-चाहिए, उचित है ।

चाही-१. देखी, २. देखने की इच्छा थी, ३. चाहा, इच्छा की, ४. देखकर, ५. चाहिए, ६. चाही हुई, जिसकी इच्छा की जाय, ७. चाह, ८. देखना, निरीक्षण करना, ९. अपेक्षाकृत अधिक । उ० ४. सखीं सीयमुख पुनि-पुनि चाही । (मा० १३४६३)

६. मरनु नीक तेहि जीवन चाही । (मा० २१२११)

चाहु-१. चाह, इच्छा, २. चाहो, ३. देख, देखो । उ० ३. चारि परिहरे चारिको दानि चारि चख चाहु । (दो० १५१)

चाहे-१. देखे, २. इच्छा करे, चाहा, इच्छा की, ३. होनहार, होनेवाला, ४. देखते ही, देखने पर । उ० २. दिए उचित जिन्ह-जिन्ह तेइ चाहे । (मा० ७१४०१२)

चाहै-चाहे, इच्छा करे, २. चाहता है । उ० १. जो आपन चाहै कल्याण । (मा० ५१३८३)

चिचिनी-(सं० तित्तिडी)-१. इमली का पेड़, २. इमली का फल । उ० २. तेरी महिमा तैं चलै चिचिनी-चियाँ रे । (वि० ३३)

चित-(सं० चिन्ता)-चिंता, चिंतना, ध्यान । उ० सो करउ अघारी चित हमारी जानिअ भगति न पूजा । (मा० १११६१)

चित्तक-१ चिंतन करनेवाला, २. ध्यान रखनेवाला । उ०
२. जे रघुबीर चरन चित्तक तिन्हकी गति प्रगट दिखाई ।
(गी० १११)
चित्तत-चिंता करते हैं, विचारते हैं, चिंतन करते हैं । उ०
सारद सेस संसु निसि बासर, चित्तत रूपन हृदय समाई ।
(गी० ११०६) चित्तहिं-चिंतन करते हैं, ध्यान करते हैं ।
उ० जेहि चित्तहिं परमारथवादी । (मा० ११४४१२)
चित्तन-(सं०)-१. बार-बार स्मरण, ध्यान, २. गौर, विचार,
विवेचना । उ० १. श्री रघुबीर-चरन-चित्तन तजि नाहिंन ठौर
कहूँ । (वि० ८६)
चिता-(सं०)-१. ध्यान, भावना, २. सोच, फिक्र, खटका ।
चितापहारी-(सं०) चिता + अपहारिन्-चिता का नाश
करनेवाला, निश्चित बना देनेवाला ।
चितामणि-(सं०)-१. एक कल्पित मणि जिसके विषय में
प्रसिद्ध है कि उससे जो अभिलाषा की जाय वह पूर्ण कर
देती है । २. सरस्वती का एक मंत्र जिसे विद्या आने के
लिए लोग बालक की जीभ पर लिखते हैं ।
चितामनि-दे० 'चितामणि' । उ० १. रामचरित चितामनि
चारू । (मा० १३२११)
चितित-(सं०)-चिंतायुक्त, जिसे चिंता हो ।
चिउरा-(सं०) चिविट-चिउड़ा, चूरा । धान से बनाया हुआ
एक प्रकार का चर्बण । उ० दधि चिउरा उपहार अपारा ।
(मा० १३०५३)
चिकना-१. खुशामदी, चिकनी बातें बनानेवाला । २. दे०
'चिकनी' । चिकनी का पुलिंग । चिकनी-(सं०) चिकण-
१. साफ और बराबर, जो खुरदरा न हो, स्निग्ध, सँवारा
हुआ, रुखाई रहित, २. घी या तेल लगी, चिकनाई युक्त ।
उ० २. छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी जुपरि कै तू दे री
मैया । (क० १) चिकने-दे० 'चिकनी' । उ० १. जे जन
रुखे विषय रस, चिकने राम सनेह । (दो० ६१)
चिकनाई-१. चिकना होने का भाव, चिकनाहट, चिकना-
पन, २. स्निग्धता, सरसता, ३. घी, तेल, चर्बी आदि
चिकने पदार्थ । उ० १. जिमि खगपति जल कै चिकनाई ।
(मा० ७७६१४)
चिकार-(सं०) चीत्कार-चिल्लाहट, चिंघाड़ । उ० गज रथ
तुरग चिकार कठोरा । (मा० ६१८७२)
चिकारा-दे० 'चिकार' । उ० तब धावा करि घोर चिकारा ।
(मा० ६१७६१५)
चिकुर-(सं०)-सिर के बाल, बाल । उ० सघन चिकन
कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल । (गी० ७१५)
चिकण-(सं०)-दे० 'चिकन' ।
चिकन-(सं०) चिकण-१. चिकना, मुलायम, २. सुपारी,
३. हड़ । उ० १. दे० 'चिकुर' ।
चिकरत-(सं०) चीत्कार-चिंघाड़ते हैं, चीखते हैं । उ०
चिकरत लागत बान । (मा० ३१२०१५) चिकरहिं-दे०
'चिकरत' । उ० चिकरहिं दिगज डोल महि अहि काल
कृषम कलमले । (मा० ११२६११ छं० १) चिकरहीं-
चिंघाड़ रहे हैं, गरज रहे हैं, चीख रहे हैं । उ० डगमगाहि
दिगज चिकरहीं । (मा० ११३१५)
चित (१)-(सं०) चित्त-१. चित्त, मन, अन्तःकरण, २.

भीतर । उ० १. अब चित चेत चित्रकूटहि चखु । (वि०
२४)
चित (२)-(सं०) चित=ढेर किया हुआ)-पीठ के बल खेदा
हुआ ।
चित (३)-(सं०) चित्त-ज्ञान, चैतन्यता । मु० चित करत-
ध्यान देता । उ० गुनगन सीतानाथ के चित करत न हौं
हौं । (वि० १४८) चितहिं-चित्त को, मन को । उ० चित-
वत चितहि चोरि जनु लेहीं । (मा० ११२१६१४)
चितइ-(सं०) चेतन-१. देखकर, २. देखा, ध्यान दिया ।
उ० १. चहुँदिसि चितइ पूँछि मालीगन । (मा० ११२२८११)
चितइये-देखिए, अवलोकिए । उ० जौं चितवनि सौंधी
लगै चितइए सबेरे । (वि० २७३) चितइहौ-देखोगे । उ०
तुम अति हित चितइहौ नाथ-तनु, बार-बार प्रभु तुमहिं
चितैहैं । (गी० ११५१) चितई-देखा, अवलोका, ध्यान से
देखा । उ० साधना अनेक चितई न चितलाई है । (क०
७७४) चितए-१. देखा, २. देखने पर । उ० २. तुलसि-
दास पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चितए ।
(गी० १३) चितयउं-देखा, अवलोका । उ० ब्रह्मलोक
लगि गयउं मैं चितयउं पाछ उढात । (मा० ७७६ क)
चितयउ-देखा । उ० प्रियाबचन मृदु सुनत नृप चितयउ
आखि उघारि । (मा० २११५४) चितये-१. देखा, २.
देखने पर । चितव-देखे, देखता हो, देख रहा हो । उ०
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी । (मा० ११२३२३)
चितवत-१. देखता है, २. देखते ही । उ० २. चितवत
कामु भयउ जरि छारा । (मा० ११८७३) चितवति-१.
देखते, देखते ही, २. देखती है । उ० २. चितवति चकित
चहुँदिसि सीता । (मा० ११२३२११) चितवहिं-देख रहे
हैं, देखते हैं । उ० चितवहिं सादर रूप अनूपा । (मा०
१११४८३) चितवहिं-देखता है, देख रहा है । चितवा-
देखा । उ० फिरि चितवा पाछ प्रभु देखा । (मा० ११५४३)
चितै-१. देखकर, २. देख । उ० १. संकर निजपुर राखिए
चितै सुलोचन कोर । (दो० २३६) चितैहैं-१. देखेंगे, २.
ध्यान रखेंगे । उ० १. तुम अति हित चितइहौ नाथ-
तनु, बार बार प्रभु तुमहिं चितैहैं । (गी० ११५१) चितैहौ-
१. देखूँगा, २. ध्यान रखूँगा । उ० १. मोको न लेनो न
देनो कहु, कलि ! भूलि न रावरी ओर चितैहौ । (क०
७१०२) चितैहौ-देखोगे । उ० भलो बुरो जन आपनो जिय
जानि दयानिधि ! अवगुन अमित चितैहौ । (वि० २७०)
चितौ-देखो, चितओ । उ० नेकु ! सुमुखि, चित लाइ
चितौ री । (गी० ११७५)
चितचही-चित्त द्वारा चाही हुई, मनोनुकूल । उ० होइगी
पै सोई जो बिधाता चितचही है । (गी० २१४१)
चितचाय-१. मन को अच्छा लगनेवाला, २. प्रसन्न मन ।
उ० २. सखी भूखे प्यासे पै चलत चितचाय हैं । (गी०
२१२८)
चितचेता-१. चित्त या मन को जो अच्छा लगे, २. साव-
धान । उ० २. बैठहिं रामु होइ चितचेता । (मा० २१
११३)
चितचोर-चित्त को चुरानेवाला, अच्छा । उ० भाँति भाँति
बोलहिं बिहग अवन सुखद चितचोर । (मा० २१३७)

चित्तभंग (१)-(सं० चित्त+भंग)-चित्त का न लगना ।
 उ० दे० चित्तभंग (२) ।
 चित्तभंग (२)-(१)-वदिकाश्रम का एक पर्वत । उ० मान
 मनभंग, चित्तभंग मद, क्रोध लोभादि पर्वत हुगं सुवन
 भक्तों । (वि० ६०)
 चित्तवन-ताकने का भाव, देखने का हंग, नज़र, दृष्टि ।
 चित्तवनि-दे० 'चित्तवन' । 'चित्तवन' का स्त्रीलिंग । उ०
 चित्तवनि ललित भावती जी की । (मा० ११४७१२)
 चित्तवनियाँ-दे० 'चित्तवन' । उ० बाल सुभाय बिलोल
 बिलोचन, चौरति चितहि चारु चित्तवनियाँ । (गी० ११३१)
 चिता-(सं०)-चुनकर रखी लकड़ियों का ढेर जिस पर शव
 जलाया जाता है । उ० सरजु तीर रचि चिता बनाई ।
 (मा० २१७०१२)
 चित्तु-दे० 'चित्त' । उ० १. रघुपति पद सरोज चित्तु राचा ।
 (मा० १२२६१२)
 चितेरा-(सं० चित्रकार)-चित्र बनानेवाला, चित्रकार ।
 चितेरी-'चितेरा' का स्त्रीलिंग । चितेरे-चितेरा ने, चितेरे
 ने । उ० सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा
 चितेरे । (वि० १११)
 चितेरो-दे० 'चितेरा' । उ० पिय-चरित सिय-चित्त चितेरो
 लिखत नित हित भीति । (गी० ७३२५)
 चित्त-(सं०)-चैतन्य ज्ञानयुक्त । उ० बुद्धि मन इंद्रिय प्रान
 चित्तात्मा, काल-परमानु चित्छक्ति गुर्वी । (वि० ५४)
 चित्त-(सं०)-१. अंतःकरण का एक भेद, अंतःकरण की
 एक वृत्ति, २. वह मानसिक शक्ति जिससे धारणा, भावना
 आदि करते हैं । अंतःकरण, जी, मन, दिल । उ० २.
 चारु चित्त भीति लिखि लीन्ही । (मा० १२३६१२)
 चित्तनि-१. मनों, चित्त का बहुवचन, २. मनों में, चित्तों
 में । उ० २. लोचननि चकाचौधी चित्तनि खँभार सो ।
 (ह० ४)
 चित्तवृत्ति-(सं०)-चित्त या मन की गति, मन की अवस्था ।
 योग शास्त्र में प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति
 ये पाँच प्रकार की चित्तवृत्तियाँ मानी गई हैं । उ० दीप
 निज-बोध, गत क्रोध मदमोह तम, प्रौढ़ अभिमान-चित्त-
 वृत्ति छीजै । (वि० ४७)
 चित्र-(सं०)-१. चंदन आदि से माथे पर बनाया चिह्न,
 तिलक, २. रंगों आदि से बनाई आकृति, तस्वीर, ३.
 अद्भुत, विचित्र, आश्चर्यजनक, ४. रङ्ग-विरंगा, ५. छवि,
 सौंदर्य । उ० २. राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से
 देखि । (मा० १२६०)
 चित्रकार-(सं०)-चित्र बनानेवाला, चितेरा । उ० चित्रकार
 करहीन जथा स्वारथ बिनु चित्र बनावै । (वि० ११६)
 चित्रकूट-(सं०)-एक प्रसिद्ध पर्वत जहाँ बन के समय राम,
 लक्ष्मण और सीता ने बहुत दिनों तक निवास किया था ।
 यह स्थान बाँदा जिले में प्रयाग से ५४ मील दूर है ।
 इस पहाड़ के नीचे पयोष्णी और मंदाकिनी नदियाँ बहती
 हैं । इसी स्थान पर जयंत ने कौवे के वेश में सीता के पैर
 पर प्रहार किया था । उ० चित्रकूट चर अचर मलीना ।
 (मा० २१३२१३) चित्रकूटहि-चित्रकूट को, चित्रकूट में ।
 उ० चले चित्रकूटहि चित्तु दीन्हें । (मा० २१२१६२)

चित्रकेतु-(सं०)-१. भागवतानुसार शूरसेन देश का एक
 राजा जिसे नारद ने उपदेश दिया था । २. लक्ष्मण के
 एक पुत्र का नाम । १. चित्रकेतु कर घर उन घाला ।
 (मा० ११७६११)
 चित्रसार-(सं० चित्रशाला)-सजाया हुआ कमरा, विलास-
 भवन, रङ्ग-महल । उ० सो समाज चित्त-चित्रसार लागी
 लेखन । (गी० ११७३)
 चित्रित-(सं०)-१. खिंचा हुआ, बना हुआ, चित्र द्वारा
 दिखलाया हुआ, २. जिस पर चित्र बने हों । उ० १.
 चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें । (मा० १२१३१३)
 चिद-(सं० चित्त)-चेतना, ज्ञान । चिद-विलास-दे०
 'चिद्विलास' । उ० १. तुलसिदास कह चिद-विलास जग
 ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म । (वि० १२४)
 चिदाकाश-(सं०)-आकाश के समान निर्लिप्त और सब
 का आधारभूत ब्रह्म । परब्रह्म । उ० चिदाकाशमाकाश
 वासं भजेऽहं । (मा० ७१०८८ श्लो० १)
 चिदानंद-(सं०-चित्त+आनंद) १. चैतन्य और आनंदस्वरूप
 ईश्वर, २. ज्ञान और आनंद से भरा, ३. ज्ञान और आनंद ।
 उ० २. चिदानंद सुखधाम सिव, विगत मोह मद काम ।
 (मा० ११७५)
 चिदाभास-(सं०)-१. चैतन्यस्वरूप परब्रह्म का आभास या
 प्रतिबिंब जो महत्त्व या अंतःकरण पर पड़ता है । २.
 जीवात्मा, ३. ज्ञान का प्रकाश ।
 चिद्विलास-(सं० चित्त+विलास)-१. चैतन्यस्वरूप ईश्वर
 की माया, २. मन का खेल, चित्त का खिलवाड़, ३.
 मन की प्रसन्नता ।
 चिनमय-दे० 'चिन्मय' । उ० १. राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी ।
 (मा० ११२०१३)
 चिन्मय-(सं०)-१. ज्ञानमय, २. परमेश्वर, ३. भगवान्
 रामचंद्र ।
 चिन्ह-(सं० चिह्न)-१. वह लक्षण जिससे किसी चीज की
 पहिचान हो, निशान, २. पताका, झंडी, ३. किसी प्रकार
 का दाग या धब्बा । उ० १. द्विज चिन्ह जनेउ उधार
 तपी । (मा० ७१०११ छं० ४)
 चिन्हारी-(सं० चिह्न)-ज्ञान-पहिचान, परिचय । उ० कुस-
 मय जानि न कीन्हि चिन्हारी । (मा० ११५०११)
 चिपिटि-(सं० चिपिटि)-चिपटा, चिपटा होने की अवस्था ।
 उ० चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपिटि गोः । (क० ४११)
 चिबुक-(सं०)-ठुड़ी, ठोड़ी । उ० कंठ दर, चिबुक बर,
 बचन गंभीरतर, सत्य संकल्प सुर त्रासनासं । (वि० ५१)
 चियाँ-(सं० चिंचा)-इमली का बीज, चियाँ । उ० तेरी
 महिमा तें चलै चिचिनी-चियाँ रे । (वि० ३३)
 चिरंजीवि-(सं० चिरंजीव)-१. दीर्घायु हो । इस शब्द से
 दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया जाता है । २. बहुत
 दिन तक जीनेवाला । अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान,
 विभीषण, कृपाचार्य, और परशुराम ये सात चिरंजीवि
 कहे जाते हैं । कुछ मतों से मार्कंडेय भी चिरंजीवि हैं ।
 चिर-(सं०)-१. बहुत दिनों का, दीर्घकालवर्ती, २.
 बहुत दिन, अधिक काल, ३. बिलंब, देर । उ० २. सकल
 जनय चिर जीवहुँ तुलसिदास के ईस । (मा० १११६६) :

चिरजीव-दीर्घायु हों, बहुत दिन तक जीवित रहें।
चिरजीवी-सर्वदा जीनेवाला। चिरजीवी मुनि-मारकण्डेय मुनि। दे० 'चिरंजीवि'। उ० चिरजीवी मुनि ग्यान विकल जन्तु। (मा० २।२८६।४)

चिराना-(सं० चिर)-पुराना, प्राचीन, बहुत दिनों का।
उ० सुखद सीत रुचि चारु चिराना। (मा० १।३६।५)

चिराव-(सं० चीर्ण)-चिरा डालती है। फड़वा डालती है।
उ० मातु चिराव कठिन की नाईं। (मा० ७।७४।४)

चिलात-(सं० चित्कार)-चिल्लाते हैं। उ० नाम लै चिलात,
बिललात अकूलात अति। (क० ५।१५)

चिवरा-(सं० चिदित)-चिउड़ा, धान का भून कर बनाया
जानेवाला एक खाद्य पदार्थ।

चीखा-(सं० चषण)-१. स्वाद लिया, चखा, २. चखना,
स्वाद लेना। उ० २. डारि सुधा बिपु चाहत चीखा।
(मा० २।२।७।२)

चीठी-(सं० चीर्ण)-पत्री, पत्र, चिट्ठी। उ० राम लखतु
उर कर बर चीठी। (मा० १।२६।३)

चीठे-(सं० चीर्ण)-१. चिट्ठा, लेखा, खाता की किताब,
२. आज्ञापत्र, परवानगी, इजाजत, ३. सूची, फिहरिस्त,
४. चिवरण, व्यौरा, तफूसील, ५. चिट्ठी, पत्री। उ० २.
नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिए करि चीठे।
(वि० १६६)

चीता (१)-(सं० चित्रक)-बिल्ली की जाति का एक प्रकार
का बहुत बड़ा हिंसक पशु।

चीता (२)-(सं० चेतन)-१. होश, संज्ञा, २. सोचा हुआ,
विचारा हुआ, ३. चित, हृदय, दिल। उ० ३. जाको हरि
बिनु कतहु न चीता। (वै० १४)

चीन्हे-(सं० चिह्न)-१. लक्षण, चिह्न, २. परिचय, पहि-
चान।

चीन्हा-१. चिह्न, निशानी, २. पहचाना, जाना। उ०
२. राम भगत अधिकारी चीन्हा। (मा० १।३०।२)

चीन्हि-परिचित होकर, पहचान कर। चीन्ही-१.
पहिचानी, जानी हुई, २. जाना, पहचाना, ३. चीन्हेते
हुए, जानते हुए। उ० २. तब रिषि निज नाथहि जियँ
चीन्ही। (मा० १।२०।६।४) चीन्हे-१. पहचाने, जाने
परिचित हुए, २. पहचाने हुए, जाने हुए। उ० १. तिन्ह
कह करिअ नाथ किमि चीन्हे। (मा० १।२६।२।२)

चीन्हो-पहचाना हुआ, जो जाना गया हो। उ०
चीन्हो चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा। (वि० २६६)

चीन्हो-पहिचाना, जाना। उ० सहस-दस चारि खल
सहित-खरदूषनहि, पठै जमधाम, तै तउ न चीन्हो।
(वि० १८)

चीर (१)-(सं०)-१. बख, कपड़ा, २. बूच की छाल, ३.
कपड़े का फटा-पुराना टुकड़ा, ४. गौ का थन, ५. मुनियों
द्वारा पहने जाने वाला एक वस्त्र। उ० १. बिसमउ हरपु
न हृदयँ कछु पहिरे बलकल-चीर। (मा० २।१६।५)

चीर (२)-(सं० चोर्ण)-चीरकर, फाड़ कर।

चीरा (१)-दे० 'चीर (१)। उ० १. पहिरेँ बरन-बरन बर
चीरा। (मा० १।३१।२।१)

चीरा (२)-फाड़ा, दो टुकड़े किया। चीरि-चीरकर, फाड़-

कर। उ० चीरि कोरि पचि रचे सरोजा। (मा०
१।२८।२)

चीरी (१)-(सं० चीरिका)-१. कींगुर, किल्ली, २. चींटी,
चिउटी।

चीरी (२)-(सं० चटक)-चिड़िया, पक्षी। उ० चीरी को
मरन खेल बालकनि को सो है। (ह० २६)

चुंबत-(सं० चुंबन)-१. चूम रहे हैं, चूमते हैं, २. चूमते
हुए। उ० १. धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। (मा० ७।
२७।४) चुंबति-चूमती है, चूम रही है। उ० बार बार
मुख चुंबति माता। (मा० २।५२।२)

चुकह-(सं० च्युत + कृ)-१. चूकते हैं, चूक जाते हैं, चूक
जाता है। २. चूक जाता, चूकता। उ० १. भलेउ प्रकृति
बस चुकह भलाह। (मा० १।७।१) चुके-चूक जाने से,
बीत जाने पर। उ० चुके अवसर मनहुँ सुजनहिँ सुजन
सनमुख होइ। (गी० ५।५) चुकै-१. चूक जाय, २. चूके, गलती
करे, ३. बेबाक हो जाय, रूपया दे दिया जाय। उ० १.
अवसर कौड़ी जो चुकै बहुरि दिए का लाख। (दो० ३४४)
चुकाहीं-चूकेंगे, हाथ से जाने देंगे। उ० तेउ न पाइ अस
समउ चुकाहीं। (मा० २।४२।२)

चुचाते-(सं० च्यवन)-१. चूते, टपकते, पसीजते, २. रसाते
हुए, टपकाते हुए, चुवाते हुए। उ० २. स्मृत द्वार अनेक
मर्तंग जँजीर जरे मदअंजु। चुचाते। (क० ७।४४)

चुचुकारि-(ध्व०)-चुचकार कर, प्यार दिखलाकर, हुलार कर,
पुचकार कर। उ० जीति हारि चुचुकारि हुलारत, देत
दिवावत दाउ। (वि० १००)

चुनह-चुनती है, चुगती हैं। उ० सुकताहल गुनगन चुनह
राम बसहु हियँ तासु। (मा० २।१२।८) चुनि-(सं०
चयन)-चुनकर, छाँटकर, चुन चुनकर, एकत्र कर। उ० एक
बार चुनि कुसुम सुहाए। (मा० ३।१।२)

चुनिन-(सं० चूर्ण)-छोटे-छोटे टुकड़े। उ० कनक-चुनिन सों
लसित नहरनी लिए कर हो। (रा० १०)

चुनौति-दे० 'चुनैती'।

चुनौती (?)-लखकार, उत्तेजना देनेवाली बात, युद्ध के लिए
आह्वान। उ० ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि।
(मा० ३।१७)

चुनी-(सं० चूर्ण)-१. मानिक, याकृत या किसी अन्य रत्न
का छोटा टुकड़ा, २. किसी चीज (अन्न, लकड़ी आदि)
का छोटा टुकड़ा, ३. सितारा।

चुप-(सं० चुप्)-मौन, झामोश, अवाक्। उ० का चुप साधि
रहेहु बलवाना। (मा० ४।३०।२)

चुपकि-१. चुपकी, मौन, झामोशी, २. चुप, मौन, झामोश,
चुप होकर। उ० २. चुपकि न रहत, कछो कछु चाहत,
हैहै कीच कोठिला धोए। (कृ० ११)

चुपचाप-दे० 'चुप'। उ० सब चुपचाप चले मग जाहीं।
(मा० २।३२।१)

चुवन-(सं० च्यवन)-चूने, टपकने, रिसने। उ० चित
चद्विगो बियोग दसानन कहिबे जोग, पुलकगात, लागे
लोचन चुवन। (गी० ५।४८)

चुवा (१)-(?)-हड्डी के अंदर की वस्तु, मज्जा।

चुवा (२)-(सं० च्यवन)-टपका, झरा, रसा। चुवै-चूता है,

टपकता है। उ० बोलत बोल समृद्धि चुवै, अंबलोकत सोच विषाद हरी है। (क० ७।१८०)

चुवा (३)-(सं० चतुष्पद)-चौपाया, मृग आदि। उ० चार चुवा चहुँ ओर चलै, लपटै रूपटै सो तमीचर तौकी। (क० ७।१४३)

चुवाइ-१. टपकाकर, २. निथार कर, ३. मीठा और मधुर करके। उ० ३. भेष सुबनाइ सुचि बचन कहै चुवाइ। (क० ७।११६)

चुहल-(?)—हँसी, विनोद, ठोली।

चूक-(सं० च्युत कृ)-भूल, गलती, अपराध। उ० रहति न प्रभु चित चूक किए की। (मा० १।२६।३)

चूका (१)-१. चूक गया, भूला, गिरा, खोया, २. लक्ष्यभ्रष्ट, गिरा हुआ, ३. गलती। उ० १. अहह मंद मनु अवसर चूका। (मा० २।१४४।३) चूकी-१. चूक गई, भूल गई, २. चूक, भूल, अपराध। उ० २. नामहि ते गज की, गनिका की, अजामिल की चलिगै चल-चूकी। (क० ७। ८६)

चूका (२)-(सं० चुक)-एक प्रकार का खट्टा शाक।

चूड़-(सं० चूड़)-चोटी, कलगी। उ० अरुन चूड़ बर बोलन लागे। (मा० १।३२८।३)

चूड़ा-(सं०)-१. चोटी, शिखा, २. कड़ा, कंकण, ३. मस्तक, माथा, ४. मोर की चोटी, ५. प्रधान नायक, सरदार।

चूड़ाकरण-(सं० चूड़ाकरण)-हिन्दुओं के १६ संस्कारों में से एक। मुंडन संस्कार। किसी बच्चे का पहले-पहल सिर मुड़वाकर चोटी रखवाना। उ० चूड़ाकरण कीन्ह गुरु जाई। (मा० १।२०३।२)

चूड़ाभण्डि-(सं०)-१. सिर पर पहनने का शीशफूल नामक एक गहना, २. मुकुटमणि, चोटी की मणि, ३. सरदार मुखिया, शिरोमणि, प्रधान। चूड़ाभण्डि-चूणा-मणि को। उ० ३. वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपाल चूड़ाभण्डि। (मा० ५।१८०।१)

चूड़ाभनि-दे० 'चूड़ाभण्डि' उ० १. चलत मोहि चूड़ाभनि दीन्ही। (मा० ५।३१।१)

चूनरी-(सं० चयन)-कई रंगों की या लाल रंग की एक प्रकार की विशेष साड़ी। रँगने के पहले चुनकर बाँधने के कारण इसका यह नाम है। उ० मंगलमय दोउ, अंग मनोहर प्रथित चूनरी पीत पञ्जोरी। (गी० १।१०३)

चूमत-(सं० चुंबन)-चूमता है, चूमते हैं। उ० लेत पग-धूरि एक चूमत लँगूल हैं। (क० ५।३०)

चूर-(सं० चूर्ण)-१. किसी चीज़ की ब्रुकनी, २. पाचक, ३. औषधि।

चूरण-दे० 'चूरन'।

चूरन-(सं० चूर्ण)-१. चूर्ण, ब्रुकनी, २. पाचक, ३. चूर्णरूप में कोई औषधि। उ० २. अमिअ मूरिमय चूरन चारु। (मा० १।१।१)

चूर्ण-(सं०)-दे० 'चूरन'।

चेटक-(सं०)-१. दास, नौकर, २. दूत, ३. चटक-मटक, टीस-टाम, ४. जादू, इन्द्रजाल, ५. कुर्ती, जहदी, ६. मंत्र, टोटका, ७. तमाशा, खेल। उ० ७. नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट टयो। (क० ७।८६)

चेटकी-१. नौकरानी, दासी, २. तमाशा दिखानेवाला, जादूगर, बाज़ीगर, इन्द्रजाली। उ० २. किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाँट, चाकर, चपल, नट चोर चार चेटकी। (क० ७।१६।)

चेटुवा-(सं० चटक)-चिड़िये के का बच्चा। उ० अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष पर्यो नीर निहारि। (दो० ३०३)

चेत-(सं० चेतस्)-१. चित्त की वृत्ति, चेतना, संज्ञा, २. ज्ञान, बोध, ३. सुध, स्मरण, ४. चेतो, चेत करो, समझो। उ० २. मूरुख हृदय न चेत जौ गुर मिलहि विरंचि सम। (मा० ६।१६ ख)

चेतन-(सं०)-१. अत्मा, जीव, २. मनुष्य, आदमी, ३. प्राणी, जीवधारी, ४. परमेश्वर। उ० ३. जे जड़ चेतन जीव जहाना। (मा० १।३।२) चेतनहि-चेतन में। उ० जड़ चेतनहि अंधि परि गई। (मा० ७।११७।२)

चेतना-(सं०)-१. बुद्धि, २. मनोवृत्ति, ३. ज्ञानात्मक मनो-वृत्ति, ४. स्मृति, सुधि, ५. चेतनता, संज्ञा, होश।

चेता-१. चित्त, २. चैतन्य हुआ, ३. उपदेशक, ४. होश, याद, ५. चेता हुआ, सोचा हुआ, चाहा हुआ। उ० ५. बैठहि रामु होइ चित चेत। (मा० २।११।३) चेतु-चेतो, सावधान हो, चेत करो। उ० चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करिसो। (वि० २६४) चेतो-१. चैतन्य हुए, २. ख्याल आया, ३. सावधान होकर। उ० ३. सेवहि तजे अपनपौ, चेतो। (वि० १२६)

चेतु-चेत, ज्ञान, होश। उ० रहत न आरत कें चित चेतु। (मा० २।२६६।२)

चेरा-(सं० चेटक)-१. नौकर, सेवक, दास, २. चेला, शिष्य। उ० १. करम बचन मन राउर चेरा। (मा० २। १३१।४) चेरि-दासी, नौकरानी। उ० राम राज बाधक भई मूढ़ मंथरा चेरि। (दो० ३६६) चेरिहि-चेरी को, दासी को। उ० बहुबिधि चेरिहि आवरु देई। (मा० २। २३।२) चेरी-दासी, सेविका। उ० नामु मंथरा मंद मति चेरी कैकइ केरि। (मा० २।१२) चेरै-दे० 'चेरा'। दास। उ० जे बिनु काम राम के चेरै। (मा० १।१८।२)

चेराई-गुलामी, चाकरी, सेवा। उ० जो पै चेराई राम की करतो न लजातो। (वि० १५१)

चेरो-दे० 'चेरा'। उ० १. ब्रह्म तू, हौं जीव, तुही ठाकुर, हौं चरो। (वि० ७६)

चैतन्य-(सं०)-१. चित्स्वरूप आत्मा, चेतन आत्मा, २. ज्ञानवान, चेतन, ३. परमेश्वर, परब्रह्म, ४. प्रकृति, ५. होशियार, सावधान। उ० २. जो चेतन कहै जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य। (मा० ७।११६ख)

चैन-[सं० शयन (?)]-आराम, सुख, आनन्द, कल। उ० कादर देखि डरहि तहँ सुभटन्ह के मन चैन। (मा० ६। ८७)

चैल-(सं०)-१. कपड़ा, वस्त्र, २. सिला कपड़ा, पोशाक। उ० २. चैल चार भूषन पहिराई। (मा० १।३२३।२)

चौच-(सं० चंचु)-१. पक्षियों से मुख का अगला भाग जो कठोर होता है। ठोर, २. मुँह। उ० १. सीता चरन चौच हति भागा। (मा० ३।१।४)

चौथे-(?)—फाड़े, खींचे, खसोटे, नोचे । उ० आयो सरन सुखद पदपंकज चौथे रावन बाज के । (गी० १।२६)

चोआ-(?)—एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य, जो कई सुगंधित पदार्थों के मिश्रण से बनाया जाता है ।

चोखा-(सं० चोख)-१. जिसमें किसी प्रकार की गन्दगी या मैल न हो, खरा, उत्तम, अच्छा, २. सच्चा, ईमानदार, ३. तेज, धारदार, ४. जस्दी । उ० १. सहित समाज सोह नित चोखा । (मा० २।३२१।३) चोखी-'चोखा' का स्त्रीलिंग । उ० १. ये अब लही चतुर चेरी पै चोखी चालि चलाकी । (कृ० ४३) चोखे-अच्छे । दे० 'चोखा' उ० लेखे जोखे चोखे चित तुलसी स्वारथ हित । (क० ७।२४)

चोट (सं० चुट)-१. आघात, प्रहार, आक्रमण, २. घाव, जखम, ३. बार, दफा, मरतबा । उ० १. जाकी चिबुक चोट चूरन किय रद-मद कुलिस कठोर को । (वि० ३१)

चोटिया-[सं० चूड़ा (?)]-१. चोटी, शिखा, सिर के मध्य के थोड़े से बाल । २. लड़कों के पूरे बाल की गुथी हुई लड़ी, चोटी । उ० २. उबटौ न्हाहु गुहौ चोटिया, बलि, देखि भलो बर करिहि बड़ाई । (कृ० १३)

चोटी-(सं० चूड़ा)-१. शिखा, चोटिया, २. शिखर, पहाड़ का ऊचा भाग, ३. औरतों के सिर का जूरा । उ० १. हाथ कपिनाथ ही के चोटी चोर साहु की । (ह० २८)

चोप-(?)—१. चाह, इच्छा, स्वाहिस, २. चाव, शौक, ३. उमंग, जोश । उ० ३. मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघ किलोरहि चोप । (मा० १।२६७)

चोर-(सं०)-जो छिपकर पराई वस्तु का अपहरण करे, तस्कर । उ० चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई । (मा० २। २७३) चोरऊ-चोर भी । उ० नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहर । (वि० २५०) चोरहि-चोर को । उ० चोरहि चंदिनि राति न भावा । (मा० २।११४)

चोरत-चुराते हैं, चुरा लेते हैं । उ० फेरत पानि-सरोजनि सायक, चोरत चितहि सहज मुसुकात । (गी० २।१५)

चोरि-चुराकर, छिपाकर । उ० किए सहित सनेह जे अथ हृदय राखे चोरि । (वि० १५८) चोरे-१. चुराए, २. चुराकर । उ० १. प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चितु है, चले लै चित चोरे । (क० २।२६) चोर्यो-चुराया, चुरा लिया । उ० सुख सनेह तेहि समय को तुलसी जानै जाको चोरयो है चित चहुँ भाई । (गी० १।१२)

चोरा-चोर, चुराने वाला । उ० लोचन सुखद बिस्व चितचोरा । (मा० १।२१५।३)

चोरी-१. अपहरण, चुराना, २. छिपाव की बात । उ० २. औरउ एक कहउँ निज चोरी । (मा० १।१६६।२)

चोलना-(सं० चोल)-चोला, एक प्रकार का लंबा कुर्ता जिसे साधू लोग पहिनते हैं । उ० चौतनी चौतना काड़े, सखि ! सोहैं आगे पाड़े । (गी० १।७२)

चोराइ-१. चुराकर, २. चोरावे । चोराई-१. चुरा, चोरी कर, २. चुराया । उ० १. हेरनि हँसनि हिय लिये हैं चोराई । (गी० २।४०)

चौक-(सं० चमकृत)-चौक पदे, चौककर । उ० कौन की हाँक पर चौक चन्डीस निधि । (क० ६।४५) चौकि-चौककर । उ० अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौकि

चौकें चितवै चित है । (क० २।२७) चौकै-चकित हुए, आश्चर्यचकित हुए । उ० चौकै बिरंचि संकर सहित, कोल, कमठ अहि कलमल्यौ । (क० १।११)

चौतिस-(सं० चतुस्त्रिंशत्)-१. तीस और चार, ३४, २. क से न तक ३४ अक्षर । उ० २. चौतिस के प्रस्तार में अरथ भेद परमान । (स० ३१०)

चौध-(सं० चक् + अंध)-चमक के कारण आँसू का न ठहर सकना, चकाचौध । चौधी-'चौध' का स्त्रीलिंग । दे० 'चौध' । उ० चितवत मोहि लगी चौधी सी जानौं न कौन कहाँ तें धौं आए । (गी० २।३५)

चौक-(चतुष्क)-१. बाजार का मध्य, चौराहा, २. आंगन, प्रांगण, ३. चौकोर भूमि, ४. मंगल के अवसर पर भूमि पर आटे आदि के द्वारा की गई रचना, जिस पर देव-पूजन आदि होता है । उ० ४ गजमनिरिचि बहु चौक पुराई । (मा० ७।६।२) चौकै-चौक का बहुवचन । दे० 'चौक' । उ० ४. रचहु मंजु मनि चौकै चारु । (मा० २।६।४) चौकै-दे० 'चौकै' । चौकै-चौक का बहुवचन । दे० 'चौक' । उ० ४. चौकै पूरै चारु कलस ध्वज साजहि । (जा० २०५)

चौकी-(सं० चतुष्की) १. चार पैरोंवाला चारपाई की शकल का तख्त, २. स्त्रियों के हार आदि में बीच में लगा चौकोर टुकड़ा जो छाती पर लटकता रहता है । संभवतः ऐसी कोई चीज आज के तमगे आदि की तरह पहले जीतनेवाले को दी जाती थी । उ० २. मानों लसी तुलसी हनुमान हिपु जगजीति जराय की चौकी । (क० ७।१४३)

चौगान-(फा०)-१. एक खेल जिसमें लकड़ी के बल्ले से घोड़े पर चढ़कर खेलते हैं । २. चौगान खेलने का डंडा, ३. नगाड़ा बजाने का डंडा, ४. उद्यान, बाग, मैदान, ५. निर्जन स्थान । चौगानै-चौगान, चौगान को, दे० 'चौगान' । उ० १. कर-कमलनि विचित्र चौगानै, खेलन लगे खेल रिक्तये । (गी० १।४३)

चौगाना-दे० 'चौगान' । उ० १. खेलिहहिं भाबु कीस चौगाना । (मा० ६।२७।३)

चौगुन-(सं० चतुर्गुण)-चौगुना, चारगुना । उ० मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ । (मा० २।५१।४) चौगुनी-चारगुनी, चतुर्गुणी । उ० लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुनी चाय । (वि० ८३)

चौगुनो-चारगुना, चौगुना । उ० तिलक को बोल्यो, दियो बन, चौगुनो चित चाउ । (गी० २।५७)

चौतनियाँ-दे० 'चौतनी' । उ० भाल तिलक मासिबिंदु बिराजत, सोहति सीस लाल चौतनियाँ । (गी० १।३१)

चौतनी-(सं० चतुर + तनिका)-बच्चों की टोपियाँ या कुल्हियाँ जिनमें चार बंद लगे रहते हैं । चौकोर टोपियाँ । उ० पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाई । (मा० १।२४३।४)

चौथ-(सं० चतुर्थी) १. पखवारे की चौथी-तिथि, २. चौथा अंश । उ० १. चौथ चारु उनचास पुर, घर घर मंगल चार । (प्र० ४।७।७)

चौथपन-(सं० चतुर्थ + पवन)-चौथापन, वृद्धावस्था । चौथपनु-दे० 'चौथपन' । उ० होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपनु । (मा० १।१४२)

चौथि-दे० 'चौथ' । उ० १. चौथि चारि परिहरहु बुद्धिमन, चित अहंकार । (वि० २०३)
 चौथे-चौथे । उ० चौथे दिवस अवधपुर आए । (मा० २।३२।३)
 चौथेपन-दे० 'चौथेपन' । उ० चौथेपन जाइहि नृप कानन । (मा० ६।७।२)
 चौथे-(सं० चतुर्थ)-चौथा, तीन के बाद का ।
 चौथेपन-दे० 'चौथेपन' ।
 चौदसि-(सं० चतुर्दशी)-पक्ष के १४वें दिन पड़नेवाली तिथि । चौदस । उ० चौदसि चौदह भुवन अचर चर रूप गोपाल । (वि० २०३)
 चौदह-(सं० चतुर्दश)-दस और चार, १४ । उ० दे० 'चौदसि' ।
 चौपट-(सं० चतुर + पट-) बर्बाद, नष्ट, जिसके चारो पट बराबर हों, अर्थात् जो अरक्षित या छिन्न-भिन्न हो । उ० बिस्व बेगि सब चौपट होई । (मा० १।१८०।३)
 चौपाई-चौपाइयाँ । उ० १. सत पंच चौपाई मनोहर, जानि जो नर उर धरे । (मा० ७।१३०। छं०२) चौपाई-(सं० चतुष्पदी)-१. एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं । चौपाई के कई भेद होते हैं । तुलसी ने मानस में दोहे और चौपाइयों

का प्रयोग किया है । २. चारपाई । उ० १. पुरइनि सघन चारु चौपाई । (मा० १।३७।२)
 चौबारा-(सं० चतुर + द्वार)-कोठे के ऊपर का ऐसा कमरा जिसमें चार दरवाजे हों, हवादार घर, बँगला । चौबारे-'चौबारा' का बहुवचन । दे० 'चौबारा' । उ० मनियर रचित चारु चौबारे । (मा० २।६०।४)
 चौरानल-चारो ओर अग्नि । उ० ईति अति भीति-अह-प्रेत-चौरानल-व्याधिबाधा समन घोर मारी । (वि० २८)
 चौरासी-(सं० चतुराशीति)-अस्सी से चार अधिक, ८४ । उ० आकर चारि लाख चौरासी । (मा० १।८।१)
 चौहट-(सं० चतुर + हट)-जिसमें चारो ओर दुकानें हो, सदर बाज़ार, चौक, चौराहा । उ० चौहट सुंदर गर्ली सुहाई । (मा० १।२१३।४)
 चौहट्ट-दे० 'चौहट' ।
 चौहट्टा-दे० 'चौहट' ।
 च्युत-(सं०)-१. गिरा हुआ, पतित, अष्ट, २. पराङ्मुख, विमुख ।
 च्ये-(सं० च्यू)-१. गिरना, चूना, २. गर्भ गिरना । उ० १. तुलसी सुनि ग्राम बधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्ये । (क० २।१८) २. जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँफ, गई किन च्ये । (क० ७।४०)

छ

छँगन-(?)-प्रिय बालक, छोटा और प्यारा बच्चा । उ० छँगन-मँगन अँगना खेलत चारु चार्यो भाई । (गी० १।२७)
 छँटि-(?)-छाँटकर, चुनकर । उ० तीखे सुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले । (क० ६।३२)
 छंड-(सं० छोरण)-छोड़े, त्यागो । उ० जाय सो जती कहाय विषय-वासना न छंडै । (क० ७।११६)
 छंद-(सं० छंदस्)-१. वेदों के वाक्यों का वह भेद जो अक्षरों की गणना के अनुसार किया गया है, २. वेद, ३. वह वाक्य या पंक्ति जिसमें वर्ण या मात्रा की गणना के अनुसार विराम आदि का नियम हो । पद्य के लिए प्रयुक्त छंद । इसके मात्रिक और वर्णिक दो भेद होते हैं, फिर दोनों के दोहा-चौपाई आदि कितने ही भेद-विभेद होते हैं । ४. इच्छा, ५. बंधन, गाँठ, ६. कपट, छल, ७. समूह, जाल, ८. स्वच्छंद, स्वतंत्र, उन्मुक्त । उ० ३. छंद सोरठा सुन्दर दोहा । (मा० १।३७।३) ८. ऋषिवर तहँ छंद बास, गावतक लकठहास । (गी० २।४३) छंदसाम्-(सं०)-छंदों का । उ० वणानामर्थसघानां रसानां छंदसामपि । (मा० १।१। श्लो० १)
 छ (१)-(सं० षट्)-गिनती में पाँच से एक अधिक, छः । उ० छरस चारि विधि जसि श्रुति गाई । (मा० १। १७३।१)

छ (२)-(सं०)-१. निर्मल, साफ, २. तरल, चंचल, ३. खंड, टुकड़ा, ४. काटना, ५. ढाँकना, ६. घर ।
 छई (१)-(सं० चय)-१. एक रोग का नाम, राजयक्ष्मा, क्षयी, २. नष्ट हुई, समाप्त हुई । उ० १. पर सुख देखि जरनि सोइ छई । (मा० ७।१२१।१७)
 छई (२) (सं० छादन)-छाई, छा गई, ढक लिया ।
 छगन-(?)-१. छोटा बालक, प्यारा और भोला-भाला शिशु, २. बच्चों को बुलाने के लिए एक प्यार का शब्द । उ० २. कहति मल्हाइ लाइ उर छिन-छिन छगन छबीले छोटे छैया । (गी० १।१७)
 छछुदरि-दे० 'छछुदर' ।
 छछुदर-(सं० छुछुदरी या छुछुन्दर)-चूहे की जाति का एक जंतु । कहा जाता है कि साँप यदि छछुदर को पकड़ लेता है तो दोनों प्रकार से उसकी हानि होती है । यदि वह छोड़ दे तो अंधा हो जाता है और यदि खा ले तो मर जाता है ।
 छटनि-छटा का बहुवचन । सौन्दर्यों । उ० विधि बिरचे बरूथ विद्युत छटनि के । (क० २।१६)
 छटा-(सं०)-१. दीप्ति, प्रकाश, २. शोभा, सौंदर्य, छवि, ३. बिजली । उ० २. शिरसि संकुलित कलकट पिंगल जटापटल शतकोटि विद्युच्छटाभं । (वि० ११)

छठ-(सं० पष्ठी)-१. पखवारे का छठा दिन, प्रति पक्ष की छठी तिथि, २. छठवाँ, पाँचवें के बादवाला । उ० २. छठ दम सील बिरति बहु करमा । (मा० ३।३६।१)
 छठि-दे० 'छठ' । उ० १. छठि षड्वर्ग करिय जय जनक-सुता पति लागि । (वि० २०३)
 छठी-(सं० षष्ठी)-१. छठ, पखवारे का छठा दिन, २. छठी, बालक के जन्म से छठा दिन या उस दिन किया जाने-वाला संस्कार, ३. भाग्य, तकदीर । उ० ३. पढ़िबो परथो न छठी छमत, ऋगु, जजुर, अथर्वन, साम को । (वि० १५५)
 छठें-छठवें, छठवाँ । उ० छठें श्रवन यह परत कहानी । (मा० १।१६६।१)
 छठे-दे० 'छठ' ।
 छड़ाई-(सं० छोरण)-छुड़ा, छीन । उ० लेहु छड़ाई सीय कह कोऊ । (मा० १।२६६।२) छड़ाइसि-छुड़ाया, अलग कर दिया । उ० सठ रन भूमि छड़ाइसि मोही । (मा० ६।१००।४) छड़ावा-छुड़ा दिया । उ० देह जनित अभिमान छड़ावा । (मा० ४।२८।३)
 छड़ीला-(?)-अकेला ।
 छत (१)-(सं० चत)-घाव, जखम । उ० पाकें छत जनु लाग अंगारू । (मा० २।१६१।३)
 छत (२)-(सं० छत्र)-दीवारों पर कड़ी आदि रखकर बनाया गया, फर्श, कोठा, पाटन ।
 छत (३)-(सं० सत्)-होते हुए, रहते हुए, आछत ।
 छतज-१. चत या घाव से निकला हुआ खून, २. लाल, अरुण । उ० २. छतज नयन उर बाहु बिसाला । (मा० ६।५३।१)
 छति-((सं० चति)-हानि, घाटा, टोटा । उ० नारि हामि बिसेष छति नाहीं । (मा० ६।६१।६)
 छत्तीस-(सं० षटत्रिंशति)-१. तीस और छः, ३६, २. ३६ में ३ और ६ एक दूसरे से विमुख हैं अतः ३६ का अर्थ विमुख या पराङ्मुख भी लिया जाता है । उ० २. जग तें रहु छत्तीस हूँ राम-चरन छव तीन । (सं० २२०)
 छत्र (१)-(सं०)-१. छाता, छतरी, धूप या पानी से बँचने का एक साधन, २. राजाओं का छाता जो राजचिह्नों में से है । ३. देश, राष्ट्र, ४. शरीर, ५. धन, दौलत, ६. पानी, जल, ७. मुकुट । उ० २. छत्र मुकुट ताटक तव हते एकहीं बान । (मा० ६।१३ क) छत्रछाया-छत्र का आश्रय, छत्र के नीचे । उ० छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हें छत्र-छाया, छोनी-छोनी छाए छिति आए -निमिराज के । (क० १।८)
 छत्र (२)-(सं० चत्रिय)-वर्ण विशेष, चत्रिय, राजपुत्र ।
 छत्रक-(सं०)-भूफोड़, खुभी, कुकुरसुता । उ० तोरीं छत्रक दँड जिमि तव प्रताप बलनाथ । (मा० १।२५३)
 छत्रबंधु-(सं०)-१. नीच कुल का चत्रिय, चत्रियाधम, २. चत्रिय के समान, ३. चत्रिय का भाई या सहायक । उ० १. छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई । (मा० १।१७४।१)
 छत्रि-दे० 'छत्रिय' । उ० १. छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान । (मा० २।२२६)
 छत्रिय-(सं० चत्रिय)-१. चार वर्णों में से दूसरा वर्ण,

चत्रिय । प्राचीन काल में देश का शासन तथा रक्षा आदि इन लोगों का प्रधान कार्य समझा जाता था । २. राजा । उ० १. विश्वविदित छत्रिय कुलद्रोही । (मा० १।२७२।३)
 छत्री-दे० 'छत्रिय' । उ० १. बैरी पुनि छत्री पुनि राजा । (मा० १।१६०।३)
 छत्रु-दे० 'छत्र (१)' । उ० २. छत्रु अखयबहु मुनि मनु मोहा । (मा० २।१०५।४)
 छद-(सं०)-१. ढकनेवाली वस्तु, आवरण, ढक्कन, २. पत्त, पंखा, चिड़ियों का पर, ३. तमाल वृक्ष, ४. तेजपात ।
 छन-(सं० क्षण)-१. काल या समय का एक बहुत छोटा भाग, थोड़ी देर, २. काल, समय, ३. अवसर, मौका, ४. उत्सव । उ० २. लोचन लाहु लेहु छन एहीं । (मा० २।११४।३) छनहिं छन-प्रतिक्षण, क्षण-क्षण पर । उ० बरपहिं सुमन छनहिं छन देवा । (मा० १।३४।३)
 छनछन-१. थोड़ी-थोड़ी देर, २. घड़ी-घड़ी, जल्दी-जल्दी ।
 छनभंग-(सं० क्षणभंगुर)-एक क्षण या थोड़ी देर में ही नाश होनेवाला, अनित्य, नाशवान ।
 छनभंगु-दे० 'छनभंग' ।
 छनभंगू-दे० 'छनभंग' । उ० राम बिरहँ तजि जनु छनभंगू । (मा० २।२११।४)
 छनिक-(सं० क्षणिक)-क्षणभंगुर, एक क्षण रहनेवाला, अनित्य, जिसका जीवन बहुत थोड़ा हो ।
 छन्न-(सं०)-१. ढका हुआ, आच्छादित, २. लुप्त, गायब, ३. नष्ट, ४. निर्जन स्थान, एकांत ।
 छपत-(सं० क्षिप)-छिपता है, गुप्त होता है । उ० मंगल मुद उदित होत, कलिमल छल छपत । (वि० १३०)
 छपद-(सं० षटपद)-अमर, भौरा । उ० पठयो है षपद छवीले कान्ह कैहू कहूँ । (क० ७।१३५)
 छपन-(सं० क्षपण)-विनाश, नाश, संहार । उ० छोनी में न छाँड्यौ छप्यौ छोनिप को छोना छोटे, छोनिप-छपन बाँको बिरुद बहुत हैं । (क० १।१८) छपनहार-विनाशक, नाश करनेवाला । उ० कीन्हौं छोनी छत्री बिनु छोनिप छपनहार । (क० ६।२६)
 छपा-(सं० क्षपा)-१. रात्रि, रात, २. हल्दी । उ० १. नखत सुमन, नभ बिटप बौडि मानो छपा छिटकि छवि छाई । (गी० १।१६)
 छपाई-छिप, छिपने का भाव । उ० उठी रेनु रवि गयउ छपाई । (मा० ६।७६।४)
 छपाकर-(सं० क्षपाकर)-१. चंद्रमा, चाँद, २. कपूर । उ० १. निकट भए बिलसत सकल एक छपाकर छाड़ । (सं० ६२५)
 छपाये-१. छिपाकर, गुप्त कर, २. छिपाए, छिपा दिये, छिपा लिया । उ० २. नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तडित छपाए । (गी० १।२३)
 छप्यो-(सं० क्षिप)-छिपे हुए, छिपे थे । उ० छोनी में न बाँड्यो छप्यो छोनिप को छोना छोटे । (क० १।१८)
 छवि-दे० 'छवि' । उ० १. निज छवि रति मनोज मृदु हरहीं । (मा० २।६१।१) छविमय-शोभायुक्त, सुन्दर । उ० ऋषि तिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छविमय देह धरी ।

(गी० १।२५) छविहि-छवि को, शोभा को। उ० प्रभु प्रताप रवि छविहि न हरिही। (मा० २।२०१२)
 छवी-दे० 'छवि'। उ० १. तन काम अनेक अनूप छवी। (मा० ६।१११। छं० २)
 छवीला-[सं० छवि + ईला (प्रत्यय)]-शोभा युक्त, बाँका, सुहावना, सुंदर। छवीली-छवीली का बहुवचन। दे० 'छवीली'। उ० छोटी छोटी गोदियाँ अगुरियाँ छवीली छोटी। (गी० १।३०) छवीली-सुन्दरी, छवीला का स्त्री-लिंग रूप। दे० 'छवीला'। छवीले-दे० 'छवीला'। उ० पठ्यो है छपद छवीले कान्ह कैहू कहुँ। (क० ७।१३५)
 छम-(सं० क्षम)-१. शक्त, समर्थ, उपयुक्त, २. शक्ति, बल। उ० १. प्रह्ला-विसिख ब्रह्मांड दहन-छम गर्भ न नृपति जरथो। (वि० २३६)
 छमत (१)-(सं० क्षमा)-क्षमा करता है।
 छमत (२)-(सं० पट् + मत)-छः दर्शनों के मत। कणाद के परमाणु-प्रधान वैशेषिक, गौतम के द्रव्य प्रधान न्याय, कपिल के पुरुष-प्रकृति-प्रधान सांख्य, पतंजलि के ईश्वर प्रधान योग, जैमिनि के कर्म-प्रधान पूर्वमीमांसा, तथा व्यास के ब्रह्म-प्रधान उत्तर मीमांसा-इन छः दर्शनों या शास्त्रों के मत। उ० छ-मत विमत, न पुरातन मत, एक मत नेति नेति नेति नित निगम करत। (वि० २५१)
 छमता-(सं० क्षमता)-सामर्थ्य, योग्यता, शक्ति।
 छमब-क्षमा कीजिएगा। उ० छमब आजु अति अनुचित मोरा। (मा० २।२१७।३) छमबि-क्षमा करना, क्षमा कीजिएगा। उ० छमबि देवि बदि अविनय मोरी। (मा० २।६४।३) छमहु-क्षमा करो, क्षमा कीजिए। उ० छमहु क्षमा मंदिर दोउ आता। (मा० १।२८५।३) छमहुँ-क्षमा करें, क्षमा कीजिए। उ० लछु मति चापलता कवि छमहुँ। (मा० २।३०४।१)
 छमा (१)-(सं० क्षमा)-चित्त की एक प्रकार की वृत्ति जिससे मनुष्य दूसरे के द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट या दूसरे द्वारा किये गये अपराध को चुपचाप सह लेता है और उसके हृदय में प्रतिकार की भावना भी नहीं उठती। क्षान्ति, सहन करने की वृत्ति, सहन-शक्ति। उ० छमहु क्षमा मंदिर दोउ आता। (मा० १।२८५।३)
 छमा (२)-(सं० क्षमा)-पृथ्वी, धरती। उ० बिस्व भार भर अचल क्षमा सी। (मा० १।३१।५)
 छमाइ-क्षमा मँगाकर, माफी मँगाकर। उ० छमि अपराध, छमाइ पाँइ परि, इतौ न अनत समाउ। (वि० १००)
 छमाय-दे० 'छमाइ'। छमि-क्षमा कर, सहकर। उ० छमि अपराध, छमाइ पाँइ परि, इतौ न अनत समाउ। (वि० १००) छमिअ-क्षमा कीजिए, माफी दीजिए। उ० कौसिक कहा छमिअ अपराधू। (मा० १।२७५।३) छमिए-क्षमा कीजिए। उ० चित्रकूट चलिए सब मिलि, बलि, छमिए मोहि हहा है। (गी० २।६४) छमिहिहि-क्षमा करेंगे। उ० छमिहिहि सज्जन मोरि ढिठाई। (मा० १।८।४) छमिहि-क्षमा करेंगे। उ० छमिहि देउ अति आरति जानी। (मा० २।३००।४) छमिहै-क्षमा करेंगे, माफी देंगे। उ० सोचै सब थाके अथ कैसे प्रभु छमिहै। (क० ७।७।१)

छमेहु-क्षमा कीजिएगा। उ० छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बर देहु। (मा० १।१०१)
 छमासील-(क्षमाशील)-क्षमा करनेवाला, सहनशील, शांत। उ० छमासील जे पर उपकारी। (मा० ७।१०१।३)
 छमुख-(सं० पट् + मुख)-षडानन, कार्तिकेय। उ० छमुख गनेस तँ महेस के पियारे लोग। (क० ७।१६६)
 छमैया-क्षमा करनेवाला, क्षमाशील ! उ० काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छाँड़ि छमैया। (क० ७।५३)
 छय-(सं० क्षय)-१. नाश, हानि, २. क्षय रोग, ३. प्रलय कल्पांत। उ० १. जेहि रिपुछय सोइ रचेन्हि उपाऊ। (मा० १।१७०।४)
 छयल-[सं० छवि + इल्ल (प्रा० प्रत्यय)]-सुंदर और बना-ठना आदमी। सुंदर वेश विन्यास युक्त पुरुष। उ० छरे छबीले छयल सब सूर सुजान नवीन। (मा० १।२६८)
 छर (१)-(सं० छल)-कपट, फरेब। छरनि-छलों से, छलों द्वारा। उ० बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छरयो हौं। (वि० २६६)
 छर (२)-(सं० क्षर)-१. नाशवान, नाश होनेवाला, २. जल।
 छरन (१)-(सं० क्षरण)-१. चूना, बहना, २. नाश होना, क्षय होना।
 छरन (२)-(सं० छल)-छलनेवाला, छलिया। उ० गंग-जनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपटु बहु बलि-छरन। (वि० २१८)
 छरभार-(सं० सार + भार)-पूरा भार, उत्तरदायित्व, जिम्मेवारी। उ० यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं। (वि० १०४)
 छरिगे-छले गए। उ० तहँ तहँ नर नारि बिनु छर छरिगे। (गी० २।३२)
 छरी (१)-(सं० शर)-छड़ी, सीधी, पतली और छोटी लाठी। उ० लिए छरी-बैत सोचै विभाग। (गी० ७।२२)
 छरी (२)-(सं० छल)-छली, छलनेवाला।
 छरीला-(?)-एकाकी, अकेला।
 छरभार-दे० 'छरभार'।
 छरभारु-दे० 'छरभार'। उ० लखि अपनै सिर सबु छरभारु। (मा० २।२६०।१)
 छरे-(सं० छटा)-अच्छे, सुन्दर, अद्वितीय। उ० छरे छबीले छयल सब सूर सुजान नवीन। (मा० १।२६८)
 छरे-छले, धोखा दे। छरेगी-छलेगी, धोखा देगी। उ० बाहुबल बालक छरीले छोटे छरेगी। (हं० २५) छरो-छला, धोखा दिया। उ० गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग, निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है। (क० ७।८४) छरथौ-छला, छल किया, धोखा दिया। उ० बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छरयो हौं। (वि० २६६)
 छल-(सं०)-१. कपट, वंचना, धूर्तता, धोखा, २. बहाना, व्याज, मिस। उ० १. सब मिलि करहु छाँड़ि छल छोहू। (मा० १।८।२) छलछाँड़-१. टोना-टोटका आदि, २. धोखेबाजी। उ० १. बेदन विथम पाप ताप छलछाँड़ की। (हं० २६) छल-छाउ-दे० 'छलछाय'। उ० अप-

नाए सुग्रीव बिभीषण, तिन न तज्यो छल-छाउ । (वि० १००) छलछाय-छल की छाया, धोखेबाजी । छलछिद्र- (सं०)-कपट व्यवहार, धूर्तता । उ० मोहि कपट छलछिद्र न भावा । (मा० १४४३) छलबल-१. माया, २. छल और बल, ३. धोखा, धूर्तता । उ० १. निसिचर छलबल करइ अनीती । (मा० ६१४२) छलक-(ध्व०)-हिलोर, छलकने का भाव । उ० बूढ़ि गयो जाके बल बारिधि छलक में । (क० ६१२५) छलकारी-छल करने वाली, धोखेबाज उ० होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी । (मा० ३१२५१) छलकिहै-छलकगी, हिलोर लेगी, बह चलेगी । उ० मनि-खंभनि प्रतिबिब-फलक, छवि छलकिहै भरि अंगनैया । (गी० ११९) छलकै-छलकते हैं, छलकती हैं । उ० मनहु उमंगि अंग अंग छवि छलकै । (गी० ११२८) छलन-१. छल कार्य, धूर्तता का कार्य, २. छलने के लिए, ३. छलनेवाले । उ० ३. छलन बलि कपट बटु रूप बामन ब्रह्म, भुवन-पर्यंत पद-तीनि करण । (वि० ५२) छलही-छलते हैं, ठगते हैं । उ० बचक विरचि बेष जगु छलहीं । (मा० २१६८५) छलि-छलकर, धोखा देकर । छलाई-छल में, धोखे में, छल करने में । उ० पांडु के पूत सपुत्र, कूपुत सुजोधन भो कलि छोडो छलाई । (क० ७। १३१) छलिन-छली का बहुवचन, छलियों । उ० छलिन की छोड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पांति । (क० ७।१८) छली-छलनेवाला, कपटी, धोखेबाज । उ० छली मलीन हीन सबही अंग, तुलसी सो छीन छाम को ? (वि० ६९) छलु-दे० 'छल' । उ० १. जहँ जनमें जग जनक जगतपति विधि हरिहर परिहरि प्रपंच छलु । (वि० २४) छव-(सं० षट्)-छः, पाँच और एक, ६ । उ० जग तें रहु छतीस है राम चरन छव तीन । (सं० २२०) छवतीन-६ और ३ । छः तीन दोनों आसपास रखने पर सम्मुख रहते हैं अतः इसका अर्थ सम्मुखता, समीपता आदि लिया जाता है । दे० 'छव' । छहु-(सं० षट्)-१. सभी छः, २. सभी छः शास्त्र । उ० २. चारिहु को छहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ, ज्यों फारै । (क० ७।१०४) छहूँ-छओ, छहों । उ० कीरति सरित छहूँ रितु रुरी । (मा० १। ४२।१) छवनी (१)-(सं० शावक, या सं० सुत, प्रा० सुध, हिं० सुधन, सुवन)-पुत्री, बच्ची, छोटी लड़की । उ० भई है प्रगत अति, दिव्य देहधरि मानो त्रिसुवन-छवि-छवनी । (गी० १।५६) छवनी (२)-(सं० छादन)-छानेवाली, ढकनेवाली । छवा-(सं० शावक या वत्स, हिन्दी बछवा)-१ किसी पशु का बच्चा, २. गाय का बच्चा, बाछा । उ० १. तैं रन के-हरि केहरि के बिदले अरि-कुंजर छैल छवा से । (हं० १८) छवि-(सं०)-१. शोभा, सौन्दर्य, २. कांति, प्रभा, चमक । छाँड़त-(सं० छर्वन)-छोड़ता है । उ० भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग । (मा० ६।३४ ख) छाँड़िहै-छोड़ते हैं, त्यागते हैं । उ० छाँड़िहै नचाइ हाहा कराइ । (गी० ७।२२) छाँड़ा-१. छोड़ दिया, त्यागा, २. छोड़ा

हुआ, राख । छाँड़ि-छोड़कर, त्यागकर । उ० रामनाम छाँड़ि जो भरोसो करै और रे ! (वि० ६६) छाँड़िए-त्यागिए, छोड़िए । उ० तहँ तहँ जिनि छिन छोह छाँड़िए कमठ-अड की नाई । (वि० १०३) छाँड़िगो-छोड़ गए, छोड़ गया । उ० कोपि पाँव रोपि, बस कै छोहाइ छाँड़िगो । (क० ६।२४) छाँड़िहौं-छोड़ंगा । उ० हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लागि अरयो हौं । (वि० २६७) छाँड़ी-छोड़ा । उ० सेवक-छोहतें छाँड़ी कुमा, तुलसी लख्यो राम सुभाव तिहारो । (क० ७।३) छाँड़ि-छोड़ो, त्यागो । उ० कह तुलसिदास तेहि छाँड़ि मैन । (गी० २।४८) छाँड़ि-१. छोड़ा, २. छोड़कर, त्यागकर, ३. छोड़ने से । उ० २. चलत कुपथ बेदमग छाँड़ि । (मं० १।१२।१) छाँड़िउं-छोड़ दिया, छोड़ दिया था । उ० बूढ़ जानि सठ छाँड़िउं तोही । (मा० ६।७४३) छाँड़्यो-(सं० छर्वन) छोड़ा, त्यागा । उ० छोनी में न छाँड़्यो छ्यो छोनप को छोना छोडो । (क० १।१८) छाँह-(सं० छाया)-परछाही, छाया, साया । उ०- जल को गए लखन हैं लारिका, परिखो, पिय छाँह घरीक छै ठाढ़े । (क० २।१२) छाँहौं-दे० 'छाँह' । छाइ-(सं० छादन)-१. छाकर, ढककर, २. छाओ, बनाओ, ३. फैला, ४. शोभित । उ० २. तुलसी घर बन बीच ही राम-प्रेम पुर छाइ । (दो० २५६) ३. सीतलता ससि की रहि सब जग छाइ । (बं० ३३) छाई (१)-(सं० छादन)-१. आच्छादित, छाई हुई, २. ढकी हुई, ३. फैली । उ० ३. सोभा सीवैं श्रीव चिबुकाधर बदन अमित छवि छाई । (वि० ६२) छाउ (१)-(सं० छादन)-छाओ, ढको । छाए-फैले, फैल गए, बिछ गए । उ० सकल लोक सुख संपति छाए । (मा० १।१९०।३) छाओ-१. छाता हूँ, ढकता हूँ, तोपता हूँ, छाऊँ, ढकूँ । छाई (२)-(सं० छाया)-दे० 'छाँह' । छाई (३)-(सं० चार)-राख, धूल, भस्म । छाउ (२)-(सं० छाया)-प्रतिबिब, छाँह, परछाहीं । उ० अपनाए सुग्रीव बिभीषण, तिन न तज्यो छल-छाउ । (वि० १००) छाक (१)-(?)-कलेवा, जलपान, । उ० बलदाउ देखियत दूरि ते आवति छाक पठाई मेरी मैया । (क० १९) छाक (२)-(सं० चकन)-मतवाला, उन्मत्त । छाके-(सं० चकन)-मतवाले, उन्मत्त, पिए हुए, अघाए हुए । उ० कै कलिकाल कराल न सूक्त मोह-मार-मद छाके । (वि० २२५) छाग-(सं०)-बकरा, अज । छाछी-(सं० छच्छिका)-मट्टा, मही, वह पानी मिला दही या दूध जिसका घी या मन्खन निकाल लिया गया हो । उ० छाछी को ललात जेते राम-नाम के प्रसाद । (क० ७। ७४) छाजति-(सं० छादन)-शोभा देती है, फबती है । उ० स्याम सरीर सुचंदन-चर्चिन, पीत दुकूल अधिक छवि छाजति । (गी० ७।१७) छाजा (२)-(सं० छादन)-१. शोभा देता है, फबता है, २. शोभित हुआ, सुन्दर लगा । उ० १. जो कछु

करहिं उनहिं सब छाजा । (मा० ३१७।७) छाजै-शोभा देती है, फबती है । उ० छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हें छत्रछाया । (क० १।८)

छाजा (२)-(सं० छाद)-छज्जा, छप्पर ।

छाजा (३)-(?)-१ डगर, रास्ता, ३. सूप ।

छाड़-छोड़, छोड़ो, छोड़ दो । उ० नाहिं त छाड़ कहाउब रामा । (मा० १२८१।१) छाड़इ-(सं० छर्दन)-छोड़ता है, छोड़ रहा है । उ० छोड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि । (मा० २।१३।४) छाड़न-छोड़ना, त्यागना । उ० भिक्षिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाहु । (मा० २।२८) छाड़ब-छोड़ना, छोड़ियेगा । उ० देवि न हम पर छाड़ब छोड़ । (मा० २।११८।१) छाड़हु-छोड़ो, छोड़ दो, छोड़ दीजिए । उ० छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहु । (मा० २।३।४) छाड़ा-छोड़ा, छोड़ता था, फँकता था । उ० बर-पइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा । (मा० ६।५२।२) छाड़ि-छोड़कर । उ० रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू । (मा० २।१४।१) छाड़िअ-छोड़िए, त्यागिए । उ० छाड़िअ सोच सकल हितकारी । (मा० २।१५०।४) छाड़िसि-छोड़ा, चलाया । उ० वीरघातिनी छाड़िसि साँगी । (मा० ६।५४।४) छाड़िहउँ-छोड़ूँगा, छोड़ूँगा । उ० तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भलीभाँति अपनाइ । (मा० १।१८।१) छाड़िहिं-छोड़ेंगे, त्यागेंगे । उ० सील सनेहन छाड़िहि भीरा । (मा० २।७१।२) छाड़े-१. छोड़े, २. छोड़ने से । उ० १. छाड़े विषम बिसिख उर लागे । (मा० १।८७।२) छाड़ेउ-छोड़ दिया, छोड़ा । उ० प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघु-वीर सम । (मा० ३।२)

छाता-(सं० छत्र)-पानी तथा धूप से बँचाने के लिए व्यव-हृत एक प्रसिद्ध वस्तु, झतरी । उ० कटि कै छिन बरिनिआँ छाता पानिहि हो । (रा० ८)

छाती-(सं० छादिन्)-१. सीना, वक्षस्थल, कुच, २. हृदय, उर, कलेजा, ३. दृढ़ता, हिम्मत । उ० २. कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती । (मा० १।११३।४)

छानि-(सं० चालन)-छानकर । उ० तुलसी भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ कोटिक कलेस करौ मरौ छार छानि सो । (क० ७।१६।१)

छाम-(सं० चाम)-१. क्षीण, पतला, कृश, २. थोड़ा, अल्प, ३. ध्वंश, नाश, क्षय । उ० १. राम छाम, लरिका लषन, बालि-बालकहि घाल को गनत रीछ जल ज्यों न घन मैं । (गी० ५।२३)

छाय (१)-(सं० छाया)-छाँह, छाया, परछाहीं ।

छाय-(२)-(सं० छादन)-आच्छादित करो, छाओ । छायउ-छा गया, फैल गया । उ० एहि बिधि ब्याहि सकल सुत जग जस छायउ । (जा० २०२) छाये-१. छाए, फैले, २. शरण ली, ठहरे । उ० २. छोनी-छोनी छाये छिति आपु निमिराज के । (क० १।८) छायो-छाया, छाया हुआ है । उ० काके भए गए सँग काके, सब सनेह छल-छायो । (वि० २००)

छाया-(सं०)-१. छाँह, परछाहीं, साया, २. प्रतिकृति, अक्स, परछाहीं, ३. शरण, रक्षा पनाह, ४. अनुकरण, नकल, ५. छाया हुआ, ढँका, ६. सूर्य की एक पत्नी का

नाम । उ० १. त्रिविध समीर सुसीतल छाया । (मा० १।१०६।२)

छार-(सं० चार)-१. राख, खाक, भस्म, २. धूल, ३. नमक, एक खारा पदार्थ । उ० १. तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा । (मा० १।१५५) २. दे० 'छारै' । छारै-छार को, धूल को । उ० पबबइ तँ छार, छारै पबबइ पलक ही । (क० ७।१६८)

छारा-दे० 'छार' । उ० २. चितवत कामु भयउ जरि छारा । (मा० १।८७।३)

छाल (१)-(सं० छल्ल)-१. बत्कल, वृक्ष का छिलका, २. चर्म, चमड़ा ।

छाल (२)-(सं० चालन)-नहाना, धोना, सफाई करना । छाला-दे० 'छाल (१)' । उ० २. तन बिभूति पट केहरि छाला । (मा० १।१२।१)

छालिका-धोनेवाली, स्वच्छ करनेवाली । उ० त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पापछालिका । (वि० १७)

छालित-साफ किया हुआ, नहलाया हुआ । उ० रघुपति-भगति-वारि-छालित चित विनु प्रयास ही सूझै । (वि० १२४)

छावत-छाये हों, फैले हों, फैलता है । उ० जनु सुनरेस देस पुर प्रसुदित प्रजा सकल सुख छावत । (गी० २।५०।२) छावन-छाने के लिए । उ० गुनि गन बोलि कहेउ नृप माँदव छावन । (जा० १२७) छावा (१)-(सं० छादन)-१. छाया, छाया गया, ढँका गया, २. छा गया, फैल गया । उ० २. सुजसु पुनीत लोक तिहुँ छावा । (मा० १।३६।१२)

छावा (२)-(सं० शावक)-बच्चा, पुत्र, बेटा ।

छाहीं-१. दे० 'छाँह', २. छाया में, छाँह में । उ० २. ते मिलये धरि-धूरि सुजोधन जे चलते बहु छत्र की छाहीं । (क० ७।१३२)

छाहूँ-छाया भी, परछाहीं भी । उ० काहे को रोस-दोस काहि धौ मेरे ही अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ । (वि० २७५) छाहूँ-१. छाँह का बहुवचन, २. छाँह में । उ० २. आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करै निज हाथ की छाहूँ । (क० ७।११)

छिति (१)-(सं० चिति)-पृथ्वी, धरती, जमीन । उ० कृदहि गगन मनहुँ छिति छाँड़े । (मा० २।१६१।३)

छिति (२)-(सं० चय)-क्षय, नाश, विनाश ।

छितिज-(सं० चितिज)-१. मंगल ग्रह, २. नरकासुर, ३. कंचुआ, ४. पेड़, ५. वह स्थान जहाँ दृष्टि पहुँचकर रुक जाती है और जमीन तथा आसमान मिले ज्ञात होते हैं ।

छितिपाल-(सं० चितिपाल)-राजा, भूपाल । उ० छाँड़ि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु । (क० ७।१८।१)

छिद्र-(सं०)-१. छेद, सुरास्र, २. दोष, ३. कमज़ोरी । उ० २. जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा । (मा० १।२।३)

छिन-(सं० चण)-छन, थोड़ा समय, क्षण । उ० ज्ञान कृपान समात लगत उर, बिहरत छिन-छिन होत निनारे । (क० ५६)

छिनि-(सं० छिन्न)-छीन, छीन कर । उ० देखि बधिक-बस

राजमरालिनि लषन लाल छिनि लीजै । (गी० ३।७)
 छिनु-दे० 'छिन' । उ० छिनु-छिनु लखि सिय राम पद
 जानि आपु पर नेहु । (मा० २।१३६)
 छिनुकु-क्षयभर, एक क्षय, थोड़ी देर । उ० कहहिं गवाँइअ
 छिनुकु अमु गवनब अबहिं कि प्रात । (मा० २।११४)
 छिप्र-(सं० चिम)-शीघ्र, जल्दी ।
 छिया-(सं० चिम)-१. धिनौनी वस्तु, गन्दी चीज, २.
 पाखाना, विष्य । उ० २. हौं समुझत साँई-द्रोहि की गति
 छार-छिया २ । (वि० ३३)
 छिरकै-(सं० चिस)-छिड़कते हैं । उ० छिरकै सुगंध-भरे
 मलय-रेनु । (गी० ७।२२)
 छींटी-(सं० चिस)-छींटें । उ० सोनित छींटी छटानि-जटे
 तुलसी प्रभु सोहैं, महाछवि छटी । (क० ६।२१)
 छीके-(सं० शिक्य)-१. सीका, सिकहर, डोरी से जाल
 की भाँति बनी चीज जो छत से छटकती रहती है और
 जिसमें दूध-दही आदि चीजें कुत्ते-बिल्ली से बँचने के लिए
 रखते हैं, २. छीके पर, सिकहर पर । उ० २. अब कहि
 देउँ कहति किन यों कहि माँगत दहिउ धरयो जो है
 छीके । (क० १०)
 छीजहिं-(सं० चयण)-चीण होते हैं, घटते हैं । उ० जाने
 ते छीजहिं कछु पापी । (मा० ७।१२।२) छीजहीं-नष्ट
 होते हैं, घटते हैं, क्षीण होते हैं । उ० चिक्करहिं मकँट
 भाखु छल-बल करहिं जेहिं खल छीजहीं । (मा० ६।८१।
 छं० १) छीजै-हानि उठावे, क्षीण हो । उ० सहि देख्यो,
 तुम्हसों कह्यो, अब नाकहि आई, कौन दिनहु दिन छीजै ?
 (क० ७)
 छीण-(सं० क्षीण)-१. दुर्बल, कमजोर, पतला, २. शिथिल,
 मंद ।
 छीन-दे० 'क्षीण' । उ० १. छुधा छीन बलहीन सुर सहजेहिं
 मिलिहहिं आई । (मा० १।१८१)
 छीनता-(क्षीणता)-१. क्षय, नाश, अंत, २. निर्बलता, कम-
 ज़ोरी, ३. क्षयता, दुबलापन, ४. सूक्ष्मता । उ० १. सुमि-
 रत होत कलिमल-छल-छीनता । (वि० २६२)
 छीना (१)-(सं० क्षीण)-क्षीण, हीन, रहित । दे० 'क्षीण' ।
 उ० उदासीन सब संसय छीना । (मा० १।६७।४)
 छीना (२)-(सं० छिन्न)-छीन लिया, ले लिया । छीनि-
 छीन, ले, हृदय । उ० छीनि छेइ जनि जान जइ
 तिमि सुरपतिह न लाज । (मा० १।१२५) छीने (१)-
 (सं० छिन्न)-१. छीन लिया, ले लिया, २. छीनने पर
 ले लेने पर, ३. छीने हुए । उ० २. विकल मनहुँ माखी
 मधु छीने । (मा० २।७६।२)
 छीने (२)-(सं० क्षीण)-१. क्षीण, कमजोर, दुर्बल, २.
 कमजोर होने पर ।
 छीबो-(सं० छुप)-छूना, स्पर्श करना । उ० ग्वालि बचन
 सुनि कहति जसोमति, भलो न भूमि पर बादर छीबो ।
 (क० ६)
 छीर-(सं० क्षीर)-१. दूध, २. पानी, ३. क्षीर, दूध में पके
 चावल आदि, ४. बूढ़ों से निकलने वाली लसदार वस्तु जो
 सूखने पर गोंद कहलाती है । उ० १. मिलै न मयत वारि
 घृत बिनु छीर । (वि० १६६) छीरै-दूध को ।

छीरनिधि-(सं० क्षीरनिधि)-क्षीर सागर । पुराणों के अनु-
 सार सात समुद्रों में से एक जो दूध से भरा माना जाता
 है । विष्णु इसी में शयन करते हैं । उ० सगुन छीरनिधि-
 तीर बसत ब्रज तिहुँ पर विदित बड़ाई । (क० ५१)
 छीरसिंधु-(सं० क्षीरसिंधु)-दे० 'क्षीर सागर' । उ० छीरसिंधु
 गवने मुनिनाथा । (मा० १।१२८।२)
 छीर-दे० 'क्षीर' । उ० १. होत प्रात बट छीर मगावा ।
 (मा० २।१५१।१)
 छुअत-(सं० छुप)-१. छूने, स्पर्श ले, २. छूता है । उ० १.
 ससि कर छुअत विकल जिमि कोछ । (मा० २।२६।२)
 छुआ-छूआ, स्पर्श किया । उ० रावन बान छुआ नहिं
 चापा । (मा० १।२५६।२) छुइ-१. छूकर, छूने से, २.
 छू जाता । उ० १. जासु छौं छुइ लेइअ सींचा । (मा०
 २।१६४।२) छुए-छूआ, स्पर्श किया । उ० दई सुगति सो
 न हेरि हरष हिय, चरन छुए पछिताउ । (वि० १००)
 छुयो-१. छूआ, स्पर्श किया, २. स्पर्श कीजिए । छुवै-छूकर,
 स्पर्श कर । उ० सुर तीरथ, तासु मनावत आवत, पावन
 होत हैं ता तन छुवै । (क० ७।३४)
 छुछुं दरि-दे० 'छुछुं दर' । उ० भइ गति साँप छुछुं दरि
 केरी । (मा० २।५५।२)
 छुटकाए-(सं० छुट)-छोड़ने पर, छूटने पर । उ० किलकि-
 किलकि नाचत छुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाए ।
 (गी० १।२६)
 छुटि-छूटकर, अलग होकर, छूट । उ० काटत सिर होइहि
 विकल छुटि जाइहि तव ध्यान । (मा० ६।६६) छुटिहहिं-
 छूटेंगे, अलग होंगे । उ० छुटिहहिं अति कराल बहु
 सायक । (मा० ६।२७।३) छुटिहि-छूटती है, छूटेगी । उ०
 मुससिदास प्रभु मोह-शंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे । (वि०
 १।१४) छुटै-१. छूटता, २. छूटने पर । उ० १. छुटै न
 बिपति भजे बिनु रघुपति नृति संदेह निबेरो । (वि०
 ८७)
 छुडाइ-(सं० छोरण)-१. छुड़ाकर, २. छुड़ा । उ० २.
 दीन्हों ना छुडाइ कहि कुल के कुठार सों । (क० ५।११)
 छुडाई-१. छुड़ाने की क्रिया, छुड़ा, २. छुड़ाया, ३. छीनने
 की क्रिया, छीन । उ० ३. जासु देस नृप लीन्ह छुडाई ।
 (मा० १।१५८।१) छुड़ाये-छुड़वाया, मुक्त किया ।
 छुडित-(सं० छुधित)-भूखा । उ० खेदखिन्न छुडित नृपित
 राजा बाजि समेत । (मा० १।१५७)
 छुद्र-(सं० छुद्र)-१. छोटा, अल्प, हलका, तुच्छ, २.
 दरिद्र, कंगाल, ३. नीच, ४. क्रूर, निर्दय, दुष्ट । उ० १.
 जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा । (मा० ३।२८।८)
 छुधा-(सं० छुधा)-भूख, खाने की इच्छा । उ० छुधाछीन
 बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आई । (मा० १।१८१)
 छुधावंत-भूखा, छुधित । उ० छुधावंत सब निसिचर मेरे ।
 (मा० ६।४०।१)
 छुधित-(सं० छुधित)-भूखा, छुधावंत । उ० मुदित छुधित
 जनु पाइ सुनाजू । (मा० २।२३।११)
 छुमित-(सं० छुमित)१. विचलित, चंचलचित्त, २. घब-
 राया हुआ । उ० १. छुमित पयोधि कुधर डगमगहीं ।
 (मा० ६।७६।३)

छुर-(सं० छुर)-छुरा, अस्त्र, छुरी ।
 छुरा-दे० 'छुर' । उ० सांपनि सौं खेलें, मेलें गरे छुराधार
 सौं । (क० २१११)
 छुरां-छोटा छुरा । उ० कपट छुरी उर पाहन टेई । (मा०
 २१२११)
 छुहे-(?)-रंगे हुए, नाना रंगों से चित्रित किए हुए । उ०
 छुहे पुरट घट सहज सुहाए । (मा० ११३४३३)
 छुछा-(सं० तुच्छ)-खाली, रिक्त, जिसमें कुछ न हो । उ०
 प्रेम भरा मन निज गति छुछा । (मा० २१२४२४)
 छुछां-छुछा का स्त्रीलिंग ।
 छुछां-दे० 'छुछा' । उ० बोली असुभ भरी सुभ छुछी ।
 (मा० २१२५४) छुछे-दे० 'छुछा' । उ० तेहि तें परेउ
 मनोरथु छुछे । (मा० २१३२११)
 छूट-(सं० छूट)-१. छूटा, मुक्त, २. छूटेगा । उ० १. छूट
 जानि वन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान । (मा०
 २१५१) २. हठ न छूट छूटै बरु देहा । (मा० ११८०३)
 छूटउ-छूटे, छूट जाय । उ० छूटउ बेगि देह
 यह मोरी । (मा० ११५१४) छूटत-१. छूटता
 है, मुक्त होता है, २. छूटने में । उ० २. जदपि
 मृषा छूटत कठिनई । (मा० ७११७१२) छूटहि-छूटते हैं,
 छूट जाते हैं । उ० सुनत श्रवन छूटहि सुनि ध्याना । (मा०
 ११६१२) छूटि-छूटकर, अलग होकर । उ० मनि गिरि
 गई छूटि जनु गांठी । (मा० ११३३१३) छूटिबे-छूटने,
 मुक्त होने । उ० छूटिबे की जतन बिसेष बाँध्यो जायगो ।
 (वि० ६८) छूटा-१. छूट गई, मुक्त हुई, २. फैली,
 फैलती है, ३. बच गई । उ० २. सोनित छूँटि-छूटानि-
 जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महा छबि छूटी । (क० ६१२१)
 छूटे-छूट जाती है, जाती रहती है । उ० जैसे दिवस दीप
 छबि छूटे । (मा० ११२६३३) छूटै-१. छूटता, २. छूटने
 पर, ३. छूटे, छूट जाय । उ० १. बाहिर कोटि उपाय करिय,
 अन्तर ग्रथि न छूटै । (वि० ११५) २. हठ न छूट छूटै
 बरु देहा । (मा० ११८०३)
 छूति-(सं० छूप)-छूतका, छूत, स्पर्श । उ० बचन विचार
 अचार तन, मन, करतब छल छूति । (दो० ४११)
 छुँका-(?)-वेरा, रोका । उ० मेघनाद सुनि श्रवन अस गदु
 पुनि छुँका आइ । (मा० ६१४६) छुँकां-१. छुँका, रोका,
 २. छुँकी हुई, अलग की हुई । उ० २. तनु तजि रहति
 छाँह किमि छुँकी । (मा० २१६७३)
 छेत्र-(सं० क्षेत्र)-१. जहाँ कुछ बोया जाता है, अन्न, २.
 २. योनि, उत्पत्ति स्थान, ३. पुण्यस्थान, प्रयाग, तीर्थ-
 स्थान, ४. पत्नी, भार्या, ५. स्थान ।
 छेत्र-दे० 'क्षेत्र' । उ० ३. छेत्रु अगम गदु गाढ़ सुहावा ।
 (मा० २१०२३)
 छेदन-(सं०)-१. छेदना, काटना, २. काटने में, नष्ट करने
 में । उ० २. भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम
 नमामहे । (मा० ७१३१) छे० १) छेदनि-छेदने या नष्ट
 करने की क्रिया । उ० सहस बाहु भुज छेदनिहारा । (मा०
 ११२७२४) छेदे-१. छेदा, २. छेदे हुए, छिदे हुए । उ० २.
 एक एकसर सिर निकर छेदे नभ उदत इमि सोहहीं । (मा०
 ६१२१ छुं० १)

छेम-(सं० छेम)-१. कल्याण, कुशल, मंगल, २. प्राप्त वस्तु
 की रक्षा, ३. सुख, आनंद । उ० १. जाय जोग जग छेम
 विनु, तुलसी के हित राखि । (दो० ४७२)
 छेमकरो-(सं०)-१. एक प्रकार की वील जिसका गला
 सफेद होता है । यह शुभ मानी जाती है । २. मंगल
 करनेवाली । उ० १. नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी
 चक चाप । (दो० ४६०)
 छेमा-दे० 'छेम' । उ० १. तेहि विनु कोइ न पावइ छेमा ।
 (मा० ७१६३३)
 छेरा-(सं० छेलिका)-बकरी, अजा । उ० छेरी छोरो, सोवै
 सो जगावो जागि जागि रे । (क० २१६)
 छैया-(सं० शावक)-बच्चे के लिए प्यार का शब्द, शिशु ।
 उ० कहति मरहाइ लाइ उर छिन-छिन छगन छबीले छोटे
 छैया । (गी० ११७)
 छैल-(सं० छवि + इल (प्रत्यय), प्रा० छइल)-१.
 छवियुक्त, सुन्दर, रंगीला, बाँका, शौकीन, २. गुंडा, ३.
 सजा हुआ युवक । उ० १. तैं रनकेहरि केहरि के बिदले
 अरि-कुंजर छैल छवा से । (ह० १८)
 छैहैं-छा जायेंगे । उ० दिव्य दुंदुभी, प्रसंसिहैं मुनिगन,
 नभतल विमल विमाननि छैहैं । (गी० २१२०)
 छोड़ां-(सं० शावक)-लडकी, बालिका । उ० छलिन की
 छोड़ी सो निगोदी छोटी जाति पाँति । (क० ७१८)
 छोटा-(सं० छद्र)-१. छद्र, नीच, खोटा, २. लघु, छोटा,
 ३. सामान्य, साधारण, ४. ओछा, महत्त्वहीन । उ० १.
 भाग छोटे अभिलाषु बढ करउँ एक बिस्वास । (मा० ११८)
 छोटाई-१. छद्रता, नीचता, २. लघुता, छोटापन । उ० २.
 बढे की बढाई, छोटे की छोटाई दूर करै । (वि० १८३)
 छोटे-दे० 'छोटी' ।
 छोटिये-छोटी ही, छोटी सी ही । उ० छोटिये कछौटी कदि,
 छोटिये तरकसी । (गी० १४२) छोटी-लघु, जो बड़ी न
 हो । उ० प्रभु की बढाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी ।
 (वि० २६२) छोटे-दे० 'छोट' । उ० २. छोटे-छोटे छोहरा
 अभागे भोरे भागि रे । (क० २१४) छोटेउ-छोटे भी ।
 उ० नाम प्रताप महामहिमा, अकरे किए खोटेउ, छोटेउ
 बाढ़े । (क० ७१२७)
 छोड़उं-छोड़ूँ, छोड़ता हूँ, छोड़ रहा हूँ । उ० उतर देत
 छोड़उं विनु मारें । (मा० ११२७२४) छोड़ति-छोड़ देती,
 छोड़ देती है । उ० छोड़ति छोड़ाये तैं, गहाए तैं गहति ।
 (वि० २४६)
 छोड़ाए-(सं० छोरण) छोड़ाए, छोड़ा दिये । उ० दया लागि
 हँसि तुरत छोड़ाए । (मा० २१२१४) छोड़ावा-छुड़ाया,
 मुक्त करवाया । उ० सो पुलस्ति सुनि जाइ छोड़ावा ।
 (मा० ६१२४८)
 छोना-(सं० शावक)-बच्चा, लडका । उ० छोनी में न
 डाँड्यौ छप्यौ छौनिप को छोना छोटे । (क० १११८)
 छौनिप-(सं० क्षौण्डिप)-१. भूप, राजा, २. क्षत्रिय, राज-
 पुत्र । उ० १. छोनी में न डाँड्यौ छप्यौ छौनिप को छोना
 छोटे । (क० १११८)
 छोनी-(सं० क्षौण्डिप)-पृथ्वी, धरती, भूमि । उ० सहज छमा
 बरु छाड़ै छोनी । (मा० २१२३२१)

छोनीपति-(सं० चोणीपति)-राजा, भूप, नृप । उ० छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्है छत्रछाया । (क० ११८)
 छोभ-(सं० चोभ)-चित्त का विचलित होना । कष्ट, दुःख, शंका, मोह, लोभ आदि के कारण चित्त का चंचल होना, घबराहट, खलबली । उ० लोभ न छोभ न राग न क्रोहा । (मा० २१३०११)
 छोभा-दे० 'छोभ' । १. चोभ, २. क्रुध हुआ । उ० २.पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा । (मा० १२५८११)
 छोभित-(सं० चोभित)-चंचल, भयभीत, विचलित, घबराया हुआ ।
 छोभु-दे० 'छोभ' । उ० संकर उर अति छोभु सती न जानहि मरसु सोइ । (मा० ११४८ ख)
 छोर्-(सं० छोर्ण)-१. मुक्त करनेवाला, छोड़ने या छुड़ानेवाला, २. किनारा, अंत, सीमा, ३. नोक अनी । उ० १. बंदि-छोर तेरो नाम है, बिरुदैत बढेरो । (वि० १४६)
 छोर्इ-१. छोड़े, खोले, २. खोलता है, छुड़ा देता है । उ० २. देखी भगति जो छोर्इ ताही । (मा० १२०२१२)
 छोर्त-१. छोड़ता है, मुक्त करता है, २. छीनता है, अपहरण करता है, ३. खोलते हुए । उ० ३. छोर्त अंधि जानि खगराया । (मा० ७११८३)
 छोर्न-छोड़ने, खोलने । उ० छोर्न अंधि पाव जौ सोई । (मा० ७११८३)
 छोरी (१)-(सं० छोर्ण)-१. छोड़ा, खोला, २. छीना, लिया, ३. छोड़, खोल, मुक्तकर । उ० ३. सोइ अविच्छिन्न ब्रह्म जसुमति बाँध्यो हटि सकत न छोरी । (वि० ६८)
 छोरे-१. छोड़े, खोले, २. छीन । उ० २. अवलोकत मुख देत परम सुख लेत सरद-ससि की छबि छोरे । (गी० ३१२)
 छोरो-छोड़ो, खोलो । उ० हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष बृषभ छोरो । (क० ११६)

छोरी (२)-(सं० शावक)-लडकी ।
 छोखत-(सं० छखल)-१. छीलते हुए, २. छीलते हैं, ३. छीलने में । उ० ३. रच्यो रची बिधि जो छोखत छबि-छूटी । (गी० २१२१)
 छोखलिछालि-छील छालकर, साफ कर, ठीक कर, काटपीट कर । उ० गदि-गुदि छोखलि छालि कुंद कींसी भाई वातैं । (क० ७१६३)
 छोलां-१. छीला, २. छीलकर, काट कर । उ० २. सजि प्रतीति बहुबिधि गदि छोली । (मा० २१७१२)
 छोह-(सं० चोभ)-१. ममता, प्रेम, स्नेह, २. दया, अनुग्रह, ३. दुःख । उ० १. भाई को न मोह, छोह सीय को न, तुलसीस । (क० ६१६२)
 छोहरा-(सं० शावक)-छोकड़ा, बालकों के लिए अनादर या प्यार का शब्द । उ० छोटे-छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे । (क० ११६)
 छोहा-दे० 'छोह' । उ० २. नाथ कीन्हि मोपर अति छोहा । (मा० ७१२३१२)
 छोहाइ-कृपाकर, स्नेह कर । उ० कोपि पाँव रोपि, बस कै छोहाइ छाँदिगो । (क० ६१२४)
 छोहु-दे० 'छोह' । उ० २. करहि छोहु सब रौरिहि नाई । (मा० २१३१२)
 छोहु-दे० 'छोह' । उ० १. आरति मोर नाथ कर छोहु । (मा० २१३१३३)
 छोड़ी (१)-(सं० शावक)-छोरी, लडकी ।
 छोड़ी (२)-(सं० चुंढा)-अनाज आदि रखने के लिए मिट्टी का एक बहुत बड़ा बर्तन ।
 छोड़ी (३)-(?)-दही मथने की मथानी ।
 छोना-(दे० छवनी)-बच्चा, छोटा लडका, बालक । उ० मनहुँ विनोद लरत छबि छोना । (गी० ११२१)

ज

जंगम-(सं०)-१. चलने फिरनेवाला, चर, चलता फिरता, २. एक विशिष्ट प्रकार के साधु । उ० १. जो जग जंगम तीरथराजू । (मा० १२१४)
 जंघा-दे० 'जंघा' ।
 जंघ-दे० 'जंघा' । उ० कल कदलि जंघ, पद कमल लाल । (वि० १४)
 जंघा-(सं०)-घुटने से ऊपर का भाग, रान, उर । उ० जंघा जानु आनु केदलि उर, कटि किंकिनि, पटपीत सुहावन । (गी० ७१६)
 जंजाल-(सं० जग + जाल)-१. प्रपंच, संसृष्ट, बखेड़ा, २. बंधन, फँसाव, ३. बड़ा जाल जिसमें जीव-जंतु फँसाए जाते हैं । उ० २. तुलसिदास सठ तेहि भजु छाबि कपट जंजाल । (मा० १२११)
 जंजाला-दे० 'जंजाल' । उ० १. तथा- २. गृह कारज नाना जंजाला । (मा० १३८४)

जंता (१)-(सं० यंत्र)-यंत्रणा देनेवाला, शासन करनेवाला । उ० साकिनी-डाकिनी-पूतना-प्रेत-बैताल-भूत-प्रमथ-जूथ-जंता । (वि० २६)
 जंता (२)-(सं० यंत्र)-१. यंत्र, मशीन, २. कला, हुनर ।
 जंता (३)-(?)-सारथी, सूत ।
 जंतु-(सं०)-जीव, प्राणी, जानवर, जन्म लेनेवाला, देहधारी, कीट-पतंग, छुद्र जीव । उ० कासीं मरत जंतु अवलोकी । (मा० १११६११)
 जंत्र-(सं० यंत्र)-१. कल, औजार, २. तांत्रिक यंत्र, ३. ताला, ४. बाजा । उ० १. सुकृत-सुमन तिल-मोद बासि बिधि जतन-जंत्र भरि धानी । (गी० ११४) २. जयति पर-जंत्र-मंत्राभिचार-असन, कारमनि-कूट-कृत्यादि-हंता । (वि० २६)
 जंत्रित-(सं० यंत्रित)-१. बंद, ताला दिया हुआ, २. बंधा

हुआ, बशीभूत, ३. पीड़ित । उ० १. लोचन निज पद जन्तित जाहिं प्रान केहिं बाट । (मा० ११३०)

जंत्री-(सं० यंत्रिन्)-१. वय में किया हुआ, २. कील किया हुआ, ताला दिया हुआ, ३. ताला, शिकंजा, ४. तार खींचने का यंत्र । उ० २. भरत भगति सब कै मति जंत्री । (मा० २१३०३१)

जंबु-(सं०)-जामुन का पेड़ या जामुन का फल । उ० पाकरि जंबु रसाल तमाला । (मा० २१२३७१)

जंबुक-(सं०)-गीदड़, शृगाल, सियार । उ० कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खपर संचहीं । (मा० ३१२०१ छं० १)

जंबुकनि-जंबुक का बहुवचन, बहुत से गीदड़ । उ० हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो । (क० ६१४६)

जंभात-(सं० जंभन)-१. जंभाई लेते हैं, उनीदें होते हैं, २. जंभाते हुए । उ० २. हौ जंभात अलसात, तान ! तेरी बानि जानि मैं पाई । (गी० १११६)

ज-१. उत्पन्न, जात, पैदा, २. वेग, गति, ३. विष, ज़हर, ४. जन्म, उत्पत्ति, ५. पिता, ६. जीतनेवाला, ७. प्रेत, पिशाच, ८. तेज, प्रकाश, ९. वेगवान, १०. विष्णु, ११. जगण । इसके आदि और अंत में लघु और मध्य में गुरु-वर्ण होता है । जा = 'ज' का खीलिंग । जैसे 'गिरिजा' = गिरि से उत्पन्न बालिका अर्थात् पार्वती । दे० 'गिरिजा' ।

जइहैं-१. जायेंगे, २. नष्ट हो जायेंगे । उ० २. तुलसी ते दसकंध ज्यो जइहैं सहित समाज । (दो० ४१६)

जई (१)-(सं० यव)-१. अंकुर, अंखुआ, २. उन फलों की बतिया जिनमें बतिया के साथ फूल भी लगा रहता है । जैसे खीरे या कुम्हड़े आदि की जई । ३. जौ का छोटा अंकुर, ४. एक प्रकार का अन्न जो जौ से पतला होता है । उ० २. सरूप बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है । (वि० १३६)

जई (२)-(सं० जयिन्)-विजयी, जीतनेवाला । उ० तुलसी मुदित जाको राजा राम जई है । (गी० ११८४)

जउ (१)-(सं० यः)-जो, यदि, अगर ।

जउ (२)-(सं० यव)-जौ, एक प्रसिद्ध अन्न ।

जए-(सं० जय)-१. जीत लिए, २. विजय की कामना का शब्द, जय । उ० १. नहिं तनु सम्हारहिं, छवि निहारहिं निमिष रिपु जनु रन जए । (जा० १२३) २. उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलाई जय जए । (मा० ६१ १०२१ छं० १)

जक्षपति-(सं० यक्षपति)-कुबेर, यक्षों के पति ।

जग (१)-(सं० जगत्)-१. संसार, दुनिया, २. जंगम, ३. वायु, ४. संसार के लोग । उ० १. तव प्रभाउ जग विदित न केही । (मा० २११०३३) जगजोनी-(सं० जगत् + योनि)-१. ब्रह्मा, विधाता, २. शिव, ३. विष्णु, ४. पृथ्वी, ५. संसार की ८४ लाख योनियाँ । उ० २. हरी बिमल गुनगन जगजोनी । (मा० २१२६७२) जग-योनि-(सं०)-१. ब्रह्मा, २. संसार की ८४ लाख योनियाँ । उ० २. पाप संताप घनघोर संसृति दीन अमृत जगयोनि नहिं कोपि नाता । (वि० ११) जगयोनी-दे० 'जगयोनि' ।

जगहि-जग को, संसार को । उ० जो माया सब जगहि नचावा । (मा० ७७२११)

जग (२)-(जगमग)-जगमगाना ।

जगत (१)-(सं० जगत्)-१. विरव, संसार, दुनिया, २. पृथ्वी, ३. वायु, ४. महादेव, ५. जंगम । उ० १. संकस जगतबंध जगदीसा । (मा० ११५०३) जगतमातु-(सं० जगत् + मातृ)-१. संसार की माता, २. पार्वती, ३. सीता ।

जगत (२)-(सं० जगति)-कूप के ऊपर का चबूतरा ।

जगती-(सं०)-१. संसार, भुवन, २. पृथ्वी, ३. लोग । उ० २. धन्य जनमु जगतीतल तासू । (मा० २१६११)

जगतु-दे० 'जगत (१)' । उ० १. जननी कुमति जगतु सब साखी । (मा० २१२६२११)

जगत्-दे० 'जगत' ।

जगत्र-(सं० जगत्)-संसार, विश्व । उ० करता सकल जगत्र को भरता सब मन-काम । (स० १५०)

जगदंत-(सं० जगत् + अंत)-संसार का अंत करनेवाला, शिव ।

जगदंब-दे० 'जगदंबा' ।

जगदंबा-(सं० जगत् + अंबा)-१. जगत की मता, २. दुर्गा, भवानी, ३. पार्वती, ४. आदि शक्ति । उ० ३. मैं पाँ परउँ कहइ जगदंबा । (मा० ११८११४)

जगदंबिका-(सं० जगत् + अंबिका)-दे० 'जगदंबा' । उ० १. जगदंबिका जानि भवभामा । (मा० १११००४) जगदंबिके-हे जगदंबिका । दे० 'जगदंबिका' । उ० ३. छमुख-हेरंब-अंबासि जगदंबिके ! (वि० १५)

जगदाधार-(सं० जगत् + आधार)-१. जगत के आधार, २. शेष, ३. वायु, ४. धर्म, ५. ईश्वर । उ० १. जगदाधार शेष किमि उठै चले खिसिआइ । (मा० ६१४४)

जगदीश-(सं०)-ईश्वर, भगवान ।

जगदीस-(सं० जगत् + ईश)-१. जगत के ईश, भगवान्, २. राजा, पृथ्वीनाथ । उ० १. कोसलाधीस जगदीस जगदेकहित अमित गुन, विपुल बिस्तार लीला । (वि० ५२) जगनिवास-दे० 'जगन्निवास' । उ० जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम । (मा० १११६१)

जगन्निवास-(सं०)-१. जिसमें सब संसार बसता है, संसार के निवास, २. भगवान, ईश्वर । उ० १. भई आस सिथिल जगन्निवास-दील की । (क० ६१२२)

जगमगत-(अनु०)-जगमगाता है, चमकता है, प्रकाशित होता है । उ० जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे । (मा० ११३१६१ छं० १)

जगमगात-जगमगा रहा है, चमक रहा है । उ० जगमगात मनिखंभन माहीं । (मा० ११३२४२)

जगाई-(सं० जागरण)-१. जगाया, उठाया, २. जगाकर, चैतन्य कर । उ० १. तेहि समाज रघुराज के मृगराज जगाई । (गी० १११०१) जगाएहि-जगाया, उठाया । उ० अब मोहि आइ जगाएहि काहा । (मा० ६१६३१) जगा-वहु-जगाओ, उठाओ । उ० जाहु सुमंत्र जगावहु जाई । (मा० २१३८१) जगावती-जगाती है, सचेत करती है । उ० जानकीस की कृपा जगावती, सुजान जीव ! (वि० ७४) जगावा-जगाया, उठाया । उ० जागत नहिं बहुभाँति जगावा । (मा० ६१५६२)

जगु-जग, संसार, विश्व । उ० जगु पेखन तुम्ह देखनि हारे । (मा० २।१२७।१)

जगै-१. जगती है, २. चमकती है, ३. प्रकट होती है । उ० २. तथा ३. चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन मोल अमोलन की । (क० १।५)

जगय-(सं० यज्ञ)-दे० 'यज्ञ' । उ० पिता जग्य सुनि कछु हरषानी । (मा० १।६१।३)

जग्यउपनीत-(सं० यज्ञोपवीत)-जनेऊ । उ० पीत जग्य-उपवीत सुहाए । (मा० १।२४४।१)

जच्छ-दे० 'यज्ञ' । उ० जच्छ जीव लै गए पराई । (मा० १।१७६।२)

जच्छपति-दे० 'यज्ञपति' । कुबेर । उ० रच्छक कोटि जच्छ-पति केरे । (मा० १।१७६।१)

जच्छेस-(सं० यज्ञेश)-कुबेर, धन के देवता । उ० तीरथ पति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ तेहि । (क० ७।११५)

जजाति-दे० 'ययाति' । जजातिहि-राजा ययाति को । दे० 'ययाति' । उ० तनय जजातिहि जौबनु दयऊ । (मा० २। १७४।४)

जजाती-दे० 'जजाति' । उ० सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती । (मा० २।१४८।३)

जजुर-दे० 'यज्ञवेद' । उ० पहिबो परयो न छठी छमत, ऋगु जजुर, अथर्वन, साम को । (वि० १५५)

जज्ञ-दे० 'यज्ञ' । उ० जज्ञ, विवाह-उछाह, व्रत सुभ तुलसी सब साज । (प्र० ७।१।७)

जज्ञेस-(सं० यज्ञेश)-यज्ञों के स्वामी, १. विष्णु, २. महादेव ।

जट-(सं० जटन)-आसक्त होना, लगना ।

जटजूट-दे० 'जटाजूट' । उ० १. कोदंड कठिन चढ़ाई सिर जटजूट बाँधत सोह क्यो । (मा० ३।१८८। १)

जटनि-(सं० जटा)-जटा का बहुवचन, जटाएँ, बालों का समूह । उ० मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के । (क० २।१६)

जटा-(सं०)-१. एक में उलके हुए सिर के बड़े-बड़े बाल । ऐसे बाल प्रायः साधू लोग रखते हैं । २. जड़ के पतले-पतले सूत, ३. नारियल बरगद आदि की जटाएँ, ४. शाखा, ५. जटामाँसी, ६. पाटजूट, ७. केवाँच, ८. रुद्र की जटा, ९. वेदपाठ का एक भेद । उ० १. अनुज सहित सिर जटा बनाए । (मा० २।६४।२) जटाजूट-(सं०)-१. जटा का समूह, बड़े-बड़े बाल, २. शिव की जटा । उ० १. जटाजूट हड़ बाँधें माथें । (मा० ६।८६।४)

जटाय-दे० 'जटायु' । उ० तज्यो तनु संग्राम जेहि लागि गीध जसी जटाय । (गी० ७।३१)

जटायु-(सं०)-रामायण का एक प्रसिद्ध गिद्ध । यह सूर्य के सारथी अरुण का पुत्र था और उसकी श्येनी नाम की स्त्री से उत्पन्न था । यह रामभक्त था । सीता को जब रावण हरकर ले जा रहा था तो जटायु उससे लड़ा था और बुरी तरह घायल हुआ था । राम के आने पर इसने सीताहरण का समाचार उनको सुनाया और मर गया । राम ने अपने हाथ से इसकी अत्येष्टि क्रिया की । संपाती जटायु का भाई था ।

जटायू-दे० 'जटायु' । उ० जाना जरठ जटायू एहा । (मा० ३।२६।७)

जटित-(सं०)-जड़ा हुआ, युक्त । उ० रत्नहाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भानुसुत-सदस उद्योतकारी । (वि० ५१)

जटिल-(सं०)-१. जटावाला, जटाधारी, २. कठिन, दुरूह, दुर्बोध, ३. क्रूर, दुष्ट, हिंसक, ४. सिंह, ५. ब्रह्मचारी, ६. बरगद का पेड़ । उ० १. जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल बेष । (मा० १।६७)

जटे-जड़े हुए, युक्त । उ० सोनित छींटी-छटानि-जटे तुलसी प्रभुसोहि, महा छबि छूटी । (क० ६।५१) जटो-जड़ा हुआ, जटित, युक्त । उ० कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट मूँठ-जटो । (क० ७।८६)

जठर-(सं०)-१. पेट, कुच्छि, २. कठिन, कड़ा, मजबूत, ३. शरीर, देह, ४. बृद्ध, बूढ़ा । उ० १. कैकई जठर जनमि जग माहीं । (मा० २।१८०।४)

जठरागी-(सं० जठराग्नि)-पेट की वह अग्नि या गर्मी जिससे अन्न पचता है । पित्त की कमी वेशी से यह चार प्रकार की मानी गई है । उ० जिमि सो असन पचवै जठरागी । (मा० ७।११६।५)

जठेरिन्ह-बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ । उ० जरठ जठेरिन्ह आसिरबाद दुए हैं । (गी० १।११) जठेरी-(सं० ज्येष्ठ)-बड़ी, बूढ़ी । उ० बिप्रबधु कुलमान्य जठेरी । (मा० २।४६।२)

जड़-(सं० जड़)-१. जिसमें चेतनता न हो, अचेतन, २. चेष्टाहीन, स्तब्ध, ३. मंदबुद्धि, मूर्ख, ४. शीतल, ठंडा, ५. गुँगा, ६. बहरा, ७. अनजान, अनभिज्ञ, ८. जिसके मन में मोह हो, ९. जो वेद पढ़ने में असमर्थ हों, १०. जल, पानी, ११. सीसा नाम की धातु, १२. नींव, बुनियाद, १३. कारण, हेतु, १४. आधार, सहारा, १५. वृक्षों या पौधों का वह भाग जो ज़मीन में रहता है, मूल, १६. अहित्या, १७. नीच, झुरा, १८. पाँच जड़ पदार्थ (पृथ्वी, जल, पावक, गगन, समीर) जिनसे शरीर की रचना मानी जाती है । उ० ३. ज्यों गज-काँच बिलोकि सेन जड़ छौंह आपने तन की । (वि० ६०) १७. पैरि पार चाहहि जड़ करनी । (मा० ७।११५।२) १८. जड़ पंच मिलै जेहि देह करी । (क० ७।२७) जड़न्ह-जड़ों, वृक्ष नदी आदि बेजान चीज़ों । उ० जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी । (मा० १।८५।२) जड़हि-जड़ को, मूर्ख को । उ० जड़हि बिबेक, सुसील खलहि अपराधिहि आदर दीन्हों । (वि० १७१)

जड़ता-१. अचेतनता, २. मूर्खता, ३. नीचता, ४. मोह । उ० २. जड़ता जाड़ विषम उर लागी । (मा० १।३६।१)

जड़ताई-१. जड़ता, मूर्खता, २. मोह । उ० १. हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई । (मा० १।७८।२)

जड़ाव-(सं० जटन)-जड़ने का काम, पच्चीकारी ।

जत (१)-(सं० यत्)-जितना, जिस मात्रा का, जितने । उ० जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि । (मा० १।७ ग)

जत (२)-(सं० यत्न)-प्रयत्न, जतन ।

जत (३)-(सं० यति)-ताल विशेष, होली का ठेका या ताल ।

जतन-(सं० यत्न)-१. प्रयत्न, उपाय, २. श्रम, उद्योग, ३. रक्षा। उ० १. जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई। (मा० १।३।३) जतनु-दे० 'जतन'। उ० १. करि सब जतनु राखि रखवारे। (मा० २।१८६।४)

जति (१)-(सं० जिति)-जीतनेवाला। उ० चरन पीठ उन्नत नत-प लक, गूढ़ गुलुफ, जंघा कदली जति। (गी० ७।१७)

जति (२)-(सं० यति)-जिसने इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो, विरक्त, योगी, संन्यासी। उ० स्वान खग जति न्याय देख्यो आयु बैठि प्रबीन। (गी० ७।२४) जतिहि-जती को, योगी को, संन्यासी को। उ० जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास। (मा० २।२६)

जती-(सं० यति)-संन्यासी, योगी। उ० जागै जोगी जंगम-जती जमाती ध्यान धरै। (क० ७।१०६)

जत्र-(सं० यत्र)-जहाँ।

जत्रु-(सं०)-गले से पास की हड्डी, हँसली। उ० यज्ञो-पवीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंसतति। (गी० ७।१७)

जथा (१)-(सं० यथा)-१. जिस प्रकार, जैसे, ज्यों, २. सहश, अनुकूल, ३. जिस। उ० १. जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग। (दो० ५०५) ३. लागि देव माया सबहि जथा जोगु जनु पाइ। (मा० २।३०२) जथाथित-(सं० यथा+स्थित)-जैसा का तैसा, ज्यों का त्यों, पूर्ववत्। उ० भयउ जथाथिति सबु संसारू। (मा० १।८६।१) जथाविधि-(सं० यथाविधि)-विधिवत्, विधि के अनुसार। उ० मिले जथाविधि सबहि प्रभु परम कृपाल बिनीत। (मा० १।३०८) जथारुचि-(सं० यथारुचि)-इच्छानुसार, मनमानी। उ० बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ। (पा० ६५) जथालाभ-(सं० यथालाभ)-लो कुछ मिले, जो भी थोड़ा-बहुत लाभ हो। उ० आठवँ जथालाभ संतोषा। (मा० ३।३६।२) जथोचित-(सं० यथोचित)-जैसा चाहिए, मुनासिब, ठीक। उ० सबहि जथोचित आसन दीन्हे। (मा० १।१००।१)

जथा (२)-(सं० यूथ)-गिरोह, झुंड, समूह।

जथा (३)-(सं० गथ)-पूँजी, धन, संपत्ति।

जथारथ-(सं० यथार्थ)-ठीक, वाजिब, यथार्थ, तत्त्व। उ० बोध जथारथ बेद पुराना। (मा० ३।४६।३)

जथारथु-दे० 'जथारथ'। उ० कोउ न राम सम जान जथारथु। (मा० २।२५।३)

जद-(सं० यदा)-जब, जब कभी।

जदपि-(सं० यद्यपि)-अगरचे, यद्यपि। उ० जदपि कबित रस एकउ नाहीं। (मा० १।१०।४)

जदुनाथ-(सं० यदुनाथ)-श्रीकृष्ण। उ० मथुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए। (क० ५०)

जदुपति-(सं० यदुपति)-१. श्रीकृष्ण, यदुनाथ, २. ययाति। उ० १. जदुपति मुख छबि कलप कोटि लागि, कहि न जाइ जाके मुख चारी। (क० २२)

जदुराई-(सं० यदुराज)-श्रीकृष्ण। उ० पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई। (क० १)

जद्यपि-(सं० यद्यपि)-जदपि, यद्यपि, अगरचे। उ० जद्यपि ताको सोइ मारग प्रिय जाहि जहाँ बनि आई। (क० ५१)

जन (१)-(सं०)-१. आदमी, लोग, मनुष्य, २. गँवार, देहाती, ३. प्रजा, रिआया, ४. अनुयायी, ५. सेवक, दास, ६ घर, मकान, ७. सात लोकों में से पाँचवाँ लोक, जिसमें ब्रह्मा के मानस पुत्र और बड़े-बड़े योगीन्द्र रहते हैं। उ० १. प्रचुर-भव-भंजन, प्रणत-जन-रंजन, दास-तुलसी शरण सानुकूलं। (वि० १२) जनहि-जन को, दास को, सेवक को। उ० जनहि मोर बल निज बल ताही। (मा० ३।४३।५) जनही-जन का, दास का। उ० राम सुस्वामि दोसु सब जनही। (मा० २।२३।१) जनेषु-आदिमियों में, मनुष्यों में। उ० कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुखु अह मम मलिन जनेषु। (मा० २।२२।५)

जन (२)-(सं० जन्य)-जनित, उत्पन्न। उ० तुरित अबिद्या जन तुरित बर तुल सम करि लेत। (सं० ३।१४)

जनक-(सं०)-१. पिता, बाप, २. सीता के पिता, मिथिलेश, ये संसार में रहते हुए भी, संसार से विरक्त और बहुत बड़े ज्ञानी थे। ३. उत्पादक, जन्मदाता, ४. मिथिला के एक राजवंश की उपाधि। उ० १. पाहि भैरवरूप रामरूपी रुद्र, बंधु गुरु जनक जननी विधाता। (वि० ११) जनक-अनुज-राजा जनक के भाई कुशध्वज। इनकी दो पुत्रियाँ माण्डवी और श्रुतकीर्ति थीं, जिनका विवाह भरत और शत्रुघ्न से हुआ था। उ० जनक-अनुज-तन या दुइ परम मनोरम। (जा० १७२) जनकजा-(सं०)-१. सीता, जानकी, २. उर्मिला। उ० १. बाम दिसि जनकजासीन, सिंहासन कनक-मृदु पल्लवित तरु तमालं। (वि० ५१) जनकनगर-दे० 'जनकपुर'। उ० जनकनगर सर कुमुदगन, तुलसी प्रसुदित खोग। (प्र० १।४।७) जनकहि-पिता की, पिता से। उ० मम जनकहि तोहि रही मितार्ह। (मा० ६।२०।१) जनकौ-पिता भी। उ० बल अपनो न; हिनू जननी न जनकौ। (क० ७।७७) जनकौर-जनक का स्थान, जनकनगर। उ० सिय नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि। (जा० १३४) जनकौरा-जनकपुर, जनकपुर के लोग। उ० कोसलपति गति सुनि जनकौरा। (मा० २।२७।११)

जनकपुर-(सं०)-मिथिला की प्राचीन राजधानी। राजा जनक की नगरी। उ० जनकनंदिनी जनकपुर, जब तें प्रगटीं आई। (प्र० ४।१।१)

जनकु-दे० 'जनक'। उ० २. जनकु रहे पुर बासर चारी। (मा० २।३२।३)

जनतेउँ-(सं० ज्ञान)-जानता, मैं जानता। उ० जौ जनतेउँ बन बंधु बिछोइहू। (मा० ६।१६।३) जनिअहि-जान ही पढ़ेंगे, जान पढ़ेंगे। उ० पल सम होहि न जनिअहि जाता। (मा० २।२८०।४) जनिबे-जानने, जानना। उ० कहिबे को सारद सरस, जनिबे को रघुराउ। (दो० २०२) जनियत-१. जान पढ़ता है, जाना जाता है, २. जानता हूँ। उ० १. तुलसि राम-जनमहि तें जनियत सकल सुकृत को साज। (गी० १।४७) जनिहैं (१)-(सं० ज्ञान)-जानेंगे, समझेंगे। उ० चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं। (वि० ६५)

जनत्राता-भक्तों की रक्षा करनेवाला, भगवान। उ० मैं बन गयउँ भजन जनत्राता। (मा० ७।११०।५)

जननि-दे० 'जननी' । उ० १. प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिं बुध, न गँवार । (दो० ३२८)

जननिउ-जननी भी, माता भी । उ० जो सुत तात-बचन पालन रत जननिउ तात ! मानिबे लायक । (गी० २।३)

जननिन्ह-माताएँ, माताओं ने । उ० जननिन्ह सादर बदन निहारे । (मा० १।३५८।४) जननिहि-माता को । उ० चले जनक जननिहि सिरु नाई । (मा० २।७६।४)

जननी-(सं०)-१. उत्पन्न करनेवाली, २. माता, मा, ३. कुटुंबी, ४. आलता, महावर, ५. दया, कृपा । उ० २. पाहि भैरव रूप रामरूपी रुद्र, बंधु गुरु जनक जननी विधाता । (वि० १।१)

जनपद-(सं०)-देश । आजकल के प्रांतों की भाँति पहले देश कई जनपदों में विभक्त होता था । कभी-कभी अलग अलग जनपदों के अलग अलग राजा भी होते थे । उ० ज्यों हुलास रनिवास नरेसहिं त्यों जनपद रजधानी । (गी० १।४)

जनम-दे० 'जन्म' । उ० १. जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं । (मा० १।३४।३) जनम-जनम-अनेक जन्म, कई जन्म । उ० जनम-जनम अभ्यास-निरत चित्त अधिक अधिक लपटाई । (वि० ८२)

जनमइ-जन्मता है, जन्म लेता है । उ० जग जनमइ बायस सरीर धरि । (मा० ७।१२।१।२) जनमत-१. पैदा होते ही, जनमते ही, २. पैदा होता, उत्पन्न होता, जनमता, ३. जन्म लेते हैं, ४. जन्म लेता हूँ । उ० २. सुंदर सुत जनमत भईं ओऊ । (मा० १।१६५।१) जनमा-जन्म लिया, पैदा हुआ । उ० नहिं कोउ अस जनमा जगमाहीं । (मा० १।६०।४) जनमि-जन्म लेकर, पैदा होकर । उ० अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया । (मा० १।६८।६) जनमी-पैदा हुई, उत्पन्न हुई । उ० जनमी जाइ हिमाचल गेहा । (मा० १।८३।१) जनमे-जनमे, पैदा हुए । उ० जनमे एक संग सब भाई । (मा० २।१०।३) जनमेउ-जन्म लिया, पैदा हुए । उ० तब जनमेउ षट बदन कुमारां । (मा० १।१०।३।४) जनम्यो-पैदा हुआ, जन्म लिया । उ० मेरे जान जब तैं हौं जीव हँ जनम्यो जग । (क० ७।७०)

जनमु-दे० 'जन्म' । उ० १. जौ विधि जनमु देइ करि छोह । (मा० २।१५।४)

जनयत्री-(सं० जनयित्री)-जन्म देनेवाली, माता । उ० द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री । (मा० ७।३८।३)

जनवास-(सं० जन+वास)-१. बारात के ठहरने का स्थान, २. नगर, ग्राम । उ० १. दिपु सबहि जनवास सुहाए । (मा० १।६६।१) जनवासे-जनवासे की ओर, बारात के ठहरने के स्थान की ओर । उ० चले जहाँ दसरथु जनवासे । (मा० १।३०।७।४)

जनवासा-दे० 'जनवास' । उ० १. अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा । (मा० १।३०।६।३)

जनाइ-(सं० ज्ञान)-१. सूचना, जनाव, इच्छता, २. जनाकर, प्रकट कर । उ० २. बुझिहैं 'सो है कौन' ? कहिबी नाम दसा जनाइ । (वि० ४।१) जनाई-१. जताया, सूचित किया, २. जताकर, बतला कर, ३. समझ पढ़ना, मालूम

होना । उ० १. असुर तापसहि खबरि जनाई । (मा० १।१७५।२) जनाउ-१. सूचना, खबर, २. जनाओ, बतलाओ । उ० १. अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ । (मा० १।३३।२) जनाएँ-जनाए, बतलाए । उ० प्रभु जानत सब बिनहि जनाएँ । (मा० १।१६२।१) जनाए-बतलाया, प्रकट किया । उ० राम सीय तन सगुन जनाए । (मा० २।७।२) जनायउ-जनाया, प्रकट किया । उ० दुरी दुरा करि नेगु सुनात जनायउ । (जा० १।६६) जनायऊ-जनाया, बतलाया । उ० कहि गाधि सुत तप तेज कछु रघुपति प्रभाउ जनायऊ । (जा० २।७) जनायो-जनाया, जताया, सूचित किया । उ० आस-बिबस खास दास हँ नीच प्रभुनि जनायो । (वि० २।७६) जनाव-जनाया, बतलाया, प्रकट किया । उ० मन अति हरप जनाव न तेही । (मा० ३।२६।४) जनावउ-जनाता हूँ, प्रकट करता हूँ । उ० अब लागि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावउं काहु । (मा० १।१६१।क) जनावत-१. ज्ञात होता है, जान पड़ता है, २. जानते हैं, बतलाते हैं । उ० १. हरि निर्मल, मल-असित हृदय, असमंजस मोहिं जनावत । (वि० १।८५) जनावहिं-जनाते हैं, प्रकट करते हैं । उ० बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा । (मा० १।२५।२) जनावहु-जना दो, जनाओ । उ० तौ कहि प्रगट जनावहु सोई । (मा० २।५०।३) जनावा-जताया, सूचित किया, प्रकट किया । उ० काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा । (मा० २।४५।४) जनावै-जतावे, सूचित करे । उ० तुलसी राम सुजान को, राम जनावै सोइ । (सं० १।८१) जनावौ-जनाऊँ, बतलाऊँ । उ० पर-प्रेरित हरषा-बस कबहुँक, कियो कछु सुभ, सो जनावौं । (वि० १।४२)

जनादन-(सं०)-भगवान्, विष्णु ।

जनि (१)-(सं०)-१. उत्पत्ति, जन्म, २. जिससे कोई उत्पन्न हो, नारी, स्त्री । ३. माता, जननी, ४. पत्नी, भार्या, ५. पुत्रबधु, पतोहू, ६. जन्मभूमि, पैदा होने की जगह ।

जनि (२)-(?)-मत, नहीं, न । उ० जनि तेहि लागि विदुषहि केही । (वि० १।२६)

जनित-(सं०)-१. उत्पन्न, जन्मा हुआ, जन्य, २. बच्चा, ३. जो पैदा हुए हैं, संसार के प्राणी । उ० १. कहु केहि कहिए कृपाविधे ! भवजनित विपति अति । (वि० १।१०) ३. सुपथ कुपथ लीन्हे जनित स्व-स्वभाव अनुसार । (सं० १।६१)

जनिहैं (२)-(सं० जनन)-उत्पन्न करेंगी, पैदा करेंगी ।

जनी (१)-(सं० जनन)-१. पैदा की, उत्पन्न किया, २. माता, पैदा करनेवाली । उ० १. करनि बिचरत चतुर सरस सुपमा जनी । (गी० ७।५) जने-(सं० जनन)-उत्पन्न किए, जन्माए । जनै-उत्पन्न करे, जन्मावे, पैदा करे । उ० गयो छाँडि छल सरन राम की जो फल चारि चारथौ जनै । (गी० ५।४०) जनैगी-उत्पन्न करेंगी, पैदा करेंगी । उ० प्रभु की बिलंब-अंब दोष दुखु जनैगी । (वि० १।७६)

जनी (२)-(सं० जन)-१. दासी, सेविका, २. स्त्री ।

जनु (१)-(सं० ज्ञान)-मानो, जैसे । उ० हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई । (वि० ६२)

जनु (२)-(सं०)-उत्पत्ति, जन्म ।
 जनु (३)-(सं० जन)-१. जन, आदमी, २. भक्त, ३.सेवक, दास । उ० ३. भाग तुलसी के, भले साहेब को जनु भो । (गी० १।६४)
 जनेत-(सं० जन)-१. बरात, २. बराती, ३. जनता । उ० १. अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत । (मा० १।३४३) २. पङ्किताव भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहैं साजि कै । (पा० ६३)
 जनेउ-दे० 'जनेऊ' । उ० चारु जनेउ माल मृगछाला । (मा० २।२६८४)
 जनेऊ-(सं० यज्ञ)-यज्ञोपवीत, ब्रह्मसूत्र । उ० केहरि कंधर चारु जनेऊ । (मा० १।१४७।४)
 जनेषु-(सं०)-आदमियों में, मनुष्यों में । उ० कविहि अगम जिमि ब्रह्म सुखु अह मम मलिन जनेषु । (मा० २।२२५)
 जनेस-(सं० जनेश)-१. राजा, नरेश, भूषति, २. सुखिया, ३. मन । उ० १. लोचन अतिथि भए जनक जनेस के । (क० १।२१)
 जनेसु-दे० 'जनेसु' । उ० १. जेहि जनेसु देइ जुबराजू । (मा० २।१२।१)
 जन्म (सं०)-१. उत्पत्ति, पैदाइश, २. जीवन, जिन्दगी । उ० १. मुक्ति जन्ममहि जानि ज्ञान खानि अब हानिकर । (मा० ४।१।सो० १)
 जन्मभूमि-(सं०)-जन्म स्थान, जिस स्थान पर जन्म हुआ हो । उ० जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि । (मा० ७।४।३)
 जन्मांतर-(सं०)-दूसरा जन्म ।
 जन्मु-दे० 'जन्म' । उ० १. जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषार्थु महा । (मा० १।१०३।छं० १)
 जन्मौ-जन्म धारण करूँ, जन्म लूँ । उ० जेहि जोनि जन्मौ कर्म बस तहैं राम पद अनुरागऊँ । (मा० ४।१०।छं० २)
 जन्य-(सं०)-१. साधारण मनुष्य, जनसाधारण, २. अक्र-वाह, किंवदंती, ३. किसी एक देश का वासी, ४. लड़ाई, ५. पुत्र, ६. पिता, ७. जन्म, ८. जन संबंधी, ९. राष्ट्रीय, जातीय, १०. जो उत्पन्न हुआ हो, उद्भूत ।
 जपते-जपते हैं, स्मरण करते हैं । उ० जे राम मंत्र जपंतु संत अनंत जन मन रंजन । (मा० ३।३२।छं० २) जपउ-१. जपूँ, भजूँ, २. जपता, स्मरण करता । उ० २. जपवै मंत्र सिवमंदिर जाई । (मा० ७।१०२।४) जपत-१. जापी, जप करनेवाला, २. जपने से, ३. जपते हैं, भजते हैं । उ० २. राम, राम, राम, राम, राम, राम, जपत । (वि० १।३०) ३. बीज-मंत्र जपिए सोई जो जपत महेस । (वि० १०८) जपति-जपती है । उ० जपति सारद संशु सहित घरनि । (वि० २।४७) जपते-१. जप करते हुए, २. जप करने से । उ० राम बिहाय 'मरा' जपते, बिगरी सुधरी कबि-कोकिल हू की । (क० ७।८६) जपन-जपने, भजने । उ० अस कहि लगे जपन हरिनामा । (मा० १।२२।४) जपने-जपना है, जप करना है । उ० सुरेस सुर गौरि गिरा-पति नहि जपने । (क० ७।७७) जपहि-१. जपो, जपाकर, २. जपकर । उ० १. जपहि नाम रघुनाथ को चरचा दूसरी न चाहु । (वि० १।६३) जपहु-जपो, जप करो, भजो । उ०

सादर जपहु अनंग आराती । (मा० १।१०८।४) जपामि-मैं जपता हूँ, मैं भजता हूँ । उ० तव नाम जपामि नमामि हरी । (मा० ७।१४।६) जपि-१. जप करो, जपो, २. जप कर, भजकर । उ० २. जपि नाम तब बिनु श्रम तरहि भव नाथ सो सम राम हे । (मा० ७।१३।छं० ३) जपिए-जप कीजिए, भजिए, जप करना चाहिए । उ० बीज-मंत्र जपिए सोई जो जपत महेस । (वि० १०८) जपिहै-जपेगा, जप करेगा । उ० राम राम राम जीव जौ लो तू न जपिहै । (वि० ६८) जपु-जाप करो, जपो । उ० तुलसी बसि हर-पुरी रामजपु जो भयो चहै सुपासी । (वि० २२) जपे-१. जपा, जप किया, २. जपने से, भजने से । उ० २. राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि । (वि० १८४) जपेउ-जपा, जप किया । उ० धुवै सगलानि जपेउ हरि नाऊँ । (मा० १।२६।३) जपै-१. जपें, २. जपते हैं । उ० २. राम नाम को प्रताप हर कहै जपै आपु । (वि० १८४) जप्यो-जपा, जप किया । उ० जीहहु न जप्यो नाम, बक्यो आउ बाउ में । (वि० २६१)
 जप (सं०)-किसी मंत्रादि या नाम का बार-बार पाठ । पूजा या संध्या आदि में मंत्र का माले के आधार पर गिन-कर पाठ करना भी जप कहलाता है । पुराणानुसार तीन प्रकार के जप हैं-मानस, उपांशु और वाचिक । कुछ लोग मानस और उपांशु के बीच में जिह्वा नामक एक और जप मानते हैं । मानस जप में जप मन में करते हैं । जिह्वा में पाठ के समय केवल जिह्वा हिलती है । उपांशु में जिह्वा और अधर हिलते हैं पर शब्द नहीं होता, और स्पष्ट उच्चारण के साथ किया जानेवाला जप वाचिक कहलाता है । उ० करहि जोग जप तप तन कसहीं । (मा० २। १३२।४) जप जाग-दे० 'जप याग' । जपयाग-(सं० जप-यज्ञ)-जप का यज्ञ । जप भी एक प्रकार का यज्ञ माना गया है । इसके तीन या चार भेद होते हैं । दे० 'जप' ।
 जब-(सं० यः+वेला)-जिस समय, जिस वक्त । उ० तुलसि-दास भवत्रास मिटै तब जब मति यहि सरूप अटकै । (वि० ६३) जबकब-(कब+सं० कः+वेला)-जब कभी, जिस समय भी । उ० जब कब रामकृपा दुख जाई । (वि० १२७) जबहि-१. जब, २. जब ही, जभी । उ० १. जबहि जाम जुग जामिनि बीती । (मा० २।८२।४) जबहुँ-जब भी । उ० सुखचि कछो सोइ सत्य, तात ! अति परुष बचन जब हूँ । (वि० ८६) जबै-जभी, जिस समय ही । उ० जबै जमराज रजायसु तैं मोहिं लै चलिहैं भट बाधि नटैया । (क० ७।२१)
 जम-(सं० यम)-१. यमराज, मृत्यु तथा नरक के देवता । इनका निवास नरक माना जाता है । २. योग का एक अंग । मन तथा इंद्रिय आदि को वश में कर रखना । उ० २. जप तप ब्रत जम नियम अपारा । (मा० ७।११७।२) जमहि-यम से, यमराज से । उ० अबनि जमहि जाचति कैकेई । (मा० २।२२।३)
 जमत-(सं० जन्म)-उपज आते हैं, उत्पन्न होते हैं । जमिहहि-जमेंगे, उगेंगे, निकलेंगे । उ० जमिहहि पंख करसि जनि चिंता । (मा० ४।२८।५)
 जमदूत-(सं० यमदूत)-यमराज के दूत, मृत्यु के दूत ।

जमदूता-दे० 'जमदूत' । उ० सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ।
(मा० २।८३।४)
जमधाम-(सं० यमधाम)-यमराज का लोक, मृत्यु लोक,
नरक । उ० पटै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो । (क० ६।१८)
जमधार-(सं० यमधार)-१. यम की सेना, २. यमलोक में
ले जानेवाली विषयों की धारा ।
जमधारि-दे० 'जमधार' । उ० २. करि विचार भव तरिय, परिय
न कबहुँ जमधारि । (वि० २०३)
जमन-(सं० यवन)-स्लेच्छ, मुसलमान । यथार्थतः यवन
(जवन) मुसलमानों को न कहा जाकर यूनानियों के लिए
प्रयुक्त होता था, पर सामान्यतः लोग इसका प्रयोग
मुसलमानों के लिए ही करते हैं । उ० स्वपच सबर
खस जमन जड़ पावैर कोल किरात । (म० २।१६४)
जमनगर-(सं० यमनगर)-नरक । उ० अगम अपवर्ग, अरु
स्वर्ग सुकृतैक फल, नाम-बल क्यों बसौं जमनगर नेरे ?
(वि० २१०)
जमनिका-(सं० यवनिका)-१. कनात, पदार्थ, २. माया, ३.
काई । उ० ३. हृदय जमनिका बहुबिधि लागी । (मा०
७।७३।४)
जमपुर-(सं० यमपुर)-नरक, यमराज का नगर । उ० को
जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को । (वि०
१५५)
जमराज-(सं० यमराज)-धर्मराज, जो मरने के बाद प्राणी
के कर्मों का विचार कर उसे दंड या उत्तम फल देते हैं ।
उ० सकल सद्गल जमराजपुर, चलन चहत दसकंधु ।
(प्र० ५।३।६) जमराजपुर-नरक । दे० 'जमराज' ।
जमात-(अर० जमाअत)-आदिमियों का जत्था, समूह,
गरोह । उ० बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत
नहि बनै । (मा० १।६३। छं० १)
जमाति-दे० 'जमात' । उ० जोगिनी जमाति कालिका
कलाप तोषिहैं । (क० ६।१)
जमाती-जमात में रहनेवाले, साधु लोग, संन्यासी । उ०
जागै जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं । (क० ७।
१०६)
जमानो-(फा० जमाना)-समय, काल । उ० जाहिर जहान
में जमानो एक भाँति भयो । (क० ७।७६)
जमी (१)-(सं० यम)-१. संयमी, संयम करनेवाला, २.
यम की पत्नी । उ० १. देखि लोग सकुचात जमी से ।
(मा० २।२१५।३)
जमी (२)-(फा० जमीन)-पृथ्वी, भूमि ।
जमुन-(सं० यमुना)-यमुना नदी । उ० उतरि नहाए जमुन
जल जो सरैर सम स्याम । (मा० २।१०६)
जमुहात-(सं० जम्भण)-जमुहाई लेते समय, जभाते समय ।
उ० सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात ।
(मा० २।३११) जमुहान-जभाया, जभाई ली । उ० उठि
बिसाल बिकराल बड़, कुंभकरनु जमुहान । (प्र० ५।७।२)
जमोग-(अ० जमा + सं० योग)-सामने का निश्चय, तस-
दीक ।
जमोगिए-तसदीक कराइए, समर्थन कराइए ।
जयंत-(सं०)-देवराज इंद्र के शची से उत्पन्न तीन पुत्रों में

से एक का नाम । मेघनाद से जयंत का एक बार बड़ा
भयंकर युद्ध हुआ था । जयंत के मामा पुलोमा उस युद्ध
से भयभीत होकर भग गए थे । जयंत की स्त्री का नाम
कीर्ति था । एक बार भगवान राम की परीक्षा करने के
लिए इन्होंने कौवे का वेश धारण कर जानकी पर चौं-
प्रहार किया था । राम ने पहले तो इनको समाप्त कर
देने के लिए धनुष उठाया पर बाद में दया कर केवल
एक आँख फोड़कर छोड़ दिया । उ० जिमि बासव बस
अमरपुर सची जयंत समेत । (मा० २।१४१)

जयंता-दे० 'जयंत' । उ० नारद देखा बिकल जयंता । (मा०
३।२।५)

जय(सं०)-१. विजय, जीत, २. अभिग्रंथ या अरणी का
वृक्ष, ३. विष्णु का एक पार्षद या द्वारपाल । जय और
विजय दो भाई थे । एक बार सनकादि भगवान के दरबार
में जा रहे थे, तो इन दोनों ने उनको रोका । सनकादि
इस पर बहुत रुष्ट हुए और उन्होंने दोनों को शाप दिया ।
शाप के ही कारण संसार में इनको तीन बार जन्म लेना
पड़ा । जय अपने तीनों जन्मों में क्रम से हिरण्याक्ष, रावण
और शिशुपाल था तथा विजय हिरण्यकशियु, कुंभकर्ण और
कंस । हर बार भगवान ने स्वयं अवतार लेकर इनका
उद्धार किया । ४. एक संवत । दे० 'जय संवत' । उ० ३.
जय अरु विजय जान सब कोऊ । (मा० १।१२२।२)
जयजय-विजय की कामना करनेवाला शब्द । उ० शंशु-
जायासि जय-जय भवानी । (वि० १५)

जयउ-दे० 'जयऊ' । जयऊ-जीत लिया है, विजय कर
लिया है । उ० भरत धन्य लुह जसु जगु जयऊ । (मा०
२।२१०।३) जये (१)-(सं० जयन)-जीत गए, जीत
लिया । उ० एक कहत भइया भरत जये । (गी० १।४३)
जयेउ-दे० 'जये (१)' । जयो (१)-१. जीत लिया,
विजयी हुआ, २. जीत भी, जय भी । उ० १. तीर तैं
उतरि जस कछो चहै, गुनगननि जयो है । (गी० ६।११)
जयौ-दे० 'जयो (१)' ।

जयकर-जय करनेवाले, जीतनेवाले । उ० जय जयंत-जयकर
अनंत, सज्जन जन रजन । (क० ७।११३)

जयति-जय हो, जै-जैकार । उ० निसि बासर ध्यावहि, गुन-
गन गावहि जयति सच्चिदानंदा । (मा० १।१८६। छं० २)

जयमाल-(सं० जयमाला)-१. वह माला जो विजयी को
पहिनाई जाती है, २. स्वयंवर में वर के गले में कन्या
द्वारा पहिनाई जानेवाली माला । उ० २. जो बिलोकि
रीकै कुअरि तब मेलै जयमाल । (मा० १।१३१)

जयमाला-दे० 'जयमाल' । उ० २. कुअरि हरषि मेलेउ
जयमाला । (मा० १।१३५।२)

जयसंवत-एक सम्वत् का नाम । पण्डित सुधाकर द्विवेदी की
गणनानुसार यह सम्वत् सं० १६४३ विक्रमीय में पड़ा
था । उ० जय संवत फागुन, सुदि पाँचै, गुरु दिनु । (पा०
५)

जयसील-(सं० जयशील)-जीतनेवाला, जयशाली । उ०
कषि जयसील मारि पुनि डाटहि । (मा० ६।५३।३)

जये (२)-(सं० जाया, जनन)-उत्पन्न करते थे । उ० प्रसु
खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये । (गी०

३।१७) जयो (२)-उत्पन्न हुआ, पैदा हुआ ।
 जयो (३)-(सं० यजन)-यजन किया, यज्ञ किया । उ०
 चहत महासुनि जाग जयो । (गी० १।४५)
 जर (१)-(सं० ज्वर)-ज्वर, ताप, बुखार । उ० जरहिं
 बिषम जर लेहिं उसासा । (मा० २।२१।३)
 जर (२)-(सं० जरा)-बुढ़ापा, वृद्धावस्था ।
 जर (३)-(सं० जटा)-जड़, मूल ।
 जर (४)-(सं०)-नाश या जीर्ण होने की क्रिया ।
 जरइ-(सं० ज्वलन)-जलता है । उ० रिस तन जरइ होइ
 नल हानी । (मा० १।२७।३) जरइ-जलता है, जल रहा
 है । उ० सुनि मृदु बचन कुमति अति जरइ । (मा० २।
 ३।२) जरउ-जले, जल जाय । उ० हिय फाटहु, फूटहु
 नयन, जरउ सो तन केहि काम । (दो० ४१) जरत-१.
 जलता है, जल रहा है, २. जलते हुए । उ० १. अजहूँ
 हृदय जरत तेहि आँचा । (मा० २।३२।३) जरति-जलती
 हुई । जरती-जलती, भस्म होती । उ० घरही सती कहा-
 वती, जरती नाह-वियोग । (दो० २५४) जरहिं-जलते-
 हैं, तस होते हैं, जल रहे हैं । उ० दे० 'जर (१)' । जरा-
 (१)-(सं० ज्वलन)-१. जला, जल गया, जल उठा, २.
 जलाकर, ३. जलाया । उ० १. सुनत जरा दीन्हिसि
 बहु गारी । (मा० ३।२६।१) जरि (२)-(सं० ज्वलन)-
 जलकर, भस्म होकर । उ० तुलसी कान्हबिरह
 नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो । (क० ३६)
 जरिए-जलिय, जला कीजिए । उ० सो विपरीत देखि
 पर सुख बिनु कारन ही जरिए । (वि० १।८६) जरिहिं-
 जलेगी, जलती रहेगी । उ० नाहिं त जरिहिं जनम भरि
 छाती । (मा० २।३४।४) जरी (१)-(सं० ज्वलन)-१.
 जली, जली-भुनी, २. एक गाली । जरे (१)-(सं० ज्व-
 लन)-१. जले, भस्म हुए, २. जले हुए । उ० २. मानहुँ
 लोन जरे पर देई । (मा० २।३०।४) जरी-जलूँ, जल
 मरूँ । उ० तुम्ह सहित गिरि तैं गिरौँ, पावक जरी, जल-
 निधि मरूँ परौँ । (मा० १।६६। छं० १)
 जरकसी-(फा० जरकश)-जिस पर सोने या चाँदी के तार
 आदि लगे हों । उ० सुन्दर बदन, सिर पगिया जरकसी ।
 (गी० १।४२)
 जरजर-(सं० जर्जर)-१. जीर्ण, पुराना हो जाने के कारण
 जो बेकाम हो, २. टूटा-फूटा, खंडित, ३. वृद्ध । उ० १.
 जरजर सकल सरीर पीर मरूँ है । (ह० ३८)
 जरठ-(सं०)-१. कर्कश, कठिन, २. वृद्ध, बुढ़ा, ३. जीर्ण,
 पुराना । उ० २. मिलहिं जोगी जरठ तिन्हहिं दिखाउ
 निरगुन-खानि । (क० ५२)
 जरठपनु-बुढ़ापा, वृद्धावस्था । उ० मनहुँ जरठपनु अस
 उपदेसा । (मा० २।२।४)
 जरठाइ-वृद्धावस्था, बुढ़ापा । उ० जरठाइ दिसा, रविकाल
 उन्यो, अजहूँ जव जीवन जागहि रे । (क० ७।३१)
 जरनि-जलन, दाह, ताप, जलना । उ० राम नाम के जपे
 जाइ जिय की जरनि । (वि० १।८४)
 जरनी-दे० 'जरनि' । उ० जननी जनकादि हित् भये भूरि,
 बहोरि भई उर की जरनी । (क० ७।३२)
 जरा (२)-(सं०)-१. बुढ़ापा, वृद्धावस्था, २. एक राक्षस

का नाम जिसने जरासंध की संधि को जोड़ा था । जरा-
 संध अपनी मा के पेट से दो फाँक पैदा हुआ था । उ०
 १. जरा मरन दुख रहित तनु समर जंतै जनि कोउ ।
 (मा० १।१६४) २. अवधि-जरा जोरति हठि पुनि-पुनि,
 याते तनु रहत सहत दुख भारे । (क० ५६)
 जरा (३)-(अर० जरा)-थोड़ा, कम, तनिक ।
 जराए (१)-(सं० जटन)-जड़े हुए, लगाए हुए । उ० पहुँची
 करनि, कठ कटुला बन्यो केहरि नख-मनि-जरित जराए ।
 (गी० १।२६)
 जराए (२)-(सं० ज्वलन)-जलाया, जला दिया । जराय
 (१)-(सं० ज्वलन)-जला कर, भस्म कर ।
 जराय (२)-(सं० जटन)-१. जड़ाव, रत्न आदि जड़ने की
 क्रिया, २. जड़ाकर, जड़वाकर । उ० १. अंग-अंग भूषन
 जराय के जगमगत, हरत जन के जी को तिमिर जाछु ।
 (गी० १।४०)
 जरायज-(सं०)-वे प्राणी जो आँवल या खेड़ी आदि में
 लिपटे मा के गर्भ से उत्पन्न होते हैं ।
 जरि (१)-(सं० जड़)-१. जड़, मूल, २. जड़ी, जड़ी-बूटी,
 औषधि । उ० १. जरि तुम्हारि चह सवति उखारी ।
 (मा० २।१७।४)
 जारत-(सं० जटित)-जड़ित, जड़ा हुआ, अलंकृत । उ०
 जरित कनकमनि पलंग डसाए । (मा० १।३५।१)
 जरी (२)-दे० 'जरि (१)' । उ० २. देखी दिव्य औषधी जहँ
 तहँ जरी न परि पहिचानि । (गी० ६।६)
 जरी (३)-(अर० जरा)-थोड़ी, अत्यंत कम ।
 जरी (४)-(सं० जटन)-जटित, जड़ी हुई । उ० महाब्याल
 बिकल बिलोकि जनु जरी है । (गी० १।६०)
 जरे (२)-(सं० जटन)-१. बँधे हुए, जकड़े हुए, २. जटित,
 जड़े, अलंकृत । उ० २. मूमत द्वार अनेक मतंग, जँजीर
 जरे मद अँधु चुचाते । (क० ७।४४)
 जर्जर-दे० 'जर्जर' । उ० १. सरन्ह मारि कीन्हिसि जर्जर
 तन । (मा० ७।७३।५)
 जर्जर-(सं०)-१. जीर्ण शीर्ण, टूटा-फूटा, खंडित, २. वृद्ध ।
 उ० १. सो प्रगट तनु जर्जर जरा बस ब्याधि सूल सतावई ।
 (वि० १।३६)
 जलंधर-(सं०)-१. एक राक्षस, जो शिव की कोपाग्नि से
 समुद्र में उत्पन्न हुआ था । पैदा होते ही यह इतने जोर
 से रोने लगा कि देवता लोग बहुत घबराए । ब्रह्मा ने इसे
 अपनी गोद में बिठलाया तो जलंधर ने उनकी दाढ़ी इतनी
 जोर से खींची कि उन्हें आँसू निकल पड़े । इसी कारण
 ब्रह्मा ने इसका नाम जलंधर रक्खा । बड़े होने पर इसने
 इंद्रपुरी पर अधिकार कर लिया । शिव इंद्र की ओर से
 इससे लड़ने लगे पर इधर इसकी स्त्री वृन्दा ब्रह्मा की
 पूजा करने लगी । इस प्रकार इसका मरना असंभव हो
 गया । अंत में विष्णु ने इसकी स्त्री के साथ झूल किया
 और यह मारा गया । वृन्दा इसके साथ सती हो गई ।
 २. पेट का एक रोग । उ० १. समर जलंधर सन सब
 हारे । (मा० १।१२३।३)
 जल-(सं०)-१. पानी, नीर, २. खस, उशीर, ३. सुगंध-
 बाला, नेत्रबाला । उ० १. भरी क्रोध जल जाइ न जाई ।

(मा० २।३४।१) जलअलि-(सं०)-१. पानी का भँवर, २. पानी का भौरा, भौतुआ। यह जलप्रवाह के विरुद्ध भी तेज़ी से तैर सकता है। उ० २. जल प्रवाह जलअलि गति जैसी। (मा० २।२३४।४) जलो (?)-(सं० जल)-जल भी, पानी भी। उ० पंगु अंध निरगुनी निसंबल जो न लहै जाँचे जलो। (गी० १।४२)

जलकुण्ड-(सं०)-मुगाँबी, पानी के मुर्गे। उ० बोलत जल-कुण्ड कलहसा। (मा० ३।४०।१)

जलचर-(सं०)-पानी में रहनेवाले जंतु। मछली, कछुआ, मगर आदि। उ० जलचर थलचर नभचर नाना। (मा० १।३।२) जलचरन्हि-जलचरों, जलचरों पर। उ० अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहि। (मा० ६।४) जलचरकेतू-(सं० जलचर+केतु)-जिसकी ध्वजा में मछली का चिह्न हो। कामदेव। उ० चलेउ हरषि हिउँ जलचरकेतू। (मा० १।१२२।३)

जलज-(सं०)-१. कमल, पंकज, २. जल से उत्पन्न सभी चीजें। उ० १. जलज जाँक जिमि गुन बिलगाहीं। (मा० १।२।३)

जलजाए-(सं० जल+जनन)-कमल। उ० भ्रू सुंदर करुना रस-पूर, लोचन मनहुँ जुगल जलजाए। (गी० १।२३)

जलजात-(सं०)-जो जल में पैदा हो, कमल।

जलजाता-दे० 'जलजात'। उ० पूजहिँ माधव पद जल-जाता। (मा० १।४४।३)

जलजान-(सं० जलयान)-नाव, जहाज़। उ० सादर सुनिहिँ ते तरहिँ भव सिन्धु बिना जलजान। (मा० १।६०)

जलजाना-दे० 'जलजान'। उ० भयहु तात मो कहँ जलजाना। (मा० १।१४।१)

जलद-(सं०)-१. जल देनेवाला, बादल, २. कपूर, ३. मोथा। उ० १. किँ जाहिँ छाया जलद सुखद बहइ बर बात। (मा० २।२१६)

जलदनाद-मेघमाद, रावण का पुत्र इंद्रजीत। उ० बिपुल-बलमूल, शार्दूल विक्रम, जलदनादमर्दन, महावीर भारी। (वि० ३८)

जलदाता-तर्पण आदि क्रिया तथा पिंडदान का करनेवाला। उ० जलदाता न रहिहि कुल कोऊ। (मा० १।१७४।२)

जलदातार-जल देनेवाला, मेघ, बादल। उ० जग-सरबर तर मरन-कर जानहु जलदातार। (सं० १।४३)

जलदानि-१. मेघ, बादल, २. जल देनेवाला।

जलदु-दे० 'जलद'। उ० १. जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। (मा० २।२०२।२)

जलधर-(सं०)-बादल, मेघ। उ० सेवक सालि पाल जल-धर से। (मा० १।३२।१) जलधरनि-बादलों को। उ० चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दै जलधरनि। (गी० १।२१)

जलधि-(सं०)-समुद्र, सिन्धु, सागर। उ० जलधि अगाध मौलि बह फेनू। (मा० १।१६७।४) जलधे-(सं०)-समुद्र के। उ० मूलं धर्मैतरोर्विवेक जलधेः पृथैदुमानन्दं। (मा० ३।१।१ श्लो० १)

जलनिधि-(सं०)-दे० 'जलधि'। उ० तुम्ह सहित गिरि

तें गिरौ पावक जरौ जलनिधि महुँ परौ। (मा० १।६६। श्लो० १)

जलपति-(सं० जल्प)-इधर-उधर की बातें करती हुई, बकती हुई। उ० उर लाइ उमहिँ अनेक विधि, जलपति जननि दुख मानई। (पा० १२१)

जलपाना-(सं० जलपान)-वह थोड़ा और हलका भोजन जो प्रातःकाल या सायं किया जाता है। नारता, कलेवा। उ० करि तड़ाग मज्जन जलपाना। (मा० ७।६३।२)

जलमल-जल का मैल, फेन इत्यादि। उ० कलि अघ खल अचगुन कथन ते जलमल बग काग। (मा० १।४१)

जलयान-(सं०)-जल में काम आनेवाली सवारी। नाव, जहाज़ आदि।

जलरथ-(सं०)-नाव, जहाज़। उ० भवसिंधु दुस्तर जलरथं, भजु चक्रधर सुरनायकं। (वि० १३६)

जलरुह-(सं०)-कमल, जलज। उ० हरषि रबिकुल जलरुह चाँदिनि। (मा० २।१२६।१)

जलाशय-(सं०)-दे० 'जलासय'।

जलाश्रय-(सं०)-दे० 'जलासय'।

जलासय-(सं० जलाशय)-तालाब, सर, झील आदि। उ० बिमल जलासय बिबिध बिधाना। (मा० २।२११।२)

जलु-जल, पानी। उ० सुंदर गिरि काननु जलु पावन। (मा० २।१२४।३)

जलो (?)-(सं० ज्वलन)-जल गया।

जल्प-(सं०)-१. कथन, बर्णन, कहना, २. प्रलाप, व्यर्थ की बात, बकवाद।

जल्पक-(सं०)-बकवादी, वाचाल, बातूनी। उ० तजउँ तोहि तेहि त्रास कटुजरूपक निसिचर अघम। (मा० ६। ३३ ख)

जल्पत-(सं० जल्प)-१. डींग मारते हुए, बकवाद करते हुए, प्रलाप करते हुए, २. बकवाद करता है। उ० १. एहि विधि जल्पत भयउ बिहाना। (मा० ६।७२।१) जल्पसि-१. बकवाद करो, प्रलाप करो, २. तू बकवाद करता है। उ० १. जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई। (मा० ६।६।१) जल्पहिँ-बकते हैं, बका करते हैं। उ० जल्पहिँ कल्पित बचन अनेका। (मा० १।१११।३)

जल्पना-१. बकवाद, प्रलाप, गपशप, ३. अपनी बड़ाई करना। उ० १. छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना। (मा० ६। २६।३)

जव-(सं० यव)-जौ, एक अन्न। उ० होइहिँ जव कर कीट अभागी। (मा० १।१३।३)

जवन (?)-(सं० यवन)-श्लेच्छ, मुसलमान। दे० 'जमन'। उ० क्रूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन। (वि० २१२)

जवन (?)-(सं० यः)-जौन, जो, जौन सा। जवनि-जो, जौन सी। 'जवन' का स्त्री लिंग रूप। उ० हरि-दरसन-फल पायो है ज्ञान बिमल, जाँचत भगति मुनि चाहत जवनि। (गी० ३।१)

जवनिका-दे० 'जमनिका'।

जवार (?)-(अर० जवाल)-१. अवनति, बुरे दिन, २. जंजाल, संकट। उ० २. स्वारथ अगम, परमारथ की

कहा चली, पेट की कठिन, जग जीव को जवार है। (क० ७।६७)
 जवार (२)-(१)-ज्वार, समुद्र का ऊफान।
 जवास-(सं० यवासक)-एक प्रकार का छोटा पौदा जो नदियों के किनारे होता है। यह ग्रीष्म ऋतु में हरा-भरा रहता है और बरसात में पानी पड़ते ही सूख जाता है। उ० जिमि जवास परे पावस पानी। (मा० २।५४।१)
 जवासा-दे० 'जवास'।
 जस (१)-(सं० यश)-यश, तारीफ, नाम। उ० प्रभु प्रसाद जस जाति सकल सुख पावै। (जा० १।६४)
 जस (२)-(सं० यथा)-१. जैसा, जिस प्रकार का, २. जिस प्रकार से। उ० १. जस आभय भेषज न कीन्ह तस। (वि० १२२) जसि-(सं० यथा)-जैसी, जिस प्रकार की, 'जस' का स्त्रीलिंग। उ० राम विरोध कुसल जसि होई। (मा० ६।२१।२)
 जशी-(सं० यश)-यशवाला, यशस्वी, कीर्तिवान। उ० तज्यो तनु संश्राम जेहि लागि गीध जसी जटाय। (गी० ७।३१)
 जसु (१)-दे० 'जस (१)। उ० निज गिरा पावनि करन कारन रामजसु तुलसी कह्यो। (मा० १।३६।१। छं० १)
 जसु (२)-दे० 'जस (२)।
 जसुमति-दे० 'जसोमति'। उ० सुनि सुत की अति चातुरी जसुमति मुसुकाई। (क० ८)
 जसोमति-(सं० यशोमति)-यशोदा, नन्द की स्त्री जिन्होंने कृष्ण को पाला था। उ० तुलसिदास प्रभु सों कहै उर लाइ जसोमति ऐसी बलि कबहुँ नहि कीजै। (क० ७)
 जहूँ-(सं० यत्र)-जहाँ, जिस जगह। उ० त्रिबली उदर गभीर नाभि-सर जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी। (वि० ६३)
 जहर-(फा० जह)-१. विष, माहुर, प्राणघातक पदार्थ, २. अप्रिय बात या काम, ३. घातक, मार डालनेवाला, ४. बहुत अधिक हानि पहुँचानेवाला। उ० १. सुधा सो भरोसो पहु, दूसरो जहर। (वि० २५०)
 जहवाँ-(सं० यत्र)-जहाँ, जहाँ पर। उ० बन असोक सीता रह जहवाँ। (मा० ५।८।३)
 जहाँ (१)-(सं० यत्र)-जिस स्थान पर, जिस जगह। उ० लै दियो तहँ जनवास सकल सुपास नित नूतन जहाँ। (जा० १।३५)
 जहाँ (२)-(फा०)-जहान, संसार।
 जहाज-(अर० जहाज़)-बहुत बड़ी नाव, एक प्रकार की बड़ी नाव जो लोहे की होती है और मशीन से चलती है। उ० सहित समाज महाराज सो जहाजराज। (क० ६।२५)
 जहाजू-दे० 'जहाज'। उ० मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। (मा० २।८।२)
 जहान-(फा० जहाँ)-संसार, विश्व। उ० साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान। (क० ७।१६) जहानहि-संसार को, विश्व को। उ० जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे। (क० ७।२८)
 जहाना-दे० 'जहान'। उ० जे जड़ चेतन जीव जहाना। (मा० १।३।२)
 जहि (१)-(सं० जहन)-१. त्यागो, छोड़ो, २. त्यागकर,

छोड़कर, ३. नाश करनेवाले। उ० ३. नमत राम अकाम ममता जहि। (मा० ७।३०।३)
 जहि (२)-(सं० यस्)-जेहि, जिसे, जिसको।
 जहिआ-(सं० यद्)-जिस समय, जब। उ० भुजबल बिस्व जितव तुम जहिआ। (मा० १।१३।३)
 जहुँ-(सं०)-१. विष्णु, २. एक राजर्षि। जब भरीरथ गंगा को लेकर आ रहे थे तो रास्ते में जन्हु यज्ञ कर रहे थे। गंगा को इन्होंने पी लिया। भगीरथ के बहुत प्रार्थना करने पर पुनः इन्होंने कान के रास्ते गंगा को निकाला। तब से गंगा का नाम जाह्नवी पड़ा। इस शब्द के साथ कन्या, सुता, तनया आदि पुत्री वाचक शब्द लगा देने से गंगा के पर्याय बन जाते हैं। उ० २. नर-नाग विबुध बंदिनि, जय जहुँ बालिका। (वि० १७) जन्हु-कन्या-गंगा नदी। दे० 'जहुँ'। उ० जहुँ-कन्या धन्य, पुन्यकृत सगर सुत, भूधर-द्रोनि-विहरनि बहुनामिनी। (वि० १८)
 जाँगर (१)-(सं० जांगल)-उजाड़, सूना, समुद्रिहीन। उ० सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगर जहान भो। (क० ५।२३)
 जाँगर (२)-(?)-शरीर, हाथ-पैर देह।
 जाँघ-(सं० जंघ)-घुटना और कमर के बीच का अंग, उर। उ० महाराज लाज आपुही निज जाँघ उचारे। (वि० १।४७)
 जाँचत-(सं० याचन)-१. मांगते हुए, जाँचते हुए, २. जाँचते हैं, माँगते हैं। उ० १. देव मनुज मुनि नाग मनुज नहि जाँचत कोउ उबरयो। (वि० ६१) २. हरि-दरसन-फल पायो है ज्ञान बिमल, जाँचत भगति मुनि चाहत जवनि। (गी० ३।५) जाँचति-याचना करती है, माँगती है। उ० अवनि जमहि जाँचति कैकेई। (मा० २।२५।३)
 जाँचहीं-माँगती हैं, याचना करती हैं, प्रार्थना करती हैं। उ० जोरी जियौ जुग जुग, सखी जन जाँचहीं। (क० १।१४)
 जाँचा-माँगा, माँगा था, याचना की थी। उ० रावन मरन मनुज कर जाँचा। (मा० १।४६।१) जाँचिप-माँगिप, प्रार्थना कीजिए। उ० को जाँचिप संभु तजि ध्यान ? (वि० ३) जाँचिये-माँगिप, याचना कीजिए। उ० जग जाँचिये कोऊ न, जाँचिये जौ जिय जाँचिये जानकी-जानहि रे। (क० ७।२८) जाँचै-जाँचता है, माँगता है। उ० जाँचै बारह मास, पियै पपीहा स्वातिजल। (दो० ३०७) जाँचो-माँगता हूँ, माँगूँ। उ० जाँचो जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो। (वि० १।८२)
 जा (१)-(सं०)-१. माता, माँ, २. देवरानी, देवर की स्त्री, ३. उत्पन्न, संभूत। जैसे गिरिजा, जनकजा, अवनिजा आदि। उ० ३. विष्णु पद सरोज जासि, ईस-सीस पर बिभासि। (वि० १७)
 जा (२)-(सं० यः)-१. जो, २. जिस। उ० २. जा करि तैं दासी सो अविनासी हमरेउ तोर सहाई। (मा० १। १८४। छं० १) २. राउर जापर अस अतुरागू। (मा० २। २५।३)
 जा (३)-(फा०)-१. मुनासिब, वाजिब, २. जगह, स्थान।
 जा (४)-(सं० यान)-१. चला जा, जाओ, २. जाइ, गमन (जैसे जाकर = गमनकर या गमन करके)। जाइ (१)-(सं० यान)-१. चलकर, गमन कर, जाकर, २. समाप्त

होता, दूर होता, ३. दूर होती है, ४. जाती है, ५. व्यर्थ, वृथा । उ० १. मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत भे अजर अमर हर अँचह हलाहलु । (वि० २४) २. सो अम जाइ न कोटि उपाएँ । (मा० ११११३) ३. राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि । (वि० १८४) जाइअ-जाना चाहिए, जाया जाय । उ० जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा । (मा० ११६२३) जाइय-जाना चाहिए, जाय । उ० पारस जौ घर मिलै तौ मेरु कि जाइय ? (पा० ५१) जाइहि-जायगा, जावेगा । उ० सुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ । (मा० २३६३) जाई (१)-(सं० यान)-१. जाइ, जाकर, २. जाता, जाता है, ३. जाइयेगा, ४. जावें । उ० १. निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई । (मा० ११३५३) २. मोह जनित मल लाग बिबिध बिधि, कोटिहु जतन न जाई । (वि० ८२) जाउ-जाता हूँ, जाऊँ । उ० जौ नहि जाउँ रहइ पछितावा (मा० ११४११) जाउ-१. जाओ, २. जाय, उजड़ जाय, ३. जाय, जावे । उ० २. वरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौँ करौँ । (मा० ११६६) झं०१) जाऊँ-दे० 'जाऊँ' । उ० ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ । (मा० २१६१४) जाऊ-जाऊँ, चला जाऊँ । उ० नरक परौँ बरु सुरपुर जाऊ । (मा० २१४११) जाएँ-१. व्यर्थ, बेमतलब, २. जावें । उ० १. भरतहि दोसु देइ को जाएँ । (मा० २१२८४) जाए (१)-(सं० यान)-दे० 'जाएँ' । जाएहु-जाना, चले जाना । उ० बसहु आखु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान । (मा० ११३६६ क) जात-(१)-(सं० यान)-१. जाता है, २. जाते हुए । उ० १. सो क्यौँ भद्र तेरो कहा कहि इत उत जात । (क० २) २. धोर जमालथ जात निवारथो सुत-हित सुमिरत नाम । (वि० १४४) जातहि-जाते ही, पहुँचते ही । उ० मथुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए । (क० ५०) जाता-(१)-(सं० यान)-१. यात्रा, जाना, २. जाते हुए, ३. गया होता । उ० १. जेहि सुद मंगल कानन जाता । (मा० २१६३४) २. पथिक अनेक मिलहि मग जाता । (मा० २११२२) जाति (१)-(सं० यान)-१. जाती है, गमन करती है, २. जाते हुए, ३. जाती, जा सकती । उ० ३. होइ धौँ केहि काल दीनदयालु जानि न जाति । (वि० २२१) जाती (१)-दे० 'जाति (१)' । उ० ३. मनुजदसा कैसे कहि जाती । (मा० १३३८२) जाब-१. जाना, २. जाऊँगा, ३. जाएँगे, जाओगे । उ० १. मोर जाब तब नगर न होई । (मा० ११६७२) ३. जाब जहाँ लागि तहँ पहुँचाई । (मा० २११२४) जातेउ-जाता । उ० लै जातेउ सीतहि बरजोरा । (मा० ६३०३) जातै-जाता, जाता है । उ० नगर सोहावन लागत बरनि न जातै हो । (रा० २) जाय (१)-(सं० यान)-१. चला जाय, २. जा, जाओ, ३. व्यर्थ, वृथा । उ० ३. कछु हँ न आइ गयो जनम जाय । (वि० ८३) जायगो-जायगा, हटेगा, दूर होगा । जाहि (१)-(सं० यान)-१. जाते हैं, जाती हैं, २. दूर होते हैं । उ० १. चदि पिपीलि-कउ परम लघु बिनु अम पारहि जाहि । (मा० १११३) जाहिगो-नष्ट हो जायँगे । उ० खर दूषन मारीच ज्यौँ, पीच जाहिगो कालि । (दो० १४५) जाहि (१)-(सं०

यान)-१. जाओ, २. जाकर । उ० १. राम की सरन जाहि सुदिनु न हेरै । (गी० ५१२७) जाहिगो-जायगा, नष्ट हो जायगा । उ० देहि सीय नती, पिय ! पाइमाल जाहिगो । (क० ६१२३) जाहीं-१. जायँ, जावें, २. जाते हैं, ३. बीत जाँय, व्यतीत हो जावें । उ० २. पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं । (मा० ११४११) जाहीं (१)-(सं० यान)-१. जाकर, २. जा । उ० २. अब जनि नाथ कहहु गृह जाही । (मा० ७१८४) जाहु-जाओ, जाइए । उ० चतुरानन पहि जाहु खगेसा । (मा० ७१६१४) जाहु-दे० 'जाहु' । उ० बैनतेय संकर पहि जाहु । (मा० ७६०१४) जैबे-(सं० यान)-१. जाने, २. नष्ट होने । उ० २. जैबे को अनेक टेक, एक टेक जैबे की जो । (क० ७८२) जैहउ-जाऊँगा, जा पाऊँगा । उ० कब जैहउ दुख सागर पारा । (मा० ११६११) जैहसि-जायगा, नष्ट होगा । उ० जैहसि तँ समेत परिवारा । (मा० ११७४१) जैहहि-१. जायँगे, २. गमन करँगे । उ० १. नत मारे जैहहि सब राजा । (मा० ११२७१३) जैह-दे० 'जैहहि' । उ० २. गिरि कानन जैहँ शाखासुग हौँ पुनि अनुज सँघाती । (गी० ६१७) जैह-१. जायगा, २. दूर होगा, नष्ट होगा । उ० २. हम सौँ कहत बिरह-लस जैहँ गगन कूप खनि खोरे । (क० ४४) जैहौँ-जाऊँगा । उ० राम-लषन-सिय-चरन बिलोकन काहि काननहि जैहौँ । (गी० २१६५) जैहौँ-जाओगे, गमन करोगे ।

जाइ (२)-(सं० जनन)-उत्पन्न करं, पैदाकर ।

जाई (२)-(सं० जा)-१. पैदा हुई, उत्पन्न हुई, २. कन्या, बेटी ।

जाई (३)-(सं० जाती)-चमेली ।

जाए (२)-(सं० जा)-पैदा हो, जन्म लिया हो । उ० बोले बचन प्रेम जनु जाए । (मा० १३४१२)

जाकर-(सं० याः+कृतः)-जिसका । उ० जाकर चित अहिगति सम भाई । (मा० ११७४)

जाका-(सं० यः+कृतः)-जिसका, जिस व्यक्ति का । जाकी-१. जिस किसी की, २. जिसकी । उ० २. जाकी कहनि रहनि अनमिल, अलि, सुनत समुक्तियत थोरे । (क० ४४) जाकै-जिसके, जिसके पास । उ० तेहि कि दरिद्र परस-मनि जाकै । (मा० ७११२१) जाकै-१. जिसके, २. जिस किसी के । उ० १. तुलसी जाके चित भई, राग द्वेष की हानि । (वै० ५६)

जाको-१. जिसको, २. जिसका । उ० २. जाको बाल बिनोद समुक्ति जिय डरत दिवाकर भोर को । (वि० ४१)

जाग (१)-(सं० यज्ञ)-यज्ञ, मख । उ० समन अमित उत-पात सब भरत चरित जप जाग । (मा० ११४१)

जाग (२)-(सं० जागरण)-१. जागरण, जागने की क्रिया, २. जागो, उठो, निद्रा खोलो । जागत-(सं० जागरण)-१. जागता है, २. जागते हुए, ३. प्रकट होता है, प्रकाशित होता है, ४. फैला हुआ है, विदित है, प्रसिद्ध है । उ० १. जागत सोचत सरन तुम्हारी । (मा० २१३०२) ४. बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहँ जग जागत जासु पँवारो । (क० ६३८) जागति (१)-(सं० जागरण)-१. जागती है, २. जगाती है, जगाती हो, ३.

जगमगाती है, प्रकट होती है, ४. प्रफुल्लित करता है ।
 उ० २. कपट स्यानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसान ।
 (मा० २।३६) ४. केस सुदेस गँभीर बचन बर, खुति
 कुंडल-डोलनि जिय जागति । (गी० ७।१७) जागन-
 जागना, जागरण, रात भर जागना । उ० ज्यों आखु-
 कालिहु परहुँ जागन होहिगे नेवते दिये । (गी० १।५)
 जागहि-१. जागते हैं, २. जग जाते हैं । उ० १. नाम
 जीहँ जपि जागहि जोगी । (मा० १।२२।१) जागा (१)-
 १. निद्रा त्यागा, उठा, जग उठा, २. ज्ञाहिर हुए, प्रसिद्ध
 हुए । उ० १. देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा । (मा०
 १।८६।४) जागि-१. जगकर, उठकर, २. प्रसिद्ध होकर,
 ३. जग जा । उ० १. जागि करहि कहु कोटि कलपना ।
 (मा० २।१५७।३) ३. जागि त्यागु मूढ़तासुरागु श्री हरे ।
 (वि० ७४) जागिए-जगिए, उठिए, निद्रा त्यागिए । उ०
 जागिए न सोइए बिगोइए जनम जाय । (क० ७।८३)
 जागिबो-जागना, उठना, अम से बाहर निकलना । उ०
 जागिबो जो जीह जपै नीके राम नाम को । (क० ७।८३)
 जागिहै-जगेगा, जग उठेगा । उ० राग राम नाम सों,
 बिराग जोग जगिहै । (वि० ७०) जागी (१)-१. उठी,
 जगी, २. जगकर, उठकर, ३. प्रकट हुई, प्रसिद्ध हुई, ४.
 चमक उठी । उ० ३. धर्मसीलता तवजग जागी । (मा०
 ६।२२।४) जागु (१)-(सं० जागरण)-जाग, जग जा ।
 उ० अब नाथहि अनुरागु जागु जहु त्यागु दुरासा जी तें ।
 (वि० १।६८) जागू-जाग, जग उठा । उ० महा मोह निसि
 सुतत जागू । (मा० ६।५६।४) जागे-१. जाग उठे, २.
 खड़े हो गए । उ० १. जानेउ सतीं जगतपति जागे । (मा०
 १।६०।२) २. रोम-रोम जागे । (गी० १।१२) जागेउ-
 जगा, उठा । उ० जागेउ नृप अनभएँ बिहाना । (मा०
 १।१७२।१) जागें-१. जागते हैं, जागते रहते हैं, २.
 चिंतित रहते हैं, ३. जागें, ४. जगाते हैं, मंत्र से जगाते
 हैं, जगावे । उ० ४. काहे को अनेक देव सेवत जागें
 मसान । (क० ७।१६२) जागे-१. जागे, २. जागता है,
 ३. जगमगाता है, ४. बढ़ता है, ५. फैलेगा, बढ़ेगा, ६.
 चमकेगा । उ० ५. बिधि गति जानि न जाइ, अजसु जग-
 जागे । (जा० ७८)
 जाग (३)-(फा० जायगाह)-जगह, स्थान ।
 जागति (२)-(सं० जागति)-योगी, चैतन्य लोग । उ०
 मंडुल मुकतावलि जुत जागति जिय जोहैं । (गी० ७।४)
 जागबलिक-दे० 'याज्ञवल्क्य' । उ० जागबलिक मुनि
 परम बिबेकी । (मा० १।४५।२)
 जागरन-(सं० जागरण)-जागना, निद्रा का अभाव । उ०
 घर-घर करहि जागरन नारीं । (मा० १।३५।१)
 जागरक-(सं०)-चैतन्य, सचेत ।
 जागा (२)-(सं० यज्ञ)-यज्ञ, मख । उ० सतीं जाइ देखेउ
 तब जागा । (मा० १।६३।२)
 जागी (२)-(सं० यज्ञ)-यज्ञ करनेवाला । उ० कौन धौं
 सोम जागी अजामिल अधम ? कौन गजराज धौं बाजपेई ?
 (वि० १०६)
 जागु (२)-(सं० यज्ञ)-यज्ञ, मख ।
 जाचक-(सं० याचक)-माँगनेवाला, भिक्षुक, माँगता । उ०

जाचक सकल संतोषि संकर उमा सहित भवन चले ।
 (मा० १।१०२। छं० १) जाचकनि-याचकों को, माँगतों
 को । उ० देत संपदा समेत श्री निकेत जाचकनि । (क०
 ७।१६०)
 जाचकता-(सं० याचकत्व)-माँगने का भाव, भिखमंगी,
 माँगतापन । उ० जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ । (क०
 ७।२८)
 जाचत-१. माँगता है, २. माँगते हैं, ३. माँगने पर । उ०
 १. नहि जाचत, नहि संग्रहीं, सीस नाइ नहि खेइ । (दो०
 २।६०) २. जाचत सुर निमेष, सुरनायक नयन-भार अकु-
 लान । (गी० ५।२२) जाचन-१. माँगना, याचना, २.
 माँगने के लिए । उ० २. ईस उदार उमापति परिहरि
 अनत जे जाँचन जाहीं । (वि० ४) जाचहि-माँगते हैं,
 याचना करते हैं । उ० जाचहि भगति सकल सुख खानी ।
 (मा० ७।११६।४) जाचा-१. माँगा, याचना की, २.
 जाँचना, माँगना, ३. चाहा हुआ, प्रार्थित । जाचिए-
 माँगिए, माँगना चाहिए, याचना करनी चाहिए । उ०
 जाचिए गिरिजापति कासी । (वि० ६)
 जाजरो-(सं० जर्जर)-जीर्ण-शीर्ण, दुर्बल । उ० आँधरो,
 अधम, जड़, जाजरो जरा भवन । (क० ७।७६)
 जाड़-(सं० जाड्य)-जाड़ा, ठंडक । उ० जड़ता जाड़ विषम
 उर लागी । (मा० १।३६।१)
 जात (१)-(सं०)-१. जन्म, उत्पत्ति, २. पुत्र, बेटा, ३.
 उत्पन्न, जन्मा हुआ, ४. प्राणी, जीव ।
 जात (२)-(सं० जाति)-जाति, वर्ण । हिन्दुओं में ब्राह्मण,
 क्षत्रिय, वैश्य, लोहार, सोनार आदि जातियाँ ।
 जातक-(सं०)-बच्चा, बालक, शिशु । उ० तुलसी मन-
 रंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन-जातक से । (क० १।१)
 जातकरम-दे० 'जातकर्म' । उ० नंदीमुख सराध करि जात-
 करम सब कीन्ह । (मा० १।१६३)
 जातकर्म-(सं०)-हिन्दुओं के दस संस्कारों में से चौथा
 संस्कार जो बालक के जन्म के समय होता है । इसमें
 बालक के जन्म के बाद कुछ विशेष पूजन, वृद्ध-आइ
 कर बालक के जीभ पर चावल एवं जव का चूर्ण और घी
 आदि मला जाता है । उ० जातकर्म करि, पूजि पितर सुर
 दिए महिदेवन दान । (गी० १।२)
 जातना-(सं० यातना)-१. पीड़ा, कष्ट, व्यथा, तीव्र वेदना,
 २. दंड की वह पीड़ा जो यमलोक में भोगनी पड़ती है ।
 ३. नरक । उ० ३. उदर उदधि अधगो जातना । (मा०
 ६।१५।४)
 जातरूप-(सं०)-१. सोना, सुवर्ण, २. चाँदी । उ० १.
 जातरूप मनि रचित अटारीं । (मा० ७।२७।२)
 जातरूपाचल-(सं०)-सुमेरु पर्वत, सोने का पहाड़ । उ०
 जातरूपाचलाकार-बिग्रह लसत-लोम बिद्युलता-ज्वाल-
 माला । (वि० २८)
 जाता (२)-(सं० जा)-उत्पन्न हुआ, जन्मा । उ० जेहि कहूँ
 नहि प्रतिभट जग जाता । (मा० १।१८०।२)
 जाति (२)-(सं०)-१. हिन्दुओं में समाज का वह विभाग
 जो पहले कर्म पर आधारित था पर बाद में जन्मानुसार
 हो गया । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सोनार, अहीर आदि ।

२. गोत्र, ३. कुल, वंश, ४. चमेली, ५. जावित्री, ६. जायफल, ७. एक प्रकार का काव्य जिसमें अर्थ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। कैशिकी, भारती, आरभटी तथा सात्वकी, जाति के ये चार भेद कहे गए हैं। ८. वह पद्य जिसके चरणों में मात्राओं का नियम हो। मात्रिक छंद। ९. वर्ग, खंड। उ० १. मेरे ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं। (वि० ७६) जाति-पाँति-(सं० जाति+पंक्ति)-जाति वर्ण आदि, बिरादरी। उ० रटत रटत लब्धो, जाति-पाँति भाँति घब्यो। (वि० २६०)

जाती (२)-दे० 'जाति (२)। उ० ७. धुनि अचरेब कवित गुन जाती। (मा० १३७४) ६. बिन्दु विरंचि देव सब जाती। (मा० १३६३)

जातुधान-(सं०)-१. राक्षस, असुर, २. विभीषण। उ० १. जीते जातुधान जे जितैया बिबुधेस के। (गी० ३१४३) २. जातुधान भालु कपि केवट बिहंग जो जो। (क० ७१३) जातुधानपति-(सं०)-रावण. राक्षसों का राजा। उ० हरिप्रेरित जेहि कलप जोइ जातुधानपति होइ। (मा० ११७८ ख) जातुधानी-राक्षसी, मंदोदरी आदि। उ० सुनत जातुधानी सब लागीं करै बिषाद। (मा० ६१०८) जातुधानेश-(सं० जातुधानेश)-रावण। उ० जातुधानेस आता विभीषन नाम। (गी० २१४३)

जाते-(सं० यः+तः)-१. जिससे, २. जिस कारण से। उ० १. जाते छूटै भव भेद ज्ञान। (वि० ६४)

जादवराइ-(सं० यादव+राजा)-कृष्ण, यादवों का राजा। उ० मातु की गति दहै गहि कृपालु जादव राइ। (वि० २१४)

जादौ-(सं० यादव)-यदुवंशी। कहा जाता है कि ये आपस में लड़कर मर गए। उ० सकुल गए, तनु बिनु भए, साखी जादौ काम। (दो० ४२५)

जान (१)-(सं० ज्ञान)-१. अवगत होना, जानना, २. जाना, ३. जानते हैं, ४. जानो, ५. जानेगा, ६. ज्ञान, जानकारी, ७. समझ, अनुमान, ८. ज्ञानवान, बुद्धिमान। उ० १. गुप्त रूप अवतेरउ प्रभु गए जान सबु कोइ। (मा० ११४८ क) ६. व ८. जानकी जीवन जान न जान्यो तो जान कहावत जान्यो कहा है। (क० ७३६) जानई-जानता है, जानते हैं। उ० हिमवान कहेउ 'इसान महिमा अगम, निगम न जानई'। (पा० १२१) जानउं-१. जानूँ, २. जानता हूँ। उ० २. कह तापस नृप जानउं तोही। (मा० ११६३४) जानत-१. जानता, जानता है, जानकार है, २. जानते हुए, ३. जानते ही। उ० १. जानत हौं मोहि दीन्ह विधि यहु जातना सरीरु। (मा० २१७६) ३. जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई। (मा० २१२७२) जानतहूँ-१. जानते हुए भी, २. जानता हूँ। उ० १. जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। (मा० ५८११) जानति-जानती, जानती है, जानती थी। उ० जानति हहु बस नाहु हमारें। (मा० २१४३) जानब-१. जानना, समझना, जानो, जानिएगा, २. जानेगा। उ० १. सो जानब सत-संग प्रभाऊ। (मा० १३३३) जानबि-जानिएगा। उ० गौरि-सजीवनि मूरि मोरि जिय जानबि। (पा० १५७) जानसि-जानती है, जानती हो। उ० जानसि मोर सुभाउ

बरोरु। (मा० २१६२) जानहिं-जानते हैं, जान लेते हैं। उ० नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ। (मा० ११२२२) जानहिं-जानता है। उ० केवल मुनि जइ जानहि मोही। (मा० ११२७२३) जानहीं-जानते हैं। उ० महिपाल मुनि को मिलन सुख महिपाल मुनि मन जानहीं। (जा० १८) जानहु-१. जानो, २. जानते हो, जानते ही हो। उ० २. सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। (मा० ११४६४) जाना (१)-(सं० ज्ञान)-१. जानना, मालूम करना, २. जान लिया, मालूम किया। उ० १. जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। (मा० ११२२२) २. जाना राम सतीं हुखु पावा। (मा० ११५४२) जानामि-मैं जानना हूँ। उ० न जानामि योगं जप नैव पूजां। (मा० ७१०८ श्लो० ८) जानि-१. जानकर, समझकर, २. समझलो, जान ले, ३. जानी, ४. जाना, मालूम हुआ। उ० १. जइ चेतन जा जीव जत सकल राममय जानि। (मा० ११७ ग) ४. नहिं जानि जाइ, न कहति, चाहति काहि कुधर-कुमारिका। (पा० ४५) जानिअ-१. जाना चाहिए, २. जानी जाती है। उ० १. जानिअ तबहिं जीव जग जागा। (मा० २१ ६३२) २. गुरप्रसाद सब जानिअ राजा। (मा० ११ १६४१) जानिबी-जानिए, जानिएगा। उ० परिवार पुर-जन मोहि राजहिं प्रानप्रिय सिय जानिबी। (मा० ११ ३३६) छं० १) जानिबे-१. समझनी चाहिए, २. मालूम होना, जान पड़ना, ३. जानिएगा, जान पड़ेगे। उ० १. करम, धरम सुख संपदा ल्यों जानिबे कुराज। (दो० २१३) ३. तात! जात जानिबे नए दिन। (गी० २७५) जानिबी-१. जाना चाहिए, २. जानना। उ० १. मेरे जान जानिबी सोइ नर खरु है। (वि० २५५) जानिय-१. जान लेने से, २. जान लीजिए, ३. जानना चाहिए, ४. जानता हूँ। उ० १. अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं। (वि० १२०) जानियत-१. जानता है, समझता है, २. जान पड़ता है, जाना जाता है, ३. जानते हैं, समझते हैं, ४. ज्ञान, समझ। उ० १. तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौडो भरिहैं। (वि० १७१) २. सीथ-राम-संजोग जानियत रच्यो बिरंचि बनाहकै। (गी० ११६८) जानी (१)-(सं० ज्ञान) १. जानी हुई, प्रसिद्ध, २. जान ली, मालूम कर लिया, ३. जान लीजिए, जानो, ४. जानकर, ५. जानी, विद्वान्। उ० २. जानी राम, न कहि सके, भरत लषन सिय प्रीति। (दो० २०३) ३. महाबल बीर हनुमान जानी। (क० ६२०) ४. राम भगति भूषित जिये जानी। (मा० ११६४) जानु (१)-(सं० ज्ञान)-१. जानो, समझो, विचारो। उ० १. राम नाम दुइ आखर हिय हितु जानु। (ब० ४६) जानू-जानो, समझो, मानो। उ० चाप सुवा सर आहुति जानू। (मा० ११२८११) जाने-१. पहिचाने, परिचित, २. जाना, पहिचाना, जान लिया, ३. जानते हुए, ४. जानकर। उ० १. जो पै जिय जानकीनाथ न जाने। (वि० २३६) ४. जननी जनक जरठ जाने जन परिजन लोगु न छीजै। (क० ४६) जानेउं-जाना, समझा, समझा है। उ० जानेउं मरसु राउ हँसि कहई। (मा० २१२८१) जानेउ-जाना, जाना है। उ० नारद जानेउ नाम प्रतापू। (मा० ११२६२)

जानेसु-जानना, जान लेना । उ० नहिं आवौं तब जानेसु मारा । (मा० ४।२।३) जानेहि-जाना, जान सका । उ० जानेहि नहीं मरसु सठ मोरा । (मा० २।४।२) जानेहु-जाना, समझा था । उ० जानेहु लेइहि मागि खबेना । (मा० २।३।०।३) जानै-१. जाने, २. जान लेता है, जानता है । उ० २. गरजि तरजि पाषाण बरषि पवि प्रीति परखि जिय जानै । (वि० ६५) जानो-समझो, जान लो । उ० स्याम वियोगी ब्रज के लोगनि जोग जोग जो जानो । (कृ० ३५) जानौं-१. जानूँ, २. जानता । उ० २. जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम को । (क० ७।१७८) जान्यो-जाना, पहिचाना, समझ में आया । उ० जान्यो तुलसीदास, जोगवत नेही मेह-मन । (दो० ३०७)

जान (२)-(सं० यान)-१. गाड़ी, रथ, वाहन, २. जाना है, ३. जाने के लिए । उ० १. कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान । (मा० २।१८६) ३. कहेउ जान बन केहि अपराधा । (मा० २।५४४)

जान (३)-(क्रा०)-१. प्राण, जीव, दम, २. शक्ति, समर्थ, ३. तत्व, सार ।

जानकि-दे० 'जानकी' । उ० बिस्व बिजय जसु जानकि पाई । (मा० १।३५७।३) जानकिरमन-जानकीरमण, राम । उ० दससीस बिभीषन अभयप्रद जय जय जानकिरमन । (क० ७।११४) जानकिरवन-जानकीरमण, जानकी के पति, राम । उ० कह तुलसिदास सुर-सुकुटमनि जय जय जानकिरवन । (क० ७।११२)

जानकिहि-जानकी को । उ० राखेउं प्राण जानकिहि लाई । (मा० २।५११) जानकिहि-जानकी को । उ० देखि जानकिहि भए दुखारी । (मा० १।२५२।४) जानकी-(सं०)-जनक की पुत्री और राम की धर्मपत्नी, सीता, जानकी में कंत, शरण, रमण, रमन, रवन, ईश, ईस, नाथ, नाह आदि शब्द जोड़कर राम का अर्थ लिया जाता है । जैसे, जानकीरमण, जानकीकंत आदि । उ० जनकसुता जगजननि जानकी । (मा० १।१८।४) जानकीजीवन-जानकी के जीवन, राम । उ० जानकीजीवन जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि । (क० ७।२६)

जाननिहार-जाननेवाला, ज्ञाता, जानकार । उ० माया मायानाथ की जो जग जाननहार । (दो० २४५)

जाननिहारा-दे० 'जाननिहार' । उ० और तुम्हहि को जाननिहारा । (मा० २।१२७।१)

जानपनी-बुद्धिमान्नी, जानकारी, चतुराई । उ० दम दान दया नहिं जानपनी । (मा० ७।१०२।५)

जाना (२)-(सं० यान)-गाड़ी, रथ । उ० कनक बसन मनि भरि भरि जाना । (मा० १।३३३।४)

जानी (२)-(क्रा० जान)-प्राणप्यारी, स्त्री ।

जानु (२)-(सं०)-जाँघ और पिंडली के मध्य का भाग, घुटना । उ० काम-तून-तल सरिस जानु जुग, उरु करि-कर करमहिं बिलखावति । (गी० ७।१७)

जाप-(सं०)-किसी मंत्र आदि की आवृत्ति । दे० 'जप' । उ० जाप जग्य पाकरि तर करई । (मा० ७।५७।३)

जापक-(सं०)-जपकर्ता, जप करनेवाला । उ० जापक जन

प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल । (मा० १।२७) जापकहि-जप करनेवाले को । उ० राम नाम-जप जापकहि, तुलसी अभिमत देत । (प्र० २।५।७)

जापकी-दे० 'जापक' । उ० जापकी न, तप खप कियो न तमाइ जोग । (क० ७।७७)

जापू-दे० 'जाप' । उ० अनमिल आखर अरथ न जापू । (मा० १।१५।३)

जाप्य (१)-(सं० जाप)-जाप करने योग्य, इष्टदेव । उ० सिद्धिसाधक साध्य, वाच्य बाचक रूप, मंत्र-जापक जाप्य, सृष्टि स्रष्टा । (वि० ५३)

जाप्य (२)-(सं० याप्य)-अधम, निकृष्ट, निन्दनीय ।

जाबालि-(सं०)-कश्यपवंशीय एक ऋषि जो राजा दशरथ के गुरु और मंत्रियों में से थे । ये भी रामचंद्र को लौटाने के लिए चित्रकूट गए थे, और राम को बहुत समझाया था । उ० बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि । (मा० १।३३०)

जाबाली-दे० 'जाबालि' । उ० कौसिक बामदेव जाबाली । (मा० २।३११।३)

जाम (१)-(सं० याम)-ग्रहर, याम, ७ई घड़ी या तीन घंटे का समय । उ० गएँ जाम जुग भूपति आवा । (मा० १।१७२।३)

जाम (२)-(क्रा०)-प्याला, प्याले के आकार का कटोरा । जामति-जमती है, उपजती है । उ० कामधेनु-धरनी कलि-गोमर-बिबस बिकल, जामति न बई है । (वि० १३६) जामहिं-१. जमता है, उगता है, २. उगता । उ० २. देव न बरषहिं धरनी बए न जामहिं धान । (मा० ७।१०१ ख) जामा (१)-(सं० जन्म)-जमा, अंकुरित हुआ, पैदा हुआ । उ० पाइ कपट जलु अंकुर जामा । (मा० २।२३।३) जामी (१)-(सं० जन्म)-१. पनपी, अंकुरित हुई, जन्मी, उत्पन्न हुई, २. उपजा है, ३. जड़ पकड़ी । उ० १. राम भगति एहिं तनउर जामी । (मा० ७।१६।२) जामो-१. जमा है, उपजा है, २. जन्मा, उत्पन्न हुआ । उ० १. नाम प्रभाउ सही जो कहै, कोउ सिखा सरोरुह जामो । (वि० २३८) जामो-जमे, उत्पन्न हो, उगे, अंकुरित हो ।

जामन-(सं० यमन)-थोड़ा सा दही या कोई और खटी चीज़ जिसे दूध में डालकर दही जमाते हैं । जावन ।

जामनु-दे० 'जामन' ।

जामवंत-(सं० जांबवंत)-सुग्रीव के मंत्री का नाम जो ब्रह्मा का पुत्र माना जाता है । प्रसिद्ध है कि जामवंत रीढ़ था । त्रेता युग में रावण के विरुद्ध राम की सहायता करनेवालों तथा लड़ने वालों में यह प्रमुख था । भागवत के अनुसार द्वापर में इसी की कन्या जीववती से कृष्ण ने विवाह किया था । सतयुग में जामवंत ने वामन भगवान् की परिक्रमा की थी । इस प्रकार यह तीनों युगों में जीवित था । जांबवान । उ० जिमि जग जामवंत हनुमान् । (मा० १।७।४)

जामा (२)-(क्रा०)-पहनावा, वस्त्र ।

जामाता-(सं० जामातृ)-बेटी का पति, दामाद । उ० सादर पुनि भेटे जामाता । (मा० १।३४।१।१)

जामिक-(सं० यामिक)-पहरेदार, रत्नक । उ० जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के । (मा० २।३।१६।३)
जामिन-दे० 'जामिनी' ।
जामिनि-दे० 'जामिनी' । उ० भूख न बासर नीद न जामिनि । (मा० २।२।१।३)
जामिनी-(सं० यामिनी)-रात, निशा । उ० जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी । (मा० २।५०।६०।१)
जामी (२)-सं० यामी)-जाननेवाला ।
जामु-याम । दे० 'जाम' (१) । उ० बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु । (मा० १।२।१७)
जाय-(सं० जा)-१. पैदा कर, जन्म देकर, २. जन्मा है, ३. पैदा किया, जन्म दिया । उ० १. मातु पिता जग जाय तय्यो, बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई । (क० ७।५७) जाया (१)-(सं० जा)-१. उत्पन्न, २. उत्पन्न किया, ३. उत्पन्न हुआ, ४. पुत्र, बेटा । उ० ३. जेहि न मोह अस को जग जाया । (मा० १।१२।२।४) जाये (१)-(सं० जा)-पैदा हुआ, पुनर्जन्म पाया हुआ । उ० आजु जाये जान सब अकमाल देत हैं । (क० ५।२।२६) जायो-१. पैदा किया, जन्माया, २. उत्पन्न हुआ, ३. पैदा होता । उ० १. मोसे दोस-कोस पोसे, तोसे माय जायो को । (वि० १।७।६) जायौ-पैदा किया, उत्पन्न किया ।
जाया (२)-(सं०)-१. पत्नी, स्त्री । उ० उदासीन धन धामु न जाया । (मा० १।६।७।२)
जाये (२)-(सं० यान)-वृथा, गया बीता ।
जार-(सं०)-किसी स्त्री का अवैधानिक पति, उपपति, थार ।
जारित-१. जलाता है, भस्म करता है, २. जलाते समय । उ० २. जारत नगर कस न धरि खाहू । (मा० ६।६।२)
जारा (१)-(सं० उवलन)-जलाया, भस्मीभूत किया, जला डाला । उ० अस कहि जोग अग्नि तनु जारा । (मा० १।६।४।४) जारि-जलाकर । उ० बिनु जल जारि करइ सोइ झारा । (मा० २।१।७।४) जारिउँ-जलाया । उ० जारिउँ जायँ जननि कहि काकू । (मा० २।२६।१।३) जारिए-१. जलाइए, २. जलते हैं । उ० २. बरषत बारि पीर जारिए जवासे जस । (ह० ३।५) जारी- १. जलाकर, २. जलायां, जला दिया । उ० २. सपनें बानर लंका जारी । (मा० २।१।१।२) जारें-जलाने पर, जलाने से । उ० गाइ-गोट महिसुर पुर जारें । (मा० २।१६।७।३) जारै-१. जलावे, २. जलाने ही, फूँकने ही । उ० २. जारै जोगु सुभाउ हमारा । (मा० २।१६।४) जारो-भस्म किया, जलाया । उ० यह बड़ि त्रास दास तुलसी प्रभु नामहुँ पाप न जारो । (वि० ६।४)
जारनिहारे-जलानेवाले, भस्म करनेवाले । उ० पावक-बिरह समीर-स्वास तनु-तूल मिले तुम्ह जारनिहारे । (क० ५।६)
जारा (२)-(सं० जार)-दे० 'जार' ।
जारा (३)-(सं० जाल)-झुंड, समूह । उ० अस्थि सैल सरिता नंस जारा । (मा० ६।१।५।४)
जाल-(सं०)-१. तार या सूत आदि का जुना पट जिसमें

छोटे-छोटे या कुछ बड़े-बड़े छेद होते हैं । मछली या चिड़ियों आदि को पकड़ने के लिए इसको काम में लाया जाता है । पाश, २. समूह, ३. वह युक्ति जो दूसरे के फँसने के लिए काम में लाई जाय । घोखा, ४. इन्द्र-जाल, ५. खिड़की, झरोखा, ६. गर्व, घमंड, ७. जंजाल । उ० १. जलचर-बृंद जाल-अंतरगत होत सिमित इक पासा । (वि० ६।२) २. श्रीफल कुच कंचुकि लताजाल । (वि० १।४)
जाला-(सं० जाल)-१. मकड़ी का जाला । इसमें मक्खियाँ या कीड़ों को फँसाकर मकड़ियाँ खाती हैं । इसे मकड़ियाँ अपने मुँह के लार से बनाती हैं और फिर इसे खा जाती हैं । २. आँख का एक रोग, ३. भूसा आदि बाँधने का जाल, ४. पानी रखने का एक प्रकार का बरतन । ५. जाल, पाश, बंधन, ६. समूह, ७. जंजाल । उ० ७. सुमिरत समन सकल जगजाला । (मा० १। २।७।३)
जालिका-(सं०)-१. पाश, फंदा, २. जल्दी, ३. समूह, झुंड, ४. माला । उ० ४. प्रनतजन-कुमुदवन-इंदुकर-जालिका । (वि० ४।८)
जालु-१. जाल, फंदा, २. समूह । उ० २. अमिय बचन सुनाइ मेटहि बिरह-जवाला-जालु । (गी० ५।३)
जालू-१. जाल, पाश, २. जंजाल । उ० २. जनसु मरनु जहँ लगी जगजालू । (मा० २।६।२।३)
जावनु-दे० 'जामन' । उ० शृत सम जावनु देइ जमावै । (मा० ७।१।१।७।७)
जासु-(सं० यस्थ)-जिसका, जिसकी । उ० गावहिं बेद जासु जस लीला । (मा० १।८।०।१)
जासू-दे० 'जासु' । उ० ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू । (मा० १।६।६।२)
जासों-१. जिससे, २. जिस प्रकार से । उ० १. जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो । (वि० १।७।४)
जाइ (२)-(सं० यः)-जिसमें । उ० कथा सुधा मथि काइहिं, भगति मधुरता जाहिं । (मा० ७।१।२०।क)
जाहि (२)-(सं० यः)-१. जिसे, जिसको, २. जिससे, ३. जिसमें, ४. जिस, जो । उ० १. जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन । (मा० १।१। सो० ४)
जाही (२)-(सं० यः)-१. जिसको, जिसे, २. जिससे । उ० १. बरइ सीलनिधि कन्या जाही । (मा० १।१।३।१।२)
जिअउँ-(सं० जीवन)-१. जीउँ, जीवन बिताऊँ, २. जीवित हूँ, जीता हूँ । उ० १. प्रनतपाल प्रनतोर, मोर प्रन जिअउँ कमल पद देखे । (वि० १।१।३) जिअत-१. जीते जी, २. जीते हैं, जीता है । उ० १. सबहि जिअत जेहिं भँटहु आइ । (मा० २।५।७।२) जिअन-जीने, जीवित रहने । उ० जिअन मरन फलु दूसरथ पावा । (मा० २।१।५।१)
जिअन-जीना, जीवित रहना । उ० भूपति जिअन मरन उर आनी । (मा० २।२।२।४) जिअसि-जीता है, जीवित रहता है । उ० जिअसि सदा सठ मोर जिआवा । (मा०-५।४।१।२) जिअहुँ-दे० 'जिअउँ' । जिइहिं-जीएँगे, जीते रहेंगे । उ० प्रजा मातु पितु जिइहिं कैसे । (मा० २।१।०।१) जिइहिं-जीते रहेंगे, जीवित रहेंगे । उ० राजु कि भूजब भरतपुर नृपु कि जिइहिं बिनु राम । (मा० २।४।६)

जिए-१. जीती रहे, जीवे, २. जीवित हो गए, ३. जीवित रहने से, ४. जीने पर। उ० ४. जाके जिए मुए सोच करिहैं न लरिको। (ह० ४२) जिए-दे० 'जिए'। उ० १. जिये मीन बरु बारि बिहीना। (मा० २।३३।१) जिअ-जीता रहूँ, जीजँ। उ० जत्र लजि जिअँ कहउँ कर जोरी। (मा० २।३६।४) जियत-१. जीता, जीवित, २. जीता हूँ, ३. जीते जी, ४. जीता है। उ० ३. जियत खिलाये राम। (दो० २२१) ४. राम से प्रीतम की प्रीति रहित जीव जाय जियत। (वि० १३२) जियवे-जीने, जीवित रहने। उ० बहुरि मोहँ जियवे मरिबे की चित चिता कछु नाहीं। (गी० २।१) जिआ-१. जीवित हो गया, २. जीवित। उ० १. बालकु जिआ बिलोकि सब, कहत उठा जनु सोइ। (प्र० ६।१५) जिये-१. जीने से, २. जीवित रहें। उ० १. नर ते खर सुकर स्वान समान, कहौ जग में फल कौन जिये। (क० १।६) जियै-१. जीवित रहें, जीपँ, २. जीने से। उ० १. जेहि देह सनेह न रावरो सों, असि देह धराइ कै जाय जियै। (क० ७।३८) जियै-१. जीता है, २. जीवित रहे। उ० १. मनि बिना फनि जियै ब्याकुल बिहाल रे! (वि० ६७) जियो-१. जीवित हो उठा, सचेत हो उठा, २. बढ़ा, अधिक जीवित हुआ। उ० २. इन्हहीं के आए ते बधाए अज नित नपु, नादत बादत सब सब सुख जियो है। (क० १।६) जीजै-१. जीना, जीवित होना, जीवित होइए, २. जीवित रहे, ३. जीवित हैं, जिन्दा हैं, ४. जीवित रहें तो। उ० १. मारँ मरिअ जिआएँ जीजै। (मा० ३।२५।२) जीजा-जीना, जिन्दा रहना। उ० लीजै गाउँ, नाउँ लै रावरो है जग ठाउँ कहँ हैं जीबो। (क० ६) जीयत-जीते जी, जब तक जीवित हैं। उ० जीयत राम, मुये पुनि राम, सदा रघु-नायहि की गति जेही। (क० ७।३६) जीवत-१. जीता है, जीवित है, २. जीते जी, ३. जीवित, जिन्दा। उ० १. घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं। (मा० १।६६। १) जीवहुँ-जीवँ, जीवित रहँ। उ० सकल तनय चिर जीवहुँ तुलसिदास के ईस। (मा० १।१६६) जिअनमूरि-(सं० जीवन + मूल)-१. जीवन प्रदान करने वाली जड़ी, संजीवनी बूटी, २. अत्यन्त प्रिय वस्तु। उ० १. जिअनमूरि जिमि जगिबत रहऊँ। (मा० २।५६।३) जिआइ-जिलाकर, जीवित कर। उ० कोसलपाल कृपालु चित, बालक दीन्ह जिआइ। (प्र० ६।१५) जिआइहौं-जिलाऊँगा। उ० तुलसी अवलब न और कछु, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू? (क० २।६) जिआउ-जिलाओ, जीवित करो। उ० सुनि सुमंत! कि आनि सुंदर सुवन सहित जिआउ। (गी० २।५७) जिआए-१. जिलाए, जीवित किया, २. पाला है। उ० १. सुधा सींचि कपि, कृपा नगर-नर-नारि निहारि जिआए। (गी० ६।२२) उ० २. नाना खग बाल कन्हि जिआए। (मा० ७।२८।२) जिआयउ-जिलाया, जिला लिया। उ० मोहि जिआयउ जन-सुखदायक। (मा० ७।६३।४) जिआयो-१. जिलाया, २. जिला रक्खा है, जीवित कर रक्खा है। उ० २. सँवेहुँ सुत-बियोग सुनिबे कहँ धिग बिधि मोहि जिआयो। गी० २।५६) जिआव-जिलाता है, जिला रहा है। उ० सोइ

विधि ताहि जिआव न आना। (मा० ६।६६।५) जिआवत-जिला रहा है। उ० मोर अभाग्य जिआवत ओही। (मा० ६।६६।३) जिआवनि-जिलानेवाली। उ० मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। (मा० १।१४।४) जिआवसि-जिलाते हो, जिला रहे हो। उ० संकर बिमुख जिआवसि मोही। (मा० १।५०।२) जिआवा-१. जिलाया, २. जिलाया हुआ। उ० २. जिआसि सदा सठ मोर जिआवा। (मा० ५।४१।२)

जिउ-(सं० जीव)-प्राण, दम, जान। उ० जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी। (मा० २।१४।२)

जित (१)-(सं० यत्र)-जिधर, जिस ओर, जहाँ। उ० कै ए नयन जाहु जित ए री। (गी० १।७६)

जित (२)-(सं०)-१. जीता हुआ, पराजित, २. जीत, विजय, ३. जीतनेवाला, जेता। उ० ३. आजानु भुज सरचाप-धर संग्राम जित खर दूषण। (वि० ४५)

जित (३)-(सं० जिति)-जीत लिया। जितई (१)-(सं० जिति)-१. जिताया, जिता दिया, २. जीता। उ० १. समरथ बढो सुजान सुसाहिब सुकृत-सेन हारत जितई है। (वि० १३६) जितन-जीतने के लिए। उ० बलिहि जितन एक गयउ पताला। (मा० ६।२४।७) जितब-जीतेंगे, जीत पायेंगे। उ० पिय तुम्ह ताहि जितब संग्राम। (मा० ६।३६।२) जितहिं-जीते, जीत सके। उ० तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी। (मा० १।१२३। ४) जिता-१. जेता, जीतनेवाला, २. जीत लिया। उ० १. धरम-धुरंधर धीरधुर गुन-सील जिता को? (वि० १५२) २. जिता काम अहमिति मन माहीं। (मा० १।१२७।३)

जिति-जीतकर, विजय कर। उ० रिपुजिति सब नृप नगर बसाई। (मा० १।१७।५) जितिहिं-जीतेंगे। उ० जितिहिं राम न संसय यामहिं। (मा० ६।५७।३) जिते-(१)-१. जीत लिया, जीता है, २. जीतने पर। उ० १. देखे जिते हते हम केते। (मा० ३।१६।२) जितेउं-जीत लिया। उ० भुजबल जितेउं सकल दिगपाला। (मा० ६।८। २) जितेहु-जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर आरि। (मा० ५।२१) जितै (१)-(सं० जिति)-जीते, जीत सके। उ० जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ। (मा० १।१६।४) जितो (१)-(सं० जिति)-विजय किया, जीत लिया है। उ० कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सों चंद सों होइ परी है। (क० ७।१८०) जितौ (१)-दे० 'जितो (१)। जित्यो-जीता, जीत लिया, जीतता चला आया। उ० जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहि जितैहो। (वि० २७०)

जितैहो (२)-(सं० यत्र)-जिधर ही। जिताए-जिताया, जिता दिया। उ० तेरे बल बानर जिताए रन रावन से। (ह० ३३) जितावहिं-जिताते हैं, जिता देते हैं। उ० हारेहुँ खेल जितावहिं मोहीं! (मा० २।२६०।४) जितैहो-जिताओगे, जीत कराओगे। उ० जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहि जितैहो। (वि० २७०)

जितेंद्रिय-(सं०)-१. जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया हो, इन्द्रियों को वश में करनेवाला। २. सम वृत्ति वाला, शान्त।

जिते (२)-(सं० यः)-जितने, जितने भी। उ० कबहुँ न डग्यो निगम-मग तेँ पग नृग जग जान जिते दुख पाए। (वि० २४०)

जितै (२)-(सं० यन्न)-जिधर, जिस ओर।

जितैया-जीतनेवाला, विजय करनेवाला, विजयी। उ० रूप के निधान, धनुष बान पानि, दून कटि, महाबीर-बिदित, जितैया बड़े रन के। (वि० ३७)

जितो (२)-(सं० यः)-जितना, जिसमात्रा का, जितना ही। उ० जितो दुराउ दास तुलसी उर क्यों कहि आवत ओतो। (वि० १६१)

जितौ (२)-जितना, जितना अधिक। उ० नख सिख सुंदरता अबलोकत कछो न परत सुख होत जितौ री। (गी० १।७५)

जितौहैं-जीत की ओर झुका हुआ, जीत चाहने वाला। उ० इन्हके जितौहैं मन, सोच अधिकानी तन। (गी० १।८४)

जिन (१)-(सं० ज्ञ यानां। तु० सं० यानि, येषां)-'जिस' का बहुवचन, जिन्ह, जो लोग, जिन्होंने। उ० जिन जानि कै गरीबी गाढ़ी गही है। (गी० २।४१) जिनके-जिन लोगों के। उ० जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी। (वि० ५) जिनहिं-जिनको, जिन लोगों को। उ० कौन सुभग सुसील बानर जिनहिं सुमिरत हानि। (वि० २१५)

जिन (२)-(अर०)-भूत-प्रेत, मुसलमानी भूत। जिनस-दे०-'जिनिस'। उ० १. बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बवै। (मा० १।६३।६०१)

जिनिस-(फा० जिस)-१. जाति, प्रकार, तरह, २. वस्तु, चीज़, सामान।

जिन्ह-(सं० ज्ञयानां)-जिन, जो लोग। उ० परहित हानि लाभ जिन्ह करै। (मा० १।४१) जिन्हहिं-जिनको, जिन लोगों को। उ० तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ। (मा० १।३८) जिन्हही-जिनको, जिन लोगों को। उ० रामचरन पंकज प्रिय जिन्हही। (मा० २।८४।४)

जिमि-(सं० यः+एवम्)-जिस प्रकार, जैसे, ज्यों। उ० अजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ। (मा० १।३६)

जिये-जी में, मन में। उ० देखि मोहि जिये भेद बढ़ावा। (मा० ४।६।५) जिय-(सं० जीव)-१. मन, चित्त, जी, २. प्राण, जीव, ३. प्राणी, शरीरधारी, ४. सार, ५. आत्मा। उ० १. राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि। (वि० १८४)

जियरे-जी में, चित्त में। उ० कुंडल-तिलक-छवि गढ़ी कवि जियरे। (गी० १।४१)

जियये-१. जीवित कर दिए, २. पालन-पोषण किया, ३. रखा की।

जिव-(सं० जीव)-१. जीव, जीवात्मा, २. प्राण, दम। उ० १. तबहीं ते न भयो हरि ! थिर जबैते जिव नाम धरयो। (वि० ६१)

जिवन-दे० 'जीवन'। उ० गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख संपति। (पा० २०)

जिवनमूरि-दे० 'जिअनमूरि'।

जिवनु-दे० 'जीवन'। उ० जिवनु जासु रघुनाथ अधीना। (मा० २।१४६।३)

जिष्णु-(सं०)-जीतनेवाला, विजयी। जिष्णो-हे जयशील, हे विजयी। उ० भुवन भवदंस कामारि वंदित-पदद्वंद-मंदाकिनी-जनक जिष्णो। (वि० ५४)

जिसु-(सं० यस्य)-जिसका। उ० सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू। (मा० १।११२।२)

जिह्वा-(सं०)-जीभ, रसना।

जी (१)-(सं० जीव)-१. मन, दिख, चित्त, २. हिम्मत, साहस, ३. संकल्प, विचार, ४. जीवन। उ० १. रीकत राम जानि जन जी की। (मा० १।२६।२) ४. अवधि आस सम जीवनि जी की। (मा० २।३१।१)

जी (२)-(सं० श्रीयुत, प्रा० जुक, हि० जू)-१. नाम के पीछे लगाया जानेवाला आदरसूचक शब्द, २. किसी बड़े के कथन, प्रश्न या संबोधन के उत्तर रूप में प्रतिबोधन, हाँ।

जीजी-[सं० देवी (?)]-बड़ी बहन। उ० "कीजै कहा, जीजी जू!" सुमित्र परि पार्य कहै। (क० २।४)

जीत-(सं० जिति)-१. विजय, फूटह, सफलता, २. लाभ, फायदा, ३. जीतना, जीत सकना, ४. जीतेगा। उ० ४. समरभूमि तेहि जीत न कोई। (मा० १।१३।१२)

जीतन-जीतना, जीतने। उ० जीतन कहँ न कवहुँ रिपु ताके। (मा० ६।८०।६) जीतहु-जीतो, जीत लो। उ० जीतहु समर सहित दोउ भाई। (मा० १।२६६।३) जीति-

१. जीतकर, २. जीत, विजय, ३. जीता। उ० १. पुष्पक जान जीति लै आवा। (मा० १।१७।१४) ३. अजर अमर सो जीति न जाई। (मा० १।८२।४) जीतिअ-जीता जा सकता है। उ० संपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई। (मा० ६।५६।४) जीतिहहिं-जीतेंगे। उ० जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे। (मा० ६।४३।१) जीती-विजय कर, जीत। उ० एकहि एक सकइ नहिं जीती। (मा० ६।५४।२) जीते-जीत लिए, जीता। उ० तेहि सब लोक लोकपति जीते। (मा० १।८२।३) जीतेहु-१. जीता है, २. जीतने पर भी। उ० १. जीतेहु जे भट संजुग माहीं। (मा० ६।६०।२) जीतेहु-दे० 'जीतेहु'। उ० २. तुलसी तहाँ न जीतिये जहँ जीतेहु हारि। (दो० ४३०) जीतै-१. जीते, २. जीतेगा। उ० २. संभु सुक संभूत सुत एहि जीतै रन सोइ। (मा० १।८२)

जीत्यो-दे० 'जीत्यो'। उ० १. जीत्यो अजय निसाचर राऊ। (मा० ६।११।२) जीत्यो-१. जीत लिया, जीत लिया है, २. जीता, ३. जीतना। उ० १. मातु समर जीत्यो दससीसा। (मा० ६।१०।४) ३. मोसे बीर सौं चहत जीत्यो रारि रन में। (गी० ५।२३)

जीन (१)-(सं० जीर्ण)-१. जर्जर, टूट-फूटा, २. पुराना, बूढ़।

जीन (२)-(फा० ज़िन)-बोड़े की पीठ पर रखने की गद्दी, काठी, चारजामा। उ० रचि खचि जीन तुरग तिन्ह साजे। (मा० १।२६।२)

जीम-(सं० जिह्वा)-१. रसना, ज़बान, २. वाणी, गिरा। उ० १. काटिअ तासु जीम जो बसाई। (मा० १।६।४)

जाड़ा देकर आता है । उ० जातहिं नीद जुड़ाई होई ।
(मा० १३६११)

जुड़ाऊ-(सं० जाड्य)-शान्त करो, ठंडक पहुँचाओ । उ०
नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ । (मा० २११६८३)

जुड़ान-शीतल हुए, ठंडे हुए, शांत हुए । जुड़ाना-दे०
'जुड़ान' । उ० तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना । (मा०
११८७१४) जुड़ानी-शांत हुई, ठंडी हुई, ठस हो गई ।
उ० देखि रासु सब सभा जुड़ानी । (मा० १३२६११)
जुड़ाने-दे० 'जुड़ान' । उ० रामबचन सुनि कछुक जुड़ाने ।
(मा० १२७७३३) जुड़ाये-१. शीतल हुए, ठंडे हुए, २.
शांत किए, ठंडा किए । जुड़ाये-शीतल किया, ठस किया,
संतुष्ट किया । उ० जरत फिरत त्रयताप-पाप बस काहु
न हरि ! करि कृपा जुड़ाये । (वि० २४३) जुड़ावई-
ठंडा करे, शांत करे, ठस करे । जुड़ावई-दे० 'जुड़ावई' ।
जुड़ावई-जुड़ाऊँ, जुड़ाऊँगा, ठंडी करूँगा । उ० आजु
निपाति जुड़ावई छाती । (मा० ६१८३११) जुड़ावहिं-
जुड़ाती हैं, शीतल करती हैं । उ० हृदय लगाइ जुड़ावहिं
छाती । (मा० १२६६१३) जुड़ावहु-शांत करो, ठंडा करो,
ठस करो । उ० मागहु आजु जुड़ावहु छाती । (मा०
२१२२३३) जुड़ावा-शीतल किया, ठंडा किया । उ० निज
शीतल जल सींचि जुड़ावा । (मा० ४३३३) जुड़ावै-दे०
'जुड़ावई' । उ० तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै । (मा०
७११७७७)

जुत-(सं० युक्त)-सहित, समेत, युक्त, पूर्वक । उ० सुख जुत
कछुक काल चलि गयऊ । (मा० १११६०४)

जुत्य-(सं० यूथ)-समूह, गोल, मंडली । उ० जुवति जुत्य
महँ सीथ सुमाइ बिराजइ । (जा० १५८)

जुद्ध-(सं० युद्ध)-लड़ाई, संग्राम । उ० जुद्ध विरुद्ध क्रुद्ध
द्वौ बंदर । (मा० ६१४४११)

जुन्हैया-(सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा)-चाँदनी, कौमुदी ।
जुपै-(सं० यः+पर) यदि जो, परंतु जो । उ० तुलसी जुपै
गुमान को होतो कछु उपाउ । (दो० ४६३)

जुवति-दे० 'जुवति' । उ० जग असि जुवति कहाँ कमनीया ।
(मा० १२४७१२)

जुवतिन्ह-जुवतिन्ह । उ० जहँ तहँ जुवतिन्ह मंगल गाए ।
(मा० १२६३११) जुवती-युवतियाँ, स्त्रियाँ । उ० जुवतीं
भवन ऋरोखन्हि लागीं । (मा० १२२०१२) जुवती-दे०
'जुवती' । उ० पुत्रवती जुवती जग सोई । (मा० २१७२११)

जुवराज-दे० 'जुवराज' । उ० १. आप अछत जुवराज पद
रामहि देउ नरेसु । (मा० २११)

जुवराजा-दे० 'जुवराज' । उ० २. पुनि सकोप बोलेउ जुव-
राजा । (मा० ६१३३१२)

जुवराज-दे० 'जुवराज' । उ० ३. नृप जुवराजु राम कहँ देह ।
(मा० २१२४)

जुवराज-दे० 'जुवराज' । उ० १. नाथ रासु करिअहिं
जुवराजु । (मा० २१४११)

जुवा-दे० 'जुवा' । उ० नारि पुरुष सिसु जुवा सयाने ।
(मा० १३६११)

जुवान-दे० 'जुवान' । उ० १. बाल जुवान जरत बर-बारी ।
(मा० १२४०३)

जुवान-दे० 'जुवान' । उ० १. सरिस स्वान मघवान जुवानु ।
(मा० २१३०२४)

जुर-(सं० ज्वर)-ज्वर, बुझार, ताप । उ० जोवन जरत जुर
परै न कल कहीं । (क० ७१६८)

जुरइ-(सं० युक्त, हि० जुटना)-जुड़ती, मिलती, प्राप्त होती ।
उ० चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी । (मा० ११८४)

जुरन-(सं० युक्त)-जुटने, इकट्ठा होने । उ० चदि-चदि रथ
बाहेर नगर लागी जुरन बरात । (मा० १२६६)

जुरि-एकत्र होकर, इकट्ठा होकर । उ० गावति गीत सबै मिलि
सुंदरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पदाहीं । (क० १११७) जुरिहि-

१. जुड़ जायगा, एक होगा, २. प्राप्त होगा, मिल
जायगा । उ० १. दूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने । मा०
१२७७) २. गिरिजा-जोग जुरिहि बर अनुदिन लोचहि ।

(पा० १०) जुरी-१. जुड़ी, जुटी, संबद्ध हुई, २. मिली,
पास हुई । उ० १. तासों क्योँहू जुरी, सो अभागो बैठे
तोरि हौं । (वि० २५८) जुरे-इकट्ठे हुए, एकत्र हुए हैं ।

उ० परब जोग जनु जुरे समाजा । (मा० १४१४)

जुराना-दे० 'जुड़ान' ।
जुवति-(सं० युवति) जवान स्त्री, नवयुवती । उ० जोबन-
जर जुवती-कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन-बाय ।
(वि० ८३)

जुवतिन्ह-युवतियाँ, जवान स्त्रियाँ । उ० जुवतिन्ह मंगल गाह
राम अन्हवाइय हो । (रा० ३) जुवती-(सं० युवती)
युवती, स्त्री । उ० उर धरहु जुवती जन बिलोकि तिलोक-
सोभा सार सो । (पा० १६४)

जुवराज-(सं० युवराज)-१. राजकुमार, राजा का वह लड़का
जो राज्य का अधिकारी होता है । गद्दी का अधिकारी,
२. अंगद, ३. युवराज-पद ।

जुवा (१)-(सं० युवा)-जवान, नवयुवक । उ० गावति गीत
सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पदाहीं । (क०
१११७)

जुवा (२)-(सं० यूत)-दे० 'जुआ (२)' ।
जुवान-(सं० युवन्)-१. जवान और कामी युवक, २.
सिपाही ।

जुवारि-(सं० यवाकार)-ज्वार, एक अन्न । उ० बगरे नगर
निछावरि मनिगन जनु जुवारि जव धान । (गी० १२)

जुवारी (१)-(सं० यूत, हि० जुआ)-जुआ खेलनेवाला ।
जुवारी (२)-(हि० ज्वार)-बढ़ना, समुद्र या नदी की बाढ़
या साँस ।

जुहार-(सं० अवहार)-दंडवत, सलाम, बंदगी ।
जुहारत-जुहार करते हैं, अभिवादन करते हैं । उ० भाँति-
भाँति उपहार लेह, मिलत जुहारत भूप । (प्र० ६२१७)

जुहारी-(सं० अवहार)-सहायता, मदद । उ० ज्यों हरि रूप
सुताहिं तें कीन जुहारी आनि । (दो० ५३६)

जू-[दे० जी (२)]-१. जी, एक आदर सूचक शब्द जो
नाम के पीछे लगाया जाता है, २. आदरसूचक संबोधन
का शब्द । कभी कभी कविता में पादपुति के लिए भी
इसका प्रयोग होता है । उ० २. एहि घाट तें थोरिक दूर
अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू । (क० २६)

जूआ (१)-(सं० यूत)-दे० 'जुआ (१)' ।

जूआ (२)-(सं० युत)-दे० 'जूआ (२)' ।
 जूक-(सं० युद्ध)-लड़ाई, युद्ध । उ० परपुर बाद-बिबाद-जय, जूक जुआजय जानि । (प्र० २।४।२)
 जूका-१. युद्ध, लड़ाई, २. लड़ गया, ३. मारा गया । उ० १. करब कवन विधि-रिपु सैं जूका । (मा० ६।८।४) जूकबे-युद्ध करने, लड़ने, लड़ाई करने । उ० आपनि सूक कहौ, पिया बूकिए, जूकबे जोग न ठाहरु नाठे । (क० ६।२८) जूकबो-जूकना, युद्ध करना । उ० कै जूकबो कै बूकबो, दान कि काय-कलेस । (दो० ४२१) जूके-१. जूक मरे, लड़ मरे, २. लड़ने, लड़ाई करने । उ० २. जूके सकल सुभट करि करनी । (मा० १।१७।२।३) २. जूके ते भल बूकबो, भली जीति तें हारि । (दो० ४३१) जूके-१. जूकने, लड़ने, २. युद्ध करे, लड़े, २. लड़ मरे । उ० १. पुनि रघुपति सैं-जूके लागा । (मा० ६।७।३।५) जूक्यो-युद्ध किया । उ० इन्हमें न एकौ भयो, बूकि न जूक्यो न जयो । (वि० २।२२)
 जूट-(सं०)-१. लट, जटा, २. जटा की गाँठ, ३. समूह, ४. पटसन, ५. पटसन का कपड़ा । उ० ३. शिरसि संकुलित कल जूट पिंगल जटा-पटल शत कोटि विद्युच्छटाभं । (वि० १।१) जूटेन-समूह से । उ० राजीवायत लौचन घृत जटाजूटेन संशोभितं । (मा० ३।१।१।२।० २)
 जूठनि-(सं० जुष्ट)-जूठा, भोजनादि करने के बाद बचा भाग, गुरु तथा पिता आदि मान्यों का जूठा । उ० तुलसी पट अतरे ओकिहौं, उबरी जूठनि खाउंगो । (गी० १।३०)
 जूठा-जूठ, उच्छिष्ट । दे० 'जूठनि' ।
 जूड़ी-(सं० जाड्य)-एक प्रकार ज्वर जिसमें पहले रोगी को जाड़ा लगता है, और वह काँपने लगता है । उ० स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई । (मा० ७।४।०।१)
 जूड़े-१. शीतल, ठंडा, २. प्रसन्न । उ० २. जूड़े होत थोरे ही थोरे गरम । (वि० २।४६)
 जूथ-(सं० यूथ) १. दल, समूह, झुंड, २. सेना । उ० २. लोभ मोह मृगजूथ किरातहि । (मा० ७।३।०।३)
 जूथप-(सं० यूथप)-सेनापति, समूह के स्वामी । उ० कपिपति बेगि बोलाए आप जूथप जूथ । (मा० १।३।४)
 जूथा-दे० 'जूथ' । उ० १. राम बचन सुनि बानरजूथा । (मा० ५।४।१।१)
 जून (१)-(सं० युवन=सूर्य)-समय, काल ।
 जून (२)-(सं० जूय)-तृण, तिनका । उ० का छति लाभु जून धनु तोरें । (मा० १।२।७।२।१)
 जून (३)-(सं० जीय)-पुराना ।
 जूरा-दे० 'जूरी (१)' ।
 जूरी (१)-(सं० युक्त)-१. इकट्ठा कर, जोड़कर, २. समूह, ३. गुच्छा, मुट्ठा । उ० १. कंद मूल फल अकुर जूरी । (मा० २।२।५।१।१)
 जूरी (२)-दे० 'जूड़ी' ।
 जूह-(सं० यूथ)-समूह, झुंड । उ० एकहि बार तासु पर छाडेन्हि गिरि तरु जूह । (मा० ६।६।६)
 जूहा-दे० 'जूह' । उ० पठवहु जह तह बानर जूहा । (मा० ४।१।६।२)
 जेइय-(सं० जेमन)-भोजन कीजिए ।

जेवरी-(सं० जीवां)-रस्सी, डोरी । उ० बूडो मृगवारि, खायो जेवरी को साँप रे ! (वि० ७।३)
 जेवाइ-भोजन कराकर, खिलाकर । उ० बिप्र जेवाइ देहि बहु दाना । (मा० २।१२।६।४) जेवाइय-भोजन कराइए, जिमाइए । उ० पेट भरि तुलसिहि जेवाइय भगति-सुधा सुनाज । (वि० २।१६)
 जे-(सं० ये)-'जो' का बहुवचन, जो लोग, जिन्होंने । उ० जे कछु समाचार सुनि पावहि । (मा० २।१२।२।१)
 जेई-(सं० जेमन)-भोजन कर, खाकर । उ० जेई चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह । (पा० १।५।४) जेई (१)-(सं० जेमन)-खाया, भोजन किया । जेवई-जीभेगा, भोजन करेगा, भोजन करे । उ० पुनि तिन्ह के गृह जेवई जोऊ । (मा० १।१६।८।४) जेवत-जीमते, भोजन करते । उ० नारि बृंद सुर जेवत जानी । (मा० १।६।६।४)
 जेह-जिसने भी, जिस किसी ने भी ।
 जेई (२)-(सं० ये)-जो, जो ही । उ० बूडहि आनहि बोरहि जेई । (मा० ६।३।४)
 जेउ-दे० 'जेऊ' । उ० जेउ कहावत हितु हमारे । (मा० १।२।६।१)
 जेऊ-(सं० ये)-जो भी, जो । उ० जाना चहहि गूढ़ गति जेऊ । (मा० १।२।२।२)
 जेठ-(सं० ज्येष्ठ)-बड़ा, जेठा । उ० राजधनी जो जेठ सुत आही । (मा० १।१५।३।३) जेठि-अवस्था में बड़ी स्त्रियाँ, बूढ़ाएँ । उ० कौसल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो । (रा० ६) जेठे-१. बड़े, उम्र में बड़े, २. अग्रज, ३. सबसे अच्छा । उ० १. जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा । (मा० १।१५।३।४)
 जेतनेहि-(सं० यः)-१. जितने की, २. जितना ही । उ० १. बिधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज । (मा० ७।२।३)
 जेता (१)-(सं० जेतु)-जीतनेवाला, विजयी । उ० महानाटक-निपुन, कोटि-कबिकुल-तिलक, गान गुन-गर्व-गंधर्व-जेता । (वि० २।६)
 जेता (२)-(सं० यः)-जितना । उ० कहि न जाइ उर आनहु जेता । (मा० १।३।२।३।२) जेते-(सं० यः)-जितने, जो जो । उ० रघुपति चरन उपासक जेते । (मा० १।१।८।२)
 जेन-(सं० येन)-जिससे । उ० जेन केन विधि दीन्हें, दान करइ कल्यान । (मा० ७।१।०।३)
 जेर-(फ्रा० ज़ेर)-१. परास्त, पराजित, २. जो बहुत परेशान किया गया हो ।
 जेरो-(फ्रा० ज़ेर)-ज़ेर किया है, वशीभूत किया है, जीत लिया है । उ० नाम-ओट अब लागि बच्यो मलजुग जग जेरो । (वि० १।४।६)
 जेवनार-(सं० जेमन)-१. भोज, बहुत से आदमी का साथ खाना, दावत, २. भोजन, रसोई । उ० २. मैं तुम्हरे संकल्प लागि दिनहि करबि जेवनार । (मा० १।१।६।८)
 जेवनारा-दे० 'जेवनार' । उ० २. भाँति अनेक भई जेवनारा । (मा० १।६।६।२)
 जेवाँए-खिलाया, भोजन कराया । उ० पूजि भली विधि भूप जेवाँए । (मा० १।३।५।२।२)

जेहि-(सं० यस्)-१. जिनको, २. जिन्होंने, ३. जिनके, ४. जिनसे, ५. जिनके कारण, ६. जिनमें, ७. जिन, ८. जिन्हें । उ० २. पारबतिहि निरमयउ जेहि सोइ करिहि कल्याण । (मा० ११७१) जेहि-(सं० यस्)-१. जिसको, २. जिसने, ३. जिसके, ४. जिससे, ५. जिसके कारण, ६. जिसमें, ७. जिस, ८. जिसे । उ० १. लहत परमपद पय पावन जेहि, चहत प्रपंच-उदासी । (वि० २२) जेहि-तेहि-१. जिसको तिसको, २. जिस किसी, जिस किसी भी । उ० २. राखु राम कहूँ जेहि तेहि भाँती । (मा० २। ३४४)

जेहीं-दे० 'जेहि' । उ० २. बिरचत हंस काग किय जेहीं । (मा० ११७११)

जेही-दे० 'जेहि' । उ० ८. राम सुकृपाँ बिलोकाहि जेही । (मा० ११३१३)

जे (१)-(सं० जय)-१. जीत, विजय, २. किसी की जय जताने या जय की शुभ कामना करने का शब्द । जय-जय । ३. देवताओं या बड़ों के लिए स्तुतिसूचक शब्द । उ० २. बारहि बार सुमन बरषत, हिय हरषत कहि जै जै जई । (गी० १।३७)

जे (२)-(सं० यः)-जितने, जिस संख्या में ।

जेति-(सं० जयति)-१. विजय, जीत, २. विजयी, जय-प्राप्त ।

जैसा-(सं० यादृश, प्रा० जारिस, पैशाची प्रा० जहूस्सो)-जिस प्रकार का, जिस तरह का, जैसे । उ० निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा । (मा० ४।१११) जैसी-जिस प्रकार की 'जैसा' का स्त्रीलिंग । उ० मनि मानिक मुकुता छवि जैसी । (मा० १।१११) जैसे-दे० 'जैसे' । उ० साक बनिक मनि गुन गन जैसे । (मा० १।३।६) जैसे-जिस प्रकार से, जिस ढंग से । उ० जैसे हो तैसे सुखदायक ब्रजनायक बलिहारी । (क० ६) मु० जैसे-तैसे-किसी भी तरह, जिस किसी प्रकार । जैसेउ-जिस प्रकार से भी । जैसेहि-जैसे भी । उ० जे जैसेहि तैसेहि उठि धावहि । (मा० ७।३।४) जैसेहु-दे० 'जैसेउ' । उ० तुलसी जो रामहि भजै, जैसेहु कैसेहु होइ । (वै० ३।६) मु० जैसेहु-कैसेहु-जिस किसी भी तरह से । जैसे भी । उ० दे० 'जैसेहु' ।

जैसो-जैसा, जिस तरह का । उ० प्रेम लखि कृष्ण किए आपने तिनहुँ को, सुजस संसार हरिहर को जैसो । (वि० १०।६) मु० जैसो-तैसो-भला बुरा, जैसे भी या जैसा भी । उ० स्वामी समरथ ऐसो हौँ तिहारो जैसो तैसो । (वि० २।३३)

जो (१)-(सं० यदि, हि० ज्यों)-१. जैसे, जिस प्रकार, २. यदि जो, ३. जिससे कि ।

जो (२)-(सं० यः)-१. जिस, २. जिसको, ३. जिसमें ।

जोक-(सं० जलौका)-पानी में रहनेवाला एक प्रसिद्ध कीड़ा जो चिपककर खून चूसता है । इसमें हड्डी नहीं होती । जलूका । उ० चलइ जोक जल बक्रगति जघपि सलिलु समान । (मा० २।४२)

जो (१)-(सं० यदि)-अगर, यदि । उ० जो तोसों होतौ फिरौ मेरो हेतु हिया रे । (वि० ३।३)

जो (२)-(सं० यः)-१. जो कुछ, जौन, २. जो व्यक्ति, ३. जिस, ४. जिससे । उ० १. मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे । (वि० ३।३)

जोइ (१)-(सं० जाया)-जोरू, स्त्री, पत्नी ।

जोइ (२)-(सं० जुषण, हि० जोचना)-१. देखकर, ताककर, २. देख, देखो । उ० २. जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपञ्च जिय जोइ । (दो० २४७) जोइये-(सं० जुषण)-देखिए, भली भाँति समझिए । उ० जाने जानन जोइये, बिनु जाने को जान ? (दो० १८) जोइहि-१. देखेगी, २. प्रतीक्षा करेगी । उ० १. जननी जिअत बदन बिधु जोइहि । (मा० २।६८४) जोई (१)-१. देखा, निहारा, २. खोजा, ढूँढा । उ० १. भरी क्रोध-जल जाइ न जोई । (मा० २।३४१) जोऊ (१)-१. देखो, २. खोजो, ३. देखनेवाले । जोए-१. देखे, २. देखने पर, देखकर । उ० १. खग मृग हय गय जाहि न जोए । (मा० २।१२८४)

जोइ (३)-(सं० यदि)-ज्यों, जैसे ।

जोइ (४)-(सं० यः)-१. जो भी, जो कुछ भी, २. जिसने, जो, जिस । उ० २. तुलसिदास यहि जीव मोहर-रखु जोइ बाँधो सोइ छोरै । (वि० १०२)

जोई (२)-(सं० यः)-१. जो, जो भी, २. वही ।

जोउ (१)-दे० 'जोऊ (२)' । उ० १. एक छत्रु एक मुकुट मनि सब बरननि पर जोउ । (मा० १।२०)

जोउ (२)-दे० 'जोऊ (१)' ।

जोऊ (२)-(सं० यः)-जो, जो भी । उ० भनिति बिचित्र सुकबिकृत जोऊ । (मा० १।१०।२)

जोख-(सं० जुष)-तौल, जोखने या तौलने का भाव । उ० तुलसी प्रेमपयोधि की ताते नाप न जोख । (दो० २८१) जोखे-जोखा, तौला, जाँचा । उ० बल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं । (गी० १।३३)

जोग (१)-(सं० योग)-१. योग, संयोग, अवसर, २. चित्तकी वृत्तियों को चंचल होने से रोकना और उसे एक ही वस्तु (ईश्वर) पर स्थिर करना । पतंजलि के अनुसार योग के ८ अंग हैं । दे० 'योग' । ३. मिलन, संयोग, ४. तप, तपस्या, ५. धन कमाना, ६. उपाय, युक्ति, ७. प्राप्त धन, शक्ति या अधिकार । ८. फलित ज्योतिष में कुछ विशिष्ट काल या अवसर । उ० २. सद्गुर ग्यान बिराग जोग के । (मा० १।३।२) ४. जोग भोग महुँ राखेउ गोई । (मा० १।१७।१) ७. जाय जोग जगछेम बिनु, तुलसी के हित राखि । (दो० ४७२) ८. मास पाख तिथि जोग सुभ, नखत लगन ग्रह वार । (प्र० ४। १।६) जोगछेम-(सं० योगक्षेम)-१. जो वस्तु अपने पास न हो उसे प्राप्त करना और जो हो उसकी रक्षा करना । २. कुशल-मंगल, खैरियत । उ० २. निज निज बेद की सप्रेम जोग-छेम-महुँ, सुदित असीस बिप्र बिदुषनि दुई है । (गी० १।३४) जोगपति-(सं० योगपति)-योग के स्वामी । शिव । उ० अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस, जोग-पति । (क० ७।१२१) जोगविद-(सं० योगविद) योग के ज्ञाता, योग का जाननेवाला । उ० जे सुर, सिद्ध, मुनीस, जोगविद बेदपुरान बखाने । (वि० २।३।६)

जोग (२)-(सं० योग्य)-लायक, योग्य, उचित । उ० जथा जोग जेहि भाग बनाई । (मा० ११८६१४)
 जोगवह- (सं० योग)-देख-भाल करते हैं, रखवाली करते हैं । उ० जीवनतरु जिमि जोगवह राऊ । (मा० २१२०-१११) जोगवत-१. रखवाली करता, रखवाली करते हुए, २. रखवाली करता है, ३. संचित करता है, ४. आदर करता है, ५. जाने देता है, दर गुजर करता है, ६. पूरा करता है, ७. देखता रहता है । उ० १. जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ । (मा० २१६१३) ७. मन जोगवत रह न्यु रनिवास । (मा० ११३६२१४) जोगवति-आज्ञा की प्रतीक्षा किया करती, रुझ देखती । उ० सिद्ध सची सारद पूजहिं, मन जोगवति रहति रमा सी । (वि० २२) जोगवहिं-सार-संभार करते हैं, देख-रेख करते हैं । उ० जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाई । (मा० २१६१३) जोगवै-रखा करते हैं । उ० नयन निमेपनि ज्यों जोगवै नित रिपु परि जन महतारी । (गी० ११६७)
 जोगि-दे० 'जोगिनि' । उ० ३. बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै । (मा० ११६३।छं० १)
 जोगिनि-(सं० योगिनी)-१. जोगी की स्त्री, २. विरक्त स्त्री, साधुनी, ३. पिशाचिनी, शिव के गणों की स्त्रियाँ, ४. एक प्रकार की रण-देवी । उ० ३. सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा । (मा० ११६३।छं० १)
 जोगी (१)-(सं० योगी)-१. जो यौगिक क्रियाएँ करता हो, योगी, २. एक प्रकार के भिक्षुक जो सारंगी लेकर गाते-बजाते और भीख माँगते हैं । इनके कपड़े गेरु रंग के होते हैं । ३. शिव, महादेव । उ० २. नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी । (मा० ११२२।१)
 जोगी (२)-(सं० योग्य)-कुशल, योग्य, लायक । उ० बिनु बानी बकता बड़ जोगी । (मा० ११११।३)
 जोगीस-(सं० योगीश)-१. योगीश्वर, शिव, महादेव, २. महान योगी । उ० १. अर्ध-अंग-अंगना, नाम जोगीस जोग-पति । (क्र० ७।१६१) जोगीसनि-योगीश्वरों को, महान योगियों को । उ० ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि, मुनीसनि हैं । (वि० २४६)
 जोगु (१)-दे० 'जोग (१)' ।
 जोगु (२)-दे० 'जोग (२)' । उ० जोगु जानकिहि यह बरु अहई । (मा० ११२२।१)
 जोगू (१)-दे० 'जोग (१)' ।
 जोगू (२)-दे० 'जोग (२)' । उ० जौं न मिलिहि बरु गिरि-जहि जोगू । (मा० ११७।१३)
 जोजन-(सं० योजन)-दूरी की एक नाप जो कुछ लोगों के मत से दो कोस, कुछ के मत से चारकोस और कुछ लोगों के मत से आठकोस की होती है । उ० ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत । (मा० ७।११३ ख)
 जोट-दे० 'जोटा' ।
 जोटा-(सं० थोटक)-१. जोड़ा, युग, २. बराबरी के, बराबर । उ० १. बाल मरालन्हि के कल जोटा । (मा० ११२२।१२)
 जोड़ा-(सं० थोटक)-दे० 'जोटा' ।
 जोत-दे० 'जोति' ।
 जोति-(सं० ज्योति)-१. प्रकाश, ज्योति, किरण, २.

दीपक की लौ, ३. सूर्य । उ० १. अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उदगन जोति मलीन । (मा० ११२३८)
 जोतिलिंग-(ज्योतिर्लिंग)-महादेव, शिव । शिव पुराण में लिखा है कि जब विष्णु की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, तब वे घबराकर कमलनाभ पर इधर उधर घूमने लगे । विष्णु ने उन्हें बतलाया कि तुम सृष्टि बनाने के लिए उत्पन्न किए गए हो । इसे पर ब्रह्मा बिगड़े और दोनों में युद्ध हुआ । भगवा निपटाने के लिए शिव का ज्योति लिंग रूप उत्पन्न हुआ । ब्रह्मा और विष्णु उसके चारों ओर घूमते रहे पर उसके अंत का पता न चला ।
 जोतिलिंग-दे० 'जोतिर्लिंग' । उ० जोतिर्लिंग कथा सुनि जाको अंत पाए बिनु । (गी० ११८४)
 जोतिष-दे० 'ज्योतिष' ।
 जोती (१)-दे० 'जोति' । उ० १. श्रीगुर पदा नख मनि गन जोती । (मा० १११३)
 जोती (२)-(?)-जोती हुई जमीन ।
 जोती (३)-(?)-घोड़े की रास, लगाम ।
 जोते-भूमि पर हलच लाए, खोदकर बोन के लिए भूमि तैयार किए । उ० जोते बिनु, बए बिनु, निफन निराए बिनु । (गी० २।३२) जोतो-१ जोता हुआ, २. जोते, हल चलाए । उ० २. तेरे राज राय दसरथ के लयो बयो बिनु जोतो । (वि० १६१)
 जोधा-(सं० योद्ध)-वह जो युद्ध करता हो, लड़ाका, वीर । उ० कहु जग मोहि समान को जोधा । (३।२६।१)
 जोनि-(सं० योनि)-१. आकर, खानि, उत्पत्तिस्थान, २. स्त्रियों की जननेंद्रिय, भग, ३. प्राणियों के विभाग या जातियाँ जो पुराणों के अनुसार कुल ८४ लाख हैं । इनमें ४ लाख मनुष्य, ३० लाख पशु, १० लाख पक्षी, ११ लाख कृमि, २० लाख स्थावर और ६.लाख जलजंतु हैं । ४. कारण, ५. उत्पन्न । उ० ३. जेहिं जेहिं जोनि करम बस अमहीं । (मा० २।२४।३)
 जोनी-दे० 'जोनि' । उ० ५. गोपद जल बूढ़हिं घटजोनी । (मा० २।२३।२।१)
 जोपि-दे० 'जोपै' ।
 जोपै-(सं० यः + परम्)-यदि, अगर, यदि जो । उ० जोपै अलि अंत इहै करिबे हो । (कृ० ३६)
 जोवन-(सं० यौवन)-जवानी, युवावस्था, यौवन । उ० जोवन ज्वर केहि नहिं बलकावा । (मा० ७।७।१।१)
 जोबनु-दे० 'जोबन' । उ० १. उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो । (श० ४)
 जोय-(सं० जाया)-स्त्री, जोरू, पत्नी । उ० तुलसी बिना उपासना बिनु दुलहे की जोय । (सं० ३६)
 जोर (१)-(फा० ज़ोर)-१. बल, शक्ति, २. प्रबलता, तेज़ी, ३. वश, अधिकार, ४. आवेश, वेग, झोक, ५. भरोसा, आसरा, सहारा, ६. परिश्रम, मेहनत, ७. कसरत, व्यायाम, ८. तेज़, ऊँचा, ९. जुल्म, ज़बरदस्ती, १०. ज़ोरों से । उ० ८. कुलिस कठोर तनु, जोर परे रोर रन । (हं० १०)
 जोर (२)-(सं० थोटक) जोड़, बराबरी, समानता । उ० तीनि लोक तिहुँ काल न देखत सुहद रावरे जोर को हैं । (वि० २२६)

जोरत-१. जोड़ते हैं, १. जोड़ते हुए। जोरि-(सं० युक्त) १. सम्मिलित कर, २. मिलाकर, जोड़कर। उ० २. जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति। (मा० ११४) जोरिअ-जुड़वा दिया जाय। उ० जोरिअ कोउ बड़ गुनी वोलाई। (मा० ११२७८२) जोरी (१)-(सं० युक्त) १. जोड़ दी, २. जोड़ कर। उ० २. पुनि सबही बिनवउँ कर जोरी। (मा० ११३४१) जोरे-१. जोड़कर २. जोड़ दिए, जोड़ा। उ० १. करहु कृपा बिनवउँ कर जोरे। (मा० ११०६१३) जोरे (१)-(सं० युक्त) १. जोड़ा, एकत्र किया, २. जूता। उ० १. जोरे नए नाते नेह फोकट फीकै। (वि० १७६) जोरा (१)-दे० 'जोर (१)। जोरा (२)-(सं० युक्त) जोड़ा, पहिनने के सब वस्त्र। उ० दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो। (रा० ६) जोरिहि-जोड़ी से, अपने बराबर से। उ० भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। (मा० ६१३३१२) जोरी (२)-(सं० योत्क)-१. जोड़ी, बराबर बल उन्न या ज्ञान का व्यक्ति, २. दो बराबर के आदमी, ३. बर-बधू, पति-पत्नी। उ० १. भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। (मा० ६१३३१२) ३. जोरी चारि निहारि असीसत निकसहि। (जा० २१५) जोरे (२)-(सं० योत्क)-जोड़े, युग्म, दो-दो के जोड़े। उ० तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि, राज हंस से जोरे। (गी० २१८६) जोलाहा-(फा० जौलाह)-जुलाहा, कपड़ा बुननेवाली एक जाति जो मुसलमान होती है। तंतुवाय। उ० धूत कहौ, अथधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ। (क० ७१०६) जोवत-(सं० लुषण)-देखते, प्रतीचा करते, ताकते। उ० तुलसिदास रघुनाथ-कृपा को जोवत पंथ खरयो। (वि० २३६) जोवन-देखने, दूढ़ने। उ० यहि भाँति ब्याहू समाजु सजि गिरिराजु मगु जोवन लगे। (पा० ६६) जोवहि-देखती हैं, देखा करती हैं। उ० नाचहि नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहि। (पा० ५६) जोवहु-देखते हो। उ० मनसिज मनोहर मधुर मूरति कस न सादर जोवहु। (जा० ७२) जोवा-१. देखा हुआ, २. देखा, ३. खोजा, ढूँढ़ा। उ० २. कहत न बनइ जान जेहि जोवा। (मा० १३५६१२) जोवो-देखो। जोषित-दे० 'जोषिता'। उ० अधम जाति सबरी जोषित जड़ लोक बेद तें न्यारी। (वि० १६६) जोषिता-(सं०)-स्त्री, नारी। उ० जदपि जोषिता नहि अधिकारी। (मा० १११०११) जोषे-(सं० लुषण)-तौला, जाँचा। उ० तुला पिनाक सांहु नृप, त्रिभुवन भट बंदोरि सबके बल जोषे। (गी० ५१२) जोसि-(सं०) जो हैं, जो हों। उ० जोसि सोसि तव चरन नमामी। (मा० ११६११३) जोहइ-(सं० लुषण)-१. देखते हैं, देखा करते हैं। २. देखता था, ३. देखा है। उ० १. तिरछी चितवनि आनंद मुनि मुख जोहइ हो। (रा० १४) जोहन-देखने के लिए, देखने। उ० सुनत चले द्विय हरवि नारि नर जोहन। (पा० १२६) जोहा-१. देखा, २. देखा हुआ। उ० २.

सब हमार प्रभु पग पग जोहा। (मा० २१३६१३) जोहि-दे० 'जोही'। उ० २. और प्रकार उबार नहीं कहुँ मैं देख्यो जगु जोहि। (गी० ६११) ४. जोहि जातुधान-सेना चले लेत थाह सी। (क० ६१४३) जोही-(सं० लुषण)-१. पहिचानी, खोजी, २. खोजकर, ३. देखी, ४. देखकर, ५. देखिए, ६. देखा है। उ० २. उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही। (मा० २१३२३२) जोहे-देखने पर। उ० लंक जरी जोहे जिय सोच सो बिभीषन को। (क० ७१२२) जोहेउ-देखा। उ० रामहि भाइन्ह सहित जबहि मुनि जोहेउ। (जा० २०) जोहे-१. देखते हैं, २. देखने से। उ० १. मंजुल मुकतावलि जत जागति जिय जोहे। (गी० ७१४) जोहे-१. देखने पर, २. देखो, देख, ३. देखे, ४. खोजने पर, ५. खोजो। उ० २. जागु जागु जीव जड़ जोहे जग-जामिनी। (वि० ७३) ३. बिरद गरीब-निवाज कौन की भौह जासु जन जोहे? (वि० २३०) जोहार-(सं० लुषण)-अभिवादन, प्रणाम, नमस्कार। जोहारत-प्रणाम करते हैं। उ० सीय सहित आसीन सिंहासन निरखि जोहारत हरष हिए। (गी० ६१२३) जोहारन-प्रणाम करने, नमस्कार करने। उ० पुरजन द्वार जोहारन आए। (मा० ११३५८३) जोहारहि-जोहार करके, वंदना करके। उ० पुरजन मिलहि न कहहि कहुँ गँवहि जोहारहि जाहि। (मा० २११५८) जोहारि-१. प्रणाम करते हुए, वंदना करते हुए, २. प्रणाम करके। उ० १. प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। (मा० २१३५१४) २. फेरे फिरे जोहारि जोहारी। (मा० २१३२११) जोहारी-प्रणाम करके, वंदना करके। उ० फेरे फिरे जोहारि जोहारी। (मा० २१३२११) जोहारे-प्रणाम किया। उ० पुरबासिन्ह तव राय जोहारे। (मा० ११३४८३) जोहार-दे० 'जोहार'। उ० पुरजन करि जोहार घर आए। (मा० २१८६३) जौ (१)-दे० 'जौ (१)। उ० १. जौ बालक कह तोतरि बाता। (मा० ११८५) ३. जौ बिधि कुसल निवाहै काजू। (मा० २११०१२) जौ (२)-दे० 'जौ (२)। जौ (३)-दे० 'जौ (३)। उ० १. जौ कोइ कोप भरे मुख बैना। (वै० ४६) जौ (२)-दे० 'जौ (२)। जौ (३)-(सं० यव)-एक अन्न, जव। जौन (१)-(सं० यः)-जौ, जो कोइ, २. जिस। उ० १. तुम्हरे बिरह भई गति जौन। (गी० ५१२०) जौन (२)-(सं० यवन)-म्लेच्छ, मुसलमान। जौनार-(सं० जेमन)-१. भोजन, रसोई, २. भोज, दावत। जौपै-(सं० यः + परम्)-अगर, यदि। जौवन-(सं० यौवन)-१. जवानी, युवावस्था, २. जवानी में। उ० २. जौवन जुवति-सँग रंग रात्यो। (वि० १३६) ज- (सं०)-१. ज्ञान, बोध, २. ज्ञानी, जाननेवाला, पंडित, ३. ब्रह्मा, ४. बुध ग्रह। ज्ञात-(सं०)-१. विदित, जाना हुआ, २. ज्ञान। ज्ञाता-(सं० ज्ञात)-जाननेवाला, जानकार। उ० गंभीर

गर्वन् गूढार्थवित गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता । (वि० २४)

ज्ञाति-(सं०)-१. एक ही गोत्र या वंश के मनुष्य, बिरादरी, भाई-बंधु, २. वर्य, कौम ।

ज्ञान-(सं०)-१. ज्ञात होने का भाव, बोध, जानकारी, प्रतीति, २. आत्मज्ञान, तत्त्वज्ञान, विवेक, चैतन्यता, ३. पहचान । उ० २. लियो रूप है ज्ञान-गाँठरी भलो ठयो ठगु ओही । (कृ० ४१) ३. ज्ञान अनभले को सबहि, भले भले हू काउ । (दो० ३४५) ज्ञानदा-(सं०)-ज्ञान देनेवाली, सरस्वती । ज्ञानप्रद-(सं०)-ज्ञानदाता । ज्ञान-प्रदे-है ज्ञान देनेवाली । उ० स्वर्ग सोपान, विज्ञान-ज्ञान-प्रदे ! (वि० १८) ज्ञानव्रत-ज्ञान ही जिसका व्रत हो, ज्ञान की खोज में व्यस्त । उ० जयति काल-गुन-कर्म-माया-मथन निश्चल ज्ञानव्रत, सत्यरत धर्मचारी । (वि० २६) ज्ञानहूँ-ज्ञान भी, तत्त्व ज्ञान भी । उ० ज्ञानहूँ गिरा के स्वामी बाहर-भीतर-जामी । (वि० २६३) ज्ञानातीत-(सं०)-ज्ञान से परे, जहाँ तक ज्ञान न पहुँच सके । ब्रह्म ।

ज्ञानवंत-ज्ञानी, ज्ञानवान । उ० ज्ञानवंत अपि सोइ नर पसु बिनु पूँछ बिखान । (दो० १३८)

ज्ञानवान-(सं०)-ज्ञानी, जिसे ज्ञान प्राप्त हो ।

ज्ञानशाली-ज्ञानी, ज्ञानवाला ।

ज्ञानी-(सं०) ज्ञानिन्-ज्ञानवान, जिसे ज्ञान हो । उ० त्रिबली उदर गँभीर नाभि-सर जहँ उपजे बिरचि ज्ञानी । (वि० ६३)

ज्ञापक-(सं०)-जनानेवाला, ज्ञान करानेवाला, सूचक ।

ज्ञेय-(सं०)-१. जानने योग्य, २. जिसका जानना संभव हो । उ० १. ज्ञेय ज्ञानप्रिय प्रचुर गरिमागार घोर-संसार-परपार-दाता । (वि० ५४)

ज्याइए-जीवित रखिए । उ० ज्याइए तौ जानकी-रमन जन जानि जिय । (क० ७१६७) ज्याए-दे० 'ज्याये' । उ० १. सुक सारिका जानकी ज्याए । (मा० १३३८१) ज्यायबे-जिलाने, जीवित करने । उ० मीच मारिबे को, ज्यायबे को

सुधापान भो । (ह० ११) ज्याये-जिलाए थे, पाल रक्खे थे, २. जिलाने से, पालने से, ३. पाल-पोसकर बढ़ा किया । ज्यायो-जिलाया, रखा की । उ० को को न ज्यायो जगत में जीवन-दायक दानि । (दो० २६१)

ज्यो-(सं०) यः+इव-१. जिस प्रकार, जिस तरह, २. जैसे, तरह, ३. जिससे । उ० १. रहे नर नारि ज्यो चितेरे चित्र-सार हैं । (क० २११४) ज्यो त्यों-जैसे तैसे, जिस किसी भी प्रकार से । उ० ज्यो त्यों मन-मंदिर बसहि राम धरे धनु बान । (दो० ६०) ज्योहीं-१. जैसे ही, २. जैसे भी । उ० १. बूम्यो ज्योहीं, कब्यो मैं हूँ चेतो हूँ हौ रावरों जू । (वि० ७६)

ज्योति-(सं०) ज्योतिस्-१. प्रकाश, उजाला, २. आग की लपट, लौ, ३. सूर्य, ४. नक्षत्र, ५. आँख का मध्यवर्तु, ६. दृष्टि, ७. ज्ञान, ८. विष्णु, ९. परमात्मा । उ० १. सुभग अंगुष्ठ अंगुली अबिरल, कछुक अरुन नख-ज्योति जगमगति । (गी० ७१७)

ज्योतिष-(सं०)-वह शास्त्र या विद्या जिससे आकाश में स्थित ग्रहों तथा नक्षत्रों आदि की दूरी गति तथा परिणाम आदि का निश्चय किया जाता है । ज्योतिष के गणित और फलित दो भेद होते हैं ।

ज्योतिषु-दे० 'ज्योतिष' । उ० ज्योतिषु कूठ हमारें भाएँ । (मा० २११२३)

ज्वर-(सं०)-१. बुखार, ज्वर, एक रोग जिसमें शरीर गर्म रहता है । २. गर्मी, उष्णता, जलन । उ० २. जोवन ज्वर केहि नहि बलकावा । (मा० ७१७११)

ज्वाल-(सं०)-लपट, अग्निशिखा, आँच । उ० बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौ । (क० २१५)

ज्वाला-(सं०)-१. लपट, लौ, ज्वाल, अग्नि, २. गर्मी, जलन, ३. तत्त्व की पुत्री ज्वाला जिससे अन्न ने विवाह किया था । उ० १. रवि-रख लखि दरपन फटिक उगिलल ज्वाला जाल । (दो० ३७५)

ज्वै-(सं०) यः-१. जो कुछ, २. जिसे । उ० २. विनय विवेक विद्या सुभग सरीर ज्वै । (क० ७१६३)

भ

भई-दे० 'भई' ।

भंगा-(?) छोटे बच्चों को पहिनने का ढीला कुरता । उ० नवनील कलेवर पीत भंगा भलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये । (क० ११२)

भंगुलिया-दे० 'भंगा' । उ० पीत पुनीत विचित्र भंगुलिया सोहति स्याम सरीर सोहाए । (गी० ११२६)

भंगुली-भंगाओं का समूह, भंगुलियाँ । दे० 'भंगा' । उ० कुलही चित्र-विचित्र भंगुली । (गी० ११२८)

भंगुली-दे० 'भंगा' । उ० उठि कब्यो भोर भयो भंगुली दै ।

(क० १३)

भंगुली-(?) व्यर्थ का भगड़ा, बखेड़ा, प्रपंच ।

भंगुला-(सं०) जट-गर्भ का घना बाल जो अभी काटा न गया हो, मुँडन संस्कार के पहले का । भंगुले-दे० 'भंगुला' । उ० उर बचनहा कंठ कटुला, भंगुले केस । (गी० १३०)

भंगुल-(?) छिप गया, ढँक गया ।

भंगु-दे० 'भई' ।

भई-(सं०) चर, अ० मा० भर = गिरना चक्कर, आँख के

आगे अँधेरा । उ० मुखलित अवनि परी भई आई । (मा० २।१६४।१)

भकभोरा-(अनु०) १. भटका, धक्का, २. भकभोर दिया, धक्का दिया । उ० १. मंद बिलंद अमेरा दलकन पाद्व्य दुख भकभोरा रे । (वि० १८६)

भकोर-(अनु०) १. आँधी, अंधड़, तेज़ हवा, २. भटका, झोंका । उ० १. पवि, पाहन, दामिनि, गरज, भरि, भकोर खरि खीकि । (दो० २८४)

भक-दे० 'भष' । उ० सज्जन-चख-भख-निकेत, भूषन मनि-गन समेत । (गी० ७।३)

भककेत- (सं० भषकेतन) कामदेव । उ० प्रगटेउ बिषम बान भषकेतु । (मा० १।८३।४)

भखराज-दे० 'भषराज' । उ० भखराज अश्यो गजराज, कृपा ततकाल, बिलंब कियो न तहाँ । (क० ७।८)

भगर-(अनु० भकभक)-विवाद, लड़ाई, टंटा, बखेडा, कलह । उ० नीक सगुन, बिधरिहि भगर, होहहि धरम निआउ । (प्र० ६।६।२)

भगरत-१. भगड़ा करता है, २. भगड़ा करते हुए । उ० २. बग उलूक भगरत गये, अवध जहाँ रघुराउ । (प्र० ६।६।२)

भगरो-दे० 'भगर' । उ० बहुमत सुनि बहुपंथ पुराननि जहाँ-तहाँ भगरो सो । (वि० १७३)

भगराज-भगडालु, बात बात पर भगड़ा करनेवाला । उ० याहि कहा मैया मुँह लावति, गनति कि लँगरि भगराज । (क० १२)

भगुलिआ-दे० 'भँगा' । उ० पीत भगुलिआ तनु पहिराई । (मा० १।१६६।६)

भगुली-दे० 'भँगा' । उ० पीत भीनि भगुली तन सोही । (मा० ७।७।४)

भट-(सं० भटिति) शीघ्र, तुरंत, उसी समय ।

भटित-दे० 'भटिति' ।

भटिति-(सं०)-दे० 'भट' । उ० कटत भटिति पुनि नूतन भए । (मा० ६।६२।६)

भनकार-(सं० भंकार)-भन-भन का शब्द, भंकार । उ० नूपुर धुनि, मंजीर मनोहर, कर कंपन-भनकार । (गी० १।२)

भपट-(सं० भंप) भपटने की क्रिया, खींचाखींची, लूट-खसोट । उ० भपट लपट भरै भवन भँडारही । (क० १।२३)

भपटहि-भपटते हैं, लपकते हैं, दूट पड़ते हैं । उ० भपटहि करि बल बिपुल उपाई । (मा० ६।३४।६) भपटि-भपटकर, जल्दी से आगे बढ़कर । उ० इत उत भपटि दपटि कपि जोधा । (मा० ६।८२।३) भपटेउ-भपटा, भपटा हो, दूट पड़ा हो । उ० जनु सचान बन भपटेउ लावा । (मा० २।२६।३)

भपे-दे० 'भई' ।

भपेटे-भपटने पर, धावा करने पर, चपेटने पर । उ० लवा ज्यो लुकात तुलसी भपेटे बाज के । (क० ६।६)

भब-दे० 'भई' ।

भर (१)-(सं०)-१. भड़ी, २. आँच, ताप, लूका, ३. भरना ।

भर (२)-(सं० चरण) १. भरते हैं, बहते हैं, २. भड़कर, दूटकर । उ० १. मधुकर पिक बरहि मुखर, सुंदर गिरि निभर भर । (गी० २।४४) २. नख दंतन सौ भुजदंड बिहंडत, मुंड सो मुंड परे भर के । (क० ६।३५)

भरकत-(सं० भरिलका)-भलकते हैं, चमकते हैं । उ० चार पाटि पटी पुरटकी भरकत भरकत भौर । (गी० ७।१६)

भरत-भड़ रहा है, गिर रहा है । उ० बोलत बचन भरत जनु फूला । (मा० १।२८०।२) भरहि-भर रहे हैं, बह रहे हैं । उ० भरना भरहि मत्त गज गाजहि । (मा० २।२३६।३) भरि-१. भर भर कर, भड़कर, गिरकर, २. पानी की भड़ी लगाकर, खूब पानी बरसकर । उ० २. पवि, पाहन, दामिनि, गरज, भरि भकोर खरि खीकि । (दो० २८४) भरै-१. भरते हैं, गिरते हैं, २. गिराते हैं, चूते हैं । उ० २. हेरै न हुँकरि, भरै फल न रसाल । (गी० ३।६)

भरना-(सं० चरण)-सोता, चरमा, पहाड़ में बहनेवाली पानी की पतली धारें । उ० भरना भरहि मत्त गज गाजहि । (मा० २।२३६।४)

भरावति-(सं० चरण)-भरवाती है, मंत्रोपचार करवाती है । उ० ताहि भरावति कौसिला, यह रीति प्रीति की हिय हुलसति तुलसी के । (गी० १।१२)

भरोखन्ह-[अनु० भरभर (=वायु बहने का शब्द)+ गौखा (सं० गवाच)] खिड़कियों से, भरोखों से, । उ० लागि भरोखन्ह भँकहि भूपति भामिनि । (जा० ८०) भरोखन्हि-भरोखों से । दे० 'भरोखन्ह' । उ० जुवतीं भवन भरोखन्हि लागीं । (मा० १।२२०।२) भरोखा-खिड़की, गवाच, वातायन । उ० इंद्री द्वार भरोखा नाना । (मा० ७।११।६)

भरोषे-१. खिड़की, २. हृदय का भरोखा, दिल की आँख । उ० २. कालि की बात बालि की सुधि करि समुझिहि ता हित खोलि भरोखे । (गी० १।१२)

भलक-(सं० भरिलका)-१. चमक, प्रकाश, आभा, २. चमकती है । उ० १. मुकुता भलरि भलक जनु राम सुजस-सिसु हाथ । (दो० १६०)

भलकत-चमकता है, भलकता है । उ० भलका भलकत पायन्ह कैसैं । (मा० २।२०४।१) भलकनि-भलकना, चमकना । उ० मदन, मोर कै चंद की भलकनि निदरति तनु-जोति । (गी० १।१६) भलकि-भलककर, चमककर । उ० बाल केलि बात बस भलकि भलमलत । (गी० १।१०) भलकै-१. चमकते हैं, भलकते हैं, २. फबते हैं, सुंदर लगते हैं । उ० १. तनदुति मोरचंद जिमि भलकै । (गी० १।२८) २. नवनील कलेवर पीत भँगा भलकै, पुलकै नृप गोद लिये । (क० १।२)

भलका-(सं० ज्वल) झाला, फफोला । उ० भलका भलकत पायन्ह कैसैं । (मा० २।२०४।१)

भलकाही-भलक रहे हैं, चमक रहे हैं । उ० भाल बिसाल तिलक भलकाही । (मा० १।२४३।३)

भलमलत-(अनु० भलमल)-भिलभिला रहे हैं, हिलते

हुए चीण प्रकाश कर रहे हैं। उ० बालकेलि वातबस
 भलकि भलमलत। (गी० १११०)
 मप-(सं०)-मछली, मत्स्य, मीन। उ० मकर नक्र नाना
 मप ब्याला। (मा० ६१४३)
 मषकेतु-(सं० मपकेतन) कामदेव। जिसके भंडे पर मछली
 हो।
 मषकेतु-दे० 'मपकेतु'। उ० प्रगटेउ विषम वान मपकेतु।
 (मा० ११८३१४)
 मषनिकेत-(सं०)-१ जल, २. भील, ३. समुद्र।
 मषराज-(सं०)-मगर, ग्राह, घडियाल।
 महराने-(अनु० महराना) शिथिल होकर या लड़खड़ा
 कर गिरे। महरावै-हिलावै, हिलाते हैं, मकभोरते हैं।
 उ० बालधी फिरावै बार-बार महरावै, मरै बूँदिया सी,
 लंक पविलाइ पाग पागिहै। (क० २११४)
 माई-(सं० छाया)-१. परछाई, प्रतिबिंब, २. भूलक,
 छाया, ३. अंधकार, ४. धोखा, छल, ५. प्रतिशब्द,
 प्रतिध्वनि, ६. रक्तविकार के कारण सुँह पर पड़े धब्बे।
 उ० १. ससि महुँ प्रगट भूमि कै माई। (मा० ६१२१३)
 माँकनि-माँकना, झोट में छिपकर या ऊपर से देखना।
 उ० मुकनि माँकनि, झाँह सों किलकनि नटनि, हठि
 लरनि। (गी० ११२५) माँकहि-(?)-नीचे देखती हैं,
 झोट में होकर देखती हैं। उ० लागि मरोखन्ह माँकहि
 भूपनि भामिनि। (जा० ८०) माँकी-माँका, देखा,
 निहारा। उ० विकल विधि बधिर दिसि विदिसि माँकी।
 (क० ६१४४)
 माँखा-(सं० खिचते, प्रा० खिजइ, हि० खीजना का त्रिप-
 यंत्र)-खींके, क्रुद्ध और दुखी हुए। उ० एहि विधि राउ
 मनहिँ मन माँखा। (मा० २१३०११)
 माँक-(सं० मल्लक) १. एक बाजा, मजीरा, माल, २.
 क्रोध, चिड़चिड़ाहट। उ० १. घंटा घंटी पखाउज आउज
 माँक बेनु डफ तार। (गी० ११२)
 माँकि-दे० 'माँक'। उ० १. माँकि मृदंग संख सहनाई।
 (मा० ११२६३११)
 माँपेउ-(सं० उत्थापन, हि० ढाँपना)-ढँक लिया, छिपा
 लिया। उ० माँपेउ मानु कहहिँ कुबिचारी। (मा० ११
 ११७११)
 मार(१)-(सं० सर्व, प्रा० सारो, हि० सारा)-१. सब, कुल,
 बिल्कुल, २. समूह, भुंड।
 मार(२)-(सं० माला)-१. आग की लौ, लपट, आँच, २.
 जलन, दाह, ३. चरपरापन, ४. तेज़ी।
 मारही-(सं० माला)-मार में, ताप में, ज्वाला में। उ०
 तात तात! तौसियत, मारही। (क० २११५)
 मारि(१)-(सं० सर्व)-१. सब, २. समूह।
 मारि(२)-(सं० चरण)-१. भाङकर, २. बहता हुआ।
 उ० २. भरना भरत मारि सीतल पुनीत बारि। (क०
 ७११४१) मारौ-भाङू, भाङूँ, साफ करूँ। उ० करौ
 बयारि बिलंबिय विपतर, मारौ हौँ चरन-सरोरुह-धूरि।
 (गी० २११३)
 मारी(१)-(सं० सर्व)-समूह, सब। उ० गई तहाँ जहँ
 सुर मुनि मारी। (मा० १११८४४)

मारी(२)-(सं० भाट)भाड़ी, छोटे-छोटे पैदों का समूह।
 मारी(३)-(सं० चरण)-१. दोटीदार लोटा, गडुआ, २.
 कमंडल, ३. सुराही।
 मालरि-(सं० मल्लरी)-मालर, किसी चीज़ के किनारे
 शोभा के लिए टाँका हुआ, या बनाया गया हाशिया।
 उ० मुकुता मालरि भलक जनु राम सुजस-सिसु हाथ।
 (दो० ११०)
 मिंग-(अनु०)-नदियों के प्रवाह का शब्द। उ० बर
 बिधान करत गान, वारत धन मान प्रान, भरना भर
 मिंग-मिंग-मिंग जल तरंगिनी। (गी० २१४३)
 मिल्लि(१)-दे० 'मिल्ली(१)। उ० मिल्ल, माँक,
 भरना डफ, नव मृदंग निसान। (गी० २१४७)
 मिल्लि(२)-दे० 'मिल्ली(२)।
 मिल्ली(१)-(सं०) माँगुर, एक छोटा कीड़ा।
 मिल्ली(२)-(सं० चैल)-किसी चीज़ की बहुत पतली
 तह, चमड़े आदि की मिल्ली।
 माँगुली-दे० 'माँगुली'।
 मीनि-दे० 'मीनी'। उ० पीत मीनि मरुली तन सोही।
 (मा० ७१७७१४)
 मीनी-(सं० चीण)-बारीक, पतली, महीन। उ० लसत
 माँगुली मीनी, दामिनि की छवि छीनी। (गी० ११४२)
 मुँकरे-दे० 'मुँकरे'।
 मुँकुन-(ध्व०)-पैजनी या घुँघरू का शब्द, कुनकुना।
 उ० मुँकुन मुँकुन पाँय पैजनी मृदु मुखर। (गी०
 ११३०)
 मुँडनि-(सं० यूथ)-मुँडों में। उ० गुन-रूप-जोवन सीव
 सुंदरि चली मुँडनि मारि। (गी० ७११८)
 मुकत-(सं० युज्, युक्, प्रा० जुक)-मुक जाते हैं। उ०
 दास तुलसी परत धरनि, धरकत मुकत, हाट सी उठति
 जंबुकनि लूख्यो। (क० ६१४६) मुकनि-मुकना, नीचे
 आना। उ० मुकनि माँकनि, झाँह सों किलकनि, नटनि,
 हठि लरनि। (गी० ११२५) मुकि-मुककर, नीचे मुँहकर।
 उ० किलकत मुकि माँकत प्रतिबिंबनि। (गी० ११२८)
 मुकी-(सं० युज्, युक्)-१. मुक गई, २. मुककर, ३.
 नाराज़ होकर, रुष्ट होकर, ४. नाराज़ हुई। उ० १. नहिँ
 जान्यो बियोग सो रोग है आगे मुकी तब हौँ, तेहिँ सों
 तरजी। (क० ७११३३) मुके-१. काम की ओर मुक गए,
 प्रवृत्त हुए, २. क्रुद्ध हुए। उ० १. तुलसी उत मुंड प्रचंड
 मुके, मरुपैँ भट जे सुरदावन के। (क० ६१४४)
 मुकरे-(?)-मुँकलाए, खींके। उ० रुंडन के मुंड मूमि-
 मूमि मुकरे से नाचै। (क० ६१३१)
 मुदुंग-(सं० जूट)-खड़े बालोंवाला, जटाधारी। उ०
 जोगिनी मुदुंग मुंड मुंड बनी तापसी सी। (क० ६१५०)
 मुठाई-(सं० अयुक्त, प्रा० अजुक्त, हि० मूठ)-असत्यता,
 मूठ। उ०. आधि-मगन-मन, ब्याधि-विकल तन, बचन
 मलीन मुठाई। (वि० ११६५)
 मुलावर्ही-मुलाती है, भूले पर मुलाती हैं। उ० पट उड़त
 भूषन खसत हँसि हँसि अपर सखी मुलावर्ही। (गी०
 ७११६) मुलावै-(सं० दोहन)-मुलाती हैं। उ० कबहु
 पालनै वालि मुलावै। (मा० ११२००१४)

भूठ-दे० 'भूठ'। उ० ३. स्वारथ परमारथ चहत, सकल मनोरथ भूठ। (दो० ७६)
 भूठ-(सं० अयुक्त)-१. असत्य, मिथ्या, २. व्यर्थ, ३. असफल। उ० १. यह विचारि नहिं करउँ हठ भूठ सनेहु बड़ाह। (मा० २।५६) भूठह-भूठ ही, असत्य ही। उ० भूठह भोजन भूठ चबेना। (मा० ७।३१४) भूठेउ-भूठ भी, असत्य भी। उ० भूठेउ सत्य जाहि बिनु जानै। (मा० १।११२।१) भूठेहुँ-भूठे ही, भूठ-भूठ। उ० भूठेहुँ हमाहि दोषु जानि देह। (मा० २।२८।२)
 भूठा-भूठ, बनावटी, असत्य। उ० जेहि कृत कपट कनक मृग भूठा। (मा० ६।१६।४) भूठी-बनावटी, झुठी। उ० नाथहू न अपनायो, लोक भूठी हूँ परी, पै प्रभुहू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को। (क० ७।७०)
 भूठि-भूठी, असत्य। उ० भूठि न होइ देव रिषि बानी। (मा० १।६८।४)
 भूमक-(सं० भूप)-एक गीत जिसे होली के दिनों में देहात की स्त्रियाँ भूम-भूमक नाचती हुई गाती हैं। उ० चाँचरि भूमक कहै सरस राग। (गी० ७।२२)
 भूने-(सं० लीण)-भीने, भौंभरे, खौखर। उ० साथरी को सोहबो, ओढ़िबो भूने खेस को। (क० ७।१२५)
 भूमत-(सं० भूप) भूमते हैं, इधर-उधर लहराते हैं। उ० भूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे मदअंजु चुचाते। (क० ७।४४) भूमि-भूमकर, भूमते हुए, लहराते हुए। उ० रुदन के भूँड भूमि भूमि भुकरे से नाचै। (क० ६।३१)
 भूर (१)-(सं० भूलि)-सुख, शुष्क, खुरक।
 भूर (२)-(सं० अयुक्त, हि० भूठ)-१. खाली, रिक्त, २. व्यर्थ, भूटे।

भूर (३)-(१)-१. जलन, दाह, २. दुःख, परिताप।
 भूरो (१)-दे० 'भूर (१)'
 भूरो (२)-दे० 'भूर (२)'
 भूरो (३)-दे० 'भूर (३)'
 भूजत-(सं० दोहन)-१. भूजते हैं, भूल रहे हैं, २. भूलते हुए। उ० २. भूजत राम पाखने सोहैं। (गी० १।२१) भूलन-भूलने के लिए, लटकने के लिए। उ० मोतिन्ह भालरि लागि चहँ दिसि भूलन हो। (रा० ३)
 भौंटा-(सं० जूट)-चोटी, बड़े बड़े बालों का समूह।
 भौंटांग-(सं० जूट, हि० भौंटा)-भौंटेवाला, लंबे अस्त-व्यस्त और कड़े बालोंवाला। उ० प्रमथ महा भौंटांग कराला। (मा० ६।८८।१)
 भौंटी-चोटी, लट, भौंटा, बाल। उ० लगेवसीदन धरि धरि भौंटी। (मा० २।१६३।४)
 भोपरी-(सं० चेष) घास-फूस या मिट्टी की बनी कुटिया, छोटा झोंपड़ा, पराशाहा। उ० कंत बीस लोचन बिलो-किप कुमंत-फल, ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी भोपरी। (क० ६।२७)
 भोरी-(सं० चोल)-भोली, छोटा भोला, थैली। उ० ओझरी की भोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे। (क० ६।५०)
 भोलिन्ह-भोलियों में। उ० भोलिन्ह अबीर, पिचकारी हाथ। (गी० ७।२२)
 भौंसियत-(सं० ज्वल + अंश)-झुलसे जाते हैं, जले जाते हैं। उ० तात तात ! तौंसियत, भौंसियत भारहीं। (क० १।१५)

ट

टंकिा-(सं०)-पत्थर काटने का औज़ार, छेनी, टाँकी। उ० सुजन, सुतरु, बन, उष सम; खल, टंकिा, रुखान। (दो० ३।४२)
 टंकोरा-दे० 'टंकोर'। उ० २. प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टंकोरा। (मा० ६।६८।१)
 टंकोर-(सं० टंकार)-१. टन-टन का शब्द जो किसी कसे हुए तार आदि पर उँगली मारने से होता है, २. धनुष की कसी डोरी पर बाण रखकर खींचने से होनेवाला शब्द, ३. धातु खंड पर प्रहार करने से होनेवाला शब्द, झनकार। उ० २. मानत मनहुँ सतवित ललित धन, धनु सुरधनु, गरजनि टंकोर। (गी० ३।१)
 टई-(सं० घात, हि० टही)-मतलब निकालने का घात, ताक, युक्ति। उ० कलि करनी बरनिणु कहाँ लौं करत फिरत बिनु टहल टई है। (चि० १।३६)
 टक-(सं० त्राटक)-ऐसा ताकना जिसमें देर तक पलक न

गिरे, स्थिर दृष्टि। उ० एक टक रहे नयन पट रोकी। (मा० १।१४।३)
 टकटोरि-(सं० त्वक् + तोहन = अंदाज़ लगाना)-हाथ के स्पर्श द्वारा पता लगाकर, टटोलकर, अंदाज़ लगाकर। उ० टकटोरि कपि ज्यौं नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए। (जा० ६६)
 टकोर-दे० 'टंकोर'। उ० २. प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। (मा० ३।१६।४)
 टरह-१. टलता, टलता है, सरकता है, हटता है, २. चंपत होता है, ३. अस्त-व्यस्त होता है। उ० १. पद न टरह बैठहिं सिरु नाई। (मा० ६।३४।६) टरई-१. टलता है, टल सकता है, हिलता है, २. चला जाता है, नष्ट हो जाता है, ३. लौट-पौट हो जाता है। उ० १. तासु दूत पन कहुं किमि टरई। (मा० ६।३४।४) २. संत दूरस जिमि पातक टरई। (मा० ४।१७।३) टरत-टलता है, दूर होता

है, हटता है। उ० साहिब-सेवक-रीति प्रीति-परमिति नीति, नेम को निबाह एक ठेक न टरत। (वि० २५१) टरति-टलती है, हटती है। उ० लागियै रहति, नयननि आगे तें न टरति मोहन मूरति। (कृ० २८) टरहिं-टलते हैं, हटते हैं। उ० प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। (मा० ६।४४) टरिहै-टालेगा, हटावेगा, उखाड़ेगा। उ० उथपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै ? (क० ७।४७) टरे-टले, टल गए, हट गए। उ० मन हरष सम गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे। (मा० १।३५। छं० १) टरयो-टला, टल गया, हटा। उ० मुरयो न मनु तनु टरयो न टारयो। (मा० ६।६५।३)

टसकतु-(सं० तस + करण)-टसकता, हटता, खसकता। उ० रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीर बल, लागे भट सिमिति न नेक टसकतु है। (क० ६।१६)

टहल-(सं० तत् + चलन)-१. सेवा, खिदमत, २. काम। उ० १. नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। (मा० ७।१८-४) २. कलि करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत बिनु टहल ठहँ है। (वि० १३६)

टही-दे० 'टहँ'

टाँकी-(सं० टंक)-पत्थर तोड़ने का औज़ार, छेनी। उ० जो पयफेनु फोर पवि टाँकी। (मा० २।२८१।४)

टाँच (१)-(सं० टंकन, हि० टाँकना)-१. टाँका, सिलाई, २. टाँकी हुई चकती, धिगली, पैबंद। टाँचन-टाँचों से, टाँकों से। उ० देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो। (वि० २७७)

टाँच (२)-(सं० टंक)-दूसरे का काम बिगाड़नेवाली बात। टाँचो-टँके हुए, सिले हुए, सिले हुए हैं। उ० देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो। (वि० २७७)

टाँठा-(सं० स्थाणु)-१. कड़ा, कटोर, २. हड़, पुष्ट। टाँठे-कटोरता से, कड़ेपन से। उ० राम सो साम किये नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाँठे। (क० ६।२८)

टाट-(सं० तंतु)-सन का बना मोटा कपड़ा, बोरा। उ० सिअनि सुहावनि टाट पटोरे। (मा० १।१४।६)

टाटिका-(सं० स्थात्री या तटी)-टटर, टट्टी। उ० चिरचि हरि-भगति को बेष बर टाटिका। (वि० २०८)

टाटिन-(सं० स्थात्री या तटी)-टाटियाँ, कई टटर। उ० ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिन को परदा है। (क० ७।१५५) टाटी-टट्टी, छोटा टटर।

टाप-(सं० स्थापन, हि० थापन, थाप)-१. घोड़े के पैर का निचला भाग, सुम। २. घोड़े के पैरों का शब्द, ३. लाँघ, उल्लंघन, ४. मुरगी बंद करने का भावा, ५. मछली पकड़ने का भावा। उ० १. टाप न बूड़ बेग अधिकाई। (मा० १।२६६।४)

टारति-टालती हैं, बिताती हैं, न्यतीत करती हैं। उ० राम-बियोग असोक-वितप तर सीय निमेष कल्प सम टारति। (गी० १।१६।१) टारन-१. हटानेवाले, २. हटाने को, ३. टालना। उ० २. दीप बाति नहिं टारन कहउँ। (मा० १।५६।३) टारि-१. टाल, हटा, २. टालकर, हटाकर। उ० १. जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकह कोउ टारि। (मा० १।११७) टारा-टाला, हटाया। उ० संभु सरासनु

काहुँ न टारा। (मा० १।२६२।३) टारि-१. टालकर, २. टाल, हटा। उ० २. जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकह कोउ टारि। (मा० १।११७) टारी-टाल दिया, टाला। उ० ईस अनेक करवरें टारीं। (मा० १।३५७।१) टारी-१. टाल, हटा, खसका, २. हटाया, दूर किया, ३. निवारण किया, ४. बिताया, ५. बचाया। उ० १. जौ मम चरन सकसि सठ टारी। (मा० ६।३४।५) टारे-१. टाला, हटाया, २. टालने से, हटाने से। उ० २. प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। (मा० ६।४।४) टारो-१. टाला, हटाया, २. हटाओ, टालो। उ० १. अब केहि लाज कृपा-निधान परसत पनवारो टारो। (वि० ६४) टार्यो-टाले, टालने से, हटाने से। उ० मुरयो न मनु तनु टरयो न टारयो। (मा० ६।६५।३)

टाहली-सेवक, टहलुवा। उ० सबनि सोहात कै सेवा-सुजानि टाहली। (क० ७।२३)

टिट्ठिभ-(सं०)-टिट्ठिहरी, कुररी। कहा जाता है कि टिट्ठिहरी पैर ऊपर करके सोती है ताकि आकाश गिरे तो रोक ले। उ० जिमि टिट्ठिभ खग सूत उताना। (मा० ६।४०।३)

टिपारे-(सं० त्रि + फा० पार = टुकड़ा)-एक टोपी जिसमें कलागी की तरह तीन शाखाएँ निकली होती हैं। उ० सीसनि टिपारे, उपवीत, पीत पट कटि। (गी० १।६६) टिपारो-दे० 'टिपारे'। उ० सिरसि टिपारो लाल, नीरज-नयन बिसाल। (गी० १।४१)

टीका (१)-(सं० तिलक)-१. ललाट पर मिट्टी, राख, चंदन या रोरी आदि विभिन्न चीजों का लगाया जानेवाला तिलक, २. एक सर का गहना, ३. शिरोमणि, श्रेष्ठ, ४. राजतिलक। उ० ३. गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका। (मा० २।३६।३) ४. करहु हरषि हियँ रामहि टीका। (मा० २।५।२)

टीका (२)-(सं०)-व्याख्या, अर्थ, विवरण।

टीड़ी-(सं० टिट्ठिभ)-एक प्रकार के कीड़े जो भुंड के भुंड उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं और खेती को हानि पहुँचाते हैं। टिड़ी। उ० जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई। (मा० ६।६७।१)

टुक-(सं० स्तोत्र)-१. थोड़ा, ज़रा, किंचित, २. टुकड़ा। सु० टुक-टुक-टुकड़े-टुकड़े। उ० बरषि परष पाहन पयद पंख करौ टुक-टुक। (दो० २८२)

टुक-(सं० स्तोत्र)-टुकड़ा, खंड। उ० घर-घर माँगे टुक, पुनि भूपनि पूजे पाय। (दो० १०६) सु० टुक टाक-टुकड़े इत्यादि। उ० बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो, राम नाम लेत, माँगि खात टुक टाक हौं। (ह० ४०) टुकनि-टुकड़ों, भीख। उ० टुकनि को घर-घर डोलत कंगाल बोलि, बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है। (ह० २६)

द्वट-(सं० श्रुट)-१. हटा हुआ, २. हटोगा, ३. हटता था। उ० ३. द्वट न द्वार परम कठिनाई। (मा० ६।४३।२) द्वट-१. हटता है, २. हटने पर, ३. हटते ही, हटते। उ० ३. जनक मुदित मन द्वटत पिनाक के। (गी० १।६२) द्वटतहीं-हटते ही। उ० द्वटतहीं धनु भयउ बिबाह। (मा० १।२८६।४) द्वटियो-द्वटी हुई भी। उ० द्वटियो बाँह गरे

पारै, फूटेहूँ बिलोचन धीर होति हित करिए। (वि० २७१)
 दूटिहि-दूटेगा, दूट जायगा। उ० अवसि राम के उटत सरासन दूटिहि। (जा० ६८) दूटें-दूटने पर। उ० होइ-
 हहि दूटे धनुष सुखारे। (मा० १२३३१२) दूटे-१. दूट
 गए, खंडित हुए, २. दूटने पर। उ० २. श्रीहत भए भूप
 धनु दूटे। (मा० १२६३१३) दूटेउ-दूटा, दूट गया। उ०
 कूबर दूटेउ फूट कपारू। (मा० २१६३१३) दूटयो-दूट
 पड़ा, एक साथ कूद पड़ा। उ० निरखि मृगराज जनु गिरि
 तें दूटयो। (क० ६१४६)
 दूठनि-(सं० तुष्ट)-मान जाना, संतुष्ट हो जाना। उ० भजनि
 मिलनि दूठनि दूठनि किलकनि, अवलोकनि बोलनि बरनि
 न जाई। (गी० १२७)
 टेई-(?)-तेज की, रगड़कर पैना किया। उ० कपट छुरी उर
 पाहन टेई। (मा० २१२२११)
 टेक-(सं० स्थित + कृ, हि० टिकना)-१. हठ, ज़िद, प्रण,
 संकल्प, २. सहारा, आश्रय, आधार, ३. थूनी, स्तंभ, ४.
 आवृत, ५. गीत की वह पंक्ति जो बार-बार गाई जाती
 है। उ० १. सकइ को टारि टेक जो टेकी। (मा० २।
 २५१४)
 टेका-दे० 'टेक'। उ० २. साधन कठिन न मन कहुँ टेका।
 (मा० ७४५२)
 टेकि-टेकर। उ० जातु टेकि कपि भूमि न गिरा। (मा०
 ६१८४१) टेकी-प्रतिज्ञा की, टेक की, निश्चय कर लिया।
 उ० सकइ को टारि टेक जो टेकी। (मा० २।२५१४)
 टेढ़-(सं० तिरस्)-१. टेढ़ा, बक्र, २. उजड़, शरारती, बद-
 माश। उ० १. टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। (मा० १।
 २८१३) २. सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। (मा० १।
 २७७४)
 टेपारो-दे० 'टिपारे'। उ० तनियाँ ललित कटि, बिचित्र
 वेपारो सीस। (क० २)

टेर (१)-(सं० तार=संगीत में ऊँचा स्वर)-१. ज़ोर से
 बुलाना, पुकार, हाँक, २. स्वर, तान।
 टेर (२)-(सं० तार=तै करना)-निर्वाह, गुज़र।
 टेरि-१. पुकार कर, २. पुकारते हैं। उ० १. बरपैं सुमन
 जय-जय कहैं टेरि-टेरि। (क० २१०) टेरी-पुकारा,
 बुलाया। उ० पल्लव-सालन हेरी, प्रान-बल्लभा न देरी।
 (गी० ३।१०) टेरे-दे० 'टेरे'। उ० २. तेहि तें कहहि संत
 श्रुति टेरे। (मा० १।१६१२) टेरे-१. पुकारे, बुलाए, २.
 पुकार कर, ३. पुकारने पर। उ० १. श्रु गिहि प्रेरि सकल
 गन टेरे। (मा० १।६३।२)
 टेव-(सं० स्थित + कृ, हि० टिकना)-अभ्यास, आवृत,
 स्वभाव, बान। उ० सहज टेव बिसारि तुहीं धौ देखु
 बिचारि। (वि० १६६)
 टेवैया-तेज करनेवाला, पैना करनेवाला। उ० जहाँ जम-
 जातना, घोर नदी, भट कोटि जलचर दंत टेवैया। (क०
 ७।५२)
 टोटक-दे० 'टोटका'। उ० स्वारथ के साधिन तज्यो तिजरा
 कोसो टोटक, औचट उलटिन हेरों। (वि० २७२)
 टोटका-(सं० त्रोटक)-कोई बाधा या बीमारी दूर करने के
 लिए या मनोरथ सिद्ध करने के लिए तांत्रिक प्रयोग, यंत्र-
 मंत्र, टोना। उ० औपध अनेक जंत्र-मंत्र टोटकादि किए।
 (ह० ३०)
 टोटक-दे० 'टोटका'।
 टोना-(सं० तंत्र)-दे० 'टोटका'। टोने-टोटका, जादू। उ०
 तुलसी-प्रभु किचौ प्रभु को प्रेम पढ़े प्रगत कपट बिनु टोने।
 (गी० २।२३)
 टोल-(सं० तोलिका)-मुँड, दल, समूह, जल्था।
 टोल-दे० 'टोल'। उ० दीख निषादनाथ भल टोलू।
 (मा० २।१६२।२)
 टोह-(?)-पता, तलाश, खोज।

ठ

ठई-(सं० अनुष्ठान, हि० ठान) १. निश्चित की, रक्खा,
 हरादा किया, २. निश्चित किया है, ठाना है, ३. लगाई,
 लगाई है, ४. ठीक रहा, स्थिर या निश्चित रहा। उ०
 ४. तुलसिदास कौन आस मिलन की, कहि गए सो तौ
 कछु एको न चित ठई। (क० ३६) ठए-(सं० अनुष्ठान)
 रचे, बनाए, ठाने। उ० सजि सजि जान अमर किन्नर मुनि
 जान समय सम गान ठए। (गी० १।३)
 ठकुर-(सं० ठकुर)-१. देवता, २. भगवान विष्णु, विष्णु
 की मूर्ति, ३. मालिक, स्वामी।
 ठकुरसोहाती-दे० 'ठकुरसोहाती'।
 ठकुरसोहाती-(सं० ठकुर) खुशामद, मुँहदेखी। उ० कहहि
 सचिब सठ ठकुरसोहाती। (मा० ६।१।१)
 ठकुराइन-स्वामिनी, मालकिन।

ठकुराइन-दे० 'ठकुराइन'। उ० ठकुर महेस ठकुराइन
 उमा सी जहाँ। (क० ७।१७०)
 ठकुराई-१. प्रभुत्व, आधिपत्य, सरदारी, २. ठकुर का
 अधिकार, स्वामी होने के अधिकार का उपयोग, मलिकाई,
 ३. उच्चता, बड़प्पन। उ० २. अब तुलसी गिरिधर बिनु
 गोकुल कौन करिहि ठकुराई? (क० ३२)
 ठग-(सं० स्थग)-धोखा देकर धन आदि हरण करनेवाला,
 धूर्त, धोखेबाज़। उ० भल भूलिहु ठग के बौरापँ। (मा०
 १।७६।४) ठगिनि-ठगनेवाली, ठगिनी। उ० तुलसी तेहि
 सनमुख बिनु विषय-ठगिनि ठगति। (गी० २।८२)
 ठगति-ठगती है, धोखा देती है। उ० तुलसी तेहि सनमुख
 बिनु विषय-ठगिनि ठगति। (गी० २।८२) ठगि-१. ठगे
 से, स्तब्ध, मोहित से, २. ठगकर। उ० १. तेउ यह चरित

देखि ठगि रहहीं। (मा० ७।१।५) ठगी-१. ठगा, ठग लिया, २. ठग गई, मोहित हो गई। उ० २. तुलसिदास ग्वालिनी ठगी, आयो न उतर कछु, कान्ह ठगौरी लाई। (क० ८) ठगे-१. ठगे, ठगे से, स्तब्ध, मोहे से, २. छले गए, ठगे गए। उ० १. अवलोकिहौं सोच विमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से। (क० १।१) २. किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुरनर मुनि ठगे। (मा० १।३।६। छं० १) ठग्यो-१. ठगा, ठग लिया, २. मोहित कर लिया। उ० १. लियो रूप दै ज्ञान-गाँठरी भलो ठग्यो ठगु ओही। (क० ४१)

ठगहारी-ठगपना, ठगी, बटमारी।
ठगु-दे० 'ठग'। उ० लियो रूप दै ज्ञान-गाँठरी भलो ठगु ओही। (क० ४१)

ठगौती-दे० 'ठगौरी'।
ठगौरी-(सं० स्थग) १. ठगों की विद्या, २. मोह लेने की विद्या, मोहिनी, टोना, जादू। उ० २. तुलसिदास ग्वालिनी ठगी, आयो न उतर कछु, कान्ह ठगौरी लाई। (क० ८)

ठट-दे० 'ठट्ट'। उ० अंबर अमर हरषत बरषत फूल, सनेह-सिथिल गोप गाइन्ह के ठट हैं। (क० २०)

ठट्ट-(सं० स्थान) ठाट, बनाव, सजावट। उ० परखत प्रीति प्रतीति पयज पुनू रहे काज ठट्ट ठानिहैं। (गी० १।७८)

ठट्टकि-(सं० स्थाता)-ठिठकर, रककर, स्तब्ध होकर। आश्चर्य में पड़कर। उ० रहेउ ठट्टकि एकटक पल रोकी। (मा० १।४।२)

ठटो-(सं० स्थाता) रचो, सजो, बनाओ, तैयार करो। उ० नट ज्यो जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो। (क० ७।८६)

ठट्ट-(सं० स्थाता)-समूह, जमाव, झुंड।
ठट्टा-दे० 'ठट्ट'। उ० मरेहु भाखु कपिन्ह के ठट्टा। (मा० ६।७।६)

ठठ-दे० 'ठट्ट'।
ठठई-(सं० अट्टहास)-ठट्टा, दिल्लीगी, हँसी। उ० हुतो न साँचो सनेह, मिटयो मज को संदेह, हरि परे उचरि, संदे-सहु ठठई। (क० ३६)

ठठकि-(सं० स्थेष्ट+करण, हि० ठिठकना)-ठिठकर, रककर।
ठठाइ-(सं० अट्टहास)-खिलखिलाकर, कहकहा लगाकर। उ० हँसब ठठाइ फुलाउब गाला। (मा० २।३।३)

ठठाइयत-(अनु० ठक ठक)-बजाए जाते हैं, ठोके जाते हैं। उ० फलैं फूलैं फौलैं खल, सीदैं साधु पल पल, खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं। (क० ७।१७१) ठठाई-दे० 'ठठाइ'।

ठनि-(सं० अनुष्ठान, हि० ठानना, ठनना)-ठनकर, तत्परता से। ठनियत-ठानते, ठाने, ठाने हुए, उद्यत, अड़ा। उ० तुलसी पराये बस भये रस अनरस, दीनबंधु-द्वारे हठ ठनियत है। (वि० १८३) ठनी-ठना, ठन गया, बानक बन गया, हो गया। उ० हिय ही और कीन्हीं विधि, राम-कृपा औरै ठनी। (गी० १।३६)

ठमक-(सं० स्तंभ)-रककर, ठहरकर।

ठयऊ-(सं० अनुष्ठान)-१. झाए, झाए हों, २. निश्चय कर लिया है, विचार किया है। उ० १. सावन घन घमंडु जनु ठयऊ। (मा० १।३।७।१) २. मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। (मा० ६।१।६।७) ठयेऊ-दे० 'ठयऊ'। ठयो-बनाया, रचा। उ० राम लखन रनजीति अवध आए, कैधौं काहु कपट ठयो है। (गी० ६।११)

ठवनि-(सं० स्थापन)-१. स्थिति, हाल, २. बैठने, चलने या खड़े होने का ढंग, मुद्रा, अंदाज़, चाल। उ० २. ठवनि जुबा सुगराशु लजाएँ। (मा० १।२५।४)

ठहर (१)-(सं० स्थल)-स्थान, जगह। उ० ठाकुर महेस, ठकुराइन उमा सी जहाँ, लोक वेद हू बिदित महिमा ठहर की। (क० ७।१७०) मु० ठहर ठहर-स्थान स्थान पर। उ० ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं। (क० ६।४२)

ठहर (२)-(सं० स्थैर्य)-रककर, रककर। ठहरानी-(सं० स्थैर्य)-ठहरी, टिकी, जमी। उ० एकउ जुगुति न मन ठहरानी। (मा० २।२५।४)

ठहर-दे० 'ठहर (१)'
ठही-(सं० स्थैर्य)-१. ठहरकर, जमकर, अच्छी तरह, २. ठहर गई, छा गई। उ० १. लागि दवारि पहार ठही लहकी कपि लंक जथा खर-खौकी। (क० ७।१४३)

ठाँउ-दे० 'ठाँउ'।
ठाँवहिं-(स्थान)-जगह ही, जगह पर ही। उ० काँट कुरायँ लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँउँ बम्काऊ रे। (वि० १८६)

ठाई-(सं० स्थान)-१. ठौर, जगह, स्थान, २. पास, समीप, ३. तई, प्रति। उ० ते सब तुलसिदास प्रभु हीं सों होहु सिमिटि एक ठाईं। (वि० १०३)

ठाँउ-(सं० स्थान, प्रा० ठान)-ठौर, स्थान। उ० निलज, नीच, निरधन निरगुन कहँ जना दूसरो न ठाकुर ठाँउँ। (वि० १५३)

ठाऊँ-दे० 'ठाँउ'। उ० पायउ अचल अनूपम ठाऊँ। (मा० १।२६।२)

ठाकुर-(सं० ठकुर)-१. स्वामी, मालिक, २. आराध्य देव, पूज्य देवता, इष्ट देव, ३. नायक, सरदार, ४. ज़मींदार, ५. क्षत्रियों की उपाधि, ६. नाइयों की उपाधि। उ० १. राम गरीबनिवाज निवाजिहैं, जानिहैं, ठाकुर ठाँउँगो। (गी० १।३०)

ठाट-(सं० स्थातृ)-१. तैयारी, साज, रचना, तबक-भड़क, २. भीड़-भाड़, धूम-धाम, ३. दरय, ४. रूप, ५. व्यवस्था, प्रबंध। उ० १. मेरे जान इन्हैं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतौ, री। (गी० १।७५)

ठाटा-१. रचा, ठाट किया, रचना की, २. दे० 'ठाट'। उ० १. मोहि लागि यहु कुठाटु तैहिं ठाटा। (मा० २। २।२।३) ठाटिबो-रचना, बनाना। उ० काथा नहिं छौंदि देत ठाटिबो कुठाट को। (क० ७।६६)

ठाट्ट-दे० 'ठाट'। उ० ४. सुख महुँ सोक ठाट्ट धरि ठाटा। (मा० २।४।३)

ठाट्ट-दे० 'ठाट'। उ० ५. करहु कतहुँ अब ठाहर ठाट्ट। (मा० २।१३।१)

ठाढ-(सं० स्थातृ=जो खड़ा हो)-खड़ा। उ० ठाढ भए उठि सहस सुभाएँ। (मा० १।२५।४)

ठाढ़ा-खड़ा, दंडायमान । उ० अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा । (मा० ११२८३) ठाढ़ि-खड़ी, खड़ी-खड़ी । उ० सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताली । (मा० २११२१) ठाढ़ी-खड़ी, खड़ी हो गई । उ० नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी । (मा० १११०४१) ठाढ़े-खड़े, खड़े-खड़े । उ० ठाढ़े रहे एक पद दोऊ । (मा० १११४२१) ठाढ़ी-बाढ़, खड़ा । उ० ठाढ़ो द्वार न दै सकै तुलसी जे नर नीच । (दो० ३८२)

ठान-(सं० अनुष्ठान)-१. अनुष्ठान, किसी काम को ठानना या शुरू करना, २. शुरू किया गया कार्य, ३. इद निश्चय, संकल्प, ४. शरीर की सुद्धा, अंदाज । ठाना-१. निश्चय किया, इद विचार किया, २. ठान लिया, शुरू किया । उ० २. सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूप । (मा० १११६२।छं०१) ठानि-ठान कर, निश्चय कर के । उ० मरनु ठानि मन रचेसि उपाई । (मा० ११८६।३) ठानी-१. निश्चित की, २. रक्खी, ३. स्थान वाले । उ० ३. मास पाख तिथि बार नखत अह जोग लगन सुभ ठानी । (गी० १।४)

ठायँ-(सं० स्थान)-स्थान, ठौर, जगह । उ० जिन्ह लगि निज परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़ ठायँ । (वि० ८३)

ठालीं-(?)-निठरला, बेकाम । उ० ठालीं ग्वालि जानि पठए, अलि, कह्यो है पछोरन छुछो । (क० ४३)

ठावँ-(सं० स्थान)-जगह, स्थान । उ० ठावँ ठाव राखे अति प्रीती । (मा० २।६०।२)

ठाव-दे० 'ठावँ' । उ० दे० 'ठावँ' ।

ठाहर-(सं० स्थल)-१. ठहर, स्थान, जगह, स्थल, २. ठहरने का । उ० २. करहु कतहुँ अब ठाहर ठाढ़ । (मा० २।१३३।१)

ठाहर-दे० 'ठाहर' । उ० १. दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहर देखई । (मा० २।२५।छं०१)

ठिकाना-(सं० स्थित + क०, हि० टिकना)-१. ठहरने का

स्थान, निवास, २. जगह, स्थान, ३. जीविका का सहारा, आश्रय, ४. स्थिरता, ठहराव, ५. प्रबंध; आयोजन, ६. पारावार, अंत ।

ठीक-(?)-१. उचित, यथार्थ, सच, शुद्ध, २. अच्छा, ३. निश्चित, पक्का, ४. ठीक-ठीक, जो है, ज्यों का त्यों । उ० ४. नाथ नीके कै जानिबी ठीक-जन-जीय की । (वि० २६३)

ठीका-१. निश्चित, ठीक, इद, २. उचित, वाजिब । उ. १. करि बिचार मन दीन्ही ठीका । (मा० २।२६६।४)

ठुसुकु-(अनु०)-ठुमक कर, जल्दी-जल्दी थोड़ी-थोड़ी दूर पर पैर पटक कर । उ० ठुसुक-ठुसुक प्रभु चलाहि पराई । (मा० १।२०३।४)

ठेकाने-ठिकाना, आश्रय । उ० तुलसिदास सीतल नित यहि बल बड़े ठेकाने ठौर को हौ । (वि० २२६)

ठेलि-(?)-ठेलकर, धक्का देकर, ढकेलकर । उ० ढकनि ढकेलि पेलि सचिच चले लै ठेलि । (क० ५।८)

ठोकि-(अनु० ठक ठक)-ठोंककर, थपथपाकर, पीटकर, परीक्षा करके । उ० ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ लौं कहाँ केहि सों रद काढ़े । (क० ७।५४) ठोंकि बजाय-ठोंक बजाकर, अच्छी तरह परीक्षा कर । उ० दे० 'ठोंकि' ।

ठोरी-(सं० स्थान, प्रा० ठान, हिं ठाँव + र)-ठौर, स्थान, जगह । उ० छवि सिगार मनहुँ एक ठोरी । (मा० १। २६५।४)

ठोसु-(सं० स्थान)-ठोस, जो भीतर से पोला या खाली न हो । उ० राम-प्रीति-प्रतीति पोली, कपट करतब ठोसु । (वि० १५६)

ठौर-(सं० स्थान, प्रा० ठान, हिं ठाँव)-जगह, स्थान । उ० तुलसिदास सीतल नित यहि बल बड़े ठेकाने ठौर को हौ । (वि० २२६) सु० ठौर ठौर-जगह-जगह, स्थान-स्थान पर । उ० नखसिख अंगनि ठोरी ठौर ठौर हैं । (गी० १।७१)

ड

डँटैया-दे० 'डँटैया' ।

डंबर-(सं०)-१. आडंबर, ढकोसला, धूमधाम, २. विस्तार, फैलाव, ३. एक प्रकार का चँदवा । उ० २. छत्र मेघडंबर सिर धारी । (मा० ६।१३।३)

डग-(सं० तक = चलना)-१. फाल, क्रदम, २. पद, चरण । उ० १. पुर तें निकसी रघुवीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग हँ । (क० २।११) सु० डग दये-चले ।

डगह-डिगता है, हटता है । उ० डगह न संसु सरासनु कैसँ । (मा० १।२५।११) डगति-डगती है, हटती है, चलायमान होती है । उ० राम-प्रेम-पथ तें कबहुँ डोलति नहि डगति । (गी० २।८२) डगही-१. डगते हैं, २.

विचलित हो गए, डिग गए । उ० १. चलत कटक दिग-सिंधुर डगहीं । (मा० ६।७६।३) डगि-१. डगमगा कर, हिलकर, २. डग, पैर । उ० १. सिथिल अंगुपग मग डगि डोलहि । (मा० २।२२।२) इगे-डग गए, विचलित हुए । उ० डगे दिग कुंजर, कमठ कोल कल-मले । (क० ६।७) डगै-१. हिले, कंपित हों, २. हिलते हैं, काँपते हैं । उ० २. न डगै, न भगै जिय जानि सिली मुख पंच धरे रतिनाथक है । (क० २।२७) डगै-डगे, हिले, काँपे । डगयो-डिगा, हटा, विचलित हुआ, हिला । उ० कबहुँ न डगयो निगम-मग तें, पग नुग जग जान जिते दुख पाए । (वि० २४०)

डगमग-(सं० तक + मग)-अस्थिर, डगमगाता हुआ ।
 डगमगत-हिलते हैं, काँपते हैं । उ० झुमित सिंधु डगमगत
 महीधर सजि सारंग कर लीन्हों । (गी० १।२२) डग-
 मगही-१. डगमगाते हैं, २. डगमगाने लगे । उ० २.
 झुमित पयोधि कुभर डगमगही । (मा० ६।७६।३) डग-
 मगानि-डगमगा उठी, हिल उठी । उ० डगमगानि महि
 दिग्गज बोले । (मा० १।२५।१) डगमगाहिं-१. डगम-
 गाते हैं, विचलित होते हैं । २. कंपित होकर । उ० २.
 डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं । (मा० १।३५।५) डगमगे-
 डगमगा उठे, हिलने लगे । उ० ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि
 महि सिंधु भूधर डगमगे । (मा० ६।८६। १)
 डगर-(सं० तक, हि० डग)-रास्ता, मार्ग, पथ । डगारि-
 डगर में, रास्ते में । उ० हरष न रचत, विषाद न बिगरत,
 डगारि चले हैंसि खेलि । (क० २६)
 डगरा-दे० 'डगर' ।
 डगरो-दे० 'डगर' । उ० गुरु कछो राम भंजन नीको मोहिं
 लगत राज-डगरो सो । (वि० १७३)
 डटैया-(सं० दांति = वश, वश में करना)-डाँटनेवाले, धम-
 कानेवाले । उ० साँसति घोर, पुकारत आरत, कौन सुनै
 चहुँ ओर डटैया । (क० ७।५१)
 डङ्ग-(अर० दफ़)-चमड़ा मढ़ा एक बाजा, डफला । उ०
 बाजहिं मृदंग डफ ताल बेनु । (गी० ७।२२)
 डफोरि-(अनु०)-चिल्लाकर, हाँक देकर । उ० तुलसी त्रिकूट
 चढ़ि कहत डफोरि कै । (क० १।२७)
 डमरु-(सं०)-एक बाजा जो बीच में पतला होता है और
 हाथ से हिलाकर बजाया जाता है । यह शिव का प्रिय
 बाजा है । उ० कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा । (मा०
 १।६२।३)
 डमरुआ-(सं० डमरु)-जोड़ों में दर्द तथा सूजन होने का
 एक रोग, गठिया । उ० अहंकार अति दुखद डमरुआ ।
 (मा० ७।१२।१।२८)
 डमरु-दे० 'डमरु' । उ० डमरु कपाल कर, भूषन कराल
 ब्याल । (क० ७।१५।८)
 डर-(सं० दर)-भय, आस, खौफ़ । उ० एकन्ह कें डर तेपि
 डेराहीं । (मा० ६।३।३)
 डरज-डरता हूँ, डरता । उ० बसउ भवतु उजरउ नहिं
 डरजै । (मा० १।८०।४) डरत-१. डरता है, डरता, २.
 डरते हुए । उ० १. जाको बाल बिनोद समुक्ति जिय डरत
 दिवाकर भोर को । (वि० ३१) डरहिं-डरते हैं । उ०
 कादर देखि डरहिं तहँ सुभठन्ह के मन चैन । (मा० ६।
 ८७) डरहीं-डरती हैं, भयभीत होती हैं । उ० तिय
 सुभायँ कछु पूँछत डरहीं । (मा० २।११।६।३) डरही-डरता
 है । उ० बायस इव सबही ते डरही । (मा० ७।११।१०)
 डरहु-१. डरो, २. डरते हो, डर रहे हो । उ० २. डरहु
 दरिद्रहि पारसु पाएँ । (मा० २।२१।१) डरत-१. डरता
 है, २. डरते हुए । उ० १. तैसो कपि कौतुकी डरत डीलो
 गात कै कै । (क० १।३) डरती-डरती है । डरिए-डरा
 कीजिए, डरना चाहिए, डरते रहो । उ० निज आचरन
 बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिए । (वि० १।८६)
 डरिहै-डरेगा, भयभीत होगा । उ० तुलसी यह जानि

हिये अपने संपने नहिं कालहु तें डरिहै । (क० ७।४७)
 डरी-भयभीत हुई, डर गई । उ० तामु बचन सुनि ते
 सब डरीं । (मा० १।११।४) डर-१. डरो, २. डर, भय ।
 उ० २. नाहिन डरु बिगारिहि परलोक । (मा० २।२१।३)
 डरे-भयभीत हुए, डर गए । उ० डरे कुटिल नृप प्रभुहि
 निहारी । (मा० १।२४।३) डरेउं-मैं डरा, मैं डर गया
 था । उ० अपडर डरेउं न सोच समूलें । (मा० २।२६।३)
 डरेउ-डरा, डर गया । उ० निज भयँ डरेउ मनोभव
 पापी । (मा० १।१२।६।४) डरीं-१. डरूँ, २. डरता हूँ ।
 उ० २. तेहि ते बृहत्त काजु डरीं मुनि नायक । (जा०
 २४) डरथो-१. डर गया, २. डरा हुआ, भयभीत । उ०
 २. अब रघुनाथ सरन आयो जन, भवभय-बिकल डरथो ।
 (वि० ३१)

डरपत-डरता है, डर रहा है । उ० एकहिं डर डरपत मन
 मोरा । (मा० १।१६।४) डरपति-डरती है । उ० ताते
 तेहि डरपति अति माया । (मा० ७।११।६।३) डरपसि-
 डरिए, भयभीत होइए । उ० जनि सनेह बस डरपसि
 भारें । (मा० २।५३।४) डरपहिं-डरते हैं, डर रहे हैं ।
 उ० डरपहिं एकहि एक निहारी । (मा० २।८३।३) डरपहु-
 डरो, भयभीत हो । उ० भगत सिरामनि भरत तें जनि
 डरपहु सुरपाल । (मा० २।२१।६) डरपे-डरे, भयभीत
 हुए । उ० देखि अजय रिपु डरपे कीसा । (मा० ६।
 ७६।७)

डरपावै-डरावे, भय दिखलावे । उ० डरपावै गहि स्वल्प
 सपेला । (मा० ६।५१।४)

डवरुआ-दे० 'डमरुआ' ।

डसत-(सं० दंशन)-१. डसते ही, काटते ही, डंक मारते
 ही, २. डसते हुए, काटते हुए । उ० १. भव भुवंग तुलसी
 नकुल, डसत ज्ञान हरि खेत । (दो० १।८०) डसि-डसकर,
 काटकर ।

डसाई-(सं० दर्भ + आसन, हि० डासन)-१. बिछाया,
 बिछा दिया, २. बिछाकर । उ० १. गुहँ सँवारि साँथरी
 डसाई । (मा० २।८६।४) डसाए-बिछाए, बिछावाए । उ०
 जरित कनकमनि पलंग डसाए । (मा० १।२५।६।१)
 डसैहौं-बिछाऊँगा, बिछौंना बिछाऊँगा । उ० रामकृपा
 भवनिसा सिरानी जाने फिर न डसैहौं । (वि० १०५)

डहँकत-दे० 'डहकत (१)' । उ० २. भक्ति, बिराग,
 ज्ञान साधन कहि बहु विधि डहँकत लोग फिरौं । (वि०
 १४१)

डहकायो-छला, धोखा दिया, ठगा । उ० अजहुँ विषय
 कहँ जतन करत जद्यपि बहुविधि डहँकायो । (वि०
 १६६)

डहक-(?)-गुफा, कंदरा, खोह, छिपने की जगह ।

डहकत (१)-१. ठगाता है, धोखा देता है, बहकाता है, २.
 धोखा देते हुए, ठगते हुए । डहकि-(सं० तक = चलना,
 हि० डाँकना, डाँका = लूट, ठगी)-ठगाकर । मु० डहकि-
 डहकि-ठग ठगाकर । उ० डहकि डहकि परिचेहु सब काहु ।
 (मा० १।१३।७।२) डहकु-(सं० तक)-बहक, भुलावा में
 आ, ठगा, भ्रम में पड़ । उ० डहकु न है उजियरिया निसि
 नहिं घाम । (ब० ३७) डहके-१. ठगे गए, धोखा खाए,

२. ठगाना, धोखा देना । उ० १. तुलसी खोटे चतुरपन कलि डहके कहु को न ? (दो० ५४६) २. डहके ते डहकाइयो भलो, जो करिय-बिचारि । (दो० ४३१)

डहकत (२)-(अनु० दहाइ)-रोता है, बिलखता है ।
डहकत (३)-(?)-छितराता है, फैलाता है, फेंकता है ।
उ० खेलत खात परसपर डहकत, छीनत कहत करत रोग दैया । (क० १६)

डहकाइयो-ठगाना, ठगा जाना, धोखा खाना । उ० डहके ते डहकाइयो भलो, जो करिय बिचारि । (दो० ४३१)

डहरुआ-दे० 'डमरुआ' ।
डहार-(सं० दहन)-१. जलनेवाले, ईश्या करनेवाले, २. तंग करनेवाले, डाहनेवाले । उ० २. कायर क्रूर कुपूत कलि घर घर सहस डहार । (दो० ५६०)

डांग-(सं० टंक=पहाड़ का किनारा)-१. घना जंगल, गहन वन, २. पहाड़ की चोटी । उ० १. चित्र विचित्र बिबिध मृग डोलत डांगर डांग । (गी० २।४७)

डाँट-(सं० दांति=दमन, वश)-घुड़की, फटकार, फिड़की, धमकी ।
डाँड़िगो-(सं० दंड)-दंडित कर गया, जुरमाना लगा गया । उ० केसरीकुमार सो अदंड कैसे डाँड़िगो । (क० ६।२४)

डाँड़ियत-दंड दिया जाता है, जुरमाना दिया जाता है । उ० डाँड़ियत सिद्ध साधक प्रचारि । (गी० २।४६)

डाँड़ो-(सं० दंड)-१. डाँड़ी, रेखा, २. डंडा, दंड, पतली लकड़ी, ३. खंभ, ४. नाव खेने का डाँड़, ५. सीमा, ६. दंड दिया । उ० २. डाँड़ों कनक कुंडुम-तिलक रेखें सी मनसिज-भाल । (गी० ७।१८)

डाँवरे-(सं० डिब)-लड़के, बेटे, पुत्र ।
डाँवाडोल-(सं० दोल)-कंपित, चंचल, अस्थिर । उ० पावक, पवन, पानी, भावु, हिमवान, जम, काल, लोकपाल मेरे डर डाँवाडोल हैं । (क० १।२१)

डाकिनि-दे० 'डाकिनी' ।
डाकिनि-दे० 'डाकिनी' । उ० २. जो सब पातक पोतक डाकिनी । (मा० २।१३ २।३)

डाकिनी-(सं०)-१. एक पिशाची या देवी जो काली के गणों में समझी जाती है । २. चुड़ैल, डाइन । उ० २. डाकिनी-शाकिनी-खेचर भूचरं यंत्रमंत्र-भंजन, प्रबल कल्मषारी । (वि० ११)

डाटत-१. डाँटते हैं, घुड़कते हैं, २. डाँटने पर । उ० १. किय निहारो हँसत, खिन्ने तें डाटत नयन तरेरे । (क० ३)

डाटन-डाँटने, फटकारने । उ० २. कपि कुटिल ढीठ पसु पाँवर, मोहिदास ज्यों डाटन आयो । (गी० ६।३) डाटहि-डाँटि, फटकारे, डाँटते हैं, धमकाते हैं । उ० डाटहि आँखि देखाइ कोप दाहन किय । (जा० १।६६) डाटि-डाँटकर, फटकार कर । उ० मारहि चपेटन्हि डाटि दाँतन्हि काटि लातन्हि मीजहीं । (मा० ६।८१।४०१) डाटियत-डाँटता, धमकाता, घुड़कता । उ० आपु है अभागी भूरिभागी डाटियत है । (क० ७।६६) डाटे-१. डाँटने पर, घुड़कने पर, २. टाँटा । उ० १. बिनय न मार्कहि जीव जइ, डाटे नवहि अचेत । (प्र० १।१।६) डाटेहि-१. डाँटने पर,

फटकारने से, २. डाँटते हैं । उ० १. बिनय न मान खगेस सुनु दायेहि पइ नव नीच । (मा० १।५८)

डाढ़त-(सं० दग्ध)-१. जलती हुई, जलती, २. चलाते हुए । उ० १. रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहि । (क० १।१२) डाढ़न-१. जलाने, दग्ध करने, २. डाढ़ा का बहुबचन, आग, ३. दावानल, ४. दाह, ताप, जलन । उ० १. तुलसिदास जग दध जवास ज्यों अनघ-मेघ लागे डाढ़न । (वि० २१) डाढ़ा-१. आग, ज्वाला, २. जलन, ३. जलाया, ४. मुँह काला किया । उ० १. जिमि वृन पाइ लाग अति डाढ़ा । (मा० ६।७२।१) डाढ़े-१. जलाए, भस्म किये, २. जले, जले हुए, ३. लपकें, शोले । उ० २. पोंछि पसेउ ब्यारि करौं, अरु पायें पखारिहौं भूभुरि डाढ़े । (क० २।१२) डाढ़ै-जलावे, जला देती है । उ० प्रबल अनल वाढ़ै, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै । (क० १।२३) डाढ़ो-जला, जल गया । उ० सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो । (क० १।१२)

डाबर-(सं० दभ=समुद्र या कील) १. बहुत छोटा तालाब, डबरा, गड्ढी, छोटा गड्ढा, २. गँदला, मैला । उ० १. डाबर कमठ कि मंदर लेहीं । (मा० २।१३।६।४) २. भूमि परत भा डाबर पानी । (मा० ४।१४।३)

डार-(सं० दारु=लकड़ी)-शाखा, टहनी, डाल । उ० प्रभु तरु पर कपि डार पर ते किय आपु समान । (मा० १।२।६क)

डारन-डालों पर, डालियों पर । उ० अवनि कुरङ्ग, विहंग हुम-डारन रूप निहारत पलक न प्रेरत । (गी० २।१४)

डारइ-गिरावे, फेंके, गिराता हो । उ० नील-कमल-सर-अनि मयन जनु डारइ । (जा० ६२) डारइ-१. डालता है, २. पटकता है, पटकने लगा । उ० २. तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारइ । (मा० ६।८।१।४०१) डारउ-डाले, गिरावे । उ० जाचत जलु पवि पाहन डारउ । (मा० २।२०।५।२) डारहि-डालते हैं, डाल देते हैं, गिराते हैं । उ० गहि पद डारहि सागर माहीं । (मा० ६।४७।४) डारहीं-डालते हैं, गिराते हैं । उ० धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं । (मा० ६।४१।४०१) डारा-१. डाला, डाल दिया, २. गिराया । उ० १. अति रिस मेघनाद पर डारा । (मा० ६।२।१।१) डारि-१. फेंक, उगल, डाल, २. डालकर, छोड़कर, बहाकर । उ० १. मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं । (मा० ६।११।७।४) डारिबी-डालना, डालियेगा । उ० लषन लाल कृपाल ! निपटहि डारिबी न बिसारि । (गी० ७।२।६) डारियत-डालते हो । उ० रोगसिंधु क्यों न डारियत गायखुर कै ? (ह० ४३) डारिहउं-डालूंगा, फेंकूंगा । उ० बेगि सो मैं डारिहउं उखारी । (मा० १।१२।६।३) डारिहौं-डालूंगा, फेंकूंगा । उ० तुलसी असि मूरति आनि हिये, जइ डारिहौं प्रान निछावरि कै । (क० २।१३) डारी-१. डाला, डाल दिया, गिरा दिया, फेंक दिया, २. फेंक कर, ३. फेंकी हुई । उ० १. हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी । (मा० ४।१।४) डार-डाल दे, डालो । उ० निपटहि डाँटति निठुर ज्यों, लकड़ कर तें डार । (क० १।४) डारे-१. डाला, २. गिराया । उ० १. सरन्हि काटि रज सम करि डारे । (मा० ६।६।२) डारेसि-डाला, डाल दिया । उ० जहँ तहँ

पटक पटक भट डारेसि । (मा० ६।६।१५) डारेन्हि-
डाले, गिराये । उ० डारेन्हि तापर एकहि बारा । (मा०
६।६।२।१) डारो-१. डालू, २. गिराऊँ । उ० १. काँचे
घट जिमि डारो फोरी । (मा० १।२।५३) डारयो-डाला,
डाल दिया । उ० गहि चंगुल चातक चतुर डारयो बाहिर
बारि । (दो० ३०३)
डारो-दे० 'डारो' । उ० सोई बाँह गही जो गही समीर
डारो । (ह० ३७)
डासत-(सं० दर्भ + आसन) १. बिछाता है, फैलाता है, २.
बिछाते हुए, डसाते हुए, बिस्तर लगाते हुए । उ० २. डासत
ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ ! नीद भरि सोयो ।
(वि० २४५) डासि-१. बिछाकर, डालकर, फैलाकर, २.
डाली, फेंकी, बिछायी । उ० १. अजिन बसन फल आसन
महि सयन डासि कुस पात । (मा० २।२।११) डासी-दे०
'डासि' । उ० १. सम महि वृन तरु पल्लव डासी । (मा०
२।६।७।३)
डासन-१. बिछौना, २. आसन । उ० १. लोभइ ओदन
लोभइ डासन । (मा० ७।४।०।१)
डिडिम-(सं०) १. डमरू, २. डफली, ३. सुनादी, चोपणा,
४. करौदा, एक पेड़ का नाम, ५. डमरू का शब्द ।
डिडिमी-१. डमरू, २. डफली, डुगडुगी, ३. करौदा । उ०
२. भाँकि बिरव डिडिमी सुहाई । (मा० १।३।४।१)
डिम (१)-(सं०) १. बच्चा, छोटा बालक, २. मूर्ख, ३.
पशुओं के शिशु, बछड़ा आदि । उ० आपने तौ एक अव-
लंब अंध डिम ज्यो । (क० ७।६।१)
डिम (२)-(सं० दर्भ)-१. आडंबर, पाखंड, २. गर्व, अभि-
मान, ३. अज्ञान ।
डिगात-१. हिलती है, काँपती है, २. काँपने लगी । उ०
१. डिगति उवि अति गुवि, बिकल दिगपाल चराचर ।
(क० १।१।१)
डिठि-(सं० दृष्टि प्रा० दिष्टि, डिष्टि) १. दृष्टि, नज़र,
निगाह, २ नज़र, टोना । उ० २. रोवनि, धोवनि, अन-
खानि, अनरसानि, डिठि-मुठि निठुर नसाइहौ । (गी०
१।१।६)
डिठियारो-दृष्टिवाला, आँखवाला आदमी । उ० अंध कहे
दुख पाइहै, डिठियारो केहि डीठि ? (दो० ४।६।१)
डिमडिम-डमरू की डिमडिम आवाज़ । उ० तांडवित-नृत्य-
पर, डमरू-डिमडिम-प्रवर । (वि० १।०)
डिमडिमी-१. डुगी, डफली, २. सुनादी, डिडोरा ।
डीठ-(सं० दृष्टि प्रा० दिष्टि, डिष्टि)-नज़र, दृष्टि । उ०
दर्ई पीठ बिनु डीठ मै, तुम बिस्व-बिलोचन । (वि०
१।४।६)
डीठा-१. देखा, दीखा, २. दृष्टि । उ० १. पितु बैभव
बिलास मै डीठा । (मा० २।१।६।१) डीठे-देखे, अवलोकन
किया । उ० वंचक विषय विविध तनु धरि अनुभवे सुने
अह डीठे । (वि० १।६।६)
डीठि-दृष्टि, नज़र, आँख । उ० अंध कहे दुख पाइहै, डिठि-
यारो केहि डीठि । (दो० ४।६।१)
डीठी-दृष्टि, नज़र, आँख । उ० नहिं पावहिं परतिथ मनु-
बीठी । (मा० १।२।३।१।४)

डुलावो-(सं० दोल) १. डुलाऊँ, हिलाऊँ, २. डुलाता हूँ,
डिगाता हूँ ।
डोरा-[सं० स्थैर्य + ना (प्रत्य०)-हि० ठहरना, ठैरना] १.
थोड़े समय का निवास, पड़ाव, २. निवास, स्थान, घर
आश्रम, ३. तंबू, खेमा, ४. नाचने-गानेवालों का दल ।
उ० २. राम करहु तेहि कें उर डोरा । (मा० २।१।३।१।४)
डोराई-(सं० दर)-१. डरकर, डर से, २. डरें, ३. डरा । उ०
२. जब सिय कानन देखि डोराई । (मा० २।६।२।२) डोराऊँ-
डरूँ, डरता हूँ । उ० तुम्ह पूँछहु मै कहत डोराऊँ । (मा०
२।१।७।२) डोराती-डरती, डरती है, डर जाती है । उ०
चित्रलिखित कपि देखि डोराती । (मा० २।६।०।२) डोराना-
डरा, डर गया । उ० मुनिगति देखि सुरेस डोराना । (मा०
१।१।२।३) डोराने-डरे, डर गए । उ० सकल लोग सब
भूप डोराने । (मा० १।२।५।१) डोरावहिं-डराते हैं, भय-
भीत करते हैं । उ० कपिलीला करि तिन्हहि डोरावहिं ।
(मा० ६।४।३) डोराही-१. डरते हैं, डर रहे हैं, २. डर
रहे थे । उ० १. एकन्ह कें डर तेपि डोराही । (मा० ६।४।३)
डोराहू-डरो, भयभीत हो । उ० कह प्रभु हँसि जनि हृदय
डोराहू । (मा० ६।३।२।५)
डोरे-दे० 'डोरा' । उ० २. दीन बितहीन हौं बिकल बिनु
डोरे । (वि० २।१०)
डोरो-दे० 'डोरा' । उ० २. तुलसिदास यह त्रास मिटै जब
हृदय करहु तुम डोरो । (वि० १।४।३)
डेल-(सं० दल, हि० डला)-डेला, पत्थर, ईंट या मिट्टी
आदि का टुकड़ा । उ० नाहिन रास रसिक रस चाख्यो,
तातें डेल सो डारो । (क० ३।४)
डेवडू-(सं० दू शब्द, प्रा० दिअडूडू)-डेड़ा, आधा अधिक,
डेड़गुना ।
डोंगर-(सं० तुंग = पहाड़ी) टीला, ऊँची जमीन, छोटी
पहाड़ी । उ० चित्र विचित्र विविध मृग डोलत डोंगर
डोंग । (गी० २।४।७)
डोरि-(सं० डोर)-डोरी, रस्सी, तागा । उ० तैं निज कर्म
डोरि दृढ़ कीन्ही । (वि० १।३।६)
डोरिआए-डोर या रस्सी से बँधे हुए । उ० कोतल संग
जाहिं डोरिआए । (मा० २।२।०।३।२)
डोरी-दे० 'डोरि' । उ० जिन बाँधे सुर असुर नाग नर
प्रबल करम की डोरी । (वि० १।६)
डोल-(सं० दोल)-१. लोहे का एक गोल बर्तन जिससे
कूप से पानी खींचते हैं, २. हिडोला, झूला, ३. पालकी,
डोली, ४. काँपा, डोला, ५. काँपना, हिलना । उ० २.
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल । (मा०
१।२।५।६)
डोलह-(सं० दोल) डोल सकता है, हिल सकता है ।
उ० अचल-सुता-मन-अचल बयारि कि डोलह ?
(पा० ६।५) डोलत-डोलती है, डोलने लगी । डोलत
धरनि साभसद खसे । (मा० ६।३।२।२) डोलति-१.
डोलती है, हिलती है, हटती है, २. डोलती हुई ।
उ० १. जासु चलत डोलति इमि धरनी । (मा०
६।२।५।४) डोलनि-डोलना, हिलना । उ० केस सुदेस
गँभीर बचन बर, जूति कुंडल-डोलनि जिय जागति ।

(गी० ७।१७) डोलहिं-डोलते हैं, डगमग करते हैं, चलायमान होते हैं। उ० स्थितिल अंग पग मग डगि डोलहिं। (मा० २।२२१२) डोला-(सं० दोल)-
१. डोली, शिविका, पालकी, २. हिला, चला, कंठित हुआ। उ० २. हरि प्रेरित लच्छिमन मन डोला। (मा० ३।२८।३) डोली-१. हिली, कंठित हुई, २. बदली, परिवर्तित हुई। उ० २. माता पुनि बोली सो मति बोली तजहु तात यह रूपा। (मा० १।१११२। छं० ४) डोले-हिले, डगे, कंठित हुए। उ० डोले धराधर-धारि, धराधर धरपा। (क० ६।७) डोले-डोलता है, भटकता है। उ० डोले लोल ब्रूकत सबद डोल तूरना। (क० ७।१४८) डोले-डोला, विचलित हुआ। उ० बहुबिधि राम क्यौ तनु राखन

परम धीर नहिं डोलेयौ। (गी० ३।१३)
डोलावा-डुलावा, हिलावा, कंठित किया। उ० काहि न सोक समीर डोलावा। (मा० ७।७।१२) डोलावों-१. डुलाऊँ, हिलाऊँ, २. चलाता हूँ, फिराता हूँ, घुमाता हूँ। उ० २. प्रभु अकृपालु कृपालु अलायक जहँ जहँ चितहिं डोलावों। (वि० २३२) डोलावोंगी-डुलाऊँगी, चलाऊँगी। उ० थाके चरन कमल चापोंगी, सम भए बाउ डोलावोंगी। (गी० २।६)
डोलहिं-डोलते हैं, घूमते हैं। उ० कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोलहिं। (मा० ६।८।८।१)
डोआ-(?)-काठ का चमचा या करछुल। उ० लकड़ी डोआ करछुली सरस काज अनुहारि। (दो० २२६)

ढ

ढंग-(सं० तंग=जाना, चाल)-१. शैली, पद्धति, तरीका, २. प्रकार, भाँति, ३. रचना, बनावट, गढ़न, ४. युक्ति, उपाय, ५. आचरण, व्यवहार, चाल-ढाल, ६. लक्षण, आभास, ७. बहाना, हीला, पाखंड, ८. अवस्था, दशा।
ढँढोरीं-(सं० ढुंढन)-खोजी, ढूँढी, तलाश की। उ० सारद उपमा सकल ढँढोरीं। (मा० १।३४१४)
ढकनि-(अनु० ढका, धक्का)-धक्कों से। उ० ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेखि। (क० १।८) ढका-१. धक्का, २. धक्के से। उ० २. सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग मैं। (क० ७।७६)
ढकेलि-(अनु० धक्का, ढका)-ढकेल कर, धक्का देकर। उ० ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेखि। (क० १।८)
ढकेल्यो-ढकेला, गिराया, धक्का दिया। उ० सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग मैं। (क० ७।७६)
ढनमनी-(अनु० ढनमनाना)-ढुंढक पड़ी, ढुंढक पड़ी। उ० रुधिर बमत धरनीं ढनमनी। (मा० १।४।२)
ढरकें-गिरे, झुके। उ० गए कोस दुइ दिनकर ढरकें। (मा० २।२२६।१) ढरकें-(सं० धार)-१. गिरकर बहे, ढले, ढुंढके, २. अस्ताचल की ओर चले, २. ढूँढने तक, अस्त होने तक। ढरत-(सं० धार, हि० ढाल)-१. ढरता है, ढ्रवित होता है, बहता है, २. प्रसन्न होता है, रीझता है, अनुकूल होता है। उ० २. ताको लिए नाम राम सबको सुढर ढरत। (वि० १।३४) ढरनि-१. कृपालुता, दया, २. चित्त की प्रवृत्ति, झुकाव, ३. गति, हरकत, हिलना, ४. पतन, गिरना। उ० १. कृपासिंधु कोसलधनी सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरिण्। (वि० ५।१७) ढरहीं-(सं० धार)-ढल रहे हैं, हिल रहे हैं। उ० ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं। (मा० १।३५।२) ढरिण्-पसीजिए, दया कीजिए, प्रसन्न हूजिए। उ० कृपासिंधु कोसलधनी सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरिण्। (वि० २।७।१) ढरिये-दे० 'ढरिण्'। ढरिहै-ढरेगा, बहने लगेगा। उ० प्रभु-गुन सुनि

मन हरविहै, नीर नयननि ढरिहै। (वि० २।६८) ढरी-१. ढली, बही, २. ढ्रवित हुई, पिघली। ढरेंगे-दया करेंगे, नन्न होंगे। उ० तुलसी ढरेंगे राम आपनी ढरनि। (वि० १।८४)
ढहा-(सं० ध्वंसन, हि० ढहना)-गिरा, ध्वस्त हुआ, नष्ट हुआ। उ० धन्य मातु, हौं धन्य लागि जेहि राज-समाज ढहा है। (गी० २।६४) ढहे-ढह गए, गिरे, नष्ट हुए। उ० ढहे समूल बिसाल तरु, काल नदी के तीर। (प्र० ६। ३।५)
ढहाए-गिरवाए, नष्ट-अष्ट करवाए। उ० बिनु प्रयास रघु-नाथ ढहाए। (मा० ४।७।६) ढहावहिं-ढहाते हैं, गिराते हैं, फेंकते हैं। उ० निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। (मा० ६।४।१४) ढहावहीं-गिरा रहे हैं, पल्लाव रहे हैं। उ० खपरिन्ह खमा अलुगिन्ह जुझहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं। (मा० ६।८।१) ढहावा-ढहा दिया, गिराया। उ० कलस सहित गहि भवतु ढहावा। (मा० ६।४।२)
ढाँकी-(सं० ढक=छिपाना)-ढककर, छिपाकर। उ० बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। (मा० २।१।७।३)
ढाबर-(सं० दभ्र=झील)-१. गँदला, मटमैला, २. गहरा, ३. छोटा गड्ढा, ढबरा, ४. जलमय। उ० १. भूमि परत भा ढाबर पानी। (मा० ४।१।३)
ढारइ-(सं० धार)-ढरकाती है, गिराती है। उ० नारिचरित करि ढारइ आँसू। (मा० २।१।३) ढारत-कैलाता, गिराता। उ० दूध दह्योउ माखन ढारत हैं हुतो पोसात दान दिन दीबो। (क० ६) ढारति-ढालती हैं, ढालती हैं। उ० बार-बार बर बारिज लोचन भरि-भरि बरत बारि उर ढारति। (गी० ५।१६) ढारि-गिरा दे, ढाल दे, उँडेल दे। उ० जोगिजन मुनि मंडली मों जाइ रीती ढारि। (क० ५।३) ढारी-१. ढाला हुआ, २. गिराया, ढका दिया, ३. ढालू। उ० १. अति बिस्तार चारु गच ढारी। (मा० १।२२।१) ढारो-गिराया, ढारा, ढुंढकाया। उ०

दारो बिगारो मैं काको कहूँ केहि कारन खीरुत हौं तो तिहारो । (ह० १६) दारयो-१. गिराया, उँदेल्ला, २. व्यंग्य किया । उ० १. खायो, कै खवायो, कै बिगारयो, दारयो-लरिका री । (क० १६)

दास-(सं० दस्यु)-ठग, लुटेरा, डाकू । दासनि-ठगों, चोरों, लुटेरों । उ० वासर दासनि के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर । (दो० २३६)

दाहत-(सं० ध्वंसन)-१. गिराता है, २. गिराते हुए, दाहते हुए । उ० २. दाहल भूप रूप तरु मूला । (मा० २। ३१२) दाहति-१. गिराती है, नष्ट करती है, २. दाहती हुई, गिराती हुई । दाहिगो-गिरा गया, नष्ट कर गया । उ० बंक गढ़ लंक सो ढका ढकेलि दाहिगो । (क० ६।२३) दाहिबे-गिराने, नष्ट करने । उ० लंक से बंक महागढ़ दुगम दाहिबे दाहिबे को कहरी है । (क० ६।२६) दाहे-गिराए, ढहाए । उ० दाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले । (मा० ६।४६। छं० १) दैहै-दाहेंगे, गिराएँगे । उ० दे० 'देरी' ।

दिंग-(सं० दिक्=ओर)-१. पास, समीप, निकट, २. तट किनारा, तीर, ३. दिशा ।

दिग-दे० 'दिग' । उ० १. अनुज सहित मिलि दिग बैठारी । (मा० १।४६।२)

दिठाई-(सं० घृष्ट)-१. घृष्टता, गुस्ताखी, चपलता, २. निर्लज्जता । उ० १. जहपि नाथ उचित न होत अस प्रभु सों करौं दिठाई । (वि० ११२)

दिमदिमी-(सं० दिडिम)-१. बमरु, २. खँजड़ी ।

दीटयो-दिठाई, घृष्टता । उ० अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं दीट्यो कहँ । (मा० १।३२६। छं० ३)

दीठ-(सं० घृष्ट)-१. बड़ों का ख्याल न करनेवाला, बे-अदब, शोख, २. साहसी, हिम्मतवाला । दीठे-घृष्टता-पूर्ण, दिठाई से भरे हुए । उ० तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल बचन कहत अति दीठे । (वि० १६६)

दीठी-घृष्टता, दिठाई ।

दीठु-दे० 'दीठ' । उ० १. दुहुँ मिलि कीन्ह दीठु हठि मोहू । (मा० २।३१४।३)

दीठो-दिठाई, घृष्टता, गुस्ताखी । उ० प्रभु सों मैं दीठो बहुत दई है । (गी० २।७८)

दील-(सं० शिथिल, प्रा० सिठिल)-१. मंद, शिथिल, सुस्त, २. ढिलाई, सुस्ती, ३. देर, ४. बालों का कीड़ा, जूँ, ५. छोड़ना, समा करना । उ० २. ढील तेरी, बीर, मोहि पीर तैं पिरालि है । (ह० ३०) ५. ल्यों-ल्यों नीच चढ़त

सिर ऊपर ज्यों-ज्यों सील बस ढील दई है । (वि० १३६)

ढीला-१. जो कसा न हो, २. सुस्त, धीमा, मंद, ३. गीला, ४. जो अटल न रहे, ५. खुला हुआ । ढीले-ढील, शिथिल, सुस्त । उ० भारी गुमान जिन्हें मन में, कबहुँ न भये रन में तनु ढीले । (क० ६।३२)

ढीलो-शिथिल, ढीला । उ० तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै कै । (क० १।३)

ढेक-(सं०)-एक चिड़िया जिसकी चोंच और गर्दन लंबी होती है । उ० ढेक महोख ऊँट बिसराते । (मा० ३। ३८।३)

ढेरी-(सं० धरण)-राशि, समूह, ढेर । उ० नेकु धका दैहैं दैहैं ढेलन की ढेरी सी । (क० ६।१०)

ढेर-ढेर, राशि । दे० 'ढेरी' । उ० सुखमा को ढेर कैधौं सुकृत सुमेरु कैधौं । (क० ७।१३६)

ढेरै-ढेर को, समूह को । उ० रंक लूटिबे को मानों मनि गन-ढेरै । (गी० १।२७)

ढेलन-(सं० दल, हि० डला)-मट्टी या ईंट के टुकड़े । ढेला का बहुवचन । उ० दे० 'ढेरी' । ढेला-(सं० दल)-ईंट, मिट्टी या पत्थर का टुकड़ा ।

ढोट-दे० 'ढोटा' ।

ढोटनिहूँ-बालकों का भी, लड़कों का भी । उ० जस रावरो, लाभ ढोटनिहूँ, मुनि सनाथ सब कीजै । गी० १।४८)

ढोटा-(सं० दुहिट्ट, हि० ढोटी)-लड़का, बालक, बेटा । उ० रामु लखनु दूसरथ के ढोटा । (मा० १।२६६।४) ढोटे-लड़के, बच्चे । उ० ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे । (क० १।६)

ढोटी-ढोटा, लड़का । उ० गोरो गरुर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटी सो ढोटो है काको ? (क० १।२०)

ढोर (१)-(सं० धार, हि० ढार, डुरना=इधर-उधर जाना)-१. गाय-बैल आदि चौपाए, पशु, मवेशी, २. सिलसिला ।

ढोर (२)-(सं० ढोल)-१. एक बाजा, ढोल, २. ध्वनि ।

ढोल-(सं०)-एक बाजा, जिसके दोनों ओर चमड़ा मढ़ा होता है । बड़ी ढोलकी । उ० भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई । (मा० १।२६३।१)

ढोलू-दे० 'ढोल' । उ० १. कहेउ बजाउ जुभाऊ ढोलू । (मा० २।१६२।२)

ढोव-(सं० वोट=वहन करना)-भेंट की वस्तु जो मंगल के अवसर पर भार आदि में भरकर भेजते हैं । उ० लै-लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति-भाँति भरि भार । (गी० १।२)

त

तंडुल-(सं०)-चावल, अन्नत, चाउर ।

तंतु-(सं०)-१. सूत, डोरा, तागा, २. तंत, चमड़े, या नसों की बनी डोरी, ३. मगर, ग्राह, ४. विस्तार, फैलाव,

५. संतान, बच्चे, ६. बंश की परंपरा, ७. थङ्ग की परंपरा ।

तंत्र-(सं०)-१. अधिकार, हक, २. उपाय, तदवीर, ३.

अधीनता, ४. काम, ५. पक्का मत, सिद्धांत, ६. सूत, डोरा, ७. ताँत, तंतु, ८. कपड़ा, ९. प्रमाण, सबूत, १०. औषधि, दवा, ११. कारण, १२. राज्य, शासन काल, १३. राज-कर्मचारी, राजा के नौकर, १४. राज्य-प्रबंध, १५. पद, ओहदा, १६. श्रेणी, वर्ग, १७. समूह, झुंड, १८. शपथ, कसम, १९. घर, मकान, २०. दल, फौज २१. आनंद, प्रसन्नता, २२. कुल, खानदान, २३. लक्ष्य, २४. फाड़ने फूँकने का मंत्र, २५. हिंदुओं का उपासना-संबंधी एक शास्त्र जो शिव का बनाया कहा जाता है। २६. माया। उ० २६. अचलरेड अपने भगत हित निजतंत्र नित रघु-कुल मनी। (मा० ११५१।छं० १) तंत्रशास्त्र-शिव-प्रणीत एक शास्त्र जो आगम, यामल तथा मुख्यतंत्र-इन तीन भागों में विभक्त है। इस शास्त्र के सिद्धांत गुप्त रखे जाते हैं, और इसकी शिक्षा लेने के लिए मनुष्य को पहले दीक्षित होना पड़ता है। तंत्र शास्त्र अब केवल मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि मंत्रों के लिए प्रसिद्ध है। यह शास्त्र प्रधानतः शाक्तों का है। इसके मंत्र प्रायः अर्थहीन तथा एक या डेढ़ अक्षरों के होते हैं। तंत्रशास्त्र के पाँच मकार (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन) प्रसिद्ध हैं। तंत्रिकों की उपासना भी भिन्न तरह की होती है। ये अपनी 'चक्रपूजा' में मद्य और मांस का प्रयोग करते हैं तथा मीच जाति की स्त्रियों को नंगी करके उनका पूजन आदि करते हैं। बाद में हिंदुओं की देखादेखी बौद्धों में भी तंत्र का प्रचार हुआ और अनेक ग्रंथ लिखे गए। तंत्री-(सं०)-१. सितार, बीन आदि बाजे या उनमें लगे तार, २. गुरुच, ३. देह की नसें, ४. निद्रा, नींद, ५. संपादक, ६. रस्सी। तंबोलिन-(सं० तांबूल)-पान बेचनेवाली स्त्री, पनेरिन, बरइन। उ० रूप सलौनि तंबोलिनि बीरा हाथहि हो। (रा० ६) त-(सं० तदु)-तो। उ० नाहिं त मौन रहव दिनु राती। (मा० २।१६२) तड़-(सं० तापन, हि० तावना-गर्म करना)-तपाकर, आँच देकर, जलाकर, पिघलाकर। तड़-१. जल रही है, तप रही है, २. जली हुई, तप्त, जली, ३. एक प्रकार की कड़ाही। उ० २. दीनदयालु दुरित दुख दुनी दुसह तिहुँ तापें तड़ है। (वि० १३६) तये-तपाया, गर्म किया, जलाया, कष्ट दिया। उ० पाप-खानि जिय जानि अजामिल जमगन तमकि तये ताको भेते। (वि० २४१) तयो-जला, जलता रहा। उ० राम बिमुख सुख लखो न सपनेहुँ, निसि बासर तयो तिहुँ ताय। (वि० ८३) तउ-(सं० ततः)-१. तो भी, तिस पर भी, २. त्यों, तैसे। उ० १. तउ न तजा तनु जीव अभागें। (मा० २।१६६।३) तऊ-दे० 'तउ'। उ० १. है अभिमान तऊ मन में, जन भाषिहैं दूसरे दीनन पाहीं। (क० ७।६४) तक-(सं० अंत + क)-पर्यंत, तलक, लौ। तकड़-(सं० तक, प्रा० तक, हि० ताकना)-ताकता है, देखता है। उ० जिमि गर्व तकड़ जेउं केहि भाँती। (मा० २।१३।२) तकत-ताकते हैं, देखते हैं, प्रतीक्षा करते हैं।

उ० जटा मुकुट सिर सारस-नयननि गौं हैं तकत सुभौह सकोरे। (गी० ३।२) तकहीं-ताकते हैं, देखते हैं। उ० भूप बचन सुनि इत उत तकहीं। (मा० १।२६।७।४) तकि-१. ताककर, देखकर, २. लक्ष्य कर, ३. निशाना साधकर। उ० ३. हुमगि लात तकि कूबर मारा। (मा० २।१६२।२) मु० तकि तकि-देख-देखकर, लक्ष्य कर, निशान साधकर। उ० दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक। (जा० ६४) तकु-१. देख, निहार, ताक, २. आश्रय ले, पनाह ले। उ० २. तुलसी तकु तासु सरन जाते सब लहत। (वि० १३३) तके-१. देखे, खोजे, २. शरण ली। उ० २. देवन्ह तके मेरुगिरि खोहा। (मा० १।१८२।३) तकेउ-१. लक्ष्य किए, २. लक्ष्य करके चले, देखकर उधर ही चले, ३. ताका, देखा। उ० २. मनहुँ सरोवर तकेउ पिआसे। (मा० १।३०।७।४) तकै-देखते हैं, देखा करते हैं। उ० ताहि तकै सब ज्यों नदी बारिधिनि बुलाई। (वि० ३५) तक्यो-देखा, देख लिया। उ० चले जनु तक्यो तड़ाग तृषित गज घोर घाम के लागे। (गी० २। ६८)

तकिया-(फ्रा०)-१. आश्रय, सहारा, शरण, २. कपड़े का एक थैला जिसमें रुई आदि भरी होती है और जिसे सोते समय सर के नीचे या यों हाथ या पीठ के सहारा के लिए बिस्तर पर रखते हैं। उ० १. तहँ तुलसी के कौन को काको तकिया रे ? (वि० ३३)

तगण-(सं०)-छंद शास्त्र में तीन वर्णों का वह समूह जिसमें पहले दो गुरु और फिर एक लघु वर्ण होता है। इसका चिह्न ५५ है। संतोष में भी गुरु, गुरु तथा लघु है इसी आधार पर तगण का संतोष की जगह तुलसी ने प्रयोग किया है। उ० तुलसी तगन बिहीन नर सदा नगन के बीच। (सं० २८६)

तग्य-दे० 'तज'। उ० तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। (मा० ७।३४।३)

तज (१)-(सं० त्यजन, हि० तजना)-१. त्यागो, छोड़ दो, २. छोड़कर, ३. त्याग। तजइ-छोड़ता, छोड़ता है, त्याग देता है। उ० लुखुध मधुप इव तजइ न पासू। (मा० १। १७।२) तजई-छोड़ता है, छोड़ता, त्यागता। उ० सखि परंतु पनु राउ न तजई। (मा० १।२२२।२) तजउँ-१. छोड़ता, २. छोड़ूँ। उ० १. तजउँ न तन निज इच्छा मरना। (मा० ७।६६।३) तजत-१. छोड़ता, छोड़ता है, २. छोड़ते हुए। उ० १. बिलु हरिभजन नूनारन के फल, तजत नहीं करुआई। (वि० १७५) तजन-तजना, छोड़ना। उ० तजन चहत सुचि स्वामि सनेही। (मा० २। ६४।२) तजहिं-छोड़ देते हैं, त्याग देते हैं। उ० सुमिरत रामहि तजहिं जन तुन सम विषय बिलासु। (मा० २। १४०) तजहि-छोड़ो, छोड़ दो। उ० अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा। (मा० ६।६६ छं० १) तजहीं-छोड़ते, छोड़ते हैं। उ० पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं। (मा० ३।४३।२) तजहु-छोड़ो, त्यागो, त्यागो। उ० जौ तुम तजहु भजौ न आन प्रभु, यह प्रमान पन मोरे। (वि० ११२) तजहु-छोड़ो, छोड़ दो। तजा-छोड़ा, त्यागा। उ० तउ न तजा तनु जीव

अभागों। (मा० २१६६।३) तजि-छोड़कर, त्यागकर।
 उ० तौ तजि विषय बिकार सार भञ्ज, अजहूँ जो मैं कहौं
 सोइ कहू। (वि० २०५) मु० तजि तजि-छोड़ छोड़कर।
 उ० जेहि बाटिका बसति तहँ खग मृग तजि तजि भजे
 पुरातन भौन। (गी० १।२०) तजिअ-छोड़ना, छोड़
 देना। उ० नीति न तजिअ राजपदु पाएँ। (मा० २।१५२-
 २) तजिय-छोड़ो, छोड़ दो, छोड़ देना। उ० तातु तजिय
 जनि छोह मया राखबि मन। (जा० १।८८) तजिहउँ-त्याग
 दूंगा, छोड़ूंगा। उ० तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। (मा०
 १।६४।४) तजी-त्यागा, छोड़ा। उ० बिनु अघ तजी सती
 असि नारी। (म० १।१०४४) तजु-छोड़, छोड़ दे,
 त्याग। उ० करु विचार, तजु विकार, भञ्ज उदार रामचंद्र।
 (वि० ७४) तजे-छोड़ा, छोड़ दिया, छोड़ दिया है।
 उ० तजे राम हम जानि कलेसू। (मा० २।८६।२) तजेउँ-
 त्याग दिया, छोड़ दिया। उ० पुनि प्रयास बिनु सो तजु
 तजेउँ गएँ कहु काल। (मा० ७।१०६४) तजेउ-१.
 त्यागा, त्याग दिया, २. त्यागकर। उ० २. तनु धनु तजेउ
 बचन पनु राखा। (मा० २।३०।४) तजेहि-त्यागने में
 ही। उ० हरि-वियोग तनु तजेहि परम सुख ए राखहि
 सोइ है बरियाई। (कृ० ५६) तजेह-तजा, छोड़ा, छोड़
 दिया। उ० मम हित लागि तजेह पितु माता। (मा० ६।
 ६।१२) तजौ-तजूँ, त्यागूँ, छोड़ूँ। उ० भागौ तुरत
 तजौ यह सँला। (मा० ४।१।३) तज्यो-छोड़ा, त्याग
 दिया। उ० ताहू तें परम कठिन जान्यो ससि तज्यो पिता
 तब भयो ब्योमचर। (कृ० ३।१)
 तज (२)-(सं० त्वच्)-तमल का वृक्ष।
 तज्ञ-(सं०)-तत्त्वज्ञानी, पंडित, ज्ञानी। उ० तज्ञ, सर्वज्ञ,
 यज्ञेश, अच्युत, विभो। (वि० १०)
 तट-(सं०)-१. किनारा, कूल २. नज़दीक, समीप, ३. खेत,
 क्षेत्र, ४. प्रदेश। उ० १. बस मारीच सिंधुतट जहवाँ।
 (मा० ३।२३।४) तटन्हि-किनारों पर। उ० डारहि रत्न
 तटन्हि नर लहहीं। (मा० ७।२३।५)
 तटिनि-दे० 'तटिनी'। उ० मंदाकिनि तटिनि तीर, मंजुल
 मृग बिहग भीर। (गी० २।४४)
 तटिनी-(सं०)-नदी, सरिता। उ० चलि री आली देखन
 लोयन-लाहु पेखन ठाढ़े सुरतर-तर-तटिनी के तट हैं।
 (कृ० २०)
 तटी-(सं०)-१. तीर, किनारा, २. नदी, सरिता, ३.
 घाटी, तराई।
 तडाग-(सं० तडाग)-तालाब, सरोवर, पोखरा। उ० बन
 बाग कूप तडाग सरिता सुभग सब सक को कही। (मा०
 १।६४।१)
 तडागा-दे० 'तडाग'। उ० ते सब जलचर चारु तडागा।
 (मा० १।३७।२)
 तडागु-दे० 'तडाग'। उ० बागु तडागु बिलोकि प्रभु हरषे
 बंधु समेत। (मा० १।२२७)
 तडित-(सं० तडित्)-बिजली, विद्युत। उ० तडित बिनि-
 दक पीत पट उदर रेख बर तीनि। (मा० १।१४७)
 तत (१)-(सं० तत्)-१. उत्तने, २. उस, वह। उ० १. जत
 समानतत जान लघु अपर बेद गुरु मान। (सं० २५)

तत (२)-(सं०)-१. वायु, २. विस्तार, ३. पिता, ४. पुत्र,
 ५. सारंगी, सितार आदि तारवाले बाजे।
 ततकाल-दे० 'तत्काल'। उ० ततकाल तुलसिदास जीवन
 जनम को फल पाइहै। (वि० १३५)
 ततकाला-दे० 'ततकाल'। उ० मज्जनफल पेखिअ ततकाला।
 (मा० १।३।१)
 तति-(सं०)-१. श्रेणी, पंक्ति, २. समूह, भुंड, ३. विस्तार,
 ४. विस्तीर्ण, चौड़ा। उ० ४. यज्ञोपवीत पुनीत बिराजत
 गूढ़ जज्जु बनि पीन अंस तति। (गी० ७।१७)
 तत्-(सं०)-१. उस, २. ब्रह्म का एक नाम, ३. हवा,
 वायु। उ० १. मत्वा तद्गुनाथ नाम निरतं स्वान्तस्मः
 शान्तये। (मा० ७।१३।१०) १)
 तत्काल-(सं०)-तुरंत, उसी समय।
 तत्त्व-(सं०)-१. वास्तविक स्थिति, यथार्थता, असंख्यत,
 २. जगत का मूल कारण, ३. पंचभूत, ४. ब्रह्मा, पर-
 मात्मा, ५. सार, सार वस्तु, ६. सारांश, ७. उद्देश्य।
 उ० ३. ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहि तत्त्व विभाग।
 (मा० १।४४)
 तत्पर-(सं०)-१. सन्नद्ध, मुस्तैद, उद्यत, तैयार, २. निपुण,
 चतुर, होशियार, ३. लीन, निरत। तत्परौ-दोनों तत्पर,
 दोनों लीन। उ० सीतान्वेषण तत्परौ पथिगतौ भक्ति
 प्रदौ तौहिनः। (मा० ४।१०।१)
 तत्र-(सं०)-वहाँ, उस जगह, उस स्थान पर। उ० तत्र
 स्वज्ञकि सज्जन-समागम सदा भवतु में राम विश्राम-
 मेकम्। (वि० ५७) तत्रैव-वहाँ पर, उसी जगह। उ० यत्र
 तिष्ठति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छति चौराब्धि-
 वासी। (वि० ५७)
 तत्त्व-दे० 'तत्त्व'।
 तत्त्वज्ञ-(सं० तत्त्वज्ञ)-दे० 'तत्त्वदर्शी'।
 तत्त्वदर्सी-दे० 'तत्त्वदर्शी'। उ० एहि आरती निरत सन-
 कादि श्रुति सेष सिव देव ऋषि अखिल मुनि तत्त्वदर्सी।
 (वि० ४७)
 तत्त्वदर्शी-(सं० तत्त्वदर्शिन)-तत्त्वज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी, जो
 ब्रह्म, सृष्टि तथा आत्मा आदि के संबंध में यथार्थ ज्ञान
 रखता हो।
 तथा-(सं०)-१. और, व, २. इसी तरह, ऐसे ही, इस प्रकार,
 ३. सत्य, ४. सीमा, हद, ५. निश्चय, ६. समानता।
 उ० १. जिमि गज-दसन तथा मम करनी सब प्रकार तुम
 जानहु। (वि० १।१८)
 तथापि-(सं०)-तो भी, तिस पर भी, तब भी। उ० प्रसुहि
 तथापि प्रसन्न बिलोकीं। (मा० १।१६४।४)
 तथास्तु-१. एवमस्तु, ऐसाही हो, इसी प्रकार हो, २. वैसे ही,
 उसी प्रकार।
 तथ्य-(सं०)-सत्यता, सच्चाई, यथार्थता।
 तदनंतर-(सं०)-उसके पीछे, उसके बाद, उसके उपरांत।
 तदपि-(सं०)-तो भी, तिस पर भी, तथापि। उ० जानत
 निज महामि, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो। (वि० ६४)
 तदा-(सं०)-उस समय, तब, उस काल।
 तदि-तो, तब।
 तद्-(सं०)-१. वह, २. उसका, ३. तब, उस समय। उ०

२. मोह वसमौलि, तद्भ्रात अहंकार, पाक पारिजित्-
काम विश्रामहारी । (वि० २८)

तन-(का०, तु० सं० तनु)-१. शरीर, देह, जिस्म, २. तरफ, ओर । उ० १. दुसह सांसति कीजै आगे देया तन की । (वि० ७५) २. हँसे राघौ जानकी लषन तन हेरि-हेरि । (क० २११०) तनहि-तनको, शरीर को । उ० अब नन्द-
लाल-गवनः सुनिद्रमधुवन तनहि तजत नहि बार लगाई । (क० २५)

तनक-(सं० तनु, हि० तनिक)-थोड़ा, छोटा, तुच्छ । उ० तो करत गिरी तें गरु तन तें तनक को । (क० ७७३)
तनकाऊ-थोड़ा भी, ज़रा भी, कुछ भी । तनकौ-तनिक भी । उ० तप तीरथ साधन जोग बिराग सों होइ नही दृढ़ता तनकौ । (क० ७८७)

तनत्रान-(सं० तनत्राण)-कवच, ज़िरहबख्तर ।
तनय-(सं०)-पुत्र, बेटा, लड़का । उ० पवन तनय संतन हितकारी । (वि० ३६) तनया-(सं०)-लड़की, पुत्री । उ० तात जनक तनया यह सोई । (मा० १२३१११)

तनरुह-(सं० तनूरुह)-बाल, रोम, रोआँ । उ० हरषवंत चर अचर भूमि सुर तनरुह पुलक जनाई । (गी० १११)

तनाए-(सं० तान=विस्तार)-तनवाए । उ० कलस चँवर तोरन धुजा सुबितान तनाए । (गी० ११६)

तनिक-(सं० तनु=अल्प)-थोड़ा, अल्प, कम ।
तनियाँ-(सं० तनिका)-१. लँगोट, कौपीन, २. कछुनी, जॉन्धिया । उ० २. तनियाँ ललित कटि, बिचित्र टेपारो सीस । (क० २)

तनी (१)-(सं० तान, हि० तानना)-तानी, फैलाई । उ० कलित कला कांति अति भाँति कछु तिन्ह तनी । (गी० ११५)

तनी (२)-(सं० तनिका)-अंगरखा आदि बाँधने की डोरी, बँदी ।
तनु-शरीर को । उ० शंखे द्वाभमतीव सुंदर तनु शादूल चमीम्बर । (मा० ६१११७०२) तनु-(सं०)-१. शरीर, देह; २. दुबला, कृश, ३. चमड़ा, खाल, ४. केचुली, ५. कोमल, ६. सुंदर, ७. थोड़ा, अल्प, ८. विस्तार, ९. दिशा, ओर, १०. सूक्ष्म, ११. स्त्री, १२. ज्योतिष में अग्र-स्थान । उ० १. अवध तजे तनु नहि संसारा । (मा० ११ ३५१२) ६. धोए मिटे न, मरै भीति-दुख, पाइयं यहि तनु हेरे । (वि० १११)

तनुजा-(सं०)-कन्या, बेटा । उ० नहि मानत कौ अनुजा तनु जा । (मा० ७११०२१३)

तनुरुह-(सं० तनूरुह)-बाल, रोम, रोआँ ।
तनु (१)-(सं०)-शरीर, देह ।
तनु (२)-(सं० तनु)-थोड़ा, कम ।
तनुजो-(सं० तनूज)-बेटा, लड़का । उ० मीत पुनीत कियो कपि भाखु को, पाख्यो ज्यो काहु, न, बाल तनुजो । (क० ७१५)

तनै-(सं० तनय)-पुत्र, बेटा । उ० कोउ उलटो कोउ सुधो जपि भए राजहंस बायस-तनै । (६१४०)

तनोति-विस्तृत करता है, विस्तार करता है । उ० स्वातः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथाभाषानिबन्धमति मंजुल

मा तनोति । (मा० १११२खो०७) तनोतु-विस्तार करें, फैलावे । उ० संतत शंतनोतु मन रामः । (मा० ३१११८)

तनोरुह-(सं० तनूरुह)-बाल, केश, रोम, रोआँ । उ० अनुज सहित अति पुलक तनोरुह । (मा० ७१५१२)

तन्मय-(सं०)-लीन, मग्न, निरत, लगा हुआ ।
तप (१)-(सं० तपस्)-१. शरीर को कष्ट देनेवाले वे व्रत-नियम आदि जो चित्त की शुद्धि तत्त्वज्ञान तथा ब्रह्म की प्राप्ति आदि के लिए किए जाते हैं । तपस्या । २. शरीर या इंद्रिय को वश में रखने का धर्म, ३. नियम, ४. अग्नि, ५. एक लोक का नाम, ६. एक कल्प का नाम । उ० १. कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग, रे ! (वि० ६७) तपहि-तप में, तपस्या में । उ० बिसरी देह तपहि मनु लागा । (मा० ११७४१२)

तप (२)-(सं०)-१. ताप, गरमी, २. ग्रीष्म ऋतु, ३. बुझार, ज्वर ।
तपइ-(सं० तप)-तपता है, जलता है, जलने लगा । उ० तपइ अवाँ इव उर अधिकाई । (मा० ११५८२) तपत-१. तपता है, जलता है, २. कष्ट सहता है, मुसीबत झेलता है, ३. प्रभुत्व दिखलाता है, आतंक फैलाता है, ४. गर्म, तपा हुआ । उ० १. तुलसी तपत तिहुँ ताप जग, जनु प्रभु छठी छाया लही । (गी० ११५) तपिहै-तपेगा, जलेगा । उ० तौ लौ तू कहुँ जाय तिहुँ ताप तपिहै । (वि० ६८)

तपन-(सं०)-१. ताप, दाह, जलन, आँच, २. तेज, ३. सूर्य, ४. गरमी, ग्रीष्म, ५. घाम धूप, ६. सूर्यकांत मणि, सूरजमुखी, ७. एक नरक का नाम, ८. मंदार, आक । उ० २. तपन तीछन तरुन, तीव्रतापन्न तपरूप तनुभूप तमपर तपस्वी । (वि० ५५) तपनि-दाह, गर्मी, जलन । उ० तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान । (वै० २१)

तपशालि-(सं० तपःशालिन्)-तपशाली, तपस्वी । उ० आप मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपशालि । (मा० ११ ३३०)

तपसिन्ह-तपस्वियों, मुनियों । उ० मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती । (मा० ११४१३) तपसी-(सं० तपस्वी)-तप करनेवाला, तपस्वी । उ० तपसी धनवंत दरिद्र गृही । (मा० ७११०१११)

तपस्या-(सं०)-तप, व्रतचर्या, तपश्चर्या । उ० मूरतिमंत तपस्या जैसी । (मा० ११७८१)

तपस्वी-(सं० तपस्विन्)-जो तप करता हो, तपस्या करनेवाला । उ० तपन तीछन तरुन, तीव्र तापन्न तपरूप तनुभूप तमपर तपस्वी । (वि० ५५)

तपित-१. गर्म, तप्त, जला हुआ, २. आग ।
तपी-तप करनेवाला, तपस्वी, योगी । उ० द्विज चिन्ह जनेउ उचार तपी । (मा० ७११०११४)

तपु-तप, तपस्या । उ० आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू । (मा० २११०७३)

तपोधन-जिनका धन तप है, तपस्वी, तपी । उ० सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनि बृंद । (मा० १११०५)

तप्त-१. तपाया, जलाया, २. तपस्या में तपाया । उ० २.

तेन तसं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं ।
(वि० ४६) तस- (सं०)-१. तपाया या तपा हुआ, जलता
हुआ, गर्म, २. दुखी, पीड़ित । उ० १. तस कांचन-वक्ष
शस्त्रविद्या-निपुण सिद्ध सुर-सेन्य पाथोज नाभं । (वि०
५०)

तब-(?) १. उस समय, उस वक्त, २. इस कारण, इस
वजह से । उ० १. तुलसिदास भव त्रास मिटै तब जब मति
यहि सरूप अटकै । (वि० ६३) तबहिं-उसी समय, तब
ही । उ० तबहिं ससरिषि सिव पहिं आए । (मा० १।
७७।४) तबहीं-तभी, उसी समय । उ० हठ परि हरि घर
जाएहु तबहीं । (मा० १।७५।२) तबहुं-तब भी, उस समय
भी । उ० तबहुं न बोल चेरि बड़ि पापिनि । (मा० २।
१३।४) तबहुं-तब भी, तभी, उसी समय । उ० चलोहुं
प्रसंग दुराएहु तबहुं । (मा० १।१२।७।४) तबैहीं-तभी,
तब ही । उ० तुम अपनायो हौं तबैहीं परि जानिहौं ।
(क० ७।६३)

तमः-अंधकार । उ० मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरतं स्वान्त
स्तमः शांतये । (मा० ७।१३।१ श्लो० १) तम (?) -
(सं० तमस्)-१. अंधकार, अंधेरा, २. अज्ञान, अविवेक,
३. क्रोध, गुस्सा, ४. राहु, ५. पाप, ६. सुअर, वाराह, ७,
कालिमा, श्यामता, ८. नरक, ९. तमाल वृक्ष, १०. तीनों
गुणों में से एक, तमोगुण, ११. शोक, शोच, १२.
अशांति । उ० १. कबहुं दिवस महँ निबिड़ तम कबहुं क
प्रगत पतंग । (मा० ४।१५ ख) २. नखदुति भगत हृदय
तम हृना । (मा० १।१०।६।४)

तम (२)- (सं०)-एक प्रत्यय जो 'अत्यंत' अर्थ में विशेषण
शब्दों के अंत में लगता है । जैसे सुन्दरतम = अत्यंत
सुन्दर, सबसे सुन्दर ।

तम (३)- (सं०)-उसको । उ० तमेकमद्भुतं प्रभुं । (मा० ३।
४। छं० ६)

तमकि-(अनु० तमकना)-क्रोध का आवेश दिखलाकर,
त्योरियाँ चढ़ाकर, तमककर, तमतमाकर । उ० सो सुनि
तमकि उठी कैकेई । (मा० २।७६।१) तमके-१. गर्म हुए,
२. गर्जे, ३. वेग से रूपटे । उ० १. तमके धननाद से बीर
पचारि कै, हारि निसाचर सैन पचा । (क० ६।१५)
तमकयो-क्रोधित हुआ । उ० यों मन गुनति दुसासन दुर-
जन तमकयो तकि गहि दुहुं कर सारी । (क० ६०)

तमकूप-बिना पानी का कूआँ, अंधा कूआँ । उ० जानत
अर्थ अनर्थ-रूप, तमकूप परब यहि लागे । (वि० ११७)

तमचुर-(सं० ताम्रचूड)-सुरगा, कुकुट । उ० तमचुर सुखर,
सुनहु मेरे प्यारे ! (गी० १।३३)

तमसा-(सं०)-तैस नाम की नदी विशेष । उ० तमसा तीर
तुरत रथु आवा । (मा० २।१४।१)

तमा (१)-(सं० तमस्)-१. राहु, २. लोभ, लालच ।

तमाइ (१)-लोभ, लालच । उ० जापकी न, तप खप
कियो न तमाइ जोग । (क० ७।७७) तमाहि-तम
ही, लालच ही । उ० तुलसी तमाहि ताहि काहु बीर
आन की । (ह० १३)

तमा (२)-(सं०)-रात, रजनी ।

तमाइ (२)-(?)-तैयार होकर, सज्ज होकर ।

तमारि-(सं०)-सूर्य, अंधेरे का शत्रु ।

तमारी-दे० 'तमारि' । उ० गनप गौरि तिपुरारि तमारी ।
(मा०।२।२७३।२)

तमाल-(सं०)-१. एक वृक्ष विशेष, जो आबनूस की तरह
काला होता है । २. एक प्रकार की तलवार, ३. काले
कथे का पेड़, ४. मोरपंखी, ५. वरुण वृक्ष, ६. चंदन का
टीका । उ० १. तरुन तमाल बरन तनु सोहा । (मा०
२।११।३)

तमाला-दे० 'तमाल' । उ० १. पाकरिजंभु रसाल तमाला ।
(मा० २।२३।१)

ताम-(सं० तमी)-रात, निशा, यामिनी । उ० भानु गोत्र
तमि तामु पति कारन अति हित जाहि । (सं० २।५६)

तमी-(सं०)-अंधेरी रात, रात । उ० तहँ न मोह भय-तम
तमी, कलि कज्जली-बिलास । (दो० ५७।१)

तमीचर-(सं०)-रात में घूमनेवाले, राक्षस, निशाचर ।
उ० मिटे घटे तमीचर तिमिर भुवन के । (क० ६।३)

तमोगुण-१. ३ गुणों में से एक, सांख्य शास्त्रानुसार
प्रकृति का तीसरा गुण जो भारी और रोकनेवाला माना
गया है । जिस व्यक्ति या जीव में इस गुण की अधिकता
होगी वह बुराईयों की ओर झुकेगा । २. अंधेरा, अज्ञान,
तमस् ।

तरंग-(सं०)-१. लहर, हिलोर, मौज, २. चित्त की मौज,
आनंद, मस्ती, ३. उत्साह, ४. संगीत के स्वरों का उतार-
चढ़ाव, ५. वस्त्र, कपड़ा । उ० १. पावन गंग तरंग माल
से । (मा० १।३२।७) २. नार्चाहि नाना रंग, तरंग बड़ा-
वहिं । (पा० १०४)

तरंगा-दे० 'तरंग' । उ० १. रामु बिलोकहि गंग तरंगा ।
(मा० २।८।३)

तरंगिण-दे० 'तरंगिणि' ।

तरंगिणि-(सं० तरंगिणी)-तरंगवाली, नदी, सरिता । उ०
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिणि । (मा० १।३१।४)

तरंगा-मौजी, मनमौजी, जो जी में आवे, वही करनेवाला,
मस्त । उ० नार्चाहि गावहि गीत परम तरंगी भूत सब ।
(मा० १।६३)

तरंति-(सं०)-तर जाते हैं, पार कर जाते हैं । उ० १. हरि
नरामजंति येऽतिदुस्तरं तरंति ते । (मा० ७।१२२ ग)

तर (१)-(सं०)-१. (क) तरना, पार करना, पार करने की
क्रिया, (ख) पारकर, तरकर, (ग) तरता है, २. अग्नि,
३. वृक्ष, ४. रास्ता, मार्ग, ५. गति, ६. पीछे, ७. कठिन,
८. महान् । उ० १. (ग) गाइ राम गुन-गन बिमल
भव तर बिनहि प्रयास । (दो० ५६२) तरत-१.

तर जाता है, पार होता है, मुक्त हो जाता है, २.
तर रहे हैं, ३. तर गए, ४. तरते हुए, ५. तरने में, पार
करने में । उ० ५. यह लघु जलधि तरत कति बारा ।
(मा० ६।१।१) तरन-१. तरनेवाला, मुक्त होनेवाला, पार
करनेवाला, २. पार करना, तरना, ३. उच्चार, निस्तार,
४. बेड़ा, पानी का बेड़ा, ५. स्वर्ग, ६. तारनेवाला । उ०

१. होत तरन तारन नर तेऊ । (मा० २।२१।७।२) तरहिं-
तरते हैं, तर जायेंगे । उ० सादर सुनिहि ते तरहिं भव-
सिंधु बिना जल जान । (मा० ५।६०) तरहि-तर जायगा,

मुक्त हो जायगा। उ० तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि। (वि० २३७) तरहीं-तर जाते हैं। उ० सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। (मा० ११२२११) तरिए-तर जाऊँ, तर्हंगा। उ० जानत हूँ मन बचन कर्म पर हित कीन्हें तरिए। (वि० १८६) तरिगे-तर गए, मुक्त हो गए। उ० अनायास भवनिधि नीच नीके तरिगे। (गी० २।३२) तरित-तरता, पार जाता। उ० घोर भव अपार-सिंधु तुलसी कैसे तरित ? (वि० १६) तरिबे-तरना, पार उतरना। उ० हमहूँ निडर-निरुपाधि-नेह निधि निज भुज-बल तरिबे हो। (क० ३६) तारंय १. तरिए, पार उतरिए, २. पार होता हूँ, उतरता हूँ, ३. तरेगा, पार होगा। उ० ३. करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहि जब लगि करहु न दाया। (वि० ११६) तारेहउँ-तर जाऊँगा। उ० पद पंकज बिलांकि भव तरिहउँ। (मा० ७।१८।४) तरिहहि-तरेंगे, तर जायेंगे। उ० गाइ-गाइ भवनिधि नर तरिहहि। (मा० ६।६।२) तरिही-तर जायगा। उ० सो बिनु अम भवसागर तरिही। (मा० ६।३।२) तरी (१)-तर गईं, मुक्त हो गईं। उ० जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी। (मा० ७।१३। छं० ४) तरे (१)-पार उतरे, पार हुए, तैरे। उ० श्री रघुबीर-प्रताप तें सिंधु तरे पापान। (दो० १२६) तरै-तरै, पार करे, तर जाय। उ० जो न तरै भवसागर। (मा० ७।४४) तरो-तर जाय, पार हो जाय। उ० राम-नाम बोहित भवसागर, चाहै तरन तरो सो। (वि० १७३) तरौ-तर जाऊँ, पार हो जाऊँ। उ० तुलसिदास प्रभु-कृपा-बिलोकनि गोपद ज्यों भवसिंधु तरौ। (वि० १४१) तरथो-तर गया, तर गया था। तर (२)-(फ़ा०)-१. भीगा, गीला, २. शीतल, ठंडा, ३. हरा। तर (३)-(सं० तल)-तले, नीचे। उ० एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। (मा० १।१०।६।२) तर (४)-(सं०) एक प्रत्यय जो विशेषणों में दूसरे की अपेक्षा आधिक्य सूचित करने के लिए लगाया जाता है, जैसे श्रेष्ठतर। उ० अमत आमोद बस मत्त मधुकर-निकर मधुरतर सुखर कुर्वन्ति-गानं। (वि० ५१) तरक-दे० 'तर्क'। उ० ३. तासु तरक तिनगन मन मानी। (मा० २।२२।३) तरकस-(फ़ा० तरकश)-तीर रखने का चोंगा, तुषीर। उ० सन तरकस से जात हैं, स्वास सरीखे तीर। (स० १२०) तरकसा-छोटा तरकश। उ० धरे धनु सर कर, कसे कटि तरकसी, पीरे पट ओढ़े चले चारु चालु। (गी० १।४०) तरका-तर्क करके, हुज्जत करके। उ० परहिजे दूषहिं खु ति करि तरका। (मा० ७।१००।२) तरकि (१)-(सं० तर्क)-१. तर्क कर, हुज्जत कर। उ० १. तरकि न सकहिं सकल अनुमानी। (मा० १।३४।१४) तरकी-तर्क की, विचार की। उ० प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी। (मा० २। २८।६।६) तरकि (२)-(अनु० तरकना)-उछलकर, कूटकर। उ० सुमिरि राम, तकि तरकि तोयनिधि लंक लूक सो आयो। (गी० १।१) तरकेउ (१)-(अनु० तरकना)-कूदा,

उछला। उ० तरकेउ पवन तनय बल भारी (मा० १। १।३) तरकि (२)-(अर० तर्क=छोड़ना, त्याग)-छोड़कर, त्यागकर। उ० मोह बस बैठो तोरि तरकि तराक हौ। (ह० ४०) तरकेउ (२)-(ध्व० तर्कना)-तड़का, दूटा, चटक गया। तरज-(सं० तर्जन)-१. तड़प, डाँट, डपट, २. डाँटकर, डपट कर। तरजत-१. तड़पता है, गरजता है, २. तरजना, तड़पना। तरजति-डाँटती है, धमकाती है। उ० गरजति कहा तरजभिन्ह तरजति बरजति सैन नयन के कोए। (क० ११) तरजि-तरजकर, तड़पकर, डराकर। उ० उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर। (दो० २८३) तरजि-डाँट दीजिए, डाँटिए। उ० सख बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है। (वि० १३६) तरजी-१. डाँटा, तर्जन किया, निरादर किया, २. तड़पकर उत्तर दिया, ३. मना किया। उ० २. नहिं जान्यों बियोग सो रोग है आगे सुकी तब हौं, तेहि सौं तरजी। (क० ७।१३।३) तरजन-तर्जन, डाँट, फिड़की। तरजनी-(सं० तर्जनी)-अँगूठे के पास की उँगली। उ० सख बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है। (वि० १३६) तरजभिन्ह-तर्जनियों से, अँगूठे के पास की उँगली से। उ० गरजति कहा तरजभिन्ह तरजति बरजति सैन नयन के कोए। (क० ११) तरण-(सं०)-१. नदी के पार जाना, पार होना, २. उद्धार, निस्तार, ३. पानी पर तैरनेवाला तख्ता, बेड़ा, ४. स्वर्ग, ५. मुक्ति पानेवाला, मुक्त, तैर जानेवाला, पार करनेवाला। उ० ५. जयति संग्राम-सागर-अयंकर-तरण-रामहित-करण बरबाहु-सेतू। (वि० ३८) तरणि-(सं०) १. सूर्य, भानु, २. नाव, नौका, तारनेवाली, पार करनेवाली, ३. उद्धार, ४. तरना, पार करना। तरणी-दे० 'तरणि'। तरनि दे० 'तरणि'। उ० १. भजहु तरनि-अरि-आदि कहँ तुलसी आत्मज अंत। (स० २२७) २. सवन-सुख करनि भवसरिता तरनि, गावत तुलसिदास कीरति पवनि। (गी० ३।५) तरनिउ-नाव भी, नौका भी। उ० तरनिउ मुनि धरिनी होइ जाई। (मा० २।१००।३) तरनिहि-सूर्य को, तरणि को। उ० तिमिर तरन तरनिहि मकु गिलई। (मा० २।२३।२।१) तरनिसुता-(सं० तरणिसुता)-यमुना, रविनंदिनी। उ० विधि उलटी गति राम की तरनिसुता अनुमान। (स० ४०२) तरनी-(सं० तरणि)-१. नौका, २. सूर्य, ३. तरने की वस्तु। उ० १. चढ़त मत्तगज जिमि लघु तरनी। (मा० ६।२५।४) २. भे पुनीत पातक तम तरनी। (मा० २।२४।१) तरपन-दे० 'तर्पण'। उ० तरपन होम करहिं विधि नाना। (मा० २।१२।६।४)

तरपहिं-तड़पते हैं, गर्जते हैं ।
 तरल-(सं०)-१. हिलता-डोलता, चंचल, २. क्षयभंगुर, अस्थिर, ३. द्रव, पानी की तरह पतला, ४. चमकीला, ५. पोला, खोखला, ६. हार के बीच की मणि, ७. हार, ८. हीरा, ९. लोला, १०. घोड़ा, ११. तल, पैदा ।
 उ० १. तरल-तृण्य-तमी-तरणि धरनीधरन सरन-भय-हरन करुनानिधानं । (वि० ५४)
 तरवारि-(सं०) तलवार, खंग । उ० मनहूँ रोष तरवारि उचारी । (मा० २।३।११)
 तरसखा अत्यंत मित्र, अच्छा मित्र, सच्चा मित्र ।
 उ० सो स्वामी सो तरसखा सो बर-सुखदातार । (स० ६०६)
 तरसत-तरस रहे हैं, ललच रहे हैं । उ० हम पँख पाइ पाँजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो । (गी० २।६६)
 तरस्यो-तरसा, ललचा । उ० ल्यों रघुपति-पद-पदुम परम को तनु पातकी न तरस्यो । (वि० १७०)
 तराक-(ध्व० तड़ाक)-चट से, तड़ाक से । उ० मोह बस बैठी तोरि तरकि तराक हौं । (ह० ४०)
 तरि-(सं० तरी) नाव, नौका । उ० बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि बिनु बेरे । (वि० २७३)
 तरी (२)-(सं०) नौका, नाव ।
 तरीवन-(सं० ताड, हिं ताड, तरिवन)-कान का एक गहना, कर्णफूल । उ० काने कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो । (रा० ११)
 तर-(सं०)-१. पेड़, वृक्ष, २. यमलार्जुन का पेड़, ३. कल्प-वृक्ष । उ० १. हेमलता जनु तरु तमाल दिग नील निचोल ओढ़ाई । (वि० ६२) ३. महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ । (वै० ३५) तरुजांवी-वृक्ष से जीविका प्राप्त करनेवाले । तरुहिं-पेड़ में, वृक्ष में । उ० जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबुरहिं लागई । (मा० १।६६। छं० १) तरुहिं-पेड़ से, वृक्ष से । उ० कनक तरुहिं जनु भेंट तमाला । (मा० ३।१०।१२) तरो:-वृक्ष का, पेड़ का । उ० मूलं धर्मतरोर्विवेक जलधेः पूर्णन्दुमानन्ददं । (मा० ३।१। श्लो० १)
 तरुण-(सं०)-१. जवान, युवा, २. नवीन, नूतन, ३. प्रफुल्लित, ४. बड़ा ज़ीरा, ५. रेंड, ६. मोतिया । उ० २. तरुण रमणीय राजीव लोचन बदन राकेश, करनिकर हासम् । (वि० ६०)
 तरुणी-(सं०) युवती, जवान स्त्री ।
 तरुन-दे० 'तरुण' । उ० ३. उरग-नायक-सयन, तरुन-पंकज-नयन, चौर सांगर-अयन सर्वदासी । (वि० ५५)
 तरुनतमी-पूर्ण अंधेरी रात । उ० ममता तरुनतमी अंधि-आरी । (मा० ५।४७।२) तरुनतर-अधिक तरुण, बिल्कुल ताज़ा । उ० सरदभव सुंदर तरुनतर अरुन बारिज-बरन । (वि० २१८)
 तरुनता-तरुणाई, तरुनाई, जवानी, यौवन । उ० तौ तोहिं जनमि जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गँवाई । (वि० १६४)
 तरुनाई-जवानी, यौवन, तरुणाई । उ० बिधवा होइ पाइ तरुनाई । (मा० ३।५।१०)

तरुनी-दे० 'तरुणी' । उ० नृप किरिटी तरुनी तनु पाई । (मा० १।११।१)

तरे (२)-(सं० तल) नीचे, तले ।

तरेरी-तरेर कर, आँखें दिखाकर । उ० कहत दसानन नयन तरेरी । (मा० ६।२।२) तरेरे-(सं० तर्ज = डाटा + हिं० हेरना = देखना) त्वौरी चढ़ाकर देखे, घूरे, आँख दिखाए, कुपित दृष्टि से देखा । उ० सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम । (मा० १।२७८)

तर्क-(सं०)-१. विचार, २. वादविवाद, दलील, ३. युक्ति, ४. चमत्कारपूर्ण उक्ति, चतुराई भरी बात, सुन्दर उक्ति, ५. व्यंग्य, ताना । उ० २. रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी । (मा० ६।७।१)

तर्कि-तर्ककर, विचार कर । उ० तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी । (मा० ६।७।१)

तर्क्य-जिस पर कुछ सोच-विचार किया जा सके, विचार्य ।
 तर्जत-(सं० तर्जन)-ललकारता हुआ, तर्जन करता हुआ ।
 उ० गर्जत तर्जत सन्मुख धावा । (मा० ६।६०।१)

तर्जहिं-ललकारते हैं । उ० गर्जहिं तर्जहिं गगन उडाहीं । (मा० ३।१८।४) तर्जहीं-ललकारते हैं । उ० नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुविधि एक एकन्ह तर्जहीं । (मा० ५।३। छं० २) तर्जा-गरजा, गर्जन किया, धमकाया, ललकारा । उ० भिरे उभौ बाली अति तर्जा । (मा० ४।८।१)

तर्जन-(सं०)-१. धमकाने का कार्य, भय-दर्शन, २. क्रोध, गुस्सा, ३. तिरस्कार, फटकार, डाँट-डपट । उ० ३. तर्जन क्रोध लोभ मद कामः । (मा० ३।१।८)

तर्जनी-(सं०)-अँगूठे के पास की अँगुली ।

तर्पण-(सं०)-कर्मकांड की एक क्रिया जिसमें देव, ऋषि, और पितरों को संतुष्ट करने के लिए हाथ या अरवे से पानी देते हैं ।

तर्पन-दे० 'तर्पण' । उ० तात न तर्पन कीजिए बिना बारि-धर-धार । (दो० ३०४)

तर्ष-(सं०) १. असंतोष, तृष्णा, २. अभिलाषा, ३. बेड़ा, ४. समुद्र, ५. सूर्य । उ० १. लोक संदेह भय हर्षतम तर्ष-गण साधु-सद्युक्ति विच्छेदकारी । (वि० ५७)

तर्षण-(सं०)-१. प्यास, पिपासा, २. इच्छा, अभिलाषा ।

तल-(सं०)-१. पैदा, तला, नीचे का भाग, २. गढ़वा, ३. पृष्ठदेश, सतह, ४. आधार, सहारा, ५. सात पातालों में से पहला, ६. स्वभाव, ७. स्वरूप, ८. हथेली, करतल, ९. पैर का तलुआ । उ० ३. परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि । (मा० २।११०)

तलफत-१. कष्ट में तड़पती हुई, २. तड़पती है । उ० १. तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि । (मा० २।१५४) तलफति-(अर० तलफ) कष्ट देता है, पीड़ित करता है, नष्ट करता है, बर्बाद करता है । उ० कनक-कराही लंक तलफति ताय सौं । (क० ५।२४) तलफि-तड़पकर, कष्ट पाकर । उ० मीन जल बिनु तलफि तनु तजै, सलिल सहज असंग । (क० ५४)

तलाई-(सं० तल्ल, हिं ताल)-छोटे तालाब, बावलियाँ । उ० संगम करहिं तलाब तलाई । (मा० १।५।१)

तलाब-(सं० तल्ल)-तालाब, बड़े ताल । उ० संगम करहिं
तलाब तलाई । (मा० १।२।१)
तलावा-दे० 'तलाब' । उ० देखि राम अति रुचिर तलावा ।
(मा० ३।४।१।१)
तलु-दे० 'तल' । उ० ३. काम दमन कामता-कल्पतरु सो
जुगजुग जागत जगतीतलु । (वि० २४)
तल्प-(सं०)-१ शय्या, पलंग, सेज, २. अट्टालिका, अटारी ।
उ० १. सत्य संकल्प अतिकल्प कल्पांत कृत कल्पनातीत
अहि तल्पवासी । (वि० ५४)
तव-(सं०)-तुम्हारा, आपका । उ० तरै तुलसीदास भव
तव-नाथ-गुनगन गाइ । (वि० ४१)
तवा-(सं०) ताप, हि० तवना) लोहे का गोल छिड़ला बर्तन
जिस पर रोटी सेंकते हैं । उ० तुलसी यह तनु तवा है,
तपत सदा त्रय ताप । (वै० ६)
तस-(सं०) तादृश-तैसा, वैसा । उ० तस फलु उन्हहि
देउं करि साका । (मा० २।३।३।४) तसि-तैसी, वैसी । उ०
तसि मति फिरी अहइ जस भावी । (मा० २।१।७।१)
तसकर-(सं०) तस्कर) चोर, डाकू ।
तस्कर-(सं०)-चोर, चुरानेवाला । उ० लूटहि तस्कर तब
धामा । (वि० १२५)
तहँ-दे० 'तहाँ' । उ० तहँ तहँ तू विषय-सुखहिं चहत, लहत
नियत । (वि० १३२) तहँई-वहाँ, उसी जगह । उ०
तहँई मिले महेश, दियो हित-उपदेस । (गी० १।२।७)
तहँउं-वहाँ भी । उ० तहँउं तुम्हारे अलप अपराधु । (मा०
२।२०।७।४) तहँहुँ-वहाँ भी, उस जगह भी । उ० तहँहुँ
सती संकरहि बिबाहीं । (मा० १।१२।३)
तहँवाँ-वहाँ, उस स्थान पर । उ० करि सोइ रूप गयउ
पुनि तहँवाँ । (मा० १।२।३)
तहस-नहस-(?) बर्बाद, नाश, चौपट । उ० तहस-नहस
'कियो साहसी समीर को । (क० १।२)
तहाँ-(सं०) तत्स्थाने-वहाँ, उस स्थान पर । उ० यह
सामर्थ्य अद्भुत मोहि त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो । (वि०
१४) तहाँऊं-वहाँ भी, उस जगह भी । उ० तहाँऊं
कुवालि कलिकाल की कुरीति कैधौं । (क० ७।१।७।१)
तहीं (२)-(सं०) तत्स्थाने-वहीं, उसी जगह । उ० दुख
सुख जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं ।
(मा० १।१७।७।१) तहँ (२)-वहाँ भी, उस जगह भी ।
उ० तहँ गए मद मोह लोभ अति सरगहँ मिटति न
सावत । (वि० १२५)
तहिआ-उस दिन, तब । उ० धरिहहिं बिन्नु मजुज तनु
तहिआ । (मा० १।१३।६।३)
तहीं (१)-(सं०) तव + हि० ही)-तहीं, तुम्हीं । उ० अंगद
तहीं बालि कर बालक । (मा० ६।२।१।३) तहँ (१)-तू भी,
तुम भी । उ० बोले भृगुपति सरुष हैंसि तहँ बंभु सम
बाम । (मा० १।२।२२)
तांडव-(सं०)-शिव का नृत्य, इसे लास्य के विरुद्ध पुरुषों
का नृत्य माना जाता है । तांडव में उच्चल-कूद अधिक
रहती है ।
तांडवित-तांडव करते हुए, तांडव नृत्य में मग्न । उ० तांड-
वित-नृत्य पर, डमरु-डिमडिम प्रवर । (वि० १०)

ताँति-(सं०) तंतु)-१. पशुओं की अंतर्ही आदि को बटकर
बनाया गया सूत, ताँत, २. धनुष की प्रत्यंचा, कमान की
डोरी ।
ताँती-दे० 'ताँति' । उ० १. बाज सुराग कि गाँडर ताँती ।
(मा० २।२।४।३)
ताँबा-(सं०) ताम्र) एक लाल रङ्ग की धातु । ताँबे-ताँबा
धातु । उ० ताँबे सौं पीठि मनहँ तनु पायो ।
(वि० २००)
तांबूल-(सं०)-१. पान, पान का बीड़ा, २. सुपारी । उ०
१. प्रेम तांबूल, गतसूल संसय सकल, बिपुल-भंव बासना-
बीज हारी । (वि० ४७)
ता (१)-(सं०) तद्-वह, उस, तिस । उ० प्रिय पितु मातु
प्राण सम जाके । (मा० २।४।१) तापर-१. तिस पर,
उस पर, २. उस पर भी । उ० १. तापर सानुकूल गिरिजा,
हर, लषन, राम अरु जानकी । (वि० ३०) २. तापर
मोकों प्रभु करि चाहत, सब बिनु दहन दहा है । (गी०
२।६।४)
ता (२)-(फा०)-पर्यंत, तक ।
ता (३)-(सं०)-एक भाववाचक प्रत्यय जो संज्ञा तथा
विशेषण शब्दों के अंत में लगाया जाता है । जैसे शत्रुता,
उत्तमता ।
ताइ (१)-(सं०) ताप)-तपाकर, गर्म करके । उ० और भूप
परलि सुलाखि तौलि ताइ लेत । (क० ७।२।४) ताए (१)-
(सं०) ताप)-१. तपाया, गर्म किया, २. दुःख दिया,
सताया । उ० १. नाथ बियोग ताप तन ताए । (मा०
२।२२।६।२) २. प्रभु, प्रताप-रवि अहित अमंगल-
अघ-उलूक-तम ताए । (गी० ६।२।२) ताय (१)-
(सं०) ताप)-१. जलाकर, गर्मकर, २. ताप, गर्मी,
घाम, धूप, ३. क्रोध, ४. गर्व, घमंड, ५. कष्ट, ६.
दैनिक, दैनिक तथा भौतिक तीन दुःख । उ० ६. राम
बिमुख सुख लबो न सपनेहुँ, निसि बासर तयो तिहुँ
ताय । (वि० ८३) ६. तुलसी जागे तें जाइ ताप तिहुँ ताय
रे । (वि० ७३) तायो (१)-(सं०) ताप)-१. जाँचा, २.
तपाया, ताव दिया, ३. तपाए हुए । उ० १. स्वप्न नयन
मन मन लगे सब थलपति तायो । (वि० २७६)
ताइ (२)-(?)-तोपकर, छिपाकर । ताई (१)-तोपी हुई,
ढकी हुई । ताए (२)-छिप गए, आँखों से ओझल हो
गए । उ० प्रभु प्रताप-रवि अहित-अमंगल-अघ-उलूक तम
ताए । (गी० ६।२।२) तात्रों-तोपता हूँ, ढकता हूँ,
छिपाता हूँ । ताय (२)-१. तोपने या छिपाने की क्रिया,
२. ढककर । तायो (२)-छिपाया ।
ताई (२)-(सं०) ताप)-१. हलका बुझार, मंद ज्वर, २.
तपाया, गरमाया ।
ताउ-(सं०) ताप)-१. आँच, गर्मी, २. घमंड लिए हुए गुस्से
की झोंक, ताव । मु० लाइ गए ताव-क्रोधित हो गए ।
उ० भवधनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गए ताउ ।
(वि० १००)
ताकत (१)-(अर०) ताकत)-बल, ज़ोर, शक्ति ।
ताकत (२)-(सं०) तर्कण)-देखता है, देखता फिरता है ।
उ० ताकत सराध के बिबाह के उच्चाह कछु । (क० ७।

१४८) ताकहि-१. देखते हैं, २. ताक में रहते हैं। उ० २. जे ताकहि पर धनु पर दारा। (मा० २।१६८।२) ताका-१. देखा, अलोकन किया, २. विचारा, सोचा, ३. चाहा, इच्छा की। उ० ३. जेहि राउर अति अनभल ताका। (मा० २।२१।३) ताकि-१. देखकर, निहारकर, २. निशाना लगाकर। उ० १. तुलसी तमकि ताकि भिरे भारी जुद्ध कृद्ध। (क० ६।३१) ताकिसि-देखा, सोचा। उ० तब ताकिसि शयुनायक सरना। (मा० ३।२६।३) ताकिहै-ताकेगा, देखेगा, देख सकेगा। उ० ताकिहै तमकि ताकी और को। (वि० ३१) ताकी (१)-(सं० तर्कण)-१. देखी, निहारी, २. देखकर, विचारकर। उ० २. कुटिल कुबंछु कुअवसर ताकी। (मा० २।२२।२) ताके-१. देखने से, २. चाहने से, ३. देखते। उ० २. कबहुँ कि दुख सब कर हित ताके। (मा० ७।११२।१) ३. नरपति सकल रहहि हख ताके। (मा० २।२५।१) ताके (१)-(सं० तर्कण)-देखे, विचारे। उ० जो सुनि सरन राम ताके में निज वामता बिहाइ कै। (गी० १।२८) ताकेउ-देखा, देखा है, ताका है। उ० लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हर को-दुहु। (मा० १।२५।१) ताके (१)-(सं० तर्कण)-१. देखने से, २. देखे, देखते हैं। ताको (१)-१. देखो, विचारो, २. विचारा है। उ० १. साखी बेद पुरान है तुलसी तन ताको। (वि० १।२२)

ताकी (२)-उसकी। उ० ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की। (वि० ३०) ताके (२)-उसके, उस व्यक्ति के। ताके (२)-उसके यहाँ, उसके पास। ताको (२)-१. उसको, २. उसका। उ० २. ताको कहाय, कहै तुलसी, चल जाहि न माँगत कृकुर कौरहि। (क० ७।२६)

ताग-(सं० तार्कव, प्रा० तागो, हि० तागा)-डोरा, सूत, तार। उ० जुगति बेधि पुनि पोहिअहि रामचरित बर-ताग। (मा० १।११)

ताज-(अर०)-१. बादशाह की टोपी, राजमुकुट, २. कलगी, मुर्दा।

ताजी-(फ़ा० ताज़ी)-१. नवीन, जो कुम्हलाया या पुराना न हो, २. अरब में पाये जानेवाले घोड़ों की एक नस्ल, एक प्रकार के घोड़े। उ० २. पारावत मराल सब ताजी। (मा० ३।३८।३)

ताटक-(सं०)-कान में पहनने का एक गहना, कर्णफूल। उ० छत्र मुकुट ताटक तब हते एकहीं बान। (मा० ६।१३ क)

ताटका-दे० 'ताटक'। उ० मंदोदरी श्रवन ताटका। (मा० ६।१३।३)

ताड़का-(सं० ताडका)-एक राक्षसी। यह सुकेतु नामक एक वीर यक्ष की कन्या थी। सुकेतु ने तप द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्नकर यह बलवती कन्या प्राप्त की, जिसे हजार हाथियों का बल था। इसका विवाह सुंद से हुआ था। अगस्त्य ने एक बार क्रुद्ध होकर सुंद को मार डाला तो ताड़का अपने पुत्र मारीच के साथ उन्हें खाने दौड़ी। अगस्त्य ने उसे राक्षसी होने का श्राप दे दिया। तब से यह ताड़का वन में रहने लगी और मुनियों को तंग करने लगी। अंत में

विश्वामित्र ने राम को लाकर इसका वध करवाया। उ० सुनि ताड़का क्रोध करि धाई। (मा० १।२०।३)

ताड़त-(सं० ताडन)-१. मारता है, डाँटता है, २. मारते हुए, ताड़ना करते हुए। उ० २. सापत ताड़त परुष कहंता। (मा० ३।३४।१)

ताड़न-(सं० ताडन)-१. मार, प्रहार, आघात, २. घुड़की, धमकी।

ताड़ना-(सं० ताडन)-मार, दंड, घुड़की। उ० सकल ताड़ना के अधिकारी। (मा० १।५६।३)

ताड़िका-दे० 'ताड़का'।

ताड़ुका-दे० 'ताड़का'। उ० ख्याल दली ताड़ुका, देखि श्रुति देत असीस अघाई। (गी० १।५३)

तात (१)-(सं०)-१. पिता, बाप, २. पूज्य व्यक्ति, ३. प्यार का एक संबोधन, ४. मित्र। उ० १. काल कलि-पाप-संताप - संकुल-सदा-प्रनत - तुलसीदास तात-माता। (वि० २८)

तात (२)-(सं० तप्त)-गर्म, तपा हुआ। उ० लागिहि तात बयारि न मोही। (मा० २।६७।३) ताती-तात का स्त्रीलिंग। ताते (१)-गर्म, संतप्त। उ० पिय बिनु तिथिहि तरनिहु ते ताते। (मा० २।६१।२)

तातप्यमान-जलता हुआ, क्लेशित। उ० जरा जन्म दुःखोव तातप्यमान। (मा० ७।१०।२।श्लो० ८)

ताता (१)-दे० 'तात (१)'। उ० ३. मागहु बर प्रसन्न मैं ताता। (मा० १।१७।१)

ताता (२)-दे० 'तात (२)'।

ताति (१)-(सं०)-पुत्र, लड़का।

ताति (२)-(सं० तप्त)-तप्त, तात, गरम। उ० अति अनीति कुरीति भइ सुहँ तरनि हूँ तें ताति। (वि० २२।१)

तातें (१)-उससे, इसलिए, इसी कारण से। उ० तातें कछुक बात अनुसारी। (मा० २।१६।४) ताते (२)-उस कारण से, उसी से, इसीलिए। उ० नहिँ एकौ आचरन भजन को बिनय करत हौं ताते। (वि० १।६८)

तातें (२)-'त' अक्षर से। उ० बनतें गुन कहि जानिए तातें दिग दिग तीन। (सं० ३।१२)

तातो-तप्त, जलता हुआ। उ० तुलसी रामप्रसाद सों तिहुँ ताप न तातो। (वि० १।५१)

तान-(सं०)-१. तानने का भाव या क्रिया, खींच, फैलाव, विस्तार, २. संगीत का एक अंग, लय का विस्तार, आलाप। उ० २. करहिँ गान बहु तान तरंगा। (मा० १।१२।३)

तानत-(सं०)-१. तानते हुए, खींचते हुए, २. तानता है। उ० १. लख्यौ न चढ़ावत, न तानत, न तोरत हू। (गी० १।६०) तानि-तानकर, खींचकर। उ० तानि सरासन श्रवन लागि पुनि छुँडि निज तीर। (मा० ३।१६ ख)

तानिहँ-तानेंगे, ताननेवाले हैं, तानने में समर्थ हैं। उ० बय किसोर बरजोर बाहुबल मेरु मेलि गुन तानिहँ। (गी० १।७८) तानी-१. ताना, फैलाया, २. तानकर, ३. तानेंगे। उ० ३. कोपि रघुनाथ जब बान तानी। (क० ६।२०) ताने-खींचे, फैलाए, विस्तृत किए। उ० अति रिस ताकि श्रवन लागि ताने। (मा० १।८७।१) तानेउ-१. ताना,

खींचा, २. तानकर, खींचकर । उ० २. तानेउ चाप श्रवन लागि छुडि बिसिख कराल । (मा० ६।६१) तान्यो-विस्तृत किया, फैलाया । उ० निसि दिन अमत्त बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इन्द्रिन-तान्यो । (वि० ८८)

ताना-(सं०) तान=विस्तार)-१. कपड़े की बुनाई में वे सूत जो लंबाई में होते हैं । २. दरी आदि बुनने का करघा ।

ताप-(सं०)-१. आँच, दाह, गरमी, तेज, २. ज्वर, बुखार, ३. कष्ट, पीड़ा, ४. प्राकृतिक गर्मी, ५. दैहिक, दैविक और भौतिक नामक तीन प्रकार के दुःख । उ० ३. जयति वैराग्य-विज्ञान-वारानिधे नमत नमंद पाप-ताप-हर्त्ता । (वि० ४४) ५. तौलौं तू कहुँ जाय तिहुँ ताप तपिहै । (वि० ६८) तापघ्न-कष्टनाशक, दुःख का नाश करने-वाला । उ० तपन तीछन तरुन, तीअतापघ्न तपरूप तनु-भूप तम पर तपस्वी । (वि० ५५) तापहर्म-तापों को हरनेवाले की । उ० वैराग्यांजुज भास्करं ह्यव घन ध्वान्ता-पहं तापहर्म । (मा० ३।१। श्लो० १) तापहर-दुःख या जलन आदि को दूर करनेवाला । उ० त्रिविध तापहर त्रिविध बयारी । (मा० २।२४६।३) तापही-ताप को हरने-वाला । उ० बदन सुषमा सदन, हास प्रय-तापही । (गी० ७।६)

तापस-(सं०)-तप करनेवाला, तपस्वी, मुनि । उ० तापस बैष बनाह, पथिक पथै सुहाह । (क० २।१७) तापस अंध-श्रवणकुमार के पिता । कथा के लिए दे० 'श्रवणकुमार' । उ० तापस अंध साप सुधि आई । (मा० २।१५५।२) तापसहि-तपस्वी को, श्रद्धा को । उ० असुर तापसहि खबरी जनाई । (मा० १।१७५।२) तापसी-(सं०)-तपस्या करनेवाली स्त्री, तपस्विनी । उ० जोगिनी सुटुंग भुंड भुंड बनी तापसी सी । (क० ६।५०)

तापसु-दे० 'तापस' । उ० तेहि अवसर एक तापसु आवा । (मा० २।११०।४)

तापा-दे० 'ताप' । उ० ५. दैहिक दैविक भौतिक तापा । (मा० ७।२।१।१)

तापे-१. तपे, जले, २. आग के सामने बैठकर गर्मी ली । ताम-(सं०) ताम्र-ताँबा धातु ।

तामरस-(सं०) १. कमल, २. ताँबा, ३. सोना, स्वर्ण, ४. धतूरा, ५. सारस पक्षी । उ० १. चारु चाप तुनीर तामरस करनि सुभारत बान हैं । (गी० ५।३५)

तामरसु-दे० 'तामरस' । उ० १. परसत तुहिन तामरसु जैसें । (मा० २।७।१।४)

तामस-(सं०)-१. जिसमें तमोगुण अधिक हो, असा-त्त्विक, २. क्रोध, गुस्सा, ३. अज्ञान, मोह, ४. अंधकार, ५. दुष्ट, ६. सर्प, ७. उल्लू, ८. अहंकार । उ० १ तामस असुर देह तिन्ह पाई । (मा० १।१२२।३) तामसो-तमोगुणी भी, तमोगुणयुक्त भी । उ० जाके भजे तिलोक-तिलक भए त्रिजग-जोनि तनु तामसो । (वि० १।५०)

तामसी-(सं०)-१. तमोगुणवाला, अज्ञानी, दुष्ट, २. महा-काली, कालिका, ३. अँधेरी रात, ४. जटामासी ।

ताय (३)-ताहि, उसे उसको ।

तार-(सं०) ताल)-१. ताल, मजीर, झाल, २. करताल,

खटतार । उ० २. घंटा घंटी पखाउज आउज भाँफ बेनु डफ तार । (गी० १।२)

तारक-(सं०)-१. नक्षत्र, तारा, २. मस्लाह, कर्णधार, ३. एक असुर का नाम, ४. राम का षडक्षर मंत्र (ॐ रामाय-नमः) जो तारनेवाला कहा जाता है । ५. तारनेवाला, पार उतारनेवाला, मुक्ति देनेवाला, ६. आँख, नेत्र, ७. आँखों की पुतली । उ० १. स्वम-सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महातम तारक मैं । (क० २।१३) ७. रुचिर पलक-लोचन जुग तारक स्याम, अरुन सित कोए । (गी० ७।१२) कथा-तारकासुर ब्रह्मांग दैत्य का पुत्र था । उग्र तपस्या के कारण इसे ब्रह्मा ने वर दिया था कि सात दिन से अधिक आयुवाला इसका वध नहीं कर सकेगा । वर पाकर तारकासुर बहुत अत्याचार करने लगा । सभी देवता इसके कारण बहुत आशंकित रहने लगे । अंत में शिव के पुत्र कार्तिकेय ने इसका वध किया । वध करने के समय कार्तिकेय की अवस्था ७ दिन की थी । तारकासुर के सेनापतिओं में शुंभ, कुंजर, जंभ, कालनेमि, कुंभज आदि अधिक प्रसिद्ध हैं ।

तारकु-दे० 'तारक' । उ० ३. तारकु असुर समर जेहि मारा । (मा० १।१०३।४)

तारण-(सं०)-१. तारना, दूसरों को पार उतारने का काम, २. उद्धार, निस्तार, ३. उद्धार करनेवाला, पार उतारनेवाला, मुक्तिदाता, ४. वेग, ५. विष्णु । उ० ३. मोहमूषक-माजौर, संसार-भय हरण, तारण तरण, करण, कर्ता । (वि० १।१)

तारति-१. तरेरा या पानी की धारा देती है, २. पार लगाती है । उ० १. मनहुँ विरह के सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति । (गी० ५।१६) तारय-पार कीजिए, तारिए । उ० बारय तारय संस्थति हुस्तर । (मा० ६।११५।३) तारि-तार कर, मुक्त कर उबार कर । तारिबो-तारना, मुक्त करना । उ० तुलसी औ तारिबो बिसारिबो न अंत, मोहि । (क० ७। १८) तारिहौ-तारोगे, तार दोगे । उ० तौ तुलसिहि तारिहौ विप्र ज्योँ दसन तोरि जम गन के । (वि० ६६) तारी (१)-(सं०) तारण)-१. उतार दिया, पार कर दिया, २. मुक्त कर दिया, मुक्ति दे दी । उ० २. राम एक तापस तिय तारी । (मा० १।२४।२) तारे-(१) तारा है, उद्धार किया है ।

तारन-दे० 'तारण' । उ० ३. होत तरन तारन नर तेज । (मा० २।२१७।२)

तारा-(सं०)-१. नक्षत्र, सितारा, २. आँख की पुतली, ३. बालि की स्त्री का नाम, ४. एक राक्षस का नाम, ५. ताली बजाने का शब्द, ६. तालाब, ७. मजीरा । उ० १. मंदिर मनि समूह जनु तारा । (मा० १।१६५।३) २. तारा सिय कहुँ लछिमन मोहि बताउ । (व० ३।१) ३. नाना विधि बिलाप कर तारा । (मा० ४।११।१) कथा-तारा बालि की स्त्री तथा सुसेन की कन्या थी । इसके पुत्र का नाम अंगद था । तारा ने अपने पति बालि के वध के बाद-रामचंद्र की आज्ञा से सुग्रीव से विवाह कर लिया । यहांपंच देवकन्याओं में गिनी जाती है और प्रातःकाल इसका नाम लेना शुभ माना गया है । तारे

(२)-आँख की पुतलियाँ। उ० एकटक लोचन चलत न तारे। (मा० १।२४४।२)
 तारी (२)-(१)-समाधि, ध्यान।
 तारु-(सं० तुला)-तौल, तौलो। उ० पन औ कुवर दोड प्रेम की तुला धौ तारु। (गी० १।५०)
 तारुण्य-(सं०)-तरुणाई, जवानी। उ० जानकीनाथ रघुनाथ रागादित्तम-तरुण, तारुण्यतनु तेज धामं। (वि० ५१)
 ताल (१)-(सं०)-१. ताली या थपड़ी बजाने का शब्द, २. ताड़ का पेड़ या उसका फल, ३. करताल, ४. हरताल, ५. जाँच या बाँह पर मारने या ठोकने का शब्द, ६. काँफ, मँजीरा, ७. नाचने गाने में उसके मध्यवर्ती काल और क्रिया का परिमाण, ८. चरमे के पत्थर या काँच का एक पल्ला, ९. ताला, १०. तलवार की मूँठ। उ० १. उड़त अथ विहग सुनि ताल करतालिका। (वि० ६२) ३. करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि नाच नचायो। (वि० ६८)
 तालऊ-ताड़ के पेड़ भी। उ० तालऊ बिसाल बेधे, कौतुक है कालि को। (क० ६।११)
 ताल (२)-(सं० तल्ल)-तालाब, जलाशय, पोखरा।
 ताला (१)-(सं० तल्ल) तालाब। उ० बसाई निरंतर जे तेहि ताला। (मा० ७।२७।५)
 ताला (२)-(सं० तलक)-लोहे पीतल आदि की बनी वह कल जिसे दरवाजा, संदूक आदि में लगाते हैं। कुल्फ।
 तालु (१)-(सं०)-तालू, मूँह के भीतर की ऊपरी छत।
 तालु (२)-(सं० ताल)-१. ताड़ का पेड़, २. ताली बजाना।
 तालु (३)-(सं० तल्ला)-तालाब।
 तालुक (१)-दे० 'तालु (१)'
 तालुक (२)-दे० 'तालु (२)'
 तालुक (३)-दे० 'तालु (३)'
 तालू (१)-दे० 'तालु (१)'
 तालू (२)-दे० 'तालु (२)'
 तालू (३)-दे० 'तालु (३)'
 ताव-(सं० ताप) १. ताप, जलन, ज्वर, २. दैविक, दैहिक और भौतिक तीन प्रकार के दुःख। उ० सींचिए मलीन भो, तयो है तिहुँ तावरे। (ह० ३७)
 तावत-(सं० ताप)-तपाता है, जलाता है, कष्ट देता है।
 तावों (१)-(सं० ताप)-१. ताव देता हूँ, २. मूँहों पर ताव देता हूँ, ३. गर्म कर हूँ, पिघला हूँ, ४. उकसा हूँ, ५. उत्तेजित कर हूँ, ६. परखता हूँ, जाँचता हूँ।
 तावत-(सं०)-उतने काल तक, तब तक। उ० न तावतसुखं शांति सन्तापनाशं। (मा० ७।६।७)
 तावों (२)-(१)-१. मिट्टी लगाकर मूँहों, बन्द करूँ, २. छिपाता हूँ, बंद करके यत्न से रखता हूँ। उ० १. भेदि भुवन करि भाजुबाहिरो हुरत राहु है तावों। (गी० ६।५) तावों-दे० 'तावों (२)'
 उ० २. तिन्ह, स्रवनन पर दोष निरंतर सुनि सुनि भरि भरि तावों। (वि० १४२)
 तास-(१)-सोने या जरी का काम किया हुआ वस्त्र।
 तासु-[सं० तद्, हि० ता + सु (प्रत्यय)] उसका, उसकी,

उसे। उ० करहु तासु अब अंगीकारा। (मा० १।५।२)
 तासु-दे० 'तासु'। उ० नित नूतन मंगल गृह तासु। (मा० १।६।२)
 तासों-उससे। उ० तासों क्यों हूजुरी, सो अभागो बैठो तोरिहौं। (वि० २५८)
 ताहि-१. उसको, उसे, २. उसकी। उ० १. सर निंदा करि ताहि बुभावा। (मा० १।३।२)
 ताही-दे० 'ताहि'। उ० १. पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही। (मा० १।७।४)
 ताहु-१. वह, उस, २. उसको भी, ३. उसका, उसका भी, ४. उसने। उ० १. ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है। (क० २।४)
 ताहु-दे० 'ताहु'। उ० १. तजे चरन अजहूँ न मिटत निह बहिबो ताहु करो। (वि० ८७)
 तितिड़ी-(सं० तितिड़ी)-इमली।
 तिकाल-(सं० त्रिकाल)-भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों काल। उ० भयो न तिकाल तिहुँ लोक तुलसी सो मंद। (क० ७।१२१)
 तिकोन-दे० 'त्रिकोण'। उ० १. बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे। (वि० १८६)
 तिक्खन-(सं० तीक्ष्ण)-तेज, तीक्ष्ण, प्रचंड, उग्र। उ० लक्ख में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं। (क० ६।३६)
 तिक्त-(सं०)-१. तीत, तीता, कड़ुआ, २. छः रसों में से एक, ३. पित्तपापड़ा, ४. वरुण वृक्ष। विशेष-तिक्त रस अरुचिकर और कटुरस रुचिकर होता है। दोनों में केवल इतना अंतर है।
 तिच्छन-(सं० तीक्ष्ण)-तेज, प्रखर, प्रचंड, तीक्ष्ण।
 तिजरा-(सं० त्रि + ज्वर)-तीन दिन पर आनेवाला एक विशेष ज्वर। उ० स्थारथ के साथिन तज्यौ, तिजरा कौसो टोटकु औचट उलटि न हेरो। (वि०) विशेष-सोरों के आस पास पँसली चलने के रोग को तिजरा कहते हैं। इस रोग में आँटे का एक पुतला चौराहे पर रखकर चले जाते हैं, फिर घूमकर उसे नहीं देखते। ऐसा विश्वास है कि इससे रोग ठीक हो जाता है।
 तित-(सं० तत्र)-वहाँ, उधर, उस ओर।
 तित्तीर्षावतां-(सं०)-तरने के इच्छुकों के लिए, मुक्त होने की इच्छा रखनेवालों के लिए। उ० यत्पाद प्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां। (मा० १।१। श्लो० ६)
 तित्तिर-(सं०)-तीतर पच्ची।
 तिथि-(सं०)-१. चांद्र मास के अलग अलग दिन जिनके नाम संख्यानुसार होते हैं। प्रत्येक पक्ष में प्रायः १५ तिथियाँ होती हैं। २. पन्द्रह की संख्या। उ० १. तिथि सब-काज-नसावनी। (दो० ४५८)
 तिन (१)-(सं० तेन)-'तिस' शब्द का बहुवचन, जैसे तिनने, तिनको आदि। १. उन, २. उन्होंने। उ० १. कहा भवभीर परी तेहि धौ, बिचरै धरनी तिनसों तिन तोरे। (क० ७।४६) २. तिन कही जग में जगमगति जोरी एक। (क० १।१६) तिनहि-१. उनको, उन्हीं को, २. उनमें। उ० १. परम पुनीत

संत कोमल चित्ति तिनहिं तुमहिं बनि आई । (वि० ११२)
 तिनहीं-१. उन्हें, उनमें, २. उन्हीं । उ० १. राम कृपा
 अतुलित बल तिनहीं । (मा० २१५२१) २. मत तिनहीं
 की सेवा, तिनहीं सों भाव नीको । (क० ७१००) तिन्ह-
 उन, उन्हीं । उ० तामस असुर देह तिन्ह पाई । (मा०
 ११२२३) तिन्हहिं-इन सबको, इनको । उ० तिन्हहिं
 निदरि अपने हित कारन राखत नयन निपुन रखवारे ।
 (क० ५६) तिन्हहुं-वे भी, वह भी । उ० फिर एहिं चरित
 तिन्हहुं रति मानी । (मा० ७२२२) तिन्हहु-उन्हें भी,
 उनको भी । उ० देहिं राम तिन्हहु निज धामा । (मा०
 ६१५१) तिन्है-उनको, उन्हीं । उ० तिरछे करि नैन दै
 सैन तिन्है समुझाई कछु सुसुकाइ चली । (क० २१२२)
 तिन (२)-(सं० तृण)-तिनका, घास । सु० तिन तोड़े-
 नाता तोड़े हुए । उ० कहा भव-भीर परी तेहि धौं, बिचरै
 धरनी तिन सों तिन तोरे । (क० ७१५६)
 तिभुवन-(सं० त्रिभुवन)-दे० 'त्रिभुवन' । उ० तुम तिभुवन
 तिहुंकाल विचार बिसारद । (पा० १५)
 तिमि (१)-(सं० तद् + इव)-उस प्रकार, उस भाँति, तैसे,
 वैसे ही । उ० तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि
 धौं जियै आमिनी । (मा० २१५०१) उ० १)
 तिमि (२)-(सं०)-समुद्र में रहनेवाला मछली के आकार
 का एक बहुत बड़ा जंतु, हेल मछली । उ० महामीन बास
 तिमि-तो मनि को थल भो । (ह० ७)
 तिमिर-(सं०)-अंधकार, अंधेरा । उ० अंग-अंग भूषन
 जराय के जगमगत, हरत जन के जी को तिमिर जाबु ।
 (गी० ११४०)
 तिसुहानी-(सं० त्रीणि + फा० मुहानी)-वह स्थान जहाँ
 तीन ओर से तीन नदियाँ आकर मिलती हैं । उ० त्रिविध
 ताप त्रासक तिसुहानी । (मा० ११४०१२)
 तिय-(सं० स्त्री)-१. स्त्री, औरत, २. पत्नी, जोरू । उ० १.
 किय भूषन तिय भूषन तीको । (मा० ११११४) २. तजु
 तिय तनय धासु धनु धरनी । (मा० २१३१४)
 तिया-(सं० स्त्री)-१. स्त्री, औरत, २. भायाँ, पत्नी, ३.
 ताड़का । उ० ३. कौंसिक गरत तुषार ज्यो तकि तेज तिया
 को । (वि० १५२)
 तिरछे-(सं० तिर्यक या तिरस्)-ढेढ़े, आड़े, वक्र । उ० तिरछे
 करि नैन दै सैन तिन्है समुझाई कछु सुसुकाइ चली । (क०
 २१२२) तिरछेहुं-तिरछी दृष्टि से ही, तिरछे भी । उ०
 कृपा, कोप, सतिभाय हूँ धोखहुँ, तिरछेहुँ राम तिहारेहि
 हेरे । (वि० २७३)
 तिरछौं-तिरछी, ढेढ़ी । उ० तुलसी कटि तून धरे धनु बान,
 अचानक दीठि परी तिरछौं । (क० २१२५)
 तिरहुत-दे० 'तिरहुति' । उ० भूमितिलकसम तिरहुत त्रिभु-
 वन जानिय । (जा० ४)
 तिरहुति-(सं० तीरभुक्ति)-मिथिला प्रदेश । आजकल
 इसके स्थान पर बिहार के मुजफ्फरपुर और दरभंगा
 जिले हैं ।
 तिरहुतिनाथ-राजा जनक । उ० साँचे तिरहुतिनाथ साखि
 देति मही है । (गी० ११८५)
 तिरहुति-दे० 'तिरहुति' ।

तिरा-(सं० तरण)-तैर गया । उ० तुलसी कृपा रघुबंसमनि
 की लोह लै लौका तिरा । (मा० २१२५१) उ० १)
 तिरीछे-तिरछे, ढेढ़े, वक्र । उ० खंजन-मंजु तिरीछे नयननि ।
 (मा० २११७१४)
 तिर्यक-(सं०)-१. ढेढ़ा, तिरछा, आड़ा, २. पशु-पक्षी; या
 कृमि आदि ।
 तिहुँत-दे० 'तिरहुति' ।
 तिल-(सं०)-१. एक अन्न जो प्रधानतः तेल निकालने के
 काम आता है । गुड़ आदि में मिलाकर इसे लोग खाते भी
 हैं । यह बहुत छोटा-छोटा होता है, २. काले रंग का तिल
 की तरह छोटा दाग जो शरीर पर होता है, ३. थोड़ा,
 जरा । उ० १. तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघु-
 बीर । (मा० ३१५६) २. सरद प्रकास अकास छुबि
 चारु चिबुक तिल जासु । (स० ३२) तिल-तिल-१. थोड़ी
 थोड़ी, २. निःशेष, बिल्कुल । उ० २. जाके मन ते उठ गईं
 तिल-तिल तृप्ता चाहि । (बै० २६) तिलौ-तिल भी, तिल
 भर भी । उ० तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार को ।
 (क० २११२)
 तिलक-पु०-(सं०)-१. टीका, चंदन, मस्तक का त्रिपुंड,
 २. शिरोमणि, श्रेष्ठ, ३. पुष्प विशेष, ४. शरीर पर का
 तिल, ५. बोड़े का एक भेद, ६. एक पेट का रोग, ७.
 राज्याभिषेक, गद्दी, ८. सगाई का रस्म जो विवाह के
 पूर्व होता है, ९. पुस्तकों की व्याख्या, १०. सिर का एक
 गहना । उ० १. लक्ष्मणाजुज, भरत-राम-सीता-चरनरेजु-
 भूषित-भाल तिलक धारी । (वि० ४०) २. रघुकुल तिलक
 सो चारिउ भाई । (मा० ११८७३) ७. राम तिलक
 हित मंगल साजा । (मा० ११४१४)
 तिलकु-दे० 'तिलक' । उ० ७. राम तिलकु सुनि भा उर
 दाह । (मा० २१३११)
 तिलांजलि-(सं० तिलांजली)-हिन्दुओं के यहाँ मृतक-
 संस्कार का एक अंग, जिसमें मुरदे के जल चुकने के बाद
 लोग स्नान करके हाथ में पानी और तिल लेकर मृतक के
 नाम पर छोड़ते हैं । उ० मोहि लै जाहु सिंधुत देई
 तिलांजलि ताहि । (मा० ४१२७)
 तिलांजलि-दे० 'तिलांजलि' । उ० विधिवत न्हाइ तिलांजलि
 दीन्ही । (मा० २१७०३)
 तिली-दे 'तिल' । उ० १. पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली
 सनेही जानि । (दो० ४०३)
 तिलु-दे० 'तिल' । उ० ३. तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई ।
 (मा० ११२५२१)
 तिलोक-(सं० त्रिलोक)-तीनों लोक, आकाश, पाताल
 और मृत लोक । उ० चारिहुँ बिलोचन बिलोकु तू तिलोक
 महुँ । (वि० २६४) तिलोकिए-तीनों लोकों में ही । उ०
 मानहु रघो है भरि बानर तिलोकिए । (क० २११७)
 तिलोकनाथ-(सं० त्रिलोकनाथ)-तीनों लोकों के मालिक,
 भगवान् रामचंद्र । उ० लोक एक भाँति को, तिलोकनाथ
 लोक बस । (क० ७१२३)
 तिलोचन-(सं० त्रिलोचन)-तीन नेत्रवाले, महादेव । उ०
 सुमुखि सुलोचनि, हर मुखपंच, तिलोचन । (पा० ५८)
 तिष्ठति-(सं०)-बैठते हैं, उहरते हैं । उ० यत्र तिष्ठति तत्रैव

अज शर्व हरि सहित गच्छन्ति कीराब्धिवासी । (वि० ५७)
 तिष्ठ-**(सं०)**-बैठो, शांत हो, ठहरो । तिष्ठइ-ठहरना, ठहर सकना । उ० भूत द्रोह तिष्ठइ नहि सोई । (मा० १। ३८४)

तिसिर-**(सं० त्रिसिर)**-तीन सिरोवाला एक राक्षस जो रावण का भाई था और खरदूषण के साथ दंडक वन में रहता था । अन्य मत से इस नाम का एक रावण का पुत्र भी था जो लंका के युद्ध में हनुमान के हाथ से मारा गया था । उ० अबलोकि निजदल बिकल भट तिसिरादि खरदूषण फिरे । (मा० ३।२०। छं० २)

तिहारिय-**(मा० तुम्हकरको, हि० तुम्हारा)**-आपकी ही, आपकी ही है, तुम्हारी ही है । उ० मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारिय । (ह० २२) तिहारिय-आप ही की । उ० हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरे चेतै । (वि० २४१) तिहारां-तुम्हारी, आपकी । उ० आदि अंत मध्य राम साहिबी तिहारी । (वि० ७८) तिहारे-तुम्हारे, आपके । उ० महरि तिहारे पाँय परौ अपनो ब्रज-लौजै । (क० ७) तिहारेहि-तुम्हारे ही, आपके ही । उ० तिनहि मिले मन भयो कृपथ-रत फिरै तिहारेहि फेरै । (वि० १८७) तिहारो-तुम्हारा, आपका । उ० सुजान सिरोमनि हौ हनुमान ! सदा जन के मन बास तिहारो । (ह० १६) तिहारोइ-तुम्हारा ही, आपका ही । उ० उधोजू कछो तिहारोइ कीबो । (क० ३२)

तिहुँ-**(सं० ते)**-उसे, उसको ।
 तिहुँ-**दे०** 'तिहुँ' । उ० होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई । (मा० २।३६।२)

तिहुँ-**(सं० त्रीणि + हुँ)**-तीनों, तीनों हीं, तीनों में ही । उ० तौ लौं तू कहुँ जाय तिहुँ ताप तपि है । (वि० ६८)

ती-**(सं० स्त्री)**-स्त्री, औरत । उ० किय भूषन तिय भूषन ती को । (मा० १।१६।४)

तीक्ष्ण-**(सं०)**-१. तेज नोक या धारवाला, पैना, २. तीव्र, प्रखर, ३. प्रचंड, उग्र, ४. तीते स्वाद का, ५. कर्णकट्ट, ६. असह्य, ७. गरमी, उत्ताप, ८. विप, जहर, ९. युद्ध, लड़ाई, १०. मृत्यु, ११. परोपकारी, दूसरों के लिए अपना स्वार्थ छोड़नेवाला, १२. महामारी, १३. लोहा ।

तीखा-**(सं० तीक्ष्ण)**-तेज, पैना, तीक्ष्ण । तीखे-१. तेज, तेज दौड़नेवाले, २. पैने । उ० १. तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छुबीले । (क० ६।३२) तीखी-१. तेज, पैनी, तीक्ष्ण । उ० तीखी तुरा तुलसी कहतौ, पै हिये उपमा को समाउ न आयो । (क० ६।५४)

तीछन-तेज, तीक्ष्ण । उ० तपन तीछन तरुन, तीव्रतापन्न तपरूप तमपर तपस्वी । (वि० ५५)

तीछीं-तेज, म्यानक । उ० तजहि बिपम विषु तामस तीछीं । (मा० २।२६।२।४)

तीछी-१. तीक्ष्ण, अप्रिय, तीखी, २. पैनी, जोखी, ३. रूखी, खरी । उ० १. नगर व्यापि गहू बात सुतीछी । (मा० २। ४६।३) तीछे-१. तीक्ष्ण, तेज, पैने, २. रूखे, ३. क्रोधी । उ० १. राम बियोगि बिकल दुख तीछे । (मा० २। १४३।३)

तीज-**(सं० तृतीया)**-पत्येक पक्ष की तीसरी तिथि । उ०

तीज त्रिगुन-पर परमपुरुष श्री रमन मुकुंद । (वि० २०३)
 तीजे-**दे०** 'तीजे' । उ० मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे । (मा० १।१६।६)

तीजे-**(सं० तृतीय)**-तीसरे, तीसरा ।
 तीत-**(सं० तिक्त)**-तीता, अमथुर, कड़आ ।
 तीतर-**(सं० तिचिर)**-एक प्रसिद्ध पक्षी जिसे लोग लड़ाने के लिए पालते हैं । इसे लोग खाते भी हैं । उ० तीतर तोम तमीचर-सेन समीर को सुनु बड़ी बहरी है । (क० ७।२६)

तीतिर-**दे०** 'तीतर' । उ० तीतिर लावक पदचर जूथा । (मा० ३।३८।४)

तीन-**(सं० त्रीणि)**-दो और एक, गिनती में चार से एक कम । उ० तीन लोक महे जो भजै । (सं० २६७) तीन-लोक-**(सं० त्रिलोक)**-आकाश, पाताल और मृतलोक । उ० तीनलोक महे जो भजै, लहै तासु फल ताहि । (सं० २६७)

तीनि-तीन । उ० तुलसिदास परिहरै तीनि अम सो आपन पहिचानै । (वि० १११) तीनि अवस्था-जगृति, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ । उ० तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि । (मा० ७।११७ ग) तीनिउ-तीनों, तीनों ही । उ० राम बिवाह समान ब्याह तीनिउ भए । (जा० १७४) तीनिकाल-**(सं० त्रिकाल)**-भूत, भविष्यत् और वर्तमान, ये तीन काल । उ० तीनिकाल कर ज्ञान कौसिकहि करतल । (जा० ८६) तीनि-गवनी-**(सं० त्रीणि + गमन)**-त्रिपथगा, गंगा । उ० परसि जो पाँय पुनीत सुरसरी सोहै तीनि-गवनी । (गी० १।५६) तीनि-गुन-**(सं० त्रिगुण)**-सत्व, रज और तम ये तीन गुण । उ० दे० 'तीनि अवस्था' । तीनिहुँ-तीनों ही, तीनों । उ० कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई । (मा० १।१७७।१)

तीनी-तीन । उ० जुग सम नृपहि गए दिन तीनी । (मा० १।१७२।४)

तीत्र-**(सं० तीव्र)**-दे० 'तीव्र' । उ० २. तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा । (मा० ७।७१।२) ७. मकर षड्वर्ग, गोनक्र, चक्राकुला, कूल सुभ-असुभ, दुख तीव्र धारा । (वि० ५६)

तीय-**(सं० स्त्री)**-स्त्री, अबला, नारी । उ० तीय, तनय, सेवक, सखा, मन के कंटक चारि । (दो० ४७६)

तीर (?) -**(सं०)**-१. नदी का किनारा, तट । तीर और तट में अंतर है । तीर आस-पास की भूमि को कहते हैं, पर तट पानी के अत्यंत समीप की भूमि कहलाती है । २. समीप, पास । उ० १. सुरसरि-तीर बिनु नीर दुख पाइहै । (वि० ६८) तीरहु-किनारे पर भी । उ० तुलसी तीरहु के चले समय पाइबी थाह । (दो० ४४६)

तीर (२)-**(फ़ा०)**-बाण, शर । उ० तीर तें उतरि जस कछो चहै, गुन गननि जयो है । (गी० ६।११)

तीरथ-**दे०** 'तीर्थ' । उ० १. पूजि जथाविधि तीरथ देवा । (मा० २।१०६।३) १. जोग, जाग, जप, विराग, तप सुतीरथ अटत । (वि० १२६) तीरथन्ह-तीर्थों में । उ० सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए । (मा० १।१५५।४)

तीरथपति-**(सं० तीर्थपति)**-प्रयाग । उ० अस् तीरथपति

देखि सुहावा । (मा० २।१०६।१) तीरथपतिहिं-तीर्थराज प्रयाग को, प्रयाग में । उ० तीरथपतिहिं आव सब कोई । (मा० १।४४।२)

तीरथराज-दे० 'तीरथराज' । उ० अकथ अलौकिक तीरथ-राज । (मा० १।२।७)

तीरथराज-दे० 'तीर्थराज' । उ० तीरथराज समाज सुकरमा । (मा० १।२।६)

तीरथराजा-दे० 'तीरथराज' । उ० कीन्ह निमज्जनु तीरथ-राजा । (मा० २।२।१६।१)

तीरथराज- (सं० तीर्थराज) - तीर्थों का राजा प्रयाग, इलाहाबाद । उ० जो जग जगम तीरथराज । (मा० १।२।४)

तीरा (१)-दे० 'तीर (१)' । उ० १. पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा । (मा० ३।३।१३)

तीरा (२)-दे० 'तीर (२)' । उ० सोइहिं कर कमलानि धनु तीरा । (मा० २।१।१६।४)

तीर्थे-(सं०)-१. वह पवित्र स्थान जहाँ धर्मभाव से लोग यात्रा, पूजा, स्नान आदि के लिए जाते हैं । हिन्दुओं के काशी, प्रयाग, गया आदि तीर्थ हैं । शास्त्रों में तीर्थ ३ प्रकार के माने गए हैं । क. जंगम-ब्राह्मण, साधु आदि । ख. स्थावर-काशी प्रयागादि । ग. मानस-सत्य, क्षमा, दया दान आदि । २. शास्त्र, आगम, ३. यज्ञ, ४. ईश्वर, ५. माता-पिता, ६. अतिथि, ७. गुरु, आचार्य, ८. ब्राह्मण, ९. आग, १०. एक उपाधि, ११. पवित्र । ब्राह्मण का दायाँ हाथ भी तीर्थ कहा गया है । अँगूठे का ऊपरी भाग ब्रह्मतीर्थ, अँगूठे और तर्जनी का मध्य भाग पितृतीर्थ, तथा कनिष्ठा का बिचला भाग प्रजापत्यतीर्थ एवं उँगलियों का अग्रभाग देवतीर्थ कहलाता है । तीर्थनि-तीर्थों में । उ० ते रन-तीर्थनि लखन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं । (क० ६।३३)

तीर्थपति-(सं०)-प्रयाग ।

तीर्थराज-(सं०)-प्रयाग ।

तीर्थाटन-(सं०)-तीर्थयात्रा । उ० तीर्थाटन साधन समुदाई । (मा० ७।१२६।२)

तीव्र-(सं०)-१. अतिशय, अत्यंत, २. तीव्रण, तेज, नोकीला, ३. बहुत गरम, ४. बेहद, ५. कड़, कड़ुआ, ६. न सहने योग्य, ७. प्रचंड, प्रखर, डरावना, ८. तीखा, ९. वेगयुक्त, १०. लोहा, ११. शिव ।

तीस-(सं० त्रिंशति)-जो गिनती में २९ के बाद और ३१ के पहले हो । ३० । उ० तीस तीर रघुवीर पवारे । (मा० ६।६२।५)

तीसर-[सं० त्रीणि + सरा (प्रत्यय)]-तीसरा, तृतीय । उ० तब सिव तीसर नयन उचारा । (मा० १।८।३) तीसरि-तीसरी । उ० गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान । (मा० ३।३५) तीसरे-दूसरे के बादवाला, तीसरा । उ० तीसरे उपास बनबास सिंधु पास सो । (क० १।३२) तुं-दे० 'तू' ।

तुंग-(सं०)-१. उन्नत, ऊँचा, २. उग्र, प्रचंड, ३. प्रधान, मुख्य, ४. पुत्राग वृद्ध, ५. कमल का केसर, ७. शिव, महादेव । उ० १. विपुल बिकराल भट भाखु कपि काल संग तरु तुंग गिरि संग लीन्हें । (क० ६।१६)

तुंड-(सं०)-१. मुख, वदन, २. चोंच, ३. नोक, ४. राक्षस, ५. शिव, ६. निकला हुआ मुँह, थूथुन, ७. तलवार का अगला हिस्सा । उ० १. पिक बयनी मृगलोचनी सारद ससि सम तुंड । (गी० ७।१६) २. चारु चिबुक, सुक तुंड-बिनिदक सुभग सुउन्नत नासा । (गी० ७।१२)

तुंबारे-दे० 'तुंबरी' । उ० ते सिर कडु तुंबरि समतूला । (मा० १।११३।२)

तुंबरी-(सं० तुंबी)-छोटा कड़ुआ कड़ु, तितलौकी । तु-दे० 'तू' ।

तुअ-(सं० तव)-तुम्हारा । उ० तौ तुअ बस विधि बिभु महेसा । (मा० १।१६५।२)

तुच्छ-(सं०)-१. छुट, हीन, नाचीज़, २. थोड़ा, कम, ३. श्रोद्धा, खोटा, ४. खोखला, भीतर से खाली, ५. सार-हीन, छिलका ।

तुपक-(सं० तोप)-१. छोटी तोप, २. बंदूक । उ० १. काल तोपची, तुपक महि, दारु-अनय कराल । (दो० ५१५)

तुभ्यं-(सं०)-तुम्हे, तेरे लिए । उ० नतोऽहं सदा-सर्वदा शंभु तुभ्यं । (मा० ७।६।८)

तुम-(सं० त्वम्)-तू शब्द का बहुवचन पर प्रायः 'तू' के स्थान पर ही प्रयुक्त । वह सर्वनाम जिसका व्यवहार उस पुरुष के लिए होता है जिससे कुछ कहा जाता है । 'आप' के स्थान पर भी तुम का प्रयोग होता है । उ० तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै । (वि० २६८) तुमहिं-तुमको । उ० देखो देखो बन बन्यो आखु उमाकंत । मनो देखन तुमहिं आई ऋतु बसंत । (वि० १४) तुमहिं-तुम्हीं, आप ही । उ० तुलसिदास यह बिपति-बाँगुरो तुम्हहिं सों बनै निबेरे । (वि० १८७) तुमहीं-तुमहीं, आप ही । उ० तुलसी तिहारो, तुमहीं तें तुलको हित । (वि० २६३) तुम्ह-तुम, आप । दे० 'तुम' । उ० तुम्ह बिनु अस वतु को निरबाहा । (मा० १।७६।२) तुम्ह-तुम्हीं, आपही । उ० जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई । (मा० २।१२७।२) तुम्हउ-तुमको भी, तुम्हें भी । उ० हमरें बयर तुम्हउ बिसराई । (मा० १।६२।१) तुम्हहिं-तुम्हें, तुम्हें ही, आपको ही । उ० सुमि-रिहिं सुकृत तुम्हहिं जन तेइ सुकृती बर । (पा० ८५) तुम्हहिं-तुम्हें, तुमको, आपको । उ० अब जौं तुम्हहिं सुता पर नेहू । (मा० १।७२।१) तुम्हही-तुम्हीं, आपही । उ० तुम्हही सुत सब कहैं अवलंबा । (मा० २।१७६।२) तुम्हहू-तुम भी, आप भी । उ० तुम्हहू तात कहत अब जाना । (मा० १।२७।३)

तुम्हरिहि-तुम्हारी ही, आपकी ही । उ० तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन । (मा० २।१२७।२) तुम्हरी-तुम्हारी, आपकी । उ० मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही । (मा० १।५६।३) तुम्हरे-(प्रा० तुम्हकरको)-तुम्हारे, आपके । उ० तुम्हरे आस्रम अबहिं ईस तप साधहिं । (पा० २३) तुम्हरेहि-तुम्हारे ही, आपके ही । उ० जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे । (वि० १८७)

तुम्हरो-तुम्हारा । उ० तुम्हरो सब भक्ति, तुम्हारिय सौं, तुम्हही, बलि, हौ मोको ठाहर हेरे । (क० ७।६२)

तुम्हार-(प्र० तुम्हारको)-तुम्हारा, आपका। उ० नाम पाहुरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कषाट। (मा० २१३०)
 तुम्हारा-आपका, तेरा। उ० देखि तात बिषुबदन तुम्हारा। (मा० १३२७७४) तुम्हारि-तुम्हारी, आपकी। उ० त्रिकालम्य सर्वम्य तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारी। (मा० ११६६) तुम्हारिय-तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौ, तुम्हही, बलि, हौ मोकों गहरु हेरे। (क० ७६२) तुम्हारहि-तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० कीन्ह प्रनामु तुम्हारहि नाई। (मा० ११२६११) तुम्हारिही-तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० केवल कृपाँ तुम्हारिही कृपानंद संदोह। (मा० ७३६) तुम्हारी-तेरी, आपकी। उ० कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। (मा० १११४१८) तुम्हारें-तुम्हारे, आपके, तेरे। उ० किए सुखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारें रिपु हयो। (मा० ६११०६) छं० १) तुम्हारें-दे० 'तुम्हारें'। उ० नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। (मा० १११४६११) तुम्हारेहि-तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली। (मा० ७११८१)

तुम्हारो-तुम्हारा, आपका। उ० पायो बिभीयन राज तिहुँ-बुर जसु तुम्हारो नित नयो। (मा० ६११०६) छं० १) तुम्ह-तुमही। उ० जानिकै जोर करौ परिनाम, तुम्है पछि-तैहो पै मैं न हितैहौ। (क० ७११०२)

तुरंग-(सं०)-१. जल्दी चलनेवाला, २. घोड़ा, अश्व। उ० २. तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बड़ि जाते। (क० ७१४४)

तुरंगा-दे० 'तुरंग'। उ० २. जात नचावत चपल तुरंगा। (मा० १३१६१३)

तुरंत-(सं० तुर)-शीघ्र, फौरन, तत्क्षण। उ० बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत। (मा० ४१२२)

तुरंता-दे० 'तुरंत'। उ० चलेउ सो गा पाताळ तुरंता। (मा० २१११४)

तुरग-दे० 'तुरंग'। उ० २. बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा। (मा० १११६०११)

तुरगा-दे० 'तुरंग'। उ० २. प्रथमहि हतेउ सारथी तुरगा। (मा० ६१६२११)

तुरत-दे० 'तुरंत'। उ० भए तुरत सब जीव सुखारे। (मा० ११६६१२) तुरतहि-तुरंत ही, शीघ्र ही। उ० तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा। (मा० ३१७१४)

तुरा-(सं० त्वरा)-जल्दी, शीघ्रता, उतावली। उ० तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो। (क० ६१२४)

तुराई (१)-दे० 'तुराई (१)'
 तुराई (२)-दे० 'तुराई (२)'
 तुराई (१)-(सं० त्रुलिका=गदा)-१. मोटा और गुदगुदा गदा, तोशक, २. तकिया। उ० १. नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। (मा० २११४३)

तुराई (२)-(सं० त्वरा)-१. जल्द, २. वेग।
 तुरावति-(सं० त्वरा)-वेगवती, शीघ्रगामिनी।
 तुरित-तरंत, शीघ्र। उ० गंगाजल कर कलस तौ तुरित। (रा० ३)

तुरीय-दे० 'तुरीय (१)'
 तुरीयं। (मा० ७११०८) श्लो० २) ५. प्राकृतं प्रकट पर-मात्मापरमहित प्रेरकानंत बंदे तुरीयं। (वि० ५३) तुरीय (१)-(सं०)-१. चौथा, चतुर्थ, २. निर्गुण ब्रह्म, ३. वेद-तियों ने प्राणियों की चार अवस्थाएँ मानी हैं-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। तुरीयावस्था मोक्षावस्था है जिसमें समस्त भेद-ज्ञान का नाश हो जाता है और आत्मा अनुपहित चैतन्य या ब्रह्मचैतन्य हो जाती है। ४. त्रिगुणात्मक विषयों से परे, ५. मोक्षरूप। उ० ३. तुल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगादि। (मा० ७१११७ग)

तुरीय (२)-(सं० त्वरा)-शीघ्र ही।
 तुल-(सं० तुल्य)-१. सदृश, बराबर, २. समदर्शी, ३. शुद्ध। उ० २. तुलसी पति-पहिचान बिनु कोउ तुल कबहुँ न होय। (सं० २८८)

तुलना-(सं०)-मिलान, बराबरी, समता।
 तुलसि-दे० 'तुलसी'। उ० १. मंडुल मंजरि तुलसि बिराजा। (मा० १३४६३) २. तुलसि अभिमान-महि-पेस बहुकालिका। (वि० ४८)

तुलसिका-१. तुलसी का वृक्ष, २. जालंधर की पतिव्रता पत्नी वृंदा, ३. जिसके समान सृष्टि में कोई न हो। उ० १. सुमन-सुविचित्र-नवतुलसिका-दलजुतं मृदुल वनमाल उर आजमानं। (वि० ५१) २. जस गावत लुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय। (दो० ५४२)

तुलसिदास-दे० 'तुलसीदास'। उ० तुलसिदास इन्ह पर जो द्रवहि, हरि तौ पुनि मिलौ बैरु विसराई। (क० ४६)

तुलसी-१. तुलसी वृक्ष, २. तुलसीदास। दे० 'तुलसीदास', ३. जालंधर की पतिव्रता स्त्री वृंदा, ४. जिसके समान कोई न हो। उ० १. जो सुमिरत भयो भांग तें तुलसी तुलसीदासु। (मा० ११२६) २. तुलसी चातक प्रेमपट मरतहु लगी न खोंच। (दो० ३०२) कथा-एक छोटा सा पौधा जिसे वैष्णव बहुत पवित्र मानते हैं, और जिसकी पूजा करते हैं। तुलसी की पत्तियाँ भगवान् को भोग लगाने के भोजन तथा पानी में डाली जाती हैं। पुराणों के अनुसार तुलसी नामक एक गोपिका गोलोक में राधा की सखी थी। एक दिन राधा ने उसे कृष्ण के साथ बिहार करते देख लिया और मनुष्य योनि में जाने का शाप दिया। तुलसी राजा धर्मध्वज की कन्या हुई और रूप में अतुलनीय होने के कारण इसका नाम तुलसी पड़ा। शंखचूड़ राक्षस से इसकी शादी हुई। शंखचूड़ को वर था कि बिना उसकी स्त्री के सतीत्व के नष्ट हुए उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। उसके अत्याचारों से तंग आकर देव-ताओं के कहने से विष्णु ने शंखचूड़ का रूप धारणकर तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। इस पर तुलसी ने विष्णु को पत्थर हो जाने का शाप दिया। बाद में तुलसी विष्णु के पैर पर गिरकर रोने लगी तो विष्णु ने कहा कि तुम यह शरीर छोड़कर लक्ष्मी के समान मेरी प्रिया होगी। तुम्हारे शरीर से गंडकी नदी और केश से तुलसी वृक्ष होगा। तभी से शालग्राम की पूजा होने लगी और तुलसी की पत्नी उन पर चढ़ाई जाने लगी तथा तुलसी अत्यंत पवित्र मानी जाने लगी। तुलसीक-तुलसीदास को भी।

उ० जो यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक । (दो० १०५) तुलसीहु-तुलसी से भी । उ० काहे को खीकिय रीकिय पै, तुलसीहु सो है बलि सोइ सगाई । (क० ७। १३)

तुलसीदास-हिंदी के सर्व प्रधान भक्त कवि । इनका जन्म संवत् १६३१ में तथा इनकी मृत्यु संवत् १६८० में हुई थी । इनके जीवन के विषय में बहुत सी किंवदंतियाँ हैं । तुलसीदास के प्रामाणिक ग्रन्थ हैं-रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, दोहावली, कवितावली, हनुमान बाहुक, गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका, तुलसी सत-सई तथा रामचरितमानस । तुलसीदास ने अपनी कविताओं में, तुलसि, तुलसी, तुलसिदास, तुलसीदास तुलसीदास आदि नामों को अपने लिए प्रयुक्त किया है । उ० साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास । (मा० १। २८ ख)

तुलसीदासु-दे० 'तुलसीदास' । उ० जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु । (मा० १।२६)

तुला-(सं०)-१. तराजू, काँटा, २. मान, तौल, ३. सादृश्य, तुलना, मिलान, ४. ज्योतिष की ७वीं राशि, ५. प्राचीन-काल की एक तौल । उ० १. तुला पिनाक, साहुचूप, त्रिभुवन भट बटोरि सबके बल जोषे । (गी० ५।१२)

तुल्य-(सं०)-समान, बराबर, सदृश ।

तुव-(सं० तव)-तुम्हारा, आपका । उ० जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेस तें न्यारो । (वि० १४)

तुष-(सं०)-१. झिलका, भूखी, चोकर, २. अंडे के ऊपर का झिलका । उ० २. अंड फोरि कियो चेढुवा, तुष पर्यो नीर निहारि । (दो० ३०३)

तुषार-(सं०)-१. ओस, कुहरा, २. पाला, शीत, ३. बरफ, हिम । उ० ३. तुषाराद्रि संकाश गौरि गभीरं । (मा० ७।१०८ खं० ३)

तुषार-दे० 'तुषार' । उ० १. मनहुँ मरकत-मृदु-सिखर पर लसत बिसद तुषार । (क० १४)

तुसार-दे० 'तुषार' । उ० २. कनक कल्प बरबेलि बन मानहुँ हनी तुसार । (मा० २।१६३)

तुसार-दे० 'तुषार' । उ० २. मनहुँ कमल बन परेउ तुसारु । (मा० २।२६३।१)

तुहिन-(सं०)-१. पाला, २. हिम, बरफ, ३. कुहरा, ओस, ४. चाँदनी । उ० २. गण सकल तुहिनाचल गेहा । (मा० १।१४३) ३. जयति जय सनु-करि-केसरी सनुहन सनु-तम तुहिनहर-किरनकेतु । (वि० ४०)

तुही-तुम्हीं, तुमहीं, आपहीं । उ० रामहु की बिगरी तुहीं सुधारि लई है । (क० ७।१७६) तुही-तुम्ही, आप ही । उ० साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही ले । (वि० ३२) तुहूँ-तू भी, तुम भी । उ० तुहूँ सराहसि करसि सुनेहू । (मा० २।३२।४)

तू-दे० 'तू' । उ० जननी तूँ जननी भई बिधि सन कहु न बसाइ । (मा० २।१६१)

तूँबरी-(सं० तुम्बक)-१. तूँबी, कडुई लौकी जो खोखली की गई रहती है और जिसे साधु लोग अपना कमंडलु

बनाकर रखते हैं । २. साँपवालों का तुँबी का बना बाजा । ३. लौकी ।

तू-(सं० त्वम्)-तुम, आप । उ० सेवक को परदा फटै, तू समरथ सीले । (वि० ३२)

तूठहिं-(सं० तुष्ट)-तुष्ट होते हैं, प्रसन्न होते हैं । उ० तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि । (दो० ४७६)

तूण-(सं०)-तरकश, तीर रखने का चोंगा ।

तूणीरं-दे० 'तूण' । उ० पाणि चाप शर कटि तूणीरं । (मा० ३।११।२) तूणीर-(सं०)-दे० 'तूणीर' ।

तून-दे० 'तूण' । उ० प्रबल-भुजदंड-परचंड कोदंड धर, तूनवर विसिष, बलमप्रमेयं । (वि० ५०)

तूनीर-दे० 'तूण' । उ० कटि तूनीर पीतपट बाँधें । (मा० १।२४।१) तूनीरहि-तूणीर को, तरकश को । उ० धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि । (मा० ७।३०।२)

तूनीरा-दे० 'तूण' । उ० मुनिपट कटिन्ह कसैं तूनीरा । (मा० २।११।५)

तूमरि-(सं० तुम्बक)-एक तरकारी, लौकी ।

तूर-(सं० तूर्य)-१. तुरही, सिंघा, २. नगाड़ा । उ० १. पाछे लागे बाजत निसान डोल तूर है । (क० ५।३)

तूरना-दे० 'तूर' । उ० डोलै लोल ब्रूमत सबद डोल तूरना । (क० ७।१४८)

तूरि (१)-दे० 'तूरी (१)' ।

तूरि (२)-दे० 'तूरी (२)' ।

तूरि (३)-दे० 'तूरी (३)' ।

तूरि (४)-दे० 'तूरी (४)' ।

तूरी (१)-(सं० तूर्य)-तुरही बाजा ।

तूरी (२)-(सं० त्वरा)-जल्दी, तुरत ।

तूरी (३)-(सं० तुल्य)-समान । उ० मन तन बचन तजे तिन तूरी । (मा० २।३२।३)

तूरी (४)-(सं० त्रुट)-१. तोड़ा, खंड-खंड किया, २. तोड़ कर ।

तूर्य-(सं०)-शीघ्र, जल्दी ।

तूल (१)-(सं०)-१. आकाश, २. रुई, ३. तूत का पेड़, उ० २. तूल अघ-नाम पावक-समानं । (वि० ५४)

तूल (२)-(सं० तुल्य)-समान, बराबर । उ० चंडु चवै वह अनल कन सुधा होइ विषतूल । (मा० २।४८)

तूल (३)-(सं० तुलक)-एक चटकीला लाल रंग का कपड़ा विशेष ।

तूल (४)-(क्रा०)-विस्तार, लंबाई ।

तूला-दे० 'तूल (२)' । उ० जासु नाम पावक अघ तूला । (मा० २।२४८।१)

तूतीय-(सं०)-तीसरा, दूसरे के बाद का ।

तूजग-(सं० तिर्यक)-पशु पक्षी आदि ।

तूण-(सं०)-तिनका, घास ।

तून-दे० 'तूण' । उ० जो करत गिरीतें गरु तून तें तनक को । (क० ७।७३) मु० तून तोरी=तिनका तोड़ती हैं । दे० 'तून तोरे' । उ० निरखहि छबि जननी तून तोरी । (मा० १।१६८।३) मु० तून तोरे-अनिष्ट हटाने के लिए तूण तोड़ा । [टोना-टोटका, या अनिष्ट आदि से बचाने के लिए तिनका तोड़ने की कहीं-कहीं प्रथा है ।] उ० लोचन

लोल चलेँ भुकुटी, कल काम-कमानहु सो वृन तोरे ।
 (क० २।२६)
 वृनु-दे० 'वृण' । उ० देह गेह सब सन वृनु तोरें । (मा० २।७०।३) मु० वृनु तोरें-नाता तोड़े हुए । उ० देह गेह सब सन वृनु तोरें । (मा० २।७०।३)
 वृपत-(सं० वृसि)-संतोष, वृसि ।
 वृपित-वृप्त, भरा, संतुष्ट । उ० दरसन वृपित न आजु लागि, प्रेम पिआसे नैन । (मा० २।२६०)
 वृम-(सं०)-१. अघाया हुआ, तुष्ट, ३. प्रसन्न, खुश ।
 वृसि (सं०)-१. संतोष, अघाना, २. खुशी, प्रसन्नता । उ० १. वृप्ति न मानहि मनु सतरूपा । (मा० १।१४८।३) वृसुहानी-दे० 'त्रिसुहानी' ।
 वृषा-(सं०)-१. प्यास, २. इच्छा, अभिलाषा, ३. लोभ, लालच । उ० १. तुलसीदास कब वृषा जाइ सर खन-तहि जनम सिरान्यो । (वि० ८८)
 वृषावत-प्यासा । उ० वृषावत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो । (वि० २४५)
 वृषित-१. प्यासा, २. इच्छुक, ३. लालची । उ० १. धूम समूह निरखि चातक ज्यों वृषित जानि मति घन की । (वि० ६०)
 वृष्णा-(सं०)-१. इच्छा, लोभ, लालच, २. प्यास । उ० १. तरल-वृष्णा-तमी तरणि धरनी धरन सरन-भय-हरन कहनानिधानं । (वि० ५४)
 वृष्णा-दे० 'वृष्णा' । उ० १. जाके मन ते उठ गई, तिल तिल वृष्णा चाहि । (वै० २६)
 वृस्ना-दे० 'वृष्णा' । उ० १. वृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा । (मा० ७।७०।४)
 तें (१)-[सं० तस् (प्रत्यय)]-से, द्वारा । उ० नीलकंज बारिद तमाल मनु इन तनु तें हुति पाई । (वि० ६२) ते (१)-दे० 'तें (१)' । तेइ (१)-दे० 'तें (१)' ।
 तें (२)-(सं० ते)-१. वे सब, वे ही, वे भी, २. उनका, उसका, ३. वह, सो । ते (२)-दे० 'तें (२)' । उ० १. जिन्ह लागि निज परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़ ठायें । (वि० ८३) तेइ (२)-दे० 'तें (२)' । उ० १. हूँ गए, हूँ, जे होहिगे आगे तेइ गनियत बड़भागी । (वि० ६५) तेई-१. वे ही, २. उन्हीं को । उ० १. तेइ पाथें पाइकै षडाइ नाव धोए बिनु । (क० २।१) तेउ-१. वे भी, २. उसका । उ० १. सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ । (वि० ८६) तेऊ-वे भी, वह भी । उ० नाम जीहँ जपि जानहि तेऊ । (मा० १।२।२) तेपि-(ते+अपि)-वे भी । उ० तेपि कामबस भए बियोगी । (मा० १।८५।४) तेहि-दे० 'तेहि' । तेहि-(सं० ते)-१. उसे, उसको, २. वह, उस, ३. उसी में, ४. इसी, यही, उसी । उ० १. तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति । (वि० १२०) २. गाधि सुवन तेहि अवसर अवध सिधायउ । (जा० १६) ४. तेहि तें कहहि संत श्रुति डेरें । (मा० १।१६।१२) तेही-१. उसको, उसी को, ३. वह, उस, तेहूँ-उस, उसी । उ० तेहूँ तुलसी को लोग भलो भलो कहै ताको । (क० ७। ६४)
 तें (३)-(सं० त्वम्)-१. तुमको, २. तुम्हारा, तेरा, आपका,

३. तेरे लिए । ते (३)-दे० 'तें (३)' । उ० २. भजामि ते पदांबुजं । (मा० ३।४। छं० १) तेइ (३)-दे० 'तें (३)' । तें (४)-(?)-थे । उ० कीबे को बिसोक लोक लोक पालहु तें सब । (क० ७।१०) ते (४)-दे० 'तें (४)' । उ० माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि । (दो० ४६४)
 तेज (१)-(सं० तेजस्)-१. कांति, चमक, आभा प्रकाश, २. पराक्रम, बल, ३. ताप, उष्णता, ४. तत्व, हीर, ५. बीर्य, ६. प्रताप, दबदबा, ७. उग्रता, तेज़ी, ८. मक्खन, ९. सोना, स्वर्ण, १०. सत्वगुण से उत्पन्न लिंग शरीर, ११. भेद, चर्बी, १२ पंच महाभूतों में से तीसरा भूत जिसमें ताप और प्रकाश होता है । अग्नि । उ० १. विमल-विज्ञानमय, तेज-विस्तारिनी । (वि० ४८) तेजपुंज-(सं०)-१. तेजयुक्त, बड़ा प्रतापी, २. सूर्य, भानु । उ० १. दूसर तेजपुंज अति भ्राजा । (मा० १।३०।१४) तेज-राशि-(सं०)-दे० 'तेजपुंज' । तेजरासी-दे० 'तेजराशि' । उ० २. कीस-कौतुक-केलि-लूम-लंका-दहन दलन-कानन-तरुन तेजरासी । (वि० २६) तेजवंत-तेजस्वी, तेजवाला, प्रतापी । उ० तेजवंत लघु गनिअ न रानी । (मा० १. २५६।३) तेजहत-तेजहीन, बिना कांति या प्रताप का । उ० भयउ तेजहत श्री सब गई । (मा० ६।३५।२)
 तेज (२)-(फा० तेज)-१. तीक्ष्ण, जिसकी धार तेज़ हो, २. शीघ्रगामी, ३. फुरतीला, ४. अधिक, ज्यादा, ५. चंचल, चपल, ६. महुँगा, गिराँ ।
 तेजु (१)-दे० 'तेज (१)' । उ० ११. घटइ तेजु बलु मुख-छबि सोई । (मा० २।३२५।१)
 तेजु (२)-दे० 'तेज (२)' ।
 तेजसी-(सं० तेजस्विन्)-तेजवाला, तेजस्वी, प्रतापी । उ० रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिअ न ताहु । (मा० १।१७०)
 तेजी-(फा० तेज)-महुँगी, गिरानी । उ० तेजी माटी मगहु की मृगमद साथ जू । (क० ७।१६)
 तेते-(सं० तावत्)-उतने, उस कदर, तितने । उ० सकिन्ह सहित सकल सुर तेते । (मा० १।५४)
 तेन-(सं०)-१. उसके द्वारा, उससे, २. वे, वे सब, उन सब ने । उ० २. तेन तसं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं । (वि० ४६)
 तेरसि-(सं० त्रयोदशी)-किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि । उ० तेरसि तीन अवस्था तजहुँ भजहुँ भगवंत । (वि० २०३)
 तेरहुति-दे० 'तिरहुति' । उ० जेहि तेरहुति तेहि समय निहारी । (मा० १।२८५।४)
 तेरहुति-दे० 'तिरहुति' । उ० चले चित्रकूटाहि भरत चार चले तेरहुति । (मा० २।२७१)
 तेरि-दे० 'तेरी' । उ० नीको तुलसीदास को तेरि ही निकाई । (वि० ३५)
 तेरिए-तेरा ही, तेरा ही है । उ० बूझिपु बिलंब अवलंब मेरे तेरिए । (ह० ३४) तेरी-(प्रा० तुम्हकरको, हि० तेरा)-तुम्हारी, आपकी । उ० तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी । (वि० ३४) तेरे-तुम्हारे, आपके । उ० तेरे देखत सिंह को सिसु-मेढक लीले । (वि० ३२) तेरेऊ-

तेरे ही, आपके ही । उ० जानत हौं कलि तेरेइ मनु गुन-गन कीले । (वि० ३२)

तेरो-तुम्हारा, तेरा, आपका । उ० खायो खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे । (वि० ३३)

तेल-(सं० तैल)-१. तैल, रोगन, २. स्नेह, ३. चिकनाई । उ० १. तेल नाव भरि नृप तनु राखा । (मा० २।१५।१) मु० तेल चढ़ावहि-विवाह के नियमानुसार हल्दी मिला तेल अंग पर मलते हैं । उ० करि कुल रीति, कलस थपि तेलु चढ़ावहि । (जा० १२६)

तेला-तेल, रोगन । उ० रहा न नगर बसन घृत तेला । (मा० १।२५।३)

तेलि-(सं० तैल)-तेली, तेल पेरकर बेंचनेवाली एक जाति । उ० ते बरनाथम तेलि कुम्हारा । (मा० ७।१०।३)

तेषां-(सं०)-उनपर, उनसे । उ० ये पठति नरा भक्त्या तेषां शंभुः प्रसीदति । (मा० ७।१०।२। श्लो० ६)

तै (१)-(सं० त्वं)-१. तू, तुम, २. आप, ३. तैंने, तूने । उ० १. अहंवाद 'मैं तै' नहीं दुष्ट संग नहि, कोइ । (वै० ३०)

तै (२)-(सं० तस)-से ।

तैलिकयंत्र-(सं०)-कोल्हू । उ० समर-तैलिकयंत्र तिल-तमी-चर-निकर पेरी डारे सुभट घालि घानी । (वि० २५)

तैसइ-(सं० ताइस, प्रा० ताइस, हि० तैसा)-वैसे ही, उसी प्रकार । उ० तैसइ सील रूप सुबिनीता । (मा० ३।२४।२) तैसिये-वैसी ही, उसी तरह, उसी तरह है । उ० तैसिये लसति नव पल्लव खोही । (गी० २।२०) तैसी-वैसी, वैसी ही । उ० तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वार्थ सारथी । (पा० २२१) तैसे-दे० 'तैसे' । उ० ईस अनीसहि अंतरु तैसे । (मा० १।७०।१) तैसे-वैसे, उसी प्रकार से । उ० तैसे ही गुन-दोख-गत प्रगटत समय सुभाय । (सं० १६४) तैसेहि-वैसे ही, उसी प्रकार । उ० तैसेहि भरतहि सेन समेता । (मा० २।२३।४)

तैसो-वैसा ही, वैसा, उसी प्रकार का । उ० स्वामी सीय सखिन्ह लखन तुलसी को तैसो । (गी० १।६६)

तैहै-(सं० ताप)-संतप्त करेगी, जलावेगी ।

तो (१)-(सं० तव)-तेरा, तुम्हारा । उ० तो बिलु जगदंब गंग ! कलिजुग का करित ? (वि० १६) तोकहँ-तुम्हें, तुम्हको । तोको-तुम्हको, तुम्हें । उ० भयो सुगम तोको अमर-अगम तनु समुक्ति धौं कत खोवत अकाथ । (वि० ८७) तोहिं-१. तुम्हें, २. तुम्हमें, तुम्हसे । उ० २. तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै । (वि० ७६) तोहिं-तुम्हको, तुम्हें, तुम्हको । उ० मोपर कीबे तोहिं जो करि लेहि त्रिया रे । (वि० ३३) तोहीं-१. तुम्हको, आपको, २. आपसे । तोहीं-१. तुम्हसे, आपसे, २. तुम्हको, आपको । उ० १. रामु कवन प्रभु पृछउं तोही (मा० १।४६।३) तोहूँ-तुम्हें भी, आपको भी । उ० ताते हौं देत न दूषन तोहूँ । (गी० २।६१) तोहूँ-तुम्हको भी, तुम्हें भी । उ० तोहूँ है बिदित बल महाबली बालि को । (क० ६।११)

तो (२)-(सं० तद्)-तब, उस दशा में, तब फिर ।

तो (३)-(हि० हतो)-था, रहा । उ० देखी मैं दसकंठ-सभा सब, मोते को उन सबल तो । (गी० १।१३)

तोखपोख-(सं० तोष + पोषण)-भरण-पोषण । उ० रसना मंत्री दसन जन तोखपोख सब काज । (सं० ७००)

तोतर-(अनु० तुतुलाना)-तुतला या अस्पष्ट बोलनेवाला । तोतरी-तुतली, तोतली, तुतलाती हुई । उ० तोतरी बोलनि, बिलोकनि मोहनी मन हरनि । (गी० १।२५)

तोतरे-तुतले, तोतले । उ० अति प्रिय मधुर तोतरे बोला । (मा० १।१६।१५)

तोतरात-तुतलाते हुए । उ० पूछत तोतरात वात मातहि जदुराई । (क० १)

तोतरि-तोतली, अस्पष्ट । उ० जौं बालक कहँ तोतरि बाता । (मा० १।८।५)

तोपची-[तु० तोप + ची (प्रत्यय)]-तोप चलानेवाला, गोलं-दाज । उ० काल तोपची तुपक महि, दारु-अनय कराल । (दो० ५१५)

तोपिहँ-(सं० छोपन)-तोपेंगे, ढक लेंगे, पाट देंगे । उ० तुलसी बड़े पहार लै पयोधि तोपिहँ । (क० ६।१) तोपै-तोपते हैं, पाट रहे हैं, ढक रहे हैं । उ० तोपै तोय-निधि, सुर को समाज हरषा । (क० ६।७) तोप्यो-तोपा, ढक दिया, घेर लिया । उ० बरवि बान रघुपति रथ तोप्यो । (मा० ६।६३।२)

तोम-(सं० स्तोम)-समूह, ढेर । उ० तीतर-तोम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है । (क० ६।२६) तोमनि-समूहों, तोम का बहुवचन । उ० महामीन बास तिभि-तोमनि को थल भो । (ह० ७)

तोमर-(सं०)-१. भाले की तरह का एक पुराना हथियार २. एक छंद, ३. बरछा, साँग । उ० १. सर चाप तोमर सक्ति सुल कृपान परिव परसु धरा । (मा० ३।१६। छं० १)

तोय-(सं०)-पानी, जल ।

तोयनिधि-(सं०)-समुद्र । उ० सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस । (मा० ६।५)

तोर-(प्रा० तुम्हकरको)-तुम्हारा, आपका । उ० प्रनतपाल प्रन तोर मोर प्रन जिअउं कमलपद देखे । (वि० ११३)

तोरइ-(सं० नुट)-तोड़ता है, दो खंड करता है । तोरन (१)-तोड़ने के लिए, २. तोड़नेवाला, ३. तोड़ना । तोरब-१. तोड़ेंगे, २. तोड़ेंगा ३. तोड़ना । उ० १. राम चाप तोरब सक नाहीं । (मा० १।२४।११) ३. रहउ चढ़ाउब तोरब भाई । (मा० १।२५।११) तोरहुँ-तोड़ें, तोड़ डालें । उ० तोरहुँ राम गनेस गुसाई । (मा० १।२५।१४) तोरा (१)-तोड़ा, टूक टूक किया, अंग किया । तोरि (१)-तोड़कर । उ० तोरि जमकातरि मँदोदरी कड़ोरि आनी, रावन की रानी मेघनाद महतारी है । (ह० २७) तोरिबे-तोड़ने, खंड-खंड करने । उ० मैं तव दसन तोरिबे लायक । (मा० ६।३४।१) तोरी (१). १. तोड़कर, २. तोड़ दी । तोरें (१)-तोड़े, खंडन किए । उ० बिनु तोरें को कुअरि बिआहा । (मा० १।२४।३) तोरे (१)-१. तोड़े, तोड़ा, २. तोड़ने पर, ३. तोड़ने से । तोरेंउं-तोड़े, तोड़ डालें । उ० कपि सुभाव ते तोरेंउं रूखा । (मा० १।२२।२) तोरेंहुँ-तोड़ने पर । उ० तोरेंहुँ धनुषु ब्याहु अचगाहा । (मा० १।२४।३) तोरें-तोड़ने, टूक टूक करने । उ० फल खापसि तरु तोरें लागा । (मा० १।१८।१) तोरैं-तोड़, तोड़ डालें । उ०

असि रिस होति दसउ मुख तोरौं । (मा० ६३४१)
 तोरयो-तोड़ा, तोड़ डाला । उ० राज सभा रघुवर मृनाल
 ज्यों संभु-सरासन तोरयो । (गी० ११००)
 तोरण-(सं०)-१. एक काठ का टुकड़ा जो विवाहादि के
 अवसर पर द्वार पर बाँधते हैं, २. फूल माला या पत्ती
 आदि से युक्त रस्सी जो शुभ अवसरों पर दरवाजे पर
 बाँधते हैं, वंदनवार, ३. बाहरी फाटक ।
 तोरन (२)-दे० 'तोरण' । उ० २. तोरन बितान पताक चामर
 धुज सुमन फल-घौरि । (गी० ७११८)
 तोरा (२)-(प्रा० तुम्हकरको)-तुम्हारा, आपका । उ०
 कृष्ण तनय होइहि पति तोरा । (मा० ११८१)
 तोरी (२)-तेरी, तुम्हारी, आपकी । उ० तब धरि
 जीम कदावउँ तोरी । (मा० २१४४) तोरे (२)-
 तुम्हारी, आपकी । उ० देवि मागु बरु जो रुचि तोरे ।
 (मा० ११९०२) तोरे (२)-तेरे, तुम्हारे । उ० मम
 समान पुन्य पूज बालक नहि तोरे । (कृ० १)
 तोरा (३)-(सं० त्वरा) शीघ्रता, वेग, जल्दी ।
 तोराई-१. तोड़ा कर, तोड़कर, तुड़ाती हुई, २. तोड़ाया ।
 उ० १. छुद्र नदी भरि चलीं तोराई । (मा० ४१४३)
 तोरावति-(सं० वृष्ट)-१. तोड़ाती है, २. तोड़ करनेवाली,
 ज़ोरदार । उ० २. विपम विपाद तोरावति धारा । (मा०
 २१७६२)
 तोरि (२)-(प्रा० तुम्हकरको) तुम्हारी, आपकी, तेरी । उ०
 काम-लोछुप भ्रमत मन हरि-भगति परिहरि तोरि ।
 (वि० १९८)
 तोप-(सं०)-१. अघाने या भरने का भाव, तृप्ति, संतोष,
 २. आनंद, खुशी, ३. अल्प, थोड़ा, ४. श्रीकृष्ण के एक
 सखा का नाम । उ० १. वीर बर बिराग तोप सकल संत
 आदरे । (वि० ७४) तोप-पोष-भरण पोषण । उ० रसना
 मंत्री, दसनजन, तोप-पोष निज काज । (दो० ५२५)
 तोषक-(सं०)-प्रसन्नया संतुष्ट करनेवाला, तृप्त करनेवाला ।
 उ० भव भ्रम सोषक तोषक तोषा । (मा० १४३२)
 तोषन-१. तोषना, तृप्त करना, संतुष्ट करना, २. प्रसन्न
 करनेवाला, संतुष्ट करनेवाला, ३. तृप्ति, संतोष । उ० २.
 हरि तोषन अत द्विज सेवकाई । (मा० ७१०६६)
 तोषनिहारा-संतुष्ट करनेवाला, प्रसन्न करनेवाला । उ०
 तनय मातु पितु तोषनिहारा । (मा० २१४१४)
 तोषये-(सं०)-तृप्ति के लिए, प्रसन्नता के लिए । उ०
 रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये । (मा० ७१०८१
 श्लो० ६) तोषा-क. दे० 'तोप', ख. तृष्ट किया, प्रसन्न किया ।
 उ० क १. भव भ्रम सोपक तोषक तोषा । (मा० १४३२)
 तोषि-संतुष्ट कर, प्रसन्न होकर । उ० माँग कोषि तोषि पोषि
 फ़ैलि फ़ूलि फ़रि कै । (गी० ११७०) तोषिए-१. संतुष्ट
 कीजिए, २. प्रसन्नता के लिए, ३. जिसके द्वारा संतुष्ट
 हुए । उ० १. तुलसिदास हरि तोषिए सो साधन नाहीं ।
 (वि० १०६) तोषि पोषि-प्रसन्न होकर । उ० दे० 'तोषि' ।
 तोषिहैं-संतुष्ट करेंगे । उ० जोगिनी जमाति कालिका
 कलाप तोषिहैं । (क० ६१२) तोषे-१. तृप्त हुए, प्रसन्न हुए,
 २. संतुष्ट किया, ३. तृष्ट करने से । उ० २. लाले पाले पोषे
 तोषे आलसी अभागी अवी । (वि० २५३) तोषेउ-प्रसन्न

हुए । उ० प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना । (मा० १
 ७७३)
 तोहारा-तुम्हारा, आपका । उ० परसु सहित बड़ नाम
 तोहारा । (मा० ११२२११)
 तौकी-(सं० ताप) तौक कर, गर्म होकर । उ० चारु चुवा
 चहुँ ओर चलैं, लपटैं भूपटैं सो तमीचर तौकी । (क०
 ७१४३)
 तौसियत-(?)-तपे जाते हैं, जले जाते हैं । उ० तात तात,
 तौसियत, कौसियत झारहीं । (क० ५१९५)
 तौ (१)-तो, तो फिर । उ० तौ प्रसन्न होइ यह बर देहु ।
 (मा० ११४६२)
 तौ (२)-(सं०) वे दोनों । उ० सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ
 भक्तिप्रदौ तौ हि नः । (मा० ४१ श्लो० १)
 तौ (३)-तब । तौलगि-(सं० तद् + लगने) तौलों, तब तक,
 उस समय तक ।
 तौलि-(सं० तौल) तौलकर, जोखकर । उ० मैं मति-तुला
 तौलि देखी भइ, मेरिहि दिसि गरुआई । (वि० १७१)
 तौलिप-१. तौला करती हैं, २. तौलिप, वजन कीजिए ।
 उ० १. देव, पितर, ग्रह पूजिये तुला तौलिप धी के ।
 (गी० ११९२)
 त्यक्त-(सं०)-त्यागा हुआ । उ० गुरु गिरा-गौरवामर सुदु-
 स्थज-राज त्यक्त श्री सहित, सौमित्रि आता । (वि० ५०)
 त्याग-(सं०)-१. छोड़ना, तजना, उत्सर्ग, २. दान, ३.
 विरक्ति, वैराग्य । उ० १. संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ।
 (मा० १६११)
 त्यागह-त्याग देता है, छोड़ता है । उ० मनि बिनु फनि,
 जलहीन मीन तनु त्यागह । (पा० ६७) त्यागत-त्यागते हैं,
 छोड़ देते हैं । उ० मुनि त्यागत जोग भरोस सदा । (मा०
 ७१४७) त्यागब-१. त्यागना, छोड़ना, २. त्यागूँगा, ३.
 त्यागना चाहिए । उ० ३. त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि
 हाटक तुन की नाई । (वि० १२४) त्यागहि-त्यागते,
 त्यागते हैं । उ० सम सीतल नहि त्यागहि नीती । (मा०
 ३१६१) त्यागहु-१. त्यागो, छोड़ो, छोड़ दो, २. छोड़
 रहे हो । उ० १. सखा सोच त्यागहु बल मोरें । (मा०
 ४७६५) त्यागहु-त्यागो, छोड़ दो । उ० नर बिबिध कर्म
 अघर्म बहुमत सोकप्रद सब त्यागहु । (मा० ३३६६७१)
 त्यागा-छोड़ा, छोड़ दिया । उ० जबतैं सतीं जाइ तनु त्यागा ।
 (मा० १७५४) त्यागि-१. त्यागकर, छोड़कर, २. छोड़,
 छोड़ो । १. त्यागि सब आस संत्रास भव पास-असि-
 निसित हरिनाम जपु दास तुलसी । (वि० ४६) त्यागिहै-
 त्यागो, छोड़ेगा । उ० कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ,
 कुटिल कपट कब त्यागिहै । (वि० २२४) त्यागी-१. छोड़-
 कर, त्यागकर, २. त्यागनेवाला, ३. साधु, विरक्त, संन्यासी ।
 उ० १. वृत्र बलि बाण प्रह्लाद मय व्याघ गज गृध्र द्विज-
 बंधु निज धर्म-त्यागी । (वि० ५७) त्यागू-१. त्याग, उत्सर्ग,
 छोड़ना, २. त्यागो । उ० १. आञ्ज सुफल तपु तीरथ
 त्यागू । (मा० २१०७३) त्यागे-१. छोड़े, छोड़ दिए, २.
 २. छोड़ दिया है, ३. छोड़ने पर । उ० १. तिन्ह सब
 भोग रोग सम त्यागे । (वि० १२८) त्यागेउ-छोड़ा,
 छोड़ दिया । उ० बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ । (मा०

११४५१) त्यागै-छोड़े, छोड़ता। उ० देखत सुनत बिचारत यह मन निज सुभाव नहिं त्यागै। (वि० ११६) त्यागो-त्यागूंगा, छोड़ूंगा। उ० जौ तुम त्यागो राम हौ तो नहिं त्यागो। (वि० १७७) त्यागो-छोड़ो, छोड़ोगे, छोड़ भी दोगे। उ० दे० 'त्यागो'।

त्यो-(सं० तत् + एवम्)-१. उस प्रकार, उसी तरह, २. उसी समय, तत्काल। उ० १. सादर बारहिं बार सुभाय चित्तै तुम त्यो हमरो मन मौहैं। (क० २।२१) मु० त्यो-त्यो-वैसे ही वैसे, उसी प्रकार। उ० त्यो-त्यो सुकृत सुभट कलि भूपहिं निदरि लगे बहि काढ़न। (वि० २१)

त्रपा-(सं०)-लज्जा, शर्म। उ० भव धनु दलि जानकी बिवाही भए बिहाल नृपाल त्रपा है। (गी० ७।१३)

त्रय-तीन। उ० त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिम्। (मा० ७।६) श्लो० ४) त्रय-(सं०)-तीन। उ० त्रयनयन मयन-मर्दनमहेस। (वि० १३) त्रयकाल-भूत, भविष्यत और वर्तमान काल। उ० तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहँ। (वि० १३६) त्रयताप-दैहिक, दैविक, भौतिक नामक तीन दुःख या ताप। उ० विमल विपुल बहसि-बारि, सीतल त्रयताप हारि। (वि० १७) त्रयनयन-(सं०)-तीन आँखवाले। शिव। उ० त्रयनयन, मयन-मर्दन महेस। (वि० १३) त्रयरेखा-पेट पर पढ़ जानेवाली तीन रेखाएँ, त्रिबली। उ० कटि किंकिनी उदर त्रयरेखा। (मा० १।१६१।२) त्रयलोक-दे० 'त्रिलोक'। त्रयवर्ग-१. अर्थ, धर्म और काम, २. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ३. वृद्धि स्थिति और नाश, ४. त्रिफला, ५. त्रिकुटा। उ० १. संत संसर्ग-त्रयवर्ग पर परमपद प्राप, निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने। (वि० २७) त्रयव्याधि-आधिदैहिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक नाम की तीन व्याधियाँ या रोग।

त्रयी-(सं०)-तीन का समूह। उ० अद्भुत त्रयी किधौ पठई है बिधि मग-लोगान्दि सुख दैन। (गी० २।२४)

त्रसित-(सं० त्रस्त)-१. डरा हुआ, भयभीत, २. दुखित, ३. सताया हुआ। उ० १. त्रसित परेउ अवनो अकुलाई। (मा० १।१७४।४)

त्रसे-डरे, डर गए। उ० मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे। (मा० ६।६१। छं० १) त्रस्यो-१. त्रस्त, भयभीत, डरा हुआ, २. डरा। उ० १. करम-कपीस बालि बली त्रास त्रस्यो हौ। (वि० १८१)

त्रस्तं-दे० 'त्रसित'। उ० १. त्राहि रघुवंस भूषन कृपाकर कठिन काल-विकराल-कलि-त्रास त्रस्तं। (वि० २६)

त्रस्त-(सं०)-दे० 'त्रसित'।

त्राण-(सं०)-१. रक्षा, बचाव, २. कवच, ३. रक्षित।

त्रात-दे० 'त्राता'।

त्रातहि-रक्षा करनेवाले को। उ० पलक नयन ह्व सेवक त्रातहि। (मा० ७।३०।२) त्राता-(सं० त्रातृ)-रक्षक, रक्षा करनेवाला। उ० पाप संताप घनघोर संसृति, दीन अमृत जगयोनि नहिं कोपि त्राता। (वि० ११)

त्रातृ-रक्षा करे, बचावे। उ० त्रातृ सदा नोभव खग बाजः। (मा० ३।११।३)

त्रान-दे० 'त्राण'। उ० १. नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया। (मा० २।२१।६।३)

त्राना-दे० 'त्राण'। उ० १. नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। (मा० ६।८०।२)

त्रास-(सं०)-१. भय, डर, २. कष्ट, तकलीफ। उ० १. त्राहि रघुवंस भूषन कृपाकर कठिन काल-विकराल-कलि-त्रास त्रस्तम्। (वि० २६)

त्रासइ-डराता, त्रास देता। उ० तेहि बहु विधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना। (मा० १।१८३। छं० १) त्रासहु-डराओ, भय दिखलाओ। उ० सीतहि बहुविधि त्रासहु जाई। (मा० ५।१०।४)

त्रासक-डरानेवाला, भयंकर, डराकर भगानेवाला। उ० त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। (मा० १।४०।२)

त्रासकारी-दे० 'त्रासक'। उ० रिच्छ मर्कट विकट सुभट उद्भद, समर सैल-संकासरिपु-त्रासकारी। (वि० ५०)

त्रासन-१. भयभीत, २. त्रास का बहुवचन, ३. त्रास देने-वाला, डरानेवाला। उ० १. को न लोभ इद फंद बाधि त्रासन करि दीन्हों। (क० ७।११७)

त्रासा-त्रास, डर, भय। उ० भागि भवन पैठीं अति त्रासा। (मा० १।६६।३)

त्रासित-भयभीत, डरा हुआ। उ० एक एक रिपु ते त्रासित जन तुम राखे रघुवीर। (वि० ६३)

त्राहि-रक्षा करो, बचाओ। उ० त्राहि रघुवंस भूषन कृपाकर कठिन काल-विकराल-कलि-त्रास त्रस्तम्। (वि० २६)

त्रि-(सं०)-तीन।

त्रिकाल-(सं०)-१. तीनों काल, भूत, वर्तमान और भविष्य, २. प्रातः मध्याह्न और सायं। त्रिकालग्य-(सं० त्रिका-लज्ज)-भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों को जानने वाला। उ० त्रिकालग्य सर्वग्य तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारि। (मा० १।६६) त्रिकालदरसी-(सं० त्रिकालदर्शिन)-दे० 'त्रिकालग्य'। उ० तुम्ह त्रिकालदरसी मुनिनाथा। (मा० २।१२५।४)

त्रिकूट-(सं०)-१. तीन चोटियोंवाला पर्वत, २. वह पर्वत जिस पर लंका बसी हुई मानी जाती है। ३. एक कल्पित पर्वत जो सुमेरु पर्वत का पुत्र माना जाता है। ४. योग शास्त्रानुसार शरीर के छः चक्रों में से प्रथम। उ० २. कोसलराज के काज हौ आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौ। (क० ६।१४)

त्रिकोण-(सं०)-१. जिसमें तीन कोण हों, २. योनि, भग।

त्रिगुण-(सं०)-१. सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों का समूह, २. तीन गुणा।

त्रिगुणा-(सं०)-१. दुर्गा, भगवती, २. तन्त्र में एक प्रसिद्ध बीज।

त्रिगुन-दे० 'त्रिगुण'। उ० १. तीज त्रिगुन-पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद। (वि० २०३)

त्रिजग (१)-(सं० त्रिजगत्)-आकाश, पाताल और पृथ्वी नामक तीनों लोक।

त्रिजग (२)-(सं० त्रिर्गक)-देहा चलनेवाला जीव, पशु तथा कीड़े मकोड़े। उ० त्रिजग देव नर असुर समेते। (मा० ७।८७।३)

त्रिजटा-(सं०)-सीता की अशोकवाटिका में सेवा करने-वाली एक राक्षसी। उ० त्रिजटा नाम राक्षसी एका। (मा० १११११) कथा-त्रिजटा विभीषण की बहन थी। यह बड़े अच्छे स्वभाव की थी। सीता जब अशोकवाटिका में थी तो यह उनकी सेवा किया करती थी तथा उनसे तरह-तरह की बातें कर उनका दुःख दूर किया करती थी। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि यह प्रायः एक बार में तीन बातें कहा करती थी।

त्रिताम-दैहिक, दैविक और भौतिक तीन ताप या दुःख। उ० नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिण। (क० ७।७६)

त्रिदश-(सं०)-देवता सुर।

त्रिदस-दे० 'त्रिदश'। उ० तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुण-पर, त्रिपुर मथन जय त्रिदस वर। (क० ७।१५०)

त्रिदोष-(सं०)-१. बात, पित्त और कफ ये तीन दोष, २. बात, पित्त और कफ जनित रोग, सन्निपात। इसमें रोगी अकबक करता है। उ० २. भाल की, कि काल की, कि रोष की, त्रिदोष की है। (ह० २६) त्रिदोष-त्रिदोषयुक्त, सन्निपात से पीड़ित। उ० कैथी कूर काल बस तमकि त्रिदोषे है। (गी० १।६३)

त्रिधा-(सं०)-तीन तरह से, तीन प्रकार से। उ० त्रिधा देहगति एक विधि कबहुँ ना गति आन। (स० १७६)

त्रिपथ-(सं०)-१. तीन पथ, आकाश, पाताल, पृथ्वी, २. कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गों का समूह। उ० १. ईस सीस बससि, त्रिपथ लससि नभ-पाताल-धरनि। (वि० २०) २. तुलसी त्रिपथ बिहाय गो राम दुआरे वीन। (दो० ६६)

त्रिपथगा-(सं०)-स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों से बहनेवाली, गंगा। उ० त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पाप-झालिका। (वि० १७)

त्रिपथगामिनि-दे० 'त्रिपथगा'। उ० त्रिपथगामिनि-जसु बेद कहै गाइ कै। (क० २।६)

त्रिपथगामिनी-(सं०)-दे० 'त्रिपथगा'।

त्रिपुंड-(सं० त्रिपुंड)-तीन आँधी रेखाओं का तिलक जो शैव या शाक्त लोग ललाट पर लगाते हैं। उ० भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा। (मा० १।२६२।२)

त्रिपुर-महाभारत के अनुसार वे तीनों नगर जो तारकासुर के तारकाक्ष, कमलाक्ष और विष्णुमाला नामक तीनों पुत्रों ने मय दानव से अपने लिए बनवाये थे। इनमें एक नगर सोने का और स्वर्ग में था। दूसरा चाँदी का और अंतरिक्ष में था और तीसरा लोहे का मर्त्यलोक में था। जब इन तीनों राक्षसों का अत्याचार बहुत बढ़ गया तो शिव ने एक ही वाण से तीनों लोकों को नष्ट कर डाला और फिर उन राक्षसों को मार डाला। इसीलिए शिव का नाम त्रिपुरारि है। उ० दारुन दनुज जगत-दुखदायक जायथो त्रिपुर एक ही बान। (वि० ३) त्रिपुरआराती-शिव, महादेव। उ० तदपि न कहैउ त्रिपुरआराती। (मा० १। ५७।७)

त्रिपुरमथन-शिव, महादेव। उ० तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुण-पर त्रिपुरमथन जय त्रिदसवर। (क० ७।१५०)

त्रिपुरारि-(सं०)-महादेव। दे० 'त्रिपुर'।

त्रिपुरारी-दे० 'त्रिपुरारि'।

त्रिबली-(सं०)-पेट पर पड़नेवाली तीन रेखाएँ। ये रेखाएँ सुन्दर मानी गई हैं। उ० त्रिबली उदर गँभीर नाभि-सर जहँ उपजे विरंचि हानी। (वि० ६३)

त्रिविक्रम-(सं० त्रिविक्रम)-वामन भगवान, विष्णु के एक अवतार। उ० जबहि त्रिविक्रम भए खरारी। (मा० ४। २६।४)

त्रिविध-(सं० त्रिविध)-दे० 'त्रिविध'। उ० १. सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिविध ज्वर करत फिरत बौराई। (वि० ८१) ४. चली सुहावनि त्रिविध बयारी। (मा० १।१२६।२)

त्रिविधि-तीन गुना, तिगुना। उ० त्रिविधि एक-विधि प्रभु-अगुन प्रजहि सवारहि राउ। (स० ६८६)

त्रिवेनिहि-(सं० त्रिवेणी)-त्रिवेणी पर, गंगा, जमुना और सरस्वती के संगम पर। उ० कीन्ह प्रनामु त्रिवेनिहि आए। (मा० २।२०४।२) त्रिवेनी-त्रिवेणी में। दे० 'त्रिवेणी'। उ० २. सादर मज्जहि सकल त्रिवेनी। (मा० १।४४।२) त्रिवेनी-दे० 'त्रिवेणी'। उ० २. भरत बचन सुनि माऊ त्रिवेनी। (मा० २।२०५।३)

त्रिभंग-(सं०)-१. तीन जगह से टेढ़ी, २. खड़े होने की एक मुद्रा जिसमें पेट, कमर और गरदन में कुछ टेढ़ापन रहता है। उ० २. मुरली तान-तरंग मोहे कुरंग बिहग, जोहँ मूरत त्रिभंग निपट निकट है। (क० २०)

त्रिभुवन-(सं०)-तीनों लोक अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल। उ० अंधियारे मेरी बार क्यों त्रिभुवन उजियारे ! (वि० ३३)

त्रिभुवनपति-(सं०)-विष्णु, त्रिलोकीनाथ, तीनों लोकों के स्वामी। उ० विरवभर, श्रीपति, त्रिभुवनपति बेद-बिदित यह लीख। (वि० ६८)

त्रिसुहानी-(सं० त्रि + प्रा० सुहाना)-१. वह स्थान जहाँ तीन ओर से नदियाँ आकर मिलें। तिसुहानी। २. वह स्थान जहाँ तीन रास्ते मिलें।

त्रिय-(सं० स्त्री)-स्त्री, औरत। उ० रे त्रिय चोर कुमारग-गामी। (मा० ६।३३।३)

त्रिया-(सं० स्त्री)-स्त्री, औरत, वामा।

त्रिरेख-(सं०)-उदर पर पड़नेवाली तीन रेखाएँ, त्रिबली। उ० उदर त्रिरेख मनोहर सुंदर नाभि गँभीर। (गी० ७।२१)

त्रिलोक-(सं०)-स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीन लोक, त्रिभुवन। उ० एतनो परेखो सब भाँति समरथ आहु, कपिनाथ साँची कहौ को त्रिलोक तोसो है ? (ह० २६)

त्रिलोकपति-(सं०)-विष्णु, तीनों लोकों के स्वामी। उ० तुलसी बिसोक है त्रिलोकपति-लोक गयो। (क० ७।७६)

त्रिलोचन-(सं०)-१. शिव, महादेव, २. काशी में एक तीर्थस्थान। उ० १. तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुण-पर, त्रिपुर मथन जय त्रिदसवर। (क० ७।१५०)

त्रिवलि-दे० 'त्रिबली'।

त्रिवली-दे० 'त्रिबली'।

त्रिविध-(सं०)-१. तीन प्रकार की, तीन तरह की, २. सात्त्विक, राजसिक और तामसिक, ३. मन कर्म और बचन, ४. शीतल, मंद और सुगंध, ५. दैहिक, दैविक, और

भौतिक, ६. तन, जन और धन, ७. जन्म, जरा, और मरण, ८. व्यापक, ध्वन्यात्मक, और वर्णात्माक ।
 त्रिवेणी-(सं०)-१. तीन नदियों का संगम, २. गंगा, जमुना और सरस्वती का संगम जो प्रयाग में है । ३. हठयोग में इडा, सुषुम्ना और पिंगला, इन तीन नाड़ियों का संगम ।
 त्रिशिर-(सं०)-१. त्रिशिरा । तीन मस्तकवाला एक राक्षस जो रावण का भाई था । खर-दूषण के साथ दंडकवन में राम के हाथ से यह मारा गया । २. ज्वर पुरुष जिसे बाणासुर की सहायता के लिए शिव ने उत्पन्न किया था और जिसके तीन सिर, तीन पैर, छः हाथ और नौ आँखें थीं । उ० १. जयतिखर-त्रिशिर दूषण-चतुर्दश सहस्र-सुभट मारीच-संहारकर्ता । (वि० ४३)
 त्रिसिरा-दे० 'त्रिशिर' । उ० १. खर दूषण त्रिसिरा अरु बाली । (मा० १२१५)
 त्रिशंकु-(सं०)-एक राजा । राजमद से इनकी सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा हुई । इन्होंने वशिष्ठ से यह कहा, पर उन्होंने इसे असंभव बतलाया । फिर इन्होंने वशिष्ठ के पुत्र से कहा पर उन्होंने भी इसे अशक्य कहा । वशिष्ठ के पुत्र ने इन्हें चांडाल होने का श्राप भी दिया क्योंकि ये पिता-पुत्र में विरोध खड़ा करना चाहते थे । त्रिशंकु चांडाल होकर विश्वामित्र के यहाँ पहुँचे । विश्वामित्र ने इनका कहना मान लिया और इसके लिए सभी ऋषियों को बुलाकर यज्ञ आरंभ करवाया । यज्ञ भाग लेने देवता लोग न आए, इस पर रूष्ट हो विश्वामित्र अपने तप के बल से उन्हें सदेह स्वर्ग भेजने लगे । पर उधर से इन्द्र ने त्रिशंकु को नीचे ढकेला । पर विश्वामित्र की शक्ति के कारण वे नीचे पृथ्वी पर न आ सके और तभी से उसी प्रकार बीच में लटकते हैं । इनका मुख नीचे तथा पैर ऊपर है । ये प्रसिद्ध सूर्यवंशी हरिश्चंद्र के पिता थे ।
 त्रिशूल-(सं०)-१. शिव का अस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं । २. दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख ।
 त्रिसंकू-दे० 'त्रिशंकु' । उ० सहस्र बाहु सुरनाथु त्रिसंकू । (मा० २१२११)
 त्रिसिरारि-(सं० त्रिशिरारि)-राम । उ० तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहि त्रिसिरारि । (मा० ४३०क)
 त्रिसूल-दे० 'त्रिशूल' । उ० कर त्रिसूल अरु डमरु विराजा । (मा० ११९२३) त्रिसूलान्धि-त्रिशूलों से । उ० ब्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलान्धि मारि । (मा० ६४२)

त्रुटि-(सं०)-१. कमी, न्यूनता, २. गलती, अशुद्धि, ३. शंका, संशय, ४. छोटी इलायची ।
 त्रेता-(सं०)-चार युगों में से दूसरा युग जो १२६६००० वर्षों का होता है । इस युग में पुराणानुसार आदिमियों की उम्र १०,००० वर्ष तथा मनु के अनुसार ३०० वर्ष की होती थी । उ० एक बार त्रेता युग माहीं । (मा० १४८१)
 त्रै-(सं० त्रय)-तीन ।
 त्रैलोक-(सं० त्रैलोक्य)-तीन लोक, आकाश, पाताल और मर्त्यलोक । उ० तासु सुजसु त्रैलोक उजागर । (मा० १३०२)
 त्रैलोका-दे० 'त्रैलोक' । उ० भयउ कोपु कपेउ त्रैलोका । (मा० ११८७३)
 त्रैलोक्य-१. तीनों लोक की, २. तीनों लोक में । उ० १. संग जनकात्मजा, मनुज मनु सत्य, अज, दुष्ट वधनिरत, त्रैलोक्य-माता । (वि० १०)
 त्रीण-(सं०)-तरकश, तुण्णिर ।
 त्रीन-दे० 'त्रीण' । उ० काल त्रीन सजीव जनु आवा । (मा० ६७१२)
 त्र्यंबक-(सं०)-तीन आँखवाले, शिव ।
 त्वं-तू । उ० आदिमध्यांत भगवंत त्वं सर्वगतमीस पश्यति ये ब्रह्मवादी । (वि० १४)
 त्व (१)-तुम, तू, आप ।
 त्व (२)-(१)-१. काल, समय, २. अन्य, भिन्न ।
 त्वक्-(सं०)-चमड़ा, खाल ।
 त्वच-(सं० त्वचा)-चमड़ा, छाल, खाल । उ० अन्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने । (मा० ७१३१०५)
 त्वत्-(सं०)-तुम्हारा, आपका । उ० त्वदंघ्रि मूल ये नराः । (मा० ३१४०७)
 त्वदीय-(सं०)-तुम्हारा, आपका । उ० त्वदीय भक्ति संयुक्ताः । (मा० ३१४०१२)
 त्वम्-(सं०)-तुम, आप ।
 त्वयि-१. तुम्हारी, आपकी, २. तुम्हारे, आपके । ३. तुममें । उ० २. संत संसर्ग त्रयवर्ग पर परमपद प्राप, निः प्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने । (वि० १७)
 त्वरा-(सं०)-शीघ्रता, जल्दी ।
 त्वरित-(सं०)-शीघ्र, तुरंत ।

थ

थ-(सं०)-१. रक्षण, २. मंगल, ३. भय, ४. भक्षण, ५. एक रोग ।
 थकान-(सं०) स्थान + कृ०, प्रा० थकन्-थकावट, शिथिलता ।
 थकि-थककर, हार कर, लाचार होकर, निरुपाय होकर ।
 उ० जहन्तहँ रहे पथिक थकि नाना । (मा० ४११५६)

थकित-१. थका हुआ, श्रांत, २. सुगंध, माहल, ३. आश्चर्य-चकित, अचंभित, ४. थके हुए हैं । उ० २. थकित होत जिमि चंद्र-चकोरा । (मा० १२१६२)
 ३. थकित होहिं सब लोग लुगाई । (मा० १२०४४)
 थके-१. थक गए, २. थके हुए, ३. मोहित हुए, लुभा गए,

४. टिक गए, ठहर गए। उ० १. थके नयन पद पानि सुमति बल, संग सकल विचुरयो। (वि० १००)
 थन-(सं० स्तन)-गाय, मैस, बकरी आदि चौपायों का स्तन। उ० अंतर अयन अयन भल, थन फल वच्छ वेद-विस्वासी। (वि० २२) थन-धेनु-४ की संख्या। उ० अहि-रसना थन-धेनु रस गनपति-द्विज गुरु बार। (सं० २१)
 थपत-(सं० स्थापन)-स्थापित हो जाता है, ठहर जाता है, शांत हो जाता है। उ० नाम सो प्रतीति प्रीति हृदय सुधिर थपत। (वि० १३०) थापि-स्थापना करके, स्थापित करके। उ० करि कुल रीति, कलस थपि तेलु चढ़ावहि। (जा० १२६) थापिहै-स्थापित करेगा। उ० उथपै तेहि को जेहि राम थपै? थपिहै तेहि को हरि जौ ठरिहै? (क० ७१७) थपे-१. स्थापित, जमे हुए, स्थापित किए हुए, २. स्थापित किए। उ० १. उथपे-थपन थपे-उथपन पन बिबुध बृं-द-बंदिछोर को। (वि० ३१) थपै-स्थापित करे, थापे, जमावे। उ० उथपै तेहि को जेहि राम थपै? थपिहै तेहि को हरि जौ ठरिहै? (क० ७१७) थप्यो-दे० 'थप्यौ'। उ० २. बान्नि से वीर बिदारि सुकंठ थप्यो, हरषे सुर बाजने बाजे। (क० ७११) थप्यो-१. स्थापित किया, जमा दिया, २. राज्य दिया, गद्दी पर बिठलाया।
 थपति-१. थवई, मकान बनानेवाला, २. स्थापित करनेवाला। उ० १. चले सहित सुर थपति प्रधाना। (मा० २१३३३)
 थपन-१. स्थापन, ठहराने या जमाने का काम, २. बैठाना, ठहराना, ३. स्थापन करनेवाला। उ० ३. उथपे-थपन, थपे-उथपन पन बिबुध बृं-द-बंदि छोर को। (वि० ३१)
 थर-थर-(अनु०)-डर से काँपने की मुद्रा। उ० बोली फिरि लखि सखिहि काँपु तनु थर-थर। (पा० ६६)
 थरु-दे० 'थल'। उ० प्रतीति मानि तुलसी बिचारि काको थरु है। (क० ७१३६)
 थल-(सं० स्थल)-१. स्थान, जगह, स्थल, २. पृथ्वी। उ० १. आपनी भलाई थल कहाँ कौन लहैगो? (वि० २५६)
 थलहि-स्थल ही, भूमि ही। उ० जे जल चलहि थलहि की नाई। (मा० ११२६६१४) थलो-स्थल भी, भूमि भी, स्थान भी। उ० तुलसी सुमिरत नाम सबनि को मंगल-मय नभ जल थलो। (गी० १४२)
 थल-चर-(सं० स्थल + चर)-स्थलचारी, मनुष्य आदि भूमि पर रहनेवाले जीव।
 थलपति-(सं० स्थलपति)-राजा। उ० स्रवन नयन मन मग लगे सब थलपति तायो। (वि० २५६)
 थलरुह-(सं० स्थलरुह)-पृथ्वी पर उगनेवाले वृक्ष आदि। उ० उकठेउ हरित भए जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई। (गी० २१६)
 थलु-दे० 'थल'। उ० १. थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा। (मा० २१३३३)
 थवई-(सं० स्थापति, प्रा० थवह)-मकान बनानेवाला, कारीगर, मेमार।
 थहाइवी-(सं० स्था, हि० थाह)-थहाना, गहराई का पता लगाना। उ० धाइ न जाइ थहाइवी सर सरिता अवगाह। (दो० ४४६) थहाओ-दे० 'थहावों'। थहावों-थाह

लगाऊँ, थाहूँ, गहराई का अंदाज़ा लूँ। उ० गोपद बूढ़िबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावों। (वि० २३२)
 थाका-(सं० स्थ + कृ, प्रा० थक्कन)-थक गया, थका, ढीला पड़ गया। उ० गर्जा अति अंतर बल थाका। (मा० ६१२११) थाकी-१. थकी, थक गई, २. ठहर गई, टिक गई। थाके-१. थक गए, थके, २. थक जाने पर, ३. ठहर गए। उ० २. थाके चरन कमल चापौंगी, स्रम भए बाउ डोलावांगी। (गी० २१६) थाकेउ-१. थक गए, थके, २. ठहर गए, रुक गए। उ० २. रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ। (मा० ११३६५) थाको (१)-(सं० स्था + कृ, प्रा० थक्कन)-थका, थक गया, थक गया है, शिथिल पड़ गया। उ० सो पाँवर पहुँचो तहाँ जहाँ मुनि मन थाको। (वि० १५२) थाक्यो-थका, थक गया, थक गया है। उ० अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत बिपति जाल जग छायो। (वि० २४३)
 थाकु-(सं० स्था, हि० थाक)-सीमा, हद्द। उ० मेरे कहाँ थाकु गोरस, को नवनिधि मंदिर थामहि। (क० ५)
 थाको (२)-(?)-तुम्हारा। उ० खब कियो सब को गर्ब थाको। (क० ६१२१)
 थाति-दे० 'थाती'। उ० २. भजे बिकल बिलोकि कलि अव-अवगुननि की थाति। (वि० २२१)
 थाती-(सं० स्थातृ)-१. धरोहर, अमानत, २. पूँजी, ३. स्थिरता, ठहराव। उ० १. थाती राखि न मागिहु काज। (मा० २१२५१)
 थान-(सं० स्थान)-जगह, स्थान।
 थाना-(सं० स्थान)-१. स्थान, जगह, २. बैठक, अड्डा, जमाव। उ० २. तहँ-तहँ सुर बैठे करि थाना। (मा० ७११५६)
 थापन-(सं० स्थापन)-स्थापित करनेवाला, जमानेवाला, बसानेवाला। उ० रघु-कुल-तिलक सदा तुम्ह उथपन थापन। (जा० १६३)
 थापना-(सं० स्थापना)-१. किसी मूर्ति की स्थापना या प्रतिष्ठा, कहीं कोई नई मूर्ति स्थापित करना, २. रखना, बैठाना। उ० १. करिहउ इहाँ संभु थापना। (मा० ६१२२)
 थापनी-स्थापित करनेवाला, जमाने या बसानेवाला। उ० राय दूसरथ के तू उथपन-थापनी। (वि० १७६)
 थापहि-बसाते हैं, स्थापित करते हैं। उ० असुर मारि थापहि सुरन्ह, राखहि निज श्रुति केतु। (मा० ११२१) थापि-स्थापित कर, जमाकर। उ० थापि अनल हर बरहि बसन पहिरायउ। (पा० १३७) थापिए-स्थापना कीजिए, बैठा-इए, बसाइए। उ० बाँह बोल दै थापिए जो निज बरि-आई। (वि० ३५) थापिय-प्रतिष्ठा बढ़ाइए, बढ़ाई दीजिए। उ० थापिय जनु सबु लोगु सिहाऊ। (मा० २१८५) थापे-स्थापित किए, निश्चित किए, टिकाए, ठहराए। उ० थापे मुनि सुर साधु आत्म बरन। (वि० २४८) थापेउ-स्थापना की, स्थापित किया। उ० इहाँ सेतु बाँध्यो अरु थापेउ सिव सुखधाम। (मा० ६११६६) थाप्यो-दे० 'थाप्यौ'। उ० २. निज लोक दियो सबरी खग

को कपि थाप्यो सो मालुम है सबही । (क० ७।१०)
थाप्यो-१. स्थापन किया, २. प्रतिष्ठा दी ।
थार-(सं० स्थाली, हिं० थाली)-बड़ी थाली, थाल । उ०
कंचन थार सोह बर पानी । (मा० १।१६।२)
थारा-दे० 'थार' । उ० कनक कलस भरि कोपर थारा ।
(मा० १।३०।११)
थाला-(सं० स्थल)-पेड़ आदि के चारों ओर पानी देने के
लिए बनाया गया गड्ढा, थावला, आलवाल ।
थालिका-छोटा थाला । दे० 'थाला' । उ० पुरजन-पूजो-
पहार सोभित सखि-धवल थार, भंजनि-भवभार भक्तिकल्प
थालिका । (वि० १७)
थाह-(सं० स्था)-१. नदी, ताल आदि के नीचे की जमीन,
पानी के नीचे की धरती, तला, पेंदा, गहराई का अंत, २.
आधार, ३. आइट, ४. खबर । उ० १. बिषम-बिषाद-बारि
निधि बृद्ध थाह कपीस कथा लही । (गी० १।३१)
थाहत-थाह लेते हुए । थाहें-१. थाह पाकर, ऐसे स्थान पर
जहाँ थाह है, २. थाह लगाते हैं । उ० १. होत सुगम भव
उद्धि अगम अति, कोउ लाँघत, कोउ उतरत थाहें ।
(गी० ७।१३)
थाहा-दे० 'थाह' । उ० १. गावत नर पावहिं भव थाहा ।
(मा० ७।१०।३।२)
थिति-(सं० स्थिति)-१. स्थान, जगह, २. ठिकाना, ठहराव,
रहना, टिकाव, ३. रोक, ४. रक्षा, ५. अवस्था, दशा,
स्थिति, ६. बने रहने का भाव । उ० १. प्रभु चित हित
थिति पावत नाहीं । (मा० २।२२।२) २. तुलसी किये
कुसंग-थिति होहिं दाहिने बाम । (दो० ३।६१)
थिर-(सं० स्थिर)-१. ठहरा हुआ, अचंचल, स्थिर, २. शांत,
धीर, ३. एक अवस्था में सर्वदा या अधिक दिन तक
रहनेवाला, टिकाऊ, अचंचल, ४. निश्चित । उ० १. लपन
कछो थिर होहु धरनि धरु । (गी० १।६८।४) २. तबही ते न
भयो हरि ! थिर जब जिव नाम धरयो । (वि० ६१)
थिरताइ-स्थिरता को प्राप्त हो, स्थिर हो । उ० सेइ साधु
गुरु, समुक्ति, सिखि, राम भगति थिरताइ । (दो० १।४०)
थिरातो-स्थिर हो जाता, नीचे बैठ जाता । उ० जनम
कोटि को कँदौलो हृद-हृदय थिरातो । (वि० १।५१) थिराना-
थिरा गया, स्थिर हो गया । उ० भरेउ सुमानस सुथल

थिराना । (मा० १।३६।१) थिराने-१. स्थिर हुए, २. निर्मल
हुए, साफ हुए । उ० २. सदा मलीन पंथ के जल ज्यों
कबहुँ न हृदय थिराने । (वि० २।३५)
थीर-दे० 'थिर' ।
थीरा-दे० 'थिर' । उ० २. निज सुख बिसु मन होइ कि
थीरा । (मा० ७।६०।४)
थूनि-(सं० स्थूण)-छप्पर आदि में लगाने की लकड़ी,
थूनी, साधारण खंभा, टेकनी । उ० जनु हिरदय गुन-आस
थूनि थिर रोपहिं । (जा० ६५)
थैली-(सं० स्थल=कपड़े का घर, खेमा, रावटी) छोटा
थैला, कपड़े या टाट आदि का बना बटुआ । उ० तुरत
देउँ मैं थैली खोली । (मा० १।२७।६।२)
थोर (१)-(सं० स्तोत्र, प्रा० थोत्र)-थोड़ा, न्यून, अल्प ।
उ० मातु मते महुँ मानि मोहि, जो कछु करहिं सो थोर ।
(मा० २।२३।३) मु० थोर थोर-थोड़ा-थोड़ा, धीरे-धीरे ।
उ० बोल घनघोर से बोलत थोर थोर हैं । (गी० १।७१)
थोरि-१. लघुता, छोटाई, २. थोड़ी, तनिक । उ० २. बहुत
प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि । (वि० १।५८)
थोरिउ-तनिक भी, ज़रा भी । उ० मातु तोहि नहिं थोरिउ
खोरी । (मा० २।१२।१) थोरिक-थोड़ी ही, थोड़ी सी । उ०
एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहों जू ।
(क० २।६) थोरिकै-थोड़ी ही, थोड़ी सी ही । उ० दिवस छः
सात जात जानिबे न, मातु धरु धीर, अरि अंत की अवधि रही
थोरिकै । (क० १।२७) थोरिहिं-थोड़ी सी ही, तनिक सी
ही । उ० थोरिहिं बात पितहिं दुख भारी । (मा० २।४२।३)
थोरे-थोड़े, अल्प, न्यून, ज़रा सा । उ० थोरे महुँ जानिहहिं
सयाने । (मा० १।१२।३) थोरेहिं-थोड़ा सा ही, ज़रा सा
ही । उ० थोरेहिं कोप कृपा पुनि थोरेहिं, बैठि कै जोरत
तोरत ठाढ़े । (क० ७।५४) थोरेहीं-थोड़ा ही, ज़रा सा
ही । उ० साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल ।
(मा० ७।१०८) थोरेहुँ-थोड़े ही, ज़रा । उ० जस थोरेहुँ
घन खल इतराई । (मा० ४।१४।३)
थोर (२)-(?)-१. केले के बीच का गाभा, २. थूहर का
पेड़ ।
थोरा-दे० 'थोर (१)' । उ० सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा ।
(मा० १।२५।२)

द

दं-(सं०)-दाता, देनेवाला । उ० मूलं धर्म तरोविवेक
जलधेः पूर्णन्दु मानंददं । (मा० ३।१। श्लो० १)
दंड-(सं०)-१. डंडा, सोदा, लाठी, २. किसी अपराध के
प्रतिशोध रूप में अपराधी को पहुँचाई गई पीड़ा, सज़ा,
३. शासन, शमन, दमन, ४. ध्वजा का बाँस, ५. यमराज,
६. वड़ी, साठ पल का समय, आधे घंटे से कुछ कम का

समय, ७. विष्णु, ८. कृष्ण, ९. शिव, १०. कुबेर का एक
पुत्र, ११. इक्ष्वाकु के १०० पुत्रों में से एक जिसके कारण
दंडक बन या दंडकारण्य नाम पड़ा था, १२. दंडवत करना,
१३. सेना, फौज, १४. घोड़ा, १५. अर्थदंड, जुरमाना ।
उ० १. दंडपानि भैरव विषान, मलरुचि खलगन भय-
दा सी । (वि० २२) ६. दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर काम-

कृत कौतुक अर्थ। (मा० १।८५। छं० १) १२. दंड-प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। (मा० १।३३। ११) १५. लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हें। (मा० १।१५। ४। ४)

दंडक-१. रामायण काल का एक प्रसिद्ध जंगल। यहाँ पहले इक्ष्वाकु के पुत्र दंडक राज्य करते थे। इन्होंने अपने गुरु शुक्राचार्य की कन्या से व्यभिचार किया जिससे रूढ़ हो शुक्राचार्य ने इनको राज्य के साथ जला डाला। तभी से पूरा राज्य जंगल हो गया और दंडकारण्य कहलाने लगा। इसके पेट पहले सूखे थे पर रामावतार में राम के दर्शन से वे हरे-भरे हो गए। सूर्यणखा की नाक यहीं कटी थी तथा मारीच-बध और सीता-हरण भी यहीं हुआ था। २. इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम, ३. शासक, दंड देनेवाला, ४. एक छंद। उ० १. दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन। (मा० १।२४। ४)

दंडकारण्य-(सं०)-दंडक नामक वन। दे० 'दंडक'।
दंडकारण्य-दे० 'दंडकारण्य'। उ० दंडकारण्य-कृत-पुन्य-पावन-चरन, हरन-मारीच-माया कुरंग। (वि० ५०)

दंडकारि-दंड देनेवाले, न्याय करनेवाले। उ० कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि। (क० ७।१७। १)

दंडपानि-(सं० दंडपाणि)-१. यमराज, २. काशी में शिव के गण भैरव की एक मूर्ति। यह एक हरीकेश नामक यक्ष की मूर्ति है जो शिव की तपस्या कर वरदान पाकर काशी का दंडधर हुआ था। उ० २. कालनाथ कोतवाल दंडकारि दंडपानि। (क० ७।१७। १)

दंड-प्रनाम-(सं० दंड + प्रणाम)-पृथ्वी पर डंडे के समान पड़कर प्रणाम करने की मुद्रा, दंडवत्। उ० दंड-प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। (मा० १।३३। ११)

दंडवत्-(सं० दंडवत्)-साष्टांग प्रणाम, दंड-प्रणाम। उ० बोले मनु करि दंडवत् प्रेम न हृदय समत। (मा० १। १४५)

दंडा-दे० 'दंड'। उ० १. करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। (मा० १।१४। ४)

दंडे-दंड देता है, सजा देता है। उ० कलि-कुचालि सुभमति-हरनि, सरलै दंडे चक्र। (दो० ५३७)

दंत-(सं०)-१. दाँत, दशन, २. ३२ की संख्या। उ० १. बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर-पल्लव खोलन की। (क० १।५) दंतदेवैया-खाने के लिए दाँत तेज़ करने वाला, फाड़ खाने को उद्यत।

दंतकथा-(सं०)-ऐसी बात जिसे बहुत दिनों से लोग एक दूसरे से सुनते चले आए हों पर जिसका कोई पुष्ट प्रमाण न हो। जनश्रुति। उ० इति बेद बंदति न दंतकथा। (मा० ६।११। छं० ८)

दंति-(सं० दंत)-हाथी, जिसके दाँत हों। उ० कमठ कोल दिग-दंति सकल अंग, सजग करहु प्रभु काज। (गी० १। ८८)

दंतिर्याँ-(सं० दंत)-छोटे छोटे दाँत, दंतुली। उ० दमकैं दंतिर्याँ हुति दामिनि ज्यौं। (क० १।३)

दंतुरियाँ-(सं० दंत)-छोटे छोटे हाल के निकले हुए दाँत। उ० दमकति द्वै द्वै दंतुरियाँ रुरीं। (गी० १।२८)

दंपति-(सं०)-स्त्री-पुरुष का जोड़ा, पति-पत्नी। उ०

सुनि सहमे परि पाई, कहत भए दंपति। (पा० २०) दंपतिहि-स्त्री-पुरुष को, पति-पत्नी को। उ० दुख दंपतिहि उमा हरपानी। (मा० १।६८। १)

दंभ-(सं०)-१. पाखंड, ऊपरी दिखावट, २. अभिमान, घमंड, ३. जवान बैल। उ० २. महिष मत्सर कर, लोभ सूकर रूप, फेरु छल, दंभ भाजोर-धर्मा। (वि० ५६)

दंभा-दे० 'दंभ'। उ० २. सुनत नसाहि काम मद दंभा। (मा० १।३५। ३) दंभापहन-दंभ को दूर करनेवाले। उ० दनुज सूदन दयासिधु दंभापहन दहन-दुदौष दुःपाप हर्ता। (वि० ५६)

दंभिन्ह-दंभियों, घमंडियों। उ० जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा। (मा० ४।१५। ३) दंभिहि-दंभी को, घमंडी को। उ० मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई। (मा० ७।१०। ५) दंभी-१. पाखंडी, छली, २. घमंडी।

दंश-(सं०)-१. दाँत से काटने का घाव, २. व्यंग्य, कटुक्ति, ३. द्वेष, शत्रुता, ४. विपैले जंतुओं का डंक मारने या काटने का घाव, ५. दाँत, ६. डँस, बगदर, चर्मि, ७. दाँत से काटने की क्रिया।

दंष्ट्र-(सं०)-दाँत, दंत।

दंष्ट्रा-(सं०)-१. बड़े दाँत, दाढ़, २. बड़े दाँतवाला।

दंस-दे० 'दंश'। उ० ६. विषय-सुख-लालसा दंस-मस-कादि खल भिखिल, रूपादि सब सर्प स्वामी। (वि० ५६)

दं-(सं०)-१. दाँत, २. पर्वत, ३. स्त्री, ४. रक्षा, पनाह, ५. खंडन, निराकरण, ६. दाता, देनेवाला। उ० ६. रंक धनद पदवी जतु पाई। (मा० २।५२। ३)

दइ (१)-(सं० दैव)-१. ब्रह्मा, विधाता, २. ईश्वर, परमेश्वर।

दइ (२)-(सं० दान)-दिया, प्रदान किया। उ० दइ जनक तीनिहु कुँवर कुँवर बिबाहि सुनि आनंद भरी। (जा० १।७। १) दइ (१)-(सं० दान)-१. दिया, दी, २. दी हुई, प्रदत्त। उ० १. दइ सुगति सोन हेरि हरष हिय, चरन छुप पछिताउ। (वि० १००) २. जहाँ सांति सत गुरु की दइ। (वै० ५१) दए-दिष्ट, दिया। उ० तब जनक सहित समाज राजहि उचित रुचिरासन दए। (जा० १।५३)

दइअ-दैव, विधाता, भगवान। उ० आह दइअ मैं काह नसावा। (मा० २।१६३। ३)

दइउ-दैव भी, ईश्वर या विधाता भी। उ० बर किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन। (जा० १।१४)

दइ (२)-(सं० दैव)-१. देव, विधाता, २. भगवान, ३. दयालु। उ० २. पतित-पावन, हित आरत अनाथनि को, निराधार को अधार दीनबंधु दइ। (वि० २५२)

दक्ष-(सं०)-१. निपुण, कुशल, चतुर, होशियार, २. बायों का उलटा, दाहिना, ३. समर्थ, योग्य, ४. अनुकूल, सुवाकिक, ५. एक प्रजापति, दक्ष प्रजापति जो सती या पार्वती के पिता थे। ६. दक्षिण। उ० ६. सकल-सौभाग्य संयुक्त त्रैलोक्य श्री, दक्ष दिसि रुचिर बारीश कन्या। (वि० ६१)

दक्षसुत-(सं०)-दक्ष प्रजापति के पुत्र, प्रचेता।

दक्षसुता-१. दक्ष प्रजापति की श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, पूर्ति, तित्तिचा,

ही, स्वाहा, स्वधा और सती नामक १६ कन्याएँ, २. सती, पावती ।
 दक्षिण-(सं०)-१. दक्षिण दिशा, उत्तर के विपरीत की दिशा, २. दाहिना, बायाँ का उलटा, ३. निपुण, चतुर, ४. अनुकूल, ५. उदार, सरल, ६. विष्णु । उ० २ आजातु भुजदंड, कोदंड, अंकित बाम बाहु, दक्षिण पानि बानमेक । (वि० ५१)
 दक्षिणा-(सं०)-१. दक्षिण दिशा, २. धर्म-कर्म का पारितोषिक, दान, ३. नायिका-विशेष, ४. भेंट, पूजा ।
 दक्षिणायन-(सं०)-सूर्य का दक्षिण की ओर जाने का समय जो श्रावण से पौष मास अथवा कर्क की संक्रांति से धन की संक्रांति तक रहता है ।
 दखिन-(सं० दक्षिण)-दे० 'दक्षिण' । उ० १. देखि दखिन दिसि ह्य हिहिनाही । (मा० २।१४२।४)
 दगा-(अ० दगा)-छल, कपट, धोखा । उ० तुलसिदास तब अपहूँ से भए जड़, जब पलकनि हठ दगा दर्ई । (क० २४) दगाई-दगा ही, धोखा ही । उ० करुनाकर की करुना करुना-हित नाम-सुहेत जो देत दगाई । (क० ७। ६३)
 दगाबाज-(क्रा० दगाबाज़)-छली, कपटी, धोखा देनेवाला, धूर्त, ठग । उ० नाम तुलसी पै भोंड़े भाग, सी कहायो दास, किए अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को । (क० ७।१३)
 दगाबाजि-(फा० दगाबाज़ी)-छल, कपट, धोखा । उ० सुहृद-समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत । (वि० २६४)
 दगो-दे० 'दगौ' । उ० लोक बेदू हूँ लौँ दगो नाम भले को पोच । (दो० ३७३) दगौ-[सं० दग्ध + ना (प्रत्यय) हि० दगना-तोप या बंदूक छूटना]-प्रसिद्ध है । उ० लोक बेदूँ लौँ दगौ नाम भले को पोच । (सं० ७१३)
 दच्छ-दे० 'दक्ष' । उ० १. सापबस-मुनि बधू-मुक्त कृत्, विप्रहित-यज्ञरच्छन-दच्छ पच्छकर्ता । (वि० ५०) ५. जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई । (मा० १।६८।३) दच्छहि-दक्ष प्रजापति को । उ० दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक । (मा० १।६०।३)
 दच्छकुमारि-दे० 'दक्षसुता' । उ० २. कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि । (मा० १।६२)
 दच्छकुमारी-दे० 'दक्षसुता' । उ० २. कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी । (मा० १।५५।४)
 दच्छसुत-दे० 'दक्षसुत' ।
 दच्छसुतन्ह-दक्ष के पुत्रों को । उ० दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई । (मा० १।७६।१)
 दच्छसुता-दे० 'दक्षसुता' । उ० २. दच्छसुता कछुँ नहि कत्याना । (मा० १।५२।३)
 दच्छिन-दे० 'दक्षिण' । उ० १. सकल सुभट मिलि दच्छिन जाइ । (मा० १।२३।१)
 दक्षिना-दे० 'दक्षिणा' । उ० २. विग्रह पुनि दक्षिना बहु पाई । (मा० १।२०३।२)
 दत्त-दिया, दे दिया, दान कर दिया । उ० तेन तसं हुतं दत्त-मेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्म जालं । (वि० ४६) दत्त-(सं०)-दिया हुआ, दिया गया, समर्पित ।

ददाति-दे डालते हैं । उ० यो ददाति सतां शंभुः कैवल्य-मपि दुर्लभम् । (मा० ६।१। श्लो० ३)
 दद्रु-(सं०)-दाद का रोग ।
 दधि (१)-(सं०)-१. दही, जमाया हुआ दूध, २. वस्त्र, कपड़ा । उ० १. मंगल विटप मंजुल विपुल दधि दूब अच्छत रोचना । (जा० २०७)
 दधि (२)-(सं० उदधि)-समुद्र, सागर ।
 दधिकौंदो-(सं० दधि + कर्दम)-एक पर्व जो जन्माष्टमी के बाद पड़ता है । उस दिन लोग हलदी मिला दही एक दूसरे पर डालते हैं ।
 दधिनिधि-१. सागर, समुद्र, २. दही का समुद्र, दधि सागर, ३. चौर सागर । उ० १. तुलसी सिय लागि भव दधिनिधि मन फिरि हरि चहत महयो है । (गी० ४।२)
 दधिबल-सुग्रीव के पुत्र का नाम ।
 दधि-सुत-(सं० उदधि + सुत)-चंद्रमा । दधि-सुत-सुत-समुद्र के पुत्र चंद्रमा का पुत्र बुध । बुद्धि । उ० जिनके हरि बाहन नहीं दधि-सुत-सुत जेहि नाहि । (सं० २६३)
 दधीच-दे० 'दधीचि' । उ० सिबि दधीच हरिचंद नरेसा । (मा० २।६५।२)
 दधीचि-(सं०)-एक ऋषि । एक बार इंद्र को गर्व हो गया कि मैं त्रिलोकी का स्वामी हूँ । गर्व से उनकी बुद्धि मारी गई और उन्होंने कुलगुरु बृहस्पति का अपमान कर दिया । रूठकर बृहस्पति चले गए । इसका पता पाकर असुरों ने देवों पर चढ़ाई कर दी । ब्रह्मा की सलाह से त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप पुरोहित बनाए गए और उनके कारण नारायण कवच से देवताओं की किसी प्रकार विजय हुई । विजय के उपलक्ष्य में एक यज्ञ हुआ । यज्ञ में विश्वरूप धीरे से दैत्यों को भी आहुति दे दिया करते थे । इंद्र को इसका पता लगा तो वे बड़े बिगड़े और उन्होंने विश्वरूप का सिर काट डाला । उन्हें ब्रह्माहत्या लगी, पर किसी प्रकार वे इससे मुक्त हुए । उधर त्वष्टा बहुत बिगड़े और उन्होंने यज्ञ कर वृत्रासुर को पैदा किया । वृत्रासुर ने इंद्र को ललकारा । इंद्र भागते-भागते फिर ब्रह्मा के यहाँ पहुँचे । इस बार ब्रह्मा ने बतलाया कि दधीचि की हड्डी से बने वज्र से इसकी मृत्यु संभव है । इस पर इंद्र दधीचि के पास गए । दधीचि ने सहर्ष अपनी हड्डी दे दी और उससे विश्वकर्मा ने वज्र बनाया जिससे वृत्रासुर मारा गया । दधीचि के पिता के विषय में विभिन्न मत हैं । वेदों में उनका नाम दध्यंच मिलता है । उ० सिबि दधीचि बलि जो कछु भापा । (मा० २।३०।४)
 दनुज-(सं०)-१. दनु से उत्पन्न, राक्षस, असुर, २. दक्ष प्रजापति की कन्या दनु और कश्यप मुनि से उत्पन्न पुत्र जो संख्या में ४० थे । असुरों के पूर्व पुरुष थे ही थे । ३. हिरण्यकशिपु । उ० १. दनुज-बन-धूमध्वज, पान-आजातु-भुजदंड-कोदंडवर-चंड-बानं । (वि० ४६) ३. अनुलितबल भृगाराज-मनुज तनु दनुज हत्यो श्रुतिसाखी । (वि० ६३) दनुजसूदन-दानवों के संहारक, १. देवता, २. विष्णु । उ० २. दनुजसूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुदोष दुःपापहर्ता । (वि० ५६)
 दनुजारि-(सं०)-दानवों के शत्रु, १. देवता २. विष्णु ।

दनुजारी-दे० 'दनुजारी' । उ० २. बसनपूरि, अरि-दरप दूरि करि सूरि कृपा दनुजारी । (वि० ६३)
 दनुजेश-(सं० दनुजेश)-१. रावण, २. हिरण्यकशिपु, ३. हिरण्याक्ष । उ० १. दुष्ट-दनुजेश निर्वस कृत दास हित विश्व दुख-हरन बोधैकरासी । (वि० ६८) २. सकल यज्ञासमय उग्रविग्रह क्रोड, मर्दि दनुजेश उद्धरन उर्वी । (वि० ६२)
 दपटि-(?)—डपटकर, डाँटकर । उ० इत उत ऋपटि दपटि कपि जोधा । (मा० ६।८२।३)
 दपटहिं—डपटते हैं, घुड़कते हैं, डाँटते हैं । उ० खाहिं हुआहिं अघाहिं दपटहिं । (मा० ६।८८।६)
 दबकि-(सं० दमन, हिं दवाना)-१. दाबकर, २. डाँटकर । उ० २. दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक । (क० ६।४१)
 दबत-१. दबने से, २. दबती हैं, ३. दबते हुए । उ० १. महाबली बालि को दबत दलकतु भूमि । (क० ६।१६)
 दबि-१. दबकर, दाब में आकर, बौझ के नीचे पड़कर, २. दबा, दबोच, ३. दबाया, ४. पिछड़ाया, ५. मँपाया । उ० १. मैं तो दियो छाती पबि, लयो कालि काल दबि । (वि० २५६)
 दबा-(?)—दाब, पँच, घात ।
 दबाई—दबाया, दबा लिया । उ० दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंशु । (क० ७।३७)
 दबोरे-(सं० दमन)-दबोचा, दबाया । उ० दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक । (क० ६।४१)
 दमकहिं-१. चमक रही हों । उ० जनु दहँ दिसि दामिनी दमकहिं । (मा० ६।८७।२) दमका-१. दमक, चमक, २. चमके, दमके, ३. चमक रही हो । उ० सोइ प्रभु जनु दामिनी दमका । (मा० ६।१३।३)
 दम (१)-(सं०)-१. इंद्रियों का दमन, इंद्रियों को बश में रखना तथा छुरे मार्ग पर न जाने देना, २. दंड, सजा, ३. विष्णु । उ० १. दम अघार रजु सत्य सुबानी । (मा० ७।१७।८)
 दम (२)-(का)-१. साँस, २. प्राण, जी, ३. लहमा, पल, ४. बोलना, कहना, ५. जीवनी शक्ति, ६. धोखा, झल, फरेब ।
 दमक-(?)—आभा, चमक, युति । उ० कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि । (जा० ८०)
 दमकति-चमकती हैं, चमक रही हैं । उ० दमकति हँ हँ दँतुरियाँ रुरीं । (गी० १।२८) दमकहिं-चमक रही हैं । उ० चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि । (मा० १।३ ४७।२) दमकेउ-चमका । उ० दमकेउ दामिनि जिमि जब लयज । (मा० १।२६।३) दमकै-दमकते हैं, चमकते हैं । उ० दमकै दँतियाँ हुति दामिनि ज्यौं । (क० १।३)
 दमन-(सं०)-१. दवाने की क्रिया, रोकने या बश में रखने की क्रिया, २. दम, इंद्रियों को बश में रखना, ३. महादेव, ४. विष्णु, ५. एक ऋषि जिनके यहाँ दमयंती पैदा हुई थी । ६. एक राक्षस का नाम, ७. दौना, ८. कुंद पुष्प, ९. दवाने या नाश करनेवाला, १०. नाश करना । उ०

६. देहि अवलंब कर कमल कमलारमन दमन दुख समन-संताप-भारी । (वि० ६८)
 दमनीय-(सं०)-१. दवाने, रोकने या नष्ट करने के योग्य, २. तोड़नेवाला, नष्ट करनेवाला, नष्ट करने की शक्ति रखनेवाला । उ० २. पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय । (मा० १।२५।१)
 दमनु-दमन करनेवाला, दवाने या नष्ट करनेवाला । लखनु भरतु रिपुदमनु मुनि भा कुबरी उर सालु । (मा० २।१३)
 दमनु-दे० 'दमनु' ।
 दमशील-(सं०)-जितेन्द्रिय, इंद्रियों के दमन करनेवाले ।
 दमशीला-दे० 'दमशील' । उ० कहहिं महा मुनिबर दम-शीला । (मा० ७।२२।३)
 दमानक-(?)—तोपों की बाढ़ । उ० मोहिं पर दवरि दमानक सी दई है । (ह० ३८)
 दमामा-(फा०)-नगारा, धौसा, बड़ा ढोल ।
 दमैया-(सं० दम, दमन)-दमन करनेवाला, नाशकर्ता । उ० तुलसी तेहि काल कृपालु बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया । (क० ७।५६)
 दया-(सं०)-कृपा, रहम । उ० तजि आस भो दास रघुपति को, दशरथ को दानि दया-दरिया । (क० ७।४६)
 दयाकर-दया करनेवाले, दयालु । उ० दीन दयाकर आरत बंधो । (मा० ७।१८।१)
 दयाधाम-अत्यंत दयालु, दया के घर ।
 दयानिकेत-दे० 'दयाधाम' । उ० देव तो दया निकेत, देत दादि दीनन की । (क० ७।१८)
 दयानिधान-(सं०)-दया का खजाना, बहुत दयालु । उ० तुलसी न दूसरो दयानिधान दुनी में । (क० ७।२१)
 दयानिधि-दे० 'दयानिधान' । उ० निज दिसि देखि दयानिधि पोसो । (मा० १।२८।२)
 दयाल-दयालु, दया करनेवाले । उ० प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं । (मा० ७।१०।८) दयाल-दे० 'दयालु' । उ० दीनदयाल अनुग्रह तोरे । (मा० २।१०।४)
 दयाला-दे० 'दयाल' । उ० सत्यधाम प्रभु दीनदयाला । (मा० १।२७।४)
 दयालु-(सं०)-दयावान्, दयावाला । उ० गाँहक गरीब को दयालु दानि दीन को । (वि० ६६)
 दयावने-जिनको देखकर दया उत्पन्न हो, दया के पात्र । उ० दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तें सिर नावैं । (क० ७।२)
 दयावनो-दया उपजानेवाला । उ० तब लौं दयावनो दुसह दुख दारिद को । (क० ७।१२।५)
 दयासिंधु-दया के समुद्र, अत्यंत दयालु । उ० दनुज सूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दुःपापहर्ता । (वि० ६६)
 दये-दिये । उ० पुरतें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मन में डग है । (क० २।११)
 दर (१)-(सं०)-१. शंख, २. छेद, ३. गुफा, कंदरा, ४. दर, भय, ५. प्रतिज्ञा, ६. फाड़ने की क्रिया, ७. दलनेवाला, हरनेवाला, नाश करनेवाला । उ० १. कटि मेखल, वर हार, श्रीवदर, रुचिर बाँह भूपन पहिराए । (गी० १।२३) ४. दारुन दुसह दर-दुरित हरन । (वि० २।४८)

दर (२)-(सं० दल)-१. समूह, २. सेना ।
 दर (३)-(फा०)-१. द्वार, दरवाजा, २. खिड़की ।
 दरकि-(सं० दर)-१. फट, फटकर, २. फटना । उ० १. दरकि दरार न जाई । (गी० ६।६)
 दरद-(फा० दर्द)-पीड़ा, व्यथा । उ० दोख दुरत हर दरद दर उर बर विमल विनीत । (सं० ३०८)
 दरन (सं० दलन)-१. दलना, पीसकर टुकड़े-टुकड़े-करना, २. दलनेवाला, नाशक । उ० २. तिलक दियो दीन-दुख-दोष-दारिद्र-दरन । (गी० १।४३) दरनि-दलनेवाली, नाश करनेवाली । उ० देखत दुख-दोष-दुरित-दाह-दारिद्र-दरनि । (वि० २०)
 दरप-(सं० दर्प)-गर्व, अहंकार । उ० बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी । (वि० ६३)
 दरपन-(सं० दर्पण)-आरसी, शीशा, आइना । उ० रवि-रुख लखि दरपन फटिक उगिलत ज्वालाजाल । (दो० ३७५)
 दरबार-(फा०)-१. वह स्थान या कमरा जहाँ, राजा अपने दरबारियों के साथ बैठते हैं, राजसभा, २. दरवाजा, फाटक, द्वार । उ० १. प्रीति-पहिचानि यह रीति दरबार की । (वि० ७१)
 दरबारा-दे० 'दरबार' । उ० २. भइ बड़ि भीर भूप दरबारा । (मा० २।७६।३)
 दरश-(सं० दर्श)-१. दर्शन, अवलोकन, देखा-देखी, देखना २. रूप, छवि, सुंदरता ।
 दरशन-दे० 'दरसन' । उ० दरशनारत दास, त्रसित-माया-पास, ग्राहि ग्राहि ! दास कष्टी । (वि० ६०)
 दरस-दे० 'दरश' । उ० १. दरस परस मज्जन अरु पाना । (मा० १।३५।१)
 दरसन-(सं० दर्शन)-देखना, अवलोकन, दर्शन । उ० तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची । (मा० १।४८ ख)
 दरसनी-(सं० दर्शन)-दर्पण, शीशा । उ० नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाष । (दो० ४६०)
 दरसनु-दे० 'दरसन' । उ० पावा दरसनु राम प्रसादा । (मा० २।२५०।३)
 दरसाह-(सं० दर्शन)-दिखाई पड़ता है । उ० निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाह । (ब० २६)
 दरसी-१. देखनेवाला, २. दिखाई पड़ी, सूझी । उ० १. सर्वदरसी जानहि हरिलीला । (मा० १।३०।३)
 दरसु-दे० 'दरस' । उ० १. दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा । (मा० २।१३५।२)
 दराज-(फा० दराज)-१. बड़ा, भारी, लंबा, दीर्घ, २. बहुत अधिक । उ० १. उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए । (क० ७।७६)
 दरार-(सं० दर)-किसी चीज़ के फटने पर बीच में हो जानेवाली खाली जगह, शिगाफ़ । उ० दरकि दरार न जाई । (गी० ६।६)
 दरारा-दे० 'दरार' । उ० सुनि कादर उर जाई दरारा । (मा० ६।४१।२)
 दरिद्र (१)-(सं०)-निर्धन, कंगाल, रंक, दीन । उ० जया दरिद्र बिबुधतक पाई । (मा० १।१४६।३)

दरिद्र (२)-(सं० दारिद्र्य)-दरिद्रता, निर्धनता । उ० अभिमत दातार कौन दुख दरिद्र दारै ? (वि० ८०) दरिद्रहि-दरिद्रता से, निर्धनता से । उ० डरहु दरिद्रहि पारसु पाई । (मा० २।२१०।१)
 दरिबे-(सं० दरबे)-दलने, कुचलने । उ० दसमुख दुसह दरिद्र दरिबे को भयो । (ह० ८)
 दरिया-(फा०)-१. नदी, सरिता, २. समुद्र, सागर । उ० २. तजि आस भो दास रघुपति को, दशरथ को दानि दया-दरिया । (क० ७।४६)
 दरैरा-(सं० दरैरा)-१. रगड़ा, धक्का, २. तेज वर्षा, ३. बहाव का जोर, तोड़ ।
 दरैरो-दे० 'दरैरा' । उ० १. तापर सहि न जात कहना-निधि, मन को दुसह दरैरो । (वि० १४३)
 दर्प-(सं०)-१. घमंड, गर्व, अहंकार, २. आतंक, दवाव, रोव, ३. उद्वेगता, अकलङ्कपन, ४. मान, अहंकार के लिए किसी पर कोप । उ० १. जयति गतराज-दातार, हरतार-संसार-संकट, दनुज-दर्पहारी । (वि० २८)
 दर्पण-(सं०)-१. आइना, आरसी, शीशा, २. उच्चेजना, उभारने का कार्य ।
 दर्पन-दे० 'दर्पण' ।
 दर्पा-दर्प से भर गया, गर्वित हुआ । उ० १. रन मदमत्त निसाचर दर्पा । (मा० ६।६७।३)
 दर्पित-घमंड से भरे, गर्वित । उ० बानर निसाचर निकर मर्दाहि राम बल दर्पित भए । (मा० ६।८८। छं० १)
 दर्पी-(सं० दर्पिन्)-घमंडी, अहंकारी ।
 दर्भ-(सं०)-कुश, एक प्रकार की घास । उ० बैठे कपि सब दर्भ डसाई । (मा० ४।२६।५)
 दर्श-(सं०)-१. दर्शन, २. अभावस्था तिथि ।
 दर्शन-(सं०)-१. चाञ्छुष ज्ञान, अवलोकन, २. एक विद्या या शास्त्र जिसमें तत्त्वज्ञान हो । इसमें ब्रह्म जीव प्रकृति तथा जीवन के अंतिम लक्ष्य आदिका विवेचनरहता है । ३. आँख, नेत्र, ४. स्वप्न, ५. दर्पण, आइना, ६. बुद्धि, मनीषा, ७. धर्म । दर्शनात्-दर्शन से । उ० यत्र संभूत अति पूत जल सुरसरी दर्शनादेव अपहरति पापं । (वि० ५५)
 दर्शनीय-(सं०)-मनोहर, सुंदर, देखने योग्य ।
 दर्शी-(सं० दर्शिन्)-देखनेवाला, दरसी ।
 दल (१)-(सं०)-१. पत्ता, पत्र, २. सेना, ३. ऋंड, समूह, डेर, समाज, ४. खंड, भाग, ५. मोटाई । उ० १. सुमन-सुविचित्र-नव मुलसिका-दल जुतं शृदुल वनमाल उर आजमानं । (वि० ५१) २. धरनि, दलनि दानव दल, रन करालिका । (वि० १६) ३. कामादि खलदल गंजनं । (वि० ४५) दलन (१)-(सं० दल)-अनेक दल, बहुत से समूह । दलनि (१)-(सं० दल)-१. दल का बहुवचन, बहुत से समूह, २. पत्तों, पंखुवियों, ३. पत्तों पर । उ० २. नख-जोति मोती मानो कमल-दलनि पर । (गी० १। ३०) दलन्हि-दलों पर । उ० कमल दलन्हि बैठे जनु मोती । (मा० १।१६६।१) दलहि-दल को, समूह को । उ० मैं देखेई खल बल दलहि बोले राजिव नैन । (मा० ६।६७)

दल (२)-(सं० दलाब्ध)-कीचड़, पंक ।
 दल (३)-(सं० दलन)-दलनेवाला, नाशकर, चूर्ण करने-
 वाला, नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला ।
 दलइ-(सं० दलन)-नाश करता है । उ० दलइ नासु जिमि
 रबिनिसि नासा । (मा० १२४।३)
 दलकत-(सं० दोल)-दलकती है, थरथराती है । उ०
 महाबली बालि को दबत दलकतु भूमि । (क० ६।१६)
 दलकि-१. दलककर, थराकर, दहलकर, काँपकर, २. फट,
 थरा, काँप । उ० २. दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरु ।
 (मा० २।२७।२)
 दलकन-१. धमक, थरथराहट, कंपन, डोलना, २. फटना,
 चिरना, दरार होना, ३. उद्वेग, चौकानेवाली क्रिया, ४.
 भय, डर, भीति । उ० १. मंद बिलंद अमेरा दलकन पाइय
 दुख भक्तभरो रे । (वि० १८६)
 दलत-(सं० दलन)-१. नाश करता है, २. मारने या नाश
 करने में, ३. मारते या नाश करते समय । उ० ३. सुभुज
 मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि दलत जेहि दूसरो सर
 न साँभ्यो । (क० ६।४) दलि-(सं० दलन)-चूर चूरकर,
 दलकर, उजाड़कर, नष्टकर । उ० कानन दलि होरी रचि
 बनाइ । (गी० २।१६) दलिहौं-दलूँगा, दलन करूँगा,
 नष्ट-भ्रष्ट करूँगा । उ० सोई हौं ब्रह्म राजसभा धनु
 को दल्यौं हौं दलिहौं बल ताको । (क० १।२०) दलीं-
 १. दलित, २. दली गई, दो टुक की गई, खंडित हुई,
 ३. नष्ट-भ्रष्ट हो गई, टुकड़े-टुकड़े हो गई, समाप्त हो गई ।
 उ० ३. तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि
 दली । (गी० २।१०) दले-दलन किया, नष्ट कर दिये ।
 उ० अब सोचत मनि विनु भुजंग ज्यों बिकल अंग दले
 जरा घाय । (वि० ८३) दलीं-दलन करूँ, कुचल डालूँ ।
 उ० कै पाताल दलीं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावो ।
 (गी० ६।८) दल्यो-तोड़ा, नष्ट किया, मार डाला । उ०
 ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहि राम सिवधनु दल्यो ।
 (क० १।११) दल्यो-तोड़ा, खंडित किया, नष्ट किया ।
 उ० सोई हौं ब्रह्म राजसभा धनु को दल्यो हौं दलिहौं
 बल ताको । (क० १।२०)
 दलदल-(सं० दलाब्ध)-पंक, कीचड़, चहला । वह जमीन
 जो बहुत नीचे तक गीली हो और जिसमें पैर आसानी
 से धँसता हो ।
 दलन (२)-(सं० दलन)-१. चूर-चूर करनेवाला, मर्दन
 करनेवाला, संहारकर्ता, २. नाश, चूर-चूर करना । उ०
 १. कीस-कौतुक-केलि-लूम-लंका-दहन दलन-कानन-तरुन-
 तेजरासी । (वि० २६) २. है दयालु हुनि दस दिसा
 दुख-दोष-दलन छुम । (वि० २७५) दलनि (२)-दलने-
 वाली, पीसकर टुकड़े-टुकड़े करनेवाली, नष्ट करनेवाली,
 संहार करनेवाली । उ० वर्म चर्मकर कृपान, सुलसेल
 धनुष-बान-धरनि दलनि दानवदल, रनकरालिका । (वि०
 १६)
 दलनिहार-नाश करनेवाला, संहारक । उ० दलनिहार
 दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को । (वि० १५६)
 दलमलि-कुचलकर, मसलकर । उ० भुजबल रिपुदल दल-
 मलि देखि दिवस कर अंत । (मा० ६।४५) दलमले-

(सं० दलन + मर्दन)-मसल डाला, मर्दन कर डाला ।
 उ० रनमत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमले ।
 (मा० ६।६५। छं० १)
 दलित-(सं०)-१. जिसका दलन किया गया हो, मर्दित,
 २. रौंदा हुआ, कुचला हुआ, ३. खंडित, फाड़ा हुआ,
 घायल, ४. विनष्ट किया गया, ५. तिरस्कृत । उ०
 ३. अंग अंग दलित ललित फूले किमुक से । (क० ६।४८)
 दलु-दे० १. 'दल (१)' । उ० ३. सैलसंग भव भंग हेतु
 लखु, दलन कपट-पाखंड-दंभ दलु । (वि० २४)
 दलैया-नष्ट करनेवाला, तोड़नेवाला । उ० रोषि बान
 काढ़यो न दलैया दससीस को । (क० ६।२२)
 दव-(सं०)-१. वन, जंगल, २. वन की आग, दावाग्नि,
 ३. आग, अग्नि, भयानक अग्नि, ४. तपन, जलन, दाह ।
 उ० ३. जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही । (मा० २।
 ८४।२)
 दवन (१)-(सं० दमन)-दमन करनेवाला, नाश करने-
 वाला । उ० कंदर्प दर्प-दुर्गम-दवन, उमारवन, गुनभवन-
 हर । (क० ७।१५०)
 दवन (२)-(सं० दव)-जलानेवाला ।
 दवनु-दे० 'दवन (१)' । उ० पुनि रिपु दवनु हरषि हिथै
 लाप । (मा० २।३१।८।२)
 दवनू-(सं० दमन)-दमन करनेवाला, नष्ट करने या दवाने-
 वाला । उ० सिय समीप राखे रिपु दवनू । (मा० २।
 २४३।१)
 दवरि-(सं० धोरण, हिं० धौरना)-दौड़कर । उ० मोहिं
 पर दवरि दमानक सी दई है । (ह० ३८)
 दवा (१)-(सं० दव)-दवाग्नि, जंगल की आग, भयंकर
 आग । उ० तोसों समथ सुसाहिब सेइ सहे तुलसी दुख-
 दोष दवा से । (ह० १८)
 दवा (२)-(फा०)-औषधि, ओखद ।
 दवाग्नि-(सं० दवाग्नि)-वन की आग, दावाग्नि ।
 दवारि-दे० 'दवारी' । उ० १. लागि द्वारि पहार ठही
 लहकी कपि लंक जथा खरखौकी । (क० ७।१४३)
 दवारी-(सं० दवाग्नि)-१. वन की आग, दावानल, २.
 दाह, जलन । उ० २. एकइ उर बस दुसह दवारी । (मा०
 २।१८२।३)
 दशकंठ-(सं०)-रावण, जिसके दस कंठ हों ।
 दशकंध-(सं० दश + कंध)-रावण, जिसके दस कंधे हों ।
 दशकंधर-(सं०)-दे० 'दशकंध' ।
 दशगात्र-(सं०)-मृतक संबंधी एक कर्म जो मरने के
 पीछे दस दिनों तक होता रहता है ।
 दशमुख-(सं०)-रावण ।
 दशमौलि-(सं०)-रावण ।
 दशरथ-दे० 'दशरथ' । उ० जयति मुनिदेव नरदेव दशरथ
 के, देव-मुनि-बंध किये अवधवासी । (वि० ४४)
 दशरथ-(सं०)-अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय राजा अज के पुत्र
 एक प्राचीन राजा जिनके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न
 चार पुत्र तथा कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा तीन रानियाँ
 थीं । ये देवों की ओर से कई बार असुरों से लड़े और
 उन्हें परास्त किया था । एक बार युद्धस्थल में कैकेयी ने

दशरथ की सहायता की थी, जिसके बदले में दशरथ ने दो वर माँगने को कहा था। राम के राज्याभिषेक के समय अपनी दासी मंथरा के कहने से कैकेयी ने राम को बनवास और भरत को राज्य, ये दो वर माँगे। अंत में राम बन को गये और उनके वियोग में दशरथ का शरीर अंत हो गया।

दशशीश-(सं०)-दस सिरवाला, रावण।

दशा-(सं०)-१. अवस्था, स्थिति, हालत, २. चित्त, ३. कपड़े का झोर, ४. दीप की बत्ती, ५. मानव जीवन की दस दशाएँ या अवस्थाएँ, जिनके नाम गर्भवास, जन्म, बाल्य, कौमार, पौगंड, यौवन, स्थाविर्य, जरा, प्राणरोध और मृत्यु हैं। ६. साहित्य में विरह की अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण आदि दशाएँ। ७. फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में प्रत्येक ग्रह का नियत भोग काल।

दशानन-(सं०)-दस मुखवाला, रावण।

दस-(सं० दश)-१ के बाद की संख्या, १०, ११ से एक कम। उ० दस दिसि देखत सगुन सुभ, पूजहि मन अभिलाष। (दो० ४६०) दसउ-दसो, सभी दस। उ० अस रिस होति दसउ मुख तोरौ। (मा० ६३४१) दसहुँ-दसों। उ० मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे। (मा० १११४) दसहु-दसों। उ० दसहुँ दसहु कर संयम जो न करिय जिय जानि। (वि० २०३) दसहुँ-दसों। उ० नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ। (मा० १२८१)

दसहँ-(सं० दशमी)-चांद्र मास की किसी पक्ष की दसवीं तिथि, दसमी। उ० दसहँ दसहु कर संयम जो न करिय जिय जानि। (वि० २०३)

दसकंठ-दे० 'दशकंठ'। उ० जयति मंदोदरी-केसकर्षण विद्यमान-दसकंठ भट मुकुट-मानी। (वि० २६)

दसकंध-दे० 'दशकंध'। उ० मीत बालि-बंधु, पूत दूत, दसकंध-बंधु। (क० ७१२२)

दसकंधर-दे० 'दशकंधर'। उ० तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ। (मा० ३१२१ख)

दसगात्र-दे० 'दशगात्र'। उ० कीन्ह भरत दसगात विधाना। (मा० २१७०३)

दसचारि-चौदह, दस और चार। उ० सुजस-धवल, चातक नवल! तुही सुवन दसचारि। (दो० २६५)

दस-जान-(सं० दश + जान)-महाराज दशरथ। उ० जनक सुता दस-जान-सुत उरग-ईस अ-म जौर। (स० २१४)

दसन (१)-(सं० दशन)-दाँत, दंत। उ० तौ तुलसिहि तारिहो विप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के। (वि० ६६)

दसननि-दाँतों को। उ० कुलिस-कुंद कुडमल-दामिनि-दुति दसननि देखि लजाई। (वि० ६२) दसनन्हि-दाँतों से। उ० दसनन्हि काटि नासिका काना। (मा० ६११४)

दसन (२)-(सं० दशन)-हँसनेवाला।

दसबदन-(सं० दश + बदन)-दस मुखवाला, रावण। उ० सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न कालबली ते। (वि० १६८)

दसमाथ-(सं० दश + मस्तक)-१. दस सिरवाला, रावण,

२. दस सिर। उ० १. रावण की रानी जातुधानी बिलखानी कहैं, हा हा! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों। (क० ५१३) २. जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिष्ट दसमाथ। (दो० १६३)

दसमुख-दे० 'दशमुख'। उ० सुपनखा, मृग, पूतना, दसमुख प्रमुख बिचारि। (दो० ४०८)

दसमौलि-दे० 'दशमौलि'। उ० हँसि बोलिउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक। (मा० ६१२३च)

दसरथ-दे० 'दशरथ'। उ० चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रवर्ति दसरथ के। (मा० ११२६५)

दसरथ-दे० 'दशरथ'। उ० दसरथ राउ सहित सब रानी। (मा० ११६३) दसरथहि-दशरथ को। उ० आनहि नृप दसरथहि बोलाई। (मा० ११२८१)

दसरथपुर-(सं० दशरथ + पुर)-दसरथ का नगर, अयोध्या। उ० दसरथपुर छवि आपनी सुरनगर लजाए। (गी० ११६)

दसरथु-दे० 'दशरथ'। उ० सोच जोगु दसरथु नृप नार्हीं। (मा० २१७२१)

दससीस-दे० 'दशशीश'। उ० सुनि दससीस जरे सब गाता। (मा० ३१२२६)

दससांसा-दे० 'दशशीश'। उ० खर आरूढ़ नगन दससांसा। (मा० ५१११२)

दसस्यंदन-(सं० दश + स्यंदन)-महाराज दशरथ। उ० सुनि सानंद उठे दस स्यंदन सकल समाज समेत। (गी० ११२)

दसहि-दशा को, हालत को, अवस्था को। उ० बरनौं किमि तिनकी दसहि, निगम-अगम प्रेम-रसहि। (गी० २१७)

दसा (१)-(सं० दशा)-दे० 'दशा'। उ० १. सुनिय, गुनिय, समुम्निय, समुम्नाह्य दशा हृदय नहि आवै। (वि० ११६) ७. प्राण मीन दिन दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई। (क० २६)

दसा (२)-(सं० दश)-दस की संख्या, १०।

दसानन-दे० 'दशानन'। उ० दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु। (क० ७१६७)

दसि-(सं० दशन)-काटकर। उ० अधर दसन दसि मीजत हाथा। (मा० ६१३१३)

दहँ-(सं० दश)-दस, १०। उ० जलु पुर दहँ दिसि लागि दवारी। (मा० २१५६१)

दहइ-(सं०)-१. जलती है, जल रही है, २. जलाती है, जला रही है। उ० १. बहइ न हाथु दहइ रिस छाती। (मा० ११२८०१) २. दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू। (मा० २१२६१२) दहई-जलाया, जला दिया। उ० रावन नगर अल्प कपि दहई। (मा० ६१२३४) दहत-१. जलता, खलता है, २. जलाता, जलाता है, ३. जलता हुआ। उ० ३. लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं। (वि० ७६) दहति-जला देती है। दहते-जलाते, भस्म करते। उ० जौ सुत हित लिए नाम अजाभिल के अघ अमित न दहते। (वि० ६७) दहसि-भस्म करती हो, जलाती हो। उ० विष्णु-पदकंज मकरंद-इव अंजु बर बहसि, दुख दहसि अघ दूँद-विद्रावनी। (वि० १८) दहहीं-दहते हैं, भस्म

हो जाते हैं। उ० ते नरेस बिनु पावक दहहीं। (मा० २। १२६।२) दाहे-जलाकर। उ० जलाधि लंघि, दहि लंक प्रबल-दल-दलन निसाचर घोर हो। (वि० ३१) दहिहीं-१. जलूंगा, २. जलाऊंगा। उ० १. यहि नाते नरकहुँ सजु पैहीं, या बिनु परम दहुँ दुख दहिहीं। (वि० २३१) दही (१)-(सं० दहन)-१. जली, जल गई, २. जला दी। उ० १. तीय-सिरोमनि सीय तजी जेहि पावक की कलु-पाई दही है। (क० ७।६) दहे-१. जलाए, २. जले, ३. जलने लगे। उ० ३. सुनत मातु पितु परिजन दारुन दुख दहे। (पा० ३३) दहेउ-जल उठा, जलने लगा, जला। उ० उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाप बिकट भट रजनीचरा। (मा० ३।१६।३) दहेऊ-जला, जल उठा। उ० प्रभु अपमानु समुक्ति उर दहेऊ। (मा० १।६३।३) दहै-जलते हैं। उ० अह-अग्नि ते नहि दहै, कोटि करै जो कोइ। (बै० २४) दहे-१. जले, जल उठे, २. जलावे, जला-ढाले। उ० १. तुलसी न्यारे हूँ रहै दहै न दुख की आगि। (बै० ४२) दहो-१. जलता, जला, २. जलाता। उ० १. जीव जहान में जायो जहाँ सो तहाँ तुलसी तिहँ दाह दहो है। (क० ७।६१) दहौंगो-१. जलूंगा, २. जलाऊंगा। उ० १. परब बचन अति दुसह खवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो। (वि० १७२) दहंति-जलते। उ० ते संसार पतंग घोर किरणैदहंति नो मानवाः। (मा० ७।१३।१।श्लो० २) दह्यो (सं० दहन)-जलाया, भस्म किया। उ० सो ज्ञान ध्यान बिराग अनुभव जातना-पावक दह्यो। (वि० १३६)

दहन-(सं०)-१. आग, २. जलना, ३. जलाना, ४. जलाने-वाला, भस्म करनेवाला। उ० १. रामहि सोहानी जानि सुनिमन-मानी सुनि नीच महिपावली दहन बिनु दही है। (गी० १।८५)

दहनकर-दहन करनेवाला, जलानेवाला। उ० बन अग्र्यान कहे दहन कर अनल प्रचंड रकार। (सं० १४७)

दहनि-१. दाह, जलन, २. भस्म करनेवाली, जलाने-वाली।

दहनु-दे० 'दहन'। उ० ३. बेय तौ भिखारि को, मयंक रूप संकर, दयालु दीनबंधु दानि दारिद-दहनु है। (क० ७।१६०)

दहिन-(सं० दधि)-दाहिना, दायीं। उ० बाम दहिन दिसि चाप निपंगा। (मा० ६।११।३) दहिन-दाहिनी, दायीं। उ० दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी। (मा० २। २०।३)

दही (२)-(सं० दधि)-जमा हुआ दूध, दधि। उ० सुखमा-सुरभि सिंगार-झीर दुहि मयन अभिय-मय कियो है दही, री। (गी० १।१०४)

दहेंडि-(सं० दधि)-दही जमाने या रखने की मटकी। उ० अहिरिनि हाय दहेंडि सगुन खेइ आवइ हो। (रा० ५)

दह्यो (२)-(सं० दधि)-दही, दधि। दह्योउ-दही भी। उ० दूध दह्योउ माखन डारत है हुतो पोसात दान दिन दीबो। (क० ६)

दाँउ-दे० 'दाँव'।

दाँड़-(सं० दंड)-१. सज़ा, २. ताड़ना, ३. शासन, ४. नाव खेने का डौँ या डंडा।

दाँत-(सं० दंत)-दंत, दशन, रद। उ० तापर दाँत पीसि कर मीजत, को जानै चित कहा ठई है। (वि० १३६) मु० दाँत पीसि-दाँत पर दाँत रगड़कर, क्रोधित होकर। उ० दे० 'दाँत'।

दाँव(?)-(सं० प्रत्यय-दा)-१. चाल, पेच, कुश्ती जीतने के लिए काम में लाई जानेवाली युक्ति, २. उपाय, कार्य-साधन की युक्ति, ३. कपट, छल, ४. चाल, खेले की बारी, ५. मौका, उपयुक्त समय, सुअवसर, ६. बार, दफा, मर्तबा, ७. पारी, बारी, ओसरी, ८. स्वार्थ, ९. जुए आदि में कौड़ी का इस प्रकार पड़ना कि जीत हो, जीत का पासा।

दाँवरी-(सं० दाम) रस्सी, रसरी, जँवर। उ० दुसह दाँवरी झोरि, थोरी खोरि कहा कीन्हों। (क० १५)

दा-(सं०)-देनेवाली, दान करनेवाली।

दाइ (१)-(सं० दायिन्)-देनेवाला, दान करनेवाला। उ० गगन, जल, थल बिमल तब तें सकल मंगलदाइ। (गी० ७।३३)

दाइ (२)-दे० 'दाँव'।

दाइज-(सं० दाय)-वह धन जो विवाह में वर पक्ष को कन्या पक्ष की ओर से दिया जाय। दहेज। उ० दाइज दीन्ह न जाइ बखाना। (मा० १।१०।१।४)

दाइनि-(सं० दायिनी)-देनेवाली, दान करनेवाली।

दाई-(सं० दायिन्)-देनेवाला, दान करनेवाला। उ० हौं मन बचन कर्म पातक-रत, तुम कृपालु पतितनि गति दाई। (वि० २४२)

दाउँ-दे० 'दाँव'। उ० ५. देखिबे को दाउँ, देखौ देखिबो बिहाइ कै। (गी० १।८२।४)

दाउ-दे० 'दाँव'। उ० ४. जीति हारि सुसुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ। (वि० १००)

दाऊँ-दे० 'दाँव'।

दाऊ-दे० 'दाँव'। उ० ६. सूऊ जुआरिहि आपन दाऊ। (मा० २।२५।१)

दाग-(फा० दाग)-१. धब्बा, चित्ती, कुअंक, २. चिह्न, अंक, निशान, ३. कलंक, लाँछन, दोष, ४. जलने का चिह्न। उ० १. बाम बिधि भालहू न कर्म-दाग दागिहै। (वि० ७०)

दागिहै-(सं० दग्ध)-१. दागेगा, दाग सकेगा, २. धब्बा लगा सकेगा, ३. कलंकित कर सकेगा, ४. चिह्नित कर सकेगा, लिख सकेगा। उ० १. बाम बिधि भालहू न कर्म-दाग दागिहै। (वि० ७०) दागी-(सं० दग्ध)-जला दी, जलाई। उ० गयो बपु बीति बादि कानन ज्यो कलप-लता दव दागी। (गी० ३।१२)

दाघ-(सं०)-१. गरमी, ताप, दाह, जलन, २. जला हुआ, दग्ध।

दाडिम-(सं० दाडिम)-अनार। उ० कुंद कली दाडिम दामिनी। (मा० ३।३०।६)

दाढ़ी-(सं० दंष्ट्रा, प्रा० डड्डा, हि० दाढ़)-मुख के नीचे का चिबुक भाग या चिबुक और कपोल आदि पर उगे बाल।

दाढ़ीजार-जिसकी दाढ़ी जल गई हो। 'दाढ़ीजार' एक गाली है, जिसे ओरतें देती हैं। उ० बार-बार कछों में पुकारि दाढ़ीजार सों। (क० २१११)
 दातन्ह-दांतों से। उ० मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहि। (मा० ६१२३३)
 दातहि-दाता को, देनेवाले को। उ० तुलसी जाचक पातकी दातहि दूषन देहि। (दो० ३७६) दाता-(सं०)-१. देनेवाला, दानी, २. उदार। उ० १. होइ जलद जगजीवन-दाता। (मा० ११७६)
 दातार-देनेवाला, दानी। उ० राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार। (मा० २३)
 दातारु-दे० 'दातार'।
 दाद (१)-(सं० दह)-एक चर्म रोग जिसमें काले-काले चकत्ते पड़ जाते हैं और खुजली भी रहती है। दिनाय, दिनाई।
 दाद (२)-(फ़ा० दाद) इंसफ, न्याय।
 दादि-दे० 'दाद (२)। उ० कृपासिंधु! जन दीन दुवार दादि न पावत काहे? (वि० १४४)
 दादु-दे० 'दाद (१)। उ० ममता दादु कंडु हरषाई। (मा० ७१२११७)
 दादुर-(सं० दहुर)-मेढक, मंडक। उ० हर गुर निंदक दादुर होई। (मा० ७१२११२)
 दान-(सं०)-१. धर्म, श्रद्धा या दया के भाव से दिया गया अन्न, वस्त्र या धन आदि, खैरात, २. कर, महपूल, ३. चंदा, ४. वह वस्तु जो दान में दी जाय, ५. राजनीति की चार उपायों में से एक, कुछ देकर शत्रु के विरुद्ध कार्य कराने की नीति, ६. हाथी के मस्तक से चूनेवाला मद, ७. दहेज़, दायज। उ० १. साहिब सब बिधि सुजान, दान-खंग-सुरो। (वि० ८०)
 दानव-(सं०)-करघप के वे पुत्र जो दनु नाम्नी पत्नी से पैदा हुए थे। असुर, राक्षस। उ० भजु दीनबंधु दिनेश दानव दैत्य वंश निकंदन। (वि० ४५)
 दाना-दे० 'दान'। उ० १. बिजैवाइ देहि बहु दाना। (मा० २१२६१४)
 दानि-दे० 'दानी'। १. दानि दसरथ राय के तुम बानइत-सिरताज। (वि० २१६) उ० २. राम कथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि। (मा० १११३)
 दानी-(सं० दानिन्)-१. दान करनेवाला, २. देनेवाला, दाता, ३. उदार। उ० १. दानी कहुँ संकर सम नाहीं। (वि० ४)
 दानु-दे० 'दान'। उ० १. रूचै माँगनेहि माँगिबो, तुलसी दानिहि दानु। (दो० ३२७)
 दाप-(सं० दप)-१. गर्व, अहंकार, २. शक्ति, बल, ज़ोर, ३. तेज़, प्रताप, ४. आतंक, ५. दुःख, ६. क्रोध, ७. जोश, उमंग। उ० १. रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु-फिरहु करि दाप। (मा० ६१८१) ३. भंजि भव चाप, दलि दाप भूपावली, सहित शृगुनाथ नत माथ भारी। (वि० ४३) ५. त्रिबिध तापभव दाप नसावनि। (मा० ७३५१)
 दापा-दे० 'दाप'। उ० १. हारे संकल भूप करि दापा। (मा० ११२६१२)

दापु-दे० 'दाप'। उ० १. भंजउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। (मा० ११२८३३) ४. व्याही जेहि जानकी जीति जग हरथो परसुधर-दापु। (गी० ६११)
 दाबि-(सं० दमन)-दबाकर, कुचलकर, तोड़-मरोड़कर। उ० ते रन-तीर्थनि लखन लखन दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं। (क० ६३३)
 दाम (१)-(सं०)-१. रस्सी, रज्जु, २. माला, हार, ३. चमकता हुआ। उ० १. धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम। (मा० ११७५) २. श्याम तामरस दाम शरीरं। (मा० ३१११२)
 दाम (२)-(श्री०)-१. मूल्य, २. द्रव्य, ३. एक-पैसे का पच्चीसवाँ भाग, ४. राजनीति की एक चाल जिसमें शत्रु को धन द्वारा वश में करते हैं। ५. खरा माल, ६. धातु। उ० २. करमजाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को। (वि० १५५)
 दामिनि-दे० 'दामिनी'। उ० दमकै दैतियाँ हुति दामिनि ज्यों। (क० १३)
 दामिनी-(सं०)-बिजली, विद्युत। उ० मुक्ति की दूतिका, देह-दुति दामिनी। (वि० ४८)
 दामोदर-(सं०)-१. श्रीकृष्ण, २. विष्णु। उ० १. तुलसी जे तोरे तरु किपु देव, दिपु बरु कै न लह्यो कौन फरु देव दामोदर तें। (क० १७)
 दायँ-समय में। दे० 'दाय (३)। उ० २. सिर धुनि-धुनि पछि-तात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दायँ। (वि० ८३)
 दाय (१)-(सं०)-१. कन्यादान के बाद घर को कन्या पक्ष की ओर से दिया जानेवाला धन, २. बपौती।
 दाय (२)-(सं० दाव)-१. दावानल, २. जलन, दुःख।
 दाय (३)-(सं० प्रत्यय-दा, जैसे एकदा)-१. दफा, बार, २. अवसर, समय, ३. दाव। उ० ३. होत हठि मोहि दाहिनो दिन दैव दारुन-दाय। (गी० ७३१)
 दायक-(सं०)-देनेवाला, दाता। उ० भगत बिपति भंजन-सुखदायक। (मा० ११८५)
 दायकु-दे० 'दायक'। उ० बरनउँ रघुबर विमल जसु जो दायकु फल चारि। (मा० २११ दोहा १)
 दायज-दे० 'दायजा'।
 दायजा-(सं० दाय)-विवाह में घर पक्ष को कन्या पक्ष से दिया जानेवाला धन, यौतुक, दहेज।
 दायनी-देनेवाली, प्रदान करनेवाली। उ० विमल कथा हरिपद दायनी। (मा० ७३२३)
 दाय्या-(सं० दया)-दया, रहम, कृपा। उ० करि उपाय पचि मरिय तरिय नहि जब लागि करहु न दाय्या। (वि० ११६)
 दायिनि-(सं० दायिनी)-देनेवाली। उ० भक्ति-भुक्ति-दायिनि, भयहरनि, कालिका। (वि० १६)
 दार-(सं०)-स्त्री, पत्नी, भार्या। उ० सुत, दार, अगार, सखा, परिवार बिलोक महा कुसमाजहि रे। (क० ७३०)
 दारण-(सं०)-१. फाड़ना, विदारण, चीड़-फाड़, २. फाड़नेवाला, चीरनेवाला।
 दारदां-(सं० दरिद्र)-दरिद्र होती जाती है। उ० साहिब सरोष हुनी दिन-दिन दारदी। (क० ७१८३)

दारन-दे० 'दारण' । उ० २. भव वारन दारन सिंह प्रभो ।
(मा० ६।१११।१)
दारय-(सं० दारण, हि० दारना)-नाश कीजिए, विदीर्ण
कीजिए, फाड़िए । उ० मन संभव दारुन दुख दारय ।
(मा० ७।३१।२)
दाग-(सं० दार)-स्त्री, पत्नी, भार्या । उ० जे लंपट पर धन
पर दारा । (मा० १।१८।१)
दारि-(सं० दालि)-दाल, दला हुआ अरहर, मूँग, उड़द,
मटर तथा चने आदि का दाना । उ० चाहत अहारन
पहार दारि कूरना । (क० ७।१४८)
दारिका-(सं०)-बालिका, कन्या । उ० ए दारिका परि-
चारिका करि पालिबीं करुना नई । (मा० १।३२६। छं० ३)
दारिद-(सं० दारिद्र्य)-दरिद्रता, निर्धनता । उ० दारिद-
दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु ! (क० ७।६७)
दारिदी-दरिद्री; गरीब, निर्धन । उ० दारिदी दुखारी देखि
भूसुर भिखारी भीरु । (क० ७।१७४)
दारु-(सं०)-काठ, लकड़ी । उ० दारु विचारु कि करइ
कोउ बंदिअ मलय प्रसंग । (मा० १।१० क)
दारुजोषित-(सं० दारु + योषित्)-कठपुतली । उ० उमा
दारुजोषित की नाई । (मा० ४।११।४)
दारुण-(सं०)-१. भयंकर, भीषण, घोर, २. कठिन, विकट,
३. विदारक, फाड़नेवाले, ४. भयानक रस, ५. एक नरक
का नाम, ६. विष्णु, ७. शिव, ८. चीते का पेड़ ।
दारुन-दे० 'दारुण' । उ० १. दारुन दनुज जगत-दुख-
दायक जारयो त्रिपुर एक ही बान । (वि० ३) २. दारुन-
बिपति-हरन, करुनाकर । (वि० ७)
दारुनारि-(सं० दारुनारी)-कठपुतली । उ० सारद दारुनारि
सम स्वामी । (मा० १।१०६।३)
दारु-(फ्रा०)-१. शराब, मद्य, २. बारूद । उ० काल
तोपची, तुपक महि, दारु-अनय कराल । (दो० २।१५)
दारै-(सं० दलन)-दले, नष्ट किए । उ० भागे जंजाल
बिपुल, दुख-कदंब दारै । (गी० १।३६)
दारै-विनाश करे, फाड़े, दले, ध्वंस करे । उ० अभिमत
दातार कौन दुख दरिद्र दारै । (वि० ८०)
दालि-(सं० दलन)-१. दलन करनेवाला, नष्ट करने-
वाला, २. दलन करके, नष्ट करके । उ० १. मंडजीक-
मंडली-प्रताप-दाप दालि री । (क० १।१२)
दावन-(सं० दमन)-१. दमन, नाश, २. नाश करनेवाला,
दमन करनेवाला । उ० २. जातुधान दावन, परावन को
दुर्ग भयो । (ह० ७) दावनी (१)-नष्ट करनेवाली,
भिद्यनेवाली । उ० त्रिविध ताप भव भय दावनी । (मा०
७।१५।१)
दावनी (२)-(सं० दामिनी)-माथे का एक गहना ।
दावा (१)-(सं० दाव)-१. बन की आग, २. आग, ३.
दाह, जलन । उ० १. रानिन्ह कर दारुन दुख दावा ।
(मा० १।२६०।३) ३. करत प्रवेस मिटे दुख दावा । (मा०
२।२३।२)
दावा (२)-(अर०)-१. स्वत्व, हक, अधिकार, २. नालिश,
अभियोग, ३. हड़तापूर्वक कथन ।
दाशरथि-(सं०)-१. दशरथ के पुत्र, २. रामचंद्र, ३.

४. लक्ष्मण, भरत, ५. शत्रुघ्न, ६. दशरथ के चारों पुत्र ।
उ० १. जयति दाशरथि, समर-समरथ, सुमित्रासुवन्, शत्रु
सूदन, राम-भरत बंधो । (वि० ३८)
दास-(सं०)-१. सेवक, किंकर, नौकर, २. शूद्र, चौथे वर्ण
का मनुष्य, ३. चोर, तस्कर, ४. धीवर, मल्लाह, ५.
आत्मज्ञानी, ६. एक उपाधि जो शूद्रों या हरिभक्तों के
नामांत में लगाई जाती है । जैसे तुलसीदास, रैदास ।
उ० १. मोद मंगल की रासि, दास कासी-बासी तेरे हैं ।
(क० ७।१७४) दासतुलसीस-(सं० दास, तुलसी + ईश)-
तुलसी के ईश भगवान रामचंद्र के दास हनुमान । उ०
दासतुलसीस के बिरुद बरनत बिदुष । (क० ७।४५)
दासन्ह-दासों, नोकरों, सेवकों । उ० अति आनंद दासन्ह
कहँ दीन्हा । (मा० १।२०३।१)
दासरथि-दे० 'दाशरथि' । उ० १. दासरथि बीर बिरुदैत
बाँको । (क० ६।२१)
दासरथी-दे० 'दाशरथि' । उ० २. पल में दल्यो दासरथी
दसकंधर, लंक बिभीषन राज बिराजे । (क० ७।१)
दासा-दे० 'दास' । उ० १. सुंदरि सुनु मैं उन्हेकर दासा ।
(मा० ३।१७।७)
दासी-दासियाँ, नोकरानियाँ । उ० दासी दास तुरग रथ
नागा । (मा० १।१०।१४) दासी-(सं०)-नोकरानी,
सेविका, सेवा करनेवाली स्त्री । उ० जानिअ सत्य मोहि
निज दासी । (मा० १।१०८।१)
दासु-दे० 'दास' ।
दाह-(सं०) १. जलन, ताप, २. जलाना, जलाने की क्रिया,
३. मुर्दा फूँकना, शवदाह, ४. डाह, ईर्ष्या, ५. दुःख । उ०
१. देखत दुख-दोष-दुरित-दाह दारिद-दरनि । (वि० २०)
दाहक-(सं०)-जलानेवाला । उ० सीतल सिख दाहक भइ
कैसँ । (मा० २।६४।१)
दाहने-दे० 'दाहिने' ।
दाहा-१. जलन, २. जलाया, भस्म किया । उ० २. साँचेहु
कीस कीन्ह पुर दाहा । (मा० ६।२३।४) दाहिं-जलाकर,
दहनकर, गर्मकर । उ० अनल दाहि पीटत घनहि परसु
बदन यह दंड । (मा० ७।३७) दाहे-१. जलाए, २.
जलाने से, जलाने पर, ३. नष्ट किए, दूर किए । उ० ३.
जब जहँ तुमहि पुकारत आरत तब तिन्हके दुख दाहे ।
(वि० १।४५) दाहे-जलावे, दहन करे । उ० अहं-अग्नि
नहिं दाहै कोई । (वै० ५२)
दाहिन-दे० 'दाहिना' । उ० १. लखन चल्हि मगु दाहिन
लाएँ । (मा० २।७२३।३) २. भयउ कौसिलाहि बिधि
अति दाहिन । (मा० २।१४।२) ४. 'तुलसी भञ्ज दीनि
दयालुहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू । (क० ७।७)
दाहिना-(सं० दक्षिण)-१. दायाँ, बाएँ का उलटा, २.
अक्षुल, ३. सरल, सीधा, ४. सहायक । दाहिनी-दाएँ,
'दाहिना' का स्त्रीलिंग । उ० रामवाम दिसि जानकी, लपन
दाहिनी ओर । (वै० १) दाहिने-१. दाहिने तरफ, २.
अनुकूल, ३. सीधे, अच्छे । उ० ३. भए बजाइ दाहिने
जो जपि तुलसिदास से बामो । (वि० २२८) दाहिनेउ-
दाहिना भी, अनुकूल भी, सहायक भी । उ० लागे दुख
दूपन से दाहिनेउ बासैं । (गी० १।२५)

दाहिनो-१. अनुकूल, २. दापँ । उ० १. सबको दाहिनो, दीनबंधु काहू को न बाम । (वि० ७७)
दाहु-दाह, जलाना, भस्मीकरण । उ० लोक मान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु । (मा० ११६१क)
दाहु-१. दाह, जलन, २. दुःख, संताप, ३. डाह, इर्ष्या । उ० २. जेहि न बहोरि होइ उर दाहु । (मा० १७११३)
दिश्रटि-दे० 'दियट' । उ० चित्त दिश्रा भरि धरै हृद समता दिश्रटि बनाइ । (मा० ७११७ख)
दिश्रा-दे० 'दिया (१)' । उ० १. चित्त दिश्रा भरि धरै हृद समता दिश्रटि बनाइ । (मा० ७११७ख)
दिश्रासे-(सं० दीपक)-दे० 'दियरा' । उ० मनहुँ मृगी मृग देखि दिश्रासे । (मा० २११६१२)
दिक्-(सं०)-१. दिशा, २. ओर, तरफ़ ।
दिक-दे० 'दिक्' । उ० १. उकपात, दिकदाह दिन, फेकरहि स्वान सियार । (प्र० २१६१३)
दिखराय-(सं० दृश, प्रा० देखर, हि० देखना, दिखाना) दिखलाकर, जनाकर ।
दिखाई-१. दिखा, बता, २. दिखलाई, ३. देखने का भाव । उ० १. बिनु पूछै मगु देहि दिखाई । (मा० ६१३२२)
दिखाया-दिखलाया, दिखा दिया । उ० प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया । (मा० ११२३६१३) दिखावहि-दिखाते हैं, दिखलाते हैं । उ० जानाह ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि दिखावहि डाँटि । (दो० २२३) दिखाव-दिखलाते हैं, प्रत्यक्ष कराते हैं । दिखावै-दिखाता है, प्रत्यक्ष कराता है । दिखावौ-दिखाता हूँ, दिखलाता रहता हूँ । उ० मृदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मनहि दिखावौ । (वि० १४२)
दिखात-दिखाई देता है, दिखलाई पड़ता है ।
दिगंचल-(सं० दगंचल)-पलक, नेत्रपट । उ० मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल । (मा० ११२३०२)
दिगंत-(सं०)-१. दिशा का अंत, दिशा का झोर, २. चारो दिशाएँ, ३. दसों दिशाएँ ।
दिगंबर-दिशाएँ ही जिसके वस्त्र हो, नंगा । उ० अकुल अगेह दिगंबर ब्याली । (मा० ११७६१३)
दिग-दे० 'दिक्' । उ० १. भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला । (मा० ६१२२)
दिगकुंजर-दिशाओं के हाथी, दिग्गज । उ० डगे दिगकुंजर, कमठ कोल कलमले । (क० ६१७)
दिगदंति-दे० 'दिगकुंजर' । उ० कमठ कोल दिगदंति सकल अंग सजग करहु प्रभुकाज । (गी० ११८८)
दिगपाल-(सं० दिक्पाल)-पुराणानुसार दसों दिशाओं के पालन करनेवाले देवता जो निर्माकित हैं । पूर्व के इंद्र, अग्नि, दक्षिण के यम, वैश्वदेव के वैश्वदेव, पश्चिम के बरुण, वायुकोण के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशान के ईश, ऊर्ध्व के ब्रह्म और अधो के अनंत । उ० ब्याल बधिर तेहि काल, विकल दिगपाल चराचर । (क० ११११)
दिगपुर-एक गाँव का नाम ।
दिगभ्रम-(सं० दिग्भ्रम)-दिशाओं का भ्रम होना । उ० दिगभ्रम-कारन चारि ते जानहि संत सुजान । (सं० ३२६)

दिगसिंधुर-दे० 'दिग्गज' । उ० १. चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं । (मा० ६१७६१३)
दिग्गज-(सं०)-१. पुराणों के अनुसार आठो दिशाओं के आठ हाथी जो रक्षा करते हैं तथा पृथ्वी को दबाए रहते हैं । इनके नाम इस प्रकार हैं-पूर्व में ऐरावत, आग्नेय कोण में पुंडरीक, दक्षिण में वामन, वैश्वदेव में कुसुव, पश्चिम में अजिन, वायव्य में पुष्पदंत, उत्तर में सार्वभौम तथा ईशान में सप्ततीक । २. बहुत बड़ा, अत्यंत भारी । उ० १. सकल-लोकांत-कल्पांत शूलाप्रकृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी । (वि० ११)
दिग्गयंद-दे० 'दिग्गज' । उ० १. दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुख भर । (क० ११११)
दिग्गसन-दिशा ही है वस्त्र जिनका, नंगा, वस्त्रहीन । उ० त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्गसन विष भोजन भव-भय-हरन । (क० ७११४६)
दिगीस-दे० 'दिक्पाल' । उ० सेथे न दिगीस, न दिनेस, न गनेस गौरी । (वि० २२०) दिगीसनि-दिक्पालों को, दिगीशों को । उ० ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि मुनीसनि हूँ । (वि० २४६)
दिग्घा-दिग्घा-गुरु या आचार्य का नियमपूर्वक मंत्रोपदेश । उ० दिग्घा देउँ म्यान जेहि पावहु । (मा० ६१२७४)
दिग्घित-(सं० दीक्षित)-१. जिसे दीक्षा मिली हो, जिसने शिक्षा पाई हो । २. जिसने यज्ञादि का संकल्पपूर्वक अतृप्यान किया हो । उ० १. गज धौं कौन दिग्घित जाके सुभिरत खै सुनाम बाहन तजि धाप । (वि० २४०)
दिग्घाई-(सं० दृढ़)-१. दृढ़ाई, दृढ़ता, मजबूती, २. दृढ़ होती । उ० २. प्रीति बिना नहि भगति दिग्घाई । (मा० ७१८१४)
दिति-(सं०)-कश्यप ऋषि की एक स्त्री जो दक्ष प्रजापति की पुत्री थीं । दैत्यों की उत्पत्ति इन्हीं से हुई थी । जब इनके सभी पुत्र इंद्रादि मारे गए तो दिति ने कश्यप से एक ऐसे पुत्र की प्रार्थना की जो इंद्र का दमन कर सके । ऐसा ही हुआ पर उस गर्भ को भी इंद्र ने भीतर ही ४६ टुकड़ों में कर दिया जो उनचास पवन हुए ।
दितिसुत-(सं०)-दिति के पुत्र । १. दैत्य, असुर, २. हिरण्यकशिपु या हिरण्याक्ष आदि । उ० २. दितिसुत-त्रास-त्रसित निसि दिन ग्रहलाद प्रतिज्ञा राखी । (वि० ६३)
दिन (१)-(सं०)-१. दिवस, उतनी देर का समय जब तक सूर्य चिजित के ऊपर रहता है । २. समय, काल, ३. प्रतिदिन, ४. सदा, नित्य, ५. निश्चय काल, ६. दशा, परिस्थिति । उ० १. दुख सुख पाप पुन्य दिन राती । (मा० ११६१३) २. सबहि सुलभ सब दिन सब देसा । (मा० ११२१६) ३. दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तँ सिर नावै । (क० ७१२) दिन दिन-दिन प्रति दिन, रोज-रोज । उ० जेहि किए जीव-निकाय बस रसहीन दिन-दिन अति नई । (वि० १३६) दिनदीन-दिन-दिन, रोज-रोज, ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है । उ० प्राण मीन दिन-दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई । (क० २६) दिनन-दिनों, दिन का बहुवचन । उ० बहुते दिनन कीन्ह

मुनि दाय। (मा० ११२८३) दिननि-१. दिनों में, २. दिन का बहुवचन। उ० १. रिपु रन दलि, मख राखि, कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं। (गी० ११४८) दिनहिं-१. दिन में, २. प्रतिदिन, रोज। उ० २. मैं तुम्ह रे संकल्प लागि दिनहिं करबि जेवनार। (मा० १११६८) दिनहीं-दिन में ही। उ० दिनहीं लूक परन बिधि लागे। (मा० ६३२१४) दिनहुँ-दिनों। उ० देह दिनहुँ दिन दूबरि होहैं। (मा० २३२५१) मु० दिनहुँ दिन-दिन पर दिन। उ० दे० 'दिनहुँ'।

दिन (२)-(सं० दीन)-शरीर, अनाथ, दुखी। उ० १. नीलकंठ कारुण्य सिंधु हर दीनबंधु दिन दानि है। (गी० ११७८)

दिनकर-(सं०)-सूर्य। उ० हरन मोह तम दिनकर कर से। (मा० ११३२५) दिनकरहि-दिनकर में, सूर्य में। उ० खलु खबोत दिनकरहि जैसा। (मा० ६१६३)

दिनचारी-(सं० दिनचारिन्) १. सूर्य, २. बंदर।

दिननाथ-(सं०)-सूर्य। उ० कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव लिए। (जा० ३६)

दिननाथक-(सं०)-सूर्य। उ० हा रघुकुल सरोज दिन नाथक। (मा० ३१२६१)

दिनमणि-(सं०)-सूर्य।

दिनमनि-दे० 'दिनमनि'। उ० प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं। (गी० ११७१)

दिनमानी-(सं० दिनमान)-सूर्य, जिसके द्वारा दिन का मान हो।

दिनराज-सूर्य। उ० बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराज। (मा० १३२१३)

दिनु-दे० 'दिन'। उ० १. नाहिं त मौन रहव दिनराती। (मा० २१६१२)

दिनेश-(सं०)-सूर्य, दिन के स्वामी। उ० दिनेश वंश मंडन। (मा० ३१४) छ० ४)

दिनेस-दे० 'दिनेश'। उ० लोल दिनेस त्रिलोचन, करनचंद्र चंटा सी। (वि० २२)

दिनेसा-दे० 'दिनेस'। उ० सो कह पच्छिम उदय दिनेसा। (मा० ७१७३१२)

दिनेसू-दे० 'दिनेश'। उ० महामोह निसि दलन दिनेसू। (मा० २३२६३)

दिवोई-(सं० दान, हि० देना)-देना ही। उ० दीनदायलु दिवोई भावै जाचक सदा सोहाहीं। (वि० ४)

दिव्य-दे० 'दिव्य'। उ० १. सुमिरत दिव्यदृष्टि हियँ होती। (मा० ११६३) दिव्यतर-(सं० दिव्यतर)-अधिक सुंदर। उ० चाह-चंपक बरन, बसन भूपनौ-धरन दिव्यतर, भव्य लावण्यसिंधो। (वि० ३८) दिव्यदृष्टि-दे० 'दिव्यदृष्टि'। उ० सुमिरत दिव्यदृष्टि हियँ होती। (मा० ११६३)

दिय-दिया, प्रदान किया। उ० मनुहुँ मारि मनसिज पुरारि दिय ससिहि चापसर मकर अदूषन। (गी० ७१६)

दियउ-दिया है, प्रदान किया है। उ० स्वथंसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ। (मा० ६१७ ख) दिया (१)-(सं० दान, हि० देना) देना क्रिया का भूतकालिक रूप, प्रदान किया, अर्पित किया। दिये (१)-(सं० दान)-१. देने

पर, देने से, दीन्हे, २. दिये, प्रदान किये, अर्पित किये। दियो-दिया, प्रदान किया। उ० बावन बलि सों छल कियो, दियो उचित उपदेस। (दो० ३६४)

दियावत-दिलाते हैं, दिलवाते हैं।

दियट-(सं० दीपस्थ, प्रा० दीवट)-दीवट, दीपक रखने की बैठक।

दियाट-दे० 'दियट'।

दियरा-(सं० दीपक)-बड़ी मशाल जिसे शिकारी लोग हिरनों को आकर्षित करने के लिए जलाते हैं। हिरन उन्हें देखते रह जाते हैं और शिकारी पकड़ लेता है। दियरे-'दियरा' का बहुवचन। उ० देखि नरनारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे। (ग० ११४१)

दिया (२)-(सं० दीपक, प्रा० दीवट)-१. दीपक, दीप, चिराग, २. श्रेष्ठ, उच्च, भूषण। उ० २. छुअत सरासन-सलभ जरैगो ये दिनकर-बंस-दिया रे। (गी० ११६६)

दिये (२)-(सं० दीपक)-दीया का बहुवचन, बहुत से दीपक।

दियासे-दे० 'दियरा'। उ० मनहुँ मृगी मृग देखि दिआसे। (मा० २११६१२)

दिरमानी-(फ़ा० दरमान)-वैद्य, चिकित्सक, हकीम। उ० जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोस कहा दिरमानी। (वि० १२२)

दिव-(सं०)-१. स्वर्ग, २. आकाश, अंतरिक्ष, ३. बन, जंगल, ४. दिन, दिवस।

दिवस-(सं०)-१. दिन, वासर, २. प्रभात, प्रातःकाल। उ० १. मरमु न कोऊ जान कछु जुगसम दिवस सिराहि। (मा० ११५८)

दिवसु-दे० 'दिवस'। उ० १. बैठे प्रभु आता सहित दिवसु रहा भरि जातु। (मा० ११२१७)

दिवसेस-(सं० दिवस-ईश)-सूर्य। उ० सघन-तम-घोर-संसार-भर-शर्वरी-नाम दिवसेस-खर-किरन माली। (वि० ५५)

दिवा-(सं०)-दिन, दिवस। उ० दीन दयालु दिवाकर देवा। (वि० २)

दिवाकर-(सं०)-सूर्य, दिनकर। उ० नाम-प्रताप-दिवाकर-कर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो। (गी० ५१४२)

दिवान-(अर० दीवान)-१. राजा के बैठने की जगह, दरबार, २. मंत्री।

दिव्य-(सं०)-१. स्वर्गीय, अलौकिक, स्वर्ग से संबंध रखने-वाला, २. बहुत सुंदर, ३. शपथ, सौगंद, कसम, ४. प्रकाशमान, चमकीला, ५. जौ, यव, ६. आँवला, ७. सतावर, ८. ब्राह्मी, ९. हड़, १०. लवंग, ११. हरिचंदन, १२. कपूर, १३. जीरा, १४. श्वेत दूर्वा, १५. गुग्गुलु, १६. चमेली, १७. शूकर। उ० २. तद्वित्तगर्भांग सर्वांग सुंदर लसत, दिव्यपट, भव्य भूषण बिराजै। (वि० १५)

दिव्यतन-१. ऐसा शरीर जो जरा और मरण से मुक्त हो, २. अप्सरा। दिव्यदृष्टि-ऐसी दृष्टि जिससे सब जगह की चीजें देखी जा सकें, ज्ञानचक्षु, त्रिकालदर्शी आँखें।

दिशा-(सं०)-१. दिक्, ककुभ, सिस्त, चित्तिज के चार कल्पित विभागों में कोई एक। चारों दिशाओं के नाम पूरव, पश्चिम,

दक्षिण तथा उत्तर है। २. ओर, तरफ, ३. दस की संख्या, ४. नियत।

दिशि-दे० 'दिशा'।

दिशिनाता-दे० 'दिगपाल'।

दिशिनाथ-दे० 'दिगपाल'।

दिशिनायक-दे० 'दिगपाल'।

दिशिप-दे० 'दिगपाल'।

दिशिपति-दे० 'दिगपाल'।

दिशिपाल-दे० 'दिगपाल'।

दिशिराज-दे० 'दिगपाल'।

दिसा-दे० 'दिशा'। उ० १. परम सुभग सब दिसा विभागा। (मा० ११८६१४)

दिसि (१)-दे० 'दिशा'। उ० १. बिकल विधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी। (क० ६१४४)

दिसि (२)-(सं० दश)-किसी पक्ष की दसवीं तिथि, दशमी। उ० रवि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार। (दो० ४५८)

दिसिकुंजर-दे० 'दिग्गज'। दिसिकुंजरहु-हे दिग्गजो, हे दिशाओं के हाथियो। उ० दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। (मा० ११२६०११)

दिसिनाता-(सं० दिशि + नाता)-दे० 'दिगपाल'। उ० भिन्न विष्णु सिव मनु दिसिनाता। (मा० ७११११)

दिसिनायक-दे० 'दिगपाल'। उ० चौके सिव, बिरंचि, दिसिनायक रहे मूँदि कर कान। (गी० ११८८)

दिसिप-दे० 'दिगपाल'। उ० कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। (मा० ११२०१४)

दिसिपति-दे० 'दिगपाल'। उ० बिधि हरि हर दिसिपति दिनराज। (मा० ११३२११३)

दिसिपाल-दे० 'दिगपाल'।

दिसिपाला-दे० 'दिगपाल'। उ० अमर नाग किनर दिसिपाला। (मा० २१३४११)

दिसिराज-दे० 'दिगपाल'। उ० विष्णु कहा अस बिहसि तब बोखि सकल दिसिराज। (मा० ११६२)

दिहल-(सं० दान, हि० देना)-दिया, दिया है। उ० हमहि दिहल करि कुटिल करमचंद मंद मोल बिनु बोला रे। (वि० १८६) दिहेसु-देना।

दीक्षा-(सं०)-१. गुरु-से मंत्र का विधिवत उपदेश, गुरु से मंत्र लेना, २. यज्ञ।

दीक्षा-दे० 'दीक्षा'।

दीख-(सं० दृश प्रा० देखर)-१. दिखलाई दिया, २. देखा, दर्शन किया, ३. देखा हुआ। उ० २. दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा। (मा० २१३६१२) ३. सकल कहहि मगु दीख हमारा। (मा० २१०६१२) दीखा-१. देखना, दर्शन करना, २. दिखाई दिया। उ० १. निजकर नयन काढ़ि चह दीखा। (मा० २१४७१२) दीखि-देखा। उ० आगें दीखि जरत रिस भारी। (मा० २१३१११)

दीजहु-देना, दीजियु। उ० उचित सिखावन दीजहु मोही। (मा० ४३०१६) दीजे-दे० 'दीजे'। दीजे-(सं० दान, हि० देना)-१. दीजियु, प्रदान कीजियु, २. दिया जावे। उ० १. होइ प्रसन्न दीजे प्रभु यह बरु। (मा० ७३६११)

दीजे-दे० 'दीजे'। दीजे-(सं० दान, हि० देना)-१. दीजियु, प्रदान कीजियु, २. दिया जावे। उ० १. होइ प्रसन्न दीजे प्रभु यह बरु। (मा० ७३६११)

दीजे-दे० 'दीजे'। दीजे-(सं० दान, हि० देना)-१. दीजियु, प्रदान कीजियु, २. दिया जावे। उ० १. होइ प्रसन्न दीजे प्रभु यह बरु। (मा० ७३६११)

दीजे-दे० 'दीजे'। दीजे-(सं० दान, हि० देना)-१. दीजियु, प्रदान कीजियु, २. दिया जावे। उ० १. होइ प्रसन्न दीजे प्रभु यह बरु। (मा० ७३६११)

दीजे-दे० 'दीजे'। दीजे-(सं० दान, हि० देना)-१. दीजियु, प्रदान कीजियु, २. दिया जावे। उ० १. होइ प्रसन्न दीजे प्रभु यह बरु। (मा० ७३६११)

दीठ-(सं० दृष्टि)-नजर, दृष्टि।

दीठा-१. देखा, २. दर्शक, देखनेवाला। दीठे-देखा, निहारा, अवलोकन किया।

दीठि-(सं० दृष्टि)-१. नेत्र, नयन, २. दर्शन, ३. दृष्टि, नजर, ४. वह नजर जिसका किसी अच्छी चीज पर बुरा असर पड़े। उ० ३. तुलसी जाके होयगी अंतर बाहिर दीठि। (दो० ४६)

दीठी-दे० 'दीठि'।

दीन (१)-(सं०)-१. दरिद्र, निर्धन, २. दुखी, संतप्त, ३. नम्र, ४. कातर, ५. व्याकुल, ६. म्लान, ७. भीत, डरा हुआ। उ० १. कस न दीन पर द्रवहु उमावर। (वि० ७)

२. परम दुखी भा पवन सुत देखि जानकी दीन। (मा० ११८) दीनन्ह-गरीबों, दीनों। उ० कोमल चित दीनन्ह पर दाया। (मा० ७३८१२)

दीन (२)-(अर०)-मत, मजहब।

दीन (३)-(सं० दान, हि० देना)-दीन्ह, दिया।

दीनता-(सं०)-१. गरीबी, दरिद्रता, २. दुःख, ३. अधीनता, ४. नम्रता, ५. उदासी, ६. बेवसी, ७. आर्तभाव। उ० १. बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि, दीनता। (वि० २६२) ३. आरत नत दीनता कहे प्रभु संकट हरत। (वि० १३४)

दीनदयाल-दीनों पर दया करनेवाला। उ० नाथ दीनदयाल रघुराई। (मा० ६१७११)

दीनदयालु-(सं०)-दे० 'दीनदयाल'। उ० दीनदयालु दिवाकर देवा। (वि० २)

दीनबंधु-(सं०)-दुखियों या दीनों का सहायक, भगवान। उ० भजु दीनबंधु दिनेश दानव-वैत्यवंश-निकंदन। (वि० ४५)

दीना-दे० 'दीन'। उ० १. राखहु सरन नाथ जन दीना। (मा० ७१८१४)

दीन्ह-दिया। उ० करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बांल जिमि रोइ। (मा० २१६४) दीन्हा-दिया। उ० सोइ सिव कागभुसुंभिहि दीन्हा। (मा० ११३०१२) दीन्हि-दी, दी है। उ० नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई। (मा० ११३४१२)

दीन्हिउँ-दी है। उ० प्रिय बादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। (मा० २१५११) दीन्हिसि-दी, दे दी। उ० दीन्हिसि अचल बिपति कै नेई। (मा० २१२६१५) दीन्ही-दी, दी है। उ० लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही। (मा० ११०२११)

दीन्हे-दिए, प्रदान किए। उ० सबहि यथोचित आसन दीन्हे। (मा० ११००११) दीन्हेउ-दिया, दे दिया। उ० दीन्हेउ मोहि राज बरिआई। (मा० ४१६१५) दीबे-(सं० दान, हि० देना)-देने, प्रदान करने। उ० दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक। (क० ७१६५५) दीबो-देना, दीजियुगा। उ० नीके जिय की जानि अपनपौ समुक्ति सिखावन दीबो। (क० ३५)

दीप (१)-(सं०)-१. दीपक, चिराग, दीया, २. भूषण, श्रेष्ठ। उ० १. दीप मनोहर मनमय नाना। (मा० ११२८१२) दीपहि-१. दीप को, दीपक को, २. भूषण को। उ० २. रघुकुल दीपहि चलेउ लेवाई। (मा० २१३६१४)

दीप (२)-(सं० द्वीप)-द्वीप, ऐसा भूखंड जिसके चारों

दीप (३)-(सं० द्वीप)-द्वीप, ऐसा भूखंड जिसके चारों

दीप (४)-(सं० द्वीप)-द्वीप, ऐसा भूखंड जिसके चारों

दीप (५)-(सं० द्वीप)-द्वीप, ऐसा भूखंड जिसके चारों

दीप (६)-(सं० द्वीप)-द्वीप, ऐसा भूखंड जिसके चारों

दीप (७)-(सं० द्वीप)-द्वीप, ऐसा भूखंड जिसके चारों

दीप (८)-(सं० द्वीप)-द्वीप, ऐसा भूखंड जिसके चारों

दीप (९)-(सं० द्वीप)-द्वीप, ऐसा भूखंड जिसके चारों

दीप (१०)-(सं० द्वीप)-द्वीप, ऐसा भूखंड जिसके चारों

दीप (११)-(सं० द्वीप)-द्वीप, ऐसा भूखंड जिसके चारों

दीप (१२)-(सं० द्वीप)-द्वीप, ऐसा भूखंड जिसके चारों

ओर पानी हो । उ० राम-तिज्ञक सुनि दीप दीप के नृप
आए उपहार लिए । (गी० ६।२३)
दाप (३)-(सं० दीस)-चमकता हुआ, अदीस । उ० सोभा
की दीयति मानों रूप दीप दियो है । (गी० १।१०)
दापक-(सं०)-१. दीप, चिराग, दीया, २. एक अलंकार,
३. एक राग, जिसे ग्रीष्म ऋतु में गाया जाता है । उ०
१. भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहान को । (गी० १।
८६)
दीपमालिका-(सं०)-१. दीपदान, आरती या शोभा के
लिए चिरागों की पंक्ति, २. दीवाली । उ० १. ललित
दीपमालिका बिलोकहि हित करि अवधधनी । (गी० ७।
२०)
दीपसिखा-(सं० दीपशिखा)-लौ, प्रदीपग्याला, चिराग
की लौ । उ० दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा । (मा०
७।११८।१) दापसिखाउ-दीपशिखा भी, चिराग की लौ
भी । उ० कनक सलाक, कजा ससि, दीपसिखाउ ।
(त्र० ३१)
दीपा-दे० 'दीप (१)। उ० १. अंचल बात बुझावहि दीपा ।
(मा० ७।११८।४)
दीपावली-(सं०)-दे० 'दीपमालिका' । उ० १. भगति-
वैराग-विज्ञान-दीपावली अर्पि निराजनं जगनिवासं । (वि०
४७)
दीपिका-(सं०)-छोटा दीपक, छोटा मशाल । दे० 'दियरा' ।
उ० रूप-दीपिका निहारि सुग-मृगी नर-नारि । (गी०
१।८२)
दात-(सं०)-१. प्रज्वलित, जलता हुआ, २. प्रकाशित, जग-
मगता हुआ, ३. उत्तेजित, ४. सोना, ५. होंग, ६. नीबू,
७. सिंह, केशरी ।
दीप्ति-(सं०)-१. प्रकाश, उजाला, २. श्रुति, आभा, चमक,
३. शोभा, कांति, छवि, ४. लाक्षा, लाख ।
दायटि-दीपट, दीपक रखने का आधार जो धातु या लकड़ी
का होता है । उ० सोभा की दीयति मानों रूप दीप दियो
है । (गी० १।१०)
दीया-(सं० दीपक)-दीप, चिराग ।
दीरघ-(सं० दीर्घ)-१. बड़ा, बहुत बड़ा, २. आयत, लंबा,
३. दीर्घ, गुरु या द्विमात्रिक वर्ण, ह्रस्व या लघु का उलटा ।
उ० १. दीरघ रोगी, दारिदी, कटुबच लोलुप लोग । (दो०
४७७) ३. दीरघ लघु करि तहँ पढ़ब जहँ मुख लह बिस-
राम । (सं० २६)
दील-(फ्रा० दिल)-दिल, मन, जी, हृदय । उ० घायल
लखलखाल लखि बिलखाने राम, भई आस सिथिल जग-
निवास-दील की । (क० ६।५२)
दावट-दीपक रखने का आधार, दीपट ।
दीवान-दे० 'दिवान' ।
दीसा-(सं० दृश, हि० दीसना)-दिखाई पड़ा, दीखा,
देखा । उ० विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा । (मा० २।
२३।१४)
दुंदुभि-(सं०)-१. नगाड़ा, घौंसा, २. वरुण, ३. एक राक्षस
का नाम जिसे बालि ने मारकर ऋष्यमूक पर्वत पर फेंका
था । इस पर मतंग ऋषि ने श्राप दिया था जिससे बालि

उस पर्वत पर नहीं जा सकता था । उ० १. दुंदुभि धुनि
घन गरजनि घोरा । (मा० १।३४७।३) ३. दुंदुभि अस्थि
ताल देखराए । (मा० ४।७।६) दुंदुभी-बहुत सी दुंदुभियाँ ।
उ० होहि सगुन बरषहि सुमन सुर दुंदुभी बजाइ । (मा०
१।३४७) दुंदुभी-दे० 'दुंदुभि' । उ० १. गहगह गगन दुंदुभी
बाजी । (क० ६१)
दुःख-(सं०)-१. कष्ट, तकलीफ, क्लेश, २. पीड़ा या दर्द
जो मानसिक हो, ३. व्याधि, रोग, बीमारी, ४. आफत,
विपत्ति, ५. कष्ट, ताप । सांख्य शास्त्र के अनुसार दुःख
या ताप तीन प्रकार के माने गये हैं-आध्यात्मिक, आधि-
भौतिक, और आधिदैविक । आध्यात्मिक दुःख के अंत-
र्गत रोग व्याधि आदि शारीरिक तथा क्रोध आदि मान-
सिक दुःख, आधिभौतिक के अंतर्गत स्थावर, जंगम (पशु
पक्षी तथा कीड़े आदि) आदि द्वारा पहुँचाए गए दुःख
तथा आधिदैविक के अंतर्गत देवताओं या प्राकृतिक
शक्तियों द्वारा पहुँचाये गये दुःख आते हैं । उ० ४. जयति
मरुदजनना मोद-मंदिर, नतश्रीव-सुश्रीव-दुःखैक-बंधो ।
(वि० २७) दुःखतः-(सं०)-दुःख से, कष्ट से, वेदना से ।
उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मन्त्रे बनवास
दुःखतः । (मा० २।१। श्लो० २)
दुःशासन-(सं०)-धृतराष्ट्र के १०० पुत्रों में एक जो दुर्यो-
धन का प्रेमपात्र और मंत्री था । द्रौपदी को पकड़कर
सभास्थल में यही ले आया था, और दुर्योधन के कहने
से उसका वस्त्र खींचने लगा, पर कृष्ण ने द्रौपदी की रक्षा
की । भीम ने दुःशासन के वस्त्र का रक्त पीने की
प्रतिज्ञा की थी । द्रौपदी ने भी प्रण किया कि जब तक
दुःशासन के रक्त से अपने बाल न रँगो, वह बालों को
न बाँधेगी । महाभारत के युद्ध में भीम ने इन प्रतिज्ञाओं
को पूरी की और इस तरह दुःशासन भीम द्वारा मारा
गया ।
दुःसासन-दे० 'दुसासन' ।
दुअन-दे० 'दुवन' ।
दुआर-(सं० द्वार)-द्वार, दरवाजा । उ० बिप्र एक बालक
मृतक, राखेल रामदुआर । (प्र० ६।२।१) दुआरें-द्वार
पर, दरवाजे पर । उ० उर धरि धीरजु गयउ दुआरें ।
(मा० २।३६।२)
दुआरा-दे० 'दुआर' । उ० गावत पैठहि भूप दुआरा । (मा०
१।१६४।२)
दुइ-दो, युग, एक और एक । उ० ससि सर नव दुइ छ
दस गुन, सुनिफल बसु हर भाजु । (दो० ४५६) दुइचारी-
दो चार, कुछ थोड़े से । उ० सुनहु जे अब अवगुन दुइ-
चारी । (मा० १।६७।४) दुआँ-दो, दो-दोनों । उ०
लिए दुआँ जन पीठि चढ़ाई । (मा० ४।४।३) दुइसाता-
चौदह, १४ । उ० सुख समेत संबत दुइसाता । (मा०
२।२८०।४)
दुइज-(सं० द्वितीया)-१. दूज, प्रत्येक पक्ष की दूसरी तिथि,
२. शुक्ल पक्ष की दूज । उ० १. दुइज हँत-मति छाँडि
चरहि महि-मंडल धीर । (वि० २०३) २. दुइज न चंदा
देखिये, उदौ कहा भरि पाख । (दो० ३४४)
दुकाल-(सं० दु-काल)-अकाल, कष्ट, ऐसा समय जब

चीजें हतनी महेँगी हों कि लोग शूख से मरने लगें । उ० लखि सुदेस कपि भालु दल, जनु दुकाल समुहान । (प्र० १।७।२)

दुकाल-दे० 'दुकाल' । उ० बरपत सर हरपत बिबुध, दला दुकालु दयाल । (प्र० १।७।३)

दुकूल- (सं०)-१. रेशमी वस्त्र, २. महीन कपड़ा, ३. दुपट्टा, चदर, ४. नदी के दोनों किनारे । उ० १. निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई । (वि० ६२)

दुख-दे० 'दुःख' । उ० १. किए दूर दुख सबनि के जिन जिन कर जोरे । (वि० ८) २. विष्णु-पदकंज मकरंद-इव अंबु बर बहसि, दुख दहसि अघ वृंद-विद्रावनी । (वि० १८) दुखउ-दुःख भी, कष्ट भी । उ० फिरयो ललात बिनु नाम उदर लागि, दुखउ दुखित मोहिं हेरे । (वि० २२७)

दुखई-दुखित की । दुखवत-दुःख देते हुए, कष्ट पहुँचाते हुए । उ० सुताई दुखवत बिधि न बरज्यो काल के धर जात । (वि० २१६) दुखवहु-दुखित करो, नाराज करो । उ० दुखवहु मोरे दास जनि मानेहु मोरि रजाइ । (गी० २।४७)

दुखकारी-दुख पहुँचानेवाला । उ० सुति-गुरु साधु-सुमति सम्मत यह दृश्य सदा दुखकारी । (वि० १२०)

दुखद- (सं० दुःखद)-दुखदायी, दुखकारी । उ० कपट मकंद, विकट व्याघ्र पाखंड मुख दुखद-मृगमात उतपात कर्ता । (वि० १६) दुखदा-दुःख देनेवाली । उ० दुखदा कुमति कुनारितर अति सुखदायक राम । (सं० २७५)

दुखदाई-दुःख देनेवाला । उ० खल अति अजय देव दुखदाई । (मा० १।१७०।३)

दुखप्रद-दुःख देनेवाला । उ० दुखप्रद उभयबीच कछु बरना । (मा० १।१५।२)

दुखारी-दुखी, कष्टित, पीड़ित । उ० अति आरत, अति स्वार्थी, अति दीन दुखारी । (वि० ३४) दुखारे-दुखी, दुखित, दुखारी । उ० बिन्ध्य के बासी उदासी तपोव्रत-धारी महा बिनु नारि दुखारे । (क० २।२८)

दुखित-जिसे दुःख पहुँचा हो, कष्टित । उ० फिरयो ललात बिनु नाम उदर लागि, दुखउ दुखित मोहिं हेरे । (वि० २२७)

दुखी-कष्टित, पीड़ित । उ० दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी । (वि० ५)

दुखु-दे० 'दुःख' । उ० २. जाना राम सतीं दुख पावा । (मा० १।१४।२)

दुगुन- (सं० द्विगुण)-दूना, दुगुना । उ० कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा । (मा० १।२।४)

दुघरी- (सं०)- (द्वि + घटी)-दुघड़िया सुहूर्त । एक सुहूर्त जो आवश्यक काम के समय काम में जाई जाती है । इसमें दिन के अशुभ होने का विचार नहीं किया जाता । दिन रात की साठ घड़ियों को दो दो घड़ियों में विभक्त कर राशि के अनुसार फल निकालते हैं । उ० दुघरी साधि बले ततकाला । (मा० २।२७२।३)

दुचित- (सं० द्वि + चित्त)-जिसका मन डौंवाडोल हो, अस्थिरचित्त, क्रिक्रमंद, चिंतित ।

दुचितई-चित्त की अस्थिरता, दुबिधा, चिंता, आशंका,

खटका । उ० आयसु भो राम को सो मेरे दुचितई है । (गी० १।८४)

दुति- (सं० द्युति)-१. द्युति, चमक, आभा, प्रकाश, २. छवि, शोभा, कांति, सौंदर्य, ३. किरण, ररिम । उ० १. दमकै दैतियाँ दुति दामिनि ज्यौं । (क० १।३) २. जनु-तनु दुति चंपक कुसुममाल । (वि० १४)

दुतिकारी-चमकीला, प्रकाशयुक्त, कांतिमान । उ० तिलक ललाट पटल दुतिकारी । (मा० १।१४७।२)

दुतिवत-प्रकाशवान, चमकीला, कांतियुक्त । उ० अरुन चरन अंगुली मनोहर, नख दुतिवत कछुक अरुनाई । (गी० १।१०६)

दुत्त- (सं० द्युत)-१. फुर्तीला, शीघ्रगामी, २. शीघ्र, जल्दी । उ० १. जोवन नव डरत डार, दुत्त मत्त मृग मराल । (गी० २।४३)

दुनि- (अ० दुनिया)-दुनियाँ में । उ० हैं दयालु दुनि दस दिसा दुख-दोष-दलन छम, कियो न संभाषन काहँ । (वि० २७५)

दुनिए-दुनिया ही । उ० हरष-विपाद-राग रोष-गुन दोष-मई, बिरची बिरंचि सब देखियतु दुनिए । (ह० ४४)

दुनी- (अ० दुनिया)-संसार, जगत, विश्व । उ० खाए हक सबके शिदित बात दुनी सो । (क० ७।७२)

दुबेद- (सं० द्विविद)-रामायण के अनुसार एक बंदर जो राम की सेना का एक सेनापति था । उ० कहँ नल नील दुबिद बलवंता । (मा० ६।४३।१)

दुभाषी- (सं० द्विभाषी)-दो भाषाओं का जाननेवाले ऐसा मनुष्य जो उन भाषाओं को बोलनेवाले दो मनुष्यों को एक दूसरे का अभिप्राय समझाए । दुभाषिया । उ० समय प्रबोधक चतुर दुभाषी । (मा० १।२१।४)

दुरंत- (सं०)-१. जिसका पार पाना असंभव हो, २. दुष्ट, शरारती, बदमाश, कुकर्मी । उ० १. काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत । (मा० ७।६१४)

दुर (१)-दे० 'दूर' ।

दुर (२)- (सं० दूर)-एक तिरस्कारसूचक शब्द जो हटाने के लिए कहा जाता है ।

दुरई- (सं० दूर)-छिपते । उ० बैर प्रीति नहिं दुरई दुराएँ । (मा० २।१६३।१) दुरई-छिपता, छिपता है । उ० बैर प्रेम नहिं दुरई दुराएँ । (मा० २।२६४।२) दुरई-दे० 'दुरई' ।

दुरत-१. छिपता हुआ, २. छिपता है । उ० १. प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा । (मा० १।१५७।२) दुरनि-छिपना, छिपने का स्वभाव । उ० नील जलद पर निरखि चंद्रिका दुरनि त्यागि दामिनि जनु दमकति । (गी० ७।१७)

दुरहिं-छिप जाती हैं । उ० प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि । (मा० १।३४७।२)

दुरघट-दे० 'दुर्वट' ।

दुरजन- (सं० दुर्जन)-खोटा आदमी । उ० यों मन गुनति दुसासन दुरजन तमक्यो तकि गहि दुहुँ कर सारी । (क० ६०)

दुरतिक्रम- (सं०)-जो बड़ी कठिनाई से पार किया जा सके, दुस्तर, कठिन । उ० कालु सदा दुरतिक्रम भारी । (मा० ७।६४।४)

दुरदसा-(सं० दुर्दशा)-बुरी हालत, बुरी दशा, दुर्गति, दुर्दशा । उ० दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन कृपण । (वि० १४६)

दुरदिन-दे० 'दुर्दिन' । उ० दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन कृपण । (वि० १४६)

दुरवासनहि-दुर्वासना को, बुरी इच्छा को । उ० प्रगटै उपासना, दुरावै दुरवासनहि । (क० ७११ १६)

दुरबासा-दे० 'दुर्बासा' । यह महिमा जानहि दुरबासा । (मा० २१२१मा३)

दुरलभ-दे० 'दुर्लभ' ।

दुराह-छिपाकर । उ० देत मुनि मुनि-सिसु खेलौना ते लै धरत दुराह । (गी० ७१३६) दुराह-१. छिपाया, छिपा लिया, २. छिपाई हुई । उ० १. जानि कुअवसरु प्रीति दुराह । (मा० १६८मा३) दुराह-१. दुराव, छिपाव, २. कपट, झल, ३. छिपाओ । उ० १. देखा-देखी दंभ तें, कि संग तें भई भलाई, प्रगटि जनाई, कियो दूरित दुराह में । (वि० २६१) दुराह-दे० 'दुराह' । उ० १. सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराह । (मा० ११२३३) दुराह-१. दुराने से, छिपाने से, २. छिपाए हुए । उ० १. बेरु प्रीति नहि दुराहँ दुराहँ । (मा० २११३३१) दुराह-छिपा दिया, छिपा दिया है । उ० तेहि हरिषा बन आनि दुराह । (मा० २१२०३) दुराय (१)-(सं० दूर)-१. छिपाकर, २. दुराव, छिपाव । दुराह-छिपा जाना । उ० चलेउ प्रसंग दुराहहु तबहुँ । (मा० ११२७१४) दुराहउ-छिपाऊँ, छिपाता हूँ । उ० अब जौ तात दुराहउ तोही । (मा० १११६२२) दुराहहि-छिपाती हैं । उ० मुनि मुनि बचन-चातुरी ग्वालनि हँसि हँसि बदन दुराहहि । (क० ४) दुरावा-१. छिपावे, चुरावे, २. दुराव, छिपाव, कपट । उ० १. गुन प्रगटै अबगुनन्हि दुरावा । (मा० ४१७२) दुरावै-१. छिपाता है, २. छिपावे । उ० १. प्रगटै उपासना, दुरावै दुरवासनहि । (क० ७१११६ ३) दुरावौ-१. दुराता हूँ, छिपाता हूँ, २. छिपाऊँ । उ० १. मन क्रम बचन लाइ कीन्हँ अब ते करि जतन दुरावौ । (वि० १४२)

दुराचार-(सं०)-१. बुरा आचरण, बुरी चालचलन, २. अन्याय, अत्याचार, ३. पाप, अधर्म ।

दुराज-(सं० दुर+राज्य)-बुरा राज्य, ऐसा राज्य जिसमें अत्याचार और अन्याय होता हो । उ० दिन दिन दूनो देखि दारिद्र दुकाल दुख, दुरित दुराज, सुख सुकृत सकौचु है । (क० ७८मा१)

दुराधरष-दे० 'दुराधरष' । उ० दुराधरष दुर्गम भगवाना । (मा० ११८६२)

दुराधरष-(सं०)-जिसका दमन करना कठिन हो, प्रचंड, भयंकर ।

दुराप-(सं० दुराय)-१. कठिनता से मिलनेवाला । उ० सिद्ध कधि-कोविदानंद दायक पदद्वंद, मंदात्ममनुजै-दुराप । (वि० ४५)

दुराप-(सं० दुर+अप)-बुरा पानी, निषिद्ध जल ।

दुराय (२)-(सं०)-कठिनता से मिलनेवाला, दुर्लभ ।

दुराराध्य-(सं०)-जिसकी आराधना बहुत कठिन हो । उ० दुराराध्य पै अहहि महेसु । (का० १७०।२)

दुराव-छिपाव, कपट, दुराने का भाव ।

दुराशा-(सं०)-१. कुवासना, बुरी आशा, बुरी इच्छा, २. भ्रूषी आशा, ऐसी आशा जो पूरी होनेवाली न हो, ३. निराशा ।

दुरासा-दे० 'दुराशा' । उ० १. अब नाथहि अनुराग जागु जइ त्यागु दुरासा जी तें । (वि० १६८)

दुरि-१. छिपकर, २. छिप । उ० २. कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई । (मा० ६१७६६) दुरीदुरा-छिप-छिप कर, लुक-छिप कर । उ० दुरीदुरा करि नेगु सुनात जना-यउ । (जा० १६६) दुरि-छिपे, छिप गए । उ० बयौ न धनु, जनु-बीर-बिगत महि, किधौ कहुँ सुभट दुरे । (गी० ११८७) दुरेउ-छिपाहो, छिप गया हो । उ० जनु बन दुरेउ ससिहि असि राह । (मा० ११ १२६३) दुरेऊ-छिपा, छिप गया, छिप गया हो, छिपा हो । उ० जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ । (मा० ६६३२) दुरै-छिपे, ओट में हो जावे । दुरैगी-छिपेगी, ओट में होगी । उ० यहाँ क्यों दुरैगी बात मुख की औ हीय की । (वि० २६३)

दुरित-(सं०)-१. पाप, पातक, २. छिपा हुआ, गुप्त ३. पापी, पाप करनेवाला । उ० १. दहन देष दुख दुरित रुजाली । (वि० २) ३. जीवत दुरित-दसानन गहिबो । (गी० ६१४) दुरितहारी-पापों को नाश करनेवाला । उ० जयति लवणांजुनिधि-कुंभसंभव, महादनुज-दुर्जन-दवक दुरितहारी । (वि० ४०)

दुरि-(सं०)-एक उपसर्ग जिसका प्रयोग (१) बुरे, (२) निषेध या (३) कष्टकर अर्थ में होता है । जैसे दुजन दुर्बल, दुर्गम । उ० ३. ते अति दुर्गम सैल बिसाला । (मा० ११३८४)

दुर्ग-(सं०)-१. दुर्गम, जहाँ जाना कठिन हो, २. गढ़, कोट, किला, ३. एक असुर का नाम जिसे मारने के कारण देवी का नाम दुर्गा पड़ा । ४. कठिन । उ० १. दुर्द्धर्ष दुस्तर दुर्ग, स्वर्ग-अपवर्ग-पति भग्न-संसार-पादप-कुठारं । (वि० ६०) २. वपुष ब्रह्मांड सो, प्रवृत्ति-लंका दुर्ग । (वि० ६८) ४. दुर्ग-दुर्वासना नासकर्ता । (वि० ६६)

दुर्गत-(सं०)-दुर्दशाअस्त, जिसकी बुरी गति हुई हो, २. दरिद्र । दुर्गति-(सं०)-१. दुर्दशा, बुरी गति ।

दुर्गम-दे० 'दुर्गम' । उ० १. यत्पूर्व प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शंभुना दुर्गमं । (मा० ७१३२। श्लो० १) दुर्गम-(सं०) १. जहाँ जाना कठिन हो, जहाँ जल्दी पहुँच न हो सके, २. जिसे जानना कठिन हो, दुर्लभ, ३. दुस्तर, कठिन, विकट, ४. बन, कानन, जंगल, ५. संकट का स्थान, भीषण स्थिति, ६. दुर्ग, किला, गढ़, ७. विष्णु, केशव, ८. अजेय । उ० ८. दुराधरष दुर्गम भगवाना । (मा० ११८६२)

दुर्गात्ति-(सं० दुर्ग+आत्ति)-बहुत कठिन दुःख । उ० सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग दुर्द्धर्ष दुर्गात्ति-हर्ता । (वि० ६४)

दुर्घट-(सं०)-१. कठिन, जिसका होना कष्टसाध्य हो, २. जो जाने योग्य न हो, दुर्गम । उ० १. प्रबल अहंकार

दुर्घट महीधर, महामोह गिरि गुहा निबिडांधकारम् ।
(वि० ५६)
दुर्जन-(सं०)-दुष्ट आदमी, खल या खोटा मनुष्य । उ०
निज संगी निज सम करत, दुर्जन मन दुख दून । (वै० १८)
दुर्जय-(सं०)-१. जो जीता न जा सके, अजेय, २. विष्णु,
भगवान् । उ० १. अमित बल परम दुर्जय निसाचर-निकर
सहित पद्मवर्ग गो-यातुधानी । (वि० ५८)
दुर्दशा-(सं०)-बुरी दशा, दुर्गति ।
दुर्दिन-(सं०)-१. बुरा दिन, आफत का समय, आपद-
काल ।
दुर्दोष-कठिन अपराध, अक्षम्य अवगुण । उ० दनुज सूदन
दयासिधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दुःपाप हर्ता । (वि० ५६)
दुर्दोष-दे० 'दुर्दोष' ।
दुर्दोष-(सं०)-१. प्रबंड, उग्र, २. जिसका दमन करना
कठिन हो, ३. रावण के दल का एक राक्षस, ४. धतराष्ट्र
का एक पुत्र, ५. निर्भय, निडर । उ० २. सुकर दुष्कर
दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग दुर्दोष दुर्गासि-हर्ता । (वि० ५४)
दुर्बचन-कटुवाणी, कड़वी बात, गाली । उ० मैं दुर्बचन कहे
बहुतेरे । (मा० ११३८२)
दुर्बल-(सं०)-कमज़ोर, अशक्त ।
दुर्बलता-(सं०)-१. कमज़ोरी, २. दुबलापन । उ० १. विषय
आस दुर्बलता गई । (मा० ७१२२५)
दुर्बा-(सं०) दुर्वा-दूब । उ० वधि दुर्बा रोचन फल फूला ।
(मा० ७३१३)
दुर्वाद-दे० 'दुर्वाद' । उ० ३. तेहि कारन करनानिधि कहे
कछुक दुर्वाद । (मा० ६१०८)
दुर्वासा-दे० 'दुर्वासा' । उ० जथा चक्र भय रिषि दुर्वासा ।
(मा० ३१२३)
दुर्मद-(सं०)-१. उन्मत्त, मदमाता अभिमान में चूर, २.
एक राक्षस का नाम । उ० १. कुंभकरन दुर्मद रन रंगा ।
(मा० ६१६४१)
दुर्मुख-(सं०)-१. बुरे या भयानक मुखवाला, २. अप्रिय
या कटु बोलनेवाला, ३. महिषासुर का एक सेनापति,
४. राम की सेना का एक वीर बंदर, ५. धतराष्ट्र का एक
पुत्र, ६. साठ संवत्सरो में से एक, ७. शिव, ८. गणेश का
एक गुण । उ० ३. द्वेष-दुर्मुख, दंभखर, अकंपन-कपट ।
(वि० ५८)
दुर्योधन-(सं०)-धतराष्ट्र का पुत्र और कौरवों में सबसे
बड़ा । यह पांडवों का विद्वेषी था । इसने लाक्षागृह में उन्हें
एक बार जलवाने का प्रयास किया पर सफल न हो
सका । इसने पांडवों को दो बार बनवास दिया । अंत
में महाभारत का युद्ध इसी के कारण हुआ जिसमें १८वें
दिन सबके मर जाने पर दुर्योधन भगकर एक तालाब
में घुसा । भीम के ललकारने पर वह निकला और भीम
ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार गदा से उसकी जाँघ तोड़कर
उसे मार डाला ।
दुर्लभ-(सं०)-१. जो कठिनाता से मिल सके, दुष्प्राप्य, २.
अवोक्षा, ३. प्रिय, ४. विष्णु, ५. कष्टसाध्य । उ० १.
अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन बचन
काय । (वि० ८३)

दुर्वाद-(सं०)-१. अपवाद, निंदा, २. गाली, ३. कड़ी बात,
४. बकवाद ।
दुर्वासना-(सं०)-बुरी इच्छा, दुष्ट इच्छा, बुरी कामना ।
उ० दुष्टता दमन, दम भवन, दुःखोवहर दुर्ग-दुर्वासना-
नासकर्ता । (वि० ५६)
दुर्वासा-(सं०) दुर्वासम्)-अग्नि के पुत्र एक प्रसिद्ध ऋषि ।
ये बड़े क्रोधी थे । इनकी स्त्री अश्वि मुनि की कन्या कंदली
थीं । विवाह के समय यह प्रतिज्ञा हुई थी कि दुर्वासा इसके
१०० अपराध क्षमा करेंगे पर १०१वें के समय कंदली को
भस्म कर देंगे । अंत में ऐसा ही हुआ । इस पर कंदली ने
भी इन्हें शाप दिया कि तुम्हारा दर्प चूर्ण होगा ।
इसी शाप के फलस्वरूप अंबरीष के साथ दुर्वासा को
नीचा देखना पड़ा । दे० 'अंबरीष' । दुर्वासा एक बार इंद्र
की सभा में बैठे थे । वहाँ एक अप्सरा और एक गंधर्व
नाच-गा रहे थे । दुर्वासा की ओर देखकर उन सबों ने
मुस्करा दिया । इस पर क्रोधित होकर दुर्वासा ने उन्हें
राक्षस होने का शाप दिया पर फिर अनुनय-विनय करने
पर वे प्रसन्न हुए और रामावतार में हनुमान द्वारा शाप-
मुक्त होने का वर दिया । येही दोनों कालनेभि और
मकरी होकर हनुमान से मिले थे जब वे जड़ी लेने जा
रहे थे । हनुमान ने उन्हें मार कर शाप मुक्त किया ।
कपि तब दरस भइँ नित्यापा । मिटा तात मुनिवर कर
सापा । (मा० ६१८११)
दुर्विनीत-(सं०)-अविनीत, अशिष्ट, उद्धत । उ० प्रनत-
पालक राम परम करना धाम पाहि मामुर्विपति दुर्विनीत ।
(वि० ५६)
दुर्विपाक-(सं०)-१. बुरा परिणाम, बुरा फल, २. बुरा
संयोग, दुर्वटना, ३. दुर्भाग्य, बदकिस्मती ।
दुर्व्यसन-(सं०)-बुरी आदत, खराब चस्का । उ० दे०
'दुर्व्यसन' ।
दुलह-(सं०) दुर्लभ)-वर, ऐसा पुरुष या लड़का जिसका
विवाह हो । दूल्हा, दुल्हा । उ० दुलह दुलहिनिन्ह देखि
नारिनर हरपाहि । (जा० १५६)
दुलहिनि-(सं०) दुर्लभ)-दुल्हनी, नई विवाहिता स्त्री, दूल्ही ।
उ० बर लायक दुलहिनि जग नाहीं । (मा० ११२१३)
दुलहिनिन्ह-दुलहिनियों को । उ० देखि दुलहिनिन्ह
होहि सुखारी । (मा० १३४८५) दुलहियन-दुलहियों
को, बहुओं को । उ० पाँलागनि दुलहियन सिखावति
सरिस सासु सत-साता । (गी० १११०८)
दुलहिया-दुलहि, दूल्हन । उ० डरिहैं सासु ससुर चोरी
सुनि, हँसिहैं नई दुलहिया सुहाई । (क० १३)
दुलही-दूल्हन, दुलहिन, नवबधू । उ० रामसेन बर, दुलही
न सीय सारखी । (क० १११५)
दुलार-(सं०) दुर्लालन, प्रा० दुल्लाइन)-प्रेम, प्यार,
लाड़ । उ० राखा मोर दुलार गोसाई । (मा० २१३००३)
दुलारइ-दुलारती है, प्यार करती है । उ० मातु दुलारइ
कहि प्रिय ललना । (मा० १११६८५) दुलारत-दुलारता,
दुलारता है, प्यार करता है । उ० जीति हारि सुखकारि
दुलारत, देत दिवावत दाउ । (वि० १००) दुलारी-प्यार
किया, स्नेह किया, लाड़-चाव किया । उ० बार बार हियँ

हरपि दुलारीं । (मा० १।३५।२) दुलारी-१. प्यारी, २. प्यार किया । दुलारे-१. प्यारे, प्रिय, २. लाडिले, प्रिय पुत्र, ३. दुलार किए हुए, ४. मुँह लगे, ५. दुलार किया, दुलारा । उ० २. भावते भरत के, सुमित्रा सीता के दुलारे, चातक चतुर राम-स्याम घन के । (वि० ३७)

दुव-(सं० द्वि)-दो, जोड़ा, युग ।
 दुवन-(सं० दुर्जनस)-१. दुष्ट, बुरा, दुर्जन, २. शत्रु, दुश्मन, ३. राक्षस । उ० १. आपि मख राख्यो, रन दले हैं दुवन । (गी० १।८१) २. आये देखि देखि दूत दारुन दुवन के । (क० ६।३) ३. दवन दुवन-दल भुवन विदित बल । (ह० ६)

दुवार-(सं० द्वार)-१. द्वार, दरवाजा, २. किवाड़, कपट । उ० देव दुवार पुकारत । (वि० १३६) दुवारे-द्वार पर, दरवाजे पर । उ० कृपासिधु ! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे ? (वि० १४५)

दुष्कर-(सं०)-१. दुःसाध्य, कठिन, २. आकाश, ध्योम, ३. पाप, अघ, पातक । उ० १. सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग-बनचर-ध्वज कोटिलावन्यरासी । (वि० ५४)

दुष्कर्म-(सं० दुष्कर्मन्)-बुरा काम, पाप ।
 दुष्कर्मा-(सं० दुष्कर्मन्)-बुरा काम करनेवाला, पापी ।
 दुष्कर्मा-दे० 'दुष्कर्मा' ।
 दुष्कर्ष-१. कठिन खिचाव, २. अनुचित बढ़ावा, बुरा जोश ।
 दुष्कत-(सं०)-बुरा काम, कुकर्म ।
 दुष्ट-(सं०)-१. खल, दुर्जन, दुराचारी, २. दोषयुक्त, ३. कुष्ट, कोढ़, ४. पित्त आदि दोष से युक्त । उ० १. करि केहरि निसिचर चरहि दुष्ट जंतु बन भूरि । (मा० २।५६) २. एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा । (मा० ३।१५।४)

दुष्टता-(सं०)-१. दुर्जनता, बदमाशी, २. बुराई, ३. ऐव, दोष । उ० १. दुष्टता दमन, दम भवन, दुःखोघहर दुर्ग-दुर्वासना-नासकर्ता । (वि० ५६)

दुष्पार-जिसका पार पाना कठिन हो । उ० दुष्प्राप्य दुष्प्रेष्य दुस्तर्क्य दुष्पार, संसार हर सुलभ मृदु भावगम्यं । (वि० ५३)

दुष्प्राप्य-(सं०)-कठिनाई से मिलाने योग्य । उ० दे० 'दुष्पार' ।
 दुष्प्रेष्य-(सं०)-जिसका दर्शन कठिनाई से हो । उ० दे० 'दुष्पार' ।
 दुसरे-(सं० द्वि)-अन्य, किसी और । उ० पाइ सखा सेवक जाचक भरि जनम न दुसरे द्वार गए । (गी० १।४३)

दुसह-(सं० दुःसह)-जो सहा न जाय, असह्य, कठिन । उ० जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई । (मा० २।१२।४)

दुसही-१. जो कठिनता से रोका जा सके, २. बैरी, दुश्मन । उ० २. असही दुसही मरहु मनहि मन, बैरिन बड़हु बिपाद । (गी० १।२)

दुसासन-दे० 'दुःशासन' । उ० थों मन गुनति दुसासन दुरजन तमक्यो तकि गहि हुहुँ कर सारी । (क० ६०)

दुस्तर-दे० 'दुस्तर' । उ० १. हरिं नरा भंजति येसति दुस्तर तरति ते । (मा० ७।१२२ ग) दुस्तर-(सं०)-१. जिसे पार करना कठिन हो, २. दुर्घट, विकट, कठिन । उ० १. दुर्द्धर्ष, दुर्द्धतर, दुर्गा, स्वर्ग, अपवर्गपति, भगन-संसार-पादप कुठारं । (वि० ५०)

दुस्तर्क्य-(सं०)-तर्क से जो नहीं जाना जा सके । उ० दे० 'दुष्पार' ।
 दुस्त्यज-जिसका त्यागना अत्यंत कठिन हो । उ० गृहगिरा गौर वामरसु दुस्त्यज-राज्य त्यक्त श्री सहित, सौमित्र-आता । (वि० ५०)

दुसह-(सं० दुःसह)-असह्य, जिसका सहना कठिन हो ।
 दुहाई (१)-(सं० द्वि + आह्वय)-१. घोषणा, २. पुकार, न्याय के लिए पुकार, ३. सौगंद, शपथ, ४. न्याय, ५. आन, ६. शत्रुता, ७. आतंक, प्रभाव, ८. जय की ध्वनि ।
 दुहाई (२)-(सं० दोहन)-१. गाय भैंस आदि को दूहने का काम, २. दुहवाया । उ० २. सादर सब मंगल किए महि-मनि-महेस पर सबनि सुधेनु दुहाई । (गी० १।१२)
 दुहाए-दुहवाए, दूध निकलवाया । उ० गनप गौरि हर पूजिकै गोवृंद दुहाए । (गी० १।६)

दुहि-१. दूहकर, दूध दूहकर, २. तत्त्व निकालकर, सार निचोड़कर, ३. स्वार्थ साधने के लिए । उ० ३. बेचहि बेदु धरसु दुहि लेहीं । (मा० २।१६।१)

दुहिता-(सं० दुहितृ)-कन्या, लड़की ।
 दुहिन-(सं० दुहण)-ब्रह्मा । उ० जेहँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह । (पा० १।५४)

दुहुँ-दे० 'दुहुँ' । उ० १. बेद बिहित कुलरीति कीन्हि दुहुँ कुलगुर । (जा० १।४२)

दुहुँ-(सं० द्वि)-१. दोनों, उभय, २. दो ।
 दू-(सं० द्वि)-दो । उ० कूर कौड़ी दू को हौं आपनी और हेरिए । (ह० ३४)

दूक-१. दोनों, युग, २. दो, ३. दो, थोड़े । उ० ३. सदा बिचारहि चारु मति सुदिन कुदिन दिन दूक । (दो० ४४४)

दूजा-१. द्वितीय, दूसरा, २. अन्य, अपर, और । उ० १. नारिधरसु पति देउ न दूजा । (मा० १।१०।२।२) दूजी-दूसरी । उ० बोली मधुर बचन तिय दूजी । (मा० २।२२ २।३) दूजे-दूसरे ने । उ० मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजे । (मा० २।३।३)

दूत-(सं०)-समाचार या संदेश ले जानेवाला, चर, हर-कारा । उ० पठए दूत बोलि तेहि काला । (मा० १।२८।१) दूतन्ह-दूतों को, सेवकों को । उ० दूतन्ह देन निष्ठा-वर लागे । (मा० १।२६।३।४) दूतहि-दूत को । उ० माया-पति दूतहि चह मोहा । (मा० ५।७।२)

दूता-दे० 'दूत' । उ० मैं रघुपति सेवक कर दूता । (मा० ६।३०।४)

दूतिका-(सं०)-दे० 'दूती' । उ० २. मुक्ति की दूतिका, देह-दुति दामिनी । (वि० ४८)

दूतिन्ह-दूतियों । उ० दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी । (मा० ५।३६।२) दूती-(सं०)-१. संदेशा पहुँचानेवाली स्त्री, कुटनी, वह स्त्री जो प्रेमी का संदेशा प्रेमिका तक तथा प्रेमिका का संदेशा प्रेमी तक पहुँचावे, २. प्रेम के अतिरिक्त अन्य संदेशा या अन्य चीज़ पहुँचानेवाली ।
 दूध-(सं० दुग्ध)-१. पय, चीर, दुग्ध, सफेद पदार्थ जो स्तनों से निकलता है, २. कच्चे अन्न या पेयों आदि से निकलनेवाला सफेद रस । उ० १. दस मुख तज्यो दूध-

माखी ज्यों आपु काहि सादी लई । (गी० १३७) दूध-माखी-(सं० दुग्ध + मखिका)-तुच्छ, बेकार । उ० दे० 'दूध' । दूधमुख-दूध पीनेवाला, छोटा । उ० सूध दूधमुख करिअ न कोहू । (मा० १२७७१)

दून-(सं० द्विगुण)-१. दुगुना, २. दोनों । उ० १. निज संगी निज सम करत, तुर्जन मन दुख दून । (बै० १८) दूनउ-दोनों, दोनों ही । उ० बिअ आप तें दूनउ भाई । (मा० ११२२३)

दूना-दे० 'दून' । उ० १. सुख सोहाग तुम्ह कहूँ दिन दूना । (मा० २१२१२)

दूब-(सं० दूर्वा)-एक प्रकार की घास जो पूजन के लिए मंगल द्रव्यों (हल्दी, दही आदि) के साथ स्थान पाती है । उ० राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है । (क० ७-१०८)

दूबर-(सं० दुर्बल)-१. पतला, कमज़ोर, दुर्बल, २. अस-हाय, अनाथ । दूबरि-'दूबर' का स्त्रीलिंग । उ० १. देह दिनहुँ दिन दूबरि होई । (मा० २३२५१) दूबरी-दे० 'दूबरि' । उ० १. होय दूबरी दीनता, परम पीन संतोष । (दो० १६) दूबरे-दे० 'दूबर' । उ० १. छोटे बड़े, छोटे खरे मोटेऊ दूबरे । (वि० २४६)

दूबरो-दे० 'दूबर' । उ० १. राम प्रेम बिनु दूबरो, राम प्रेम ही पीन । (दो० ५७)

दूर-(सं०)-१. फासले पर, देश, काल संबंध आदि के विचार से अंतर पर या पास का उलटा, २. भिन्न, न्यारा, अलग । उ० १. एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू । (क० २६)

दूरति(सं० दूर)-१. छिपा देती है, २. तुच्छ कर देती है । दूरि-दे० 'दूर' । उ० १. दीनबंडु दूरि किए दीन को न दूसरी सरन । (वि० २५७)

दूरिहि-१. दूर ही, फासले पर ही, २. दूरी ही । उ० १. दूरिहि ते देखे दूी आता । (मा० ११४५१) दूरी-दे० 'दूर' । उ० १. एहि बिधि सब संसय कर दूरी । (मा० १३४११)

दूर्वा-दे० 'दूब' ।

दूलह-(सं० दुर्लभ)-१. बर, दुलहा, दूल्हा, जिसका विवाह हो रहा हो, या हाल में हुआ हो या शीघ्र होनेवाला हो, २. पति, स्वामी । उ० १. नहिं बरात दूलह अनुरूप । (मा० १३२१४)

दूषण-(सं०)-१. दोष, ऐब, बुराई, २. दोष लगाने की क्रिया या भाव, ३. एक राक्षस । यह रावण के भाई खर नामक राक्षस के साथ पंचवटी में सूर्यपुत्रा की रक्षा के लिए नियुक्त था । सूर्यपुत्रा के नाक-कान काटने पर इसने राम से युद्ध किया और उनके हाथ से मारा गया । इसके वज्रवेग और प्रमाथि नामक दो भाई भी थे । उ० १. समस्त दूषणा पहं । (मा० ३१४ छं० ५) दूषणापहं-दोषों को नाश करनेवाले । उ० समस्त दूषणापहं । (मा० ३१-४१ छं० ५)

दूषत-दोष देते हैं । उ० तन करि मन करि बचन करि, काहू दूषत नाहिं । (बै० २३)

दूषन-दे० 'दूषण' । उ० १. जे पर दूषन भूषन धारी ।

(मा० ११८५) ३. भुवन भूषन, दूषनारि भुवनेस, भूनाथ श्रुतिमाथ जय भुवनभर्ता । (वि० ५५)

दूषनहा-दूषण राक्षस को मारनेवाले रामचंद्र । उ० रघु-बंस बिभूषन दूषनहा । (मा० ६११११ छं० ४)

दूषनारि-(सं० दूषणारि)-दूषण राक्षस को मारनेवाले राम । उ० भुवन भूषन, दूषनारि, भुवनेस । (वि० ५५)

दूषनारी-दे० 'दूषनारि' । उ० अज्ञान-राकेस-घ्रासन विधु-तुद, गर्ब-काम-करिमत्त-हरि दूषनारी । (वि० ५८)

दूषनु-दे० 'दूषण' । उ० १. कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन । (मा० २१२३३)

दूषा-दूषित, दोषयुक्त । उ० गुर अवमान दोष नहिं दूषा । (मा० २१२३३)

दूसर-(सं० द्वि, हिं दो)-१. दूसरा, जो क्रम से दो के स्थान पर हो, पहले के बाद का, २. अन्य, कोई और । उ० २. सब गुन अवधि, न दूसर पटतर लायक । (जा० ६)

दूसरि-'दूसर' का स्त्रीलिंग । उ० २. हठि फेर रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही । (मा० २१५० छं० १)

दूसरी-दे० 'दूसरि' । उ० २. दीन-बंधु दूरि किए दीन को न दूसरी सरन । (वि० २५७)

दूसरो-दे० 'दूसर' । उ० २. दूसरो न देखतु साहिब सम रामै । (गी० ११२५)

दुक (१)-(सं०)-छिद्र, छेद, सूराब ।

दुक (२)-(सं० दग्भू)-हीरा, बज्र, एक रत्न ।

दुक (३)-(सं० दुक्)-दृष्टि, नज़र, निगाह ।

दुखत-(सं० दुष्त्)-पत्थर, शिला । उ० दुखत करत रचना बिहरि रंग-रूप सम तूल । (सं० ३६७)

दुगंचल-(सं०)-पलक, नेत्रपट ।

दुग-(सं० दुक्)-नेत्र, आँख, नयन । उ० नयन अमिय दुग दोष बिभंजन । (मा० ११२११)

दड़-(सं०)-१. पुष्ट, कड़ा, ठोस, मज़बूत, २. प्रगाढ़, जो बीला न हो, ३. स्थायी, टिकाऊ, अचल, ४. निश्चित, भुव, पक्का, ५. निडर, हीठ, ६. विण्णु, ७. लोहा, ८. समर्थ । उ० ३. मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दड़ अलु-राग । (मा० ७६१)

दड़ता-१. दड़ होने का भाव, दड़त्व, २. मज़बूती, ३. स्थिरता । उ० ३. तप तीरथ साधनजोग विराग सौं होइ नहीं दड़ता तन कौ । (क० ७८७)

दड़ाइ-मज़बूत करके, पक्का करके, स्थिर करके । उ० बात दड़ाइ कुमति हँसि बोली । (मा० २१२८४) दड़ाई-दे० 'दड़ाइ' । उ० चले साथ अस मंत्रु दड़ाई । (मा० २१-८४४) दड़ावा-निश्चित किया, निश्चय किया । उ० करि विचार तिन्ह मंत्र दड़ावा । (मा० ६३३१२) दड़ाही-दड़ हो जाती है ।

दत-(सं०)-सम्मानित, आदर, आदरित ।

दश-(सं०)-१. देखना, दर्शन, २. दिखानेवाला, प्रदर्शक, ३. देखनेवाला, ४. दृष्टि, नज़र, निगाह, ५. आँख, नेत्र, नयन, ६. ज्ञान, विवेक, समझ, ७. दो की संख्या ।

दश्य-(सं०)-१. खेल, तमाशा, कौतुक, २. अभिनय, नाटक, ३. सुन्दर, मनोहर, सुहावना, ४. नेत्रों का विषय, जो दृष्टिगोचर हो, ५. दर्शनीय । उ० १. कृति-गुरु-

साधु-सृष्टि-संमत यह दृश्य सदा दुःखकारी। (वि० १२०) ४. परम कारन, कंजनाभ, जलदाभतनु सगुन निर्गुन सकल-दृश्य दृष्ट्या। (वि० ५३)

दृष्ट-सं०-१. देखा हुआ, जिस पर दृष्टि पड़ चुकी हो, २. जाना हुआ, समझा हुआ, ३. प्रत्यक्ष, प्रकट, ज़ाहिर। दृष्टा-देखनेवाला।

दृष्टि-सं०-१. नजर, निगाह, देखने की शक्ति, २. ध्यान, विचार, ३. उद्देश्य, अभिप्राय, ४. पहचान, परख, समीक्षा। उ० १. सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती। (मा० १११३)

दृष्टिगोचर-सं०-जो देखने में आ सके, जिसका बोध नेत्रेंद्रिय द्वारा हो।

दृश्यमान-सं० दृश्यमान-जो दिखाई पड़ रहा हो। उ० दृश्यमान चर-अचर-गन एकहि एक न लीन। (सं० ३३६)

दे (१)-सं० दान, हि० देना-१. अर्पण करे, देने, २. देनेवाले, ३. देकर, प्रदान कर, ४. दो। उ० ३. ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य ऐश्वर्य-निधि, सिद्धि अग्रिमादि दे भूरि दानम्। (वि० ६१) देह (१)-दे० 'देह (१)। उ० १. देह अभागहि भागु को। (वि० १६१) देह्य-१. दीजिए, २. देना चाहिए। उ० १. आयसु देह्य हरपि हियँ कहि पुलके प्रभु गात। (मा० २१४५) देह्यो-देगा। उ० सोकि कृपालुहि देह्यो केवट पावहि पीठि? (दो० ४६) देह-दहु-देंगे, प्रदान करेंगे, देंगे। उ० मोहि राज हठि देहहहु जबरही। (मा० २१७६१) देहहि-देगा। उ० कोउ न कया सुनि देहहि खोरी। (मा० १११२४) देई (१)-१. देता है, प्रदान करता है, २. दीजिए, ३. देकर। उ० २. सो अवलंब देव मोहि देई। (मा० २१३०७४) देउ-१. देता हूँ, अर्पण करता हूँ, २. दूँ, देऊँ। उ० १. निसि दिन नाथ! देउँ सिख बहु बिधि करत सुभाव निजै। (वि० ८६) देउ (१)-सं० दान-दो, प्रदान करो। उ० कोउ भख कहहु, देउ कहहु कोऊ, असि बासना न उर तँ जाई। (वि० ११६) देऊँ-दूँ। उ० भरतहि समर सिखावन देऊँ। (मा० २१२०१२) देऊ-दे, दे। उ० तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। (मा० २१६८४) देत-सं० दान, हि० देना-१. देता है, प्रदान करता है, २. देते हुए, देते समय, ३. देने में। उ० १. देत एक गुन जेत कोटि गुन भरि सो। (वि० २६४) देता-१. देने में, २. दे देना, अर्पित करना। उ० १. नाथ न सकुचब आयसु देता। (मा० २१३६१४) देति-१. देते हुए, २. देती है। उ० २. कर कंकन केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी। (वि० ६२) देन-१. देने की क्रिया या भाव, दान, २. दी हुई चीज, ३. देने के लिए, ४. देने, अर्पण करने। उ० ३. जब तेहि कहा देन बैदेही। (मा० ५१५७४) ४. लगे देन हिय हरपि कै हेरि-हेरि हँकारी। (गी० ११६) देना-देने को, देने के लिए। उ० सत्य सराहि कहेहु बर देना। (मा० २१३०१३) देब-१. देने के लिए बचन देना, २. देना, हारना, अलग करना, ३. देगा। देवा-दे० 'देवा'। उ० २. जोइ पूँछिहि तेहि उतरु देवा। (मा० २१४६१३) देवि-दूँगी। उ० तदपि देवि मैं देवि असीसा। (मा० २१३१४) देवी-दे० 'देव'। देबोई-देना ही, दान करना ही। उ०

देबोई पै जानिए सुभाव-सिद्ध बानि सो। (क० ७११६१) देव (१)-सं० दान, हि० देना-१. दो, दे दो, प्रदान करो, २. देंगे, ३. देगा। देवा (१)-सं० दान, हि० देना-१. देना, प्रदान करना, २. दूँगा, ३. देना पड़ेगा। देवी (१)-सं० दान-दूँगी, देऊँगी। देवे (१)-सं० दान-देने को। देहउ-दूँगी, दूँगा। उ० जाइ उतरु अब देहउँ काहा। (मा० ११५४१) देहि-सं० दान-१. देते हैं, २. देंगे, ३. प्रकट करते हैं। उ० १. सुमिरहि राम देहि गनि गारी। (मा० ११७५५) ३. देहि सुलोचनि सगुन कलस लिपु सीसन्ह। (पा० ६०) देहि-१. दीजिए, प्रदान कीजिए, २. देगा। उ० १. देहि कामारि श्री राम पद पकजे। (वि० १०) देहीं-देते हैं, प्रदान करते हैं। उ० मिलत एक दुख दारुन देहीं। (मा० ११५१२) देही (१)-सं० दान-१. देता है, २. दीजिए। देहु-दो, दीजिए। उ० जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुन्हहि देखावौ ठाउँ। (मा० २१२७) देहु-१. दो, दीजिए, २. देती हो। उ० १. तौ प्रसन्न होइ यह बर देहु। (मा० १११६१२) २. केहि अपराध आजु बन देहु। (मा० २१४६३) देहेसु-देना। उ० तिन्हहि देखाइ देहेसु तँ सीता। (मा० ४१२८५) दै-१. देकर, दानकर, २. दो, दीजिए। उ० १. तिरछे करि नैन दै सैन तिन्है, ससुभाइ कहु सुसुकाइ चली। (क० २१२२) दैअहि (१)-सं० दान-देंगे, देंगे। दैन-१. देना, २. देने के लिए। उ० १. खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कवि दैन। (गी० ११३२) २. अहुत अथी किधौ पठई है बिधि मग-लोगन्हि सुख दैन। (गी० २१२४) दैहउ-दूँगा। उ० उतरु काह दैहउँ तोहि जाई। (मा० ६१६१८) दैहँ-देंगे। उ० समरधीर महाबीर पाँच पति क्यों दैहँ मोहि होन उचारी। (क० ६०) दैहै-देगा। उ० को मोर ही उबटि अन्हवैहै, कादि कलेऊ दैहै? (गी० ११६७) दैहौ-दूँगा। उ० मन समेत या तन के बासिन इहै सिखावन दैहौ। (वि० १०४) दो-(१)-सं० दान, हि० देना-दीजिए, प्रदान करो।

दे (२)-सं० देवी-देवी, देवताओं की स्त्री, देवांगना। देइ (२)-दे० 'देइ (२)।

देई (२)-दे० 'दे (२)।

देउ (२)-सं० देव-देवता, सुर।

देख-सं० दृश्य, द्रश्यति, प्रा० देखकर, हि० देखना) १. देखो, दर्शन करो, २. देखकर, ३. देखा, ४. देखता है। उ० ३. भोजन करत देख सुत जाई। (मा० ११२०११२)

देखइ-देखता है। उ० सकल धर्म देखइ विपरीता। (मा० १११८४३) देखई-देखती हैं, देख रही हैं। उ० दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई। (मा० २१२५०१) देखउँ-१. देख रहा हूँ, २. देखूँगा, ३. देखा, देखता रहा। उ० १. देखउँ अति असक सठ तोही। (मा० ५१२११) देखत-१. अवलोकत, चितवत, निहारत देखते हुए, २. देखते ही, दर्शन करते ही, ३. दर्शन से ही, ४. देखते हुए भी। उ० १. करि प्रनासु देखत बन बागा। (मा० २११०६१२) देखन-१. देखने के लिए, २. देखने। उ० १. मनो देखने नुमहि आई अहुत

दे (२)-सं० देवी-देवी, देवताओं की स्त्री, देवांगना। देइ (२)-दे० 'देइ (२)।

देई (२)-दे० 'दे (२)।

देउ (२)-सं० देव-देवता, सुर।

देख-सं० दृश्य, द्रश्यति, प्रा० देखकर, हि० देखना) १. देखो, दर्शन करो, २. देखकर, ३. देखा, ४. देखता है। उ० ३. भोजन करत देख सुत जाई। (मा० ११२०११२)

देखइ-देखता है। उ० सकल धर्म देखइ विपरीता। (मा० १११८४३) देखई-देखती हैं, देख रही हैं। उ० दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई। (मा० २१२५०१) देखउँ-१. देख रहा हूँ, २. देखूँगा, ३. देखा, देखता रहा। उ० १. देखउँ अति असक सठ तोही। (मा० ५१२११) देखत-१. अवलोकत, चितवत, निहारत देखते हुए, २. देखते ही, दर्शन करते ही, ३. दर्शन से ही, ४. देखते हुए भी। उ० १. करि प्रनासु देखत बन बागा। (मा० २११०६१२) देखन-१. देखने के लिए, २. देखने। उ० १. मनो देखने नुमहि आई अहुत

दे (२)-सं० देवी-देवी, देवताओं की स्त्री, देवांगना। देइ (२)-दे० 'देइ (२)।

देई (२)-दे० 'दे (२)।

देउ (२)-सं० देव-देवता, सुर।

देख-सं० दृश्य, द्रश्यति, प्रा० देखकर, हि० देखना) १. देखो, दर्शन करो, २. देखकर, ३. देखा, ४. देखता है। उ० ३. भोजन करत देख सुत जाई। (मा० ११२०११२)

देखइ-देखता है। उ० सकल धर्म देखइ विपरीता। (मा० १११८४३) देखई-देखती हैं, देख रही हैं। उ० दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई। (मा० २१२५०१) देखउँ-१. देख रहा हूँ, २. देखूँगा, ३. देखा, देखता रहा। उ० १. देखउँ अति असक सठ तोही। (मा० ५१२११) देखत-१. अवलोकत, चितवत, निहारत देखते हुए, २. देखते ही, दर्शन करते ही, ३. दर्शन से ही, ४. देखते हुए भी। उ० १. करि प्रनासु देखत बन बागा। (मा० २११०६१२) देखन-१. देखने के लिए, २. देखने। उ० १. मनो देखने नुमहि आई अहुत

दे (२)-सं० देवी-देवी, देवताओं की स्त्री, देवांगना। देइ (२)-दे० 'देइ (२)।

देई (२)-दे० 'दे (२)।

देउ (२)-सं० देव-देवता, सुर।

देख-सं० दृश्य, द्रश्यति, प्रा० देखकर, हि० देखना) १. देखो, दर्शन करो, २. देखकर, ३. देखा, ४. देखता है। उ० ३. भोजन करत देख सुत जाई। (मा० ११२०११२)

देखइ-देखता है। उ० सकल धर्म देखइ विपरीता। (मा० १११८४३) देखई-देखती हैं, देख रही हैं। उ० दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई। (मा० २१२५०१) देखउँ-१. देख रहा हूँ, २. देखूँगा, ३. देखा, देखता रहा। उ० १. देखउँ अति असक सठ तोही। (मा० ५१२११) देखत-१. अवलोकत, चितवत, निहारत देखते हुए, २. देखते ही, दर्शन करते ही, ३. दर्शन से ही, ४. देखते हुए भी। उ० १. करि प्रनासु देखत बन बागा। (मा० २११०६१२) देखन-१. देखने के लिए, २. देखने। उ० १. मनो देखने नुमहि आई अहुत

दे (२)-सं० देवी-देवी, देवताओं की स्त्री, देवांगना। देइ (२)-दे० 'देइ (२)।

देई (२)-दे० 'दे (२)।

देउ (२)-सं० देव-देवता, सुर।

देख-सं० दृश्य, द्रश्यति, प्रा० देखकर, हि० देखना) १. देखो, दर्शन करो, २. देखकर, ३. देखा, ४. देखता है। उ० ३. भोजन करत देख सुत जाई। (मा० ११२०११२)

देखइ-देखता है। उ० सकल धर्म देखइ विपरीता। (मा० १११८४३) देखई-देखती हैं, देख रही हैं। उ० दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई। (मा० २१२५०१) देखउँ-१. देख रहा हूँ, २. देखूँगा, ३. देखा, देखता रहा। उ० १. देखउँ अति असक सठ तोही। (मा० ५१२११) देखत-१. अवलोकत, चितवत, निहारत देखते हुए, २. देखते ही, दर्शन करते ही, ३. दर्शन से ही, ४. देखते हुए भी। उ० १. करि प्रनासु देखत बन बागा। (मा० २११०६१२) देखन-१. देखने के लिए, २. देखने। उ० १. मनो देखने नुमहि आई अहुत

दे (२)-सं० देवी-देवी, देवताओं की स्त्री, देवांगना। देइ (२)-दे० 'देइ (२)।

देई (२)-दे० 'दे (२)।

देउ (२)-सं० देव-देवता, सुर।

देख-सं० दृश्य, द्रश्यति, प्रा० देखकर, हि० देखना) १. देखो, दर्शन करो, २. देखकर, ३. देखा, ४. देखता है। उ० ३. भोजन करत देख सुत जाई। (मा० ११२०११२)

बसंत । (वि० १४) देखव-देखेंगे, देखूँगा । उ० देखव कोटि बियाह जियत जो बाँचिय । (पा० ११६) देखहि-देखते हैं । उ० मुदित नारि नर देखहि सोभा । (मा० २। ११५२) देखहु-१. देखो, २. देख लेते, देखते । उ० २. देखहु कस न जाइ सब सोभा । (मा० २। ११५२) देखि-१. देखकर, २. देखा, ३. देखने के लिए, ४. देखो । उ० १. देखि कुठार वान धनु धारी । (मा० १। २८२। १) देखिअ-१. देखा जाय, देखना चाहिए, २. देखिए, ३. देखा जाता है, ४. दिखाई देते हैं । उ० १. देखिअ कपिहि कहाँ कर आही । (मा० २। ११६। १) देखिअत-दिखाई पढ़ते हैं । उ० देखिअत विपुल काल जनु क्रुद्धे । (मा० ६। ८१। ४) देखिअहि-१. देखे जाते हैं, देखते हैं, २. देखेंगे, ३. देखा । उ० १. देखिअहि रूप नाम आधीना । (मा० १। २१। २) दोखए-१. देख लीजिए, २. देखना । उ० २. बीरता बिदित ताकी देखिए चहतु हौं । (क० १। १८) देखिन्ह-देखे, दर्शन किए । उ० देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्टा । (मा० ६। ४। १२) देखिबी-देखेंगे, देखनी है । उ० देखि प्रीति की रीति यह, अब देखिबी रिसान । (दो० ४०३) देखिबो-देखेंगे, देखना है । उ० देखिबो दरस दूसरेहु चौथेहु बढो लाभ, लघु हानी । (क० ४८) देखिय-१. देखें, २. देखिए । उ० १. धरि धीर कहैं, चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहैं । (क० २। २३) देखियत-१. देखते हैं, २. दिखावा दे रहे हैं । उ० २. बखसीस ईंस जू की खीस होत देखियत । (क० ६। २०) देखिहहि-देखेंगे । उ० जे देखहि देखिहहि जिन्ह देखे । (मा० २। १२०। ४) देखिहि-देखेगा । उ० राम रहित रथ देखिहि जाई । (मा० २। १४। १४) देखी-१. देखा, देख लिया, २. देखकर, देखने पर । उ० १. देखी नयन दूत रखवारी । (मा० ६। २। ३) देखू-देखो, दर्शन करो । उ० देखु राम-सेवक मुनु कीरति, रटहि नाम करि गान गाथ । (वि० ८४) देखू-देख, देखो । उ० घरी कुघरी समुक्ति जियँ देखू । (मा० २। २६। ४) देखें-देखने से, दर्शन से । उ० नाथ कुसल पद पंज देखें । (मा० २। ८। ३) देखे-१. देख लिए, देखा, २. देखने पर, ३. देखे हुए, देखे सुने, जाने हुए । उ० १. देखे सुने जाने में जहान जेत बड़े हैं । (वि० १८०) देखेउ-देखा । उ० तेहि तस देखेउ कोसल-राऊ । (मा० १। २४। ४) देखेहि-देखा । उ० अनुपम बालक देखेहि जाई । (मा० ७। १६। ४) देखेसि-देखा । उ० सचिव सहित रथ देखेसि आई । (मा० २। १४। ३) देखेहु-देखना, देखिएगा । उ० देखेहु कालि मोरि मनु-साई । (मा० ६। २। ४) देखो-अवलोकन करो, दर्शन करो । उ० देखो देखो बन बन्धों आजु उमाकंत । (वि० १४) देखौ-देखो, देखिए । उ० देखिबे को दाउँ, देखौ देखिबो बिहाइ कै । (गी० १। ८२) देख्यो-देखा, देख लिया । उ० लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं । (वि० ७६) देख्योइ-देखना ही, दर्शन करना ही । उ० तुलसिदास प्रथु देख्योइ चाहति श्री उर लखित-ललामहि । (क० ४)

देखनिहारे-देखनेवाले । उ० सखि सब कौतुक देखनिहारे । (मा० १। २५। १)

देखराइ-दिखलाकर । उ० रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गणु दिन चारि । (मा० २। ८१) देखराए-दिखलाये, दिखलाया । उ० दुहुंमि अस्थि ताल दिखराए । (मा० ४। ७। ६) देखरावा-दिखलाया, दिखलाए । उ० अस कहि लखन ठाउँ देखरावा । (मा० २। १३। ३)

देखवैया-देखनेवाले । उ० सोभा-देखवैया बिनु बित्त ही बिकैहैं । (गी० १। ३७)

देखाइ-१. दिखाकर, २. दिखा, ३. दिखाई । उ० २. जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही । (मा० ६। १०। २) देखाइयत-दिखलाती हो । उ० देवि ! क्यों न दास को देखाइयत पायजू । (क० ७। १३। ६) देखाउ-दिखाओ, दिखा । उ० बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू । (मा० १। २७। २) देखाउव-दिखावेंगे, दिखाऊँगा । उ० सर निरभर जल ठाउँ देखाउब । (सा० २। १३। ६। ४) देखाऊ-दिखलाओ, दिखाओ । उ० राम लखनु सिय आनि देखाऊ । (मा० २। ८। ४) देखाए-दिखलाए । उ० सकल देखाए जानकिहि कहे सबहि के नाम । (मा० ६। ११। ६) देखायउँ-दिखाया, दिखाया था । उ० सो बल तात न तोहि देखायउँ । (मा० ६। ७। २। ४) देखाव-१. दिखाते हैं, २. दिखाओ । उ० १. पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारु । (मा० १। २७। १) देखावत-दिखला रहे हैं, दिखाते हैं । उ० कपिन्ह देखावत नगर मनोहर । (मा० ७। १। १) देखावसि-दिखला । उ० अब जनि नयन देखावसि मोही । (मा० ६। ४। १२) देखावाह-दिखलाते हैं । उ० दिन प्रति नृपहि देखावहि आनी । (मा० १। २०। ५। १) देखावहु-दिखाते हैं, दिखा रहे हैं । उ० मगुबर परसु देखावहु मोही । (मा० १। २७। ६। ३) देखावा-१. दिखाना, दर्शन कराना, २. दिखलाया । उ० का देखाइ चह काह देखावा । (मा० २। ४। १) देखावौ-दिखाऊँ । उ० जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौ ठाउँ । (मा० २। १२। ७) देखैहै-दिखलावेगा । उ० बहुरो सदल सनाथ, सलछिमन, कुसल-कुसल बिधि अवध देखैहै । (गी० ४। ५०)

देखा-देखी-दूसरों को देखकर या दिखाने के लिए । उ० देखा-देखी दभ तें, कि संगतें भई भलाई । (वि० २६। १)

देखुवार-वर देखनेवाले, नेगी, तिलकहरू, देखहरू । उ० ऐहैं सुत देखुवार कालि तेरे, बरै व्याह की बात चलाई । (क० १३)

देखैया-देखनेवाले । उ० तब के देखैया तोपे, तब के लोगनि भले । (गी० १। ३३। ४)

देनी-१. देनेवाली, २. देनेवाला । उ० १. ग्यान विराग भगति सुभ देनी । (मा० ७। १२। १। २) २. बोअनहार लुनिहैं सोई देनी लहइ निदान । (स० २००)

देवि-देवी, हे देवी । उ० तदपि देवि मैं देवि असीसा । (मा० २। १०। ३। ४)

देय-देने योग्य, दातव्य ।

देव (२)-(सं०)-१. स्वर्गमें रहनेवाले अमर प्राणी, देवता, सुर, २. स्वामी, ३. नाटकोक्ति या बातचीत में राजा या स्वामी या बड़े के लिए प्रयुक्त एक संबोधन, ४. मेव । उ० १. दानव देव ऊँच अरु नीच । (मा० १। ६। ३) २. जयति मुनि देव नर देव दशरथ के । (वि० ४४) देवक-

देव का, देवता का। उ० सपनेहुँ आन भरोस न देवक। (मा० ३।१०।१) देवदेव-देवताओं के देवता, १. परमेश्वर, भगवान, २. इंद्र; देवपति। देवन-देवताओं, देव का बहुवचन। देवनि-देवताओं ने। उ० देवनि हुँ देव परिहरयो। (वि० २७२) देवन्ह-दे० 'देवन'। उ० देवन्ह समाचार सब पाए। (मा० १।८।२) देव-मुनि-(सं०)-नारद, मुनियों में देवता स्वरूप। उ० देव-मुनि-बंध किए अवधवासी। (वि० ४४)

देव (३)-(क्रा०)-राजस, दैत्य। देवभूषि-देवताओं के लोक में रहनेवाले ऋषि। इनमें नारद, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु आदि प्रसिद्ध हैं। उ० राम जनम सुभकाज सब कहत देव-ऋषि। (प्रा० ४।४।१)

देवतह-(सं०)-कल्पवृक्ष। पुराणों के अनुसार देवतह समुद्र से निकले १४ रत्नों में से एक है। यह इंद्र को मिला था। कहा जाता है कि यह माँगने पर सभी वस्तुएँ देता है। उ० अभिमत दानि देवतह बर से। (मा० १।३।२।६)

देवतन्ह-देवताओं को। उ० देह देवतन्ह गारि पचारी। (मा० १।१८।२।४) देवता-(सं०)-१. कश्यप और अदिति से उत्पन्न संतान, देव, सुर, २. शरीर की इंद्रियों के स्वामी देवगण। ऋग्वेद में मुख्य देवता ३३ माने गए हैं। बाद में इसी आधार पर ३३ कोटि देवताओं की कल्पना की गई। उ० १. देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे। (क० ७।१७२)

देवधुनि-(सं०)-गंगा नदी। उ० जुग बिच भगति देवधुनि धारा। (मा० १।४०।२)

देवधुनी-दे० 'देवधुनि'। उ० देवधुनी पास मुनिवास श्री निवास जहाँ, आकृत हुँ बट बट बसत पुरारि हैं। (क० ७।१४०)

देवनदी-गंगा, सुरनदी। उ० देवनदी कहँ जो जन जान किये मनसा कुल कोटि उधारे। (क० ७।१४२)

देवबधू-सं०)-१. अश्वरा, २. देवताओं की स्त्रियाँ। उ० १. देवबधू नाचहि करि गाना। (मा० १।२६।२।२)

देवमनि-(सं० देवमणि)-१. सूर्य, २. कौस्तुभ मणि, ३. घोड़े की भँवरी, ४. देवों में शिरोमणि। उ० ४. जयति रनधीर रघुबीर-हित देवमनि रुद्र-अवतार संसार पाता। (वि० २४)

देवमाया-(सं०)-देवताओं या परमेश्वर की माया जो अविद्यारूप होकर देवों को बंधन में डालती है। देवारिपि-नारद मुनि। दे० 'देवऋषि'। उ० देखि देवारिपि मन अति भावा। (मा० १।१२।१।१)

देवल-(सं०)-१. पुजारी, पूजा करनेवाला, २. पंडा ब्राह्मण, ३. नारद मुनि, ४. धर्म शास्त्र-वक्ता, ५. धार्मिक पुरुष, ६. एक प्रकार का चावल, ७. मंदिर, देवालय। उ० ७. तुलसी देवल देव को लागे लाख करोरि। (दो० ३।८४)

देवलोक-(सं०)-देवताओं का लोक, स्वर्ग। उ० देवलोक सब देखाहि आनंद अति हिय हो। (रा० १)

देवसर-मानसरोवर आदि। उ० तिन्हहि देवसर सरित सराहहि। (मा० २।११।३।३)

देवसरि-(सं०)-गंगा, देवनदी। उ० देवसरि सेवौ वामदेव गाउँ रावरे ही। (क० ७।१६२)

देवसरित-दे० 'देवसरि'।

देवहूति-(सं०)-स्वायंभुव मनु की पुत्री और कर्दम ऋषि की कन्या। सांख्य शास्त्र के प्रयोता कपिल इनके ही पुत्र थे। उ० देवहूति पुनि तासु कुमारी। (मा० १।१४।२।३)

देवा (२)-दे० 'देव'। उ० १. विविध बेष देखे सब देवा। (मा० १।२४।४)

देवाह-दे० 'देवाह'। उ० १. भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाह। (मा० १।२६।४) देवाई-(सं० दान, हि० देना)-१. दिलाकर, २. दिलाया। उ० १. सकुचि राम निज सपथ देवाई। (मा० २।६।३)

देवान-(फा० दीवान)-१. दरबार, कचहरी, राजसभा, २. मंत्री, वज़ीर, ३. प्रबंधकर्ता। उ० १. मारे बागवान, ते पुकारत देवान मे। (क० २।३।१)

देवापगा-(सं० देव + आपगा)-गंगा, देव नदी। उ० यस्यां-के च विभाति भूधर सुता देवापगा मस्तके। (मा० २।१। श्लो० १)

देवि-दे० 'देवी (२)। उ० २. दुसह-दोष-दुख दलनि कइ देवि दायी। (वि० १२)

देवी (२)-(सं०)-१. देवता की स्त्री, २. चंडिका, भगवती, ३. पार्वती, ४. अच्छे गुणोंवाली स्त्री, ५. पटरानी, पद्म-महिषी, ६. श्रेष्ठ स्त्री के लिए प्रयुक्त एक संबोधन। देवे (२)-(सं० देव)-हे देव! उ० ताको जोर, देवे दीन द्वारे गुदरत हौं। (क० ७।१६२)

देवैया-देनेवाला। उ० तुलसी जहँ मातु पिता न सखा, नाहि कोऊ कहँ अवलंब देवैया। (क० ७।२२)

देश-(सं०)-१. प्रदेश, वह भू भाग जिसका एक नाम हो, तथा जिसमें के निवासियों में भाषा, धर्म, संस्कृति आदि की एकता हो। राज्य, २. स्थान, जगह, ३. अंग, शरीर का कोई भाग।

देस-दे० 'देश'। उ० १. जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। (मा० १।१२।१।१) देस-देस-प्रत्येक देश, सभी देश। उ० पुनि देस देस सँदेस पठ्यउ भूप सुनि सुख पावहीं। (जा० ६)

देसा-दे० 'देश'। उ० १. सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। (मा० १।२।६)

देसु-दे० 'देश'। उ० १. धन्य सो देसु सैखु बन गाऊँ। (मा० २।१२।२।३)

देसु-दे० 'देश'। उ० १. बिपिन सुहावन पावन देसु। (मा० २।२३।३)

देह-(सं०)-१. शरीर, तन, २. जीवन, जिंदगी। उ० १. मुक्ति की वृत्तिका, देह-दुति दामिनी। (वि० ४८) २. सेइय सहित सनेह देह भरि काम धेलु कलि कासी। (वि० २२)

देहनि-शरीरों से। उ० मालनि मानो है देहनि तें दुति पाई। (गी० १।२७)

देहरी-(सं० देहली)-द्वार की नीचे की लकड़ी, निचला चौखट, दहलीज। उ० राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार। (मा० १।२।१)

देहवंत-शरीरधारी, देही । उ० संतोष सम सीतल सदा
 दम देहवंत न लेखिए । (वि० ३६)
 देहा-दे० 'देह' । उ० १. हठ न छूट छूटै बर देहा । (मा०
 १।८०।३)
 देही (२)-(सं० देहिन्)-१. देह को धारण करनेवाला,
 जीवात्मा, २. देहवाला । उ० १. मर्कट बदन भयंकर देही ।
 (मा० १।१३४।४)
 दैत्र्य-देव ने, भगवान ने । उ० केहि अघ एकहि बार मोहि
 दैत्र्य दुसह दुखु दीन्ह । (मा० २।२०)
 दैत्र्यहि (२)-(सं० देव)-१. देव की, भगवान की, २. देव को,
 ३. भाग्य को । उ० १. दैत्र्यहि लागि कहौ तुलसी-प्रभु अजहूँ
 न तजत पयोधर पीबो । (क० ६)
 दैउ-(सं० देव)-देव, भगवान । उ० देउ दैउ फिरि सो फल
 ओही । (मा० २।१८।४)
 दैत्य-(सं०)-१. असुर, दिति और कश्यप की संतान, २.
 दुष्ट, दुराचारी । उ० १. भलु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्य-
 वंश-निकंदन । (वि० ४५)
 दैव-(सं०)-१. भाग्य, प्रारब्ध, २. ईश्वर, भगवान, ३.
 विधाता, ४. ईश्वर का । उ० २. करिअ दैव जौ होइ
 सहाई । (मा० १।५१।१) दैवहि-दैव को, भगवान को,
 ईश्वर को । उ० अति बरषे अनवरषे हूँ देहि दैवहि गारी ।
 (वि० ३४)
 दैविक-(सं०)-देवता या भाग्य से होनेवाले दुःख, जिसे
 तीन दुःखों या तापों में स्थान दिया गया है । उ० दैहिक
 दैविक भौतिक तापा । (मा० ७।२१।१)
 दैहिक-(सं०)-देह संबंधी, शारीरिक, तीन तापों या दुःखों
 में से एक । सारी शारीरिक बीमारियाँ इसी के अंत-
 गत आती हैं । उ० दैहिक दैविक भौतिक तापा । (मा०
 ७।२१।१)
 दो (२)-(सं० द्वि)-एक और एक, तीन से एक कम,
 २ । दोइ-दोनों, युगल । दोउ-दे० 'दोइ' । उ० दोउ
 तन तकि मयन सुधारत सायक । (जा० ६४) दोऊ-दे०
 'दोइ' । उ० आखर मधुर मनोहर दोऊ । (मा०
 १।२०।१)
 दोख-दे० 'दोष' ।
 दोखिबे-दे० 'दोषिबे' ।
 दोना-(सं० द्रोण)-पत्ते का बना हुआ पात्र-विशेष । उ०
 फल फूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना नये । (गी०
 ३।१७) दोनी-छोटा दोना । दे० 'दोना' । उ० सोभा-
 सुभा पिए करि अखिया दोनी । (गी० २।२२) दोने-दोना
 का बहुवचन । दे० 'दोना' । उ० सोभा-सुभा, आलि !
 अँचवहु करि नयन मंजु मृदु दोने । (गी० २।२३)
 दोष (१)-(सं०)-१. दूषण, खराबी, बुराई, ऐब, २. अप-
 राध, लाज्जन, कलंक, ३. पाप, ४. वैद्यक के अनुसार बाल,
 पित्त और कफ, ५. हिचक । उ० २. बिनु कारन हठि दोष
 लगावति तात गए गृह तामहि । (क० ५) दोषउ-दोष को
 भी । उ० दोषउ गुन सम कह सबु कोई । (मा० १।६६।२)
 दोष (२)-(सं० द्वेष)-विरोध, शत्रुता ।
 दोषा-दे० 'दोष (१)' । उ० १. समन दुरित दुख दारिद
 दोषा । (मा० १।४३।२)

दोषिबे-दुखित कराने, दुखाने । उ० खल दुख दोषिबे को'
 जन परितोषिबे को । (ह० ११)
 दोषु-दे० 'दोष (१)' । उ० ५. सत्य कहें नहि दोषु हमारें ।
 (मा० २।१६।२)
 दोस-दे० 'दोष' (१) । उ० ३. मोसे दोस-कोस पोसे, तोसे
 माथ जायो को । (वि० १७।६)
 दोसा-दे० 'दोष (१)' । उ० १. गुन तुम्हार समुझ निज
 दोसा । (मा० २।१३।१२)
 दोसु-दे० 'दोष (१)' । उ० २. बेधु बिलोकें कहेसि कछु बाल
 कहु नहि दोसु । (मा० १।२८।१)
 दोसू-दे० 'दोष (१)' । उ० २. झुअत दूट रघुपतिहु न दोसू ।
 (मा० १।२७।२)
 दोहरा-दे० 'दोहा' । उ० साखी सबदी दोहरा, कहि।किहनी
 उपखान । (दो० ५५४)
 दोहा-(सं० द्विपथक)-हिंदी का एक प्रसिद्ध छंद जिसे,
 उलट देने से सौरठा हो जाता है । इसके पहले
 और तीसरे चरण में १३-१३ तथा दूसरे और चौथे में
 ११-११ मात्राएँ होती हैं । उ० छंद सौरठा सुंदर दोहा ।
 (मा० १।३७।३)
 दोहाई-दे० 'दुहाई' । उ० ३. सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई ।
 (मा० २।१०।४।३) सु० फिरी दोहाई-राजा के सिंहासन
 पर बैठने पर उसके नाम की घोषणा हुई । उ० जब
 प्रताप रबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस । (मा०
 १।१५।३)
 दौन (१)-(सं० दमन)-दमन करनेवाला, नष्ट करनेवाला,
 समाप्त करनेवाला । उ० दीजै दरस दूरि कीजै दुख हौ तुम्ह
 आरत-आरति-दौन । (गी० १।२०)
 दौन (२)-(सं० दावाग्नि)-दावाग्नि, बहुत बड़ी आग । उ०
 कहा भलो धौ भयो भरत को लगे तरुन-तन दौन । (गी०
 २।८३)
 दौर-(अर०)-चक्कर, भ्रमण, आना-जाना । उ० स्वामी
 सीतानाथ जी तुम लागि मेरी दौर । (सं० ६६)
 दौरि-(सं० धोरण)-दौड़कर । उ० खोरि खोरि दौरि दौरि
 दीन्ही अति आगि है । (क० ५।१४) दौरि-दौड़े, भगे ।
 उ० बालि बली खर दूषन और अनेक गिरे जे जे भीति में
 दौरि । (क० ६।१२)
 द्याइवी-दिला देना, दिलाइयेगा । द्याववी-दे० 'द्याइवी' ।
 द्याववी-दे० 'द्याइवी' । उ० मेरिअ सुधि द्याववी कछु
 करन-कथा चलाइ । (वि० ४१)
 द्यु-(सं०)-१. स्वर्ग, २. आकाश, ३. अग्नि, ४. दिन, ५.
 सूर्य-लोक । (वि० ४१)
 द्युति-(सं०)-१. चमक, २. छबि, सुंदरता । उ० १. श्याम-
 नव-तामरस-दाम-द्युति वपुष-छबि, कोटि-मदनार्क अगणित
 प्रकाशम् । (वि० ६०)
 द्युलोक-(सं०)-स्वर्गलोक ।
 द्युत-(सं०)-झुआ, एक खेल जिसे बुरा समझा जाता है ।
 पासा ।
 द्योत-(सं०)-१. प्रकाश, उजला, २. धूप ।
 द्रव्य-दे० 'द्रव्य' । उ० मंगल द्रव्य लिपु सब ठाढ़ी । (मा०
 १।२८।३)

द्रव-(सं०)-१. तरल पदार्थ, पानी आदि बहनेवाली चीजें, २. पिघला हुआ, ३. बहाव, दौड़, ४. विनोद, हँसी, ५. वेग, गति, ६. गीला, ओढ़, ७. बह जाती है। उ० ७. जिमि रविमनि द्रव रविहि बिलोकी। (मा० ३।१७।३) द्रवह-१. पिघलता है, दयालु होता है, २. दया करे, पिघले। उ० १. निज परिताप द्रवह नवनीता। (मा० ७।१२५।४) द्रवउ-द्रवित होता है, दयालु होता है, प्रसन्न होता है। उ० १. जातं बेगि द्रवउ मैं भाई। (मा० ३।१६।१) द्रवउ-दे० 'द्रवौ'। उ० जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना। (मा० १।१८६। छं० ४) द्रवत-द्रवित होता है, पिघलता है, दया करता है, प्रसन्न होता है। उ० आँढर-दानि द्रवत पुनि थोरे। (वि० ६) द्रवति-टपकती है, पिघलती है। उ० बिन ही अस्तु तरहर फरत, सिला द्रवति जल जोर। (दो० १७३) द्रवहि-पिघलते हैं, द्रवित होते हैं, विचलित होते हैं। उ० पर दुख द्रवहि संत सुपुनीता। (मा० ७।१२५।४) द्रवहि-१. दया करे, पिघले, २. पिघलता है, पसीजता है। उ० १. तुलसि-दास इन्ह पर जो द्रवहि हरि ती पुनि मिलौ बँह बिस-राई। (क० ५६) द्रवहु-१. द्रवित हो, पिघलो, २. पिघलते हो। उ० २. कस न दीन पर द्रवहु उमावर। (वि० ७) द्रवै-दे० 'द्रवह'। उ० २. जौ लौ देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना। (क० ७।१४८) द्रवित-१. बहता हुआ, पिघला हुआ, २. कृपायुक्त। द्रव्य-(सं०)-१. वस्तु, पदार्थ, चीज, २. सामग्री, सामान, ३. धन, दौलत, ४. औषधि, दवा। द्रष्टा-(सं०)-१. देखनेवाला, साक्षात् करनेवाला, २. प्रकाशक, ३. सांख्य के अनुसार पुरुष, ४. योग के अनुसार आत्मा। उ० १. परम कारन, कंजनाभ, जलदाभतनु, सगुन निर्गुन, सकल-दृश्य-द्रष्टा। (वि० ५३) द्रुत-(सं०)-१. शीघ्र, चुरत, २. द्रवीभूत, गला या पिघला हुआ, ३. तेज जानेवाला, ४. विन्दु, शून्य, ५. आकाश, गगन, ६. कृष्ण, ७. पेड़, ८. बिल्ली, ९. बिच्छू। द्रुपद-(सं०)-उत्तर पांचाल का महाभारतकालीन एक राजा। यह चंद्रवंशी पृथक् का पुत्र था। द्रुपद और द्रोण मित्र थे पर राजा होने पर द्रुपद ने मित्रता नहीं निभाई। इससे द्रोण रुष्ट हुए और कौरवों-पांडवों से विद्या देने के बाद दक्षिणा रूप में द्रुपद को बाँधकर सामने लाने को कहा। कौरव तो यह नहीं कर सके पर पांडव उन्हें ले आए। द्रुपद का आधा राज्य द्रोण ने ले लिया। इससे द्रुपद रुष्ट हुए और यज्ञ करके द्रोण से बदला लेने के लिए धृष्टद्युम्न नामक पुत्र और कृष्णा या द्रौपदी नामक पुत्री पैदा की। द्रौपदी का विवाह पांडवों से हुआ। महाभारत की लड़ाई में द्रुपद मारे गए। उ० भीति प्रतीति द्रुपद तन या की भली भूरि भय भभरि न भाजी। (क० ६१) द्रुपदसुता-द्रौपदी। उ० साखि पुरान निगम आगम सब, जानत द्रुपदसुता अरु वारन। (वि० २०६) द्रुम-(सं०)-बृष, पेड़। उ० गढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे, धनु काँधे धरे, कर सायक लै। (क० २।१३) द्रोण-(सं०)-१. भारद्वाज के पुत्र एक प्रसिद्ध ऋषि। इन्होंने परशुराम से शास्त्र की शिक्षा पाई थी। शरद्धान की कन्या

कृपी से इन्होंने विवाह किया था जिससे अश्वत्थामा पुत्र पैदा हुआ। द्रुपद से इनसे बैर था। (दे० 'द्रुपद') कौरवों पांडवों ने इनसे शिक्षा पाई थी। ये महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर थे। युधिष्ठिर के मुख से, 'अश्वत्थामा मारा गया' सुनकर ये बेहोश हो गए और इतने में द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने इनका सिर काट लिया। २. कठौता, काठ का बर्तन, ३. नाव, डोंगी, ४. पेड़, ५. घड़ा, ६. द्रोणाचल नामक पर्वत जो रामायण के अनुसार चीरोद समुद्र के किनारे है और जिस पर संजीवनी नाम की जड़ी होती है। ७. एक प्राचीन माप जो १३६५ तोले ४ माशे अर्थात् २१ सेर के लगभग होता है। ८. बिच्छू। उ० १. कबौ द्रोण भीयम समीर सुत महाबीर। (ह० ५)

द्रोणि-(सं०)-१. द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा, २. द्रोण की स्त्री कृपी, ३. नौका, डोंगी, ४. एक प्राचीन तौल, ५. दोनियाँ, छोटा दोना, ६. काठ का पात्र, ७. कैला, ८. नील का पौधा, ९. दो पर्वतों के बीच की भूमि, दर्रा, १०. गुफा, कंदरा।

द्रोन-दे० 'द्रोण'। उ० ६. द्रोन सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर। (ह० ६)

द्रोनाचल-(सं० द्रोणाचल)-दे० द्रोण का छठा अर्थ। उ० काल नेमि दलि बेगि बिलोव्यों, द्रोनाचल जिय जानि। (गी० ६।६)

द्रोनि-दे० 'द्रोणि'। उ० ६. जह्न-कन्या धन्य, पुन्य कृत सगर सुत, भूधर-द्रोनि विहरनि बहु नामिनी। (वि० १८)

द्रोह-(सं०)-बैर, द्वेष, दूसरे का अहित-चिंतन। उ० कबहुँ मोह बस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई। (वि० ८१) द्रोहा-दे० 'द्रोह'। उ० लोभ न छोभ न राग न द्रोहा। (मा० २।१३०।१)

द्रोहाई-द्रोह करने का भाव, द्रोहपना। उ० स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँह-द्रोहाई। (वि० १७१)

द्रोहि-दे० 'द्रोही'। उ० हौँ समुभक्त साँह-द्रोहि की गति छार-छिया रे। (वि० ३३)

द्रोहिहि-द्रोही को, द्वेषी को। उ० द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहुँ। (मा० ७।१२८।३) द्रोही-द्रोह करनेवाला, द्वेषी, विरोधी। उ० बित्व विदित छत्रिय कुल द्रोही। (मा० १।-२७२।३)

द्रोहै-द्रोह करता है, बैर करता है। उ० को तुलसी से कुसेवक संअहो, सठ सब दिन साँह द्रोहै। (वि० २३०)

द्रौपदी-(सं०)-राजा द्रुपद की कन्या जिसे अर्जुन ने जीता था पर माता कुंती की आज्ञा से जिसका विवाह पाँचों पांडवों से हुआ था। द्रौपदी अपने भाई धृष्टद्युम्न के साथ यज्ञकुंड से उत्पन्न हुई थी। जुआ में जुधिष्ठिर ने सब कुछ हार जाने के बाद द्रौपदी को दाव पर रक्खा और इसे भी हार गए। दुर्योधन ने द्रौपदी को जीत लेने के बाद दासी के रूप में जुलाया। रजस्वला होने के कारण द्रौपदी नहीं गई, इस पर दुःशासन उसे बलात् बाल पकड़कर घसीट ले गया और सबके सामने नंगा करने लगा। कृष्ण ने उस समय द्रौपदी की रक्षा की। द्रौपदी को पाँचों पांडवों से पाँच पुत्र थे जो अश्वत्थामा द्वारा मारे गए।

द्वंद्व-(सं०)-१. जोड़ा, मिथुन, दो, २. कलह, झगड़ा, बखेड़ा, ३. राग-द्वेष, ४. दुःख, ५. माया-मोह, ६. रहस्य, गुप्त बात, ७. द्वंद्व युद्ध, दो आदमियों की परस्पर लड़ाई, ८. किला, ९. नर और मादे का जोड़ा, १०. दुविधा, संशय । उ० १. पद कंज द्वंद्व मुकुंद राम रमेश नित्य भजामहे । (मा० ७१३। छं० ४) २. रुचिर हरिसंकरी-नाम मंत्रावली द्वंद्व दुख-हरनि आनंद खानी । (वि० ४६)

द्वंद्व-(सं०)-१. दो वस्तुएँ जो एक साथ हों, जोड़ा, २. नर और मादे का जोड़ा, ३. रहस्य, भेद की बात, ४. दो आदमियों की लड़ाई, ५. झगड़ा, बखेड़ा, कलह, ६. एक प्रकार का समास, ७. जन्म-मरण, हर्ष-शोक, दुःख-सुख आदि युग्म । उ० ७. गोविंद गो पर द्वंद्व हर बिग्यान वन धरनीधर । (मा० ३३२। छं० २)

द्वादश-(सं०)-बारह, दो और दस ।

द्वादशि-दे० 'द्वादशी' ।

द्वादशी-(सं०)-किसी पक्ष की बारहवीं तिथि ।

द्वादस-दे० 'द्वादश' । उ० द्वादस अक्षर मंत्र पुनि जपहि सहित अनुराग । (मा० ११४३)

द्वादसि-दे० 'द्वादशी' । उ० द्वादसि दान देहु अस अभय होइ त्रैलोक । (वि० २०३)

द्वापर-(सं०)-बार युगों में तीसरा युग । पुराणों के अनुसार यह युग ८६४००० वर्षों का माना गया है । उ० द्वापर परितोषत प्रभु पूर्ण । (मा० १२७। २)

द्वार-(सं०)-१. दरवाजा, दुआर, दीवार में भीतर जाने या बाहर निकलने के लिए खुला हुआ स्थान, २. मुख, सुहाना, ३. सांख्य कारिका में अंतःकरण ज्ञान का प्रधान स्थान कहा गया है और ज्ञानेद्रियाँ उसके द्वार बतलाई गई हैं । उ० १. का काहू के द्वार परी, जो हौं सो हौं राम को । (क० ७। १०७) ३. हंदी द्वार झरोखा नाना । (मा० ७। ११८। ६) द्वार-द्वार-दरवाजे-दरवाजे, दर-दर । उ० चंचल चरन लोभ लागि लोलुप द्वार-द्वार जग लागे । (वि० १७०) द्वारे-दरवाजे पर । उ० सूत मागध प्रवीन, बेनु बीना धुनि द्वारे, गायक सरस राग रागे । (गी० ७। १२) द्वारेहि-द्वार पर, दरवाजे पर । उ० द्वारेहि भेंटि भवन लेइ आई । (मा० २। १५६। २)

द्वारपाल-(सं०)-दरबान, छोटीदार । उ० द्वारपाल हरि के प्रिय होऊ । (मा० १। १२२। २)

द्वारा (१)-(सं० द्वार)-१. द्वार, दरवाजा, २. द्वार पर । उ० २. बीना बेनु संख धुनि द्वारा । (मा० २। ३७। ३)

द्वारा (२)-(सं० द्वारात)-जरीये, साधन से, कारण से ।

द्विज-(सं०)-जिसका जन्म दो बार हो, १. ब्राह्मण, २. पत्नी, चिड़िया, ३. चंद्रमा, ४. ब्राह्मण त्रिभुव तथा वैश्य, ५. दाँत । उ० १. सब द्विज उठे मान बिस्वास । (मा० १। १७३। ४) ५. नासिका चारु, सुकपोल, द्विज वज्रधुति । (वि० ५१)

द्विजबंधु-(सं०)-१. संस्कार हीन द्विज या ब्राह्मण, नाम मात्र का ब्राह्मण, २. अजामिल । उ० २. वृत्र बलि बाण प्रह्लाद मय व्याध गज गुह्य द्विजबंधु निज धर्म-त्यागी । (वि० ५७)

द्विजराज-(सं०)-१. ब्राह्मण, २. चंद्रमा, ३. शिव, ४. गुरु, ५. ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, ६. कपूर ।

द्विजराज-दे० 'द्विजराज' । उ० गे'जहि बिबुध कुमुद द्विजराज । (मा० २। २६४। २)

द्वितिय-दे० 'द्वितीय' ।

द्वितीय-(सं०)-दूसरा ।

द्विधा-(सं०)-१. दो प्रकार से, दो तरह से, २. दो प्रकार का, भला-बुरा या ऊँच-नीच इत्यादि ।

द्विविद-(सं० द्विविद)-राम की सेना का एक बंदर सेनापति । उ० द्विविद मयंद नील-नल अंगद गद विकटासि । (मा० ५। ५४)

द्वेष-(सं०)-शत्रुता, बैर, रंज, चिड़ । उ० द्वेष दुर्मुख, दुर्भ-खर, अकंपन-कपट, दर्प मनुजाद-मद-सूलपानी । (वि० ५८)

द्वेषु-दे० 'द्वेष' । उ० मनहुँ उडुगान-निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु । (गी० ७। ६)

द्वै-(सं० द्वय)-दो, दोनों । उ० गुन गेह, सनेह को भाजन सो, सबही सौं उठाइ कहौं भुज द्वै । (क० ७। ३४)

द्वैत-(सं०)-१. शुभ, युगल, दो का भाव, २. अंतर, भेद, ३. अति, अम, द्विविधा, ४. अज्ञान, मोह, अवि-वेक, ५. भेद-भाव, अपने को ऊँचा और दूसरों को लज्जु समझने का भाव, ६. द्वैतवाद । वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें आत्मा और परमात्मा को दो भिन्न पदार्थ मान-कर विचार किया जाता है । उ० ४. द्वैत रूप तमकूप परौं नहिँ अस कछु जतन बिचारी । (वि० ११३)

ध

धंध-(?)-गड़बड़ी, गड़बड़ । उ० धंध देखियत जग सोच परिनाम को । (क० ७। ८३)

धंधक-(?)-धंधे का आडंबर, जंजाल । उ० धींग धरम धंधक धोरी । (मा० १। १२। १)

धंधा-(?)-काम, काज, पेशा ।

धंसि-(सं० दंशन, हि० धंसना)-धंसकर, घुसकर, पैठकर ।

उ० सुन्दर-स्याम-सरीर-सैल तें धंसि जनु लुग-जमुना । अवगाहैं । (गी० ७। १३)

धकधकी-(अनु० धक)-१. जी के धक-धक कराने की क्रिया या भाव, जी की धककन, २. गले और छाती के बीच का गड़वा, धुकधुकी, दुगधुगी, ३. बबराहट । उ० २. सुरगन समय धकधकी धरकी । (मा० २। २४१। ४) ३. दसकंधर

उर धकधकी अय जनि धावै धनु धारि । (गी० १।१६)
धका-दे० 'धका' । धकानि-धकों, टकरो । उ० तुलसी जिन्है
धाय धुके धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं । (क०
६।३३)

धका-(अनु० धक)-१. टकर, आघात या प्रतिघात, २.
ठकेलने की क्रिया, ३. आपदा, विपत्ति, ४. हानि, घाटा,
टोटा, नुकसान ।

धज-(सं० धज)-१. सजावट, बनाव, सुन्दर रचना, २.
आकार, रूप, आकृति, ३. रंग, ४. शोभा, ५. व्यवहार ।

धड़-(सं० धर)-सर, हाथ तथा पैर को छोड़कर शेष शरीर,
रुंह ।

धतूर (१)-(सं० धुस्तूर)-धतूरा, एक पेड़ जिसका फल
विषैला होता है । इसके फल को भी धतूर या धतूरा ही
कहते हैं । उ० माँग-धतूर अहार, छार लपटावहि । (पा०
५७) धतूरै-धतूरा ही । उ० पात द्वै धतूरै के वै भोरे कै
भवेस सो । (क० ७।१६२) धतूरोई-धतूरा ही, केवल धतूरा ।
उ० भौन में भाँग, धतूरोई आँगन, नाँगे के आगे हैं माँगने
बाढ़े । (क० ७।१६४)

धतूर (२)-(अनु० धू + सं० तूर)-तुरही, नरसिंहा नाम
का बाजा ।

धतूरो-दे० 'धतूर' । उ० धाम धतूरो विभूति को कूरो,
निवास तहाँ सव लै मरे दाहै । (क० ७।१६५)

धनंजय-(सं०)-१. आग, अग्नि, २. पार्थ, अर्जुन, ३.
अर्जुन वृक्ष, ४. चीता वृक्ष, ५. विष्णु, नारायण । उ० २.
जयति भीमार्जुन-अ्याल सूदन-गर्वहर धनंजय-रथत्रान
केतु । (वि० २८)

धन (१)-(सं०)-१. संपत्ति, पूँजी, २. द्रव्य, वित्त, रूपया,
३. जमीन, जायदाद, ४. स्नेह पात्र, अत्यंत-प्रिय व्यक्ति,
५. बारह राशियों में से एक । उ० १. दानि मुकुति धन-
धरम धाम के । (मा० १।३२।१)

धन (२)-(सं० धनी)-स्त्री, युवती ।

धन (३)-(सं० धन्य)-प्रशंसा के योग्य, धन्य ।

धनद-(सं०)-१. धन देनेवाला, दाता, २. कुबेर, ३. अग्नि ।
उ० २. पवन, परंदर, कृसानु, भानु, धनद से । (क०
१।६) धनद-मित्र-(सं०)-कुबेर के सखा शंकर को, शिव
को । उ० ललित लल्लाट पर राज रजनी शकल, कलाधर,
नौमि हर धनद-मित्र । (वि० ११)

धनधारी-कुबेर । उ० रवि ससि पवन वरुन धनधारी ।
(मा० १।१८२।५)

धनपति-(सं०)-धन के देवता, कुबेर ।

धनवंत-धनी, धनवान, धनिक । उ० धनवंत कुलीन मलीन
अपी । (मा० ७।१०।१४)

धनवाना-दे० 'धनवान्' । उ० धनद कोटि सत सम धन-
वाना । (मा० ७।६२।४)

धनवान्-दे० 'धनवान्' । उ० सोचिअ बयसु कृपन धन-
वान् । (मा० २।१७२।३)

धनवान्-(सं०)-धनवाला, दौलतमंद, जिसके पास
धन हो ।

धनहीन-(सं०)-निर्बन, कंगाल । उ० धनहीन दुखी ममता
बहुधा । (मा० ७।१०२।१)

धनाधिप-कुबेर, धन के स्वामी । उ० सुरराज सो राज-
समाज, समृद्धि विरंचि, धनाधिप सो धन भो । (क०
७।४२)

धनिक-(सं०)-१. धनी, अमीर, मालदार, २. महाजन,
जो रूपया दे, ३. स्वामी, पति । उ० २. देवे को न कछु
रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ । (वि० १००)

धनि (१)-(सं० धन्य)-प्रशंसनीय, सराहने लायक, धन्य ।

धनि (२)-(सं० धनिन्)-धनी, अमीर, बड़ा आदमी । उ०
मनहुँ सरद बिधु उभय, नखत धरनी धनि । (जा० ५५)

धनि (३)-(सं० धनी)-स्त्री, युवती स्त्री ।

धनी-(सं० धनिक या धनिन्)-१. धनवाला, धनिक, २.
स्वामी, पति, २. अधिकारी, महाजन । उ० १. बल्लभ उर्मिला
के सुलभ सनेह बस, धनी धनु तुलसी से निरधन के ।
(वि० ३७)

धनु (१)-(सं०)-१. चाप, कमान, धनुष, २. चिरौंजी
का पेड़, ३. एक राशि, ४. एक लगन, ५. चार हाथ की
माप ।

धनु (२)-दे० 'धन (१)' । उ० १. बल्लभ उर्मिला के
सुलभ सनेहबस, धनी धनु तुलसी से निरधन के । (वि०
३७)

धनुधर-(सं० धनुर्धर)-तीरंदाज, धनुष धारण करनेवाला ।
उ० बीर बरियार धीर धनुधर राय हैं । (गी० २।२८)

धनुपानी-(सं० धनु + पाणि)-हाथ में धनुष लिए हुए,
जिसके हाथ में धनुष हो । उ० सुमिरि गिरापति प्रभु धनु-
पानी । (मा० १।१०५।२)

धनुमख-धनुषयज्ञ । उ० धनुमख कौतुक जनकपुर, चले
गाधिसुत साथ । (प्र० ४।६।४)

धनुर्धर-(सं० धनुर्धर)-१. धनुष धारण करनेवाला, तीरं-
दाज, २. धतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

धनुष-(सं० धनुस्)-धन्वा, कोदंड, चाप, कमान, तीर
फँकने का अस्त्र । उ० सुमन धनुष कर सहित सहाई ।
(मा० १।८३।२)

धनुषु-दे० 'धनुष' । उ० भंजव धनुषु राम सुनुरानी । (मा०
१।२५७।१)

धनुहियाँ-(सं० धनुस्)-बालकों के खेलने का धनुष, छोटा
धनुष ।

धनुहीं-छोटे धनुषों के समूह । उ० बहु धनुहीं तोरीं लरि-
काई । (मा० १।२७।१४) धनुहीं-छोटा धनुष । उ०
धनुही सम त्रिपुरारि धनु बिदित सकल संसार । (मा०
१।२७।१)

धनेश-(सं०)-१. धनी, धन का स्वामी, २. कुबेर, ३. धन
राशि के स्वामी गुरु ।

धनेसा-दे० 'धनेश' । उ० २. अघ अचगुन धन धनी धनेसा ।
(मा० १।४।३)

धन्य-(सं०)-१. प्रशंसा के योग्य, श्लाघ्य, वाह, २. पुण्य-
वान, सुकृती । उ० १. धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्र
बर सोइ । (वै० ३६)

धन्या-(सं०)-१. प्रशंसा के योग्य, पुण्यशीला, २. भाग्य-
वती स्त्री, ३. एक नदी का नाम, ४. वनदेवी, ५. उप-
माता, ६. ध्रुव की स्त्री, ७. धनिया । उ० १. बसत

बिबुध्रापगा निकट तट सदनवर, नयन निरखति नर तेऽति धन्या । (वि० ६१)

धन्विनौ-दोनो धनुर्धर, दोनों धनुषधारी । उ० शोभाख्या वर धन्विनौ श्रुतितुतौ गो विप्रवृद्ध प्रियौ । (मा० ३११ श्लो० १) धन्वी-(सं० धन्विन)-धनुर्धर, धनुषधारी । उ० धन्वी कामु नदी पुनि गंगा । (मा० ६१२६३)

धमधूसर-(अनु० धम+सं० धूसर)-स्थूल और बेडौल मनुष्य, भद्दा मोटा और सुस्त आदमी । उ० कलिकाल बिचार अचार हरो, नहिं सूकै कछु धमधूसर को । (क० ७१०३)

धरं-धारण करनेवाले । उ० धरं त्रिलोक नायकं । (मा० ३१४ छं० ३) धर (१)-(सं०)-१. धारण करनेवाला, ग्रहण करनेवाला, पकड़नेवाला, २. पकड़ा, ३. धारण किए हुए, पकड़कर, ४. पर्वत, ५. असृत, ७. कूर्मराज, कच्छप जो पृथ्वी को शिर पर लिए हैं । न. धरती, पृथ्वी । उ० १. वसन-किजलक-धर चक्र-सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति बिसाला । (वि० ४६) न. मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान । (मा० ३१२६)

धर (२)-दे० 'धद' । उ० धरनि धसह धर धाव प्रचंडा । (मा० ६१७१३)

धरई-(सं० धरण, हि० धरना)-पकड़ती हैं, धरती हैं । उ० ललना-गन जब जेहि धरई धाई । (गी० ७१२२) धरई-धारण करता है, धरते हैं । उ० तपबल सेधु धरई महिभारा । (मा० ११७३४) धरउं-१. धारण करता; २. धारण करूँ । उ० १. जोइ तनु धरउं तजउं पुनि अनायास हरि जान । (मा० ७१०६ ग) धरऊं-धारण करता । उ० त्रिजग देव नर जोइ तनु धरऊं । (मा० ७११०१) धरत-१. धरते हैं, रखते हैं, २. पकड़ते हैं, ३. धारण करने के समय । उ० १. सुनि अनुकूल मुदित मन मानहुँ धरत धीर जहि धाई कै । (गी० ११६८) ३. का सुनि सकुवे कृपालु नर सरीर धरत । (वि० १३४) धरनि (१)-१. धारणा, २. धरना, रखने का भाव । उ० २. डसुक डसुक पग धरनि नदनि, लरखरनि सुहाई । गी० ११२७) धरहिं-(सं० धरण, हि० धरना)-धरते हैं, पकड़ते हैं । उ० एक धरहिं धनु धाय नाइ सिर बैठहिं । (जा० १२) धरहिं-धारण करो, रखो । उ० धरनि धरहिमन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिह । (मा० ११८४) धरहीं-१. रखते हैं, २. धारण करते हैं, ३. पकड़ते हैं, ४. आरोपित करते हैं । उ० २. कृपा सिंधु जन हित तनु धरहीं । (मा० ११२२११) ३. तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं । (मा० ११२५०१४) ४. निज अयान राम पर धरहीं । (मा० ७१०३१५) धरहु-धरो, पकड़ो, पकड़ लो । उ० कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई । (मा० ३१८५५) धरहु-१. पकड़ो, पकड़ लो, २. पकड़े रहिए । उ० २. जानि मनुज जनि हठ मन धरहु । (मा० ६११४४) धरा (१)-(सं० धरण) १. रक्खा, २. धारण किया, उठाया, ३. पकड़ लिया । उ० २. दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सह धरा । (मा० ११८३४०१) ३. धाई धरा जिमि जंतु बिसेया । (मा० ६१२४८) धरि-१. धारण कर,

२. रखकर, ३. पकड़ कर । उ० १. सुनि धरि धरि नृप बेध चले प्रमुदित मन । (जा० ११) धरिअ-धरिए, धरि-एगा, धरना चाहिए, रखना चाहिए । उ० संसय अस न धरिअ उर काऊ । (मा० ११५१३) धरित (१)-(सं० धरण)-१. धारण कर, २. पकड़कर, थामकर, ३. थामती, पकड़ती, गहती । उ० १. अतुल मृगराज वपु धरित, विहरित अरि, भक्त-ग्रहलाद-ग्रहलादकर्ता । (वि० ५२) धरिवे-धारण करने, धरने । उ० धरिवे को धरनि, तरनि तम दलिवे को । (ह० ११) धरिहउं-धारण करूँगा । उ० तुम्हहि लागि धरिहउं नर बेसा । (मा० ११८७१) धरिहहिं-धारण करंगे, ग्रहण करंगे । उ० धरिहहिं विपु मनुज तनु तहिआ । (मा० ११३६३) धरिहो-१. रक्खो, २. ध्यान दोगे, ख्याल करोगे । उ० २. जौ पै जिय धरिहो अवगुन जन के । (वि० ६६) धरी-१. रक्खा, धारण किया, २. धरकर, धारण कर, ३. उपस्थित को । उ० १. धरी न काहुँ धीर सब के मन मनसिज हरे । (मा० ११८५) ३. धर बात धरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी । (पा० ६२) धरु-धारण करो, पकड़ो, रक्खो । उ० सम, संतोष, बिचार बिमल अति, सतसंगति, ए चारि दृढ़ करि धरु । (वि० २०५) धरे-रक्खे हुए, धारण किए हुए, रक्खे । उ० सुख-मंदिर सुंदर रूप सदा उर आनि धरे धनु भाथहि रे । (क० ७१२६) धरेउं-धारण किए । उ० एहि बिधि धरेउं बिबिध तनु न्यान न गयउ खगेस । (मा० ७१०६) धरेउ-धारण किया । उ० भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप । (मा० ७१०२ क) धरेऊ-धरा, रक्खा । उ० कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ । (मा० ७१८३१२) धरेन्हि-धरे, पकड़े, ग्रहण किए । उ० तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई । (मा० ६१७६२) धरेसि-१. पकड़ लिया, २. पकड़ लेता है । उ० १. कोपि कृदि द्वौ धरेसि बहोरी । (मा० ६१६८५) धरेहु-रखना, रक्खे रहना, रक्खो । उ० संतत हृदय धरेहु मम काजू । (मा० ४११२१५) धरै-१. धारण करता है, धारण कर लेता है, २. धारण करे । धरो-१. रक्खा हुआ, २. पकड़ो, ३. रक्खो, ४. रक्खा है । उ० २. कबो 'धरो धरो' धाए बीर बलवान हैं । (क० ५१७) धरोह-रख लिया, रख ही लिया । उ० दीपक काजर सिर धरयो, धरयो सु धरयो धरोह । (दो० १०६) धरौं-१. धरूँ, धारण करूँ, २. धारण करता हूँ । उ० १. बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा । (मा० ११२५८३) धरयो-१. धरता है, धारण करता है, २. रक्खा, ३. धारण किया । उ० १. निज तालगत रुधिर पान करि मन संतोष धरयो । (वि० ६२) धरकत-१. धड़कते हैं, डरते हैं, २. डरते हुए । उ० २. दास तुलसी परत धरनि, धरकत झुकत । (क० ६१४६) धरकी-(अनु० धद)-धड़कने लगी, धड़धड़ करने लगी । उ० सुरगन सभय धकधकी धरकी । (मा० २१२४१४) धरणा-(सं०)-१. धारण करनेवाला, २. थामने या धरने की क्रिया, ३. सेतु, पुल, ४. संसार, जगत । धरणी-(सं०)-दे० 'धरणी' । धरणी-(सं०)-१. पृथ्वी, धरती, २. धारण करनेवाली, ३. शाहमलि वृच । उ० १. अतुल बल बिपुल विस्तार,

विग्रह गौर, अमल अति धवल धरणी धरामं । (वि० ११)
 धरन-दे० 'धरण्' । उ० १. तरल-तृष्णा-तमी-तरणि धरनी
 धरन सरन-भय-हरन करना निधानं । (वि० ५४) २.
 तिन्हहि धरन कहुँ भुजा पसारी । (मा० ६।६८।४)
 धरनहार-धरनेवाला, थामने या पकड़नेवाला । उ० धरनी-
 धरनहार भंजन भुवन भार । (वि० ३७)
 धरनि-दे० 'धरणि' । उ० १. वारिचर-वपुषधर, भक्त-
 निस्तार-पर, धरनिकृत नाव महिमाति गुर्वी । (वि० ५२)
 २. वर्म चर्मकर कृपान, सुल सेल धनुषबानधरनि, दलनि
 दानव दल, रन करालिका । (वि० १६) धरनिहि-
 पृथ्वी को । उ० तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा ।
 (मा० १।१८।५)
 धरनिधर-(सं० धरणि + धर)-१. भूधर, पर्वत, २. हिमा-
 चल, पार्वती के पिता, ३. त्रिकूट पर्वत, ४. शेषनाग, ५.
 कच्छप भगवान्, ६. राजा, ७. विष्णु, राम, ८. शिव, ९.
 पृथ्वी को धारण करनेवाला । उ० १. गुन निधान हिम-
 वान धरनिधर धुर धनि । (पा० ६) २. कन्यादान संकलप
 कीन्ह धरनिधर । (पा० १४४) ३. तज्यो धीर धरनि,
 धरनिधर धसकत । (क० ६।१६)
 धरनिमुताँ-जानकी ने, सीता ने । उ० धरनिमुताँ धीरञ्ज
 धरेउ समउ सुधरमु बिचारि । (मा० २।२८६) धरनि-
 मुता-(सं० धरणि + मुता)-जानकी, सीता ।
 धरनी (१)-दे० 'धरणी' । उ० १. तरल-तृष्णा-तमी-तरणि
 धरनी धरन सरन-भय-हरन करना निधानं । (वि० ५४)
 धरनीधनि-(सं० धरणी + धनिन्)-राजा, नृप । उ० मनहुँ
 सरद बिधु उभय, नखत धरनीधनि । (जा० ५५)
 धरनी (२)-(सं० धरण, हि० धरना)-१. टेक, प्रतिज्ञा, २.
 रहन । उ० १. तुलसी अय राम को दास कहाइ-हिये धरु
 चातक की धरनी । (क० ७।३२)
 धरनीधर-दे० 'धरनिधर' । उ० ४. तुलसी जिन्हें धाये धुकै
 धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं । (क० ६।३३) ७.
 जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौँ धरनीधर
 की । (क० ७।२७) ६. सकल धरम धरनीधर सेसु । (मा०
 २।३०६।१)
 धरम-(सं० धर्म)-धर्म, अधर्म का उलटा, न्यायोचित शुभ
 और अच्छे कर्म । उ० सपनेहुँ जिन्हकें धरम न दाया ।
 (मा० १।१८।११) धरमादिक-अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष
 चार फल । उ० जनु धन धरमादिक तनुधारी । (मा०
 १।३०६।१)
 धरमशील-दे० 'धर्मशील' । उ० धरमशील पहि जाहि
 सुभाएँ । (मा० १।२६४।२)
 धरमी-(सं० धर्मिन्)-धर्मात्मा, पुण्यात्मा, धर्मी । उ०
 करमी, धरमी, साधु, सेवक, बिरत, रत । (वि०
 २५६)
 धरमु-दे० 'धरम' । उ० धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधु । (मा०
 २।५५।२).
 धरमू-दे० 'धरम' । उ० मागउँ भीख त्यागि निज धरमू ।
 (मा० २।२०४।४)
 धरषा-(सं० धर्षण)-धर्षित-हुआ, मर्दित हुआ, दब गया ।
 उ० डोले धराधर-धारि, धराधर धरषा । (क० ६।७)

धरषि-दबाकर, मर्दनकर, डराकर । उ० रिपुबल धरषि
 हरषि कपि बालितन यबलपंज । (मा० ७।३५ क)
 धरहर-(सं० धरण, हि० धरना)-१. गिरप्रतारी, धर-पकड़,
 २. सहाय, अवलंब, आश्रय, ३. लड़नेवालों या ऋगड़ा
 करनेवालों को धर-पकड़कर लड़ाई ऋगड़ा समाप्त करने
 का कार्य, बीच-बिचाव, ४. रक्षा, बाचाव, ५. धैर्य,
 धीरज ।
 धरहरि-दे० 'धरहर' । उ० ३. लरत, धरहरि करत रुचिर
 जनु जुग फनी । (गी० ७।५)
 धरा (२)-(सं०)-पृथ्वी, ज़मीन । उ० परम समीत धरा
 अकुलानी । (मा० १।१८।२)
 धराधर-(सं०)-१. वह जो पृथ्वी को धारण करे, २. कूर्म,
 कच्छप, ३. शेषनाग, ४. विष्णु, ५. पर्वत, पहाड़, ६. धरा-
 तल । उ० ३. तथा ५. डोले धराधर-धारि, धराधर धरषा ।
 (क० ६।७) धराधरन-(सं० धरा + धरण)-पृथ्वी को धारण
 करनेवाले । उ० मरन-बिपति-हर धुरधरम धराधरन बल-
 धाम । (स० २२३) धराधरनि-१. पृथ्वी को धारण करने-
 वालों ने, २. पहाड़ों ने । उ० १. धरा धराधरनि सु साव-
 धान करी है । (गी० १।६०)
 धराइ-१. पकड़ाकर, थमाकर, धराकर, २. धारणकर । उ०
 २. जेहि देह सनेह न रावरे सों अस्ति देह धराइ कै जाय
 जियै । (क० ७।३८) धराइ-धराया, रक्खा, निश्चय किया ।
 उ० राम तिलकहित लगन धराइ । (मा० २।१८।३)
 धरासुर-(सं०)-१. पृथ्वी के देवता ब्राह्मण, २. भृगु ऋषि ।
 उ० २. भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो ।
 (मा० ६।८६ छं० १)
 धरित (२)-(सं० धरित्री)-धरती, पृथ्वी ।
 धरोहर-(सं० धरण, हि० धरना)-वह वस्तु जो किसी के
 पास इस विश्वास पर रक्खी हो कि उसका स्वामी जब
 भी माँगेगा वह मिल जायेगी । धाती ।
 धर्ता-(सं० धर्तृ)-१. धारण करनेवाला, कोई काम अपने
 ऊपर लेनेवाला, २. ऋणी ।
 धर्म-(सं०)-१. प्रकृति, स्वभाव, किसी वस्तु या व्यक्ति की
 वह वृत्ति जो उसमें सर्वदा रहे, २. गुण, वृत्ति, ३. अलं-
 कार शास्त्र के अनुसार उपमेय और उपमान की वह बात
 जिसके आधार पर तुलना की जाती है । ४. शुभ कर्म,
 पुण्य कर्म, धरम, सत्कर्म, ५. कर्तव्य, फर्ज, ६. संप्र-
 दाय, मज़हब, पंथ, ७. न्याय, नीति, कानून, ८. उचित
 अनुचित का विचार करनेवाली चित्तवृत्ति, ९. यमराज,
 धर्मराज, १०. धनुष, धनु, कमान, ११. संध्या-तर्पण
 आदि कर्मकांड जो वर्यो पुंव आश्रमों के अनुसार होते
 हैं । उ० ४. श्रुति कह परम धरम उपकारा । (मा० १।८।११)
 धर्मज्ञ-(सं०)-धर्म को जाननेवाला, धार्मिक ।
 धर्मध्वज-(सं०)-पाखंडी; दिखावे का धर्मात्मा, कपटी । उ०
 धींग धरमध्वज धंधक धोरी । (मा० १।१२।२)
 धर्मशील-(सं०)-धर्म के अनुसार आचरण करनेवाला,
 धार्मिक ।
 धर्मा-१. दे० 'धर्म', २. धर्मवाला, स्वभाववाला । उ० २.
 महिष मत्सर क्रूर, लोभ सूकर रूप, फेर छल, दंभ, दंभ
 माजार-धर्मा । (वि० ५६)

धर्मार्थ-(सं०)-धर्म का काम ।
 धर्मी-(सं० धर्मिन्)-१. जिसमें धर्म हो, धर्मात्मा, २. मत या धर्म को माननेवाला, ३. विष्णु, हरि, ४. धर्म का आधार ।
 धर्म-(सं०)-१. धृष्टता, गुस्ताग्नी, २. असहनशीलता, तुनकमिजाज़ी, ३. अधीरता, बेसब्री, ४. अपमान, अनादर, ६. नपुंसक, नामर्द, ७. रोक, दबाव, ८. हिंसा, हत्या, ९. सतीत्व-हरण ।
 धर्मण-(सं०)-१. अवज्ञा, अपमान, २. दवाने या हराने का कार्य, ३. मर्दित करना ।
 धर्मि-मर्दन करके ।
 धर्मित-(सं०)-हारा हुआ, मर्दित ।
 धव-(सं०)-१. पति, २. एक वृक्ष ।
 धवरहर-(?)-मकान के ऊपर बनी मीनार, धौरहरा ।
 धवल-(सं०)-१. रवेत, उजला, २. निर्मल, रूकाभूक साफ, ३. सुन्दर, मनोहर, ४. गुणयुक्त । उ० १. कंबु-कर्पूर-वपु-धवल निर्मल मौलि, जया सुर तटिनि, सित सुमन माला । (वि० ४६) २. नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे । (पा० ४३)
 धवलिहउं-उज्वल कर दूंगा । उ० जस धवलिहउं भुवन दस चारी । (मा० २।१६०।३)
 धसइ-धँसी जाती थी । उ० धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा । (मा० ६।७।१३) धसी-(सं० ध्वंसन)-उत्तरी, पैठी । उ० जनु कलिदजा सुनील सैल तें धसी समीप । (गी० ७।७)
 धाके-(सं० धाक)-१. धाक जमा दी, २. आतंक जमाए हुए, ३. रोब में आ गए । उ० ३. बीर बिरुदैंत बर बैरि धाके । (क० ६।४२)
 धाइ (१)-(सं० धावन, हि० धाना)-१. तेज़ी से चली, शीघ्रता से दौड़ी, २. दौड़कर । उ० २. धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा । (मा० २।३२।२) धाईं-दौड़ीं । उ० हरषित जहँ-तहँ धाईं दासी । (मा० १।१६३।१) धाई (१)-१. दौड़ी, २. दौड़कर । उ० १. सुनि ताइका क्रोध करि धाई । (मा० १।२०।६।३) धाउ-धावा बोल देता है, चढ़ जाता है । उ० बूड़त लखि, पग डगत लखि, चपरि चहुँ दिसि धाउ । (दो० ५२०) धाए-१. दौड़े, २. दौड़ने पर । उ० १. नगर निकट बिमान आए सब नर नारी देखन धाए । (गी० ७।३८) धाय (१)-(सं० धावन)-दौड़कर, चलकर । उ० अब सोचत मनि बिनु भुजंग ज्यों बिकल अंग दले जरा धाय । (वि० ८३) धायउं-दौड़ा । उ० निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउं । (मा० ७।८२।२) धायउ-दौड़ा, दौड़ा आता हो । उ० क्रोधवत जनु धायउ काला । (मा० ६।५।१) धायल-दौड़ा । उ० अस कहि कोपि गगन पर धायल । (मा० ६।६७।३) धाये-१. दौड़ने पर, चलने पर, २. चले । उ० १. तुलसी जिन्हें धाये धुके धरनीधर, धौर धकानि सों मेह हते हैं । (क० ६।३३) धायो-दौड़ता, धर-उधर फिरता । उ० काहे को फिरत मूढ़ मन धायो । (वि० १।६३) धाव-दौड़ा । उ० धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा । (मा० ६।७।१३) धावइ-दौड़ता । उ० आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब धालइ खीसा । (मा० १।१८३। ४०।१) धावत-(सं० धावन)-१. दौड़ते, भागते,

२. ध्यान धरता है, ध्यान करता है । उ० १. जेहि करुना सुनि अवन दीन-दुख धावत हौ तजि धाम । (वि० ६३) धावहिं-दौड़ते हैं, दौड़ रहे हैं । उ० राम-राम कहि चहुँ दिसि धावहिं । (मा० २।८।१) धावहीं-दौड़ते हैं, दौड़ रहे हैं । उ० अंतावरीं गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं । (मा० ३।२०। ४०। २) धावा-(सं० धावन)-१. आक्रमण, हमला, चढ़ाई, २. दौड़, जल्दी-जल्दी जाना, ३. दौड़ा, दौड़ता है । उ० ३. ताहि धरै जननी हठि धावा । (मा० १।२०।६।४) धावै-दौड़े । उ० तौ कत मृग जल-रूप बिषय कारन निसि बासर धावै । (वि० १।१६) धावौं-चला जाऊँ । उ० जोजन सत प्रमान लै धावौं । (मा० १।२५।३।४)
 धाइ (२)-(सं० धात्री)-धाय, दाई ।
 धाई (२)-दो 'धाइ (२)'
 धाता-(सं० धातु)-१. ब्रह्मा, विधाता, २. विष्णु, ३. पालनेवाला, ४. बनानेवाला, ५. शिव । उ० १. रामहिं भजहिं तात शिव धाता । (मा० ७।१०।६।२)
 धातु-(सं०)-१. खान से उत्पन्न सोना, लोहा, चाँदी आदि खनिज पदार्थ, २. धारण करने योग्य वस्तु, ३. शब्द का मूल, माददा, ४. तत्व, सार, ५. शरीरस्थ रस, रक्त, मांस, भेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र नाम की सात धातुएँ, ६. माला । उ० ६. गुंजावतंस विचित्र, सब अंग धातु भवभय-मोचन । (क० २३)
 धातुराग-(सं०) धातु से निकला रङ्ग, गेरू । उ० सिय अंग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन-विभाग । (गी० २। ४४)
 धातुवाद-(सं०)-कीमियागरी, तबि से सोना बनाना । उ० धातुवाद, निरुपाधि बर, सदगुरु-लाभ, सुमीत । (दो० ५५७)
 धान-(सं० धान्य)-१. बिना कूटा हुआ चावल, २. चावल का पौधा, ३. अनाज । उ० २. देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान । (मा० ७।१०।१ ख)
 धानी (१)-(सं०)-१. स्थान, ठौर, २. धान की पत्ती के रङ्ग का । उ० १. जातुधान धारि धूरि धानी करि डारी है । (ह० २७)
 धानी (२)-(सं० धाना)-भुना हुआ जौ या गोहूँ ।
 धान्य-(सं०)-१. अन्न, गन्ना । कुछ स्मृतियों के अनुसार खेत में के अन्न को शस्य और छिलके सहित अन्न को धान्य कहते हैं, २. धान, व्रीहि, शालि, ३. धनिया, घना, ४. एक प्रकार का नगरमोथा ।
 धाम-दो 'धाम' । धाम-(सं०)-१. घर, भवन, स्थान, २. बैकुंठ, ३. देश, ४. आश्रय, ५. तेज, प्रभा, दीप्ति, ६. राशि, ७. अभाव, ८. मुख्य क्षेत्र, देवालय, मंदिर, ९. शक्ति, १०. जन्म, ११. किरण, १२. अवस्था, १३. गति, १४. विष्णु, १५. शोभा, १६. समूह । उ० १. साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहारत धाम को । (पा० ३।६) धामहिं-घर को । उ० कबहुँ न जात पराये धामहिं । (क० ५)
 धामर्द-पद देनेवाला । उ० अकामिनां स्वधामर्द । (मा० ३।४।१) धामद-(सं०)-१. पद देनेवाला, २. मुक्ति देने-

वाला । धामदा-वैकुण्ठ देनेवाली, धाम देनेवाली । उ० राम धामदा पुरी सुहावनि । (मा० १।३।१२)
 धामा-दे० 'धाम' । उ० १. लूटहि तस्कर तव धामा । (वि० १२५)
 धामिनी-१. धामवाली, घर बनानेवाली, २. स्थान करनेवाली, ३. रहनेवाली, ४. गमन करनेवाली, दौड़नेवाली । उ० ४. मिलित जल पात्र अज-युक्त हरि चरन रज, बिरज वरवारि त्रिपुरारि सिर-धामिनी । (वि० १८)
 धामू-दे० 'धाम' । उ० १६. मायावीस स्यान गुन धामू । (मा० १।१।७।४)
 धाय (२)-(सं० धात्री)-दाई, बच्चों को दूध पिलानेवाली स्त्री ।
 धार-(सं०)-१. जल आदि का प्रवाह, बहाव, २. हथियारों का तेज अंश, किनारा, ३. किनारा, छोर, ४. सेना, फौज, ५. दिशा, ओर, तरफ, ६. गंभीर, गहरा, ७. ऋण, कर्ज, ८. प्रांत, प्रदेश, ९. नोक, अनी, कोर, १०. रेखा, लकीर । उ० १. पुरजन-पूजोपहार सोमित ससि-धवल धार । (वि० १७) ४. जमकर धार किधौं बरिआता । (मा० १।६।१४)
 धारण-(सं०)-१. धारने की अवस्था, ग्रहण, अवलंबन, रखना, २. रक्षण, ३. कर्ज लेना, ४. धारण करनेवाला ।
 धारणा-(सं०)-१. बुद्धि, विषयों को ग्रहण करनेवाली बुद्धि, २. मन की स्थिरता, विश्वास, ३. स्मरण, चेत, ४. उत्साह, ५. अष्टांग योग में की एक स्थिति जिसमें मन में ब्रह्म के अतिरिक्त कोई विचार नहीं आता ।
 धारन-दे० 'धारण' । उ० ४. धरम धुरीन सु-धीर-धर धारन बर पर-पीर । (सं० ३०६)
 धारना-दे० 'धारणा' । उ० ५. ध्यान, धारना, समाधि, साधन-प्रवीणता । (क० ७।६२)
 धारमिक-दे० 'धार्मिक' ।
 धारा (१)-(सं०)-१. धार, जलप्रवाह, २. घोड़े की चाल ३. समूह, समुदाय, ४. उत्कर्ष, उन्नति, ५. चलन, रीति । उ० १ मध्य धारा विशद विश्व अभिरामिनी । (वि० १८) ३. चतुरंगिनी धनी बहु धारा । (मा० ६।७।११)
 धारा (२)-(सं० धार)-किसी हथियार का तेज भाग जिससे काटा जाता है ।
 धारि (१)-(सं० धारा)-१. फौज, सेना, २. डाकूओं का समूह, ३. अंड, समूह, ४. धारा, प्रवाह, बहाव । उ० १. बाटिका उजारी, अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़ । (क० १।२८) २. धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति । (क० ७।७५)
 धारि (२)-(सं० धारण, हि० धारना)-१. धारण करके, २. कर्ज लेकर के । धारिअ-धरिष, रखिए । उ० भयउ समउ अब धारिअ पाऊ । (मा० १।३।१३।४) धारिवे-धारण करने, पकड़ने । उ० कठिन कुठार धार धारिवे की धीरताहि । (क० १।१८) धारिहैं-रखेंगे । उ० पुर पाँउ धारिहैं उधारिहैं तुलसी हूँ से जन । (गी० २।४१) धारी (१)-(सं० धारण)-धारण की, धारण किया । उ० बिकल ब्रह्मादि-सुर-सिद्ध-संकोच वश-विमल-गुण-गोह-नर देह-धारी । (वि० ४३) धारे-१. रक्खे हुए हैं, २. धारण किया ।

उ० १. जिनको पुनीत बारि धारे सिर पै पुरारि । (क० २।६) धारेउ-धरा, रक्खा । उ० भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ । (मा० २।१६०।१) धारै-धारण करे । उ० तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान । (वै० २१)
 धारिनि-(सं० धारिणी)-१. धारण करनेवाली, २. पृथ्वी, धरती, ३. अपने ऊपर लेनेवाली । उ० १. निज इच्छा लीला बपु धारिनि । (मा० १।६८।२)
 धारी (२)-(सं० धारिन्)-धारण करनेवाला, जिसने धारण किया हो । उ० भस्म तनुभूषणं, व्याघ्रचर्माम्बरं, उरग-नरमौलि-उरमालधारी । (वि० ११)
 धारी (३)-(सं० धारा)-१. सेना, फौज, २. समूह, मुंड, ३. रेखा, लकीर । उ० १. थकित भई रजनीचर धारी । (मा० ३।१६।१)
 धारै-धाराएँ हैं, धाराएँ । उ० धारै बान, कूल धनु, भूषण जलचर, भंवर सुभग सब धारै । (गी० ७।१३)
 धार्मिक-(सं०)-१. धर्मशील, धर्मात्मा, पुण्यात्मा, २. धर्म संबंधी, धर्म का ।
 धार्मिक-दे० 'धार्मिक' । उ० १. जयति धार्मीक-धुर धीर रघुवीर ! गुहं-मालु-पिलु बंधु-बचनानुसारी । (वि० ४३)
 धार्य-(सं०)-धारणीय, धारण करने योग्य ।
 धावन-(सं०)-१. वेगपूर्वक गमन, दौड़ना, २. दूत, हर-कारा, ३. गति, फिराव । उ० २. सो सुग्रीव कैर लघु धावन । (मा० ६।२३।५)
 धाहैं-(?)-झोर से चिह्लाकर रोता, धाहें देता । उ० जिन्ह रिपु मारि सुरारि-नारि तेइ सीस उधारि दिवाई धाहैं । (गी० ७।१३)
 धिक-(सं० धिक्) धिक्कार, लानत, २. फटकार ।
 धिग-१. धिक्कार है, २. फटकार, ३. व्यर्थ । उ० १. साँचेहु सुत बियोग सुनिबे कहँ धिग बिधि मोहि जिआयो । (गी० २।५६) ३. धिग जीवतु रघुबीर बिहीना । (मा० २।८।३)
 धी-(सं०)-बुद्धि, अकल, समझ । उ० सरनागत तेहि राम के जिन्ह दिय धी सिय-रूप । (सं० १८४)
 धीग-(सं० डिंगर)-१. गँवार, असभ्य, २. हट्टा-कट्टा, पुष्ट, ३. जार, उपपति, ४. पापी, कुमार्गी । उ० ४. अपनायो तुलसी सो धीग धमधूसरो । (क० ७।१६)
 धीम-(सं० मध्यम)-धीमा, सुस्त, आलसी, मंद ।
 धीय-(सं० दुहिता)-बेटी, पुत्री । उ० धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं । (क० ७।१५)
 धीर (१)-(सं०)-१. जिसमें धैर्य हो, जो जल्द धबरा न जाय, २. बलवान, ताकतवर, ३. विनीत, नम्र, ४. गंभीर, ५. मनोहर । उ० १. साँवरे गोरे सररीर, धीर महाबीर दोऊ । (क० १।२१) धीरौ-धैर्यवान भी । उ० दे० 'धीरै' ।
 धीर (२)-(सं० धैर्य)-धैर्य, धीरज, डारस, संतोष, सब्र । धीरै-धैर्य को । उ० तुलसी सुनि सौमित्रि-बचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै । (गी० ६।१५)
 धीरज-(सं० धैर्य)-धीरता, चित्त की स्थिरता, धैर्य । धीरजहि-धीरज को, धैर्य को । उ० उर धीरजहि धरि, जन्म सफल करि । (गी० २।१६)

धीरजु-दे० 'धीरजु' । उ० मुनि महिमा मुनि रानिहि धीरजु आयउ । (जा० ८७)
 धीरता-(सं०)-१. चित्त की स्थिरता, मन की दृढ़ता, धैर्य, २. शिष्टता, ३. प्रतिज्ञा । उ० १. सीध बिलोकि धीरता भागी । (मा० १।३३।३)
 धीरन्ह-धीर पुरुषों, विवेकी पुरुषों । उ० धीरन्ह कें मन बिरति द्वाइ । (मा० ३।३६।१)
 धीर-दे० 'धीर' (१) । उ० १. सेवत जाहि सदा मुनि धीरा । (मा० १।२१।४)
 धुआँ-(सं० धूम्र)-१. धूम, धुआँ, २. नाश, विनाश, ३. मुर्दा, ४. मृत्यु, मरण, ५. टुकड़े-टुकड़े होना । उ० २. धुआँ देखि खरदूषन केरा । (मा० ३।२१।३)
 धुंघ-(सं० धूम्र + अंध)-अंधेरा, मैलापन, धुंघलापन, २. अंधा ।
 धुकधुकी-(अनु० धुक धुक)-१. घबराहट, छाती का धुक-धुक करना, २. छाती, कलेजा ।
 धुकि-(अनु० धुक)-रूपटकर, जल्दी से । उ० बाँधि लकुट पट फेरि बोलाई।सुनि।कल बेनु धेनु धुकि घैया । (क० १६)
 धुकै-(अनु० धुक)-१. काँपता है, २. झुकता है । उ० १. तुलसी जिन्हें धाये धुकै धरनीधर, धीर धकानि सों मेरु हल्ले हैं । (क० ६।३३)
 धुज-(सं० ध्वजा)-पताका, ध्वजा, झंडा । उ० तोरन कलस चँवर धुज बिबिध बनाइन्हि । (पा० ६७)
 धुजा-दे० 'धुज' । उ० कदलि ताल बर धुजा पताका । (मा० ३।३।१)
 धुन (१)-(सं० धनुस्, हि० धुनकी, हि० धुनना)-१. लगन, किसी काम को निरंतर करते रहने की प्रवृत्ति, २. मन की तरंग, मौज, ३. चित्त, झ्याल, क्रिष्ण ।
 धुन (२)-(सं० ध्वनि)-आवाज, नाद, ध्वनि ।
 धुन (३)-(सं०)-काँपने की क्रिया, कंपन ।
 धुनइ-धुनता है, पीटता है । उ० जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोइ । (मा० २।४६।४) धुनत-१. हिलते हैं, काँपते हैं, २. टंकोरते हैं, धनुष की डोरी पर मारते हैं, ३. धुनते हैं । उ० २. निकट निचंग, संग सिय सोभित, करनि धुनत धनु तीर । (गी० २।६६) धुनहि-धुनते हैं । उ० देखि निषाद बिषाद बस धुनहि सीस पछुताहि । (मा० २।६६) धुना-पीटा, पटका । उ० पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना । (मा० ६।२६।२) धुनि (१)-(सं० धनुस्)-१. धुनकर, पीट कर, २. सिर मारकर, ३. काँपाकर, ४. अनुनय-विनय कर, ५. मन की तरंग । उ० १. कोमल सरीर, गँभीर बेदन, सीस धुनि धुनि रोवही । (वि० १।३६) धुनेउ-धुना, पीटा । उ० नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ । (मा० २।७३) धुनेऊ-पीटा, पटका, धुना । उ० अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ । (मा० ६।६२।३) धुनि (२)-(सं० ध्वनि)-१. आवाज, नाद, ध्वनि, २. आशय, गूढ़ अर्थ, मतलब, ३. काव्य में शब्दों के नियत अर्थों के योग से सूचित होनेवाले अर्थ की अपेक्षा जब प्रसंग से निकलनेवाले अर्थ में विशेषता होती है तो उसे 'ध्वनि' या 'धुनि' कहते हैं । उ० १. बनिहि अवसि यहू

काज गगन भइ अस धुनि । (पा० ८६) ३. धुनि अवरेख कबित गुन जाती । (मा० १।३७।४)
 धुनि (३)-(सं०)-नदी ।
 धुरंधर-(सं०)-१. प्रकांड, बहुत बड़ा, २. अक्खड़, ३. मस्त, ४. आधार, भार देनेवाला, धुरी धारण करनेवाला, ५. गाड़ी या हल आदि खींचनेवाला, ६. प्रधान, नेता, मुखिया, अगुआ, ७. एक राक्षस का नाम जो प्रहस्त का मंत्री था । उ० ४. धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा । (मा० ७।२।३) धुर-(सं० धुर)-१. गाड़ी या रथ आदि का धुरा, २. शीर्ष या प्रधान, ३. बोक, भार, ४. आरंभ, शुरु, ५. जुवा, ६. जमीन की एक माप, ७. सटीक, ठीक, ८. दृढ़, पक्का, ९. अवधि, १० अंत, किनारा, ११. जड़, मुख्य । उ० २. धर्मधुर धीर रघुबीर भुजबल-अतुल, हेलाया-दलित भू भार भारी । (वि० ४४) धुरधनि-(सं० धुर + धन्य)-धन्य, बहुत बढ़े-चढ़े । उ० गुन निधान हिमवान धरनिधर धुरधनि । (पा० ६) धुरा-(सं० धुर)-१. धुर, अत्त, गाड़ी या रथ की धुरी, २. भार, बोक । धुरा-छोटा धुरा, लकड़ी या लोहे का छोटा डंडा जिस पर गाड़ी के पहिए घूमते हैं । धुरीण-(सं०)-१. बोक सँभालनेवाला, धुरी को धारण करनेवाला, २. मुख्य, प्रधान, ३. धुरंधर, दिग्गज, ४. साहसी, ५. अगुआ, अग्रगण्य । धुरीन-दे० 'धुरीण' । उ० १. धरम धुरीन विषय रस रूखे । (मा० २।५०।२) २. बीर धुरीन धरे धनुभाथा । (मा० २।६६।१) धुवाँ-(सं० धूम्र)-१. धुआँ, धूम, २. नाश, खंड खंड होना, नष्ट-अष्ट होना । धूत-(सं० धूर्त)-धूर्त, कपटी । उ० धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ । (क० ७।१०।६) धूति-१. ठगई, धूर्तता, कपट, २. पलट देना, ३. ठग करके, धूर्तता करके, छल से, ४. ठग, धोखा दे । उ० ४. तुलसी रघुबर सेवकहि, सकै न कलिजुग धूति । (दो० ८७) धूतिहौ-ठगगा । धूप-(सं०)-१. देव पूजन में सुगंधि के लिए गुग्गुल, अगार, कपूर, चंदन आदि गंध द्रव्यों को जलाकर उठाया हुआ धुआँ, सुगंधित धूम, २. आतप, घाम, ३. सरल नियाँस । उ० १. अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत इति बासना धूप दीजै । (वि० ४७) धूम-(सं०)-१. धुआँ, धूम्र, २. कोलाहल, हल्ला, शोर, ३. प्रसिद्धि, जनरव, शहरत, ४. समारोह, भारी आयोजन, ५. उपद्रव, उत्पात, ६. चारों ओर सुनाई देनेवाली चर्चा । उ० १. होइ कुपूत सुपूत के, ज्यों पावक में धूम । (दो० २६८) ६. भरि सुवन सकल कल्याण धूम । (गी० २।१६) धूमउ-धुआँ भी । उ० धूमउ तजइ सहज करु आई । (मा० १।१०।५) धूमकेतु-(सं०)-१. अग्नि, जिसकी पताका धूम है । २. पुच्छल तारा, ३. केतु ग्रह, ४. शिव, ५. एक राक्षस जो रावण की सेना में था । उ० २. कैधौ ब्योम भीथिका भरै हैं शूरि धूमकेतु । (क० २।५)

धूमकेतु-दे० 'धूमकेतु' । उ० १. वृष्णिक्कुल-कुमुद-राकेस
राधारमन कंस-बंसाटवी-धूमकेतु । (वि० ५२)

धूमधुज-दे० 'धूमध्वज' ।

धूमध्वज-(सं०)-अग्नि, धूम ही है ध्वजा जिसकी । उ०
दहन इव धूमध्वज, वृषभ-यानं । (वि० १०)

धूरि-(सं० धूलि)-धूल, मिट्टी, रज । उ० बाल-विभूषण
बसन! बर, धूरि-धूसरित अंग । (सो० ११७) धूरिधानी-
धूल की ढेर, नट, बर्बाद । उ० जातुधान धारि धूरिधानी
करि डारी है । (ह० २७)

धूरी-दे० 'धूरि' । उ० सिर धरि गुर पद पंकज धूरी ।
(मा० १३४११)

धूर्जटि-(सं०)-महादेव, शिव ।

धूर्त-(सं०)-१. मायावी, छली, चालबाज, २. वंचक,
३. जुआरी, ४. धनूरा, कनक, ५. साहित्य में शठ नायक
का एक भेद ।

धूसर-(सं०)-१. धूल के रङ्ग का, मटमैला, २. धूल लगा
हुआ, धूल से भरा । उ० १. धूसर धूरि भरें तनु आए ।
(मा० १२०३१२)

धूसरित-(सं०)-१. धूसर किया हुआ, धूल से मटमैला,
२. धूल से भरा । उ० २. बाल विभूषण बसन धर, धूरि-
धूसरित अंग । (प्र० ४३११)

धृत-(सं०)-१. धारण किया हुआ, ग्रहण किया हुआ, २.
घरे या पकड़े हुए, ३. निश्चित, स्थिर या ठहराया
हुआ, ४. पतित, गिरा हुआ । उ० २. धृत बर चाप रुचिर
कर सायक । (मा० ६१११५११)

धृति-(सं०)-१. धैर्य, धीरता, ढाढ़स, मन की स्थिरता,
ठहराव, २. सुख, ३. योग विशेष । उ० १. धृति सम
जावनु देइ जमावै । (मा० ७१११७१७)

धृष्ट-(सं०)-१. उद्धत, ढीठ, गुस्ताख, २. निर्लज्ज, बेहया,
३. साहित्य में नायक का एक भेद । वह नायक जो अप-
राध करता जाता है, पर छल-कपट से बातें बनाकर
नायिका के पीछे भी लगा रहता है ।

धेइ-(सं० ध्यान)-ध्यान करके, सुरति लगाकर । उ०
सेइ न धेइ न सुमिरि के पद मीति सुधारी । (वि० १४८)

धेनु-(सं०)-१. गाय, २. दूध देनेवाली गाय, ३. पृथ्वी ।
उ० १. बाँधि लकुट पट फेरि बोलाई सुनि कल बेनु धेनु
धुकि धैया । (क० १६) २. बसन कनक मनि धेनु दान
बिप्रन्ह दिए । (जा० २१२) धेनुहि-धेनु को । उ० खरी
सेव सुर धेनुहि त्यागी । (मा० ७१११०१४)

धेनुमति-दे० 'धेनुमती' । उ० पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा ।
(मा० ११४३३३)

धेनुमती-(सं०)-गोमती नदी ।

धेनु-दे० 'धेनु' । उ० १. सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनु ।
(मा० ११४६११)

धैया-दौड़ पढ़ी, धाई । उ० बाँधि लकुट पट फेरि बोलाई
सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया । (क० १६)

धैर्य-(सं०)-धीरज, धीरता, अन्यत्रता, उतावला न होने
का भाव ।

धैर्य-(सं० धावन)-दौड़ेगा, धावेगा । उ० कनक-पुरी भयो
भूप विभीषण, बिभुव-समाज बिलोकन धैर्य । (गी०

५१५०) धैर्य-दौड़ोगे । उ० छगन-भगन अँगना खेलिहौ
मिलि उमुक-उमुक कब धैर्य । (गी० ११८)

धोइ-(सं० धावन, हि० धोना)-धोकर । उ० पद कमल धोइ
चढ़ाइ नाच न नाथ उतराई चहौं । (मा० २११००१ छं० १)
धोएँ-धोने से । उ० छूटइ मल कि मलहि के धोएँ । (मा०
७१४६३) धोए-धोया, साफ़ किया । उ० जिन्ह एहि बारि
न मानस धोए । (मा० ११४३१४) धोयो-साफ़ किया,
धोया । उ० करम-कीच जिय जानि सानि चित चाहत
कुटिल मलहि मल धोयो । (वि० २४५) धोवे-दे० 'धोए' ।
धोख-दे० 'धोखा' । उ० १. भाइहु लावहु धोख जनि
आजु काज बढ माहि । (मा० २११६१)

धोखहुँ-धोखे में भी । उ० कृपा, कोप, सति भायहुँ धोखहुँ,
तिरछेहुँ राम तिहारेहि हेरे । (वि० २७३) धोखा-(सं०
धूकता = धूर्तता)-१. छल, सुलावा, दगा, २. दूसरे के
छल द्वारा उपस्थिति आंति, मिथ्या प्रतीति, ३. भूल-
चूक, गलती, ४. निराशा, ५. संदेह, ६. मृगतृष्णा ।
धोखें-धोखे से, अनजाने में । उ० जिमि धोखें मदपान कर
सचिव सोच तेहि भाँति । (मा० २११४४) धोखेउ-धोखे
से भी, धोखे में भी । उ० तुलसी जाके बदन तें धोखेउ
निकसत राम । (वै० ३७)

धोखो-दे० 'धोखा' । उ० १. तुलसी प्रभु झूठे जीवन लागि
समय न धोखो लैहौं । (गी० ३११३)

धोबी-(सं० धावन, हि० धोना)-एक जाति जिसका काम
कपड़े धोना है । रजक । उ० धोबी कैसे कूकर न घर
को न घाट को । (क० ७६६) सु० धोबी कैसे कूकर-
धोबी के कुत्ते सा, जिसका घर पर या घाट पर कहीं भी
ठिकाना न हो । व्यर्थ इधर उधर घूमनेवाला । उ०
दे० 'धोबी' ।

धोरी-(सं० धौरेय)-१. धुरे को उठानेवाला, भार उठाने-
वाला, २. बैल, ३. श्रेष्ठ पुरुष, ४. गाड़ी में आगे चलने-
वाला बैल । उ० १. धौंग धरमध्वज धंधक धोरी । (मा०
१११२१२) ३. नृप दोउ धरम धुरंधर धोरी । (गी० ११०२)

धौ-(सं० अथवा, हि० दूँव, दहुँ)-१. एक अव्यय जो ऐसे
प्रश्नों के पहले लगाया जाता है जिनमें जिज्ञासा का
भाव कम और संशय का अधिक होता है । २. अथवा,
३. एक शब्द जिसका प्रयोग ज़ोर देने के लिए ऐसे प्रश्नों
के पहले 'तो' या 'भला' अर्थ में होता है जिनका उत्तर
काकु से 'नहीं' होता है । ४. किसी वाक्य के पूरे होने पर
उससे मिले हुए प्रश्न वाक्य का आरंभ सूचक शब्द जो
'कि' का अर्थ देता है । ५. विधि, आदेश आदि के पहले
केवल ज़ोर देने के लिए आनेवाला एक शब्द । ६. तो, ७.
ध्रुव, निश्चय, न. भी । उ० १. कृपा सो धौं कहाँ बिसारी
राम ? (वि० ६३) ६. जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी
लखु धौं धरनीधर की । (क० ७१२७)

धौज-(सं० ध्वंजन)-१. दौड़-धूप, धाव-धूप, दौड़ना-धूपना,
२. न्याकुलता, घबराहट, ३. विवेचना, विचार, परिशीलन ।
उ० १. एक करै धौज, एक कहै कादौ सौज । (क०
५११८) २. एक कादौ सौज, एक धौज करै कहा हूँ है ।
(क० ६१६)

धौत-(सं०)-धोया हुआ, साफ, शुद्ध, परिष्कृत ।

धौर-नंदन]

धौर-(सं० धोरण, हि० धौरना)-दौड़ने, दौड़ना। उ० तुलसी जिन्हें प्रायः धुरै धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं। (क० ६।३३)

धौरहर-(?)-भवन का वह ऊपरी भाग जो बहुत ऊँचा खंभे की तरह हो, और जिस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हों। धरहरा, मीनार। उ० धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि रे! (वि० ६६)

धौल (१)-(सं० धवल) सफ़ेद, उज्वल। उ० मानों हरे तृण चारु चरै बगरे सुर धेनु के धौल कलोरे। (क० ७।१४४)

धौल (२)-(अनु०)-थण्ड, चाँटा।

ध्याइबे-ध्यान करने। उ० ध्याइबे को, गाइबे को, सेइबे सुमिरिबे को। (गी० २।३३) ध्याव-ध्यान करते हैं। ध्यान लगाते हैं, भजते हैं। उ० कौट ब्रह्म निर्गुन ध्याव। (मा० ६।११३।७) ध्यावहिं-ध्यान करते हैं। उ० निधि बासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा। (मा० १।१८६।२) ध्यावहीं-ध्यान करते हैं। उ० जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं। (मा० ७।१३। ६०६)

ध्याता-(सं० ध्यातृ)-१. ध्यान करनेवाला, २. विचारक, सोचनेवाला।

ध्यान-(सं०)-१.मानसिक प्रत्यक्षीकरण, अंतःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव, २. चिंतन, मनन, सोच-विचार, ३. स्मृति, याद, ४. बुद्धि, समझ, ५. चित्त को चारों ओर से हटाकर किसी एक पर स्थिर करने की क्रिया। अष्टांग योग में इसका भी स्थान है। ६. भावना, विचार, ख्याल, ७. ज्ञात वस्तु का पुनर्स्मरण। उ० ५. जीवन मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान। (मा० ७।४२)

ध्याना-दे० 'ध्यान'। उ० तब संकर देखेउ धरि ध्याना। (मा० १।५६।२)

ध्यानि-(सं० ध्यानिन्)-ध्यानी, मुनि, साधु, ध्यान लगानेवाला। उ० सोइ ज्ञानी सोइ गुनी जन, सोइ दाता ध्यानि। (वै० ५१)

ध्यानी-दे० 'ध्यानि'। उ० तब बोला तापस बग ध्यानी। (मा० १।१६२।३)

ध्येय-(सं०)-ध्यान करने योग्य, स्मरणीय।

धुव-ध्रुव ने। उ० १. ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। (मा० १।२६।३) ध्रुव-१. पक्का, दृढ़, अटल, सदा एक स्थान पर रहनेवाला, २. नित्य, अनीरवर, ३. आकाश, ४. पर्वत, ५. खंभा, ६. बरगद का पेड़, ७. विष्णु, हरि, ८. शिव, ९. ध्रुवतारा जो एक ही स्थान पर स्थिर रहता है, १०. प्रसिद्ध भक्त जो राजा उत्तानपाद के पुत्र थे। राजा उत्तानपाद की सुरुचि और सुनीति नाम की दो स्त्रियाँ थीं। सुरुचि से उत्तम और सुनीति से ध्रुव पैदा हुए। राजा सुरुचि पर अधिक स्नेह रखते थे जिसका फल यह हुआ कि ध्रुव का अपमान होने लगा और वे घर से निकलकर जंगल में तप करने लगे। अंत में भगवान् ने दर्शन दिया और इनके नाम से एक ध्रुवलोक बनाकर उसमें इन्हें अवस्थित कर दिया। बाद में घर लौटकर ध्रुव ने ३६००० वर्ष तक राज्य किया और उसके बाद अपने लोक में निवास करने लगे। विष्णु के प्रसिद्ध भक्तों में इनका नाम लिया जाता है। उ० १. सिव बिरोध ध्रुव मरनु हमारा। (मा० १। ८४।२) ६. बंदन बंदि, अंधि विधि करि, ध्रुव देखेउ। (पा० १।४६) १०. ध्रुव हरि भगत भयउ सुत जासू। (मा० १।१४२।२)

ध्रु-दे० 'ध्रुव'। उ० १०. रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रह्लाद न ध्रु की। (क० ७।८८)

ध्वंस-(सं०)-नाश, क्षय, हानि।

ध्वज-(सं०)-१. ध्वजा, पताका, २. निशान, चिह्न, ३. छोटी-छोटी फंकी, ४. दर्प, झमंड। उ० १. चौकेँ पूरै चारु कलस ध्वज साजहिं। (जा० २०५)

ध्वजा-दे० 'ध्वज'।

ध्वजी-(सं० ध्वजिन्)-पताकाधारी, चिह्न धारण करनेवाला।

ध्वनि-(सं०)-शब्द, नाद, स्वर।

ध्वात-(सं०)-अंधकार, अंधेरा। उ० वैराग्याभुजभास्करं ब्रह्म ध्वातापहं तापहम्। (मा० ३।१। स्तो० १)

ध्वैहौ-(सं० ध्रावन)-१. धोऊँगा, २. धुलवाऊँगा। उ० तौ जननी! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौ। (गी० २।६२)

न

नंचहिं-(सं० नृत्य, हिं नाँच)-नाचते हैं। नंचहीं-दे० 'नंचहिं'।

नंद-(सं०)-१. आनंद, हर्ष, २. सच्चिदानंद, परमेश्वर, ३. पुराणापुराण नौ निधियों में से एक, ४. विष्णु, ५. लक्ष्मी, पुत्र, ६. गोकुल के गोपों के मुखिया जिनके यहाँ कृष्ण जन्म के बाद पाले जाये थे। नंद की स्त्री का नाम यशोदा था। ६. महात्मा बुद्ध के सौतेले भाई। उ० ६. सुनि हंसि उठ्यो नंद को नाहरु, लियो कर कुधर उठाइ। (क० १८)

नंदकुमार-(सं०)-नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण। उ० सहित सहाय तहाँ बसि अब जेहि हृदय न नंदकुमार। (वि० १८८)

नंदनंदन-(सं०)-नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण। उ० तुम सकुचत कत हौं हीं नीके जानति, नंदनंदन जो निपट करी सठई। (क० ३६)

नंदन-(सं०)-१. आनंद देनेवाला, २. इंद्र के उपवन का नाम, ३. एक प्रकार का विष, ४. शिव, महादेव, ५. लक्ष्मी, ६. विष्णु, ७. एक प्रकार का अन्न, ८. मेघ,

बादल, १. एक वर्षा वृत्त । उ० १. या ५. संकर सुवन भवानी नंदन । (वि० १)
 नंदललन-श्रीकृष्ण, नंद के पुत्र । उ० तुलसिदास नंदललन ललित लखि रिस क्यों रहति उर-पेन । (कृ० १५)
 नंदललाऊ- (सं० नंद + लालक)-नंदलला भी, नंदलाल भी, कृष्ण भी । उ० तुलसिदास स्वास्तिनि अति नागरि, नट नागर मनि नंदललाऊ । (कृ० १२)
 नंदसुवन-कृष्ण, नंद के पुत्र । उ० तुलसिदास अब नंदसुवन-हित । (कृ० ३७)
 नंदिनी-(सं०)-१. कन्या, पुत्री, २. रेणुका नामक गंध द्रव्य, ३. उमा, ४. गंगा, ५. ननद, ६. दुर्गा, ७. तेरह अक्षरों का एक छंद, ८. वशिष्ठ की कामधेनु जो सुरभि की कन्या थी । दिलीप ने इसी गौ की सिंह से रक्षा की और इसी की आराधना करके उन्होंने रघु नामक पुत्र प्राप्त किया । ९. पत्नी । उ० १. दास तुलसी सभय वदति मयनंदिनी । (क० ६।२१)
 नंदी-(सं० नंदिनी)-१. धव का पेड़, २. बरगद, ३. शिव का बैल, ४. आनंदयुक्त, प्रसन्न ।
 नंदीमुख-(सं०)-एक आभ्युदायिक श्राद्ध जो पुत्रजन्म, विवाह आदि मंगल अवसरों पर किया जाता है । वृद्धि श्राद्ध । उ० नंदीमुख सराध करि, जातकरम सब कीन्ह । (मा० १।१६३)
 नः-(सं०)-हमें, हम सब को । उ० सीतान्वेषण तरपरी पथि-गतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः । (मा० ४।१। श्लो० १)
 न-(सं०)-१. उपमा, २. रत्न, ३. सोना, हेम, ४. नहीं, मत, निषेधवाचक शब्द । उ० ४. लोकहुँ बेद न आन उपाऊ । (मा० १।३।३)
 नइ (१)-(सं० नव)-नवीन, नूतन, नया । उ० नित नइ प्रीति राम पद पंकज । (मा० ७।१।५)
 नइ (२)-(सं० नय)-नीतिवान, नीतिज्ञ ।
 नइ (३)-(सं० नमन)-१. झुक गई, २. झुककर । नई (१)-दे० 'नइ (३)। उ० १. सोहत सकोच सील नेह नारि नई है । (गी० १।८३) नए (१)-(सं० नमन)-झुक गए, नव गए । उ० हारे हरप होत हिय भरतहि, जिते संकुच सिर नयन नए । (गी० १।४३) नया (१)-(सं० नमन, हि० नयना)-१. झुका हुआ । २. झुके । नये (१)-१. झुके, २. झुके हुए । नयो-(सं० नमन)-१. झुक गया, झुका, २. झुकाया, ३. प्रणाम किया, नमस्कार किया । उ० १. प्रेम पुलकि पहि-चानि कै पदपदुम नयो है । (गी० ६।१०) ३. रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो । (मा० ६।८४ छं० १) नव (१)-(सं० नमन)-नवेगा, नवता है, दबता है । उ० विनय न मान खगोल सुनु डाटेहि पइ नव नीच । (मा० १।५८) नवइ-नवता है, झुकता है, नीचे आता है । नवहि-झुक जाते हैं । उ० लता निहारि नवहि तरु-साखा । (मा० १।८५) नवही-नत होते हैं, झुकते हैं, विनम्र होते हैं । उ० मुनि रघुबीर परसपर नवही । (मा० २।१०।२)
 नई (२)-दे० 'नइ (१)। उ० प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि । (दो० २।८६)

नउनियाँ-(सं० नापित, हि० नाऊ)-नाहन, नाई की स्त्री । उ० नैन बिसाल नउनियाँ भौ चमकावइ हो । (रा० ८)
 नए (२)-नवीन, नूतन । उ० कौसिक बसिष्ठाहि पूजि पूजे राउ है अंबर नए । (जा० १।३३)
 नक (१)-(?)-रात, निशा ।
 नक (२)-(सं० नासिका)-नाक, नासिका ।
 नकवानी-(सं० नासिका + पानीय)-नाक में पानी, नाक में दम । उ० दे० मु० 'नकवानी आयो' । मु० नकवानी आयो-नाक में दम हो गया । उ० तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयो नकवानी । (वि० ५)
 नकीब-(अर०)-बंदीजन, भाट, चारण । उ० बोलत पिक नकीब गरजनि मिस मानहुँ फिरति दोहाई । (कृ० ३२)
 नकुल-(सं०)-१. नेवला, २. महादेव, ३. पांडवों में से एक, ४. निर्वाण, जिसके कुल में कोई न हो । उ० १. नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाष । (दो० ४६०) नखत-दे० 'नखत्र' ।
 नक्र-(सं०)-घड़ियाल, मगर । उ० नक्र-रागादि-संकुल-संकुल मनोरथ सकल संग संकल्प-बीची-विकारम् । (वि० ५८)
 नक्षत्र-(सं०)-चंद्रमा के पक्ष में पड़नेवाले तारों का समूह या गुच्छ । ये ग्रहों से भिन्न हैं । इनकी संख्या २७ मानी गई है । इनके स्थान से शुभ अशुभ समय का ज्योतिष में पता लगाया जाता है ।
 नख-(सं०)-१. नाखून, नखर, २. एक गंध द्रव्य, ३. एक प्रकार का फल । उ० १. विकट शुकुटि, बज्र दसन नख, बैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजारी । (वि० २८) नखन्हि-नखों से, नाखूनों से । उ० नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ । (मा० ७।१८।३)
 नखत-१. दे० 'नखत्र', २. तारे । उ० २. मनहुँ सरद बिधु उभय, नखत धरनी धनि । (जा० ५५)
 नखतु-दे० 'नखत्र' । उ० सुदितु सुनखतु-सुधरी सोचाई । (मा० १।६१।२)
 नखसिख-(सं० नखशिख)-नख से शिखा तक, पूरे शरीर में । उ० हँसत देखि नखसिख रिस व्यापी । (मा० १। २७७।३)
 नग-(सं०)-जो गमन न करे । १. पर्वत, २. वृक्ष, ३. सात की संख्या, ४. सर्प, ५. सूर्य, ६. नगीना, रत्न, मणि, ७. संख्या । उ० ६. सोभासिंधु-संभव से नीके नीके नग हैं । (गी० २।२७)
 नगन (१)-(सं० नगन)-नंगा, जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो । उ० जोगी जटिल अकास मन नगन अमंगल वेष । (मा० १।६७)
 नगन (२)-(सं० नगण)-पिंगल शास्त्र के अनुसार तीन लक्ष अक्षरों का एक गण ।
 नग-फंग-(सं० नग + फंग)-नंगे, बदमाश । उ० हौ भले नग-फंग परे गढ़ीवै अब एक गदत सहरि-मुख जोए । (कृ० ११)
 नगफनियों-(सं० नाग + फण)-सर्प के फन की आकृति का एक आभूषण जो कान में पहना जाता है । उ० विकट

भुक्कुटि सुखमानिधि आनन कल कपोल काननि नग-
फनियौ। (गी० १३१)
नगर-(सं०)-शहर, पुर, नगरी। उ० नगर गाउँ पुर आगि
लगावहि। (मा० ११९८३।३)
नगर-दे० 'नगर'। उ० दीख मंथरा नगर बनावा। (मा०
२।१३।१)
नगन-(सं०)-नंगा, वस्त्रहीन।
नचत-(सं०) नृत्य, हि० नाच)-नाचते हैं, नाचता
है।
नचाइ-नाच नचाकर। उ० छाँडहि नचाइ हाहा कराइ।
(गी० ७।२२) नचाइहि-नचावेंगी। उ० निगा नाँग करि
नितहि नचाइहि नाच। (ब० २४) नचायो-नचाया,
धुमाया। उ० करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि
नाच नचायो। (वि० ६८) नचाव-१. नचाता है, नृत्य
कराता है, २. धुमाता है, फिराता है। उ० १. भूषित
उड़गन तदित धनु जनु बर बरहि नचाव। (मा० १।
३।१६) नचावइ-नचाते हैं। उ० भृकुटि बिलास नचावइ
ताही। (मा० १।२००।३) नचावत-नचाते हैं। उ० नट
मरकट इव सबहि नचावत। (मा० ४।७।१२) नचावती-
नचाती है। उ० सुटकी बजावती नचावती कौसल्या माता।
(गी० १।३०) नचावहि-नचाते हैं, नचाया करते हैं। उ०
कबि उर अजिर नचावहि बानी। (मा० १।१०५।३)
नचावा-नचाया, नचाया है। उ० जेहि बहु बार नचावा
मोही। (मा० ७।५६।३)
नचावनिहारे-नचानेवाले। उ० विधि हरि संभु नचावनिहारे।
(मा० २।१२७।१)
नछत्र-१. दे० 'नचत्र', २. तारा, ३. नचत्र विशेष, हस्त
नचत्र। उ० ३. के दिग दून नछत्र हनि तुलसी तेहि पद
लीन। (स० २२१)
नट-(सं०)-१. कौतुकी, तमाशा करनेवाला, तमाशा दिखाने
वाला, २. जादूगर, ३. एक राग जो तीसरे पहर गाया
जाता है, ४. नाचनेवाला, ५. नाटक में अभिनय करने-
वाला। उ० ४. तुलसिदास ग्वालनि अति नागरि, नट
नागर भनि नंदललाऊ। (कृ० १२)
नटत-(सं० नट)-१. नाचते हैं, २. बहाना करता है, अस्वी-
कार करता है। उ० १. कूजत बिहग नटत कल मोरा।
(मा० १।२२७।२)
नटन-नाचना, नृत्य करना। उ० अट घट लट नट नादि
जहँ, तुलसी रहित न जान। (स० ५७६)
नटनागर-१. नाचने में चतुर, चतुर, खिलाड़ी, २. कृष्ण।
नाचने में चतुर होने के कारण ही कृष्ण का नटनागर
नाम है। उ० २. ऊधो जू! क्यों न कहैं कुबरी जो बरी
नटनागर हेरि हलाकी। (क० ७।१३४)
नटनि (१)-(सं० नचन)-नाचना, नृत्य करना। उ०
सुकनि भौकनि, छाँह सौं किलकवि, नटनि, हटि लरनि।
(गी० १।२५)
नटनि (२)-(सं० नट)-इनकार, अस्वीकृति।
नटी-(सं०)-१. नाटक में सूत्रधार की स्त्री, २. वेश्या,
नर्तकी। उ० २. नाच नटी इव सहित समाजा। (मा०
७।२।१)

नटैया-(?)-गर्दन, गला। उ० जबै जमराज रजायसु तें,
मोहि लै चलिहैं भट बाँधि नटैया। (क० ७।५१)
नतः-प्रणाम करता हूँ।
नत-(सं०)-नवा हुआ, झुका हुआ, नम्र, दीन। उ० बोल
को अचल, नत करत निहाल को? (वि० १८०)
नतपाल-शरणागत को पालनेवाले, शरणागतवत्सल, शरण
में आये के रक्षक। उ० बाल ज्यौं कृपाल नतपाल पालि
पोसो है। (ह० २६)
नतपालक-दे० 'नतपाल'।
नतपालु-दे० 'नतपाल'।
नतर-(दे० 'नतु')-नहीं तो, अन्यथा। उ० नतर बाँक भलि
बादि बिआनी। (मा० २।७५।१)
नति-(सं०)-१. प्रणाम, नमस्कार, २. विनय, विनती। उ०
१. पितृपद गहि कहि कोटि नति विनय करब करजोरि।
(मा० २।६५)
नतु-(सं० न+हि० तो)-नहीं तो, अन्यथा। उ० नतु और
सबै विष बीज बये हर-हाटक काम दुहा नहि कै। (क०
७।३३)
नतो-नमस्कार करता हूँ। नतोऽहं-मैं नमस्कार करता हूँ।
उ० सर्व श्रेयस्करौं सीतां नतोऽहं राम बल्लभाम्। (मा०
१।१। श्लो० ५)
नथुनियौ-(सं० नाथ, हि० नाथना)-नाक में पहनने की
छोटी सी नथ या बाली। उ० रुचिर चिबुक, रद अधर
मनोहर, ललित नासिका लसति नथुनियौ। (गी० १।३१)
नद-(सं०)-बड़ी नदी या ऐसी नदी जिसका नाम पुर्लिंग-
वाची हो। उ० सब सर सिंधु नदीं नद नाना। (मा०
२।१३८।३)
नदीं-नदियाँ, सरिताएँ। उ० नदीं कुतर्क भयंकर नाना।
(मा० १।३८।५) नदी-(सं०)-दरिया, सरिता, तटिनी।
नदीश-(सं० नदी+ईश)-समुद्र, जलधि।
नदीस-दे० 'नदीश'। उ० सत्य तोयनिधि कंपति उदधि
पयोधि नदीस। (मा० ६।५)
ननिअउरें-(?)-ननिहाल, नाना के घर। उ० पठए भरतु
भूप ननिअउरें। (मा० २।१८।१)
नपुंसक-(सं०)-१. नामदं, हिजड़ा, क्लीव, २. डरपोक,
कायर। उ० १. पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
(मा० ७।८७ क)
नफीरि-(फ़ा० नफ़ीरी)-तुरही, शहनाई। उ० भेरि नफीरि
बाज सहनाई। (मा० ७।७६।५)
नबीन-दे० 'नवीन'। नबीने-नए, नवीन। उ० काटत हीं
पुनि भए नबीने। (मा० ६।६२।६)
नबीना-(सं० नवीन)-नवीन, नया, नूतन। उ० नेम पेम
निज निपुन नबीना। (मा० २।२३।४।२)
नभ-(सं०)-१. आकाश, आसमान, २. पंचतत्त्वों में से
एक, ३. आश्रय, आभार, ४. सावन का महीना, ५.
निकट, पास, ६. मेघ, बादल, ७. शिव, शंकर, ८. पानी,
जल, ९. अबरक, १०. हिंसक, ११. सूर्य। उ० १. ईस-
सीस बससि, त्रिपथ लससि नभ-पाताल-धरनि। (वि०
२०)
नभग-(सं०)-आकाशचारी, उड़नेवाला, पक्षी।

नभगनाथ-(सं०)-दे० 'नभगोस' । उ० नभगनाथ पर प्रीति न थोरी । (मा० ७।७०।१)
 नभगामी-दे० 'नभग' । उ० पायहु कहाँ कहहु नभगामी । (मा० ७।६४।२)
 नभगिरा-आकाशवाणी । उ० सुनि नभगिरा सती उर सोचा । (मा० १।२७।क)
 नभगोस-(सं० नभगेश)-पक्षियों के स्वामी, गरुड़ । उ० राम राज नभगोस सुनु सचराचर जग माहिं । (मा० ७।२१)
 नभचर-(सं० नभचर)-१. पक्षी, चिड़िया, आकाश में उड़नेवाले जीव, २. बादल, ३. हवा, ४. देवता, गंधर्व और ग्रह आदि । उ० १. जलचर थलचर नभचर नाना । (मा० १।३।२)
 नभबानी-(सं० नभवाणी)-आकाशवाणी । उ० मंदिर माऊ भई नभबानी । (मा० ७।१०७।१)
 नम (१) (सं० नमस्)-१. नमस्कार, २. अन्न, अनाज, ३. ब्रह्म, गाज, ४. यज्ञ, मख, ५. स्तोत्र, स्तुति, ६. त्याग, विरक्ति ।
 नम (२)-(फ्रा०)-तर, गीला ।
 नमत (१)-(सं०)-१. प्रभु, स्वामी, २. नट, नर्तक, ३. धूम, धुआँ । उ० १. जयति वैराग्य-विज्ञान-वारांनिधे नमत नमैद पाप-ताप-हर्त्ता । (वि० ४४)
 नमत (२)-(सं० नमन, हि० नमना)-१. झुकते हैं, नमस्कार करते हैं, २. प्रणाम करते ही । उ० २. जयति श्रुति-कीर्ति-वत्सलं सुदुर्लभ सुलभ नमत नमैद-भक्ति-मुक्ति-दाता । (वि० ४०) नमाम-नमस्कार करता हूँ । उ० जय प्रनतपाख दयाल प्रभु संशुक्त सक्ति नमाम है । (मा० ७।१३। छं० १) नमामि-नमस्कार करता हूँ । उ० नमामि भक्त वत्सलं । (मा० ३।४। छं० १) नमामी-दे० 'नमामि' । रिपुसदन पदकमल नमामी । (मा० १।१७।५) नमिहै-नमित हो जायगा, झुक जायगा ।
 नमित-(सं०)-झुका हुआ, नत, नम्र । उ० बैठि नमित मुख सोचति सीता । (मा० २।५८।१)
 नम्र-(सं०)-१. विनीत, जिसमें नम्रता हो, २. नमित, झुका हुआ, ३. दीन, ४. लजित । उ० १. बाहिज नम्र देखि मोहि साईं । (मा० ७।१०२।३)
 नय (१)-(सं०)-१. नीति, २. नम्रता, ३. विष्णु, ४. न्याय, ५. धर्म, ६. दूत, ७. नेता, ८. नवीन, नया । उ० १. नय परमारथ स्वारथ सानी । (मा० २।२५।२) २. नय नगर बसापु बिपिन कारि । (गी० २।४६) नयसानी-नीतियुक्त, नीतिपूर्ण । उ० भगति बिबेक बिरति नय-सानी । (मा० ५।२४।१)
 नय (२)-(सं० नद)-नदी, सरिता ।
 नयन (१)-(सं०)-१. नेत्र, लोचन, आँख, दृष्टि, नज़र, २. दृज, द्वितीया, ३. आँखें दो होती हैं, अतः इनसे दो का भी बोध होता है । उ० १. इंद्रु पावक-भानु-नयन मर्दन मयन, ज्ञान गुण-अयन, विज्ञान रूपं । (वि० ११) २. रबि हर दिसि गुन रस नयन, सुनि प्रथमादिक बार । (दो० ४५८) नयनन्हि-१. नयनों का, आँखों का, २. आँखों से । उ० १. नयनन्हि को फल बिसेष ब्रह्म अगुन सगुन बेप ।

(गी० ७।७) नयननि-आँखों से । उ० जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अवाइ । (मा० २।२०।६)
 नयन (२)-(?)-एक प्रकार की मछली ।
 नयनगोचर-(सं०)-समक्ष, जो आँखों के सामने हो ।
 नयनपट-(सं०)-पलक, आँख की पलक । उ० एकटक रहे नयनपट रोकी । (मा० १।१४८।३)
 नयनवंत-आँखवाला । उ० नयनवंत रघुबरहि बिलोकी । (मा० २।१३।१)
 नयना-दे० 'नयन (१)' । उ० १. प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना । (मा० ७।८८।२)
 नयनी-आँखवाली । उ० सोउ सुनि न्यान निधान मृग-नयनी बिधु सुख निरखि । (मा० ७।११५।ख)
 नयपाल-नीति का पालन करनेवाला । उ० खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल । (दो ४४२)
 नयवान-नीतिवान, नीतिज्ञ । उ० सगुन सत्य ससि नयन गुन, अवधि अधिक नयवान । (प्र० ७।७।३)
 नया-(सं० नव, फ्रा० नौ)-नवीन, नूतन, ताज़ा ।
 नये (२)-'नया' का बहुवचन ।
 नर-दे० 'नर' । उ० ६. नौमि नारायणं नरं करुणायनं ध्यान पारायणं ज्ञान मूलम् । (वि० ६०) नर-(सं०)-१. पुरुष, मर्द, आदमी, २. मनुष्य, मानव, ३. अर्जुन, पार्थ, ४. विष्णु, ५. शिव, ६. धर्मराज और दक्ष प्रजापति की कन्या से उत्पन्न एक ऋषि जो ईश्वर के अवतार माने जाते हैं । नारायण इनके बड़े भाई थे । सहस्र-कवची दैत्य ने तप से सूर्य भगवान् को प्रसन्न करके वर माँग लिया था कि मेरे शरीर में हजार कवच हों । जब कोई हजार वर्ष युद्ध करे तब कहीं एक-एक कवच टूटे परन्तु कवच टूटते ही शत्रु भी मर जाय । उसे मारने के लिए सत्ययुग में नर-नारायण का अवतार हुआ । एक भाई हजार वर्ष तक युद्ध करके मरता और दूसरा उसे मंत्र द्वारा जिला देता और स्वयं हजार वर्ष लड़कर दूसरा कवच तोड़कर मरता, पर पहला इसे जिलाकर फिर वैसा ही करता । इस तरह करते-करते जब केवल एक कवच बच रहा तो वह भागकर सूर्य में लय हो गया और नर नारायण बड़ीनारायण में जाकर तप करने लगे । वही असुरद्वार में कर्ण हुआ जो गर्भ से ही कवच धारण किए था । नर नारायण ने अर्जुन और कृष्ण होकर उसे मारा । उ० १. जग बहु नर सर सरि सम भाई । (मा० १।८।७) ६. नर नारायण सरिस सुभ्राता । (मा० १।२०।३) नरहि-आदमियों को, पुरुषों को । उ० समय परे सु-पुरुख नरहि लघु करि गनिय न कोइ । (सं० ६२।६) नराः-नर का बहुवचन । उ० त्वदंघ्रि मूलथे नराः । (मा० ३।४। छं० ७) नराणां-१. मनुष्यों में, २. मनुष्यों को । उ० १. भजंतीह लोके परे वा नराणां । (मा० ७।१०। छं० ७) नरेषु-मनुष्यों में ।
 नरक-(सं०)-१. दोऊजल, जहन्नुम । पुराणों और धर्मशास्त्रों के अनुसार वह स्थान जहाँ पापी मनुष्यों की आत्मा फल भोगने के लिए भेजी जाती है । मनु ऋषि के अनुसार इनकी संख्या २१ है । २. मल, पुरीष, ३. बहुत अपवित्र और गंदा स्थान । उ० १. नरक अधिकार मम घोर संसार-तम-कूप कर्हि । (वि० २०।६) नरकहु-१. नरक भी, २.

नरक में भी । उ० १. मुनि अथ नरकहुँ नाक सकोरी ।
(मा० १२११) २. सुख संपति की का चली नरकहु
नाहीं ठौर । (दो० ६४) नरकै-नरक को, नरक में । उ०
प्रतिआही जीवै नहीं, दाता नरकै जाय । (दो० ५३३)
नरका-दे० 'नरक' । उ० १. कल्प-कल्प भरि एक-एक
नरका । (मा० ७१००१२)
नरकु-दे० 'नरक' । उ० १. सरगु नरकु अपवरगु समाना ।
(मा० २१३११४)
नरकेशरी-(सं०)-विष्णु के एक अवतार जिनका नाम
नृसिंह या नरसिंह था । प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु का
बध इन्होंने किया था ।
नरकेशरी-दे० 'नरकेशरी' । उ० राम-नाम नरकेशरी कनक-
कशिपु कलिकाल । (मा० १२७)
नरत-(सं० नरत्त्व)-मनुष्यत्व, मानवता ।
नरदेव-(सं०)-१. राजा, नृप, भूपाल, २. ब्राह्मण, ३.
मनुष्य रूप में देवता राम । उ० ३. जयति मुनि देव नर-
देव दशरथ के, देव मुनि वंश किए अवधवासी । (वि०
४४)
नरनाथ-(सं०)-राजा, नृप । उ० तब गुर भूसुर सहित गृह
गवनु कीन्ह नरनाथ । (मा० १३५१)
नरनाथक-(सं०)-राजा, नृप । उ० जनक नाम तेहि नगर
बसै नरनाथक । (जा० ६)
नरनारायण-(सं०)-नर और नारायण नामक दो ऋषि जो
द्वापर में अर्जुन और कृष्ण रूप में पैदा हुए । दे० 'नर' ।
नरनारायण-दे० 'नरनारायण' । उ० नरनारायण की पुन्ह
दोऊ । (मा० ४११५)
नरनारी-अर्जुन (नर) की स्त्री द्रौपदी । उ० बसन बेध
राखी बिसेधि लखि बिरदावलि मूरति नरनारी । (क० ६०)
नरपति-(सं०)-राजा, नृप । उ० नरपति सकल रहहि रख
ताके । (मा० २१२११)
नरपाल-(सं०)-राजा, नृप ।
नरपाल-दे० 'नरपाल' । उ० बिबरन भयउ निपट नरपाल ।
(मा० २१२१३)
नरम-(क्रा० नर्म)-मृदु, कोमल, मुलायम ।
नरलोक-(सं०)-मृत्युलोक, संसार । उ० नाम नरलोक
पाताल कोउ कहत किन । (क० ६१४५)
नरवह-(सं० नर + वर)-मनुष्यों में श्रेष्ठ, राजा । उ० भयउ
न होइहि, है न, जनक सम नरवह । (जा० ७)
नरहरि-(सं०)-१. दे० 'नरकेशरी', २. तुलसीदास के गुरु
नरहरदास, ३. नर रूप से लीला करनेवाले भगवान्
रामचंद्र । उ० १. नरहरि किए प्रगट प्रह्लादा । (मा० २।
२६१३)
नरहरी-दे० 'नरहरि' । उ० ३. लंकहि चलेउ सुमिरि नर-
हरी । (मा० ११३१)
नरेश-(सं०)-राजा, नृप, भूप ।
नरेश-दे० 'नरेश' । उ० ब्याही जानकी, जीते नरेश देस-
देस के । (क० ११२१) नरेशहि-राजा को । उ० परिजन
पुरजन सहित प्रमोद नरेशहि । (जा० १२८)
नरेशु-दे० 'नरेश' । उ० कहै तुलसीदास क्यों मतिमंद
सकल-नरेशु । (गी० ७।६)

नरेशु-दे० 'नरेश' । उ० सचिव विरागु बिबेकु नरेशु ।
(मा० २।२३।३)
नरी-नर, पुरुष, मर्द । उ० स्वारथ औ परमारथ हू को नहि
कुंजरो नरो । (वि० २२६)
नरी-(?)—आगे या पीछे का चौथा दिन, नरसों । उ०
आजु कि काहि परौ कि नरौ जह जाहिगे चाटि दिवारी
को दीयो । (क० ७।१७६)
नरौ-दे० 'नरक' ।
नरतक-(सं० नरत्तक)-नाचनेवाला, नट । उ० दंड जतिन्ह
कर भेद जहँ नरतक नृत्य समाज । (मा० ७।२२)
नरतकी-(सं० नरत्तकी)-नाचनेवाली स्त्री, रंडी, बेरथा ।
उ० माथा खलु नरतकी बिचारी । (मा० ७।११६।२)
नर्म-(सं० नर्मन्)-१. परिहास, क्रीड़ा, खेल, हँसी, २.
कल्याण, कुशल, ३. आनंद, हर्ष, खुशी । उ० ३. धर्म वर्म
नर्मद गुणग्रामः । (मा० ३।११। छं० ८)
नर्मद-(सं०)-१. सुख देनेवाला, आनंददायक, २. दिव्यगी-
बाज, मसखरा । उ० १. धर्म वर्म नर्मद गुणग्रामः । (मा०
३।११। छं० ८)
नल-(सं०)-१. निपथ देश के चंद्रवंशी राजा वीरसेन के
पुत्र एक राजा । ये विद्वान तथा सुंदर थे । विशेषतः घोड़ों
की परीक्षा तथा उनके संचालन में ये बड़े दक्ष थे । इनका
विवाह दमयंती से हुआ था । २. नरकट, ३. कमल,
सरोज, ४. राम की एक सेना का बंदर जिसने समुद्र
लाघने के लिए पुल बनाया था । कहा जाता है कि इसके
हाथ द्वारा पानी में रक्खा हुआ पत्थर एक ऋषि के शाप
से कभी नहीं डूबता था । यह विश्वकर्मा का पुत्र था । ५.
यदु के एक पुत्र का नाम । उ० ४. तब सुग्रीव बोलाए
अंगद नल हनुमंत । (मा० ४।२२)
नलिन-(सं०)-१. कमल, पद्म, २. पानी, ३. सारस । उ०
१. अलकै कुटिल, ललित लटकन भू, नील नलिन दोउ
नयन सुहाए । (गी० १।२०)
नलिनी-(सं०)-१. कमलिनी, २. कुमुदिनी, ३. कमलों का
समूह, ४. ऐसा देश जहाँ कमल बहुत अधिक होते हों ।
उ० १. कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासी । (मा० १।१४)
नलु-दे० 'नल' । उ० १. सकृत प्रवेस करत जेहि आत्म
बिगत-विषाद भए पारथ नलु । (वि० २४)
नव (२)-(सं०)-१. नया, नवीन, २. सुंदर । उ० १.
श्याम-नव-तामरस-दाम-द्युति वपुष-छवि, कोटि-मदनाके
अगणित प्रकाशम् । (वि० ६०)
नव (३)-(सं०)-१. नौ, आठ और एक, २. नव व्याकरण ।
उ० १. सात द्वीप नव खंड लौ तीनि लोक जग माहि ।
(दो० ५०) नवगुन-(सं० नवगुण)-नव प्रकार के गुण ।
शम, दम, तप, शौच, चमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान तथा
अस्तिकता । उ० नवगुन परम पुनीत तुम्हारे । (मा०
१।२८२।४) नवग्रह-(सं०)-फलित ज्योतिष में सूर्य, चंद्र,
मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नवग्रह ।
उ० नवग्रह निकर अनीक बनाई । (मा० ७।२७।३) नव-
द्वारपुर-ऐसा नगर जिसमें ६ द्वार हों । शरीर । शरीर में
२ आँख, २ कान, २ नाक, १ मुख, १ गुदा तथा १
भ्रूनेन्द्रिय, कुल ६ द्वार हैं । उ० नवमी नवद्वारपुर बसि

जेहि न आपु भन्न कीन्ह । (वि० २०३) नवनिधि-दे० 'नवनिधि' । उ० अटखिद्धि नवनिधि भूति सब भूपति भवन कमाहि । (गी० १।२३) नवनिधि-दे० 'निधि' । नवरस-(सं०)-काव्य के नौ रस । शृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत । उ० तौ नवरस, पटरस-रस अनरस हूँ जाते सब सीटे । (वि० १६६) नवसत-दे० 'नवसस' । उ० सो समौ देखि सुहावनो नवसत सँवारि सँवारि । (गी० ७।१८) नवसप्त-(सं०)-नौ और सात, १६ शृंगार । पूर्ण शृंगार । उ० नवसस साजें सुंदरीं सब भक्त कुंजर गामिनीं । (मा० १।३२२। छं० १) नव-सात-दे० 'नवसस' । उ० संग नारि सुकुमारि सुभग सुति राजति बिन भूपन नव-सात । (गी० २।१५)

नवजर-दे० 'नवजर' । उ० तुलसी कान्ह बिरह नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो । (कृ० ३६)

नवजल-प्रथम वर्षा का पानी । उ० मनुहँ मीनगन नवजल जोगा । (मा० २।२६४।३)

नवजर-(सं०)-नवीन ज्वर, चढ़ता हुआ बुखार ।

नवधा-(सं०)-नव प्रकार की । उ० नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं । (मा० ३।३५।४) नवधाभक्ति-(सं०)-नौ प्रकार की भक्ति । श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य और आत्म-निवेदन ।

नवनि-१. झुक्रना नवना, नम्र होना, २. झुकाव । उ० १. तैसेई झम-सीकर रुचिर राजत मुख तैसिए ललित अकटिन्ह की नवनि । (गी० ३।५)

नवनीता-(सं०)-मक्खन, माखन । उ० संत हृदय नवनीत समाना । (मा० ७।१२५।४)

नवनीता-दे० 'नवनीत' । उ० तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । (मा० ७।११७।८)

नवम-(सं०)-नवाँ, जो गिनती में नवाँ हो । उ० नवम सरख सब सन छलहीना । (मा० ३।३६।३)

नवमी-(सं०)-चांद्र मास के किसी पक्ष की नवीं तिथि । उ० नवमी नवद्वारपुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह । (वि० २०३)

नवल-(सं०)-१. नया, नवीन, २. सुंदर, मनोहर, ३. अनोखा, ४. उज्वल, ५. जवान, युवा । उ० १. पूँछत कहत नवल इतिहासा । (मा० ५।२८।३) २. सुजस-धवल, चातक नवल ! तुही भुवन दस चारि । (दो० २६५)

नवला-(सं०)-नवीन स्त्री, तरुणी । उ० का चूँचट मुख मूँदहु नवला नारि । (ब० १६)

नवावहि-नवाते हैं, नवा रहे हैं । उ० प्रभु कर जोरें सीस नवावहि । (मा० ७।३३।२) नवावौं-नवाऊँ, झुकाऊँ, झुका हूँ । उ० का बापुरो पिनाकु मेलि गुन मंदर मेरु नवावौं । (गी० ८७)

नवीन-(सं०)-१. नया, नूतन, हाल का, २. विचित्र, अपूर्व, अनोखा, ३. तरुण, जवान । उ० १. गावन लगे राम कल कीरति सदा नवीन । (मा० ७।५०)

नव्य-(सं०)-नया, नवीन । उ० दिव्यतर दुकूल भव्य, नव्य रुचिर चंपक चय । (गी० ७।४)

नश्वर-(सं०)-१. नष्ट होनेवाला, जो नष्ट होने के योग्य हो, मिथ्या, २. हिंसक, विनाशी ।

नष्ट-(सं०)-१. जिसका नाश हो गया हो, जो बरबाद हो गया हो, २. जो समाप्त हो गया हो और दिखाई न दे, ३. अधम, नीच, पापी, ४. दरिद्र, निर्धन, कंगाल, ५. व्यर्थ, बेफायदा । उ० ३. नष्टमति, दुष्ट अति, कष्ट रत, खेदगत । (वि० १०)

नस-(सं०) ज्ञायु)-नाडी, आँत, अँतड़ी, शरीर के तंतु या रक्तवाहिनी नालिकाएँ । उ० अस्थि सैल सरिता नस जारा । (मा० ६।१५।४)

नसाइ-(सं०) नाश)-१. नष्ट हो, बिगड़े, २. नष्ट होकर, बिगड़कर । उ० १. सोइ अत कर फल पावै आवागमन नसाइ । (वि० २०३) नसाइहि-बिगड़ जायगा, नष्ट हो जायगा । उ० काज नसाइहि होत प्रभाता । (मा० ६।६०।३) नसाई-१. बिगड़े, नष्ट हो, २. नष्ट कर दी, ३. बिगड़ने से । उ० २. भलो कियो खल को निकाई सो नसाई है । (क० ७।१८।१) नसाउ-दे० 'नसाई' । उ० ३. तिनहि लागि धरि देह करौं सब, डरौं न सुजस नसाउ । (गी० ५।४५) नसाऊ-दे० 'नसाई' । उ० १. अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ । (मा० २।४५।१) नसाए-१. नाशकर, २. नाश किया । उ० १. सियनिदक अघ ओघ नसाए । (मा० १।१६।२) नसातो-नष्ट होता, बरबाद हो जाता ।

नसाना-नष्ट होता है, खराब होता है । उ० स्वारथरत परलोक नसाना । (मा० ७।४१।२) नसानी-नष्ट हो गई, बिगड़ी, नाश हुई । उ० काम क्रोध बासना नसानी । (वै० ६०) नसाय-दे० 'नसाई' । नसावा-१. नाश करनेवाला, २. नाश किया, बिगाड़ा, खो दिया । उ० १. तपु सुख-प्रद दुख दोष नसावा । (मा० १।७३।१) नसावै-१. नष्ट हो सकती, २. मिटे, नाश हो । उ० १. चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै । (वि० १२३) नसावौं-नष्ट करता हूँ । उ० तेहि मुख पर-अपवाद भेक ज्यों रटि रटि जनम नसावौं । (वि० १४२) नसाहि-नाश हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं । उ० सुनत नसाहि काम मद दंभा । (मा० १।३५।३) नसाही-नाश हो जाते हैं । उ० पर संपदा बिनासि नसाही । (मा० १।१२।१।१०) नसै-नष्ट हो, नाश को प्राप्त हो । नसैहै-नाश हो जावेंगे, नष्ट होंगे । उ० बंधु समेत प्रानबल्लभ पद परसि सकल परिताप नसैहै । (गी० ५।५१) नसैहौं-नाश करूँगा । उ० अब लौं नसानी अब न नसैहौं । (वि० १०५)

नसावन-नाश करनेवाला । उ० काम कोह मद मोह नसावन । (मा० १।४३।३) नसावनि-नाश करनेवाली । उ० सरजू सरि कलि कलुष नसावनि । (मा० १।१६।१) नश्वर-दे० 'नश्वर' । उ० १. नश्वर रूप जगत सब देखहु हृदय बिचारि । (मा० ६।७७)

नहछू-(सं०) नख + लौर)-विवाह की एक रस्म जिसमें वर की हजामत बनती है, नाखून काटे जाते हैं और उसे मेंहदी आदि लगाई जाती है । उ० नहछू जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो । (रा० ६)

नहत-(सं०) नख, हिं, नाधना)-नाधता है, जोतता है, काम में लगाता है । उ० पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत

छोरत नहत । (वि० १३३) नहते-नाधते, जोतते, काम में लगाते । उ० तौ जमभट साँसति-हर हमसे वृषभ खोजि खोजि नहते । (वि० १७) नहिकै-नाधकर, जोतकर । उ० नतु और सबै विष बीज बये हर-हाटक काम दुहा नहि कै । (क० ७३३) नहै-नधे, जुते, जुड़े । उ० सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहैट नयन नित रहत नहे री । (गी० ५१४६)

नहरनी-(सं० नख + हरणी)-नाखून काटने के लिए प्रयुक्त एक औजार । उ० कनक चुनिन सौं लसित नहरनी लिए कर हो । (रा० १८)

नहाइ-(सं० स्नान, हि० नहाना)-१. नहाकर, स्नान करके, २. रोग से मुक्त होने पर नहाकर । उ० २. सगुन कुसल कल्याण सुभ, रोगी उठै नहाइ । (प्र० ४) नहात-नहा रहे थे । उ० जाना मरसु नहात प्रयागा । (मा० २१२०८३) नहाने-स्नान किया । उ० सविधि सितासित नीर नहाने । (मा० २१२०४२) नहावा-स्नान किया । उ० सकल सौच करि राम नहावा । (मा० २१४१२) नहाही-स्नान करते हैं । उ० ते सुकृती मन मुदित नहाही । (मा० ११४१३) नहाहू-नहा लो, नहाओ । उ० तात जाउँ बलि बेगि नहाहू । (मा० २१३११) नह्यो-नहाना, नहाया । उ० जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो हौं । (वि० २६०) नहारू (?)-(?)-१. बाज, २. ताँत, ३. चाम का टुकड़ा । उ० २. मारसि गाइ नहारू लागी । (मा० २१३६४)

नहारू (?)-(?)-सं० नरहरि, हि० नाहर)-बाघ, व्याघ्र । नहि-दे० 'नहीं' । उ० पाप संताप घनघोर संसृति दीन, भ्रमत जगयोनि, नहि कोपि त्राता । (वि० ११) नहिंन-नहीं । उ० रामचरन तजि नहिंन आन गति । (वि० १२८)

नहियर-(सं० मातृगृह, हि० मैहर)-पीहर, मैका । नहीं-(सं० नहि)-एक अन्यथा जिसका प्रयोग निषेध या अस्वीकृति प्रकट करने के लिए होता है । न । उ० जनि लेहु मातु कलंकु करुना, परिहरहु अवसर नहीं । (मा० ११६७। छ० १)

नहुष-(सं०)-अयोध्या के एक प्राचीन राजा जो अंबरीष के पुत्र और ययाति के पिता थे । बृहस्पति ने कुछ दिन के लिए इन्हें इंद्रासन दिया था । वहाँ ये इंद्राणी पर आसक्त हुए और हठकर उनसे मिलने के लिए सप्तर्षियों को कद्धार बना पालकी पर चले । इस पर अगस्त्य ने उन्हें सर्प हो जाने का शाप दिया । बाद में युधिष्ठिर ने उन्हें मुक्त किया । उ० हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस । (मा० २१६१)

नहुष-दे० 'नहुष' । उ० ससि गुर तिय गामी नहुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान । (मा० २१२२८)

नाँगे-(सं० नग)-नगा, वस्त्रहीन, जिसके पास कुछ न हो । उ० मौन में माँग, धरौरेई आँयन, नाँगे के आगे हैं, माँगने बाढ़े । (क० ७११४४)

नाँगो-दे० 'नाँगो' । उ० नाँगो फिर कहे माँग तो देखि 'न खाँगे कछू, जनि माँगिप'थोरो' । (क० ७११४३)

नाँधी-(सं० लघन)-लौधी, फलौंगकर पार की । उ० कहे

कडू बचन, रेख नाँधी मैं, तात छमा सो कीजै । (गी० ३।७)

नांत-(न + अंत)-जिसका अंत न हो, अनंत ।

नांदीमुख-(सं०)-एक आभ्युदयिक श्राद्ध जो विवाह आदि मंगल अवसरों पर किया जाता है ।

नाँय-दे० 'नाँय' ।

ना-(सं०)-नहीं, न । उ० केवट की जाति कछू वेद ना पढ़ा-इहाँ । (क० २।८)

नाइ (?)-नम्र होकर, २. नवाकर, ३. डालकर, ४. खोया, बहाया । उ० २. चले मनहिं मन कहत बिभीषन सीस महेसहि नाइ कै । (गी० ११२८) नाइन्हि-नवाया । उ० सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइन्हि । (पा० ८४) नाइहि-नवावेगा, झुकावेगा । उ० कालउ तुअ पद नाइहि सीसा । (मा० ११९६।१) नाइहै-नवावेगा, झुकावेगा । उ० भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै । (वि० १३५) नाई (?)-दे० 'नाइ (?)' । नाउ (?)-१. झुको, नम्र हो, २. नावो, डालो, २. झुकावो । उ० २. सत्रु सयानो सलिल ज्यों राज सीस रिपु नाउ । (दो० ५२०) नाऊँ (?)-झुकाता हूँ, नवाता हूँ । नाए-१. नवाया, झुकाया, २. झुकाने पर, ३. परास्त किया, ४. डाला । उ० १. प्रभुपदजलज सीस तिन्ह नाए । (मा० ११६३।३) ३. निज सुंदरता रति को मद नाए । (क० ७।४५) नाएसि-

नवाया, नाया । उ० जाइ कमल पद नाएसि माथा । (मा० २।२५।४) नाओ-नवाता हूँ, सिर नवाता हूँ । नायउ-नाया, नवाया । उ० द्वार आइ पद नायउ माथा । (मा० २।११) नाये-(सं० नमन)-१. नवा दिये, २. नम्र हुए, ३. नवाए हुए, ४. नवाने से । नायो-१. डाल दिया, डाला, २. नवाया, ३. नम्र हुए, सिर झुकाए । उ० १. तुलसिदास मुनि बचन क्रोध अति पावक जरत मनहुँ घृत नायो । (गी० ६।२) नाव (?)-सं० नामन)-१. नाओ, डालो, २. नमन होने का आदेशासूचक शब्द । नावइ-नवाते हैं, नवाने लगे । उ० बार-बार नावइ पदसीसा

(मा० ४।७।७) नावत-१. डालने पर, २. झुकाने पर, ३. डालते हैं, ४. नवाते हैं, झुकाते हैं । उ० ४. सुरनर मुनि सब नावत सीसा । (मा० १।५०।३) नावहिं-नवाते हैं । उ० भए परसपर प्रेमबस फिरि फिरि नावहिं सीस । (मा० १।३४२) नावा (?)-सं० नमन)-नवाया, झुकाया । उ० बहुरि राम मायहि सिर नावा । (मा० १।५७।१) नावौं-१. नवाता, २. नवाता हूँ, ३. डालता हूँ । उ० १. आश्रम जाइ जाइ सिर नावौं । (मा० ७।११०।५) २. सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं । (वि० २०८)

नाइ (?)-दे० 'नाई (?)' । नाईं-(सं० न्याय)-तरह, समान । उ० नहि आदरेहु भगति की नाईं । (मा० ७।११५।५)

नाई (?)-सं० नापित)-हज्जाम, नाऊ, बाल बनाने-वाला ।

नाई (?)-सं० न्याय)-तरह, भाँति, समान । उ० राजिव-लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं । (क० २।२)

नाइ (?)-दे० 'नाई (?)' । नाईं-(सं० न्याय)-तरह, समान । उ० नहि आदरेहु भगति की नाईं । (मा० ७।११५।५)

नाई (?)-सं० नापित)-हज्जाम, नाऊ, बाल बनाने-वाला ।

नाई (?)-सं० न्याय)-तरह, भाँति, समान । उ० राजिव-लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं । (क० २।२)

नाइ (?)-दे० 'नाई (?)' । नाईं-(सं० न्याय)-तरह, समान । उ० नहि आदरेहु भगति की नाईं । (मा० ७।११५।५)

नाई (?)-सं० नापित)-हज्जाम, नाऊ, बाल बनाने-वाला ।

नाई (?)-सं० न्याय)-तरह, भाँति, समान । उ० राजिव-लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं । (क० २।२)

नाइ (?)-दे० 'नाई (?)' । नाईं-(सं० न्याय)-तरह, समान । उ० नहि आदरेहु भगति की नाईं । (मा० ७।११५।५)

नाउँ-(सं० नाम)-नाम, नावँ । उ० लीजै गाँड, नाउँ लै रावरो है जग ठाउँ कहुँ हँ जीवो । (क० ६)
 नाउ (२)-(सं० नौ, फा नाव)-नौका, तरणी ।
 नाऊँ (२)-दे० 'नाउँ' । उ० ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरिनाऊँ । (मा० ११२६।३)
 नाऊ-(सं० नापित)-नाई, हजामत बनानेवाला । उ० नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ । (मा० ११३१६)
 नाक (१)-(सं० नक, प्रा० नक्क)-१. सूँघने और साँस लेने की इंद्रिय, नासा, नासिका, २. प्रतिष्ठा, मर्यादा । उ० १. दसमुख-विषय तिलोक लोकपति विकल बिनाए नाक चना है । (गी० ७।१३) २. नाक पिनाकहि संग सिधाई । (मा० ११२६।४) सु० बिनाए नाक चना है-बहुत तंग किया है, बहुत परेशान किया है । उ० दे० 'नाक' । सु० नाक सकोरी-धृषा करेगा, नहीं चाहेगा । उ० सुन अघ नरकहु नाक सकोरी । (मा० ११२६।१) सु० नाकाहि आई-परेशान हो गया, तंग आ गया । उ० सहि देख्यो तुम्ह सों कझो, अब नाकहि आई, कौन दिनहु दिन छीजै । (क० ७) नाकहि-नाक में । उ० दे० सु० 'नाकहि आई' ।
 नाक (२)-(सं० नक)-मगर की जाति का एक जीव ।
 नाक (३)-(सं०)-१. स्वर्ग, २. आकाश । उ० १. महि पाताल।नाक जसु ब्यापा । (मा० ११२६।३) नाकनटी-स्वर्ग की नर्तकियाँ, अप्सराएँ । उ० नाकनटी नाचहि करि गाना । (मा० ११३०।२) नाकनायक-स्वर्ग के नायक, इंद्र । उ० करि पुटपाक नाकनायक हित घने घने घर चलतो । (गी० २।१३) नाकप-(सं०)-१. लोकपाल, २. इंद्र । उ० २. राँकनि नाकप रीकनि करै, तुलसी जग जो जुरै, जाचक जोरो । (क० ७।१५३) नाकपति-(सं०)-इंद्र ।
 नाकपाल-(सं०)-इंद्र, स्वर्ग के राजा । उ० भूमि भूमिपाल ब्यालपालक पताल, नाकपाल, लोकपाल जेते सुभट समाज हैं । (क० २।२२) नाकेश-(सं० नाकेश)-इंद्र । उ० नाकेश-दुर्लभ भोग लोग करहि न मन विषयनि हरे । (गी० ७।१६) नाग-(सं०)-१. सर्प, साँप, २. हाथी, ३. मेघ, बादल, ४. आठ की संख्या, ५. पान, ६. दुष्ट या निर्दय मनुष्य, ७. एक देश का नाम, ८. सीसा, सातों धातुओं में एक, ९. नागकेशर, १०. नागरमोथा, ११. हस्तिनापूर, १२. एक जाति विशेष, जिसकी उत्पत्ति कश्यप और क्रदू से मानी गई है और जिसका स्थान पाताल है । उ० १. जसु पावन रावन नाग महा । (मा० ६।११।२) २. मत्त नाग तम कुंभ विदारी । (मा० ६।१२।१) ३. नर-नाग विबुध वंदिनि, जय जहू बालिका । (वि० १७) नागशर-हाथी का शत्रु, सिंह । उ० जिमि ससु चहै नागशरि भागू । (मा० ११२६।१) नागनग-(सं०)-गजमुक्ता । उ० निज गुन घटत न नागनग परखि परिहरत कोल । (दो० २८२) नागपाश-(सं०)-वरुण के एक अस्त्र का नाम जिससे शत्रुओं को बाँध लेते थे । तंत्र के अनुसार ढाई फेर के बंधन को नागपाश कहते हैं ।

नागपास-दे० 'नागपाश' । उ० नागपास बाँधेसि लै गयऊ । (मा० २।२०।१) नागपास-दे० 'नागपाश' ।
 नागभूप-नागों के राजा, शेषनाग । उ० बरनत यह अमित रूप थकित निगम नाग भूप । (गी० ७।७) नागमनि (सं० नागमणि)-गजमुक्ता । उ० उर अति रुचिर नागमनि माला । (मा० ११२१।३) नागर-(सं०)-१. चतुर, निपुण, २. नगर में रहनेवाला, ३. नायक, ४. सौँठ, ५. नारंगी । उ० १. मथुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जहुनाथ पढ़ाए । (क० २०) २. गनी गरीब भ्रामनर नागर । (मा० ११२८।३) नागराज-गजेन्द्र जिसका उद्धार विष्णु ने किया था । उ० नागराज निज बल बिचारि हिय हारि चरन चित दीन । (वि० ६३) नागरि-चतुर स्त्री । उ० तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागरमनि नंदललाऊ । (क० १२) नागरिन्ह-१. शहर की स्त्रियाँ, चतुर स्त्रियाँ, २. चतुर या शहर की स्त्रियों के । उ० २. तुलसी ये नागरिन्ह जोगपट जिन्हहि आजु सब सोही । (क० ४१) नागरिपु-१. हाथी का शत्रु, सिंह, २. सर्पों के शत्रु गरुड । उ० १. निजकर ढासि नागरिपु झाला । (मा० १।१०।६।३) नागरी-१. नगर की रहनेवाली या चतुर स्त्री, २. भारत की प्रसिद्ध लिपि जिसमें हिंदी आदि भाषाएँ लिखी जाती हैं । उ० १. ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को । (वि० २६६) नागा-दे० 'नाग' । उ० २. दासी दास तुरग रथ नागा । (मा० १।१०।१।४) नागु-दे० 'नाग' । नागेन्द्र-(सं०)-१. गजेन्द्र, २. शेषनाग । उ० १. लोभ-अति मत्त नागेंद्र-पंचाननं, भक्त हित-हरन-संसार भारं । (वि० ४६) नाघइ-(सं० लंघन, हि० लाँघना)-लाँघना, लाँघ सकेगा । उ० जो नाघइ सत जोजन सागर । (मा० ४।२६।१) नाघत-लाँघते हुए, इस पार से उस पार जाते हुए । उ० नाघत सरित सैल बन बाँके । (मा० २।१५।१) नाघहि-लाँघ जाते हैं । उ० नाघहि खग अनेक बारीसा । (मा० ६।२८।१) नाधि-(सं० लंघन)-लाँघकर, फाँदकर । उ० बारिधि नाधि एक कपि आवा । (मा० ६।१।१) नाच-(सं० नृत्य, प्रा० नाच, नच्च)-१. नृत्य, नर्तन, नाचने की क्रिया, २. कृत्य, कर्म, धंधा, ३. इधर उधर फिरना, दौड़ना । उ० १. करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि नाच नचायो । (वि० ६८) नाचइ-नाचता है । उ० जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा । (मा० ६।२४।१) नाचत-१. नाचते हैं, २. नाचते हुए । उ० २. जाकी मायाबस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो । (वि० ६८) नाचहि-नाचते हैं, नृत्य करते हैं । उ० नाचहि नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहि । (पा० ५६) नाचा-नाचने लगा । उ० सिर भुजहीन हंड महि नाचा । (मा० ६।१०।३।१) नाचि-नाचकर । उ० नाचि कूदि करि लोग रिझाई । (मा० ६।२४।१)

नाज (१)-(फ़ा० नाज)-१. नख़रा, बनावट, दिखावा, २. घमंड ।
 नाज (२)-(सं० अनाज)-अनाज, खाद्य सामग्री ।
 नाजु-दे० 'नाज (२)' । उ० बलकल विमल तुकूल मनो-
 हर, कंदमूल फल अमिय, नाजु । (गी० २।७)
 नाजुक-(फ़० नाजुक)-कोमल, सुकुमार ।
 नाटक-(सं०)-१. अभिनय, वह दृश्य जिममें स्वांग के द्वारा
 चरित्र दिखाए जायें, २. दृश्यकाव्य, अभिनय ग्रंथ, ३.
 नट, नाच या अभिनय करनेवाला ।
 नाठी-(सं० नट)-नट हो गई । उ० मुनि अति बिकल
 मोह मति नाठी । (मा० १।१३४३) नाठे-नट हो गए ।
 उ० आपनि सूक्ति कहौं, पिय ! बुझिए, जूझिबे जोग न
 ठाहर नाठे । (क० ६।२८)
 नाड़-दे० 'नारि' ।
 नात-(सं० ज्ञाति, प्रा० णाति, हि० नात)-१. नाता,
 रिश्ता, संबंध, २. संबंधी, नातेदार । उ० १. आरज सुत पद
 कमल बिनु बादि जहाँ लागि नात । (मा० २।६७)
 नाता-रिश्ता, संबंध । उ० मानउँ एक भगति कर नाता ।
 (मा० ३।३१२) नाते-दे० 'नात' । उ० १. तोहिं मोहिं
 नाते अनेक मानिये जो भावे । (वि० ७६)
 नाती-(सं० नसु, प्रा० नत्ति)-लड़की या लड़के का लड़का ।
 उ० सुत समूह जन परिजन नाती । (मा० १।१८१२)
 नातो-रिश्ता, संबंध । उ० नातो मित्त न धोए । (गी०
 २।६१)
 नात्र-(सं० ना + अत्र)-यहाँ नहीं, इसमें नहीं, इस विषय
 में नहीं । उ० ब्रजति नात्र संशयं । (मा० ३।४।१२)
 नाथ-(सं०)-१. स्वामी, मालिक, भगवान, २. पति,
 भर्तार, ३. नाक का नथ, एक आभूषण, ४. पशुओं की
 नाक की रस्सी, ५. गोरखपंथी साधुओं की एक पदवी ।
 उ० १. तत्र अक्षिप्त तव विषम माया नाथ ! अंध मैं मंद
 ब्यालाद गामी । (वि० ५६) नाथहिं-स्वामी को, मालिक
 को, भगवान को । उ० अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़
 त्यागु दुरासा जी तैं । (वि० १६८) नाथहिं-प्रभु को, नाथ
 को । उ० तब रिषि निज नाथहिं जियँ चीन्ही । (मा०
 १।२०६।४) नाथहू-नाथ भी, भगवान भी । उ० नाथहू न
 अपनायो, लोक सूठी हूँ परी, पै प्रभू हूँ तैं प्रबल प्रताप
 प्रभु नाम को । (क० ७।७०)
 नाथा-दे० 'नाथ' । उ० १. आयसु काह होइ रघुनाथा ।
 (मा० २।५६।४)
 नाथु-दे० 'नाथ' । उ० १. कियउ निषादनाथु अगुआई ।
 (मा० २।२०३।१)
 नाथू-दे० 'नाथ' । उ० १. चलन चहत बन जीवननाथु ।
 (मा० २।५८।२)
 नाद-(सं०)-१. शब्द, ध्वनि, आवाज़, २. वयों का अव्यक्त
 मूल रूप, ३. संगीत । उ० १. पुनि-पुनि सिंघनाद करि
 भारी । (मा० १। १८२।४)
 नादत-बजते हैं, शब्द करते हैं, ध्वनि करते हैं । उ० इन्ह-
 हीं के आप ते बधाए ब्रज नित नए, नादत बादत सब सब
 सुख जियो है । (क० १६)
 नादा-दे० 'नाद' ।

नाद-दे० 'नाद' । उ० १. मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादु ।
 (मा० २।५४।२)
 नाना (१)-(सं०)-१. अनेक प्रकार के, बहुत तरह के,
 विविध, २. अनेक, बहुत । उ० १. मध्य बयस धनहेतु
 गँवाइँ कृपी बनिज नाना उपाय । (वि० ८३)
 नाना (२)-(?) -मातामह, माता का पिता ।
 नान्ह-(सं० न्यंच)-१. छोटा, लघु, २. हीन, छद्म, तुच्छ,
 ३. पतला, बारीक, महीन । उ० ३. तुलसी लोग रिक्का-
 ह्यो करषि कातिबो नान्ह । (दो० ४६२)
 नाप-(सं० मापन, हि० माप)-१. पानी या अनाज भरने
 का बड़ा मटका, २. पैमाइश, परिमाण, माप । उ० १.
 नाप के भाजन भरि जलनिधि जल भो । (ह० ७।१) २.
 तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख । (दो० २८१)
 नापे-नापा, पैमाइश की । नापे जोखे-अंदाज़ा किया, अनु-
 मान लगाया । उ० बल इनको पिनाक नीके नापे जोखे
 हैं । (गी० १।६३)
 नाभं-दे० 'नाभि' । उ० तप्त कांचन-वस्त्र शब्र विद्या-निपुन
 सिद्ध सुर-सेव्य पाथोजनाभं । (वि० ५०) नाभ-दे०
 'नाभि' ।
 नाभि-(सं०)-नाभी, तुंडिका, पिंडज जीवों के पेट के बीच
 का वह गड़दा जहाँ गर्भावस्था में जरायु-नाल जुड़ा रहता
 है । उ० नाभि मनोहर लेति जनु जमुन अवर छवि छीनि ।
 (मा० १।१४७)
 नाभी-दे० 'नाभि' । उ० नाभी सर त्रिबली निसेनिका,
 रोमराजि सैवल छवि पावति । (गी० ७।१७)
 नाम-(सं० नामन्)-१. संज्ञा, आख्या, किसी व्यक्ति या
 वस्तु का निर्देश करनेवाला शब्द । वह शब्द जिससे किसी
 व्यक्ति या वस्तु का बोध हो । २. ख्याति, प्रसिद्धि । उ० १.
 सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद विधि कीन्ह । (मा०
 १।७ ख) नामन्ह-नामों । उ० राम सकल नामन्ह ते
 अधिक । (मा० ३।४२।४) नामहुँ-नाम ने भी । उ० यह
 बड़ि त्रास दास तुलसी प्रभु नामहुँ पाप न जारो । (वि०
 ६६) नामै-नाम को । उ० हर से हरनिहार जयँ जाके
 नामै । (गी० ५।२५)
 नामा-दे० 'नाम' । उ० १. रामचरित मानस एहि नामा ।
 (मा० १।३५।४)
 नामानि-दे० 'नामानी' ।
 नामानी-(सं० नामानि)-अनेक नाम, नामों का समूह । उ०
 जन्म कर्म अनंत नामानी । (मा० ७।५२।२)
 नामिनी-१. नामवाली, संज्ञावाली, २. विख्यात, प्रसिद्ध,
 ३. नामधारी, ४. प्रसिद्धि पाना, ५. रूप । उ० १. जय
 महेसभामिनी, अनेक रूप-नामिनी । (वि० १६)
 नामी-नामवाला । उ० समुक्त सरिस नाम अरु नामी ।
 (मा० १।२१।१)
 नामु-दे० 'नाम' । उ० १. नामु सत्य अस लाग न केहू ।
 (मा० २।२७।१४)
 नामू-दे० 'नाम' । उ० १. सुमिरि पवन सुत पावन नामू ।
 (मा० १।२६।३)
 नाय-दे० 'नाय (२)' । नाम से । उ० तुलसी अजहुँ सुमिरि
 रघुनाथहिं तरो गयंद जाके अड़ नायँ । (वि० ८३)

नाय (१)-(सं०)-१. नीति, २. उपाय, युक्ति, ३. नेता, अगुआ, ४. आधार, सहारा।

नाय (२)-(सं० नामन्)-नाम।

नायक-दे० 'नायक'। उ० २. धरं त्रिलोक नायकं। (मा० ३।४।३) नायक-(सं०)-१. नेता, अगुआ, प्रधान, २. स्वामी, प्रभु, ३. श्रेष्ठ पुरुष, ४. सेनाध्यक्ष, फौज का अफसर, ५. कलावंत, संगीतकला में निपुण, ६. एक वर्ष-वृत्त, ७. नायिका का पति, ८. साहित्य में शृंगार का आलंबन या साधक वह पुरुष जिसका चरित्र किसी काव्य या नाटक आदि का मुख्य विषय हो। उ० १ दच्छहि कान्ह प्रजापति नायक। (मा० १।६०।३) नायकहि-नायक से, स्वामी से। उ० चले मिलन मुनि नायकहि, सुदित राउ एहि भाँति। (मा० १।२१४)

नायका (१)-(सं० नायिका) नायक की स्त्री।

नायका (२)-(सं० नायक) नायकों को, सेनापतियों को। उ० दस दस बिभिन्न उर माऊ मारे सकत निसिचर नायका। (मा० ३।२०।३)

नायकु-दे० 'नायक'।

नारकी-(सं० नारकिन्)-१. पापी, नरक में जाने योग्य कर्म करनेवाला, २. नरक में रहनेवाला। उ० २. पाव नारकी हरि पदु जैसैं। (मा० १।३३।३)

नारद-(सं०)-१. एक प्रसिद्ध देवर्षि जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। ये बहुत बड़े हरिभक्त थे साथ ही कलहप्रिय भी थे। इन्हें ब्रह्मा का शाप था कि तुम सर्वदा घूमते रहोगे और इसी कारण ये एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते थे। घूमने और कलहप्रिय स्वभाव के कारण ये चुगली और लबाई-झगड़ा लगानेवाले थे। इनके इस कृत्य से पौराणिक कहानियाँ भरी पड़ी हैं। २. विश्वामित्र के एक पुत्र, ३. एक प्रजापति, ४. झगड़ा लगानेवाला आदमी। उ० १. बालमीक नारद घट जोनी। (मा० १।३।२) नारदहि-नारद को। उ० सनकादिक नारदहि सराहहि। (मा० ७।४२।४) नारदहूँ-नारद भी। उ० नारदहूँ यह भेदु न जाना। (मा० १।६५।१) नारदी-(सं० नारद)-सत्य भी कहना और झगड़ा भी लगा देना, चतुरतापूर्ण बात। उ० लखि नारद-नारदी उमहि सुख भा उर। (पा० ११)

नारा-(सं० नाल)-१. सूत्र, २. जल, ३. छोटी नदी, नाला, ४. कुसुम। उ० ३. चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा। (मा० ३।१३।१)

नाराच-(सं०)-तीर, ऐसा तीर जो पूर्णतः लोहे का बना हो। उ० छाँड़े बिपुल नाराच। (मा० ३।२०।४)

नारायण-नारायण को। उ० नौमि नारायण नरं करुणायनं ध्याव पारायणं ज्ञान मूलम्। (वि० ६०) नारायण-(सं०)-ईश्वर, भगवान्। कहीं-कहीं इन्हें नर का पुत्र और कहीं-कहीं भाई होना लिखा है। दे० 'नर'।

नारायन-दे० 'नारायण'। उ० नर नारायन सरिस सु-भ्रता। (मा० १।२०।३)

नारि (१)-(सं० नाल, नाड़)-श्रीवा, गर्दन। उ० जियत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि। (दो० ३०५)

नारि (२)-(सं० नारी)-स्त्री, औरत। उ० का घँवट मुख भँवहु रबला नारि। (ब० १६)

नारियर-(सं० नारिकेल)-नारियल का फल। उ० टक-दोरि कपि ज्यौं नारियर सिर नाह सब बैठत भए। (जा० ६६)

नारी (१)-(सं०)-स्त्री, औरत। उ० सोह न बसन बिना घर नारी। (मा० १।१०।२) नारिन्ह-स्त्रियाँ, औरतें। उ० सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी। (मा० १।१०।२।४) नारिहि-नारी को, स्त्री को। उ० पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मतिधीर। (मा० ७।११।५ क)

नारी (२)-(सं० नाडी)-नाड़ी, नब्ज।

नारी (३)-(सं० नाल)-नाली, प्रणाली।

नाल-(सं०)-कमल का डंठल, नलकी। उ० कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं। (मा० १।२५।३।४)

नाव (२)-(सं० नौ का बहुवचन, मि० फा० नाव)-नौका, तरनी, डोंगी, जलयान। उ० पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाह्यौं, आयसु होत कहा है? (क० २।७)

नावरि-१. नाव की एक क्रीड़ा, २. छोटी नौका। उ० १. जनु नावरि खेलहि सरि माहीं। (मा० ६।५५।३)

नावा (२)-(सं० नौ)-नाव, नौका।

नाश-(सं०)-१. न रह जाना, लोप, ध्वंस, मृत्यु, २. शायब होना, ३. पलायन।

नासं-दे० 'नाश'। उ० कंठर, चिबुक बर, वचन गंभीर-तर, सत्य संकल्प सुरत्रास नासं। (वि० ५१)

नासक-(सं० नाशक)-१. नाश करनेवाला, २. दूर भगाने-वाला। उ० १. को हित संत अहित कुटिल नासक को हित लोभ। (स० २६१)

नासन-(सं० नाश)-नाश करना, बध करना। नासहि-नष्ट हो जाते हैं। उ० नासहि बेगि नीति अस सुनी। (मा० ३।२१।६) नासा (१)-(सं० नाश)-१. नाश किया, नाश करता है, २. नाश, ३. नष्ट करने-वाला। उ० १. दलइ नासु जिमि रबि निसि नासा। (मा० १।२४।३) नासिबे-नष्ट करने। उ० जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि। (वि० १५५) नासी-१. नष्ट कर दी है, २. नष्ट हो गई है। उ० १. दास तुलसी दीन, धर्म बंसलहीन अमित अति खेद, मति मोहनारी। (वि० ६०) नासे-१. नष्ट हो गए, २. नष्ट हो जायँगे, ३. नष्ट हो जाने पर। नासे-नष्ट हो सकता है, नष्ट होता है। उ० संसति-सन्निपात दासन हुख बिनु हरिकृपा न नासै। (वि० ८१)

नासा (२)-(सं०)-नाक, नासिका। उ० सुकुट कुंडल तिलकं, अलक अलि श्रात इव, भृकुटि द्विज अधर बर चारु नासा। (वि० ६१)

नासापुट-(सं०)-१. नाक का अगला भाग, नथना, २. नाक के पुरवे या छेद।

नासिक-दे० 'नासिका'। नाक। उ० नासिक सुभग कृपा परि-पूरन, तरुन अरुन राजीव बिलोचन। (गी० ७।१६)

नासिका-(सं०)-नाक। उ० नासिका चारु, सुकपोल, द्विज वज्रश्रुति, अधर बिबोपमा, मधुर हासं। (वि० ५१)

नासू-(सं० नाश)-नाश, विनाश, मृत्यु। उ० नाथ न होइ मोर अब नासू। (मा० १।१६।४)

नाह-दे० 'नाह'। नाथ ने। उ० १. तब नर नाहँ बसिष्ठ

बोलाए । (मा० २।१।१) नाह-(सं० नाथ)-१. स्वामी, मालिक, २. पति, मर्द, शौहर, भर्त्ता । उ० १. नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी । (मा० २।१४०।२)
 नाहक-(फा० ना+अर० हक)-व्यर्थ, वृथा, फूटा । उ० सो तैं सब नहिं आन तव नाहक होसि मलान । (स० २।१०)
 नाहर-(सं० नरहरि)-१. सिंह, शेर, २. शेर के समान पराक्रमी ।
 नाहरु-दे० 'नाहर' । उ० २. सुनि हँसि उठ्यौ नंद को नाहरु, लियो कर कुंभर उठाइ । (कृ० १८)
 नाहरु (१)-(सं० नरहरि)-शेर, सिंह ।
 नाहरु (२)-(?)-१. चाम का टुकड़ा, २. मोट या चरसा खींचने का रस्सा, ३. ताँत ।
 नाहाँ-दे० 'नाह' । उ० १. सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ । (मा २।७७।३)
 नाहिं-(सं० नहिं)-नहीं । उ० बिनु प्रयास सब साधन को फल प्रभु पायो सो तो नाहिं सँभारे । (गी० २।२) नाहिं-१. नहीं है, २. नहीं । उ० १. नाहिं चरन रति ताहि तैं सहौं बिपति, कहत खुति सकल सुनि मतिधीर । (वि० १६७) नाहिं-नहीं है । उ० नाहिंनै काहु लहो सुख प्रीति करि इक अंग । (कृ० ५४) नाहिं-नहीं, नहीं है । उ० निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं । (मा० १।८।२)
 नाहु-दे० 'नाह' । उ० १. जानति हहु बस नाहु हमारें । (मा० २।१४।३)
 नाहु-दे० 'नाह' । उ० २. करम लिखा जौं बाउर नाहु । (मा० १।६७।४)
 निदक-निंदा करनेवाला । उ० सिय निदक अघ ओघ नसाए । (मा० १।१६।२)
 निदत-(सं० निंदा)-निंदा करते हुए, निंदा करने से । उ० जो निदत निदित भयो बिदित बुद्ध अवतार । (दो० ४६४)
 निदति-निंदा करती है, निंदा कर रही है । उ० रोम रोम छवि निदति सोम मनोजनि । (जा० १०६) निंदाहिं-निंदा करते हैं । उ० निंदाहिं बलि हरिचंद को 'का कियो करन दधीचि' । (दो० ३८२) निंदा-निंदा करते हैं । उ० निंदै सब साधु सुनि मानौ न सकोसु हौं । (क० ७।१२।१) निंदै-निंदा करता है । उ० सरद सुधा-सदन-छविहि निंदै बदन । (गी० १।८०)
 निंदरी-१. निंदा करके, निरादर करके, २. मुझसे बिना पूछें । उ० २. सो कह चलेसि मोहि निंदरी । (मा० २।४।१)
 निंदा-(सं०)-१. दोष-कथन, बुराई का वर्णन, २. अपवाद, बदनामी । उ० १. सर-निंदा करि ताहि बुभावा । (मा० १।३।२)
 निंदित-(सं०)-दूषित, बुरा, जिसकी निंदा हो । उ० जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार । (दो० ४६४)
 निध-निन्दा के योग्य, बुरा । उ० प्रबल-पाखंड-महिमंडला-कुल देखि निधकुन्-अखिल-मख कर्म-जालं । (वि० ५२)

निः-(सं० निस्)-निषेध, नहीं । उ० गहन-दहन-निर दहन-लंक, निःसंक, बंकभुव । (ह० १)
 निःकंप-अचल, स्थिर, जो काँपता न हो । उ० निर्भरानंद निःकंप निःसीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम विधाता । (वि० ५६)
 निःकाज-निष्प्रयोजन, बिना किसी काम के । उ० निःकाज राज विहाय नृप इव स्वप्न-कारागृह परयो । (वि० १३६)
 निःकाम-(सं० निष्काम)-जिसमें किसी प्रकार की इच्छा या कामना न हो । उ० बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहि निःकाम । (मा० ३।१६)
 निःपाप-पापरहित ।
 निःपापा-पापरहित, बिना पाप का ।
 निःप्राप्य-अप्राप्य, जो मिल न सके । उ० संत संसर्ग त्रय-वर्ग पर परम पद प्राप, निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने । (वि० ५७)
 निःशुंभ-(सं०)-एक राक्षस का नाम । यह शुंभ तथा निमुचि का भाई था । नमुचि तो इंद्र के हाथ से मारा गया, परंतु शुंभ और निशुंभ ने देवताओं को जीत लिया और स्वर्ग के राजा बन गए । जब इन दोनों ने रक्तबीज से सुना कि दुर्गा ने महिषासुर को मार डाला तो निशुंभ ने प्रतिज्ञा की मैं दुर्गा को मार डालूँगा । उसी समय नर्मदा नदी से निकलकर चंड और मूंड नामक दो और राक्षस उनसे मिल गए । शुंभ और निशुंभ ने दुर्गा से कहा कि तुम हममें से किसी के साथ विवाह करो । इस पर दुर्गा ने कहलाया कि युद्ध में मुझे जो जीतेगा उसी के साथ मैं विवाह करूँगी । लड़ाई हुई । दुर्गा ने धुन्नलोचन, चंडमूंड, रक्तबीज आदि को मारने के बाद निशुंभ और शुंभ को मार डाला । इनकी मृत्यु के बाद इंद्र पुनः स्वर्ग के राजा बने । उ० शुंभ निःशुंभ कुंभीश रणकेशरिणि, क्रोध बारिधि बैरि वृंद बोरे । (वि० १५)
 निःसंक-(सं० निःशंक)-१. निडर, निर्भय, २. अशक्त, पुरुषार्थहीन । उ० १. गहन-दहन-निरदहन-लंक, निःसंक, बंकभुव । (ह० १)
 निःसरित-निकली हुई । उ० चरित-सुरसरित कवि-मुख्य-गिरि निःसरित पिबत मज्जत मुदित सतसमाजा । (वि० ४४)
 निःसीम-जिसकी सीमा न हो, अनंत । उ० दे० 'निःकंप' ।
 नि-(सं०)-एक उपसर्ग जिसके लगने से शब्दों में निम्नांकित अर्थों की विशेषता हो जाती है-१. संघ या समूह, जैसे निकर, २. अधोभाव, जैसे निपतित, ३. अत्यंत, जैसे निगृहीत, ४. आदेश, जैसे निदेश, ५. नित्य, ६. कौशल, ७. बंधन, ८. अन्तर्भाव, ९. समीप, १०. दर्शन, ११. उपरम, १२. आश्रय, १३. संशय, १४. क्षेप, १५. दान, १६. मोक्ष, १७. विन्यास, १८. निषेध ।
 निश्चराइ-(सं० निकट)-पास आए हैं, पास आ लगे हैं । उ० फल भारन नमि बटप सब रहे भूमि निश्चराइ । (मा० ३।४०) निश्चराई-(सं० निकट)-नजदीक गए । उ० तेहि कि मोह ममता निश्चराई । (मा० २।२७७।१) निश्चराए-समीप आकर । उ० बरघई जलद भूमि निश्च-

राष्ट्र । (मा० ४११४२) निम्नराना-निकट या समीप आ गया । उ० मान न ताहि कालु निम्नराना । (मा० ६१३५१) निम्नरानु-समीप आ गया है । उ० असगुन असुभ न गनहि गत, आइ कालु निम्नरानु । (प्र० २१६१६) निम्नराने-समीप जा पहुँचे, नजदीक गए । उ० आश्रम निकट जाइ निम्नराने । (मा० २१२३११) निम्नराया-निकट पहुँच गए । उ० बेगि बिदेह नगर निम्नराया । (मा० ११२१२१२) निम्नरावा-पास चला गया, समीप चला गया । उ० मैं अभिमानी रबि निम्नरावा । (मा० ४१२५२)

निम्नाउ-(सं० न्याय)-इन्साफ़, न्याय । उ० नीक सगुन, बिबरिहि ऋगर, होइहि धरम निम्नाउ । (प्र० ६१६१२)

निकंद-१. नाश, २. नाशकर्ता, ३. उखड़ा हुआ, ४. नाश में, नाश करने में । उ० ४. खल बृंद निकंद महा कुसखं । (मा० ६१११११५)

निकंदन-[सं० नि + कंदन (= नाश, बध)] १. नाश, विनाश, २. नाशक, विनाश करनेवाला, ३. उखाड़नेवाला । उ० २. सकल-अमंगल-मूल-निकंदन । (वि० ३६)

निकंदिनि-नाश करनेवाली । उ० असुर सेन सम नरक निकंदिनि । (मा० ११३११५) निकंदिनी-नाश करनेवाली । उ० पावनि पय सरित सकल मल-निकंदिनी । (गी० २१४३)

निकंदय-नाश कीजिए, उखाड़िए, नष्ट कीजिए । उ० रघुनंद निकंदय द्वंद्व घनं । (मा० ७११४१ छं० १०)

निकर-(सं०)-समूह, भीड़-भाड़, ढेर । उ० बद्ध पाथोधि, सुर-निकर-मोचन, सकल-दखन दससीस-भुजबीस-भारी । (वि० ५०)

निकरत-(सं० निष्कासन, हि० निकसना)-निकलता है, निर्गत होता है ।

निकसत-(सं० निष्कासन)-१. निकलता है, २. निकल रहा है, ३. निकलने पर । उ० २. फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को । (हं० ४१) निकसहि-निकलते हैं । उ० ग्राम निकट जब निकसहि जाई । (मा० २११०६१४)

निकसि-निकल कर । उ० निकसि भए पुर बाहेर ठाढ़े । (मा० ११२६६११) निकसी-निकलीं, बाहर हुई । उ० पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग है । (क० २१११)

निकाई (१)-[सं० निक (= साफ़, स्वच्छ) तु० फा० नेक]-१. अच्छाई, २. शोभा, सुंदरता, ३. भलाई, उपकार, ४. अनुकूलता । उ० २. बनइ न बरनत नगर निकाई । (मा० २१२१३११) ३. भलो कियो खल को निकाई सो नसाई है । (क० ७११५१)

निकाई (२)-(सं० निकाय)-समूह, मुँड ।

निकाज-बिना काम का, निकम्मा । उ० तुलसी तन जल-कूल को निरधन, निपट निकाज । (दो० ५४४)

निकाम (१)-(सं० निस् + काम)-१. निकम्मा, व्यर्थ, २. बुरा, खराब, ३. कामनारहित, ४. लक्ष्यशून्य, अंधाधुंध । उ० १. भागत अभाग, अनुरागत विराग, भाग जागत आलसि तुलसी हू से निकाम को । (क० ७१७५) ४. चले बिसिख निसंत निकाम । (मा० ३१२०६० १)

निकाम (२)-(सं०)-बहुत, अतिशय ।

निकाय-(सं०)-१. समूह, मुँड, २. शरीर, ३. परमात्मा । उ० १. एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय । (मा० १११५०)

निकाया-दे० 'निकाय' । उ० करहि उपद्रव असुर निकाया । (मा० १११५३१२)

निकारहि-निकालते हैं, निकाल देते हैं । उ० कुलवंति निकारहि नारि सती । (मा० ७११०११२) निकारि-निकाल लाए । उ० धरि केस नारि निकारि बाहेर तेति दीन पुकारहीं । (मा० ६१५५१ छं० १)

निकासइ-निकाल देता था, बाहर कर देता था । उ० तेहि बहुबिधि भासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना । (मा० १११५३१ छं० १) निकासी-निकाल दूँ । उ० कहु केहि नृपहि निकासीं देसु । (मा० २१२६११)

निकिष्ट-(सं० निकृष्ट)-बुरा, अधम, नीच । उ० सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई । (मा० ३१५१७)

निकेत-(सं०)-१. घर, मकान, २. जगह, ३. शरीर, ४. वास । उ० १. ललित-लता-दुम-संकुल मनहुँ मनोज-निकेत । (गी० २१४७)

निकेतन-दे० 'निकेत' ।

निकेता-दे० 'निकेत' । उ० १. सकल कहहु प्रभु कृपा-निकेता । (मा० ७११११५१)

निकेतु-दे० 'निकेत' । उ० १. समय राम-जुवराज कर, मंगल-मोद-निकेतु । (प्र० २११११)

निकेवल-(सं० नि + केवल)-अकेला, एकाकी ।

निकैया-(सं० निक)-सुंदरता, शोभा । उ० सुंदर तनु सिंसु-बसन-विभूषन नख सिख निरखि निकैया । (गी० ११६)

निखंग-(सं० निपंग)-तरकश, तुप्यीर । उ० मुज बिसाल सर धनु धरे, कटि चारु निषंग । (वि० १०७)

निखोट-(सं० नि + खोट)-निर्दोष, दूषणरहित, ठीक । उ० नाम-खोट खेत ही निखोट होत खोटे खल । (क० ७११७)

निगड़-(सं० निगड़)-बेड़ी, जंजीर, मोटी जंजीर, जिससे हाथी बाँधा जाता है । उ० बाँधो हौं करम जड़ गरम गूड़ निगड़, सुनत दुसह हौं तो साँसति सहत हौं । (वि० ७१६)

निगदित-(सं०)-कथित, उल्लेख किया हुआ, वर्णन किया हुआ । उ० नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि । (मा० १११ श्लो० ७)

निगम-(सं०)-१. वेद, श्रुति, २. मार्ग, रास्ता, ३. हाट, बाज़ार, ४. व्यापार, व्यवसाय, ५. निश्चय, ध्रुव, पक्का, ६. मेला, भीड़ । उ० १. शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्म-चारी । (वि० ११) निगमहुँ-वेद के लिए भी । उ० भरत सुभाउ न सुगम निगमहुँ । (मा० २१३०४११)

निगानाँग-(? + सं० नग्न)-बिल्कुल नंगा, नंग-धड़ंग । उ० निगानाँग करि नितहि नचाइहि नाच । (ब० २४)

निगूड़-(सं०)-अत्यंत गुप्त, गहरा, सूक्ष्म ।

निगूड़ा-दे० 'निगूड़' । उ० समुझी नहि हरि गिरा निगूड़ा । (मा० १११३३१२)

निगोड़ा-(?) -१. जिसके आगे पीछे कोई न हो, आभागा, २. निकम्मा, बुरा, ३. एक गाली, कमीना । निगोड़ी- 'निगोड़ा' का स्त्रीलिंग । दे० 'निगोड़ा' । उ० ३. छलिन

की छोंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाती पाँति । (क० ७१२)
 निग्रह-(सं०)-१. रोक, अवरोध, २. दमन, ३. चिकित्सा, ४. वृद्ध, ५. पीड़न, सताना, ६. बंधन, ७. डाँट, फटकार, ८. सीमा, हद्द । उ० ६. सागर निग्रह कथा सुनाई । (मा० ७१७१४)
 निग्रहण-(सं०)-१. रोकने का कार्य, थामने का कार्य, २. वृद्ध देने का कार्य ।
 निग्रोध-(सं० न्यग्रोध)-१. बट वृक्ष, २. अक्षयवट ।
 निघटत-१. घटता है, २. बहुत कँपता है, ३. घटने पर । उ० १. जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे । (मा० २। ३२५।२) ३. निघटत नीर मीन गन जैसे । (मा० २। १४७।२) निघटि-समाप्त हो, नष्ट हो । उ० निघटि गण सुभट, सत सब को छुट्यो । (क० ६।४६)
 निचय-(सं०)-१. समूह, झुंड, २. निश्चय, ठीक, ३. संचय, इकट्ठा करना । उ० १. यथा रघुनाथ-सायक निसावर चमू-निचय-निर्दलन-पट्ट वेग भारी । (वि० ५७)
 निचाइहि-(सं० नीच)-नीचता को ही । उ० भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु । (मा० १।५) निचाई-नीचता, ओछापन, कमीनापन । उ० नीच निचाई नहि तजै सज्जन हू के संग । (दो० ३३७)
 निचोइ-[सं० नि० + च्यवन (=चूना)]-निचोइकर । उ० कहे बचन बिनीत प्रीति प्रतीति नीति निचोइ । (गी० २।५) निचोयो-निचोड़ा, गारा । उ० तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि-फिरि बिकल अकास निचोयो । (वि० २४५)
 निचोइ-(सं० नि० + च्यवन) तत्त्व, सार ।
 निचोर-दे० 'निचोड़' । उ० वामिनि-बरनतनु रूप के निचोर हैं । (गी० १।७१)
 निचोरि-१. निचोड़कर, गारकर, २. निचोड़, सार वस्तु, ३. मुख्य तात्पर्य, कथन का सारांश । उ० १. बरनहु रघु-बर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि । (मा० १।१०५)
 निचोल-(सं०)-१. आच्छादन, उपर का वस्त्र, २. वस्त्र, कपड़ा, ३. ओढ़नी, ४. चोली, ५. लहंगा, घाघरा । उ० २. हेमलता जनु तरु तमाल डिग नील निचोल ओढ़ाई । (वि० ६२)
 निछावर-(?)-१. उत्तारा, बलिहारी, कुर्बान, २. पारितोषिक, इनाम । निछावरि-दे० 'निछावर' । उ० १. करि आरती निछावरि बरहि निहारहि । (जा० १।२२) २. दूतन्ह देह निछावरि लागे । (मा० १।२६३।४)
 निज-(सं०)-१. अपना, स्वीय, जो पराया न हो, २. प्रधान, मुख्य, ३. वास्तविक, ठीक, यथार्थ, ४. उत्कृष्ट । उ० १. जौ फुर कहहुत नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवान । (मा० २।२५६) निजै-अपनी ही । उ० निसि दिन नाथ ! देउँ सिख बहु बिधि करत सुभाव निजै । (वि० ८६)
 निजु-दे० 'निज' । उ० १. प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई । (मा० २।७२।३)
 निडुर-(सं० निष्ठुर)-कठोर, निर्दय, स्नेहशून्य । उ० पुरी-सुरबेखि केलि काटत किरात कलि, निडुर निहारिए उघारि डीठि भाल की । (क० ७।१६६)
 निडुरता-(सं० निष्ठुरता)-निडुराई, कठोरपन, क्रूरता । उ०

निडुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न । (क० ५५)
 निडुराई-निष्ठुरता, निर्दयता, क्रूरता । उ० तुलसिदास सीदत निसि दिन देखत तुम्हारि निडुराई । (वि० १।१२)
 निडर-(नि + डर)-निर्भय, निःशंक, जिसे डर न हो, साहसी, हिम्मतवाला । उ० बाल बुभाए विविध बिधि निडर होहु डर नहि । (मा० १।६५)
 नितंब-(सं०)-कमर के पीछे का उठा हुआ भाग, चूतड़ ।
 नित-(सं०)-१. प्रतिदिन, रोज़, २. सदा, सर्वदा, हमेशा, ३. नाशरहित, अविनाशी । उ० १. पछिछे पहर मूपु नित जागा । (मा० २।३८।१) नितई-नित्य ही, हर रोज़ । नितहि-नित्य ही, सर्वदा ही । उ० सुर पुर नितहि परावन होई । (मा० १।१८०।४) नितहीं-नित्य ही । उ० अति दीन मलीन दुखी नितहीं । (मा० ७।१४।६)
 निति (१)-(?)-के लिए । उ० मीन जिअन निति बारि उलीचा । (मा० १।१६१।४)
 निति (२)-(सं० नित्य)-हमेशा, सर्वदा ।
 निति (३)-(सं० नीति)-नीति । सं० बिरह बिबेक धरम निति सानी । (मा० ६।१०६।२)
 नितै-(सं० नित्य)-नित्य ही । उ० भागीरथी जलपान करौ अरु नाम द्वै राम के खेत नितै हौं । (क० ७।१०२)
 नित्य-सर्वदा रहनेवाले को । उ० वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम् । (मा० १।१। श्लो० ३) नित्य-(सं०)-१. शाश्वत, जिसका कभी भी नाश न हो, २. प्रतिदिन का, रोज़ का, ३. प्रतिदिन, रोज़, सदा, सर्वदा, हमेशा, ४. हृद, अटल, निश्चय, ध्रुव, ५. यथार्थ, ठीक । उ० २. नित्य नेम-कृत अरुन उदय जब कीन । (ब० १३) ३. नित्य निर्मम, नित्य मुक्त निर्मान, हरि ज्ञान धन सचिदानंद मूलं । (वि० ५३)
 निदरत-(सं० निरादर)-निरादर करता । उ० सब सद्गुन सनमानि आनि उर, अघ औगुन निदरत को ? (गी० ६। १२) निदरहि-निरादर करते हैं । उ० जौ हम निदरहि बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगु नाथ । (मा० १।२८३) निदरहु-निरादर करें । उ० कै निदरहु कै आदरहु सिंहहि स्वान सियार । (दो० ३८१) निदरि-१. तिरस्कार करके, निरादर करके, अपमान करके, २. रोककर, ३. छुड़क कर, ४. जबरदस्ती, हठ करके । उ० १. बोलसि निदरि बिप्र के भौरें । (मा० १।२८३।३) निदरे-१. निरादर करके, २. निरादर किया, ३. निरादर करता है, ४. तिरस्कार करने पर । उ० १. सानुज निदरि निपातउँ खेता । (मा० २।२३०।४) २. निदरे रामु जानि असहाई । (मा० २। २२६।२) निदरेसि-निरादर किया । उ० जग-जय-मद निदरेसि हर, पायेसि फर तेउ । (पा० २६) निदरौ-१. अनादर करता हूँ, २. अनादर करूँ । उ० १. रज सम पर अवगुन सुमेरु करि गुन-गिरि सम रज ते निदरौं । (वि० १४१)
 निदाघ-(सं०)-ग्रीष्म ऋतु, घाम, उष्ण । उ० हुम-दल सिसिर सुखात, सब सह निदाघ अति लाल । (स० ६२६)
 निदान-(सं०)-१. आदि कारण, २. कारण, ३. रोग-निर्णय, रोग की पहिचान, ४. अंत, अवसान, ५. अंत

में, आखिरकार, ६. सर्वनाश, ७. निश्चय । उ० १. कर्म हू के कर्म, निदानहू के निदान हूँ । (क० ७।१२६) २. तुलसी गुसाईं भयो, भौंड़े दिन भूलि गयो, ताको फल पावत निदान परिपाक हौं । (ह० ४०)

निदाना-दे० 'निदान' । उ० ४. देहि अग्नि जनि करहि निदाना । (मा० २।१२।६)

निदानु-दे० 'निदान' । उ० ६. परेउ राउ कहि कोटि विधि काहे करसि निदानु । (मा० २।३६)

निदेश-(सं०)-१. शासन, २. आज्ञा, हुक्म, ३. कथन, ४. पास ।

निदेस-दे० 'निदेश' । उ० २. प्रीति को अधिक, रस रीति को अधिक, नीति-निपुन, विवेक है निदेस देसकाल को । (क० ७।१३५)

निदेसा-दे० 'निदेश' । उ० २. सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा । (मा० ७।२६।४)

निद्रा-(सं०)-नींद, उँचाई, एक ऐसी अवस्था जिसमें पलकें बंद करके प्राणी चेतनारहित हो जाता है ।

निघड़क-[नि + घड़क (अनु० घड़)]-१. निर्भय, निडर, साहसी, २. बिना डर के, बेखटक ।

निघन-(सं०)-१. नाश, २. मरण, ३. धनहीन, कंगाल । उ० १. भीयम-द्रोन-करनादि-पालित, काल इक, सुयोधन-वधु-निघन हेतु । (वि० २८) २. बंधु निघन सुनि उपजा क्रोधा । (मा० २।११।२)

निघरक-दे० 'निघड़क' । उ० २. निघरक बैठि कहइ कहइ बानी । (मा० २।४१।१)

निधानं-दे० 'निधान' । उ० १. चर्म-असि शूलधर, डमरु शर चापकर, यान वृषभेश, करुणानिधानं । (वि० ११)

निधान-(सं०)-१. भंडार, खज़ाना, ढेर, २. लय स्थान, वह स्थान जहाँ कोई चीज जाकर लय हो जाय, ३. घर, ४. आधार, आश्रय । उ० १. गुण ग्यान निधान अमान अजं । (मा० ६।११।१२)

निधाना-दे० 'निधान' । उ० १. तापस सम दम दुया निधाना । (मा० १।४४।१)

निधानु-दे० 'निधान' । उ० १. पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु । (मा० २।१८)

निधानू-दे० 'निधान' । उ० १. रामु सहज आनंद निधानू । (मा० २।४१।३)

निधि-(सं०)-१. कुबेर का खज़ाना, कुबेर के रत्न जिनकी संख्या ६ कही गई है । नौ निधियाँ ये हैं—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और बर्च्य, २. खज़ाना, ढेर, भंडार, ३. आधार, आसरा, ४. समुद्र, ५. धन का भंडार, ६. घर । उ० १. जेहि गए सिधि होय परम निधि पाइय हो । (रा० १) २. सकल-सौंदर्य-निधि, विपुल-गुण-धाम निधि-वेद बुध शंभु सेवित अमानम् । (वि० ६०) निधिम्-खान को, ढेर को । उ० योगीन्द्र ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् । (मा० ६।१। श्लो० १)

निनाद-(सं०)-शब्द, आवाज़ ।

निनारे-(सं०) तिः + निकट, प्रा० निनिअइ, हि० निनर-

अलग, दूर, हटा हुआ । उ० ज्ञान कृपान समान लागत उर, बिहरत छिन-छिन होत निनारे । (क० २६)

निपट-(?)-१. निरा, विशुद्ध, खाली, २. सरासर, एकदम, बिल्कुल, नितांत । उ० १. भीर बाहँ पीर की निपट राखी महाबीर कौन के सँकोच, तुलसी के सोच भारी है । (ह० २७) २. बिबरन भयउ निपट नरपालू । (मा० २।२६।३)

निपटहि-निरा ही, बहुत ही, बिल्कुल ही । उ० निपटहि डाँटति निडुर ज्यों, लकुट कर तें डार । (क० १४)

निपात-(सं०)-१. पतन, नाश, विनाश, २. मृत्यु, ३. अधः-पतन, गिराव । उ० ३. मनजात किरात निपात किय । (मा० २।१४।४)

निपातउँ-गिराऊँगा, पछाड़ूँगा । उ० सातुज निदरि निपातउँ खेता । (मा० २।२३।०।४) निपाता-१. गिराया, २. नष्ट किया, ३. उखाड़ फेंका हो, ४. काट डाला । उ० ४. केहँ तव नासा कान निपाता । (मा० ३।२२।१) निपाते-मार डाला, नष्ट कर डाला । उ० बड़े-बड़े बानहत बीर बलवान बड़े, जातुधान जूधप निपाते बात जात हैं । (क० ६।४१) निपाति-मारकर, नष्ट कर । उ० ताहि निपाति महाधुनि गर्जौ । (मा० २।१८।४)

निपुण-(सं०)-दक्ष, कुशल, पटु, चतुर ।

निपुन-दे० 'निपुण' । उ० अखिल खल निपुन-कुल-छिद्र निरखत सदा जीव-जन-पथिक-मन-खेदकारी । (वि० २६)

निपुनता-(सं०) निपुणता-चतुरता, चातुरी, निपुणाई । उ० लघु लाग बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही । (मा० १।६४। छं० १)

निपुनाई-निपुणता, चतुराई । उ० लागइ लघु बिरचि निपुनाई । (मा० १।६४।४)

निफन-(सं०) निष्पन्न, पा० निष्फल-पूरा, पूर्ण, संपूर्ण, थच्छी तरह, भली भाँति । उ० जोते बिनु बपु बिनु निफन निराए बिनु । (गी० २।३२)

निफल-(सं०) निष्फल प्रा० निष्फल-निरर्थक, बेकार, निष्फल । उ० निफल होहि रावन सर कैसैं । (मा० ६। २।१३)

निबंध-(सं०)-प्रबंध, रचना । उ० स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा-भाषा निबंध मति मंजुलमातनोति । (मा० १।१। श्लो० ७)

निबरत-(सं०) निवर्तन, प्रा० निबट्टन-निबरते, छुटकारा पाते, निवृत्त होते । उ० पाइकै उराहनो-उराहनो न दीजै मोहि, काल-कला कासीनाथ कहे निबरत हौं । (क० ७। १६५) निबरयो-१. चुक गया, २. निश्चित हो गया, ३. छुटकारा पा गया । उ० २. प्रभु की सौं करि निबरयो हौं । (वि० २६७)

निबल-(सं०) निर्बल-अशक्त, कमजोर, निर्बल । उ० प्रभु समीप छोटे, बड़े, निबल होत बलवान । (दो० ५२७)

निबर्हंत-निर्वाह करते हैं । उ० पर काजै परमारथी, प्रीति लिए निबर्हंत । (वै० १०) निबह (१)-बसे हों । उ० जनु बिधु-निबह रहे करि दामिनि-निकर निकेत । (गी० ७।२१)

निबहइ-(सं०) निर्वाह-१. निभता है, २. निभेगा । उ० २. सखा धरम निबहइ केहि भाँती । (मा० २।४६।३)

निबहति-निभती है, निभ जाती है । उ० राम ! रावरे

निबाहे सब ही की निबहति । (वि० २४६) निबहते-निर्वाह होता । उ० तौ कालि कठिन करम-मारग जड़ हम केहि भाँति निबहते ? (वि० १७) निबहहिंगे-निर्वाह करेंगे । निबहा-निबह गया, निभ गया । उ० कै तुलसी जाको राम-नाम सौं प्रेम-नेम निबहा है । (गी० २।६४) निबही-भरी, पूरी, पूरी है । उ० धन-दामिन-बर बरन, हरन-मन सुंदरता नखसिख निबही री । (गी० १।१०४) निबहै-निर्वाह हो, बनी रहे । उ० जन्म जहाँ तहँ रावरे सौं निबहै भरि देह सनेइ सगाई । (क० ७।१८) निबहैगो-निभेगा । उ० तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो । (वि० २५६) निबहैगो-निभाऊंगा, पालन करूंगा, निर्वाह करूंगा । उ० परहित-निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहैगो । (वि० १७२) निबह्यो-निर्वाह हो गया, पूरा हो गया । उ० ताको तौ कपिराज आज लगि कछु न काज निबह्यो है । (गी० ४।२)

निबह (२)-(?)-समूह । उ० मनहुँ उडुगन-निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु । (गी० ७।६)

निबाह-(सं० निर्वाह)-१. रहाइल, गुजारा, निर्वाह, २. लगातार साधना, परंपरा की रक्षा, किसी बात के अनु-सार निरंतर व्यवहार, ३. पालन, ४. बचाव का ढंग, छुटकारे का रास्ता । उ० १. नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर । (क० ७।१२३)

निबाहा-(सं० निर्वाह) १. दे० 'निबाह', २. निर्वाह किया । उ० २. जेहि न प्रेमपनु मोर निबाहा । (मा० १।५।३) निबाहि-१. निबाहकर, पूरा करके, २. उबारो, बचाओ, ३. समाप्त करके । उ० १. नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए । (मा० १।२२।१) निबाहिब-निर्वाह कीजिएगा, निबाहिपगा । उ० तहँ तहँ राम निबाहिब नाम सनेहु । (ब० ६६) निबाहिथे-निर्वाह कराइए, निर्वाह करा दीजिए । उ० तुलसी तिहारो मन बचन करम, तेहि नाते नेह नेम निज ओर तें निबाहिए । (क० ७।७६) निबाहीं-निबाह दिया, इच्छाएँ पूरी कीं, पूरी कीं । उ० प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं । (मा० २।४।२) निबाहीं-निबाह, निर्वाह कर । उ० आजु बयर सबु लेउँ निबाही । (मा० ६।६०।४) निबाहु-१. निभाओ, निर्वाह करो, २. जैसी चाहिए वैसी गठन । उ० १. राम नाम पर तुलसी नेहु निबाहु (ब० २७) २. चितै चित हित-सहित नखसिख अंग-अंग-निबाहु । (गी० १।६५) निबाहुँ-निबाहनेवाले हैं, निबाह किया है । उ० तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न सरन गए रघुबर ओर-निबाहुँ । (वि० २७५) निबाहें-निबाहने से ही । उ० तुलसी हित अपनी अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहें । (वि० ६५) निबाहे-निबाहने से, निबाहने के कारण । उ० प्रेम-नेम के निबाहे चातक सराहिए । (वि० १७८) निबाहेउ-निबाहा, निर्वाह किया । उ० कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहु । (मा० २।२०।३) निबाहै-निबाह दें, निर्वाह कर दें । उ० जौ बिधि कुसल निबाहें काज । (मा० २।१०।२)

निबाहु-दे० 'निबाह' । उ० १. उचरहि अंत न होइ निबाहु । (मा० १।७।३)

निबिड़-(सं० निबिड़)-१. घना, सघन, २. भीषण, घोर,

भयानक । उ० १. कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग । (मा० ४।१५ ख)

निबुकि-(सं० निमुँक, प्रा० निम्मुक्त)-निमुँक होकर, छूटकर । उ० लघु है निबुकि गिरि मेरु तें बिसाल भो । (क० ५।४) निबृत्ति-दे० 'निवृत्ति' । उ० नोइ निवृत्ति पात्र विस्वासा । (मा० ७।११।६)

निवेदित-(सं० निवेदन) प्रार्थना करके, भोग लगा कर, अर्पण करके । उ० तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं । (मा० २।१२।१)

निबेरीं-(सं० निवृत्त) पूरा किया । उ० नेग सहित सब रीति निबेरीं । (मा० १।३२।४) निबेरे-(सं० निवृत्त) छुड़ाए, दूर किए । उ० तुलसिदास यह बिपति बाँगुरी तुमहि सौं बनै निबेरे । (वि० १८७) निबेरो-दूर कर दिया है, हटा दिया है । उ० छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति जूति संवेह निबेरो । (वि० ८७)

निबेही-(सं० निवृत्त)-अच्छता, मुक्त, उन्मुक्त । उ० कोउ न मान मद तजेउ निबेही । (मा० ७।७।१)

निभ-(सं०)-तुल्य, समान । उ० हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला । (मा० ६।५।३।१)

निभरम-(सं० निर्भ्रम)-निःशंक, अमरहित । उ० जीते लोक-नाथ नाथ बल निभरम । (वि० २४६)

निभगन-(सं०)-मग्न, डूबा हुआ, तन्मय, लीन ।

निमज्जत-(सं० निमज्जित)-१. डूबता हुआ, २. स्नान करता है, ३. स्नान करने पर । उ० १. सोक-समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसो । (मा० ७।४) ३. प्रेम सनेम निमज्जत प्राणी । (मा० २।३।१०।४) निमज्जहिं-स्नान करते हैं । उ० निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा । (मा० २।२२।१)

निमज्जन-(सं०)-स्नान । उ० पूजहि सिवहि समय तिहुँ करहि निमज्जन । (पा० ४०)

निमज्जनु-दे० 'निमज्जन' । उ० कीन्ह निमज्जनु तीरथ-राजा । (मा० २।२।१।१)

निमि-(सं०)-इच्छाकुर्वशी एक राजा जिनका निवास मनुष्य की पलकों पर माना जाता है । कहा जाता है कि उन्हीं के अधिकार से पलकों खुलतीं और बंद होती हैं । उ० निरखाहि नारि-निकर बिदेहपुर निमि नृप की मरजाद मिटाई । (गी० १।१०।६)

निमिराज-(सं०)-निमिबंशी राजा जनक ।

निमिष-(सं०)-१. निमेष, आँखों का मिलना, पलकों का गिरना, २. वह समय जो पलकों के गिरने में लगता है, ३. पलकों का एक रोग, ४. पलक । उ० २. परम पावन पाप पुंज-मुंजाटवी-अनल-इव-निमिष-निर्मूल कर्ता । (वि० ५५)

निमेषी-(सं० निमेष)-पलक का गिरना ।

निमेष-(सं०)-पलक मारने का समय, बहुत थोड़ी देर, क्षण मात्र । उ० लव निमेष महँ सुवन निकाया । (मा० १।२२।२) निमेषें-पलक मारना, पलक गिराना । उ० नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें । (मा० १।२४।१) निमेषै-पलकों के मारने को । उ० बिथके बिलोचन निमेषै बिस-राइ कै । (गी० १।८२)

निमोह-(सं०)-१. बिना मोह का, मोहरहित, २. ज्ञानी, ३. निर्दय, निडुर, दयारहित । उ० १. निर्भरानंद निःकंप निःसीम निर्युक्त निरुपाधि निर्मम बिधाता । (वि० ५६)
 नियंता-(सं० नियन्त)-१. व्यवस्था करनेवाला, कायदा बाँधनेवाला, २. कार्य को चलानेवाला, ३. शिक्षक, ४. घोड़ा फेरनेवाला, ५. विष्णु । उ० १. नित्य निर्मुक्त संयुक्त गुण निर्गुनानंत भगवंत नियामक नियंता । (वि० ५५)
 नियत-(सं०)-१. निश्चित, स्थिर, २. संयत, परिमित, पाबंद, ३. शिव, महादेव, ४. प्रारब्ध । उ० ४. तहँ तहँ दू विषय-सुखहि चहत, लहत नियत । (वि० १३२)
 नियम-(सं०)-१. प्रतिबंध, रोक, पाबंदी २. परंपरा, दस्तूर, ३. व्यवस्था, पद्धति, ४. प्रतिज्ञा, शर्त, ५. शासन, ६. योग के ऽ अंगों में से एक । शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान, इन सब क्रियाओं का पालन नियम कहलाता है । ७. याज्ञवल्क्य स्मृति में १० नियम गिनाए गए हैं-स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, वेद-पाठ, इंद्रिय-निग्रह, गुरु-सेवा, शौच, अक्रोध तथा अग्रमाद । ८. विष्णु, ९. शिव, १०. एक अर्थालंकार । उ० ६. सम जम नियम फूल फल ज्ञाना । (मा० १३७।७)
 नियर-(सं० निकट, प्रा० निम्न)-पास, समीप ।
 नियराहन्दि-समीप आ गया । उ० सिय नैहर जनकौर नगर नियराहन्दि । (जा० १३४) नियरानु-दे० 'निम्नरानु' ।
 नियरे-समीप, पास । उ० सुनि सुख लहै मजु रहै नित नियरे । (गी० १।४१)
 नियामक-(सं०)-१. नियम करनेवाला, प्रबंधक, २. व्यवस्था करनेवाला, ३. मारनेवाला, बधिक, ४. माफ़ी, मझाह, ५. पार करनेवाला, समुद्र या नदी आदि पार उतारनेवाला । उ० १. नित्य निर्मुक्त संयुक्त गुण निर्गुनानंत भगवंत नियामक नियंता । (वि० ५५)
 नियारा-(सं० निर्निकट प्रा० निम्नियर, हि० न्यारा)-अलग, पृथक्, न्यारा ।
 नियोग-(सं०)-१. तैनाती, मुकरंरी, २. आज्ञा, आदेश, ३. निश्चय, ४. शासन, ५. अनुमति, ६. प्रवृत्ति । उ० २. निगम नियोग ते सो केखि ही छरो सो है । (क० ७। ८४)
 नियोगा-दे० 'नियोग' । उ० २. मागि मातु गुर सचिव नियोगा । (मा० २।२३३।३)
 निरंकुश-(सं०)-स्वतंत्र, बेअदब, हठीला, स्वेच्छाचारी, उहड़ ।
 निरंकुस-दे०, निरंकुश' । उ० निपट निरंकुस निडुर निसंकु । (मा० २।११७।२)
 निरंजन-(सं०)-अजनरहित, कल्प या माया से रहित, स्वच्छ, निर्मल, मोह या राग-द्वेष आदि विकारों से मुक्त । यह परमात्मा का एक विशेषण है । उ० व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद । (मा० १।११५)
 निरंतर-(सं०)-१. अंतररहित, अविच्छिन्न, २. घना, निविड़, ३. लगातार, अटूट, ४. स्थायी, सदा रहनेवाला, ५. सर्वदा, हमेशा, ६. जो अंतर्धान न हो, जो दृष्टि से ओझल न हो । उ० ४. संत-भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि मति मलिन कह दास तुलसी । (वि० ५७)

निरंजु-जल के बिना, बिना पानी का, सूखा, निर्जल । उ० ब्रतु निरंजु तेहि दिन प्रभु कीन्हा । (मा० २।२४७।४)
 निरंजुर-(सं०)-अक्षर-शून्य, मूर्ख, अपढ़, अनपढ़ ।
 निरखंति-(सं० निरीक्षण)-अवलोकन करते हैं, देखते हैं, निहारते हैं । उ० नसत बिबुधापगा निकट तत सदन बर, नयन निरखंति नरतेऽतिधन्या । (वि० ६१) निरखत-१. देखता है, देखते हैं, २. देखते ही । उ० १. अखिल खल निपुन-छल-छिद्र निरखत सदा जीव-जन-पथिक मन-खेदकारी । (वि० ५६) निरखतहि-देखते ही । उ० दे० 'निरखनिहारू' । निरखहि-१. देखते हैं, २. देखकर उ० २. निरखहि छवि जननी तृन तोरी । (मा० १।११५।३) निरखि-देखकर, निहारकर । उ० नयन मलिन पर नारि निरखि । (वि० ८२) निरखु-देख, देखो । उ० स्वामल गौर किसोर पथिक दोउ सुसुखि ! निरखि भरि नैन । (गी० २।२४) निरखे-देखे, देख पाए । उ० जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाह । (मा० २।२०६) निरखै-देखती है । उ० माता लै उछंग गोबिंद मुख बार-बार निरखै । (क० १)
 निरखनिहारू-देखनेवाला, निरखनेवाला । उ० दास तुलसी निरखतहि सुख लहत निरखनिहारू । (गी० ७।८)
 निरगुन-(सं० निर्गुण)-१. गुणरहित, व्यर्थ, निरकम्मा, २. निराकार ब्रह्म, जो गुणों से बंधा नहीं है । उ० १. निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ । (वि० १५३)
 निरगुनी-मूर्ख, गुणहीन । उ० रंक निरगुनी नीच जितने निवाजे हैं । (वि० १८०)
 निरच्छर-दे० 'निरक्षर' । उ० विप्र निरच्छर लोलुप कामी । (मा० ७।१००।४)
 निरजोषु-(सं० जुष)-जो तौला न जा सके, अतौल ।
 निरजोस-(सं० निर्यास)-१. निचोड़, २. निर्याय, ३. निश्चय ।
 निरजोसु-दे० 'निरजोस' । उ० १. यह निरजोसु दोसु विधि बामहि । (मा० २।२०१।४) २. मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु । (वि० १५६)
 निरभर-(सं० निर्भर)-भरना, निर्भर । उ० निरभर मधु बर मृदु मलय बात । (वि० २३)
 निरतं-लगे हुए को । निरत-(सं०)-१. तत्पर, लीन, २. आसक्त, लिस । उ० १. राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल । (मा० २।२१६) २. एहि आरती निरत सन-कादि श्रुति सेष सिव देव ऋषि अखिल मुनि तत्वदरसी । (वि० ४७)
 निरति-(सं०)-१. अप्रीति, २. बेगज़्जी ।
 निरदय-(सं० निर्दय)-दयाहीन, कठोर । उ० निज तनु पोषक निरदय भारी । (मा० २।१७३।२)
 निरदहन-निश्चय ही जलानेवाले, अत्यंत जलानेवाले । उ० गहन-दहन-निरदहन-लंक, निःसंक, बंक भुव । (ह० १)
 निरदह्यो-जलाया । उ० को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहीं कीन्हों ? (क० ७।११७)
 निरधन-(सं० निर्धन)-गरीब, धनहीन । उ० निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ । (वि० १५३)

निरधार-(सं० निर्धारण)-१. ठीक, २. निश्चय, निर्णय ।
 निरनउ-(सं० निर्णय)-निर्णय, फैसला । उ० चलत प्रात
 लखि निरनउ नीके । (मा० २।१८२।१)
 निरनय-(सं० निर्णय)-निश्चित बात, निर्णय, फैसला ।
 निरपने-(सं० निः+आत्मनो, प्रा० अप्पणो)-अन्य, गैर,
 पराये, अपने नहीं । उ० जानकी-रमन मेरे ! रावरे बदन
 फेरे, ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपने । (क० ७.७८)
 निरपेत्त-वासनाहीन, जिसे किसी चीज़ की इच्छा न हो,
 बेपरवाह । उ० शांत निरपेत्त निर्मम निरामय अगुन शब्द-
 ब्रह्मैक पर-ब्रह्म-ज्ञानी । (वि० ५७)
 निरबहई-दे० 'निर्बहई' । निरबहनि-निर्वाह होने का भाव,
 पूरा पड़ते जाने का भाव । उ० दिन-दिन पन प्रेम नेम
 निरुपाधि निरबहनि । (गी० २।८१) निरबहा-निभ गया,
 अच्छी तरह बीत गया । उ० कहतेउँ तोहि समय निर-
 बहा । (मा० ६।६३।३) निरबही-पूरी उतर गई, निभ
 गई । उ० सिथिल सनेह सराहत नखसिख नीक निकाई
 निरबही । (गी० ५।३१) निरबह्यो-शान्त हो गया,
 निश्चित हो गया । उ० अपने सो नाथ हूँ सों कहि निर-
 बह्यो हौं । (वि० २६०)
 निरबान-(सं० निर्वाण)-मोक्ष, मुक्ति । उ० नाना पथ निर-
 बान के, नाना बिधान बहु भाँति । (वि० १६२)
 निरबाहक-निर्वाह करनेवाले, गुज़र करनेवाले, रचा करने-
 वाले । उ० गई-बहोर, और निरबाहक, साजक बिगरे साज
 के । (गी० ५।२६)
 निरबाहा-निबाह सकता है । उ० तुम्ह बिनु अस ब्रतु को
 निरबाहा । (मा० १।७६।३) निरबाहिबो-निर्वाह करेंगे ।
 निरबाहु-(सं० निर्वाह)-गुज़र, निबाह । उ० का सेवा सुग्रीव
 की, का प्रीति-रीति-निरबाहु । (वि० १६३)
 निरभय-(सं० निर्भय)-निडर, निशंक, बिना भय का । उ०
 तुलसी निरभय होत नर सुनियत सुरपुर जाइ । (दो० ४६७)
 निरमई-(सं० निर्माण)-रची, बनाई । उ० मोको गति
 दूसरी न बिधि निरमई । (वि० २५२) निरमय-१. बनाना,
 बनाइएगा, २. बनाया । निरमयउ-बनाया, रचा,
 रचना की । उ० बंदउँ मुनि पद कंजु, रामायन जेहि निर-
 मयउ । (मा० १।१४ घ) निरमयऊ-रचा, बनाया, रचना
 की । उ० निज मायाँ बसंत निरमयऊ । (मा० १।१२६।१)
 निरमये-निर्माण किये, बनाये । उ० तुलसी आइ पवन
 सुत-बिधि मानो फिर निरमये नये हूँ । (गी० ६।५)
 निरमल-(सं० निर्मल)-स्वच्छ, साफ़, बिना मैल का । उ०
 सत्य संध, सत्य ब्रत परम धरम रत, निरमल करम बचन
 अरु मन के । (वि० ३७)
 निरमान (१)-(सं० निर्माण)-निर्माण, रचना, बनाने की
 क्रिया । उ० बिरंचि बुद्धि को बिलास लंक निरमान भो ।
 (क० ५।३२)
 निरमान (२)-(निः+मान)-अहंकाररहित ।
 निरमित-(सं० निर्मित)-बना हुआ, रचित ।
 निरमूलिनी-दे० 'निर्मूलिनी' ।
 निरमोख-(सं० निर्मोख)-त्याग । उ० म्यान गरीबी गुरु-
 धरम नरम बचन निरमोख । (स० १२३)
 निरमोहियन-ऐसे लोग जिनके हृदय में मोह न हो । उ०

ऊयो ! प्रीति करि निरमोहियन सों कोन भयो दुख दीन ?
 (क० ५५) निरमोहा-(सं० निर्मोह)-मोहरहित, जिसे
 किसी से प्रेम न हो ।
 निरय-(सं०)-नरक, दोजख । उ० जातें निरय-निकाय
 निरंतर सोइ इन्ह तोहि सिखायो । (वि० १६६)
 निरलज्ज-(सं० निर्लज्ज)-बेशर्म, जिसे किसी बात की
 लाज न हो ।
 निरलेप-(सं० निर्लेप)-जो किसी विषय में आसक्त न हो ।
 उ० जे बिरंचि निरलेप उपाए । (मा० २।३१।४)
 निरवध-(सं० निर्वध्य)-निर्दोष, साफ़, जिससे कोई त्रुटि
 न हुई हो ।
 निरवाध-(सं०)-अवधि रहित, सीमा रहित, असीम,
 जिसकी कोई मर्यादा न हो । उ० निरवधि गुन निरुपम
 पुरुष भरतु भरत सम जानि । (मा० २।२८८)
 निरवाहक-निर्वाह करनेवाले । उ० गई-बहोर, और निर-
 वाहक, साजक बिगरे साज के । (गी० ५।२६)
 निरव्यलीक-निष्कपट । दे० 'निर्व्यलीक' ।
 निरस-(सं०)-१. जिसमें रस न हों, रसबिहीन,
 सूखा, २. लाभरहित, ३. विरक्त, ४. बिना स्वाद का,
 फीका । उ० १. निरस भूरुह सरस फूलत फलत अति
 अधिकाइ । (गी० ७।३३) ३. जयति सीतेस-सेवा सरस,
 विषयरस-निरस, निरुपाधि, धुर धर्मधारी । (वि० ३८)
 निरस्य-(सं०)-१. हटाने के योग्य, फेंकने लायक, २.
 निग्रह करके, दूर हटाकर । उ० २. निरस्य इंद्रियादिकं ।
 प्रयांति ते गति स्वकं । (मा० ३।४। छं० ८)
 निराए-खेत में से व्यर्थ की घासों को निकाले, खेत के खरों
 को साफ किए । उ० जोते बिनु, बए बिनु, निफन निराए
 बिनु । (गी० २।३२) निरावहिं-(सं० निराकरण)-
 निराते हैं । उ० कृषी निरावहिं चतुर किसाना । (मा०
 ४।१५।४)
 निराकार-निराकार को । उ० निराकारमोंकार मूलं तुरीयं ।
 (मा० ७।१०।८२) निराकार-(सं०)-बिना आकार का,
 ब्रह्म, ईश्वर । यह ब्रह्म का एक विशेषण है । उ० निर्गुन
 गननायक निराकार । (वि० १३)
 निराचार-आचारभ्रष्ट, आचारविहीन । उ० निराचार जो
 श्रुति पथ त्यागी । (मा० ७।६।४)
 निरादर-(सं०)-तिरस्कार, अपमान, अप्रतिष्ठा । उ० मुक्ति
 निरादर भगति लुभाने । (मा० ७।११।६)
 निरादर-दे० 'निरादर' । उ० उचित न तासु निरादर कीन्हें ।
 (मा० २।४३।३)
 निराधार-(सं०)-१. जिसका कोई भी आधार न हो, बे-
 सहाय, २. मिथ्या, जो प्रमाणों से पुष्ट न हो । उ० १.
 भाय-बाप भूखे को आधार निराधार को । (वि० ६३)
 निरापने-(निः+आपने)-पराए, बेगाने, जो अपने नहीं हैं ।
 उ० सब दुख आपने, निरापने सकज सुख, जौ लों जन
 भयो न बजाइ राजा राम को । (क० ७।१२४)
 निरामयं-नीरोग को । उ० तुमहू दियो निज धाम राम
 नमानि ब्रह्म निरामयं । (मा० ६।१०।४। छं० १) निरामय-
 (सं०)-निरोग, सुखी । उ० शांत निरपेत्त निर्मय निरामय
 अगुन शब्द ब्रह्मैक पर-ब्रह्म-ज्ञानी । (वि० ५७)

निरामिष-(सं०)-मांस न खानेवाला । उ० होहि निरामिष कबहुँ कि कागा । (मा० ११११)

निरारी-(सं० निरालय, हि० निराला)-निराली, अनोखी । उ० तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी । (वि० ३४)

निरास-(सं० निराश)-नाउग्मेद, जिसे आशा न हो । उ० भा निरास उपजी मन आसा । (मा० ३१२२)

निरासा-(सं० निराशा)-आशा का न होना, नाउग्मेदी । उ० नृप समाज सब भयउ निरासा । (मा० ११३५२)

निराश-(सं०)-१. बिना ईश या स्वामी का, अनाथ, २. नास्तिक, अनीश्वरवादी ।

निरास-दे० 'निराश' । उ० २. नीच निसील निरीस निसंकी । (मा० २१२६११)

निरीह-(सं०)-१. चेष्टारहित, जो किसी चीज़ के लिए प्रयत्न न करे, २. इच्छारहित, जिसे किसी बात की चाह न हो, निस्पृह, ३. शांत, ४. विरक्त । उ० २. ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी । (मा० ७७२१४)

निरुअरई-(सं० निवारण, हि० निरुवार)-छूट पाती है, सुलभ पाती है । उ० तबहु कदाचित सो निरुअरई । (मा० ७११७४)

निरुअरै-सुलभाया । उ० निज कर राम जटा निरुअरै । (मा० ७१११२)

निरुक्त-(सं०)-१. निश्चय रूप से कहा हुआ, नियुक्त, ठहराया हुआ, २. वेद के छः अंगों में से चौथा अंग । इसे यास्क मुनि ने लिखा था । इसमें वैदिक शब्दों की व्याख्या है ।

निरुज-(सं० नीरुज)-निरोग, स्वस्थ । उ० मारिष तो अनायास कासी बास खास फल, ज्याइए तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं । (क० ७११६६)

निरुत्तर-(सं०)-चुप, बे जबाब । उ० बंधु-बधूरत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि । (दो० १२७)

निरुपउं-(सं० निरूपण)-निरूपण किया ।

निरुपधि-दे० 'निरुपाधि' ।

निरुपाधि-(सं०)-१. उपाधिरहित, संज्ञारहित, २. बाधारहित, व्यवधानरहित, ३. मायारहित, ४. ब्रह्म । उ० २. धातुवाद, निरुपाधि बर, दुरे पुरान सुभ ग्रंथ । (दो० ५५६)

३. गुध्र-शवरी-भक्ति-विवश करुणासिंधु, चरित-निरुपाधि त्रिविधार्ति-हर्ता । (वि० ४३)

निरुपाधी-दे० 'निरुपाधि' । उ० २. कलि मति बिकल न कछु निरुपाधी । (वि० १२८)

निरूपन-(सं० निरूपण)-किसी विषय का विवेचनापूर्ण वर्णन, विस्तार से किसी चीज़ का वर्णन, निदर्शन । उ० भगति निरूपन विविध विधाना । (मा० ११३७८)

निरुपउं-दे० 'निरुपउं' । उ० सगुन निरुपउं करि हठ भूरी । (मा० ७११११७)

निरुपहिं-निरूपण करते हैं, वर्णन या विवेचन करते हैं । उ० भगति निरुपहिं भगत कलि, निर्दाहिं बेद पुरान । (दो० ५५४)

निरुपा-निरूपण किया है, वर्णन किया है, विवेचना की है, कहा है । उ० नेति-नेति जेहि बेद निरुपा । (मा० ११३४३)

निरै-(सं० निरय)-नरक, दोषप्रद ।

निर-१. नहीं, बिना, २. निश्चय, ३. बाह्य, बाहरी, बाहर का, ५. उचित । उ० १. दे० 'निर्दय', 'निर्दम', 'निर्गुण' ।

निर्गत-(सं०)-निकला हुआ, बाहर आया हुआ ।

निर्गता-(सं०)-निकली हुई । उ० नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी । (मा० ७१३१४० ४)

निर्गम-निकलना, बाहर जाना ।

निर्गमहिं-बाहर निकलते हैं । उ० एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार । (मा० २१२३)

निर्गुण-निर्गुण को । उ० योगींद्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणनिर्विकारम् । (मा० ६११ श्लो० १)

निर्गुण-(सं०)-१. सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों से परे, परमेश्वर, २. जिसमें कोई गुण न हो, सूख, डुरा ।

निर्गुन-दे० 'निर्गुण' । उ० १. नित्य निर्मोह निर्गुन निर्जन निजानंद निर्वाण निर्वाणदाता । (वि० ५६)

निर्जोष-निश्चय, अवश्य । दे० 'निरजोषु' ।

निर्कर-दे० 'निर्कर' । उ० १. ऋत से गिरता हुआ जल-प्रवाह, २. सूर्य का घोड़ा । उ० १. ऋपिन के आश्रम सराहैं, सृग नाम कहैं, लागी मधु, सरित, ऋत निर्कर हैं । (गी० २४५)

निर्गुण-(सं०)-औचित्य और अनौचित्य आदि का विचार करके किसी विषय के दो पक्षों में से एक पक्ष को ठीक ठहराना । निश्चय, फैसला ।

निर्दम-(सं०)-अहंकार रहित, दंभ या गर्व से रिक्त । उ० सब निर्दम धर्मरत पुनी । (मा० ७२१४४)

निर्दय-(सं०)-जिसके हृदय में दया न हो, बेरहम, निष्ठुर । उ० द्वेष मत्सर-राग प्रबल प्रत्युह प्रति, शूरि निर्दय, क्रूर-कर्म-कर्ता । (वि० ६०)

निर्दयी-दयाहीन, बेरहम ।

निर्दलन-दलनेवाले, नष्ट करनेवाले । उ० यथा रघुनाथ-सायक निसाचर चमू-निचय-निर्दलन-पट्ट वेग भारी । (वि० ५७)

निर्दहन-जलानेवाले, दहन करनेवाले ।

निर्दह्यौ-जलाया, संतप्त किया ।

निर्देष-(सं० निर्देश)-१. आज्ञा, कथन, २. प्रस्ताव, ३. निर्णय ।

निर्दन्द-(सं०)-१. बिना विरोध या झगड़े का, जिसके लिए कोई द्वंद्व न हो, २. जो राग, द्वेष, मान, अपमान आदि द्वंद्वों से परे हो, ३. स्वतंत्र, स्वच्छंद ।

निर्धन-(सं०)-जिसके पास धन न हो, धनहीन, कंगाल ।

निर्नय-दे० 'निरनय' । उ० निर्नय सकल पुरान बेद कर । (मा० ७१४११)

निर्पेक्ष-(सं०)-१. निस्पृह, निरीह, इच्छारहित, २. उदासीन, विरक्त, ३. जो किसी का शत्रु-मित्र न हो ।

निर्बस-दे० 'निर्वस' । उ० १. दुष्ट-दुजोस निर्बस कृत दास-हित बिरव दुख-हरन बोधैक रासी । (वि० ५८)

निर्वहई-(सं० निर्वाह)-निर्वाह कर लेता है, निबाह लेता है । उ० जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई । (मा० ७११६१)

निर्वहिहौं-पूरा करूंगा, निबाहूंगा । उ० दीजै बचन कि हृदय आनिष तुलसी को पन निर्बहिहौं । (वि० २३१)

निर्वही-निर्वाह चाहता है । उ० दास तुलसी राम-चरन-

पंज सदा बचन मनकर्म चहै प्रीति नित निर्बही । (गी० ७।६) निर्बहै-१. छूट गए, २. बचा गए, ३. निभ गए ।
 उ० १. जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिविधि दुख ते निर्बहै । (मा० ७।१३।२)
 निर्बान-दे० 'निर्वाण' । मुक्ति, मोक्ष । उ० राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान । (मा० ३।२० क)
 निर्बिकार-(सं० निर्बिकार)-बिना किसी विकार का, शुद्ध । उ० निर्बिकार निरवधि सुखरासी । (मा० ७।११।३)
 निर्भय-(सं०)-जिसे भय न हो, निडर । उ० निर्भय होहु देव समुदाह । (मा० १।१८।७)
 निर्भर-(सं०)-पूर्ण, भरा । उ० तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंज दिए । (मा० ३।६। छं० १)
 निर्मत्सर-द्वेषरहित, बिना ईर्ष्या का । उ० अखिल-जीव-बत्सल निर्मत्सर चरन-कमल-अनुरागी । (वि० १।१८)
 निर्मथनकर्ता-मथनेवाला, मथन करनेवाला, हलचल मचानेवाला । उ० वेद-पय-सिंधु, सुविचार-मंदर महा, अखिल-मुनिवृद्ध निर्मथनकर्ता । (वि० १।७)
 निर्मम-(सं०)-जिसे ममता न हो, जिसको कोई वासना न हो । उ० नित्य निर्मम नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञान-धन सच्चिदानंद मूल । (वि० १।३)
 निर्मयउ-(सं० निर्माण)-निर्माण किया, रचा, बनाया । निर्मयी-रची, बनाई, निर्माण की ।
 निर्मल-दे० 'निर्मल' । उ० ४. निर्मल सांत सुबिसुद्ध बोधायतन क्रोध-मद-हरन करुना-निकेत । (वि० १।३) निर्मल-(सं०)-१. मलरहित, स्वच्छ, २. निष्पाप, पापरहित, ३. शुद्ध, पवित्र, ४. निर्दोष, कलंकरहित, ५. अत्रक, अत्र, ६. निर्मली । उ० १. निर्मल अति पीत चैल-दामिनि जनु जलद नील । (गी० ७।७)
 निर्मली-विशुद्ध, स्वच्छ । उ० जय कोसलेस महेश बंदित चरन रति अति निर्मली । (मा० ६।१०।६। छं० १)
 निर्मान (१)-(सं० निर्माण)-१. रचना, बनावट, २. रचना का कार्य, बनाने का काम ।
 निर्मान (२)-(सं०)-१. अभिमानरहित, बिना घमंड का, २. बेहद, सीमारहित, अपार । उ० २. नित्य निर्मम, नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञानधन सच्चिदानंद मूल । (वि० १।३)
 निर्मित-(सं०)-रचित, बनाया हुआ । उ० आजत सिर सुकूट पुरट-निर्मित मन-रचित चार । (गी० ७।७)
 निर्मुक्त-१. जो छूट गया हो, आवागमन के दुख से मुक्त, जिसे कोई बंधन न हो, २. स्वतंत्र, आजाद, ३. वह साँप जिसने तुरत केंचुली छोड़ी हो । उ० १. नित्य निर्मुक्त संयुक्त गुन निर्गुनानंत भगवंत नियामक नियंता । (वि० १।५)
 निर्मूल-(सं०)-१. बिना जड़ का, मूल रहित, २. ऐसी बात जिसकी कोई जड़ न हो, बे बुनियाद, ३. ध्वंस, नष्ट । उ० ३. परम पावन, पाप पुंज-मुंजाटवी-अनल-इव-निमिष-निर्मूलकर्ता । (वि० १।५) निर्मूलकर-जड़ से उखाड़नेवाले, नष्ट-अष्ट करनेवाले । उ० भक्त अनुकूल, भव-सूल निर्मूलकर, तूल अघ-नाम पावक समान । (वि० १।५)
 निर्मूलन-जड़ से उखाड़नेवाले को, नष्ट करनेवाले को ।

उ० त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिम् । (मा० ७।१०।८। शूलो० ५)
 निर्मूला-दे० 'निर्मूल' । उ० ३. जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला । (मा० १।१८।३।३)
 निर्मूलिन-दे० 'निर्मूलन' ।
 निर्मूलिनी-नाश करनेवाली, जड़ से उखाड़नेवाली । उ० दहति दुख दोष निर्मूलिनी काम की । (वि० ४।८)
 निर्लप-(सं०)-संगरहित, निर्लस, संसार में जो लीन न हो ।
 निर्वेश-(सं०)-१. वंशरहित, जिसका वंश नष्ट हो गया हो, २. संतानहीन, बे औलाद ।
 निर्वहा-दे० 'निरबहा' ।
 निर्वाण-(सं०)-१. बुझा हुआ, २. अस्त, डूबा, ३. शांत, धीमा पड़ा हुआ, ४. मृत, मरा, ५. निश्चल, ६. बुझना, ठंडा होना, ७. समाप्ति, न रह जाना, ८. शांति, ९. मुक्ति, मोक्ष । उ० ८. सत्य संधान निर्वाणप्रद सर्वहित सर्वगुन-ज्ञान-विज्ञान साली । (वि० १।५) निर्वाणप्रद-शांति प्रदान करनेवाला । उ० दे० 'निर्वाण' ।
 निर्वान-दे० 'निर्वाण' । उ० ६. ब्रह्म बर देश बागीश व्यापक विमल विपुल बलवान निर्वान स्वामी । (वि० १।५)
 निर्वापकर्ता-(सं०)-हरण करनेवाला, हरनेवाला । उ० वेद गभीरैकादशगुण-गर्व-अर्वांग पर-गर्व-निर्वापकर्ता । (वि० १।५)
 निर्वापण-(सं०)-१. त्याग, २. दान, ३. प्रायनाश, ४. हरण करना, दूर करना, ५. बुझाना, ६. समाप्त होना, ७. भुला देना, ८. निःशेष होना ।
 निर्वाह-(सं०)-१. किसी परंपरा या क्रम का चला चलना, निबाह, २. किसी बात के अनुसार बराबर आचरण, पालन, ३. समाप्ति, पूरा होना ।
 निर्विकल्प-दे० 'निर्विकल्प' । उ० निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । (मा० ७।१०।८। शूलो० ३) निर्विकल्प-(सं०)-दृढ़ संकल्पवाला, स्थिर, निश्चित ।
 निर्विकार-दे० 'निर्विकार' । उ० नौमि करुणाकरं, गरल-गंगाधरं, निर्मलं, निर्गुणं, निर्विकारं । (वि० १।२) निर्विकार-(सं०)-विकाररहित, परिवर्तनरहित, सदा एक प्रकार का रहनेवाला ।
 निर्विघ्न-(सं० निर्विघ्न)-बाधरहित, अड़चन शून्य । उ० जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई । (मा० ७।११।१)
 निर्व्यलीक-(सं०)-१. निष्कपट, कपटरहित, २. पीढ़ा-रहित, बाधाहीन, सुखी, प्रसन्न, ३. सत्य, जो झूठ न हो । उ० १. निर्व्यलीक मानस-गृह संतत रहे छाई । (गी० ७।३)
 निलज-(सं० निर्लज्ज)-बेहया, बेशरम, निर्लज्ज । उ० निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ । (वि० १।५)
 निलजई-निर्लज्जता, बेहयाई, बेशर्मी । उ० रीम्बे लायक तुलसी की निलजई । (वि० २।५)
 निलज्ज-(सं० निर्लज्ज)-बेशर्मी, जिसे लज्जा न हो । उ० अधम निलज्ज लाज नहीं तोही । (मा० १।१।५)
 निलय-(सं०)-घर, मकान, स्थान, जगह । उ० दोष-निलय

यह विषय सोकप्रद कहत संत स्रुति ठेरे । (वि० १८७)
 निलयकारी-घर बनानेवाले । उ० यस्यांभि पाथोज अज
 शंभु सनकादि सुक शेष मुनिवृंद अलि निलयकारी ।
 (वि० ६१)
 निवसत-(सं० निवसन)-बसते हैं, रहते हैं । उ० निवसत
 जहँ नित कृपालु राम-जानकी । (गी० २।४४) निवसति-
 बसती हैं, रहती हैं । निवसीं-बसीं, स्थिर हुईं । उ० केहि
 भाँति कहौं, सजनी ! तोहि सौं श्रुतु मूरति हँ निवसीं मन
 मोहँ । (मा० २।२५) निवसे-रहे, निवास किया । उ०
 तेहि आश्रम निवसे कछु काला । (मा० १।१५२।४)
 निवह-(सं०)-समूह, मुँड । उ० जनु बिधु-निवह रहे करि
 दामिनि-निकर निकेत । (गी० ७।२१)
 निवहति-निबहती है, पूर्ण पड़ती है ।
 निवाज-(फा० नेवाज)-कृपा करनेवाला, दया करनेवाला ।
 उ० तूँ गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो । (वि० ७८)
 निवाजव-दया करना, मेहरबानी करना, दया करेंगे, रक्षा
 करेंगे । निवाजियो-दया करना, दया कीजिएगा ।
 निवाजिहँ-रक्षा करेंगे, दया करेंगे । उ० राम गरीब
 निवाज निवाजिहँ जानिहँ ठाकुर ठाउँगो । (गी० ५।३०)
 निवाजिहौं-शरण देंगे, रक्षा करेंगे । उ० राज दै निवा-
 जिहौं बजाइ कै भीपनै । (क० ६।२) निवाजे-१. शरण
 में लिए हुए, २. शरण में लिए, ३. दया की । उ० १.
 आपने निवाजे कीन काहू को सरम । (वि० २४६)
 ३. रंक निरगुनी नीच जितने निवाजे हैं । (वि० १८०)
 निवाजो-शरण में लिया । उ० एते बड़े साहेब समर्थ को
 निवाजो आछु । (ह० ३१) निवाज्यो-अनुगृहीत किया, दया
 की । उ० सौंड तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम रे ।
 (वि० ७१) निवाज्यौ-१. अपनाया हुआ, अपनाया, २.
 निहाल कर दिया । उ० १. जानत जहान हनुमान को
 निवाज्यौ जन । (ह० २०)
 निवाज्-दे० 'निवाज' ।
 निवारक-(सं०)-१. टोकनेवाला, २. हटानेवाला । उ० २.
 जाउँ कहाँ, को विपति-निवारक भव-तारक जग माहीं ।
 (वि० १४५)
 निवारण-(सं०)-रोक, रूकावट, अटकाव, हटाना, दूर
 करना ।
 निवारन-दे 'निवारण' । उ० करिअ जतन जेहि होइ निवा-
 रन । (मा० २।४०।३)
 निवारि-(सं० निवारण)-रोका, रोका था । उ० बाढ़त बिधि
 जिमि घटज निवारि । (मा० २।२६७।१) निवारि-१.
 हटाकर, दूर हटा कर । २. रोककर, बंदकर । उ० १. सर
 निवारि रिपु के सिर काटे । (मा० ६।६३।३) निवारिए-
 १. रोकिए, २. दूर कीजिए, निवारण कीजिए ३. बँचाइए ।
 उ० ३. तासों/रारि निवारिए, समय सँभारिय आपु ।
 (दो० ४३२) २. बाँह पीर महाबीर बेगिही निवारिए ।
 (ह० २०) निवारी-(सं० निवारण)-निवारण किया,
 हटाया । उ० कहँ लागि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम
 विपति निवारी । (वि० १६६) निवारे-निवारण किया, दूर
 किया । उ० कौतुक हीं प्रसुकाटि निवारे । (मा० ६।५१।३)
 निवास-(सं०)-१. वासस्थान, रहने का स्थान, २. रहने

की क्रिया या भाव । उ० १. मम हृदयकंज निवास कर
 कामादि-खल-दल-गंजनं । (वि० ४५)
 निवासा-दे० 'निवास' । उ० १. रूप तेज बल नीति
 निवासा । (मा० १।१३०।२)
 निवासिनि-रहनेवाली, निवास करनेवाली । उ० सदा संशु
 अरधंग निवासिनि । (मा० १।६८।२)
 निवासी-रहनेवाला, बसनेवाला । उ० पुन्य पुंज मग निकट
 निवासी । (मा० २।११३।२)
 निवासु-दे० 'निवास' । उ० १. मानहुँ कीन्ह विदेहपुर
 करुनाँ बिरहँ निवासु । (मा० १।३३७)
 निवासू-दे० 'निवास' । उ० १. सदा जहाँ सिव उमा
 निवासु । (मा० १।१०५।४)
 निवृत्त-(सं०)-१. मुक्त, विरक्त, संसार से अलग, २. दूर,
 अलग । उ० २. निसि गृह मध्य दीप की बातन तम
 निवृत्त नहिँ होई । (वि० १२३)
 निवृत्ति-(सं०)-सांसारिक विषयों और प्रपंचों से
 हटना ।
 निवेरी-(सं०-निवृत्त, प्रा० निविड्ड)-१. निबराई, पूरी की,
 २. तय की, ३. छुड़ाई ।
 निशंकी-(सं० निःशंक)-निर्भय, निडर ।
 निश-दे० 'निशा' ।
 निशा-(सं०)-१. रात्रि, रजनी, रात, २. हल्दी ।
 निशाकर-(सं०)-१. चंद्रमा, २. मुर्गा, कुक्कुट, ३. शिव,
 महादेव, ४. एक ऋषि का नाम ।
 निशाचर-(सं०)-१. राक्षस, २. शृगाल, गीदड़, ३. उल्लू,
 ४. चोर, तस्कर, ५. सर्प, साँप, ६. भूत, पिशाच ७. चक्र-
 वाक, चकवा, ८. रात में विचरनेवाले जीव-जंतु, ९. सूर्य ।
 उ० १. अनय-अंभोधि कुंभज, निशाचर-निकर-तिमिर-
 घनचोर-खर किरणमाली । (वि० ४४)
 निशान-(फा०)-१. नगाड़ा, डंका, २. चिह्न ।
 निशानी-(फा०)-१. स्मृति, चिह्न, यादगार, २. निशान,
 लक्षण, ३. रेखा, लकीर ।
 निशि-(सं०)-रात । निशिदिन-रात-दिन, सदा, सर्वदा ।
 निशिचर-(सं०)-राक्षस, निशाचर ।
 निशिचरि-दे० 'निशिचरी' ।
 निशिचरी-राक्षसी, निशाचरों की स्त्रियाँ । उ० दिव्य-देवी-
 त्रेष देखि, लखि निशिचरी जनु विडंबित करी विश्वबाधा ।
 (वि० ४३)
 निशित-(सं०)-चोखा, तेज ।
 निशेश-(सं०)-चंद्रमा, शशि, रात्रि का स्वामी । उ० सीता
 नयन चकोर निशेश । (मा० ३।११।४)
 निशेष-(सं० निःशेष)-सब, समूचा, पूरा ।
 निशोच-चितारहित, बिना सोच का ।
 निश्चय-(सं०) १. अवश्य, २. तय ।
 निश्चल-(सं०)-अचल, जो अपने स्थान से न हटे, स्थिर,
 अडिग । उ० जयति काल-गुन-कर्म-माया-मथन, निश्चल-
 ज्ञान व्रत, सत्यरत, धर्मचारी । (वि० २६)
 निश्चलता-स्थिरता, शांति ।
 निर्षंग-(सं०)-तूण, तरकश । उ० कटि निर्षंग पट पीत,
 करनि सर धनु धरे । (जा० ३०)

निषंगा-दे० निषंग' । उ० वाम दहिन दिसि चाप निषंगा ।
 (मा० ६१११३)
 निषाद-(सं०)-१. चांडाल जो ब्राह्मण पति और शूद्रा
 पत्नी के गर्भ से पैदा हो, २. मल्लाह, माँकी, ३. निषाद
 के भेजे हुए चारों मल्लाह, ४. एक राग, ५. वह निषाद
 जिसने राम को पार उतारा था । उ० ५. सजल कठौता
 कर गहि कहत निषाद । (ब० २५) निषादहि-निषाद
 (पाँचवाँ अर्थ) को । उ० भयउ विषाहु निषादहि भारी ।
 (मा० २१६२१)
 निषादा-दे० 'निषाद' । उ० ३. चले अवध लेह रथहि
 निषादा । (मा० २१४४११)
 निषादू-दे० 'निषाद' । उ० मंत्री विकल बिलोकि निषादू ।
 (मा० २१४२३)
 निषिद्ध-(सं०)-१. दूषित, बुरा, खराब, २. जो न करने
 योग्य हो, जिसके लिए मनाही हो, ३. अपवित्र, अशुद्ध ।
 उ० ३. पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग-
 जानी । (कृ० ४६)
 निषेध-(सं०)-१. वर्जन, मनाही, न करने का आदेश, २.
 निषिद्ध बात, न करने योग्य बात । उ० २. राम को
 बिसारियो निषेध सिरताज रे । (वि० ६७) निषेध-
 वाक्य-ऐसे वाक्य या वेद वाक्य जो अकरणीय कार्यों
 के विषय में निषेध करते हैं ।
 निष्कंप-(सं०)-स्थिर, अचल ।
 निष्काम-(सं०)-१. इच्छारहित, जिसको किसी प्रकार की
 कामना न हो, २. बिना प्रयोजन, बिना मतलब ।
 निष्केवल-अकेला, अनन्य । उ० राम कृपा नहिं करहिं तसि
 जसि निष्केवल प्रेम । (मा० ६१११७ ख)
 निष्पाप-(सं०)-पाप रहित, बिना कलुष का ।
 निष्पापा-दे० 'निष्पाप' । उ० कपि तव दरस भइँ निष्पापा ।
 (मा० ६१५८१)
 निष्पाप्य-न प्राप्त होने योग्य, दुर्लभ ।
 निषंकी-(सं० निःशंक)-निडर, निशंक । उ० नीच निसील
 निरीस निषंकी । (मा० २१२६६११)
 निषंकू-(सं० निःशंक)-निशंक, निडर । उ० निपट निरंकुस
 निडर निषंकू । (मा० २१११६२)
 निषंबर-दे० 'निषंबल' । उ० संबर निषंबर को, सखा
 असहाय को । (वि० ६६)
 निषंबल-(सं० निःनसंबल)-राहखर्च के बिना, असहाय ।
 उ० पंगु अंध निरगुनी निषंबल जो न लहै जाँचे जलो ।
 (गी० १४४२)
 निषरत-(निःलवण)-निकलने में । उ० निषरत प्रान
 करहिं हठि बाधा । (मा० ५१३१३) निषरि-निकलकर ।
 उ० निषरि पराहिं भालु कपि ठाटा । (मा० ६१७१२)
 निषरी-निकली, बाहर आई । उ० निषरी रुधिर धार तहँ
 भारी । (मा० ४१६१४) निषरिगे-निकल गए, बाहर हो
 गए । उ० देह गेह नेह नाते मन से निषरिगे । (गी०
 २३२) निषरै-निकले, बाहर हुए ।
 निशा-(सं०)-निशा)-१. रात, रात्रि, २. हरिद्रा ।
 निशाकर-(सं० निशाकर)-चंद्रमा । उ० निरखि निशाकर-
 नृप-मुख भए मलीन । (ब० १३)

निसाचर-(सं० निशाचर)-१. विभीषण, २. राक्षस, निशि-
 चर । उ० १. कीस निसाचर की करनी न सुनी, न
 बिलोकी, न चित्त रही है । (क० ७६) निसाचरहि-निसा-
 चर को, राक्षस को ।
 निसान-दे० 'निशान' । उ० १. मंगल गान निसान नभ,
 नगर मुदित नर नारि । (प्र० ४२१२)
 निसाना-दे० 'निशान' । उ० अरु बाजे गह-गहे निसाना ।
 (मा० ११५५४२)
 निसानु-दे० 'निशान' । उ० १. बाजहिं निसानु सुगान
 नभ, चढ़ि बसह बिधु भूषन चले । (पा० १०८)
 निसास-(सं० निःश्वास)-१. उसास, पश्चात्ताप की साँस,
 २. पड़तावा ।
 निसि-(सं० निशा)-रात, रात्रि । उ० दुलई नामु जिमि
 रबि निसि नासा (मा० ११२४३) निसिदिन-दे० 'निशि-
 दिन' । उ० रघुबीर चरित पुनीत निसिदिन दास तुलसी
 गावई । (मा० ३१६। छं० १) निसिदि-रात्रि की । उ०
 निसिदि ससिदि निदति बहु भाँती । (मा० ६१००२)
 निसिचर-दे० 'निशिचर' । उ० निसिचर निकर दुले रघु-
 नंदन । (मा० ११२४४) निसिचरन्हि-राक्षसों ने । उ०
 परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे । (मा० ६११४१)
 निसिचरिन्ह-राक्षसियों को । उ० कहेसि सकल निशि-
 चरिन्ह बोलाई । (मा० ५११०४) निसिचरी-(सं० निशि-
 चरी) १. राक्षसी, २. सूर्यपत्नी । उ० २. जय निसिचरी-
 बिरुप-करन रघुबंस विभूषन । (क० ७११३)
 निसित-दे० 'निशित' । उ० चले बिसिख निसित निकाम ।
 (मा० ३१२०। छं० १)
 निसिनाथ-(सं० निशिनाथ)-चंद्रमा । उ० साथ निसिनाथ-
 सुखी पाथ नाथ-नंदिनी सी । (क० २११५)
 निसिराज-(सं० निशिराज)-चंद्रमा, राकेश । उ० चैत
 चतुरदसि चाँदनी, अमल उदित निसिराज । (गी० ११५)
 निसील-(सं० नि+शील) शीलहीन, बिना शील का । उ०
 नीच निसील निरीस निषंकी । (मा० २१२६६११)
 निसेनि-दे० 'निसेनिका' ।
 निसेनिका-(सं० निःश्रेणी)-सीढ़ी, ज़ीना । नाभी सर
 त्रिबली निसेनिका, रोमराजि सैवल छबि पावति । (गी०
 ७१७)
 निसेनी-दे० 'निसेनिका' । उ० नरक स्वर्ग अपवर्ग नसेनी ।
 (मा० ७१२१५)
 निसेस-(सं० निशा+ईश)-चंद्रमा को । निसेस (१)-
 (सं० निशेश)-चंद्रमा ।
 निसेस (२)-दे० 'निशेष' । उ० रघुबंस-कुसुदसुखप्रद
 निसेस । (वि० ६४)
 निसेष-दे० 'निशेष' । उ० काम क्रोध अरु लोभ मोह मद
 राग द्वेष निसेष करि परिहर । (वि० २०५)
 निसोच-(सं० निः+शोच)-बिना सोच के, बिना चिंता
 के, निश्चित ।
 निसोचु-दे० 'निसोच' । उ० नाम के भरोसे परिनाम को
 निसोचु है । (क० ७१८१)
 निसोत-(सं० निःसंयुक्त)-१. शुद्ध, सच्चा, जिसमें किसी
 और चीज़ का मेल न हो, २. अकेला, केवल । निसोती-

दे० 'निसोत' । उ० २. तौ कत त्रिविध सूल निसि वासर सहते बिपति निसोती । (वि० १६८) निसोतें-विशुद्ध से बेमेल से । उ० रीकत राम सनेह निसोतें । (मा० १२८६) निसोतो-निराला, खरा, विशुद्ध । उ० कृपा सुधा जलदान माँगियो कहाँ सो साँच निसोतो । (वि० १६१) निस्तरइ-(सं० निस्तरण)-निस्तर पा सकता है, पार उतर सकता है । उ० सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा । (मा० ४३१) निस्तरये-निस्तर कीजिए, उद्धार कीजिए, पार लगाइए । उ० जब कब निज करना सुभाव तें द्रवहु तो निस्तरिए । (वि० १८६) निस्तरै-दे० 'निस्तरइ' । निस्तर-(सं०)-१. उद्धार, छुटकारा, मोक्ष, २. बचाव । उ० १. गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तर । (म० ७१०२ क) निस्तारा-उद्धार किया । उ० तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा । (मा० ६७७२) निहकाम-(सं० निष्काम)-जिसमें किसी प्रकार की बासना, इच्छा या आसक्ति न हो । उ० मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम । (मा० ३१११) निहचय-दे० 'निरचय' । उ० दुतिय कोल राजिब प्रथम बाहन निहचय माहि । (स० २२५) निहचलता-दे० 'निरचलता' । उ० निहचलता तुलसी कठिन राम कृपा बस होइ । (स० ५६५) निहत-(सं०)-१. फँका हुआ, २. नष्ट, ३. मारा हुआ, जो मार डाला गया हो । उ० २. निसिचर कलि-कर निहत तर मोहि कहत विधि बाम । (स० ४०) निहार (१)- (सं० निभालन=देखना)-देखकर, घूरकर । निहारइ-देखे, देखती हो, घूरती हो । उ० मानहुँ सरोष भुअग भामिनि बिपम भाति निहारइ । (मा० २१२५।३) निहारत-देखता है, निहारता है । उ० ज्यों कदली तर मथ्य निहारत कबहुँ न निकसत सार । (वि० १८८) निहारहि-१. देखे, चितवे, अवलोकन करे, २. निहारा, देखा, भली भाँति देखा, ३. देखता है । उ० ३. रंगभूमि पुर कौतुक एक निहारहि । (जा० १३) निहारा-१. देखा, २. देखता है । उ० २. सहस नयन पर दोष निहारा । (मा० ११४६) निहारि-देखकर, अवलोकन कर । उ० लता निहारि नवाहि तरुसाखा । (मा० ११८५।१) निहारी-देखा । उ० भरि लोचन छबिसिंधु निहारी । (मा० ११५०।१) निहार (२)-देखो, निहारो । उ० सरद-विशु रवि-सुवन ममसिज-मान-भंजनिहार । (गी० ७।८) निहारै-देखा । उ० सनमुख दोउ रघुसिंध निहारै । (मा० ११२३।२) निहार-(२) (सं० निहार)-कुहरा, पाला । उ० मोह-निहार-दिवाकर संकर सरन-सोक-भयहारी । (वि० ०६) निहार-(सं० निहार)-बर्फ । उ० चारु चंदन मनहुँ मरकत सिखर लसत निहार । (गी० ७।८) निहाल-(फा)-संतुष्ट, प्रसन्न, तृप्त । उ० जे जे तैं निहाल किए फूल फिरत पाए । (वि० ८०) निहाल-दे० 'निहाल' । उ० तुलसिदास भलो पाच राचरो, नेकु निरखि कीजै निहाल । (वि० १५४) निहिचर-दे० 'निशिचर' । निहित-(सं०)-१. छिपा हुआ, २. रक्खा हुआ ।

निहोर-(सं० मनोहार, हि० मनुहार)-१. निहोरा कर, बिनती कर, २. बिनती, प्रार्थना, निहोरा, ३. एहसान, ४. उपकार । उ० ३. राखा राम निहोर न ओही । (मा० ४१२६।३) निहोरउँ-निहोरा करता हूँ । उ० देखौ बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि । (मा० ६१११६ ख) निहोरत-बिनती करते हैं, प्रार्थना करते हैं । उ० साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम कों । (पा० ३६) निहोरहि-प्रार्थना करती हैं । उ० बार बार रघुनाथहि निरखि निहोरहि । (जा० १८७) निहोरा-१. बिनती, २. उपकार, भलाई, ३. कारण से, बदौलत, द्वारा, ४. मनाने की क्रिया, मनाना, ५. मना रहे हैं, निहोरा कर रहे हैं, ६. निहोरा किया । उ० १. मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा । (मा० ११५१) २. बोले रामहि देइ निहोरा । (मा० ११२७।४) ५. सोइ कृपालु केवटहि निहोरा । (मा० २११०।१२) निहोरि-बिनती कर के, नम्र वाणी से । उ० संग बस किये सुभ सुनाए सकल लोक निहोरि । (वि० १५८) निहोरिहौ-मनाऊँगा, मनौती करूँगा । उ० दुहुँ और की बिचारि अब न निहोरिहौ । (वि० २५८) निहारी-विनय करके । उ० देखि देव पुनि कहहि निहारी । (मा० २११२।१) निहारे-१. लिए, २. विनय करने । उ० १. तजउँ प्रान रघुनाथ निहारे । (मा० २११३।३) निहारे-१. बिनती करके, २. प्रार्थना की, ३. उपकार में, ४. एहसान, कृतज्ञता, ५. कारण, ६. मनाना, मनौती करना । उ० २. देवता निहारे महामारिन्ह सों कर जोरे । (क० ७।१७५) निहारे-बिनती करे । उ० सपने पर बस पर्यो जागि देखत केहि जाइ निहारे ? (वि० ११६) नीद-(सं० निद्रा, प्रा० निद्रा)-जीवन की एक नित्यप्रति होनेवाली अवस्था जिसमें चेतन क्रियाएँ रुकी रहती हैं और शरीर तथा अंतःकरण दोनों विश्राम करते हैं । सोने की अवस्था । उ० जातहि नीद जुबाई होई । (मा० १३६।१) नीदरी-दे० 'नीद' । उ० गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नीदरी सुहाई । (गी० १।१६) नीक-(सं० निक्त)-अच्छा, साफ, सुंदर । उ० कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा । (मा० ११६२।१) नीकि-अच्छी, बढ़िया । उ० नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई । (मा० १११३।२) नीकिये-नीकी ही, अच्छी ही । उ० भूपति बिदेह कही नीकिये जौ भई है । (गी० १।८३) नीके-अच्छी तरह से, अच्छे प्रकार से, भली भाँति । उ० नीके देखे देवता देवैया घने गथ के । (क० ७।२४) नीकेई-अच्छे ही । उ० तुलसिदास इहै अधिक कान्ह पहिं, नीकेई लागत मन रहत समाने । (क० ३८) नीका-१. अच्छा, २. ठीक, यथार्थ । उ० २. कह सुनि बिहसि कहेहु गृप नीका । (मा० ११२१।३) नीकी-अच्छी । उ० प्रभुपद प्रीति न सासुकि नीकी । (मा० ११६।३) नीको-अच्छा । उ० सुभ दिन, सुभ घरी, नीको नखत लगन सुहाइ । (ग० ७।३४) नीच-(सं०)-१. छद्म, लुच्छ, अधम, डुरा, २. गुद्द, नीच गुद्द । उ० १. बर-बारि विषम नर नारि नीच । (वि०

२३) २. प्रसुहि विलोकत गोदगत, सिय-हित घायल नीच । (दो० २२२) नाचउ-नीच भी । उ० भगतिवन्त अति नीचउ प्राणी । (मा० ७८६१५) नीचऊ-नीच भी, नीचों को भी । उ० नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रवीनता । (वि० २६२) नीचि-नीची, निम्न श्रेणी की । उ० नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ । (मा० ७१८१४) नीचियौ-नीची भी, तुच्छ भी, हलकी भी । उ० सील सिधु तोसों ऊँची नीचियौ कहत सोभा । (वि० २६७) नीचा-नीच, स्वास्थ्यी । उ० नाइ माथ स्वारथरत नीचा । (मा० ३१२४३)

नीचु-नीच, अधम । उ० भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु । (मा० ११५)

नीचू-नीच, कमीने । उ० दानव देव ऊँच अरु नीचू । (मा० १६१३)

नीड़-(सं० नीड)-पक्षियों का घोंसला, खोंता । उ० मदन सकुन जनु नीड़ बनापु । (मा० १३४६३)

नीति-(सं०)-१. आचार पद्धति, व्यवहार की रीति, २. व्यवहार की वह रीति, जिससे अपना कल्याण हो और समाज को भी कोई बाधा न हो । ३. सदाचार, लोक मर्यादानुसार व्यापार, ४. राजाओं के लिए आवश्यक ज्ञानशास्त्र, ५. युक्ति, उपाय, ६. नीति के ग्रंथ । वह पुस्तक जिसमें नीति की बातें कही गई हों । जैसे शुक्र नीति, चाणक्य नीति आदि । उ० २. नीतिनिपुन जिन्ह कह जग लीका । (मा० २११३१११)

नीती-दे० 'नीति' । उ० २. पठइअ काज नाथ असि नीती । (मा० २१६३)

नीर-(सं०)-पानी, जल । उ० चरन-नख-नीर त्रैलोक्य पावन परम, विबुध जननी-दुसह-सोक हरण । (वि० ५२) नीरै-नीर को, जल को । उ० उपमा राम-लपन की प्रीति की क्यों दीलै खीरै-नीरै । (गी० ६१५)

नीरचारी-जलजंतु, जल के जीव । उ० सुभट सररीर नीरचारी भारी भारी तहाँ । (क० ६१५)

नीरज-(सं०)-१. कमल, पंकज, २. मोती, मुक्ता, ३. जल में उत्पन्न वस्तु, ४. कूट, ५. रजोगुणरहित । उ० १. नीरज नयन भावते जी के । (मा० १२४३११)

नीरद-(सं०)-१. मेघ, बादल, २. जल देनेवाला ।

नीरघर-(सं०)-बादल, मेघ । उ० नील सरोरुह नील मनि नील नीरघर स्याम । (मा० १११४६)

नीरनिधि-(सं०)-समुद्र । उ० बाँध्यों बननिधि नीरनिधि जलधि सिधु बारीस । (मा० ६१५)

नीराजन-(सं०)-आरती, देवता को दीपक दिखाने की विधि ।

नीरा-दे० 'नीर' । उ० हरवि नहाने निरमल नीरा । (मा० ११४३३)

नीराजन-आरती को । उ० भगति-वैराग-विज्ञान दीपावली आपि नीराजन जगनिसं । (वि० ४७)

नीरू-दे० 'नीर' । उ० नयनन्दि नीरू रोमावलि ठाढ़ी । (मा० ११०४१)

नीरू-दे० 'नीर' । उ० जीह नामु जप लोचन नीरू । (मा० २१३२६११)

नीलं-(सं०) श्याम रङ्ग को, श्याम रङ्गवाले को । उ० केकी कंठाभनीलं सुरवर विलसद्विप्रपादाब्ज चिह्नं । (मा० ७११ श्लो १) नील-(सं०)-१. नीला, गहरे आसमानी रङ्ग का । २. काला, ३. एक बंदर जो राम की सेना में था । इसके छू देने से पथर पानी में तैरने लगते थे । इसका कारण एक मुनि का शाप था । नल और नील ने राम का सेतु बाँधा था । ४. सौ अरब की संख्या, ५. एक पौधा, ६. विष, जहर, ७. एक पर्वत, ८. कुवेर की नौ निधियों में एक, ९. कलक, १०. नीलमणि । उ० १. नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन । (मा० १११ सो० ३) ४. द्विबिद मयद नील नल अंगद गद बिकटासि । (मा० २१५४) नीलाहि-नील को । उ० नल नीलाहि सब कथा सुनाई । (मा० ६११३)

नीलकंठ-(सं०)-जिसका कंठ नीला हो, १. शिव, २. एक पत्नी, ३. मोर । उ० १. नीलकंठ मृदु सील कृपामय भूरति । (पा० ३०) २. नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्र चकोर । (मा० २१३७)

नीलमणि-(सं०)-नीलम नाम का नीले रङ्ग का रत्न विशेष ।

नीलमनि-दे० 'नीलमणि' । उ० नील सरोरुह नीलमनि नील नीरघर स्याम । (मा० १११४६)

नीला-दे० 'नील' । उ० ३. सिद्धि कर्म जानहि नल नीला । (मा० ६१२३३)

नीलोपल-(सं०)-नीलमणि, नीलम ।

नीसान-(फा० निशान)-१. निशान, झंडा, २. नगाड़ा । उ० २. नीसान गान प्रसून भरि तुलसी सुहावनि सो निसा । (मा० १४७)

नीहार-(सं०)-१. कुहरा, २. पाला, हिम, बर्फ ।

नुतौ-(सं०)-वंदित, स्तुति किए गए । उ० शोभाभ्यौ वर धन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रबृन्दप्रियौ । (मा० ४११ श्लो० १)

नूतन-(सं०)-नया, नवीन, ताजा । उ० जिमि नूतन पद पहिरइ नर परिहरइ पुरान । (मा० ७१०६ ग)

नूपुर-(सं०)-१. घुँघरू, २. पैजनी, पाजोब । उ० १. कंकन किंकिन नूपुर बाजहि । (मा० १३१८२) २. पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिथे । (क० ११२)

नूपुरा-नूपुर शब्द का बहुवचन, बहुत से नूपुर । उ० युगल पद नूपुरा मुखर कलहंसवत, सुभग सर्वांग सौंदर्यवेषम् । (वि० ६१)

नृ-(सं०)-नर, मनुष्य । उ० ब्याल-नृकपाल-माला बिराजै । (वि० १०)

नृकेहरि-नृसिंह, भगवान नरसिंह । उ० 'राम कहाँ' 'सब ठाँव है' खंभे में ? 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जागे । (क० ७१२८)

नृग-(सं०)-एक राजा का नाम । ये बड़े दानी थे । एक बार इनकी गायों के झुंड में एक ब्राह्मण की गाय आ मिली । उन्हें इसका पता न चला और एक दूसरे ब्राह्मण को हज़ार गाएँ दान देते समय उन्होंने वह गाय भी दे डाली । जिस ब्राह्मण की गाय गायब हो गई थी उसने संयोग से उन हज़ार गायों में अपनी गाय पहचान ली और दोनों ब्राह्मण लड़ते-झगड़ते महाराज नृग के पास पहुँचे । जिस

ब्राह्मण की गाय थी वह उसे लेना चाहता था पर जिसे दान मिली थी वह नहीं देना चाहता था । राजा उस एक गाय के बदले एक हजार और एक लाख गाय तक देने को तैयार हो गए पर दोनों में किसी ने भी स्वीकार न की । अंतः दोनों ब्राह्मण रूष्ट होकर चले गए । जाते-जाते उन्होंने राजा को गिरगिट होने का श्राप दिया । मरने के बाद एक सहस्र वर्ष के लिए वे गिरगिट होकर एक कुएँ में रहने लगे । अर्वाधि समाप्त होने पर कृष्ण के हाथों इनका उद्धार हुआ । उ० विप्रतिय, नृग, बधिक के दुख दोष दारुन दरन । (वि० २१८) नृगउद्धरण-राजा नृग के उद्धार करनेवाले, भगवान् । उ० तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृगउद्धरण । (वि० ५०)

नृत्य-(सं०)-नाच, नाचना, संगीत के ताल और गति के अनुसार हाथ-पाँव हिलाने उठलाने-झुदने आदि का व्यापार । उ० सकल-लोकांत-करुपांतशुलाभ्रकृत दिग्गजा-व्यक्त-गुण नृत्यकारी । (वि० ११) नृत्यकारी-नाचनेवाला, नृत्यक । उ० दे० 'नृत्य' । नृत्यपर-नृत्य में तत्पर, नृत्य करते हुए ।

नृप-(सं०)-राजा, नरपाल, नरेश । उ० नृप कियो भोजन पान, पाइ प्रमोद जनवासहि चले । (जा० १८०) नृप-घाती-राजाओं को मारनेवाला, परशुराम । उ० भा कुठार कुठित नृपघाती । (मा० ११२८०११) नृपन-राजा लोग । नृपन्ह-नृपों को, राजाओं को । उ० प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया । (मा० ११२३१३) नृपहि-राजा को । उ० दिन प्रति नृपहि देखावहि आनी । (मा० ११ २०११)

नृपति-(सं०)-१. राजा, नृप, २. राजा परीक्षित । उ० १. मजन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ । (मा० ११ १२८) २. ब्रह्म-बिसिख ब्रह्मांड-दहन-छम गर्भ न नृपति करयो । (वि० २३६)

नृपती-दे० 'नृपति' । उ० १. सुखी भए मानहुँ जग नृपती । (मा० ७१६३१२)

नृपनय-राजनीति, राजाओं की नीति । उ० करब साधु मत खोकमत नृपनय निगम निचोरि । (मा० २१२५८)

नृपाल-(सं०)-राजा, नृप । उ० भवधनु दलि जानकी बिवाही भए बिहाल नृपाल त्रपा हैं । (गी० ७१३) नृपालन-राजाओं, राजा गए । उ० काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने करसा लिए धाप । (क० ११२२)

नृपाला-नृप, राजा । उ० साधु सुजातु सुसील नृपाला । (मा० ११२८५)

नृप-दे० 'नृप' । उ० नृपु सब भाँति सराह बिभूती । (मा० ११३३११)

नेई-(सं० नेमि, प्रा० नेहँ)-नीवँ, मूल, जड़ । उ० दीन्हिसि अचल विपति के नेई । (मा० २१२६५)

नेउ (१)-दे० 'नेई' ।

नेऊ (२)-(हि० नेक)-थोड़ा, कुछ, नेक ।

नेक (१)-(हि० न+एक)-थोड़ा, कुछ, अत्यल्प ।

नेक (२)-(फा०)-अच्छा, भला, उत्तम ।

नेकु (१)-दे० 'नेक (१)' । उ० पै तौ लौं जौ लौं रावरे न नेकु नयन फेरे । (वि० ७८)

नेकु (२)-दे० 'नेक (२)' । उ० भलो नेकु लोक राखे निपट निपाई हैं । (गी० ५१२६)

नेग-(सं० नैयमिक, हि० नेवग)-विवाह आदि में ब्राह्मण या नाई बारी आदि को दी जानेवाली दक्षिणा या दस्तूर । उ० नेगी नेग जोग सब लेहीं । (मा० ११३५३३)

नेगचार-(नेग+चार)रसम, कुलरीति । उ० नेगचार कहँ नागरि गहरु लगावहि । (जा० १५१)

नेगी-१. लेनेवाले, नेग पाने के हकदार ब्राह्मण, नाई आदि, २. लेनेवाला, ३. सहायक । उ० १. नेगी नेग जोग सब लेहीं । (मा० ११३५३३) ३. लङ्घिमन होहु धरम के नेगी । (मा० ६११०६११)

नेगु-दे० 'नेग' । उ० नेगु मागि मुनि नायक लीन्हा । (मा० ११३५३११)

नेति-(सं० न+इति)-यह एक संस्कृत वाक्य है जिसका अर्थ 'अंत नहीं है' होता है ।

नेत्र-दे० 'नेत्र' । उ० चलकुंडलं भू सुनेत्रं विशालं । (मा० ७१०८५) नेत्र-(सं०)-आँख, लोचन, नयन ।

नेपथ्य-(सं०)-नाटक आदि में परदे के भीतर का स्थान जहाँ नाटक करनेवाले सजाये जाते हैं ।

नेब-(फा० नायब)-सहायक, नायब । उ० भरतु बंदिगुह सेइहहि लखतु राम के नेब । (मा० २११६)

नेम-(सं० नियम)-१. नियम, संयम, २. धर्म, ३. व्रत, ४. प्रतिज्ञा, संकल्प ।

नेमा-दे० 'नेम' । उ० १. असन बसन बासन व्रत नेमा । (मा० २१३४२)

नेमु-दे० 'नेम' । उ० १. देखि प्रेम व्रतु नेमु सराहहि सज्जन । (पा० ४०)

नेरी-दे० 'नेरे' । उ० जाहि मृत्यु आई अति नेरी । (मा० ११३३२)

नेरे-(सं० निकट)-समीप, पास, नजदीक । उ० अगम अप-वर्ग, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल, नाम-बल क्यों बसौं जम नगर नेरे ? (वि० २१०)

नेरो-दे० 'नेरे' । उ० कबहुँक हौं संगति-प्रभाव ते जाउँ सुमारग नेरो । (वि० १४३)

नेवछावरि-(सं० न्यासावर्त)-न्यौछावर, निछावर, उतारा, वाराफेरा । उ० तुलसी नेवछावरि करति मातु अति प्रेम-मगन मन, सजल सुलोचन कोये । (गी० १११२)

नेवत-दे० 'नेवता' । उ० यह अनुचित नहिँ नेवत पठावा । (मा० ११६२१)

नेवता-(सं० निमंत्रण)-१. निमंत्रण, नवेद, २. निमंत्रण दिया है । उ० २. मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता । (मा० २१२१३४) नेवति-१. निमंत्रण देकर, न्यौता देकर, २. निमंत्रण । उ० १. सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम । (प्र० ७७११) २. सब कहँ गिरिबर-नायक नेवति पठायत । (पा० ६४) नेवते-निमंत्रण दिया, निमंत्रित किया । उ० नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग । (मा० ११६०)

नेवनि-(दे० 'नेब')-सहायकों, मंत्रियों । उ० कुल गुरु, सचिव, निपुन नेवनि अवरोब न समुक्ति सुधारी । (गी० ११६८१)

नेवाज-(फ्रा० नेवाखतन, नेवाज) कृपा करनेवाला । उ० दे० 'नेवाजी' ।
 नेवाजा-कृपा की है । उ० राम कृपाल निपाद नेवाजा । (मा० २।२५०।४) नेवाजि-रक्षा करके । उ० विभीषण नेवाजि सेतु सागर तरन भो । (क० ६।५६) नेवाजिये-
 १. कृपा कीजिये, २. कृपा करते हैं । उ० १. रीति महाराज की नेवाजिये जो माँगनो सो । (क० ७।२५) नेवा-
 जिहँ-रक्षा करंगे, शरण में लेंगे । नेवाजी-१. शरण में ली, कृपा की, २. शरण में लेकर, कृपा करके, ३. दया, ४. दया करना, ५. कृपा करनेवाला । उ० ४. राम गरीब नेवाज ! भये हौं गरीब नेवाज गरीब नेवाजी । (क० ७।६५) नेवाजे-कृपा की । उ० नाम गरीब अनेक नेवाजे । (मा० १।२५।१)
 नेवाजू-दयालु, कृपालु । उ० गई बहोर गरीब नेवाजू । (मा० १।१३।४)
 नेवारई-(सं० निवारण)-हटाती है, हटा देती है । उ० केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई । (मा० २।२५। छं० १) नेवारत-मना करता, रोकता । नेवारिहँ-हटावेगा, हटावेंगे । उ० मोह-बन कलिमल-पल-पीन जानि जिय, साधु गाय बिप्रन के भय को नेवारिहँ । (क० ७। १४२) नेवारै-मना किया । उ० सयनहि रघुपति लखलु नेवारै । (मा० १।२५।४२)
 नेवारित-(?)-मढ़ा हुआ, पानी चढ़ाया हुआ । उ० कु-
 तिय सु-भूखन भूखियत लोह नेवारित हेम । (सं० ६८६)
 नेह-(सं० स्नेह)-१. प्यार, प्रेम, स्नेह, २. तेल । उ० १. जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े । (क० २।१२)
 नेहरुआ-(?)-एक रोग जो प्रायः कमर के निचले भाग में होता है । इसमें पहले सूजन और फिर घाव हो जाता है, जिसमें सफेद रक्त के लंबे-लंबे कीड़े पड़ जाते हैं । उ० दंभ कपट मद पान नेहरुआ । (मा० ७।१२।१।१८)
 नेहा-दे० 'नेह' । उ० बिपति काल कर सतगुन नेहा । (मा० ४।७।३)
 नेही-प्रेमी, स्नेह करनेवाला । उ० जान्यो तुलसीदास, जोग-
 वत नेही मेह-मन । (दो० ३०७)
 नेहु-दे० 'नेह' । उ० १. अब बिनती मम सुनहु सिव जौ मोपर निज नेहु । (मा० १।७।६)
 नेहु-दे० 'नेह' । उ० मन क्रम बचन रामपद नेहु । (मा० २।६३।३)
 नैया-(सं० न्याय)-एक सी, नाई, समान, तरह । उ० किलकि सखा सब नचत मोर ज्यों, कृदत कपि कुरंग की नैया । (क० १६)
 नैन-(सं० नयन)-नेत्र । उ० सरद सर्बरीनाथ सुखु सरद सरोरुह नैन । (मा० २।११।६)
 नैमिष-दे० 'नैमिषारण्य' । उ० तीरथवर नैमिष बिख्याता । (मा० १।१४।१)
 नैमिषारण्य-एक प्राचीन वन । यह स्थान सीतापुर जिले में है । किसी मुनि ने यहाँ असुरों की अपार सेना एक निमिष में भस्म कर दी थी अतः इसका नाम नैमिषारण्य पड़ा । आजकल यह एक तीर्थ माना जाता है ।

नैया-(फ्रा० नाव, सं० नौ)-नौका, तरणी ।
 नैव-(सं० न + एव)-नहीं । उ० न जानामि योगं जपं नैव पूजां । (मा० ७।१०८। छं० ८)
 नैवेद्य-(सं०)-देवबलि, भोग, देवता के निवेदन के लिए भोज्य द्रव्य । भोजन की वह सामग्री जो देवता को चढ़ाई जाय । उ० भाव अतिसय बिसद प्रवर नैवेद्य सुभ श्री रमन परम-संतोषकारी । (वि० ४७)
 नैहर-[सं० ज्ञाति, प्रा० णाति, णाइ (=पिता)+हि० घर]-मायका, पीहर । उ० नैहर जनमु भरब बरु जाई । (मा० २।२१।१)
 नैहौं-नवाऊंगा, नाऊंगा, सुकाऊंगा । उ० भ्रोकि हौं नयन बिलोकत औरहि, सीस ईस ही नैहौं । (वि० १०४)
 नो-(सं०)-१. मेरी, हमारी, २. हमको, ३. नहीं । उ० १. आसु सदा नो भव खग बाजः । (मा० ३।११।३) ३. पतंति नो भवार्यवे । (मा० ३।४।७)
 नोइ-दे० 'नोई' । उ० १. नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा । (मा० ७।११।७।६)
 नोइनि-दे० 'नोई' ।
 नोई-(सं० नद्ध, हि० नहना)-१. दूध दूहते समय गौ के पिछले पैरों में बाँधने की रस्सी, २. दूहते समय गाय की टाँग बाँधना ।
 नौ (१)-(सं० नव)-१. नया, नवीन, २. ९ की संख्या, नव । उ० १. ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे । (क० २।१३) २. तुलसी तेहि औरसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि इकीस सबै । (क० १।७)
 नौ (२)-(सं० नौः)-नौका, नाव ।
 नौका-(सं०)-नाव, किशती । उ० श्री हरिचरन-कमल-नौका तजि फिरि-फिरि फेन गह्यो । (वि० ६२)
 नौमि-(सं० नमामि)-मैं स्तुति करता हूँ, प्रणाम करता हूँ, मैं झुकता हूँ । उ० नौमि नारायणं नरं कर्णायनं ध्यान पारायणं ज्ञान मूलम् । (वि० ५६)
 नौमी-(सं० नवमी)-पक्ष की नवीं तिथि । उ० नौमी तिथि मधुमास पुनीता । (मा० १।१६।१।१)
 नौमीढ्यं-(सं०)-स्तुति करने योग्य । उ० नौमीढ्यं जान-
 कीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारुढरामम् । (मा० ७।१। श्लो० १)
 न्याउ-दे० 'न्याव' । उ० २. मोर न्याउ मैं पूछा साई । (मा० ४।२।४)
 न्याय-(सं०)-१. ठीक या उचित बात, निमानुकूल, २. प्रमाणपूर्वक निश्चय, विवाद या व्यवहार में उचित अनुचित का निबटारा, इन्साफ, ३. वह शास्त्र जिसमें किसी वस्तु के यथार्थ ज्ञान के लिए विचारों की उचित योजना का निरूपण होता है । ४. तर्कशास्त्र, ५. लौकिक कथावत, जैसे 'वलीवर्द न्याय' आदि । उ० २. ऐसे तो सोचहि न्याय निडुर-नायकरत । (गी० ५।८) ५. होइ धुनाच्छर न्याय जौ पुनि प्रत्युह अनेक । (मा० ७।११।८ ख)
 न्यारिये-(सं० निर्निक्त, प्रा० निञ्जिअइ, निञ्जियर, हि० न्यारा)-भिन्न प्रकार की, अलग उड़ की, विशेष प्रकार की, अनोखी । उ० दीनबंधु दया कीन्हीं निरुपाधि न्यारिये । (हं० २१) न्यारी-१. विलक्षण, अनोखी, निराली, २. पृथक् अलग,

३. दूर, जो पास न हो, ४. अन्य, भिन्न, ५. एक ओर, खुदे ही, अलग ही । उ० ५. कर कंकन केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी । (वि० ६३) न्यारे-१. अलग, २. यिलक्षय ।
न्यारो-दे० 'न्यारे' । उ० १. जो कलिकाल प्रबल अति होते तुव निदेस तें न्यारो । (वि० ६४)
न्याव-(सं० न्याय)-१. न्याय, इन्साफ, २. उचित, अथार्थ विचार, ठीक बात ।

न्यास-(सं०)-१. अर्पण, त्याग, २. धरोहर, थाती, ६. धरोहर रखने योग्य धन ।
न्हाइ-(सं० स्नान)-स्नान कर, नहाकर । उ० न्हाइ प्रातहि पूजिबो बट बिटप अभिमत दानि । (गी० ७।३२) न्हात-१. स्नान करते समय, नहाते समय भी, २. नहाते हैं । उ० १. न्हात खसै जनि बार, गहरू जनि लाचहु । (जा० ३२) न्हाहु-स्नान करो, नहाओ । उ० उवटौ न्हाहु, गुहौ चोटिया, बलि, देखि भलो बर करिहि बड़ाई । (कृ० १३)

प

पंक-(सं०)-१. कीचड़, कीच, दलदल, २. पाप, पातक । उ० प्रेम पंक जलु गिरा समानी । (मा० १।३३७।१)
पंकज-(सं०)-कीचड़ से उत्पन्न, कमल, कंज । उ० भंजेउ चाण प्रयास बिलु जिमि गज पंकजनाल । (मा० १।२६२)
पंकजे-पंकज में, कमल में ।
पंकजात-दे० 'पंकज' । उ० पद-पंकजात पखारि पूले पंथ-खम-बिरहित-भये । (गी० ३।१७)
पंकनिधि-समुद्र ।
पंकरुह-(सं०)-कमल, पंक से निकलनेवाला । उ० अब रघुपति । पद पंकरुह हिथें धरि पाइ प्रसाद । (मा० १। ४३ ख)
पंख-(सं० पक्ष)-पर, डैना, पंख । उ० हम पंख पाइ पाँज-रनि तरसत, अधिक अभाग हमारो । (गी० २।६६)
पंख-(सं० पक्ष)-१. पक्षियों के पर, डैने, २. फूल की पंखड़ी । उ० १. काटेसि पंख परा खग धरनी । (मा० ३। २६।११) २. पल्लव पंख सुमन सिर सोहल, क्यों कहौ वेष लुनाई । (गी० १।५०) पंखन-पाँखें ।
पंगति-(सं० पंक्ति)-पंक्ति, कतार, श्रेणी । उ० बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर-पल्लव खोलन की । (क० १।५)
पंगु-(सं०)-लँगड़ा, जो पाँव से ठीक से न चल सके । उ० मूक; होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन । (मा० १।१। सो० २)
पंच-(सं०)-१. पाँच, २. पाँच या अधिक व्यक्तियों का समुदाय, समाज, ३. वह जो किसी मामले का फैसला करे, ४. मध्यस्थ, ५. पंचतत्व । उ० २. गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै । (क० ७।६१) ५. जड़ पंच मिल जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की । (क० ७। २७) पंचन-कई पंच, पंचों का समूह, मुकदमे का फैसला करनेवालों का समूह ।
पंचकोस-(सं० पंचकोश)-१. पाँच कोस में बसी काशी की पवित्र भूमि, काशी, २. आत्मा संबंधी अन्न, प्राण, मन, विज्ञान तथा आनंदमय पाँच कोप । उ० १. स्वारथ-परमारथ-परिपूरन पंचकोस महिमा सी । (वि० २२)
पंचकोसि-काशी की पाँच कोस की परिक्रमा । दे० 'पंचकोस' ।

पंचगव्य-(सं०)-गाय से प्राप्त होनेवाले पाँच द्रव्य-दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र-जो पवित्र माने जाते हैं, और पापों के प्रायश्चित्त या शुद्धि के लिए खिलाए जाते हैं ।
पंचग्रह-मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि नाम के पाँच ग्रह । उ० सरल-वक्रगति पंचग्रह, चपरि न चितवत काहु । (दो० ३६७)
पंचदश-(सं०)-१. पंद्रह, २. दस-पाँच, थोड़ी संख्या का छोटक शब्द ।
पंचदस-दे० 'पंचदश' । उ० १. नयन पंचदस अति प्रिय लागे । (मा० १।३१७।१)
पंचदसा-दे० 'पंचदश' ।
पंचनदा-पंच गंगा, पाँच नदियों का समूह । उ० पंचाच्छरी प्राण, मुद माधव गव्य सुपंचनदा सी । (वि० २२)
पंचवटी-(सं० पंचवटी)-रामायण के अनुसार दंडकारण्य के अंतर्गत एक स्थान जहाँ राम बनवास में रहे थे । यहाँ पीपल, बेल, वट, आँवला और अशोक ये पाँच वृक्ष थे । उ० पंचवटी पावन राघव करि सूपनखा कुरूप कीन्हौ । (गी० ७।३८)
पंचवान-(सं० पंचवाण)-कामदेव । इन के पाँच वाणों के नाम द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन हैं तथा पाँच पुष्पवाणों के नाम कमल, अशोक, आम्र, नवमखिलिका और नीलोत्पल हैं । उ० उर बसि प्रपंच रचै पंचवान । (वि० १४)
पंचवीस-(सं० पंचविंशति)-पच्चीस । उ० पटकंध साखा पंचवीस अनेक पर्न सुमन घने । (मा० ७।१३। छं० ५)
पंचम-(सं०)-पाँचवाँ, चौथे के बाद का । उ० तुलसी जय मंगल कुसल, सुभ पंचम उनचास । (प्र० २।७।७)
पंचमुख-(सं०)-शिव, महादेव । उ० पंचमुख छमुख भृग मुख्य भट, असुर-सुर सर्व सरि समर समरथ सूरौ । (ह० ३)
पंचविश-दे० 'पंचवीस' ।
पंचसर-(सं० पंचशर)-कामदेव ।
पंचसवद-(सं० पंच+शब्द)-पाँच प्रकार के बाजे । तंत्री, ताल, झंझ, नगारा और तुरही । उ० पंच सवद धुनि मंगल गाना । (मा० १।३१६।२)

पंचाच्छरी-(सं० पंच + अक्षर)-'नमः शिवाय' का मंत्र ।
 उ० पंचाच्छरी ग्रान मुद माधव गव्य सुपंचनदा सी ।
 (वि० २२)
 पंचानन-(सं०)-जिसके पाँच मुँह हों । १. महादेव, २. सिंह । उ० २. जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ । (मा० ६।१६)
 पंचीकरण-(सं०)-वेदांत में पंचभूतों का सिद्धांत विशेष । प्रत्येक भूत में शेष चार भूतों के अंश भी वर्तमान रहते हैं । भूतों की यह स्थूल स्थिति पंचीकरण द्वारा होती है । पंचभूतों के भागों का मिलान ।
 पंजर-(सं०)-१. पंजड़ा, २. छटरी, कंकाल । उ० १. प्रनतारति-भंजन जनरंजन सरनागत पबि-पंजर नाउँ । (वि० १५३)
 पंडित-(सं०)-१. शास्त्रज्ञ, विद्वान्, ज्ञानी, २. कुशल, प्रवीण, चतुर, ३. ब्राह्मण, ४. संस्कृत भाषा का विद्वान् । उ० १. कबहुँ मुद पंडित बिडंब रत, कबहुँ धरम-रत ज्ञानी । (वि० ८१)
 पंडु (१)-(सं०)-१. पीलापन लिए हुए मटमैला, २. श्वेत, उज्ज्वल, ३. पीत, पीला ।
 पंडु (२)-(सं० पांडु)-पांडु राजा जो पांडवों के पिता थे । पंडुवनै-पांडवों को ही ।
 पंथ-(सं० पथ)-१. मार्ग, रास्ता, २. धर्म, सम्प्रदाय, मत । उ० १. तेहि परिहरिहि बिमोह बस, कल्पहि पंथ अनेक । (दो० ५५५) मु० पंथ लाग-१. अनुयायी होकर, २. पीछे पड़कर, तंग करके । उ० २. हठि सिद्ध मुनिन के पंथ लाग । (गी० २।४६) पंथहि-रास्ते को, रास्ते पर । मु० पंथहि लागी-पीछे पड़ गया । उ० हठि सबहीं के पंथहि-लागा । (मा० १।१८२।६)
 पंथा-दे० 'पंथ' ।
 पंथाना-दे० 'पंथ' । उ० १. रघुपति भगति केर पंथाना । (मा० ७।१२६।२)
 पंथि-(सं० पंथिन्)-पथिक, यात्री । उ० राम-लषन-सिय पंथि की कथा पृथुल । (गी० २।३७)
 पंथु-दे० 'पंथ' । उ० १. नाथ साथ रहि पंथु देखाई । (मा० २।१०३।२)
 पंनग-(सं० पन्नग)-दे० 'पन्नग' ।
 पंपा-(सं०)-दक्षिण भारत का एक तालाब । उ० पंपा नाम सुभग गंभीरा । (मा० ३।३६।३)
 पंपारै-(सं० प्रवारण)-फेंकने पर, फेंका जाय तो । उ० रज होइ जाइ पषान पंपारै । (प० १।३०१।२)
 पंपरि-(सं० पुर)-पौरि, ब्यौड़ी, प्रवेशद्वार । उ० पहिलिहि पंपरि सुसामभ भा सुखदायक । (पा० १२६)
 पंपारत-(सं० प्रवारण)-फेंकते हैं, दूर हटाते हैं । उ० सर तोमर सेल समूह पंपारत, मारत बीर निसाचर के । (क० ६।३५) पंपारे-(सं० प्रवारण)-फेंकने से, डालने से ।
 पंपारा-(सं० प्रवाद)-पंपावा, लंबी चौड़ी कथा या बात जिसे सुनते-सुनते जी ऊब जाय ।
 पंपारो-दे० 'पंपारा' । उ० बीर बड़ो बिरुद्वैत बली, अजहुँ जग जागत जासु पंपारो । (क० ६।३८)
 प-(सं०)-१. वायु, हवा, २. पत्र, पत्त, ३. प्रसु, स्वामी, जैसे नृप, ४. पीनेवाला, जैसे मधुप ।

पइठि-(सं० प्रविष्ट)-घुसकर, प्रवेश करके । उ० बदन पइठि पुनि बाहेर आवा । (मा० १।२।६) पइठिहउँ-घुस जाऊँगा । उ० तब तुअ बदन पइठिहउँ आई । (मा० १।२।३)
 पइयत-(सं० प्रापण, प्रा० पावण)-पाताहूँ, प्राप्त करताहूँ । पइहहि-पाएँगे ।
 पइसार-दे० 'पैसार' । उ० अतिलघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार । (मा० १।३)
 पकये-(सं० पक)-पकाए हुए, पकने के पहले तोड़कर पाल में पकाए हुए । उ० पाके पकाये विटप-दल उत्तम मध्यम नीच । (दो० ५१०)
 पकरै-(सं० प्रकृष्ट, प्रा० प्रकृष्ट)-१. पकड़े, ग्रहण करे, २. पकड़ता है, धामता है । पकरथो-पकड़ा । उ० अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति ज्यौं भरि मुख पकरयो । (वि० ६२)
 पकवान-(सं० पक्का)-घी में तलकर बनाई गई पूरी, कचौरी आदि खाने की चीजें । उ० पान, पकवान बिधि नाना को सँधानो सीधो । (क० ५।२३)
 पकवाना-दे० 'पकवान' । उ० बिबिध भाँति मेवा पकवाना । (मा० १।३३३।२)
 पकवाने-दे० 'पकवान' । उ० भरे सुधा सम सब पकवाने । (मा० १।३०५।१)
 पकखर (१)-(सं० प्रखर)-प्रचंड, प्रखर ।
 पकखर (२)-(सं० प्रखर, प्रा० प्रखर)-लोहे की वह मूल जो लड़ाई के समय रक्षा के लिए हाथी या घोड़े पर डाली जाती है । उ० लकख में पकखर तिकखन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं । (क० ६।३६)
 पक्ष-(सं०)-१. पाख, अँधेरा और उजेला पाख, २. आधा महीना, ३. पंख, पर, ४. सहाय, बल, ५. तरफ, ओर, ६. अंग, पार्श्व, ७. जस्था, दल, टोली, ८. मित्र, ९. आधा, १०. शरीर का आधा भाग, ११. तीर का पंख, १२. तरफदारी, १३. जुल्फ, बाल, जूरा ।
 पक्षपात-(सं०)-बिना अनुचित-उचित बिचार के किसी के अनुकूल प्रवृत्ति, तरफदारी ।
 पखवारा-(सं० पक्ष)-आधा महीना, पक्ष, १५ दिन । उ० परिखेसु मोहि एक पखवारा । (मा० १।६।३)
 पखाउज-(सं० पक्ष + वाद्य)-मृदंग की तरह का उससे कुछ छोटा एक बाजा । उ० बाजहि ताल पखाउज बीना । (मा० ६।१०।५)
 पखान-(सं० पाषाण)-पत्थर, पाथर ।
 पखारत-(सं० प्रचालन, प्रा० पखारत)-१. धो रहे हैं, २. धोने पर, धोते ही । उ० १. ते पद पखारत भाव्य भाजनु जनक जय जय सब कहैं । (मा० १।३२३।४) २) पखारि-धोकर, धो करके । उ० पावन पायँ पखारि कै नाव चदा-इहौं आयसु होत कहा है ? (क० २।७) पखारिहउँ-दे० 'पखारिहौं' । पखारिहौं-धोऊँगी, धोऊँगा । उ० पौछि पसेड बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूसुरि डाढे । (क० २।१२) पखारि-धो ले, पखार ले । उ० बेगि आनु जल पाय पखारु । (मा० २।१०१।१) पखारे-१. धोए, शुद्ध किए, प्रचालन किया, २. धोने से, धोने पर । उ० १. अंतर मखिन

विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे । (वि ११५)
२. तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीक । (दो० ४६६)

पखावज-दे० 'पखावज' ।

पग-(सं० पदक, प्रा० पञ्चक)-१. पाँव, पैर, २. डग, फाल ।
उ० १. ताके पग की पगतरी, मेरे तनुको चाम । (वै० ३७)
पगन-१. पग का बहुवचन, पैरों, २. पैरों में । उ० २.
उमहिं बोलि अविपगन मातु मेलति भइ । (पा० १२)
पगनि-१. पैरों से, चरखों से, २. पैरों में । उ० १. पगनि
कब चलिहौ चारौ भैया ? (गी० ११६) २. छोटिपु धनु-
हियाँ पगहियाँ पगनि छोटी । (गी० ११२) पगहुँ-दे०
'पगहु' । पगहु-पग से भी, कदम से भी । उ० जेहि जगु
क्रिय तिहु पगहु ते थोरा । (मा० २।१०।१२)

पगतरी-(हि० पग + तल)-जूता । उ० दे० 'पग' ।

पगाई-(सं० पक्व)-पागा, डुबाया । उ० का कियो जोग
अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई । (क० ७।६३)

पगार-(सं० प्रकार)-गद, मकान या बाग आदि के रक्षार्थ
बनी हुई चहारदीवारी । रखवाली के लिए बनी हुई
दीवार । उ० तुलसी अगार न पगार न बजार बच्यो ।
(क० १।२३)

पगि-(सं० पक्व) सनकर, पगकर, मिलकर, मग्न होकर, अनुर-
क्त होकर । पगी-मिली, मग्न हुई, सन गई ।

पगिया-(सं० पग)-पगड़ी, पाग । उ० सुंदर बदन, सिर
पगिया जरकसी । (गी० १।४२)

पगु-दे० 'पग' । उ० १. जो पगु नाउनि धोवइ राम धोवा-
वई हो । (रा० १४)

पविलाइ-(सं० प्र + गलन)-पिबला कर, गलाकर । उ०
बालधी फिरावै बार बार ऊहरावै, भौंरै बँदियाँ सी, लंक
पविलाइ पाग पागिहै । (क० १।१४)

पचत-(सं० पचन)-१. नष्ट होता है, समाप्त होता है, २.
खीख होता है, खिन्न होता है, ३. चुरता है, पकता है,
४. तन्मय होया है, लीन होता है, पूर्णरूप से लगता है,
५. कष्ट उठाता है, दुःख सहता है, ६. जल रहा, खौल
रहा । उ० १. पेट ही को पचत बेचत बेटा बेट की । (क० ७।६६)
६. तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौं । (क० ७।१६६) पचवइ-दे० 'पचवै' । पचवै-पचा डालती है ।
उ० जिमि सो असन पचवै जठरागी । (मा० ७।११६।१६)
पचहि-पचेगा, नष्ट हो जायगा । उ० परिनाम पचहि
पातकी पाप । (गी० १।१६) पचा-परिश्रम करके थक
गया । उ० तमके वननाद से बीर पचारि कै हारि निसा-
चर सैन पचा । (क० ६।१५) पचि-१. कष्ट मेलकर, २.
तन्मय होकर, पूर्णरूप से लगकर, ३. परेशान होकर, ४.
बहुत श्रम करके, खपकर । उ० ४. करि उपाय पचि मरिय,
तरिय नहिं जब लागि करहु न दाया । (वि० १।१६)
सु० पचि मरहिं-बहुत परिश्रम करते हैं । उ० करहिं
ते फोकट पचि मरहिं, सपनेहु सुख न सुबोध । (दो० २७४)
पचारि-(सं० प्रचार)-ललकार कर, ज़ोर से सुनाकर । उ०
जामवंत हनुमंत बल्लु, कहा पचारि पचारि । (प्र० १।५।
३) पचारी-ललकार करके, ज़ोर के कहकर । उ० देइ देव-

तन्ह गारि पचारी । (मा० १।१८२।४) पचारै-(सं०
प्रचार)-ललकारे । उ० जौं रन हमहि पचारै कोऊ ।
(मा० १।२८४।१) पचारथो-१. प्रचारा, ललकारा, २.
फटकारा, छुरा-भला कहा । उ० १. फिरत न बारहि बार
पचारथो । (गी० ३।८)

पचास-(सं० पचाशत, प्रा० पचासा)-५०, संख्या में ४६ से
एक अधिक । पचासक-पचासों । उ० राज सुरेस पचासक
को, बिधि के कर को जो पटो लिखि पाए । (क० ७।४५)
पचीसा-(सं० पंचविंशति)-पच्चीस । उ० तुरग लाख रथ
सहस पचीसा । (मा० १।३३३।२)

पची-(सं० पचित)-लगा हुआ, संयुक्त ।

पच्छ-(सं० पक्ष)-दे० 'पक्ष' । उ० १. सुकल पच्छ अभि-
जित हरिप्रीता । (मा० १।१६१।१) ३. जयति धर्मासु
संपाति-नवपच्छ-लोचन-दिव्यदेह-दाता । (वि० २८) १२.
सापबस-मुनिबधू-मुक्तकृन् विप्रहित-यज्ञरच्छन-दृच्छ
कर्ता । (वि० ५०) पच्छजुत-पक्षों के साथ, पाँखवाले ।
उ० भए, पच्छजुत मनहुँ गिरिदा । (मा० १।३५।२)

पच्छधर-(सं० पक्ष + धारण)-पक्ष ग्रहण करनेवाला, पक्ष-
पात करनेवाला । उ० तुलसी हरि भए पच्छधर, ताते कह
सब मोर । (दो० १०७)

पच्छपात-(सं० पक्षपात)-तरफदारी, पक्षपात, न्यायतः
उचित न होने पर भी किसी का पक्ष लेना । उ० इहाँ न
पच्छपात कछु राखई । (मा० ७।११६।१)

पच्छिम-(सं० पश्चिम)-पश्चिम दिशा । उ० पच्छिम द्वार
रहा बलवाना । (मा० ६।४३।२)

पच्छी-(सं० पक्षी)-पखेरू, खग, चिड़िया । उ० सपदि
होहि पच्छी चंडाला । (मा० ७।११२।८)

पछताउ-दे० 'पछताव' । पछतात-पछताते हैं, पश्चाताप
करते हैं । उ० मानिय सिय अपराध बिनु प्रभु परिहरि
पछतात । (प्र० ६।७।२) पछताय-दे० 'पछताव' ।

पछताव-(सं० पश्चाताप)-१. अनुताप, पछतावा,
पश्चाताप, २. पछता करके ।

पछारहिं-(सं० पश्च, पश्चात्, प्रा० पच्छा)-पछाड़ देते
हैं, गिरा देते हैं, पटक देते हैं । उ० मारहिं काटहिं धरहिं
पछारहिं । (मा० ६।८।१३) पछारहु-पछाड़ो, पछाड़ दो ।
उ० पद गहि धरनि पछारहु कीसा । (मा० ६।३४।५)
पछारा-गिराया, पछाड़ दिया । उ० सिर लंगूर लपेटि
पछारा । (मा० ६।५८।३) पछारि-पछाड़कर, पटककर ।
उ० महि पछारि निज बल देखरायो । (मा० ६।७४।४)
पछारु-पछाड़ो, गिराओ । उ० धरु मारु काहु पछारु घोर
गिरा गगन महि भरि रही । (मा० ६।८।१।२) पछारे-
पछाड़ा, गिराया । उ० मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट
कहरत परे । (मा० ३।२०।४) पछारेसि-पछाड़ा, गिरा
दिया, पटक दिया । उ० पुनि नल नीलहि अवनि पछा-
रेसि । (मा० ६।६।५)

पछालि-(सं० प्रचालन)-धोकर, प्रचालनकर । उ० प्रभुकर
चरन पछालि तौ अति सुकमारी हो । (रा० १५)

पछि-(सं० पक्ष)-सहायक, पक्षपात करनेवाला ।

पछिताई-(सं० पश्चाताप, प्रा० पच्छाताव)-पछताकर,
पश्चाताप कर । उ० अगम देखि नृप अति पछिताई । (मा०

१११५७४) पछिताउ-१. पछिताओ, २. पश्चाताप, अनु-
ताप । उ० २. दुई सुगति सो न हेरि हरप हिय, चरन छुए
पछिताउ । (वि० १००) पछिताऊँ-पछिताती हूँ, पछितावा
करती हूँ । उ० मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ । (मा० २१
२६१४) पछिताऊ-दे० 'पछिताउ' । उ० २. जेहि न होइ पाछे
पछिताऊ । (मा० २१३३) पछितात-पश्चाताप करते हैं ।
उ० सिर धुनि-धुनि पछितात मीजि कर, कोउ न मीत हित
हुसह दाय । (वि० ८३) पछिताति-पछिता रही हैं, पछि-
तावा कर रही हैं । उ० मन पछिताति सीय महतारी ।
(मा० १२७०१४) पछिताती-पछिता रही हैं, पश्चाताप कर
रही हैं । उ० सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती । (मा० २११
२११) पछिताना-पछिताने, पश्चाताप करने । उ० सिर धुनि
गिरा-गुगत पछिताना । (मा० ११११४) पछितानि-पछि-
ताना, पश्चाताप-करना । उ० प्रभु सप्रेम-पछितानि सुहाई ।
(मा० २१०१४) पछितानी-पछितायीं, पश्चाताप किया ।
उ० करि कुचालि अंतहुँ पछिताची । (मा० २१२०७३)
पछिताने-(सं० पश्चाताप)-पछिताना, पश्चाताप करना ।
उ० समय चुके पुनि का पछिताने । (मा० १२६११२)
पछिताने-पछिताने लगे । उ० भए दुखी मन महुँ पछि-
ताने । (मा० ६१६०११) पछिताव-पछितायेंगे, पछितावा
करेंगे । उ० भली भाँति पछिताव पिताहुँ । (मा० ११६४
१) पछिताय-१. पश्चाताप करके, पछिताकर, २. पछि-
तावा, पश्चाताप । उ० २. सुखी हरिपुर बसत होत
परीछितहि पछिताय । (वि० २२०) पछितायो-पश्चा-
ताप किया । उ० बूझि न सकत कुसल प्रीतम की हृदय
यहै पछितायो । (गी० २१६) पछिताहिं-पछिताते हैं,
पछिता रहे हैं । उ० देखि निषाद बिषादबस धुनिहि सीस
पछिताहिं । (मा० २१६६) पछिताहीं-पछिताते हैं । उ०
सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं । (मा० २१४४)
पछिताहु-पछिताओ, पश्चाताप करो । उ० पैहहु सीतहि
जनि पछिताहु । (मा० ४२२१३) पछितैहसि-पछितायगी,
पश्चाताप करेगी । उ० फिरि पछितैहसि अंत अभागी ।
(मा० २३६१४) पछितैहहु-पछिताओगी । उ० ब्याह-समय
सिख मोरि समुझि पछितैहहु । (पा० ६२) पछितैहै-
पछितावेगा, पश्चाताप करेगा । उ० तौ तू पछितैहै मन
मीजि हाथ । (वि० ८४) पछितैहौ-पछिताओगे । उ०
जानिकै जोर करौ परिनाम तुम्है पछितैहो । (क० ७१०२)
पछितावा-पश्चाताप । उ० जौ नहि जाउँ रहइ पछितावा ।
(मा० ११४६११)
पछिले-(सं० पश्च)-बाद के, पीछे के । उ० पछिले पहर
भूपु नित जागा । (मा० २३८११)
पछु-(सं० पच्छ)-१. पक्ष, २. सहाय, ३. बल । उ० २.
सहि न सक्थौ सो कठिन बिधाता बड़ो पछुँ आछुहि
भान्यौ । (गी० ३११३)
पछोरन-(सं० पच्छालन, प्रा० पच्छाङ्गना)-अन्न आदि सूप
से साफ करने पर बची हुई बेकार और गंदी वस्तु । उ०
ठालीं खालि जादि पछुए, अलि कसो है पछोरन छुछो ।
(क० ४३)
पट (१)-(सं०)-१. वस्त्र, कपड़ा, २. पर्दा, ओट, ३. रेशमी
वस्त्र । उ० १. यथा- पट-तंतु घट-मृत्तिका, सर्प-जग दाह

करि, कनक-कटकांगदादी । (वि० ६४) २. ध्वज पताक
पट चमर सुहाए । (मा० १२८६११) पटनि-'पट' का
बहुवचन । दे० 'पट' । रेशमी वस्त्रों । उ० अंसनि सरासन
लसत, सुचिकर सर, तून कटि सुनिपट लूटक पटनि
के । (क० २११६)
पट (२)-(सं० पट्ट)-किवाड़, कपाट ।
पटक-(सं० पतन)-पटक दिए, धराशायी कर दिए । उ०
बिकट चटकन चपट चरन गहि पटक महि । (क० ६१४६)
पटकइ-पटकने लगा, पटकता है । उ० महि पटकइ गज-
राज इव सपथ करइ दससीस । (मा० ६१६६) पटकत-
पटकते समय, पटकते वक्त । उ० महि पटकत भजे भुजा
भरोरी । (मा० ६१६८) पटकहिं-पटकते हैं, गिराते हैं ।
उ० भागत भट पटकहिं धरि धरनी । (मा० ६१४७४)
पटकि-पटककर, गिराकर । उ० तोहि पटकि महि सेन
हति चौपट करि तव गाउँ । (मा० ६१३०) पटके-पटक
दिये, पटका । पटकेउ-पटक दिया, मार गिराया । उ० गहि
पद पटकेउ भूमि भवाई । (मा० ६१८३)
पटतर-१. बराबरी, समानता, २. उपमा । उ० २. बैदेही
मुख पततर दीन्है । (मा० १२३८११) पटतरहि-तुलना,
उपमा । उ० प्रनतपाल, सेवक-कपालु-चित, पितु पटतरहि
दियो हौ । (गी० ३१४४) पटतरिअ-उपमा दी जाय,
तुलना की जाय । उ० यह छुबि सखी पटतरिअ जाही ।
(मा० १२२०१४) पटतरिय-उपमा दी जाय । उ० कहहु
काहि पटतरिय गौरि गुनरूपहि । (पा० १४०) पटतरौ-
उपमा दूँ, मुकाबिला करूँ । उ० केहि पटतरौ-बिदेह
कुमारी । (मा० १२३०१४)
पटल-(सं०)-१. पंक्ति, श्रेणी, कतार, २. आवरण, पर्दा, ३.
छप्पर, छत, ४. समूह, राशि, ढेर, परत, तह, ६. मोतिया-
बिंद, अँख का एक रोग, ७. माथे का तिलक, ८. पट्टा,
तख्ता । उ० १. पिंगल जटा-पटल शत कोटि विद्युच्छटाभं ।
(वि० ११) २. उघरे पटल परसुधर मति के । (मा० १
२८४३) पटली-दे० 'पटल' । 'पटल' का स्त्रीलिंग, पंक्तियाँ ।
उ० १. चंचरीक पटली कर गाना । (मा० ३१४०१४)
पट्ट-(सं०)-१. प्रवीण, चतुर, २. धूर्त, छलिया, ३. क्रूर,
निर्दय, ४. सुन्दर, ५. तीक्ष्ण, तेज, ६. स्वस्थ, ७. व्यक्त,
प्रकाशित, ८. उग्र, प्रचंड, ९. बच, १०. ज़ीरा, ११.
करेला, १२. परवल, १३. नमक, १४. नकछिकनी, १५.
चीनीकपूर, १६. ठोस, मजबूत । उ० १. पाप-ताप-तिमिर-
तुहिन-विघटन-पट्ट । (ह० ६) ४. रघुपति पट्ट पालकी
मंगाई । (मा० २३२०१२) ५. गर्भ के अर्भक काटन को
पट्ट धार कुठार कराल है जाको । (क० ११२०)
पट्टली-(सं० पट्ट)-भूले के रस्सों पर रक्खी जानेवाली पटरी
या तख्त । उ० पट्टली पदिक रति-हृदय जनु कलधौत-
कोमल-माल । (गी० ७१८८)
पटो-(सं० पट्टा)-किसी स्थावर संपत्ति विशेषतः भूमि के
उपयोग का अधिकार-पत्र जो किसी के नाम-लिखा जाता
है । उ० राज सुरेस पचासक को, बिधि के कर को जो
पटो लिखि पाए । (क० ७१४५)
पटोर-(सं० पटोल)-रेशमी कपड़ा । पटोरन्हि-रेशमी कपड़ों
से । उ० हाट पटोरन्हि छाया, सफल तर लाहन्हि । (पा०

६७) पटोरे-रेशमी कपड़े। उ० सिन्नानि सुहावनि टाट पटोरे। (मा० १११६)

पटोसिर-(?)-पाँवड़ा। उ० धन-धावन, बगपाँति पटोसिर, बैरख-तड़ित सोहाई। (क० ३२)

पट्टन-(सं०)-नगर, शहर।

पठति-(सं० पठ्)-पढ़ते हैं। उ० पठति ये स्तवं हृदं। (मा० ३।४। छं० १२)

पठइ-(सं० प्रस्थान, प्रा० पठान)-भेजकर, पठाकर। उ० जहँ-तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रव्य मगाइ। (मा० ७।१० ख) पठइअ-पठा दिया जाय, भेजा जाय, भेजिये। उ० अंग-भंग करि पठइअ बंदर। (मा० १।२४।५) पठइन्हि-भेजा। उ० पठइन्हि आइ कही तेहि बाता। (मा० १।२।१) पठइअ-भेजूगा, रवाना करूंगा। उ० अवसि दूत मैं पठइअ प्राता। (मा० २।३।१।४) पठइहि-भेजोगे, रवाना करोगे। उ० तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। (मा० ४।२।५) पठइ-भेजी, रवाना की। उ० जोग कथा पठइ ब्रज को। (क० ७।१३।४) पठउ-भेजो, भेजिए। उ० प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। (मा० ६।१।५) पठउअ-भेजूगा। पठउ-भेजे। उ० पठए बोलि गुनी तिनह नाना। (मा० १।२।७।४) पठएउ-१. भेजिएगा, २. भेजा है। पठएसि-भेजा। उ० पठएसि.मेघनाद बलवाना। (मा० १।१।१।१) पठएहु-भिजवाइए, भेजिए। उ० गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु। (मा० १।७।७) पठयउ-भेजा, भेजा है। उ० गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई। (मा० २।१।५।२) पठये-दे० 'पठए'। पठवत-भेजता है। उ० तौ बसीठ पठवत केहि काजा। (मा० ६।२।५) पठवन-भेजने, पहुँचाने। उ० पठवन चले भगत कृत चेता। (मा० ७।१।१।१) पठवहु-भेजो, भेज दो। उ० पठवहु कंत जो चहहु भलाई। (मा० १।३।६।४) पठवा-भेजा। उ० चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ। (मा० १।२।३।६) पठवौ-भेजू, भेज दूँ। उ० पठवौ तोहि जहँ कृपानिकेता। (मा० ६।६।०।३) पठाइअ-पठाय जाय, भेजा जाय। उ० दूत पठाइअ बालिकुमारा। (मा० ६।१।७।२) पठाइहि-भेजेगा। उ० जहँ-तहँ मरकट कौटि पठाइहि। (मा० ४।४।२) पठाई-भेजा, भेजा था। उ० गिरिजा पूजन जननि पठाई। (मा० १।२।२।१) पठाए-भेजा। उ० बीरभद्र करि कोपु पठाए। (मा० १।६।१।१) पठाएउ-भेजा। उ० दूत पठाएउ तब हित हेतु। (मा० ६।३।७।१) पठाओ-द्वै० 'पठावौ'। पठायऊ-भेजा। उ० लिखि लगन तिलक समाज सजि कुल गुरुहि अवध पठायऊ। (जा० १।२।६) पठायो-भेजा। उ० ज्ञान परसु द्वै मधुप पठायो। (क० २।६) पठावा-भेजा। उ० यह अलुचित नहि नेवत पठावा। (मा० १।६।२।१) पठावौ-भेजता हूँ, पठाता हूँ। उ० आपु सरिस कपि अलुज पठावौ। (मा० ६।१।०।२) पठै-१. पठए, भेजे, २. भेजकर। उ० १. सहस-दस चारि खल सहित खर दूषनहि पठै जम-धाम, तैं तउ न चीन्हो। (क० ६।१।५) २. गौतम नारि उचारि पठै पति धामहि। (जा० ४।४) पठावनी-मजदूरी, भेजने का पारिश्रमिक। उ० खैहौं न पठावनी कै हँ हँसाइ कै। (क० २।६)

पडिक-(सं० पदक)-चाँदी, रजत। उ० भोडर सुक्ति विभव पडिक मनि गति प्रगट लखात। (सं० ३।७।४)

पड़-(सं० पठ्)-पढ़ें। उ० सो हरि पड़ यह कौतुक भारी। (मा० १।२।०।३) पढ़त-पढ़ते हुए। उ० चले पढ़त गावत गुन गाथा। (मा० १।३।३।१।४) पढ़न-पढ़ने से लिए, पढ़ने। उ० गुरगृह गए पढ़त रघुराई। (मा० १।२।०।४।२) पढ़हि-पढ़ते हैं, पढ़ रहे हैं। उ० पढ़हि भाट गुन गावहि गायक। (मा० २।३।७।३) पढ़ि-पढ़ कर, अध्ययन कर, सीख कर। उ० गाढ़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू। (मा० २।२।१।२।२) पढ़िबो-पढ़ना, अध्ययन करना। उ० पढ़िबो परयो न छठी छमत, अंगु जजुर अथबैन साम को। (वि० १।५।५) पढ़िय-१. बाँचिए, पढ़िए, २. पढ़ता हूँ। पढ़ै-१. पढ़ा, २. पढ़ा है, पढ़ दिया है। उ० २. तुलसी-प्रभु किधौं प्रभु को प्रेम पढ़े प्रगट कपट बिलु ठोने। (गी० २।२।३)

पढ़ाइ-पढ़ाकर। उ० हारेउ पिता पढ़ाइ-पढ़ाई। (मा० ७।१।१।०।४) पढ़ाई-१. दे० 'पढ़ाई', २. पढ़ाया, ३. पढ़ाई हुई। उ० ३. कौटि कुटिल मनि गुरु पढ़ाई। (मा० २।२।७।३) पढ़ाये-१. पढ़ाया, २. सिखा पढ़ाकर अपने पंच में कर लिया। उ० २. मथुरा बड़ी नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए। (क० ५०) पढ़ाव-पढ़ाते थे। उ० बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाई। (मा० ७।१।०।५।३) पढ़ावहि-पढ़ाते हैं। उ० सुक सारिका पढ़ावहि बालक। (मा० ७।२।५) पढ़ावा-पढ़ाया, पढ़ाने लगे। उ० प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। (मा० ७।१।१।०।३) पढ़ैया-पढ़नेवाला, उच्चारण करनेवाला। उ० ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया। (क० ७।१।३।५)

पणव-(सं०)-छोटा नगारा, छोटा बोल।

पतंग-(सं०)-सूर्य, २. पतिंगा, शलभ, ३. टिड्डी, ४. गेंद, ५. पारा, ६. पत्ती, चिड़िया, ७. जटायु, ८. एक लकड़ी जिससे लाल रङ निकलता है। ९. नाच, १०. गुड्डी, कन-कौवा। उ० १. पवन पंगु पावक पतंग ससि दूरि गए थके विमान। (गी० १।२।२) २. जरहि पतंग मोह बस भार बहहि खर बृद्ध। (मा० ६।२।६) ३. बहुबिधि क्रीडहि पानि पतंगा। (मा० १।१।२।६।३) ७. पाहन पसू पतंग कोल भील निसिचर। (वि० २।५।७)

पतंगसुत-(सं०)-सूर्य का पुत्र, १. अश्विनीकुमार, २. कण, राधेय, ३. यम, ४. सुग्रीव। उ० २. भजु पतंगसुत आदि कहँ मृत्युंजय-अरि अंत। (सं० २।२।६)

पतंगा-दे० 'पतंग'। उ० १. देखेउ रघुकुल कमल पतंगा। (मा० १।६।८।४)

पतंति-(सं० पत्)-गिरते हैं। उ० पतंति नो भवाणैवे। (मा० ३।४। छं० ७)

पत-(सं० पति)-१. प्रतिष्ठा, बढ़ाई, इज्जत, २. नाथ, स्वामी, ३. लज्जा।

पतनी-(सं० पत्नी)-स्त्री, औरत।

पताक-(सं० पताका)-झंडा, निशान रूप में डंडे में पहनाया जानेवाला कपड़ा। उ० बिपुल बरन पताक ध्वज नामा। (मा० ६।७।६।१)

पताका-(सं०)-१. ध्वजा, झंडा, फरहरा, २. चिह्न, निशान,

३. भंडे का डंडा, ध्वज । उ० १. रघुपति कीरति बिमल पताका । (मा० १।१७।३)
 पताङ्ग-दे० 'पाताल' । उ० ईश सीस बससि त्रिपथ लससि नभ-पताल-धरनि । (वि० २०)
 पताला-दे० 'पाताल' । उ० बलिहि जितन एक गयउ पताला । (मा० ६।२४।७)
 पति-पति को । उ० नतोऽहमुर्विजा पति । (मा० ३।४। छं० ११) पति-(सं०)-१. मालिक, स्वामी, २. अतिष्ठा, इज्जत, ३. प्रसु, ४. भर्ता, ५. रक्षक, ६. लाज । उ० २. नीच यहि बीच पति पाइ भरु आइगो । (ह० ४१) ४. शुद्ध मति युवति पति प्रेम पागी । (वि० ३६) ६. नाम-प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडु बधु की । (क० ७।६) पतिधाम-(सं०)-१. स्त्री की ससुराल, २. पति का लोक । पतिधामहि-पति के लोक को । उ० गौतम नारि उधारि पठे पतिधामहि । (जा० ४४) पतिन्ह-पतियों को । उ० पतिन्ह सौपि बिनती अति कीन्ही । (मा० १।३३।११) पतिहि-पति को । उ० तीरथ-पतिहि आव सब कोई । (मा० १।४४।२) पतिहि-पति के । उ० केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई । (मा० २।२५। छं० १) पते-हे स्वामिन् । उ० नान्या स्पृहा रघुपते । (मा० ५।१। श्लो० २)
 पतिआउ-(सं० प्रत्यय, प्रा० पत्त्य)-विश्वास करो । उ० पुनि-पुनि मुजा उठाइ कहत हौं सकल सभा पतिआउ । (गी० १।४५) पतिआतो-विश्वास करता । उ० स्वारथ-परमारथ-पथी तोहि सब पतिआतो । (वि० १।२१) पति-आनि-विश्वास कर लिया । उ० सुर माया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि । (मा० २।१६) पतिआयो-विश्वास किया, भरोसा किया । पतिआहु-विश्वास कर लो या कर लेना । उ० काखु सँवारेहु सजग सब सहसा जनि पतिआहु । (मा० २।२२) पतिआहू-विश्वास करो । उ० कहउँ साँखु सब सुनि पतिआहू । (मा० २।१७।११)
 पतित-(सं०)-१. गिरा, नीचे आया हुआ, च्युत, २. आचारच्युत, अष्ट, ३. पापी, ४. जाति से निकाला हुआ, ५. नीच, बुरा, अपवित्र । उ० २. अधम आरत दीन पतित पातक-पीन । (वि० ४४) ३. तुलसिदास कहँ आस इहै बहु पतित उधारे । (वि० १।१०) ४. तै उदार, मैं कृपन पतित मैं तै पुनीत खुति गावै । (वि० १।१३) पतितन-पतितों, पापियों को । 'पतित' का बहुवचन । उ० हौं मन बचन कर्म पातक-रत तुम कृपाखु पतितनि गतिदाई । (वि० २।४२) पतितन्ह-दे० 'पतितन' ।
 पतितपवन-दे० 'पतितपावन' ।
 पतितपावन-(सं०)-पतितों को पवित्र करनेवाला, भगवान्, ईश्वर । उ० पतितपावन सुनत नाम विश्रामकृत । (वि० २०।६)
 पतिनिहि-(सं०, पत्नी)-पत्नी को, स्त्री को । पतिनी-स्त्री, औरत । उ० जे चरन सिव अज पूव्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी । (मा० ७।१३। छं० ४)
 पतिव्रत-(सं० पतिव्रत)-पति में अनन्य प्रीति और भक्ति, पातिव्रत्य । उ० त्रिय चदिहिहि पतिव्रत असिधारा । (मा० १।६।७।३)

पतिव्रता-(सं० पतिव्रता)-पति में अनन्य अनुराग रखने-वाली, ऐसी स्त्री जिसका उपास्य और प्रेम-पात्र एकमात्र पति हो । उ० जग पतिव्रता चारि बिधि अहर्ही । (मा० ३।५।६)
 पती-दे० 'पति' । मर्द, शौहर, भर्ता । उ० लियो हृदयँ लाइ कृपानिधान सुजान रायँ रमापती । (मा० ६। १२। छं० १)
 पतीजै-(सं० प्रत्यय) १. विश्वास कीजिए, २. विश्वास दिलाइए । उ० १. बोल्यो बिहग बिहँसि रघुबर बलि कहौं सुभाय पतीजै । (गी० ३।१५)
 पतीहू-(सं० पुत्रवधु)-बेटे की स्त्री ।
 पतीवा-(सं० पत्र)-पत्ता । उ० सिवहि चढ़ाये हँ हैं बेल के पतीबा हँ । (क० ७।१६३)
 पत्नी-(सं०)-जोरू, स्त्री, भार्या ।
 पत्यात-(सं० प्रत्यय) पतियाते, विश्वास करते, विश्वास करते हैं । उ० तौलों तुम्हहि पत्यात लोग सब, सुसुकि, सभित साँखु सो रोए । (क० ११)
 पत्र-(सं०)-१. पत्ता, दल, २. कागज, ३. चिट्ठी, ४. पत्रा, ५. वह कागज जिस पर कर्ज या किसी मामले आदि की बात लिखी हो, दस्तावेज, ६. तीर, ७. पंख । उ० १. हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल । (मा० १।२८।७) ३. तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाये । (मा० १।१७।२) ५. देबे को न कछु रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ । (वि० १००)
 पत्रिका-(सं०)-१. पत्र, चिट्ठी, २. कोई छोटा लेख आदि, जैसे जन्मपत्रिका । उ० १. पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची । (मा० १।२६।३)
 पत्री-(सं०)-१. चिट्ठी, पत्र, २. वृक्ष, ३. पत्नी, ४. कमल । उ० १. महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ । (बै० ३।५)
 पथ-(सं०)-१. मार्ग, रास्ता, राह, २. पंथ, मत, मज़हब, ३. विधान, व्यवहार । उ० १. परमारथ पथ परम सुजाना । (मा० १।४४।१) पथै-मार्ग पर, मार्ग में । उ० तापस बेवै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ । (क० २।१७)
 पथि-१. पथिक, २. रास्ते में, पथ में । उ० १. धर्म-कल्प हुमाराम हरिधाम-पथि-संबलं, मूलमिदमेव एकं । (वि० ४६)
 पथिक-(सं०)-मुसाफिर, बटोही । उ० अखिल खल निपुन-छल-छिद्र निरखत सदा जीव-जन-पथिक-मन-खेदकारी । (वि० ५६)
 पथी-(सं० पथ)-पथिक, मुसाफिर । उ० स्वारथ-परमारथ-पथी तोहि सब पतिआतो । (वि० १।२१)
 पथु-दे० 'पथ' ।
 पथ्य-(सं०)-१. वह हलका और जल्दी पचनेवाला भोजन जो रोगी के लिए लाभकर हो, २. उचित, ३. परहेज, ४. हित, ५. हितकर, हितकारी । उ० १. पूत पथ्य गुर आयासु अहई । (मा० २।१७।११)
 पद-दे० 'पद' । उ० २. नवादरेण ते पदं । (मा० ३।४।१२)
 पद-(सं०)-१. पैर, गोड़, २. मोक्ष, मुक्ति, ३. व्यवसाय, ४. उपाधि, पदवी, ५. ओहदा, जगह, दर्जा, ६. प्राय,

रक्षा. ७. लक्षण, निशान, न. पदार्थ, चीज, ६. कदम, १०. रत्नोक्त या छंद का चतुर्थांश, एक चरण, ११. पद्य, गीत, ईश्वर भजन संबंधी भजन, १२. शब्द, वाक्य, १३. प्रतिष्ठा। उ० १. कल कदलि जंघ पद कमल लाल। (वि० १४) ६. भुवन पर्यंत पद तीनि करणं। (वि० ५२) ११. उघटहि छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान। (गी० ११२) पदतल-(सं०)-पैर का तलवा। उ० पदुमराग रुचि मृदु पदतल, भुज अंकुस कुलिस कमल यहि सुरति। (गी० ७।१७) पदात्-पद से, स्थान से। उ० ते पाह सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी। (मा० ७।१३। छं० ३) पदक-दे० 'पदिक'। पदचर-(सं०)-पैदल चलनेवाला, प्यादा। उ० लुग पदचर असवार प्रति जे असि कला प्रबीन। (मा० १।२६८) पदचार-पैदल चलकर। उ० दसचारि बरिस बिहार बन पदचार करिबे पुनीत सैल सर सरि मही है। (गी० २।४१) पदचारी-(सं०)-पैदल चलनेवाला, प्यादा। उ० ते अब फिरत बिपिन पदचारी। (मा० २।२०।१।२) पदज-(सं०)-१. पैर की अंगुली, २. शूद्र। उ० १. मृदुल चरन सुभ चिह्न पदज नख अति अद्भुत उपमाहै। (वि० ६२) पदत्राण-(सं०)-जूता, खड़ाऊ। पदत्रान-दे० 'पदत्राण'। पदवी-(सं० पदवी)-१. उपाधि, खिताब, २. तरीका, परिपाटी, ३. ओहदा, दरजा, ४. पंथ, रास्ता। उ० १. रंक धनद पदवी जनु पाहै। (मा० २।२२।३) पदाति-(सं०)-पैदल सेना। उ० बहु गज रथ पदाति अस-वारा। (मा० ६।८६।२) पदादिका-(सं० पदातिक)-पैदल सेना। उ० प्रभु-कर सेन पदादिका बालक राज समाज। (दो० २२२) पदारथ-(सं० पदार्थ)-वस्तु, चीज। उ० प्रसुदित परम दरिद्र जनु पाह पदारथ चारि। (मा० १।३४२) पदार्थ-(सं०)-१. वस्तु, द्रव्य, चीज २. वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय वे छः पदार्थ होते हैं। ३. वह चीज जिसका कोई नाम हो और जिसका ज्ञान प्राप्त किया जा सके। पदिक (१)-(सं०)-पैदल सेना। पदिक (२)-(सं० पदक)-१. मणि, २. माला के बीच में जड़ी चौकी, ३. लुगनू नाम का गले में पहनने का एक आभूषण। उ० १. रुचिर उर उपबीत राजत, पदिक गजमनि हारु। (गी० ७।८) पदिक (३)-(सं० पद)-१. शृगुलता, २. चरण। पदु-दे० 'पद'। पदुम-(सं० पद्म)-१. कमल २. एक संख्या जो अंकों में १००००००००००००००० लिखी जाती है। ३. एक निधि का नाम, ४. एक पुराण। उ० १. बंदुई गुरुपद पदुम परागा। (मा० १।१।१) पदुमराग-दे० 'पद्मराग'। उ० हरित मनिन्ह के पद्म फल पदुमराग के फूल। (मा० १।२८७) पदुमराज-दे० 'पद्मराज'।

पदुसु-दे० 'पदुम'। पद्म-(सं०)-१. कमल, कंज, २. एक निधि का नाम, ३. सौ नील की संख्या, ४. एक पुराण। उ० १. राम पद पद्म-मकरंद-मधुकर पाहि! दास तुलसी-सरन-सुलपानी। (वि० २६) पद्मनाम-(सं०)-विष्णु, नारायण, जिसकी नाभि में कमल हो। पद्मराग-(सं०)-माणिक या लाल नाम का रत्न। पद्मा-(सं०)-लक्ष्मी। उ० युगल पद पद्म सुख सद्म पद्मा-लर्यं। (वि० ११) पद्मालय-(सं०)-ब्रह्मा। पद्मासन-पद्मासन लगाए हुए। दे० 'पद्मासन'। उ० पुन्य-बन शैल सरि बदरिकाश्रम सदाऽसीन पद्मासनं एक रूप। (वि० ६०) पद्मासन-(सं०)-१. योग का एक आसन, २. ब्रह्मा, ३. शिव। पन (१)-(सं० प्रण)-प्रतिज्ञा, संकल्प। उ० सुमिरे संकट-हारी सकल सुमंगलकारी, पालक कृपालु आपने पन के। (वि० ३७) पन (२)-(सं० पवन)-अवस्था, आयु के चार भागों में एक। पन (३)-(सं० पण)-मोल। पनच-(सं० पतञ्जिका)-प्रत्यंचा, धनुष की डोरी। उ० नदी पनच सर सम दम दाना। (मा० २।१३३।२) पनच-(सं० पणव)-१. छोटा नगारा, २. छोटा ढोल, ३. डंका। उ० १. हरपहि सुनि सुनि पनव निसाना। (मा० १।२६६।१) पनवार-दे० 'पनवारा'। पनवारा-(सं० पण, प्रा० पणव)-पत्तल, पत्तों का बना बर्तन, दोना। पनवारे-पत्तलों का समूह, दोनों। उ० सादर लगे परन पनवारे। (मा० १।३२८।४) पनवारो-दे० 'पनवारा'। उ० अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो। (वि० ६४) पनस-(सं०)-कटहल का वृक्ष। उ० संसार महुँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।६०।छं० १) पनहि-दे० 'पनही'। उ० पनहि लिहे कर सोभित सुंदर आँगन हो। (रा० ७) पनहियाँ-दे० 'पनहीं'। उ० बार बार उर नैननि लावति लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ। (गी० २।२२) पनहीं-जूते, पनही का बाहुबचन। उ० राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। (मा० २।२१।१।४) पनही-(सं० उपा-नह)-जूता। पनह्यौ-पनहीं भी। उ० पाहै पनह्यौ न, मृदु पंकज से पग हैं। (गी० २।२७) पनारे-(सं० प्रणाली)-पनाला, नाला। उ० जनु कज्जल-गिरि गेरु पनारे। (मा० ६।६६।४) पनिघट-(सं० पानीय + घट)-पानी भरने का घाट। उ० पनिघट परम मनोहर नाना। (मा० ७।२६।१) पनी-(सं० प्रण)-प्रण करवाला। उ० बाँह-पगार उदार-सिरोमनि नत-पालक पावन-पनी। (गी० २।३६) पनु (१)-दे० 'पन (१)। उ० सुमिरे पिता पनु मनु अति छोभा। (मा० १।२३४।२)

पनु (२)-दे० 'पन (२)' । उ० मनहुँ जरठपनु अस उप-
देसा । (मा० २।२।४)
पन्नग-(सं०)-सर्प, साँप । उ० रामकथा कलि पन्नग
भरनी । (मा० १।३।१।३)
पन्नगारि-(सं०)-गरुड़ पत्नी, जो सर्पों का शत्रु होता है ।
उ० पन्नगारि असि नीति श्रुति सम्मत सज्जन कहहि ।
(मा० ७।१५।क)
पन्नगारी-दे० 'पन्नगारि' । उ० त्रिपुर-मद-भंगकर, मत्तगज-
चर्म-धर, अंधकोरग-असन-पन्नगारी । (वि० ४६)
पन्हाइ-(सं०) पयः स्वन, प्रा० पहणवन)-थनों में दूध
उतार कर, पसुराकर । उ० धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों
बालक बोलनि कान किये तें । (क० ७।१२६)
पपीहरा-दे० 'पपीहा' । उ० ब्याधा बधे पपीहरा परेउ गंग-
जल जाइ । (स० ६८)
पपीहा-(हि०) पपी (प्रिय) + हा या सं० पपिः (पीना) +
सं० हार (वाला) = पीनेवाला) एक पत्नी जो केवल
स्वाती नक्षत्र का पानी पीने तथा पी कहाँ पी कहाँ कहने
के लिए प्रसिद्ध है । इसकी च्चनि बड़ी सुरीली होती है ।
उ० देहि मा ! मोहि प्रण प्रेम, यह नेम निज राम घन-
श्याम, तुलसी पपीहा । (वि० १५)
पवारै-(सं०) प्रवारण)-फेंकने से । उ० रज होइ जाइ पवान
पवारै । (मा० १।३०।१।२) पवारै-(सं०) प्रवारण)-फेंक
दिए । उ० कछु अंगद प्रभु पास पवारै । (मा० ६।३२।३)
पवारै-फेंके, फेंकता है । उ० कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पवारै ।
(मा० ६।१६।३)
पवि-दे० 'पवि' । उ० २. गरजि तरजि पाषाण बरवि पवि
प्रीति परखि जिय जानै । (वि० ६५)
पविपात-वज्रपात, बिजली का गिरना । उ० घहरात
जिमि पविपात गर्जत जनु प्रलय के बादले । (मा०
६।४६।६०।१०)
पवै-(सं०) प्राण, प्रा० पावण)-१. प्रास हो, मिले, २.
प्रास हुई, मिली । उ० १. बिचारि फिरी उपमा न पवै ।
(क० १।७) २. मति-भारति पंगु भई जो निहारि,
बिचारि बिचारि फिरी उपमान पवै । (क० १।७)
पबइ-(सं०) पर्वत)-पहाड़, पर्वत । उ० छुदिए कृपाल
तुलसी सु प्रेम पबइ तें । (ह० २३)
पबवै-दे० 'पबवइ' । उ० डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पबवै
समुद्र सर । (क० १।११)
पय-(सं०)-१. दूध, २. जल, ३. पयस्विनी, नदी, ४.
पानी । उ० १. संत हंस गुन गहहि पय परिहरि बारि
बिकार । (मा० १।६) २. दे० 'पयनिधि' ।
पयज-(सं०) प्रतिज्ञा, प्रा० पतिज्ञा, अप० पइज्जाँ, पुरानी
हि० पैज) प्रण, प्रतिज्ञा, टेक, हठ । उ० परखत प्रीति
प्रतीति पयज पनु रहे काज ठुठ ठानिहैं । (गी० १।७८)
पयद-(सं०)-दूध या जल देने वाला, १. बादल, २. स्तन ।
उ० १. पोषत पयद समान सब विष पियुष के रूख । (दो०
३।७७) २. स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए । (मा० २।५२।२)
पयनिधि-(सं०)-१. समुद्र, २. चीर सागर, दूध का समुद्र ।
उ० २. कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई । (मा०
१।१८।१)

पयमुख-दूध पीनेवाला, दुधमुहाँ, छोट्टा । उ० कालकूट
मुख पयमुख नाहीं । (मा० १। २७७।४)
पयस-(सं०) पयस्)-दूध । उ० बचन गाय सब के बिबिध
कहहु पयस के देइ । (स० ५६७)
पयसारत-मंदाकिनी नदी । उ० पावनि पयसरित सकल
मल निकंदिनी । (गी० २।४३)
पयस्विनी-(सं०)-मंदाकिनी, चित्रकूट की एक नदी ।
पयादे-(फ्रा० प्यादा)-पैदल, बिना किसी सवारी के । उ०
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे । (मा० २।२२।१।३) पयादेहि-
पैदल ही । उ० चखब पयादेहि बिनु पद ज्ञाना । (मा०
२।६२।३) पयादेहि-पैदल ही । उ० पाँयन तौ पनही न,
पयादेहि क्यों चलिहैं ? सकुचात हियो है । (क० २।२०)
पयान-(सं०) प्रयाण)-१. गमन, जाना, यात्रा, २. धावा,
आक्रमण या आक्रमण के लिए गमन, ३. कूच करने या
प्रयाण करने का समय । उ० १. प्रभु पयान जाना
बैदेहीं । (मा० ५।३५।३) ३. राम पयान निसान नभ
बाजहिं गाजहिं बीर । (प्र० ५।५।५)
पयाना-दे० 'पयान' । उ० १. एहि बिधि कीन्ह बरात
पयाना । (मा० १।३०।४।२)
पयानो-दे० 'पयान' । उ० १. जब रघुबीर पयानो कीन्हों ।
(गी० २।२२)
पयोद-(सं०)-१. बादल, २. स्तन । उ० १. सान्दानन्द
पयोद सौभगतसुं पीताम्बर सुन्दरं । (मा० ३।१।
श्लो० २)
पयोदनाद-(सं०)-मेघनाद । उ० कुंभकर्न-रावन-पयोदनाद-
ईधन को तुलसी प्रताप जाको प्रबल अनल भो ।
(ह० ७)
पयोधर-(सं०)-१. स्तन, २. बादल । उ० १. दैअहि
लागि कहौ तुलसी-प्रभु अजहुँ न तजत पयोधर पीबो ।
(क० ६)
पयोधि-(सं०)-१. समुद्र, २. दूध का समुद्र, चीर सागर ।
उ० २. संत समाज पयोधि रमा सी । (मा० १।३।१।१)
पयोधी-दे० 'पयोधि' । उ० १. पुर दहि नावेउ बहुरि
पयोधी । (मा० ७।६७।३)
पयोनिधि-(सं०)-समुद्र । उ० जौ छुबि सुधा पयोनिधि
होई । (मा० १।२४।७।४)
पर-दे० 'पर' । उ० ६. वन्देऽहं तमशेषकारण परं रामाख्य-
मीशं हरिम् । (मा० १।१।श्लो० ६) परंतु-(सं०) परं + तु-
कित्तु, लेकिन । उ० तहाँ परंतु एक कठिनाई । (मा० १।१।६
७।१) पर (१)-(सं०)-१. दूसरा, अन्य, और, २. पराया, जो
अपना न हो, ३. भिन्न, जुदा, ४. पीछे का, बाद का, ५.
अलग, तटस्थ, जो सीमा के बाहर हो, ६. श्रेष्ठ, सर्वोत्तम;
सबसे आगे, ७. प्रवृत्त, लीन, ८. शत्रु, दुश्मन, ९. शिव,
१०. ब्रह्म, ११. ब्रह्मा, १२. मोक्ष । उ० २. अनहित-अप्य
परहित किये, पर अनहित हितहानि । (दो० ४।६७) ५.
घोर संसार पर पारदाता । (वि० ५४) ८. ज्यति सुवनैक
भूषण विभीषण-बरद-बिहित-कृत, राम संग्राम-साका ।
(वि० २६)
पर (२)-(सं०) उपरि)-अधिकरण का चिह्न, उपर, पर ।
उ० जाहि लगे पर जानै सोई । (क० ७।१३।४)

पर (३)-(सं० परम्)-पश्चात्, पीछे ।
 पर (४)-(फ़ा०)-पंख, पक्ष ।
 परह-(सं० पतन, प्रा० पडन, हि० पडना)-पड़ता, गिरता ।
 उ० सोच बिकल मग परह न पाऊ । (मा० २।३।२)
 परह-पड़ जाने, पड़े, गिरे । उ० होइ सुखी जौ एहि सर
 परह । (मा० १।३।४) परउं-१. पड़ती हूँ, २. पड़ूँ ।
 उ० १. मैं पाँ परउँ कहइ जगदंबा । (मा० १।८।१४) परत
 (१)-१. पड़ते हैं, गिरते हैं, २. घटित होता है, होता है,
 पड़ता, पड़ता है, बनता है, ३. उदरता है, ४. पड़ते हुए,
 गिरते हुए, ५. पड़ने में, गिरने में । उ० १. समय पुराने
 पात परत डरत बात । (क० २।१) २. परखे प्रपंची प्रेम
 परत उधरि सो । (वि० २६४) ५. नाहिन नरक
 परत मो कहँ डर । (वि० ६४) परति-पड़ती
 पहै, जाती है, जाती । उ० निदुरता अरु नेह की
 गति कठिन परति कही न । (क० ५५) परतिहुँ-पड़ते
 भी, गिरते भी । उ० परतिहुँ बार कटकु संचारा । (मा०
 २।२०।१) परव (१)-(सं० पतन)-पड़गा । उ० इन्ह कर
 कहा न कीजिए बहुरि परब भवकूप । (वि० २०३)
 परहिं-गिर जाते हैं, पड़ जाते हैं । उ० अदुकि परहिं फिरि
 हेरहि पीछे । (मा० २।१४।३) परहीं-पड़ते हैं, गिरते हैं ।
 उ० बारहिं बार पायलै परहीं । (मा० २।११।४) परा (१)-
 पड़ा, पड़ गया, पड़ गया है । उ० मनु हठ परा न सुनइ
 सिखावा । (मा० १।७।३) परि (१)-(सं० पतन, प्रा०
 पडन)-पड़ी । उ० परि न बिरह बस नींद बीति गह
 जासिनि । (जा० १।२) परिअ-पड़ता है, पड़ेगा, पड़ना
 चाहिए । उ० मारत हूँ पा परिय तुम्हारे । (मा० १।२७।३
 ।४) परिए-पड़ा रहूँ । उ० संतत सोह प्रिय मोहिं सदा
 जातै भवनिधि परिए । (वि० १।८) परिगा-(सं० पतन,
 प्रा० पडन)-पड़ गया । उ० कीवहुँ रानि कौसिलहि परिगा
 भोर हो । (रा० १।२) परिय-(सं० पतन)-पड़ना चाहिए ।
 परिहहिं-(सं० पतन, हि० पडना, परना)-गिरेंगे, पड़ेंगे ।
 उ० परिहहिं धरनि राम सर लागें । (मा० ६।२७।२)
 परिहिं-पड़ेंगे, गिरेंगे, पतित होंगे । परिहिं-गिर पड़ेंगे,
 गिरेंगे । उ० सोक-कूप पुर परिहि, मरिहि नृप, सुनि
 सँदेस रघुनाथ-सिधायक । (गी० २।३) परिहै-पड़ेगा ।
 उ० तुलसी पर बस हाइ पर परिहै पुहुमी नीर ।
 (दो० ३०१) परिहौ-पड़ोगे, गिरोगे । परीं-पड़ीं, गिरीं ।
 उ० बिनु प्रयास परीं प्रेम सही । (गी० २।३८) परी-१.
 पड़ी, गिरी, पतित हुई, २. हुई, घटी । उ० १. अस कहि
 परी चरन धरि सीसा । (मा० १।७।४) परीगो-पड़ ही
 गया । उ० हाय हाय करत परीगो काल फँग मैं । (क० ७।७।६)
 परे (१)-१. गिरे, गिर पड़े, २. पड़कर, ३. पड़ने पर, ४.
 पड़े हुए, गिरे हुए । उ० ३. हौ भले नग-फँग परे गढ़ीबै,
 अब प गदत महरि मुख जोए । (क० ११) परेउं-पड़ा हूँ,
 गिरा हूँ । उ० फिरत अहेरं परेउं सुलाई । (मा० १।
 १५।३) परेउ-पड़ा, पड़ा हो । उ० अभिमत बिरवँ परेउ
 जनु पानी । (मा० २।१।३) परेऊ-पड़े, पड़ गए । उ० सोच
 बिकल बिवरन महि परेऊ । (मा० २।३।४) परेहु-पड़े
 हो । उ० परेहु कठिन रावन के पाजे । (मा० ६।६।४)
 परै-पड़ता, पड़ती । उ० जागइ मनोभव मुएहुँ मन बन

सुभगता न परै कही । (मा० १।८।६ छं० १) परों-(सं०
 पतन)-गिर पड़ूँ, गिरूँ । परो-पड़ा, पड़ा हुआ । उ०
 कृपनु देइ पाइय परो, बिन साधन सिधि होइ । (प्र०
 ७।४।३) परयो-१. पड़ा, गिर पड़ा, २. पड़ा हुआ । उ०
 २. रन परयो बंधु विभीषन ही को सोच हृदय अधिकाई ।
 (वि० १६४)

परखि-(सं० परीक्षा)-१. देखकर, पहचानकर, २. परीक्षा
 लेकर । उ० १. प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ । (जा०
 १।१६) परखिअहिं-परीक्षा होती है, परीक्षा की जाती है ।
 उ० आपद काल परखिअहिं चारी । (मा० ३।२।४) पर-
 खिय-परखिए, परीक्षा कीजिए । उ० प्रेम न परखिय परख-
 पन, पयद-सिखावन एह । (दो० २।६) परखी-परख ली,
 परीक्षा कर चुका । उ० परखी पराई गति, आपने हूँ कीय
 की । (वि० २६३) परखे-१. परीक्षा कर ली, परख लिया,
 २. परख कर । उ० १. परखे प्रपंची प्रेम परत उधरि सो ।
 (वि० २६४)

परचंड-दे० 'प्रचंड' । उ० १. प्रबल-भुजदंड-परचंड को-
 दंड धर । (वि० ५०)

परचा-(सं० परिचय)-१. परिचय, जान-पहचान, २.
 परीक्षा, जाँच ।

परचारि-(सं० प्रचार)-प्रचारकर, डंके की चोट पर, पुकार-
 कर । उ० चार चरन-तल-चिह्न चारि फल देत परचारि
 जानि जन । (गी० ७।१६) परचारे-खलकारने पर । उ०
 उठा आपु कपि के परचारे । (मा० ६।३।१)

परचे-(सं० परिचय)-परिचय, पहचान । उ० रामचरन
 परचे नहीं बिनु साधुन पद नेह । (सं० ३।८)

परजंक-(सं० पयक)-पलंग, चारपाई ।

परजरा-(सं० प्रज्वलन)-जला, उल उठा, भभक उठा, जल
 गया । उ० सुनत बचन रावन परजरा । (मा०
 ६।२।४)

परजारि-जलाकर, प्रज्वलित कर । उ० लंका परजारि मकरी
 बिदारि बार-बार । (ह० २७)

परत (२)-(सं० पत्र)-१. स्तर, तह, पटल, २. लड़ ।

परतच्छ-(सं० प्रत्यक्ष)-प्रत्यक्ष, सम्मुख, सामने, प्रकट ।
 उ० कह तुलसी परतच्छ जो सो कहु अपर को आन ।
 (सं० ५०६)

परतीति-(सं० प्रतीति)-विश्वास, यकीन । उ० बिहुरत
 श्री ब्रजराज आजु इन नयनन की परतीति गई ।
 (क० २४)

परतीती-दे० 'परतीति' । उ० सखी वचन सुनि मै परतीती ।
 (मा० १।२५।२)

परत्र-(सं०)-१. परलोक में, २. दूसरी जगह, अन्यत्र ।
 उ० १. सो परत्र हुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताय ।
 (मा० ७।४३)

परदखिना-(सं० प्रदक्षिणा)-परिक्रमा, किसी देवमूर्ति या
 देवस्थान के चारों ओर घूमना । उ० परदखिना करि करहिं
 प्रनामा । (मा० २।२०।२)

परदा-(फ़ा०)-१. कपड़े आदि का आड़, पट, चिक, २.
 बनी हुई प्रतिष्ठा या मर्यादा, ३. छिपाव, दुराव, लाज,
 ४. व्यवधान । उ० २. सेवक को परदा फटै तू समरथ सी

ले । (वि० ३२) ३. नारदको परदा न नारद सो पारिखो। (क० १११६)
 परदेस-(सं० पर + देश)-पराया देश, दूसरा देश । उ० ते तुसली तजि जात किमि निज घरतर परदेस । (स० ७)
 परधान (१)-(सं० प्रधान)-१. प्रधान, मुखिया, अगुवा, २. मुख्य, खास । उ० २. पुरुधारथ, पूरब करम, परमे-स्वर परधान । (दो० ४६८)
 परधान (२)-(सं० परिधान)-वस्त्र, परिधान, पहिरन ।
 परधान-दे० 'परधान (१)' । उ० २. जहँ नहिँ राम प्रेम पर-धान । (मा० २।२६१११)
 परधाम-(सं०)-१. बैकुण्ठ, परलोक, २. ईश्वर । उ० १. को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को । (वि० १५५)
 परधामा-दे० 'परधाम' । उ० २. कहि सच्चिदानंद पर-धामा । (मा० १।५०।४)
 परन (१)-(सं० पर्या)-पत्ता, पत्र । उ० मरकत बरन परन, फल मानिक से । (क० ७।१३६)
 परन (२)-(सं० प्रण)-प्रतिज्ञा, प्रण ।
 परनकुटी-(सं० पर्याकुटी)-पत्तों की कोपड़ी । उ० रघुवर परनकुटी जहँ छाई । (मा० २।२३७।३)
 परनकुटीर-दे० 'परनकुटी' । उ० सानुज सीय समेत प्रभु राजत परनकुटीर । (मा० २।३२१)
 परनगृह-(सं० पर्यागृह)-कुटी, भोंपड़ी । उ० गोदावरी निकट प्रभु रहे परनगृह छाई । (मा० ३।१३)
 परनपुटी-(सं० पर्या + पुटिका)-दोनों में, पत्ते के बर्तनों में । उ० भरि भरि परनपुटी रचि रूरी । (मा० २।२५०।१)
 परनसाल-(सं० पर्या + शाला)-भोंपड़ी, पर्याकुटी । उ० नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल । (मा० २। ६५)
 परना-(सं० पर्या)-पत्र, पत्ता । उ० पुनि परिहरे सुखानेउ परना । (मा० १।७४।४)
 परनाम-दे० 'प्रणाम' ।
 परनामा-(सं० प्रणाम)-प्रणाम, नमस्कार । उ० कलि के कबिन्ह करउँ परनामा । (मा० १।१४।२)
 परपंचु-(सं० प्रपंच)-१. संसार, २. भ्रमेला । उ० १. मिलइ रचइ परपंचु विधाता । (मा० २।२३२।३)
 परपद-परमपद, ब्रह्मपद । उ० सतसैया तुलसी सतर तम हरि परपद देत । (स० ३१४)
 परब (२)-(सं० पर्व)-१. त्यौहार, उत्सव, २. योग, घड़ी । उ० १. परब जोग जनु छुरे समाजा । (मा० १।४१।४)
 परबस-(सं० परवश)-पराधीन, दूसरे के वश में । उ० करि करूप बिधि परबस कीन्हा । (मा० २।१६।३)
 परबास-(सं०)-ऊपर का कपड़ा, बैठन । उ० कपटसार सूची सहस, बाँधि बचन-परबास । (दो० ४१०)
 परबत-(सं० पर्वत)-पहाड़ । उ० मानो प्रतच्छ परबत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो । (क० ६।५४)
 परब्रह्म-(सं०)-ब्रह्म जो जगत से परे है ।
 परभात-दे० 'प्रभात' । उ० हरषु हृदय परभात पथाना । (मा० २।१८६।१)
 परम-महान्, बड़ा । उ० भव बारिधि मंदर परमं दर ।

(मा० ६।१५।३) परम-(सं०)-१. भारी, बड़ा, अधिक, अत्यंत, २. उत्कृष्ट, श्रेष्ठ, ३. प्रधान, मुख्य, ४. आद्य, आदिम, ५. शिव, ६. विष्णु । उ० १. परम कृपाल प्रनत अनुरागी । (मा० १।१३।३) २. रघुपति-पद परम प्रेम तुलसी चह अचल नेम । (वि० १६) ४. परम कारन, कंज-नाभ, जलदाभ तनु सगुन निर्गुन सकल दश्य-द्रष्टा । (वि० ५३)
 परमगति-(सं०)-मोक्ष, मुक्ति । उ० सकल परमगति के अधिकारी । (मा० ७।२१।२)
 परमपद-मोक्ष, मुक्ति । उ० लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपंच-उदासी । (वि० २२)
 परमा-(सं०)-शोभा, छवि ।
 परमाणु-(सं०)-१. अत्यंत सूक्ष्म अणु, ऐसा अणु जो विभाजित न हो सके, २. सात निमेष का समय, अत्यंत अल्प समय ।
 परमात्म-(सं० परमात्मन्)-परमात्मा, सबसे बड़ी आत्मा । उ० नमो-नमो श्रीराम प्रभु परमात्म परधाम । (स० १)
 परमात्म-दे० 'परमात्मा' । उ० प्रगट परमात्मा प्रकृति स्वामी । (वि० ४६)
 परमात्मा-(सं० परमात्मन्)-ब्रह्म, ईश्वर, भगवान् ।
 परमाधर-(सं०)-बड़ी शोभा को धारण करनेवाला ।
 परमानंद-(सं०)-१. बहुत बड़ा सुख, २. ब्रह्म के अनुभव का सुख, ३. आनंदस्वरूप ब्रह्म । उ० १. परमानंद अमित सुख पावा । (मा० १।१११।४)
 परमान-(सं० प्रमाण)-१. प्रमाण, सबूत, २. यथार्थ बात, सत्य बात, ३. सीमा, मिति, हद, ४. समान, सदृश, ५. यथेष्ट, पर्याप्त । उ० ५. दान मान परमान प्रेम पूरन किए । (जा० १७६)
 परमानु-दे० 'परमाणु' । उ० १. बुद्धि मन इंद्रिय प्राण चिन्तातमा काल-परमानु चिच्छक्ति गुनी । (वि० १५४) २. लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड । (मा० ६। १। दो० १)
 परमारथ-दे० 'परमार्थ' । उ० २. रामब्रह्म परमारथ रूपा । (मा० २।६३।४) परमारथहि-परमारथ को, ज्ञान को । उ० तौ सकोच परिहरि पालागौ परमारथहि बखानो । (क० ३५)
 परमारथी-१. असली चीज को जानने की इच्छा रखनेवाला, तत्त्वज्ञानसु, २. सिद्धहस्त, ३. मोक्षार्थी, मोक्ष की चिन्ता करनेवाला । उ० १. घर घाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी । (पा० १२१)
 परमारथु-दे० 'परमार्थ' । उ० १. सखा परम परमारथु एहू । (मा० २।६३।३)
 परमार्थ-(सं०)-१. उत्कृष्ट पदार्थ, सबसे बढ़कर वस्तु, २. यथार्थ तत्व, सार वस्तु, ३. मोक्ष, ४. दुःख का संवत्सा अभाव ।
 परमीसा-(सं०, परम + ईश)-परमेश्वर, भगवान् । उ० माया मोह पार परमीसा । (मा० ७।५८।४)
 परलोक-(सं०)-१. दूसरा लोक, वह स्थान जो शरीर छोड़ने पर आत्मा को प्राप्त होता है । २. श्रेष्ठ जन, उत्तम पुरुष, ३. अन्य जन, दूसरे मनुष्य । उ० १. अजसु लोक

परलोक दुख दिन-दिन सोक समाजु । (मा० २।२१८)
 परलोका-दे० 'परलोक' । उ० १. तजि माया सेइअ पर-
 लोका । (मा० ४।२३।३)
 परलोक-दे० 'परलोक' । उ० १. सुकसु सुजसु परलोक
 नसाज । (मा० २।७६।२)
 परलोक-दे० 'परलोक' । उ० १. नाहिन डरु बिगरिहि पर-
 लोका । (मा० २।२११।३)
 परवान-(सं० प्रमाण)-१. प्रमाण, सबूत, २. यथार्थ बात,
 सत्य, ३. सीमा, तक, अविधि । उ० ३. तुलसिदास तनु
 तबि रघुपति हित कियो प्रेम परवान । (गी० २।६६)
 परवाना-दे० 'परवान' । उ० २. रखिहउँ इहाँ बरष पर-
 वाना । (मा० १।१६६।३)
 परवास-(सं० प्रवास)-आच्छादन, प्रबंध, रक्षा । उ०
 कपट सार सूची सहस बाँधि बचन परवास । (दो०
 ४१०)
 परवाह-(फा० परवा)-१. फिक्र, चिंता, व्यग्रता, २. अपेक्षा,
 ३. सहारा, ४. खटका, ५. ध्यान, ख्याल, ६. आसरा ।
 उ० २. जग में गति जाहि जगत्पति की, परवाह है ताहि
 कहा नर की । (क० ७।२७)
 परवाहि-दे० 'परवाह' । उ० १. करै तिनकी परवाहि ते जो
 बिनु पूँछ विपान फिरै दिन दौरै । (क० ७।४६)
 परशु-(सं०)-एक अस्त्र जिसमें एक डंडे के सिरे पर एक
 अर्द्ध चंद्राकार लोहे का फल लगा रहता है । कुल्हाड़ी,
 कुठार ।
 परशुराम-(सं०)-विलु के अवतारों में एक । इनकी उत्पत्ति
 के विषय में एक कथा है । ऋचीक ऋषि ने एक बार अस्र
 होकर अपनी स्त्री सत्यवती तथा सत्यवती की माता के
 लिए दो चरु प्रस्तुत किए । प्रथम चरु के खाने से शान्त
 पुत्र की प्राप्ति होती और दूसरे के खाने से प्रचंड और
 वीर की । सत्यवती को खाना तो था प्रथम पर वह भूल
 से दूसरा खा गई । जब उसे यह भूल ज्ञात हुई तो उसने
 अपने पति से प्रार्थना की कि मेरा पुत्र उग्र और प्रचंड न
 हो बल्कि पौत्र हो । अंत में यही हुआ । सत्यवती के
 गर्भ से जमदग्नि ऋषि पैदा हुए । परशुराम इन्हीं के पुत्र
 थे और पूर्वकथा में दिए गए कारणों से उग्र, प्रचंड और
 क्रोधी थे । एक बार परशुराम की माँ रेणुका चित्ररथ
 राजा को अपनी रानी के साथ जल-क्रीड़ा करते देख
 कामातुर हो गई और उसी दशा में जमदग्नि के आश्रम
 में प्रवेश किया, जिस पर जमदग्नि क्रुद्ध हुए और उन्होंने
 अपने चार पुत्रों को एक-एक करके रेणुका का वध करने
 की आज्ञा दी । और कोई पुत्र तो इसके लिए तैयार न
 हुआ पर परशुराम ने आज्ञा पाते ही माता का सिर काट
 डाला । पिता ने अस्र होकर वर माँगने के लिए कहा ।
 परशुराम ने प्रथम वर तो माता पुनर्जीवित करने के विषय
 में माँगा और दूसरा अपने को दीर्घायु तथा अतुल परा-
 क्रमी बनाने के संबंध में । पिता ने दोनों वर स्वीकार
 किए । एक बार राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन ने जमदग्नि के
 आश्रम को नष्ट-भष्ट कर डाला । इस पर परशुराम ने
 उनकी सहस्र भुजाओं को भाले से काट डाला । इस पर
 सहस्रार्जुन के कुलवालों ने एक दिन जमदग्नि को मार डाला ।

यह देखकर परशुराम इतने क्रुद्ध हुए कि संपूर्ण क्षत्रियों के
 नाश की प्रतिज्ञा की और सचमुच क्षत्रियों का नाश कर
 डाला । एक दिन विश्वामित्र के पौत्र परावसु ने व्यंग्य में
 कहा कि तुम्हारी प्रतिज्ञा व्यर्थ है, अब भी संसार में बहुत से
 क्षत्रिय पड़े हैं । इस पर परशुराम की क्रोधाग्नि फिर भड़की
 और बचे-बचे क्षत्रियों को मारकर उन्होंने अश्वमेध यज्ञ
 किया और उसमें संपूर्ण पृथ्वी कश्यप ऋषि को दान
 दे दी । वाल्मीकि रामायण के अनुसार धनुषभंग और
 व्याहोपरांत राम जब लौट रहे थे तो परशुराम ने उनका
 रास्ता रोका और वैष्णव धनु उनके हाथ में देकर कहा
 कि शैव धनुष तो तुमने तोड़ा अब इस वैष्णव धनुष को
 चढ़ाओ । यदि इस पर बाण न चढ़ा सकोगे तो तुम्हारे
 साथ युद्ध करूँगा । राम ने धनुष चढ़ा दिया और परशु-
 राम हतप्रभ हो गए ।

परस-(सं० स्पर्श)-१. छूने की क्रिया, छूना, २. छूकर । उ०
 २. पाँचहूँ पाँच परस, रस, सब्द, गंध अरु रूप । (वि०
 २०३) परसत-१. स्पर्श करता है, छूता है, छूते हैं, २.
 छूते ही, ३. परोसते ही, ४. परोसा हुआ । उ० १. लगे
 सुभग तरु परसत धरनी । (मा० १।३४४।४) २. परसत
 पद पावन सोक नसावन प्रगट भइ तपपुंज मही । (मा०
 १।२११। छं० १) ४. अब केहि लाज कृपानिधान परसत
 पनवारो टारो । (वि० ६४) परसति-छूती है । उ० गौतम
 तिय गति सुरति करि नहिँ परसति पग पानि । (दो०
 १८६) परसा-स्पर्श किया । उ० कर परसा सुभ्रिव सरीरा ।
 (मा० ४।८।३) परसि-छूकर, स्पर्श कर । उ० तुलसी
 जिनकी धूरि परसि अहत्या तरी । (क० २।६) परसे-छूने
 से, छूने में, स्पर्श करने से । उ० परसे पग धूरि तरै तरनी,
 धरनी घर क्यों समुझाईहौं जू ? (क० २।६) परसेउ-
 स्पर्श किया, छूवा । उ० कर सरोज सिर परसेउ कृपा-
 सिंधु रघुबीर । (मा० ४।३०) परसै-१. छूचे, स्पर्श करे, २.
 स्पर्श करता है, छूता है । उ० १. बास नासिका बिनु लहै,
 परसै बिना निकेत । (वै० ३) परस्यो-छूवा, स्पर्श किया ।
 उ० चंदन चंद्रबदन भूषन पट ज्यों चह पाँवर परस्यो ।
 (वि० १७०)

परसपर-(सं० परस्पर)-आपस में, एक दूसरे के
 साथ । उ० प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी । (मा०
 १।२११।१)

परसमनि-(सं० स्पर्शमणि)-पारस पत्थर, जिसके स्पर्श से
 लोहा सोना हो जाता है । उ० गुंजा अहह परसमनि
 खोई । (मा० ७।४४।२)

परसाद-(सं० प्रसाद)-दया, कृपा, प्रसाद ।

परसु-दे० 'परशु' । उ० बोले चितह परसु की ओरा । (मा०
 १।२०२।२)

परसुधर-(सं० परशुधर)-परशुराम, विलु के एक अवतार ।
 उ० छत्रियाधीस-करिनिकर-वर-केसरी परसुधर विप्र-
 ससि-जलद रूप । (वि० ५२) परसुधरहि-परशुराम का ।
 उ० बोले परसुधरहि अपमाने । (मा० १।२७१।३)

परसुपानि-(सं० परशु + पाणि)-परशुराम, हाथ में परशु या
 कुठार धारण करनेवाले । उ० परसुपानि जिन्ह किए महा-
 मुनि जे चितए कबहुँ न कृपा हैं । (गी० ७।१३)

परसुराम-दे० 'परशुराम' । उ० परसुराम 'पितु अग्न्या राखी । (मा० २।१७४।४)
 परस्पर-(सं०)-अन्योन्य, आपस में । उ० सुरविमान हिम-
 भानु भानु संघटित परस्पर । (क० १।११)
 परहुं-(सं० परश्यः)-तीसरे दिन भी । उ० ज्यों
 आछु कालिहु परहुं जागन होहिगे नेवते दिये । (गी०
 १।५)
 परहेलि-(सं० प्रहेलन)-तिरस्कार कर, निरादर कर, उल्लं-
 घन कर । उ० सींचि सनेह सुधा खनि कादी लोक-वेद पर-
 हेलि । (क० २६) परहेलु-तिरस्कार कर, अवहेलना कर,
 अनादर कर । उ० कै करु ममता राम सों कै ममता पर-
 हेलु । (दो० ७६) परहेलें-अवहेलना कर, परवा न कर ।
 उ० सुन्दर जुवा जीव परहेलें । (मा० १।१५६।२)
 परा (२)-(सं०)-१. ब्रह्मविद्या, वहि विद्या जो ऐसी चीजों
 का ज्ञान कराती है जो सब गोचर पदार्थों से परे हों । २.
 सायण के अनुसार वह नादात्मक वाणी जो मूलाधार से
 उठती है और जिसका निरूपण नहीं हो सकता । ३. श्रेष्ठ
 उत्तम, ४. श्रेणी, पंक्ति, कतार, ५. प्रभुता, बढाई, ६.
 उलटा, विपरीत, ७. सामर्थ्य, बल, ८. अपमान, निरादर,
 ९. मंडली, गरोह ।
 पराह (१)-(सं० पलायन)-१. भागकर, २. पराता है,
 भगता है । उ० २. तुलसी छुवत पराह ज्यों पारद पावक
 आंच । (दो० ३३६) पराई (१)-१. भगी, २. भग जाती
 है, ३. भग जाय । उ० ३. अवन मूदि नत चलिअ पराई ।
 (मा० १।६४।२) पराउ-पलायन कर जाय, भग जाय ।
 उ० जरत तुहिन लखि बनजबन रवि दै पीठि पराउ ।
 (दो० ३१६) परातहि-(सं० पलायन)-भागते ही, भागते ।
 उ० भभरे, बनह न रहत, न बनह परातहि । (पा० १।१५)
 परान (१)-भागने । उ० तब लगे कीस परान । (मा० ६।
 १०।१३) परानि-भगी हुई, भागी । उ० निकसि चिता तें
 अघजरति मानहुँ सती परानि । (दो० २५३) परानी-
 भागती, भगती, दौड़ती । उ० जाति हैं परानी, गति जानि
 गज चालिहै । (क० ५।१०) पराने-भाग गए, दूर हो गए ।
 उ० बालक सब लै जीव पराने । (मा० १।६५।३) परा-
 न्यौ-भाग गया, भाग चला, भागा । उ० तब ससि काढ़ि
 कादि पर पाँवर लै प्रभु-प्रिया परान्यौ । (गी० ३।८) पराय
 (१)-(सं० पलायन)-१. भागे, भाग गए, २. भागकर,
 ३. भागता है । उ० २. पुन्य पराय पहार बन, दुरे पुरान
 सुभ ग्रंथ । (दो० ५५६) ३. दिष्ट पीठि पाछे लगे सनमुख
 होत पराय । (दो० २५७) पराये (१)-(सं० पलायन)-
 भागे, भाग गए । परावन (१)-(सं० पलायन)-भागना,
 अगदड़ मचाना । उ० सुरपुर नितहि परावन होई । (मा०
 १।१८०।४) परावना-दे० 'परावन' । पराहि-(सं० पला-
 यन)-भाग जाते हैं । उ० जाउँ समीप गहन पद किरि-किरि
 चितह पराहि । (मा० ७।७७ क) पराहि-पलायन करो,
 भाग जाओ । उ० बाप ! तू पराहि, पूत पूत ! तू पराहि रे ।
 (क० ५।१६) पराहीं-भाग जाते हैं । उ० कलिहि पाइ
 जिमि धर्म पराहीं । (मा० ४।१५।५)
 पराह (२)-(सं० पर)-दूसरे की, अन्य की । उ० देखि न
 सकहि पराह बिभूती । (मा० २।१२।३)

पराई (२)-दूसरे की । उ० बेगि पाइअहि पीर पराई ।
 (मा० २।८५।१)
 पराक्रम-(सं०)-१. बल, शक्ति, सामर्थ्य, २. पौरुष, उद्योग,
 ३. शूरता, शूरत्व । उ० २. बाहुबल-विपुल परमिति परा-
 क्रम अतुल, गूढ़ गति जानकी जानि जानी । (वि० ३६)
 पराग-(सं०)-वह रज्या धूलि जो फूलों के बीच लंबे केसरो
 पर जमा रहती है, पुष्परज । उ० सोइ पराग मकरंद
 सुबासा । (मा० १।३७।३)
 परागा-दे० 'पराग' । उ० परसि राम पद पहुम परागा ।
 (मा० २।११३।४)
 पराजय-(सं०)-हार ।
 पराधीन-(सं०)-परवश, परतंत्र । उ० पराधीन नहि तोर
 सुपासा । (मा० २।१७।७)
 पराधीनता-(सं०)-परतंत्रता, गुलामी । उ० बूझि परी
 रावरे की प्रेम-पराधीनता । (वि० २६२)
 परान (१)-(सं० प्राण)-ज्ञान, प्राण ।
 परामउ-दे० 'परामव' । उ० १. सोउ तेहि सभाँ परामउ
 पावा । (मा० १।२६२।४)
 परामव-(सं०)-१. हार, पराजय, २. निरादर, तिरस्कार,
 ३. प्रलय, नाश । उ० ३. भव भव बिभव परामव
 कारिनि । (मा० १।२३५।४)
 परामौ-दे० 'परामव' । उ० २. बाये मुँह सहत परामौ देस
 देस को । (क० ७।१२५)
 पराय (२)-(सं० पर)-१. दूसरा, अन्य; शैर, २. पराया,
 दूसरे का ।
 परायन-(सं० परायण)-१. निरत, तत्पर, लगा हुआ, २.
 गत, गया हुआ, ३. आश्रय, भागकर शरण लेने का
 स्थान । उ० १. काम क्रोध मदलोभ परायन । (मा०
 ७।३६।३)
 पराये (२)-(सं० पर)-दूसरे के, शैर के, अन्य के । उ०
 कबहुँ न जात पराये धामहि । (क० ५)
 परारथ-(सं० परार्थ) परमार्थ, पारलौकिक सुख । दूसरे का
 सुख । स्वार्थ का विलोम । उ० पंचकोस पुन्यकोस स्वार्थ
 परारथ को । (क० ७।१७२)
 पराव-(सं० पर)-पराया, दूसरे का । उ० धनु पराव बिष
 से बिष भारी । (मा० २।१३०।३)
 परावन (२)-(सं० पतन, प्रा० पडन, हि० पढ़ाव)-पढ़ाव
 का बहुवचन, पढ़ावों । उ० जातुधान दावन परावन को
 दुर्ग भयो । (ह० ७)
 परावनो-(सं० पलायन)-अगदड़, पलायन । उ० भहराने
 भट परयो प्रबल परावनो । (क० ५।८)
 परावर-(सं०)-१. सर्वश्रेष्ठ, २. दूर और पास, सर्वत्र, ३.
 जड़-चेतन, चराचर, ४. ब्रह्मादि और मनुष्य आदि । उ०
 १. पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ । (मा०
 १।११६) ३. बामनायक पावन परावर बिभो । (वि०
 ४६)
 परावा-(सं० पर)-१. अन्य का, दूसरे का, २. दूसरे से ।
 उ० २. करहि मोहबस द्रोह परावा । (मा० ७।४०।३)
 पराशर-(सं०)-एक ऋषि । ये वशिष्ठ और शक्ति के पुत्र थे ।
 व्यास इनके पुत्र कहे जाते हैं ।

परास-(सं० पलाश)-पलाश, ढाक, टेसू । उ० पाटल पनस परास रसाला । (मा० ३।४०।३)

परि (२)-(सं०)-एक संस्कृत का उपसर्ग जिसके लगने से शब्द के अर्थ में वृद्धि हो जाती है। वृद्धि की दिशाएँ हैं—१. चारों ओर (परिभ्रमण), २. अच्छी तरह (परिपूर्ण), ३. अति (परिवर्द्धन), ४. पूर्णता (परित्याग), ५. दोषापान (परिहास) तथा ६. नियम (परिच्छेद) ।

परि (३)-(सं० परम)-परंतु, किंतु, पर ।

परिकर-(सं०)-१. पलंग, चारपाई, २. कमर, ३. नौकर, ४. परिवार, ५. समूह, ६. साज, ७. तैयारी, समारंभ, ८. घेरनेवालों का समूह, अनुयायियों का दल, ९. फेटा, कमर में बाँधने का वस्त्र । उ० २. परिकर बाँधि उठे अकुलाई । (मा० १।२५०।३) ६. शृंग बिलोकि कटि परिकर बाँधा । (मा० ३।२७।४)

परिलेखु-(सं० प्रतीचा)-हस्तज्जार करना, प्रतीचा करना । उ० परिलेखु मोहि एक पखवारा । (मा० ४।६।३) परिलेखु-प्रतीचा करना, राह देखना । उ० तब लागि मोहि परिलेखु तुम्ह भाई । (मा० ५।१।१)

परिगहंगा-(सं० परिग्रहण)-आश्रय देगा, ग्रहण करेगा, धामेगा, सहारा देगा । उ० तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहंगो ? (वि० २।५६)

परिग्रह-(सं०)-१. प्रतिग्रह, ग्रहण, लेना, २. स्वीकार, अंगीकार, ३. सेना के पीछे का भाग, ४. पत्नी, भार्या, ५. परिजन, परिवार ६. नौकर, सेवक, ७. शाप, ८. शपथ ९. सूर्यग्रहण, राहुग्रस्त सूर्य ।

परिध-(सं०)-१. मूसलाकार एक शस्त्र विशेष, २. लोहाँगी, गढ़ाँसा । उ० १. सर चाप तोमर सक्ति सूख कृपान परिध परसुधरा । (मा० ३।१६।३) १)

परिचरजा-दे० 'परिचर्या' । उ० निजकर गृह परिचरजा करई । (मा० ७।२४।३)

परिचर्या-(सं०)-सेवा, टहल, सुश्रूपा ।

परिचारक-(सं०) सेवक, नौकर । उ० पुनि परिचारक बोलि पठाए । (मा० १।२८।३) परिचारका-(सं०)-दासी, सेविका, नोकरानी । उ० छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका श्रुति सेप सिव देव ऋषि अखिल मुनि तत्वदरसी । (वि० ४७)

परिचारे-(सं० प्रचार)-१. ललकारने पर, २. ललकारा ।

परिचेहु-(सं० परिचय)-परच गए हो, परक गए हो, आदी हो गए हो । उ० डहकि डहकि परिचेहु सब काहु । (मा० १।१३।२)

परिचौ-(सं० परिचय)-पता, परिचय । उ० करतल निरखि कहत सब गुनगान, बहुत न परिचौ पायो । (गी० १।१४)

परिच्छन्न-(सं०)-१. ढका हुआ, छिपा हुआ, २ साफ किया हुआ ।

परिच्छा-(सं० परीचा)-इस्तहान, परीचा ।

परिछन-(सं० परि + अर्चन)-एक विशेष प्रकार की आरती । विवाह की एक रीति जिसमें बारात द्वार पर आने पर कन्या पक्ष की स्त्रियाँ वर के पास जाती हैं और उसे दही-अक्षत, आदि का टीका लगाकर आरती आदि करती हैं । वर जब अपने घर से चलता है तो वहाँ भी उसका

परिछन होता है तथा विवाहोपरांत या द्विरागमन के बाद जब वर बधू के साथ अपने घर आता है तब भी परिछन होता है । उ० परिछन चली हरहि हरधानी । (मा० १।६।२)

परिछनि-दे० 'परिछन' । उ० चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि वर नारि । (मा० १।३।७)

परिछाहिं-(सं० प्रतिच्छाया)-छाया, परछाहीं । उ० तुलसी सुनी न कबहुँ काहु कहुँ तनु परिहरि परिछाहिं रही है । (गी० २।६)

परिछाहीं-दे० 'परिछाहिं' । उ० जिमि पुरुपहिं अनुसर परिछाहीं । (मा० २।१४।३)

परिछि-परिछन करके । दे० 'परिछन' । उ० बधुन्ह सहित, सुत परिछि सब चलीं लवाह निकेत । (मा० १।३।४)

परिछिन्न-(सं० परिच्छिन्न)-१. आच्छादित, घिरा, २. कटा हुआ, अलग । उ० १. माया बस परिछिन्न जइ जीव कि ईस समान । (मा० ७।११।१ ख)

परिजन-(सं०)-१. परिवार, घर के लोग, २. नौकर-चाकर, सेवक । उ० १. प्रनवउँ परिजन सहित विदेहु । मा० १।१७।१) परिजनहि-कुटुंबियों को । उ० प्रभु सुभाउ परिजनहि सुनावा । (मा० ७।२०।३) परिजनहि-परिजन को, सेवक को । उ० तो प्रभु-चरन-सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ । (गी० २।७।६)

परिडरै-(सं० परि + सं० दर)-डरकर, डरकर के । उ० सो परिडरै मरै रजु अहि तें बूझै नहिं व्यवहार । (वि० १।८)

परिणाम-(सं०)-१. फल, नतीजा, २. अंत, समाप्ति ।

परिताप-(सं०)-१. दुःख, कष्ट, मानसिक या शारीरिक व्यथा, २. जलन, ताप । उ० १. अय विवाह परिताप घनेरे । (मा० २।६।३)

परितापा-दे० 'परिताप' । उ० १. आए अवध भरे परितापा । (मा० २।८।४)

परितापा-(सं० परितापिन्)-दुःख देनेवाला, दुखदायक । उ० बरनि न जाहिं बिस्व परितापी । (मा० १।१७।६)

परितोष-(सं०)-१. संतोष, तृप्ति, २. प्रसन्नता, हर्ष, ३. समाधान । उ० १. कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोषु । (मा० २।६०)

परितोषत-प्रसन्न होता है, प्रसन्न होते हैं । उ० द्वापर परितोषत प्रभु पूजै । (मा० १।२७।२) परितोषा-संतुष्ट किया, तृप्त किया । उ० कहि प्रिय बचन काम परितोषा । (मा० १।१२।७।१) परितोषि-संतुष्ट कर, संतोष देकर । उ० परितोषि गिरिजहि चले बरनत प्रीति नीति प्रबीनता । (पा० ८३) परितोषिबे-संतुष्ट करने, तृप्त करने । उ० खल दुख दोषिबे को, जन परितोषिबे को । (ह० ११) पारतोषी-संतोष दिया, दिलासा दी । उ० तापस नृपहि बहुत परितोषी । (मा० १।१७।१३) परितोषि-संतुष्ट हुए । उ० पूरन काम रासु परितोषे । (मा० १।३।४।३)

परितोषु-दे० 'परितोष' । उ० १. बिबिध भाँति परितोषु करि बिदा कीन्ह बृषकेतु । (मा० १।१०।२)

परितोषू-दे० 'परितोष' । उ० १. रहहु करहु सब कर परितोषू । (मा० २।७।१।३)

परित्याग-(सं०)-सब प्रकार से त्याग, विसर्जन, छोड़ना ।
 उ० पति परित्याग हृदयें दुखु भारी । (मा० १६९१४)
 परित्राण-(सं०)-बचाव, रक्षा, रक्षण ।
 परित्राता-(सं० परित्रातृ)-रक्षा करनेवाला, बचानेवाला ।
 उ० तपबल बिन्दु भए परित्राता । (मा० ११९६३।१)
 परिधन-(सं० परिधान)-१. नाभि से नीचे पहिने का कपड़ा, २. पहनने का वस्त्र, पहिरन । उ० २. सीस जटा, सरसीरुह लोचन, बने परिधन मुनिचर । (गी० २।६६)
 परिधान-(सं०)-१. पोशाक, पहनावा, २. नाभि से नीचे पहनने का वस्त्र । उ० १. व्याघ्र-गज-चर्म परिधान विज्ञान-घन । (वि० १०)
 परिधाना-दे० 'परिधान' । उ० १. कृस सररि मुनिपट परिधाना । (मा० ११९६३।४)
 परिनाम-(सं० परिणाम)-फल, नतीजा, अंत । उ० कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम । (दो० ४२६)
 परिनामहिं-परिणामस्वरूप, अंत में । उ० तौ कोउ नृपहि न देत दोसु परिनामहिं । (जा० ८३) परिनामहु-फल में भी, अंत में भी । उ० तुलसी जियत बिडंबना, परिनामहु गत जान । (दो० ३६०) परिनामै-फल, फल है । उ० मतो नाथ सोई जातें भलो परिनामै । (गी० १।२५)
 परिनामो-अंत में भी । उ० ताको भलो कठिन कलिकालहु आदि मध्य परिनामो । (वि० २२८)
 परिनामा-दे० 'परिनाम' । उ० बर दोउ दल दुख फल परिनामा । (मा० २।२३।३)
 परिनामु-दे० 'परिनाम' । ३. परिनामु मंगल जानि अपने आनिपु धीरजु हिई । (मा० २।२०।१।३०।१)
 परिनामू-दे० 'परिनाम' । उ० सो सब मोर पाप परिनामू । (मा० २।३६।१)
 परिपाक-(सं०)-१. फल, नतीजा, २. जीर्णता, ३. भली भाँति पका हुआ, ४. निपुणता, ५. पचना, ६. प्रौढ़ता, ७. पकने का भाव, ८. बहुदर्शिता । उ० १. कर्म-परिपाक-दाता । (वि० २६)
 परिपाका-दे० 'परिपाक' । उ० १. सोइ पाइहि यहु फल परिपाका । (मा० २।२१।३)
 परिपाकू-दे० 'परिपाक' । उ० १. बिनु समुझें निज अघ परिपाकू । (मा० २।२६।१।३)
 परिपाटी-(सं०)-रीति, दस्तूर, परंपरा । उ० प्रगटी धनु बिषटन परिपाटी । (मा० १।२३६।३)
 परिपालन-(सं०)-रक्षा, पालन, बचाव ।
 परिपालय-रक्षा करो, बचाओ । उ० बससि सदा हम कहूँ परिपालय । (मा० ७।३४।४)
 परिपूरन-(सं० परिपूर्ण)-१. संपूर्ण, पूर्ण, भरा-पूरा, जैसा चाहिये, २. समाप्त, श्वतम, ३. तृप्त, आसूदा । उ० १. रूपसील वय बंस राम परिपूरन । (जा० ५३) ३. पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे । (मा० २।१०।७।१)
 परिपोषे-(सं० परिपोष)-१. पुष्ट हुए, परिपुष्ट हुए, २. पालन किया । उ० १. आदर दान प्रेम परिपोषे । (मा० १।३५२।२)
 परिपूरित-पूर्ण, भरा । उ० मिले प्रेम परिपूरित गाता । (मा० १।३०।८।४)

परिवारू-दे० 'परिवार' ।
 परिवे-(सं० पत्न)-पड़ना, बँधना । उ० उन्हेहि राग रवि नीरद-जल ज्यों, प्रभु-परमिति परिवे हो । (कृ० ३६)
 परिमित-(सं०)-नापा हुआ, सीमित, नियमित ।
 परमिति-(सं० परिमिति)-१. परिणाम, २. नाप, तोल, सीमा, ३. मर्यादा, इज्जत, ४. हृद से परे, बहुत, ५. किनारा । उ० १. पन-परमिति और भाँति सुनि गई है । (गी० १।८३) ३. प्रीति रीति समुझाईबी नत पाल कृपा-खुहि परमिति पराधीन की । (वि० २७८) ४. बाहुबल विपुल, परमिति पराक्रम अतुल । (वि० ३६)
 परिवा-(सं० प्रतिपदा, प्रा० पडिवश्वा)-किसी पक्ष की पहली तिथि, एक्कम । उ० परिवा प्रथम प्रेम बिनु राम मिलन अति दूर । (वि० २०३)
 परिवार-(सं०)-कुल, कुटुंब, खान्दान । उ० सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू ! (क० २।८)
 परिवारा-दे० 'परिवार' । उ० मैं जलु नीलु सहित परिवारा । (मा० २।८८।३)
 परिवारू-दे० 'परिवार' । उ० प्रिय परिवारू मातु सम सासू । (मा० २।६८।३)
 परिवारू-दे० 'परिवार' । उ० देसु कोसु परिजन परिवारू । (मा० २।३१५।४)
 परिशिष्ट-(सं०)-शेष, बँचा हुआ ।
 परिहर-(सं० परिहरण)-छोड़ता, तजता । उ० जारेहुँ सहलु न परिहर सोई । (मा० १।८०।३) परिहरइ-छोड़ता, त्यागता, त्यागता है । उ० सुनि धीरजु परिहरइ न केही । (मा० १।२३।१) परिहरई-छोड़ देता है । उ० सोचिअ बहु निज ब्रतु परिहरई । (मा० २।१७२।४) परिहरजें-छोड़ेंगी । उ० नारद बचन न मैं परिहरजें । (मा० १।८०।४) परिहरत-छोड़ देते हैं, छोड़ रहे हैं । उ० निज गुन घटत न नाग नग परिख परिहरत कोल । (दो० ३८५) परिहरते-छोड़ते, त्यागते । उ० तौ कि जानिकिहि जानि जिय परिहरते रघु-राउ । (दो० ४६३) परिहरहिं-१. त्याग दे, त्याग देंगे, २. त्यागते हैं । उ० १. जौ परिहरहिं मलिन मनु जानी । (मा० २।२३।१) परिहरहि-त्याग दे । उ० बेनि प्रिया परिहरहि कुबेपू । (मा० २।२६।४) परिहरहीं-१. छोड़ते हैं, छोड़ देते हैं, २. छोड़ दें, त्याग करें । उ० २. हमहि सीयपद जानि परिहरहीं । (मा० २।१८।३) परिहरही-छोड़ दे, त्याग दे । उ० सुनु मम बचन मान परिहरही । (मा० ६।३०।१) परिहरहु-त्याग दो, छोड़ो । उ० अब सुमंत्र परिहरहु विषादू । (मा० २।१४३।१) परिहरहु-छोड़ दो । उ० अस अनुमानि सोच परिहरहु । (मा० २।१६।१।२) परिहरि-छोड़कर, त्यागकर । उ० ईस उदार उमापति परिहरि अत जे जाँचन जाहीं । (वि० ४) परिहरिअ-१. त्याग्य, त्यागने के योग्य, २. छोड़ दो । उ० १. कृपासिधु परिहरिअ कि सोई । (मा० २।७२।४) परिहरिए-१. छोड़िये, त्यागिये, २. छोड़ रहा हूँ । उ० १. जेहि साधन हरिद्र वहु जानि जन सो हठि परिहरिए । (वि० १।८६) परिहरिय-छोड़ो, त्यागो । उ० तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान । (दो० ४६६) परिहरिहि-छोड़ देंगी । उ० सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि

४. अमावस्या, ५. चतुर्दशी, ६. संक्रांति, ७. उत्सव, ८. सुयोग, ९. ग्रहण, १०. पुण्यकाल । उ० ३. मंगल-मुह-सिद्धि सद्यनि पर्व शर्वरीश-वदनि । (वि० १६)
 पर्वत-(सं०)-१. पहाड़, गिरि, २. देवर्षि विशेष । उ० १. पाप पर्वत-कठिन कुलिस रूप । (वि० ४६)
 पलंग-(सं० पर्यक)-चारपाई, खाट, सेज । उ० चरन पखारि पलंग बैठाए । (मा० ४।२०।३)
 पल (१)-(सं०)-१. घड़ी या दंड का ६० वाँ भाग, दम, क्षण, थोड़ी देर, २. मांस, ३. पयाल, ४. तृण, ५. धोखे-बाज़ी । उ० १. जनक-नगर नर-नारि मुदित मन निरखि नयन पल रोके । (गी० १।८६) २. सुधा सुनाज कुनाज पल । (दो० ५०६) ३. मोह-बन कलिमल-पल-पीन जानि जिय । (क० ७।१४२) पल पल-पत्येक पल, क्षण-क्षण । उ० पल-पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके । (वि० १७१)
 पल (२)-(सं० पलक)-पलक । उ० कर टेकि रही पल टारति नाहीं । (क० १।१७)
 पलक-(सं०)-१. आँख के ऊपर का चमड़े का परदा, २. क्षण, पल । उ० १. दीन्हें पलक कपाट सथानी । (मा० १।२३२।४) २. बासर जाहि पलक सम बीती । (मा० २।२५२।१) पलकन्हि-पलकों ने । उ० पलकन्हि हूँ परि-हरी निमेधे । (मा० १।२३२।३) पलकै-‘पलक’ का बहु-वचन । दे० ‘पलक’ । उ० १. पलकै न लावतीं । (क० १।१३) सु० पलकै लैहैं-सोवेंगे, पलकै बंद करेंगे । उ० यह सोभा सुख समय बिलोकत काहू तो पलकै नहि लैहैं । (गी० ५।५१)
 पलकु-दे० ‘पलक’ ।
 पलटि-(सं० प्रलोठन) पलटकर । उ० उलटि पलटि लंका सब जारी । (मा० ५।२६।४)
 पलना-(सं० पत्येक)-झूला । उ० कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना । (मा० १।१६८।४)
 पलायन-(सं०)-भागना, भागने की क्रिया ।
 पलास-(सं० पलाश)-ढाक, परास का पेड़ ।
 पलिआहिं-(सं० पालन) पालिये । उ० बायस पलिआहिं अति अनुरागा । (मा० १।५।१)
 पलीता-(प्रा० फतीलः)-बत्ती, मशाल, जिससे बारूद में आग लगाते हैं । उ० पाप पलीता, कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल । (दो० ५।१५)
 पलु-(सं० पल) पल, क्षण । उ० बरष पाछिले सम अगिलो पलु । (वि० २४)
 पलुहइ-(सं० पल्लव)-हरा-भरा कर देती है । उ० पलुहइ नारि सिखिर रिनु पाई । (मा० ३।४४।३) पलुहत-हरा-भरा होता है । उ० फूलत फलत पल्लवत पलुहत बिटप बैलि अभिमत सुखदाहै । (गी० २।४६)
 पलुहावहिगे-(सं० पल्लव) हरा-भरा करेंगे, पल्लवित करेंगे । उ० विरह अगिनि जरि रही लता ज्यो कृपा दृष्टि जल पलुहावहिगे । (गी० ५।१०)
 पलोदत-(सं० प्रलोठन)-धीरे से पाँव दबाता है । उ० गुरु पद कमल पलोदत प्रीते । (मा० १।२२६।३) पलोदिहि-दबावेगी । उ० पाय पलोदिहि सब निसि दासी । (मा० २।६७।३)

पल्लव-(सं०)-१. नया पत्ता, २. अंकुर, कोंपल, ३. पत्ता, पत्र, ४. अँगुली, करज, ५. चंचलता, ६. हाथ का कड़ा, ७. बल, ८. विस्तार । उ० १. बदन निकट पद पल्लव लाए । (गी० १।२०) २. कर नवल बकुल-पल्लव रसाल । (वि० १४)
 पल्लवत-पल्लवयुक्त होता है, फलता-फूलता है । उ० फूलत-फलत पल्लवत पलुहत । (गी० २।४६)
 पल्लवित-(सं०)-१. हरा-भरा, पल्लवयुक्त, २. प्रसन्न, खुश, ३. रोमांचित । उ० २. चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात । (मा० १।३४६)
 पव-(सं०)-१. गोबर, २. हवा, वायु, ३. बरसाना ।
 पवन (१)-(सं०)-१. हवा, वायु, २. हनुमान तथा भीम के पिता, ३. प्राण, ४. जल, ५. श्वास । उ० १. गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा । (मा० १।७।५) ३. जिति पवन मन गो निरस करि । (मा० ४।१०।छं०१)
 पवन (२)-(सं० पावन)-१. पवित्र, २. पवित्र करनेवाला । उ० २. परम कृपालु प्रनत-प्रतिपालक पतित-पवन । (वि० २।१२)
 पवनकुमार-(सं०)-१. हनुमान, पवन के पुत्र, २. भीम । उ० १. प्रनवउँ पवनकुमार । (मा० १।१७)
 पवनज-(सं०)-१. हनुमान, २. भीम । उ० १. लही नाव पवनज प्रसन्नता । (गी० ५।२।१)
 पवनतनय-१. हनुमान, २. भीम । उ० १. पवनतनय संतन हितकारी । (वि० ३६)
 पवननंदन-१. हनुमान, २. भीम । उ० १. तुलसीस पवन-नंदन अटल जुद्ध क्लृद्ध कौतुक करत । (क० ६।४७)
 पवनपूत-हनुमान । उ० सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत । (वि० १३४)
 पवनसुत-१. हनुमान, २. भीम । उ० १. सुमिरि पवनसुत पावन नामू । (मा० १।२६।३)
 पवनसुव-(सं० पवनसुत)-हनुमान । उ० जातुधान-बल-वान-मान-मद दवन पवनसुव । (ह० १)
 पवनसुवन-(सं० पवनसुत)-हनुमान । उ० पवनसुवन रिपु दवन भरतलाल, लखन दीन की । (वि० २७८)
 पवनि-(सं० पावन)-पवित्र, पूत । ‘पावन’ का स्त्रीलिंग । उ० गावत तुलसिदास कीरति पवनि । (गी० ३।५)
 पवमान-(सं०)-हवा, वायु । उ० पाहुने कृसातु पवमान सौं परोसो । (क० ५।२४)
 पवरि-(सं० प्रतोली)-द्वार, देहली, दरवाज़ा ।
 पवि-(सं०)-१. वज्र, २. बिजली, ३. हीरा, ४. सेंडुब, ५. रास्ता, ६. वाक्य । उ० १. राहु-रवि-सक्र-पवि-गव खर्वी-करन । (वि० २५)
 पवित्र-(सं०)-१. शुद्ध, साफ, पूत, निर्मल, २. वर्षा, ३. पानी, ४. दूध, ५. कुश । उ० १. चरित पवित्र किए संसारा । (मा० १।१२३।२)
 पशु-(सं०)-जानवर, पँडुवाला प्राणी ।
 पशुपति-(सं०)-पशुओं के स्वामी, महादेव ।
 पशुपाल-(सं०)-दे० ‘पशुपाल’ ।
 पशु-दे० ‘पशु’ ।
 पश्चात्-(सं०)-१. पीछे, बाद, अनंतर, २. पश्चिम दिशा, ३. शेष, अंत ।

पश्यन्ति-(सं० देखते हैं, निरखते हैं। उ० याभ्यां बिना न पश्यन्ति। (मा० १।२।० २) पश्यामि-(सं०)-मैं देख रहा हूँ।

पषवारा-(सं० पक्ष)-पाख, १५ दिन का समय।

पषाउज-दे० 'पखाउज'।

पषान-(सं० पाषाण)-दे० 'पखान'। १. पत्थर, २. अहल्या।

उ० १. कंचन काँचहि मम गनै, कामिनि काठ पषान।

(वै० २७) २. कौस्तिक की चलय, पषान की परस पायँ।

(क० ७।२०) पषाननि-पथरों से। उ० सुनियत सेतु

पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरौ। (वि० २२६)

पषाना-दे० 'पषान'। उ० १. द्रवहि बचन सुनि कुलिस पषाना।

(मा० २।२२०।४)

पषारन-(सं० प्रसारण)-पखारना, धोना। पषारे-पखारा।

धोया। पषारि-धोकर।

पषाउ-(सं० प्रसाद, प्रा० पसाव)-१. कृपा, २. प्रसाद,

३. प्रसन्नता, ४. प्रेम, छोह। उ० ३. गुरु-सुर-संभु-पसाउ।

(प्र० १।६।३)

पसाऊ-दे० 'पसाउ'। उ० १. सासति करि पुनि करहि पसाऊ। (मा० १।८।१२)

पसारत-(सं० प्रसारण)-फैलाते हैं, फैलाता है। उ० किल-

कत पुनि-पुनि पानि पसारत। (गी० १।२०) पसारा-

फैलाया। उ० जोजन भरि तेहि बवतु पसारा। (मा०

१।२।४) पसारि-फैलाकर, पसारकर। उ० सोचत गोड

पसारि। (दो० ४६४) पसारी (१)-(सं० प्रसारण)-१.

फैलाया, बिछाया, २. फैलाकर। उ० २. सरन गए आगे

हैं लीन्हों भँद्यों भुजा पसारी। (वि० १६६)

पसारी (२)-(?)-एक प्रकार का धान।

पसीजै-(सं० प्र+स्विद्)-द्रवित होता है, पसीजता है,

दयाद्र होता है। उ० गति सुनि पाहनौ पसीजै। (क०

४५)

पसु-दे० 'पशु'। उ० पसु पच्छी नम जल थल चारी।

(मा० १।८।२)

पसुपति-सं० पशुपति)-महादेव, शंकर। उ० तुलसी बराती

भूत प्रेत पिसाच पसुपति संग लसे। (पा० १०८)

पसुपाल-पशुओं का पालनेवाला, ग्वाला, अहीर। उ०

पसु लौ पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत। (वि० १३३)

पसेउ (१)-(सं० प्रसेद)-१. पसीना, २. पसीजना। उ०

१. पाँछि पसेउ बयारि करौं। (क० २।११)

पसेउ (२)-(सं० प्रसाद)-प्रसन्न।

पसेऊ-दे० 'पसेउ (१)'। उ० १. स्याम सरीर पसेऊ लसै।

(क० २।२६)

पसेव-दे० 'पसेउ (१)'।

पसोपेश-(क्रा० पस व पेश)-१. सोच-विचार, आगापीछा,

२. हानिलाभ, ऊँच-नीच।

पस्यामि-दे० 'पश्यामि'। उ० रन जीति रिपुदल बंधुजुत

पस्यामि राम-मनामयं। (मा० ६।१०।७।७)

पहँ-(सं० पार्श्व)-पास, निकट।

पहँ (१)-(सं० प्रहर)-१. तीन घंटा का समय, दिन या रात

का चतुर्थांश, २. समय, ज़माना, वक्त, ३. पहरना। उ०

१. पहिले पहर भूषु नित जागा। (मा० २।३८।१)

पहर (२)-(प्रा० षपहिल्ल)-प्रथम, पहला।

पहरी-(सं० प्रहर)-रक्षक, चौकीदार, पहरना। उ० जमकाल

करालहु को पहरी है। (क० ६।२६)

पहर-दे० 'पहरी'। उ० नाथ ही के हाथ सब चोरउ पहर।

(वि० २५०)

पहर-दे० 'पहरी'। उ० जम के पहरु दुख रोग बियोग।

(क० ७।३१)

पहार (१)-(सं० पाषाण)-पर्वत, पहाड़। उ० छार ते

सँवारिके पहार हू तें भारी कियो। (क० ७।६१)

पहार (२)-(सं० प्रस्तार)-पहाड़ा, किसी अंक के गुणन-

फलों की क्रमागत सूची या नकशा। उ० जैसे घटत न

अंक नव नव के लिखत पहार। (सं० १।३८)

पहारा-दे० 'पहार (१)'। उ० अगम पंथ बनभूमि पहारा।

(मा० २।६८।४)

पहारु-दे० 'पहार (१)'। उ० अवध सौध सत सरिस

पहारु। (मा० २।६६।२)

पहिँ-दे० 'पहँ'। उ० तबहिँ ससरिषि सिव पहिँ आए। (मा०

१।७।४)

पहचानत-पहचानता है, पहचान लेता है। उ० बिनय

सुनत पहिचानत प्रीती। (मा० १।२८।३)

पहिचान-(सं० प्रत्यभिज्ञान)-१. परिचय, चिन्हारी, मुला-

कात, पहचानने का भाव, २. पहचाने, जाने। उ० २.

पहिचान को केहि जान। (मा० १।३२।१। छं० १)

पहिचानहु-पहचानते हो। उ० पहिचानहु तुम्ह कहहु

सुभाऊ (मा० १।२६।१३) पहिचाना-पनिचान लिया,

जान लिया, जाना। उ० राउ तृषित नहिँ सो पहिचाना।

(मा० १।१५।४) पहिचानि-१. जान-पहिचान, परिचय,

२. पहिचान कर, ३. पहिचानो। उ० १. प्रीति पपीहा

पयद की प्रगट नई पहिचानि। (दो० २।८६) पहिचानिहौ-

पहिचानोगे, परिचित होंगे। उ० पाल्यो है, पालत पाल-

हुगे प्रभु प्रनत-प्रेम पहिचानिहौ। (वि० २।२३) पहिचानि-

१. परिचय, पहिचान, २. पहचाना, परिचय प्राप्त

किया। उ० १. एहि सन हठि करिहउँ पहिचानि। (मा०

१।६।२) पहिचाने-पहिचान लिया, पहचाना। उ० राम-

मातु भलि सब पहिचाने। (मा० २।३३।४) पहिचानेउ-

पहचानना, पहचान लेना। पहिचानेहु-पहचान लेना।

उ० मैं आउब सोहू बेधु धरि पहिचानेहु तब मोहि।

(मा० १।१६।६) पहिचानै-पहिचान लेता है। उ० अधिक

अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै। (वि०

६५)

पहिरइ-(सं० परिधान, हि० पहिरना)-पहनता है। पहिरत-

पहनते हैं। उ० देत लेत पहिरत पहिरावत प्रजा प्रमोद

अधानी। (गी० १।४) पहिरहिँ-पहनते हैं, धारण करते

हैं। उ० पहिरहिँ सज्जन विमल उर सोभा अति अनुराग।

(मा० १।११) पहिरि-पहनकर। उ० उठि-उठि पहिरि

सनाह अभागे। (मा० १।२६।१) पहिरिथ-पहिनना

चाहिए। उ० तुलसी पहिरिथ सो बसन जो न पखारे

फीक। (दो० ४६६) पहिरें-१. पहने, २. पहने हुए। उ० २.

कहत चले पहिरें पट नाना। (मा० १।२६।१) पहिरें-१.

पहने, पहन लिया, २. पहने हुए।

पहिराइ-पहनायी । प्रेम बिबस पहिराइ न जाई । (मा० ११२६४३) पहिराइ-पहनाई है । उ० पीत ऋगुलिया तनु पहिराइ । (मा० ११९६१६) पहिराए-पहनाया । उ० दान मान सनमानि जानि रुचि जाचक जन पहिराए । (गी० ६१२२) पहिरायउ-पहनाना । उ० थापि अनल हरबरहि बसन पहिरायउ । (पा० १३७) पहिरावत-१. पहनाते हैं, २. पहिनाते हुए । उ० १. दे० 'पहिरत' । पहिरावनि-१. पहनावा, २. वस्त्रादि जो मान्य नेगी इत्यादि को विवाह में दिए जाते हैं । ३. बड़े लोगों द्वारा दिए हुए वस्त्र, खिलौने । उ० २. रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हीं । (मा० १३६३३३) ३. सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि । (पा० १५६) पहिरावहु-पहनाओ । उ० पहिरावहु जयमाल सुहाई । (मा० ११२६४३)

पहिलिहि-(मा० प्रथिल्ल)-पहली ही, प्रथम ही । उ० पहिलिहि पँवरि सुसामथ भा सुखदायक । (पा० १३०) पहिले-प्रथम, शुरू में । पहिलेहि-पहले से ही । उ० सो सब जनु पहिलेहि करि रहेऊ । (मा० १११२३११)

पहुँच-(मा० ग्रहच)-१. प्रवेश, पैठ, गति, २. पकड़ दौड़, ३. प्राप्ति, ४. परिचय । उ० जाकहँ जहँ लागि पहुँच है ताकहँ तहँ लागि डार । (स० ५०)

पहुँचइउँ-पहुँचाऊँगा । पहुँचाई-१. पहुँचाया, २. विदा करके, पहुँचाकर । उ० २. गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई । (मा० २११४४१) ३. पहुँचाए-पहुँचाया । उ० अति आदर सब कपि पहुँचाए । (मा० ७१६३३) पहुँचाएलि-पहुँचा दिया, पहुँचाया । उ० पहुँचाएसि छन माऊ निकेता । (मा० १११७१४) पहुँचाव-१. पहुँचावेगा, २. पहुँचाता है । उ० १. जो पहुँचाव रामपुर तनु अवसान । (ब० ६७) पहुँचावन-पहुँचाने के लिए । उ० सहित सचिव गुरुबंधु चले पहुँचावन । (जा० १६१) पहुँचावहि-पहुँचाती हैं, भेजती हैं । उ० भेंटि विदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहि । (पा० १५२) पहुँचैउँ-पहुँचा दूँगा । उ० पहुँचैहँ सोवतहि निकेता । (मा० ११९६१४)

पहुँचति-पहुँचती है । उ० बाहु बिसाल जानु जगि पहुँचति । (गी० ७१७) पहुँची-(१)-पहुँच गईं । पहुँचे-पहुँच गए । उ० संग बेरपुर पहुँचे जाई । (मा० २१७११)

पहुँचियाँ-(सं० प्रकोठ)-'पहुँची' नाम के एक आशुषण की जोड़ी । उ० पंकज-पानि पहुँचियाँ राजें । (गी० ११२२) पहुँची (.)-कलाई में पहनने का एक आशुषण । उ० पहुँची मंजु कंजकर सोहति । (गी० ७१७)

पहुँनई-(सं० प्राघुण, हिं० पाहुन)-मेहमानी, पहुँनाई, २. आतिथ्य, आदर । उ० २. पूजि पहुँनई कीन्हि पाइ प्रिय पाहुन । (जा० १७)

पहुनाई-१. मेहमानी, २. अतिथि-सत्कार, आगत व्यक्ति की ख्याति । उ० २. बिबिध भाति होइहि पहुनाई । (मा० १३१११)

पाँ-(सं० पाद)-पैर, पाँव ।

पाँउ-सौ पाँ । उ० चलाई न पाँउ बडोरा रे । (वि० १२६)

पाँगुर-(सं० पंगु)-लँगड़ा-खूला लुंज-पुंज । पाँगुरे-दे० 'पाँगुर' । उ० पाँगुरे को हाथ पाँय, आँधरे को आँखि है । (वि० ६६)

पाँच-(सं० पंच)-१. पाँच की संख्या, २. पंच, लोग, बहुत लोग, जनता । उ० १. मिलि दस-पाँच राम पहि जाहीं । (मा० २१२४१) २. तदपि उचित आचरत पाँच भल बोलहि । (जा० १०२) पाँचहि-पंचों को, लोगों को । उ० जौ पाँचहि मत लागै नीका । (मा० २१५२) पाँचों-पंचों से, लोगों से, सभासदों से । उ० पहरि पूछि पाँचों । (वि० २७७)

पाँचई-(सं० पंचमी)-प्रत्येक पंच की पाँचवीं तिथि । उ० पाँचई पाँच, परस, रस, सब्द, गंध अरु रूप । (वि० २०३)

पाँचसर-(सं० पंचसर) कामदेव । उ० गच काँच लखि मन नाच सिखि जनु, पाँचसर सुफँसौरि । (गी० ७१२) पाँचा-(सं० पंच)-पाँच । उ० कहहि परसपर मिलि दस पाँचा । (मा० २१२०६१) दस पाँचा-कुछ, दस पाँच । पाँछि-(?)-पाँछकर, चीर कर । उ० मरसु पाँछि जनु माहु देई । (मा० २१६०४)

पाँडव-(सं०)-पंडु के युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव पाँच पुत्र । ये कुंती और माद्री से उत्पन्न थे । उ० ध्रुव, ग्रहलाद, बिभीषन. कपि जदुपति पाँडव सुदाम को । (वि० ६६)

पाँडु-(सं०)-१. पाँडवों के पिता, २. कुछ लाली लिए पीला रंग, ३. एक रोग । उ० १. प्रभु प्रसाद सौभाग्य विजय-जस पाँडु-तनय बरिआइँ बरै । (वि० १३७)

पाँडर-(सं० पाडर)-१. पीला और सफ़ेद, २. कुंद का फूल । उ० २. बर बिहार चरन चारु पाँडर चंपक चनार करन-हार बार पार पुर पुरगिनी । (गी० २४३)

पाँति-(सं० पंक्ति)-१. कतार, पंक्ति, अवली, २. समूह, वृंद । उ० १. खग-गनिका-गज-व्याधि-पाँति जहँ तहँ हौँ हँ बैठारो । (वि० ६४) २. पूछत चले लता तर पाँती । (मा० ३३०४)

पाँथ-(सं० पाद)-पैर, पाँव । उ० सौंपि राम अरु लखन पाँथ पंकज गहे । (जा० २६) पाँथन-(सं० पाद)-'पाँथ' का बहुवचन, चरणों । उ० सानुज भरत सप्रेम राम पाँथन नए । (जा० ३३)

पाँलागनि-(सं० पाद + लगन)-पैर पड़ने की रीति, पावलगी, प्रणाम । उ० पाँलागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु-सत-साता । (गी० १११०२)

पाँव-(सं० पद)-पैर ।

पाँवड़ा-(सं० पाद)-वह कपड़ा जिस पर बड़े आदमी पैर रखकर चलते हैं या जो पैर पोंछने के लिए दरवाजे पर रक्खा रहता है । पार्थदाज्ञ । पाँवड़े-दे० 'पाँवड़ा' । उ० बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं । (मा० १३०६३)

पाँवर-(सं० पामर)-पतित, पापी, नीच । पाँवरनि-नीच लोगों ने । उ० बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं । (गी० १३३)

पाँवरी-(सं० पाद, हिं० पाँव)-जूता, खड़ाऊ । उ० सुनि सिध आसिध, पाँवरी, पाइ, नाइ पद माथ । (प्र० २१५६)

पांशु-(सं०)-धूल, रज, कष।
 पांशु-दे० 'पांशु'। उ० तुलसी पुष्कर-जग्य-कर चरन-पांशु
 इच्छंत। (स० २२६)
 पाँसुरी-(सं० पाँसुरी)-पसली, अस्थि-पंजर। उ० मसक की
 पाँसुरी पयोधि पाटियत है। (क० ७।६६)
 पा(१)-(सं० पाद)-पैर, पाँव, चरण। उ० मारतहूँ पा
 परिय तुम्हारे। (मा० १।२७३)
 पा(२)-(सं० प्रापण) प्राप्त कर, पा कर। पाइ(१)-(सं०
 प्रापण)-पा कर, प्राप्त कर, पाने पर। उ० साधक सुपथिक
 बड़े भाग पाइ। (वि० २३) पाइअ-पावै। उ० कहँ
 पाइअ प्रभु करिअ पुकारा। (मा० १।१८५।१)
 पाइअहि-पाते हैं, पा जाते हैं। उ० बेगि पाइअहि पीर
 पराई। (मा० २।८१।१) पाइए-१. पाए जाते हैं, २. पाए
 जावेंगे। उ० १. २. बिरले बिरले पाइए मायात्यागी
 संत। (बै० ३२) पाइन्हि-१. पाए, २. पा लिया। उ० १.
 बाजहिं बोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि। (जा० १३४)
 २. कीन्ह संभु सनमानु जनमफल पाइन्हि। (पा० ८४)
 पाइबी-पा जाइएगा, पा जाओगे। उ० तुलसी तीरहु के
 चले समय पाइबी थाह। (दो० ४४६) पाइवे-पाने, पा
 लेने। उ० सुगम उपाय पाइवे करे। (मा० ७।१२०।६)
 पाइहउ-दे० 'पाइहौ'। पाइहहु-पा जाओगे। उ० पुनि
 मम धाम पाइहहु। (मा० ६।११६ घ) पाइहि-पा जावेगा,
 पावेगा। उ० राम धाम पथ पाइहि सोई। (मा० २।
 १२४।१) पाइहै-पावेंगे। उ० तुलसी उमा-संकर-प्रसाद
 प्रमोद मन प्रिय पाइहै। (पा० १६४) पाइहौ-पाऊँगा।
 उ० अबध बिलोकि हौ पाइहौ। (गी० १।४६)
 पाई(१)-पाया, प्राप्त किया। उ० जब जेहि जतन जहाँ
 जेहि पाई। (मा० १।३।३) पाउ(२)-१. पाया, २. पावे,
 मिले। उ० १. राम नाम को प्रभाव पाउ महिमा प्रताप।
 (क० ७।७२) पाउव-पाऊँगी, पाओगे। उ० जाब जहँ
 पाउव तहीं। (मा० १।६७। छं० १) पाऊँ-१. प्राप्त हो,
 मिले, मिल जाय, २. मैं पाऊँ। पाए-१. पाया, पा गए,
 २. पाने पर। उ० १. पाए जू! बँधायो सेतु। (क० ६।३)
 २. पाए पालिबे जोग मंजु मृग। (गी० ३।३) पाएहि-
 पाने, मिलने। उ० पाएहि पै जानिबो करम-फल। (वि०
 १७३) पाता(१)-पा जाता, प्राप्त करता। पाती(१)-प्राप्त
 करती, हासिल करती। पाय(१)-१. पाकर, २. पाया,
 पा गया। पायउ-पाया, प्राप्त किया। उ० देखि दसा
 करुनाकर हर दुख पायउ। (पा० ४६) पायऊ-पाए। उ०
 सिय रूप रासि निहारि लोचन लाहु लोगन्हि पायऊ।
 (जा० ६०) पायहु-पाये, पाए हैं। उ० बर पायहु कीन्हहु
 सब काजा। (मा० ६।२०।२) पाया(१)-प्राप्त किया।
 उ० बड़ अपराध कीन्ह फल पाया। (मा० १।१३६।२)
 पाये-१. प्राप्त किए, मिले, २. प्राप्त करने से। पायेसि-
 पा लिया, पा गया। उ० जग-जय-मद निदरेसि हर,
 पायेसि फर तेउ। (पा० २६) पायो-पाया, पाया है। उ०
 पायो केहि घृत बिचारु हरिन बारि महत। (वि० १३३)
 पाव(१)-(सं० प्रापण)-१. पावेगा, पा सकेगा, २. पा
 जाय, ३. पाता है, पाते हैं। उ० १. राम नीतिरत काम
 कहा यह पाव! (ब० ७) २. मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा।

(मा० १।३३।३) पावइ-पावे। उ० आपुनु उठि धावइ
 रहे न पावइ धरि सब घालइ खीसा। (मा० १।१८३।
 छं० १) पावई-१. पावे, प्राप्त करे, २. पाते हैं। उ० २.
 जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
 (मा० ४।३०। छं० १) पावत-१. पा करके, २. पाते हैं,
 ३. पाते ही। उ० २. नेवते सादर सकल सुर जे पावत
 मख भाग। (मा० १।६०) पावति-पाती, पाती है। उ०
 पावति नाव न बोहिलु बेरा। (मा० २।२५।२) पावहि-
 १. पाते हैं, २. पावेंगे, ३. पावे। उ० ३. आवहुँ बेगि नयन
 फलु पावहि। (मा० २।११।१) पावहीं-१. पाते हैं, २.
 पावेंगे। उ० १. भूप सुनि सुख पावहीं। (जा० ६)
 २. तुलसी सकल कल्याण ते नर नारि अनुदिन पावहीं। (जा०
 २।१६) पावहु-पाओ, प्राप्त करो। उ० ईस मनइ असी-
 सहि जय जस पावहु। (जा० ३२) पावहुगे-पावोगे, प्राप्त
 करोगे। उ० पावहुगे फल आपन कीन्हा। (मा० १।
 १३।३) पावा-पाए, प्राप्त किए, पा सके। उ० सपनेहुँ
 नहि प्रतिपच्छिन्ह पावा। (मा० २।१०।३) पावै-प्राप्त
 हो। उ० सुनि उदबेगु न पावै कोई। (मा० २।१२६।१)
 पावै-पाऊँ, प्राप्त करूँ। उ० पावौं में तिन्हकै गति घोरा।
 (मा० २।१६।२) पैयत-१. पाये जाते हैं, २. पाता हूँ,
 ३. मिलता है, मिल सकता है। उ० ३. अलि पैयत रवि
 पाहीं। (क० ५८) उ० १. धरम बरन आत्मनि के पैयत
 पोथिही पुरान। (वि० १६२) पैहहि-पावेंगे। उ० एहि तें
 जसु पैहहि पितु माता। (मा० १।६७।२) पैहहि-पावेगी,
 पावेगा। उ० पैहहि सजाय तनु कहत बजाय तोहि। (ह०
 २६) पैहहु-पावोगी, पावोगे। उ० हिये हेरि हठ तजहु
 हठै दुख पैहहु। (पा० ६२) पैहै-पावेंगे। उ० राम बाम
 दिसि देखि तुमहि सब नयनचंत लोचन फल पैहै। (गी०
 २।२१) पैहै-पावेगा। उ० विस्वदवन सुर-साधु-सतावन
 रावन कियो आपनो पैहै। (गी० ५।४८) पैहौ-पाऊँगा,
 पा जाऊँगा। उ० उपजी उर प्रतीति, सपनेहुँ सुख प्रभुपद
 बिमुख न पैहौ। (वि० १०४) पैहौ-पाओगे।
 पाइ-दे० 'पाँ'। उ० पाइँ तर आइ रघों सुरसरि तीर हौं।
 (क० ७।१६६)
 पाइ(२)-(सं० पाद)-पैर, पाँव। उ० कमल कंदकित सजनी,
 कोमल पाइ। (ब० २६)
 पाइक-(सं० पादातिक, पाथिक)-१. पियादा, हरकारा, २.
 मल्ल, कसरत या तमाशा करनेवाले। उ० २. सरब करहिं
 पाइक फहराहीं। (मा० १।३०।४)
 पाइमाल-(सं० पाद + मलना)-पददलित, पामाल, नष्ट। उ०
 देहि सीय नतौ, पिय! पाइमाल जाहिगो। (क० ६।२३)
 पाई(२)-(सं० पाद)-एक चौथाई, चतुर्थांश।
 पाउ(२)-(सं० पाद)-१. पाँव, चरण, २. चौथाई। उ०
 १. बेगि पाउ धारिअ थलहि। (मा० २।२८।४) २. राम!
 रावरे बनाए बनै पल पाउ में। (वि० २६१)
 पाऊ-दे० 'पाउ(२)'
 पाक(१)-(सं०)-१. पकाने की क्रिया, २. रसोई, पकवान,
 ३. औपधियों का पाक, ४. पचना, ५. एक दैत्य जिसे
 इंद्र ने मारा था। उ० २. आपु गई जहँ पाक बनावा।
 (मा० १।२०।१२) ५. दे० 'पाकरिपु'।

पाक (२)-(फा०)-पवित्र, साफ, शुद्ध । उ० अंजनीकुमार सोध्या राम पानि पाक हौं । (ह० ४०)
 पाकड़-(सं० पर्कटी)-एक वृक्ष ।
 पाकत-(सं० पक्व)-१. पकते समय, २. पकते हुए, ३. पकता है । उ० १. इति भीति जिमि पाकत साली । (मा० २।२५३।१) पाकी-१. पक्का, परिपक्व, २. तैयार, ३. पक गई । उ० १. धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी । (मा० ७।१२७।४) पाके-पके, पककर तैयार हुए । उ० पाके, पकये विटप-दल उत्तम मध्यम नीच । (दो० ५१०)
 पाकारि-दे० 'पाकड़' ।
 पाकरिपु-(सं०)-'पाक' नाम के राक्षस को मारनेवाले इंद्र । उ० मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे । (मा० १।३४७।२)
 पाकरी-दे० 'पाकड़' । उ० बट पीपर पाकरी रसाला । (मा० ७।५६।५)
 पाकारिजित्-(सं०)-दे० 'पाकरिपु' । पाकारि अर्थात् इंद्र को जीतनेवाला मेघनाद । उ० दुष्ट-रावन-कुंभकरन-पाकारिजित्-मर्मभित्-कर्म-परिपाक-दाता । (वि० २६)
 पाखंड-(सं० पाखंड)-१. ढोंग, आडंबर, ढँकोसला, २. झल, धोखा, ३. दंभ, ४. वेदविरुद्ध आचार । उ० १. प्रबल-पाखंड-महिमंडलाकुल देखि । (वि० ५२) ४. सदा खंडि पाखंड निर्मूलकारी । (वि० ५३)
 पाखंडमुख पाखंडी, धूर्त । उ० कपट मर्कट, बिकट व्याघ्र पाखंडमुख । (वि० ५६)
 पाखंडी-पाखंड करनेवाला, धूर्त ।
 पाख-(सं० पक्ष)-१. पक्ष, प्रत्येक महीने का अँधेरा या उजला पक्ष, २. १५ की संख्या ।
 पाखु-दे० 'पाख' । उ० २. भयउ पाखु दिन सजत समाजू । (मा० २।११।२)
 पाग-(सं० पाक)-झीनी या गुड़ की तैयार चाशनी जिसमें मिठाई आदि पागते हैं । उ० बूँदिया सी लंक पधिलाइ पाग पागिहै । (क० ५।१४)
 पागिहैं-(सं० पाक) पागोंगे, चाशनी में डुबाएँगे । उ० दे० 'पाग' । पागी-मग्न हुई, तन्मय हुई, सनी, चिपटी । उ० शुद्ध-मति-युवति-वत् प्रेम-पागी । (वि० ३६) पागे-१. पगे हुए, लीन, सने, २. पग गए, ३. पागा । उ० १. मृदुल विनीत प्रेम रस पागे । (मा० १।१४६।४)
 पाङ्ग-(सं० पश्च)-पीछे । उ० ब्रह्मलोक लागि गयउँ मैं चितयउँ पाङ्ग उदात । (मा० ७।७६ क)
 पाङ्गिल-(सं० पश्च)-पिछला, पीछे का । उ० पाङ्गिल दुखु न हृदय अस व्यापा । (मा० १।६३।३) पाङ्गिली-पिछली, पीछे की, पहली । उ० परिहरु पाङ्गिली गलानि । (वि० १।६३) पाङ्गिले-पीछे का, पहले का, पुराने लोगों का । उ० संगति न जाइ पाङ्गिले को उपखालु है । (क० ७।६४)
 पाङ्गे-१. बाद में, अनंतर, २. पीछे । उ० १. बाचिहैं न पाङ्गे त्रिपुरारिहू मुरारिहू के । (क० ६।१)
 पाटंबर-रेशमी वस्त्र । उ० दे० 'पाट (१)' ।
 पाट (१)-(सं० पट्ट, पाट)-१. रेशम, २. पट्टा, पटसन । उ० १. हेम और मरकत चवरि लसत पाटमय डोरि । (मा० १।२८८) १. पाट कीट तैं होइ तेहि तैं पाटंबर रचिर । (मा० ७।६५ ख)

पाट (२)-(सं० पट्ट)-प्रधान, मुख्य । उ० जनक पाटमहिषी जग जानी । (मा० १।३२४।१)
 पाटन-(सं० उत्पाटन)-नष्ट-अष्ट करना । उ० मोहाम्मोघर पूग पाटनविधौ स्वःसंभव शंकर । (मा० ३।१।१ खो० १)
 पाटल-(सं०)-१. गुलाब, २. वृक्ष विशेष, जिसमें केवल फूल होते हैं फल नहीं । ३. सफेदी मिला लाल रङ्ग, गुलाबी । उ० २. संसार महुँ पूरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा । (मा० ६।६०। छ० १)
 पाटि-(सं० पाट)-१. पट्टी, पटिया, तख्ता, २. पाटकर । उ० १. चारु पाटि पटी पुरट की भरकत मरकत भौर । (गी० ७।१६) पाटियत-(सं० पाट)-पाटना चाहता, पाटता । उ० मसक की बाँसुरी पयोधि पाटियत है । (क० ७।६६) पाटे-पाट दिया, भर दिया, समथल कर दिया ।
 पाटीर-(सं०)-एक प्रकार का चंदन । उ० पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा बलित बेलिन लाल । (गी० ७।१८)
 पाठ-(सं०)-सबक, पढ़ाई । उ० चारिहु को छुहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ ज्यों फारै । (क० ७।१०४)
 पाठक-(सं०)-१. पढ़ानेवाला, गुरु, २. विद्यार्थी, पढ़नेवाला ।
 पाठीन-(सं०)-एक मछली, पढ़िना । उ० मीन पीन पाठीन पुराने । (मा० २।१६६।२)
 पाण्डि-(सं०)-हाथ । पाण्डौ-दोनों हाथों में । उ० पाण्डौ महा सायक चारु चार्प । (मा० २।१।१ खो० ३)
 पाण्डिग्रहण-(सं०)-विवाह की एक रीति, विवाह ।
 पाण्डौ-दे० 'पाण्डि' ।
 पात (१)-(सं०)-१. पतन, गिरना, २. राहु । उ० १. बार-बार पविपात, उपल घन बरथत बूँद बिसाल । (क० १८)
 पात (२)-(सं० पत्र)-१. पत्ता, २. कान का एक आभूषण ।
 पात (३)-(सं० पंक्ति)-१. कतार, पंक्ति, २. साथ खानेवाले, कुल के लोग । उ० २. पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे । (क० २।८)
 पातक-(सं०)-पाप, महापाप, अत्र । उ० ते पातक मोहि होहुँ बिधाता । (मा० २।१६७।४)
 पातकिनि-पापिनी, पापाचारिणी । उ० बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु । (मा० २।२२) पातकी-पापी, पाप करनेवाला । उ० तेरे ही नाथ को नाम लै बेचिहौँ पातकी पामर प्राननि पोसौं । (क० ७।१३७)
 पातकु-दे० 'पातक' । उ० दीयँ उतरु फिरि पातकु लहँ । (मा० २।६५।४)
 पातरि-दे० 'पातरी' । उ० २. चाटत रहौँ स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो । (वि० २२६)
 पातरी-(सं० पत्र)-१. पतली, महीन, २. पत्तल, पत्रों का थाल ।
 पाता (२)-(सं० पात)-रक्षक, रक्षा करनेवाला, प्राता । उ० जयति रनधीर रघुबीर-हित देवमनि रुद्र-अवतार संसार पाता । (वि० २५)
 पाता (३)-(सं० पत्र)-पत्ता । उ० ए महि परिहिँ डालि कुस पाता । (मा० २।११६।४)
 पाताल-(सं०)-१. पुराणानुसार पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में सातवाँ, २. गुफा, विल, ३. सात पाताल, यथा-

अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल । उ० १. भूमि-पाताल-जल-गगन-गंगा । (वि० २५)

पातालु-दे० 'पाताल' ।

पाती (२)-(सं० पत्र)-पत्र, चिट्ठी । उ० तात कहाँ ते पाती आई । (मा० १२६०४)

पाती (३)-सं० पति)-इज्जत, मर्यादा ।

पातु-(सं०)-रक्षा करें, रक्षा करो । उ० श्री शंकरः पातु माम् । (मा० २११ श्लो० १)

पात्र-(सं०)-१. बर्तन, २. उपयुक्त, योग्य, ३. नाटक का पात्र । उ० १. मिलित जल पात्र अज-युक्त हरिचरन रज । (वि० १८) २. कृपापात्र रघुनायक केरे । (मा० ७७०११)

पाथ (१)-(सं० पाथसु)-पानी, जल । उ० जैसे श्रम-फल घृतहित मये पाथ । (वि० ८४)

पाथ (२)-(सं० पथ)-मार्ग, रास्ता ।

पाथकां-१. रास्ता, २. नदी, ३. जल की ।

पाथनाथ-(सं०)-समुद्र । उ० कृपा पाथनाथ सीतानाथ सानुकूल हैं । (क० ५३०)

पाथप्रद-(सं०)-बादल । उ० 'भले नाथ !' नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ । (क० ५११६)

पाथा-दे० 'पाथ (१)' । उ० सोइ गुन अमल अनूपम पाथा । (मा० १४२४)

पाथोज-(सं०)-कमल । उ० नील पीत पाथोज-बरन बपु, बय किसोर बनिआई । (गी० ११५०)

पाथोजनाभं-(सं०)-विष्णु, जिनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ हो । उ० तसकांचन-वस्त्र शास्त्र विद्या-निपुन सिद्ध सुर-सेव्य पाथोजनाभं । (वि० ५०)

पाथोजपानी-(सं० पाथोजपाणि)-कमल जिनके हाथ में है, विष्णु । उ० मदन मर्दन मदातीत मायारहित मंजुमानाथ पाथोजपानी । (वि० ५६)

पाथोद-(सं०)-बादल, मेघ । उ० पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं । (मा० ३३२१ छं० १)

पाथोधि-(सं०)-समुद्र । उ० सर्वदानंद-संदोह, मोहापहं, चोर-संसार-पाथोधि-पोतं । (वि० ४६)

पाद-(सं०)-१. पैर, चरण, पैर, २. चतुर्थांश, किसी चीज का चौथा भाग, ३. किरण, ४. छोटा पर्वत, ५. श्लोक या पद्य का चरण, ६. पुस्तक का खंड या अंश, ७. वृक्ष का मूल, ८. नीचे का भाग, ९. चलना, गमन । उ० १. न आवद् उमानाथ पादारविन्दं । (मा० ७१०८७)

पादप-(सं०)-वृक्ष, पेड़ । उ० भग्न-संसार-पादपे-कुठारं । (वि० ५०)

पादुकन्धि-पादुकाओं में । उ० जिन्ह पायन्ह के पादुकन्धि भरतु रहे मन लाइ । (मा० ५१४२) पादुका-(सं०)-खड़ाई, जूता । उ० सिंहासन पर पूजि पादुका बारहिं बार जोहारे । (गी० २।७६)

पादोदक-चरणोदक, देवता अथवा ब्राह्मण के पैर धोने का पानी या चरण घोया पानी । उ० पद पखारि पादोदक लीन्हा । (मा० ७।४८१)

पानं-पीने की क्रिया, पीना, आचमन । उ० मञ्जुप-मुनिवृंद

कुर्वन्ति पानं । (वि० ६०) पान (१)-(सं०)-१. पीने की वस्तुएँ, २. पीना, ३. मद्यपान । उ० १. पान, पकवान विधि नाना को संधानों, सीधो । (क० ५।२३) ३. मान ते ग्यान पान ते लाजा । (मा० ३।२१५)

पान (२)-(सं० पण्य)-१. पत्र, पत्ता, २. तांबूल । उ० २. देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज । (मा० १।३२६)

पानहिन्ह-(सं० उपानह)-पानहीं का बहुवचन, जूते । उ० बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाइँ । (मा० २।२६२/३) पानही-जूता, पनहीं । उ० इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहैं । (वि० २३१) पानह्यो-(सं० उपानह)-पनहीं भी, जूता भी । उ० मंजु मधुर मृदु मूरति, पानह्यो न पायनि । (गी० २।२५)

पाना (१)-(सं० पान)-१. पान, पीना, २. पीने की वस्तु, ३. मद्यपान । उ० १. दरस परस मउजन अरु पाना । (मा० १।३५१)

पाना (२)-(सं० पण्य)-१. पत्र, पत्ता, २. तांबूल । उ० १. औषध मूल फूल फल पाना । (मा० २।६।१)

पानि-दे० 'पाणि' । उ० दक्षिण पानि बानमेकं । (वि० ५१) पानिहि-हाथ में । उ० कटि कै झीन बरिनिआँ छाता पानिहि हो । (रा० ८)

पानिग्रहन-दे० 'पाणिग्रहण' । उ० पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा । (मा० १।१०१।२)

पानी (१)-(सं० पानीय)-१. जल, २. वर्षा, ३. ओप, चमक, ४. प्रतिष्ठा, मान, ५. वर्ष, साल, ६. शुक्र, बीज, ७. समय, अवसर । उ० १. राम सुप्रेमहि पोषत पानी । (मा० १।४३।१)

पानी (२)-(सं० पाणि)-हाथ, कर । उ० जयत जय बज्र तनु, दसन नख, मुख बिकट, चंड-भुजदंड-तरु, सैल-पानी । (वि० २५)

पाप-(सं०)-१. अध, अधर्म, बुरा कर्म, २. संकट, कठिनाई । उ० १. पाप संताप घनघोर संसृति दीन । (वि० ११) २. मयो परिताप पाप जननी जनक को । (क० ७।७३) पापवंत-पापी, पाप करनेवाला, अधी । उ० पापवंत कर सहज सुभाऊ । (मा० ५।४४।२) पापहि-पाप का, पापों का । उ० हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कबनि मिति । (मा० १।१८३)

पापा-दे० 'पाप' । उ० प्रभु पद देखि मिटा सो पापा । (मा० ३।३३।४)

पापिउ-(सं० पापिन्) पापी भी । उ० पापिउ जाकर नाम सुमिर-हीं । (मा० ४।२६।२) पापिन-'पापी' का बहुवचन, पाप करनेवाले । उ० चलिहैं छूटि पूज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं । (वि० ६५) पापिनि-दे० 'पापिनी' । उ० तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि । (मा० २।१३।४) पापिनिहि-पापिन को । उ० एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ । (मा० २।४७।१) पापिनी-पाप करनेवाली, अधिनी । उ० पराहि जाहि पापिनी ! मलीन मन माहँ की । (ह० २६) पापिहि-पापी को । उ० एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा । (मा० ६।७६।७) पापी-पातकी, अधी, पाप करने-

वाला । उ० होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ ।
(मा० ११३२)
पापिष्ट-पापात्मा, अधर्मी, अधी । उ० पायो सो फलु
पापिष्ट । (मा० ६११३।५)
पापु-दे० 'पाप' ।
पामर-(सं०)-नीच, अधम, कमीना, दुष्ट । उ० तेरे ही
नाथ को नाम लै बेचिहौं पातकी पामर प्राननि पोसों ।
(क० ७११३७) पामरन्हि-पामर' का बहुवचन । दे०
'पामर' ।
पायँ-(सं० पाद)-पैर को । उ० दंडक-पुहुमि पायँ-परस
पुनीत भई । (वि० २५७) पायँन-'पाय' का बहुवचन,
पैरों । उ० रावरे दोष न पायँन को, पग धूरि को भूरि
प्रभाउ महा है । (क० २।७) पाय (२)-(सं० पाद)-चरण,
पैर । उ० लखन सीय रघुबंस मनि, पथिक पाय उर आनि ।
(प्र० २।२।४) पायनि-पैरों में । उ० पानहों न पायनि ।
(गी० २।२५) पायन्ह-चरणों में । उ० परिहरि सकुचि
सप्रेम पुलकि पायन्ह परी । (जा० १८६)
पायक (१)-(सं० प्रापण)-पाने को । उ० कल्लु सुभाउ जनु
बरतनु-पायक । (गी० २।३)
पायक (२)-(सं० पादातिक)-१. दूत, हरकारा, २. नट, ३.
पैदल, ४. ध्वजा । उ० १. जाकेहनूमान से पायक । (मा०
६।६३।२)
पायस-(सं०)-खीर, तक्षमयी । उ० पायस पाइ बिभाग
करि । (प्र० ४।१।२)
पाया (२)-(सं० पाद)-खंभा, स्तंभ ।
पाया (३)-(सं० पद)-पद, पदवी, ओहदा ।
पायिक-(सं० पादातिक)-दूत, हरकारा ।
पार-दे० 'पार' । उ० २. विकट वर्ष, विभु वेद पारं । (वि०
१२) पार-(सं०)-१. नदी या समुद्र का अपर तट या
सीमा, २. परे, बाहर, ३. आगे, ४. दूर, अलम्, ५. अंत,
समाप्ति, छोर, ६. ओर, तरफ । उ० १. सिंधु पार सेना
तब आई । (मा० १।३७।४) २. प्रकृति पार प्रभु सब उर
बासी । (मा० ७।७।४) पारहि-(सं० पार)-उस पार,
उस पार को । उ० अपर जलचरन्हि अपर चढ़ि चढ़ि पारहि
जाहि । (मा० ६।४)
पारई-(?)-परई, सकोरा, मिट्टी का कटोरा । उ० मनि
भाजन मधु, पारई पूरन अमी निहारि । (दो० ३५१)
पारखी-(सं० परीक्षा, हिं० परख)-१. 'परख' करनेवाला,
जिसमें परखने की योग्यता हो, योग्य, २. जौहरी । उ०
१. सोह पंडित सोह पारखी सोई संत सुजाव । (बै०
५८)
पारखण-(सं०)-१. व्रत या उपवास के दूसरे दिन किया
जानेवाला पहला भोजन और तत्संबंधी कृत्य, २. बादल,
३. समाप्ति, अंत, ४. वृत्त करने की क्रिया या भाव ।
पारथ-(सं० पार्थ) १. पृथा (=कुंती) के पुत्र अर्जुन, २.
पद्मव । उ० १. भास्व में पारथ के इयकेतु कथिराज ।
(ह० ५) २. सकल प्रवेश करत जेहि आत्म विगत-विषाद
आइ पारथ नलु । (वि० ३४)
पारथिव-(सं० पार्थिव)-पृथ्वी का । मिट्टी का बना शिव
लिग । उ० पूजि पारथिव नायउ माथा । (मा० २।१०३।१)

पारथी-दे० 'पारथिव' ।
पारद-(सं०)-१. पारा, रसराज, २. पार कर देनेवाला,
संसार समुद्र से पार करानेवाला । उ० तुलसी छुवत पराह
ज्यों पारद पावक-आँच । (दो० ३३६)
पारन-दे० 'पारण' । उ० परहित-निरत सो पारन बहुरि न
ब्यापत सोक । (वि० २०३)
पारवति-दे० 'पारवती' । उ० रामकृपा तें पारवति सपनेहुँ
तव मन माहि । (मा० १।११२)
पारवतिहि-पारवती को । उ० पारवतिहि निरमयउ जेहि सोह
करिहि कल्याण । (मा० १।७१) पारवती-(सं० पारवती)-
उमा, गौरी, शंकर की स्त्री । उ० पारवती-मन सरिस
अचल धनु चालक । (जा० १०४)
पारस (१)-(सं० स्पर्श)-एक कल्पित पत्थर जिसके विषय
में प्रसिद्ध है कि यदि लोहा उससे छू जाय तो सोना हो
जाता है । उ० जनम रंक जनु पारस पावा । (मा०
१।३५०।४)
पारस (२)-(सं० परिवेषण)-परसा हुआ भोजन, परोसा ।
पारसु-दे० 'पारस (१)' । उ० मानहुँ पारसु पायउ रंका ।
(मा० २।२३।२)
पारहि (१)-(सं० पारय, हिं० पारना)-समर्थ नहीं हो
सकता, नहीं सकता । उ० ललकि लोभाहि नयन मन,
फेरि न पारहि । (जा० १३)
पारहि (२)-(सं० पतन, हिं० पढ़ना, पाटना)-१. पढ़ते
हैं, गिराते हैं, डालते हैं, २. डालें, पढ़ें । उ० १. एकहु
एक मदि मदि पारहि । (मा० ६।८।१।३) पारा (१)-
(सं० पतन)-गिराया, पटका । उ० तुम्ह जेहि लागि
बज्रपुर पारा । (मा० २।४।४) पारी (१)-(सं०
पतन)-गिराया, डाला, डाल दिया, फेंका । उ० प्रभु सोउ
भुजा काटि मदि पारी । (मा० ६।७०।२)
पारा (२)-(सं० पार)-१. पार, उस पार, २. पार किया ।
उ० १. कब जैहवें दुखसागर पारा । (मा० १।५।१)
पारा (३)-(सं० पारय)-पूरा किया, बनाया । पारी (२)-
बनाया, पूरा किया ।
पारायण-दे० 'परायण' । उ० नौमि नारायण नरं करुणा-
यन ध्यान पारायण ज्ञान मूलम् । (वि० ६०) परायण-
(सं०)-१. समाप्ति, पूरा करने का कार्य, २. समय बांध
कर किसी ग्रंथ का आद्योपांत पाठ, ३. लीन, तत्पर ।
पारावत-(सं०)-कबूतर, कपोत । उ० मोर हंस सारस
पारावत । (मा० ७।२।३)
पारावार-(सं०)-१. आरपार, दोनों तट, २. सीमा, अंत,
हद, ३. समुद्र । उ० २. रूप के न पारावार । (गी० २।२६)
पारिखि-दे० 'पारखी' । उ० २. कसें कनकु मनि पारिखि
पाए । (मा० २।२।३।३)
पारिखी-दे० 'पारखी' ।
पारिखो-दे० 'पारखी' । उ० १. नारद को परदा न नारद
सो पारिखो । (क० १।१६)
पारिजात-(सं०)-१. स्वर्गलोक का एक वृक्ष, २. हरसिंघार ।
पारिषद-(सं०)-१. सभासद, परिषद में बैठनेवाला, २.
गण, ३. सेवक ।
पारी (३)-(सं० बार, हिं० बारी)-बारी, अवसर, क्रम ।

पारी (४)-(सं० पार)-पार किया ।
 पार-(सं० पार)-पार, किनारा । उ० निगम सेष नारद
 सुख शंकर वरनत रूप न पावत पार । (गी० ७।१०)
 पारु-पार, उस पार । उ० होत बिलंबु उतारहि पारु ।
 (मा० २।१०।११)
 पारे-सामर्थ्य, समर्थता । उ० प्रभु कोमल-चित्त चलत न
 पारे । (गी० २।२)
 पारो-पार पा सकते हो । उ० मधुकर कहहु कहन जो
 पारो । (कृ० २४)
 पार्थ-(सं०)-अर्जुन । दे० 'पार्थ' ।
 पार्थिव-(सं०)-दे० 'पार्थिव' ।
 पार्यो-(सं० पत्तन)-गिरा कर । उ० गहि भूमि पार्यो
 खात मार्यो । (मा० ६।६७।छं१)
 पार्वती-(सं०)-हिमालय की कन्या और शिव की स्त्री ।
 पार्वती ने एक बार राम की परीक्षा देने के लिए 'सीता'
 का रूप धारण किया । यह बात उन्होंने शंकर से छिपाई
 जिससे वे रुष्ट हो गए । बाद में पार्वती बिना निर्मंत्रण के
 अपने पिता हिमालय के घर चली गईं जहाँ शंकर का
 अपमान देख उन्होंने यज्ञ विध्वंस किया तथा कुंड में
 अपने को जला डाला । दूसरे जन्म में पार्वती ने फिर
 बहुत तप के बाद शंकर को पति रूप में प्राप्त किया ।
 उ० जासु नाम सर्वस सदा सिव पार्वती के । (गी० १।१२)
 पार्षद-दे० 'पारिषद' ।
 पार्ष-दे० 'पारिषद'-१. कच का अधोभाग, बगल, २. समीप,
 पास ।
 पाल (१)-(सं०)-१. पालक, पालन करनेवाला, २.
 पालन, रक्षा । उ० १. दुर्जन को काल सो कराल पाल
 सज्जन को । (ह० १०)
 पाल (२)-(सं० पट) नाव पर तानने का कपड़ा ।
 पालइ-(सं० पालन)-पालता है । उ० पालइ पोषइ
 सकल अंग तुलसी सहित विवेक । (मा० २।३१५)
 पालत-१. पालते हैं, पाला करते हैं । २. पालन
 कर रहे हो, ३. पालते हुए । उ० १. पालत नीति
 प्रीति पहिचानी । (मा० २।२७।३) २. पाल्यो है, पालत,
 पालहुयो । (वि० २२३) पालति-पालती है, रक्षा करती है ।
 उ० जो सजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान
 की । (मा० २।१२६। छं० १) पालवी-पालना, पालन
 करना, पालन कीजिएगा । उ० पालवी सब तापसनि ज्यों
 राज धरम बिचारि । (गी० ७।२६) पालहि-१. रक्षा करते हैं,
 पालन-पोषण करते हैं, २. रखते हैं, निर्वाह करते हैं,
 ३. नहीं टलते हैं । उ० २. अनुचित उचित बिचार तजि जे
 पालहि पितु बैन । (दो० ५४१) पालही-रक्षा करो, पालन
 करो । उ० जेहि भाति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल
 पालही । (मा० २।५०। छं० १) पालहु-पालन करो, रक्षा
 करो । उ० पालहु प्रजा सोकु परिहरहु । (मा० २।१७।११)
 पालहुयो-पालन करोगे, रक्षा करोगे । उ० दे० 'पालत' ।
 पाला (१)-रक्षा की, पालन-पोषण किया । पालि-१.
 रक्षा करके, पालन करके, २. पालन करो । उ० २. सखी
 कहैं सखी सों तू प्रेम पय पालि, री । (क० १।१२)
 पालाए-रक्षा कीजिए, पालन कीजिए । उ० विन सेवा सो

पालिए सेवक की नाई । (वि० ३५) पालित-(सं०)-
 रक्षित, पाला हुआ, २. स्थापित । उ० १. भीषम-द्रोण-
 करनादि-पालित, कालदक, सुयोधन-चमू-निधन हेतु ।
 (वि० २८) पालिबी-पालन कीजिएगा । उ० ए दारिका
 परिचारिका करि पालिबी कहना नई । (मा० १।३२६।छं३)
 पालिबी-पालन कीजिएगा । पालिबे-पालने, रक्षा करने ।
 उ० पालिबे को कपि-भालु-चमू जमकाल कराखहु को
 पहरी है । (क० ६।२६) पालिहइ-दे० 'पालिहै' । पालिहिं-
 पालन करे । उ० पितु आयसु पालिहिं दुहुँ भाई । (मा०
 २।३१५।२) पालिहै-पालेगा, रक्षा करेगा । उ० आनन
 सुखाने कहैं 'क्योंहुँ कोऊ पालिहै ?' (क० ५।१०) पाली-
 १. पालन किया, रक्षा की, २. पूरी की । उ० २. बसत
 हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली । (वि० १।४७)
 पालु-१. पालन करो, २. पालन करनेवाला । उ०
 १. पालु बिबुधकुल करि छल छाया । (२।२६।११)
 २. सरनागत-प्रिय प्रनत-पालु । (वि० १।५४) पालु-
 १. पालन करो, २. रक्षा करो । पाले-१. पालने
 पर, रक्षा करने पर, २. पाला, रक्षा की, निर्वाह
 किया, ३. अधीन, बश में । उ० २. आलसी अभागो
 मोसे तैं कृपालु पाले पोसे । (वि० २।५०) ३. परेहु कठिन
 रावन के पाले । (मा० ६।६०।४) पालेहु-पालन करना ।
 उ० पालेहु प्रजहि करम मन बानी । (मा० २।१५।२।२)
 पालो-१. पालन करो, २. पाला हुआ । उ० २. पालो
 तेरे दूक को, परेहुँ चूक मूकिए न । (ह० ३४) पाल्यो-
 पालन किया, पाला । उ० पाल्यो है, पालत, पालहुगे
 प्रभु प्रनत-प्रेम पहिचानिहौ । (वि० २।२३)
 पालउ-(सं० पल्लव)-पत्रों को, पत्ते को । उ० पेड़ काटि तैं
 पालउ सींचा । (मा० २।१६।१४)
 पालक-(सं०)-१. पालन करनेवाला, रक्षक, २. पाला
 हुआ, लड़का । उ० १. बिस्वनाथ पालक कृपालुचित,
 लालति नित गिरिजा सी । (वि० २२)
 पालकिन्ह-पालकियों पर । उ० कुअरि चढ़ाई पालकिन्ह
 सुमिरे सिद्धि गनेस । (मा० १।३३।८) पालकीं-पालकियाँ ।
 दे० 'पालकी' । उ० सजि सुंदर पालकीं मगाइ । (मा०
 १।३३।८) पालकीं-(सं० पल्यंक)-एक प्रकार की सचारी
 जिसे आदमी कंधे पर लेकर चलते हैं । म्याना, डोली ।
 पालन-(सं०)-१. रक्षण, भरण-पोषण, २. भंग न करना,
 न टलना, निर्वाह । उ० १. जग संभव पालन लथ
 कारिनि । (मा० १।६८।२)
 पालनकरता-(सं० पालनकर्ता)-पालनेवाला, रक्षक ।
 पालना-(सं० पल्यंक)-झूला, हिंडोला । पालने-पालने
 पर । दे० 'पालना' । उ० रहत न बैठे ठाढ़े पालने झुला-
 वत हू । (गी० १।१२)
 पालनिहार-पालनेवाला, रक्षक । उ० विधि से करनिहार,
 हरि से पालनिहार । (गी० ५।२५)
 पालनो-दे० 'पालना' । उ० कनक-रतनमय पालनो रच्यो
 मनहुँ मार सुत हार । (गी० १।१६)
 पालन्ह-पालनेवाले, रक्षक गण ।
 पालव-(सं० पल्लव)-१. कोमल पत्ते, २. शाखा, डाली, टहनी ।
 उ० २. पालव बैठे पेड़ु रहि काटा । (मा० २।४७।३)

पाला (२)-पालनेवाले, रक्षक । उ० विधि हरि हरु ससि रवि दिसिपाला । (मा० २।२५३।३)
 पालागौं-(सं० पाद+लग्न)-पैर लगती हूँ, पैर पड़ती हूँ । उ० तौ सकोच परिहरि पालागौं परमारथहि बखानो । (क० ३१)
 पालिका-(सं०)-पालन करनेवाली, पालनेवाली । उ० देहि हूँ प्रसन्न, पाहि प्रणत पालिका । (वि० १६) पालिके-हे पालन करनेवाली । उ० तेरे ही प्रसाद जग अग जग पालिके । (क० ७।१७३)
 पावँर-दे० 'पाँवर' । उ० आन जीव पावँर का जाना । (मा० १।१११।३) पावँरन्हि-दे० 'पामरन्हि' । उ० भए काम बस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै । (मा० १।८५।६० १)
 पाव (२)-(सं० पाद)-१. चतुर्थांश, २. पैर । उ० २. पंथ देत नहि पाव । (वि० १२)
 पावक-(सं०)-१. आग, अग्नि, २. ताप, गर्मी, ३. तेज, ४. सूर्य, ५. शुद्ध या पवित्र करनेवाला, ६. सदाचार, ७. एक वृक्ष । उ० १. इंदु-पावक-भानु-नयन । (वि० ११)
 पावक-दे० 'पावक' । उ० १. छाड़ भवन पर पावक धरेऊ । (मा० २।४७।१)
 पावडे-दे० 'पाँवडे' ।
 पावन-(सं०)-१. पवित्र, शुद्ध, २. पवित्र करनेवाला । जल, अग्नि, गोबर, गंगा, तथा सत्संग आदि । उ० १. जसु पावन रावन नाग महा । (मा० ६।१११।२) पावनि-(सं० पावन)-१. पवित्र, २. पवित्र करनेवाली । उ० १. रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी । (मा० १।३१।६) पावनी-१. पवित्र, २. पवित्र करनेवाली । उ० २. जयति जय सुरसरी जगदखिल-पावनी । (वि० १७)
 पावनताई-पवित्रता । उ० कहि दंडक बन पावनताई । (मा० ७।६६।१)
 पावनि (२)-(सं० प्रापण)-पानेवाली । उ० समधी सकल सुआमिनि गुरु तिय पावनि । (जा० २।१४)
 पावनो-पवित्र । उ० सुनि बचन सोधि सनेहु तुलसी साँच अबिचल पावनो । (पा० ७४)
 पावस-(सं० प्रावृष)-बरसात, सावन-भादों का महीना । उ० पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अधौध नसावहीं । (गी० ७।१६)
 पाश-(सं०)-१. रस्सी, २. फंदा, फाँसी ।
 पाषंड-दे० 'पाखंड' । १. ढोंग, आँडबर, २. माया, छल, धोखा, ३. वेदविरुद्ध आचार । उ० २. पुनि उठत करि पाषंड । (मा० ३।६)
 पाषंडी-पाखंड करनेवाला, धूर्त, नीच । उ० पाषंडी हरिपद विसुख, जानहि कूठ न साच । (मा० १।११४)
 पाष-दे० 'पाख' ।
 पाषरि-(सं० पश्म)-पंछुरी, छोटे-छोटे पत्ते, दल ।
 पाषाण-(सं०)-१. पत्थर, २. ओला, ३. गौतम की स्त्री अहल्या, ४. कठोर, ५. गंधक ।
 पाषान-दे० 'पाषाण' । उ० २. गरजि तरजि पाषान बरषि । (वि० ६५)

पाषाना-दे० 'पाषाण' । उ० १. डारइ परसु परिष पाषाना । (मा० ६।७३।१)
 पासंग-(फा०)-पसँचा, डंडी बराबर करने के लिए तराजू के पलड़े-पर रखी गई कोई चीज़ । पासंगहु-पसँगा भी । दे० 'पासंग' । उ० मेरे पासंगहु न पूजिहैं । (वि० २४१)
 पास (१)-दे० 'पाश' । उ० त्रसित-माया-पास । (वि० ६०)
 पास (२)-(सं० पार्व)-१. बगल, समीप, २. ओर ।
 पासा (१)-दे० 'पास (२)' । उ० १. होत सिमिटि इक पासा । (वि० ६२) २. उमगत प्रेसु मनहुँ चहुँ पासा । (मा० २।२२०।३)
 पासा (२)-(सं० पाशक)-चौसर खेलने की गोटी । पासे-दे० 'पासा (२)' । उ० तुलसी सबै सराहत मूपहि भले पैत पासे सुढर ढरे, री । (गी० १।७४)
 पासू-(सं० पार्व)-१. समीप, निकट, २. निकटता, समीपता । उ० २. लुबुध मधुप इव तजइ न पासू । (मा० १।१७।२)
 पाहन-(सं० पाषाण)-१. पत्थर, ओला, २. अहल्या । उ० १. जाचत जलु पवि पावन डारउ । (मा० २।२०५।२) २. पाहन पसू पतंग कोल भील निसिचर । (वि० २५७)
 पाहनौ-पत्थर भी । उ० खग मृग मीन सलभ सरसिज गति सुनि पाहनौ पसीजै । (क० ४५)
 पाहनकमि-पत्थर का कीड़ा जो लाल रंग का होता है । यह पत्थर में पैदा होता और वहीं रहता है । उ० पाहनकमि जिमि कठिन सुभाऊ । (मा० २।६०।१)
 पाहर-(सं० प्रहर)-प्रहरी, चौकीदार ।
 पाहरू-दे० 'पाहरू' । उ० गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती । (मा० २।६०।२) पाहरूई-पहरेदार ही, प्रहरी ही । उ० पाहरूई चोर हेरि हिय हहरानु हैं । (क० ७।८०)
 पाहि-(सं०)-रक्षा करो, बचाओ । उ० तुलसी 'पाहि' कहत नत-पालक मोहुँ से निपट निकज के । (गी० ५।२६)
 पाहीं-(सं० पार्व)-१. समीप, पास, निकट, २. से, प्रति । उ० १. अलि पैयत रवि पाहीं । (क० ५८) २. राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं । (मा० २।१०६।१)
 पाही (१)-दे० 'पाहि' । उ० कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही । (मा० ३।२।५)
 पाही (२)-(सं० पार्व)-वह खेती जो दूसरे गाँव में की जाय । घर से दूर की खेती । उ० पाही खेती, लगन बढ, अन्न कुब्याज मग-खेत । (दो० ४७८)
 पाहुन-(सं० प्राघुण)-अतिथि, मेहमान । उ० दे० 'पहुनई' ।
 पाहुनि-पाहुनी, स्त्री मेहमान । उ० पाहुनि पावन पैम प्राण की । (मा० २।२८६।२) पाहुने-दे० 'पाहुन' । उ० पाहुने कृसानु पवमान सौं परोसो । (क० ५।२४)
 पाहुँ (१)-(सं० पार्व)-पास, समीप ।
 पाहुँ (२)-(सं० पाद)-पैर भी । उ० द्वार-द्वार दीनता कही काहि रद, परि पाहुँ । (वि० २७५)
 पिंग-(सं०)-पीला, पीलापन लिए भूरा । उ० पिंग नयन, अकुटी कराल, रसना दसनानन । (ह० २)
 पिंगल-(सं०)-१. पीला, भूरापन या ललाई लिए पीला, २. सूर्य, ३. एक मुनि जो छंद शास्त्र के आदि आचार्य कहे

जाते हैं । ४. एक बंदर का नाम, ५. आग, ६. उल्लू पक्षी, ७. एक संवत्सर, ८. चमगादर । उ० १. जयति बालार्क-बर-बदन, पिंगल नयन, कपिस-कर्कस-जटाजूट धारी । (वि० २८)

पिंगला-(सं०)-एक प्रसिद्ध भगवद्भक्त वेरया । इसने एक धनिक को जाते देखा और उनकी प्रतीक्षा में बहुत रात तक बैठी रही । जब धनिक बहुत रात बीत जाने पर भी न आया तो उसे ज्ञान प्राप्त हुआ और आशा को जो सारे दुखों का मूल है छोड़ उसने शांति प्राप्त की । उ० गज पिंगला अजामिल । (वि० २१२)

पिंजरन्दि-पींजरों में । दे० 'पिंजरा' । उ० कनक पिंजरन्दि राखि पढ़ाए । (मा० १।३३८।१) पिंजरा-(सं० पंजर)-लोहे या बाँस आदि की तीलियों का बना आबा जिसमें पक्षी आदि पाले जाते हैं ।

पिंड-(सं०)-१ शरीर, २. कोई गोल वस्तु, गोला, ३. पके चावल का गोल लोटा जो श्राद्ध में पितरों को दिया जाता है । ४. भोजन, आहार । उ० ३. कौने गीध अघम को पितु ज्यों निज कर पिंड दियो । (गी० २।४६) पिंडोदक-(सं०)-पिंडा और तर्पण, पिंडा-पानी । उ० दे० 'पिंड' ।

पिअत-(सं० पा)-दे० 'पियत' । उ० १. पिअत नयन पुट रूपु पियूवा । (मा० २।१११।३) पिअहिं-पीते हैं । उ० जहँ जल पिअहिं बाजि गज टाटा । (मा० ७।२६।१) पिउ (?)-पिओ, पान करो । पिए-पान किए ।

पिअर-दे० 'पियर' । उ० पिअर उपरना काखासोती । (मा० १।३२७।४)

पिआउ-पिलाओ, पान कराओ । उ० जाँचों जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो । (वि० १८२) पिआएँ-१. पिलाया, २. पिलाने से । उ० १. भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ । (मा० ७।१०६।३)

पिआरा-(सं० प्रिय)-प्यारा, प्रिय । उ० रामहि सेवक परम पिआरा । (मा० २।२१०।१) पिआरी-दे० 'पियारी' । उ० दे० 'पियहिं' ।

पिआस-(सं० पिपासा)-प्यास, तृषा । उ० आस पिआस मनो मखहारी । (मा० १।४३।१)

पिआसे-(पिपासित)-प्यासे, तृषित । उ० थके नारि नर प्रेम पिआसे । (मा० २।११६।२)

पिउ (?)-पिउ-प्रियतम, पिय ।

पिक-(सं०)-कोयल, कोकिला । उ० सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहंस पिक । (गी० १।३४) पिकबयनी-कोयल के समान मधुर बोलनेवाली । उ० पिकबयनी शृगलोचनी सारद ससि सम तुंड । (गी० ७।१६) पिकबैनी-दे० 'पिकबयनी' । उ० मनसहु अगम समुक्ति यह अवसरु कत सकुचति पिकबैनी । (गी० १।७६)

पिचकनि-(सं० पिच्य)-पिचकारियाँ । उ० भरत परसपर पिचकनि मनहुँ मुदित नर नारि । (गी० २।४७)

पिचकारि-दे० 'पिचकारी' । उ० भोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ । (गी० ७।२२)

पिचकारी-(सं० पिच्य) एक प्रकार का नलदार यंत्र जिसका व्यवहार जल या दूसरे तरल पदार्थ जोर से किसी और फँकने के लिए होता है । पिचका ।

पिछोरी-(सं० पच + पट)-दुपट्टा, चादर, ओढ़नी । उ० मंगलमय दोउ, अंग मनोहर अथित चूनरी पीत पिछोरी । (गी० १।१०३)

पिटारी-(सं० पिटक)-छोटा संदूक, डब्बा ।

पितर-(सं० पितृ)-पुरखा, पूर्वपुरुष, पूर्वज । उ० गुर सुर संत पितर महि देवा । (मा० १।१६५।२)

पितहि-पिता को । उ० पितहि बुझाई कहहु बलि सोई । (मा० २।४३।३) पितहु-पिता के । उ० पितहु मरन कर मोहि न सोऊ । (मा० २।२११।३) पिता-(सं० पितृ का कर्ता एक वचन)-१. बाप, उत्पन्न करनेवाला, जनक, २. रक्षक । उ० १. पिता वचन मनतेउँ नहिं ओहु । (मा० ६।६१।३) पिताहूँ-पिता भी । उ० भली भाँति पछिताव पिताहूँ । (मा० १।६४।१) पितै-पिता भी । उ० तुलसिदास कासों कहै तुमहीं सब मेरे प्रभु गुरु मातु पितै ही । (वि० २७०) पितौ-पिता भी । उ० तुलसी प्रभु भंजिहैं संभु-धनु भूरि भाग सिय मातु पितौ री । (गी० १।७६)

पितु-दे० 'पिता' । उ० १. काढ़ि कृपान, कृपान न कहूँ पितु काल कराल बिलोकि न भागे । (क० ७।१२८) पितुआना-पिता की । उ० लखन तुम्हार सपथ पितुआना । (मा० २।२३२।२)

पिधान-(सं०)-आच्छादन, ढक्कन । उ० सुख के निधान पाए, हिय के पिधान लाए । (गी० १।६२)

पिनाक-(सं०)-शिव का धनुष, अजगव । उ० लोकप बिलोकत पिनाक भूमि लई है । (गी० १।८४) पिनाकहि-धनुष के, पिनाक के । उ० नाक पिनाकहि संग सिधाई । (मा० १।२६६।४)

पिनाकी-(सं० पिनाकिन्)-शिव, महादेव । उ० सेप संकुचित, संकित पिनाकी । (क० ६।४४)

पिनाकु-दे० 'पिनाक' । उ० घोर कठोर पुरारि-सरासन नाम प्रसिद्ध पिनाकु । (गी० १।८७)

पिपासा-(सं०)-१. प्यास, तृषा, २. लालच, लोभ । उ० १. जाते लाग न छुधा पिपासा । (मा० १।२०६।४)

पिपीलिकउ-चींटी भी । उ० चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु अम पारहि जाहि । (मा० १।१३) पिपीलिका-(सं०)-चींटी । उ० जिमि पिपीलिका सागर थाहा । (मा० ३।१।३)

पिबंति-पीते हैं, पीते रहते हैं । उ० धन्यास्ते कृतिनः पिबंति सतसं श्रीराम नामामृतम् । (मा० ४।१। श्लो० २)

पिय-(सं० प्रिय)-१. स्वामी, पति, २. प्यारा । उ० १. कहन चह्यो संदेस, नहिं कह्यो, पिय के जिय की जानि हृदय दुसह दुख दुरायो । (गी० २।१५) २. बूझति सिय पिय-पतिहि बिसूरि । (गी० २।११)

पियत-(सं० पा)-१. पीता है, २. पीता, पान करता । पियतु-दे० 'पियत' । पियहिं-पीते हैं । पियहि-(१)-पीता है । पिये-१. पीने पर, पान करने पर, २. पान किया, पीया । उ० १. तुलकति प्रेम-पियूष पिये । (गी० १।७) पियौ-पीऊँ, पीलू । उ० मुनिहि बूझि जल पियौ जाइ अम । (मा० ६।५७।१) पिवत-पीता है, पान करता है । उ० चरित-सुर सरित कवे-मुख्य-गिरि निःसरित पिवत मज्जत मुदित सत समाजा । (वि० ४४) पी (१)-पीकर,

पान करके। पीबो-१. पीना, पान करना, २. पीयोगे।
 उ० १. अजहूँ न तजत पयोधर पीबो। (कृ० ६) पीय
 (१)-पीकर, पानकर। पीवत-१. पीता है, पान
 करता है, २. पीते हुए। उ० २. मज्जत पय पावन
 पीवत जलु। (वि० २४) पीवन-पीना, पान करना। उ०
 चोंच मूँदि पीवे नहीं धिग पीवन पन जाइ। (स० ६८)
 पीवे-पीता, पान करता। उ० दे० 'पीवन'।
 पियर-(सं० पीत)-पीला। पियरी-पीली। उ० पियरी
 भीनी भँगुली साँवरे सरीर खुली। (गी० १।३०) पियरे-
 पीले। उ० तैसी तरकसी, कटि कसे पट पियरे। (गी०
 १।४१)
 पियहि (२)-(सं० प्रिय)-पति को, स्वामी को। उ० होइहि
 संतत पियहि पिआरी। (मा० १।६७।२)
 पियाउ-पिलाओ, पान कराओ। पियावहि-पिलाते हैं। उ०
 नरकपाल जल भरि भरि पियाहि पियावहि। (पा० १।११)
 पियारा-(सं० प्रिय)-'प्यारा'। पियारी-प्यारी, प्रिया, प्रेम-
 पात्री। उ० दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पियारी।
 (पा० १।४७) पियारे-प्यारे, प्रीतम, स्नेही। उ० समरथ
 सुवन समीर के रघुबीर पियारे। (वि० ३३)
 पियास-(सं० पिपासा)-१. प्यास, पानी पीने की इच्छा,
 २. इच्छा, कामना। उ० १. तुलसिदास प्रभु बिनु पियास
 मरै पसु। (वि० १।६६)
 पियासा-(सं० पिपासित)-१. प्यासा, २. लालची, जिसमें
 किसी तरह की कामना हो। उ० १. राम नाम-रति
 स्वाति-सुधा सुभ-सीकर प्रेम-पियासा। (वि० ६५)
 पियासे-प्यासे, तृपित। उ० बिहूने गुन पथिक पियासे
 जात पथ के। (क० ७।२४)
 पियूष-(सं०)-१. अमृत, २. दूध, ३. पानी, ४. उस गाय
 का दूध जिसे बच्चा दिव्ये सात दिन से अधिक हो गया
 हो। उ० १. पोषत पयद समान सब बिप पियूष के रूख।
 (दो० ३७७)
 पियूषा-दे० 'पियूष'। उ० पिअत नयन पुट रूपु पियूषा।
 (मा० २।१११।३)
 पिराति-(सं० पीडन)-दुखती, दर्द करती। उ० डील तेरी,
 बीर, मोहि पीर तें पिराति है। (ह० ३०) पिरातो-१.
 पिराता दर्द करता, २. दुखी होता। उ० २. सेइ साधु सुनि
 समुक्ति कै पर-पीर पिरातो। (वि० १।५१) पिराने-दुखने
 लगे। उ० बैठिअ होइहि पाय पिराने। (मा० १।२७।१)
 पिरानो-दुखा, दर्द किया, पीड़ा की।
 पिराते-(सं० प्रीति)-१. प्यारा, २. प्रेमी, ३. प्रेमयुक्त,
 प्रेम से। उ० १. हा रघुनंदन प्रान पिराते। (मा० २।
 १।५।४) ३. बोले गुर सन राम पिराते। (मा० २।
 २।४।२)
 पिरोजा-(फ्रा० फीरोजा)-हरापन लिए एक प्रकार का नीला
 पत्थर। उ० मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। (मा० १।
 २।८।२)
 पिशाच-(सं०)-एक हीन देवयोनि, भूत, शैतान।
 पिशित-(सं०)-मांस, गोशत।
 पिशुन-(सं०)-१. खुगला, खुगलखोर, निंदक, २. दुष्ट,
 ३. कैसर, ४. कौआ।

पिसाच-दे० 'पिशाच'। उ० प्रेत पिसाच भूत बेताला।
 (मा० १।८।३) पिसाचिनि-पिशाचों की स्त्रियाँ। उ०
 नाचहि गगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहि। (पा० ५।६)
 पिसाचा-दे० 'पिशाच'। उ० लगे कटन भट बिकट
 पिसाचा। (मा० ६।६।२) पिसाची-पिशाच स्त्री, पिशा-
 चिनी, भूतिनी। उ० अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि
 दाहन आस-पिसाची। (वि० १।६३)
 पिसुन-दे० 'पिशुन'। उ० पिसुन पराय पाप कहि देखीं।
 (मा० २।१।६।१)
 पिसुनता-(सं० पिशुनता)-खुगलखोरी। उ० अब कि पिसु-
 नता सम कछु आना। (मा० १।११।२।५)
 पिहानी-(सं० पिधान)-ढक्कन, छिपानेवाली वस्तु। उ०
 आलस, अनख न आचरज प्रेम पिहानी जानु। (दो०
 ३।२७)
 पींजरनि-पींजरो में। उ० हम गँल पाइ पींजरनि तरसत।
 (गी० २।६६) पींजरा-दे० 'पिंजरा'। उ० तेहि निसि
 आसम-पींजरा राखे भा भिनुसार। (दो० २०।६)
 पी (२)-(सं० प्रिय)-प्रिय, प्रियतम, स्वामी, पति। उ०
 सेवक स्वामि सखा सिय पी के। (मा० १।१।२।२)
 पीछे-(सं० पश्च)-१. बाद में, पश्चात्, २. आगे का उलटा,
 पीछे की ओर। उ० २. अडुकि परहि फिरि हेरहि पीछे।
 (मा० २।१।४।३)
 पीटत-(सं० पीडन)-पीटते हैं, मारते हैं। उ० अनल दाहि
 पीटत घनहि परसु बदन यह दंड। (मा० ७।३।७) पीटहि-
 पीटती हैं, पीटने लगीं। उ० नारि बृद कर पीटहि छाती।
 (मा० ६।४।४।२) पीटि-पीटकर, चोट पहुँचाकर, मारकर।
 पीठ (१)-(सं० पृष्ठ)-पीछे का अंग।
 पीठ (२)-(सं०)-१. पीड़ा, आसन, २. स्थान, ३. केन्द्र-
 स्थान। उ० १. पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। (मा० २।
 ५।६।३) २. जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ।
 (क० ७।१।४०)
 पीठि (१)-दे० 'पीठ (१)। उ० सो कि कृपालुहि देइगो
 केवट पालहि पीठि ? (दो० ४।६)
 पीठी-दे० 'पीठ (१)। उ० जिन्हकै लहहि न रिपु रन पीठी।
 (मा० १।२।३।१।४)
 पीड़त-पीड़ा देते हैं, कष्ट पहुँचाते हैं।
 पीड़ा-(सं० पीडा)-कष्ट, दुःख। उ० पर पीड़ा सम नहि
 अधमाई। (मा० ७।३।६।१)
 पीड़ित-(सं० पीडित)-पीड़ायुक्त, दुखित, रोगी, बीमार,
 दबाया हुआ। उ० त्रिबिध ताप पीड़ित अह मारी। (मा०
 २।२।३।२)
 पीदन्ह-पीढ़ों पर, आसनों पर। उ० जथा जोगु पीदन्ह
 बैठारे। (मा० १।३।२।२) पीड़ा-(सं० पीठ)-आसन,
 चौकी।
 पीत (१)-(सं०)-पीला, पिंग, कपिल। उ० दिव्य भूषण
 बसन पीत उपवीत। (वि० ४।४)
 पीत (२)-(सं० पा)-पीया हुआ, जिसका पान किया
 गया हो।
 पीतांबर-(सं०)-१. पीले रंग का रेशमी वस्त्र, २. रेशमी
 वस्त्र, ३. पीला कपड़ा।

पीन-(सं०)-१. स्थूल, मोटा, मांसल, २. पुष्ट, प्रौढ़, ३. मोटाई, स्थूलता । उ० १. जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम । (मा० २।२५१) २. विसद किसोर पीन सुंदर बपु । (वि० ६२)

पीनता-(सं०)-१. मोटाई, स्थूलता, २. पुष्टता, प्रौढ़ता, ३. अधिकता । उ० ३. पाप ही की पीनता । (क० ७।६२)

पीना (१)-(सं० पीन)-पुष्ट, पीन, प्रौढ़ । उ० नित नव राम प्रेम पनु पीना । (मा० २।३२५।१)

पीना (२)-(सं० पीडन)-तिल की खरी, निःसार भोजन । उ० बाहु पीन पाँवरनि पीना खाहू पेखि हैं । (गी० १। ३३)

पीपर-(सं० पिप्पल)-पीपल का वृक्ष । उ० पीपर पात सरिस मनु डोला । (मा० २।४५।२)

पीय (२)-(सं० प्रिय)-१. पति, भर्तार, स्वामी, २. प्यारा, प्रिय । उ० १. हौं किए कहौं सौंहि सौँची सीयपीय की । (वि० २६३)

पीयूष-(सं०)-१. अमृत, २. दूध, ३. पानी । उ० १. नाम प्रेम-पीयूष-हृद तिनहुँ किए मन मीन । (दो० ३०)

पीर-(सं० पीडा)-१. पीडा, दर्द, २. सहानुभूति, हमदर्दी । उ० १. रावन धीर न पीर गनी । (क० ६।५१) २. काहू तो न पीर रघुबीर दीन जन की । (वि० ७५)

पीरा (१)-(सं० पीडन)-१. दे० 'पीडा' । २. पीडा पहुँचाया, पीडा पहुँचाते हैं । उ० २. नर सरीर धरि जे पर पीरा । (मा० ७।४१।२)

पीरा (२)-(सं० पीत)-पीला, पीतवर्ण ।

पील-(फा०)-हाथी, गज, गजेंद्र । उ० पील-उद्धरन सील सिंधु डील देखियत । (वि० २४८)

पीवर-(सं०)-मोटा, स्थूल, सगढ़ा, बलिष्ट । उ० तनु बिसाल पीवर अधिकाई । (मा० १।१५।६।४)

पीसत-(सं० पेषणे)-१. रगड़ता है, पीसता है, २. कुचलता है, चूर-चूर करता है । उ० १. पीसत दौत गए रिस रते । (वि० २४१)

पुंग-(सं० पूग)-सुपारी ।

पुंगव-(सं०)-१. बैल, २. श्रेष्ठ, प्रधान, बड़ा । उ० २. ब्यास आदि कवि पुंगव नाना । (मा० १।१४।१)

पुंगीफल-(सं० पूगी)-सुपारी, कलैली । उ० जातुधान पुंगीफल जव तिल धान हैं । (क० ५।७)

पुंज-(सं०)-ढेर, समूह, राशि । उ० परम पावन पापपुंज-मुंजाटवी-अनल-हव निमिप-निर्मूलकर्ता । (वि० ५५)

पुंजा-दे० 'पुंज' । उ० तुरत उठाए करुनापुंजा । (मा० १।१४।५)

पुंजी-पूँजी, धन, राशि । उ० तुलसी सो सब भाँति परम-हित पुंजी मान ते प्यारो । (वि० १७४)

पुंडरीक-(सं०)-१. कमल, २. सफ़ेद कमल, ३. बाघ, शेर, ४. अग्नि, ५. अश्लोक के दिग्गज का नाम, ६. सफ़ेद रंग का हाथी । उ० १. शंकर-हृदि-पुंडरीक निसि बस हरि चंचरीक । (गी० ७।३)

पुकार-(?))-१. हाँक, डेर, बुलाना, २. गोहार, हुली होकर बुलाना, सहायता के लिए बुलाना, ३. ललकार । उ० २.

एकहि एक न देखई जहँ तहँ करहि पुकार । (मा० ६।४६) पुकारत-(?))-१. पुकारते हैं, बुलाते हैं, २. दोहाई देते हैं, हाय हाय करते हैं, ३. ललकारते हैं, ४. घोषणा करते हैं । उ० ४. वेद पुरान पुकारत, कहत पुरारि । (ब० ५६)

पुकारहीं-पुकारते हैं । उ० धरि केस नारि नारि बाहेर तेति दीन पुकारहीं । (मा० ६।८५। छं० १) पुकारा-क. दे० 'पुकार' । ख. १. बुलाया, डेरा, २. ललकारा । उ० क २.

कहँ पाह्य प्रभु करिअ पुकारा । (मा० १।१८५।१) ख. २. अर्थराति पुर द्वार पुकारा । (मा० ४।६।२) पुकारि-पुकार कर, चिल्लाकर । उ० बार बार कहौं मैं पुकारि दाढ़ीजार सौं । (क० ५।११) पुकारी-पुकारा, बुलाया । उ० राम

राम सिय लखन पुकारी । (मा० २।१४२।४) पुकारे-१. पुकारा, बुलाया, डेरा, २. पुकारने पर, बुलाने पर, डेरने पर । उ० २. मढ़े से सवन नहि सुनति पुकारे । (गी० ५।१८) पुकारेसि-पुकारा । उ० परेउ भूमि जय राम पुका-

रेसि । (मा० ६।११।४) पुजाइ-(सं० पूजा)-पूजा लेकर, आराधना कराकर । पुजाइबे-पूजा कराने, पुजवाने । उ० बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि । (वि० १५८) पुजाइये-१. पूजा कराइए, आराधना कराइए, पुजावन-पूजा कराने । पुजावहिं-पुजाते हैं, पुजवाते हैं । उ० ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं । (मा० ७।१०।४)

पुट-(सं०)-१. आच्छादन, आवरण, २. मध्य, ३. चूर्ण, ४. कमल, ५. पेपण, ६. औषधि पकाने का पात्र, ७. मिलाव, मिश्रण, ८. दोना, कटोरा, ९. अँगुली, १०. चोड़े की टाप, ११. मियान, १२. युगल, दौ । उ० १२. पुट सूखि गए मधुराधर वै । (क० २।११) पुटन्हि-पुटों में । उ० श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहि अघात मति धीर । (मा० ७।५२ ख)

पुटपाक-(सं०)-पत्ते के दोने में रखकर औषधि पकाने का विधान । उ० जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप । (क० ५.२५)

पुटी-पुटी का बहुवचन । दे० 'पुटी' । उ० १. भरि भरि परन पुटीं रचि रुरीं । (मा० २।२५०।१) पुटी-(सं० पुट)-१. छोटा दोना, पत्ते का छोटा पात्र, २. आच्छादन, आवरण, ३. कौपीन, लँगोटी ।

पुण्य-दे० 'पुण्य' । पुण्यस्वरूप । उ० पुण्य पापहरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्तिप्रदं । (मा० ७ का अंतिम श्लोक) पुण्य-(सं०)-१. धर्म, धर्म का कार्य, २. शुभ, ३. पवित्र, ४. सुंदर ।

पुण्यभूमि-(सं०)-आर्यावर्त्त देश । पुण्यश्लोक-(सं०)-जिसका सुंदर चरित्र या यश हो । पुण्यात्मा ।

पुतरि-पुतली । उ० नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई । (मा० २।५६।१)

पुतरिका-(सं० पुत्तलिका)-पुतली, कठपुतली । पुतोहू-दे० 'पतोहू' । उ० होहु राम सिय पूत पुतोहू । (मा० २।१५।४)

पुत्र-(सं०)-आत्मज, लड़का, सुत, बेटा । उ० राम अनुग्रह पुत्रफल, होइहि सगुन बिसेष । (प्र० ४।४।४)

पुत्रजागु-(सं० पुत्रयज्ञ)-पुत्र प्राप्त्यर्थं किया गया यज्ञ ।
 उ० पुत्रजागु करवाइ ऋषि, राजहि दीन्ह प्रसाद । (प्र०
 १।२।५)
 पुत्रबधू-(सं० पुत्रवधू)-पतोहू । उ० मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय
 पाई । (मा० २।५।११)
 पुत्रवती-पुत्रवाली । उ० पुत्रवती जुवती जग सोई । (मा०
 २।७।११)
 पुत्रि-हे पुत्री ! उ० पुत्रि ! न सोचिए आई हौं जनक-गृह
 जिय जानि । (गी० ७।३२)
 पुत्रिका-(सं०)-१. पुतली, कटपुतली, २. बेटी, पुत्री,
 लक्ष्मी, ३. स्त्री की तसवीर । उ० १. बिटप मध्य पुत्रिका
 सूत्र महँ कंचुक बिनहि बनाए । (वि० १२४)
 पुन-(सं० पुनर्)-१. फिर, पुनः, दोबारा, २. बाद, पीछे,
 अनंतर ।
 पुनि-दे० 'पुन' । उ० १. पुनि फिरि राम निकट सो आई ।
 (मा० ३।१७।६) २. तुलसिदास यह अवसर बीते का
 पुनि के पछिताए ? (वि० २०१)
 पुनी (१)-(सं० पुनर्)-पुनः, फिर । उ० राम को कहाय
 दास दगाबाज पुनी सो । (क० ७।७२)
 पुनी (२)-(सं० पुण्य)-१. पुण्य कार्य, पवित्र काम, २.
 पवित्र, शुद्ध, ३. पुण्यात्मा । उ० ३. सब निदंभ धर्मरत
 पुनी । (मा० ७।२१।४)
 पुनी (३)-(सं० पूर्णिमा)-पूर्णिमा । शुक्लपक्ष का १५वाँ
 दिन ।
 पुनीत-दे० 'पुनीत' । पुनीत-(सं०)-पवित्र, पाक, शुद्ध ।
 उ० ग्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो । (वि० २६४)
 पुनीतता-पवित्रता, निर्मलता । उ० प्रभु की पुनीतता
 आपनी छोटाई छोटी । (वि० २६२)
 पुनीता-दे० 'पुनीत' । उ० रूपरासि पति प्रेम पुनीता ।
 (मा० २।५।११)
 पुन्य-दे० 'पुण्य' । उ० १. जहु कन्या धन्य, पुन्य कृत सगर
 सुत, भूधर-द्रोनि-विहरनि बहुनामिनी । (वि० १८) ३.
 बन्धो अधिक पर्यो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच । (दो०
 ३०२)
 पुन्यसिलोक-दे० 'पुण्यरलोक' । उ० पुन्यसिलोक तात
 तर तोरें । (मा० २।२६।३)
 पुरंगिनी-(सं० पुर + रंगिनी)-गाँव की स्त्रियाँ । उ० बर
 बिहार धरन चारु पाँदर चंपक चनार करनहार बार पार
 पुर पुरंगिनी । (गी० २।४३)
 पुरंदर-(सं०)-ईंद्र । उ० नीच निसाचर बैरी को बंधु
 बिभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो । (क० ७।४)
 पुर (१)-(सं०)-१. नगर, शहर, कसबा, २. एक राक्षस,
 जिसका शंकर ने संहार किया था, ३. पूरा, छोटी बस्ती,
 ४. शरीर, ५. घर, मकान, ६. लोक, भुवन, ७. दुर्ग, किला,
 ८. कोठा, अड्डालिका, ९. नक्षत्र, १०. ढेर, राशि । उ०
 २. मयनमहन पुरदहन गहन जानि । (क० १।१०)
 पुरइ (१)-नगरी में, नगरी को । उ० नृप जोबन छबि
 पुरइ चहत जनु आवन । (जा० ६६)
 पुर (२)-पूर्व)-भरा पूरा, पूर्ण ।
 पुरइ (२)-(सं० पूर्ण)-पूरा कर के । पुरइहि-पूरा करेगा ।

उ० सो पुरइहि जगदीस पैज पन राखिहि । (जा० ७६)
 पुरई-पूर्ण किया, पूरी की । उ० हौं बलि बलि गई पुरई
 मंजु मनोरथ मोरि । (गी० ३।१७) पुरउब-पूरा करेंगे, पूर्ण
 करेंगे, पूरा कहेंगा । उ० पुरउब मैं अभिलाप तुम्हारा ।
 (मा० १।१५२।३) पुरउवि-पूरा कीजिएगा । उ० मातु
 मनोरथ पुरउबि मोरी । (मा० २।१०।३१) पुरब-पूरा
 करेगा, पूरा कर दे । उ० जौं बिधि पुरब मनोरथु काली ।
 (मा० २।२३।२) पुरवइ-पूरी करेगा । पुरवहु-पूरा करो,
 पुजा दो, भर दो । उ० होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ
 मोरि । (मा० १।१४४) पुरवै-दे० 'पुरवइ' । उ० तुलसि-
 दास लालसा दरस की सोइ पुरवै जेहि आनि देखाए ।
 (गी० २।३५)
 पुरइनि-(सं० पुटकिनी)-१. कमल का पत्ता, २. कमल,
 ३. कमल की बेल । उ० १. पुरइनि सघन चारु चौपाई ।
 (मा० १।३।२)
 पुरजन-पुरवासी, गाँव या नगर के लोग । उ० प्रभु अलु-
 राग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे । (गी०
 २।७६)
 पुरट-(सं०)-सोना, सुवर्ण । उ० मनहुँ पुरट-संपुट लसत,
 तुलसी ललित ललाम । (दो० ७)
 पुरदहन-तीनों पुरों (लोकों) या त्रिपुरासुर का संहार करने-
 वाले, शिव । उ० मयनदह पुरदहन गहन जानि । (क०
 १।१०)
 पुरहुत-(सं० परहुत)-ईंद्र ।
 पुरा-(सं०)-पहले का, प्राचीन काल का । उ० यह संघट्ट
 तब हो जब पुन्य पुराकृत भूरि । (मा० १।२२२) पुरा-
 कृत-पहले का किया हुआ, पूर्व जन्म का किया हुआ ।
 उ० दे० 'पुरा' ।
 पुराइ-(सं० पूर्ण)-१. पुरवाकर, सजाकर, २. पुरवाए,
 सजवाए । पुराई-पुरवाया, बनवाया । उ० चौकें भाँति
 अनेक पुराई । (मा० १।२८।४)
 पुराण-(सं०)-१. प्राचीन, पुरातन, २. हिंदुओं के धर्म संबंधी
 कथाओं के ग्रंथ जिनमें सृष्टि, लय तथा प्राचीन मुनियों
 और राजाओं के वृत्तांत हैं । पुराण दो प्रकार के हैं, एक
 तो पुराण और दूसरे उपपुराण । पुराणों की संख्या १८
 और उपपुराणों की कुछ मतों से १८ और कुछ मतों से
 १८ से ऊपर है । उ० नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्
 (मा० १।१०।७)
 पुराणपुरुष-विष्णु, भगवान ।
 पुरातन-(सं०)-पुराना, प्राचीन । उ० अस्थि पुरातन
 छुधित स्वान अति ज्यों भरि मुख पकरयो । (वि० ६२)
 पुरान-(सं० पुराण)-१. प्राचीन, पुराना, २. पुराण, १८
 पुराण दे० 'पुराण', ३. अनादि । उ० २. पुरान-प्रसिद्ध
 सुन्यो जसु मैं । (क० ७।३८) पुराननि-पुराणों में । दे०
 'पुराण' । उ० बहु मत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ-तहाँ
 भगरो सो । (वि० १।७३) पुरानन्ह-पुराणों ने । उ० लव
 कुस बेद पुरानन्ह गाए । (मा० ७।२५।३)
 पुराना-(सं० पुराण)-१. प्राचीन, पहले का, २. जीर्ण-शीर्ष
 ३. परिपक्व, ४. अनुभवी, ५. १८ पुराण आदि । उ०
 १. परमानंद परेस पुराना । (मा० १।११।६) पुरानी-

दे० 'पुरानि' । उ० सुनु सुनिकथा पुनीत पुरानी । (मा० ११३३११) पुराने-प्राचीन ।

पुरानि-(सं० पुराण)-प्राचीन, पुरानी । उ० जाइ अनत सुनाइ मधुकर ज्ञानगिरा पुरानि । (कृ० २२)

पुरारि-(सं०)-तीनों पुरों या त्रिपुरासुर के शत्रु शंकर, महादेव । उ० दूट्यौ मानों बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है । (क० १११०)

पुरारी-दे० 'पुरारि' । उ० जेहि पर कृपा न करहि पुरारी । (मा० ११३३५५)

पुरं-दे० 'पुरी' ।

पुरिन-पुरियों में, पवित्र नगरों में । उ० सुर-सदननि तीरथ, पुरिन, निपट कुचालि कुसाज । (दो० २५८) पुरिहि-पुरी को, पुरी में । उ० अपनी बीसी आपुही पुरिहि लगाये हाथ । (दो० २४०) पुरी-(सं० पुरी)-१. नगरी, पत्तन, शहर, २. जगन्नाथ पुरी, ३. गोसाइयों की एक उपाधि । उ० बंदुँ अच्युपुरी अति पावनि । (मा० ११३३११)

पुरीष-(सं०)-विष्ठा, मल, मैला । उ० सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत्त सोवहि । (वि० १३६)

पुरु-(सं०)-एक राजा जो ययाति के पुत्र थे ।

पुरुष-दे० 'पुरुषा' ।

पुरुखा-दे० 'पुरुषा' । उ० पुरुखा ते सेवक भए, हर ते मे हनुमान । (दो० १४४)

पुरुष-(सं०)-१. मनुष्य, आदमी, २. आत्मा, जीव, ३. विष्णु, ४. सूर्य, ५. शिव, ६. पति, स्वामी, ७. पारा, ८. पुरखा, पूर्व पुरुष । उ० १. पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी । (मा० ६३३४७) ३. पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट परावर नाथ । (मा० ११३१) ८. सो सट्टु कोटिक पुरुष समेता । (मा० २१३८४४) पुरुषहि-पुरुष को । उ० जिमि पुरुषहि अलुसर परिछाहीं । (मा० २१३४१३)

पुरुषा-(सं० पुरुष)-पुरखा, पूर्व पुरुष ।

पुरुषारथ-दे० 'पुरुषार्थ' । उ० १. वेद पुरान प्रगट पुरुषारथ, सकल सुभट-सिरमोर को । (वि० ३१)

पुरुषारथु-दे० 'पुरुषार्थ' । उ० ४. मोर तुम्हार परम पुरुषारथु । (मा० २३१२१२)

पुरुषार्थ-(सं०)-१. परिश्रम, उद्यम, उद्योग, पराक्रम, पौरुष, २. साहस, हिम्मत, ३. पुरुष का प्रयोजन, ४. चार पुरुषार्थ-अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ।

पुरुषोत्तम-(सं०)-१. राम, २. विष्णु, ३. मलमास का महीना, ४. उत्तम व्यक्ति ।

पुरोडास-(सं० पुरोडाश)-जौ के आटे की बनी टिकिया जिसकी यज्ञों में आहुति दी जाती है । उ० पुरोडास चह रासभ खावा । (मा० ३१२६३)

पुरोध-दे० 'पुरोधा' ।

पुरोध-सं० पुरोधस्-पुरोहित, कुलगुरु, यज्ञ करानेवाला । उ० हंस बंस गुर जनक पुरोध । (मा० २१२७५१)

पुलक-(सं०)-प्रेममय या हर्ष आदि के उद्देश से रोम कूपों का प्रफुल्ल होना, रोमांच । उ० मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ । (वि० १००)

पुलकत-१. पुलकते हैं, २. पुलकते हुए । उ० २. पुनि-पुनि पुलकत कृपानिकेता । (मा० ११२०१२) पुलकहि-रोमांचित

होते हैं । उ० ब्रह्मि स्वहि पुलकहि नहीं तुलसी सुमिरत राम । (दो० ४१) पुलकाहीं-पुलकित होते हैं, प्रसन्न होते हैं । उ० कहत सुनत हरषहिपु लकाहीं । (मा० ११४१३३)

पुलकि-रोमांचित होकर, प्रसन्न होकर । उ० परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परी । (जा० १८६) पुलके-पुलकित हो गए, प्रसन्न हो गए । उ० आयसु देइअ हरषि दिह्ये कहि पुलके प्रसु गात । (मा० २१४५) पुलकेउ-पुलकित हो गए, प्रसन्न हुए । उ० सजल नयन पुलकेउ सुनिराज । (मा० २१७११४)

पुलकित-हर्षित, रोमांचयुक्त । उ० पुलकित तनु आनंदघन छन-छन मन हरपै । (कृ० १)

पुलकालि-पुलकावली, हर्ष या भय से प्रफुल्ल रोमावलि । उ० बीज राम-गुनगन, नयन जल, अकुर पुलकालि । (दो० २६८)

पुलकावलि-हर्ष या भय आदि से प्रफुल्ल रोमावलि । उ० अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई । (मा० १३१८४०१)

पुलस्ति-दे० 'पुलस्त्थ' । उ० रिपि पुलस्ति जसु विमल मयंका । (मा० २१२३११)

पुलस्त्थ-(सं०)-एक ऋषि जिनकी गणना प्रजापतियों और सप्तर्षियों में होती है ।

पुष्कर-(सं०)-एक तीर्थ जो अजमेर के पास है । उ० तुलसी पुष्कर-जग्य कर चरन-पांसु इच्छंत । (सं० २२६)

पुष्ट-(सं०)-पाला हुआ, मोटा ताजा, बड़, प्रोढ़, मज़बूत, सामर्थ्यवान । उ० सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका कंबु कंठ सोभा मन मानति । (गी० ७११७)

पुष्पक-(सं०)-कुबेर का विमान जिसे रावण ने छीन कर लंका पुरी में रक्खा था । राम ने रावण को मारने के बाद अयोध्या आने में इसका उपयोग किया और फिर इसे कुबेर को लौटा दिया । उ० पुष्पक जान जीति लै आवा । (मा० ११७६१४) पुष्पकहि-पुष्पक विमान से । उ० उत्तरि कहेउ प्रसु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहि जाहु । (मा० ७१४ख)

पुष्कर-दे० 'पुष्कर' ।

पुहुप-(सं० पुष्प)-फूल, सुमन । उ० अतिसय पुहुप क माल राम-उर सोहइ हो । (रा० १४)

पुहुमि-दे० 'पुहुमी' । उ० पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी । (मा० २३१३१४)

पुहुमी-(सं० भूमि)-पृथ्वी, धरती । उ० तुलसी परबस हाइ पर परिहै पुहुमी नीर । (दो० ३०१)

पूंग-दे० 'पूंग' ।

पूँछुँ-(सं० पूच्छण)-पूछता हूँ, प्रश्न करता हूँ । उ० एक बात प्रसु पूँछुँ तोही । (मा० ७१११५४) पूँछत-१. पूछते हैं, प्रश्न करते हैं । २. पूछते, पूछते समय । उ० दे० पूँछेहु, पूँछति-पूछती है । उ० सादर पुनि पुनि पूँछति ओही । (मा० २१७७१) पूँछन-पूछने, पूछने के लिए । पूँछब-पूछेगा । पूँछहि-पूछते हैं । पूँछहुँ-पूछूँ । पूँछहु-पूछो । पूँछा-पूछा, प्रश्न किया । पूँछि-१. पूछकर, २. पूछ । उ० १. चहुँ विसि चितह पूँछि माली गन । (मा० ११२२५१) २. भरत कुसल पूँछि न

सकहिं भय बिबाद मन माहिं । (मा० २।१२८) पूँछिय-
१. पूछे, २. पूछिय । पूँछिहहि-पूँछेंगे । उ० धाह पूँछिहहि
मोहि जब बिकल नगर नर नारि । (मा० २।१४२) पूँछिहहि-
पूछेगा । पूँछिहि-पूछेगा । पूँछिहु-पूछा । उ० पूँछिहु नाथ
राम कटकाई । (मा० २।२४३) पूँछी-पूछा । पूँछे-पूछे हुए ।
उ० मैं सबु कीन्ह तोहि बिन पूँछे । (मा० २।३२।१) पूँछे-
पूछा, पूछा था । पूँछेउ-पूछा । उ० पूँछेउ गुनिन्ह रेख
तिन्ह खाँची । (मा० २।२१।४) पूँछेउ-पूछा । पूँछेसि-
१. पूछा, २. पूछना । पूँछेहु-पूछा, प्रश्न किया । उ०
पूँछेहु मोहि कि रहैं कहैं मैं पूँछत सकुचाउँ । (मा० २।
१२७) पूँछेहु-दे० 'पूँछेहु' ।

पूँजी-(सं० पुंज)-संचित धन या वस्तु, संपत्ति, रूपया-
पैसा । उ० पूँजी बिनु बाढ़ी सई । (गी० २।३७)

पूग-(सं०)-१. सुपारी, कसैली, २. समूह, ढेर, पुंज ।
उ० १. सफल रसाल पूगफल केरा । (मा० २।६।३) २.
मोहांभोधर पूग पाटन विधौ त्वःसंभवं शकरं । (मा० ३।
१। श्लो० १) पूगफल-(सं०)-सुपारी का फल, सुपारी,
कसैली । उ० सफल पूगफल कदलि रसाला । (मा०
१।३४।४)

पूगनि-(सं० पूयते)-पूरा होने, पूरने । उ० काज जुग
पूगनि को करतल पल भो । (ह० ६)

पूगुन-'पू' जिनके आदि में हो ऐसे ३ नक्षत्र । पूर्वा फाल्गुनी,
पूर्वाषाढ़ और, पूर्वा भाद्र पद । उ० उगुन पूगुन वि अज
कूम, आ भ अ मू गुनु साथ । (दो० ४२७)

पूछ-(सं० पुच्छ)-जानवरों आदि के शरीर के पीछे
का अंतिम भाग, हुम, लांगूल, पूँछ । उ० पूछ सों
प्रेम, विरोध सींग सों, यहि बिचार हित हानी । (कृ०
४६)

पूछउ-(सं० पुच्छ)-पूँछ, पूछता हूँ । पूछत-पूछते, पूछते हैं ।
उ० माथ नाह पूछत अस भयऊ । (मा० ४।१।३) पूछति-
पूछती है । पूछन-पूछने । पूछव-पूछगा । पूछहिं-पूछते
हैं । पूछहु-पूछो, प्रश्न करो । पूछा-प्रश्न किया, दरि-
याप्रत किया । उ० पूछा सिवहि समेत सकोचा । (मा०
१।२७।३) पूछि-पूछकर, प्रश्न कर । पूछिअ-पूछ रहे हैं,
पूछते हो । उ० जानत हूँ पूछिअ कस स्वामी । (मा० ३।
६।४) पूछिये-प्रश्न कीजिए, पूछो । पूछिहहि-पूछेंगे, प्रश्न
करेंगे । पूछिहहि-पूछेगा । पूछिहि-पूछेगी, पूछेगी । उ०
पूछिहि जबाहि लखन महतारी । (मा० २।१४६।१)
पूछिहैं-पूछेंगे । पूछिहै-पूछेगा । उ० हमैं पूछिहै कौन ?
(दो० ४६४) पूछी-पूछा, प्रश्न किया । पूछु-पूछो, प्रश्न
करो । पूछे-प्रश्न किये । पूछेसि-पूछा । उ० पूछेसि लोगन्ह
काह उछाहु । (मा० २।१३।१) पूछेहु-पूछना, प्रश्न करना ।
पूछेहु-दे० 'पूछेहु' ।

पूजइ-(सं० पूजा)-पूजेगी, पूजा करेगी । पूजत-१. पूजते,
पूजते हैं, २. पूजते समय, पूजते हुए । उ० १. गिरिवर
मैना मुदित मुनिहि पूजत भए । (फा० १।१) पूजहिं (१)-
(सं० पूजा)-पूजती है, आराधना करती था करते हैं । उ०
सिद्ध सची सारद पूजहिं । (वि० २२) पूजहु-पूजा करो ।
पूजि (१)-(सं० पूजा)-पूजा करके, आराधना करके । उ०
वेबि पूजि पदकमल गुन्हारे । (मा० १।२३६।१) पूजिअ-

पूजना चाहिए । उ० पूजिअ विप्र सील गुन हीना । (मा०
३।३४।१) पूजिअत-पूजे जाते हैं । उ० प्रथम पूजिअत
नाम प्रभाऊ । (मा० १।१६।२) पूजिअहिं-पूजते हैं । उ०
बेष प्रताप पूजिअहि तेऊ । (मा० १।७०।३) पूजिबे-पूजा
करने । उ० दे० 'पूजाइबे' । पूजिवो-पूजना, सेवा या पूजा
करना । पूजिये-पूजा कीजिए । उ० देव, पितर, ग्रह पूजि के
तुला तौलिए ची के । (गी० १।१२) पूजिहि (१)-पूजा
करेगा । पूजिहैं (१)-पूजा करेंगे । पूजी (१)-(सं० पूजा)-
पूजन किया । पूजी (१)-(सं० पूजा)-१. पूजा, पूजन
किया, २. सम्मान किया । उ० २. तेहि सराहि बानी
फुरि पूजी । (मा० २।२२।३) पूजै-पूजा करके, पूजने
पर । उ० सबु पायउ रज पाबनि पूजै । (मा० २।३।३)
पूजे-पूजन किया । उ० पूजे देव पितर सब राम-उदय
कहैं । (जा० २।१३) पूजेउ-पूजा, पूजन किया । उ० मुनि
अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि । (मा० १।१००)
पूजेहु-पूजा की । उ० सिव बिरचि पूजेहु बहु भाँती ।
(मा० ६।२०।२) पूजै (१)-(सं० पूजा)-पूज, पूजा करे ।
पूजै (१)-(सं० पूजा)-पूजा करे ।

पूजक-पूजा करनेवाला । उ० जापक पूजक पेखियत, सहत
निरादर भार । (दो० ३६३)

पूजन-अर्चन, आराधना, पूजा । उ० गिरिजा पूजन जननि
पठाई । (मा० १।२२।१)

पूजनीय-(सं०)-पूजा के योग्य, पूज्य । उ० पूजनीय प्रिय
परम जहाँ तैं । (मा० २।७४)

पूजहिं (२)-(सं० पूयते)-पूरी होती हैं । पूजहि-१. पूरा
हो, २. पूरी होगी । उ० २. पूजहि मन अमिलाष ।
(दो० ४६०) पूजा (१)-(सं० पूयते)-पूरा हुआ ।
पूजि (२)-(सं० पूयते)-पूरी हो । उ० ताकी पैज पूजि
आई यह रेखा कुलिस पूषान की । (वि० ३०) पूजिहि
(२)-पूरी होगी, पूर्य होगी । उ० तौ हमार पूजिहि
अमिलाषा । (मा० १।१४।४) पूजिहैं (२)-पूरे होंगे ।
उ० मेरे पासगहु न पूजिहैं । पूजी (२)-(सं० पूयते)-पूरी
हुई । उ० पूजी सकल बासना जी को । (मा० १।३२।१।१)
पूजी (३)-(सं० पूयते)-पूरी हुई, पूर्य हो गई । पूजै
(२)-दे० 'पूजै (२)' । पूजै (२)-(सं० पूयते)-बराबरी
करते हैं । उ० धन-धाम निकर, करनि हू न पूजै कैं ।
(क० ७।१६३) पूजो (१)-(सं० पूयते)-पूरा पदा, पूजा ।
पूज्यो-पूरा हुआ, पूजा । उ० दूब्यो धनुष, मनोरथ
पूज्यौ । (गी० १।६६)

पूजा-पूजा को । उ० न जानामि योगं जपं नैव पूजां ।
(मा० ७।१०।८।८) पूजा (२)-(सं०)-१. अर्चना,
आराधना, उपासना, २. सम्मान, सत्कार । उ० १. करि
पूजा मुनि सुजसु बखानी । (मा० १।४२।३)

पूजाइबे-पूजाने, पूजवाने, पूजा कराने । उ० बहुत प्रीति
पूजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि । (वि० १२८)

पूजि (३)-(सं० पुज्य)-पूज्य, माननीय, पूजनीय । उ० पाप
हरे परिताप हरे, तन पूजि भो सीतल सीतलताई । (क०
७।२८)

पूजित-(सं०)-अर्चित, आराधित, जिसकी पूजा की गई
हो । पूजे हुए । उ० पूजित कलिजुग माहिं । (दो० १२)

पूजो (२)-(सं० पूजा)-पूजा, आराधना, अर्चना। उ० कूर कुजाति कुपुल अघी सब की सुधरे जो करै नर पूजो। (क० ७।५)

पूज्य-(सं०)-पूजा के योग्य। उ० अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। (मा० १।३२।४)

पूत (१)-(सं० पुत्र)-लड़का, बेटा। पूतऊ-पुत्र भी। उ० छोटे और बड़े पूतऊ अनेरे सब। (क० ५।११)

पूत (२)-(सं०)-पवित्र, शुद्ध। उ० यत्र संभूत अति पूत जल सुरसरी। (वि० २५)

पूतना-(सं०)-१. एक दानवी जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिए भेजा था। यह अपने स्तनों में विष लगाकर बाल कृष्ण को दूध पिलाने गई पर कृष्ण का कुछ न हुआ और उन्होंने इसका सारा दूध खींच लिया और यह मर गई। ३. बालकों का एक रोग। उ० १. पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत। (वि० १६)

पूतरा-मर्द पुतली, गुह्या। सु० पूतरा बाँधिहै-निंदा करेगे। उ० अब तुझसी पूतरो बाँधिहै सहि न जात मो पै परिहास पते। (वि० २४१) पूतरि-दे० 'पूतरी'। उ० २. करौं तोहि चख पूतरि आली। (मा० २।२३।२) पूतरी-(सं० पुतलिका)-१. काठ या कपड़े की पुतली, २. आँख की पुतली।

पूतरो-पुतला, गुह्या। काठ या कपड़े का आदमी। उ० दे० 'पुतरा'।

पूति-(सं०)-१. पवित्रता, शुद्धता, २. दुर्गंध, बदबू।

पूतु-दे० 'पूत (१)। उ० पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। (मा० २।१४।३)

पूनों-(सं० पूर्णिमा)-पूर्णमासी, शुक्ल पक्ष की १५ वीं तिथि। उ० पूनों प्रेम भगति-रस हरिरस जानहि दास। (वि० २०३)

पूप-(सं०)-पूआ, मालपूआ। उ० चलउँ भागि तब पूप देखावहि। (मा० ७।७।५)

पूय-(सं०)-पीप, मवाद। उ० विथ्या पूय रुधिर कच हावा। (मा० ६।५२।२)

पूर-(सं० पूर्ण)-१. पूरा, संपूर्ण, २. भरा हुआ, ३. वह पदार्थ जो किसी पकवान के भीतर भरा जाय। ४. अधिक, ज्यादा, पूरे, ५. पूरा हो। उ० १. देखि पूर बिधु बाइह जोई। (मा० १।८।७) २. कल केयूर पूर-कंचन-मनि। (गी० ७।१७)

पूरक-(सं०)-पूर करनेवाला, भरनेवाला।

पूरण-(सं० पूर्ण)-१. भरा हुआ, पूरा २. पूरा करनेवाला, ३. समाप्त, खतम, ४. सब, ५. पूर्ण करने की क्रिया, समाप्त करने का भाव, ६. पुल, ७. सफल।

पूरत-(सं० पूर्ति)-पूरा करता है, पूरा पड़ता है। पूरति-१. पूर्ण कर देती, २. भर देती है। उ० १. तुलसिदास बड़े भाग मन लागेहुतें सब सुख पूरति। (क० २८) २. पुलक तन पूरति। (पा० ७६) पूरहि-१. भर दें, पूरा कर दें, पाट दें, २. भर देंगे, पाट देंगे। उ० १. पूरहि नत भरि कुहर बिसाला। (मा० ५।५५।३) पूरि-१. पूरा कर के, पूर्ण कर, २. भरे, ३. समाप्त कर। उ० १. बसन पूरि अरि दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। २. रहे पूरि

सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं। (मा० ६।८२।छं० १) पूर्ी-पूरा, बनाया, भरा। उ० चौकें चारु सुमित्राँ पूर्ी। (मा० २।८।२) पूरे-१. पूर्ण हो गए, भर गए, २. पूर्ण, भरपूर, भरे हुए, ३. बजाया। उ० १. सुनत पुलक पूरे दोउ आता। (मा० १।२६।१) २. सुधि सुगंध-मंगल जल पूरे। (मा० १।३२।४।२) ३. रुरे सँगी पूरे काल कंटक हरत हैं। (क० ७।१५।६) पूरै-बनाते हैं, पूरते हैं। उ० चौकें पूरै चारु कलस ध्वज साजहि। (जा० २०५)

पूरन-दे० 'पूरण'। उ० १. प्रेम परिपूरन हियो। (मा० १।१०।१।छं० १) १. जनु चकोर पूरन ससि लोभा। (मा० १।२०।७।३) ७. देखि राम भए पूरनकामा। (मा० १।३२।३।२) पूरनकामा-दे० 'पूर्णकाम'। उ० देउँ काह तुम्ह पूरनकामा। (मा० ३।३।१।५)

पूरनिहार-पूर्ण करनेवाला। उ० स्याम सुभग सरि जनु मन-काम-पूरनिहार। (गी० ७।८)

पूरब-(सं० पूर्व)-१. पूर्व दिशा, प्राची, प्राची की ओर, २. पहले, पूर्व।

पूरा-पूर्ण, भरा हुआ। उ० मम भुज सागर बल जल पूरा। (मा० ६।२।८।२)

पूरित-भरे हुए। उ० सबकें उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरि। (मा० १।३००)

पूरब-दे० 'पूरब'। उ० १. पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। (मा० १।२२।४।१) २. पूरब भाग मिलाहि। (वै० २४)

पूरष-(सं० पुरुष)-१. पुरुष, बड़े लोग, २. आदमी। उ० २. संसार महँ पूरष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।६०।छं० १)

पूरो-पूरा, पूर्ण। उ० पिय पूरो आयो अब काहि कहु करि रघुबीर-बिरोधु। (गी० ६।१)

पूरोहित-दे० (सं० पुरोहित)-पुरोहित को।

पूर्ण-(सं०)-१. परिपूर्ण, पूरा, अखंडित, २. अभाव, शून्य, जिसे कोई इच्छा न हो, ३. काफ़ी, पर्याप्त, ४. समस्त, संपूर्ण। उ० १. मूलं धर्म तरोविबेकजलधेः पूर्णंदुमानन्ददं। (मा० ३।१।श्लो० १)

पूर्णकाम-(सं०)-जिसकी सारी इच्छाएँ पूर हो चुकी हों।

पूर्व-दे० 'पूर्व'। उ० ३. यत्पूर्व प्रभुणाकृतं सुकविना श्री शंभुना दुर्गमं। (मा० ७।१३।१।श्लो० १) पूर्व-(सं०)-१. प्राची, पूरब, २. आगे का, अगला, पुराना, पहले का, ३. पहले।

पूरण-दे० 'पूरण'।

पूरन-(सं० पूरण)-सूर्य, रवि। उ० पूरन-बंस-बिभूषन-पूरन तेज प्रताप गरे अरि-ओरे। (क० ६।५७)

पृथक-(सं० पृथक्)-भिन्न, अलग, जुदा। उ० पृथक-पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। (मा० १।८।३)

पृथुराज-एक राजा का नाम जो वेनु के पुत्र थे और जिन्होंने पृथ्वी को समतल किया। इन्होंने पृथ्वी का दोहन कर औषधियाँ तथा रत्नादि भी निकाले थे। पृथु ने भगवान् का यश सुनने के लिए १० हज़ार कान माँगे थे। उ० पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। (मा० १।४।५)

पृथुल-(सं०)-सहत्, बढ़ा, अति विस्तृत। उ० राम-लपन सिय-पंथि की कथा पृथुल। (गी० २।३७)
 पृथ्वी-(सं०)-पृथिवी, धरती, भूमि। उ० तुलसी ऐसे संत-जन, पृथ्वी ब्रह्म समान। (वै० २७)
 पृष्ठ-(सं०)-१. पीठ, २. पश्चा, पुस्तक आदि का सफ़हा। उ० १. कमठ अति विकठ-तलु, कठिन पृष्ठोपरि अमत मंदर कंडु-सुख मुरारी। (वि० ५२)
 पेशक-(सं० प्रेक्षण)-देखनेवाला, दर्शक। उ० ब्योम विमानि विबुध विलोकत खेलक पेशक छाँह छये। (गी० १। ४३)
 पेखत-(सं० प्रेक्षण)-१. देखता हूँ, देख रहा हूँ, २. देखता है, ३. देखते ही। उ० २. पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीत न आवइ। (पा० ७८) ३. सीता बट पेखत पुनीत होत पातकी। (क० ७।१३८) पेखहु-देखो, दर्शन करो। उ० देखहु पनस रसाल। (दो० ३।५४) पेखा-देखा, अवलोकन किया। उ० भूमि बिबर एक कौतुक पेखा। (मा० ४। २४।३) पेखि-देखकर, अवलोकन कर। उ० लछिमन देखु मोरगन नाचत बारिद पेखि। (मा० ४।१३) पेखिअ-देखिए, देखो। उ० मउजनफल पेखिअ तत काला। (मा० १।३।१) पेखियत-दिखलाई दे रहा है, दिखाई दे रहा है, देखते हैं। पेखी-१. देखकर, २. देखा। उ० १. समर सरोप राम मुखु पेखी। (मा० २।२२।२) पेखु-देख, देखो। उ० सुमुखि ! केस सुदेस सुन्दर सुमन-संजुत पेखु। (गी० ७।६) पेखेउ-देखा, देख लिया। उ० पेखेउ जनम फल भा बियाह, उछाह उमगाहि दस दिसा। (पा० १।४७) पेखन-(सं० प्रेक्षण)-१. इच्छ, देखने की चीज, २. देखने के लिए, देखना, देखने की क्रिया। उ० १. जगु पेखन तुम्ह पेखनिहारे। (मा० २।१२७।१) २. ऋषि तिय तारि स्वयं बर पेखन जनक-नगर पगु धारे। (गी० १।५८) पेखनिहारे-देखनेवाले। दे० 'पेखन'।
 पेखनो-खेल, तमाशा, हश्य। उ० पेखनो सो पेखन चले हैं पुर-नर-नारि। (गी० १।७१)
 पेट-(सं०)-१. उदर, तुंद, शरीर का वह भाग जिसमें पहुँच कर भोजन पचता है, २. गर्भ, हमल। उ० १. पेट की कठिन, जग जीव को जवारह है। (क० ७।६७) पेटै-पेट को। उ० तब लौं उबैने पायँ फिरत पेटै खलाय। (क० ७।१२५)
 पेटक-(सं० पिटारा)-संदूक, पेट्टी। उ० रघुबीर जस-मुकुता बिपुल सब भुवन पट्ट पेटक भरे। (जा० १।१७)
 पेटारी-(सं० पिटक)-बाँस, बेंत या मूँज आदि का बना संदूक। पेटारे-पेटारियाँ, संदूकें। उ० कनक किरिट कोटि, पलंग पेटारे, पीठ कादत कहार सब जरे भरे भारही। (क० ५।२३)
 पेड़-(सं० पिंड)-वृक्ष, दरख्त। उ० पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। (मा० २।१६।१।४)
 पेन्हाई-(दे० 'पन्हाई')-पेन्हावे, बछड़े को पिलाकर या हाथ से छूकर थनों में दूध उतारे। उ० भाव बच्छ सिनु पाइ पेन्हाई। (मा० ७।११७।६)
 पेम-(सं० प्रेम)-प्रीति, स्नेह। उ० का कियो जोग अजा-मिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई। (क० ७।६३)

पेरि-(सं० पीडन)-पीसकर, दबाकर, पेरकर। उ० समर-तैलिक थंन तिल-तिल-तमीचर-निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी। (वि० २५) पेरौ (१)-१. पेर, दबाया, पीसा, २. बहुत सताया, कष्ट दिया। उ० १. भूल्यो सुख कर्म-कोखहुन तिल ज्यों बहु बारनि पेरौ। (वि० १।४३) पेरौ (२)-(सं० प्रेरणा)-१. प्रेरणा की, २. पठाया।
 पेलइहि-(सं० पीडन)-१. त्याग करेंगे, २. टाल देंगे, छोड़ देंगे, ३. मिटा देंगे। पेलि-१. पीछे हटाकर, २. टालकर, धक्का देकर, ३. बलात्, हठात्, जबरदस्ती। उ० १. भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं। (क० ५।१५) २. सुनि पेलि पैठे मधुबन में। (क० ५।३१) ३. कनि केलि पेलि सचिव चले लै ठेलि। (क० ५।८) पेलिहिहि-त्याग करेंगे, टाल देंगे, छोड़ देंगे। उ० भोरेंहुँ भरत न पेलिहिहि मनसहुँ राम रजाइ। (मा० २।२८६) पेली-१. टालकर, हटाकर, २. टाला, हटाया। उ० १. आयहु तात बचन मम पेली। (मा० ३।३०।१)
 पेव (१)-(सं० प्रेम)-प्रेम, प्रीति। उ० दीन्हौं मुदित गिरि-राज जे गिरिजहि पियारी पेव की। (पा० १।४७)
 पेव (२)-(?)-बचपन, दूध पीने का समय।
 पेषया-(सं०)-पीसना, चूर्ण करना।
 पेघत-(सं० प्रेक्षण)-देखते हुए, देखकर। उ० बचन कहे अभिमान के पारथ पेघत सेतु। (दो० ४।४०) पेषन-(सं० प्रेक्षण)-१. निरीक्षण, देखना, २. तमाशा, हश्य। उ० १. वट्ट वेध पेषन पेम पन व्रत नेम ससि सेखर गए। (पा० ४।५) पेषि-देखकर। उ० पेषि पुरुषारथ परखि पन, पेम नेम। (गी० १।६०) पेषिय-१. देखो, २. प्रेक्ष, देखने के योग्य। पेषियत-दे० 'पेखियत'। उ० तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस। (ह० ४।१) पेषिये-देखिए, दर्शन कीजिए। उ० राम-प्रेम-पथ पेषिये दिये विषय तनु पीठि। (दो० ८२) पेषु-देखो।
 पैजनि-दे० 'पैजनी'। उ० कटि किंकिनि, पग पैजनि बाजैं। (गी० १।२८)
 पैजनी-(?)-पाँव का एक गहना, घुँघरू।
 पैत-(सं० पण्डित, प्रा० पण्डित)-१. दाँव में रखा हुआ द्रव्य, जूए पर का दाँव, २. चात, दाँव, बाजी। उ० १. प्रमुदित पुलकि पैत पूरे जनु विधि बस सुबर बरे हैं। (गी० ६।१३) २. माँगे पैत पावन पचारि पातकी प्रचंड। (क० ७।८१)
 पै (१)-(सं० परं)-१. पर, परन्तु, लेकिन, २. निरचय, अवश्य, जरूर, ३. अनंतर, पीछे। उ० १. मन तौ न भरो घर पै भरिया। (क० ७।४६) २. मिलिए पै नाथ रघुनाथ पहिचानि कै। (क० ६।२६)
 पै (२)-(सं० प्रति, प्रा० पडि, पड़)-१. पास, समीप, २. प्रति, और, तरफ़।
 पै (३)-(सं० उपरि)-१. पर, उपर, २. से, द्वारा। उ० १. परम कृपालु जो नृपाल लोक पालन पै। (क० ७।२६) २. तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काह तो पायो न बिये। (गी० १।७)
 पैज-(सं० प्रतिज्ञा)-१. प्रतिज्ञा, प्रण, २. प्रतिद्विधा, होड़। उ० १. ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस

पपान की । (वि० ३०) २. पैज परे प्रह्लादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिये तें । (क० ७१२१)

पैठ-(सं० प्रविष्ट)-पैठे, प्रवेश किया । उ० पैठ भवन रथु राखि दुआरें । (मा० २१४७३) पैठत-१. प्रवेश करते हुए, घुसते हुए, २. प्रवेश करते हैं । उ० १. पैठत नगर सचिव सकुचाई । (मा० २१४७२) पैठहिं-प्रवेश करती हैं, घुसती हैं, भीतर आते हैं । उ० गावत पैठहिं भूप दुआरा । (मा० १११४३२) पैठा-प्रवेश किया । उ० पैठा नगर सुमिरि भगवाना । (मा० १११४३) पैठि-प्रविष्ट होकर, पैठकर, घुसकर । उ० पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि । (वि० ११८) पैठी-घुस गई, घुसी । उ० भागि भवन पैठी अति आसा । (मा० ११६६३) पैठे-१. पैठना, घुसना, २. घुसे, प्रवेश किया । उ० १. चहत सकुच गृहं जनु भजि पैठे । (मा० २१२०६२) पैठेउ-घुसे, प्रवेश किया । उ० चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा । (मा० १११८१) पैठो-प्रविष्ट हुआ, पैठा, घुसा । उ० पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को । (क० १२)

पैठारा-(सं० प्रविष्ट)-प्रवेश करते समय, प्रवेश में । उ० असगुन होहिं नगर पैठारा । (मा० २११८२)

पैन-(सं० पैण)-पैना, तेज । उ० सनमुख सहै बिरह सर पैन । (गी० १२१)

पैना-वे० 'पैन' । उ० सन्मुख हसै गिरा-शर पैना । (वै० ४६) पैनां-तीखी, तेज, तीव्र । उ० कुलगुरु-तिय के मधुर बचन सुनि जनक-ब्रवति मति-पैनी । (गी० ११७६)

पैरत-(सं० पलवन)-१. तैरते हैं, २. तैरते हुए । पैरि-तैरकर, पौर कर । उ० पावत न पैरि पार पैरि-पैरि थाके हैं । (गी० ११६२)

पैसार-(सं० प्रवेश)-पहुँच, प्रवेश ।

पैहहिं-(सं० प्रापण)-पावगे । उ० पैहहिं सुख सुनि सुजन सब । (मा० ११८) पैहहुं-पावगे, प्राप्त करोगे ।

पौछि-(सं० प्रोच्छन)-पौछकर । उ० आँसु पौछि मृदु बचन उचारे । (मा० २१६६२)

पौऊ-(सं० प्रोत)-पिरोना, पिरोओ । उ० परसपर कहैं, सखि ! अनुराग ताग पौऊ । (गी० २१६)

पोख (१)-सने हुए, पोषित । उ० प्रेम-परिहास-पोख-बचन परसपर । (गी० ११६५)

पोखे-(सं० पोषण)-पुष्ट हुए, बली हुए । उ० बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं । (गी० ७१६३)

पोच-(फा० पूच)-१. तुच्छ, छोटा, नीच, घुरा, २. अशक्त, क्षीण, हीन । उ० १. सोचल जनक पोच पेच परि गई है । (गी० ११८४) १. मिटे संकट सोच पोच प्रपंच पाप-निकाय । (वि० २२०)

पोचा-(फा० पूच)-नीच, ओछा । उ० सकल कहहिं दस-कंधर पोचा । (मा० ६१७१४) पोची-ओछी, छोटी । उ० जद्यपि मोतें कै कुमाहु तें हैं आई अति पोची । (गी० २१६५)

पोचु-वे० 'पोच' । उ० १. काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोचु हों । (क० ७१२१)

पोचू-वे० 'पोच' । उ० नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू । (मा० २१२१२)

पोत-(सं०)-१. पशु पक्षी आदि का छोटा बच्चा, २. नाव, जहाज़ । उ० १. रे कपि पोत न बोलु सँभारी । (मा ६। २११) २. बिप्ररूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत । (मा० ७१ क)

पोतक-(सं०)-बालक, बच्चा । उ० जो सब पातक पोतक डाकिनि । (मा० २१३२३)

पोतो-बच्चा । उ० स्वाति-सनेह-सलिल-मुख चाहत चित-चातक को पोतो । (वि० १६१)

पोथा-(सं० पुस्तिका, प्रा० पोथिआ)-पुस्तक, पोथी ।

पोथिन-(सं० पुस्तक)-पोथियों, पुस्तकों । उ० देव-दरस कलिकाल में पोथिन दुरे सभित । (दो० ५५७) पोथिही-पुस्तकों में ही, पोथियों में ही । उ० धरम बरन आख-मनि के पैयत पोथिही पुरान । (वि० १६२) पोथी-पुस्तक, किताब । उ० सुदिन साँस पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम । (प्र० ७१७१)

पोष-(सं०)-१. पोषण, पुष्टि, २. उन्नति, तरक्की, ३. वृद्धि, बढ़ती, ४. संतोष, तुष्टि । उ० १. रसना मंत्री, दसन जन, तोष पोष निज काज । (दो० ५२५)

पोषइ-(सं० पोषण)-पोषण करता है । उ० पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित विवेक । (मा० २१३१५) पोषत-पोषण करता है, पालता है, पुष्ट करता है । उ० राम सुप्रेमहि पोषत पानी । (मा० ११४३२) पोषि-रक्षा करके, पालकर । उ० पोषि तोषि आपि आपने न अवडेरिए । (ह० ३४) पोषिए-पालन कीजिए, रक्षा कीजिए । उ० अब गरीब जन पोषिए, पायबो न हेरो । (वि० १४६) पोषिबे-पालने, रक्षा करने को । उ० सोखिबे कृसानु पोषिबे को हिम भानु भो । (ह० ११) पोषीं-पुष्ट कर दीं । उ० जनु कुमुदिनी कौसुदीं पोषीं । (मा० २११८२) पोषे-१. पुष्ट किए हुए, २. पाले हुए । उ० १. सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे । (मा० ११३४२) २. आपुन नास आपने पोषे । (गी० ११२) पोषेउ-इक किया । उ० जानकी तोषि पोषेउ प्रताप । (गी० ११६)

पोषक-(सं०)-पालन करनेवाला, रक्षक, पुष्टिकर्ता, बढ़ाने-वाला । उ० सखि पोषक सोषक समुक्ति जग जस अपजस दीन्ह । (दो० ३७२)

पोषण-(सं०)-पालन, रक्षण, सहायता, वृद्धि, पुष्टि ।

पोषन-वे० 'पोषण' । उ० विश्व-पोषन-भरन विश्व कारन-करन सरन-तुलसीदास-आसहंता । (वि० ५५)

पोषनिहारा-पालनकर्ता, पालनेवाला । उ० भानु कमल कुल पोषनिहारा । (मा० २१७१४)

पोषरिन-(सं० पुष्कर)-पोषरियों में, छोटे तालाबों में । उ० डोलत बिपुल बिहग बन, पियत पोषरिन बारि । (दो० २६५) पोषरी-पोखरी, तलैया । उ० पोषरी बिसाल बाहुँ, बलि, बारिचर पीर । (ह० २२)

पोसात-(सं० पोषण)-पोसे जाते, पोषण होते, पोष पाते, पुष्ट या पालित होते । उ० बूध दह्योउ माखन डारत हैं हुतो पोसात दान दिन दीबो । (क० ६)

पोसु-(सं० पोषण)-१. पोषण करनेवाले, पालक, २. पोष, पोषण, पालन । उ० १. सीख सिंधु, कृपालु नाथ, अनाथ-आरत पोसु । (वि० १५६) पोसे-पोसा, पालन किया ।

उ० मोसे दोस-कोस पोसे तोसे माय जायो को । (वि० १७६) पोसों-पालन करता हूँ, पालता हूँ । उ० पातकी पामर प्राननि पोसों । (क० ७।१३७) पोसी-१. पालन करो, पालो, पोषण करो, २. पालना, पोषण करना, ३. पालन किया है । उ० २. बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है । (ह० २६) ३. निज दिसि देखि दयानिधि पोसो । (मा० १।२८२)

पोहत-(सं० प्रोत)-१. गूथते हैं, गूहते हैं, २. लगाते हैं, मिलाते हैं । उ० २. तुलसी प्रभु जोहत पोहत चित, सोहत मोहत कोटि मयन । (गी० १।४६) पोहहीं-लगा रहे हों, गूथ रहे हों, पिरो रहे हों । उ० जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुतुद पोहहीं । (मा० ६।६२। छं० १) पोहिअहिं-१. पोहेंगे, पिरोएँगे, २. पिरो । उ० १. जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग । (मा० १।११) पोही-१. पिरो लिया है, २. पिरोकर, गूथकर । उ० १. चारु चित-बनि चतुर लेति चित पोही । (गी० २।१८) पोहैं-पिरो लेते हैं, लगा लेते हैं । उ० कुंचित, कुंडल कल नासिक चित पोहैं । (गी० ७।४)

पौदाए-(सं० प्रलोठन)-खिटा दिए, खेटाए । उ० करि सिंगार पलनाँ पौदाए । (मा० १।२०।१।१)

पौढ़ि-(सं० प्रलोठन)-खेटकर, सोकर । उ० कबहुँ पौढ़ि पय पान करावति । (गी० १।७) पौढ़िये-खेट जाइए, सोइए । उ० पौढ़िये लालन, पालने हौं सुलावौं । (गी० १।१२) पौढ़े-सो रहे, सोए । उ० पौढ़े धरि उर पद जलजाता । (मा० १।२२।४)

पौन-(सं० पवन)-हवा, वायु । उ० पौन के गौनहुँ तें बढि जाते । (क० ७।४४)

पौर-(सं० प्लवन)-पैरकर, तैरकर । उ० तुलसिदास दस पद परसि भवसागर पौ पौर । (स० २।१४) पौरि (१)-तैरकर, पैरकर ।

पौरि (२)-(सं० प्रतोली)-डेवड़ी, देहली, द्वार । उ० हाट, बाट, कोट, भोट, अट्टनि अगार, पौरि । (क० ५।१४)

पौरुष-(सं०)-पुरुषत्व, पुरुषार्थ । उ० धिग धिग तव पौरुष बल आता । (मा० ३।१८।१)

प्याइ-(सं० पा)-पिलाकर, पान करा कर । उ० जे पय प्याइ पोखि कर-पंकज बार बार चुचुकारे । (गी० २।८७)

प्याइहौं-पान कराऊँगा, पिलाऊँगा । उ० रामचंद्र-मुखचंद्र-सुधा-अबि नयन-चकोरनि प्याइहौं । (गी० १।४६)

प्यार-(सं० प्रिय)-सुहबबत, प्रेम ।

प्यारा-प्रेमपान, प्रिय, स्नेही । प्यारी-'प्यारा' का स्त्रीलिंग । उ० प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी । (मा० ७।६२।१)

प्यारे-दे० 'प्यारा' । उ० प्रानहुँ तें प्यारे प्रियतम उपही । (गी० २।३८)

प्यास-(सं० पिपासा)-१. तृषा, जल पीने की इच्छा, २. कामना, लालसा । उ० १. जन कहाइ नाम खेत हौं किए पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-प्रान की । (वि० ४२)

प्यासा-तृषित, जिसे प्यास लगी हो ।

प्र-एक संस्कृत उपसर्ग जो आरंभ, उन्नति, बढ़ा, श्रेष्ठ, प्रधान, मुख्य, अधिक तथा चारों ओर से आदि अर्थों के लिए धातुओं या शब्दों के पूर्व लगता है । 'प्रकृति' में यह

'प्र' उपसर्ग है जिसका अर्थ है 'श्रेष्ठ' कृति या 'बढ़ी' कृति । दे० 'प्रकृति' ।

प्रकट-(सं०)-१. प्रत्यक्ष, स्पष्ट, सामने, जाहिर, २. उत्पन्न, पैदा, आविर्भूत । उ० १. खंग धारावती प्रथम रेखा प्रकट । (वि० ३६)

प्रकर्ष-(सं०)-१. उत्कर्ष, श्रेष्ठता, बढ़ाई, २. अधिकता, बहुतायत ।

प्रकार-(सं०)-१. क्रम, २. रीति, ढंग, युक्ति, तरह, ३. भेद, ४. समानता, बराबरी । उ० २. एहि प्रकार बल मनहि देखाई ! (मा० १।१४।१)

प्रकारा-दे० 'प्रकार' । उ० ३. कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा । (मा० १।६।२)

प्रकाश-दे० 'प्रकाश' । उ० १. कोटि-मदनार्क अगणित प्रकाशम् । (वि० ५६) प्रकाश-(सं०)-१. रोशनी, उजला, दीप्ति, २. प्रकट, स्पष्ट, व्यक्त ।

प्रकाशक-(सं०)-प्रकाश करनेवाला, प्रकट करनेवाला ।

प्रकाशनीय-दे० 'प्रकाश्य' ।

प्रकाशी-१. प्रकाश करनेवाला, जो चमके और प्रकाश करे, २. सूर्य, ३. दीपक, ४. प्रकाश होता था ।

प्रकाश्य-(सं०)-प्रकाश के योग्य, जिसे स्पष्ट किया जाय ।

प्रकास-दे० 'प्रकाश' । उ० १. अब प्रभात प्रगट ज्ञान-भानु के प्रकास । (वि० ७४) २. पाइ उमा अति गोप्य-मपि सज्जन करहि प्रकास । (मा० ७।६६ ख) प्रकासे-प्रकाश से । उ० जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे । (मा० २।३२।२)

प्रकासक-दे० 'प्रकाशक' । उ० जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । (मा० १।११।७।४)

प्रकासति-प्रकाशित कर रही है, प्रकाश कर रही है । उ० सिरसि हेम-हीरक-मानिकमय मुकुट-प्रभा सब भुवन प्रकासति । (गी० ७।१७)

प्रकासा-दे० 'प्रकाश' । उ० १. सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा । (मा० १।२४।२)

प्रकासी-दे० 'प्रकाशी' । उ० बचन नखत अवलीन प्रकासी । (मा० १।२५।१)

प्रकासु-दे० 'प्रकाश' । उ० करत प्रकासु फिरइ फुलवाई । (मा० १।२३।१)

प्रकासु-दे० 'प्रकाश' । उ० १. तहँई दिवसु जहँ भाउ प्रकासु । (मा० २।७।२)

प्रकास्य-दे० 'प्रकाश्य' । उ० जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । (मा० १।११।७।४)

प्रकृति-(सं०)-१. स्वभाव, तासीर, २. स्वभाव, मिजाज, ३. माया, ४. ईश्वरीय शक्ति, वह आदि शक्ति जिसे विश्व में अनेक रूपों में हम देखते हैं । जगत् का मूल बीज । सांख्य में पुरुष के अतिरिक्त केवल प्रकृति का ही अस्तित्व माना गया है । उ० ३. प्रगट परमात्मा प्रकृति-स्वामी । (वि० ४६) ४. प्रकृति, महत्त्व, सब्दादि, गुण, देवता, व्योम, मरुदग्नि अमलांजु, उर्वी । (वि० ५४)

प्रकृष्ट-(सं०)-१. उत्तम, श्रेष्ठ, २. मुख्य । उ० १. प्रचंड प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं । (मा० ७।१०।८)

प्रक्रिया-(सं०)-१. प्रकरण, २. क्रिया, युक्ति, तरीका ।

प्रखर-(सं०)-१. तेज, तीखा, २. घोड़े-हाथी का बख्तर, ३. पैना, धारदार ।

प्रख्यात-(सं०)-मशहूर, विख्यात, नामवर, प्रतिष्ठित ।

प्रगट-दे० 'प्रकट' । उ० १. अब प्रभात प्रगट ज्ञान-भानु के प्रकास । (वि० ७४) २. भूमि-भर-भारह्वर प्रगट पर-मातमा ब्रह्म नररूप धर-भक्त हेतु । (वि० ५२)

प्रगटइ-(सं० प्रकट)-प्रकट होता है । प्रगटउं-प्रकट करता हूँ । उ० अस विचारि प्रगटउं निज मोह । (मा० १।४६।१)

प्रगटत-१. प्रकट होता है, सामने आता है, स्पष्ट होता है । २. प्रकट करते हुए, स्पष्ट करते हुए । उ० १. प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी । (मा० १।३२५।३) २. प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहि । (जा० ६५) प्रगटसि-प्रकट होती । उ०

प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं । (मा० ३।३०।८) प्रगटहिं-प्रकट होती हैं, स्पष्ट होती हैं । उ० प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि । (मा० १।३४७।२) प्रगटि-१. उत्पन्न होकर, २. उत्पन्न करके, ३. कहकर, ४. प्रकट करके, ज़ाहिर कर, स्पष्ट कर । उ० १. मानहुँ प्रगटि बिपुल लोहित पुर पठइ दिये अचनी । (गी० ७।२०) २. सभा सिंधु जदुपति जय-जय जनु रमा प्रगटि त्रिभुवन भरि भ्राजी । (कृ० ६१)

प्रगटिहु-प्रकाशित किया । उ० जनमि जगत जस प्रगटिहु मातु-पिता कर । (पा० ४६) प्रगटी-उत्पन्न हुईं, प्रकट हुईं, जन्म लिया । उ० सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुख-सागर । (जा० ५) प्रगटै-१. प्रकट होने से, प्रकट होने में, २. पैदा हुए । उ० १. यह प्रगटै अथवा द्विज आपा । (मा० १।१६६।२) प्रगटे-१. प्रकट हुए, २. प्रकट होने पर । प्रगटेउ-प्रकट, प्रकट हो गए । उ० प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला । (मा० १।१३२।२) प्रगटेसि-१. प्रकट किया, २. प्रकट हुआ । उ० १. प्रगटेसि सुरत रुचिर रितुराजा । (मा० १।८६।३) प्रगटै-१. प्रकट करता है, २. प्रकट होवे, उत्पन्न हो । उ० १. प्रगटै उपासना, दुरावै दुरवासनाहिं । (क० ७।१११) प्रगट्यौ-प्रकट किया, दिखाया, स्पष्ट किया । उ० कौतुक ही मारीच नीच मिस प्रगट्यौ विसिप प्रतापु । (गी० ६।१)

प्रगलभ-दे० 'प्रगल्भ' । उ० ५. प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं । (मा० ७।१०।८) प्रगल्भ-(सं०)-१. ठीठ, दुःसाहसी, उर्ध्व, २. बावनी, बक्री, ३. अच्छी बुद्धिवाला, चतुर, ४. वृंभी, घमंठी, ५. तेजस्वी ।

प्रगाढ़-(सं० प्रगाढ)-१. कठोर, कठिन, २. बड़ा गहरा, ३. बहुत, अधिक ।

प्रघोर-(सं०)-१. अत्यंत कठिन, २. भयंकर, अत्यंत भया-वह । उ० २. आवत कपिहि हन्यो तेहि मुष्टि प्रहार प्रघोर । (मा० ६।८३)

प्रचंड-दे० 'प्रचंड' । उ० ८. प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं । (मा० ७।१०।८) प्रचंड-(सं०)-१. भयानक, २. बहुत तीखा, करारा, तेज, ३. प्रबल, ४. असह्य, ५. क्रोधी, ६. क्रूर, कठोर, सख्त, ७. बड़ा, भारी, ८. तेजस्वी, प्रताप-वाला । उ० २. रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा । (मा० १।२०।६) १)

प्रचंडा-दे० 'प्रचंड' । उ० १. तोमर मुद्गर परसु प्रचंडा । (मा० ६।४०।४)

प्रचलित-(सं०)-चलता, रायज, जारी, जिसका प्रचलन हो ।

प्रचार-(सं०)-१. चलन, रवाज, २. प्रसिद्धि, ३. प्रकाश, ४. विस्तार, फैलाव, ५. उत्तेजन, ललकार, चुनौती, ६. प्रेरणा, ७. प्रवेश, पैठ । उ० ४. राम सुजस कर चहुँ लुग होत प्रचार । (ब० ३६)

प्रचारइ-प्रचार करता है । प्रचार-क. दे० 'प्रचार' । ख. फैलाया, प्रचार किया, ग. ललकारा । उ० क. ६. भँवर कृबरीं बचन प्रचारा । (मा० २।३४।२) प्रचारि-ललकार कर । उ० मानी मेघनाद सों प्रचारि भिरे भारी भट । (क० ६।५२) प्रचारी-दे० 'प्रचारि' । प्रचारू-१. दे० 'प्रचार', २. प्रचार करो । उ० १. ७. इहाँ जया मति मोर प्रचारू । (मा० २।२८।२) प्रचारे-उत्तेजित किया, ललकारा । उ० नामवंत हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे । (गी० ६।७) प्रचार्यो-१. ललकारा २. फटकारा ।

प्रचुर-(सं०)-१. अधिक, बहुत, अपार, २. यथेष्ट, ३. चौर, तस्कर । उ० १. जयति पाथोधि पापान-जलजान कर जातुधान-प्रचुर-हरष-हाता । (वि० २६) २. प्रचुर-भव भंजन, प्रणत-जन-रंजन । (वि० १२)

प्रच्छन्न-(सं०)-१. ढका हुआ, छिपा हुआ, २. अरोखा, खिड़की ।

प्रजंत-(सं० पर्यंत)-तक, ताईं । उ० अचन प्रजंत सरा-सनु तान्यो । (मा० ६।७।११)

प्रजंता-दे० 'प्रजंत' । उ० तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता । (मा० ७।६।३)

प्रजउ-प्रजा भी । उ० परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा (मा० २।२५।७) प्रजा-(सं०)-१. रिआया, रैयत, वह जनसमूह जो किसी राजा के अधीन रहता हो । २. संतान, औलाद । उ० १. प्रजा सहित रघुवंसमनि किमि गवने निज धाम । (मा० १।११।०)

प्रजापति-(सं०)-१. सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला, सृष्टिकर्ता, ब्रह्मा, २. पिता, ३. आग, ४. सूर्य, ५. मनु, ६. राजा, ७. घर का स्वामी । उ० १. दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक । (मा० १।६०।३)

प्रजारी-(सं० प्रज्वलन)-१. जलानेवाला, २. जलाई, ३. जलाकर, भस्मकर । उ० १. कानन उजार्यौ अब नगर प्रजारी है । (क० ५।५)

प्रजार्यो-जलाया, अच्छी तरह जलाया । उ० नगर प्रजा-र्यो सो विलोक्यो बल कीस को । (क० ६।२२)

प्रजाशन-(सं०)-प्रजा को खानेवाला, अत्याचारी ।

प्रजासन-दे० 'प्रजाशन' । उ० द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजा-सन । (मा० ७।१८।१)

प्रजेश-(सं०)-१. प्रजापति, प्रजा का स्वामी, २. ब्रह्मा, ३. दक्ष प्रजापति ।

प्रजेश-दे० 'प्रजेश' । उ० १. दच्छ प्रजेश भए तेहि काला । (मा० १।६०।३)

प्रजेशकुमारी-(सं० प्रजेशकुमारी)-दक्ष प्रजापति की पुत्री सती । उ० एहि बिधि हुखित प्रजेशकुमारी । (मा० १।६०।१)

प्रज्वलित-(सं०)-१. जलता हुआ, धधकता हुआ, २. खरा, साफ ।
 प्रज्ञा-(सं०)-१. बुद्धि, मनीषा, २. ज्ञान, विवेक, ३. सर-
 स्वती, शारदा ।
 प्रण-(सं०)-१. प्रतिज्ञा, कौशल, २. नियम, अटल निरचय,
 ३. प्राचीन, पुराना ।
 प्रणत-(सं०)-१. झुका, नम्र, २. दास, सेवक, ३. अधीन,
 वश में, शरणागत, ४. भक्त । उ० ३. देहि हूँ प्रसन्न, पाहि
 प्रणत पालिका । (वि० १६) ४. सद्य-हृदय तपनिरत
 प्रणतानुकूलम् । (वि० ६०)
 प्रणति-दे० 'प्रनति' ।
 प्रणय-(सं०)-१. प्रेम, प्यार, २. भरोसा, ३. नम्रता,
 विनय, विनती, ४. श्रद्धा, ५. सुशीलता ।
 प्रणव-(सं०)-१. ओंकार, ओंकार मंत्र, २. ब्रह्मा, ३.
 विष्णु, ४. महेश ।
 प्रणवों-प्रणाम करता हूँ, सर झुकाता हूँ ।
 प्रणाम-(सं०)-अभिवादन, नमस्कार ।
 प्रणामी-प्रणाम करनेवाला ।
 प्रतच्छ-दे० 'प्रत्यक्ष' । उ० १. मानो प्रतच्छ परबत की
 नभ लीक लसी कपि यों झुकि धायो । (क० ६।५४)
 प्रताप-(सं०)-१. पौरुष, मरदानगी, २. तेज, हुकूबाल, ३.
 गर्मी, ताप, ४. महिमा, ५. ऐश्वर्य, ६. प्रखरता, प्रचं-
 ढता । उ० २. बेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि ।
 (क० २।१६) प्रतापहि-प्रताप को ।
 प्रतापा-दे० 'प्रताप' । उ० २. सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा ।
 (मा० ६।७६।८)
 प्रतापी-पराक्रमी, प्रतापवाला, तेजवाला । उ० सोइ रावन
 जग बिदित प्रतापी । (मा० ६।२५।४)
 प्रतापु-दे० 'प्रताप' । उ० २. बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर
 कथहि प्रतापु । (मा० १।२७।४)
 प्रतापू-दे० 'प्रताप' । उ० २. प्रगट प्रभाउ महेश प्रतापू ।
 (मा० १।१५।३)
 प्रति-(सं०)-१. एक उपसर्ग जो शब्दों के आरंभ में लग
 कर विपरीत, सामने, बदले या आदि का अर्थ देता है । २.
 हर एक, प्रत्येक । उ० २. प्रति संवत अति होइ अनंदा ।
 (मा० १।१५।१)
 प्रतिउत्तर-(सं० प्रति + उत्तर)-उत्तर का उत्तर, जवाब का
 जवाब, बादविवाद । उ० प्रतिउत्तर सङ्गसिन्ह मनहुँ
 कादत भट दससीस । (मा० ६।२३।७०)
 प्रतिउपकार-उपकार का बदला, नेकी का बदला । उ० प्रति-
 उपकार करौ का तोरा । (मा० ५।३२।३)
 प्रतिकार-(सं०)-१. प्रतीकार, बदला, जवाब, २. चिकित्सा,
 इलाज, ३. मुक्ति, छुटकारा, उद्धार, ४. दर्जन, निवारण ।
 प्रतिकूल-(सं०)-१. उलटा, विरुद्ध, विमुख, २. दूसरा
 किनारा । उ० १. जेहि बस जन अनुचित करहि चरहि
 बिस्व प्रतिकूल । (मा० १।२७।७)
 प्रतिकूला-दे० 'प्रतिकूल' । उ० १. जीव न लह सुख हरि
 प्रतिकूला । (मा० ७।१२२।८)
 प्रतिग्रह-(सं०)-१. दान, २. स्वीकार, ग्रहण ।
 प्रतिग्राही-(सं० प्रतिग्राहिन्) लेनेवाला, दान लेनेवाला ।

उ० प्रतिग्राही जीवै नहीं, दाता नरकै जाय । (दो०
 ५३३)
 प्रतिग्राह-प्रतिबिंब, छाँह, छाया । उ० प्रतिग्राह छबि कवि
 भाखि दै प्रति सों कहै गुरु हौं रि ! (गी० ७।१८)
 प्रतिग्राही-(सं० प्रतिच्छाया)-प्रतिबिंब, परछाहीं । उ० राम
 सीय सुदर प्रतिग्राही । (मा० १।३२५।२)
 प्रतिज्ञा-(सं०)-१. प्रण, वादा, २. कसम, सौगंध । उ०
 १. प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी । (वि० ६३)
 प्रतिदिन-रोज प्रत्येक दिन । उ० बिहरहि बन चहुँ ओर
 प्रतिदिन प्रसुदित लोग सब । (मा० २।२५।१)
 पतिपत्न-बैरी, दूसरे पक्ष का ।
 पतिपत्नी-(सं०)-दूसरे पक्षवाले, शत्रु ।
 प्रतिपच्छिन्ह-दूसरे पक्षवालों ने, शत्रुओं ने । उ० सपनेहुँ
 नहीं प्रतिपच्छिन्ह पावा । (मा० २।१०।५।३) प्रतिपच्छी-
 दे० 'प्रतिपत्नी' ।
 प्रतिपद-पगपग पर, हर कदम पर । उ० बिनय छत्र सिर
 जासु के प्रतिपद पर-उपकार । (सं० ५५२)
 प्रतिपादक-(सं०)-१. बोधक, ज्ञापक, २. संस्थापक, ३.
 प्रकाशक, संपादक, ४. निरूपक ।
 प्रतिपादन-(सं०)-१. संपादन, २. बोधन, ३. निरूपण ।
 प्रतिपाद्य-(सं०)-१. जिसका प्रतिपादन किया जाय, २.
 जानने योग्य, जिसका ज्ञान किया जाय । उ० २. प्रभु
 प्रतिपाद्य राम भगवाना । (मा० ७।६१।३)
 प्रतिपाल-(सं०)-पोषक, रक्षक, पालन करनेवाला ।
 प्रतिपालइ-पालता है, पालन करता है । उ० जो प्रति-
 पालइ तासु हित करइ उपाय अनेक । (मा० ६।२३।७)
 प्रतिपालउ-पालता हूँ, पोषता हूँ । उ० इहि प्रतिपालउ
 सङ्ग परिवारु । (मा० २।१००।४) प्रतिपालहि-पालते हैं,
 रक्षा करते हैं । उ० जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहि । (मा०
 ७।१००।१) प्रतिपाला-पालन किया, पाला । उ० प्रभु
 आयसु सब बिधि प्रतिपाला । (मा० १।४२।४) प्रति-
 पालि-पालन करके, रक्षा करके । उ० प्रतिपालि आयसु
 कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौ । (मा० २।१५१।७०।१)
 प्रतिपाली-पाला, पालन-पोषण किया । उ० सींचि सनेह
 सखिल प्रतिपाली । (मा० २।५१।२) प्रतिपाल्यौ-पाला,
 निर्वाह किया । उ० दूसरथ सों न प्रेम प्रतिपाल्यौ हुतो
 जो सकल जग साखी । (गी० ३।१२)
 प्रतिपालक-पालनेवाला, रक्षक । उ० बोले बचन नीति
 प्रतिपालक । (मा० ५।५०।२)
 प्रतिपालन-पालन, रक्षा करना, निर्वाह । उ० बहु बिधि
 प्रतिपालन प्रभु कीन्हौ । (वि० १३६)
 प्रतिफल-(सं०)-१. परिणाम, फल, नतीजा, २. प्रतिबिंब,
 छाया, ३. बदला, प्रतिशोध ।
 प्रतिबिंब-(सं०)-१. परछाहीं, छाया, प्रतिरूप, २. मूर्ति,
 प्रतिमा, ३. चित्र, ४. मुकुट, दर्पण, ५. आभा, झलक ।
 उ० १. निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । (मा० ३।२४।२)
 प्रतिबिंबनि-१. प्रतिबिंबों में, परछाइयों में, छाया में, २.
 परछाइयों को । उ० १. हँसे हसत अनरसे अनरसत प्रति-
 बिंबनि ज्यों भाँई । (गी० १।१६) २. किलकत सुकि
 भाँकत प्रतिबिंबनि । (गी० १।२८)

प्रतिबिंबु-दे० 'प्रतिबिंब' । उ० १. निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई । (मा० २।४७।४)
 प्रतिभट-बराबरी का वीर, बराबरी करनेवाला । उ० जेहि कहुँ नहि प्रतिभट जग जाता । (मा० १।१८०।२)
 प्रतिभा-(सं०)-बुद्धि, ज्ञान, बुद्धि की तेज़ी या चमक ।
 प्रतिमा-(सं०) मूर्ति, पुतली, मूरत । उ० सुर प्रतिमा खंभन गदि काहीं । (मा० १।२८८।३)
 प्रतिमूरति-(सं० प्रतिमूर्ति) प्रतिरूप, अक्स, प्रतिबिंब, परछाहीं । उ० निज पानि मनि महुँ देखि प्रतिमूरति सुरूप निधान की । (मा० १।३२७।३)
 प्रतिवाद-(सं०)-खंडन, विरोध ।
 प्रतिष्ठा-(सं०)-१. मान, इज्जत, आदर, २. स्थापना, प्रतिष्ठापित करना, ३. देवताओं की मूर्ति की स्थापना करना, प्राण-प्रतिष्ठा, ४. ख्याति, प्रसिद्धि, ५. कीर्ति, यश, ६. शरीर, देह, ७. पृथ्वी, ८. यज्ञ की समाप्ति ।
 प्रतिहत-(सं०)-१. अवरुद्ध, रुका, २. श्रीहृत, निराश, हर्षहीन, ३. तिरस्कृत, अपमानित, पतित, ४. समाप्त । उ० ४. सिरकंप, इंद्रिय-सक्ति प्रतिहत बचन काहु न भावई । (वि० १३६)
 प्रतीत-(सं०)-१. ज्ञात, जाना, विदित, २. प्रसिद्ध, विख्यात, ३. प्रसन्न, झुश, ।
 प्रतीति-(सं०)-१. भरोसा, विश्वास, २. ज्ञान, जानकारी उ० १. सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी । (मा० २।७।३)
 प्रतीति-विश्वासपात्र, जिस पर भरोसा किया जा सके । उ० गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीति । (मा० २।६०।२)
 प्रतीषी-(सं० प्रतोष)-संतुष्ट किया, संतोष दिया । उ० राम प्रतीषी मानु सब कहि विनीत बर बैन । (मा० १।३५७)
 प्रत्यक्ष-(सं०)-१. जो सामने हो, स्पष्ट, प्रकट, २. चार प्रमाणों में से एक ।
 प्रत्याहार-(सं०)-योग के आठ अंगों में एक, इंद्रियनिग्रह ।
 प्रत्युत-(सं०)-१. बल्कि, वरन्, २. विपरीतता ।
 प्रत्युत्तर-(सं०)-उत्तर का उत्तर, जवाब का जवाब ।
 प्रत्युह-(सं०)-बिम्ब, बाधा, उपद्रव । उ० होइ धुनाच्छर न्याय जौ पुनि प्रत्युह अनेक । (मा० ७।११८ ख)
 प्रथक-दे० 'पृथक' ।
 प्रथम-(सं०)-१. पहला, शुरु का, आरंभ का, २. प्रधान, मुख्य, सर्वश्रेष्ठ । उ० १. सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । (मा० ७।१२७।४) प्रथमहि-पहले ही । उ० प्रथमहि कहहु नाथ मतिधीरा । (मा० ७।१२१।२)
 प्रथुल-दे० 'पृथुल' ।
 प्रद-दे० 'प्रद' । उ० शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनर्घं निर्वाणशांति-प्रदं । (मा० ५।१। श्लो० १) प्रद-(सं०)-देनेवाला, दाता । उ० तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा । (मा० १। ७३।१) प्रदा-(सं०)-देनेवाली, दात्री । 'प्रद' का स्त्री-लिंग । उ० सा मंजुल मंगलप्रदा । (मा० २।१। श्लो० २) प्रदे-'प्रदा' शब्द का संबोधनकारक का रूप । हे देने-वाली ! प्रदो-देनेवाले दोनों । उ० सीतान्वेषणतत्परौ पथिगता भक्तिप्रदौ तौ हि नः । (मा० ४।१। श्लो० १)
 प्रदक्षिण-(सं०)-पूजन आदि के समय, प्रतिमा, मंदिर या किसी स्थान के चारों ओर घूमना, परिक्रमा ।

प्रदक्षिणा-दे० 'प्रदक्षिण' ।
 प्रदक्षिण-दे० 'प्रदक्षिण' । उ० उभय धरी महुँ दीन्हीं सात प्रदक्षिण धाइ । (मा० ४।२६)
 प्रदक्षिणा-दे० 'प्रदक्षिण' । उ० दै दै प्रदक्षिणा करति मनाम न प्रेम अघाइ । (गी० ३।१७)
 प्रदान-(सं०)-१. दान, २. देने की क्रिया, ३. विवाह, शादी, ४. अंकुश ।
 प्रदीप-(सं०)-१. दीपक, चिराग, २. उजाला, प्रकाश ।
 प्रदेश-दे० 'प्रदेश' । उ० ३. रत्न जटित मणि मेखला कटि प्रदेशम् । (वि० ६१) प्रदेश-(सं०)-१. देश, भूखंड, २. स्थान, जगह, ३. अंग ।
 प्रदेश-दे० 'प्रदेश' । उ० १. पुन्य प्रदेश देस अति चारु । (मा० २।१०।१२)
 प्रदोष-(सं०)-१. संभ्याकाल, दो घड़ी दिन से दो घड़ी रात तक का समय, २. बहुत बड़ा अपराध, ३. दुष्ट, पापी । उ० १. जातुधान प्रदोष बल पाई । (मा० ६।४६।२)
 प्रधान-(सं०)-१. मुख्य, श्रेष्ठ, २. मुखिया, ३. ईश्वर, ४. सेनापति । उ० १. करम प्रधान सत्य कह लोगू । (मा० २।६१।४)
 प्रध्वसन-नष्टकर देनेवाला । उ० ब्रह्माम्भोधि समुद्रवं कलि-मल प्रध्वसनं चान्यथं । (मा० ४।१। श्लो० २)
 प्रन-दे० 'प्रण' ।
 प्रनत-दे० 'प्रणत' । शरणागत । उ० ३. कहेसि पुकारि प्रनतहित पाही । (मा० ३।२।५) प्रनतनि-भक्तों, शरणागतों । उ० सरनागत आरत प्रनतनि को दै दै अभयपद और निबाहैं । (गी० ७।१३) प्रनतपाल-शरण में आप की रक्षा करनेवाला । उ० प्रनतपाल, कृपालु पतित-पावन नाम । (वि० ७७)
 प्रनति-(सं० प्रणति)-प्रणाम, नमस्कार ।
 प्रनमामि-प्रणाम करता हूँ । उ० प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं । (मा० ७।१४।१०)
 प्रनय-दे० 'प्रणय' । उ० १. प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । (मा० ३।२।१।६)
 प्रनवउं-प्रणाम करता हूँ, नमस्कार करता हूँ । उ० प्रनवउं सवाहि कपट सब त्यागें । (मा० १।१४।३) प्रनवों-दे० 'प्रनवउं' ।
 प्रनाम-दे० 'प्रणाम' । उ० सकुत प्रनाम प्रनत-जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ । (वि० १००)
 प्रनामा-दे० 'प्रणाम' । उ० बार बार कर दंड प्रनामा । (मा० ७।१६।२)
 प्रनामु-दे० 'प्रणाम' । उ० कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा । (मा० १।२।१।१)
 प्रनामू-दे० 'प्रणाम' । उ० जोरि पानि प्रमु कीन्ह प्रनामू । (मा० १।५।३।४)
 प्रपंच-(सं०)-१. संसार, भवजाल, सृष्टि, २. संसार का जंजाल, ३. विस्तार, फैलाव, ४. संकट, क्लमेला, भ्रमगाड़ा, ५. आडंबर, ढोंग, ६. झल, कपट, ७. माया । उ० २. तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब । (वि० ८४) ४. मोहि सों आनि प्रपञ्च रहा है । (क० ७।१०।१) ५. स्वार्थ सयानप प्रपञ्च परमारथ । (क० ७।८०) प्रपंचहि-१. प्रपञ्च

को, प्रपञ्चयुक्त संसार को, २. माया को। उ० २. रचहु प्रपञ्चचहि पञ्च मिलि। (मा० २।२६४)
 प्रपंची-१. छली, २. ढोंगी, ३. झगड़ा लू। उ० १. दूरि कीजै द्वार तें लबार लालची प्रपञ्ची। (वि० २५८)
 प्रपञ्चु-दे० 'प्रपञ्च'। उ० १. विधि प्रपञ्चु गुन अवगुन साना। (मा० १।६।२) ६. प्रेम प्रपञ्चु कि झूठ फुर। (मा० २। २६१)
 प्रपुञ्ज-भारी झुंड, बड़ा समूह। उ० बिकसित कमलावली, चले प्रपुञ्ज चंचरीक। (गी० १।३६)
 प्रफुलित-सं० प्रफुल्ल)-खिले हुए, प्रसन्न। उ० निसि मलीन यह प्रफुलित नित दरसाइ। (ब० २६)
 प्रफुल्ल-सं०)-१. फूला हुआ, खिला, प्रस्फुटित, २. प्रसन्न। उ० १. प्रफुल्ल कंज लोचन। (मा० ३।४। छ० २)
 प्रफुल्लित-प्रसन्न, पुलकित। उ० सुनि पुलक प्रफुल्लित गात। (मा० १।१४५)
 प्रबंध-सं०)-१. इंतजाम, बंदोबस्त, २. एक प्रकार का काव्य जिसमें कथा रहती है। इस प्रकार के काव्य की रचना। ३. बंधन, बांधाव। उ० २. परम पुनीत प्रबंध बनाई। (मा० १।१४०।२)
 प्रवरषण-सं० प्रवर्षण)-एक पर्वत का नाम। उ० कपिहि तिलक करि प्रमुकृत सैल प्रवरषण बास। (मा० ७।६६ ख)
 प्रबल-सं०)-१. बलवान, मजबूत, बली, २. समर्थ, ३. दृढ़, साहसी, ४. प्रचंड, उग्र। उ० १. प्रबल-भुजदंड-परचंड कोदंडधर। (वि० ५०) ४. प्रबल अहंकार दुर्घट महीधर। (वि० ५६)
 प्रबलता-१. आधिक्य, अधिकता, २. प्रभाव। उ० २. निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्दि। (मा० १। १३७)
 प्रबाल-सं० प्रवाल)-१. झुंगा, २. नया पत्ता।
 प्रबाह-सं० प्रवाह)-धारा, प्रवाह। उ० प्रेम प्रबाह बिलो-चन बाहे। (मा० १।३४०।३)
 प्रबाहू-दे० 'प्रबाह'। उ० उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू। (मा० १।३६।५)
 प्रबिसहि-सं० प्रवेश)-प्रवेश करते हैं, भीतर जाते हैं। उ० एक प्रबिसहि एक निर्गमहि, भीर भूप दरवार। (मा० २। २३) प्रबिसि-प्रवेश करके, भीतर घुसकर। उ० प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। (मा० १।११।१) प्रबिसे-प्रवेश कर गये, घुसे। उ० पुनि रघुबीर निषंग महुँ प्रबिसे सब नाराच। (मा० ६।६८) प्रबिसेउ-पैठ गया, प्रवेश किया। उ० अस कौतुक करि रामसर प्रबिसेउ आइ निषंग। (मा० ६।१३ ख)
 प्रबीन-सं० प्रवीण)-चतुर, होशियार। उ० सोइ उपाउ तुम्ह करहु सब पुरजन परम प्रबीन। (मा० २।८०)
 प्रबीनता-सं० प्रवीणता)-चतुराई, होशियारी। उ० नीचऊ निचाजे प्रीति रीति की प्रबीनता। (वि० २६२)
 प्रबीना-दे० 'प्रबीन'। उ० सेवहि सिद्ध मुनीस प्रबीना। (मा० १।५४।३)
 प्रबीनु-दे० 'प्रबीन'।
 प्रबीनु-दे० 'प्रबीन'। उ० कवि न होउँ नहि बचन प्रबीनु। (मा० १।६।४)

प्रबेस-सं० प्रवेश)-घुसना, पैसार। उ० करत प्रबेस मिटे हुख दावा। (मा० २।२३६।२)
 प्रबेसा-दे० 'प्रबेस'। उ० अंगद अरु हनुमंत प्रबेसा। (मा० ६।४५।४)
 प्रबेसु-दे० 'प्रवेश'। उ० २. निजपुर कीन्ह प्रबेसु। (मा० १।१५४)
 प्रबोध-सं०)-१. जागना, नींद का हटना, २. यथार्थ ज्ञान, पूर्णबोध, ३. सांत्वना, आश्वासन, तसल्ली, संतोष। उ० ३. मोरें मन प्रबोध जेहि होई। (मा० १।३१।१)
 प्रबोधक-सं०)-जतानेवाला, उपदेशक, ज्ञानदाता। उ० उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी। (मा० १।२१।४)
 प्रबोधन-सं०)-१. जागरण, जागना, २. उपदेश, सीख, सिखाना, ३. सिखाने, शिक्षा देने। उ० ३. लगे प्रबोधन जानकिहि। (मा० २।६०) प्रबोधहि-समाधान को, प्रबोध को। उ० पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ। (मा० १।७३) प्रबोधा-आश्वासन दिया, समझाया-झुझाया। उ० प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा। (मा० १।१०।६।३)
 प्रबोधि-समझाकर, सांत्वना देकर। उ० सुनि बिनय सासु प्रबोधि तब रघुबंस मनि पितु पहि गये। (जा० १।८६)
 प्रबोधिसि-समझाया, धीरज दिलाया। उ० धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी। (मा० २।२०) प्रबोधी-१. समझाया, २. समझाकर, शिक्षा देकर, ३. समझाया हुआ, सिखलाई हुआ। उ० २. बन उजारि रावनहि प्रबोधी। (मा० ७। ६७।३) प्रबोधि-सांत्वना दी, समझाया। उ० सचिव सुसेवक भरत प्रबोधि। मा० २।३२३।१)
 प्रबोधु-दे० 'प्रबोध'। उ० ३. पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। (मा० २।२४४।४)
 प्रबोधू-दे० 'प्रबोध'। उ० २. बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू। (मा० २।२६३।४)
 प्रभंजन-सं०)-१. प्रचंड वायु, आंधी, २. तोड़-फोड़, उखाड़-पखाड़, नाश। उ० १. मोह महा घन पटल प्रभं-जन। (मा० ६।१११।१)
 प्रभंजनजाया-वायु के पुत्र, हनुमान। उ० जीति न जाइ प्रभंजनजाया। (मा० २।११।५)
 प्रभंजनतनय-दे० 'प्रभंजनजाया'। उ० प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजनतनय विषयवन-दहनमिव धूमकेतू। (वि० ५८)
 प्रभंजनसुत-दे० 'प्रभंजनजाया'। उ० चला प्रभंजनसुत बल भाषी। (मा० ६।५६।१)
 प्रभव-सं०)-१. उत्पत्तिकारण, जन्महेतु, जिससे पैदा होते हैं, जैसे माता-पिता। २. जन्म, उत्पत्ति, ३. पराक्रम, ज़ोर। उ० १. कपि-केसरी-कस्यप-प्रभव-जगदातिहता। (वि० २६)
 प्रभा-सं०)-१. प्रकाश, चमक, उजला, २. छवि, शोभा, ३. सूर्य का तेज, ४. सूर्य की एक स्त्री। उ० १. प्रभा जाइ कहँ भासु बिहाई। (मा० २।६७।३)
 प्रभाउ-दे० 'प्रभाज'। उ० १. भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा। (मा० १।१३।१)
 प्रभाऊ-सं० प्रभाव)-१. महिमा, माहात्म्य, २. प्रताप, ३. नियम। उ० १. को कहि सकहु प्रयाग प्रभाऊ। (मा० २।१०।६।१)

प्रभाकर-(सं०)-१. सूर्य, २. अग्नि, ३. चंद्रमा, ४. समुद्र, ५. आक का वृत्त । उ० १. सील सोभा सागर प्रभाकर प्रभाय के । (गी० १६५)

प्रभात-(सं०)-सवेरा, प्रातःकाल । उ० अब प्रभात प्रगत ज्ञान-भानु के प्रकास । (वि० ७४)

प्रभाता-दे० 'प्रभात' । उ० काजु नसाइहि होत प्रभाता । (मा० ६६०३)

प्रभाय-दे० 'प्रभाव' । उ० १. कौन पाप कोप, लोप प्रगत प्रभाय को । (ह० ३१) ३. सील सोभा सागर प्रभाकर प्रभाय के । (गी० १६५)

प्रभाव-(सं०)-१. असर, महिमा, शक्ति, २. उद्भव, प्रादुर्भाव, ३. प्रताप, तेज, इकबाल । उ० १. गुरु प्रभाव पालिहि सबहि । (मा० २१३०५)

प्रभावा-दे० 'प्रभाव' । उ० १. राम नाम कर अमित प्रभावा । (मा० १४६११)

प्रभु-प्रभु को । प्रभु-(सं०)-१. स्वामी, मालिक, २. पालक, रक्षक, ३. भगवान्, ईश्वर, राम, कृष्ण । उ० ३. तुलसीदास प्रभु हरहु भेद-मति । (वि० ७) प्रभुणा-प्रभु ने । उ० यत्पूर्व प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शमुना दुर्गमं । (मा० ७१३१ श्लो० १) प्रभुदासी-विष्णु की दासी । तुलसी । प्रभु-दासी-दास-विष्णु की दासी तुलसी के दास अर्थात् तुलसीदास । उ० नाम लै भरे उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ । (वि० ४१) प्रभुन्ह-प्रभुओं, स्वामियों । उ० नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ । (मा० १८६१२) प्रभुहि-प्रभु को, राजा को, स्वामी को । उ० प्रभुहि न प्रभुता परिहरे । (दो० ५१७) प्रभो-हे प्रभु । उ० प्रभोऽप्रमेय वैभव । (मा० ३१४३)

प्रभुता-(सं०)-१. बड़ाई, महत्व, २. शासनाधिकार, हुकूमत, ३. वैभव, ४. साहिबी, मालिकपन, ५. सामर्थ्य । उ० १. दे० 'प्रभु' । २. श्रीमद् बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि । (दो० २६२)

प्रभुताई-दे० 'प्रभुता' । उ० ५. अतुलित बल अतुलित प्रभुताई । (मा० ३१२६)

प्रमथ-(सं०)-शिव के गण । ये भोगी और योगी दो प्रकार के कहे गए हैं । उ० प्रमथनाथ के साथ प्रमथ गन राजहि । (पा० ११०)

प्रमथनाथ-(सं०)-शंकर, महादेव । उ० दे० 'प्रमथ' ।

प्रमथराज-दे० 'प्रमथनाथ' । उ० त्रैलोक-सोकहर, प्रमथराज । (वि० १३)

प्रमदा-(सं०)-१. स्त्री, सुंदरी स्त्री, २. मालकंगनी, प्रियंगु, काकुन । उ० १. प्रेम मगन प्रमदा गन तनु न सगहारहि । (जा० १५२)

प्रमाण-(सं०)-१. वह बात जिसके द्वारा कोई दूसरी बात सिद्ध की जाय, सबूत, २. सत्य, सच्चा, यथार्थ, ३. निश्चय, प्रतीति, ५. मर्यादा, थाप, साख, ६. प्रामाणिक बात या वस्तु, ७. इयत्ता, हद, मान, ८. शास्त्र, ९. मूलधन, १०. प्रमाणपत्र, ११. आदेशपत्र, १२. तक, पर्यंत, १३. सच्चाई, सत्यता, १४. अटल । विशेष-न्याय के अनुसार प्रमाण (सबूत) प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द-प्रमाण ये चार माने गए हैं ।

प्रमाद-(सं०)-१. मतवालापन, नशा, २. असावधानी, ३. अहंकार, गर्व ।

प्रमादू-दे० 'प्रमाद' । उ० २. तात किणु प्रिय प्रेम प्रमादू । (मा० २७७१२)

प्रमान-दे० 'प्रमाण' । उ० २. नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान । (मा० ११२५२) १२. जोजन सत प्रमान लै धावौ । (मा० ११२५३४) १४. यह प्रमान पन मोरे । (वि० ११२)

प्रमाना-दे० 'प्रमाण' ।

प्रमानिक-(सं० प्रामाणिक)-जिसका प्रमाण हो, मानने योग्य, ठीक, सत्य । उ० बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो । (गी० ११४)

प्रमुख-(सं०)-१. प्रधान, श्रेष्ठ, २. मुखिया, अगुआ, ३. प्रथम, पहला । उ० १. छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका । (वि० ४७)

प्रमुदित-(सं०)-प्रसन्न, आह्लादित, आनंदित । उ० हरषे निरखि बरात प्रेम प्रमुदित हिए । (जा० १३६)

प्रमोद-(सं०)-हर्ष, आनंद, सुख । उ० उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहु । (मा० १३६१५)

प्रमोदु-दे० 'प्रमोद' । उ० प्रेम प्रमोदु कहै को पारा । (मा० १३६११)

प्रयच्छ-(सं०)-दीजिय, प्रदान कीजिय । उ० भक्ति प्रयच्छ रघु पुंगव निर्भरामे कामादि दोष रहित करु मानसं च । (मा० ५११ श्लो० २)

प्रयाति-(सं०)-जाते हैं, प्राप्त होते हैं । उ० प्रयाति ते गर्ति स्वकं । (सा० ३१४७० ८)

प्रयाग-(सं०)-गंगा और यमुना के संगम पर बसा प्रसिद्ध नगर और तीर्थस्थान । इलाहाबाद । कहा जाता है कि यहाँ गंगा यमुना के संगम पर सरस्वती की प्रच्छन्न धारा मिलती है इसी कारण संगम त्रिवेणी नाम से प्रसिद्ध है । मकर की संक्राति पर यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है । इसे 'तीर्थराज' या 'तीर्थपति' भी कहते हैं ।

प्रयागा-दे० 'प्रयाग' । उ० जाना मरसु नहात प्रयागा । (मा० २१२०८३)

प्रयागु-दे० 'प्रयाग' । उ० जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधिवस सुलभ प्रयागु । (मा० २१२२३)

प्रयाण-(सं०)-जाना, प्रस्थान, गमन ।

प्रयान-दे० 'प्रयाण' । उ० रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी । (मा० २१३५७०२)

प्रयास-(सं०)-१. परिश्रम, आयास, श्रम, २. कोशिश, यत्न, ३. इच्छा, खाहिश । उ० १. करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं । (मा० ६११३)

प्रयासा-दे० 'प्रयास' । उ० भगति करत बिनु जतन प्रयासा । (मा० ७११६१४)

प्रयोजन-(सं०)-१. अभिप्राय, उद्देश्य, आशय, २. कार्य, काम, २. उपयोग, व्यवहार । उ० १. हरि तज किमपि प्रयोजन नाहीं । (मा० ११६२११)

प्रलंब-(सं०)-लंबा, विशाल । उ० भुज प्रलंब परिधन मुनि-चीरा । (मा० ११७६३)

प्रलय-(सं०)-संसार का अंत, जगत के नाना रूपों का

प्रकृति में विलीन हो जाना । उ० उदभव पालन प्रलय कहानी । (मा० ११६३।३) प्रलयहुँ-प्रलय में भी । उ० महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं । (मा० ७।६४।३)
 प्रलाप-(सं०)-१. व्यर्थ की बकवाद, व्यर्थ बात, बड़बड़, २. वियोग की विशेष अवस्था में उच्चरित व्यर्थ के वचन । उ० २. प्रभु प्रलाप सुनि कान । (मा० ६।६१)
 प्रलापी-बकवाद करनेवाला । उ० सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी । (मा० ६।२५।४)
 प्रलापु-दे० 'प्रलाप' । उ० १. बिद्यमान रन पाय रिपु कायर करहि प्रलापु । (दो० ४३६)
 प्रवर-(सं०)-१. संतान, संतति, २. गोत्र, वंश, ३. श्रेष्ठ, उत्तम, प्रधान, बड़ा । उ० ३. तांडवित-नृत्य-पर, डमरु-डिमडिम-प्रवर । (वि० १०)
 प्रवर्षण-(सं०)-१. वर्षा, २. किष्किंधा के पास के एक पर्वत का नाम, ३. वह स्थान जहाँ पानी विशेष बरसे । प्रवान-(सं० प्रमाण)-प्रामाणिक, सत्य । उ० मैं पुनि करि प्रवान पितृबानी । (मा० २।६२।१)
 प्रवाह-प्रवाह में, धारा में । उ० जल प्रवाह जल अलि गति जैसी । (मा० २।२३।४) प्रवाह-(सं०)-१. बहाव, नदी की धारा, धारा, २. प्रवृत्ति, झुकाव ।
 प्रविसति-(सं० प्रविश्यति)-घुसती है, प्रवेश करती है । उ० केहि मग प्रविसति जाति केहि कहु दर्पन में छाँह । (दो० २४४)
 प्रवीण-(सं०)-१. दक्ष, चतुर, निपुण, कुशल, २. अच्छा गाने-बजानेवाला ।
 प्रवृत्त-(सं०)-१. तत्पर, उद्यत, तैयार, २. लगा हुआ, लीन । प्रवृत्ति-(सं०)-१. प्रवाह, बहाव, झुकाव, २. वृत्तांत, हाल, ३. संसार के कामों में लगाव, निवृत्ति का उलटा, ४. उत्पत्ति, आरम्भ, ५. प्रवेश, पहुँच, पैठ, ६. इच्छा, खा-हिश । उ० ३. वपुष अद्वांड सो, प्रवृत्ति-लंका दुर्ग रचित मन-दनुज-मय रूपधारी । (वि० ५८)
 प्रवेश-(सं०)-१. पहुँच, गति, २. घुस जाना, पैठ, दखल । प्रवेश-दे० 'प्रवेश' ।
 प्रशंसक-(सं०)-प्रशंसा करनेवाला, सराहने या स्तुति करनेवाला ।
 प्रशंसत-१. प्रशंसा करता है, बढ़ाई करती है, २. प्रशंसा करते हुए ।
 प्रशंसा-(सं०)-बढ़ाई, स्तुति, तारीफ, गुण-वर्णन ।
 प्रशस्त-(सं०)-१. सराहने योग्य, श्रेष्ठ, उत्तम, २. विस्तृत, चौड़ा ।
 प्रशस्ति-(सं०)-प्रशंसा, स्तुति, बढ़ाई ।
 प्रश्न-(सं०)-१. सवाल, पूछताछ, २. विचारणीय विषय, ३. एक उपनिषद् ।
 प्रसंग-(सं०)-१. संबंध, लगाव, साथ, संग, २. विषय का लगाव, अर्थ की संगति, ३. बात, वार्ता, चर्चा, कथा, ४. उपयुक्त संयोग, अवसर, ५. हेतु, कारण, ६. विस्तार, फैलाव, ७. संसर्ग, संगम । उ० ३. चलेहुँ प्रसंग दुरापहु तबहुँ । (मा० १.१२७।४)
 प्रसंगा-दे० 'प्रसंग' । उ० १. गगन चढ़इ रज पवन बसंगा । (मा० १।७।५)

प्रसंगु-दे० 'प्रसंग' । उ० ३. सब प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई । (मा० २।४१।२)
 प्रसंगु-दे० 'प्रसंग' । उ० ३. भूप लोचकर कवन प्रसंगु । (मा० २।२१।४)
 प्रसंसक-दे० 'प्रशंसक' । उ० बंस प्रसंसक बिरिद सुना-वहि । (वि० ३।१६)
 प्रसंसत-(सं० प्रशंसा)-दे० 'प्रशंसत' । उ० १. सुखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ । (वि० २३।५) प्रसंसहि-प्रशंसा करते हैं । उ० संतत संत प्रसंसहि तेही । (मा० १।८४।१)
 प्रसंसि-बढ़ाई करके । उ० बहु विधि उमहि मसंसि पुनि बोले कृपानिधान । (मा० १।१२० क) प्रसंसी-प्रशंसा की । उ० कहउँ सुभाउ न कुलहि मसंसी । (मा० १।२८।२) प्रसंसे-प्रशंसा की । प्रसंसेउ-प्रशंसा की । उ० नृप बहु भाँति मसंसेउ ताही । (मा० १।१६०।१)
 प्रसंसा-दे० 'प्रशंसा' । उ० दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी । (मा० २।१३०।२)
 प्रसन्न-प्रसन्न को । उ० सर्वदा सुप्रसन्नम् । (मा० ७।१। श्लो० १) प्रसन्न-(सं०)-१. खुश, हर्षित, २. संतुष्ट, तुष्ट । उ० १. प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी । (मा० १।१६४।४)
 प्रसन्नता-प्रसन्नता को । उ० प्रसन्नता या न गताभिषेक-तस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः । (मा० २।१। श्लो० २)
 प्रसन्नता-(सं०)-१. खुशी, हर्ष, २. तुष्टि, संतोष । उ० १. लही नाच पवनज प्रसन्नता, बरबस तहाँ गहो गुन मैन । (गी० ५।२।१)
 प्रसन्न-दे० 'प्रसन्न' ।
 प्रसन्ने-प्रसन्नता में, प्रसन्न होने पर । उ० निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने । (वि० ५७)
 प्रसव-(सं०)-१. बच्चा जनने की क्रिया, जनन, २. जन्म, उत्पत्ति, ३. बच्चा, संतान, ४. निकलना, बाहर आना । उ० १. ज्यों जुवती अमुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै । (वि० ८६) ४. अरुन नील पाथोज प्रसव जनु मनिजुत दल समुदाई । (वि० ६२)
 प्रसाद-(सं०)-१. दया, कृपा, २. प्रसन्नतापूर्वक दी हुई वस्तु, ३. उच्छिष्ट, जूठन, ४. वह वस्तु जो देवता पर चढ़ाई जाय, ५. देवता या बड़ों आदि को देने पर बची हुई वस्तु, ६. भोजन, रसोई । उ० १. ईस प्रसाद असीस तुम्हारी । (मा० २।२८३।१) ५. प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं । (मा० २।१२६।१)
 प्रसादा-दे० 'प्रसाद' । उ० १. सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा । (मा० १।१२०।२)
 प्रसादु-दे० 'प्रसाद' । उ० १. मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए । (मा० १।२६५।४)
 प्रसादू-दे० 'प्रसाद' । उ० १. नासु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । (मा० १।२६।२)
 प्रसिद्ध-(सं०)-१. विख्यात, मशहूर, २. अलंकृत, श्रुत, ३. यशस्वी, कीर्तिवान, नामवर । उ० १. पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट परा वरनाथ । (मा० १।११६)
 प्रसिद्धि-(सं०)-१. ख्याति, नामवरी, २. श्रंगार, बनाव । प्रसीद-(सं०)-प्रसन्न हो, कृपा करो, प्रसाद दो । उ०

प्रसीद-प्रसीद प्रभो मन्मथारी । (मा० ७।१०८। छं० ६)
 प्रसीदति-(सं०)-प्रसन्न होते हैं । उ० तेषां शंभुः प्रसी-
 दति । (मा० ७।१०८। श्लो० ६)
 प्रसूति-(सं०)-१. प्रसव, जनन, २. उद्भव, जन्म, ३.
 उत्पन्न करनेवाली, माता । उ० ३. तुलसी सूधी सकल
 विधि रघुवर-प्रेम-प्रसूति । (दो० १५२)
 प्रसूती-दे० 'प्रसूति' । उ० १. मंजुल मंगल मोद प्रसूती ।
 (मा० १।१।२)
 प्रसून-(सं०)-१. फूल, पुष्प, सुमन, २. उत्पन्न, ३. फल,
 परिणाम । उ० १. भूपन प्रसून बहु विविध रंग । (वि०
 १४)
 प्रस्तार-(सं०)-१. फैलाव, विस्तार, २. आधिक्य, वृद्धि,
 ३. पत्तों की सेज ।
 प्रस्थान-(सं०)-गमन, यात्रा, जाना ।
 प्रस्थिति-(सं०)-अटलता, स्थिरता, दृढ़ता । उ० रघुबीर
 रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी । (मा० ५।
 ३।१२)
 प्रस्न-दे० 'प्रश्न' । उ० १. कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हे ।
 (मा० २।१०।७।१)
 प्रहरणे-(सं० प्रहर्षे)-अत्यंत प्रसन्न हुए । उ० पेलि प्रहरणे
 मुनि समुदाई । (मा० ७।१२।२)
 प्रह्लाद-दे० 'प्रह्लाद' । उ० वृत्र बलि बाण प्रह्लाद मय ।
 (वि० ५७)
 प्रह्लादू-दे० 'प्रह्लाद' । उ० भगत सिरोमनि भे प्रह्लादू ।
 (मा० १।२।६।२)
 प्रहस्त-(सं०)-रावण का एक पुत्र जिसके हाथ बहुत बड़े
 थे । उ० सबके बचन श्रवण सुनि कह प्रहस्त कर जोरि ।
 (मा० ६।८)
 प्रहार-(सं०)-१. चोट, चार, आघात, मारना, २. मार-
 काट । उ० १. सनमुख ते करहि प्रहार । (मा०
 ३।२०।३)
 प्रहारा-दे० 'प्रहार' । उ० १. अस कहि कीन्हेसि चरन
 प्रहारा । (मा० ५।४।१।३)
 प्रहारी-मारनेवाला, प्रहार करनेवाला ।
 प्रह्लाद-(सं०)-हिरण्यकश्यप का पुत्र एक बड़ा भक्त ।
 इसके पिता ने इसे भक्ति से विमुख करने के लिए बहुत
 प्रयास किया पर इसे न मोड़ सका । अंत में हिरण्यकश्यप
 एक दिन तलवार लेकर इसे मारने आया और अपने
 भगवान् को दिखलाने को कहा । प्रह्लाद ने कहा कि वह
 सर्वत्र है । इस पर हिरण्यकश्यप ने पूछा कि क्या इस खंभे
 में भी है ? प्रह्लाद ने 'हाँ' कहा । यह सुनने ही हिरण्य-
 कश्यप ने उस खंभे पर प्रहार किया और नरसिंह रूप में
 भगवान् खंभे में से ही प्रकट हुए । नरसिंह ने हिरण्य-
 काशियु को वहीं मार डाला । प्रह्लादपति-नरसिंह भग-
 वान् । उ० प्रह्लादपति जनु विविध तनु । (मा० ६।८।१।
 छं० २)
 प्राकार-(सं०) प्राचीर, दीवाल, चहारदीवारी ।
 प्राकृत-प्रकृत से वृद्ध, मनुष्य रूपधारी । उ० प्राकृतं प्रकट
 परमात्माम परम हित । (वि० ५३) प्राकृत-(सं०)-साधा-
 रण, प्रकृति के, सांसारिक । उ० कहहु करहु जस प्राकृत

राजा । (मा० २।१२।७।३) प्राकृतहु-साधारण मनुष्य को
 भी । उ० सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु । (मा० २।३।१।१)
 प्राक्-(सं०) पहले का, अगला, शुरू का ।
 प्राग-दे० 'प्राक' । उ० प्राग कवन, गुरु-लक्षु, जगत तुलसी
 अवर न आन । (सं० २८३)
 प्राची-(सं०)-पूर्व दिशा, पूरब । उ० बंदुँ कौसल्या
 दिसि प्राची । (मा० १।१।६।२)
 प्राचीन-(सं०)-पुराना, पहले का ।
 प्राज्ञ-(सं०)-पण्डित, विद्वान्, प्रज्ञावान् ।
 प्राण-(सं०)-१. पवन, वायु, हवा, २. जीव, जीवन तत्व,
 जान, ३. शक्ति, पराक्रम, ४. साँस, दम, ५. अत्यंत प्यारा,
 ६. दस प्राण, ५ प्राण तथा ५ उपप्राण, ५ प्राण-प्राण,
 अपान, व्यान, उदान, समान । ५ उपप्राण-मीन, कूर्म,
 कृकल, देवदत्त, धनंजय ।
 प्राणादाता-जीवनदाता, प्राणरक्षक ।
 प्राणनाथ-१. स्वामी, नाथ, पति, २. प्रभु, ईश्वर, भगवान् ।
 प्राणपति-दे० 'प्राणनाथ' ।
 प्राणवल्लभा-(सं०)-प्राणप्यारी, प्रियसी, प्राणेश्वरी ।
 प्रात-(सं० प्रातः)-तड़के, सवेरे । उ० प्रात बरात
 चलिहि सुनि भूपतिभामिनि । (जा० १।८२) प्रातक्रिया-
 प्रातःकाल के कार्य, प्रातःकाल के स्नान संभ्या-
 र्चन आदि । उ० प्रातक्रिया करि तात पहिं आए चारिउ
 भाइ । (मा० १।३।५८) प्रातहि-सवेरे ही । उ० ऋषि
 साथ प्रातहि चले प्रभु दिन ललित लगन लिखाइ कै ।
 (पा० ६२)
 प्राता-दे० 'प्रात' । उ० अवसि दूत मैं पठइव प्राता ।
 (मा० २।३।१।४)
 प्रातु-प्रात, सवेरा, तड़का । उ० होत प्रातु मुनिबेष धरि
 जौ न रासु बन जाहिं । (मा० २।३।३)
 प्राण-दे० 'प्राण' । उ० ४. पंचाच्छरी प्राण, मुद माधव,
 गव्य सुपंचनदा सी । (वि० २२) ६. बुद्धि मन इंद्रिय प्राण
 चित्तात्मा । (वि० ५४) प्राणप्रिय-१. प्राणों के प्रिय,
 अत्यंत प्यारे । उ० १. रासु प्राणप्रिय जीवन जी के ।
 (मा० २।७।४।३) प्राणहु-प्राण भी । उ० प्राणहु ते प्रिय
 लागत सब कहूँ राम कृपाल । (मा० १।२०।४) प्राणौ-
 प्राण भी, जान भी । उ० प्राणौ चलिहैं परिमिति पाई ।
 (कृ० २५)
 प्राणनाथ-दे० 'प्राणनाथ' । उ० १. प्राणनाथ प्रिय देवर
 साथी । (मा० २।६।१।१)
 प्राणपति-दे० 'प्राणनाथ' । उ० २. उर धरि उमा प्राण-
 पति चरना । (मा० १।७।४।१)
 प्राणपियाउ-प्राणप्रिया भी, प्यारी भी । उ० राम जोगवत
 सीय-मनुप्रिय मनहि प्राणपियाउ । (गी० ७।२५)
 प्राणप्रिया-प्रिय स्त्री, प्यारी, प्राणप्यारी । उ० प्राण-
 प्रिया केहि हेतु रिसानी । (मा० २।२।१।४)
 प्राणवल्लभ-(सं० प्राणवल्लभ)-१. अत्यंत प्रिय, प्राणों
 से भी प्यारा, २. पति, स्वामी । उ० २. बंधु समेत प्राण
 बल्लभपद परसि सकल परित्ताप नसैहैं । (गी० ५।५१)
 प्राणवल्लभा-प्राणप्यारी, प्राणेश्वरी । उ० प्राण-
 सासन हेरी, प्राणवल्लभा न टेरी । (गी० ५।५१)

प्राना-दे० 'प्रान' । उ० २. की तनु प्रान कि केवल प्राना ।
 (मा० २।१८२)
 प्रानी-(सं० प्राणी)-व्यक्ति, प्राणवाला । उ० जीवत सब
 समान तेह प्रानी । (मा० १।११३।३)
 प्राप-(सं० प्रापण)-पाते हैं । उ० संत संसर्ग भय वर्ग पर
 परमपद प्राप । (वि० १७)
 प्रापति-(सं० प्राप्ति)-लाभ, आमदनी, मिलना, प्राप्ति । उ०
 रतिन के लालचिन प्रापतिमनक की । (क० ७।२०)
 प्रपतिउ-प्राप्ति भी, मिलना भी । उ० पुन्य, प्रीति, पति,
 प्रापतिउ, परमाथ-पथ पाँच । (दो० ३।२३)
 प्राप्त-(सं०)-१. लब्ध, हस्तगत, मिला, २. उत्पन्न,
 उपजा, पैदा हुआ, ३. विद्यमान, मौजूद ।
 प्राप्ति-(सं०)-१. उपलब्धि, मिलना, २. उपार्जन, पैदा
 करना, ३. प्रवेश, पहुँच, पैठ, ४. उदय, निकलना, पैदा
 होना, ५. आठ सिद्धियों में से एक, ६. आमदनी, आय ।
 प्राप्यै-प्राप्त होने के लिए । उ० श्री मद्रामपदाब्ज भक्ति-
 मनिशं प्राप्यै तु रामायणम् (मा० ७।१३१श्लो० १)
 प्राप्नोतु-प्राप्त कर ।
 प्राप्य-(सं०)-१. पाने योग्य, मिलने योग्य, २. गन्ध, जहाँ
 तक पहुँच हो ।
 प्राबिट-(सं० प्राबृट्)-१. वर्षा ऋतु, बरसात, २. बरसना ।
 उ० १. प्राबिट सरद पयोद घनेरे । (मा० ६।४६।५)
 प्रारंभ-(सं०)-आरंभ, शुरु, अनुष्ठान ।
 प्रारब्ध-(सं०)-पूर्व कर्म, भाग्य ।
 प्राथित-(सं०)-बाँझित, निवेदित, माँगा ।
 प्राबिट-दे० 'प्राबिट' ।
 प्राबृट्-दे० 'प्राबिट' ।
 प्राबृष-दे० 'प्राबिट' ।
 प्रासाद-(सं०)-१. मकान, भवन, २. मंदिर, देवस्थान, ३.
 राजमहल ।
 प्रिय-प्रिय को । उ० वंदे ब्रह्म कुलं कलंक शमनं श्री राम
 भूप्रियम् । (मा० ३।१श्लो० १) प्रिय-(सं०)-१. प्यारा,
 जिससे प्रेम हो, २. मनोहर, सुंदर, ३. प्रियतम, पति,
 स्वामी, ४. दामाद, जामाता, ५. हित, कल्याण, भलाई ।
 उ० १. राम लखन सम प्रिय तुलसी के । (मा० १।२०।२)
 ३. प्रिय मनहि प्रान प्रियाउ । (गी० ७।२५) प्रियहि-
 प्रिय को । उ० सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई । (मा०
 २।८।३) प्रियौ-प्यारे (दोनों) । उ० शोभादयौ
 वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ । (मा० ४।१।
 श्लो० १)
 प्रियतमा-(सं०)-अत्यंत प्यारी, भार्या । उ० प्रियतमा-पति
 देवता जिहि उमा रमा सिहाहि । (गी० ७।२६)
 प्रियव्रत-(सं० प्रियव्रत)-ध्रुव का छोटा भाई । उ० लखु सुत
 नाम प्रियव्रत ताही । (मा० १।१४२।२।)
 प्रिया-(सं०)-प्यारी, पत्नी, स्त्री । उ० गिरजा सर्वदा संकर
 प्रिया । (मा० १।६।८।३) प्रियाउ-प्यारी भी, प्रिया
 भी । उ० प्रिय मनहि प्रानप्रियाउ । (गी० ७।२५)
 प्रियाहि-प्यारी को । उ० प्रेम सों पीछे तिरिछे प्रियाहि
 चितै चितु है, चले बै चितं चोरे । (क० २।२६)
 प्रीत-(सं०) प्रीतियुक्त, सप्रेम ।

प्रीतम-(सं० प्रियतम)-प्यारा, पति, प्राणवल्लभ । उ०
 प्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो । (वि० २।६४)
 प्रीतमु-दे० 'प्रीतम' । उ० हृदय न विदरेउ पङ्क जिमि बिबु-
 रत प्रीतमु नीरु । (मा० २।१४६)
 प्रीता-प्यारा, दोस्त, प्रीति-पात्र । उ० हित अनहित मानहु
 रिपु प्रीता । (मा० १।४०।४)
 प्रीति-(सं०)-प्रेम, स्नेह, प्यार । उ० प्रीति की प्रतीति मन
 सुदित रहत हौं । (वि० ७।६)
 प्रीती-दे० 'प्रीति' । उ० स्त्रीता देह करहु पुनि प्रीती ।
 (मा० ६।६।५)
 प्रीते-१. प्रीतिवान हुए, २. प्रेमपूर्वक, सप्रेम । उ० २. गुर
 पद कमल पलोडत प्रीते । (मा० १।२२।३)
 प्रीय-प्रिय, प्यारा ।
 प्रेक्ष्य-प्रेक्षणीय, देखने योग्य ।
 प्रेत-(सं०)-१. मरा हुआ, मृतक, २. शूत, पिशाच, विशेष
 योनि, ३. नरक में रहनेवाला, ४. पुराणों के अनुसार
 वह कल्पित शरीर जो मनुष्य को मरने के बाद प्राप्त
 होता है । उ० १. ईति अति भीति-मह-प्रत-चौरानल
 व्याधि बाधा समन घोर मारी । (वि० २।८)
 प्रेतपावक-(सं०) दुखदलों और मैदानों में रात को दिखाई
 देता हुआ लुक जिसे आग समझकर लोग धोखा खाते हैं ।
 उ० उभय प्रकार प्रेतपावक ज्यों धन दुखप्रद स्रुति
 गायो । (वि० १।६६)
 प्रेम-(सं०)-अनुराग, स्नेह, प्रीति । उ० प्रेम प्रमोद परस्पर
 प्रगटत गोपहि । (जा० ६५)
 प्रेमा-दे० 'प्रेम' । उ० करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा ।
 (मा० २।३२।२)
 प्रेमु-दे० 'प्रेम' । उ० नेमु प्रेमु संकर कर देखा । (मा० १।
 ७।२)
 प्रेरइ-(सं० प्रेरणा)-१. प्रेरणा देती है, २. भेजती है । उ०
 २. रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई । (मा० ७।११।४) प्रेरत-
 १. प्रेरणा देते हैं, प्रेरित करते हैं, २. चलाते हैं, हिलाते
 हैं । उ० २. रूप निहारत पलक न प्रेरत । (गी० २।१४)
 प्रेरा-उसकाया, उभाड़ा, प्रेरणा दी । उ० जाइ सुपनखी
 रावन प्रेरा । (मा० ३।२।३) प्रेरि-प्रेरणा देकर, प्रेरित
 कर, उसका कर । उ० प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा ।
 (मा० १।५।३) प्रेरी-प्रेरित किया, प्रेरणा की, प्रेरा,
 उसकाया, आज्ञा दी । उ० श्रीपति निज माया तब प्रेरी ।
 (मा० १।१२।४) प्रेरे-प्रेरणा देने से, उसकाने या उभा-
 डने से । उ० लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे । (मा० ६।४।
 ५) प्रेरेउ-प्रेरणा दी, प्रेरा, उसकाया । उ० मसव पवन प्रेरेउ
 अपराधी । (वि० १।३।६) प्रेर्यो-दे० 'प्रेरेउ' । उ० प्रेर्यो
 जो परम मचंड मारुत कष्ट नाना तैं सद्यो । (वि० १।३।६)
 प्रेरक-(सं०)-किसी कार्य में प्रवृत्त या प्रेरणा करनेवाला,
 जो प्रेरणा देकर कोई कार्यदि करवाए, आज्ञा देनेवाला ।
 उ० तुलसिदास बस होइ तबहि जव प्रेरक प्रभु बरजै ।
 (वि० ८।६)
 प्रेरण-दे० 'प्रेरणा' ।
 प्रेरणा-(सं०)-१. कार्य में प्रवृत्त करना, उत्तेजना, देना,
 उभाड़ना, २. दबाव, ज़ोर ।

प्रेरित-(सं०)-१. भेजा हुआ, पठाया, २. जिसे किसी दूसरे से प्रेरणा मिली हो, उसकाया गया, ३. जिसे किसी ने आज्ञा दी हो, आज्ञा से। उ० १. कठिन काल प्रेरित चलि आई। (मा० १।१३।३) ३. तब प्रेरित मायाँ उपजाए। (मा० १।१३।२)

प्रोक्त-(सं०)-कहा हुआ, कहा गया, कहा। उ० रुद्राष्ट-कमिदं प्रोक्तं विप्रैश्च हरतोपधे। (मा० ७।१०।८। श्लो० ६)

प्रौढ़-(सं० प्रौढ)-१. बड़ा, अवस्था में अधिक, २. पुष्ट, मज्जबूत, ३. तगड़ा, मोटा, ४. साहसी, हिम्मती, ५. जवानी और बुढ़ापे के बीच की अवस्था, ६. गूढ़, रहस्य-

मय, गंभीर, ७. दृढ़, अटल। उ० १. प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। (मा० ७।११०।३) ७. प्रौढ़ अभिमान क्षितवृत्ति छीजै। (वि० ४७)

प्रौढ़ि-अभिमानयुक्त कथन, ठिठाई। उ० प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। (मा० १।२३।२)

प्लवंग-(सं०)-१. बंदर, मकई, बानर, २. दाहुर, ३. हरिन, ४. सूर्य का सारथी।

प्लव-(सं०)-१. नाव, नौका, डोंगी, २. मेंढक, ३. बंदर, ४. चांडाल, ५. बगुला, ६. सारस। उ० १. यत्पाद-प्लवमेकमेव हि भवाग्भोधेस्तितीर्षावतां। (मा० १। श्लो० ६)

फ

फंक-(?)-कवर, आस।

फग-(?)-१. कीट, कीड़ा, पतंग, २. फंदा, बंधन, ३. लफंगा, झूठा, गप्पी, ४. अनुराग, प्रेम। उ० २. बड़े बर-जोर परे फंग पाए। (क० ६।३७) ३. हौ भले नग-फंग परे गदीबै। (क० ११)

फंद-(सं० बंध)-१. पाश, बंधन, फंदा, जाल, २. झूल, घोखा, ३. फट, दुःख, ४. रहस्य, मर्म, गुप्त भेद। उ० १. मनहुँ मनोभई फंद सँवारे। (मा० १।२८।११)

फंदावत-(सं० बंध)-फँसते हैं, फंदे में डालते हैं। उ० फंद जनु चंदनि चनज फंदावत। (जा० १।२२)

फँसौरि-(सं० पाश)-फंदा, पाश। उ० पाँचसर सुफँसौरि। (ग० ७।१८)

फगुआ-(सं० फाल्गुन)-१. होली, होली का त्यौहार, २. एक दूसरे पर रंग आदि डालना। उ० २. लोचन आजहिं फगुआ मनाइ। (गी० ७।२२)

फजीहति-(अर० फज़ीहत)-दुर्दशा, दुर्गति। उ० अंत फजीहति होहिंगे गनिका के से पूल। (दो० ६५)

फटत-(सं० स्फटन)-फटता है, चिरता है, खंड-खंड होता है। उ० तिमिर-तोम फटत। (वि० १।२६) फटे-१. फटने पर, २. फटा, चिर गया, खंड-खंड हो गया। फटै-फट जाते हैं, तितर-बितर हो जाते हैं। उ० लिप नाम फटै मकरी के से जाले। (ह० १७) फट्यौ-फटे, फटे हुए। उ० कत बिमोह लट्यौ फट्यौ गगन मगन सियत। (वि० १।३२)

फटिक-(सं० स्फटिक)-संगमरमर, सफेद पत्थर। उ० फटिकसिला बैठे हौ भाई। (मा० १।२६।४)

फण-(सं०)-साँप का फन, भोग।

फणिक-(सं०)-१. साँप, सर्प, २. साँप का।

फणींद्र-(सं०)-साँपों का राजा, १. शेषनाग, अनंत, २. बासुकि नाग। उ० १. ब्रह्मा शंभु फणींद्र, सेन्यमनिशं वेदांत वेधं विभुम्। (मा० १।१।श्लो० १)

फणी-(सं० फणिन)-सर्प, साँप।

फन-(सं० फण)-साँप का फण, भोग। उ० जैसो अहि जासु गई मनि फन की। (गी० २।७१)

फनि-(सं० फणी)-साँप, सर्प। उ० राम-नाम महा मनि फनि जगजाल रे। (वि० ६७) फनिहि-साँप को, सर्प को। उ० तुलसी मनि निज दुति फनिहि व्याधहि देउ दिखाइ। (दो० ३।१५)

फनिक-दे० 'फणिक'। उ० १. तुलसी मनहुँ फनिक मनि हँदत निरखि हरषि हिय बायो। (गी० २।६८) फनिकन्ह-सर्पों ने, साँपों ने। उ० फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोई। (मा० १।३५।२) फनिकि-(सं० फणिक)-सर्पिणी, नागिन।

फनिकु-दे० 'फणिक'। उ० १. मनि बिलु फनिकु जिए दुख दीना। (मा० २।३३।१)

फनी-(सं० फणिन)-साँप, सर्प। उ० लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी। (गी० ७।५)

फनीश-(सं० फणीश)-सर्पों के राजा, १. शेषनाग, अनंत २. बासुकि नाग।

फनीस-दे० 'फणीश'। उ० १. बरनि न सकइ फनीस सारदा। (मा० ७।२२।३)

फधि-(सं० प्रभवन)-१. छवि, शोभा, २. अनुकूल। उ० १. अधन, अगुन, आलसिन को पालिबो फधि आयो रघुनायक नवीन को। (वि० २।७४) १. कहि न जाइ जो निधि फधि आई। (क० २।५)

फबी-१. शोभा, २. सुंदर, ३. फबना, सजना, ४. मज्जबूत। फबै-शोभा देते हैं, सुंदर लगें या लगते हैं। उ० तुलसी तीनिउ तब फबै। (दो० २।८५)

फर-दे० 'फल'। उ० १. बिलु फर बान राम तेहि मारा। (मा० १।२१।२) ४. जग-जय-मद निदरे सिहर, पायेसि फर तेउ। (पा० २।६) ५. असनु अमिअ सम कद मूल फर। (मा० २।१४।३) फरनि-१. फलनेवाला, २. 'फल' का बहुवचन, फलसमूह, ३. फलने, फलना। उ० ३. उकठे बितप लागे फूलन फरन। (वि० २।५७) फरनि-१.

फलों को, २. फलाव, फल आना, ३. फलों से । उ० १. दे० 'फरत उ० ३.' २. तरु फर्यौ है अदभुत फरनि । (गी० ११२४) ३. फिरि सुख-फरनि फरी । (गी० ११५५)

फरह-(सं० फल)-फलता है । उ० फरह कि कोदव बालि सुसाली । (मा० २१२६११) फरत-१. फलता है, फल देता है, २. फलते समय, ३. फल देता, फलता । उ० १. बिसु ही ऋतु तरुवर फरत । (दो० १७३) २. फरत करिनि जिमि हतेउ समूला । (मा० २१२६१४) ३. अभिमत फरनि फरत को । (गी० ६११२) फरहिं-फलते हैं । उ० फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । (मा० ७१२३११) फरहिं-फलता है । फरि-फलकर । फरी-१. फली, फल लगे, २. फली हुई, ३. फलती हुई । उ० १. जनक-मनोरथ कल्पबेलि फरी है । (गी० ११६०) फरे-फले, फल लगे । उ० कल्प तरु रूख फरे, री । (गी० ११७४) फरे-फलेगा, फल लगेगा । उ० सुरतरु सोउ विष फरनि फरै । (वि० १३७) फरैगो-फलेगा । उ० कुटिल कटुक फर फरैगो तुलसी करत अचेत । (दो० ४५२) फरो-फला, फला है । उ० मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो । (वि० २२६) फरयो-फला, फरा । उ० जनु सुभग सिगार-सिसु-तरु फर्यो है अदभुत फरनि । (गी० ११२४)

फरकह-(सं० स्फुरण)-फड़का करती है, काँपती है । उ० दहिनि आँखि नित फरकह मोरी । (मा० २१२०१३) फरकत-१. काँपता, फड़कता, हिलता, २. फड़क रहे थे, ३. फड़कते हैं, फड़कता है । उ० १. अरुन नयन चढ़ि श्रुकुटि, अधर फरकत भए । (पा० ६८) २. फरकत अधर कोष मन माहीं । (मा० ११३६११) फरकन-फरकने, फड़फड़ाने । उ० मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे । (मा० ११२३६) फरकहिं-फड़कते हैं, फड़क रहे हैं । उ० फरकहिं सुखद बिलोचन बाहु । (मा० २१२२५१) फरकि-फड़क, फड़फड़ा । उ० फरकि उठीं हैं भुजा बिसाला । (मा० ४१६१७) फरके-फड़के, फड़कने लगे । उ० फरके बाम बाहु लोचन बिसाल । (गी० ३१६) फरकेउ-फड़क उठे । उ० फरकेउ बाम नयन अरु बाहु । (मा० ६११००३)

फरसा-(सं० परशु)-फावड़ा, कुल्हाड़ी । उ० काल कराल वृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिपु धाप । (क० ११२२) फरहार-दे० 'फलहार' । उ० पूजि पितर सुर अतिथि, गुर लगे करन फरहार । (मा० २१२७६)

फराक (१)-(फ्रा० फराख)-१. खुली जगह, २. मैदान । फराक (२)-(फ्रा० फ्रक)-अलग, हटकर । उ० दूरि फराक रुचिर सो घाटा । (मा० ७१२६११)

फरित-(सं० फलित)-फला, फला हुआ । उ० बिलसति महि कल्पबेलि मुद-मनोरथ-फरित । (वि० १६) फर-दे० 'फल' । उ० २. नाम-प्रेम चारि फलहू को फर है । (वि० २५५)

फलैंग-(सं० फलन)-कूदने की क्रिया । उ० लागि फलैंग फलैंग हू ते घाटि नभतल भो । (हं० ५)

फल-(सं०)-१. हथियार की नोक या धार या उसका वह प्रधान भाग जो तेज़ या नौकीला रहता है । २. लाभ, ३.

कर्मभोग, ४. परिणाम, नजीजा, ५. पेड़-पौधों का फल, मेवा, फलहरी, ६. चार फल—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, ७. चौथा, चार । उ० २. बारि अधार मूल फल त्यारो । (मा० १११४४१) ६. राम नाम काम तरु देत फल चारि, रे । (वि० ६७) ७. मुनिफल बसु हर भाजु । (दो० ४५६) फलनि-फल का बहुवचन । उ० सुखमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फली । (पा० १३६) फलहू-फल भी । दे० 'फल' । उ० ६. नाम-प्रेम चारि फलहू को फर है । (वि० २५५)

फलइ-१. फलते हैं, फल देते हैं, २. फल ही । उ० २. एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं । (मा० ६१६०७०) १) फलत-१. फलने के समय, २. फलता है । उ० १. फूलत फलत भयउ विधि बामा । (मा० २१५६१२) फलहिं-फलते हैं । उ० फूलहिं फलहिं बिटप विधि नाना । (मा० २१३७३) फली-(सं० फल)-१. बीजदार फल, छीमी, २. फलयुक्त हुई । उ० २. सुखमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फली । (पा० १३६) फलै-फलते हैं । फलै-१. फलयुक्त हों, २. सफल होते हैं, सफल मनोरथ होते हैं, ३. फलते हैं । उ० २. फलै फलै फलै खल, सीदैं साधु पल पल, खाती दीपमालिका ठाइयत सुप है । (क० ७१७७१)

फलदायक-(सं०)-फल देनेवाला । उ० फलदायक फल चारि के दूसरथ-सुत चारी । (गी० ११६)

फलहार-(सं० फलाहार)-फलों का भोजन । फलाँग-दे० 'फलैंग' । फलित-(सं०)-१. फला हुआ, २. संपन्न, पूर्ण । उ० १. फलित बिलोकि मनोरथ बेली । (मा० २११४) फलु-दे० 'फल' । उ० ४. तस फलु उन्हहि देउ करि साका । (मा० २१३३४)

फहम-(अर० फहम)-१. अनुमान, अटकल, २. ज्ञान, विचार । उ० २. मोहिं कछु फहम न तरनि तमी को । (वि० २६५)

फहराहीं-(सं० प्रसरण)-१. फहराते हैं, उबते हैं, २. प्रसन्नता से रोमांचित होते हैं । उ० १. सरब करहिं पाइक फहराहीं । (मा० १३०२४)

फाँस-(सं० पाश)-१. बंधन, जाल, पाश, २. काँटा । उ० १. माधव ! मोह फाँस क्यों टूटै ? (वि० ११५)

फागु-(सं० फाल्गुन)-होली, फगुआ, फागुन में होनेवाला एक प्रसिद्ध त्यौहार । उ० नगर नारि नर हरषित सब चले खेलन फागु । (गी० ७१२१)

फाटत-(सं० स्फाटन)-फट जाता है, खंड-खंड होता है । उ० नहिं फाटत हियो । (वि० १३६) फाटहु-फट जाय, फटे । उ० हिय फाटहु, फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम । (दो० ४१) फाटी-फट जाता है । उ० जिमि रवि उरै जाहिं तम फाटी । (मा० ६१६७१)

फावी-(सं० प्रभा)-फब गई, ठीक बैठ गई, सुंदर लगी, अच्छी लगी । उ० कुमतरि कसि कुबेषता फावी । (मा० २१२५४)

फारहिं-(सं० स्फाटन)-फाड़ते हैं । उ० धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अतावरि मेलहीं । (मा० ६१८१७०)

१) फारै-१. फाड़ बाजे, २. फाड़ेगा, ३. फाड़ता है। उ०
 १. चारिहु को झुहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ
 ज्यों फारै। (क० ७।१०४)
 फिर-(सं० प्रेरणा)-१. पुनः, पुनि, पीछे, इसके बाद, २. एक
 बार और, फिर, दोबारा, लौटकर, घूमकर, उलटकर।
 ४. लौट, घूम। फिरइ-लौट आवे, लौटे। उ० फिरइ त
 होइ प्रान अवलंबा। (मा० २।२२।३) फिरउँ-फिरूँ, लौट
 आउँ। फिरत-१. फिरता है, बोलता है, चलता है, विच-
 रता है, २. लौटने में, फिरने में। उ० १. फिरत सनेह मगन
 सुख अपनै। (मा० १।२२।४) २. फिरत लाज कछु करि
 नहि जाई। (मा० १।२६।३) फिरती-लौटती, आती।
 उ० फिरती बार मोहि जो देवा। (मा० २।१०।२।४)
 फिरहीं-१. फिरते हैं, घूमते हैं, २. लौटते हैं। उ० तुम्ह से
 खल मृग खोजत फिरहीं। (मा० ३।१६।५) फिरहु-१.
 फिरो, घूमो, २. लौट जावो, लौटो। उ० २. फिरहुत सब
 कर मिटे खभारू। (मा० २।६७।२) फिरा-१. फलत
 गया, २. घूमा, ३. लौट गया। उ० १. फिरा
 करसु प्रिय लागि कुचाली। (मा० २।२०।२) फिरि
 (१)-लौटकर, फिरकर। उ० पुनि फिरि भिरे प्रबल
 हनुमाना। (मा० ६।६५।३) फिरिअ-फिरे, लौटे। उ०
 जो एहि मारग फिरिअ बहोरी। (मा० २।११।१)
 फिरिय-लौट जाइए। फिरिहि-फिरेंगे, घूमेंगे, भटकेंगे।
 उ० फिरिहि मृग जिमि जीव दुखारी। (मा० १।४३।४)
 फिरिहि-फिरेगी, उलटेगी, बदलेगी। उ० फिरिहि दसा
 बिधि बहुरि कि मोरी। (मा० २।६२।४) फिरिहँ-लौटेंगे।
 उ० फिरिहँ किधौ फिरन कहिहँ। (गी० २।७०) फिरें-
 १. लौटे, घूमे, २. फिर जाने पर। उ० २. समय फिरें रिपु
 होहि पिरीते। (मा० २।१७।३) फिरें-१. लौटे, २. लौटने
 पर। उ० १. फिरें सराहत सुंदरताई। (मा० २।१०।४)
 फिरेंउँ-फिरा, फिरता रहा, घूमता रहा। उ० सकल सुवन
 मैं फिरेंउँ बिहाला। (मा० ४।६।६) फिरेंउ-फिरे, लौटे।
 उ० फिरेंउ बनिक जिमि मूर गवाँई। (मा० २।६५।४)
 फिरहु-लौटना, लौट आना। उ० रथ चढ़ाई देखाइ बनु
 फिरहु गएँ दिन चारि। (मा० २।२१) फिरें-१. फिरे,
 २. फिरना। उ० २. जनकु प्रेम बस फिरै न चहहीं। (मा०
 १।३४०।२) फिरौ-१. फिरा, लौटा, २. विमुख। उ० २.
 जो तोसों हो तो फिरौ मेरो हेत हिया रे। (वि० ३३)
 फिरि (२)-(सं० प्रेरणा)-पुनः, फिर। उ० अदुकि परहि
 फिरि हेरहि पीछे। (मा० २।१४३।३)
 फीक-दे० 'फीका'। उ० २. तुलसी पहिरिय सो बसन जो
 न पखारत फीक। (दो० ४६६)
 फीका-(सं० अपक्व ?)-१. नीरस, स्वादहीन, २. जिसका
 रंग चटक न हो, धूमिल, ३. जो अच्छा न लगे। उ०
 १. सरस होउ अथवा अति फीका। (मा० १।२।६)
 फीकी-'फीका' का स्त्रीलिंग। उ० ३. तिनहि कथा सुनि
 लागहि फीकी। (मा० १।६।३) फीके-दे० 'फीका'। उ०
 ३. जोरे नये नाते नेह फोकट फीके। (वि० १७६)
 फीकी-दे० 'फीका'।
 फीरोजा-(क्रा० फीरोजा)-हरापन लिए नीले रंग का
 बेशकीमत पत्थर।

फुंकरत-(सं० फूकार)-१. फूकारता है, २. फूकारते हुए,
 फुफकारते हुए। उ० २. तब चले बान कराल फुंकरत
 जनु बहु ब्याल। (मा० ३।२०।१)
 फुंकार-(सं० फूकार)-फुफकार, 'फू' 'फू' का शब्द।
 फुर-(सं० स्फुरण)-सत्य, यथार्थ, ठीक, साँच। उ० बामदेव
 फुर, नाम काममद मोचन। (पा० ५२) फुरे-सच्चे। उ०
 जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन रिपु माने फुरे। (मा०
 ६।६६। ४०१)
 फुरि-सचमुच, सच। उ० कब ऐहैं मेरे लाल कुसल धर
 कहहु काग फुरि बाता। (गी० ६।१६)
 फुरी-दे० 'फुरि'।
 फुरै-सच्चे, सत्य। उ० जासों सब नातो फुरै तासों न करी
 पहचानि। (वि० १६०)
 फुलवाई-(सं० फुल्ल)-उपवन, फुलवाड़ी। उ० गए रहे
 देखन फुलवाई। (मा० १।१५।२)
 फुलाई-(सं० फुल्ल)-फुलाकर। उ० बचन कहहि सब गाल
 फुलाई। (मा० ६।६।३) फुलाउव-१. फुलाऊँगा, २.
 फुलाकर, ३. फुलाना। उ० ३. हँसब ठाई फुलाउव
 गाला। (मा० २।३।३) फुलाए-फुलाया, फुला लिया।
 उ० हरपित खगपति पख फुलाए। (मा० ७।३।१)-
 फुलावौ-प्रफुल्लित करूँ। उ० तुलसी भनित भली भामिनि
 उर सो पहिराइ फुलावौ। (गी० १।१५)
 फुल्ल-(सं०)-१. प्रसन्न, २. फूला हुआ।
 फूंक-(अनु० फू फू)-१. फूंकना, २. फूंककर, उ० २. मसक फूंक
 मसक मेह उड़ाई। (मा० २।२३।२) फूँकि-फूँककर, फूँक
 से। उ० चहत उड़ावन फूँकि पहारू। (मा० १।२७।३।१)
 फूट-(सं० स्फुटन)-१. मेल का न होना, २. फूट गया,
 खंडित हो गया। उ० २. कूबर टूटेउ फूट कपारू। (मा०
 २।१६।३) फूटहि-फूटते हैं, फूट रहे हैं। उ० रावन आगें
 परहि ते जनु फूटहि दधिकुंड। (मा० ६।४४) फूटहु-१.
 फूट जावे, फूटे, २. फूटो। उ० १. हिय फाटहु फूटहु नयन
 जरउ सो तन केहि काम। (दो० ४१) फूटि-फूटकर,
 खंडित होकर, टूटकर। उ० महा वृष्टि चलि फूटि
 किआरी। (मा० ४।१५।४) फूटिहि-फूटेगी, नष्ट हो
 जायगी। उ० अवस राम के उठत सरासन टूटिहि। गव-
 निहि राज समाज नाक असि फूटिहि। (जा० ६२) फूटी-
 १. फूट गई, २. फूटने का, आँख फूटने का। उ० २.
 लोकरीति फूटी सहेँ आँजी सहेँ न कोइ। (दो० ४२३)
 फूटे-१. फूट गए, टूट गए, २. अपने पक्ष से फूटकर शत्रु-
 पक्ष से मिल गए, ३. बेधकर, छेदकर, पारकर, ४. अपना
 चिह्न बना सके। उ० ४. जिन्ह के दसन कराल न फूटे।
 (मा० ६।२५।३) फूटेहु-फूटे हुए या फूटी हुई भी। उ०
 फूटेहु बिलोचन पीर होत हितकरिये। (वि० २७१)
 फूरति-(सं० स्फुरण)-स्फुरित होती है, विकसित होती
 है। उ० नील नलिन स्याम, सोभा अगनित काम, पावन
 हृदय जेहि उर फूरति। (क० २२)
 फूल-(सं० फुल्ल)-१. पुष्प, कुसुम, २. खुशी, प्रफुल्ल होने
 का भाव, ३. गर्व, घमंड। उ० १. सम जम नियम फूल
 फल ग्याना। (मा० १।३७।७) ३. सबहि भाँति सब कहँ
 सुखद दलनि फलनि बिनु फूल। (दो० ५२६)

फूलह-(सं० फूलह)-१. फूलता है, २. गर्व से भर जाता है, ३. प्रसन्न होता है । उ० १. फूलह फरह न बेत जदपि सुधा बरषहि जलद । (मा० ६।१६ ख) फूलत-१. फूलता है, २. फूलते हुए, ३. फूलने के समय । उ० ३. फूलत फूल मयउ विधि बामा । (मा० २।५१२) फूलहि-फूलते है, पुष्पित होते हैं । उ० फूलहि फलहि बिटप विधि नाना । (मा० २।१३७३) फूला-१. फूल गया, पुष्पित हो गया, फूल चुका, २. फूल, पुष्प । उ० १. मोर मनोरथ सुरतरु फूला । (मा० २।२६१४) २. जलु सनेह सुरतरु के फूला । (मा० २।५३।२) फूली-१. फूलकर, २. गर्व कर, ३. प्रसन्न होकर । फूली (?) - १. फूल गई, २. गर्व से भर गई, ३. फूलकर, ४. गर्व से भर कर । उ० ४. जेहि दिसि बैठे नारद फूली । (मा० १।१३५।१) फूले-१. फूल गए, पुष्पित हुए, २. गर्व से भर गए, ३. फूले हुए, फूलकर, ४. गर्व से भर कर, घमंड में फूलकर, ५. प्रसन्न । उ० १. सरनि सरोज बिटप बन फूले । (मा० २।१२४।४) ५. जे जे हैं निहाल किए फूले फिरत पाए । (वि० ८०) फूलेउ-फूला हो । उ० मनहुँ काम आराम कल्पतरु फूलेउ । (जा० १४०)

फेट-(?)-फेरा, घुमाव, २. कमरबंद, कटिबंधन, ३. पट्टका, ४. पल्ला, ५. कमर में लपेटा गया धोती का भाग । उ० ५. सधन चोर मन मुदित मन धनी गही ज्यों फेट । (दो० २०७)

फेकरहि-(?)-रोते हैं, चिल्लाते हैं । उ० कहु कुठायँ करदा रदहि फेकरहि फेर कुभाँति । (म० ३।१।५) फेकरि-रोकर, चिल्लाकर । उ० फेकरि फेकरि फेर फारि-फारि पैट खात । (क० ६।४६)

फेन-(सं०)-आग, गाज, बुलबुलों का समूह, समुद्रकफ, जल-विकार । उ० सुभग सुरभिमय फेन समाना । (मा० १।३५६।१) विशेष-फेन बहुत कोमल होता है पर जो नमुचि असुर वज्र से भी नहीं भरता था इंद्र द्वारा समुद्र के फेन से मारने पर ही मर गया था । उ० अजर अमर

कुलिसहुँ नाहिन वध सो पुनि फेन मर्यौ । (वि० २३६)

फेनु-दे० 'फेन' ।

फेनु-दे० 'फेन' । उ० जलधि अगाध मौलि बह फेनु । (मा० १।१६७।४)

फेर-(सं० प्रेरण, हि० फेरना)-१. पुनः फिर, बहुरि, २. चक्र, घुमाव, ३. कठिनाई, ४. और, तरफ । उ० ४. प्रभु आगवन जनाव जलु नगर रम्य चहुँ फेर । (मा० ७।१। दो० २)

फेरह-(सं० प्रेरण)-फेरता है, घुमाता है । उ० सुरतरु सुर बेलि पवन जलु रुख फेरह । (जा० १२१) फेरत-१. फेरते हैं, घुमाते हैं, २. फेरते हुए, फेरने से, ३. लौटाते हैं । उ० १. कर कमलनि धनु सायक फेरत । (मा० २।२३।१) ४) २. चले भाजि गज बाजि फिरत नहि फेरत । (पा० ११६) फेरति-फेरती है, लौटाती है । उ० फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी । (मा० २।२३।३) फेरि-फिर, पुनः । उ० कृदि धरहि कपि फेरि चलावहि । (मा० ६।४।१४) फेरिअ-फेरिए, लौटा दीजिए । उ० फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी । (मा० २।८२।१)

फोकट-(सं० वल्कल)-१. बिना मूल्य का, व्यर्थ, २. सूठा, असत्य, ३. सारहीन । उ० २. जोरे नये नाते नेह फोकट फीके । (वि० १७६)

फोरह-(सं० स्फोटन)-फोड़ता है, टूक टूक करता है । फोरहि-फोड़ते हैं । उ० फोरहि सिल लोढ़ा सदन लागे अहुक पहार । (दो० ५६०) फोरा-फोड़ दिया । उ० राखा जिअत आँखि गहि फोरा । (मा० ६।३६।६) फोरि-फोड़ कर, तोड़कर । उ० पर्वत फोरि करहि गहि बाटा । (मा० ६।४।१३) फोरी-१. फोड़ दी, २. फोड़नेवाली । उ० २. पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी । (मा० २।१४।४) फोरै-१. फोड़े, टुकड़े टुकड़े करे, २. फोड़ने । उ० २. फोरै जोगु कपार अभागा । (मा० २।१६।१)

फौज-(अर० फौज)-१. सेना, २. ऊँड, समूह । उ० १. अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई । (मा० ६।७६।६)

ब

बंचेहु-(सं० बंचन)-ठगा, ठगा है । उ० बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा । (मा० १।१३७।३)

बंजुल-(सं० बंजुल)-१. बेंत, २. गुच्छा । उ० १. बंजुल मंडु, बकुल कुल सुरतरु, ताल, तमाल । (गी० २।४७)

बंटावन-(सं० वितरण)-बंटानेवाला, बाँट लेनेवाला । उ० बिपति बंटावन बंधु-बाहु बिनु करौ भरसो का को ? (गी० ६।७)

बंटैया-बंटानेवाला, सहयोगी, साझेदार । उ० तात न मात न स्वामि सखा सुत बंधु विसाल बिपति बंटैया । (क० ७।२५)

बंद (१)-(क्रा०)-१. बंधन, क़ैद, २. प्रतिज्ञा, क़ौल,

करार, ३. यंत्र, ताला, ४. अवयव, अंग, ५. नस, नाड़ी, ६. आधार, सहारा ।

बंद (२)-(सं० बंध)-भाग, शाखा । उ० नगर-रचना सिखन को बिधि तकत बहु बिधि बंद । (गी० ७।२३)

बंदह-(सं० बंदन)-बंदना करते हैं, झुकते हैं, नमस्कार करते हैं । उ० देह जानि सब बंदह काहु । (मा० १।२८।३) बंदउ-बंदना करता हूँ, प्रणाम करता हूँ । उ० बंदउ संत समान चित हित अनहित नहि कोइ । (मा० १।३ क) बंदत-प्रणाम करता है, बंदना करता है । उ० मनसा वाचा कर्मना, तुलसी बंदत ताहि । (बै० २६) बंदि (१)-(सं० बंदन)-बंदना करके,

पूजकर । उ० बिधिदि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा । (मा० ११२७७५) बंदिअ-बंदना करते हैं, आदर करते हैं । उ० दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग । (मा० १११० क) बंदे-बंदना की, स्तुति की । उ० पुनि पुनि पारबती पद बंदे । (मा० ११६६११) बंदन-(सं० बंदन)-१. सिंदूर, हंगुर, २. बंदना, प्रणाम । उ० १. बंदन बंदि अंधि बिधि करि धुव देखेउ । (मा० ११६६) बंदनवार-(सं० बंदन + माला)-तोरण, द्वार पर बाँधी जाने-वाली फूल-पत्तों की माला । उ० बंदनवार बितान पताका घर घर । (जा० २०६) बंदना-(सं० बंदन)-नमस्कार, प्रणाम, स्तुति । बंदनिवार-दे० 'बंदनवार' । उ० रचे हचिर बर बंदनिवारे । (मा० ११२८६११) बंदनीय-(सं० बंदनीय)-बंदना करने योग्य, सराहनीय । उ० बंदनीय जेहि जग जस पावा । (मा० ११२१३) बंदारु-(सं० बंदारु)-बंदना करनेवाला । उ० बहुल बंदारु-द्वारका दृ-द-पद-द्वंद । (वि० ५४) बंदि (२)-(सं० बंदी)-कैद किया हुआ, मुजरिम । बंदि (३)-(सं० बंदी)-भाट, राजाओं की बड़ाई करनेवाली एक जाति । उ० बंदि मागधन्हि गुन गन गाए । (मा० ११३५८३) बंदिन्ह-बंदी जनों ने, भाट लोगों ने । उ० तब बिदेहपन बंदिन्ह प्रगटि सुनायउ । (जा० ६८) बंदिगृह-(सं०)-कैदखाना, जेल । उ० भरतु बंदिगृह सेइहहि लखनु राम के नेब । (मा० २११६) बंदिछोर-बंधनों से छुड़ानेवाले, मुक्तिदाता । उ० उथपे-थपन, थपे-उथपन पन बिबुधदृ-बंदिछोर को । (वि० ३१) बंदिनि-बंदना या आदर के योग्य, पूज्य । उ० नर-नाग-बिबुध बंदिनि जय जहुवालि का । (वि० १७) बंदी (१) (फ्रा)-कैदी, जो कैद हो । बंदी (२)-(सं०)-एक चारणों की जाति, भाट, मागध । उ० बंदी बेद पुरान गन कहहि बिमल गुन ग्राम । (मा० २११०५) बंदा (३)-(सं० विदु)-एक आभूषण । बंदिछोर-कैद से छुड़ानेवाले । उ० केसरी-किसोर, बंदिछोर को निवाजे सब । (ह० १३) बंदीजन-भाट, प्रशंसक, मागध । उ० मागध सूत बिदुप बंदीजन । (मा० ११३०६१३) बंध-बंदना करने योग्य, पूज्य । उ० देव-सुनि-बंध किए अवधबासी । (वि० ४४) बंध-(सं०)-१. बंधन, बाँधने की रस्सी आदि, २. कैद, ३. उत्पत्ति, ४. धारा, ५. रोध, रोक । उ० १. तेहि के रचि पचि बंध बनाए । (मा० ११२८८२) बंधन-(सं०)-१. बाँधने की क्रिया, २. बाँधने की रस्सी आदि, ३. त्रह जो किसी की स्वतंत्रता आदि में बाधक हो । ४. शरीर का स्थि-स्थान, जोड़, ५. कैद, जेल । उ० ४. हाँक सुनत दसकंध के भए बंधन ढीले । (वि० ३२) बंधाइअ-(सं० बंधन)-बंधाइए । उ० एहि बिधि नाथ पयोधि बंधाइअ । (मा० ११६०१२) बंधायउ-बंधाया, बंधा

लिया । उ० जेहि बारीस बंधायउ हेलाँ । (मा० ६१६३) बंधाया-बंधन में डलवाया, बंधवाया । उ० लोभ पाँस जेहि गर न बंधाया । (मा० ४१२१३) बधायो-बंधाया, बंधवाया । उ० कौतुकहीं पाथोधि बंधायो । (मा० ६१६११) बंधावा-बंधवाया । उ० प्रभु कारज लागि कपिहि बंधावा । (मा० ११२०१२) बंधान-(सं० बंधन)-१. नियम, सिद्धांत, परिपाटी, २. नियत आजीविका, ३. किसी बात का निश्चय, ४. लेन-देन या व्यवहार आदि की नियत परिपाटी । उ० १. नागर नट चितवहि चकित उगाहि न ताल बंधान । (मा० ११३०२) बंधु-(सं०)-१. भाई, भ्राता, २. मित्र, ३. सहायक, ४. पिता, ५. बंधूक नाम का फूल, ६. नीच, ७. अपने लोग । उ० १. बंधु गुरु जनक जननी बिधाता । (वि० ११) ६. छुअ बंधु तैं बिप्र बोलाई । (मा० १११७४११) बंधुना-भाई द्वारा, भाई से । उ० पाषो नाराच चापं कपि निकरयुतं बंधुना सेन्यमानं । (मा० ७११२००१) बंधुक-(सं०)-गुल दुपहरिया का फूल या पौधा । उ० बंधुक-सुमन-अरुन पद पंकज अंकुस प्रमुख चिह्न बनि आए । (गी० ११२३) बंधुजाव-(सं०)-दे० 'बंधुक' । बंधुर-(सं०)-१. मुकुट, २. बहरा, ३. सुंदर, रम्य, ४. स्त्रीचिह्न । बंधुक-(सं०)-१. दे० 'बंधुक', २. लाल छींट, लाल बूटी । बंधउ-(सं० बंधन)-बंध गये, फँस गये । उ० बंधेउ सनेह विदेह विराग विरागेउ । (जा० ४६) बंधो-१. बंधा हुआ, २. फँसा, लगा, अटका । बंधो-(सं० बंधु)-हे बंधु, हे भाई । उ० नत ग्रीव-सुग्रीव-दुःखैक-बंधो । (वि० २७) बंध्या-(सं०)-वह स्त्री जिसे संतान न हो सके, बाँझ । उ० बंध्यासुत बरु काहुहि मारा । (मा० ७११२२१८) बंध-(ध्व०)-१. युद्ध आदि में वीरों को उसाहवर्द्धक शब्द, २. नगारा, डका । उ० १. कृपत कबंध के कदंब बंध सी करत । (क० ६१४८) बंध-(सं० बंध)-बाँस नाम का पेड़ । उ० उपजेहु बंस अनल कुल घालक । (मा० ६१२११३) बंधी-(सं० बंधी)-मछली फँसाने का एक औजार । उ० जन-मन-मीन हरन कहँ बंधी रची सँवारि । (गी० ७१२१) बँसुला-दे० 'बसुला' । उ० तेहि हमार हित कीन्ह बँसुला । (मा० २१२१२२) बई-(सं० वपन)-बोया, बीज डाला । उ० कामधेनु-धरनी कलि-गोमर-बिबस बिकल, जामति न बई है । (वि० १३६) बए-(सं० वचन)-कहा, बखाना । उ० बंदिन्ह बाँकुरे बिरद बए । (गी० १३) बक (१)-(सं० बक)-बगला । उ० हंसहि बक दाहुर चात-कही । (मा० ११६११) बकउ-बगला भी । उ० काक होहि पिक बकउ मराला । (मा० ११३११) बक (२)-(सं० बक)-बकना, गपशप, व्यर्थ की बातें ।

बकता-दे० 'बक्ता' । उ० ते श्रोता बकता समसीला ।
(मा० १३०।३)

बकध्यानी-बगुला भगत, पाखंडी ।

बकसत-(क्रा० बखश)-दान देते हैं, ईनाम देते हैं । उ०
प्रभु बकसत गज बाजि बसनमनि, जय-धुनि गगन निसान
हये । (गी० १।४३)

बकसीस (क्रा० बखशिश)-१. इनाम, पारितोषिक, २.
दान । उ० १ भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा । (मा० १।
३०६।२)

बकहि-बक, व्यर्थ का बड़-बड़ कर । उ० तुलसिदास जनि
बकहि, मधुप सठ ! हठ निसि दिन अँवराई । (कृ० ५१)
बकहि-बकती है, बड़-बड़ करती है । उ० ठाली ग्वालि
ओरहने के मिस आइ बकहि बेकामहि । (कृ० ५) बकि-
(सं० वच्)-बक, बड़बड़ा, व्यर्थ प्रलाप कर । उ० बकि
जनि उठहि बहोरि । (पा० ७३) बकयो-बकवाद किया,
बका, कहा । उ० जीह हू न जप्यो नाम, बकयो आउ
बाउ मै । (वि० २६१)

बकिहि-(सं० वक)-बगली को । उ० बकिहि सराहइ मानि
मराली । (मा० २।२०।२)

बकी-(सं० वकी)-पूतना, बकासुर की बहिन । उ० बकी
बक भगिनी काहू ते कहा डरैगी ? (ह० २५)

बकुचौही-(पुर० बुकचा)-गठरी की भाँति । उ० राखी सचि
कूबरी पीठ पर ये बातें बकुचौहीं । (कृ० ४१)

बकुल (१)-(सं०)-मौलश्री का पेड़ या फूल । उ० रोपे
बकुल कदंब तमाला । (मा० १।३४४।४)

बकुल (२)-(सं० वक)-बगला ।

बकैयाँ-(?)-दोनों हाथ तथा पैर के सहारे लड़कों के चलने
का ढंग ।

बक्ता-(सं० वक्ता)-बोलने या कहनेवाला ।

बक्त्र-(सं०)-मुख, आनन । उ० बक्त्र-आलोक त्रैलोक्य-
सोकापहं, मार रिपु-हृदय-मानस-मरालं । (वि० ५१)

बक्र-(सं० वक्र)-१. टेढ़ा, कुटिल, २. टेढ़ाई, कुटिलता ।
उ० १. बक्र चंद्रमहि असह न राहू । (मा० १।२८।१।३)
२. तुलसी यह निहचय भई, बाढ़ि लेति नव बक्र । (दो०
५३७)

बखसीस-(फा० बखशिश)-दिया हुआ धन, ईनाम, पारि-
तोषिक । उ० बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत ।
(क० ६।१०)

बखान-(सं० व्याख्यान)-१. वर्णन, कथन, २. तारीफ,
कीर्तन, यश गाना । उ० २. नर कर करसि बखान । (मा०
६।२५)

बखानउ-बखानता हूँ । उ० अस तव रूप बखानउँ जानउँ ।
(मा० ३।१३।७) बखानत-१. वर्णन करते हुए, २. बखा-
नते हैं । उ० १. बाहर भीतर भीर न बने बखानत ।
(जा० १४) बखानहि-बखानते हैं, बड़ाई करते हैं । उ०
प्रगट बखानहि राम सुभाऊ । (मा० ५।२२।१) बखानहीं-
बखानते हैं, यश गाते हैं, प्रशंसा करते हैं । उ० 'काहू न
कीन्देउ सुकत' सुनि सुनि सुदित चुपहि बखानहीं । (जा०
१८) बखानहु-वर्णन कीजिए, बयान करो । उ० तिन्ह
कर सहज सुभाब बखानहु । (मा० ७।१२।१।३) बखाना-

१. कहा, वर्णन किया, २. कहा जाता है, ३. यश गाया,
बड़ाई की । उ० २. कलि छग सोइ गुनवंत बखाना । (मा०
७।६८।३) ३. राम जासु जस आपु बखाना । (मा० १।
१७।५) बखानि-१. बखानकर, सराहना कर, २. विस्तार
से, ३. प्रशंसा करते हुए, बखानते हुए, ४. बखानी, वर्णन
की । उ० २. कहा सुसुंढि बखानि । (मा० १।१२०।ख)

४. परेउ-दुंदुं जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि ।
(मा० २।११०) बखानिय-१. वर्णन किया है, २. वर्णन
किया जाय, ३. बखानकर, प्रशंसा कर । उ० ३. गौरी
नैहर केहि बिधि कहहुँ बखानिय । (पा० ६८) बखानिहँ-
बखानेंगे, वर्णन करेंगे । उ० त्रैलोक पावन सुजसु सुर
मुनि नारदादि बखानिहँ । (मा० ४।३०।कं० १) बखानी-
वर्णन की, कही, गायी । उ० जाइ न कोटिहुँ बदन
बखानी । (मा० १।१००।४) बखाने-बखान किया, बड़ाई
की । उ० राज सभाँ रघुबीर बखाने । (मा० १।२६।४)

बखानै-वर्णन करे, कहे, यश गावे । उ० षट रस बहु
प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै । (वि० १२३)
बखानो-१. वर्णन करो, २. सराहो, सराहना करो । उ०
१. तौ सकोच परिहरि पालागौ परमारथहि बखानो ।
(कृ० ३५) बखान्यो-बखाना है, वर्णन किया है । उ०
होइ न बिमल बिबेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो ।
(वि० ८८)

बखार-(सं० प्राकार)-गल्ला रखने का स्थान, अमार ।
बखारहीं-बखारों में । दे० 'बखार' । उ० बिबिध बिधान
धान बरत बखारहीं । (क० ५।२१)

बग-(सं० वक)-बगला नाम का पक्षी । उ० बग उलूक
भगरत गये, अवध जहाँ रघुराउ । (प्र० ६।६।२)

बगध्यानी-बगले की तरह ध्यान धरनेवाला, पाखंडी । उ०
तब बोला तापस बगध्यानी । (मा० १।१६२।३)

बगपाती (?) -कच्चा, काँख ।

बगमेल-(सं० बलगा + मेल)-१. बाग मिलाकर या घोड़े
की बाग ढीली करके, २. एक पंक्ति बनाकर, ३. एक साथ
धावा करना । उ० १. हरषि परसपर मिलन हित कछुक
चले बगमेल । (मा० १।३०।५)

बगरि-(सं० विकिरण)-फैलकर, पसरकर । उ० जाको
जस लोक बेद रह्यो है बगरि सो । (वि० २६४) बगरि-
फैले, बिखरे, पसरे । उ० बगरे नगर निछावरि मनिगन
जनु खवारि जव धान । (गी० १।२)

बगुरा-(?) -फंदा, जाल, पाश ।

बगुरा-फंदा, जाल ।

बगूला-दे० 'बघूरा' ।

बघनहा-(सं० व्याघ्र + नख)-१. बाघ का नाखून, २ एक
प्रकार का हथियार जो बाघ के पंजे की भाँति होता है,
३. एक सुगंधित द्रव्य, ४. एक आभूषण जिसमें बाघ के
नाखून मढ़े रहते हैं । उ० ४. कठुला कंठ बघनहा नीके ।
(गी० १।२८)

बघूर-दे० 'बघूरा' । उ० तुलसी अघबर के भए, ज्यौ बघूर
को पान । (सं० ३८६)

बघूरा-(सं० वायु + गोल)-बवंडर, वातचक्र, धूमती हुई
हवा । बघूरे-दे० 'बघूरा' । बघूरे में, बवंडर में । उ० चढ़े

बचूरे चंग ज्यों, ज्ञान ज्यों सोक-समाज । (दो० ११३)
 वच-(सं० वचः)-१. वचन, बात, वाणी, २. वाक्य । उ०
 १. मन वच क्रम बानी छाडि सथानी सरन सकल सुर
 जूया । (मा० ११२६१ छं० ३)
 वचइ-दे० 'वचै' । उ० वचइ काल-क्रम दोख तें । (सं०
 ६०७) वचउँ-(सं० वचन)-१. वचता हूँ, वच रहा हूँ,
 २. टाल देता हूँ, तरह देता हूँ । उ० १. बिप्र बिचारि
 वचउँ नृप द्रोही । (मा० ११२७६३) वचा (?)-शेष
 रहा, बाकी वचा । उ० तुलसी सब सूर सराहत हूँ 'जग
 में बलसालि है बालि-वचा' । (क० ६१५) वचे-१.
 रक्षित हुए, वच गए, शेष रहे, उबरे, २. भिन्न हुए, छूटे,
 अलग हुए । उ० १. सहसबाहु दुस बदन आदि नृप वचे
 न काल बली ते । (वि० १६८) वचै-वचा । दे० 'वचै' ।
 वचौ-१. वचता हूँ, हटता हूँ, २. वचूँ, वच जाऊँ ।
 वचन-(सं० वचन)-१. बात, वाणी, बोल, २. कौल,
 प्रतिज्ञा, ३. होइ, शर्तें । उ० १. तौ क्यों बदन देखावतो
 कहि वचन ह्या रे । (वि० ३३) वचनहि-वचन के लिए ।
 उ० तजे रामु जेहि वचनहि लागी । (मा० २१७४२)
 वचना-दे० 'वचन' । उ० १. सुनि सिव के अमभंजन
 वचना । (मा० ११११४)
 वचनि-बोलनेवाली । उ० बार-बार कह राउ सुमुखि सुलो-
 चनि पिक वचनि । (मा० २१२५)
 वचनु-दे० 'वचन' । उ० २. सुत सनेहु इत वचनु उत
 संकट परेउ नरेसु । (मा० २१४०)
 वचा (२)-(सं० वत्स)-वच्चा, शिशु, बालक ।
 वचावन-(सं० वचन) वचाने, रक्षा करने । उ० सचिव
 बोलि सठ लाग वचावन । (मा० ११५६५) वचावा-१.
 वचाया, रक्षा की, २. वचाता जाता है । उ० २. करि छल
 सुभर सरीर वचावा । (मा० ११५७२)
 वचासि-बातों से, बात करके ।
 वच्छ-(सं० वत्स)-१. वच्चा, शिशु, २. पुत्र, लड़का, बेटा,
 ३. प्रिय, प्यारा, स्नेही, ४. बछड़ा, गाय का बच्चा । उ०
 २. अजहुँ वच्छ बलि धीरज धरहु । (मा० २१६५३) ४.
 भाव वच्छ सिसु पाइ पेन्हाई । (मा० ७११७६) वच्छ-
 पद-बछड़े के पैर का पृथ्वी पर बना हुआ चिह्न ।
 वच्छल-दे० 'बछल' ।
 वच्छलता-दे० 'बछलता' ।
 वच्छु-(सं० वत्स)-बछड़ा । उ० सुमिरि वच्छु जिमि धेनु
 लबाई । (मा० २१४६२)
 बछर-(सं० वत्स)-बाछा, बछवा । उ० बछर छबीलो
 छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाइ । (गी० ११६)
 बछल-(सं० वत्सल)-प्रेमी, कृपालु । उ० भगत बछल
 कृपालु रघुराई । (मा० ७१११३)
 बछलता-(सं० वत्सलता)-वत्सलता, प्रेम, प्रेमभाव । उ०
 भगत बछलता प्रसु कै देखी । (मा० ७१२३४)
 बजनिआ-(सं० वाद्य)-बजानेवाला, बाजावाला । उ० सेवक
 सकल बजनिआ नाना । (मा० ११३५१४)
 बजार-(सं० वाद्य)-१. बजाकर, गा-बजाकर, २. युद्ध करा
 कर, लुभाकर, ३. निर्भय होकर, ४. सबको चैतावनी,
 देकर, डंके की चोट पर । उ० १. राज दै निवाजिहौ बजाइ

कै भीषनै । (क० ६१२) ४. हौ बजाइ जाइ रह्यो हौ ।
 (वि० २६०) बजाई-१. बजाया, शब्दायमान किया,
 २. बजाकर, डंका बजाकर । उ० २. देउं भरत कहुँ राजु
 बजाई । (मा० २१३१४) बजायउ-१. बजाया, २. बजा-
 कर । उ० २. चले देव सजि जान निसान बजायउ । (पा०
 १५५) बजावत-बजाते हुए, शब्दायमान करते हुए । उ०
 जाइ नगर नियरानि बरात बजावत । (पा० ११३) बजा-
 वती-बजाती है । उ० चुटकी बजावती । (गी० ११३०)
 बजावन-बजाने । उ० जहँ-तहँ गाल बजावन लागे ।
 (मा० ११२६६१) बजावहि-१. बजाते हैं, २. बजाने
 लगे । उ० २. मुखहि निसान बजावहि भेरी । (मा०
 ६१६६५) बजावहु-बजाओ । उ० कहेसि बजावहु जुद्ध
 निसाना । (मा० ६१८६१) बजावा-बजाता है । उ०
 पयिडत सोइ जो गाल बजावा । (मा० ७१६८२) बजैहँ-
 बजावेंगे । उ० व्योम बिमान निसान बजैहँ । (गी०
 ११५१)
 बजाज-(अर० बजाज़)-कपड़े का व्यापारी । उ० बैठे बजाज
 सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते । (मा० ७१२८ छं० १)
 बजारी-(फ़ा० बाज़ार)-बाजारू आदमी, जिसका विरवास
 न किया जा सके । उ० कीर्ति बड़ो, करतूति बड़ों जन,
 बात बड़ों सो बड़ोई बजारी । (क० ६१५)
 बजारू-बाजार, हाट । उ० चारू बजारू विचित्र अँवारी ।
 (मा० ११२१३१)
 बजारू-१. दे० 'बजारी' २. बाजार, हाट । उ० २. छावा परम
 विचित्र बजारू । (मा० ११२६६४)
 बजै-(सं० वाद्य) १. बजता है, पढ़ता है, २. बजे । उ० १.
 जहँ-तहँ सिर पदत्रान बजै । (वि० ८६)
 बज्जत-बजता है, शब्दायमान होता है । उ० चरन चोट
 चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत । (क० ६१४७)
 बज्र-(सं० वज्र)-१. कुलिश, बिजली, इंद्र का शस्त्र, २.
 हीरा । उ० १. तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा । (मा०
 २१४१४) बज्रन्हि-बज्रों से, हीरों से । उ० प्रतिद्वार द्वार
 कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे । (मा० ७१२७७ छं० १)
 बज्रसार-दे० 'वज्रसार' । उ० बज्रसार सर्वांग भुजदंड
 भारी । (वि० २६)
 बभ्रत-(सं० वद्ध, पा० बभ्रम्)-१. बभ्रता है, फँसता है, २.
 उलभ्रता है, लिपटता है । उ० २. बभ्रत विनहि पास
 सेमर-सुमन-आस । (वि० ११७)
 बभ्राऊ-१. फँसानेवाला, उलभ्रानेवाला, २. फँसाव, उल-
 भाव । उ० १. काँट कुरायँ लपेटन लोटन ठाँवहि ठाँव
 बभ्राऊ रे ! (वि० १८६)
 बभ्रावौ-(सं० वद्ध) बभ्राता हूँ, फँसाता हूँ । उ० व्याध
 ज्यों विषय-बिहंगनि बभ्रावौ । (वि० २०८)
 बट-(सं० वट)-१. बरगद का पेड़, २. अक्षयवट नाम का
 पेड़ जो प्रयाग में है । उ० १. तेहि गिरि पर बट बटप
 बिसाला । (मा० १११०६१)
 बटत-(सं० वट)-१. बटता हूँ, पूरता हूँ, २. बटता है ।
 उ० १. बाँधिवे को भवगयंद रेनु की।रखु बटत । (वि०
 १२६)
 बटपार-(सं० वाट + पृ)-ठग, डाकू, लुटेरा, छली ।

बटपारा-दे० 'बटपार' । उ० मैं एक अमित बटपारा । (वि० १२५)
 बटाऊ (१)-(सं० वाट)-पथिक, मुसाफिर, राही । उ० राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई । (क० २।२)
 बटाऊ (२)-(सं० वितरण) हिस्सा बटानेवाला ।
 बटु (१)-दे० 'बट' । उ० २. बटु बिस्वास अचल निज धरमा । (मा० १।२।६)
 बटु (२)-(सं० वटु)-१. ब्रह्मचारी, वेदपाठी, क्वारा लड़का, २. विद्यार्थी । उ० १. बटु वेष पेषन पेम पन व्रत नेम ससि-सेखर गये । (पा० ४५)
 बटुक-दे० 'बट' ।
 बटोरत-(सं० बटुल, हिं० बटोरना)-बटोरते हैं, एकत्र करते हैं । उ० सुचि सुन्दर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को । (क० ७।१०३) बटोरा-१. एकत्र किया, एक स्थान पर किया, २. बटोरकर, सिकोड़कर । उ० १. राम भालु कपि कटक बटोरा । (मा० १।२५।२) बटोरि-एकत्र कर, एक जगह कर । उ० सानुज कुसल कपि कटक बटोरि कै । (क० १।२७) बटोरी-१. बटोरकर, एकत्रकर, २. इकट्ठा किया, एक स्थान पर किया । उ० १. सब कै ममता ताग बटोरी । (मा० १।१८।३) बटोरै-१. सिकोड़े, २. एकत्र किये, ३. इकट्ठा करे । उ० ३. जेहि के भवन बिमल चिता-मनि सो कत काँच बटोरै । (वि० १।१६) बटोरयो-इकट्ठा किया, एकत्र किया । उ० करि पिनाक-पन, सुता-स्वयंबर सजि, नृप-कटक बटोरयो । (गी० १।१००)
 बटोही-(सं० वाट)-राहगीर, यात्री, पथिक । उ० देखु कोऊ परम सुंदर सखि ! बटोही । (गी० २।१८)
 बड़ (१)-(सं० वट)-बरगद का पेड़ ।
 बड़ (२)-(सं० वर्द्धन)-बड़ा, भारी । उ० हित लागि कहैं सुभाय सो बड़ बिषय बैरी रावरो । (पा० ५४)
 बड़प्पन-(सं० वर्द्धन + पन)-बड़ाई, श्रेष्ठता, बड़ापन ।
 बड़प्पनु-दे० 'बड़प्पन' । उ० केहि न सुसंग बड़प्पनु पावा । (मा० १।१०।४)
 बड़भागी-भाग्यशाली, भाग्यवान । उ० अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही । (मा० १। २।१। छं० १)
 बड़री-(सं० वर्द्धन)-बड़ी, भारी । उ० बिकटी भुकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छुबि है । (क० २।१३)
 बड़वागि-दे० 'बड़वागि' । उ० आगि बड़वागि तैं बड़ी है आगि पेट की । (क० ७।६६)
 बड़वागिन-(सं०)-दे० 'बड़वानल' ।
 बड़वानल-(सं०)-बड़वागि, समुद्र की आग । उ० जद्यपि है दाहन बड़वानल राख्यो है जलधि गँभीर धीरतर । (क० ३।१)
 बड़ा (१)-(सं० वर्द्धन)-१. बृहत्, विशाल, २. भारी, गुरु, ३. प्रधान, मुखिया, श्रेष्ठ, ४. उन्नत में बड़ा ।
 बड़ा (२)-(सं० वटक)-उर्वकी दाल का बना एक पक्वान्न ।
 बड़ाइ-बड़ाई, बड़प्पन, श्रेष्ठता । उ० सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बढ़ाइ कै । (मा० १।३२६। छं० १) ।

बड़ाई-(सं० वर्द्धन) १. श्रेष्ठता, बड़प्पन, २. यश, कीर्ति, ३. उच्चता, ऊँचाई । उ० १. कालज करालता बढ़ाई जीतो बावनो । (क० १।६)
 बड़ि-बड़ा' का स्त्रीलिंग । दे० 'बड़ा' । भारी, बड़ी । उ० बड़ि अवलंब बाम-बिधि-बिघटित । (गी० २।८८)
 बड़ियार-बलवान, बलवाला, शक्तिशाली ।
 बड़िए-बड़ी ही, बहुत ही । उ० ताके अपमान तेरी बड़िए बढ़ाई है । (गी० १।२६) बड़ी-बड़ा' का स्त्रीलिंग, भारी, बहुत । उ० देहै तौ असन्न ह्वे बड़ी बढ़ाई बौद्धिये । (क० ७।२५) बड़े-१. बड़ा, भारी । दे० 'बड़ा' । २. बड़े लोग । उ० १. बड़े पाप बाढ़े किए, छोटे किये लजात । (दो० ४।३) २. बड़े की बड़ाई, छोटे की छोटाई दूर करै । (वि० १।८३) बड़ेहि-बड़े का ही । उ० बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेक । (मा० २।१०।४)
 बड़ेरी-बड़ी-बूढ़ी । बड़ेरे-बड़े । उ० छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतज अनेरे सब । (क० १।११)
 बड़ेरो-१. बड़प्पन, श्रेष्ठता, बड़ाई, २. बड़ा, महान, ३. मुख्य । उ० २. बंदि-छोर तेरो नाम है, बिरुदैत बड़ेरो । (वि० १।४६) ३. तहँ रिपु राहु बड़ेरो । (वि० ८७)
 बड़ो-बड़ा । दे० 'बड़ा' । उ० बड़ो सुसेवक साँह तें, बड़ो नेम तें प्रेम । (दो० ४७३) बड़ोह-बड़ा ही । उ० सुवन समीर को धर धुरीन बीर बड़ोह । (गी० १।५) बड़ोई-बड़ा ही । उ० कीर्ति बड़ो, करतूति बड़ो जन, बात बड़ो, सो बड़ोई बजारी । (क० ६।५)
 बड़ौ-दे० 'बड़ो' ।
 बड़ह-(सं० वर्द्धन) १. बढ़ता है, २. बढ़े, वृद्धि करे । बड़ई-(१) बढ़ता है । बड़त-(सं० वृद्धि)-१. बढ़ता है, २. बढ़कर, ३. बढ़ते ही, ४. बढ़ता हुआ । उ० ४. बड़त बौँद जनु लही सुसाखा । (मा० २।१।४) बड़ता-उन्नत होता, वृद्धि करता, ऊँचे जाता । बड़ति-बड़ती है । उ० राम दूरि माया बड़ति । (दो० ६६) बड़ा-बढ़ गया । बड़ि-१. बढ़कर, अधिक, २. बाढ़, वृद्धि, बढ़ती । उ० १. साँची बिरुदावली न बड़ि कहि गई है । (वि० १।८०) २. पाय-प्रतिष्ठा बढ़ि परी । (दो० ४६४) बड़े-१. वृद्धि को प्राप्त हुए, २. बढ़ने पर । उ० १. तुलसी प्रभु भूषन किए गुंजा बड़े न मोल । (दो० ३।८५)
 बड़ई-(२) (सं० बड़कि)-लकड़ी का काम करनेवाला । उ० मातु कुमत बड़ई अघमूला । (मा० २।२।२।२)
 बढ़ाहैं-बड़ाऊँगा । उ० प्रभु सों निषाद ह्वैकै बाद न बढ़ाहैं । (क० २।८) बढ़ाउ-(सं० वृद्धि)-१. बढ़ाओ, २. उन्नति, बढ़ती, ३. बढ़ावा, उन्नतना । उ० १. समुक्ति समुक्ति गुन ग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ । (वि० १००) बढ़ाव-दे० 'बड़ाउ' । बढ़ावइ-बढ़ावे, वृद्धि करे । उ० को करि बाहु बिबाहु विषाहु बढ़ावइ ? (पा० ७२) बढ़ावन-१. बढ़ाना, २. बढ़ानेवाला । उ० २. बिमल विवेक बिराग बढ़ावन । (मा० १।४३।३) बढ़ावनो-बढ़ाना, अधिक करना । उ० विषम बली सों बादि बैर को बढ़ावनो । (क० ५।६) बड़ियार-बड़ने पर, वृद्धि पाने पर । उ० . बिगत-नलिन-अलि, मलिन जल, सुरसरिहू बड़ियारि । (दो० ४६८)

बढ़ैया-बढ़ानेवाला । उ० खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया उर साख को । (क० ७।१३५)
 बढ़ोइ-बढ़ा ही, बढ़ा ही था । उ० अकनि कहुबानी कुटिल की क्रोध विन्ध्य बढ़ोइ । (गी० २।५)
 बगिक- (सं० बगिक)-ब्यापार करनेवाला, बनिया ।
 बत- (सं० वात्ता)-बात, बोली, बचन । उ० अब जनि बत-बढ़ाव खल करही । (मा० ६।३०।१) बतबढ़ाव-बातचीत को बढ़ाना, विवाद । उ० दे० 'बत' ।
 बतकही-बातचीत, बोल-चाल, बात । उ० करत बतकही अनुज सन मन सियरूप लोभान । (मा० १।२३।१)
 बताई- (सं० वाता) १. बतलाकर, कहकर, समझाकर, २. बतलायी, कही । बताया-बतलाया, बताया, सूचित किया । उ० ब्रह्म 'चित्रकूट कहै' जेहि तेहि मुनि बालकनि बताया । (गी० २।६८) बनावत-बतलाता है, ज्ञात कराता है ।
 बतास- (सं० वातासह)- १. एक रोग, गठिया, २. हवा, पवन, ३. एक मिठाई ।
 बतासा-दे० 'बतास' । उ० २. कछु दिन भोजनु बारि बतासा । (मा० १।७४।३)
 बतिआ- (सं० वर्तिका)-छोटा फल, थोड़े दिन का फल, जई । उ० इहाँ कुम्हड़ बतिआ कोउ नाहीं । (मा० १।२७३।२)
 बनियाँ- (सं० वात्ता)-बातें । उ० सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ । (क० २।२३) बतिया- (सं० वात्ता)-बातचीत, बात । उ० बतिया कै सुघरि मखिनिया सुंदर गातहि हो । (रा० ७)
 बत्तिस- (सं० द्वारिणशब्द, प्रा० बत्तीसा)-तीस और दो । उ० तुरत पवन सुत बत्तिस भयऊ । (मा० १।२।४)
 बत्स (१)- (सं० वत्स)- १. बछड़ा, २. प्रिय, प्यारा, ३. बच्चा, ४. बत्सासुर, ५. छाती । बत्सपद- (सं० वत्सपद)- बछड़े के छुर का निशान । उ० जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय बत्सपद जैसे । (वि० १।१८)
 बत्स (२)- (सं० वत्सर)- वर्ष ।
 बत्सर- (सं० वत्सर)- वर्ष, साल ।
 बढ़ति-कहते हैं । उ० इति बेद बढ़ति न दंतकथा । (मा० ६।११।१८) बढ़ (१)- (सं० बढ़)- १. कहो, बोलो, २. कहते हैं । उ० १. मोसन भिरिहि कवन जोधा बढ़ । (मा० ६।२३।१) २. देस काल पूरन सदा बढ़, बेद पुरान । (वि० १०७) बढ़त-कहता है, बोलता है । उ० भद्रसिंधु दीनबंधु बेद बढ़त रे । (वि० ७४) बढ़ति- (सं० बढ़)- १. बोलती, कहती, २. कहती है । उ० १. रोदति बढ़ति बहु भाँति करुना करत संकर पहि गई । (मा० १।१८।७) १) बढ़हि-कहते हैं, बखानते हैं । उ० बंदी मागध सूत गन विरुद बढ़हि मतिधीर । (मा० १।२६२) बढ़हि- १. कहिय, बतलाइए, २. कहता है । उ० १. इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बढ़हि तजि माख । (मा० ६।२४) बढ़ौ- (सं० बढ़)- १. कहता हूँ, २. मानता हूँ । उ० १. प्रेम बढ़ौ प्रह्लादहि को जिन पाहन तैं परमेस्वर काड़े । (क० ७।१२७)
 बढ़ (२)- (क्रा०)-बुरा, नीच, खराब ।
 बढ़न (१)- (क्रा०)-झरीर, देह ।

बढ़न (२)- (सं० बढ़न)-मुख, मुँह । उ० मकरी ज्यौं पकरि कै बढ़न बिदारिप । (ह० २२) मु० बढ़न फेरे-मुख मोढ़ने पर, अप्रसन्न होने पर । उ० जानकी-रमन मेरे ! रावरे बढ़न फेरे । (क० ७।७८) बढ़ननि-बढ़न (मुँह) का बहु-वचन । उ० बढ़ननि बिधु निदरे हैं । (गी० २।२५)
 बढ़नि-मुखवाली । उ० पर्व शर्वरीश-बढ़नि । (वि० १६)
 बढ़नी-मुखवाली किर्याँ । उ० बिधु बढ़नीं शृंग सावक नयनीं । (मा० २।८।४)
 बढ़नु-दे० 'बढ़न' । उ० निरखि बढ़नु कहि भूप रजाई । (मा० २।३६।४)
 बढर- (सं० बढ़रि)- १. बेर का पौदा, २. बेर का फल । उ० २. विस्व बढर जिमि तुम्हरे हाथा । (मा० १।१२५।४)
 बढरि- (सं०)-बेर का पेड़ या फूल ।
 बढरिकाश्रम-नर नारायण के तपस्या का प्रसिद्ध स्थान जो चार प्रसिद्ध धामों में है । उ० पुन्यवन शैल सरि बढरिका-श्रम सदाऽसीन पद्मासनं एक रूपं । (वि० ६०)
 बढरी-दे० 'बढरि' । उ० बढरीबन कहुँ सो गई, प्रभु अग्या धरि सीस । (मा० ४।२५) बढरीबन- (सं० बढरि + वन)- बढरिकाश्रम । बेर के पेड़ों के आधिक्य के कारण उसका यह नाम पड़ा है । उ० बढरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस । (मा० ४।२५)
 बढलि- (अर० बढल)-बढलकर, एक के बढले दूसरी देकर या लेकर ।
 बढली (१)- (सं० वारिद)-मेघ, बादल ।
 बढली (२)-दे० 'बढरि' । उ० कढली बढली बिटप गति, पेखहु पनस रसाल । (दो० ३५४)
 बढल- (अर० बढल) बढले में । उ० काँच किरिच बढले ते जेहीं । (मा० ७।१२१।६)
 बढि-दे० 'बढि (२)' । उ० १. जौं हम निदरहिं बिप्र बढि सत्य सुनहु शृगुनाथ । (मा० १।२८३)
 बढी (१)- (१)-कृष्ण पत्र, अंधेरा पाख ।
 बढी (२)- (क्रा०)-बुराई, अपकार ।
 बढ- (सं०)-बंधा हुआ, जकड़ा हुआ, गुथा हुआ, हृद के भीतर रक्खा या किया हुआ । उ० १. बढ-बारिधि-सेतु, अमर मंगल हेतु । (वि० २५)
 बघ- (सं०)-मारना, हत्या, हनन । उ० निसिचर बघ मैं होब सनाथा । (मा० १।२०७।५)
 बघउँ- १. मारता हूँ, २. मारूँ । उ० १. बालकु बोलि बघउँ नहिं तोही । (मा० १।२७२।३) बघव-बघ करेंगे, मारेंगे, मारूँगा । उ० तेहि बघव हम निज पानि । (मा० ३।२०।३) बघि- १. मारकर, हत्याकर, २. मारनेवाले । उ० १. बालि-बलशालि बघि, करण-सुश्रीव-राजा । (वि० ४३) २. जयति मद अंध कु कबंध बघि । (वि० ४३) बघिहि-बघ करेंगे । उ० निज पानि सर संधानि सो मोहि बघिहि सुख सागर हरी । (मा० ३।२६।७) १) बघी- (सं० बघ)-मार डाली । उ० बघी ताडका, राम जानि सब लायक । (जा० ४०) बघे-दे० 'बघे' । उ० २. बघे पापु अपकीरति हारें । (मा० १।२७३।४) बघे- १. मारे, २. मार डालने पर । बघेउ-मार डाला, बघ किया । उ०

जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि वाली । (मा० १२१३)
 बघाई-(सं० वखन)-१. मंगल के अघसर गाना-बजाना, मंगलाचार, २. किसी शुभ अघसर पर आनंद प्रकट करने-वाला वचन या संदेश, ३. वृद्धि, बढ़ती । उ० १. रघुबर जनम अनंद बघाई । (मा० १४०१४)
 बघाए-दे० 'बघाई' । उ० १. नित नव मंगल मोद बघाए । (मा० २१११)
 बघाय-दे० 'बघाई' । उ० १. दई दीनहिं दादि सो सुनि सुजन-सदन बघाय । (वि० २२०)
 बघाव-बघाई के बाजे, मंगल वाद्य । उ० सुनि पुर भयउ अनंद बघाव बजावहिं । (जा० १३२) बघावन-बघाई, बघाई के गाजे-बाजे । उ० गावहिं गीत सुवासिनि, बाज बघावन । (जा० १२७) बघावने-दे० 'बघावन' । उ० अनुदिन अघध बघावने नित नव मंगल मोद । (दो० ११८)
 बघावनो-बघाई के बाजे । उ० जायो कुल मगन, बघावनो बजायो सुनि । (क० ७७३)
 बघावा-मंगल या बघाई के बाजे । उ० घर घर उत्सव बाज बघावा । (मा० ११७२३)
 बधिक-(सं० बधक)-१. हत्यारा, जखलाद, बहेलिया, कसाई, २. बाल्मीकि, ३. निषाद राज । उ० १. 'हा धुनि' खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिये बडे बधिक हठि मौन । (गी० ५२०) २. विप्र बधिक गज, गीध कोटि खल कौन के पेट समाने । (वि० २३६) ३. विप्रतिय, नृग बधिक के दुख दोष दारुन दरन । (वि० २१८)
 बधिका-दे० 'बधिक' । उ० १. होउ नाथ अघ खग गन बधिका । (मा० ३१४२४)
 बधिर-(सं०)-बहरा, जो न सुने । उ० बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि भाँकी । (क० ६४४)
 बधु-दे० 'बधू' । उ० सखि ! यहि मग जग पथिक मनोहर, बधु बिधु-बदनि समेत सिधाए । (गी० २३५)
 बधुन्ह-(सं० वधु)-बहुओं को । उ० सुंदर बधुन्ह सासु लै सोई । (मा० १३५८२) बधु-(सं० वधु)-१. बहू, पतोहू, २. जवान स्त्री, ३. पत्नी, ४. दौपदी । उ० १. बधु लरिकनी पर घर आई । (मा० १३५५४) ४. सिथिल-सनेह मुदित मन ही मन बसन बीच बिच बधु बिराजी । (क० ६१)
 बधुटिन्ह-बहुओं, स्त्रियों । उ० सहित बधुटिन्ह कुअर सब तब आए पित्त पास । (मा० १३२७) बधुटी-बधुटियाँ, नई स्त्रियाँ । उ० महँ मुदित सब ग्राम बधुटी । (मा० २११७४) बधुटी-(सं० वधु)-बधु, स्त्री, नवविवाहिता स्त्री ।
 बघैया-दे० 'बघाई' । मंगल या आनंद के गीत या बाजे आदि । उ० भूपति पुन्य-पयोधि-उमंग, घर घर आनंद बघैया । (गी० ११६)
 बघ्यो-भारा, भार डाला । उ० बघ्यो बधिक परगो पुन्य जल, उलटि उठाई चोच । (दो० ३०२)
 बन (१)-(सं० वन)-१. जंगल; २. समूह, ३. पानी, जल, ४. बगीचा, उपवन, ५. कपास का पौदा । उ० १. तौ क्यो कटत सुकृत-नख तें मो पै विटप-वृद्ध अघ-बन के । (वि०

६६) ३. बालचरित चहु बंधु के बनज बिपुल बहु रंग । (मा० १४०) ५. सुजन सुतर बन उष सम खल टंकिका रुखान । (दो० ३४२) बनहिं-बन को । बनहि-बन को । उ० चलिहई बनहि बहुरि पग लागी । (मा० २१४६२) बनहीं-दे० 'बनहिं' । बनहु (१)-वन में भी । उ० राम लखन विजयी भए बनहु गरीब निवाज । (दो० ४४१) बन (२)-(सं० वर्णन)-बनकर । बनइ-(सं० वर्णन, प्रा० बराएन)-१. बनता है, बनती है, २. बनता । उ० १. समुक्त बनइ न जाइ बखानी । (मा० ७११७१) २. भभरे, बनइ न रहत न बनइ परातहि । (पा० ११५) बनत-१. रचना, बनावट, २. बनता है, बनता । उ० २. करत बिचारु न बनत बनावा । (मा० ११४११) बनहु (२)-(सं० वर्णन)-बनो । बना-१. बन गया, सिद्ध हो गया, २. बना हुआ, सिद्ध, तैयार, ३. दूल्हा, बर, ४. उपस्थित, मौजूद । उ० ४. बना आई असमंजस आजू । (मा० ११६७३) बनि-१. बनकर, सजकर, २. पूर्ण, सिद्ध, ३. मज़दूरी, ४. बन, हो, संभव हो । उ० ३. आशु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी । (मा० २१०२३) ४. बहुत नात रघुनाथ तोहि मोहि, अघ न तजे बनि आवै । (वि० ११३) बनिहि-बनेगी, सुधरेगी । उ० तुलसिदास इंद्रिय-संभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे । (वि० ११६) बनिहै-सुधरेगी, बनेगी । उ० ज्यों-त्यों तुलसिदास कोसलपति अपना-यहि पर बनिहै । (वि० ६५) बनिहै-बनेगी । उ० तुम दयालु बनिहै दिए बलि, बिलंब न कीजिए जात गलानि गरयो है । (वि० २६७) बनी-१. मज़दूरी, २. सुन्दर, सजी, बनी-ठनी, ३. वधु, दुलहिन, ४. बनी है, सुन्दर लग रही है, विराज मान हैं । उ० ४. हिम गिरि संग बनी जनु मयना । (मा० १३२४२) बने-१. बने हैं, शोभित हैं, २. सजे हुए, बने-ठने, ३. बन गए । उ० १. आगें रासु लखनु बने पाछें । (मा० २१२३१) २. बने बराती न जाहीं । (मा० १३४८२) बने-१. बने, बनती है, बनता है, २. सुधरती है, ३. बन पढ़ती है । उ० १. तुलसी कहे न बने सहे ही बनेगी सब । (क० ७१३५) ३. बाहर-भीतर भीर न बने बखानत । (जा० १४) बनेगी-सुधरेगी, ठीक होगी । उ० दे० 'बने' । बन्यो-१. बना, २. बना हुआ, सँवारा । उ० १. देखो-देखो बन बन्यो आजु उमाकंत । (वि० १४)
 बनचर-(सं० वनचर)-१. बन में चरने या विचरनेवाला, बनवासी, २. मछली । उ० १. लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि काँवरि भार । (मा० २१२७८) २. बनचर-वज्र-कोटि लावन्यरासी । (वि० ५४)
 बनचारी-(सं० वनचारिन्)-१. बन में रहनेवाले, विचरण करनेवाले या चरनेवाले, २. बंदर, मृग आदि जंगली जानवर, ३. जंगली लोग, कोल-भील । उ० १. सुरसर सुभग बनज बनचारी । (मा० २१६०३) ३. हिसारत निषाद तामस बपु पसु समान बनचारी । (वि० १६६)
 बनज-(सं० वनज)-१. कमल, २. पानी में उत्पन्न होने-वाले जोक आदि कीड़े या सेवार आदि बनस्पति, ३. जो जंगल में उत्पन्न हो । उ० १. सुरसर सुभग बनज बन-चारी । (मा० २१६१३)

वनद-(सं० वनद)-बादल । उ० वनज-लोचन वनज-नाभ वनदाभ-घुपु । (वि० १४)

वनधातु-(सं०) स्वर्ण उत्पन्न वृक्षों के पुष्पों से बनी माला । उ० मोर चंदा चारु सिर मंजु गुंजा पुञ्ज धरे बनि वन-धातु तन श्रोत्रे पीतपट हैं । (कृ० २०)

वननिधि-(सं० वननिधि)-समुद्र । उ० बाँधो वननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस । (मा० ६१४)

वनपट-(सं० वनपट)-वल्कल के वस्त्र । उ० वन-पट कसे कटि, तून तीर धनु धरे । (गी० २३०)

वनपाल-वन के पालक या रक्षक । उ० माली मेघमाल वन-पाल विकराल भट । (क० ११२)

वनवाहन-(सं० वन + वाहन)-पानी की सवारी । नाव, नौका । उ० जब पाहन भे वनवाहन से । (क० ६१६)

वनगाल-(सं० वनमाल)-तुलसी, कुंद, मंदार, पारिजात और कमल, इन पाँच के पुष्पों से बनी माला । उ० मृदुल वनमाल उर भाजमानं । (वि० ११)

वनमाला-दे० 'वनमाल' ।

वनरन्ध-बंदरों की । उ० देखहु वनरन्ध केरि बिठाई । (मा० ६१४०११)

वनरा (१)-(सं० वर्षान, हि० वनना)-तूल्हा, बर ।

वनरा (२)-(सं० वानर)-बंदर, भरकट । उ० जब पाहन भे वनवाहन से, उतरे वनरा 'जयराम' रटे । (क० ६१६)

वनरुह-(सं० वनरुह)-कमल । उ० फेरत चाप बिलिष वन-रुह-कर । (गी० ६११६)

वनसी-(सं० वंशी)-१. बाँसुरी, २. मछली पकड़ने का एक डंडा जिसमें एक रस्सी बंधी होती है । रस्सी के अंत में एक लोहे का काँटा लगा रहता है ।

वनाह-१. भली प्रकार, अच्छी तरह, २. सजाकर, बना कर । उ० १. कसे हैं वनाह, नीके राजत निपंग हैं । (क० २११५) २. प्रसु सों वनाह कहौ जीह जरि जाउ सो । (वि० १८२) वनाहन्दि-वनाहँ, ठीक कीं । उ० तोरन कलस चँवर भुज विबिध वनाहन्दि । (पा० १७) वनाहँ-१. रची, तैयार की, बनी, २. बनाकर, ३. अच्छी तरह । उ० १. जहाँ स्वयंवर भूमि वनाहँ । (मा० ११३३२) ३. अचटै अनल अकाम वनाहँ । (मा० ७११७१७) वनाउ-१. वनावट, श्रंगार, २. वनाओ । उ० १. सात दिवस भए साजत सकल वनाउ । (ब० २०) वनाए-१. निर्माण किया, बनाया, २. सँवारे, सुधारे, ३. सुधार कर, सँवार कर । उ० २. गृह आँगन चौहट गली बाजार वनाए । (गी० ११६) वनाव-१. श्रंगार, सजावट, सजघज, २. तैयारी, ३. बनाकर, सँभालकर, ४. तरकीब, युक्ति, तद-बीर, ५. संयोग । उ० १. देखि वनाव सहित अगवाना । (मा० १३०११४) वनावह-बनाता है । वनावत-बनाता है, सुधारता है, सजाता है । वनावन-१. बनाने के लिए, २. सजाने के लिए । उ० २. कहहु वनावन बेगि बजारु । (मा० २१६१४) वनावहिं-१. सजाते हैं, २. तैयार करते हैं । उ० १. घाट बाट पुर द्वार बजार वनावहिं । (जा० २०४) वनावह-बनाता है, तैयार करता है । उ० जातरूप मति जुगुति रुचिर मनि रचि-रचि हार वनावहिं । (वि० २३७) वनाव-१. वनाव, सजावट, २. तैयारी, ३.

बनाया, ४. तदवीर, तरकीब, ५. योग, संयोग । उ० ४. करत बिचारु न बनत वनावा । (मा० ११४११) वनावै-१. बनाने, तैयार करने, २. सजाने । उ० १. पटतर जोग वनावै लागा । (मा० २१२०३) वनैहौं-बनाऊँगी, सजाऊँगी । उ० बाल-बिभूषन-बसन मनोहर अंगनि बिरचि वनैहौं । (गी० ११८)

वनिक-दे० 'वणिक' । उ० भयउ बिकल बड़ वनिक समाजू । (मा० २१८६२)

वनिक-दे० 'वनिक' ।

वनिज-(सं० वाणिज्य)-व्यापार, बनिझई । उ० खेती, बनि बिधा वनिज सेवा सिलिप सुकाज । (दो० १८४)

वनितनि-(सं० वनिता)-स्त्रियों । उ० सुखमा निरखि ग्राम वनितनि के । (गी० २१५) वनिता-दे० 'वनिता' । उ० १. वनिता बनी स्यामल गौर के बीच । (क० २१८)

वपत-(सं० वप)-१. बोता है, २. बोते हुए । उ० २. कहू केहि जहे भल रसाल बबुर-बीज वपत । (वि० १३०)

वपु-(सं० वपु)-शरीर, देह । उ० सकुचहिं बसन बिभूषन परसत जो वपु । (पा० ३६)

वपुरा-(?) -१. बेचारा, असहाय, २. दरिद्र, कंगाल । उ० २. सिव बिरचि कहूँ मोहइ को है वपुरा आन । (मा० ७१ ६२ ख) वपुरे-बेचारे । उ० काह कीट वपुरे नरनारी । (मा० २१२६२)

वपुष-दे० 'वपु' । उ० वपुष-वारिद वरपि छुबि-जल हरहु लोचन-प्यास । (गी० १३८)

ववा-(सं० बाबा)-१. पिता, बाप, २. दादा, पितामह । उ० १. तुलसी सुखी निसोच राज ज्यों बालक माय ववा के । (वि० २२५) ववै (१)-बाबा-ने । उ० ववै ब्याह की बात चलाई । (कृ० १३)

वबुर-(सं० वबूरः)-बबूल का वृक्ष । उ० नाम प्रसाद लहत रसाल-फल अब हौं वबुर बहरे । (वि० २२७) वबुरहिं-बबूल में । उ० जो फलु चहिअ सुकतहिं सो बरबस वबुरहिं लागई । (मा० ११६६) ववै (२)-(सं० वपन)-बोवे, बीज डाले ।

वमत-(सं० वमन)-वमन करते हुए, वमन करता है । उ० रुधिर वमत धरनीं वनमनी । (मा० ११४२)

वमन-दे० 'वमन' । उ० १. तजत वमन जिमि जन बड़ भागी । (मा० २१३२४५) ३. प्रलय पावक-महाज्वाल-माला-वमन । (वि० ३८)

वय-दे० 'वय' । उ० वय किसोर कौसिक मुनि साया । (मा० ११२६१३)

वयऊ-बो दिया । उ० तुन्ह कहूँ विपति बीछु बिधि वयऊ । (मा० २१११२) वये (१)-(सं० वपन)-१. बोए, बीज डाला, २. बोने का । उ० २. ऊसर बीज वये फल जथा । (मा० ११८८२) वयो-(सं० वपन)-बोया, बीज डाला । उ० वयो लुनियत सब याही दाडीजार को । (क० ११२)

वयदेही-(सं० वैदेही)-सीता, वैदेही । उ० बरबे को बोले वयदेही बरकाज के । (क० ११८)

वयन-(सं० वचन)-चाखी, बोली, बात ।

वयना-दे० 'वचन' । उ० कहि किमि सकहिं तिन्हहिं नहिं वयना । (मा० ७१८८२)

[बयनी-बरतोर]

बयनी-बोलनेवाली, बोलनेवालीयों का समूह । उ० करहि गान कल कोकिल बयनी । (मा० १२८६१) बयनी-बोलनेवाली ।
 बयर-दे० 'बैर' । उ० लेत केहरि को बयर ज्यों भेक हनि गोमाय । (वि० २२०)
 बयर-दे० 'बैर' । उ० तेहि खल पाछिल बयर सँभारा । (मा० ११७०१४)
 बयस-(सं० वय)-आयु, अवस्था । उ० स्याम गौर मृदु बयस किस्वर । (मा० १२१५३)
 बयारि-(सं० वायु)-हवा, पवन । उ० लागिहि तात बयारि न मोही । (मा० २१६७३)
 बयारी-दे० 'बयारि' । उ० सानुकूल बह त्रिबिध बयारी । (मा० १३०३१२)
 बये (२)-(सं० वचन)-बोले, कहे, बखाने ।
 बये (३)-(सं० वय)-उम्र बिताई ।
 बर (१)-(सं० वर)-१. वरदान, आशीर्वाद, २. स्वामी, हुलहा, ३. श्रेष्ठ, बढ़ा-चढ़ा । उ० १. गननायक बरदायक देवा । (मा० १२५७४) २. बर अनुहारि बरात न भाई । (मा० ११३११) ३. बर सुषमा लही । (मा० ७१५०१)
 बरतर-(सं० वरतर)-अधिक, श्रेष्ठ । बरहि-दुलहे को । उ० मंगल आरति सालि बरहि परिछन चली । (जा० १४८) बरहि (१)-दुलहे को । उ० बरहि पूजि नृप दीन्ह सुभग सिंहासन । (जा० १५७)
 बर (२)-(सं० वट)-बरगद, बड़ ।
 बर (३)-(सं० ज्वल)-१. जलकर, २. जलना । बरत (१)-(सं० ज्वल)-१. बलता हुआ, जलता हुआ, गरम, २. बलते हैं, जलते हैं । उ० १. बार-बार बर बारिज लोचन भरि-भरि बरत बारि उर डारति । (गी० १११६) बरति (१)-जलती है । उ० याके उप बरति अधिक अँग-अँग दव । (कृ० २६) बरी-(सं० ज्वल)-बल उठी, जली ।
 बर (४)-(सं० बल)-ज्ञोर, शक्ति । उ० बर करि कृपासिंधु उर लाए । (मा० ७१५४)
 बर (५)-(सं० वरं, हिं० वरु)-वरन, बल्कि ।
 बरइ-(सं० वरण)-व्याहेगा । उ० जो एहि बरइ अमर सोइ होई । (मा० ११३१२) बरई (१)-(सं० वरण)-बरेगा, विवाह करेगा । उ० लछिमन कहा तोहि सो बरई । (मा० ३१७१६) बरउं-१. बरूँ, विवाह करूँ । उ० १. बरउं संसु नत रहउं कुआरी । (मा० ११८१३) बरवे-व्याह करने, व्याहने । उ० बरवे को बोले बयदेही बरकाज के । (क० ११८) बरहि (२)-बरे, बरेगा । बरि (१)-१. व्याह कर, २. बचकर । बरिय-बरो, विवाह करो । उ० कहा मौर मन धरि न बरिय बर बौरहि । (पा० ६१) बरिहि-बरेगी, व्याहेगी । उ० मोहि तजि आनहि बरिहि न भौर । (मा० ११३३३) बरी-व्याह किया, व्याहा । उ० जीति बरी निज बाहु बल बहु सुन्दर बर नारि । (मा० ११५२२) बरी (२)-(सं० वरण)-बरा, व्याहा ।
 बरे (१)-१. व्याह करे, ३. निमंत्रण दे, ३. नियुक्त करे, नियुक्त किया । उ० ३. बरे बुरत सत सहस बर बिप्र कुटव समेत । (मा० ११७२) ३. सुवन-सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति-भगति बरे हैं । (गी० ६१३)

बरेहु-बरा, व्याहा । उ० जेहि दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बर बावरो । (पा० ५४) बरे-बरे, विवाह करे । उ० जेहि प्रकार मोहि बरे कुमारी । (मा० ११३१४)
 बरई (२)-(सं० वरुजीवी)-एक जाति जो पान का कारबार करती है ।
 बरखलत-(सं० वर्षा)-बरसते हैं । उ० कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरखलत । (क० ६१४७)
 बरखइ-बरसता है, बरसे । उ० कोटिन्ह दीन्हेउ दान मेघ जनु बरखइ हो । (रा० १६)
 बरगद-(सं० वट)-१. वट वृक्ष, २. बरगद का फल । उ० २. बेधे बरगद से बनाइ बानबान हैं । (ह० ३६)
 बरजउं-(सं० वर्जन)-बरजता हैं, मना करता हैं । उ० तातें मैं तोहि बरजउं राजा । (मा० ११६६१) बरजत-बरजता है, मना करता है । बरजति-मना करती है । उ० गरजति कहा तरजभिन्ह तरजति बरजति सैन नयन के कोए । (कृ० ११) बरजहु-रोको, रोकना, रोक देना । उ० तौ मोहि बरजहु भय बिसराई । (मा० ७१३३) बरजि-मनाकर, मना करके, निषेध करके । उ० सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुन्हिलैहै कुन्हड़े की जई है । (वि० १३६)
 बरजी-मना किया, निवारण किया । उ० जब नयनन प्रीति ठई ठग स्याम सौं स्यानी सखी हठि हौं बरजी । (क० ७१३३) बरजे-मना किया । उ० प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी । (मा० २१६६२) बरजै-रोके, मना किए । उ० तुलसिदास बस होइ तबहि जब प्रेरक प्रभु बरजै । (वि० ८६) बरज्यो-रोका, मना किया । उ० सुतहि दुखवत बिधि न बरज्यो काल के घर जात । (वि० २१६)
 बरजित-(सं० वर्जित)-१. मना किया हुआ, छोड़ा हुआ, २. छोड़कर, अलग । उ० २. जौ जप-जाप-जोग-व्रत-बर-जित केवल प्रेम न चहते । (वि० ६७)
 बरजोर-(सं० बल + फा० जोर)-प्रबल, जबरदस्त, बलवान, ज़ोरावर । उ० जनरंजन, अरिगन-गंजन, मुख भंजन खल बरजोर को । (वि० ३१)
 बरजोरा-जबरदस्ती । दे० 'बरजोर' । उ० अति कठिन करहि बरजोरा । (वि० १२५)
 बरजोरी-जबरदस्ती, जोरावरी ।
 बरत (२)-(सं० वट)-बटते हैं, बरते हैं ।
 बरत (३)-(सं० व्रत)-१. व्रत, उपवास, २. प्रण, प्रतिज्ञा । उ० १. तौ कपि कहत कृपान-धार-मग चलि आचरत बरत को ? (गी० ६१२)
 बरतमान-दे० 'वर्तमान' । उपस्थित । उ० ता बिधि रघुबर नाम महुँ बरतमान गुन तीन । (सं० १४५)
 बरति (२)-(सं० वर्तन)-व्यवहार करके । उ० जनम-पत्रिका बरति के देखहु मनहि बिचारि । (दो० २६८)
 बरतेउ-बरताव किया । उ० बामदेव सन काम बाम होइ बरतेउ । (पा० २६)
 बरतिका-(सं० वार्तिका)-बच्ची ।
 बरतोर-(सं० बाल + वृट)-बाल टूटने से निकलनेवाला फोका या घाव । उ० तातें तनु पोषियत घोर बरतोर मिस । (ह० ४१)

बरतोरु-दे० 'बरतोर' । उ० जनु कुह गयउ पाक बरतोरु ।
 (मा० २।२७।२)
 बरद (१)-(सं० वरद)-बर देनेवाला, वरदाता । बरदा
 (१)-(सं० वरदा)-वर देनेवाली । उ० सीस बसै बरदा,
 बरदानि, चढ्यो बरदा, घरन्यो बरदा है । (क०
 ७।१५५)
 बरद (२)-(सं० वलीवर्द)-बैल । उ० बावरे बड़े की रीक
 बाहन-बरद की । (क० ७।१५५)
 बरदा (२)-(सं० वलीवर्द)-बैल ।
 बरदा (३)-(?) गंगा ।
 बरदान-(सं० वरदान)-घर, आशीर्वाद ।
 बरदाना-दे० 'वरदान' । उ० सबहि बंदि मागहि बरदाना ।
 (मा० १।३५।११)
 बरदानि-वर देनेवाला । उ० सीस वसै बरदा, बरदानि,
 चढ्यो बरदा, घरन्यो बरदा ह । (क० ७।१५५)
 बरदायक-बर देनेवाला । उ० ब्रह्म राम ते नामु बड़ बर-
 दायक बरदानि । (मा० १।२५)
 बरध-(सं० वलीवर्द)-बैल, वरद ।
 बरन (१)-(सं० वर्ष)-१. रंग, २. अक्षर, ३. जाति,
 ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ष । उ० १.
 रूप के निधान, धन दामिनी-बरन हैं । (क० २।१७) ४.
 थापे मुनि सुर साधु आत्म बरन । (वि० २४८) बरन-
 बरन-तरह तरह के । उ० पहिरे बरन-बरन बर चीरा ।
 (मा० १।३५।११)
 बरन (२)-(सं० वर्षान)-१. वर्षान करके, २. वर्षान ।
 उ० २. केहि बिधि बरन की । (पा० २७) बरनइ-
 वर्षान करते हैं । उ० सहस बदन बरनइ पर दोषा ।
 (मा० १।१४।४) बरनउ-दे० 'बरनो' । बरनत-वर्षान, वर्षान
 करते, कहते हुए । उ० राम सीय सनेह बरनत अगम
 मुकवि सकाहि । (गी० ७।२६) बरनब-वर्षान कलंगा ।
 उ० बरनब सोइ बर बारि अगाधा । (मा० १।३७।१)
 बरनहि-वर्षान करते हैं । उ० सुर बार बार बरनहि लंगूर ।
 (गी० ५।१६) बरनही-वर्षान कर रहे हैं । उ० जस प्रता-
 पहि बरनही । (जा० १८०) बरनि-१. वर्षान करके, २.
 वर्षान किया, ३. वर्षान करते । उ० २. नगर सोहावन
 लागत बरनि न जातै हो । (रा० २) ३. हुसह दसा सो
 मो पै परति नहीं बरनि । (क० ३०) बरनिसि-वर्षान
 किया । उ० निसिचर कीस लराई बरनिसि विविध प्रकार ।
 (मा० ७।६७ ख) बरनी-वर्षान की, कही, बखानी । उ०
 भनिति भवेस बस्तु भलि बरनी । (मा० १।१०।५) बरनै-
 कहे, बखाने । उ० को बरनै मुख एक । (वै० ३४) बरनो-
 कहता हूँ, वर्षान कर रहा हूँ ।
 बरननिहार-वर्षान करनेवाला । उ० सकल अंग अनूप नहि
 कोउ मुकवि बरननिहार । (गी० ७।८)
 बरनसंकर-दे० 'वर्षासंकर' । उ० भए बरनसंकर कलि
 भिन्न सेतु सब लोग । (मा० ७।१०० क)
 बरनित-वर्षित, भाषित ।
 बरबर-(?) बकवादी, भड़भड़िया । उ० आलि ! बिदा कह
 बड़हि बेगि, बड़ बरबर । (पा० ६६)
 बरबस-(सं० बाल + वश)-बज्रपूर्वक, जबरदस्ती । उ०

बली बंधु ताको जेहि विमोह-बस बैर-बीज बरबस बए ।
 (गी० ५।३२)
 बरम-(सं० वर्ष)-कवच, जिरहबस्तर । उ० असन बिनु
 बन, बरम बिनु रन, बच्यो कटिन कुधाय । (गी० ७।३१)
 बररे-दे० 'बरै' । उ० बररे बालकु एक सुभाज । (मा०
 १।२७।२)
 बरष-(सं० वर्ष)-साल, वर्ष । उ० एहि बिधि बीते बरष
 पट सहस बारि आहार । (मा० १।१४४) बरषासन-(सं०
 वर्ष + अशन)-वर्ष भर का भोजन । उ० गुर सन कहि
 बरषासन दीन्हे । (मा० २।८०।२)
 बरषइ-बरसाता था । उ० बरषइ कबहुँ उपल बहु छाडा ।
 (मा० ६।५२।२) बरपत-१. बरसता है, बरसाता है,
 २. बरसते हुए । उ० १. बरपत करपत आउ जल, हरषत
 अरघनि भानु । (दो० ४५५) बरषतु-दे० 'बरसतु' । उ०
 अनुकूल देव मुनि फूल बरसत है । (मा० ६।५८) बरषहि-
 १. बरसते है, २. बरसाते हैं । उ० २. देहि असीस मुनीस
 सुमन बरषहि सुर । (जा० १६३) बरषहु-बरसा दो । उ०
 गगन जाइ बरषहु पट भूषन । (मा० ६।११७।३) बरषि-
 बरस कर, पानी बरसा कर । उ० गरजि तरजि पाषाण बरषि
 पवि प्रीति परखि जिय जावै । (वि० ६५) बरषे-१. बर-
 साये, २. बरसने से, ३. वर्षा से । उ० १. साधु सराहि
 सुमन सुर बरषे । (मा० २।२१०।४) बरषै-वृष्टि करे,
 बरसे । उ० पीत बसन सोभा बरषै । (वि० ६३)
 बरषा-(सं० वर्षा)-बरखा, पानी बरसना । उ० बरषा को
 गोबर भयो । (दो० ७३)
 बरस-(सं० वर्ष) साल, वर्ष ।
 बरसत-(सं० वर्षा)-१. बरसता है, २. बरसते हुए । बरसतु-
 बसता, बरसाते ।
 बरह-(?)-१. गोचर भूमि, २. खेतों में पानी जाने की
 नाली ।
 बरहि (३)-(सं० वर्षि)-मोर, मयूर । उ० जनु बर बरहि
 नचाव । (मा० १।३१।६)
 बरहि (४)-(सं० वारण)-बराकर, अलग कर ।
 बरहया-(?)-१. बरहे में, पानी की नाली में, २. गोचर
 भूमि में । उ० १. सो थाक्यो बरह्यो एकहि तक देखत
 इनकी सहज सिंचाई । (क० ५६)
 बराइ-(सं० वारण)-बराकर, चुनकर । उ० तुलसी रावन
 बाग-फल, खात बराइ बराइ । (मा० ५।३।७) बराई-१.
 छाँटी, चुन कर रक्खा, २. चुनकर, छाँटकर, ३. बचाकर,
 ४. हटाकर । ३. करि केहरि अहि बाघ बराई । (मा०
 २।१३६।३) बराएँ-बचाए, बचाते हुए । उ० सीय राम
 पद अंक बराएँ । (मा० २।१२३।३) बराय (१)-(सं०
 वारण)-१. बचाकर, २. हटाकर, ३. छाँटकर, चुनकर ।
 उ० ३. कौने देव बराय बिरद-हित । (वि० १०१) बरायो-
 छाँटा हुआ, चुना हुआ । उ० महावीर विदित बरायो रघु-
 बीर को । (ह० १०)
 बराक-(सं० वराक)-बेचारा, तुच्छ, गरीब । उ० चले दस
 विसि रिस भरि धरु-धरु कहि, को बराक मनुजाद ।
 (गी० ५।२२) बराकी-बेचारी, तुच्छ । उ० महावीर बाँकुरे
 बराकी बाहुपीर क्यों न ? (ह० २३)

बराका-दे० 'बराक' ।
 बराट-दे० 'बराट' । उ० नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराट को । (क० ७।६६)
 बरात-(सं० वरयात्रा)-विवाह में जानेवाले लोगों का समूह । बारात । उ० चढ़ि-चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात । (मा० १।२६६) बरातहि-बरात को । उ० लौ अगवान बरातहि आए । (मा० १।६६।१)
 बराता-दे० 'बरात' । उ० चढ़ि-चढ़ि बाहन चले बराता । (मा० १।६२।४)
 बरातिन्ह-बरातियों को । उ० देखत देव सिहाहि अनंद बरातिन्ह । (जा० १४१) बराती-बारात में जानेवाले । उ० उमा महेस बिबाह बराती । (मा० १।४०।४)
 बराबरी-(क्रा० बर)-बराबरी, तुल्यता, समानता । उ० तौकि बराबरी करत अयाना । (मा० १।२७७।१)
 बराबरी-दे० 'बराबरी' ।
 बराय (१)-(सं० बल)-जलाकर, बालकर । उ० मानिक वीप बराय बैठि तेहि आसन हो । (रा० ४)
 बराय (२)-(सं० बल)-जबलात, जबरदस्ती । उ० निगम-अगम मूरति महेस-मति-जुवति बराय बरी । (गी० १।२५)
 बरायन-(सं० वर+आयन)-लोहे का छरला जो व्याह के समय दुल्हे के हाथ में पहिनाया जाता है । उ० विहँसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो । (रा० ५)
 बरासन-दे० 'बरासन' । उ० बैठि बरासन कहहि पुराना । (मा० ७।१००।२)
 बराह-(सं० बराह)-शुकर, विष्णु का तीसरा अवतार । उ० धरि बराह बपु एक निपाता । (मा० १।१२२।४)
 बराहा-दे० 'बराह' । उ० खगहा करि हरि बाघ बराहा । (मा० २।२३६।२)
 बराहु-दे० 'बराह' । उ० नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराहु । (मा० १।१२६)
 बराहु-दे० 'बराह' । उ० फिरत बिपिन नृप दीख बराहु । (मा० १।१२६।३)
 बरि-(सं० बट)-बरकर, बटकर । उ० मम पद मर्नहि बाँध बरि डोरी । (मा० २।४८।३)
 बरिआई-(सं० बल)-जबरदस्ती, हठपूर्वक । उ० प्रसु प्रसाद सौभाग्य बिजय-जस पांडु-तनय बरिआई बरै । (वि० १।३७)
 बरिआई-दे० 'बरिआई' । उ० करवाउब बिबाहु बरिआई । (मा० १।८३।३)
 बरिआता-दे० 'बरिआता' ।
 बरिआता-(सं० वर+यात्रा)-बरात, बारात । उ० जमकर धार किधौ बरिआता । (मा० १।६५।४)
 बरिआर-(सं० बल+आर)-मजबूत, बलिष्ठ, बलवान ।
 बरिआरा-दे० 'बरिआर' । उ० तपबल बिप्र सदा बरि-आरा । (मा० १।१६५।२)
 बरिनिआँ-(सं० वर+जीवी)-द्वीना-पत्तल आदि बनाने-वाली जाति की स्त्रियाँ । उ० कटि कै छीन बरिनिआँ छाता पानिहि हो । (रा० ८)
 बरिबंड-(सं० बलवन्त)-१. बलवान, २. तेजस्वी, ३. दुष्ट, धृष्ट, प्रचंड । उ० प्रबल प्रचंड बरिबंड बरबेध बपु । (क० १।८)

बरिबंडा-दे० 'बरिबंड' । उ० १. रावन नाम वीर बरि-बंडा । (मा० १।१७६।१)
 बरियाँ-(सं० वेला)-समय, वक्त ।
 बरियाई-दे० 'बरिआई' ।
 बरियाई-दे० 'बरिआई' ।
 बरियार-(सं० बल)-१. बलवान, मजबूत, २. समर्थ । उ० १. वीर बरियार धीर धनुधर राय हैं । (गी० २।२८)
 बरियो-(सं० बल)-१. बली, बलिष्ठ, २. समर्थ । उ० २. कोसलपति सब प्रकार बरियो । (गी० २।२६)
 बरिस-(सं० वर्ष)-साल, वर्ष । उ० जिअहु जगतपति बरिस करोरी । (मा० २।२।३)
 बरिसन-(सं० वर्ष)-बरसने, बरसाने । उ० बरिसन लगे सुमन सुर । (जा० १०६) बरिसहि-बरसते हैं । उ० देखि दसा सुर बरिसहि फूला । (मा० २।२१६।४)
 बरिसा-वर्षण किया, बरसा । उ० बारिद तपत तेल जनु बरिसा । (मा० २।१२।२) बरिसो-बरसो, पानी बरसो । उ० राख को सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो । (वि० २६४)
 बरी (३)-(सं० बटी)-उर्द आदि की बड़ी जो खाने के काम आती है । उ० बरी बरी कै लोन । (दो० २४६)
 बरीसा-(सं० वर्ष)-वर्ष, साल । उ० जिअहु सुखी सय लाख बरीसा । (मा० २।१६६।३)
 बर (१)-(सं० बल)-बल, शक्ति । उ० दास तुलसी को, बलि, बड़ो बर है । (वि० २५५)
 बर (२)-(सं० वर)-१. वरदान, २. दुल्हा, दुल्हा । उ० १. होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बर । (मा० ७।३५।१) २. पूजो मन कामना भावतो बर बरि कै । (गी० १।७०)
 बर (३)-दे० 'बरुक' । उ० बारि मथे घृत होइ बर सिकता तें बर तेल । (दो० १२६)
 बरुक-(सं० वर)-बलिक, भले ही, चाहे ।
 बरुकु-दे० 'बरुक' । उ० निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई । (मा० २।४७।४)
 बरुण-(सं० वरुण)-१. जल के देवता, २. एक वृच विशेष ।
 बरुन-दे० 'बरुण' । उ० बरुन पास मनोज धनु हंसा । (मा० ३।३०।६)
 बरुनालय-दे० 'वरुणालय' । उ० पान कियो बिष भूषन भो, करुना-बरुनालय साईं हियो है । (क० ७।१५७)
 बरुथ-दे० 'वरुथ' । उ० १. जातुधान बरुथ बल अंजन । (मा० ७।२१।२) बरुथन्हि-समूहों को । उ० गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरुथन्हि को गनै । (मा० २।३।१)
 बरुथा-दे० 'वरुथ' । उ० २. हमरे बैरी बिबुध बरुथा । (मा० १।१८।३)
 बरे (२)-स्वीकार किया, माना । उ० रघुपति-भगति बरे हैं । (गी० ६।१३)
 बरेली-(?) १. मँगनी, सगाई, २. मुजा पर पहनने का एक गहना ।
 बरेषी-दे० 'बरेषी' । उ० १. रहि न जाइ बिनु किणु बरेषी । (मा० १।८।२)

बरोरु-दे० 'बरोरु' ।
 बरोरु-सं० बरोरु-सुन्दरी, सुन्दर जंघेवाली स्त्री, हे सुंदरी ।
 उ० जानसि मोर सुभाउ बरोरु । (मा० २।२६।२)
 बर्ग-दे० 'बर्ग' । उ० नारि बर्ग जानइ सब कोऊ । (मा०
 ७।११६।२)
 बर्ज-दे० 'बर्ज' । उ० रामकथा मुनि बर्ज बखानी । (मा०
 १।४८।२)
 बर्जित-दे० 'बर्जित' ।
 बर्वर-(सं०)-१. असभ्य, उजड़, जंगली, २. बुँवराले बाल,
 ३. बक्री । उ० १. रे कपि बर्वर खर्ब खल अब जाना तव
 ज्ञान । (मा० ६।२५)
 बर्म-दे० 'बर्म' । उ० जयति सुभग शारंग-सु-निखंग-सायक-
 सक्ति-चारु-चर्मासि-वरबर्म-धारी । (वि० ४४)
 बर्ये-(सं० बर्ये)-श्रेष्ठ, उत्तम ।
 बर-दे० 'वर')-भिड़, तितैया ।
 बलद-दे० 'बलद')-१. ऊँचा, ऊपर को उठा हुआ, २. भारी,
 बढ़ा ।
 बल-(सं०)-१. शक्ति, ज़ोर, सामर्थ्य, वृत्ता, २. बलदेव,
 ३. सेना, ४. स्थूलता, मोटाई, ५. शुक्र, वीज, ६. एक
 राक्षस, ७. वरुण नाम का वृक्ष । उ० १. अतुल बल विपुल
 विस्तार । (वि० ११) बलउ-बल भी । उ० बिधि बस
 बलउ लजान । (जा० ६७) बलधामा-बल के धाम, अत्यंत
 बली । उ० भयउ सो कुंभकरन बलधामा । (मा० १।
 १७६।२) बलधीर-बल तथा धैर्यवाला । उ० टरे न चाप,
 करै अपनी सी महा-महा बलधीर । (गी० १।८७)
 बलनि-बल के । उ० जीते लोकनाथ नाथ बलनि भरम ।
 (वि० २४६) बलमूल-बल की जड़, बलवान । उ० सुवा सो
 लंगूल बलमूल, प्रतिकूल हवि । (क० २।७) बलसीम-
 बल की सीमा, बलवान । उ० कौन के तेज बलसीम भट
 भीम से । (क० ६।४५)
 बलकल-(सं० बलकल)-पेड़ों की छाल जो प्राचीन काल में
 पहनने के काम आती थी । उ० बिसमउ हरषु न हृदयै
 कछु पहिरे बलकल धीर । (मा० २।१६५)
 बलकहीं-(?) बलबलाते हैं, व्यर्थ की बकवाद करते हैं ।
 उ० बेद-बुध बिद्या पाइ बियस बलकहीं । (क० ७।६८)
 बलकावा-(?))-१. आपे से बाहर किया, २. नीचा दिखाया,
 झुकाया । उ० १. जोवन ज्वर केहि नहि बलकावा । (मा०
 ७।७१।१)
 बलतोड़-बल टूटने के कारण उत्पन्न फोड़ा । दे० 'बरतोर' ।
 बलदाऊ-(सं० बलदेव)-बलराम । उ० 'सिगरियै हौं हीं
 खैहौं, बलदाऊ को न देहौं । (क० २)
 बलभैया-बलदेव, बलराम । उ० सैल-सिखर चढ़ि चितै
 चकित चित अति हित बचन कह्यौ बलभैया । (क० १६)
 बलमीक-(सं० बलमीक)-१. बाँधी, बिल, २. बलमीक मुनि ।
 उ० १. मरै न उरग अनेक जतन बलमीक बिबिध बिधि
 मारे । (वि० ११५)
 बलय-(सं० बलय)-कंकण, चूड़ी, कड़ा । उ० मंजीर-नूपुर-
 बलय धुनि जनु काम-करतल तार । (क० १८)
 बलवंत-(सं० बलवंतः) बलवान, बलशाली । उ० प्रभु
 माया बलवंत भवानी । (मा० ७।६२।५)

बलवंता-दे० 'बलवंत' । उ० कहँ नल नील दुबिदि बल-
 वंता । (मा० ६।४३।१)
 बलवान-(सं० बलवान) बलवाला, शक्तिशाली । उ० हिरन्याच्छ
 आता सहित मधु कैटभ बलवान । (मा० ६।४८ क)
 बलवाना-दे० 'बलवान' । उ० पच्छिम द्वार रहा बलवाना ।
 (मा० ६।४३।२)
 बलशाली-(सं० बलशालिन)-बलवान, बलवाला ।
 बलसालि-दे० 'बलशाली' । उ० बालि-बलसालि-बध-मुख्य
 हेतु । (वि० २५)
 बलशाली-दे० 'बलशाली' । उ० बधे सकल अतुलित बल-
 साली । (मा० ५।२१।५)
 बलसील-(सं० बलशील)-बलवान, बलिष्ठ । उ० अंगद
 मयंद नल-नील बलसील महा । (क० ५।२६)
 बलसीला-दे० 'बलसील' । उ० है कपि एक महा बल-
 सीला । (मा० ६।२३।३)
 बलहा-(सं० बलहन)-१. श्लेष्मा, कफ, २. बल-
 नाशक ।
 बलाइ-(अर० बला)-विपत्ति, बलाय । उ० बानर बड़ी
 बलाइ बने घर घालिहै । (क० ५।१०)
 बलाक-सं०)-वक, बगला । उ० कामी काक बलाक
 बिचारे । (मा० १।३८।३)
 बलाका-बगलों की पंक्ति ।
 बलाय-(अर० बला)-आपत्ति, आपदा, विपत्ति ।
 बलाहक-(सं०)-१. मेघ, बादल, २. पर्वत । उ० १. गर्जहि
 मनहुँ बलाहक घोरा । (मा० ६।८७।२)
 बलि-(सं०)-१. प्रह्लाद का पौत्र और विरोचन का पुत्र
 जो दैत्यों का राजा था । विष्णु ने बावन अवतार धारण
 कर इसे छला था । २. बलिदान, न्यौछावर । उ० १. वृत्र
 बलि बाय्य प्रह्लाद । (वि० ५७) २. जानकी जीवन की
 बलि जैहौं । (वि० १०४) बलिहि-बलि को । उ० बलिहि
 जितन एक गयउ पताला । (मा० ६।२४।७)
 बलित-(?))-१. बेरा हुआ, वेष्टित, २. सिक्कड़न पड़ा हुआ,
 गंभेदार, सिमटा । उ० १. मंजु बलित बर बलि बिताना ।
 (मा० २।१३७।३) २. पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा बलित
 बलिन लाल । (गी० ७।१८)
 बलिदान-(सं०)-१. देवता पर कोई पूजा चढ़ाना, २.
 किसी जीव को किसी देवता को चढ़ाने के लिए मारना ।
 बलिष्ठ-(सं० बलिष्ठ)-बहुत बलवान ।
 बलिहारी-(सं० बलि)-१. न्यौछावर, कुर्बान, २. बलि-
 हारी जाती है, कुर्बान होती है । उ० २. कहहु तात जननी
 बलिहारी । (मा० २।५२।४)
 बली-(सं० बलिन)-बलवान । उ० बालि बली बलसालि दली
 सखा कीन्ह कपिराज । (दो० १५८)
 बलीमुख-(सं० बलिमुख)-बंदर । उ० चली बलीमुख सेन
 पराई । (मा० ६।५।५)
 बलु-(सं० बल)-ज़ोर, ताकत । उ० चले बलु सबनि गह्यौ
 है । (गी० ४।२)
 बलैया-(अर० बला)-बला, बलाय । उ० बलैया लेउँ-
 मंगला कामना करते हुए प्यार करूँ । उ० साहब न राम
 से बलैया लेउँ सीता की । (क० ६।५२)

बलौ-बल वाले दोनों । उ० कुंदेन्दीवर सुंदरावतिबलौ
विज्ञान धामावुभौ । (मा० ४।१।११०० १)
बल्लभ-(सं० बल्लभ)-प्यारा, प्रिय । उ० ताते सुर सीसन्ह
चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड । (मा० ७।३७)
बवनहार-(सं० वपन)-बोनेवाला ।
बवरि-(सं० मुकुल)-बौर, मंजरी ।
बवा-(सं० वपन)-बोया, लगाया । उ० बवा सो लुनिअ
लहिअ जो दीन्हा । (मा० २।१६।३) बवै-बोवै । उ० बवै
सो लवै निदान । (वै० ५)
बपान-(सं० व्याख्यान)-स्तुति, बड़ाई ।
बपाना-(सं० व्याख्यान)-कहा ।
बसंत-(सं० वसंत)-१. एक प्रसिद्ध ऋतु जिसका समय चैत
और बैसाख है । २. फाग, ३. एक पर्व । उ० १.औरै सो
बसंत, और रति, औरै रतिपति । (क० २।१७)
बसंता-दे० 'बसंत' ।
बस (१)-(सं० वश)-अधीन, काबू में । उ० जिन्ह के बस
सब जीव हुखारी । (मा० ७।१२०।४)
बस (२)-(सं० वसन)-१. बसता था, २. बसे । उ० १.
बस मारीच सिधुत जहवाँ । (मा० ३।२३।४) २. राम
भगति मनि उर बस जाके । (मा० ७।१२०।५) बसइ-
बसती है । उ० बसइ जासु उर सदा अबाधी । (मा० ७।
११६।३) बसउ-१. बसे, बस जावे, २. बसो । उ० २.
बसउ भवन उजरउ नहिं हरजै । (मा० १।८०।४) बसत-
१. बसें, रहें, २. बसते हैं, रहते हैं, ३. बसते हुए, ४.
बसता हूँ । उ० २. अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा
बसत, इति वासना धूप दीजै । (वि० ४७) बसति (१)-
(सं० वसन)-बसती हो, रहती हो । उ० बसति सो तुलसी
हिप । (जा० ३६) बसतु-१. रहो, निवास करो, २.
बसता । उ० १. बसतु मनसि मम काननचारी । (मा०
३।११।६) बसब-१. बसना, रहना, २. रहोगे, निवास
करोगे । उ० २. जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्री
भगवंत । (मा० ७।११३ ख) बससि-१. बसती हो, बसते
हो, बसता है, २. बसनेवाली, रहनेवाली । उ० १. ईस
सीस बससि, त्रिपथ लससि नभ-पताल-धरनि । (वि०
२०) बसहिं-बसते हैं, निवास करते हैं । उ० सीय समेत
बसहिं दोउ बीरा । (मा० २।२२।३) बसहीं-बसते
हैं, रहते हैं । उ० अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं ।
(मा० २।१३।४) बसही-बसता है, बस गया है ।
बसहु-१. ठहर जाओ, २. निवास करो । उ० १. बसहु
आहु अस जानि तुम्ह जापहु होत बिहान । (मा० १।
१५६ क) बसा-(१)-१. निवास किया, २. ठहरा, रुका ।
बसि-बसकर, निवास करके, रहकर । उ० उर बसि प्रपंच
रचै पंचवान । (वि० १४) बसिहिं-बसेंगे । उ० सब
सुभ गुन बसिहिं उर तोरें । (मा० ७।८५।३) बसी-
टिकी, ठहरी । उ० बसी मानहुं चरन कमलनि अरुनता
तजि सरनि । (गी० १।२४) बसे-१. रहे, निवास किए ।
२. टिके, रुके । उ० २. जलु थलु देखि बसे निसि कीर्त ।
(मा० २।२२६।१) बसेऊ-बस गई । उ० मंदोदरी सोच
उर बसेऊ । (मा० ६।१४।३) बसै-बस जावें, रहें । उ०
बसै सुवास सुपास होहि सब फिरि गोकुल रजधानी ।

(क० ४८) बस्यौ-१. बसा, २. बसा हुआ । उ० २.
चाहत अनाथ-नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं । (वि० १८१)
बसकर्ता-(सं० वशकर्ता)-वश में करनेवाला ।
बसकारी-(सं० वशकारिन्)-वश में रखनेवाला । उ० अंकुस
मन गज बसकारी । (वि० ६३)
बसति (२)-(सं० वसति)-बस्ती, स्थान, नगर । उ०
विरची विरचि की बसति विस्वनाथ की जो । (क० ७।
१८२)
बसन-(सं० वसन)-१. कपड़ा, वस्त्र, २. बसनेवाले । उ०
१. दिव्य-भूषन-बसन । (वि० ४४)
बसवती-(सं० वशवती)-अधीन, वश में ।
बसबास-(सं० वसन + वास)-निवास, रहना । उ० सुनि
मुनि थायसु प्रभु कियो, पञ्चवटी बसबास । (प्र० २।
७।१)
बसवती-वश में रहनेवाला । उ० दसमुख बसवती नर
नारी । (मा० १।१८२।६)
बसहँ-बैलों पर । उ० भरि भरि बसहँ अपार कहारा । (मा०
१।३३३।३) बसह-(सं० वृषभ)-बैल । उ० बसह बाजि
गज पसु हियँ हारें । (मा० २।३२०।४)
बसा-(२)-(सं० बसा, चर्बी, मज्जा ।
बसाई (१)-(सं० वश)-बश चले । उ० काटिअ तासु जीभ
जो बसाई । (मा० १।६४।२) बसात (१)-(सं० वश)-
वश चलता है । बसाति-वश चला । उ० बिधि सों न
बसाति । (गी० १।७)
बसाइ-(सं० वास)-बसा करके । उ० बिधि की न बसाइ
उजारो । (गी० २।६६) बसाइहौं-बसाऊँगी, टिकाऊँगी ।
उ० हँसनि, खेलनि, किलकनि, आनंदनि भूपति-भवन
बसाइहौं । (गी० १।१८) बसाई-(२)-टिकाया, ठह-
राया । बसावत-१. बसाता, बसाता है, २. टिकाता,
ठहराता है । उ० १. आप पाप कों नगर बसावत । (वि०
१४३) बसैहँ-बसावेंगे । उ० तिलक सारि अपनाय बिभी-
षन अभय-बाँह दै अमर बसैहँ । (गी० १।५१) बसैहौं-
बसाऊँगा, टिकाऊँगा । उ० मन-मधुकर पन करि तुलसी
रघुपति-पद कमल बसैहौं । (वि० १०५)
बसाई (३)-(सं० वास)-१. बुरा महँकता है, गंधाता है,
२. महँकता है, अच्छा महँकता है, ३. वासयुक्त होकर,
सुवासयुक्त होकर, ४. सुवासित कर देता है । उ० ३.
अगरु प्रसंग सुगंध बसाई । (मा० १।१०।५) ४. निज गुन
देइ सुगंध बसाई । (मा० ७।३७।४) बसात (२)-(सं०
वास)-बुरा महँकता है, महँकता । उ० तेहि न बसात
जो खात नित लहसुनहु को बासु । (दो० ३५५)
बसावन-(सं० वास) बसानेवाले, टिकानेवाले । उ० उथपे-
थपन, उजार-बसावन । (वि० १३६)
बसिष्ठ-(सं० वसिष्ठ)-एक ऋषि जो राम के कुलगुरु थे ।
उ० भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे । (मा० २।१७।१२)
बसीठ-(सं० अवसृष्ट)-दूत, संदेशवाहक । उ० प्रथम बसीठ
पठउ सुनु नीती । (मा० ६।१।५)
बसीठीं-बसीठी का बहुवचन । दे० 'बसीठी' । उ० त्रिविध
बयारि बसीठीं आईं । (मा० ३।३८।५) बसीठी-संदेशा
देने का काम, दूतत्व ।

वसुंधरा-(सं० वसुंधरा)-पृथ्वी, धरती ।
 वसुधा-(सं० वसुधा)-पृथ्वी, धरती । उ० कमल सेप सम
 धर वसुधा के । (मा० ११२०।४) वसुधाहूँ-पृथ्वी पर भी,
 पृथ्वी को भी । उ० कीन्हेउ सुलभ सुधा वसुधाहूँ । (मा०
 २।२०६।३)
 वसुला-(सं० वासि)-एक हथियार जिससे बड़ई काम
 करते हैं ।
 वसेरा-(सं० वास) बसने का स्थान, घांसला, घर, रहने की
 जगह । उ० मानहूँ विपति विपाद वसेरा । (मा० २।३२।२)
 वसेरें-बसने में, बसने पर । उ० उजरें हरप विपाद वसेरें ।
 (मा० १।४।१) वसेरे-१. बसने पर. २. स्थान, निवास-
 स्थान, घर । उ० १. गोरस-हानि सहौं न कहौं कछु यहि
 मजबास वसेरे । (क० ३) २. निपट वसेरे अथ औगुन घनेरे
 नर । (क० ७।१७४)
 वसैया-बसनेवाले । उ० तुलसी तब के से अजहूँ जानिबे
 रघुबर-नगर-वसैया । (गी० १।६)
 वस्ती-(सं० वसति)-बसने का स्थान, गाँव, आबादी ।
 उ० वस्ती हस्ती हास्तनी देति न पति रति दानि । (सं०
 १।६५)
 वस्तु-(सं० वस्तु)-चीज, जिन्स । उ० मनि गन मंगल वस्तु
 अनेका । (मा० २।६।२)
 वस्य-(सं० वश्य)-वश में, अधीन, वशीभूत । उ० रुचिर
 रूप-आहार-वस्य उन पावक लोह न जान्यो । (वि० ६२)
 वह-(सं० वहन)-१. बहता है, चलता है, २. चले, बहे,
 ३. भार ढोवे । उ० १. सानुकुल वह त्रिविध बयारी ।
 (मा० १।३०३।२) वहइ-१. चलता है, २. बहता है, ३. ढोता
 है । उ० १. वहइ न हाथु दहइ रिस छाती । (मा० १।
 २८०।१) वहई-१. बहता है, २. ढोता है । उ० १. सुभ
 अर अमुभ सलिल सब वहई । (मा० १।६६।४) वहत-
 १. बहता है, प्रवाहित होता है, २. बहते हुए, ३. ढोता
 है, ४. ढोते हुए । उ० १. वहत समीर त्रिविध सुख
 लीन्हे । (मा० २।३११।३) वहति-१. बहती है, २. ढोती है ।
 उ० १. दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त वहति भया-
 बनी । (मा० ६।८७। छं० १) वहतु-१. बहता, २. वहन
 करना, ढोता, ३. धारण करना । उ० २. छोनप-छपन
 वाँको विरुद बहुतु हौं । (क० १।१८) वहते-१. वहन
 किया होता, धारण किया होता, २. प्रवाहित होते ।
 वहति-१. ढोता है, वहन करता है, धारण करता है, २.
 बहता है । उ० २. विमल विपुल वहसि बारि । (वि०
 १७) वहहिं-१. उठाते हैं, ढोते हैं, २. बहते हैं । उ० १.
 जरहिं पतंग मोह बस भार वहहिं खर वृद । (मा० ६।
 २६) वहहीं-१. बहते हैं, २. ढोते हैं । उ० १. सरिता सब
 पुनीत जखु बहहीं । (मा० १।६६।१) वहहूँ-ढो रहे हैं ।
 उ० मुधा मान ममता मद बहहूँ । (मा० ६।३७।३)
 वहिवे-१. सुगतोगे, सहन करोगे, २. भोगना पड़ेगा,
 सहना पड़ेगा । उ० २. गाड़े भली, उखारे अनुचित, बनि
 आप बहिवे ही । (क० ४०) वहिवो-बहना । उ० तजे
 चरन अजहूँ न मिटत नित बहिवो ताहूँ केरो । (वि० ८७)
 वहीं-बह निकली, बहने लगी । उ० अतिसय बड़भागी
 चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही । (मा० १।२१।१)

छं० १) बहे-१. बह गए, २. बहते, बिगड़े, गिरे । उ० २.
 बहे जात कह भहसि अधारा । (मा० २।२३।१) बहो-१.
 बहा, २. बहा हुआ, गया, ३. बहता । उ० ३. महामोह-
 सरिता अपार मह संतत फिरत बहो । (वि० ६२)
 वहन (१)-(सं० वहन)-१. ढोने या धारण करने की क्रिया
 या भाव, २. जाना, बहना ।
 वहन (२)-(सं० भगिनी)-बहिन ।
 वहनु-ढोनेवाला, वाहन । उ० भवन विभूति भाँग वृषभ
 वहनु है । (क० ७।१६०)
 वहरावा-(फ़ा० बहाल)-मुलाया, टाला । उ० सुनि कपि
 बचन विहँसि बहरावा । (मा० २।२२।१)
 बहरी (१)-(अर०)-एक शिकारी चिड़िया । उ० तीतर-
 तोम तमीचर-सेन समीर को सुतु बड़ो बहरी है । (क०
 ६।२६)
 बहरी (२)-(सं० वधिर)-जो न सुने । 'बहरा' का स्त्री-
 लिंग ।
 बहाई-(सं० वहन)-बहाया है, बहा दिया है । उ० दुष्ट
 तर्क सब दूरि बहाई । (मा० ७।४६।४) बहावै-दूर कर
 देता है । उ० मोह अंध रवि बचन बहावै । (वै० २२)
 बहैहौं-(सं० वहन)-बहा दूँगा, अलग कर दूँगा, बर्बाद कर
 दूँगा । उ० नातो नेह नाथ सौं करि सब नातो नेह
 बहैहौं । (वि० १०४)
 वहि-(सं० बाह्य)-बाहर, अलग, दूर । उ० त्यों त्यों सुकृत
 सुभत कलि भूपहि निदरि लगे वहि कादन । (वि० २१)
 वहिनी-(सं० भगिनी)-बहन, भगिनी । उ० सूपनखा रावन
 के बहिनी । (मा० ३।१७।२)
 वहिर-(सं० वधिर)-जो न सुने, बहरा ।
 वहिमुख-(सं०)-१. विमुख, बिरुद्ध, २. अधर्मी, ३. बागी ।
 वहु (१) (सं०)-अधिक, अनेक । उ० तुलसी अभिमान
 महिपेस बहु कालिका । (वि० ४८) बहुबाहू-बहुत सी
 भुजाओंवाला, रावण । उ० नार्हि त अस होइहि बहुबाहू ।
 (मा० ३।२६।८)
 बहु (२)-(सं० वधू)-बहु, वधू ।
 बहुत-(सं० बहुतर)-अधिक, मूंड, समूह, अनेक, बहु । उ०
 बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी । (मा० २।२५।३) बहु-
 तक-बहुत से, अनेक । उ० बहुतक बीर होहिं सतखंडा ।
 (मा० ६।६८।३) बहुतन-बहुत से, बहुतों ने । उ० बहुतन
 परिचौ पायो । (गी० १।१४) बहुते-बहुत, अधिक । उ०
 बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया । (मा० १।१२८।३) बहु-
 तेन्ह-बहुतों को । उ० बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका ।
 (मा० ७।३१।१) बहुतै-बहुत से । उ० बूढ़ भये, बलि,
 मेरेहि वार, कि हारि परे बहुतै नत पाखे । (ह० १७)
 बहुताई-१. बहुतता, अधिकता, बहुत्व, बहुतायत, २.
 विस्तार । उ० १. चले बिलोकत बन बहुताई । (मा०
 ३।३३।२) २. चितव कृपाल सिंधु बहुताई । (मा० ६।
 ४।२)
 बहुतेरे-(सं० बहुतर + एरा)-बहुत से, अधिक, अनेक ।
 उ० अवलोके रघुपति बहुतेरे । (मा० १।२५।२)
 बहुतेरो-बहुत से, बहुत । उ० पर-गुन सुनत दाह, पर-दूषन
 सुनत हर्ष बहुतेरो । (वि० १४३)

बहुधा-(सं०)-प्रायः, अक्सर, २. बहुत प्रकार के, बहुत तरह के। उ० २. धनहीन दुखी ममता बहुधा। (मा० ७।१०२।१)

बहुरंग-दे० 'बहुरंगा'। उ० १. सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा। (मा० १।३७।३)

बहुरंगा-(सं० बहु + रंग)-१. बहुत से रंगोंवाला, रंगबिरंगा। २. तरह तरह का। उ० २. देखल बालचरित बहुरंगा। (मा० ७।७५।४)

बहुरहिं-(प्रा० पहोलन)-१. बहुरते हैं, लौटते हैं, २. लौटेंगे, फिरंगे। उ० २. मालु कहेहुँ बहुरहिं रघुराज। (मा० २।२५३।२) बहुरि-१. पुनः, २. फिर, लौट, ३. लौटकर, फिरकर। उ० २. आवहिं बहुरि रामु रजधानी। (मा० २।१८३।४) बहुरे-फिरे, लौटे। उ० बहुरे लोग रजायसु भयज। (मा० १।३६१।२) बहुरो-१. फिर, पुनः, २. लौटे, फिरे। उ० १. बहुरो भरत कछो कछु चाहैं। (गी० २।७३)

बहुल-(सं०)-प्रचुर, बहुत, अधिक, पर्याप्त। उ० बहुल वंदारु-वृंदारका वृंद-पद-वृंद। (वि० ५४)

बहु-(सं० वधु)-बधु, सौभाग्यवती स्त्री।

बहुता-(सं० बहुतर)-बहुत, अधिक। उ० तात मोर अति पुन्य बहुता। (मा० ५।४।४)

बहेड़ा-(सं० बिभीतक)-एक विशेष पेड़ या उसका फूल। यह निषिद्ध वृक्षों में गिना जाता है।

बहेरा-दे० 'बहेड़ा'। बहेरे-दे० 'बहेड़ा'। उ० नाम-प्रसाद लहत रसाल-फल अब हौं बहुर बहेरे। (वि० २२७)

बहोर-(प्रा० प्रहोलन)-बहोरनेवाला, लौटानेवाला, फिर से ले आनेवाला। उ० गई बहोर गरीब नेवाजू। (मा० १।१३।४)

बहोरि-१. फिर, दोबारा, दोहरैया, २. लौटानेवाला, ३. लौटाकर, फेरकर, ४. फेरी। उ० १. जौ बहोरि कोउ पछुन आवा। (मा० १।३६।२)

बहोरी-दे० 'बहोरि'। उ० १. प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी। (मा० १।१६।१)

बाँक-(सं० वक्र)-१. टेढ़ा, घुमावदार, २. एक शब्द, ३. हाथ का एक आच्छेपण। उ० दे० 'होइहि बारु न बाँक'। मु० होइहि बारु न बाँक-बाल न टेढ़ा होगा, कुछ भी छुरा न होगा। उ० सकल सगुन मंगल कुसल, होइहि बारु न बाँक। (प्र० ६।३।४)

बाँका-(सं० वक्र)-१. टेढ़ा, २. बहादुर, वीर, ३. झैला, बना-ठना आदमी, ४. पैना, तेज, ५. कुशल, चतुर, ६. सुंदर, अमृता। बाँकी-(सं० वक्र)-१. टेढ़ी, तिरछी, २. गहरी, ३. विकट, ४. अपूर्व, चोखी, अनोखी, ५. तीव्र, ६. सुंदर, मनोहर। उ० ३. सुनत हनुमान की हाँक बाँकी। (क० ६।४४) ४. बाँकी बिरदावली बनैगी पाले ही कृपालु। (वि० २५६) ६. चितवनि चारु शुकुटि बर बाँकी। (मा० १।२।६।४) बाँके-अच्छे, मझे के। उ० कहाँ हनुमान से वीर बाँके। (क० ६।४५)

बाँकुर-दे० 'बाँका'। उ० ६. जौ जग-बिदित पतित-पावन अति बाँकुर बिरद न बहते। (वि० ६७)

बाँकुरा-दे० 'बाँका'। उ० २. रन बाँकुरा बालिसुत बंका।

(मा० ६।१८।१) बाँकुरे-दे० 'बाँका'। उ० ६. बाँकुरे बिरद बिरुदैत केहि केरे। (वि० २१०)

बाँकुरो-दे० 'बाँका'। उ० ६. बाँकुरो वीर बिरुदैत बिरुदावली। (ह० ३)

बाँको-(सं० वक्र)-१. बाँका, टेढ़ा, २. सुंदर, सुघर। उ० १. होइ न बाँको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै। (वि० १३७) मु० होइ न बाँको बार-कुछ भी हानि न हो। उ० दे० 'बाँको'।

बाँगुरो-(?) जाल, फंदा। उ० तुलसिदास यह विपति-बाँगुरो तुमहि सौं बनै निबेरे। (वि० १८७)

बाँच (१)-(सं० वाचन)-बाँचकर, पढ़कर। बाँचन-बाँचते समय, पढ़ते समय। उ० बारि बिलोचन बाँचत पाती। (मा० १।२६०।२) बाँचि (१)-(सं० वाचन)-पढ़कर, बाँचकर। बाँची (१)-(सं० वाचन)-१. पढ़ी, २. पढ़कर। उ० १. पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। (मा० १।२६०।३) बाँचो (१)-(सं० वाचन)-१. पढ़ो, पाठ करो, २. अवलोकन करो, देखो। उ० १. बिनयपत्रिका दीन की, बापु! आपु ही बाँचो। (वि० २७७)

बाँच (२)-बचा, शेष रहा। बाँचा-१. बचा, जीवित रहा, २. बचाया। उ० २. बाल बिलोकि बहुत मै बाँचा। (मा० १।२७५।२) बाँचि (२)-(सं० वंचना)-१. बचे, शेष रहे, २. बचे, रक्षा पाये, ३. बचाकर, रक्षा कर। उ० १. बड़े ही की ओट, बलि, बाँचि आपु छोटे हैं। (वि० १७८) बाँचिय-बचेंगे, बचें, शेष रहें। उ० देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय। (पा० १।१६) बाँची (२)-(सं० वंचना)-बचा कर, छोड़ कर, २. बची, शेष रही, छुटी, ३. बचे, शेष रहे। उ० २. बिरचे बिरचि बनाइ बाँची रुचिरता रंचौ नहीं। (जा० ३६) ३. सो माया रघुवीरहि बाँची। (मा० ६।८।६।४) बाँचु-१. बचें, २. बचा। बाँचैं-१. बचे, शेष रहे, २. बचते हैं, बच जाते हैं। उ० २. तुलसी बाँचैं संत जन, केवल साँति-अधार। (वै० ५३) बाँचो (२)-बचा, शेष रहा। उ० बड़ी ओट राम नाम की जेहि लई सो बाँचो। (वि० १४६)

बाँक-(सं० वंध्या)-वह स्त्री या किसी प्राणी की मादा जिसे संतान न हो। उ० जननी कत भार सुई दस मास भई किन बाँक, गई किन च्यै। (क० ७।४०)

बाँका-दे० 'बाँक'।

बाँट-(सं० वितरण)-भाग, अंश, हिस्सा। उ० बिप्रद्रोह जलु बाँट परयो, हठि सब सौं बैर बढ़ावौं। (वि० १४२)

बाँटि-बाँटकर। बाँटी-(सं० वितरण)-१. बाँट ली, बाँटाया, २. हिस्सा किया, ३. हिस्सा करके दिया। उ० १. बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई। (मा० २।३०।६।३)

बाँध-(सं० बंधन)-बाँध देता है। उ० मम पद मनहि बाँध बरि डोरी। (मा० ५।४८।३) बाँधई-बाँधे, रोके। उ० तुलसी भली सो बैदई बेगि बाँधई ज्याधि। (स० ४६) बाँधत-१. बाँधता है, जकड़ता है, बंधन में डालता है, २. बाँधते हुए। उ० २. कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यों? (मा० ३।१८।४) १) बाँधहु-बाँधो। उ० धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ। (मा० १।२६।६।२) बाँधा-बाँध दिया। उ० बाँधा सिधु इहइ प्रभुताई। (मा०

६।२।१) बाँधि-१. पुल बाँधकर, २. बाँध, बाँध कर ।
 उ० १. राम बाँधि उतरे उदधि लाँधि गद्गु हनुमान ।
 (दो० ५२८) बाँधियैगा-बाँधैगी । उ० जानी है जानपनी
 हरि की, अब बाँधियैगी कछु मोटि कला की । (क०
 ७।१३४) बाँधी-बाँध दी । बाँधे-बाँधा, बाँध लिया । उ०
 उ० जिन बाँधे सुर असुर नागनर प्रबल करम की डोरी ।
 (वि० ६८) बाँधउ-दे० 'बाँधे' । बाँधिये-बाँध दिया ।
 उ० ह्य गृहँ बाँधिसि बाजि बनाई । (मा० १।१७।१४)
 बाँधिसु-बाँधना, बाँध लेना । उ० मारसि जनि सुत बाँधिसु
 ताही । (मा० १।१६।१) बाँधेहु-बाँध लो । बाँधे-१. बाँधो,
 २. बाँध ले । उ० १. मेरो कछो मानि तात ! बाँधे जिनि
 बैरे । (गी० २।२७) बाँधयो-बाँधा, बाँध दिया । उ०
 सोइ अबिच्छिद ब्रह्म जसुमति बाँध्यौ हठि सकत न
 छोरी । (वि० ६८)

बाँध-(सं० वाम)-बाँध, दायें का उलटा । उ० घोर हृदय
 कठोर करतव सृष्टो हीं विधि बाँध । (गी० ७।३१)

बाँया-१. बाँयी ओर का, २. उलटा ।

बाँयो-बायीं ।

बाँवो-बायीं । न० दियो बावो-१. न माना, टाल दिया,
 २. अनादर किया, विरोध किया, ३. बँचकर निकल गया ।
 उ० १. जो दसकंड दियो बाँवो जेहि हर-गिरि कियो है
 मनाऊ । (गी० १।८७)

बाँस-(सं० वंश)-१. बाँस नाम का एक पेड़, २. जमीन
 नापने की लगी, ३. बरलम, भाखा, ४. लाठी । उ० ३.
 फरसा बाँस सेल सम करहीं । (मा० २।१६।१३)

बाँह-(सं० बाहु)-१. भुजदंड, भुजा, बाहु, २. शरण,
 रक्षा, पनाह, ३. सहायता, बल, मदद । उ० १. सुरपति बसह
 बाँह बल जाके । (मा० २।२५।१) मु० बाँह बस्यो हीं-
 शरण में हूँ । उ० चाहत अनाथ-नाथ तेरी बाँह बस्यो
 हीं । (वि० १।८१) बाँह बोल दे-अपना भरोसा देकर ।
 उ० बाँह बोल दे थापिपु जो निज बरिआई । (वि० ३।५)
 बाँह बोलि-आशवासन या भरोसा देकर । उ० मीजो
 गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि । (वि० ७।६) बाँह
 बोले की-शरण में लेने की, सहायता की प्रतिज्ञा
 करने की । उ० लाज बाँह बोले की, नेवाजे की, सँभार
 सार । (क० ७।२२)

बा-(सं० वा)-बा, अथवा ।

बाइ-(सं० व्यापन)-फैलाकर, खोलकर । उ० मुख बाइ
 धावहि खान । (मा० ६।१०।१४) बाई (१)-(सं०
 व्यापन)-१. खुली, २. खोली ।

बाइन-(सं० वायन)-१. भेंट, उपहार, खुशी के उपलक्ष में
 बाँटी गई मिठाई आदि, २. पेशगी, अगवद ।

बाई (२)-(?) स्त्री, अबला ।

बाउ (१)-(सं० वायु)-हवा, पवन । उ० संतत बहै त्रिविध
 बाउ । (गी० २।४४)

बाउ (२)-(फ्रा० वाह)-१. धन्यवाद, २. वाह ।

बाउर-(सं० वातुल)-बौद्ध, पागल, बौरहा । उ० तेहिं जह
 बह बाउर कस कीन्हा । (मा० १।६।१४) बाउरि-बावली,
 पगली । उ० बौरहि के अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि । (पा०
 ७०)

बाऊ-(सं० वायु)-हवा, पवन । उ० सीतल मंद सुरभि
 बह बाऊ । (मा० १।१६।१२)

बाएँ-(सं० वाम)-१. बाईं ओर, २. बायीं, ३. विरोधी,
 प्रतिकूल । मु० बाएँ लाइ-न मानकर, अवहेलना कर ।
 उ० आयउँ लाइ रजायसु बाएँ । (मा० २।३००।१)

बाक्य-(सं० वाक्य)-बचन ।

बाग (१)-(सं० वाक्)-वाणी, बचन । उ० मृदु मंजुल
 जनु बाग विभूषण । (मा० २।४।१३) बागही-वाणी से,
 मुँह से, जीभ से । उ० एक कहहि कहहि करहि अपर एक
 करहि कहत न बागही । (मा० ६।६०।४० १)

बाग (२)-(अर० बाग)-बगीचा, उपवन, उद्यान । उ०
 पुलक बाटिका बाग वन, सुख सुनिहंग बिहाह । (मा०
 १।३७) बागन्ह-(अर० बाग)-बागों में, बाटिकाओं में ।
 उ० बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं । (मा० २।८
 ३।४)

बाग (३)-(सं० बलाग)-लगाम, बागडोर ।

बागत (१)-(सं० बक=चलना)-चलते, फिरते, टहलते
 हुए । उ० बैठे उठे जागत बागत सोए सपने । (क०
 ७।७८) बागिहँ-भटकता फिरेगा । उ० पाइ परितोष तू न
 द्वार द्वार बागिहँ । (वि० ७०) बागे-फिरे, बोले । उ०
 चंचल चरन लोभ लागि लोखुप द्वार द्वार जग बागे ।
 (वि० १।७०)

बागत (२)-(सं० वाक्)-बोलते हुए । उ० जागत बागत
 सपने न सुख सोइहँ । (वि० ६८)

बागवान-(फ्रा० बागवान)-माली, बाग की देख रेख
 करनेवाला । उ० मारे बागवान ते पुकारत देवान गे ।
 (क० ५।३१)

बागा-दे० 'बाग' । बगीचा । उ० करि प्रनामु देखत बन
 बागा । (मा० २।१०।१२)

बागीसा-(सं० वाग + ईश)-आकाशवाणी । उ० जानेहु
 तब प्रमान बागीसा । (मा० १।७।१२)

बागु-दे० 'बाग' । बगीचा । उ० बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु
 हरषे बंधु समेत । (मा० १।२२।७)

बागुर-(?)-पशु या पत्नी आदि फँसाने का जाल । उ०
 बागुर बिपम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस । (मा०
 २।७५)

बागुरा-दे० 'बागुर' । बागुरी-दे० 'बागुर' ।

बागुरि-दे० 'बागुर' ।

बाघ-(सं० व्याघ्र)-शेर, सिंह, नाहर । उ० तिन्हके बचन
 बाघ हरि ब्याला । (मा० १।३८।४) बाघउ-बाघ भी ।
 उ० बाघउ सनमुख गएँ न खाई । (मा० ६।७।१)
 बाघिनि-दे० 'बाघिनी' । उ० मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि
 भूखी । (मा० २।५।११)

बाघिनी-बाघ की स्त्री, शेरिनी ।

बाचक-(सं० वाचक)-कहने या बाँचनेवाला ।

बाचत-(सं० वाचन)-१. बाँचते या पढ़ते हैं, २. बाँचते समय,
 पढ़ते समय । उ० २. बाचत प्रीति न हृदयँ समती । (मा० १।
 ६।१३) बाचा-१. पढ़ा, पाठ किया, २. बोलने की शक्ति,
 ३. बचन, बात, वाणी, ४. सरस्वती । उ० ३. मनसा
 बाचा कर्मना, सुखसी बंदत ताहि । (वै० २।६) ४. रावन

कंभकरन बर मांगत सिव बिरंचि बाचा छले ।
 (गी० ११४१) वाचि-बाँचकर, पढ़कर । उ० जनक
 पत्रिका बाचि सुनाई । (मा० १२६११) बाचिहै (१)-
 पढ़ेगा ।
 बाचाल-(सं० वाचाल)-बोलने में तेज़, बकवादी । उ०
 मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिवर गहन । (मा० १११
 सो० २)
 बाचाला-दे० 'बाचाल' । उ० धन मद मत्त परम बाचाला ।
 (मा० ७१६७२)
 बाचिहै (२)-(सं० वंचन)-बचेगा, शेष रहेगा । उ० बाचिहै
 न पाछे त्रिपुरारिहू सुरारिहू के । (क० ६११)
 बाज (१)-(सं० वाद्य)-१. बजने लगे, २. बज सकता है ।
 उ० १. गावहिं गीत सुवासिनि बाज बधावन । (जा०
 १२७) बाजइ-बजता है । उ० कर कंकन, कटि किंकिनि,
 नूपुर बाजइ हो । (रा० ११) बाजत-१. बजता है, शब्द
 करता है, २. लड़ता है, युद्ध करता है । उ० १. राजत
 बाजत बिपुल निसाना । (मा० १२६७३) बाजन-
 (सं० वाद्य)-१. बाजा, वाद्य, २. बजने, शब्दायमान
 होने । उ० १. कोटिन्ह बाजन बाजहिं दूसरथ के गृह हो ।
 (रा० २) २. बिपुल बाजने बाजन लागे । (मा० १
 ३४२) बाजने-१. बाजे, २. बजने, ३. लड़ने ।
 उ० १. दे० 'बाजन' का 'उ० २.' । बाजनेऊ-बाजे
 भी । उ० बोले बंदी बिरुद बजाइ बर बाजनेऊ ।
 (क० ११८) बाजहिं- बजते हैं, बज रहे हैं । उ० बिबिध
 प्रकार गहगहे बाजन बाजहिं । (जा० २०४) बाजा-
 (सं० वाद्य)-१. कोई बजनेवाली चीज, २. लड़ा,
 लड़ गया, ३. बजा, शब्दायमान हुआ । उ० २. तिन्हहि
 निपाति ताहि सन बाजा । (मा० ११६१४) बाजिहै-
 बाजेंगे, बजेंगे । उ० लंका खरभर परैगी, सुरपुर बाजिहै
 निसान । (गी० ११६) बाजी (२)-(सं० वाद्य)-१.
 बाजी, २. लड़ी । उ० २. सेइ साधु गुरु, सुनि पुरान स्रुति
 बूम्यो राग बाजी ताँति । (वि० २३३) बाजे (१)-(सं०
 वाद्य)-१. बजने के यंत्र, २. बजने लगे । बाजे-बजता
 है । उ० सुसमय दिन द्वै निसान सबके द्वार बाजे । (वि०
 ८०)
 बाज (१)-(अर० बाज़)-एक प्रसिद्ध शिकारी पक्षी ।
 बाज (३)-(फ़ा० बाज़)-बिना, रहित । उ० दीनता दारिद
 दुलै को कृपा बारिधि बाज । (वि० २१६) मु० आए
 बाज-छोड़ा, तर्क किया । उ० कहे की न लाज, पिय !
 अजहूँ न आए बाज । (क० ६१२४)
 बाजपेई-अरवमेध यज्ञ करनेवाला । उ० कौन गजराज
 जौ बाजपेई । (वि० १०६)
 बाजराज-बाज, बड़ा बाज । उ० बाजराज के बालकहि
 लवा दिखावत आँखि । (दो० १४४)
 बाजार-(फ़ा० बाज़ार)-जहाँ दूकानें हों । उ० बाजार रुचिर
 न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए । (मा० ७२८
 छं० १)
 बांजे-(सं० बाजिन्)-घोड़ा, अरव । उ० चढ़ि बर बाजे बार
 एक राजा । (मा० ११२६१२)
 बाजी (२)-(फ़ा० बाज़ी)-१. खेल, २. ऐसी शर्त जिसमें

हार जीत के अनुसार कुछ लेन-देन भी हो । शर्त, ३.
 प्रतिज्ञा, ४. प्रतिष्ठा । उ० ३. जग जाचत दानि दुतीथ
 नहीं तुमहीं सब की सब राखत बाजी । (क० ७१६२) ४.
 तुलसी की बाजी राखी । (म० ७१६७) मु० बाजी राखी-
 खेल में जिताया । उ० तुलसी की बाजी राखी राम ही
 के नाम । (क० ७१६७)
 बाजी (३)-(सं० बाजिन्)-घोड़ा, अरव । उ० आवत देखि
 अधिक रव बाजी । (मा० ११२७११)
 बाजीगर-(फ़ा० बाज़ीगर)-जादूगर । उ० बाजीगर के सूम
 ज्यों, खल ! खेह न खातो । (वि० १२१)
 बाजु-दे० 'बाज (२)' । उ० भिल्लिनि जिमि छादन चहति
 बचनु भयंकर बाजु । (मा० २१२८)
 बाजू-दे० 'बाज (२)' । उ० खेह लपेटि लवा जिमि बाजू ।
 (मा० २१२३०३)
 बाजे (२)-(फ़ा० बाज़)-कोई, कोई कोई । उ० बाजे बाजे
 बीर बाहु धुनत समाज के । (क० ११८)
 बाट-(सं० बाट)-रास्ता, पथ, राह । उ० घाट बाट पुर
 द्वार बजार बनावहिं । (जा० २०४) मु० बाट परै-नाश
 हो, बर्बाद हो । उ० बाट परै मोरि नाव उड़ाई । (मा०
 २११००३)
 बाटा-दे० 'बाट' । उ० मुख नासा अवनन्हि की बाटा ।
 (मा० ६१६७२)
 बाटिकाँ-उपवन में फुलवारी में । उ० विष बाटिकाँ कि
 सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि । (मा० २१२६) बाटिका-
 (सं० बाटिका)-फुलवाड़ी, उपवन । उ० बन बाटिका बिहग
 मृग नाना । (मा० २१२१२२)
 बाड़वानल-(सं० बाड़व + अवनल)-समुद्र की आग ।
 बाड़ (१)-(सं० बाट)-धार, तलवार आदि की धार ।
 बाड़ (२)-(सं० वृद्धि)-१. बढ़ाव, बढ़ना, २. नदी में पानी
 का बढ़ना, ३. बढ़ती है । उ० ३. प्रना बाड़ जिमि पाइ
 सुराजा । (मा० ४११६) बाड़इ-१. बढ़ जायगी, २.
 बढ़े । उ० १. बाड़इ कथा पार नहिं लहई । (मा० ११२३३)
 बाड़त-१. बढ़ता, उमड़ता, २. बढ़ते हुए । उ० १. नित
 नूतन सब बाड़त जाई । (मा० ११८०१) बाड़ति-बढ़ती
 हुई । उ० प्रेमवृषा बाड़ति भली । (दो० २७६) बाड़न-१.
 बढ़ने, वृद्धि करने, २. बढ़नेवाला । उ० १. जमुना ज्यों-
 ज्यों लागी बाड़न । (वि० २१) बाड़हिं-बढ़ते हैं, बढ़ जाते
 हैं । उ० बाड़हिं असुर अधम अभिमानी । (मा० १
 १२१३) बाड़हीं-बढ़ती हैं । बाड़ा-बड़ा, बढ़ गया । उ०
 बेषु बिलोकि क्रोध अति बाड़ा । (मा० ११३६१४) बाड़ि-
 १. बढ़ती, वृद्धि, २. बढ़ी । उ० १. विभव-बिलास बाड़ि
 दूसरथ की देखि न जिनहिं सोहानी । (गी० ११४) बाड़ी-
 बढ़ी, बढ़ गई । उ० पाथ-प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाड़ी
 रारि । (दो० ४६४) बाड़े-१. बढ़े, २. बढ़ने पर । उ० २.
 तापस को बरदायक देव, सबै पुनि बैर बढ़ावत बाड़े ।
 (क० ७१६४) बाड़ेउ-दे० 'बाड़े' ।
 बाण-(सं०)-१. शर, विशिख, तीर, २. 'बाण' नाम का
 असुर जो बलि के सौ पुत्रों में सबसे बड़ा था । उ० २.
 बृत्र बलि बाण प्रह्लाद मय व्याध गज गृद्ध द्विजबंधु निज
 धर्म-त्यागी । (वि० २७)

वाणी-(सं० वाणी)-१. बचन, बोली, भाषण, उक्ति, २. सरस्वती ।
 वात (१)-(सं० वाता)-१. कथन, जो कहा जाय, बचन, २. कथा । उ० १. वात चले वात को न मानिबो बिलग बलि । (क० ७।१६) वातन-वातों से । उ० तिमि गृह मध्य दीप की वातन तम निवृत्त नहिं होई । (वि० १२३) वातन्ह-वातों से, वात करने से । वातहि-वात ही । उ० वातहि वातहि बनि पड़े । (सं० २६८) वातहु-वात भी । उ० वातहु कितिक तिन तुलसी तनक की । (क० ७।२०) वातें-‘वात’ का बहुवचन । वातें-‘वात’ का बहुवचन । बहुत से बचन । उ० सुसुकि समीत सकुचि रुखे मुख वातें सकल सवारी । (क० ६) वातो-वात भी । उ० जौ पै कहुँ कोउ ब्रह्म वातो । (वि० १७७)
 वात (२)-(सं० वात)-वायु, पवन । उ० लपट-रूपट रुहराने, हहराने वात । (क० १।८)
 वातसंजात-वायु के पुत्र हनुमान । उ० जयति वातसंजात । (वि० २८)
 वाता-दे० ‘वात’ । वात, बचन । उ० भए विकल मुख आव न वाता । (मा० १।७३।४)
 वाति-दे० ‘वाती’ । उ० दीप वाति नहिं टारन कहउँ । (मा० २।५६।३)
 वाती-(सं० वार्तिका)-वृत्ती, पत्नीता । उ० नहिं कछु चहिअ दिया घृत वाती । (मा० ७।१२०।२)
 वातुल-(सं० वातुल)-पागल, सनकी । उ० वातुल भूत बिबस मतवारे । (मा० १।११।१।४)
 वाद-(सं० वाद)-बहस, तर्क, कलह । उ० प्रभु सों निपाद है कै बाद न बढ़ाहूँ । (क० २।८)
 वादर-(सं० वारिद)-बादल, मेघ । उ० उमगि चलेउ आनंद मुचन भुईं वादर । (जा० २।१०)
 बादल-(सं० वारिद)-मेघ, बदली ।
 बादले-बादल, मेघ । उ० घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले । (मा० ६।४६।४०० १)
 बादहिं-(सं० वाद) विवाद करते, तर्क करते हैं । उ० बादहिं सुद्र द्विज्म सन, हम तुम तें कछु घाटि ? (दो० ५५३)
 वादि-(सं० वादि)-व्यर्थ, झूठ-मूठ । उ० नतरु बाँस भलि वादि विआनी । (मा० २।७५।१) वादिहिं-व्यर्थ ही । उ० जन्म गयो वादिहिं बर बीति । (वि० २३४)
 वादिनि-१. बोलनेवाली, २. मनाइल, कलहप्रिय । उ० १. प्रिय वादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । (मा० २।१५।१)
 वादिनी-दे० ‘वादिनि’ ।
 वादी-(सं० वादिन्)-१. कहनेवाला, बोलनेवाला, २. मनाइल, विवाद करनेवाला, ३. वाला । उ० ३. प्रभु जे मुनि परमारथ वादी । (मा० १।१०।८।३)
 वाद्य-(सं० वाद्य)-बाजा, बजनेवाला यंत्र ।
 वाधक-(सं०)-रुकावट डालनेवाला, हानिकर । उ० जो न होहि मंगलमय-सुर बिभि वाधक । (पा० ३।५) वाधको-बाधकउ, बाधक भी । उ० जाकी झुँह झुप सहमत व्याध वाधको । (क० ७।६८)
 वाधा-(सं०)-१. विघ्न, रुकावट, अड़चन, २. संकट, कष्ट । उ० १. करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा । (मा० १।१३।७।२)

२. सपने व्याधि विविध बाधा भइ, मृत्यु उपस्थित आई । (वि० १२०)
 बाधित-(सं०)-रोका हुआ ।
 बाधिये-रोकिए, रोके देना चाहिए । बाधी-बाधा को प्राप्त हुई, रुकी, बाधित हो गई । उ० सुमिरत हरिहि आप गति बाधी । (मा० १।१२।१।२)
 बान (१)-(सं० बाण)-१. बाण, तीर, २. ‘बाण’ नाम का असुर । उ० १. दस-दस बान भाल दस मारे । (मा० ६।६२।४) २. रावन बान झुआ नहिं चापा । (मा० १. २५६।२) बानन्ह-बाणों से । उ० पुनि निज बानन्ह कीन्हि प्रहारा । (मा० ६।८३।३)
 बान (२)-(सं० वर्ण)-१. रंग, वर्ण, २. चमक, दीप्ति, पानी । उ० २. कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें । (मा० २।२०।५।३) सु० बान चढ़इ-पानी चढ़ने पर, ओप आने पर । उ० दे० ‘बान (२)’ ।
 बानइत-(सं० बाण+ऐत)-१. बानैत, तीरभ्रंदाज, तीर चलाने वाला, २. सैनिक, योद्धा, ३. प्रख्यात, प्रसिद्ध । उ० १. लोकपाल महिपाल वात बानइत । (गी० १।१०।१) २. रोप्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत । (क० ६।३०) ३. दानि दसरथ राय के तुम बानइत-सिर-ताज । (वि० २।१६)
 बानक-(सं० वर्णन)-१. वेश, सजधज, बनाव, २. क्यपति, नामवरी । उ० १. मैं पतित, तुम पतितपावन, दोउ बानक बने । (वि० १।६०)
 बानति-(सं० वर्णन)-बनती है । उ० कछु कहत न बानति । (गी० ७।१७)
 बानधर-बाण धारण करनेवाला, कमनैत ।
 बानर-(सं० वानर)-बंदर, मकंद । उ० बानर-बाज ! बड़े खल खेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा से ? (ह० १८)
 बानरहि-बानर का । उ० नर बानरहि संग कहुँ कैसे । (मा० २।१३।६)
 बाना (१)-दे० ‘बान (१)’ । उ० १. चले सुघारि सरासन बाना । (मा० ६।७०।३)
 बाना (२)-दे० ‘बानक’ । उ० १. जनु बानैत बने बहु बाना । (मा० ३।३८।२)
 बाना (३)-(सं० वर्ण)-स्वभाव, प्रकृति ।
 बानि (१)-दे० ‘बानी (१)’ । उ० २. बानि विनायकु अंच-रवि, गुरु हर रमा रमेस । (प्र० १।१।१)
 बानि (२)-दे० ‘बानी (२)’ । उ० तजहि तुलसी समुक्ति यह उपदेसिबे की बानि । (क० ५२)
 बानिक-(सं० वर्णन)-वेश, सजधज, बनाव, सिंगार । उ० आपनी-आपनी बर बानिक बनाइ कै । (गी० १।८२)
 बानिहि-(सं० वाणी)-वाणी को । उ० पर अपवाद-विवाद-बिदूषित बानिहि । (पा० ४) बानी (१)-१. वात, वाणी, बयन, २. सरस्वती । उ० १. तुलसी करु बानि विमल विमल-बारि-बरनि । (वि० २०) २. बानी विधि गौरी हर सेसहूँ गनेस कही । (क० १।१६)
 बानी (२)-(सं० वर्णन)-आदत्त, लत, टेव । उ० १. लरि-काइहि तें रघुवर बानी । (मा० २।२७।३)
 बानी (३)-(सं० वधिक)-बनिया ।

वानु-(सं० वाण)-१. वाणासुर नाम का प्रसिद्ध असुर, २. वाण, तीर । उ० १. तथा २. वानु-वानु जिमि गयउ गवर्हि दसकंधर । (जा० १०३)
 वानैत (१)-(सं० वणन)-बनानेवाला, निर्माता ।
 वानैत (२)-(सं० वाण)-१. वाण चलानेवाला, धनुर्धर, २. वीर, ३. नामवर, प्रसिद्ध । उ० १. वर विपुल वितप वानैत वीर । (गी० २।४६)
 वानैत (३)-(?)-प्रण या बात का पक्का । उ० बाहु-बली, वानैत बोल को, वीर विस्वविजयी जई । (गी० १।३८)
 वानो-(सं० वण)-बाना, स्वरूप । उ० लहि नाथ हौं रघु-नाथ वानो पतितपावन पाइ कै । (गी० ३।१७)
 वाप-(सं० वाप)-पिता, जनक । उ० वाप आपने करत मेरी घनी घटि गई । (वि० २५२)
 वापडा-दे० 'वापुरा' ।
 वापरो-दे० 'वापुरा' ।
 वापिका-(सं० वापिका)-बावली, छोटा तालाब । उ० देखे बर वापिका तडाग बाग को बनाव । (क० ५।१)
 वापी-बावलियाँ, तालाब । दे० 'वापिका' । उ० वापी कूप सरित सर नाना । (मा० १।२१०।३)
 वापु-दे० 'वाप' । उ० विनय पत्रिका दीन की, वापु ! आपु ही बाँचो । (वि० २७७)
 वापुरा-(?)-तुच्छ, बेचारा, असमर्थ, दीन । वापुरे-बेचारे । दे० 'वापुरा' । उ० वापुरे बराक और राजा रांन राँक को । (ह० १२)
 वापुरो-बेचारा । दे० 'वापुरा' । उ० को वापुरो पिनाक पुराना । (मा० १।२५३।३)
 वाम (१)-(सं० वाम)-१. बायाँ, २. उलटा, प्रतिकूल, ३. देहा, कुटिल, खोटा, ४. कामदेव, ५. महादेव । उ० १. राम वामं दिखि सीता सोई । (मा० १।१४८।२) २. राम से वामं भए तेहि वामहि । (क० ७।२) ३. पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान वाम । (ह० ३२) वामहि-कुटिल को । उ० राम से वाम भए तेहि वामहि वाम सबै सुख संपति लावै । (क० ७।२) वामहु-विमुख या प्रतिकूल के लिए भी उ० पतित-पावन नाम, वामहु दाहिनो, देव । (वि० २५७)
 वाम (२)-(सं० वामा)-स्त्री ।
 वामिता-(सं० वामता)-१. कुटिलता, कुटिलाई, २. उलटा-पन, प्रतिकूलता । उ० १. समुझे सहे हमारो है हित बिधि वामिता बिचारि । (क० २७)
 वामदेउ-(सं० वामदेव)-१. एक प्रसिद्ध ऋषि, २. शिव । उ० १. वामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि । (मा० १।३३०)
 वामदेव-(सं० वामदेव)-१. शिव, २. ऐसे देवता जो अनुकूल हैं, ३. एक ऋषि । उ० १. वामदेव सनं कामे वामं होइ बरसेउ । (पा० २६)
 वामिन-(सं० वामिन)-विष्णु के ५वें अवतार जो बलि को छलने के लिए ऋषिति के गर्भ से हुए थे । उ० छलन बलि कपेट बहुरूप वामिन अशु । (वि० ५२)
 वामा-(सं० वामा)-स्त्री, औस्ताप । उ० वाम अंग वामा वर विस्व-बंदिनी । (गी० २।४३)

वाम-देहा, विपरीत । दे० 'वाम' । उ० भयउ कुठार जेहि विधि वामू । (मा० २।३६।१)
 वामहन-(सं० ब्राह्मण)-१. ब्राह्मण, द्विज, २. उपरोहित ।
 वायँ-(सं० वाम)-१. देहा, प्रतिकूल, २. बायाँ । उ० १. घोर हृदय कठोर करतव सज्यो हौं विधि वायँ । (गी० ७।३१)
 वाय (१)-(सं० वायु)-१. हवा, पवन, २. बाई, बात का रोग, सन्निपात । उ० १. भरत-गति लखि मातु सब रहि ज्यो गुढी बिनु वाय । (गी० ६।१४)
 वाय (२)-(सं० वर्तते)-है, होता है । उ० काक सुता गृह ना करै, यह अचरज बड़ वाय । (स० १६०)
 वायन-(सं० वायन)-१. वह मिठाई या पकवान जो उपहार स्वरूप दूसरे के पास भेजा जाता है । भेंट, उपहार । सु० वायन दीन्हा-छेदखानी की, छेदछाड़ की । उ० मजे भवन अब वायन हीन्हा । (मा० १।१३७।३)
 वायस-(सं० वायस)-१. कौवा, काग, २. कागभुशुंदि, ३. इंद्र का पुत्र जयंत । उ० १. करतव वायस बेष मराला । (मा० १।१२।१) ३. वायस, विराध, खर, दूषन, कबंध, बालि । (क० ६।२७)
 वायँ-(सं० वाम)-१. बायाँ, दाहिना का उलटा, २. विरुद्ध, प्रतिकूल ।
 वायँ-(सं० वाम)-बायाँ । सु० वायँ दियो-डाल दिया, छोड़ दिया । उ० वायँ दियो विभव कुरुपति को । (वि० २४०)
 वायो-(सं० व्यापन)-कैलाया, पसारा, खोला । उ० परी न छार सुँह वायो । (वि० २७६)
 वार (१)-(सं० द्वार)-१. द्वार, दरवाजा, २. ठिकाना, आश्रय, स्थान, ३. दरबार ।
 वार (२)-(सं० वार)-१. काल, समय, २. देर, विलंब, ३. दफा, मरतबा, ४. दिन, दिवस, ५. बार-बार । उ० २. बहु बिधि करत मनोरथ जात लागि नहि वार । (मा० १।२०६) ३. अधियारे मेरी वार क्यों ? (वि० ३३)
 वार (३)-(सं० वार)-भार, बोझ ।
 वार (४)-(सं० बाल)-केश, लोम । उ० अपूर अनूप मसि बिहु वारे-वारे वार । (गी० १।१०)
 वार (५)-(सं० ज्वल)-१. जला, बाल, प्रज्वलित कर, २. जलावे । उ० २. तेहि बिधि दीप को वार बहोरी । (मा० ७।११।८) वारी (१)-जलाई, अस्म किया । उ० वारी बारानसी बिनु कहे चक्र चक्रपानि । (क० ७।१७२)
 वारक-(सं० वार + एक)-एक वार, एक बार भी । उ० वारक बिलोकि बलि कीजै मोहि आपनो । (वि० १८०)
 वारन (१)-(सं० वारण)-रोकना, रोक, रुकावट । वारय-दूर करो, मना करो । उ० वारय तारय संसति दुस्तर । (मा० ६।११।३) वारि (१)-मना करके । वारिये (१)-(सं० वारण)-मना कीजिए, बर्जिए । वारँ-छोड़ कर । उ० वानर मनुज जाति दुइ वारँ । (मा० १।१७७।२) वारे (१)-(सं० वारण)-१. मना किए, रोके, २. छोड़कर । वारहि (१)-मना करते हैं, रोकते हैं ।
 वासन (२)-(?)-गजेन्द्र, जिससे भगवान् के ग्राह से बचाया

था। उ० नाम अजामिल से खल तारन तारन वारन वारवधू को। (क० ७।६०)

वारवधू-(सं० वार + वधू)-वेश्या, रंडी। उ० दे० 'वारन (२)'^१। वारह-(सं० द्वादश)-दस से दो अधिक, १२। सु० वारह बाट-तितर-वितर, नष्ट-अष्ट। उ० सूधे-देदे, सम विपम, सय महुँ वारह बाट। दो० १००)

वारहिं (?)-(सं० वार)-कई वार। सु० वारहिं वार-कई वार, वार-वार। उ० होहिं हानि-भय-मरन-दुख-सूचक वारहिं वार। (प्र० १।१२)

वारही-(सं० द्वादश)-पुत्र जन्म के १२वें दिन होनेवाली संस्कार-विधि, बरही। वारहें-दे० 'वारही'। उ० सुनिवर करि छठी कीन्हीं वारहें की रीति। (गी० ७।३६)

वारहौं-दे० 'वारही'। उ० छठी वारहौं-लोक-वेद विधि करि सुबिधान बिधानी। (गी० १।४)

वारानिधे-(सं० वारानिधि)-हे समुद्र ! उ० जयति वैराग्य-विज्ञान-वारानिधे नमत नर्मद पाप-ताप-हर्ता। (वि० ४४)

वारा-दफा, वार। दे० 'वार (२)'^१। उ० परहिं भूमितल वारहिं वारा। (मा० २।१६६।२)

वारानिधे-दे० 'वारानिधे'।

वाराह-(सं० वराह)-१. शूकर, सूअर, २. विष्णु का एक अवतार।

वारि (२)-(सं० वारि)-जल, पानी। उ० मरिचे को वारानसी, वारि सुरसरि को। (ह० ४२)

वारि (३)-(सं० वाटिका)-बाड़ी, बगीची।

वारि (४)-(सं० अवार)-बाड़ा, घेरा, डोंड। उ० जलु इंद्र-धनुष अनेक की वर वारि तुंग तमालही। (मा० ६। १०१। छं० १)

वारि (५)-(सं० अन्तर्या)-निष्ठावर करके। वारिये (२)-न्यौछावर कीजिए। वारी (२)-न्यौछावर किया। उ० काम कोटि सोभा अंग-अंग उपर वारी। (गी० १।२२) वारौं-न्यौछावर करूँ, वारूँ। उ० वारौं सत्य वचन क्षुति सम्मत जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे। (गी० २।२)

वारिक-(फा० वारीक)-महीन, वारीक। उ० है निर्गुण सारी वारिक। (क० ४१)

वारिखो-(सं० वर्ष)-वर्षोवाला। उ० सही भरी लोमस सुसुखि बहु वारिखो। (क० १।१६)

वारिज-(सं० वारिज)-कमल, जलज। उ० नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन वारिज नयन। (मा० १।१। सो० ३)

वारिद-(सं० वारिद)-मेघ, बादल। उ० मनहुँ सिखिनि सुनि वारिद वानी। (मा० १।२६६।२)

वारिधर-(सं० वारिधर)-बादल, जलद। उ० तात न तर्पन कीजिये बिना वारिधर-धार। (दो० ३०४)

वारिधि-(सं० वारिधि)-समुद्र। उ० बंदुँ चारिउ वेद भव वारिधि बोहित सरिस। (मा० १।१४। ६)

वारिनिधि-दे० 'वारिधि'। उ० मनहुँ वारिनिधि बूड़ जहाजू। (मा० २।६६।२)

वारिपुर-एक स्थान का नाम। कुछ लोगों के अनुसार यह काशी का नाम है। उ० वारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि। (क० ७।१३६)

वारी (३)-(सं० बाल)-१. क्वारी कन्या, २. छोटी, नन्हीं। उ० २. कुंदकली जुगल जुगल परम सुअ वारी। (गी० १। २२)

वारी (४)-(सं० वालिका)-कान में पहनने की बाली।

वारी (५)-(सं० वाटिका)-१. बगीचा, उपवन, २. खिबकी, झरोखा।

वारी (६)-(सं० अवार)-डॉड़, मेंडू, खेत आदि का घेरा। उ० कानन बिचित्र वारी बिसाल। (वि० २३)

वारी (७)-(सं० वारि)-पानी।

वारी (८)-(सं० वरुजीवी)-पत्तों आदि से संबंधित कार्य करनेवाली एक जाति। अब पत्तल आदि बनाना ही इनका प्रधान कार्य है। उ० नाऊ वारी भाट नट राम जिछावरि पाइ। (मा० १।३१६)

वारी (९)-(सं० वार)-पारी, ओसरी।

वारीस-(सं० वारीश)-समुद्र। उ० जेहि वारीस बंधायउ हेलाँ। (मा० ६।६।३)

वारु-(सं० बाल)-केश, बाल। उ० भेंट पितरन को न मूड़ हू में वारु है। (क० ७।६७)

वारुणी-(सं० वारुणी)-१. मदिरा, शराब, २. परिचम दिशा, ३. एक विशेष पर्व।

वारुनि-दे० 'वारुणी'। उ० १. सुरसरि जलकृत वारुनि जाना। (मा० १।७०।१)

वारुनी-दे० 'वारुणी'। उ० १. संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिप वारुनी। (मा० १।१४। ७)

वारे (२)-(सं० बाल)-१. बच्चे, बालक, २. बचपन, ३. छोटे। उ० १. भैया कहहु कुसल दोउ वारे। (मा० १।२६१।२) २. हौं तो बिन मोल ही विकानो, बलि वारे ही तैं। (ह० ३६) ३. वारे वारिधर। (गी० १।३०) वारेहि (२)-(सं० बाल)-१. लड़कपन से ही, २. बचपन में। उ० १. वारेहि ते निज हित पति जानी। (मा० १।१६८।२)

वारो-(सं० बाल)-किशोर, बच्चा, छौना। उ० वारिदनाद अकंपन कुंभकरन से कुंजर केहरि-वारो। (ह० १६)

बाल (१)-(सं०)-१. लड़का, बालक, २. अज्ञानी, मूर्ख, ३. वार, केश, लोम, ४. अन्नों की बाली या फली। उ० १. बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। (मा० १।२७६।२) २. सो भ्रम बादि बाल कवि करहीं। (मा० १।१४। ३) ३. बाल कुमार जुवा जरा। (स० २०५)

बाल (२)-(सं० वारि)-पानी, जल।

बाल (३)-(सं० बाला)-युवती। उ० खोजि कै खवास खासो क्वरी सी बाल को। (क० ७।१३५)

बालक-(सं०)-१. लड़का, २. बेटा, पुत्र, ३. छोटा। उ० १. राज मराल के बालक पेलि कै। (क० ७।१०३) ३. बालक दामिनि ओड़ी मानो वारे वारिधर। (गी० १।३०)

बालकन्ह-१. लड़कों, २. लड़कों को। बालकन्हि-बालकों को, लड़कों को। उ० मातु-पिता बालकन्हि बोलावहिं। (मा० ७।६६।४) बालकहि-बालक को। बालकहू-बालक भी, बालक का भी। उ० बेधु बिलोकैं कहेसि कहु बालकहू नहिं दोसु। (मा० १।२८१) बालको-बालक भी।

बालक-दे० 'बालक' । उ० १. कटुबादी बालक बध जोगू । (मा० १२७२१२)
 बालधि-(सं०)-पूँज, दुम । उ० कुलिस नख दसन बर, लसति बालधि-बृहद् वैरिसस्त्रास्त्रधर-कुधरधारी । (वि० २६)
 बालधी-दे० 'बालधि' । उ० बालधी बदन लागी, ठौर ठौर दीन्हीं आगि । (क० २१३)
 बालपन-लडकपन, छुटपन । उ० समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत । (मा० १३० क) बालपने-लडकपन में, बचपन में । उ० बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो । (ह० ४०)
 बालमीक-(सं० वास्मीकि)-एक प्रसिद्ध ऋषि और आदि कवि । रामायण की रचना सबसे पहले इन्होंने ही की थी । उ० बालमीक नारद घटजोनी । (मा० १३१२)
 बाला-(सं०)-१. युवती, १३ से १६ वर्ष की स्त्री, २. स्त्री, पत्नी, ३. औरत, नारी, ४. लडकी, कुमारी, ५. हाथ का कड़ा, ६. कान का एक आभूषण ।
 बालि (?)-(सं०)-अंगद का पिता और सुग्रीव का भाई एक बंदर जो किष्किंधा का राजा था । इसे राम ने धोखे से मारा । उ० तौ सुरपति कुहराज बालि सों कत हठि बैर बिसहते ? (वि० ६७) बालिहि-बालि को । उ० सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान । (मा० ४६)
 बालि (२)-(सं० बाल)-बाल, जौ आदि की फली ।
 बालिका-(सं०)-छोटी लडकी, कन्या । उ० नर-नाग-विबुध-बंदिनि, जय जहुबालिका । (वि० १७)
 बालिकुमार-बालि के पुत्र अंगद । दे० 'अंगद' । उ० ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार । (मा० ४११६)
 बालिश-(सं०)-१. मूर्ख, अज्ञ, २. बालक, लडका ।
 बालिस-दे० 'बालिश' । उ० बालिस बासी अवध को ब्रह्मिण न खाको । (वि० १५२) बालिसी-रे मूर्खों, अज्ञों ! उ० याही बल, बालिसो ! बिरोध रघुनाथ सों । (क० २१३)
 बाली-दे० 'बालि' । उ० जेहिं सायक मारा मैं बाली । (मा० ४१८३)
 बालु-(सं० बालुका)-बालू, रेत । उ० बापुरो विभीषन घरीघा हुतो बालु को । (क० ७१७)
 बालू-दे० 'बालु' । उ० ऊपर ढारि देहिं बहु बालू । (मा० ६८१४)
 बालेंदु-(सं० बालेंदु)-बूज का चाँद । उ० लसझालबालेंदु कंठे भुजंगा । (मा० ७१०८३)
 बाल्मीकि-दे० 'वाल्मीकि' ।
 बाल्य-(सं० बाल्य)-बाल्य, लडकपन ।
 बावन-दे० 'वामन' । विष्णु का एक अवतार । बावनो-वामन भगवान का अवतार भी । उ० कालज करालता बघाई जीतो बावनो । (क० २१६)
 बावरी-(सं० बावली)-बावली, पगली । उ० समुझि सो प्रीति की रीति स्वाम की सोइ बावरी जो परेषे उर आने । (क० ३८)
 बावरी-दे० 'बावरी' । उ० बावरी न होहि बानि जानि कपिनाह की । (क० ७१२६)

बावरे-रे पागल, रे सनकी । उ० राम जपु राम जपु राम जपु बावरे । (वि० ६६)
 बावरो-पागल, बौरहा, उन्मत्त । उ० नाम, राम ! रावरो सयानो किधौं बावरो । (क० ७१७३)
 बावौ-(सं० वाम)-१. वाम, बायाँ, २. प्रतिकूल, विपरीत । उ० २. ऐसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मन बावौ । (वि० १७१)
 बास-(सं० वास)-१. गंध, महँक, २. रहने का स्थान, डेरा, आवास, घर । उ० १. अहइ प्राण बिनु बास असेवा । (मा० १११८४) २. बास चले सुमिरत रघुवीरा । (मा० २१२३१) बासहि-१. स्थान को, निवास को, २. महँक को, गंध को । उ० १. नाइ नाइ सिर देव चले निज बासहि । (पा० १६१)
 बासन (१)-(?)-बरतन, भाँड़ा । उ० लेहिं न बासन बसन चोराई । (मा० २१२१२)
 बासन (२)-(सं० वास)-१. महँक, २. रहने के स्थान ।
 बासना-(सं० वासना)-१. इच्छा, अभिलाषा, कामना, २. सुगंध । उ० १. बासना-बलि खर-कंटकाकुल बिपुल निबिड बिटपाटवी कठिन भारी । (वि० २६)
 बासर-(सं० वासर)-दिन, दिवस । उ० पाप करत निसि बासर जाहीं । (मा० २१२५१३)
 बासर-दे० 'वासर' । उ० नींद न भूख पियास, सरिस निसि बासर । (पा० ४१)
 बासव-(सं०)-इंद्र । उ० जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत । (मा० २११४१)
 बासा-(सं० वास)-घर, निवास । उ० भगत होहि मुद मंगल बासा । (मा० १२४१७)
 बासि-१. बासकर, महँकाकर, बासयुक्त करके, २. बासने की, महँकाने की । उ० १. दै दै सुमन तिल बासि कै अरु खरि परिहरि रस लेत । (वि० १६०) २. सुकृत-सुमन तिल-मोद बासि बिधि जतन-जंत्र भरि बानी । (गी० १४)
 बासिन्ह-(सं० वास)-निवासियों को, वासियों को । उ० कोलसपुर बासिन्ह सुखदाता । (मा० १२००११) बासी-१. रहनेवाला, निवासी, २. सुगंधित किया हुआ, ३. पुराना, जो ताज़ा न हो । उ० १. मरजादा चहुँ और चरन बर सेवत सुरपुर बासी । (वि० २२)
 बासु-(सं० वास)-१. बास, महँक, २. बुरी महँक, ३. डेरा, रहने का स्थान । उ० २. तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहु को बासु । (दो० ३५५) ३. भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ । (मा० १२६४)
 बासुदेव-(सं० वासुदेव)-वसुदेव के पुत्र कृष्ण । उ० बासुदेव पद पंकरुह दपति मन अति लाग । (मा० ११४३)
 बासू-वास, स्थान, निवास । उ० भीतर भवन दीन्ह बर बासू । (मा० १३५२१४)
 बाहक-(सं० वाहक)-ढोनेवाला, भार पहुँचानेवाला ।
 बाहन-(सं० वाहन)-सवारी, जो ढोवे । उ० सूकर, महिष, स्वान, खर बाहन साजहिं । (पा० १०३)
 बाहनी-(सं० वाहिनी)-सेना ।

बाहर-(सं० बाह्य)-भीतर का उलटा, अलग, दूर, बहिर्गत । बाहरहूँ-बाहर भी ।
 बाहरजामि-(सं० बाह्यजामी)-बाहर की बात जाननेवाला ।
 उ० अंतर्जामिहु ते बहु बाहरजामि हैं । (क० ७।१२६)
 बाह्राँ-दे० 'बाहु' । हाथ । उ० बैठारे रघुपति गहि बाह्राँ ।
 (मा० २।७७३)
 बाहिज-(सं० बाह्य)-ऊपर से, देखने में । उ० बाहिज चिंता कीन्हि बिसेपी । (मा० ३।३०।१)
 बाहिनी-(सं० बाहिनी)-१. ढोनेवाली, सवारी, २. बहनेवाली, ३. सेना । उ० ३. विविध बाहिनी बिलसति सहित अनंत । (ब० ४२)
 बाहिर-दे० 'बाहर' ।
 बाहु-(सं०)-भुजा, हाथ । उ० आजानु भुजदंड, कोदंड मंडित बाम बाहु, दक्षिण पानि बानमेकं । (वि० ११)
 बाहुक-(सं० बाहु + ?)-बाहु की पीडा, हाथ का दर्द । उ० बाहुक-सुबाहु नीच, लीचर-मरीच मिलि । (ह० ३३)
 बाहुल्य-(सं०)-आधिक्य, बहुलता, अधिकारी ।
 बाहु-दे० 'बाहु' । उ० बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहु । (मा० १।३३।४)
 बाहर-दे० 'बाहर' । उ० गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ । (मा० २।८२)
 बाहँ-१. बाहँ, भुजा, २. भुजाओं में । उ० १. सुमिरत श्री रघुबीर की बाहँ । (गी० ७।१३) बाहँ-बाहँ में । उ० सपनेहूँ नहीं अपने बर बाहँ । (क० ७।५६)
 बिंजन-(सं० ब्यंजन)-रसोई, भोजन । उ० बिंजन बहु गनि सकइ न कोई । (मा० १।१७३।१)
 बिंद-(सं० बिंदु)-बिंदी, शून्य । उ० लोयन नील सरोज से भूपर मसि-बिंद विराज । (गी० १।१६)
 बिंदक-(?) -१. जाननेवाले, ज्ञाता, २. पानेवाला, ३. नामयुक्त । उ० १. भव कि परहिं परमात्मा बिंदक । (मा० ७।११२।३)
 बिंध-दे० 'बिंधि' । उ० बिंध न हँधन पाइए, सायर जुरै न नीर । (दो० ७२)
 बिंधि-(सं० बिंध्य)-बिंध्य नाम का पर्वत । उ० बिंधि मुदित मन सुख न समाई । (मा० २।१३८।४)
 बिंध्य-दे० 'बिंधि' । उ० चित्रकूटाद्रि-बिंध्याद्रि दंडक विपिन-धन्यकृत । (वि० ४३)
 बिंध्याचल-(सं० बिंध्याचल)-एक प्रसिद्ध पर्वत । उ० बिंध्याचल गभीर बन गयऊ । (मा० १।१५६।२)
 बिंब-(सं० बिंब)-१. बिंबाफल, कुंदरू नाम का फल, २. छाया, प्रतिबिंब, ३. मूर्ति, ४. सूर्य अथवा चंद्र का मंडल । उ० १. अधर बिंबोपमा मधुर हासं । (वि० ११)
 बिभ्राधि-(सं० ब्याधि)-रोग, बीमारी । उ० बिनु औपध बिभ्राधि बिधि खोई । (मा० १।१७१।२)
 बिभ्रानी-(?) -१. बच्चा देना, प्रसव करना, २. ब्याई, जनी । उ० १. नतरु बरिं भलि बादि बिभ्रानी । (मा० २।७५।१)
 बिभ्राहवि-(सं० विवाह)-ब्याहेंगे, ब्याहूँगा । उ० सीय बिभ्राहवि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के । (मा० १।२४५)
 बिभ्राही-विवाह किया । उ० भंजि धनुष जानकी बिभ्राही ।

(मा० ६।३६।६) बिभ्राहेसि-विवाह किया, ब्याहा । उ० पुनि दोउ बंधु बिभ्राहेसि जाई । (मा० १।१७८।२)
 बिभ्रते-दे० 'बिभ्रते' ।
 बिकट-(सं० विकट)-१. भयंकर, २. कठिन, मुरिकल । उ० १. बिकट बेप मुख पंच पुरारी । (मा० १।२२०।४)
 बिकटी-टेढ़ी, षक्र । उ० बिकटी भुकुटी बड़री अँखियाँ । (क० २।१३)
 बिकरारा-(सं० विकराल)-१. भयंकर, विकराल, प्रचंड, २. टेढ़ा, ३. कठिन । उ० १. नाक कान बिनु भइ बिकरारा । (मा० ३।१८।१)
 विकराल-(सं० विकराल)-भयंकर, प्रचंड । उ० बबो विकराल बेप देखि । (क० ५।६)
 बिकल-(सं० विकल)-ब्याकुल, बेचैन, घबराया । उ० बिरह बिकल नर इव रघुराई । (मा० १।४६।४) बिकलतर-अधिक विकल, अधिक दुखी । उ० चले तभीचर बिकलतर गढ़ पर चढ़े पराई । (मा० ६।७४ ख)
 बिकलाई-दे० 'बिकलाई' । उ० प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलाई । (मा० ६।६४।२)
 बिकलाई-बिकलता, ब्याकुलता । उ० उठहु न सुनि मंस बच बिकलाई । (मा० ६।६१।३)
 बिकस-(सं० विकास)-खिलना, प्रसन्न होना । उ० उदय बिकस, अथवत सकुच, मिटै न सहज सुभाउ । (दो० ३।१६) बिकसत-१. बिकसता है, खिलता है, २. खिलते हुए, प्रसन्न । उ० २. बिकसत-मुख निकसत धाइ धाय कै । (गी० १।८२) बिकसे-फूले, खिले, प्रफुल्लित हुए, प्रसन्न हुए । उ० बिकसे सरन्ह बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा । (मा० ८।६।७०।१) बिकसो-खिला, प्रफुल्लित हुआ । उ० रविकुल रवि अवलोकि सभा-सर हित चित-बारिज-बन बिकसो री । (मा० १।१०२)
 बिकसित-खिला हुआ, फूला हुआ, प्रसन्न ।
 बिकाइ-(सं० विक्रय)-बिकता है । उ० जखु पय सरिस बिकाय देखहु प्रीति की रीति भलि, बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि । (मा० १।५७ ख) बिकाउँ-बिकता हूँ, विक्रीत होता हूँ । बिकात-बिकता है । बिकातो-बिकता, बेचा जाता । उ० तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो । (वि० १।७७) बिकानी-बिकी, बिक चुकी । उ० तुलसी हाथ पराए प्रीतम, तुह मिय-हाथ बिकानी । (क० ४७) बिकाने-बिके, बिक गए । उ० को करि सोच मरै, तुलसी, हम जानकी नाथ के हाथ बिकाने । (क० ७।१०५) बिकानो-१. बिका, बिक गया, २. बिक गया हूँ । उ० २. हौं तो बिन मोल ही बिकानो । (ह० ३८) बिकैहँ-बिक जायेंगे । उ० सोभा-देखवैया बिनु बित ही बिकैहँ । (गी० २।३७।२) बिकार-(सं० विकार)-अवगुण, खराबी, झँझा आदि मन के विकार । उ० कहँ दससीस ईस बामता बिकार है । (क० ५।२०)
 बिकारी-जिसका रूप बिगड़ गया हो, बिकारयुक्त, बुरा, हानिकर । उ० असुभ होइ जिनके सुमिरे तें बानर रीछ बिकारी । (वि० १।६६)
 बिकास-(सं० विकास)-उन्नति, आग बढ़ना, खिलना । बिकास-१. खिला देती है, २. बिकास, खिलना,

३. उन्नति । उ० १. वचन किरन मुनि कमल विकास । (मा० २।२७।१) विकासी-प्रकाशित है । उ० स्वामि सुरति सुरवीथि विकासी । (मा० २।३२५।३) विकासे-विकसित होते हैं, खिलते हैं । उ० बिलसत बेतस बनज विकासे । (मा० २।३२५।२)

विक्रम-(सं० विक्रम)-वीरता, पराक्रम । उ० भुज विक्रम जानहि दिगपाला । (मा० ६।२५।२)

विखंडन-१. नाश करना, खंड खंड करना, २. नाश करनेवाले । उ० २. तुलसिदास प्रभु त्रास विखंडन । (मा० ६।११५।५)

विखान- (सं० विषाण)-सींग । उ० तुलसी जेहि राम सो नेह नहीं सो सही पसु पूँछ विखानन है । (क० ७।४०)

विखाना-दे० 'विखान' ।

विख्यात-(सं० विख्यात)-प्रसिद्ध, मशहूर । उ० जग विख्यात नाम तेहि लंका । (मा० १।१७।४)

विख्याता-दे० 'विख्यात' ।

विगत-(सं० विगत)-१. रहित, शून्य, हीन, २. वीता, गुजरा, ३. निकम्मा, ४. पुराना । उ० १. पवन कुमार जो विगत खमसुल है । (क० २।३०)

विगता-(सं० विगत)-नष्ट हो गई, जाती रही । उ० भरि पुरि रही समता विगता । (मा० ७।१०२।४)

विगरत-(सं० विकार)-१. बिगड़ता है, खराब होता है । २. अप्रसन्न होता है, ३. नष्ट होता है । उ० १. विगरत मन संन्यास लेत जल नाचत आम घरो सो । (वि० १।७३) २. हरषन रचत, विषाद न विगरत । (क० २।६)

विगरन-बिगड़ने, खराब होने । विगरहि-बिगड़ते हैं । विगरहि-बिगड़ता है । विगरिए-१. खराब कीजिए, बिगाड़िए, २. नाराज हूजिए । उ० १. दे० 'बिगरायल' । विगरिऔ-बिगड़ी हुई भी । उ० सुनत राम कृपालु के मेरी विगरिऔ बनि जाइ । (वि० ४।१) विगरिहै-बिगड़ेगा । उ० देव ! दिनहूँ दिन विगरिहै । (वि० २।७२) विगारी-१. खराब, नष्ट, २. भूल, गलती, ३. खराब हुई । उ० १. विगारी-संचार अंजनीकुमार कीजै मोहि । (ह० १।५) २. विगारी सेवक की । (वि० ३।४) विगारीयो-बिगड़ी हुई भी । उ० बुड़ियो तरति, विगारीयो सुधरति बात । (क० ७।७५)

विगारे-१. बिगड़ने, बिगड़ने पर, २. बुरा होने पर । ३. बिगड़ गए । उ० २. विगारे सेवक स्वान ज्यों साहिब-सिर गारी । (वि० १।५०) विगरो-१. बिगड़ा हुआ, २. बिगड़ गया । उ० १. दे० 'बिगरायल' ।

विगरायल-बिगड़ा हुआ, खराब, बिगड़ल । उ० हौं तो विगरायल ओर को, विगरो न विगरिए । (वि० २।७१)

विगसत-(सं० विकास)-१. विकसित होती है, खिलती है, २. खिल उठी । विगसीं-(सं० विकास)-खिलीं, प्रफु-ल्लित हुईं । उ० अनुराग-तड़ाग में भानु उदै विगसीं मनो मंजुल कंज-कली । (क० २।२२)

विगसाइ-१. खिलाकर, २. खिला रहता है । उ० निसि मलीन चह, निसि दिन यह विगसाइ । (ब० ३)

विगसित-दे० 'विकसित' । उ० दीख जाइ उपवन बर सर विगसित बहु कंज । (मा० ४।२४)

विगार-(सं० विकार)-१. बिगड़ने की क्रिया या भाव, बिगाड़, २. खराबी, दोष, ३. भगड़ा, लड़ाई, वैमत्स्य ।

उ० १. बुधि न विचार, न विगार न सुधार सुधि । (गी० २।३२)

विगारा-(सं० विकार)-बिगाड़ दिया, बिगाड़ा । उ० कौसल्याँ अब काह बिगारा । (मा० २।४६।४) विगारी-१. बिगाड़ी, खराब की, बुराई की, ३. शत्रुता की, ४. बिगाड़ने से । उ० ४. रावरी सुधारी जो विगारी बिगारैगी मेरी । (वि० २।५६) विगारे-बिगाड़ा । विगारेउ-बिगाड़ा, बिगाड़ दिया । उ० कछुक काज बिधि बीच विगारेउ । (मा० २।१६०।१) विगारो-बिगाड़ा, खराब किया । उ० दारो विगारो मैं का को कहा केहि कारन खीभत हौं तो तिहारो । (ह० १।६) विगार्यो-१. बिगाड़ा था, २. हानि पहुँचाई थी, अपकार किया था । उ० १. कहा विभीषन लै मिलो कहा विगार्यो बालि ? (दो० १।५६)

विगारु-(सं० विकार) १. बिगाड़, सुधार का उलटा, २. भगड़ा, शत्रुता । उ० १. नरदेह कहा, करि देखु बिचार विगारु गँवार न काजहि रे । (क० ७।३०)

विगोइए-(सं० विगोवन)-१. बिगाड़िए, बिगाड़ो, नष्ट करो, २. नष्ट करता हूँ, बिगाड़ता हूँ । उ० २. जागिए न सोइए विगोइए जनम जाय । (क० ७।८३) विगोई-१. नष्ट कर दीं, २. नष्ट हो गई, ३. भुलावा, ४. छिपाव । उ० २. राज करत निज कुमति विगोई । (मा० २।२३।४) विगोए-दे० 'विगोवे' । विगोयो-१. बिगाड़ा, नष्ट किया, मिटाया, २. छिपाया, ३. भुलवाया । उ० १. मोहि मूढ़ मन बहुल विगोयो । (वि० २।४५) विगोवति-बिताती है, बुरी तरह बिताती है, खराब करती है । उ० बहु राक्षसी सहित तरु के तर तुम्हरे विरह निज जनम विगोवति । (गी० ५।१७) विगोवहू-१. नष्ट करते हो, खराब करते हो, २. भुलावे में डालते हो । उ० १. बिनु काज समाज महुँ तजि लाज आपु विगोवहू । (जा० ७२) विगोवा-१. धोखे में डाला, भरमाया, २. नष्ट किया, दुर्दशा की । उ० १. प्रथम मोहँ मोहि बहुत विगोवा । (मा० ७।६६।३) विगोवै-१. नष्ट करे, बिगाड़े, २. छिपावे, छिपाती है, ३. भुलाती है । उ० १. तुलसी मँदोवै रोइ रोइकै विगोवै आपु । (क० २।११)

विग्यानी-(सं० विज्ञान)-ज्ञानी, विशेष ज्ञानवाला । उ० अनघ अरोष दच्छ विग्यानी । (मा० ७।४६।३)

विग्रह-(सं० विग्रह)-लड़ाई, विरोध । उ० बैर न विग्रह आस न त्रासा । (मा० ७।४६।३)

विघटन-(सं० विघटन)-१. विनाशना, बिगाड़ना, २. तोड़ना, ३. नष्ट-अष्ट करनेवाला । उ० १. पाप-ताप-तिमिर-तुहिन-विघटन पट्ट । (ह० ६) २. प्रगटी धनु विघटन परिपाटी । (मा० १।२३।३) विघटै-नाश करे, नाश करता है । उ० रजनीचर मत्तगयंद-घटा, विघटै मृगराज के साज लरै । (क० ६।३६)

विघटित-नष्ट किया हुआ, बिगाड़ा हुआ । उ० बहि अव-लंब बाम-बिधि विघटित, बिषम विषाद चढ़ाए । (गी० २।८८)

विघन-(सं० विघ्न)-बाधा, रुकावट, अड़चन ।

विघन-दे० 'विघन' । उ० जौं तेहि विघन बुद्धि नहि बाधी । (मा० ७।११।५)

विच-(सं० विच)-वीच, मध्य । उ० अगुन सगुन विच नान सुसाखी । (मा० ११२११४)
 विचलन-(सं० विचलन)-चतुर, प्रवीण ।
 विचर-(सं० विचरण)-विचर रहे हैं । उ० दूसरथ अजिर विचर प्रसु सोई । (मा० ११२०३१३) विचरउ-दे० 'विचरहु' ।
 विचरत-विचरता है, डोलता है, फिरता है । उ० सुफ सनकादि मुक्त विचरत तेउ भजन करत अजहूँ । (वि० ८६) विचरति-विचरण करती है, घूमती है । विचरन-पर्यटन, घूमना-फिरना, चलना । विचरान-चलना, फिरना । उ० जातु पानि विचरनि मोहि भाई । (मा० १११६६) विचरहि-घूमते हैं, फिरते हैं । उ० जे जग महीं विचरहि धरे रहे थिगत अभिमान । (स० १७१) विचरहु-विचरण करो, फिरो, डोलो । उ० अस उर धरि महि विचरहु जाई । (मा० १११३८४)
 विचलत-(सं० विचलन)-विचलते, विचलित होते । उ० विचलत सेन कीन्हि इन्ह माया । (मा० ६१७०२) विचलि-विचलित होकर । उ० चले विचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे । (मा० ६१६६७० १)
 विचलाइ-(सं० विचलन)-हटाकर, दूरकर, विचलित कर । उ० रे नीच ! मारीच विचलाइ, हति ताबका । (क० ६१८) विचलाए-हटाए, विचलित किए । उ० भारी भारी भूरि भट रन विचलाए हैं । (गी० ११७२)
 विचार-(सं० विचार)-ख्याल, भावना, धारणा । उ० सुदिताँ मथै विचार मथानी । (मा० ७११७०८)
 विचारत-(सं० विचार)-विचारते हैं, सोचते हैं । उ० हृदयँ विचारत संसु सुजाना । (मा० ११२६१३) विचारत-विचारती है । विचारहि-विचार करते हैं । विचारही-विचारते हैं, विचारने लगे । उ० सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिरल विचारही । (मा० ११२६१३० १) विचारहु-विचारो, सोचो । उ० मोर कहा कछु हृदयँ विचारहु । (मा० ६१६६४) विचारा (१)-१० विचार, ख्याल, २. विचार किया । उ० २. तापस चूप मिलि अंत्र विचारा । (मा० १११७०१४) विचारि-विचारकर, सोच समझकर । उ० कहहु नाभ गुन दोष सब एहि के हृदयँ विचारि । (मा० १११३०) विचारिए-विचार कीजिए, समझिए । उ० आस रावरीयै, दास रावरो विचारिए । (ह० २१) विचारी (१)-(सं० विचार)-१. विचार कर, २. विचारनेवाला, ३. सोचा । उ० १. इनको बिलगु न मानिए बोछहि न विचारी । (वि० ३४) विचार-१. विचार कर, सोचकर, २. विचारो, सोचो, ३. विचार, ख्याल । उ० २. नकरु बिलंब, विचारु चारु मति । (वि० २४) ३. सबहि विचारु कीन्ह मन माहीं । (मा० २१८३३) विचारु-दे० 'विचारु' । उ० ३. नाथ समुक्ति मन करिअ विचारु । (मा० २११४३) विचारे (१)-१. विचारा, समझा, २. समझ कर, विचार कर । उ० २. सुमति विचारे बोलिये समुक्ति कुफेर सुफेर । (दो० ४३७) विचारेउ-दे० 'विचारेहु' । विचारेहु-विचारो, सोचो । उ० मन क्रम बचन सो जतन विचारेह । (मा० ४२३१२)
 विचारा (२)-(विचारा)-दीन, विवश । उ० श्वथ

मृदुल चित सिंधु विचारा । (मा० ११२३१४) विचारी (२)-बेचारी, विवश । उ० माया खलु नर्तकी विचारी । (मा० ७११६१२) विचारे (२)-बेचारे । उ० कामी काक बलाक विचारे । (मा० ११३८३) विचित्र-(सं० विचित्र)-अनोखा । उ० विपुल विचित्र बिहग मृग नाना । (मा० २१२३६११) विच्छेदकारी-(सं० विच्छेदन)-काटनेवाला, अलग करनेवाला । उ० सोक संदेह भय हर्षतम तर्षगण साधु-सद्युक्ति विच्छेदकारी । (वि० २७) विछुरत-(सं० विच्छेद)-१. अलग होता है, वियुक्त होता है, २. अलग होते, बिछुड़ते । उ० २. विछुरत एक प्राण हरि लेहीं । (मा० १११२) विछुरनि-बिछुड़ना, अलग होना । उ० तबतँ बिरह-रवि उदित एकरस सखि बिछुरनि वृष पाई । (क० २६) विछुरे-१. अलग हुए, २. अलग होने पर, बिलगने पर । उ० २. विछुरे ससि रवि, मन ! नयननि तँ पावत दुख बहुतेरो । (वि० ८७) विछोह-(सं० विच्छेद)-अलगाव, छुदाई, वियोग, विरह । विछोहइ-(सं० विच्छेद)-छुवाती है, दूर करती है, अलग करती है । उ० सुमिरत सकत मोह मल सकल विछोहइ । (जा० १०७) विछोही-१. छोड़कर, २. अलग किया । उ० १. राजति तदित निज सहज विछोही । (गी० २१ १६) २. जेहि हौं परिपद कमल विछोही । (मा० ६१६६३) विछोहे-अलग हुए । उ० राम प्रेम अतिसय न विछोहे । (मा० २१३०२२) विछोहे-अलग कर देता है, दूर कर देता है । उ० काको नाम अनख आलस कहै अथ अवनुनि विछोहे । (वि० २३०) विछोहनि-छुड़ाने वाली, अलग करनेवाली । उ० सय मल-विछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखहु । (जा० १०८) विछोहू-(सं० विच्छेद)-वियोग, बिछुड़ना । उ० जौं जनतेई बन बंधु विछोहू । (मा० ६१६१३) विजई-दे० 'विजयी' । उ० कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान । (मा० १११२२) विजन-(सं० विजन)-यकांत । विजय-(सं० विजय)-१. जय, जीत, फतह, २. जय का भाई विजय जो भगवान का पार्षद था । दे० 'जय' । उ० २. जय अह विजय जान सब कोऊ । (मा० ११ १२२२) विजयी-(सं० विजयी)-जिसकी जीत हुई हो । विजोग-(सं० वियोग)-बिछुड़ना, अलग होना । विज्ञान-(सं० विज्ञान)-विशेष ज्ञान, ज्ञान । विज्ञानमय-विज्ञानरूप, विज्ञानयुक्त । दे० 'विज्ञान' । विज्ञाना-दे० 'विज्ञान' । विज्ञानी-(सं० विज्ञानिन्)-विद्वान्, विशेष ज्ञानवाला । विटप-(सं० विटप)-१. पेड़, वृक्ष, २. यमलार्जुन । उ० २. खग, मृग, व्याध, विटप, जड़ जमन कवन सुर तारे । (वि० १०१) विटपी-वट वृक्ष । विटपु-दे० 'विटप' । विडंब-दुर्दशा, दुर्गति । उ० करि दंड विडंब यजा नितहीं । (मा० ७११०१३)

विडंबना—(सं० विडंबन)—१. नकल, स्वरूप बनाना, २. उपहास, हँसी, ३. निंदा । उ० २. केहि कै लोभ विडंबना कीन्हि न यहि संसार ? (दो० २६१)
 विडंबित—१. तिरस्कृत, अपमानित, २. त्रासित, डराया । उ० १. दिव्य-देवी-वेष देखि, लखि निशिचरी जनु विडंबित करी विश्व बाधा । (वि० ४३) २. तुलसी सूधे सूर ससि, समय विडंबित राहु । (दो० ३६७)
 विडरि—डरकर, भयभीत होकर । उ० विडरि चले बाहन सब भागे । (मा० १।६५।२)
 विडरो—(सं० विट्) १. विशेष भय, २. छितराकर ।
 विडार—(सं० विट्)—१. भगाते हैं, २ भगाकर । उ० २. तुलसी तोरत तीर तर मानस हंस विडार । (सं० ६८)
 विडारी—१. भगाई, २. भगाकर । उ० २. कुंभकरन कपि फौज विडारी । (मा० ६।६७।४)
 विडई—(सं० वृद्धि)—१. कमाकर, अर्जन कर, २. सामर्थ्य । उ० १. विडई सुकृत जसु कीन्हैउ भोगू । (मा० २।१६।१) १) विडई—दे० 'विद्वइ' ।
 विडतो—१. कमाई, २. लाभ । उ० १. दै पठयो पहिलो विडतो ब्रज सादर सिर धरि लीजै । (कृ० ४६)
 वित—दे० 'वित्त' । उ० सुत वित नारि भवन परिवारा । (मा० ६।६१।४)
 वितई—(सं० व्यतीत)—विता दी, खतम कर दी । उ० सुजन सुभाव सराहत सादर अनायास साँसति वितई है । (वि० १।३६) वितए—विताए, खतम किए । उ० रहे इक टक नर-नारि जनकधुर, लागत पलक कल्प वितए, री । (गी० १।७६)
 वितान—(सं० वितान)—१. चँदवा, मंडप, शामियाना, २. फैलाव, विस्तार । उ० १. सजहि सुमंगल कलस वितान बनावहि । (जा० १३२)
 विताना—दे० 'वितान' । उ० १. मंजु बलित बर बेलि विताना । (मा० ३।१३७।३)
 वितैहो—(सं० व्यतीत)—१. वितानोगे, व्यतीत करोगे, २. अंत करोगे । उ० २. अवगुन अमित वितैहो । (वि० ३७०)
 वित्त—(सं० वित्त)—१. धन, दौलत, पूँजी, २. सामर्थ्य, शक्ति । उ० १. देहि निछावरि वित्त बिसारी । (मा० १।२६५।३)
 विथक—(सं० स्थक)—थक जाते हैं । उ० रचना विचित्र बिलोकि लोचन विथक ठौरहि ठौरही । (पा० ६६)
 विथकनि—विशेष थकना । उ० धावनि, नवनि, बिलोकनि, विथकनि बसै तुलसि उर आछे । (गी० ३।३) विथकहि—स्तंभित होते हैं, चकित होते हैं । उ० विथकहि बिबुध बिलोकि बिसासू । (मा० १।२१३।४) विथकि—१. विशेष शककर, २. तन्मय या खीन होकर । उ० १. सबु रनि-वासु विथकि लखि रहेऊ । (मा० २।२८३।४) विथकी—थकित, स्तंभित । उ० विथकी है ग्वालिन-मैन-मन-ओपे । (कृ० ११) विथके—१. थक गए, २. रुक गए, ३. अचंभित हो गए । उ० १. विथके बिलोचन-निमेष बिसएइ । (गी० १।५६) २. विथके हैं विडंबन-बिसमइ । (गी० १।२)

विथकित—शिथिल, हैरान । उ० तुलसी भइ मति विथकित करि अनुमान । (ब० २३)
 विथा—(सं० व्यथा)—पीड़ा, दुःख ।
 विथारे—(सं० वितरण)—फैला दिए हैं । उ० दलित अति लखित मनगन विथारे । (गी० १।३)
 विथुरित—फैले, बिखरे । उ० विथुरित सिररुह-बरुथ कुंचित बिच सुमन-जूथ । (गी० ७.३)
 विथुरे—(सं० वितरण)—बिखरे हुए, फैले हुए । उ० विथुरे नभ मुकुताहल तारा । (मा० ६।१२।२)
 विदरत—(सं० विदीर्ण)—विदरता है, फटता है, खंड-खंड होता है । उ० विदरत छिन-छिन होत निनारे । (कृ० ५६)
 विदरेउ—विदीर्ण हुआ, फट गया । उ० हृदय न विदरेउ पंक जिमिः बिछुरत प्रीतम नीरु । (मा० २।१४६) विदर्यो—फटा, फट गया । उ० हृदय दाहिम ज्यो न विदर्यो समुक्ति सील सुभाउ । (गी० २।५७)
 विदरनि—१. फाड़नेवाली, विदीर्ण करनेवाली, २. फाड़ने या मारने की रीति । उ० १. विदरनि जगजाल की । (क० ७।१८२) २. रथनि सों रथ विदरनि बलवान की । (क० ६।४०)
 विदले—(सं० वि + दलन) विदारण किए, फाड़े । उ० तैं रन केहरि के विदले अरि कुंजर छैल छवा से । (ह० १८)
 विदा—(अर०)—प्रस्थान, गमन रवानगी, विदाई । उ० भूधर भोर विदा करि साज सजायउ । (पा० १५५)
 विदारन—काटनेवाले, फाड़नेवाले । उ० जय कबंध सूदन बिसाल-तरुताल विदारन । (क० ७।११४)
 विदारहि—(सं० विदीर्ण) फाड़ते हैं । उ० उदर विदारहि भुजा उपारहि । (मा० ६।८१.३) विदारि—विदीर्ण कर, फाड़कर । उ० बैरी विदारि भए बिकराल । (क० ७।१२८) विदारी—फाड़ा, टुकड़े-टुकड़े किया । विदारे—१. विदारे हुए, फाड़े हुए, २. फाड़ा, विदीर्ण किया । उ० १. मारे पछारे उर विदारे बिपुल भट कहैरत प्रे । (मा० ३।२०।४) २) विदारेसि—फाड़ा, फाड़ डाला । उ० चोचन्ह मारि विदारेसि देही । (मा० ३।२६।१०)
 विदित—(सं० विदित)—ज्ञात, मालूम । उ० तव प्रभाउ जग विदित न केही । (मा० २।१०३।३)
 विदिसहु—(सं० वि + दिशा)—दिशाओं के कोनों में । उ० देस काल दिसि विदिसहु माहीं । (मा० १।१८५।३)
 विदिसि—(सं० विदिशा)—दिशाओं का कोना । उ० अघ ऊई बानर, विदिसि दिसि बानर है । (क० ५।१७)
 विदुषन्ह—(सं० विदुष)—पंडित गण, विद्वान लोग । उ० विदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा । (मा० १।२४२।१)
 विदूषक—(सं० विदूषक)—भाँड़, हँसानेवाला । उ० बेद विदूषक बिस्व बिरोधी । (मा० २।१६८।२)
 विदूषहि—(सं० दोष)—दोष लगाते हैं । उ० इन्हहि न संत विदूषहि काऊ । (मा० १।२७६।२)
 विदेस—(सं० विदेश)—परदेश, दूसरा देश । उ० सुमिरि करहु सब काज सुम, मंगल देश विदेस । (प्र० १।१।१)
 विदेह—(सं० विदेह)—१. राजा जनक, २. बिना देह का, ३. जिसे देह की सुधि बुधि न हो । १. बेगि विदेहनगर निधाराया । (क० १।२१२।२) विदेहनगर—जनकपुर । विदेहकुमारी—

जानकी, जनक की पुत्री सीता । उ० केहि पटतरौं विदेह-कुमारी । (मा० १।२३०।४) विदेहपन-राजा जनक का प्रण । उ० तब विदेहपन बंदिन्ह प्रगटि सुनयाउ । (जा० १६८) विदेहता-१. देहहीनता, २. देहाभिमान से रहित होना । उ० २. कब अज तज्यौं, ज्ञान कब उपज्यौ ? कब विदेहता लही है । (कृ० ४२) विदेहु-दे० 'विदेह' । उ० १. ३. भयउ विदेहु विदेहु बिसपी । (मा० १।२१२।४) विदेहु-दे० 'विदेह' । उ० ३. मा निपाद तेहि समयँ विदेहु । (मा० २।२३४।४) विहरत-(सं० विदारण)-विदारण करते हैं, फाड़ते हैं । उ० बिकट कटक विहरत बीर बारिद जिमि गजजत । (क० ६। ४७) विद्या-(सं० विद्या)-ज्ञान, शास्त्र, शिक्षा । उ० विद्या विनय निपुन गुन सीला । (मा० १।२०४।३) विद्रुम-(सं० विद्रुम)-मूँगा । उ० मनि दीप राजहिं भवन आजहिं देहरौं विद्रुम रचीं । (मा० ७।२७। छं० १) विधंस-(सं० विधंस)-नष्ट, बर्बाद । उ० जग्य विधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस । (मा० १।६४) विधंसा-दे० 'विधंस' । उ० कीन्ह कपिन्ह सब जग्य विधंसा । (मा० ६।७६।१) विधंसि-नाश कर, समाप्त कर, तोड़-फोड़कर । उ० वन विधंसि सुत बधि पुर जारा । (मा० ६।२४।३) विध-(सं० विधि)-१. रीति, व्यवहार, २. तरह, भाँति । उ० २. संसार महँ पुरुष विधि पाटल रसाल पनस समा । (मा० ६।१०। छं० १) विधवन्ह-विधवा स्त्रियाँ । उ० विधवन्ह के सिंगार नवीना । (मा० ७।११।३) विधवा-(सं० विधवा)-धव से विहीन । जिसका पति मर गया हो । विधातहि-विधाता को, ब्रह्मा को । उ० बिलपरिहं बाम विधातहि दोष लगावहि । (पा० ३४) विधाता-(सं० विधाता)-ब्रह्मा । उ० सुभग सेज कत सजत विधाता । (मा० २। ११।४) विधातो-विधाता भी, ब्रह्मा भी । उ० होतो मंगलमूल तू, अलुकृष विधातो । (वि० १५१) विधान-(सं० विधान)-नियम, रीति । उ० बेदी बेद विधान सँवारी । (मा० १।१००।१) विधाना-दे० 'विधान' । उ० बेद बिदित कहि सकल विधाना । (मा० २।६।३) विधानी-विधान करनेवाला, रचनेवाला । उ० छठी बारहौं-लोक-बेद बिधि करि सुविधान विधानी । (गी० १।१२) विधि-(सं० विधि)-१. भाँति, तरह, २. भाग्य, किस्मत, ३. ब्रह्मा, ४. कार्य करने की रीति, ५. किसी ग्रंथ या शास्त्र में लिखी व्यवस्था, ६. क्रिया का एक रूप जिसमें आज्ञा देते हैं, ७. आचार-व्यवहार । उ० १. जदपि साधु सब ही विधि हीना । (वे० ४१) २. विधि के सुढर होत सुढर सुहाय के । (गी० १।६५) ३. विधि को न बसाइ उजारो । (गी० २।६६) विधिहि-दे० 'विधिहि' । विधिहि-ब्रह्मा को । उ० अहनिसि विधिहि मनावत रहहीं । (मा० ७।२।३) विधिहु-दे० 'विधिहु' । विधिहु-ब्रह्मा भी । उ० तेरे हेरे लोपै लिपि विधिहु गनक की । (क० ७।२०)

विधिवत-(सं० विधिवत्)-विधिपूर्वक, नियमपूर्वक । उ० लिंग थापि विधिवत करि पूजा । (मा० ६।२।३) विधिसुत-विरवकर्मा जो ब्रह्मा के पुत्र कहे गए हैं । उ० मनहुँ भातु-मंडलहि सँवारत धर्यो सूत विधि-सुत बिचित्र मति । (गी० ७।१७) विधुंतुद-(सं० विधुंतुद)-राहु । उ० जतु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ विधुंतुद पोहही । (मा० ६।१२। छं० १) विधु-(सं० विधु)-चंद्रमा, शशि । उ० बार बार विधु वदन बिलोकति जोचन चारु चकोर किये । (गी० १।७) विधुहि-चंद्रमा को । उ० विधुहि जोरि कर विनवति कुलगुरु जानि । (ब० ४१) विधूम-१. निर्धूम, बिना धुएँ की, २. वैद्यक में धातुओं को भस्म करने की एक रीति । उ० १. जारि बारि कै विधूम, बारिधि बुताइ लूम । (क० ५।२६) विन-(सं० विना)-बिना, बिला, बगैर । विनहिं-बिना ही । उ० होइ मरनु जेहिं विनहिं भ्रम दुसह विपत्ति बिहाइ । (मा० १।५९) विनइ-(सं० विनय)-बंदना करके, विनय करके । उ० विनइ गुरुहि गुनि गनहि गिरिहि गननाथहि । (पा० १) विनय-(सं० विनय)-विनती की । उ० भाइन्ह सहित बहोरि विनव रघुवीरहि । (जा० १।६६) विनवउं-विनती करता हूँ । उ० महावीर विनवउं हनुमाना । (मा० १।१७।२) विनवत-प्रार्थना करता है । विनवति-विनती करती है । उ० विधुहि जोरि कर विनवति कुलगुरु जानि । (ब० ४१) विनई-विनयशील । उ० दोउ विजइ विनई गुन मंदिर । (मा० ७।२।४) विनतहि-(सं० विनता)-विनता को । उ० कहुँ विनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलां देब । (मा० २।१६) विनता-(सं० विनता)-दत्त प्रजापति की एक कन्या जो कश्यप की स्त्री और गरुड की माता थी । विनती-(सं० विनय)-प्रार्थना, विनय । उ० विनती करउँ जोरि कर रावन । (मा० ५।२२।४) विनय-(सं० विनय)-मिन्नत, विनती, प्रार्थना । उ० जौं जिय धरिअ विनय पिय मोरी । (मा० २।१५।४) विनसइ-(सं० विनाश)-नष्ट हो जाता है, विनष्ट हो जाता है । उ० विनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग । (मा० ४।१५।ख) विनसाइ-(सं० विनाश)-नष्ट हो, नष्ट हो सकता है । उ० कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिंधु विनसाइ । (मा० २। २३।१) विना-(सं० विन)-बिला, बगैर । उ० बरु मारिए मोहिं बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाहौं जू । (क० २।६) विनाए-(सं० वीक्षण)-विनवाया, चुनवाया । मु० विनाए नाक चना-परेशान किया । उ० विनाए नाक चना हैं । (गी० ७।१३) विनास-(सं० विनाश)-नाश, संहार । विनासन-नष्ट करनेवाला । उ० दससीस विनासन बीस भुजा । (मा० ७।१४।२) विनासि-(सं० विनाश)-विनष्ट कर, नाश कर । उ० दंभ लोभ लालच उपासना विनासि नीके । (वि० १।८४) विनास्यौ-

नष्ट कर दिया । उ० करम उपासना कुवांसना बिनास्यो ज्ञान । (क० ७८५४)
 विनिन्दक—(सं० वि + निन्दक)—विशेष निंदा करनेवाला, नीचा दिखानेवाला । उ० तड़ित विनिन्दक पीत पट उदर रेख बर तीनि । (मा० १११४७)
 विनीत—(सं० विनीत)—विनय-युक्त, विनीत, नम्र । उ० सुनि उमा वचन विनीत कोमल सकल अबला सोचहीं । (मा० ११६७। छं० १)
 विनीता—दे० 'विनीत' । उ० नवहिं आइ नित चरन विनीता । (मा० ११५२। ७)
 विनु—दे० 'बिन' । उ० बैद्य अनेक उपाय करहिं जागे विनु पीर न जाई । (वि० १२०)
 विनोद—(सं० विनोद)—खेल, आनंद, क्रीड़ा । उ० एहि बिधि सिंसु विनोदु प्रभु कीन्हा । (मा० ११२००। ४)
 विनोदु—दे० 'विनोद' । उ० भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु विनोदु सुनि सखु पावहीं । (मा० ११६६। छं० १)
 विपच्छ—(सं० विपक्ष)—विमुख, प्रतिकूल । उ० परै उपास कुबेर घर जो विपच्छ रघुबीर । (दो० ७२)
 विपति—(सं० विपत्ति)—दुःख, कष्ट, आफत । उ० परी जासु फल विपति घनेरी । (मा० ११४१। ४)
 विपत्ति—दे० 'विपति' । उ० होइ मरनु जेहिं बिनहिं अम दुसह विपत्ति बिहाइ । (मा० ११५६)
 विपदा—दे० 'विपति' । उ० तिन्ह के सम बैभव वा विपदा । (मा० ७। १३। ७)
 विपरीत—(सं० विपरीत)—उलटा, विरुद्ध । उ० विधि विपरीत चरित सब करई । (मा० ६। ६६। ३)
 विपरीता—दे० 'विपरीत' । उ० भयउ कराल कालु विपरीता । (मा० २। ५७। ३)
 विपिन—(सं० विपिन)—जंगल, वन । उ० खोजत विपिन फिरत दोउ भाई । (मा० १। ४६। ४)
 विपुल—(सं० विपुल)—१. प्रशस्त, बड़ा, २. बहुत । उ० २. बालचरित चहुँ बंधु के बनज विपुल बहु रंग । (मा० १। ४०)
 विपुलाई—अधिकता । उ० राम तेज बल बुधि विपुलाई । (मा० १। ५६। १)
 विप्र—(सं० विप्र)—ब्राह्मण । उ० विप्र सहित परिवार गोसाईं । (मा० २। ३। २) विप्रन्ह—ब्राह्मणों । उ० विप्रन्ह सहित शवलु गुर कीन्हा । (मा० २। २०। ३। १) विप्रहु—हे ब्राह्मणो ! उ० विप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा । (मा० १। १७। ३)
 विफल—(सं० विफल)—निष्फल, व्यर्थ । उ० विफल होहिं सब उद्यम ताके । (मा० ६। ६। २)
 विवर—(सं० विवर)—बिल, छेद, माँद, गुफा, कंदरा । उ० अमि विवर एक कौतुक पेखा । (मा० ७। २४। ३)
 विवरन (१)—(सं० विवरण)—वर्णन, विवेचना ।
 विवरन (२)—(सं० विवरण)—बदरंग, उदास, शोभारहित, श्रीहीन । उ० विवरन भयउ निपट नरपालु । (मा० २। २। ३)
 विवराए—(?) खोजा । उ० पुनि निज जटा राम विवराए । (मा० ७। १। ४)
 विवरिहि—(?) सुलभ जायगा । उ० नीक सगुन विवरिहि भगर होइहि धरम निआउ । (प्र० ६। ६। २)

वियर्ध—बढ़ता है, बढ़ता जाता है । उ० सेवत वियर्ध विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार । (मा० ६। ६२)
 विबल—विशेष बल, अधिक बल । उ० त्रिविध विबल तें ते हठहि तुलसी कहहि प्रमान । (सं० ६०७)
 विवस—(सं० विवश)—१. मजबूर, लाचार, विवश, २. पर-तंत्र, पराधीन । उ० १. बेद-बुध बिद्या पाइ विवस बल-कहीं । (क० ७। ६८) विवसहु—विवश भी ।
 विवहार—(सं० व्यवहार)—१. आचार, व्यवहार, रीति-नीति, २. रुपए पैसे की लेन-देन । उ० १. कुल-बिबहार, बेद विधि चाहिय जहँ जस । (जा० १। २६)
 विबाकी—(फ्रा० बेबाकी)—खुकता, भुगतान, अंत । उ० सहित सेन सुत कीन्हि विबाकी । (मा० १। २४। २)
 विबाके—बेबाक किया, छोड़ा । उ० भे सनेह बिबस बिदेहता विबाके हैं । (गी० १। ६२)
 विबाद—(सं० विवाद)—कलह, झगडा । उ० जिमि पाखंड विबाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ । (मा० ४। १। ४) विबादन—(सं० विवाद)—झगड़े को, विवाद करने को । उ० यह तो मोहिं खिभाइ कोटि बिधि उलटि विबादन आइ अगाऊ । (क० १। २)
 विबाह—(सं० विवाह)—ब्याह, शादी । उ० उमा महेस विबाह बराती । (मा० १। ४। ४)
 विबाहहु—विवाह करो । उ० जाइ विबाहहु सैलजहि यह मोहिं माँगें देहु । (मा० १। ७६) विबाहीं—१. ब्याही, २. ब्याही गई थी । उ० २. तहँहु सती संकरहि विबाहीं । (मा० १। ६८। ३) विबाही—ब्याहा, ब्याह किया । उ० पंच कहें सिव सती विबाही । (मा० १। ७। ४)
 विबाहु—दे० 'विबाह' ।
 विबाहु—दे० 'विबाह' । उ० सीयराम कर करै विबाहु । (मा० १। २। ४। २)
 विविध—(सं० विविध)—बहुत से, अनेक तरह के । उ० दाइज भयउ विविध बिधि, जाइ न सो गनि । (जा० १। ७५)
 विविध विधान बाजने बाजे । (मा० १। ३। ४। २) विविधि—'विविध' का स्त्रीलिंग । उ० विविधि पाति बैठी जेवनारा । (मा० १। ६। ४)
 विबुध—(सं० वि + बुध)—देवता, देव । उ० हिमवान कन्या जोग बर बाउर विबुध बंदित सही । (पा० १८) विबुध-नदी—देवताओं की नदी, गंगा । उ० ताकहँ विबुध नदी बैतरनी । (मा० ३। २। ४)
 विबुधेश—(सं० विबुधेश)—देवताओं के राजा इंद्र । उ० जयति विबुधेश धनदादि दुर्लभ । (वि० ३६)
 विबुधेश—दे० 'विबुधेश' । उ० जीते जातुघान जे जितैया विबुधेश को । (क० १। २। १)
 विवि—(सं० द्वि)—दो, दोनों । उ० सोभित सवन कनक कुंडल कल लंबित विवि भुज मूले । (गी० ७। १। २)
 विवेक—(सं० विवेक)—ज्ञान, सत्यासत्य का विचार । उ० अस विवेक जब देइ बिधाता (मा० १। ७। १)
 विवेका—दे० 'विवेक' । उ० कहहु नाथ अति विमल विवेका । (मा० १। १। १। २)
 विवेकी—(सं० विवेकिन)—ज्ञानी, ज्ञानवान । उ० जाग-बलिक मुनि परम विवेकी । (मा० १। ४। २)

विवेक-वे० 'विवेक' । उ० प्रिया हास रिस परिहरहि मागु
विचारि विवेक । (मा० २।३२)
विवेक-दे० 'विवेक' । उ० नहि कलि करम न भगति
विवेक । (मा० १।२७।४)
विभंजन-नाश करनेवाला । विभंजनि-नाश करनेवाली ।
उ० रामकथा कलि कलुष विभंजनि । (मा० १।३।१।३)
विभंजय-नष्ट करो । उ० द्वंद्व विपति भव फंद विभंजय ।
(मा० ७।३।४।४) विभंजि-नष्ट करके, तोड़कर । उ० आतुर
बहोरि विभंजि स्वदन् सूत हति ब्याकुल कियो । (मा०
६।८।४।४) १)
विभव-(सं० विभव)-पेश्वर्य संपत्ति, धन । उ० ते जनु
सकल विभव बस करहीं । (मा० २।३।३)
विभाग-(सं० विभाग)-भाग, हिस्सा । उ० ब्रह्म निरूपन
धरम बिधि यरनहि तत्त्व विभाग । (मा० १।४।४)
विभागा-दे० 'विभाग' । उ० बिच बिच कथा बिचित्र
विभागा । (मा० १।४।०।३)
विभिचारी-(सं० व्यभिचारिन्)-पर-स्त्री-गामी, व्याभिचारी ।
उ० व्यसनी धन सुभगति विभिचारी । मा० ३।१।७।८)
विभीखन-दे० 'विभीषण' ।
विभीखनु-दे० 'विभीषण' ।
विभीषण-(सं०)-दे० 'विभीषण' ।
विभषण-(सं० विभीषण)-रावण का भाई जो राम का
भक्त था । रावण की मृत्यु के बाद यही लंका का राजा
हुआ । उ० नाम विभीषण जेहि जग जाना । (मा० १।
१।७।३) विभीषणहि-विभीषण को । उ० सोइ संपदा
विभीषणहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ । (मा० २।४।६ ख)
विभीषनु-दे० 'विभीषण' । उ० जरत विभीषनु राखेउ
दीन्हैउ राजु अखंड । (मा० २।४।६ क)
विभु-(सं० विभु)-प्रभु, सर्वव्यापी । उ० जौ अनीह व्या-
पक विभु कोई । (मा० १।१।०।६।१)
विभूति-(सं० विभूति)-संपत्ति, धन, पेश्वर्य । उ० भोग
विभूति भूरि भर राखे । (मा० २।२।१।४।३)
विभूती-दे० 'विभूति' । उ० कहि न जाइ कछु नगर विभूती ।
(मा० २।१।३)
विभूषण-(सं० विभूषण)-गहना, आभूषण । उ० सहगा-
मिनिहि विभूषण जैसे । (मा० २।३।७।४)
विभेद-(सं० विभेद)-भेद, अंतर । विभेदकरी-विभेद या
भेद करनेवाली ।
विभेदा-दे० 'विभेद' । उ० समदरसी सुनि बिगत विभेदा ।
(मा० ७।३।२।३)
विभो-(सं० विभो)-हे सर्वव्यापी ! उ० अवधेस सुरेस
रमेस विभो । (मा० ७।१।४।१)
विमत्त-मतवाले । उ० जे ग्यान मान विमत्त तव भवहरनि
भक्ति न आदरी । (मा० ७।१।३। छं० ३)
विमद-(सं० वि + मद्)-मद् से रहित, गर्वरहित । उ० सम
अभूतरिपु विमद विरागी । (मा० ७।३।८।१)
विमर्दि-(सं० वि + मर्दि)-मर्दिन करके ।
विमल-(सं० विमल)-शुद्ध, मल से रहित, निर्मल । उ०
बालि विमल जस भाजन जानी । (मा० ६।२।४।६)
विमात-(सं० विमाता)-सौतेली मा, मैमा ।

विमात्र-(सं० विमाता)-सौतेला । उ० भयउ विमात्र बंधु
लघु तासू । (मा० १।१।७।६।२)
विमान-(सं० विमान)-१. आकाश का जहाज़, वायुयान,
२. रथ, ३. घोड़ा, ४. अरथी । उ० १. लगे सवारन
सकल सुर बाहन विविध विमान । (मा० १।६।१)
विमानु-दे० 'विमान' ।
विमुक्त-(सं० वि + मुक्त)-सांसारिकता से मुक्त, जीवन्मुक्त ।
उ० सुनहि विमुक्त बिरत अरु बिपई । (मा० ७।१।६।३)
विमुख-(सं० विमुख)-विरुद्ध, खिलाफ़ । उ० विषय विमुख
बिरागरत होई । (मा० ७।२।४।१)
विमूढ़-(सं० वि + मूढ़)-महा मूढ़, अत्यंत मूर्ख । उ० किमि
समुझीं मैं जीव जइ कलिमल असित विमूढ़ । (मा० १।३।० ख)
विमूढ़ा-दे० 'विमूढ़' । उ० कौल काम बस कृपिन विमूढ़ा ।
(मा० ६।३।१।१)
विमोचन-(सं० विमोचन)-छुड़ानेवाला, मुक्तकर्ता । उ०
भए सोचबस सोच विमोचन । (मा० २।२।२।६।३) विमो-
चनि-छुड़ानेवाली । उ० निज सरूप रतिभानु विमोचनि ।
(मा० १।२।६।७।१)
विमोचहि-छोड़ते हैं, निकालते हैं । विमोचहीं-निकालती
हैं, बहाती हैं, छोड़ती हैं । उ० बहु भाँति बिधिहि लगाइ
दूपन नयन बारि विमोचहीं । (मा० १।६।७। छं० १)
विमोह-(सं० विमोहन)-मोहित हों । उ० श्री विमोह जिसु
रूपु निहारी । (मा० १।१।३।०।२)
विमोहन-(सं० विमोहन)-मोहित करना ।
विमोहनि-मोहित करनेवाली । उ० दनुज विमोहनि जन
सुखकारी । (मा० ७।७।३।१)
विमोहनसीला-मोहित करनेवाली । उ० सुर हित दनुज
विमोहनसीला । (मा० १।१।१।३।४) विमोहा-१. मोहित
किया, २. मोह । उ० २. कीन्ह राम मोहि विगत विमोहा ।
(मा० ७।८।३।३)
विय (१)-(सं० बीज)-बीज, गुठली । उ० वरने जामवंत
तेहि अवसर, वचन बिबेक वीर रस विय के । (गी० ४।१)
विय (२) (सं० द्वि)-१. दो, २. दूसरा । उ० २. प्रथम बड़े
पट विय विकल, चहत चकित निज काज । (दो० १।६।६)
विये-(सं० द्वि)-दूसरे । उ० कहिवे की न वावरि बात
विये तें । क० ७।१।२।६) वियौ-(सं० द्वि)-दूसरा भी ।
उ० कहाँ रघुबीर सो वीर वियौ है । (क० ६।५।३)
विया (१)-(सं० विजनन)-उत्पन्न हुआ । वियो (१)-(सं०
विजनन)-उपजा, पैदा हुआ ।
विया (२)-(सं० द्वि)-दूसरा, अन्य । उ० तो सो ज्ञान
निधान को सर्वज्ञ बिया रे ? (वि० ३।३) वियो (२)-(सं०
द्वि)-दूसरा ही । उ० तुलसी मो समान बड़ भागी को
कहि सकै वियो हौं । (गी० ३।१।४)
विया (३)-(सं० बीज)-बीज, बीया ।
वियाह-(सं० विवाह)-ब्याह, शादी ।
वियाहन-(सं० विवाह)-विवाह करने । उ० कहेन्हि बिया-
हन चलहु जुलाह अमर सब । (पा० १००) बियाहव-
ब्याहेंगे, ब्याह करेंगे ।
बियाहा-ब्याह, विवाह ।
बियाहू-दे० 'बियाह' ।

बियो (३)-(सं० बीज)-बीज ।
 बियोग-(सं० वियोग)-विरह, जुदाई । उ० राम बियोग
 बिकल सब ठाढ़े । (मा० २।८३।१) बियोगनिह-बियोगों
 से । उ० बहु रोग बियोगनिह लोग हए । (मा० ७।१४।५)
 बियोगा-दे० 'बियोग' । उ० कूस तन श्री रघुबीर बियोगा ।
 (मा० ७।५।१)
 बियोगी-बियोगी, बिछुड़ा, छूटा हुआ । उ० मरमारथी
 प्रपंच बियोगी । (मा० २।३३।२)
 बियोगु-दे० 'बियोग' । उ० जो पै प्रिय बियोगु बिधि
 कीन्हा । (मा० २।८६।३)
 बियोगू-दे० 'बियोग' । उ० बरनत रघुबर भरत बियोगू ।
 (मा० २।३१।१)
 बिरँचि-दे० 'बिरँचि' । उ० दे० 'बिरवा' ।
 बिरँचि-(सं० बिरँचि)-ब्रह्मा, विधाता । उ० बिरचे बिरँचि
 बनाइ बाँची रुचिरता रँचौ नहीं । (जा० ३६)
 बिर-(सं० वीर)-वीर, बहादुर ।
 बिरक्त-(सं० विरक्त)-उदास, त्यागी । उ० कोटि बिरक्त
 मध्य श्रुति कहई । (मा० ७।५४।२)
 बिरचत-(सं० विरचन-१. बनाते हैं, २. बनाते हुए, रचते
 हुए । उ० २. बिरचत हंस काग किय जेहीं । (मा० १।
 १७५।१) बिरचति-१. बनाती है, रचती है, २. रचते
 हुए । बिरचि-रचकर, बनाकर । उ० कपट नारि बर बेष
 बिरचि मंडप गई । (जा० १४७) बिरची-रची, बनायी ।
 उ० बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी । (मा० २।२३७.३)
 बिरचे-बनाया । उ० दे० 'बिरँचि' । बिरचेउ-बनाया, रचा ।
 बिरजं-दे० 'बिरज' । बिरज-रजरहित, विशुद्ध । उ० व्यापक
 ब्रह्म बिरज बागीसा । (मा० ७।५८।४)
 बिरत-(सं० विरत)-१. विरक्त, अलग, २. वैरागी, साधु ।
 उ० २. बिरत, करमरत, भगत, मुनि, सिद्ध जँच अरु
 नीनु । (दो० २२३)
 बिरति-(सं० विरति)-उदासीनता, त्याग । उ० बिरति
 ग्यान बिग्यान दृढ़ राम चरन अति नेह । (मा० ७।५३)
 बिरथ-(सं० वि + रथ)-रथरहित, बिना रथ का । उ० रावनु
 रथी बिरथ रंघुबीरा । (मा० ६।८०।१)
 बिरद-(सं० विरुद)-यश, बढ़ाई ।
 बिरदावलि-दे० 'बिरिदावली' ।
 बिरदु-दे० 'बिरद' ।
 बिरदैत-(सं० विरुद)-प्रसिद्ध वीर, यशस्वी योद्धा । उ० बरन
 बरन बिरदैत निकाया । (मा० ६।७६।२)
 बिरलइ-बिरला ही । दे० 'बिरला' ।
 बिरला-(सं० बिरल)-कोई-कोई, शायद ही कोई ।
 बिरतो-दे० 'बिरला' । उ० तुलसी ऐसे संतजन बिरले या
 संसार । (वै० २६)
 बिरवँ-बिरवा में । दे० 'बिरवा' । उ० अभिमत बिरवँ परेउ
 जनु पानी । (मा० २।५।३)
 बिरव-दे० 'बिरवा' ।
 बिरवनि-बृच्चों में, पेड़ों में । उ० दसरथ सुकृत-मनोहर-
 बिरवनि रूप-करह जनु लाग । (गी० १।२६)
 बिरवा-(सं० विरुद)-बृच्च, पेड़, पौदा । उ० वर प्रथम
 बिरवा बिरँचि बिरचो मंगला मंगल मई । (पा० १८)

बिरह-(सं० विरह)-वियोग, बिछोह, बिछुड़न । उ० केतिक
 बीच बिरह परमारथ जानत ही किधौ नाहीं । (कृ० ३३)
 बिरहनी-दे० 'बिरहिनि' ।
 बिरहवंत-बिरही, वियोगी । उ० बिरहवंत भगवंतहि देखी ।
 (मा० ३।४१।३)
 बिरहा-दे० 'बिरह' । उ० अब व्यौत करै बिरहा दरजी ।
 (क० ७।१३३)
 बिरहित-छोड़ा हुआ, अलग ।
 बिरहिन-दे० 'बिरहिनि' ।
 बिरहिनि-(सं० बिरहिणी)-वियोगिनी, अपने प्रिय से
 अलग स्त्री । उ० घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई । (मा०
 १।२३८।१)
 बिरहिनी-दे० 'बिरहिनि' । उ० जात निकट न बिरहिनी-
 अरि अकनि ताते बैन । (गी० १।२)
 बिरही-(सं० विरहिन)-वियोगी, बिछुड़ा । उ० बिरही इव
 प्रमु करत विषादा । (मा० ३।३७।१)
 बिरहु-दे० 'बिरह' ।
 बिराग-(सं० विराग)-वैराग्य की अवस्था । उ० बँधेउ
 सनेह विदेह, बिराग बिरागेउ । (जा० ४६)
 बिरागी-जिसके हृदय में वैराग्य हो, विरक्त । उ० जेहि लागि
 बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिचूँदा । (मा०
 १।१८६।२)
 बिरागु-वैराग्य, संसार से विरक्त होने का भाव । उ० देखि
 नगरु बिरागु बिसरार्वाहि । (मा० ७।२७।१)
 बिरागेउ-विरक्त हो गए, दूर हो गए, अलग हो गए । उ०
 बँधेउ सनेह विदेह, बिराग बिरागेउ । (जा० ४६)
 बिराज-(सं० वि० + रंजन)-१. विशेष शोभित, २. उपस्थित,
 बैठा, वर्तमान, ३. बिराजमान है । उ० ३. वर बिराज मंडप
 महुँ बिस्व बिमोहइ । (जा० १५५) बिराजइ-१. बैठी है, २.
 सुशोभित है । उ० जूचति जूथ महुँ सीय सुभाइ बिराजइ ।
 (जा० १५८) बिराजत-१. बैठे हैं, बैठे रहते हैं, रहते हैं, २.
 शोभायमान हैं । उ० १. तेरे निवाजे गरीब निवाज बिराजत
 बैरिन के उर साजे । (ह० १७) बिराजति-बिराजती है ।
 बिराजते-१. बिराजते थे, रहते थे, २. शोभित होते थे ।
 बिराजहिं-१. शोभित हैं, २. बैठे हैं, हैं । उ० १. बिबिध भाँति
 मुख, बाहन, बेष बिराजहिं । (पा० ११०) बिराजा-
 बिराजमान हुआ । उ० राजसभाँ रघुराज बिराजा । (मा०
 २।२।१) बिराजी-बिराजमान हुई, सुशोभित हुई । उ० सिथिल
 सनेह मुदित मन ही मन बसन बीच बिच बधू बिराजी ।
 (कृ० ६१) बिराजे-दे० 'बिराजै' । बिराजै-१. बैठे, बैठे हैं,
 बिराजमान हैं, २. शोभायमान हो रहे हैं । उ० १. तुलसी
 समाज राज तजि सो बिराजै आनु । (क० १।१८)
 बिराजमान-१. वर्तमान, उपस्थित, मौजूद, २. सुशोभित ।
 उ० १. ऐसे सम समधी समाज ना बिराजमान । (क० १।
 १५) २. लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि । (क०
 ७।१७७)
 बिराट-(सं० विराट्)-१. बढ़ा, बहुत बढ़ा, २. ब्रह्म का
 वह रूप जो संपूर्ण विरवरूप है । उ० २. बिदुषन्ह प्रमु
 बिराटमय दीसा । (मा० १।२४२।१)
 बिराध-दे० 'बिराधा' ।

विराधा-(सं० विराध)-एक राक्षस जिसे लक्ष्मण ने दुंदकार-
रथ में मारकर पृथ्वी में गाढ़ दिया था। यह पूर्व जन्म
का एक गंधर्व था और कुबेर के शाप से राक्षस हो गया
था। इसकी मार्यना पर कुबेर ने लक्ष्मण के हाथ से इसे
मुक्त होने का वर दिया था। उ० खनि गर्त गोपित विराधा।
(वि० ४३)
विराना-(फा० बेगाना ?)-पराया दूसरेका। विराने-पराये,
दूसरे के। उ० भाननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत
घरन विराने। (वि० २३५)
विरावत-(?)-चिदाते हैं। उ० बाल बोलि बहकि विरावत
चरित लखि। (क० २)
विरिद-दे० 'विरद'। उ० लोक बेद बर विरिद विराजे।
(मा० १२५११)
विरिदावली-(सं० विरुद + अवलि)-यशोगान, बढ़ाई।
उ० विरिदावली कहत चलि आए। (मा० १२४ ३१४)
विरिया-(सं० वेला)-समय, वक्त।
विरुचि-(सं० वि + रुचि)-अपनी रुचि या प्रसन्नता से। उ०
बिहचि परखिए सुजन जन, राखि परखिये मंद। (दो०
३७४)
विरुज-रोगरहित, स्वस्थ। उ० सब सुंदर सब विरुज सरिरा।
(मा० ७२११३)
विरुके-(सं० विरुद)-लड़े। उ० विरुके विरुदैत जो खेत
अरे, न टरे हठि बैर बढ़ावन के। (क० ६३४) विरुम्भो-
१. क्रुद्ध हुआ, २. लड़ा, लड़ गया। उ० २. विरुम्भो रन
मारुत को विरुदैत जो कालहु काल को बूमि परै। (क०
६३६)
विरुद-(सं० विरुद)-यश, कीर्ति। उ० प्रनतपाल विरुदा-
वली सुनि जानि बिसारी। (वि० १४८) विरुदावलि-दे०
'विरिदावली'।
विरुदावली-दे० 'विरिदावली'।
विरुदैत-(सं० विरद + ऐत)-१. लड़ाका, थोड़ा, २. बाने-
वाला, बानेबंद। उ० १. दे० 'विरुम्भो'।
विरुद-(सं० विरुद)-प्रतिकूल, खिलाफ। उ० जुद्ध विरुद
क्रुद्ध द्वौ बंदर। (मा० ६१४११)
विरुद्धा-दे० 'विरुद'। उ० कुंभकरन रन रंग विरुद्धा। (मा०
६१७११)
विरुद्धे-विरुद्ध हुए। उ० वीर बली मुख जुद्ध विरुद्धे।
(मा० ६१५१४)
विरुप-(सं० विरुप)-कुरूप, असुंदर। उ० जय निसिचरी-
विरुप-करन रघुबंस विभूषन। (क० ७१११३)
विरोध-(सं० विरोध)-झगड़ा, बैर। उ० सिव विरिचि जेहि
सेवहि तासों कवन विरोध। (मा० ६१४८)
विरोधा-१. विरोध, २. विरोध किया। विरोधि-विरोध
करके। उ० तिन्हहि विरोधि न आइहि पूरा। (मा०
३१२१४) विरोधे-विरोध करने से। उ० नवहि विरोधे
नहि कल्याना। (मा० ३१२६२) विरोधे-विरोध किया,
२. विरोध करने से।
विरोधी-शत्रु, विरोध करनेवाला। उ० राम विरोधी हृदय
तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि। (मा० २११६२)
विरोधू-दे० 'विरोध'।

विरुद-(फ्रा० वुलुद)-उँचा। उ० मंद विरुद अमेरा दल-
कन पाइय दुख झकभोरा रे। (वि० १८६)
विरुब-दे० 'विरुब'।
विरुव-(सं० विरुव)-देर, देरी। उ० विरुव किए अपना-
हुए सबेरो। (वि० २७२)
विरुवत-(सं० विरुव)-विरुव करते हैं, देर करते हैं। उ०
खेलत चलत करत मग कौतुक विरुवत सरित-सरोवर
तीर। (गी० ११२२) विरुवे-ठहरे। उ० तुलसी प्रभु
तरु तर विरुवे किए प्रेम कनौदे कै न ? (गी० २१२४)
विरुवा-दे० 'विरुव'। उ० तुम्ह गृह गवनहु भयउ विरुवा।
(मा० ११८११४)
विरु-(सं० विरु)-माँद, छेद, विवर। उ० खोजत गिरि,
तरु लता भूमि, बिल परम सुगंध कहाँ धौँ आयो। (वि०
२४४) विरु-(सं० विरु)-बिल में। उ० सो सहेतु ज्यों
बक्रगति व्यालन बिलै समाइ। (दो० ३३४)
विरुख-(सं० विकल)-१. उदास, २. रोकर, विलख कर।
उ० १. व्याकूल बिल विलख बदन उठि धाए। (मा०
२१७०११) विलखत (१)-रोते हैं, दुखी होते हैं।
विलखि-दुखी होकर, रोकर। उ० सुनहु भरत भावी
प्रबल विलखि कहेउ मुनिनाथ। (मा० २१७११)
विलखेउ-उदास हुआ, रोया। उ० सुनत बचन बिनखेउ
रनिवासु। (मा० ११३३६१४)
विलखत (२)-विशेष प्रकार से देखते हैं। उ० इन महँ
चेतन अमल अल विलखत तुलसीदास। (सं० ४६२)
विलखाइ-(सं० विकल)-१. विलखकर, रोकर, २. प्रेम
से गद्गद होकर। उ० १. सीता मातु सनेह बस बचन
कहह विलखाइ। (मा० ११२५५) २. करिअ न सोखु सनेह
बस कहेउ भूप विलखाइ। (मा० २१२८६) विलखाई-१.
विलाप करता है, दुखी होता है, २. रोकर, दुखी
होकर। उ० १. सबहु सुमन बिकसत रवि निकसत,
कुसुद-बिपिन विलखाई। (गी० १११) विलखात-उदास
होते हैं। विलखाति-उदास होती है। विलखान-
विलखाया, उदास हुआ। उ० काल कराल बिलोकि
मुनि, सब समाज विलखान। (प्र० १६६५) विल-
खानी-उदास होकर, उदास होती हुई। उ० भरत
मातु पहि गइ विलखानी। (मा० २१३३३) विलखाने-
उदास हुए, दुखी हुए। उ० घायल लपन लाल लखि
विलखाने राम। (क० ६१२२) विलखाई-दुखित होते हैं,
रोते हैं। उ० जेहि बिलोकि विलखाई बिमाना। (मा०
२१२१४२) विलखाई-दुखी होते हैं, रोते हैं। उ० देखि
लोग जहँ तहँ विलखाई। (मा० २३६१४)
विलखावति-उदास करती है, दुखित करती है। उ० काम-
तून-तूल सरिस जानु जुग, उरु करि-कर करभहि
विलखावति। (गी० ७११७)
विलखित-उदास, दुखी। उ० बहु समुझाइ बुझाइ फिरै
विलखित मन। (पा० १६०)
विलग-(सं० वि + लग्न)-१. अलग, न्यारा, २. झुरा,
अयुक्त। उ० १. विलग विलग होइ चलहु सब निज निज
सहित समाज। (मा० ११६२)
विलगाइ-(सं० वि + लग्न)-अलग हो, अलग हो जावे,

अलग हो सकता है। उ० किमि बिलगाइ मुनीस प्रवीना। (मा० ७।१११।५) बिलगाई-अलग करके। उ० पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। (मा० १।३३७।४) बिलगाउ-अलग हो, अलग हो जावे। उ० सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। (मा० १।२७।१३) बिलगाऊ-१. अलग करो, २. दे० 'बिलगाउ'। बिलगाए-अलग किया, अलग किया है। उ० गनि गुन दोष बेद बिलगाए। (मा० १।६।२) बिलगान-बिलगाया, फटा, विदीर्ण हुआ। उ० ऐसेउ बचन कठोर पुनि जौ न हृदय बिलगान। (मा० २।६७) बिलगाना-अलग हुआ। बिलगावै-अलग करे, अलगगावे। उ० ज्यों सरंरा मिलै सिक्ता महँ बल तँ न कोउ बिलगावै। (वि० १।६७) बिलगान्यो-अलग हुआ। उ० जिय जब तँ हरि तँ बिलगान्यो। (वि० १।३६) बिलगायउ-अलग कर लिया। उ० आपन आपन साज सर्बहि बिलगायउ। (पा० १०६) बिलगाव-१. भिन्नता, अलगगाव, २. बिलगाओ, अलग करो। बिलगाहि-अलग होते हैं। बिलगाही-अलग होते हैं। उ० जलज जौक जिमि गुन बिलगाही। (मा० १।५।३) बिलगु-दे० 'बिलग'। उ० २. इनको बिलगु न मानिए बोलहि न बिचारी। (वि० ३४) बिलपत-बिलाप करते। उ० बिलपत नृपहि भयउ भिदुसारा। (मा० २।३७।३) बिलपति-बिलाप करती है। उ० बिलपति अति कुररी की नाई। (मा० ३।३१।२) बिलपहि-(सं० बिलाप)-बिलाप करते हैं, रोते हैं। उ० बिलपहि बाम बिघातहि दोष लगावहि। (पा० ३४) बिलपाता-(सं० बिलाप) बिलाप करते हुए। उ० परबस परी बहुत बिलपाता। (मा० ४।१।२) बिलम-(सं० बिलंब)-देर, देरी। बिललात-(सं० बिलाप)-बिललाते हैं, रोते हैं। उ० नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति। (क० २।१५) बिलष-(सं० विकल)-१. उदास, २. उदास होकर, सुस्त होकर, ३. उदासीनता, व्याकुलता। बिलषाइ-(सं० विकल)-२. दुखित होकर, १. रोकर। बिलषाता-रोता, दुखी होता। बिलसत-(सं० बिलसन)-१. सुंदर लगते हैं, २. बिलास करते हैं, आनंद मनाते हैं, भोगते हैं, ३. भोगते हुए। उ० १. कोपित कलि, लोपित मंगल-मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया-मल्लु। (वि० २४) ३. राज भवन सुख बिलसत सिष सँग राम। (ब० २१) बिलसति-'बिलसत' का स्त्री-लिंग। सुंदर लगती है। उ० बिबिध बाहिनी बिलसति सहित अनंत। (ब० ४२) बिलसहि-बिलास करता है, भोगता है। उ० शांत सुसचिचन सौपि सुख बिलसहि नित नरनाहु। (दो० ५२१) बिलसै-बिलास करे, भोगे, सुख लूटे। उ० सज्जन-सीव बिभीषन भो, अजहुँ बिलसै बर बंधु-बधू जो। (क० ७।५) बिल्लाई-(सं० बिलाल)-बिल्ली। उ० जिमि अंकुस धनु उरग बिल्लाई। (मा० ३।२४।४) बिलानी-(सं० बिलयन)-मिट गई, नष्ट हो गई, समास हो गई। उ० सकल काम बासन बिलानी। (बै० ५१)

बिलाहि-(सं० बिलयन)-नष्ट हो जाते हैं, विलीन हो जाते हैं, नहीं रह जाते हैं। उ० मुख देखत पातक हरे, परसत कर्म बिलाहि। (बै० २४) बिलाही-दे० 'बिलाहि'। उ० जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं। (मा० ७।१२१।१०) बिलाप-(सं० बिलाप)-रोना, रुदन। उ० बरनि न जाहि बिलाप कलापा। (मा० २।५७।४) बिलापु-दे० 'बिलाप'। बिलास-(सं० बिलास)-क्रीडा, आनंददायक क्रिया। उ० उपमा बीचि बिलास मनोरम। (मा० १।३७।२) बिलासा-दे० 'बिलास'। बिलासिनि-(सं० बिलासिनी)-स्त्रियाँ। उ० बिबुध बिलासिनि सुर मुनि जाचक जो जेहि जोग। (गी० १।५) बिलासु-दे० 'बिलास'। बिलासु-दे० 'बिलास'। बिलुलित-(?) उलझे हुए। उ० अति चमुत खमकन मुखनि बिशुरे चिकुर बिलुलित हार। (गी० ७।१३) बिलोए-(सं० बिलोडन)-मथने से। उ० घृत कि पाव कोइ बारि बिलोए। (मा० ७।४३।३) बिलोये-(सं० बिलोडन)-मथे, मथ डाले। बिलोयो-मथा, मथ डाला। उ० बहु भाँतिन खम करत मोहबस बुथहि मंद मति बारि बिलोयो। (वि० २४५) बिलोवत-मथते हुए। उ० सोइ आदरौ आस जाके जिय बारि बिलोवत घी की। (क० ४३) बिलोक-(सं० बिलोकन)-१. देखकर, २. देखो। बिलोकइ-देखता है। बिलोकउ-(सं० बिलोकन)-देखूँ। उ० ऐसे प्रभुहि बिलोकउ जाई। (मा० ३।४१।४) बिलोकत-१. देखत हैं, २. देखते ही। उ० २. राम बिलोकत प्रगटेउ सोई। (मा० १।१७।१) बिलोकति-देखती है। बिलोकन-देखना, अवलोकन करना। बिलोकनि-देखने की क्रिया, चितवनि। उ० उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। (मा० ६।७०।६) बिलोकय-देखो, अवलोकन करो। बिलोकहि-देखती है। उ० जाकी ओर बिलोकहि मन तेहि साथहि हो। (रा० ६) बिलोकहु-देखो। बिलोका-देखा, अवलोकन किया। उ० उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। (मा० ६।७०।६) बिलोकि-देखकर। उ० जय धन्य जय-जय धन्य-धन्य बिलोकि सुर नर मुनि कहे। (जा० १।४४) बिलोकिये-१. देखूँगी, २. देखना। उ० १. बारक बहुरि बिलोकिये काऊ। (गी० २।३६) बिलोकिय-देखिए, देखो। बिलोकियत-दिखाई देता है। उ० लोक परलोक हूँ तिलोक न बिलोकियत। (ह० २४) बिलोक-देखा, अवलोकन किया। बिलोकु-देखो, अवलोको, समझो। उ० सुत दार अगार सखा परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे। (क० ७।३०) बिलोके-१. देखे, अवलोके, २. देखने पर। उ० १. मूरति बिलोके तन-मन के हरन हैं। (क० २।१७) बिलोकैउ-देखा, बिलोका। उ० जरत बिलोकैउ जबहि कपाला। (मा० ६।२६।१) बिलोकनिहारे-देखनेवाले। उ० तुलसी सुनत एकपकनि सौँ चलत बिलोकनिहारे। (गी० १।५२) बिलोकित-देखा हुआ।

विलोचन-(सं० लोचन)-आँख। उ० मूकनि बचन-लाहू, मानो अंधनि लहे हैं बिलोचन-तारे। (गी० १।५८)
 विलोचनन्हि-आँखों से, नेत्रों से। उ० निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेहँ समाछ। (मा० २।२६७)
 विवाह-दे० 'बिबाह'।
 विवेक-दे० 'बिबेक'।
 विशोका-दे० 'विसोका'।
 विशोकी-दे० 'विसोका'।
 विश्राम-(सं० विश्राम)-१. आराम, २. शयन। उ० १. ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन विश्राम। (मा० ६।७८)
 विश्रामा-दे० 'विश्राम' उ० १. सुनत अचन पाइअ विश्रामा। (मा० १।३५, ४)
 विश्रामु-दे० 'विश्राम'। उ० १. चलिअ करिअ विश्रामु यह बिचारि इह आनि मन। (मा० २२०१)
 विष-(सं० विष)-जहर, गरल। उ० चहुँ चवै बह अनल-कन सुधा होइ विष तूल। (मा० २।४८)
 विषहक-(सं० विषय)-संबंधी, विषयक। उ० सुत विषहक तव पद रति होऊ। (मा० १।१५१)
 विषई-(सं० विषयी)-विषयों में आसक्त। उ० सुनहिं बिमुक्त विरत अरु विषई। (मा० ७।१५३)
 विषद-(सं० विशद)-१. विस्तृत, २. पवित्र, निर्मल।
 विषम-(सं० विषम)-विकट, कठिन, टेढ़ा। उ० तव विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे। (मा० ७।१३। छं० २)
 विषमता-(सं० विषमता)-कठोरता, कठिनता।
 विषमु-दे० 'विषम'।
 विषय-(सं० विषय)-१. बारे, संबंध, २. स्त्री-संभोग, ३. संसार के प्रलोभन। उ० १. आपु विषय बिस्वास विसोपी। (मा० १।१६१।३) ३. धरम धुरीन विषय रस रूखे। (मा० २।५०।२) विषया-विषयों ने, संसार के प्रलोभनों ने। उ० विषया हरि लीन्हि न रहि विरती। (मा० ७।१०।१।१)
 विषयिक-दे० 'विषयक'।
 विषयी-दे० 'विषय'।
 विषाद-(सं० विषाद)-दुःख, कष्ट। उ० उजरोँ हरप विषाद बसेरे। (मा० १।४।१)
 विषादा-दे० 'विषाद'। उ० होहिं छनहिं छन मगन विषादा। (मा० २।१४।१।१)
 विषादु-दे० 'विषाद'। उ० बिरह विषादु वरनि नहिं जाई। (मा० २।१४।१।१)
 विषादू-दे० 'विषाद'। उ० कहि न जाइ कछु हृदय विषादु। (मा० २।५।२)
 विषाना-(सं० विषाण)-सींग। उ० ते नर पसु विनु पूँछ विषाना। (मा० २।५०।१।१)
 विषु-दे० 'विष'। उ० जनसु सिंधु पुनि बंधु विषु दिन मलीन सकलक। (मा० १।२३।७)
 विषेया-विशेष, अधिक। उ० सिव उर भयउ विषाद विषेया। (मा० १।५६।४)
 विष्टा-(सं० विष्टा)-गुह, पाजाना। उ० विष्टा पूय रुधिर कच हाडा। (मा० ६।५२।२)

विष्णु-(सं० विष्णु)-भगवान। रामादि दस या चौकी अवतार इन्हीं के हुए थे। उ० भिन्न विष्णु सिव मनु दिसि प्राता। (मा० ७।८१।१)
 विसद-(सं० विशद)-स्वच्छ, निर्मल। उ० निरस विसद गुनमय फल जासु। (मा० १।२७।३)
 विसमउ-(सं० विस्मय)-१. शोक, २. आश्चर्य। उ० १. हरप समय विसमउ कत कीजै। (मा० २।७७।२)
 विसमय-दे० 'विसमउ'।
 विसमित-(सं० विस्मित)-आश्चर्यचकित। उ० सुनत बचन विसमित महतारी। (मा० १।७३।३)
 विसर-(सं० विस्मरण)-भूलता, विस्मृत हो जाता। उ० एक सूल मोहि विसर न काऊ। (मा० ७।११०।१) विसरा-भूला। उ० विसरा मरन भई रिस गाढ़ी। (मा० ६।६३।१)
 विसर-भूल, विस्मृत हो। उ० तुव वियोग-संभव दारुन दुख विसरि गई महिमा सुबान की। (गी० २।११) विसरि-भूलिए, भूल जाइए। उ० अपराधी तउ आपनी तुलसी न विसरिए। (वि० २७१) विसरी-भूल गई। उ० विसरी देह तपहिं मनु लागा। (मा० १।७४।२) विसरे-भूल गये, दूर हो गये। उ० दुसह-वियोग-जनित दारुन दुख रामचरन देखत विसरे। (गी० ७।३८)
 विसरेउ-भूल गया, याद जाती रही। उ० भरतहि विसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु। (मा० २।१६०)
 विसरयो-(सं० विस्मरण)-भूला, विस्मरण हुआ। उ० जो निज धर्म बेद-बोधित सो करत न कछु विसरयो। (वि० २३६)
 विसराइ-(सं० विस्मरण)-भूलकर। उ० सहज बयर विसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान। (मा० १।१४ क) विसराइयो-१. भुला दिया, २. भूलिया। उ० १. मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोहबस विसराइयो। (मा० ६।१२।१। छं० २) विसराई-१. भूले, भूल गए, २. छोड़कर, भुलाकर। उ० १. कारण कौन कृपा विसराई। (वि० २४२) २. तुलसिदास इन्ह पर जो ब्रह्मि हरि तौ पुनि मिलौ बैर विसराई। (कृ० २६) विसराए-१. भुलाकर, २. भूले। उ० १. देखत नभ घन-ओट चरित सुनि जोग समाधि बिरति विसराए। (गी० १।२६) विसरायो-भुला दिया। उ० नीच। मीसु जानत न सीस पर, ईस निपट विसरायो। (वि० २००) विसरावहिं-भुला देते हैं, भूल जाते हैं। उ० देखि नगर बिरागु विसरावहिं। विसरावहिंगे-दूर करेंगे। उ० तुलसिदास प्रभु मोह जनित भ्रम भेद बुद्धि कब विसरावहिंगे ? (गी० २।१०) विसरावहीं-भूलेंगे।
 विसराते-(सं० वेशरः)-खचर। उ० ठेक महोख ऊँट विसराते। (मा० ३।३८।३)
 विसहते-(सं० व्यवसाय)-मोल लेते, खरीदते। उ० तौ सुरपति कुरराज बालि सों कत हठि बैर विसहते ? (वि० ६७)
 विसारउ-भूलो, भूल जाओ। विसारहि-विसारो, भूलो। उ० तौ जनि तुलसिदास निसिबासर हरिपद-कमल विसारहि। (वि० ८५) विसारा-भूले, भूल गए। उ० राम काछु सुग्रीव विसारा। (मा० ४।१६।१) विसारि-छोड़कर, भूलकर। उ० निसि दिन भ्रमत

बिसारि सहज सुख जहँ तहँ हँदिन-तान्यो । (वि० ८८)
बिसारिबौ-भूलेंगे, बिसार देंगे । उ० तुलसीऔ तारिबो
बिसारिबो न अंत मोहिं । (क० ७१८) बिसारी-१. भूल-
कर, २. छोड़कर, ३. भूले, भुला दिया । उ० १. अपनेनि
को अपने बिलोकि बल सकल आस बिस्वास बिसारी ।
(क० ६०) ३. कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम ? (वि०
१३) बिसारे-भूले, भूल गए । उ० सोइ कछु करहु रहहु
ममता मम फिरहुँ न तुमहि बिसारे । (वि० ११२) बिसा-
रेउ-दे० 'बिसारेहु' । बिसारेहु-भुला दी, भुलाया । उ०
केहि अपराध बिसारेहु दाय्या । (मा० ३१२११) बिसारो-
भुलाया, भुला दिया । उ० काहे तैं हरि मोहिं बिसारो ।
(वि० १४) बिसारौ-छोड़ दूँ, भूल जाऊँ, भुला दूँ । उ० वह
अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारौ । (क०
३३) बिसारथो-भुला दिया ।

बिसारद-(सं० विशारद)-चतुर । उ० जे मुनिबर बिग्यान
बिसारद । (मा० ११८३)

बिसारन-१. भूल जानेवाला, २. भूलना, भूलने का भाव ।
उ० १. जन-गुन अल्प गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि
बिलोकि बिसारन । (वि० २०६) बिसारनसील-विस्मरण-
शील, भूल जानेवाली । उ० बानि बिसारनसील है
मानद अमान की । (वि० ४२)

बिसाल-(सं० विशाल)-बड़ा, भारी । उ० नीच निरादर ही
सुखद आदर सुखद बिसाल । (दो० ३२४)

बिसाला-दे० 'बिसाल' । उ० एक ललित लघु एक
बिसाला । (मा० २१ १३३१४)

बिसाही-(सं० व्यवसाय)-खरीदी हुई, क्रीत । उ० समरथ
पापी सौं बयर जानि बिसाही मीचु । (दो० ४७६)

बिसिख-दे० 'बिसिष' । उ० कटि किसि निषंग चाप बिसिख
सुधारि कै । (मा० ३१८८० १)

बिसिष-(सं० विशिष)-बाण, तीर ।

बिसिषासन-(सं० विशिष + आसन)-अनुष, कमान । उ०
बान बिसिषासन, बसन बन ही के कटि । (क० २११५)

बिसुद्ध-(सं० विशुद्ध)-बहुत पवित्र । उ० भए बिसुद्ध दिए
सब दाना । (मा० २११७०१४)

बिसुरति-(सं० विसुरण)-१. दुखित होती हुई, विलाप
करती हुई, २. दुखी होती हैं, रोती हैं, चिंता करती हैं ।
उ० १. जानि कठिन सिव चाप बिसुरति । (मा० ११
२३५११) २. कहि प्रिय बचन सखिन्ह सन रानि बिसु-
रति । (जा० ८२) बिसुरन-दुखी होने, चिंता करने । उ०
समुक्ति कठिन पन आपन लाग बिसुरन । (जा० ५३)
बिसुरि-चिंता कर, चिंतित होकर । उ० जहाँ गवन कियो
कुँवर कोसलपति, बूझति सियपिय पतिहि बिसुरि । (गी०
२१३)

बिसेक-दे० 'बिसेख' । उ० गोखग, खेखग बारिखग तीनों
माहि बिसेक । (दो० ५३८)

बिसेख-(सं० विशेष)-खास, जिसमें कोई विशेषता हो,
विशेष ।

बिसेखी-दे० 'बिसेख' ।

बिसेषा-विशेष, अधिक । उ० उपजा हियँ अति हरषु
बिसेषा । (मा० ११५०११) बिसेषी-विशेष, अधिक ।

उ० जौ तुम्हरे हठ हृदय बिसेषी । (मा०
११८११२)

बिसेषि-दे० 'बिसेख' । उ० बिपुल वनिज, बिद्या, बसन, बुध
बिसेषि गृहकाज । (प्र० ७११६)

बिसेषु-दे० 'बिसेख' । उ० उतरि सिंधु जार्यो प्रचारि पुर
जाको दूत बिसेषु । (गी० ६११)

बिसेषे-(सं० विशेष)-१. विशेष, खास, २. अधिक ।

बिसोक-(सं० वि + शोक)-१. शोकरहित, निश्चित, २.
शोक रहित करनेवाला । उ० १. होत न बिसोक अत
पावै न मनाक सो । (क० ५१२५) २. लोक परलोक को
बिसोक सो बिलोक ताहि । (ह० १३)

बिसोका-(सं० वि + शोक)-शोक रहित, निश्चित । उ०
भए नाम जपि जीव बिसोका । (मा० ११२७११) बिसोकी-
दे० 'बिसोक' । उ० जासु नाम बल करउँ बिसोकी ।
(मा० ११११११)

बिस्तर-(सं० विस्तर)-विस्तार, बढ़ाव । उ० बिस्तर सहित
कृपानिधि बरनी । (मा० ११७६४)

बिस्तरिहहिं-विस्तारेंगे, फैलाएँगे । उ० जग पावनि कीरति
बिस्तरिहहिं । (मा० ६१६१२)

बिस्तार-(सं० विस्तार)-विस्तार, फैलाव । उ० राम अनंत
अनंत गुन अमित कथा बिस्तार । (मा० ११३३)

बिस्तारक-विस्तार करनेवाला । उ० बिनय बिबेक बिरति
बिस्तारक । (मा० ७१३१३)

बिस्तारय-विस्तार कीजिए । उ० दीनबंधु समता बिस्ता-
रय । (मा० ७१३१२) बिस्तारहिं-फैलाएँगे, विस्तार करेंगे ।
बिस्तारा-फैलाया, विस्तार किया । बिस्तारी-फैलायी । उ०
तब रावन माया बिस्तारी । (मा० ६१८३३) बिस्तारे-
फैलाया । बिस्तारेउ-फैलाया, फैला दिया, विस्तार कर
दिया ।

बिस्वाम-(सं० विश्राम)-आराम ।

बिस्वामा-दे० 'बिस्वाम' ।

बिस्वामु-दे० 'बिस्वाम' ।

बिस्व-(सं० विश्व)-संसार, जगत । उ० जइ चेतन गुन
दोषमय बिस्व कीन्ह करतार । (मा० ११६)

बिस्वधृत-(सं० विश्वधृत)-शेषनाग ।

बिस्वनाथ-(सं० विश्वनाथ)-शंकर, महादेव । उ० बिरची
बिरंछि की बसति बिस्वनाथ कीजो । (क० ७१८२)

बिस्वामित्र-(सं० विश्वामित्र)-एक प्रसिद्ध ऋषि जो गांधि
के पुत्र थे । उ० बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी । (मा० ११
२०६११)

बिस्वास-(सं० विश्वास)-एतबार, यक्रीन । उ० हियँ
हरषे मुनि बचन मुनि देखि मीति बिस्वास । (मा०
११६०)

बिस्वासा-दे० 'बिस्वास' । उ० तेहि के बचन मानि
बिस्वासा । (मा० ११७६३)

बिस्वासु-दे० 'बिस्वास' । उ० ध्रुव बिस्वासु अवधि राका
सी । (मा० २१३२१३)

बिहंग-दे० 'बिहंग' । उ० २. जानुधान भालु कपि केवट
बिहंग जो-जो । (क० ७११३) ३. कौन भीर जो नीरदहि
जेहि लागि रदत बिहंग ? (क० ५४)

विहंगराज-दे० 'विहंगेस' । उ० विहंगराज-वाहन तुरत काविय मिटइ कलेस । (दो० २३५)
 विहंगा-दे० 'विहंग' । उ० १. तेइ सुक पिक बहु बरन विहंगा । (मा० १३७८)
 विहंडत-नष्ट करता है, तोड़ता है । उ० नख दंतन साँ भुज दंड विहंडत । (क० ६३५)
 विहंडन-(सं० विघटन, प्रा० विहंडन)-तोड़नेवाले, नष्ट करनेवाले । उ० नृपगन-बलमद सहित संभु कोदंड-विहंडन । (क० ७११२)
 विहंसत-(सं० विहसन)-१. हंसते ही, २. हंसते हुए । उ० १. विहंसत तुरत गयउँ मुख माहीं । (मा० ७८०१)
 विहंसहि-मुस्कराते हैं, हंसते हैं । उ० साखोच्चर समय सब सुर मुनि विहंसहि । (पा० १४३) विहंसा-हँसा, मुस्कराया । विहंसि-हँसकर, मुस्कराकर । उ० विहंसि राम कबो सत्य है सुधि में हूँ लही है । (वि० २७६)
 विहंसी-हँसी, हँस पड़ी । उ० विहंसी ग्यालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि लगे जननी उर धाई । (क० १३) विहंसै-हँसे, मुस्कराए ।
 विहंग-(सं० विहंग)-१. पक्षी, चिड़िया, २. जटायु, ३. पपीहा । उ० १. उकत अघ बिहंग सुनि ताल करतालिका । (वि० ४८)
 विहंगेस-(सं० विहंगेस)-पक्षियों के राजा, गरुड़ । उ० प्रथम जन्म के चरित अब कहउँ सुनहु बिहंगेस । (मा० ७। ६६ क)
 विहबल-(सं० विहबल)-आनंदविभोर, प्रसन्न । उ० विहबल बचन पेम बस बोलहि । (मा० २१२५१२)
 विहर-(सं० विदीर्ण)-१. फट जा, २. फट जाता है । उ० २. अइसिहुँ मति उर विहर न तोरा । (मा० ६१२११)
 विहरई-फट जाता है । विहरत (१)-फट जाता है । उ० ज्ञान कृपान समान लगत उर, विहरत छिन-छिन होत निनारे । (क० ५६) विहरो-विदीर्ण हुआ, फटा । उ० तुलसिदास ऐसे विहरे-बचन सुनि कठिन हियो विहरो न आउ । (गी० २।७) विहर्यो-१. फटा, २. फटा हुआ, विदीर्ण । उ० २. तुलसिदास विहर्यो अकास सो कैसे कै जात सियो है । (गी० ६।१०)
 विहरत (२)-(सं० विहार)-विहार करते हैं, आनंद लूटते हैं । उ० राजमराल बिराजत विहरत जे हर हृदय-तदाग । (गी० १।२६) विहरहि-विहार करते हैं । विहरि-क्रीड़ा करके, विहार करके । उ० आदि बराह बिहरी वारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी । (गी० २।५०) विहरै-दे० 'बिहरहि' । उ० अवघेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन मंदिर में विहरै । (क० १।४)
 विहरन-(सं० विहरण)-१. विहरना, घूमना-फिरना २. आनंद लूटना । विहरनसीला-(सं० विहरणशील)-विहार करनेवाली । उ० नव रसाल बन विहरनसीला । (मा० २।६३।४)
 विहाइ-(?) -१. छोड़कर, भूलकर, २. अतिरिक्त, सिवाय, ३. छोड़ता है । उ० १. सो बिलगाउ विहाइ समाजा । (मा० १।२७।३) ३. मिलै जो सरलहि सरल है, कुटिल न सहज विहाइ । (दो० ३३४) विहाइ-दे० 'विहाइ' ।

उ० १. रहि न सकइ हरि भगति विहाई । (मा० ७।११।३) विहाउ-छोड़ दो, छोड़ो । उ० रिपु सों बैर विहाउ । (दो० ६३) विहाय-छोड़कर, भूलकर । विहाव-छोड़ दो ।
 विहात-(?) -जाता है, व्यतीत होता है । उ० कहा कहौ, तात ! देखे जात ज्यों बिहात दिन । (क० २।२६)
 विहान (१)-दूर होती, बीतती । उ० तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लागि विपति विहान । (मा० २।६६)
 विहानी-१. बिता दी, बिताई, २. बीत गई, बीती । उ० १. कहत कथा सिय राम लपन की बैठहि रैन विहानी । (गी० २।६८)
 विहान (२)-(सं० विभात)-१. प्रातः, सबेरा, २. कल, अग्रिम दिन । उ० १. भयो मिथिलेस मानो दीपक विहान को । (गी० १।८६)
 विहाना-दे० 'विहान (२)' । उ० १. नहि तहँ पुनि बिग्यान विहाना । (मा० १।११।३)
 विहार-(सं० विहार)-१. विलास, २. खेल, क्रीड़ा, ३. आनंद से फिरना, ४. स्त्री प्रसंग । उ० २. भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित, बन बिलोकु रघुवर-बिहार-थलु । (वि० २४) ३. तम तद्वित उहुगन अरुन बिधु जनु करत ब्योम बिहार । (गी० ७।१८)
 विहारा (१)-दे० 'बिहार' ।
 विहारा (२)-(सं० व्यवहार)-व्यवहार । उ० तपपि करहि सम विषम विहारा । (मा० २।२१।३)
 विहारिनि-(सं० विहारिणी)-विहार करनेवाली । उ० बिस्व बिमोहनि स्वबस विहारिनि । (मा० १।२३।४)
 विहारी-विहार करनेवाला । उ० द्रवउ सो दसरथ अजिर विहारी । (मा० १।११।२)
 विहार-क. दे० 'बिहार' । ख. विहार करते हैं । उ० ख. तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहाह । (मा० १।३१)
 विहार-(सं० विहार)-१. विहार, आनंद, २. विहार करने वाले, ३. विहारस्थल । उ० ३. करि केहरि मृग विहाग बिहार । (मा० २।१३।२)
 विहाल-(फा० बेहाल)-परोशान, बेचैन । उ० कलिकाल विहाल किए मनुजा । (मा० ७।१०।३)
 विहाला-दे० 'बिहाल' । उ० सकल भुवन में फिरेउँ बिहाला । (मा० ४।६।६)
 विहालु-दे० 'बिहाल' । उ० बिहालु भंज्यो भवजालु परम मंगलाचरे । (वि० ७४)
 विहालु-दे० 'बिहाल' । उ० राम बिरहँ सबु साजु बिहालु । (मा० २।३२।१)
 विहित-(सं० विहित)-जिसका विधान किया गया हो । उ० बेदबिहित कहि सकल बिधाना । (मा० २।६।३)
 बिहीन-(सं० विहीन)-रहित, बिना । उ० मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि । (मा० २।८६)
 बिहीना-दे० 'बिहीन' । उ० धिग जीवन रघुबीर बिहीना । (मा० २।१४।२)
 बिहून-(सं० वि+हीन)-विहीन, रहित, बिना । उ० मलय-चल है संत जन, तुलसी दोप बिहून । (वि० १८) बिहूने-

दे० 'बिहून्' । उ० सेवा अनुरूप फल देत भूपकूप ज्यों, बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के । (क० ७१२४)
 बीके-(सं० विक्रय)-बिक गए । उ० आपने आपने मन मोल बिनु बीके हैं । (गी० २।३०)
 बीच-(सं० विच)-१. मध्य, माँक, २. मौका, ३. अंतर, फरक, ४. भीतर, ५. बैर, विरोध । उ० १. गजमनि-माला बीच आजत कहि जाति न पदिक-निकाई । (वि० ६२)
 २. सून बीच दसकंधर देखा । (मा० ३।२६।४) ३. दुख-प्रद उभय बीच कछु बरना । (मा० १।५।२) मु० बीच-कियो-बीच में पढ़कर, मध्यस्थता की । उ० लरत मधुप-अवलि मानो बीच कियो जाई । (गी० ७।३) बीचहि-बीच ही में । उ० अब सो सुनहु जो बीचहि राखा । (मा० १।१८।३) बीचहि-दे० 'बीचहि' ।
 बीचा-दे० 'बीच' । उ० १. मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा । (मा० १।१६४)
 बीचि-(सं० बीचि)-लहर, तरंग । उ० बिलसति बीचि बिजय-बिरदावलि, कर-सरोज सोहत सुपमा हैं । (गी० ७।१३)
 बीची-दे० 'बीचि' ।
 बीजु-दे० 'बीच' । उ० २. बीजु पाइ निज बात सँवारी । (मा० २।१८।१)
 बीछी-(सं० वृश्चिक)-बिच्छ । उ० छुअत चकी जनु सब तन बीछी । (मा० २।४६।३)
 बीछे-(सं० विच)-चुने, छुटि । उ० आछे आछे बीछे बिछौना बिछाइ कै । (गी० १।८२)
 बीज-(सं०)-१. फूलवाले वृक्षों या पौदों का गर्भोड जिससे अंकुरित होकर वृक्ष या पौदे आदि उत्पन्न होते हैं । बीयाँ, दाना, तुक्ष्म, २. प्रधान कारण, कारण, ३. जड़, मूल, ४. शुक्र, वीर्य । उ० १. सुचि सुंदर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को । (क० ७।१०३) ३. बीज-मंत्र जपिपु सोई जो जपत महेस । (वि० १०८)
 बीजु-दे० 'बीज' । उ० १. दुइ कहँ बिपति बीजु बिधि बयल । (मा० २।१६।३)
 बीता-(सं० व्यतीत)-१. बीत गया, २. पूरा हो गया, ३. बीतने लगा । उ० २. सब कर आछु सुकृत फल बीता । (मा० २।५७।३) ३. अरध निमेष कलप सम बीता । (मा० १।२००।४) बीति-बीत, खतम हो, समाप्त । उ० जनम गयो वादिहि बर बीति । (वि० २३४) बीती-१. बीत गई, २. पूरी हो गई । उ० १. लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुनी चाय । (वि० ८३) बीते-बीत गए, समाप्त हो गये । उ० देखत रघुबर-प्रताप, बीते संताप पाप । (वि० ७४) बीत्यों-बीता, बीत गया ।
 बीथि-दे० 'बीथी' । उ० स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी । (मा० २।३२६।३)
 बीथिन्ह-(सं० बीथी)-गलियों में । उ० बीथिन्ह फिरहि मगन मन मूले । (मा० १।१६६।३) बीथी-गलियों को । उ० बीथी सींचीं चतुर सम चौकें चारु पुराइ । (मा० १।२६६) बीथी-गली, पतली सड़क ।
 बीन-दे० 'बीना' । उ० तेहि अवसर मुनि नारद आए कर-तल बीन । (मा० ७।५०)

बीनती-(सं० विनय)-विनती, विनय । उ० बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती । (मा० ६।१२१।४०१)
 बीना-(सं० वीणा)-बीन, एक प्रकार का बाजा । उ० बीना बेनु मधुर धुनि सुनि किन्नर गंधर्व । (गी० ७।२५)
 बीर-(सं० वीर)-योद्धा, बहादुर । उ० एक ही बिसिष बस भयो बीर बाँकुरो जो । (क० ६।११)
 बीरता-(सं० वीरता)-बहादुरी, शूरता । उ० कीरति बिजय बीरता भारी । (मा० १।२५।१२)
 बीरबहूटि-दे० 'बीरबहूटी' । उ० बीरबहूटि रिराजहीं, दादुर-धुनि चहुँ श्रोर । (गी० ७।१६)
 बीरबहूटी-(सं० वीरन बहूटी)-एक लाल मखमली बरसाती कीड़ा । उ० मानौ मरकत-सैल बिसाल में फैलि चली बर बीरबहूटी । (क० ६।५१)
 बीरभद्र-(सं० वीरभद्र)-शिव का एक प्रसिद्ध गण । उ० बीरभद्र करि कोपु पठाए । (मा० १।६५।११)
 बीरा (१)-(सं० वीटक)-पान की गिलौरी । उ० रूपस-सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो । (रा० ६)
 बीरा (२)-(सं० वीर)-शूर, योद्धा, बहादुर । उ० इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा । (मा० ६।२६।५)
 बीरासन-(सं० वीरासन)-एक आसन विशेष जिसमें वीर लोग बैठते हैं । उ० जागन लगे बैठि बीरासन । (मा० २।६०।१)
 बीर-दे० 'बीर' । उ० बिरद बाँधि बर बीर कहाई । (मा० २।१४।४)
 बीरू-दे० 'बीर' । उ० जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू । (मा० २।१४।२)
 बीस-(सं० विंशति)-२०, दस का दूना । उ० दस सिर ताहि बीस भुजदंडा । (मा० १।१७६।१) मु० बीस कै-निश्चय ही । उ० निडर ईस तँ बीस कै बीस बाहु सो होइ । (दो० ४८८) बीसहु कै-पूरी तरह से । उ० माको बीसहु कै ईस अनुकूल आछु भो । (गी० २।३३) बीसहुँ-बीस भी । उ० बीसहुँ लोचन अंध विग तव जन्म कुजाति जड़ । (मा० ६।३३ क)
 बीसबाहु-(सं० विंशति + बाहु)-बीस भुजाओंवाला, रावण । उ० निडर ईस तँ बीस कै बीस बाहु सो होइ । (दो० ४८८)
 बीसा-दे० 'बीस' । उ० मुंडित सिर खंडित भुज बीसा । (मा० ५।११।२)
 बीसी-१. बीस वर्ष का समय, २. उत्पत्ति से प्रलय तक कुल तीन बीसियाँ कही गई हैं । प्रथम बीसी ब्रह्मा की, दूसरी विष्णु की और तीसरी शंकर की होती है । ३. एक मत से प्रत्येक साठ वर्ष ३ बीसियों में बटता है जिसमें प्रथम ब्रह्मा की, दूसरी विष्णु की और तीसरी शिव की होती है । शंकर की एक बीसी संवत् १६६२ से १६८२ तक थी । उ० ३. बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी । (क० ७।१७०)
 बीहा-(सं० विंशति)-बीस, २० । उ० साँचेहुँ मैं लबार भुजबीहा । (मा० ६।३४।४)
 बुंद-(सं० बिंदु)-बूँद ।
 बुक्तयो (१)-(१)-बुक्त गया, शांत हो गया ।

बुभयो (२)-(सं० बुद्धि)-समझ गया, जान गया ।
 बुभाइ (१)-(सं० बुद्धि)-समझाकर, ज्ञान कराकर । उ०
 कहहु बुभाइ कृपानिधि मोही । (मा० ७।११५।४) बुभाई
 (१)-१. बुभाया, बतलाया, समझाया, २. समझ पड़ता
 है, मालूम होता है । उ० १. कहि कथा सुहाई मातु बुभाई
 जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै । (मा० १।१६२।छं०३) बुभाउ
 (१)-(सं० बुद्धि)-१. ज्ञान, समझ, २. समझाओ । उ० १.
 तेरे ही बुभाए बूझ अबुझ बुभाउ सो । (वि० १८२)
 बुभाए (१)-(सं० बुद्धि)-१. बुझाने से, समझाने से,
 २. बुझाया, समझाया । उ० १. तेरे ही बुभाए बूझ अबुझ
 बुभाउ सो । (वि० १८२) २. बाल बुभाए विविध विधि
 निदर होहु डर नाहिं । मा० १।६५) बुभायो (१)-
 (सं० बुद्धि)-समझाया । बुभावहि (१)-समझाते हैं ।
 बुभावा-समझाता, समझाता था । उ० सर निंदा करि
 ताहि बुभावा । (मा० १।३६।२)
 बुभाइ (२)-(?)-बुझाकर, ठंडा कर कर शांत कर । बुभाई
 (२)-(?)-१. बुझाकर, गुल करके, शांतकर, २. बुझ
 जाता है, गुल हो जाता है । उ० २. तबहिं दीप बिग्यान
 बुभाई । (मा० ७।११८।७) बुभाउ (२)-बुझाओ, ठंडा
 करो । बुभाए (२)-बुताए, गुल किये । बुभानी-बुझी,
 ज्यों ही बुझी । उ० राग ह्वे पकी अगिनि बुभानी । (वै०
 ६०) बुभायो (२)-बुताया, गुल किया । उ० पावक-
 काम भोग-वृत्त तें सट कैसे परत बुभायो ? (वि० १६६)
 बुभावहि (२)-बुझाते हैं, शांत करते हैं ।
 बुभिहैं-सं० बुद्धि-पूछेंगे । उ० सादर समाचार नृप
 बुभिहैं, हौं सब कथा सुनाइहौं । (गी० १।४६)
 बुभैये-बतलाइए, समझाइए । उ० नुम तें कहा न होय,
 हा हा ! सो बुभैये मोहिं । (ह० ४४)
 बुट-(सं० विटप-वृटी, जड़ी) । उ० जातुधान बुट पुटपाक
 लंक जातरूप । (क० ५।२५)
 बुड़ि-(?)-बूबकर, मग्न होकर । बुड़िबे-बूबने, गोता खाने ।
 उ० गोपद बूदिबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावौं ।
 (वि० २३२)
 बुढ़ाई-(सं० बुद्ध)-बुढ़ापा, बुढ़ावस्था । उ० जनु बरपाकृत
 प्रगट बुढ़ाई । (मा० ४।१६।१)
 बुताइ-(?)-१. बुझाकर, गुलकर, २. बुतती, बुझती, शांत
 होती । उ० १. पूँछ बुताइ प्रबोधि सिय, आइ गहे प्रसु
 पाय । (अ० ५।१३) २. रघुपति-कृपा-बारि विनु नहिं
 बुताइ खोभागि । (वि० २०३) बुताई-१. बुझाकर, २. बुझती
 है । उ० २. मनमोदकन्हि कि भूख बुताई । (मा० १।२४६।१)
 बुताओ-बुझाओ, गुल करो । उ० कछो लंकपति लंक बरत
 बुताओ बेगि । (क० ५।१६) बुतावत-बुझाते हैं ।
 बुतैहैं-(?)-बुझेगी, शांत होगी । उ० गुरु, पुर जोग, सास,
 दोड देवर, मिलत दुसह उर तपनि बुतैहैं । (गी० ५।५०)
 बुद्ध-(सं०)-१. पंडित, ज्ञानी, २. ज्ञात, विदित, ३. विष्णु
 का नवौं अवतार । भगवान बुद्ध जिन्होंने बौद्ध धर्म स्थापित
 किया । उ० ३. जो निदत निदित भयो विदित बुद्ध अव-
 तार । (दो० ४६४)
 बुद्धि-(सं०)-धी, मनीषा, अज्ञान, ज्ञेहन, चेतना, विवेक,
 ज्ञान । उ० विद्या बारिधि बुद्धि-बिधाता । (वि० १)

बुद्धि-बुद्धि को । उ० बुद्धिहि लोभ दिखावहि आई ।
 (मा० ७।११८।४) बुद्ध्या-१. बुद्धि के लिए, २. बुद्धि से ।
 बुध-(सं०)-१. पंडित, विद्वान्, ज्ञानी, २. सप्ताह का चौथा
 दिन, बुधवार, ३. नवग्रहों में एक । बुध का जन्म बृहस्पति
 की स्त्री और चंद्रमा के वीर्य से हुआ था । उ० १. बुध
 बरनहिं हरि जस अस जानी । (मा० १।१३।४) २. विपुल
 बनिज बिद्या बसन बुध बिसेपि गृहकाज । (प्र० ७।१।६)
 ३. जनु बुध विधु विच रोहिनि सीही । (मा० २।१२३।२)
 बुधि-(सं० बुद्धि) बुद्धि, समझ, अज्ञान । उ० बुधि न
 बिचार, न विगार न सुधार सुधि । (गी० २।३२)
 बुबुक-(?)-१. ज़ोर का रोना, २. आग की लपट या भभक ।
 उ० २. जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत । (क०
 ५।६)
 बुबुकारी-(?) ज़ोर से रोने की क्रिया । उ० दे० 'बुबुक' ।
 बुरी-(सं० विरूप)-खराब, निकट । उ० राम के बिरोधे
 बुरी विधि हरिहरहु को । (क० ६।८)
 बुलाइ-(सं० ब्रू, प्रा० बुल्लइ)-बुला करके । उ० कहेन्हि
 बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब । (पा० १००) बुलाई-
 १. बुलाया, २. बुलाकर, ३. बुलाई हुई । उ० ३. ताहि
 तकैं सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाई । (वि० ३५) बुला-
 यउ-बुलाया । उ० देव देखि भल समउ मनोज बुलायउ ।
 (पा० २८) बुलाये-बुलाया, तलब किया । बुलावन-
 बुलाने । बुलैहो-बुलाओगे । उ० कल बल बचन तोतरे
 मंजुल कहि 'मौं' मोहिं बुलैहो । (गी० १।८)
 बुँद-(सं० बिहु)-ठोप, क्रतरा, बुँद, जल या किसी द्रव का
 थोड़ा अंश । उ० बुँद अघात सहहिं गिरि कैसे । (मा०
 ४।१४।२)
 बुँदिया-(सं० बिहु)-१. एक प्रकार की मिठाई, बुँदी, २.
 बुँदें । उ० १. बालधी फिरावै बार बार भूहरावै, भूँदें,
 बुँदिया सी, लंक पचिलाइ पाग पागिहैं । (क० ५।१४)
 बूझ-(सं० बुद्धि)-१. समझ, अज्ञान, २. बूझते हो । उ०
 २. अग्रमय खौड न ऊख मय अजहुँ न बूझ अबूझ । (मा० १।
 २७५) बूझइ-१. मालूम पड़ता है, ज्ञात होता है, २.
 मालूम करना चाहिए, खोजना चाहिए, ३. समझना
 चाहिए । उ० १. विनु कामना कलेस कलेस न बूझइ ।
 (पा० ५०) २. तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझइ । (जा०
 ६६) बूझउ-बूझूँ, समझूँ । बूझत-१. बूझता है, समझता
 है, जानता है, २. पूछता, ३. पूछते हुए । उ० १. तुलसी
 अलि, अजहुँ नहिं बूझत । (क० ५०) २. जो पै कहूँ कोउ
 बूझत बातो । (वि० १७७) ३. तेहि ते बूझत काजु डरौं
 मुनिनायक । (जा० २४) ४. जग बूझत बूझत बूझै ।
 (वि० १२४) बूझति-१. बूझती हो, समझती हो, २.
 पूछती । उ० १. बूझति और भाँति भामिनि कत कानन
 कठिन कलेस रही है । (गी० २।६) २. फिरि बूझति हैं,
 चलनो अब केतिक, पर्यंकुटी करिहौ कित हूँ ? (क०
 २।११) बूझव-१. पूछना, २. पूछेंगे । उ० १. बूझव राउर
 सादर साई । (मा० २।२७०।४) बूझहिं-पूछते हैं । बूझा-
 मालूम किया, समझ गया । उ० प्रथमहिं मैं कहि सिव-
 चरित बूझा मरसु तुम्हार । (मा० १।१०४) बूझि-१. दे०
 'बूझ' । २. समझकर, जानकर, ३. समझ ले, ४. पूछ लें ।

उ० १. अपनी न बूझि न कहे को राह रोरे रे। (वि० ७१)
 २. पल पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके।
 (वि० १७१) ३. कहैं बेद बुध तू तौ बूझि मन माहिं रे।
 (वि० ७३) सु० बूझि परै-मालूम होता है, ज्ञात होता है। उ० बिरुभो रन मास्त को बिरुदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै। (क० ६।३६) बूझिअ-१. बूझना, समझना, हृदयगम करना, २. समझ पड़ती है। उ० १. अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही। (मा० १।६१२) २. सपनेहुँ बूझिअ विपति कि ताही। (मा० १।३२।१) बूझिए-१. समझ में आती, २. पूछिए, ३. समझ लीजिए, ४. चाहिए। उ० १. बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की। (क० ७।१७०) ३. भो कहैं नाथ बूझिए यह गति सुख-निधान निजपति बिसरायो। (वि० २४३) ४. ऐसी तोहि न बूझिए हनुमान हठीले। (वि० ३२) बूझिबो-१. समझ-बूझकर समझौता कर लेना, मेल कर लेना, २. ज्ञान मार्ग पर चलना। उ० १. जूझे ते भल बूझिबो। (दो० ४३१) २. कै बूझिबो कै बूझिबो, दान कि काच-कलेस। (दो० ४५१) बूझिय-दे० 'बूझिअ'। बूझिहैं-पूछेंगे। उ० बूझिहैं सो है कौन कहिबी नाम दसा जनाइ। (वि० ४१) बूझिहै-१. पूछेगा, २. मालूम होगा, जान पड़ेगा। उ० १. अजहुँ तौ भलो रघुनाथ मिले, फिरि बूझिहै को गज कौन गजारी? (क० ६।२) बूझी-१. पूछा, २. समझा। बूझे-पूछने पर। उ० तुलसिदास प्रभु के बूझे सुनि सुरसरि कथा सुनाई। (गी० १।२०) बूझेसि-बूझा, बूझ गया। २. पूछा, ३. बूझेहु-१. पूछा, २. समझा। बूझै-१. समझता, जानता है, २. समझने में। उ० १. तुलसिदास कह चिद विलास जग बूझत बूझत बूझै। (वि० १२४) २. दीनबंधु कीजै सोइ बनि परै जो बूझै। (वि० १२०) बूझौ-पूछो, दरियाप्रत करो। उ० आली! काहू तौ बूझौ न पथिक कहाँ धौं सिधैहैं। (गी० २।३७) बूझ्यो-पूछा, २. समझ गया। उ० १. हहरि हिय में सदय बूझ्यो जाइ साधु-समाज। (वि० २१६)
 बूट-(सं० विटप)-१. छोटा पेड़, झाड़, २. हरा पेड़, ३. बूटी, ४. चने का पेड़ या चना, रहिला। उ० २. सिद्ध साधु साधक सबै विवेक बूट सो। (क० ७।१४१) ३. करम न कूट की, कि जंत्र मंत्र बूट की। (ह० २६)
 बूड़-(?)-बूड़े, डूब गए। बूड़त-डूबता है बूड़ता है। उ० सुभग सेज सोवत सपने बारिधि बूड़त भय भलागै। (वि० १२१) बूड़हिं-डूबते हैं, गोता खाते हैं। उ० बूड़हिं आनहिं बोरहिं जेई। (मा० ३।४) बूड़ि-डूब, २. डूबकर। उ० १. लरिकार्ई को पौरिबो धोखेहु बूड़ि न जाय। (स० ११६) बूड़िबे-डूबना, डूबने। उ० गोपद बूड़िबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावों। (वि० २३२) बूड़ियौ-डूबी हुई भी। उ० बूड़ियौ तरति, बिगरीयौ सुधरति बात। (क० ७।७५) बूड़िहि-डूबेगा। बूड़े-डूबे, डूब गए। बूड़ो-डूबा, डूब गया। उ० बूड़ो सग बारि खायो बेंबरी को साँप रे। (वि० ७३)
 बूढ़-(सं० बूढ़)-बूढ़ा, बूढ़। उ० बूढ़ भये, बलि, मेरेहि बार, कि हारि परे बहुते नत पाले। (ह० १७)
 बूढ़ा-दे० 'बूढ़'। उ० जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। (मा० ६।२३।२)

बूता-(?)-पुरुषार्थ, बल, हौसला, ज़ोर। बूतै-बल, बल से। उ० किए जोहिं जुग निज बस निज बूतै। (मा० १।२३।१) बूंद-(सं० बूंद)-समूह, ढेर। उ० जरहिं पतंग मोहबस भार बहहिं खर बूंद। (मा० ६।२६) बूंदा-दे० 'बूंद'। उ० आवत देखि सुदित सुनि बूंदा। (मा० २।१३४।३)
 बूक-(सं० बूक)-भेड़िया।
 बूकासुर-(सं० बूकासुर)-एक राक्षस जिसे भस्मासुर भी कहा जाता है। इसे शंकर ने वरदान दिया कि जिस पर भी यह हाथ रख देगा वह जल जायगा। वरदान पाते ही इसने शंकर को जलाना चाहा पर विष्णु की चतुराई में वे बँच गए और इसने अपने ही सर पर हाथ रख दिया जिससे यह स्वयं जल गया। उ० बिनुऽपराध भृगुपति, नहुष, बेनु बूकासुर सारि। (दो० ४७२)
 बूकु-(सं० बूकु)-भेड़िया। उ० बूकु बिलोकि जिमि मेघ बरुया। (मा० ६।७०।१)
 बूचांत-(सं० बूचांत)-समाचार, हाल। उ० यह बूचांत दसानन सुनेऊ। (मा० ६।६२।३)
 बूथा-(सं० बूथा)-व्यर्थ।
 बूद्ध-(सं० बूद्ध)-बूढ़ा, बूढ़ा। उ० अबला बालक बूद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं। (मा० २।१२१)
 बूद्धि-(सं० बूद्धि)-बढ़ती, अधिकता। उ० तृत्ना उदर बूद्धि अति भारी। (मा० ७।१२१।१८)
 बूष-(सं० बूष)-बैल, साँड़। उ० देखि महिप बूष साडु सराहा। (मा० २।२३।६२)
 बूषभ-(सं० बूषभ)-बैल, साँड़। उ० बूषभ कंध केहरि ठवनि, बलनिधि बाहु बिसाल। (मा० १।२४३)
 बूष्टि-(सं० बूष्टि)-वर्षा, पानी। उ० महाबूष्टि चलि फूटि किआरी। (मा० ४।१५।४)
 बेंचिए-(सं० विक्रय)-बेच डालिए। उ० बेंचिए बिबुध धेनु रासभी बेसाहिए। (क० ७।७६) बेंचि-(सं० विक्रय)-बेचकर, विक्रय करके। उ० सुनु मैया! तेरी सौं करौं याकी देव लरन की, सकुच बेंचिसी खाई। (क० ८) बेंचे-१. बेचने से, २. बेचा, विक्रय किया। उ० १. बेंचे खोदो दाम न मिलै, न राखे काम रे। (वि० ७१) बेंच्यो-बेच रक्खा है। उ० उदर भरौं किंकर कहाइ, बेंच्यो विषयनि हाथ हियो है। (वि० १७१)
 बेंत-(सं० वेत)-१. एक प्रसिद्ध लता, वेत, २. वेत की छड़ी। उ० १. लिए छरी बेंत सोधैं विभाग। (गी० ७।२२)
 बेकामहिं-(क्रा० बे + सं० कर्म)-व्यर्थ ही, बिना काम के। उ० ठाली ग्वालि ओरहने के मिस आइ बकहि बेकामहिं। (क० ५)
 बेख-(सं० वेष)-वेप, वेश।
 बेखा-दे० 'बेख'।
 बेग-(सं० वेग)-१. जल्दी, शीघ्र, २. ज़ोर से, ३. उतावली। उ० १. पाइ रजायसु नाइ सिरु-रथु अति वेग बनाइ। (मा० २।८२)
 बेगारि-(क्रा० बेगारी)-बिना लाभ के पराई इच्छा से कोई काम करना। उ० नाहिं तो भव बेगारि महँ परिहौ कूटत अति कठिनाई रे। (वि० १८६)

बेगि-(सं० बेग)-१. जल्दी से, शीघ्रतापूर्वक, चटपट, २. शीघ्र, जल्दी। उ० १. बेगि बोलि बलि बरजिए करवति कठोरे। (वि० ८) बेगिहिं-जल्दी ही। उ० ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई। (मा० २।४६।२)
 बेगिअ-जल्दी करनी चाहिए। उ० बेगिअ नाथ न लाइअ बारा। (मा० २।५।४)
 बेगी-शीघ्र, तुरत। उ० पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी। (मा० ६।१०८।१)
 बेचक-बेचनेवाला। उ० द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। (मा० ७।१८।१)
 बेचहिं-(सं० विक्रय)-बेचते हैं। उ० बेचहिं बेहु धरसु दुहि लेहीं। (मा० २।१६८।१)
 बेचारा-(फ्रा०)-वीन, असहाय, गरीब, श्रेयश।
 बेटकी-(सं० बट्ट)-बेटी, पुत्री। उ० पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी। (क० ७।१६)
 बेटा-(सं० बट्ट-लड़का, पुत्र। उ० पुर पैठत रावन कर बेटा। (मा० ६।१८।२)
 बेठन-(सं० वेठन)-खोल, आच्छादन, वह कपड़ा जिममें कोई चीज़ बाँधी जाय।
 बेड़ा-(सं० वेष्ट)-१. घरनई, चौबड़ा, २. नाव या जहाज़ों का समूह।
 बेण-दे० 'बेणु'।
 बेणु-दे० 'बेणु (१)' तथा 'बेणु (२)'
 बेत-(सं० वेत्र)-बेत। उ० फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद। (मा० ६।१६।६)
 बेतस-बेत। उ० बिलसत बेतस बनज बिकासे। (मा० २।३२५।२)
 बेताल (१)-(सं० वैतालिक)-भाट, वंदीजन।
 बेताल (२)-(सं० वेताल)-एक प्रकार के भूत। उ० वेताल भूत पिसाच। (मा० ६।१०।१।१)
 बेताला-दे० 'बेताल (२)'
 बेताल (२)। उ० मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। (मा० ६।८।१।१)
 बेद-दे० 'बेद'। उ० बेद विदूपक बिस्व बिरोधी। (मा० २।१६।१) बेदन्ह-बेदों ने। उ० सबके देखत बेदन्ह विनती कीन्हि उदार। (मा० ७।१३।६) बेदहिं-बेद को। उ० नहिं मान पुरान न बेदहिं जो। (मा० ७।१०।१।४) बेदहुं-बेद में। उ० ते लोकहुं बेदहुं बड़ भागी। (मा० २।२५।३)
 बेदशिरा-(सं० वेदशिरा)-एक ऋषि का नाम। उ० बेदशिरा मुनि आइ तब सबहिं कहा समुझाइ। (मा० १।१७।३)
 बेदा-दे० 'बेद'। उ० कहि नित नेति निरूपहिं बेदा। (मा० २।१३।४)
 बेदिका-(सं० वेदिका)-कर्मकांड करने की बेदी। उ० विमल बेदिका रुचिर सँवारी। (मा० १।२२।४।१)
 बेद-दे० 'बेदी'-धार्मिक कार्यों के लिए बनाई गई ऊँची भूमि, वेदिका। उ० बेदी बेद विधान सँवारी। (मा० १।१०।१।१)
 बेदु-दे० 'बेद'। उ० लोकु बेदु बुध संमत दोऊ। (मा० २।२०।१।१)
 बेध-(सं० वेध)-१. छेद, २. किसी नोकरीली चीज़ से छेदने

की क्रिया, बेधना, ३. ग्रहों का एक विशेष योग। उ० २. करनबेध उपबीत बिआहा। (मा० १।१०।३)
 बेधत-(सं० वेधन)-छेदता है, धँसता है, लुभता है, बेधता है। वेधि-छेदकर, फोड़कर। उ० जुगुति बेधि पुनि पोहि-अहिं रामचरित बर ताग। (मा० १।१।१) बोधय-छेदो। बेधे-छेद डाला, बेधा। उ० संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले। (मा० ६।१३।४।१) बेध्यो-छेदा, बेधा।
 बेन-दे० 'बेणु (२)'
 बेन-दे० 'बेणु (२)'
 बेन-दे० 'बेणु (२)'
 बेनी-(१)-(सं० वेणी)-१. चोटी, बाल की लट, २. किवाड़ में लगाने की लकड़ी, ३. बेणीमाधव। उ० १. कूल तनु सीस जटा एक बेनी। (मा० १।८।४)
 बेनी (२)-(सं० त्रिवेणी)-त्रिवेणी, गंगा, जमुना तथा सरस्वती नदियों का संगम। उ० एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। (मा० २।१०।६।३)
 बेणु (१)-(सं० वेणु)-१. वंशी, मुरली, बाँसुरी, २. बाँस। उ० १. घंटा घंटी पखाउज आउज भौंरु बेणु डफ तार। (गी० १।२) २. बेणु हरित मनिमय सब कीन्ह। (मा० १।२८।१।१)
 बेणु (२)-(सं० वेण)-एक प्रसिद्ध राजा जो धर्म-विमुख थे।
 बेर (१)-(सं० बदरी)-एक कटिदार वृक्ष या उसका फल।
 बेर (२)-(सं० वार)-१. वार, दफ़ा, २. देर, बिलंब, ३. समय। उ० १. हमरि बेर कस भयो कृपिनतर। (वि० ७)
 बेर (३)-(१)-शरीर। उ० कुसल गो कीस बर बेर जाको। (क० ६।२।१)
 बेरा (१)-(सं० बेला)-१. समय, वक्त, २. तड़का, प्रातः काल। उ० १. गिरिवर पठ्यु बोलि लगन बेरा भई। (मा० १।२८)
 बेरा (२)-(सं० वेष्ट)-बाँस या तख्ते या नावों आदि को जोड़कर बनाया गया ढाँचा जो पानी पर तैरता है। बेड़ा।
 बेरे-दे० 'बेरा (२)'
 बेरे-दे० 'बेरे'। उ० बहुत पतित भवनिधि तरे विनु तरि विनु बेरे। (वि० २।७।३) बेरे-बेड़े को। दे० 'बेरा (२)'
 बेरे-दे० 'बेरे'। उ० मेरे कह्यो मानि, तात ! बाँधे जिनि बेरे। (गी० १।२।७)
 बेरिअँ-दे० 'बिरिया'। उ० पुनि आउव एहि बेरिअँ काली। (मा० १।२३।३।३)
 बेरो-दे० 'बेरा (२)'
 बेरो-दे० 'बेरा (२)'
 बेरो-दे० 'बेरा (२)'
 बेला-(सं० बिल्व)-एक विशेष पेड़ या उसका फल, श्रीफल। इसका फल अमरुद से बड़ा और गोला होता है। बेल की पत्तियाँ महादेव की पूजा में चढ़ाई जाती हैं। उ० सिवहि चढाये हैं बेल के पतौवा द्वै। (क० ७।१६।३) बेलपाती-(सं० बिल्वपत्र)-श्रीफल की पत्ती। उ० बेलपाती महि परइ सुखाई। (मा० १।७।३।३)
 बेला (१)-(सं० मल्लिका)-एक पुष्प-विशेष, बेहल।
 बेला (२)-(सं० बेला)-१. समय, २. कठोरा। उ० १. धेनु धुरि बेला विमल सकल सुमंगल मूल। (मा० १।३।२)

बेलि (१)-(सं० बल्ली)-लता, लतर । उ० सुखमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फली । (पा० १३६)
 बेलि (२)-(सं० मखिका)-बेला का फूल । उ० हार बेलि पहिरावौ चंपक होत । (ब० ६)
 बेलिन-(सं० बलन)-ऊपर का वह बेलन जिसके आधार पर झूला रहता है । उ० पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा बलित बेलिन लाल । (गी० ७।१८)
 बेवहरिया-(सं० व्यवहार)-१. महाजन, कर्ज देनेवाला, २. हिसाब-किताब ठीक से करनेवाला ।
 बेष-(सं० वेष)-वेश । उ० जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष । (मा० १।६७)
 बेषा-दे० 'बेष' । उ० पूजहि प्रभुहि देव बहु बेषा । (मा० १।५१२)
 बेषु-दे० 'बेष' ।
 बेसरि-(?)-खरकर । उ० बेसर ऊँट वृषभ बहु जाती । (मा० १।३००।३)
 बेसा-(?)-नाक का एक गहना, बुलाक । उ० कनि कनक तरीचन, बेसरि सोहह हो । (रा० ११)
 बेसा-(सं० वेष)-वेष, भेष, रूप ।
 बेसाह-(सं० व्यवसाय)-खरीदकर, दाम देकर । उ० आनेहु मोल बेसाहि कि मोही । (मा० २।३०।१) बेसाहत-खरीदते हैं । उ० तेरे बेसाहे बेसाहत औरनि, और बेसाहि कै बेचनहारे । (क० ७।१२) बेसाहि-(सं० व्यवसाय)-खरीदकर । उ० आनेहु मोल बेसाहि कि मोही । (मा० २।३०।१) बेसाहिए-खरीद लीजिए । उ० बँचिये बिबुध धेनु रासभी बेसाहिए । (क० ७।७६) बेसाहे-खरीदे हुए, दास, क्रीत दास । उ० दे० 'बेसाहत' । बेसाहै-खरीदे । उ० दिन प्रति भाजन कौन बेसाहै ? घर निधि काहू करे । (क० ३) बेसाहो-१. खरीदा, २. खरीदा हुआ, मोल लिया हुआ । उ० १. तब तँ बेसाहो दाम लोह कोह काम को । (क० ७।७०)
 बेह-(सं० वेध)-भेद, सूराल ।
 बेहड़-(सं० विकट)-बीहड़, भयंकर, कठिन । उ० बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा । (मा० २।१३६।३)
 बेहाल-(फा० बे + अर० हाल)-व्याकुल, बेचैन, विकल ।
 बेहालू-दे० 'बेहाल' । उ० जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू । (मा० २।३७।१)
 बेहू-दे० 'बेह' । उ० कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू । (मा० २।२६२।३)
 बैकुंठ-(सं० वैकुंठ)-विष्णु का धाम, स्वर्ग । उ० पुर बैकुंठ जान कह कोह । (मा० १।१८५।१)
 बैकुंठा-दे० 'बैकुंठ' । उ० सुनु मतिमद लोक बैकुंठा । (मा० ६।२६।४)
 बैखानस-(सं० बैखानस)-वह जो दानप्रस्थ आश्रम में हो । उ० बैखानस सोह सोचै जोगू । (मा० २।१७३।१)
 बैजंतीमाला-भगवान् की माला जिसमें नीलम, मोती, मणिक, पुखराज और हीरा ये राँच रत्न होते हैं ।
 बैठ-(सं० वेशन)-बैठे । उ० कहि जयजीव बैठ सिरु नाई । (मा० २।३८।३) बैठत-१. बैठता है, २. बैठते हुए, ३. बैठते ही । उ० ३. बैठत पठए रिषर्थ बोलाई । (मा०

२।२५३।४) बैठन-बैठने के लिए । उ० काहूँ बैठन कहा न ओही । (मा० ३।२।३) बैठहिं-१. बैठते हैं, २. बैठेंगे । उ० बैठहिं रासु होइ चित चेता । (मा० २।११।३) बैठहिं-१. बैठ, बैठो, २. बैठते हैं । उ० १. आँखि ओट उठि बैठहि जाई । (मा० २।१६२।४) बैठि-बैठकर । उ० बैठि इनकी पाँति अब सुख चहत मन मतिहीन । (क० ५५) बैठिअ-बैठ जाइए । उ० बैठिअ होइहि पाय पिराने । (मा० १।२७८।१) बैठिय-दे० 'बैठिअ' । बैठीं-बैठ गईं, बिराजमान हुईं । उ० बैठीं सिव समीप हरषाई । (मा० १।१०७।२) बैठीं-बैठ गईं । बैठु-बैठो । बैठे-बैठ गए । बैठेउ-बैठे । उ० आपु लखन पहिं बैठेउ जाई । (मा० २।६०।२) बैठेहिं-बैठे ही । उ० बैठेहिं बीति गई सब राती । (मा० २।१६६।३) बैठो-बैठकर, २. बैठ ३. बैठ जाओ । उ० १. तासों क्योहू छुरी, सो अभागो बैठो तोरिहौं । (वि० २५८) बैठ्यो-बैठा, बैठा है । उ० चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानों । (क० ७।१४२)
 बैठारो-(सं० वेशन) बिठलाया । बैठारि-बैठाकर । बैठारी-१. बिठलाया २. बिठलाकर । उ० १. गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी । (मा० २।३४।३) बैठारे-बिठलाए । उ० सचिव सँभारि राउ बैठारे । (मा० २।४४।१) बैठारेन्हि-बैठाया, बिठलाया । उ० निज आसन बैठारेन्हि आनी । (मा० १।२०७।१) बैठारो-बैठाया, बैठा लिया । उ० खग-गनिका-गज-व्याध-पाँति जहँ तहँ हौँ बैठारो । (वि० ६४)
 बैठाइ-(सं० वेशन) बैठा, बैठाकर । उ० क्रोधवत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ । (मा० ३।२८) बैठाई-बैठाया, बिठलाया । बैठाए-बैठा लिए । बैठायउ-बैठाया । उ० अरघ देइ मनि आसन बर बैठायउ । (पा० १३५)
 बैतरनी-सं० वैतरणी)-एक पौराणिक नदी जो यम के द्वार पर है । उ० ताकहँ बिबुध नदी बैतरनी । (मा० ३।२।४)
 बैद-(सं० वैद्य)-चिकित्सक, वैद्य । उ० सचित बैद गुर तीनि जौ प्रिय बोलाहि भय आस । (मा० १।३७)
 बैदिक-(सं० वैदिक) १. वेद का, २. वेद के अनुसार । उ० २. विप्र एक बैदिक सिव पूजा । (मा० ७।१०५।२)
 बैदेहि-दे० 'बैदेही' । उ० बैदेहि अनुज समेत । (मा० ६।११३।४) न)
 बैदेही-(सं० वैदेही)-जानकी, सीता । उ० ता पर हरषि चढ़ी बैदेही । (मा० ६।१०८।४)
 बैन-(सं० वचन)-वाणी, बोल, वचन । उ० सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे । (मा० २।१००)
 बैनतेय-(सं० वैनतेय)-विनता के पुत्र गरुड़ । उ० बैनतेय खग अहि सहसानन । (मा० ६।२६।४)
 बैना (१)-दे० 'बैन' । उ० नाथ न मैं समुझे मुनि बैना । (मा० १।७१।१)
 बैना (२)-(सं० वायन)-उपहार स्वरूप दी जानेवाली मिठाई या कोई और भेंट ।
 बैनी-बोलनेवाली । दे० 'पिकबैनी' ।
 बैभव-(सं० वैभव)-ऐश्वर्य । उ० पितु बैभव बिलास मैं डीठा । (मा० २।६८।१)
 बैमात्र-(सं० वैमात्र)-सौतेला, सौतेला भाई ।
 बैयर-दे० 'बैर' ।

बैर-(सं० बैर)-शत्रुता, विरोध, अदावत, द्वेष । उ० तौ सुरपति कुहराज बालि सों कत हवि बैर बिसहते ? (वि० ६७)

बैरक-(तुर० बैरक)-पताका, झंडा । उ० दीजै भगति बाँह बैरक ज्यों सुबस बसै अब खेरो । (वि० १४१)

बैरख-दे० 'बैरक' । उ० घन-धावन बगर्पाति पयोसिर बैरख-तड़ित सोहाई । (क० ३२)

बैरागी-जिसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया हो ।

बैराग्य-(सं० वैराग्य)-विराग, विरक्ति की भावना । उ० भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरे सरीर । (मा० २। ३२१)

बैरिउ-बैरी भी । उ० बैरिउ राम बड़ाई करहीं । (मा० २। २००४)

बैरिनिहि-बैरिन को । उ० सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि । (मा० २। १६)

बैरी-(सं० बैरी)-शत्रु, दुश्मन । उ० सो छौंड़िप कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही । (वि० १७४)

बैर-दे० 'बैर' । उ० बैर अंध प्रेमहि न प्रबोधू । (मा० २। २६३४)

बैर-दे० 'बैर' ।

बैल-(सं० बलद)-१. बरद, वृषभ, २. मूर्ख, अनाड़ी ।

बैषानस-दे० 'बैखानस' ।

बैस (१)-(सं० वयस)-१. अवस्था, उमर, २. जवानी, युवावस्था ।

बैस (२)-(सं० वैश्य)-बनिया, वैश्य ।

बैसा-(सं०वेशन)-१. बैठा, २. बैठा हुआ । बैसै-बैठे हुए । उ० अंगद दीख दसानन बैसै । (मा० ६। १६२)

बैसे-बैठे । उ० मेरु के शृंगनि जनु घन बैसे । (मा० ६। ४११)

बोअनहार-(सं० वपन)-बोनेवाला । उ० बोअनहार लुनिहै सोई देनी लहइ निदान । (स० २००)

बोफा-(सं० वहन)-भार, वजन ।

बोड़ी-(?)-कौड़ी, दमड़ी ।

बोध-(सं०)-१. ज्ञान, समझ, जानकारी, २. तसल्ली, धीरज, संतोष । उ० १. दुष्ट-दनुजेस निर्बस कृत दासहित विश्व दुख-हरन बोधैकरासी । (वि० ५८) २. तदपि मलिन मन बोधु न आवा । (मा० १। १०६२)

बोध-दे० 'बोध' । उ० मायाबस न रहा मन बोधा । (मा० १। १३६३)

बोधित-बोध कराया हुआ, ज्ञान कराया हुआ । उ० बेद बोधित करम-धरम बिनु, अगम अति । (वि० २०६)

बोरउं-सं० बुड)-बोरूँ, डुबाऊँ । बोरत-१. डुबाता है, बोरता है, २. खोता है, गँवाता है । उ० १. बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो । (वि० ७२) बोरति-डुबाती है । उ० बोरति ग्यान विराग करारे । (मा० २। २७६१)

बोरहि-डुबा देते हैं । उ० बूड़हि आनहि बोरहि जेई । (मा० ६। ३४)

बोरा-डुबोया । उ० तासु दूत होइ हम कुल बोरा । (मा० ६। २११)

बोरि-डुबाकर । उ० कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत । (मा० १। १६०)

बोरिहौ-डुबा हूँगा । उ० हील किए नाम-महिमा की नाच बोरिहौ । (वि० २५८)

बोरी-डुबाई, डुबाया । बोरे-१.

डुबोए हुए, २. डुबाया, डुबा दिया । उ० १. आपु कंज मकरंद सुधाहृद हृदय रहत नित बोरे । (क० ४४) २. शंभ निःशुंभ कुंभीश रण केशरिणि क्रोध बारिधि बैरिवृंद बोरे । (वि० १५)

बोरौं-डुबाऊँ, डुबाऊँ । उ० कोसलराज के काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं । (क० ६। १४)

बोरयो-डुबोया, बोरा । उ० महामोह-मुग्जल-सरिता महे बोरयो हौं बारहि बार । (वि० १८८)

बोल-(सं० ब्र)-१. शब्द, आवाज़, २. बचन, बात, प्रतिज्ञा, ३. बुलाया, बोला, ४. बुलाते हैं । उ० २. बोल को अचल, नत करत निहाल को ? (वि० १८०) ४. भोजन करत बोल जब राजा । (मा० १। २०३३)

बोलत-१. बोलते हुए, २. बोलते हैं, ३. बुलाते, ४. बोलने में । उ० १. बोलत लखनहि जनक डेराहीं । (मा० १। २७८२)

४. रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न सँभार । (मा० १। २७१)

बोलन-बोलना, बोली । बोलनि-आवाज़, शब्द, बोली । उ० धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये तैं । (क० ७। १२६)

बोलब-बोलना । उ० मौन मलिन में बोलब बाउर । (मा० २। २६३३)

बोलसि-बोल रहा है । उ० बोलसि निदरि विप्र के भोरें । (मा० १। २८३)

३। बोलहिं-बोलते हैं । उ० भाँति भाँति बोलहिं बिहग अवन सुखद चित चोर । (मा० २। १३७)

बोलहु-बोलो । उ० काहे न बोलहु बचन सँभारे । (मा० २। ३०२)

बोला-कहा, उच्चरित किया । उ० अस मन गुनइ राउ नहि बोला । (मा० २। ४६२)

बोली-१. बुलाकर, बुला, २. बुलाना, ३. बुलाया, ४. बोली । उ० १. बिष्णु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज । (मा० १। ६२)

४. नृप लखि कुँवरि सथानि बोलि गुरु परिजन । (जा० ८)

बोलिबे-बुलाने । उ० मेरे जान इन्हैं बोलिबे कारन चतुर जनक उयो ठाट इतौ री । (गी० १। ७५)

बोलिहैं-बोलेंगे । उ० अब तौ दादुर बोलिहैं हमै पूछिहैं कौन ? (दो० ५६४)

बोलिहौं-१. बुलाऊँगी, २. बोलींगी । उ० १. गाइ-गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई । (गी० १। १६)

बोलीं-कहीं, उच्चरित किया । उ० बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी । (मा० १। १०७३)

बोली-कहा, कही । उ० बोली सती मनोहर बानी । (मा० १। ६१४)

बोलु-बोलो, कही । उ० बोलु सँभारि अधम अभिमानी । (मा० ६। २६१)

बोले-१. कहने लगे, कहा, २. बुलाया । उ० १. बोले चितइ परसु की ओरा । (मा० १। २७२१)

२. जामवंत बोले दौड भाई । (मा० ६। १३)

बोलेउं-१. बोले, २. बोला । बोलेउ-बोले । उ० पुनि सप्रेम बोलेउ खगराज । (मा० ७। १२११)

बोलेसि-कहा, बखान किया, वर्णन किया । उ० सूपनखहि ससुभाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति । (मा० ३। २२)

बोलेहुं-१. बोले, २. बुलाए । उ० २. जाइअ बिनु बोलेहुं न सँदेहा । (मा० १। ६२३)

बोलेयो-१. बुलाया, २. बोला, कहा । उ० १. तिलक को बोलेयो, दियो बन चौगुनो चित घाउ । (गी० २। ५७)

बोलाइ-(सं० बू)-बुलाकर, बुला । उ० गुर बोलाइ पठयउ दौड भाई । (मा० २। १५७२)

बोलाउब-बुलावेंगे । उ० बारहि बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय । (मा० १।

३१०) बोलावन-बुलाने । उ० आवै पिता बोलावन जबहीं । (मा० १।७५।२)
 बोल्लहि-(सं० ब्रू) बोल रहे हैं । उ० सीस परे महि जय जय बोल्लहि । (मा० ६।८।५)
 बोह-(!)-डुबकी, शोता । बोहें-डुबकियाँ । दे० 'बोह' । उ० रूप-जलधि-वपुष लेत मन-गथं द बोहें । (गी० ७।४)
 बोहितु-(सं० बोहित्य)-नाव, जहाज़ । उ० संसु चाप बंड बोहितु पाई । (मा० १।२६०।४)
 बौड़-(सं० बोट)-१. बेल, लता, बैवर, २. मंजरी, बाल । उ० १. बढत बौड़जनु लही सुसाखा । (मा० २।१५।४) बौड़ी-१. लता, २. फली, झीमी, ३. बौर, ४. दमबी, छदाम । उ० २. राम कामतरु पाइ बोलि ज्यों बौड़ी बनाइ । (गी० १।७०)
 बौड़ि-(सं० बोट) लता । उ० नखत-सुमन, नभ-बिटप बौड़ि मानो छपा छिटकि छबि छाई । (गी० १।१६)
 बौड़िये-(?)-कौडी ही, दमबी ही, छदाम ही । उ० देहै तौ प्रसन्न हैं बड़ी बड़ाई बौड़िप । (क० ७।२५)
 बौर(१)-(सं० मुकुल)-बउर, मंजरी । उ० हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमथ डोरि । (मा० १।२८८)
 बौर(२)-(सं० बातुल)-भोजा, बावला ।
 बौरहा-दे० 'बौराहा' ।
 बौरा-दे० 'बौराहा' । उ० मे सब लोक सोक बस बौरा । (मा० २।२७।११)
 बौराइ-(सं० बातुल) १. पागल हो जाता है, मतवाला हो जाता है, २. पागल होकर । उ० १. जग बौराइ राजपहु पाई । (मा० २।२८८।४) बौराई-१. पागलपन, २. पागल हो जाता है, बौरा जाता है । उ० १. सुनहु नाथ ! मन जरत, त्रिविध ज्वर करत फिरत बौराई । (वि० ८१) बौराएँ-बहकाने में, बहकाने पर । उ० भल भूलिहु ठग के बौराएँ । (मा० १।७६।४) बौरात-बौरा जाता है, पागल हो जाता है । बौराना-बौराया, पागल हुआ । बौरानी-१. पागल, बौराई हुई २. पागल हुई । उ० १. सती सरीर रहिहु बौरानी । (मा० १।१४।२) बौरायहु-पागल बना दिया । उ० मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु । (मा० १।१३।४) बौराइ-दे० 'बौराहा' । उ० बर बौराइ बसहँ असचारा । (मा० १।१३।४)
 बौराहा-(सं० बातुल)-पागल, सिद्धी । उ० नृसना केहि न कीन्ह बौराहा । (मा० ७।७०।४)
 बौरै-उन्मत्त, पागल । उ० रघुनाथ-बिरोध न कीजिय बौरै । (क० ६।१२) बौरैहि-बावले को, पागल को । उ० कहा मोर मन धरि न बरिय बर बौरैहि । (पा० ६१)
 ब्यंग-दे० 'बिन्ध्य' ।
 ब्यंजन-(सं० व्यंजन)-१. भोजन, अच्छे पकवान, २. स्वर के अतिरिक्त वर्ण जो बिना स्वर की सहायता के नहीं बोले जा सकते ।
 ब्यंग-(सं० व्यंग)-आतुर, व्याकुल । उ० कवन हेतु मन व्यंग अति अकसर आयहु तात । (मा० ३।२४)
 ब्यंजन-(सं० व्यंजन)-पंखा । उ० गहँ छुन्न चामर ब्यंजन धनु असि चर्म सकि बिराजते । (मा० ७।१२।४० १)

व्यथा-(सं० व्यथा)-दुःख, कष्ट । उ० एहि तें कवन व्यथा बलवाना । (मा० २।८।१४)
 व्यरथ-दे 'व्यर्थ' । उ० व्यरथ काहि पर कीजिय रोसु । (मा० २।१७।१)
 व्यर्थ-(सं० व्यर्थ)-बेकार, बेमतलब । उ० व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा । (मा० १।२७।३।४)
 व्यलीक-(सं० व्यलीक) झूठा । उ० कारुनीक व्यलीक मद् खंडन । (मा० ७।५।१४)
 व्यवहरिआ-(सं० व्यवहार)-१. हिसाब करनेवाले, २. व्यापारी । उ० १. अब आनिअ व्यवहरिआ बोली । (मा० १।२७।६।२)
 व्यवहार-(सं० व्यवहार)-व्यवहार, आचार, सलूक । उ० तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस व्यवहार । (मा० १।२८६)
 व्यवहारु-दे० 'व्यवहार' । उ० सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारु । (मा० २।६।२।४)
 व्याकुल-(सं० व्याकुल)-घबराया, आतुर । उ० चखे लोग सब व्याकुल भागी । (मा० २।८।३।२)
 व्याकुलता-(सं० व्याकुलता)-घबराहट । उ० सकुची व्याकुलता बड़ि जानी । (मा० १।२५।६।२)
 व्याज-(सं० व्याज)-१. बहाना, २. सूद, ३. लफ्य, निशाना । उ० १. ईस-बामता बिलोऊ, बानर को व्याज है । (क० ५।२२)
 व्याध-(सं० व्याध)-बहेलिया, चिड़ीमार । उ० बधेहु व्याध इव बालि बिचारा । (मा० ६।६।०।३)
 व्याधि-(सं० व्याधि)-रोग । उ० देखी व्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ । (मा० २।३।४) व्याधिन-रोगों । व्याधिन्ह-रोगों । उ० मोह सकल व्याधिन्ह कर भूला । (मा० ७।१२।१।१५)
 व्याप-(सं० व्यापन)-व्यापते, व्याप्त होते । उ० ताहि न व्याप त्रिविध भवसूला । (मा० ५।४।७।३) व्यापह-व्यापती है, ढक लेती है । उ० प्रभु प्रेरित व्यापह तेहि बिद्या । (मा० ७।७।६।१) व्यापह-व्यापता है, व्याप्त होता है । व्यापत-१. फैलता है, पसरता है, २. व्यापता, छँकता, असता । उ० २. तुम्हहि न व्यापत काल अति कराल कारन कवन ? (मा० ७।६।४क) व्यापहि-१. व्यापते हैं, असते हैं, ढक लेते हैं, २. फैलते हैं । व्यापहि-व्यापेगा, असेगा । उ० कबहँ काल न व्यापहि तोही । (मा० ७।८।८।१) व्यापा-१. छा गया, पसर गया, २. अस लिया । उ० १. दारुन दुसह दाहु उर व्यापा । (मा० २।५।७।४) व्यापि-(सं० व्यापन)-फैल, पसर । उ० नगर व्यापि गइ बात सुतीछी । (मा० २।४।६।३) व्यापिहहि-१. फैलेंगी, फसरेंगी, २. असेंगी, ढक लेंगी । व्यापिह-दे० 'व्यापहि' । व्यापी-व्याप गई, छा गई । उ० रघुपति प्रेरित व्यापी माया । (मा० ७।७।८।१) व्यापै-१. फैले, पसरे, २. लगे, बाँधे । उ० २. अब जनि कबहँ व्यापै प्रभु मोहि माया तोरि । (मा० १।२०।२)
 व्यापक-(सं० व्यापक) व्यापनेवाला, सर्वव्याप्य । उ० व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता । (मा० ७।७।२।२)

व्यापित-व्याप्त, लीन । उ० मोह कलिल व्यापित मति मोरी ।
 (मा० ७।२।४)
 व्याप्य-व्याप्त होने योग्य । उ० दे० 'व्यापक' ।
 व्याल-(सं० व्याल)-सर्प । उ० मंत्र महामनि विषय व्याल
 के । (मा० १।३२।५) व्यालहि-सर्प को । उ० चितव
 गरुड लघु व्यालहि जैसे । (मा० १।२५।४)
 व्याला-दे० 'व्याल' । उ० किंनर निसिचर पसु खग व्याला ।
 (मा० ७।२।११)
 व्यालू-दे० 'व्याल' । उ० मनि बिहीन जनु व्याकुल व्यालू ।
 (मा० २।१५।१)
 व्यास-(सं० व्यास)-महाभारत के तथाकथित रचयिता
 ऋषि । उ० व्यास आदि कवि पुंगव नाना । (मा०
 १।१४।१)
 व्याह-(सं० विवाह)-शादी, विवाह ।
 व्याहब-(सं० विवाह)-व्याह दूंगा । उ० काहू की बेटी सों
 बेटा न व्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ । (क०
 ७।१०६) व्याहि-विवाह करके । उ० एहि विधि व्याहि
 सकल सुत जग जस छायाउ । (जा० २०२)
 व्याहु-दे० 'व्याह' । उ० राम रूपु भूपति भगति व्याहु
 उछाहु अनंदुः । (मा० १।३६०)
 व्याहू-दे० 'व्याह' । उ० हिम हिमसैलसुता सिव व्याहू ।
 (मा० १।४२।१)
 व्योत-(सं० व्यवस्था)-काट-छाँट । उ० अब देह भई
 पट नेह के घाबे सों, व्योत करै विरहा दरजी । (क० ७।
 १३३)
 व्योम-(सं० व्योम)-आकाश । उ० पुर अरु व्योम बाजने
 बाजे । (मा० १।२६५।१)
 ब्रज-(सं०)-मथुरा-गोकुल के आस पास की भूमि ।
 यह कृष्ण की लीला-भूमि है । उ० नयननि को फल
 खेत निरखि खगमृग सुरभी ब्रज बधू अहीर । (गी० १।
 ५२)
 ब्रजनाथ-(सं०)-कृष्ण । उ० जीवन कठिन, मरन की यह
 गति दुसह बिपति ब्रजनाथ निवारै । (कृ० ५६)
 ब्रत-(सं० ब्रत)-१. उपवास, २. नियम । उ० २. सत्य संघ
 द्दब्रत रघुराई । (मा० २।२२।१)
 ब्रता-ब्रत धारण करनेवाली । दे० 'पतिब्रता' ।
 ब्रत-दे० 'ब्रत' ।
 ब्रन-(सं० ब्रण)-घाव । उ० तन बहु ब्रन चिंता जर छाती ।
 (मा० ४।१२।२)
 ब्रह्मंड-दे० 'ब्रह्मांड' । उ० श्री प्रभु के संग सो बड़ो, गयो
 अखिल ब्रह्मांड । (दो० ५३२)
 ब्रह्मंडा-दे० 'ब्रह्मांड' । उ० जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा ।
 (मा० ६।१०३।५)
 ब्रह्म-(सं० ब्रह्मन्)-परब्रह्म, परमात्मा । उ० सोहू अबिच्छिन्न
 ब्रह्म जसुमति बाँधो हठि सकत न छोरी । (चि० ६८)

ब्रह्मचरज-दे० 'ब्रह्मचर्य' । उ० १. ब्रह्मचरज ब्रत रत मति
 धीरा । (मा० १।१२६।१)
 ब्रह्मचर्ज-दे० 'ब्रह्मचर्य' । उ० १. ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना ।
 (मा० १।२४।४)
 ब्रह्मचर्य-(सं०)-१. वीर्य को रक्षित रखने का प्रतिबंध, २.
 पहला आश्रम जिसमें वेदाध्ययन किया जाता है ।
 ब्रह्मचारी-(सं० ब्रह्मचारिन्)-ब्रह्मचर्य का ब्रत धारण करने-
 वाला । पहले आश्रम में रहकर वेदाध्ययन करनेवाला ।
 उ० शक्र-प्रेरित-बोर-मारमद-भंगकृत, क्रोधगत बोधरत,
 ब्रह्मचारी । (बि० ६०)
 ब्रह्मज्ञान-(सं०)-ब्रह्म विषयक ज्ञान, तत्त्व ज्ञान । उ०
 ब्रह्म-ज्ञान बिनु नारि-नर कहहि न दूसरि बात । (दो०
 ५५२)
 ब्रह्मज्ञानी-(सं० ब्रह्मज्ञानिन्)-ब्रह्म को जाननेवाला, तत्त्व-
 वेत्ता । उ० शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुन शब्द-
 ब्रह्मैक पर-ब्रह्म-ज्ञानी । (वि० ५७)
 ब्रह्मन्य-(सं० ब्रह्मन्य)-१. ब्राह्मणों का, २. ब्राह्मणों पर
 श्रद्धा रखनेवाला । उ० १. प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना ।
 (मा० १।२०६।२) ब्रह्मन्यदेव-ब्राह्मणों के भक्त । उ० दे०
 'ब्रह्मन्य' ।
 ब्रह्मर्षि-(सं०)-ऐसा ऋषि जो ब्राह्मण हो ।
 ब्रह्मविद्-(सं०)-ब्रह्म या परमात्मा को जाननेवाला । उ०
 व्यापक ज्योम बंधाँधि बामन बिभो ब्रह्मविद्-ब्रह्मचिंता-
 पहारी । (वि० ५६)
 ब्रह्माँ-ब्रह्मा से । दे० 'ब्रह्मा' । उ० मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर
 दीन्हा । (मा० १।१७७।३) ब्रह्मा-(सं० ब्रह्म)-भगवान
 का एक रूप जो जगत की सृष्टि करता है । उ० ब्रह्मादिके
 गावहिं जसु जोसू । (मा० १।६६।२)
 ब्रह्मांड-(सं०)-चौदहो भुवन का समूह, संपूर्ण विश्व । उ०
 कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौ । (मा० १।२५३।२)
 ब्रह्मानंद-ब्रह्मप्राप्ति का आनंद । उ० मानहुँ ब्रह्मानंद
 समाना । (मा० १।१६३।२)
 ब्रह्मानी-(सं० ब्रह्माणी)-१. ब्रह्मा की स्त्री, शक्ति, २. सर-
 स्वती । उ० १. अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी । (मा० १।
 १४८।२)
 ब्रात-(सं० ब्रात)-समूह । उ० गुन दूषक ब्रात न कोपि
 गुनी । (मा० ७।१०।१५)
 ब्राता-दे० 'ब्रात' । उ० दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता ।
 (मा० ७।६३।३)
 ब्राह्मण-(सं०)-चारो वर्णों में प्रथम और सर्वश्रेष्ठ,
 विप्र ।
 ब्राह्मण-दे० 'ब्राह्मण' । उ० बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मण
 संकर नाम सुहायो । (गी० १।१४)
 ब्रीडा-(सं० ब्रीडा)-लज्जा । उ० बरनत मोहि होति अति
 ब्रीडा । (मा० ७।७७।५)

भ

भंग-भंग करने या काटने के लिए । उ० सुहृद-सुग्रीव-दुख-रासि-भंग । (वि० ५०) भंग-(सं०)-१. खंड, टुकड़े-टुकड़े, २. पराजय, हार, ३. नाश । उ० १. महिषमद-भंग करि अंग तोरे । (वि० १५) भंगकर-भंग करनेवाले । उ० त्रिपुर-मद-भंगकर, मत्तगज-चर्म-धर, अंधकोरग-असन-पन्न-गारी । (वि० ४६) भंगकृत-तोड़ने या नाश करनेवाले । उ० शक्र-प्रेरित-घोर-मारमद-भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी । (वि० ६०)

भंगा-दे० 'भंग' ।

भंगुर-(सं०)-नाशवान ।

भंगू-(सं० भंग)-नाश होनेवाला । उ० राम बिरहँ तजि तनु छन भंगू । (मा० २।२११४)

भंजक-(सं०)-तोड़नेवाला, नाशक ।

भंजन-(सं०)-१. भंजन, तोड़ना, ध्वंस करना, नष्ट करना, २. तोड़नेवाला, नष्ट करनेवाला, समाप्त करनेवाला । उ० १. नाहिं त करि मुख भंजन तोरा । (वि० ३०) २. जन-रंजन भंजन सोक भयं । (मा० ६।१११३) भंजनि-भंग करनेवाली, तोड़नेवाली । उ० भय भंजनि अम भेक सुअंगिनि । (वि० ३।१४)

भंजनिहार-(सं० भंजन+धार)-तोड़नेवाले, समाप्त करनेवाले । उ० सरद-बिधु रवि-सुवन मनसिज-मान भंजनि-हार । (गी० ७।८)

भंजनु-दे० 'भंजन' ।

भंजय-(सं० भंजन)-१. तोड़ेंगा, २. तोड़ेंगे । उ० २.

भंजब धनुषु राम सुनु रानी । (मा० १।२५७।१)

भंजहिं-तोड़ते हैं । भंजहु-नाश कीजिए, तोड़िए । उ०

तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भंजहु राम उदार । (वि०

६३) भंजा-तोड़ डाला, तोड़ा । उ० हर कोदंड कठिन

जेहि भंजा । (मा० १।२१४) भंजि-तोड़कर, भंगकर । उ०

भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नत-

माथ भारी । (वि० ४३) भंजिहि-नाश करेगा, तोड़ेगा ।

उ० जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन विपति । (मा०

१।१८४) भंजिहैं-तोड़ेंगे । उ० तुलसी प्रभु भंजिहैं संभु-

धनु भूरि भाग सिय मातु पितौ री । (गी० १।७५)

भंजी-तोड़ा, नष्ट किया । भंजे-तोड़ा, टुकड़े-टुकड़े किया ।

भंजेउ-तोड़ा, खंडित किया । उ० भंजेउ राम आपु भव

चापू । (मा० १।२४३) भंजौं-१. तोड़ूँ, तोड़ूँ डालूँ, २.

तोड़ता हूँ । उ० २. लै धावौं भंजौं मृनाल ज्यौं तौ प्रभु

अनुग कहावौं । (गी० १।८७) भंज्यो-१. तोड़ा, तोड़

डाला, २. बुर किया । उ० १. भंज्यो संभु-चाप भारी ।

(गी० ७।३८) २. भंज्यो दारिद्र काल । (दो० १।६०)

भंजिक-दे० 'भंजक' ।

भंड-(सं०)-१. अष्ट, २. धूर्त, ३. भँडैती करनेवाला ।

उ० १. चोर, चतुर, बटपार, नट प्रभुप्रिय भँडुआ भंड ।

(दो० ५४६)

भंडार-(सं० भंडागार)-कोष, खजाना ।

भँडारही-भंडार में, खजाने में । उ० रूपट लपट भरै भवन

भँडारही । (क० १।२३)

भँडारू-दे० 'भंडार' । उ० नगरु बाजि गज भवन भँडारू ।

(मा० २।१८६।१)

भँडारी-(सं० भंडार+ई) १. छोटा भंडार, छोटा कोष,

खजाना या कोठरी, २. खजाने का मालिक, ३. रसोइया ।

उ० ३. बोलि सचिव सेवक सखा पट धारि भँडारी ।

(गी० १।६)

भँडुआ-(सं० भंड)-वेश्या के साथ रहनेवाला, वेश्यापुत्र ।

उ० चोर चतुर बटपार नट प्रभु प्रिय भँडुआ भंड । (दो०

५४६)

भँभोरि-(सं० भय)-डर, भय ।

भँवनि-(सं० अमण)-धूमना, अमण । उ० देखत खग-

निकर, मृग रवनिन्ह जुत थकित बिसारि जहाँ तहाँ की

भँवनि । (गी० ३।५)

भँवर-(सं० अमर)-१. आवर्त, चक्कर, २. भँवरा, मधुकर,

३. गड्ढा, गर्त । उ० १. भँवरवर विभंगतर तरंग

मालिका । (वि० १७) २. किहेसि भँवर कर हरवा हृदय

बिदारि । (ब० ३२)

भँवरा-(सं० अमर)-१. भौरा, अमर, द्विरेफ, २. धूमनेवाली

चीज, ३. भँवर, कली, लोहे या पीतल की वह कढ़ी जो

कील में इस प्रकार जड़ी रहती है कि वह जिधर चाहे धूम

सके । उ० ३. पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा बलित बेलिन

लाल । (गी० ७।१८)

भ-(सं०)-भरणी निचत्र । उ० उगुन पूगुन वि अज कृ म,

आ भ अ भू गुनु साथ । (दो० ४५७)

भई-(सं० भू)-हुई । उ० उमा रमादिक सुरतिय सुनि

प्रमुदित भई । (जा० १।४७) भई-हुई, हो गई । उ०

भई बडि बार आलि कहुँ काज सिधारहि । (पा० ७३)

भईउँ-हो गई हूँ । उ० बौरहि अनुराग भईउँ बडि बाउरि ।

(पा० ७०) भईन्ह-हो गई, हुई । उ० भईन्ह धन्य

जुवती जन लेखे । (मा० २।२३।२) भईसि-हुई है ।

उ० बहे जात कइ भईसि अघारा । (मा० २।२३।१) भईहु-

भई, हो गई । उ० भामिनि भईहु दूध कइ माखी । (मा०

२।१६।४) भई-हुई, हो गई । उ० दिन दूसरे भूप-

भामिनि दोउ भई सुमंगल-खानी । (गी० १।४) भई

(१)-(सं० भू)-हो गई, हुई । उ० तुलसी जाके वित भई

राग द्वेष की हानि । (बै० ५६) भए-१. हुए, हो-गए, २.

उत्पन्न हुए, उपजे, ३. होने पर । उ० १. सो बल गयो,

किधौं भए अब गर्ब-गहीले । (वि० ३२) ३. सौंप

सभा साबर लबार भए देव दिव्य । (वि० ७५) भएउ-

हुआ, हो गया । भएसि-हुआ, हुआ है । उ० भएसि

काल बस निसिचर नाहा । (मा० ३।२८।८) भयउ-हुआ,

भया । उ० सुनतहिं भयउ पर्वताकारा । (मा० ४।३०।३)

भयऊ-दे० 'भयउ' । उ० तह बिलोकि उर अति सुख

भयऊ । (मा० १।१०।६।२) भयहु-हुआ, हो गया ।

भयो-१. हुआ, हो गया, २. पैदा हुआ। उ० भयो कनौड़ो जाचकहि पयव प्रेम पहिचानि। (दो० २६१)
 भा(१)-१. हुआ, २. होते ही। उ० १. लखि नारद-नारदी उमहि सुख भा उर। (पा० १६) २. भा भिनुसार गुदारा लाग। (मा० २।२०२।४) भे-हुए, हो गये। उ० भे सब लोक सोक बस बौरा। (मा० २।२७१।१)
 भइया-(सं० आता)-भैया, भाई। उ० एक कहत भइया भरत जये। (गी० १।४३)
 भई (२)-(सं० आता)-भाई।
 भकुआ-(सं० भेक)-मूर्ख, जड़, अज्ञानी।
 भक्त-(सं०)-१. ईश्वर का भक्त, साधु, २. सेवक, ३. प्रेमी, ४. भात, पकाया चावल, ५. बँटकर दिया हुआ। उ० १. भक्त-हृदि-भवन अज्ञान-तम-हारिनी। (वि० ४८)
 भक्तवत्सलं-दे० 'भक्तवत्सल'। भगवान को। उ० नमामि भक्तवत्सलं। (मा० ३।४।१) भक्तवत्सल-(सं०)-भक्त के लिए जिसके हृदय में प्रेम हो। भगवान
 भक्ति-भक्ति को, प्रेम को, अनुराग को। उ० भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरं मे कामादि दोष रहितं कुरु मानसं च। (मा० २।१।१ श्लो० २) भक्ति-(सं०)-१. परमात्मा के प्रति अनुराग, २. श्रद्धा, आदर भाव, ३. प्रेम। उ० १. अंजनि-भवहार, भक्त कल्प-थालिका। (वि० १७) भक्त्या-भक्ति से, भक्तिपूर्वक। उ० ये पठंति नरा भक्त्या तेषां शंभुः ऽसीदति। (मा० ७।१०८।६)
 भक्ष-(सं०)-आहार, भोजन।
 भक्षक-(सं०)-खानेवाला, भोजन करनेवाला।
 भक्ष्य-(सं०)-१. खाना, आहार, २. भोजन करना, खाना खाना।
 भक्षित-(सं०)-खाया हुआ।
 भक्ष्य-(सं०)-भोजन के योग्य, भक्षणीय।
 भक्ष्याभक्ष्य-(सं०)-खाने योग्य और न खाने योग्य।
 भख-दे० 'भक्ष्य'।
 भखा-(सं० भक्ष्य)-भक्षण किया, खाया।
 भग-(सं०)-१. ऐश्वर्य, २. स्त्री चिह्न।
 भगत-(सं० भक्त)-भक्त, उपासक, दास। उ० भगत-काम तरु नाम राम परिपूरन चंद्र चकोर को। (वि० ३१)
 भगतन-१. भक्तों, २. भक्तों को, ३. भक्तों ने। भगतन्ह-भक्तों, भक्तों ने। उ० हरि भगतन्ह देखे दोउ आता। (मा० १।२४२।३) भगतबल्लता-(सं० भक्त + वत्सलता)-भक्त के प्रति उपास्य के हृदय में प्रेम भाव। उ० भगत-बल्लता हिउँ हुलसानी। (मा० १।२१८।२)
 भगति-दे० 'भक्ति'। उ० १. सेये नहिं सीतापति-सेवक साधु सुमति भले भगति भाय। (वि० ८३) ३. तुलसिदास हरिचरन-कमल, हर ! देहु भगति अविनासी। (वि० ६)
 भगतिहि-भक्ति में। उ० ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। (मा० ७।११५।६)
 भगतु-दे० 'भगत'।
 भगन-(सं० भगण)-एक गण जिसके आदि में गुरु और मध्य तथा अंत में लघु होता है। उ० भगन जंगन का सों करसि राम-अपर नहिं कोय। (सं० २८८)
 भगवंत-(सं० भगवत्)-१. ईश्वर, भगवान्, विष्णु, २.

शिव। उ० १. तेहि भागेउ भगवंत पद कमल अमल अनु-रागु। (मा० १।१७७) भगवंतहि-भगवान् को, भगवंत को। उ० बिरहवंत भगवंतहि देखी। (मा० ३।४१।३)
 भगवंता-दे० 'भगवंत'। उ० १. जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता। (मा० १।१८६। छं० १)
 भगवान-(सं० भगवत्)-ईश्वर, परमेश्वर। उ० सगुन ब्रह्म अवरारधन मोहि कहहु भगवान। (मा० ७।११० घ)
 भगवाना-दे० 'भगवान'। उ० मुनि मति पुनि फेरी भग-वाना। (मा० ७।११३।२)
 भगवानू-दे० 'भगवान'। उ० राजा राम स्वबस भगवानू। (मा० २।२५४।१)
 भगान-(?)-भागना। उ० सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान। (मा० २।२३०)
 भगिनि-दे० 'भगिनी'। उ० सिय लघु भगिनि लषन कहँ रूप-उजागरि। (जा० १७३)
 भगिनी-(सं०)-बहन। उ० अनुजबधू भगिनी सुत नारी। (मा० ४।६।४)
 भगीरथ-(सं०)-सूर्यवंशी राजा जो गंगा को पृथ्वी पर लाने में सफल हुए थे। उ० भूप भगीरथ सुरसरि आनी। (मा० २।२०६।४)
 भगीरथनंदिनि-गंगा। उ० जय-जय भगीरथनंदिनि, मुनि चय-चकोरि चंदिनि। (वि० १७)
 भगन-(सं०)-१. दूटा हुआ, खंडित, २. पराजित, हारा, ३. नष्ट-अष्ट, ४. नश्वर, ५. विफल, असफल। उ० ४. भग्न-संसार-पादप-कुठारं। (वि० ५०) ५. जद्यपि भगन-मनोरथ बिधि-बस सुख इच्छत दुख पावै। (वि० ११६)
 भग्नी-दे० 'भगिनी'।
 भच्छ-(सं० भक्ष्य)-भक्ष्य, जो खाया जाय। उ० असुभ बेष भूषन धरे भच्छाभच्छ ले खाहिं। (मा० ७।६८ क)
 भच्छक-दे० 'भक्षक'। उ० ते फल भच्छक कठिन कराला। (मा० ३।१३।४)
 भच्छुन-(सं० भक्ष्य)-भक्षण, खाना। उ० आजु सबहि कहँ भच्छुन करऊँ। (मा० ४।२७।२)
 भच्छुहीं-खाते हैं, भक्षण करते हैं। उ० कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छुहीं। (मा० २।३। छं० ३)
 भच्छाभच्छ-दे० 'भक्ष्याभक्ष्य'। उ० अशुभ बेष भूषन धरें, भच्छाभच्छ जे खाहिं। (मा० ७।६८ क)
 भजति-भजन करते हैं। उ० भजति हीन मत्सराः। (मा० ३।४। छं० ७) भज-(सं० भजन)-१. भजनकर, २. सेवा, टहल, ३. भजता है। उ० ३. सब भरोस तजि जो भज रामहि। (मा० ७।१०३।३) भजइ-१. भजन करे, २. भजन करता है। भजई-१. भजन करे, भजेगा, सेवेगा, २. भजन करता है। उ० १. विधि बस हठि अबिबेकहि भजई। (मा० १।२२२।२) भजत-१. भजत करते ही, २. भजता है। उ० १. भजत कृपा करिहहिं रघुराई। (मा० १।२००।३) भजति-भजती है। भजते-१. भजते हुए, २. भजा करते। उ० १. तौ हरि रोस भरोस दोस गुन तेहिं भजते तजि गारो। (वि० ६४) भजसि-भजता है, भजन करता है। उ० तुलसिदास सठ तेहिं न भजसि कस कारुनीक जो अनाथहि दाहिन।

(वि० २०७) भजहि-भजते हैं, स्मरण करते हैं। उ० भजहि मोहि संसृत हुख जाने। (मा० ७।४।१३) भजहि- १. भज, भजनकर, २. भजता, भजन करता। उ० १. ससुम्नि तजहि अम भजहि पद जुगम। (वि० २३६) २. तुलसिदास तेहि सकल तजि भजहि न अजहुँ अयाने। (वि० १६६) भजहु-भजो, भजन करो। उ० अम तजि भजहु भगत भयहारी। (मा० ५।२।२।४) भजामहे-हम लोग भजते हैं, हम लोग भजते रहते हैं। उ० पदकंज द्वंद सुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे। (मा० ७।१३।७०४) भजामि-भजता हूँ, भजन करता हूँ। उ० भजामि ते पदांबुज। (मा० ३।४।७०१) भजि (१)-भजकर, भजन कर। उ० पाई न केहि गति पतित प्रावन रामभजि सुनु सठ मना। (मा० ७।१३।७०१) भजिअ-भजिए, स्मरण कीजिए। उ० अस बिचारि मन माहि भजिअ महामाया पतिहि। (मा० १।१४०) भजिय-दे० 'भजिअ'। भजी(१)-भजा, याद किया। भजु-भजो, भजन करो। उ० तौ तजि बिषय विकार-सार भजु, अजहुँ जो मैं कहौ सोइ करु। (वि० २०५) भजे(१)- १. भजन किए, २. मैं भजन करता हूँ। उ० १. छुटै न बिपति भजे विनु रघुपति स्रुति संदेह निबैरो। (वि० ८७) २. मुनि मानस पंकज भृंग भजे। (मा० ७।१४।७०६) भजेसु-भजना, भजन करते रहना। उ० सुमिरेसु भजेसु तिरंतर मोही। (मा० ७।८।१) भजेहु-भजा, याद किया। उ० भजेहु राम सोभा सुख सागर। (मा० ६।६।४।५) भजै-१. भजे, भजन करे, २. भजन करता है। उ० २. भावै जो जेहि भजै सुभ असुभ सगाई। (वि० ३५) भजौ(१)-१. भजता हूँ, भजन करता हूँ, २. सेवा करता हूँ। उ० १. आयो सरन भजौ, न तजौ तिहि यह जानत अचिराउ। (गी० १।४५) भज्यो- १. भजो, २. भजना, याद करना, ३. भजा, स्मरण किया। उ० २. जौ मन भज्यो चहै हरि सुरतरु। (वि० २०५)

भजतहि-भजते हुए को। उ० किए छोह छाया कमल कर की भगत पर भजतहि भजै। (वि० १३५)

भजन-(सं०)-बार बार किसी आराध्य का नाम-स्मरण या गुण-कथन करना, जप, ईश्वर का नाम स्मरण या कीर्तन आदि। उ० जब तव सुमिरन भजन न होई। (मा० ५।३।२।२)

भजनि-(सं०) ब्रजन)-भागना, भगने का भाव। उ० भजनि मिलनि रूठनि दूठनि किलकनि। (गी० १।२७) भजहि-भाग, भग जा। उ० तुलसिदास प्रभु के दासन तजि भजहि जहाँ मद्मार। (वि० १।८।८) भजि (३)-भग-कर, दौड़कर। उ० किलकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहर तैया। (गी० १।६) भजी (२)-भगी, भाग गई। भजे (२)-भगे, भाग गए। भजौ (२)-भागता हूँ। भजनीय-भजन करने योग्य। उ० चरनारविंद महं भजे भजनीय सुर-मुनि-दुलैभं। (कृ० २३)

भट-(सं०)-१. वीर, बहादुर, २. सैनिक, सिपाही, थोड़ा। उ० भट महुँ मथम लोक जग जासू। (मा० १।१८।०।४) भटन्ह-भटों को, वीरों को। उ० खपरिन्ह खग अलुकि

जुम्हहि सुभट भटन्ह बहावहीं। (मा० ६।८।८) छं० १)

भटकत-(?) १. भटकते हैं, २. भटकते हुए। उ० २. भटकत पद अद्वैतता अटकत ग्यान गुमान। (सं० ३४७) भटकि-भूलकर, अम में पड़कर। उ० तहँ तहँ तरनि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतर-कोटर गहौ। (वि० २२२) भटकै-भटके, भटकते हैं। उ० नाहि त दीन मलीन हीन-सुख कोटि जनम अमि अमि भटकै। (वि० ६३)

भटभेरे-(सं०) भट + भिड़ना)-ठोकर, धक्का। उ० नर हत भाग्य देहि भटभेरे। (मा० ७।१२।०।६)

भटभेरो-दे० 'भटभेरे'। उ० तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भटभेरो। (वि० १४३)

भटमानी-अपने को भट (=थोड़ा) माननेवाला। उ० अहो सुनीसु महा भटमानी। (मा० १।२७।३।१)

भटा-दे० 'भट'। उ० १. गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता सुत भौह तकै सब वै। (क० ७।४१)

भटू-(?) एक संबोधन जो ब्रज में स्त्रियों के लिए प्रयोग में आता है। उ० सो क्यों भटू तेरो कहा कहि इत उत जात। (कृ० २)

भट्टा-दे० 'भट'। उ० १ देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। (मा० ६।८।७।१)

भडिहाईं-(सं०) भंड)-१. चोरी, २. भँवैती। उ० १. इत उत चितइ चला भडिहाईं। (मा० ३।२।८।५)

भँडुआ-(सं०) भंड)-वेश्यापुत्र, वेश्या के साथ रहनेवाला। उ० चोर चतुर बटपार नट, प्रभुमिय भँडुआ भंड। (दो० ५४६)

भडुवा-दे० 'भँडुआ'।

भणित-(सं०) दे० 'भनिति'।

भदेस-(सं०) भद्र)-१. भद्रा, कुरूप, बेडौल, २. निंदा, ३. अनुचित। उ० ३. भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सौं। (क० १।१५)

भदेस-दे० 'भदेस'। उ० ३. मोर कहब सब भाँति भदेसु। (मा० २।२६।४)

भद्र-(सं०)-१. मंगल, कल्याण, २. सभ्य, सुशिक्षित, ३. श्रेष्ठ। उ० १. कह तुलसिदास किन भजसि मन भद्र सदन मर्दन मयन। (क० ७।१५२) ३ भँडेउ राम भद्र भरि बाहु। (मा० २।१६।४)

भनता-(सं०) भण)-कहते हैं, वर्णन करते हैं। उ० माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनता। (मा० १। १६२।२) भनई-१. कहता है, २. पढ़ता है, ३. वर्णन कर सकता है। उ० ३. सुकवि लखन मन की गति भनई। (मा० २।२४।३) भनत-कहते हैं। भनि-कहकर, बोलकर। भनियत-कही जाती। उ० सोऊ साधु-सभा भली भाँति भनियत है। (वि० १।८३) भनिहँ-कहेंगे। उ० देखि खलल अधिकार प्रभू सौं मेरी भूरि भलाई भनिहँ। (वि० ६५) भनी-१. कही, वर्णन की, २. कहकर, कहते हुए, ३. कविता की। उ० २. चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी। (मा० १।३२।७। छं० ४) भनु-१. कहो, २. कहते हो। उ० २. सो भनु मनुज खाब हम भाई। (मा० ६।६।३) भने-कहे,

भाषे, बोले। उ० ब्याध, गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने। (वि० १६०) भने-कहे। उ० तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भने। (गी० १४०) भन्यो-१. कहा, २. पुकारा। उ० १. महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहूँ जय जय भन्यो। (मा० ६।६१। छं० १)

भनक-(अनु०)-ध्वनि, आहट, धुनि।

भनित-१. कहा हुआ, २. कविता, रचना। उ० १. सहस नाम मुनि-भनित सुनि, तुलसी-बल्लभ नाम। (दो० १८८) २. तुलसी-भनित सवरी-प्रनति, रघुबर प्रकृति करुनामई। (गी० ३।१७)

भनिति-दे० 'भनित'। उ० २. भाषा भनिति भोरि मति मोरी। (मा० १।६।२)

भभर-(सं० भय)-१. खटका, डर, २. घबराहट, व्याकुलता।

भभरा-(सं० भय)-घबराया। भभरि-१. घबराकर, २. डरकर। उ० १. सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान। (मा० २।२३०) २. तुलसी भभरि सेध भागे मुख मोरि कै। (क० १।१६) भभरे-डरे, डर गये। उ० भभरे, बनइ न रहत न बनइ परातहि। (पा० १।१५)

भभेरि-(?) १. चक्कर, २. मूर्खता, ३. शोरगुल। उ० १. गुन-ज्ञान-गुमान भभेरि वड़ी। (क० ७।१०३)

भयं-भय, डर। उ० जनरंजन भंजन सोक भयं। (मा० ६। १।१।३) भयं-(सं०)-डर, घ्रास, खौफ। उ० भक्ति-भुक्ति-दायिनि, भयहरनि कालिका। (वि० १।६)

भयंक-दे० 'भयंकर'। उ० बेष तौ भिखारि को, भयंक रूप संकर। (क० ७।१६०)

भयंकर-(सं०)-भीषण, भयानक, डरावना। उ० संभु सिव रुद्र संकर भयंकर भीम घोर-तेजायतन क्रोधरासी। (वि० ४।६)

भयंकरा-दे० 'भयंकर'। उ० तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा। (मा० १।६५। छं० १)

भयकारी-भयभीत करनेवाला। उ० असगुन अमित होहि भयकारी। (मा० ३।१८।४)

भयचक-डरा हुआ, भयभीत।

भयदा-(सं०) भय देनेवाला, भयानक। उ० दंडपानि भैरव विधान, मलरुचि खलगन भयदा सी। (वि० २।२)

भयदायक-(सं०)-भय देनेवाला। उ० भयदायक खल कै प्रिय बानी। (मा० ३।२४।४)

भयभीत-(सं०)-डरा हुआ, भयातुर।

भयमोचन-डर दूर करनेवाला। उ० स्यामल गात प्रनत भयमोचन। (मा० १।४।१२)

भयातुर-(सं०)-डरा हुआ, भयभीत। उ० मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा। (मा० १। १।८।४)

भयातुरे-भयातुर होकर, डरकर। उ० चले विचलि मर्कट भाछु सकल कृपाल पाहि भयातुरे। (मा० ६।६।६। छं० १)

भयानक-(सं०)-भयंकर, भीषण, डरावना। उ० मनहु भयानक मूरति भारी। (मा० १।२।४।३)

नभयाव-(सं०)-डरावना, भयंकर। उ० कहाँ अमंगल बेषु

विशेषु भयावन। (पा० ६०) भयावनि-डरावनी, भयंकर। 'भयावन' का स्त्रीलिंग। उ० मारग जात भयावनि भारी। (मा० १।३।६।४)

भयावनी-दे० 'भयावनि'।

भयावने-दे० 'भयावन'।

भयावनी-दे० 'भयावन'। उ० नाथ न चलै गो बल अनल भयावनी। (क० १।८)

भयावह-(सं०)-भयंकर, भयकारक।

भयावहा-दे० 'भयावह'। उ० प्रभु कीन्हि धनुष टकौर प्रथम कठोर घोर भयावहा। (मा० ३।१७। छं० १)

भरंवर-(?) अंधाधुंध।

भर (?)-(सं० भरण)-१. पूर्ण, भरा-पूरा, २. भारी, ३. भरण-पोषण करनेवाला, ४. भरण, भरने की क्रिया, ५. धारण करनेवाला। उ० १. सघन तम-घोर-संसार-भर-शर्वरी-नाम दिवसेस-खर-किरनमाली। (वि० ५।५) २. बिस्वभार भर अचल छमा सी। (मा० १।३।१।५)

भर (?)-(सं० भरत)-एक जाति। उ० प्रभु तिय लूटत नीच भर। (दो० ५।४०)

भरई-(सं० भरण)-भरती है, भर देती है। उ० मस्त उबाव प्रथम तेहि भरई। (मा० ७।१०।६।६) भरऊँ-१. भरता हूँ, पूरा करता हूँ, २. ऋण चुकाता हूँ। भरत (?) १. भर देता है, २. भरण-पोषण करते हुए। उ० १. देत जो भू भाजन भरत, लेत जो वूँटक पानि। (दो० २।८७) भरव-भरूँगी, पूरा करूँगी। उ० नैहर जनमु भरव बरु जाई। (मा० २।२।१।१) भरहीं-भरते हैं। उ० तब तब बारि बिलो-चन भरहीं। (मा० २।१४।१।२) भरहु-भरो। भरहुगे-भर दोगे। उ० अमल इह भगति दै परम सुख भरहुगे। (वि० २।१।१) भरा-१. बोझा हुआ, भरा हुआ, आपूर्ण, २. भरण-पोषण किया, ३. लादा, पूरा किया, ४. धारण किया। उ० १. विषरस भरा कनक घट्ट जैसे। (मा० १।२।७।८)

भरि-१. पूर्ण करके, भरकर, अच्छी तरह, २. पोषण करके, ३. पाल करके, ४. भर, पर्यंत। उ० १. जीवन-जर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन-बाय। (वि० ८।३)

४. दुहज न चंदा देखिये, उदौ कहा भरि पाख। दो० ३।४४) भरिबे-भरना, पूरा करना। उ० तुलसी कान्ह बिरह नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो। (क० ३।६)

भरिया-भर गया, आपूर्ण हो गया। उ० तिन सोने के मेरु से ढेर लहे मन तौ न भरो घर पै भरिया। (क० ७।४।६)

भरी-१. भर गई, पूर्ण हो गई, भरी है, २. भरी हुई, आपूर्ण। उ० १. भरी क्रोध जल जाइ न जोई। (मा० २। ३।४।१) भरे-१. भरा, भर दिया, २. भरे हुए। उ० २. भव पंथ अमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे। (मा० ७।१३। छं० २) भरेउ-भरा। भरेऊ-भरा।

भर्यो-भरा हुआ। उ० तीय हरी रन बंधु पर्यो पै भर्यो सरनागत-सोच हियो है। (क० ६।५।३)

भरत (?)-(सं०)-१. राम के छोटे भाई जो कैकेयी के पुत्र थे। इनके ही लिए कैकेयी ने राम को १४ वर्ष का बनवास दिलाया था, पर ये राम के अनन्य भक्त थे, अतः इन्होंने राज्य को ठुकरा दिया। २. एक प्रसिद्ध राजा जो शकुंतला के पुत्र थे। उ० १. कहैं मोहि मैया, कहैं, मैं न

भैया भरत की। (क० २।३) भरतहि-भरत को। उ० तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु। (मा० २।१५) भरतहु-भरत भी। उ० भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे। (मा० ७।८४)
 भरतखंड-(सं०)-भारतवर्ष। उ० यह भरतखंड समीप सुरसरि, थल भलो संगति भली। (वि० १३५)
 भरता-(सं० भरण)-भरनेवाला, पालनेकरनेवाला। उ० भरता भरत सो जगत को तुलसी लसत अकार। (सं० १५२)
 भरतार-(सं० भर्ता)-१. पति, २. भरण-पोषण करनेवाला, ३. ईश्वर। उ० २. करतार भरतार हरतार कर्म काल। (ह० ३०)
 भरतारा-दे० 'भरतार'। उ० १. चाहिअ सदा सिवहि भरतारा। (मा० १।७।४)
 भरतु-दे० 'भरत (२)'
 भरदर-(?)—पूर्ण रूप से, अच्छी तरह। उ० भरदर बरषत कोस सत बचै जे बूँद बराह। (दो० ४०२)
 भरद्वाज-(सं०)-एक ऋषि। ममता के गर्भ से बृहस्पति के पुत्र। घृताची को देखकर इन्हें खलन हुआ था जिससे द्रोणाचार्य पैदा हुए थे। उ० भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान। (मा० १।१२७)
 भरण-(सं०)-१. पूरा करनेवाला, २. भरण पोषण करनेवाला, ३. पालन, रक्षा, बचाव, ४. बेतन, तनखाह।
 भरणी-(सं०)-१. एक नक्षत्र, २. मोरनी, ३. साँप का विष उतारने का मंत्र।
 भरन-दे० 'भरण'। उ० १. विश्व-पोषण-भरन विश्वकारन-करण, सरन-तुलसीदास त्रास हंता। (वि० ५५)
 भरनी-दे० 'भरणी'। उ० २. रामकथा कलिपद्मग भरनी। (मा० १।३१३)
 भरपूर-(सं० भरण+पूर्ण)-पूर्ण, भरा पूरा।
 भरपूरि-दे० 'भरपूर'।
 भरम-(सं० भ्रम)-१. भ्रम, आति, झुलावा, धोखा, २. प्रतिष्ठा, मान, इज्जत। उ० १. तुलसी सुनि जानि बूकि भूलहि जानि भरम। (वि० १३१)
 भरमाए-(सं० भ्रम) भ्रम में डाल दिया, धोखे में डाल दिया। उ० हाथ-हाथ राय बाम विधि भरमाए। (गी० २।३६)
 भरायो-(सं० भरण) १. भराया, २. भरण-पोषण कराया हुआ। उ० २. आपु हौं आपु को नीके कै जानत, रावरो राम भरायो गढ़ायो। (क० ७।६०)
 भरित-(सं०) १. पूर्ण, पूरित, २. भरनेवाली, पूर्ण करनेवाली, ३. पोषित, पालित। उ० १. सोहति सखि धवल-धार-सुधा-सखिल भरित। (वि० १६)
 भरिता-दे० 'भरित'। उ० १. राम विमल जल जल भरिता सी। (मा० १।३६६)
 भरोस-दे० 'भरोसा'। उ० २. सोहः भरोस मोरें मन आवा। (मा० १।१६।४)
 भरोसा-(सं० भरण+आशा)-१. आशा, उम्मीद, २. सहारा, अवलंब। उ० २. नाथ दैव कर कवन भरोसा। (मा० १।५१२) भरोसे-दे० 'भरोसा'। उ० २. ब्रह्म-क्रेम कुसल समेअ अपनाहु भरोसे भारि कै। (गी० १।३६)

भरोसो-दे० 'भरोसा'। उ० २. जाके है सब भाँति भरोसो कपि केसरी किसोर को? (वि० ३१)
 भर्त्ता-(सं०)-१. पति, स्वामी, २. पालनेवाला, रक्षक, ३. ईश्वर, ४. ब्रह्मा। उ० २. राहु-रवि-सक्र-पवि-गर्व-खर्वी-करण, सरन भयहरन, जय भुवनभर्त्ता। (वि० २५)
 भर्म-(सं० भ्रम)-भ्रम, संदेह। उ० नाम जाति गुण देखि कै भएउ प्रबल उर भर्म। (सं० ५८१)
 भल-(सं० भद्र)-१. श्रेष्ठ, उत्तम, अच्छा, २. मनोहर, सुन्दर, ३. खूब। उ० १. प्रमुदित हृदय सराहत भल भव-सागर। (जा० ४७) २. अंतरअयन अयन भल, थन फल बच्छ बेद-बिस्वासी। (वि० २२) ३. भल भूलिहु टा के बौराएँ। (मा० १।७६।४) भले-१. अच्छे, २. खूब, बाह। उ० २. चल सुपंथ मिलि भले साथ। (वि० ८४) भलेउ-भले को भी, अच्छे को भी। उ० अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिबे मंद। (दो० ४६६) भलेहि-दे० 'भलेहि'। उ० १. सादर भलेहि मिली एक माता। (मा० १।६३।१) ४. भलेहि नाथ आयसु धरि सीसा। (मा० १।१६०।१) भलेहि-१. अच्छे भाव से, २. अच्छे को, ३. भले ही, ४. बहुत अच्छा। उ० २. भलेहि मंद मंदहि भल करहु। (मा० १।१३७।१) भलेहु-भले को भी, अच्छे को भी। उ० भलेहु चलत पथ पोच भय। (दो० ५०६)
 भला-दे० 'भल'। भली-दे० 'भलि'। उ० भलो भली भाँति है जो मेरे कहे लागिहै। (वि० ७०)
 भलाइहि-भलाई ही। उ० भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीसु। (मा० १।५) भलाई-१. श्रेष्ठता, उत्तमता, निकाई, २. उपकार, नेकी। उ० १. भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीसु। (दो० ३३८)
 भलि-भली, अच्छी। उ० सील सिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै। (क० ६।५५)
 भलोरो-भला, अच्छा, कल्याण। उ० हँ है जब तब तुम्हहि तँ तुलसी को भलोरो। (वि० २७२)
 भलो-भला, अच्छा। उ० तिहँ काल तिनको भलो जे राम रंगीले। (वि० ३२) भलोइ-भला ही, उत्तम ही। उ० सीय सुनि हनुमान जान्यो भली भाँति भलोइ। (गी० १।५) भलोई-दे० 'भलोइ'। उ० आपनी भलाई भलो कीजै तो भलोई, न तौ। (क० ७।७०)
 भवर-(सं० भ्रमर)-१. भौरा, २. पानी की भँवर। उ० २. भँवर कूबरी बचन प्रचारा। (मा० २।३४।२)
 भवंत (१)-(सं०)-१. आपका, आप लोगों का, २. आप। उ० १. अवलंब भवंत कथा जिन्ह कै। (मा० ७।१४। छं० ६) भवत्-आपका, तुम्हारा। उ० भवदंघ्रि निरादर के फल ए। (मा० ७।१४।५)
 भवंत (२)-(?)—१. समय, काल, २. पूज्य, श्रेष्ठ, ३. प्रधान।
 भवंति-(सं०)-होते हैं। भवतु-हो, होवे। उ० तत्र त्वन्नक्ति सज्जन-समागम सदा भवतु मे राम विश्रममेकम्। (वि० ५७)
 भव-(सं०)-१. संसार, जगत, २. उत्पत्ति, ३. उत्पन्न, पैदा, ४. कल्याण, कुशल, ५. शिव, ६. जन्म-भरण का दुःख, ७. बादल, ८. कामदेव, ९. सत्ता १०. जन्म-

स्थान । उ० १. घोर अथवाह भव-आपगा । (वि० २६) १.
 २. भव भव विभव पराभव कारिनि । (मा० ११२३१४)
 ३. भव अंग भूति मसान की । (मा० १११०१ छं० २) ६.
 प्रचुर भव अंजनं, प्रणत-जन-रंजनं । (वि० १२)
 भवचाप-शिव का धनुष, पिनाक । उ० अंजि भवचाप, दलि
 दाप भूपावली । (वि० ४३)
 भवतव्यता-(सं० भवितव्यता)-होनहार, भावी, होनी,
 भाग्य । उ० तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिलइ सहाइ ।
 (मा० १११२६ ख)
 भवदीय-(सं०)-आपका, तुम्हारा । उ० एक गति राम भव-
 दीय पदत्रान की । (वि० २०६)
 भवन (१)-(सं०)-१. मकान, महल, घर, २. यज्ञ, हवन,
 ३. होमकुंड । उ० १. भवन आनि सनमानि सकल मंगल
 किए । (जा० २१२) भवननि-घरों, भवनों । उ० भवननि
 पर सोभा अति पावत । (मा० ७१२३) भवमिन्हि-दे०
 'भवननि' ।
 भवन (२)-(सं० भुवन)-संसार ।
 भवनि-(सं० अमण)-धूमना । भवे-धूमते फिरे, भटकते
 फिरे ।
 भवनी-(सं० भवन)-स्त्री, भार्या । उ० कहति सुदित मुनि-
 भवनी । (गी० ११६)
 भवनु-भवन, घर, महल । उ० कलस सहित गहि भवनु
 बहावा । (मा० ६४४१२)
 भवभामिनी-(सं०)-शिवकी स्त्री पार्वती । उ० दास तुलसी
 त्रास हरणि भवभामिनी । (वि० १८)
 भवाई-(सं० अमण)-धुमाकर । उ० गहि पद पटकेउ भूमि
 भवाई । (मा० ६१८३)
 भवानि-भवानी ही । उ० मेरे माय बाप गुरु संकर
 भवानिए । (क० ७१६८) भवानिहि-पार्वती को । उ०
 पावनि करउँ सों गाइ भवेस-भवानिहि । (पा० ४)
 भवानी-(सं०)-१. पार्वती, २. दुर्गा । उ० १. कीन्हि
 प्रस्न जेहि भौति भवानी । (मा० ११३३११)
 भवानीनंदन-(सं०)-गणेश, पार्वती के पुत्र ।
 भवान्-आप । उ० नाना रूहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
 सत्यं वदामि च भवानखिलांतरात्मा । (मा० १११
 श्लो० २)
 भविष्य-(सं० भविष्यत्)-आनेवाला काल ।
 भवेश-(सं० भवेश)-महादेव, विश्व के स्वामी । उ०
 तुलसी भरोसो न भवेश भोलानाथ कौ तौ । (क० ७।
 १६१)
 भव्य-(सं०)-१. सुन्दर, अच्छा, २. शुभ, मंगलप्रद । उ०
 १. तद्वित गभांग सर्वांग सुन्दर लसत, दिव्य पद, भव्य
 भूषण विराजे । (वि० १६)
 भसम-दे० 'भस्म' । उ० भये भसम जनु जान । (प्र० ३।
 १६)
 भस्म-(सं० भस्मन्)-जलने के बाद बची राख, खाक । उ०
 भस्म तनु भूषणं, व्याघ्र चन्मांबरं । (वि० ११)
 भहरानी-(?)-गिरी, गिर पर्वी । उ० हहरानी फौजें भह-
 रानी जातुधान की । (क० ६१४०) भहराने-गिर पर्वे ।
 उ० भहराने भट परयो प्रबल परावनो । (क० १८)

भाँग-(सं० भृंगा)-भंग, प्रसिद्ध पौधा जिसकी पत्तियाँ
 मादक होती हैं । उ० जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी
 तुलसीदासु । (मा० ११२६)
 भाँट-दे० 'भाट' । उ० किसबी किसान-कुल बनि क भिखारी
 भाँट । (क० ७।६६)
 भाँड़-(सं० भंड)-मसखरा, विदूषक । उ० मूढ़ मुदाए बाद
 ही भाँड़ भए तजि गेह । (स० ३८८)
 भाँड़ा-(सं० भाँड़)-बर्तन, मटका । भाँड़े-बर्तन, भाँड़ा ।
 उ० कपट कलेवर कलि मल भाँड़े । (मा० १११
 २।१)
 भाँड़िगो-(सं० भंड)-नष्ट-अष्ट कर गया । उ० सहित
 समाज गढ़ राँड़ के सो भाँड़िगो । (क० ६।२४)
 भाँड़ु-दे० 'भाँड़' । उ० राम विमुख कलिकाल को भयो न
 भाँड़ु । (ब० ६३)
 भाँड़ू-(सं० भाँड़)-भंडा-फोड़, भेद का खुलना ।
 भाँति-(सं०)-१. तरह, किस्म, २. मर्यादा, चाल । उ० १.
 अस सब भाँति अलौकिक करनी । (मा० १११८।४) २.
 रटत-रटत लटयो जाति पाँति भाँति घटयो । (वि० २६०)
 भाँतिन्ह-तरहों, रीतियों । उ० १. जनक कीन्ह पहुनाई
 अगनित भाँतिन्ह । (जा० १८१) भाँतिहि-प्रकार से, तरह
 से । उ० सिव कृपा सागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहि
 कियो । (मा० १११०१। छं० १)
 भाँती-दे० 'भाँति' । उ० १. मोरि सुधारहि सो सब भाँती ।
 (मा० ११८२२)
 भाँमर-(सं० अमण)-१. फेरी, २. विवाह के अवसर पर
 सम्पन्न होनेवाली ससपदी ।
 भाँवर-दे० 'भाँमर' ।
 भाँवरि-दे० 'भाँमर' । उ० २. लावा होम विधान बहुरि
 भाँवरि परी । (पा० १४६)
 भाँवरी-दे० 'भाँमर' । उ० २. सिंदूर बंदन होम लावा होन
 लागीं भाँवरी । (जा० १६२)
 भा (२)-प्रकाश, उजाला । उ० अच्छ-बिमर्दन कानन-भान
 दसानन आनन भा न निहारो । (ह० १६)
 भाइ (१)-दे० 'भाई (२)' । उ० जाइ देखि आवहु नगर
 सुख निधान दोउ भाइ । (मा० ११२१८)
 भाइ (२)-दे० 'भाई (१)' । भाई (१)-(सं० भान)-१.
 अच्छी लगी, २. मीठी । उ० १. नासा नयन कपोल
 ललित श्रुति कुंडल भ्रू मोहि भाई । (वि० ६२) भाऊ
 (१)-भावे, अच्छा लगे । भाए-१. अच्छे लगे, २. चाहे
 हुए । उ० २. तुरत सुदित जहँ तहँ चले मन के भए
 भाए । (गी० १।६) भायऊ-अच्छा लगा । उ०
 रघुपतिहि यह मत भायऊ । (मा० १।६०। छं० १)
 उ० १. सुनि हनुमान हृदय अति भाये । (मा० १।१११)
 भायो-१. अच्छा लगा, २. मन का चाहा हुआ । भावइ-
 अच्छा लगे, सुहावे । उ० मीठ काह कवि कहहि जाहि
 जोइ भावइ । (पा० ७२) भावई-१. दे० 'भावइ', २.
 अच्छी लगती है, सुहाती है । उ० २. दंभिहि नीति कि
 भावई । (मा० ७।१६ ख) भावत-अच्छा लगता है ।
 भावता-१. अच्छा लगता, २. प्रिय, पसंद का । भावति-
 सुहाती है । उ० भावति हृदय जाति नहि बरनी । (मा०

१।२४३।२) भावती-१. अच्छी लगती है, २. मनचाही, ३. प्यारी। भावते-१. प्यारे, अच्छे, २. अच्छे लगे। उ० १. मैया भरत भावते के सँग। (गी० २।६६) भावा-१. अच्छा लगा, अच्छा लगता है, २. दे० 'भाव'। उ० १. अजहुँ को जानइ का तेहि भावा। (मा० २।१६५।४) भावै- अच्छा लगे, पसंद हो। उ० मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावै। (वि० ७६) भावौ-अच्छा लगूँ। भाइन्ह-भाइयों को। उ० पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही। (मा० १।२३७।२) भाई (२)-(सं० आता)-बंधु, आता। उ० जग बहु नर सर सरि सम भाई। (मा० १।१।७) भाउ-(सं० भाव)-१ भावना, भाव, २. प्रेम, ३. स्वभाव। उ० २. इनकी भगति कीन्हीं इनहीं को भाउ मै। (वि० २६१) भाऊ (२)-दे० 'भाउ'। उ० २. जिन्ह के राम चरन भल भाऊ। (मा० १।३६।४) भाएँ-१. भाव से, २. समझ से, अनुमान से। भाखइ-(सं० भाषण)-भाषण करे। भाखउँ-कहूँ, कहता हूँ। भाखा-१. कहा, २. भाषा, ज्ञान। भाखि-कहकर। भाखी-कही। भाखै-कहते हैं, वर्णन करते हैं। भाखे-कहा। भाख्यो-कहा। भाग (१)-(सं०)-हिस्सा, अंश। उ० अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। (मा० १।१६०।१) भाग (२)-(सं० भाग्य)-भाग्य, किस्मत। उ० बर दुलहिनि अनुरूप लखि सखी सराहहि भाग। (प्र० १।७।२) भाग (३)-(सं० भाज)-१. भागो, भाग जाओ, २. भाग गया। उ० २. मनहुँ भाग मृग भाग बस। (मा० २।७५) भागउँ-भागूँ, भाग जाऊँ। भागन-भागने, भाग जाने। भागहि-भागते हैं, भगते हैं। भागहि-भाग जाती है। उ० रुचि भावती भमरि भागहि, समुहाहि अमित अन-भाई। (वि० १६५) भागा-भाग गया, दौड़ा। उ० धावा बालि देखि सो भागा। (मा० ४।६।२) भागि-भागकर। उ० भागि भवन पैठी अति आसा। (मा० १।६६।३) भागिहै-भाग जायगा। उ० सहित सहाय कलिकाल भीरु भागिहै। (वि० ७०) भागु-(सं० भाज) भागो, भाग जाओ। उ० भागु भाग तजि भाग थलु। (प्र० ७।१।५) भागू (१)-भागो, भाग जाओ। भागे-१. भाग गए, २. भागने पर। उ० २. भागे भल आड़ेहु भलो। (दो० ४२४) भागेउ-दे० 'भागोहु'। भागेहु-भागने पर भी। भागी-(सं० भाग्य)-भाग्यवान। उ० भरत भूरि भागी। (वि० ३६) भागी (२)-(सं० भाग)-साझी, हिस्सेदार। भागीरथी-(सं०)-गंगा नदी। उ० भागीरथी जलपान करौ अरु नाम है राम के खेत नितै हौं। (क० ७।१०२) भागू (२)-(सं० भाग)-भाग, हिस्सा। भागू (३)-(सं० भाग्य)-भाग्य, तकदीर। भाग्य-(सं०)-किस्मत, नसीब। उ० चरन बंदि निज भाग्य सराही। (मा० १।१६०।१) भाजत-(सं० भाज)-१. भागता है, २. भाग जाने पर। उ० २. आवत निकट हूँसहि प्रभु भाजत रुदन कराहि। (मा० ७।७७ क) भाजहि-भागते हैं, भाग जाते हैं। उ०

बहुतक देखि कठिन सर भाजहि। (मा० ६।६।५) भाजि-भागकर, भाग, परा, पलायन कर। उ० करै कृति निपट गइ लाजि भाजि। (गी० ७।२२) भाजी-भाग गई, भागी। उ० सबरी के दिष्ट बिनु भूख न भाजी। (क० ७।६५) भाजे-भगे, भग गए। उ० हाँक सुनत रजनीचर भाजे। (मा० ६।४७।३) भाजन-(सं०)-१. पात्र, बर्तन, २. योग्य। उ० १. जीव सकल संताप के भाजन जग माहीं। (वि० १५०) भाजनु-दे० 'भाजन'। भाट-(सं० भट्ट)-चारण, बंदी, एक गायक जाति। उ० चले भाट हिये हरषु न थोरा। (मा० १।२४६।४) भाटा-दे० 'भाट'। उ० भूप भीर नट भागध भाटा। (मा० १।२१४।१) भात (१)-(सं० भक्त)-पका चावल। उ० लंक नहि खात कोउ भौत राँध्यो। (क० ६।४) मु० नहि खात भात राँध्यो-तुच्छ समझता। कुछ परवा न करता। उ० दे० 'भात'। भात (२)-(सं०)-सबेरा, प्रभात। भाति-(सं० भान)-१. ज्ञात होता है, २. प्रकाशित होता है, ३. शोभित होता है। उ० १. यत्सत्वाद मृषैव भाति सकलं। (मा० १।५ श्लो० ६) भाथ-(सं० भक्षा, पा० भत्या)-तरकश, तुण्डीर। उ० जौं न करौं प्रभुपद सपथ कर न धरौं धनु भाथ। (मा० १।२५३) भाथहि-तरकश को। उ० हृदय आनि सियराम धरे धनु भाथहि। (पा० १) भाथा-(सं० भक्षा)-तुण्डीर, तरकश। उ० भाथा बाँधि चढ़ाइन्हि धनुहीं। (मा० २।१६१।२) भाथी-(सं० भक्षी)-१. धौकनी, २. छोटा तरकश। उ० २. कटि भाथी सर चाप चढ़ाई। (मा० २।६०।२) भादव-(सं० भाद्रपद)-भादों का महीना। उ० राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास। (मा० १।१६) भान-(सं०)-ज्ञान, चेत, स्मरण, बोध। भानन-(सं० भंजन)-तोड़नेवाला। उ० खल-दल-बल-भानन। (ह०२) भाननी-तोड़नेवाली, मिटानेवाली। उ० बचन गँभीर मृदुहास भव-भाननी। (गी० ७।५) भानि-(सं० भंजन)-१. तोड़कर, २. तोड़नेवाले। भानिहौ-तोड़ोगे, नष्ट करोगे। उ० सरनागत-भय भानिहौ। (वि० २२३) भानी-तोड़ी, तोड़ दी, नष्ट की। उ० विषम बियोग व्यथा बड़ि भानी। (गी० ६।२०) भान्यो-तोड़, भंजा, नष्ट किया। उ० सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता बड़ो पछु आछुहि भान्यौ। (गी० ३।१३) भानु-(सं०)-१. सूर्य, रवि, २. राजा, ३. विष्णु। उ० १. इंदु-पावक-भानु-नयन। (वि० ११) भानुहि-भानु को, सूर्य को। उ० संसय सोक निविड़ तम भानुहि। (मा० ७।३०।४) भानुकुल-(सं०)-सूर्यवंश, वह वंश जिसमें राम पैदा हुए थे। उ० भानुकुलभानु कीरति-पताका। (वि० २६) भानुजा-(सं०)-यमुना। भानुसुवन-१. अश्विनीकुमार, २. शनैश्चर, ३. यमराज, ४. राजा कर्ण। उ० १. कोटि भानुसुवन सरद-सोम कोटि अरुंग। (गी० २।१७)

भामा-(सं०)-दे० 'भामिनी' । उ० जगदंबिका जानि भवभामा । (मा० १।१००।४) भामो-भामा भी, स्त्री भी । उ० दे० 'भील' ।
 भामिन-दे० 'भामिनी' ।
 भामिनि-दे० 'भामिनी' । उ० नहिं अचाहिं अनुराग भाग भरि भामिनि । (जा० १५०)
 भामिनी-(सं०)-स्त्री, औरत । उ० तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु ससुक्ति धौं जिय भामिनी । (मा० २।५०।४०१) भायै-प्रेम में, भाव से । उ० भायै कुभायै अनख आलसहूँ । (मा० १।२८।१) भाय (१)-(सं० भाव)-१. भाव, २. प्रेम ।
 भाय (२)-(सं० भ्राता)-भाई । उ० बिगरे तें आपु ही सुधारि लीजै भाय जू । (क० ७।१३६)
 भायप-भाईपन । उ० भायप भगति भरत आचरनू । (मा० २।२२३।१)
 भार-बोझ, भार । भार-(सं०)-१. बोझ, २. उत्तरदायित्व, ३. भारी । उ० १. दुष्ट बिबुधारी संघात महिभार-अपहरन । (वि० ५०) भारहि-भार को । उ० मुनिरंजन भंजन महि-भारहि । (मा० ७।३०।५)
 भारत-(सं०)-१. कौरव-पांडव युद्ध, २. महाभारत ग्रंथ, ३. युद्ध, ४. बहुत बड़ी कहानी । उ० १. भारत में पारथ के रथकेतु कपिराज । (ह० ५)
 भारति-दे० 'भारती' । उ० १. मति-भारति पंगु भई जो निहारि । (क० १।७)
 भारती-(सं०)-१. सरस्वती, २. वाणी, बचन, बोली । उ० १. भरत भारती रिपुदवतु, गुरु गनेस बुधवार । (प्र० १।१।४)
 भारद्वाज-(सं०)-भरद्वाज ऋषी के पुत्र द्रोणाचार्य ।
 भारा-दे० 'भार' । उ० ३. नित नव खोच सती उर भारा । (मा० २।८।१)
 भारिप-भारी है । उ० जीव जामवंत को भरोसो तेरो भारिये । (ह० २३)
 भारी-(सं० भार)-१. वज्रनी, गरुड्या, २. बड़ा, ३. कठिन, ४. भीषण, ५. अधिक, ६. प्रबल, ७. गंभीर, ८. शांत । उ० २. त्रिपुर मर्दन भीम कर्म भारी । (वि० ११) ३. भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत । (क० १।४२) ५. सोभा अति भारी । (वि० ५१)
 भारु-दे० 'भार' । उ० ३. गुहहिं भयउ दुख भारु । (मा० २।८।८)
 भारु-दे० 'भार' ।
 भारे-१. बोझ, २. बड़े, विशालकाय । उ० २. नाना बरन बली मुख भारे । (मा० ६।४६।४)
 भार्गव-(सं०)-भृगुवंशी, १. परशुराम, २. दैत्यगुरु शुक्राचार्य, ३. लक्ष्मी । उ० १. भार्गवागर्व-गरिमापहता । (वि० ५०)
 भार्या-(सं०)-स्त्री, पत्नी ।
 भाल-(सं०)-ललाट, मस्तक । उ० भाल बिसाल तिलक छलकाहीं । (मा० १।२४३।३) भाले-भाल पर, मस्तकपर । उ० भाले बाल विधुगंले च गरलं । (मा० २।१ श्लो० १)
 भाला (१)-(सं० भल्ल)-बरछा, एक चोकीला हथियार ।

भाला (२)-(सं० भाल)-ललाट, मस्तक । उ० विधि के लिखे अक निज भाला । (मा० ६।२६।१)
 भालु-(सं० भालुक)-१. भालू, रीछ, २. जामवंत । उ० १. सुभट मर्कट-भालु-कटक-संघट सजत । (वि० ४३) २. जातुधान भालु कपि केवट बिहंग जो जो । (क० ७।१३) भालुनाथ-जामवंत । उ० भालुनाथ नल नील साथ चले । (गी० २।१)
 भालू-दे० 'भालु' । उ० १. निखिचर भट महि गाढ़हिं भालू । (मा० ६।८।१)
 भाव-(सं०)-१. विचार, भावना, मनोवृत्ति, २. प्रेम । उ० १. भावभेद रसभेद अपारा । (मा० १।६।५) २. जौ श्रीपति महिमा विचारि उर भजते भाव बढ़ाये । (वि० १६८)
 भावतो-(सं० भान)-भानेवाला, चाहा हुआ । उ० मन भावतो धेनु पय खवहीं । (मा० ७।२३।३)
 भावन-भानेवाला, अच्छा लगनेवाला । जैसे मनभावन ।
 भावना-(सं०)-१. विचार, मनोवृत्ति, २. इच्छा, कामना, इवाहिश । उ० २. जिन्हके रही भावना जैसी । (मा० १।२४।२)
 भावनि-अच्छी लगनेवाली । उ० सुक सनकादि संभु मन भावनि । (मा० ७।१२३।३)
 भावनी-दे० 'भावनि' ।
 भाविउ-भावी भी, होनहार भी । उ० भाविउ भेटि सकहिं त्रिपुरारी । (क० १।७०।३) भावी-(सं० भाविन) होनेवाला, होनहार, भविष्य । उ० भावी बस, न जान कछु राऊ । (मा० १।१७०।४)
 भावै-विचार में, मन में ।
 भाषउं-(सं० भाषा)-कहता हूँ । उ० बेद पुरान संत मत भाषउं । (मा० ७।११६।१) भाषा-(सं०)-१. बोली, २. बात, बचन, ३. कहा, ४. हिंदी । उ० ३. पाहु सुसमउ सिवा सन भाषा । (मा० १।३५।६) ४. भाषा निबंध मति मंजुल मातनोति । (मा० १।१ श्लो० ७) भाषी-(सं० भाषण)-१. कहनेवाला, २. कहा, ३. कहकर । उ० १. कोशला-कुशल-कल्याण भाषी । (वि० २७) ३. अंतरधान भये अस भाषी । (मा० १।७७।४)
 भाषित-(सं०)-कहा हुआ, कथित ।
 भास-(सं० भास)-ज्ञात होता है । उ० भास सत्य हव मोह सहाया । (मा० १।११७।४) भासै-ज्ञात हो, दीखे । उ० रिपुमय कबहुँ नारिमय भासै । (वि० ८१)
 भास्कर-(सं०)-१. सूर्य, २. अग्नि ।
 भिडिपाल-(?)-हाथ से चलाने का एक अस्त्र, गोफिया । उ० गहि कर भिडिपाल बर साँगी । (मा० ६।४०।४)
 भिसार-दे० 'भित्तार' ।
 भिडु-(सं०)-भिखारी ।
 भिखारि-दे० 'भिखारी' । उ० बेष तौ भिखारि को मधक रूप संकर । (क० ७।१६०)
 भिखारी-(सं० भिखा, हि० भीख)-भीख माँगनेवाला, भिडुक । उ० राम निछावरि लेन को हठि होत भिखारी । (गी० १।६)
 भिजई-(सं० अभ्यंज)-भिगो दी, तर करती । उ० कदना-

वारि भूमि भिजई है । (वि० १३६) भीजै-(सं० अर्थ्यंज)-भीगता है, भीजता है । उ० तन राम नयन जल भीजै । (गी० ३।१५)

मितैहों-(सं० भीति)-ढरूँगा, भयभीत होऊँगा । उ० पै मैं न मितैहों । (क० ७।१०२)

भिद्यो-(सं० भित्)-१. चुभा, धँसा, २. टूटा, छिड़ा । उ० २ भिद्यो न कुलिसहु तैं कठोर चित । (वि० १७१)

भिनुसार-(सं० विनिशा)-सवेरा, भोर । उ० भा भिनुसार गुदारा लागी । (मा० २।२०२।४)

भिनुसारा-दे० 'भिनुसार' ।

भिनुसार-दे० 'भिनुसार' ।

भिन्न-(सं०)-अलग, दूसरा । उ० गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न । (मा० १।१८)

भिया-(सं० भ्राता)-भाई, हे भाई । उ० कोउ कहै तेज प्रताप पुंज चितपु नहि जात, भिया रे ! (गी० १।६६)

भियो-(सं० भय)-डरा, भयभीत हुआ । उ० कलिमल खल देखि भारी भीति भियो हौं । (वि० १८१)

भिरउँ (१)-भिड़ा, टकराया । उ० जब जब भिरउँ जाइ बरिआइ । (मा० ६।२५।३) भिरत-लड़ते हैं, भिड़ते हैं । उ० महि परत उठि भट भिरत मरत । (मा० ३।२०।छं०४)

भिरहि-भिड़ते हैं, टकराते हैं, लड़ते हैं । भिरहि-भिड़ेगा । भिरे-भिड़ गये । उ० जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे । (मा० ६।४६।३) भिरेउँ-दे० 'भिरउँ' ।

भिल्ल (सं०)-भील, कोल । उ० श्वपच खल भिल्ल यवनादि । (वि० ४६) भिल्लनि-भीलों, मुसहरों । उ० नर नारि निदरहि नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा । (मा० २।२५।१। छं० १) भिल्लनि-भील जाति की स्त्री । उ० भिल्लनि जिमि छाड़न चाहति बचनु भयंकर बाजु । (मा० २।२८)

भिषक-(सं०)-वैद्य ।

भी-(सं०)-भय, डर । उ० सुमिरत भय भी के । (गी० १।१२)

भीष-(सं० भिष्ठा)-भिष्ठा, माँगने पर मिली वस्तु । उ० भूसुर मिलै न भीष । (दो० ४२७)

भीत-(सं०)-डरा हुआ, भयभीत । उ० भारी भीत भियो हौं । (वि० १८१)

भीतर-(सं० आभ्यंतर)-बीच, मध्य, अंदर । उ० बाहर भीतर भीर न बनै बखानत । (जा० १४)

भीता-दे० 'भीत' । उ० लंकेस बस नाथ ! अत्यंत भीता । (वि० २८)

भीति (१)-(सं०)-डर, भय । उ० इति अति भीति ग्रह-प्रेत । (वि० २८)

भीति (२)-(सं० भित्ति)-दीवार । उ० सुन्य भीति पर चित्र रंग नहि तनु बिनु लिखा चितेरे । (वि० १११)

भीती-दे० 'भीति (१)' तथा 'भीति (२)' ।

भीम-(सं०)-१. पाँच पाँडवों में एक, २. भीषण, भयानक, ३. शिव । उ० १. पाँचहि मारि न सौ सके सयो सँहारे भीम । (दो० ४२८) २. बिजुष बैद्य भव भीम रोग के । (मा० १।३२।२)

भीमता-भयंकरता । उ० भीमता निरखि कर नयन ढाँके । (क० ६।४५)

भीर (१)-(१)-भीड़, लोगों का समूह । उ० १. बाहर भीतर भीर न बनै बखानत । (जा० १४)

भीर (२)-(सं० भीरु)-१. डरपोक, २. कोमल हृदयवाला ।

भीर (३)-(सं० भी)-डर । भीरहि-डर को, भय को । उ० कस न भजहु भंजन भव भीरहि । (मा० ७।३०।४)

भीरा (१)-दे० 'भीर (१)' ।

भीरा (२)-दे० 'भीर (२)' । उ० सील सनेह न छाड़िहि भीरा । (मा० २।७६।२)

भीरा (३)-दे० 'भीर (३)' । उ० परचर घातक लाज न भीरा । (मा० १।६७।२)

भीरु-(सं०)-डरपोक, कायर । उ० दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु । (क० ७।१७४)

भील-(सं० भिल्ल)-एक जंगली जाति, कोल । उ० सुकृत सील भील भामो । (वि० २२८) भीलनी-१. भील की स्त्री, २. शवरी । उ० २. भीलनी को खायो फल । (वि० १८३)

भीषण-(सं०)-भयंकर, भयानक । उ० भीषणाकार, भैरव भयंकर । (वि० ११)

भीषण-दे० 'भीषण' ।

भीष्म-(सं०)-१. भयानक, २. शांतनु के पुत्र ।

भुअंग-दे० 'भुजंग' ।

भुअंग-दे० 'भुजंग' । उ० तुलसी चंदन-बिटप बसि बिनु विष भये न भुअंग । (दो० ३३७) भुअंगिनि-सर्पिणी । उ० भय भंजनि अम भेक भुअंगिनि । (मा० १।३१।४)

भुअंगिनि-दे० 'भुअंगिनि' ।

भुअंगू-(सं० भुजंग)-साँप, सर्प । उ० मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू । (मा० २।४०।१)

भुअन-दे० 'भुवन' ।

भुआल-दे० 'भुवाल' । उ० होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत । (मा० १।१५।१)

भुआला-दे० 'भुवाल' । उ० दुइकि होइ एक समय भुआला । (मा० २।३५।३)

भुआल-दे० 'भुवाल' । उ० कहइ भुआल सुनिय सुनिनायक । (मा० २।३।१)

भुआल-दे० 'भुवाल' । उ० राम राम रट बिकल भुआल । (मा० २।३७।१)

भुइ-(सं० भूमि)-पृथ्वी पर, धरती पर । उ० उमगी चलेउ आनंद भुवन भुइ बादर । (जा० २।१०)

भुक्ति-(सं०)-लौकिक सुख । उ० भुक्ति मुक्तिदायिनि भय-हरनि कालिका । (वि० १६)

भुजंग-दे० 'भुजंग' । उ० भुजंग-भोग भुजदंड, कंज दर चक्र गदा बनि आई । (वि० ६२)

भुजंग-(सं०)-साँप । उ० जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने । (मा० १।११२।१)

भुजंगा-दे० 'भुजंग' । उ० नयन तीनि उपवीत भुजंगा । (मा० १।६२।२)

भुज-(सं० भुजा)-बाँह, बाहु । उ० नाग सुंद सम भुज-चारी । (वि० ६३) भुजन-भुजापूँ । भुजनि-भुजाबाँ ।

उ० भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी । (गी० १११०७)
 भुजन्ह-भुजाएँ । भुजहिं-भुजा में । उ० जुग अंगुलकर बीन
 सब रामभुजहि मोहि तात । (मा० ७७७६ क)
 भुजबीहा-बीस भुजाओंवाला, रावण । उ० साँचेहु मैं
 लबार भुजबीहा । (मा० ६३४१४)
 भुजग-दे० 'भुजंग' । उ० भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी ।
 (मा० १११०६१४)
 भुजगेंद्र-(सं० भुजगेंद्र)-शेषनाग, सर्पों का राजा । उ०
 संसार-सार भुजगेंद्र हार । (वि० १३)
 भुजदंड-बाहु, भुजा । उ० चंड भुजदंड खंडनि बिहंडनि
 महिष । (वि० १५)
 भुजा-(सं०) बाँह, भुज । उ० सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई ।
 (मा० १११६५३)
 भुवि-दे० 'भुवि' । उ० सुर रंजन सज्जन सुखद हरिभंजन
 भुवि भार । (मा० १११३६)
 भुलाई-(सं० विह्वल)-१. भूल, भूलने का भाव, २. भूल
 गये । उ० १. फिरत अहेरें परेउँ भुलाई । (मा० १।
 १५६३) भुलान-भूला, भूला हुआ । उ० बालक भभरि
 भुलान फिरहिं घर हेरत । (पा० ११६) भुलाना-दे०
 'भुलान' । उ० तव माया बस फिरउँ भुलाना । (मा० ४।
 २।५) भुलानी-भूल गई । भुलाने-१. भूले, भूले हुए, २.
 भूल गये, भूले । उ० २. लच्छन तासु बिलोकि भुलाने ।
 (मा० १११३१) भुलाव-(सं० विह्वल)-१. भुलवाया, २.
 भूलने का भाव । भुलावा-भुलवाया, भटकाया । उ० जेहिं
 सूकर होइ नृपहि भुलावा । (मा० १११७०२)
 भुवंग-दे० 'भुजंग' ।
 भुवगिनि-दे० 'भुवगिनि' ।
 भुव-(सं० भ्रू)-भृकुटी, भौहें । उ० गहन-दहन-निरदहन-
 लंक, निःसंक बंक भुव । (ह० १)
 भुवन-(सं०)-१. लोक, जगत, २. १४ भुवन, ३. १४ की
 संख्या । उ० १. भूनाथ श्रुतिमाथ जय भुवन भर्ता । (वि०
 ५५)
 भुवाल-(सं० भूपाल)-राजा, नरेश । उ० बन तें आइ कै
 राजा राम भए भुवाल । (गी० ७।१)
 भुवि-(सं० भू)-पृथ्वी, ज़मीन ।
 भुशुंढि-दे० 'भुशुंढी' ।
 भुशुंढी-(सं०)-काक भुशुंढी ऋषि ।
 भुसुंड-(सं० भुशुंढ)-बहुत मोटे शरीरवाला ।
 भुसुंडा-दे० 'भुशुंढी' । उ० गयउ गरुड जहँ बसइ भुसुंडा ।
 (मा० ७।६३।१)
 भुसुंढि-दे० 'भुशुंढी' । उ० कहा भुसुंढि बखानि सुना बिहग
 नायक गरुड । (मा० १११२० ख) भुसुंढिहि-भुशुंढी को ।
 उ० सोइ सिव कागभुशुंढिहि दीन्हा । (मा० १।३०।२)
 भुसुंढी-दे० 'भुशुंढी' ।
 भुजब-(सं० भुज)-भोगेंगे, भोग सकेंगे । उ० राजु कि
 भुजब भरतपुर नृपु कि जिइहि बिलु राम । (मा० २।४६)
 भू-(सं०)-पृथ्वी । उ० कपट भू भट अंकुरे । (मा० ६।६६।
 छ० १)
 भूख-(सं० भुभुखा)-भोजन करने की इच्छा । उ० दास
 तुलसी रही नयननि दरस ही की भूख । (गी० ५।६)

भूखा-जिसे भूख लगी हो । उ० मुदित सुअसनु पाइ
 जिमि भूखा । (मा० २।१११।३) भूखी-जिसे भूख लगी
 हो । 'भूखा' का स्त्रीलिंग । उ० मृगिन्ह चितव जनु
 बाविनि भूखी । (मा० २।५१।१) भूखे-कुधित, जिसे
 भूख लगी हो । उ० एक भूखे जानि आगे आने कंद
 मूल फल । (क० ५।३०)
 भूचरं-दे० 'भूचर' । उ० डाकिनी-शकिनी-खेचरं-भूचरं ।
 (वि० ११) भूचर-(सं०)-१. पृथ्वी पर चलनेवाले जीव,
 २. भूत-प्रेत, ३. शिव, ४. एक प्रकार की सिद्धि ।
 भूत-(सं०)-१. प्राणी, जीव, २. शिव के गण, ३. शरीर,
 ४. पिशाच, जिद । उ० १. भूत द्रोहरत मोह बस । (मा०
 ६।७८) २. भूत-प्रेत-प्रमथाधिपति । (वि० ११) ४. भूत-
 ग्रह-बेताल-खग-मृगालि-जालिका । (वि० १६)
 भूतनाथ-(सं०)-शंकर, महादेव । उ० तुलसी की सुधरै
 सुधारे भूतनाथ ही के । (क० ७।१६८)
 भूतल-पृथ्वी, ज़मीन का धरातल । उ० सब खल भूप भए
 भूतल-भरन । (वि० २४८)
 भूता-दे० 'भूत' ।
 भूति-(सं०)-१. वैभव, संपत्ति, ऐश्वर्य, २. राख, भस्म,
 ३. मौच । उ० १. कीरति भनिति भूति भलि सोई ।
 (मा० १।१४।५) २. भव अंग भूति मतान की । (मा०
 १।१०। छं० २)
 भूतेस-(सं० भूतेश)-शंकर ।
 भूधर-(सं०)-१. पर्वत, पहाड़, २. पृथ्वी को धारण करने-
 वाले, ३. शेषनाग, ४. विष्णु, ५. राजा । उ० १. कनक
 भूधराकार सरीरा । (मा० ५।१६।४) २. जय इंद्रिरारमण
 जय भूधर । (मा० ७।३४।२) भूधरन-१. दे० 'भूधर',
 २. 'भूधर' का बहुवचन, बहुत से पर्वत । भूधरनि-
 पहाड़ों । उ० अति ऊँचे भूधरनि पर भुजगन के अस्थान ।
 (वै० ३६)
 भूप-(सं०)-राजा । उ० सेवा अतुरूप फल देत भूप कूप
 ज्यों । (क० ७।२४) भूपहिं-राजा को । उ० बोलि व्याहि
 सिय देत दोष नहि भूपहिं । (जा० ७७) भूपहिं-
 राजा को ।
 भूपतहि-राजपद को, भूप के पद को । उ० चहत न भरत
 भूपतहि मोर । (मा० २।३६।१) भूपता-(सं०) राजपद ।
 भूपति-१. राजा को, राजा के । भूपति-(सं०) राजा । उ०
 शिव धनु भंजि निदरि भूपति भूगनाथ खाइ गये ताउ ।
 (वि० १००) भूपतिहि-भूपति को ।
 भूपा-दे० 'भूप' ।
 भूपाल-(सं०)-राजा । उ० रुचिर रूप भूपाल मनि नौमि
 राम । (वि० ५३)
 भूपाला-दे० 'भूपाल' । उ० तात राम तहिं नर भूपाला ।
 (मा० ५।३६।१)
 भूपु-दे० 'भूप' । उ० पछिले पहर भूपु नित जागा ।
 (मा० २।३८।१)
 भूभुरि-(?)-गर्म रेत । उ० पौछि पसेउ बयारि करौं अ
 पाय पखारि हौं भूभुरि ठाढ़े । (क० २।१२)
 भूमि-(सं०)-पृथ्वी, ज़मीन । उ० भूमि-उद्धरज
 धारी । (वि० ५६) ~~उ० काळा कीड़ा ।~~

उ० कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहिं कियो भौतुवा भौर को हैं। (वि० २२६)
 भौर-(सं० अमण)-१. पानी का आवर्त, चक्कर, २. वह घूमनेवाली अँकड़ी जिसमें झूले की डोरी बँधी रहती है। उ० २. चार पाटि पटी पुरट की फरकत मरकत भौर। (गी० ७।१६)
 भौरा-(सं० अमर)-१. एक उड़नेवाला काला कीड़ा। अमर। यह फूलों का रस लेता फिरता है। २. एक प्रकार का खिलौना। उ० २. खेलत अवध खोरि, गोली भौरा चक डोरि। (गी० १।४१)
 भौह-(सं० अ)-भृकुटी, भौं। उ० पिय तन चितय भौह-करि बाँकी। (मा० २।११७।३) भौह-‘भौह’ का बहु-वचन। उ० माखे लखन कुटिल भौह भौहें। (मा० १।२६२।४)
 भौचक-(?)—अकस्मात्, सहसा।
 भौतिक-(सं०)-१. भूत-संबंधी, भूत का, २. भूतों से उत्पन्न। उ० २. दैहिक दैविक भौतिक तापा। (मा० ७।२१।१)
 भौम-(सं०)-मंगल। उ० सिय आता के समय भौम तहँ आयउ। (जा० १।६६)
 भौमवार-(सं० भौमवार)-मंगलवार। उ० नौमी भौमवार मधुमासा। (मा० १।३४।३)
 भ्रम-(सं०)-१. भूल, मिथ्या ज्ञान, २. धूमना। उ० १. निज सदेह मोह भ्रम हरनी। (मा० १।३१।२)
 भ्रमत-(सं० अम)-भटकते हैं। उ० भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निजि काल कर्म गुननि भरे। (मा० ७।१३।छं०१)
 भ्रमति-१. धूमता है, २. भूलता है, ३. धूमती है। भ्रमहि-धूमते हैं। भ्रमही-१. धूमते हैं, २. भूलते हैं।

भ्रमाही-(सं० अम)-भटकते हैं। उ० हरिमाया बस जगत भ्रमाही। (मा० १।११६।३) भ्रमि-भ्रमित होकर। उ० कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै। (वि० ६३)
 भ्रमर-(सं०)-भौरा। उ० भ्रमर द्वै रवि किरनि ल्याये करन जनु उनमेखु। (गी० ७।६)
 भ्रमित-अम में पड़ा।
 भ्रमु-दे० ‘अम’।
 भ्रष्ट-(सं०)-पतित, च्युत, गिरा, अधर्मी, अशुद्ध। उ० अस्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहि काना। (मा० १।१८३। छं० १)
 भ्राज-(सं० अजज)-सुशोभित है, सुन्दर लगता है। उ० भ्राज बिभुआपगा आप पावन परम। (वि० ११)
 भ्राजत-शोभित होता है। उ० गज मनिमाल बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई। (वि० ६२) भ्राजहि-शोभित होता है। उ० बहु मनि रचित फरोखा भ्राजहि। (मा० ७।२७।४) भ्राजही-दे० ‘भ्राजहि’। भ्राजा-१. शोभित हुआ, २. शोभित है। उ० १. राम बास बन संपति भ्राजा। (मा० २।२३६।३) भ्राजी-सुशोभित हुई।
 भ्राजमानं-शोभायमान। उ० मृदुल बनमाल उर भ्राजमानं। (वि० ५१)
 भ्रात-दे० ‘भ्राता’। उ० तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात। (मा० ६।११६ क) भ्रातन्ह-भाइयों। भ्रातहि-भाई को। भ्रातहि-भाई से। उ० तब भ्रातहि पँछेउ नयनागर। (मा० ६।६६।१)
 भ्राता-(सं०)-भाई, बंधु। उ० बिबिध रूप भरतादिक भ्राता। (मा० ७।८१।४)
 भ्रू-(सं०)-भौह। उ० सोइ प्रभु भू विलास खगराजा। (मा० ७।७२।१)

म

मंगन-(सं० मार्गण)-माँगेवाला, दरिद्री, भिखारी। उ० जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि। (क० ७।७३)
 मंगल-(सं०)-१. कुशल, कल्याण, शुभ, २. मांगलिक कार्य, ३. एक प्रसिद्ध ग्रह, ४. मंगलवार, ५. आनंद, सुख, ६. मंगल के गीत, ७. शुभ लक्षण। उ० १. सुभ दिन रच्यौ स्वयंवर मंगलदायक। (जा० ३) २. राम सुमंगल हेतु सकल मंगल किए। (जा० १।३८) ५. जुवतिन्ह मंगल गाइ राम अन्हवाइय हो। (रा० ३) ६. होहि सगुन सुभ मंगल जनु कहि दीन्हेउ। (जा० ३।४) मंगलानाम-मंगलों के। उ० मंगलानां च कर्तारी वंदे वाणी विनायकौ। (मा० १।१। श्लो० १)
 मंगलचार-(सं० मंगलचार)-किसी शुभ कार्य में होनेवाले गीत, बधावा आदि मांगलिक कार्य। उ० घर-घर मंगलचार एक रस हरचित रंक गनी। (गी० ७।२०)

मंगला-(सं०)-पार्वती। उ० बर प्रथम बिरवा बिरँचि बिरचो मंगला मंगल मई। (पा० १८)
 मंगलामुखी-(सं० मंगल + मुखी)-रंडी, वेश्या।
 मंगलु-दे० ‘मंगल’। उ० १. एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु। (मा० २।७)
 मँगाइ-(सं० मार्गण)-मँगाकर। मँगाई-१. मँगाया, मँगावाया, २. मँगाकर। मँगाए-मँगावाए। मँगावा-मँगावाया। मँगि-मँगा। उ० दिव्य-देह इच्छा-जीवन जग विधि मनाइ मँगि लीजै। (गी० ३।१६)
 मंच-(सं०)-बैठने की ऊँची जगह। मंचन्ह-मंचों। उ० सब मंचन्ह तें मंचु एक सुन्दर बिसद बिसाल। (मा० १। २४४)
 मंचु-दे० ‘मंच’। दे० ऊपर।
 मंजरि-दे० ‘मंजरी’। उ० मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा। (मा० १।३४६।३)

मंजरिय-दे० 'मंजरी' । उ० मरकत मय साखा, सुपत्र मंज-
रिय लच्छु जेहि । (क० ७१११५)
मंजरी-(सं०)-तुलसी आदि कुछ विशेष पौदों के फूल,
बौर । उ० उरसि बनमाल सुविशाल, नव मंजरी आत
श्रीबत्स-लाङ्घन उदारम् । (वि० ६१)
मँजा-(सं० मार्जन)-मँजा, मँजा हुआ ।
मंजिर-(सं० मंजीर)-१. पैर का बजनेवाला गहना, पाजेब,
नूपुरयुक्त पाजेब, २. करधनी, घुँघरुदार करधनी, ३.
घुँघरू ।
मंजीर-(सं०)-दे० 'मंजिर' । उ० १. मंजीर नूपुर कलित
कंकन ताल गति बर बाजहीं । (मा० १३२२। छं० १)
२. हाटक-घटित जटित मनि कटितट रट मंजीर । (गी०
७।२१)
मंजु-(सं०)-१. मनोहर, सुन्दर, २. मधुर, ३. अच्छा ।
उ० १. बाल मृग मंजु-खंजन-बिलोचनि, चंद्रबदनि, लखि
कोटि रति मार लाजै । (वि० १५) मंजुतर-अधिक सुंदर ।
उ० मंजुतर मधुर मधुरकर गुंजारे । (गी० १।३५)
मंजुल-(सं०)-सुन्दर, मनोहर । उ० मंजुल प्रसून माथे
मुकुट जयनि के । (क० २।१६) मंजुलौ-दोनों सुन्दर । उ०
कोसलेंद्र पद कंज मंजुलौ कोमलाब्ज महेश वंदितौ ।
(मा० ७।१। श्लो० २)
मंजुलता-(सं०)-सुन्दरता ।
मंजुलताई-दे० 'मंजुलता' । उ० तन की दुति स्याम सरो-
रुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरै । (क० १।३)
मंजुषा-(सं०)-संदूक, पिटारा ।
मँझारि-(सं० मध्य)-बीच, में । उ० कियो लीन सुआपु में
हरि राजसभा मँझारि । (वि० २१४)
मँझारी-दे० 'मँझारि' ।
मंड-(सं०)-माँड़, भात का पानी ।
मंडन-दे० 'मंडन' । उ० २. दिनेश वंश मंडन । (मा० ३।
४। छं० ४) मंडन-(सं०)-१. शृंगार करना, सजाना, २.
भूषण, अलंकार, ३. खंडन का उलटा । उ० २. मुनि
रंजन महि मंडल-मंडन । (मा० ६।११५।५)
मंडप-(सं०)-१. विश्राम का स्थान, २. बारहदरी, ३.
उत्सव आदि के लिए बना स्थान, रंगभूमि, ४. शामि-
याना । उ० ३. कपट नारि-बर-बेष बिरचि मंडप गई ।
(जा० १।४७)
मंडरानी-दे० 'मंडरानी' ।
मंडल-(सं०)-१. सूर्य या चंद्र के बाहर की परिधि, २.
घेरा, ३. गोल, वृत्ताकार, ४. चक्र, ५. समाज, ६. सैनिकों
की स्थिति विशेष, ७. समूह, संघात, ८. ग्रहों के घूमने
का कक्ष, ९. शरीर, १०. ऋग्वेद के खंड । उ० ३. पुनि
नभ धनु मंडल सम भयऊ । (मा० १।२६।१३) ८. जनु
उडुगन-मंडल बारिद पर नवग्रह रची अथाई । (वि० ६२)
मंडलिहि-मंडली को, समूह को । उ० करि प्रनासु मुनि
मंडलिहि, बोले गदगद बैन । (मा० २।२।१०) मंडलीं-
मंडली में, समूह में । उ० खल मंडलीं बसहु दिनु-
राती । (मा० १।४६।३) मंडली-(सं०)-१. समूह,
समाज, २. विल्ली, ३. सूर्य, ४. वट वृक्ष । उ० १. दे०
'मंडलीक' ।

मंडलीक-(सं०)-राजा, राजाओं का राजा । उ० मंडलीक-
मंडली-प्रताप-दाप दालि री । (क० १।१२)
मंडि-(सं० मंडन)-विभूषित करके, शोभा बढ़ाकर । उ०
मंडि मेदनी को मंडलीक-लीक लोपिहैं । (मा० ६।१)
मंडे-१. रचे, २. सुशोभित करे । उ० १. जाय सो सुभट
समर्थ पाइ रन रारि न मंडे । (क० ७।१।१६)
मंडित-(सं०)-सजाया हुआ, भूषित, सुशोभित । उ० रत्न
हाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भानु सुत-सदस-उद्योत-
कारी । (वि० ५१)
मंडूक-(सं०)-१. मेढक, २. एक मुनि ।
मंत-दे० 'मंत्र' । उ० १. मंदमति कंत सुनु मंत रहाको ।
(क० ६।२१)
मंत्र-(सं०)-१. रहस्यपूर्ण बात, भेद की बात, १. अ. परा-
मर्श, राय, २. गुरु का उपदेश, ३. तंत्र के वे शब्द या शब्द
समूह जिनके द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते हैं या किसी
कार्योदि की सिद्धि करते हैं । ४. इच्छा । उ० १. अ. अथ
सो मंत्र देहु प्रभु मोही । (मा० ३।१३।२) ३. यंत्र मंत्र
भंजन, प्रबल कल्पपारी । (वि० ११) ४. मंडलीक मनि
रावन राज करइ निज मंत्र । (मा० १।१८।२ क) मंत्रराजु-
मंत्रों का राजा, राम का नाम । उ० मंत्रराजु नित जपहि
तुम्हारा । (मा० २।१५।६।३) मंत्राभिचार-मंत्रों का
प्रयोग ।
मंत्रिन्हि-मंत्रियों, मंत्रियों के । उ० मंत्रिन्ह सहित इहाँ
एक बारा । (मा० ४।५।२) मंत्रिहि-मंत्रों को । उ० मंत्रिहि
राम उठाइ प्रबोधा । (मा० २।६।११) मंत्री (सं० मंत्रिन्)-
परामर्श देनेवाला, राज्य-सचिव, अमात्य । उ० मंत्री
मुदित सुनत प्रिय बानी । (मा० २।५।३)
मंत्रु-दे० 'मंत्र' । उ० १. अ. चले साथ अस मंत्रु दढ़ाई ।
(मा० २।८।४४)
मंथरा-(सं०)-कैकेयी की दासी जिसके बहकाने से कैकेयी
ने दशरथ से राम को बन भेजने तथा भरत को राज्य देने
का अनुरोध किया था । उ० नाम मंथरा मंद मति, चेरी
कैकह करि । (मा० २।१२)
मंद-(सं०)-१. जो तेज न हो, सुस्त, २. नीच, तुच्छ, ३.
मूर्ख, ४. पापी, ५. गड्ढा, ६. धीमा, धीरे-धीरे चलने-
वाला । उ० १. मंदमति कंत सुनु मंत रहाको । (क० ६।
२१) २. मंदजन-मौलि-मनि, सकल-साधनहीन । (वि०
२।११) ६. सीतल सुगंध सुमंद मारुत । (मा० १।८।६।
छं० १) मंदतर-१. अधिक नीच, २. अधिक मूर्ख । उ०
१. होहि बिषय रत मंद मंदतर । (मा० ७।१२।१६) मंदेहि-
मंद को, बुरे को । उ० भलेहि मंद मंदेहि भल करहु ।
(मा० १।१३।७।१)
मंदर-दे० 'मंदर' । मंदर-(सं०)-१. मंदराचल नाम का पर्वत,
२. पर्वत । उ० २. गहि मंदर बंदर भालु चले । (क० ६।३४)
मंदरु-दे० 'मंदर' । उ० १. मंदरु मेरु कि लेहि मराला ।
(मा० २।७।२।२)
मंदा-दे० 'मंद' । बुरा, जो अच्छा न हो । उ० जोग बियोग
भोग भल मंदा । (मा० २।६।२।३)
मंदाकिनि-दे० 'मंदाकिनी' । उ० सुरसरि धार नाउँ मंदा-
किनि । (मा० २।१३।२।३)

मंदाकिनी-(सं०)-गंगा नदी । उ० राम कथा मंदाकिनी चित्रकूट चित्त चारु । (मा० १।३१)
 मंदिर-(सं०)-१. महल, मकान, घर, २. देवालय । उ० १. बैठ जाइ तेहि मंदिर रावन । (मा० ६।१०।४) मंदिरन्ह-महलों में, मंदिरों पर । उ० कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भए । (मा० ७।४१। छं० १)
 मंदोदरि-दे० 'मंदोदरी' । उ० मय तनुजा मंदोदरि नामा । (मा० १।१७८। १)
 मंदोदरी-(सं०)-रावण की स्त्री और मय दानव की पुत्री । उ० मंदोदरी आदि सब रानी । (मा० ५।६।२)
 मंदोवै-(सं० मंदोदरी)-मंदोदरी, रावण की स्त्री । उ० तुलसी मंदोवै रोइ-रोइ कै बिगोवै आपु । (क० ५।११)
 म-(सं०)-मघा नक्षत्र । उ० अगुन पूगुन विअजक म, आ भ अ भू शुनु साथ । (दो० ४५७)
 मइकें-(सं० मातृ)-(?)-नैहर में, पीहर में । उ० मइकें ससुरें सकल सुख जबहि जहाँ मनु मान । (मा० २।६६)
 मइत्रो-(सं० मैत्री)-मित्रता, मैत्री ।
 मई-(सं० मय)-युक्त, मय, वाली । उ० है तुलसिहि पर-तीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है । (वि० १७०)
 मकरंद-(सं०)-१. फूल का रस, २. फूलों की धूल, पराग । उ० १. विष्णु-पद कंज मकरंद-इव अंजु बर । (वि० १८)
 मकरंदा-दे० 'मकरंद' । उ० १. गुंजत अलि लै चलि मकरंदा । (मा० ७।२३।२)
 मकर (१)-(सं०)-१. ग्राह, मगर, २. कामदेव की ध्वजा का चिह्न, ३. माघ का महीना, ४. एक राशि जिसका क्रम दसवाँ है । उ० १. मकर षडवर्ग गोनक्र चक्राकुला । (वि० ५६) ४. माघ मकरगत रबि जब होई । (मा० १। ४४।२)
 मकर (२)-(फ़ा०)-छल, कपट ।
 मकरी-दे० 'मकरी' । मकरी ने । उ० १. सर पैठत कपि पद गहा मकरी तब अकुलान । (मा० ६।५७) मकरी-(सं०)-१. मकर की स्त्री, ग्राह की मादा, २. एक कीड़ा, मकड़ी । उ० २. संकट सोच सबै तुलसी लिप नाम फटै मकरी के से जाले । (ह० १७)
 मकु-(?)-चाहे, बल्कि । उ० गगलु मगन मकु मेघहि मिलई । (मा० २।२३।१)
 मकुट-दे० 'मुकुट' ।
 मख-(सं०)-यज्ञ, क्रतु । उ० मख राखिबे के काज राजा भेरे संग दये । (क० १।२१)
 मखपाल-(सं०) यज्ञ की रक्षा करनेवाले । उ० मुनि मखपाल कृपाल प्रभु चरन कमल उर आपु । (प्र० १।३।५)
 मखु-दे० 'मख' ।
 मग (१)-(सं० मार्ग)-रास्ता, पथ । उ० ठाढ़ी मग लिचे रीते भरे घट हैं । (क० २०)
 मग (२)-(सं० मगध)-मगध नाम का देश । उ० कासी मग सुरसरि क्रमनासा । (मा० १।६।४)
 मंगन-(सं० मग्न)-१. लीन, डूबा, तल्लीन, २. प्रसन्न । उ० १. आधि मगन मन । (वि० १६५) २. तहँ मगन मज्जति पान करि । (वि० १३६)
 मगर-(सं० मकर)-ग्राह, मच्छ ।

मगरा-(?)-१. ढीठ, २. घमंडी, अहंकारी ।
 मगराई-ढिठाई, घुण्टता ।
 मगसिर-(सं० मार्गशीर्ष)-अगहन का महीना ।
 मगह-मगध देश में । उ० मगहँ गयादिक तीरथ जैसे । (मा० २।४३।४) मगह-(सं० मगध)-मगध का देश । इसे पवित्र माना गया है ।
 मगाइ-(सं० मार्गण)-मँगाकर । उ० जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रव्य मगाइ । (मा० ७।१० क) मगाई-दे० 'मँगाई' । उ० १. राम सखाँ तब नाव मगाई । (मा० २। १५१।२) मँगावा-मँगावाया । उ० होत प्रात बट डीर मगावा । (मा० २।१५१।१)
 मगु-(सं० मार्ग)-रास्ता, मग । उ० कोपित कलि लोपित मंगल-मगु बिलसत बढ़त मोह-माया-मलु । (वि० २४)
 मगन-(सं०)-दे० 'मगन' ।
 मगे-(सं० मगन)-मग्न हो गये । उ० तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेस आनंद-रंग-मगे । (पा० ६६)
 मघवा-(सं० मघवन्)-हंद्र । उ० मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत । (मा० २।३०।१)
 मघवान-दे० 'मघवा' । उ० सरिस स्वान मघवान जुबानू । (मा० २।३०।२।४)
 मघा-(सं०)-एक नक्षत्र का नाम । उ० मानहु मघा मेघ भरि लाई । (मा० २।७३।२)
 मचत-(?)-मचता है, होता है । उ० अति मचत कृत कुटिल कच छबि अधिक सुंदर पावहीं । (गी० ७।१६)
 मची-१. फैल गई, छा गई, २. हुई, हो गई । उ० १. मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा । (मा० १।१६।४।४)
 मचला-(?)-१. मचलनेवाला, हठी, २. मचला हूँ, अड़ गया हूँ । उ० २. हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लागि हरयो हौं । (वि० २६७) मचलाई-हठ, बाल हठ, अड़ना । उ० सागर सन ठानी मचलाई । (मा० ५।५६।३)
 मच्छर-(सं० मशक)-मच्छर, एक उड़कर काटनेवाला छोटा कीड़ा । उ० लोभ मोह मच्छर मद माना । (मा० ५। ४७।१)
 मजा-(सं० मज्जा)-फेन, भाग । उ० दीन मलीन छीन तनु डोलत मीन मजा सों लागे । (क० ३५)
 मजार-(सं० मार्जार)-बिल्ली, विलाव । उ० तुलसी सिख-वत नाहिँ सिनु मूषक हनत मजार । (सं० १६१)
 मजूर-(फ़ा० मजदूर)-सेवक, काम करनेवाला ।
 मजूरी-सेवा, टहल । उ० बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी । (मा० २।१०।२।३)
 मज्जत-(सं० मज्जन)-१. स्नान करते हुए, २. स्नान करता या करते हैं । उ० २. मज्जत पय पावन पीवत जलु । (वि० २४)
 मज्जन-(सं०)-स्नान, नहाना । उ० मज्जन पान पाप हर एका । (मा० १।१५।१)
 मज्जनु-दे० 'मज्जन' । उ० मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ । (मा० २।८।४)
 मज्जसि-स्नान करता है । उ० तह मगन मज्जसि पान करि । (वि० १३६) मज्जहि-स्नान करते हैं, नहाते हैं । उ०

मज्जुज मज्जहि सुकृत पुंज जुत कामिनी । (वि० १८)
 मज्जिज-स्नान करके, नहाकर । उ० मकर मज्जि गधनहि
 सुनि बुंदा । (मा० १४५११)
 मज्जा-(सं०)-चर्बी, मेद । उ० बीर परहि जलु तीर तर
 मज्जा बहु बहु फेन । (मा० ६१८७)
 मज्जित-(सं०) डूबा हुआ, लीन ।
 मम्मार-(सं० मध्य)-में, बीच, अंदर ।
 मम्कारी-दे० 'मँकारी' । उ० कृदि परा सुनि सिंधु मम्कारी ।
 (मा० ५१२६१४)
 मटक-(सं० मट)-चंचलता, मटकना ।
 मठी-(सं० मठ)-निवासस्थान, वास । उ० तिन्हकी छठी,
 मंजुल मठी, जग सरस जिन्हकी सरसई । (गी० ११५)
 मडरानी-(सं० मंडल)-धेरा देकर घूमने लगी, चक्कर काटने
 लगी । उ० सुनि सनेहमय वचन निकट हैं मंजुल मंडल
 कै मडरानी । (गी० ६१२०)
 मढ़-(सं० मट)-घर, कुटी, भोपड़ी । उ० चदि गढ़ मढ़ दह
 कोट के कँगुरे कोपि । (क० ६११०)
 मढी-(सं० मट) कुटी, भोपड़ी ।
 मढे-(सं० मंडन) मढ़े हुए, वेष्टित । उ० मढे से खवन नहि
 सुनति पुकारे । (गी० ५११८)
 मढैया-छोटा छप्पर, छोटी भोपड़ी ।
 मढैहौं-मढ़ाऊँगी । उ० दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच
 मढैहौं । (गी० ६११६)
 मणि-(सं०)-१. बहुमूल्य पत्थर, रत्न, २. उच्च, श्रेष्ठ,
 उत्तम । मणो-हे मणि । मतवारा-मतवाले । दे० 'मतवारा' ।
 उ० दिव्य-भूर्यजना-मंजुलाकर-मणो । (वि० २६)
 मतंग-(सं०)-१. हाथी, २. शवरी के गुरु एक ऋषि । उ०
 १. श्रुमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे मदअंबु चुचाते ।
 (क० ७१४४)
 मत-(सं०)-१. सम्मति, राय, २. सिद्धान्त, ३. उपदेश ।
 उ० २. पढिबो परयो न छठी छमत, ऋगु जलुर अथर्वन
 साम को । (वि० १५५)
 मतवारा-(सं० मत्त + वाला)-१. पागल, उन्मत्त, २. मस्त,
 प्रसन्न, ३. नशा में चूर । मतवारे-मतवाले । दे० 'मतवारा' ।
 उ० ३. जिमि मद उतरि गएँ मतवारे । (मा० ११८६१३)
 मतवाला-दे० 'मतवारे' ।
 मता-दे० 'मत' ।
 मति-(सं०)-१. बुद्धि, समझ, अक्ल, २. राय, सलाह ।
 उ० १. नकरु बिलंब बिचारु चारु मति, बरष पाछिले सम
 अगिलो पलु । (वि० २४) मते-दे० 'मत' । मति में, राय
 में । उ० मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहि
 सो थोर । (मा० २१२३३)
 मतु-दे० 'मत' ।
 मतेई-(सं० विमातु)-विमाता, मैभा । उ० काय मन बानी
 हूँ न जानी कै मतेई है । (क० २१३)
 मतो-दे० 'मत' ।
 मत्त-(सं०)-१. उन्मत्त, मतवाला, पागल, २. मस्त, ३.
 प्रसन्न, ४. गर्वीला, ५. उग्र, विकट । उ० १. यालुधान-
 प्रलुर-मत्तकरि-केसरी भक्त-मन पुन्य-आरन्यवासी । (वि०
 ५६)

मत्सर-(सं०)-१. डाह, हसद, जलन, २. क्रोध । उ० १.
 मान-मद-मदन-मत्सर-मनोरथ-मथन मोह-अंभोधि-मंदर
 मनस्वी । (वि० ५५) मत्सराः-'मत्सर' का बहुवचन । उ०
 भजंति हीन मत्सराः । (मा० ३१४४० ७)
 मत्सरता-(सं०)-डाह, हसद ।
 मत्वा-(सं०) मानकर । उ० मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरतं
 स्वांतस्तमः शान्तये । (मा० ७११३११२७० १)
 मत्स्य-(सं०)-१. मछली, २. भगवान का प्रथम अवतार ।
 मथह-(सं० मथन)-मथे, मथन करे । मथत-१. मथता है,
 महता है, २. महते हुए, मथते समय । उ० २. मथत
 सिंधु रुद्रहि बौरायहु । (मा० १११३६१४) मथहि-मथते
 हैं, महते हैं । मथि-मथकर । उ० तब मथि कादि लेइ
 नचनीता । (मा० ७१११७१८) मथे-मथने से । उ० बारि
 मथे घृत होइ बरु सिकता ते बरु लेख । (मा० ७११२२क)
 मथे-मथन करे, मथ डाले । मथे-दे० 'मथह' । उ०
 सुदिताँ मथे विचार मथानी । (मा० ७१११७१८) मथ्यो-
 १. मथा है, मथा, २. मथा गया है । उ० १. यह
 जलनिधि खन्यो मथ्यो लँघ्यो बाँध्यो अँच्यो है । (गी०
 ६१११)
 मथन-(सं०) १. मथनेवाला, २. मथना, ३. नाश करनेवाला ।
 उ० १. जयति बिहगोस-बल बुद्धि-बेगाति-मद-मथन, मन्मथ-
 मथन ऊध्वरेता । (वि० २६) ३. कलिमल मथन नाम
 ममताहन । (मा० ७१५१५५)
 मथानी-(सं० मथन)-एक विशेष प्रकार का डंडा जिससे
 मथते हैं । उ० सुदिताँ मथे विचार मथानी । (मा०
 ७१११७१८)
 मथुरा-(सं० मथुरा)-यमुना के किनारे स्थित एक तीर्थ ।
 मथुराहि-मथुरा में । उ० तो मथुराहि महामहिमा लहि सकल
 दरनि दरिबे हो । (क० ३६)
 मद-(सं०)-१. घमंड, गर्व, २. नशा, मस्ती, मत्तता, ३.
 आनंद, प्रसन्नता, ४. मदिरा, ५. वीर्य, ६. कस्तूरी, ७.
 हाथी की कनपटी से चूनेवाला एक द्रव पदार्थ । उ० १.
 मद मत्सर अभिमान ज्ञान-रिपु इन महुँ रहनि अपारो ।
 (वि० ११७) ४. जिमि धोखें मद पानकर सचिव सोच
 तेहि भाँति । (मा० २११४४) ६. ज्यों कुरंग निज अंग
 रुचिर मद अति मतहीन मरम नहि पायो । (वि० २४४)
 ७. मद अंबु चुचाते । (क० ७१४४) मदमाता-मस्ती में
 चूर, गर्व से मतवाला । मदमाते-दे० 'मदमाता' । उ०
 बिषम कहार मार-मदमाते, चलहि न पाउँ बटोरा रे ।
 (वि० १८६) मदहारी-गर्व को दूर करनेवाला । उ०
 जनकसुता समेत आवत गृह परसुराम अति मदहारी ।
 (गी० ७१३८)
 मदन-(सं०)-१. कामदेव, २. मैनफल, ३. धतूरा । उ०
 १. मान-मद-मदन-मत्सर-मनोरथ-मथन मोह-अंभोधि-
 मंदर मनस्वी । (वि० ५५)
 मदनु-दे० 'मदन' ।
 मदा-दे० 'मद' । गर्व, अहंकार । उ० नहि राग न लोभ न
 मान मदा । (मा० ७११४७)
 मदानि-(सं० मद)-कल्याणदायिनी । उ० तुलसी संगति
 पोच की सुजनहि होति मदानि । (दो० ५३६)

मदारी—(अर० मदार)—बाज़ीगर, तमाशा दिखानेवाले ।
 मदिरा—(सं०)—शराब, दारू । उ० महिष खाइ करि मदिरा
 पाना । (मा० १६४१)
 मद्य—(सं०)—शराब ।
 मधु—(सं०)—१. शहद, २. शराब, ३. बसंत ऋतु, ४. चैत
 का महीना, ५. मीठा, ६. दूध, ७. पानी, ८. एक राक्षस
 का नाम जिसे विष्णु ने मारा था । उ० १. देति मनहुँ
 मधु माहुर घोरी । (मा० २१२२) २. मनि भाजन मधु,
 पारहुँ पूरन अमी निहारि । (दो० ३२१) ३. जनु मधु
 मदन मध्य रति लसई । (मा० २१२३) ८. महा मंगल
 मूल मोद-महिमायतन मुग्ध मधु-मथन मानद अमानी ।
 (वि० २६)
 मधुकर—(सं०)—भौरा । उ० सुक-पिक-मधुकर-मुनिवर-बिहार ।
 (वि० २३) मधुकरा-भौरों का समूह । उ० बिकसे सरन्हि
 बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा । (मा० १८६४) १
 मधुकरी—(सं० मधुकर)—वह भिक्षा जिसमें केवल पका अन्न
 लिया जाता हो । उ० माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड
 पसारि । (दो० ४६४)
 मधुप—(सं०)—भौरा, अमर । उ० आनन सरोज कच मधुप
 पुंज । (वि० १४)
 मधुपर्क—(सं०)—दही, घी, जल, शहद और चीनी का मिश्रण
 जो देवताओं को चढ़ाया जाता है । उ० मधुपर्क मंगल
 द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहै । (मा० १३२३)
 छं० १)
 मधुपुरी—(सं०)—मथुरा नगरी । उ० ब्रज बसि राम-बिलास,
 मधुपुरी चैरी सों रति मानी । (कृ० ४७)
 मधुवन—(सं०)—१. सुग्रीव के बाग का नाम, २. मथुरा का
 एक वन । उ० १. तब मधुवन भीतर सब आए । (मा०
 १२८४) २. अब नंदलाल-गवन सुनि मधुवन तनहि तजत
 नहि बार लगाई । (कृ० २५)
 मधुमास—(सं०)—चैत का महीना ।
 मधुमासा—दे० 'मधुमास' । उ० नौमी भौम बार मधुमासा ।
 (मा० १३४३)
 मधुर—(सं०)—१. मीठा, छः रसों में एक, २. सुंदर, ३.
 कोमल, ४. सुनने में अला, ५. धीरे धीरे । उ० ३. मंगल
 मूरति मोदनिधि मधुर मनोहर बेष । (प्र० ४१४) ४.
 बेष बिसद बोलनि मधुर, मन कट्ट, करम मलीन । (दो०
 १५३) ५. मधुर झुलाइ मरहावहीं । (गी० ११६)
 मधुरतर—अधिक मीठा । उ० अमृत आमोदस मत्तमधुकर-
 निकर मधुरतर सुखर कुर्वन्ति-गानं । (वि० ५१) मधुरी—
 १. मीठी, रसीली, २. माधुर्य, सौंदर्य । मधुरे—१. मीठे,
 २. सुंदर । उ० २. मधुरे दसन राजत जब चितवन मुख
 मोरी । (गी० ७७)
 मधुरता—१. मीठापन माधुरी, २. सुंदरता, ३. मृदुलता ।
 उ० १. कथा सुधा मथि काढ़ि भगति मधुरता जाहि ।
 (मा० ७१२०क)
 मधुकरी—दे० 'मधुकरी' ।
 मध्य—(सं०)—१. बीच, माँक, २. मध्यम, जो न उत्तम हो
 और न खराब, ३. कर्म, ४. १६ से १७ वर्ष तक की
 आयु । उ० १. जीव भवदंभि-सेवक-बिभीषन बसत मध्य

दुष्टाटवी प्रसिद्ध चिंता । (वि० ५८) मध्यदिवस—दोपहर ।
 उ० मध्यदिवस जिमि ससि सोहई । (मा० ६३१२)
 मध्यम—(सं०)—१. मध्य का, बीच का, २. न अच्छा न बुरा,
 ३. एक स्वर । उ० १. हित अनहित मध्यम अमफदा ।
 (मा० २१२३) २. उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज
 थल अनुहारि । (मा० १२४०)
 मध्यस्थ—(सं०)—१. तटस्थ, उदासीन, २. बिचवई, बिच-
 वैत । उ० १. सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्है बरि-
 आई । (वि० १२४)
 मध्याह्न—(सं०)—दोपहर, दिन का मध्य ।
 मन (?)—(सं० मनस्)—अंतःकरण, चित्त, जी । उ० श्री-
 रामचंद्र कृपालु भजु मन हरण-भवभय दारुण । (वि० ४४)
 मनहिं—१. मन को, २. मन में । उ० १. लोभ मनहिं नचाव
 कपि ज्यों गरे आसा डोरि । (वि० १५८) मनहि—दे०
 'मनहिं' । मनही—मन ही, जी ही । उ० मनहीं मन मागहिं
 बरु पडू । (मा० २१२४) मनहुँ—मन में भी । उ०
 मनहुँ अकाज आनै ऐसो कौन आज है ? (क० १२२)
 मन (?)—(?)—चालीस सेर की तौल ।
 मनक—(सं० मनस्)—मन भर । उ० रतिन के लालचिन
 प्रापति मनक की । (क० ७२०)
 मनजात—(सं०)—कामदेव । उ० डेरा कीन्हैउ मनहुँ तब
 कटकु हटक मनजात । (मा० २३७ ख)
 मनतेउँ—(सं० मानन)—मानता । उ० पिता बचन मनतेउँ
 नहि ओहू । (मा० ६६१३)
 मनन—(सं०)—१. चिंतन, सोचना, २. भली भाँति अध्य-
 यन करना ।
 मननशील—(सं० मननशील)—विचारशील, चिंतन करनेवाला ।
 मननशीला—दे० 'मननशील' । उ० गार्थति तव चरित सुप-
 वित्र श्रुति सेस सुक संभु सनकादि मुनि मननशीला ।
 (वि० ५२)
 मनमथ—(सं० मनमथ)—कामदेव ।
 मनमाना—यथेच्छ, मनके अनुकूल, मन भर । उ० ग्यान
 नयन निरखत मनमाना । (मा० १३७१) मनमानी—
 मन के अनुकूल । उ० कही है भली बात सब के मनमानी ।
 (कृ० ४६)
 मनरंजन—(सं० मनस् + रंजन)—मन को प्रसन्न करनेवाला ।
 उ० तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नयन सु खंजन-जातक
 से । (क० १११)
 मनशा—(अर०)—१. इच्छा, कामना, २. सम्मति, राय,
 सलाह ।
 मनसहि—इच्छा में, मन में । उ० प्रभु मनसहि लयलीन मनु
 चलत बाजि छवि पाव । (मा० १३१६) मनसहु—१. मन
 'से भी, २. कल्पना से भी । उ० १. मुनि-मनसहु ते
 अगमत पहि लायउ मनु । (पा० ३८) मनसा (?)—(सं०
 मनस्)—मन । उ० मनसा अनूप राम-रूप-रंग रई है ।
 (गी० ११६४) जिमि परद्रोह विरत मनसा के । (मा०
 ६१२२) मनसि—मन में, हृदय में । उ० बसतु मनसि
 मम कानन चारी । (मा० ३११६)
 मनसा (?)—दे० 'मनशा' । उ० १. संपत्ति सिद्धि सबै
 तुलसी, मन की मनसा चितवै चित लाए । (क० ७४५)

मनसिज-(सं०)-कामदेव । उ० धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे । (मा० ११८५)

मनसिजु-दे० 'मनसिज' ।

मनस्वी-(सं० मनस्विन्)-१. बुद्धिमान, २. स्वेच्छाचारी, स्वतंत्र ।

मनहर-(सं० मनस् + हर)-मनोहर, सुंदर । उ० मेढ़ी लटकन मसि बिंदु मुनि मनहर । (गी० ११३०)

मनहरण-मनोहर, सुंदर ।

मनहरनि-मन हरनेवाली । उ० तोतरी बोलनि, बिलोकनि मोहनी मनहरनि । (गी० ११२५)

मनहुँ-(सं० मानन)-मानो । उ० मनहुँ आदि अंभोज बिराजत सेवित सुरमुनि भृंगनि । (गी० २१५०) मनीयत-१. मानता हूँ, अंगीकार करता हूँ, २. मान, स्वीकार करे, ३. माने जाते हैं । उ०३. नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौ । (वि० १७४) मनिहै-मानेगे । उ० हैसि करिहै परतीत भगत की भगत सिरोमनि मनिहै । (वि० ६५) मनु (१)-(सं० मानन)-मानों । उ० मनु दौउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आप । (गी० ११२३) मनो-मानो, माल लो । उ० गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनये घन सावन के । (क० ६३४)

मना (१)-(अर०)-१. रोक, बर्जन, ममानियत, २. रोकना, मना करना ।

मना (१)-(सं० मनस्)-मन । उ० तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना । (मा० ११६०।छं० १)

मनाइ-(सं० मानन)-१. विनती करके, प्रार्थना करके, २. मनौती करके । उ० १. ईस मनाइ असीसहि जय जस पावहु । (जा० ३२) मनाइय-स्तुति कीजिए, प्रार्थना करनी चाहिए । उ० आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो । (रा० १) मनाई-१. मनाया, २. स्तुति या प्रार्थना की ।

मनाए-१. मनाया, २. प्रार्थना करने पर, मनाने पर । उ० १. नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए । (मा० ११२६०।२)

मनाव-मनाते हैं, प्रार्थना करते हैं, मनौती करते हैं । उ० बिधिहि मनाव राउ मन माहीं । (मा० २१४४।३) मनावउं-मनावै, प्रार्थना करूँ । मनावत-१. मनाते हैं, २. मनाता हूँ, ३. मनाते हुए, प्रार्थना करते हुए । उ० २. हौं तिनसौं करि परम बैर हरि तुम सौं भलो मनावत । (वि० १८५) ३. सुर तीरथ तासु मनावत आवत । (क० ७३४) मनावति-मनौती करती हैं । उ० बेठी सगुन मनावति माता । (गी० ६१९६) मनावन-मनाना, प्रार्थना करना । मनावहि-मनाते हैं, प्रार्थना करते हैं ।

उ० खरभर नगर नारि नर बिधिहि मनावहि । (जा० १८३) मनावहीं-प्रार्थना करते हैं । उ० जग जनमि लोचन लाहु पाए सकल सिवहि मनावहीं । (जा० ६३) मने-मनाई हो गई । उ० जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने । (वि० १६०)

मनाक-(सं० मनाक)-थोड़ा, किंचित् । उ० होत न बिसोक ओत पावै न मनाक सो । (क० ११२५)

मनाकु-दे० 'मनाक' । उ० जो दसकठ दियो बाँवों, जेहि हर गिरि कियो है मनाकु । (गी० ११८७)

मनाक-(सं० मनाक)-थोड़ा, किंचित् । उ० होत न बिसोक ओत पावै न मनाक सो । (क० ११२५)

मनाकु-दे० 'मनाक' । उ० जो दसकठ दियो बाँवों, जेहि हर गिरि कियो है मनाकु । (गी० ११८७)

मनाकु-दे० 'मनाक' । उ० जो दसकठ दियो बाँवों, जेहि हर गिरि कियो है मनाकु । (गी० ११८७)

मनाग-दे० 'मनाक' । उ० तदपि मनाग मनहि नहि पीरा । (मा० ११४५।२)

मनि-दे० 'मणि' । उ० प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनिखानी । (मा० ७।२३।४) २. अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु बिषम भवभीर । (मा० ७।१३० क) मनिन्ह-मणियाँ । मानिमय-मणियों से युक्त । उ० सिंधुर मनिमय सहज सुहाई । (मा० १।२८८।४) मनिहि-मणि को । उ० पीर कछु न मनिहि जाके बिरह-बिकल भुअंग । (क० ५४)

मनिआरा-दे० 'मनियारा' ।

मनिकर्निका-(सं० मणिकर्णिका)-काशी नगर में स्थित एक पवित्र स्थान जहाँ इसी नाम का एक कुंड है । यात्री इसमें स्नान करते हैं । उ० मनिकर्निका-बदन-ससि सुंदर, सुरसरि मुख सुषमा सी । (वि० २२)

मनियारा-मणियों से युक्त या पूर्ण । उ० बन कुसुमित गिरिगन मनियारा । (मा० १।१६१।२)

मनी (१)-(सं० मान)-गर्व, अहंकार । उ० होय मलो ऐसे ही अजहुँ गये राम-सरन परिहरि मनी । (गी० १।३६)

मनी (२)-(सं० मणि)-१. धन, २. मणि ।

मनीषा-(सं०)-अज्ञान, बुद्धि ।

मनु (२)-(सं० मनस्)-मन, चित्त, जी । उ० देखि दसा जनक की कहिबे को मनु भो । (गी० १।६४)

मनु (३)-(सं०)-१. मनुष्यों के आदि पुरुष, २. एक ऋषि जिन्होंने मनुस्मृति का प्रणयन किया ।

मनुज-(सं०)-आदमी, मनुष्य । उ० मनु दनुज तनुज बन-दहनमंडन-मही । (गी० ७।६) मनुजा-मनुष्यों को । उ० कलिकाल बेहाल किए मनुजा । (मा० ७।१०।२।३)

मनुजाद-(सं० मनुज + अद)-राक्षस, मनुष्यभक्त । उ० चित्त बैताल मनुजाद मन, प्रेतगन रोग, भोगौष बृश्चिक-बिकारम् । (वि० ५६)

मनुजादा-दे० 'मनुजाद' । उ० भएसि कालबस खल मनुजादा । (मा० ६।३३।३)

मनुष्य-(सं०)-आदमी, मानव ।

मनुसाई-(सं० मनुष्य)-१. पुरुषार्थ, पराक्रम, बल, २. भल-मनसी, आदमियत । उ० १. सोउ नहि नावेहु अलि मनुसाई । (मा० ६।३६।१)

मनुहार-(१)-१. मनौआ, खुशामद, २. विनय, प्रार्थना । मनुहारि-दे० 'मनुहार' । उ० २. तापसी कहि कहा पठवति नृपनि को मनुहार । (गी० ७।२६)

मनुहारी-दे० 'मनुहार' । उ० १. क्यों सौंज्यो सारंग हारि हिय, करी है बहुत मनुहारी । (गी० १।१०७)

मनोगति-मन की चाल । उ० तीखे तुरंग मनोगति चंचल पौन के गौनहुँ तें बढि जाते । (क० ७।४४)

मनोज-(सं०)-१. कामदेव, २. चंद्रमा । उ० १. जनु अतु राज मनोज-राज रजधानिय । (पा० ६८) २. तुलसी बिकसत मित्र लखि सकुचत देखि मनोज । (सं० ६८३)

मनोभव-(सं०)-कामदेव । उ० मनहुँ मनोभव फंद सँवारे । (मा० १।२८६।१)

मनोभूत-कामदेव । उ० मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरम् । (मा० ७।१०।८।३)

मनोभूत-कामदेव । उ० मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरम् । (मा० ७।१०।८।३)

मनोभूत-कामदेव । उ० मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरम् । (मा० ७।१०।८।३)

मनोभूत-कामदेव । उ० मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरम् । (मा० ७।१०।८।३)

मनोभूत-कामदेव । उ० मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरम् । (मा० ७।१०।८।३)

मनोरथ-(सं०)-चाह, कामना, इच्छा । उ० तजि सोइ सुधा मनोरथ करि करि को मरिहै री माई । (क० ११)
 मनोरथ-दे० 'मनोरथ' । उ० जौं बिधि पुरव मनोरथ काली । (मा० २।२३।२)
 मनोरम-(सं०)-सुंदर, अच्छा । उ० जनक-अनुज-तनया दुइ परम मनोरम । (जा० १७२)
 मनोराज-मनमाना कार्य, मन की आज्ञाओं का पालन । उ० मनोराज करत अकाज भयो आजु लगी । (क० ७।६६)
 मनोहर-(सं०)-सुंदर । उ० जान रूप मनिजटित मनोहर नूर जन सुखदाई । (वि० ६२)
 मनोहरता-सुंदरता । उ० मनहुं मनोहरता तन छाए । (मा० १।२४।१।१) मनोहरताउ-सुंदरता भी । उ० निपट असमंजसहु बिलसति मुख मनोहरताउ । (गी० ७।२५)
 मनोहरताई-सुंदरता, मनोहरता । उ० भँवर तरंग मनोहरताई । (मा० १।४०।४)
 मनीषी-(सं०)-मानन-१. मनाना, २. आराधना, ३. किसी देवता को प्रसन्न करने के लिए कोई मानसिक संकल्प । मन्मथ-दे० 'मनमथ' । उ० जयति विहगोस-बल-बुद्धि-बेगाति मद-मथन, मन्मथ-मथन ऊर्ध्वरेता । (वि० २६)
 मन्यु-(?)-१. शिव, २. यज्ञ, ३. क्रोध, ४. शोक, ५. दीनता, ६. अहंकार । उ० ५. त्यक्त मद मन्यु कृत पुण्य रासी । (वि० ५७)
 मन्वंतर-(सं०)-७१ चतुर्युगी का काल । चतुर्युगी चारों युगों के समय को कहते हैं ।
 मम-(सं०)-मेरा, मेरी । उ० ज्यों गज-दसन तथा मम करनी । (वि० १।१८)
 ममता-(सं०)-१. मोह, प्रेम, प्रीति, २. ममत्व, मेरापन । उ० १. उपजि परी ममता मन मोरें । (मा० १।१६।४।२) २. ममता जिन पर प्रभुहि न थोरी । (वि० १६)
 मम्ले-मलिन, म्लान । मम्ले-दे० 'मम्ल' । उ० तथा न मम्ले वनवास दुःखतः । (मा० २।१।श्लो० २)
 मयं-(सं०)-युक्त, सहित । उ० अबला बिलोकिहि पुरुषमय जगु पुरुष सब अबला मयं । (मा० १।८।१।१) मयं-(सं०)-१. पूर्ण, भरा हुआ, २. एक दानव जो शिल्पी था । मंदोदरी हसी की पुत्री थी । उ० १. जयमय मंजुल माल-उर । (प्र० ४।७।३) २. वृत्र बलि बाण प्रह्लाद मय व्याध गज पृष्ठ द्विजबंधु निजधर्म-न्यागी । (वि० ५७)
 मयंक-(सं०)-चंद्रमा । उ० सरद मयंक बदन छवि सींवा । (मा० १।१४।७।१)
 मयंका-दे० 'मयंक' । उ० रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका । (मा० १।२३।१)
 मयंद-(सं०)-मृगोन्द्र-१. शेर, सिंह, २. सुग्रीव का साथी एक वीर । उ० २. द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि । (मा० १।५४)
 मयत्री-(सं०)-मैत्री-मित्रता, दोस्ती । उ० तेहि सन नाथ मयत्री कीजे । (मा० ४।४।२)
 मयन-(सं०)-मदन-कामदेव । उ० मयन महन पुर वहन मयन जाति । (क० १।१०) मयननि-कामदेवों की । उ० मयननि बहु छवि अंगनि वूरति । (गी० १।४७)

मयना-(सं०)-मदना-१. एक काले रंग का गानेवाला पक्षी, २. पार्वती की माता का नाम । मैना । उ० २. हिमगिरि संग बनी जनु मयना । (मा० १।३२।४।२)
 मया-(सं०)-माया-मोह, झोह, ममता । उ० तात तजिय जनि झोह मया राखवि मन । (जा० १८८)
 मयूख-(सं०)-किरण, रश्मि । मयूखन्दि-किरणों से । उ० विधु महि पूर मयूखन्दि रवि तप जेतनेहि काज । (मा० ७।२३)
 मयूर-(सं०)-मोर । उ० देखत चारु मयूर नयन-सुभ, बोलि सुधा इव बानी । (वि० १।१८)
 मये-(सं०)-मय-भरकर, भरपूर होकर । उ० एक लै बद्ध एक फेरत सब प्रेम-प्रमोद-विनोद-मये । (गी० १।४३)
 मरंद-(सं०)-मकरंद-मकरंद, फूल का रस । उ० जिन्हके सुअलि-चख पियत राम मुखारविंद-मरंद । (गी० ७।२३)
 मरह-(सं०)-मारण-मृतक हो, मुर्दा हो, मरे । उ० दनुज महाबल मरह न मारा । (मा० १।१२३।३) मरई-मरता, मरता है । उ० रघुपति सर सिर कटेहुं न मरई । (मा० ६।६।३) मरउँ-१. मरूँ, मर जाऊँ, २. मरता था । मरउँ-मरता था । उ० दिन बहु चले अहार बिनु मरउँ । (मा० ४।२।७।२) मरत-(सं०)-मरण-१. मरता है, २. मरते हुए, मरते समय । उ० १. चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी । (वि० २२) मरतहु-मरते समय भी । उ० तुलसी चातक प्रेमपट मरतहु लगी न खोंच । (दो० ३०२) मरता-मरता, मृत्यु को प्राप्त होता, मर जाता । उ० मरता कहाँ जाइ को जाने लटि लालची ललाइ कै । (गी० १।२८) मरती-मरता का स्त्रीलिंग । मरते-मर जाते, मृत्यु को प्राप्त होते । मरतेउँ-१. मरता, २. मार डालता । उ० २. बूढ़ अपसि न त मरतेउँ तोही । (मा० ६।४।३।२) मरब-१. मरूँगा, २. मरना । उ० २. भूपति जिअब मरब उर आनी । (मा० २।२८।४) मरसि-मरता है । मरहीं-मरते हैं । उ० मरहि कुनप करि-करि कुनप । (दो० ५।१४) मरहीं-मरते हैं । उ० सुनि प्रभुबचन लाज हम मरहीं । (मा० ६।१।१।२) मरहु-मरो, मर । उ० बूढ़ि न मरहु धर्म व्रतधारी । (मा० ६।२।३) मरि-१. मरकर, २. मर । उ० २. जे तरजनी देखि मरि जाहीं । (मा० १।२७।३।२) मरिअ-मरिण । उ० चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि-पचि मरिअ । (मा० ७।८।६ ख) मरिबे-मरने । उ० मरिबे को बाराणसी, बारि सुरसरि को । (क० ४२) मरिबोइ-मरना ही । उ० कहिबो न कछु मरिबोइ रहो है । (क० ७।६।१) मरिहउँ-मरूँगा । उ० देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई । (मा० १।१३।६।२) मरिहि-१. मारेंगे, २. मरेंगे । उ० १. तब रावनहि हृदय महुँ मरिहि रासु सुजान । (मा० ६।६।६) मरिहि-मरेगा, मर जायगा । उ० सोक-छूप पुर परिहि मरिहि नृप, सुनि सँदेस रघुनाथ सिधायक । (गी० २।३) मर (१)-(सं०)-मरण-मर जा । उ० मर गर काटि निलज कुलघाती । (मा० ६।३।३।२) मरै-मर जावे । उ० जो मधु मरै न मारिथे माहुर देइ सो काउ । (दो० ४३३) मरो-१. मर जावो, २. मरे । उ० २. तुलसी बिनु परितोति प्रीति फिरि

फिरि पचि मरै मरो सो । (वि० १७३) मरयो-मरा । उ०
नाचत ही निधि दिवस मरयो । (वि० ६१)
मरकट-दे० 'मर्कट' । बंदर । उ० जहँ-तहँ मरकट कोटि
पठाहहि । (मा० ४१४२)
मरकत-(सं०)-पञ्जा नाम की मणि । उ० मरकत मृदुल
कलेवर स्यामा । (मा० ७७६१३)
मरघट-(सं०)-शमशान ।
मरजाद-(सं० मर्यादा)-१. मान, प्रतिष्ठा, २. सीमा, हृद ।
उ० २. चले धरम मरजाद भेटाहँ । (मा० २१२२८२)
मरजादा-दे० 'मरजाद' । उ० २. मरजाद चहुँ ओर चरन
बर सेवत सुरपुर बासी । (वि० २२)
मरद-(क्रा० मर्द)-१. पुरुष, मर्द, २. समर्थ । उ० २.
कासी करामाति जोगी जागत मरद की । (क० ७११५८)
मरदहि-(सं० मर्दन)-कुचल डालते हैं । उ० मरदहि मोहि
जानि अनाथा । (वि० १२५)
मरन-(सं० मरण)-मरना, मौत, मृत्यु । उ० सोइ गति
मरन-काल अपने पुर देत सदासिब सबहि समान ।
(वि० ३)
मरना-दे० 'मरन' । उ० उभय भाँति देखा निज मरना ।
(मा० ३१२६३)
मरनिहार-मरनेवाला, मरणासन्न । उ० अब यहु मरनिहार
भा साँचा । (मा० १२७५२)
मरनु-दे० 'मरन' ।
मरम-(सं० मर्म)-१. चुभनेवाले, मर्मभेदी, २. रहस्य,
भेद, ३. प्राणियों का वह स्थान जहाँ आघात से पीड़ा
अधिक होती है । उ० १. मरम बचन जब सीता बोला ।
(मा० ३१२८३) २. विदित बिसेषि घट-घट के मरम ।
(वि० २४६)
मरमु-दे० 'मरम' । उ० ३. मरमु पाँछि जनु माहुर देई । (मा०
२१६०४)
मरायल-(सं० मारण)-मार खानेवाले, पीटे जानेवाले । उ०
सठहु सदा तुन्ह मोर मरायल । (मा० ६१७३)
मराए-(सं० मारण)-मरवाया । मराएन्हि-मरवा डाला । उ०
पुनि अबबेरि मराएन्हि ताही । (मा० १७६१४)
मराल-दे० 'मराल' । मराल-(सं०)-१. हंस, २. हंस
की भाँति विवेकी । उ० १. कूजत मंजु मराल मुदित मन ।
(मा० २१२३६३) २. सुमिरे कृपालु के मराल होत
खूसरो । (क० ७११६) मरालन्ह-मरालों, हंसों ।
मराला-दे० 'मराल' । उ० मंदरु मेरु कि लेहि मराला ।
(मा० २७२१२)
मरालिके-हे हंसिनी । उ० देखिए दुखारी मुनि-मानस-
मरालिके । (क० ७११७३) मराली-१. हंसिनी, २.
हंस की । उ० १. बकिहि सराहइ मानि मराली । (मा०
२१२०२) २. चलौ मराली चाल । (दो० २३३)
मरिजाद-दे० 'मरजाद' ।
मरीच-दे० 'मारीच' । उ० बाहुक-सुबाहु नीच लीचर-मरीच
मिलि । (ह० ३६)
मरीचि-(सं०)-१. किरण, रश्मि, २. एक ऋषि जो ब्रह्मा के
१० पुत्रों में प्रथम थे ।
मरीचिका-(सं०)-मृगतृष्णा । किरणों में जल का अम ।

मरु (२)-(सं०)-१. ऊसर २. मरुस्थल, रेतीली ज़मीन,
२. मारवाड़ । उ० २. मरु मालव महिदेव गवासा । (मा०
१६१४)
मरुत-(सं० मरुत्)-पवन, वायु । उ० चलेउ बराल मरुत-
गति भाजी । (मा० १११५७१)
मरुतु-दे० 'मरुत्' ।
मरुत-दे० 'मरुत्' । उ० जयति मरुदंजना मोद-मंदिर ।
(वि० २७)
मरोरी-(?)-मरोड़कर, पेंठकर । उ० महि पटकल भजे
भुजा मरोरी । (मा० ६१६८५)
मर्कट-(सं०)-बंदर । उ० रिच्छ मर्कट सुभट उज्जट । (वि०
५०)
मर्द-(क्रा०)-१. पुरुष, २. साहसी, वीर ।
मर्दइ-(सं० मर्दन) मर्दन करता है, मींजता है । उ० गहि गहि
कपि मर्दइ निज अंगा । (मा० ५११६३) मर्दहि-मलते हैं,
नाश करते हैं । मर्दहु-नाश करो, मलो । मर्दा-मला,
नाश किया । मर्दि-मलकर, नाश करके । उ० कतहुँ
बाजि सों बाजि मर्दि गजराज करक्खत । (क० ६१
४७) मर्दसि-मसल डाला । उ० कछु मारेसि कछु मर्दसि
कछु मिलएसि धरि धूरि । (मा० ५११८)
मर्दन-(सं०)-१. मलना, मसलना, मींजना, २. मर्दन
करनेवाले, नष्ट करनेवाले, कुचलनेवाले । उ० २. जाहि
दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन । (मा० १११९०४)
मर्म (सं०)-१. रहस्य, भेद, २. शरीर का वह स्थान जहाँ
चोट पहुँचना बड़ भयावह होता है । उ० १. पुरइनि
सघन औट जल बेगि न पाइअ मर्म । (मा० ३१३६ क)
मर्मबचन-कलेजे में घुसनेवाली बात ।
मर्मज्ञ-(सं०)-भेद जाननेवाला ।
मर्मो-(सं० मर्मिन्)-भेद जाननेवाला, मर्मज्ञ । उ० मर्मो
सज्जन सुमति कुदारी । (मा० ६१२०७)
मर्याद-(सं० मर्यादा)-१. मान, प्रतिष्ठा, २. सीमा, हृद,
३. नियम । उ० २. विश्व विख्यात विश्वेश विश्वायतन
विश्व मर्याद व्यालादगामी । (वि० ५४)
मल-(सं०)-१. मैल, २. बिष्ठा, पाखाना, ३. पाप, ४.
दूषण, ऐब-विकार । उ० १. छूटइ मल कि मलहि के
धोए । (मा० ७४६३) ३. कलिमल मथन नाम ममता-
हन । (मा० ७५१५) मलहि-(सं० मलन)-मल से ही,
मैल से ही । उ० करम-कीच जिय जानि सानि चित्त
चाहत कुटिल मलहि मल धोयो । (वि० २४५)
मलय-(सं०)-१. सफ़ेद चंदन, २. मलय पर्वत जो दक्षिण
भारत में है । उ० १. काटइ परसु मलय सुनु भाई । (मा०
७३७४) २. मलयाचल है संत जन, तुलसी दोष बिहून ।
(दो० १८)
मलाई-(क्रा० बालाई)-दूध का सार भाग जो औटने पर
ऊपर जम जाता है । साढ़ी । उ० खत खुनसात सोंधे दूध
की मलाई है । (क० ७७४)
मलान-(सं० म्लान)-उदास, मलिन । उ० आइ पाय
पुनि देखिउँ मनु जनि करसि मलान । (मा० २१५३)
मलाना-दे० 'मलान' । उ० कौसल्याँ नृपु दीख मलाना ।
(मा० २१५४२)

मलानि-थकी, कुम्हलाइ । उ० राम सहगुन-धाम परमिति भई कछुक मलानि । (गी० ७।२८)
 मलार-(सं० मल्लार)-वर्षा ऋतु का एक राग ।
 मलिद-(सं० मिलिद)-भौरा ।
 मलिन-(सं०)-१. मैला, २. उदास, दुखी, ३. पापी, ४. अपवित्र, अशुद्ध । उ० ३. मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगु । (मा० १।७।२) ४. नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन बिषय सँग लागे । (वि० ८२)
 मलिनाई-मलीनता, मैलेपन का भाव ।
 मलिनिया-(सं० मालिन) मालिन । उ० बतिया कै सुघरि मलिनिया सुंदर गातहि हो । (रा० ७)
 मलीन-दे० 'मलिन' । उ० ३. ते सुरतरु-तर दारिदी, सुर-सरि तीर मलीन । (दो० ४१४)
 मलीनता-अपवित्रता, अशुद्धि, गंदगी । उ० सूधौ सत भाय कहे मिटति मलीनता । (वि० २६२)
 मलीना-दे० 'मलिन' । उदास । उ० हृदयँ दाहु अति बदन मलीना । (मा० २।६४।३) मलीनी-मलिन, उदास । मलीने-दे० 'मलीना' । उ० तन कूस मन दुखु बदन मलीने । (मा० २।७६।२)
 मलु-(सं० मल) १. गंदगी, २. पाप । उ० २. बिलसत बढ़त मोह माया मलु । (वि० २४)
 मलोछ-(सं० म्लोच्छ)-१. नीच, २. अहिंदू, ३. जिनकी भाषा समझ में न आए ।
 मल्ल-(सं०)-पहलवान ।
 मल्लजुद्ध-बाहुयुद्ध । उ० द्रौ भिरे अतिबल मल्लजुद्ध बिरुद्ध पकू पकहि हनै । (मा० ६।६४।३) १)
 मल्लहावति-(सं० मल्लह)-पुचकारती है, चुमकारती है । उ० बाल केलि किलकि हँसै द्वै द्वै दँतुरियाँ लसै । (गी० १।३०)
 मल्लहावहीं-प्यार करती हैं, पुचकारती हैं । उ० मधुर झुलाइ मल्लहावहीं, गावैं उमँगि उमँगि अनुराग । (गी० १।१६)
 मवास-(सं०)-१. रक्षास्थल, शरण, २. किला, गढ़ । मवासे-दे० 'मवास' । उ० २. सिंधु तरे बड़े बीर दले खल, जारे हैं लंक से बंक मवासे । (ह० १८)
 मशक-(सं०)-मच्छर, दंश ।
 मष्ट-(सं०)-छुप, मौन । उ० ते सबहँसे मष्ट करि रहहु । (मा० २।३७।४)
 मसक-दे० 'मशक' । उ० मसक दंस बीते हिम त्रासा । (मा० ४।१७।४) मसकहि-मच्छर को । उ० मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन । (मा० ७।१२२।४)
 मसकतु-(?)-फटता, विदीर्ण होता । उ० तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकतु है । (क० ६।१६)
 मसखरी-(अर० मसखरा)-हँसी, दिल्लीगी, मजाक । उ० जो कह मँठ मसखरी जाना । (मा० ७।६८।३)
 मसान-(सं० श्मशान)-१. मरघट, श्मशान, २. रणभूमि । उ० १. घर मसान परिजन जनु भूता । (मा० २।८३।४) २. देखत विमान चढ़े कौतुक मसान के । (क० ६।४८)
 मसानु-दे० 'मसान' । उ० कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसान । (मा० २।३६) सु० मसानु जागति-

मसान जगा रही हो, श्मशान में बैठकर प्रेतमंत्र सिद्ध कर रही हो । उ० दे० 'मसानु' ।
 मसि-(सं०)-कालिख, स्याही । उ० महि पत्री करि सिंधु मसि तरु लेखनी बनाइ । (वै० ३५)
 मसीत-(फा० मस्जिद)-मुसलमानों के पूजा का स्थान । उ० माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो । (क० ७।१०६)
 मस्तक-(सं०)-सिर, माथा । मस्तके-मस्तक पर ।
 महुँ-(सं० मध्य)-में । उ० तिन्ह महुँ प्रथम रेख जग मोरी । (मा० १।१२।२)
 महुँगे-(सं० महाघे)-बहुमूल्य, अधिक दाम के । उ० मनि मानिक महुँगे किये, सहुँगे नृन जल नाज । (दो० ५७३)
 महुँगो-महुँगा । उ० सो तुलसी महुँगो कियो राम गरीब निवाज । (दो० १०८)
 महुँ-दे० 'महुँ' ।
 महक-(?)-वास, गंध ।
 महत (१)-(सं० महत्)-बड़ा, महान ।
 महत (२)-(सं० मथन)-१. मथते हुए, २. मथता है । उ० १. पायो केहि घृत बिचार हरिन वारि महत । (वि० १३३)
 महिबे-मथना पड़ेगा । उ० मति-मटुकी मृगजल भरि घृत-हित मनहीं मन महिबे ही । (क० ४०) मही (१)-मथी, मंथन किया ।
 महतत्व-(सं०)-१. परब्रह्म, परमात्मा, २. सांख्य में प्रकृति का पहला विकार । उ० २. प्रकृति, महतत्व, सब्दादि गुन देवता, व्योम मरुदभि अमलाबु उर्वी । (वि० ५४)
 महतारि-दे० 'महतारी' । उ० दूलाह कै महतारि देखि मन हरषइ हो । (रा० १६)
 महतारी-(सं० माता)-मा, जननी । उ० रावन की रानी मेघनाद-महतारी है । (ह० २७)
 महत्-(सं०)-श्रेष्ठ, बड़ा ।
 महन-(सं० मथन) १. मथनेवाला, २. नाश करनेवाला । उ० २. महन मय पुर दहन गहन जानि । (क० १।१०)
 महनु-दे० 'महन' । उ० २. अर्द्ध अंग अंगना अनंग को महनु है । (क० ७।१६०)
 महर-(सं० महत्)-१. प्रधान, नेता, २. नंद । उ० २. ब्रज को बिरह अरु संग महर को । (क० ३८)
 महरि-'महर' की स्त्री । यशोदा । उ० महरि तिहारे पाँय परौ अपनो ब्रज लीजै । (क० ७)
 महर्षि-(सं०)-बड़ा ऋषि ।
 महल-(अर०)-१. गुह, घर, भवन, २. प्रासाद, राजभवन । उ० १. टहल सहज जन महल महल जागत चारो जुग जाम सो । (वि० १५७)
 महाँ-दे० 'महुँ' । उ० प्रगटे नर केहरि खंभ महाँ । (क० ७।८)
 महा-(सं०)-१. अत्यंत, बहुत, अधिक, २. बड़ा, बृहत्, ३. उत्तम, श्रेष्ठ, प्रतिष्ठित । उ० १. मलय पावक-महा-ज्वाल-माला-बमन । (वि० ३८) २. महा कल्पंत ब्रह्मांड मंडल-द्वन । (वि० १०) ३. नृप करि बिनय महाजन फेरे । (मा० १।३४०।१)
 महानद-(सं०)-बड़ी नदी ।

महानदु-दे० 'महानद' । उ० मिलेउ महानदु सो न सुहावन । (मा० ११४०११)
 महाजन-बड़े लोग । उ० सचिव महाजन सकल बोलाए । (मा० २११६१४)
 महातम-(सं० माहात्म)-महात्म, महत्त्व, गौरव । उ० कहत महातम अति अनुरागा । (मा० २११०६१२)
 महात्मा-(सं० महात्मन्)-जिसकी आत्मा बहुत उच्च हो, संन्यासी, साधु ।
 महादेव-(सं०)-शंकर, शिव । उ० जयति मर्कटाधीस मृग-राज-विक्रम महादेव सुदमंगलालय कपाली । (वि० २६)
 महान-(सं० महान्)-१. बहुत बड़ा, विशाल, २. विष्णु, केशव । उ० २. अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान । (मा० ६११५ क)
 महानाटक-(सं०)-बड़ा नाटक जिसमें १० अंक होते हैं । उ० महानाटक-निपुन, कोटि-कवि कुल-तिलक, गान गुन-गर्ब-गंधर्व-जेता । (वि० २६)
 महाप्रलय-(सं०)-वह काल जब संपूर्ण सृष्टि का विनाश हो जाता है ।
 महाबल-(सं०)-अत्यंत बलवान । उ० सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो । (ह० ७)
 महाबाहु-बड़ी भुजावाले । उ० साँवरे गोरे सरीर महाबाहु महावीर । (गी० १७२)
 महावीर-(सं० महावीर)-१. बहुत वीर, २. हनुमान । उ० १. महावीर बिनवड हनुमाना । (मा० १११७१५)
 महाराज-बड़े राजा, बड़े । उ० महाराज बाजी रची प्रथम न हति । (वि० २४६)
 महि-(सं० मध्य)-में । उ० जितिहहि राम न संसय था महि । (मा० ६१५७३)
 महि (१)-(सं०)-पृथ्वी । उ० देव ! महिदेव-महि-धेनु सेवक-सुजन-सिद्ध-मुनि सकल-कल्याण-हेतू । (वि० ४०)
 महि (२)-(सं० मध्य)-में । उ० तुलसी अति प्रेम लगीं पलकें पुलकीं लखि राम हिथे महि हैं । (क० २१२३)
 महिदेव-ब्राह्मण । उ० देव ! महिदेव-महि-धेनु-सेवक-सुजन-सिद्ध-मुनि सकल-कल्याण-हेतू । (वि० ४०)
 महिधर-(सं० महीधर)-पर्वत । उ० जो सहस सीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी । (मा० २१२६।छं० १)
 महिप-(सं०)-राजा, नृप । उ० सुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हों । (मा० ११३३१२)
 महिपति-दे० 'महिप' ।
 महिपाल-दे० 'महिप' । उ० तहाँ राम रघुबंस मनि सुनिअ महा महिपाल । (मा० ११२६२)
 महिपालक-दे० 'महिप' । उ० कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि सुनि महिपालक । (जा० ५१)
 महिपाला-दे० 'महिप' । उ० आप तहँ अगनिहत महिपाला । (मा० ११३३०३)
 महिपालु-दे० 'महिपाल' ।
 महिपु-दे० 'महिप' ।
 महिमा-(सं० महिम्न)-१. महत्त्व, माहात्म, बड़ाई, २. इज्जत, ३. प्रभाव, प्रताप, ४. एक सिद्धि । उ० १. मुनि महिमा सुनि रानिहि धीरजु आयउ । (जा० ८०)

महिष-(सं०)-१. भैंसा, २. महिषासुर नाम का राक्षस जिसे काली ने मारा था । उ० १. महिष मत्सर क्रूर, लोभ सूकर रूप । (वि० ५६) २. महिष मद-भंग करि अंग तोरे । (वि० १५)
 महिषमती-(सं०)-सहस्रबाहु की राजधानी का नाम । उ० महिषमती को नाथ साहसी सहस्रबाहु । (क० ६१२५)
 महिषी-१. भैंसें, २. रानियाँ । उ० १. महिषी धेनु बस्तु बिधि नाना । (मा० ११३३१४) महिषी-(सं०)-१. भैंस, २. रानी, पटरानी । उ० २. जनक पाट महिषी जगजानी । (मा० ११२३४१)
 महिषेस-(सं० महिषेश)-१. महिषासुर, २. यमराज । उ० १. तुलसि अभिमान-महिषेस बहु कालिका । (वि० ४८)
 महिषेसा-दे० 'महिषेस' ।
 महिषेसु-दे० 'महिषेस' ।
 महिसुर-(सं०)-ब्राह्मण । उ० सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । (मा० ११२७३३) महिसुरन्ह-ब्राह्मणों को । उ० सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई । (मा० ११७४१४)
 मही-(सं० मया)-मैं ही । उ० मही सकल अनरथ कर मूला । (मा० २१२६३२)
 मही (ः)-(सं०)-१. पृथ्वी, २. मिट्टी । उ० १. करिबे पुनीत सैल सर सरि मही है । (गी० २४१)
 महीधर-(सं०)-१. पर्वत, २. शेषनाग । उ० १. प्रबल अहंकार दुर्घट महीधर । (वि ५६)
 महीप-(सं०)-राजा, नरेश । उ० लखी महीप कराल कठोरा । (मा० २१३१२) महीपन्ह-राजाओं ।
 महीपति-दे० 'महीप' । उ० सुनहु महीपति मुकुटमनि तुम सम धन्य न कोउ । (मा० ११२६१)
 महीपा-दे० 'महीप' ।
 महीरह-वृक्ष, पेड़ ।
 महीस-(सं० महि + ईश)-राजा । उ० तकि तकि तीर महीस चलावा । (मा० ११३५७२)
 महीसा-दे० 'महीस' ।
 महीसु-दे० 'महीस' । उ० पाइ असीस महीसु अनंदा । (मा० ११३३१३)
 महीसुर-(सं०)-ब्राह्मण । उ० मारग मारि महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो । (क० ७।१७६) महीसुरन्ह-ब्राह्मणों ।
 महुँ-(सं० मध्य)-में, बीच । उ० भट महुँ प्रथम लीक जग जासू । (मा० ११३८०४)
 महु-दे० 'महुँ' ।
 महुँ-(सं० मया)-मैं भी, मैंने भी । उ० महुँ महेस सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन । (मा० २१२६०)
 महेश-(सं०)-शिव, महादेव । उ० महेश चाप खंडन । (मा० ३।४। छं० ४)
 महेशानि-पार्वती, उमा । उ० महामारी महेशानि महिमा की खानि । (क० ७।१७४)
 महेश-दे० 'महेश' । उ० गहँ समीप महेश तब हँसि पृष्ठी कुसलात । (मा० ११५५) महेशहि-महादेव को, महेश को । उ० सुमिरि महेशहि कहइ निहोरी । (मा० २।४४।४)
 महेसा-दे० 'महेश' ।

महेसु-दे० 'महेश' । उ० सबके उर अभिलाषु अस कहहि मनाइ महेसु । (मा० २।१)
 महेसु-दे० 'महेश' । उ० महामंत्र जोइ जपत महेसु । (मा० १।११२)
 महोख-(सं० मधुक)-एक पक्षी । उ० ठेक महोख ऊँट बिसराते । (मा० ३।३८३)
 महोत्सव-(सं०)-बड़ा उत्सव, बड़ा पर्व । उ० जन्म महोत्सव रचहि सुजाना । (मा० १।३४५)
 महोदर-(सं०)-एक वीर राक्षस जो रावण का पुत्र था । उ० लोभ अतिकाय मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध-पापिष्ट बिबुधांतकारी । (वि० ५८)
 महोष-दे० 'महोष' ।
 महौ-(सं० मथन)-१. छाछ, मठा, तक्र, २. मथने की क्रिया, मथना । उ० १. दूध को जर्यो पियत फूँकि-फूँकि महौ हौं । (वि० २६०) २. तुलसी सिय लगी भवदधिनिधि मनु फिर हरि चहत महौ है । (क० ४।२)
 माँखी-(सं० मच्छिका)-१. मक्खी, २. जो तिरस्कारपूर्वक अलग किए जाने योग्य हो ।
 माँखा-दे० 'माखा' ।
 माँग (१)-(सं० माग)-सिर के बालों के बीच की रेखा, सीमंत । उ० माँग कोपि तोषि फैलि फूलि फरिकै । (गी० १।७०) माँगहु-माँग भी । उ० आनंद अवनि, राजरानी सब माँगहु कोखि जुझानी । (गी० १।४)
 माँग (२)-(सं० मार्गण)-१. माँगे, माँगेगा, २. मगनी, सगाई । माँगउ-माँग । माँगऊँ-दे० 'माँगऊँ' । माँगत-१. माँगते हुए, २. माँगता है, याचना करता है, माँगते हैं । उ० २. सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाच करारे है ठाढ़े । (क० २।५) माँगब-याचना करेगा, माँगेगा । उ० सुयहु न माँगब नीच । (दो० ३३५) माँगसि-दे० 'मागसि' । माँगहि-माँगते हैं । माँगही-दे० 'माँगहि' । माँगा-याचना की, मागा । माँगि-१. माँगा, याचना की, २. माँगकर, ३. माँगाकर । उ० ३. सुदित माँगि इक धनुही नृप । (ब० ११) माँगिए-याचना कीजिए । उ० और काहि माँगिए को माँगिबो निवारै । (वि० ८०) माँगिबो-माँगना, याचना करना । उ० और काहि माँगिए को माँगिबो निवारै ? (वि० ८०) माँगिहै-माँगेगा । उ० काम तरु राम नाम जोइ जोइ माँगिहै । (वि० ७०) माँगी-१. माँगी हुई, २. माँगा, याचना की । उ० १. मारिए तौ माँगी मीसु सुधियँ कहतु हौं । (क० ७।१६७) माँगु-माँगे, माँग लो । माँगे-१. माँगा, २. माँगा हुआ । उ० २. माँगे पैत पावत प्रचारि पातकी प्रचंड । (क० ७।८१) माँगउ-दे० 'माँगे' । माँगसि-माँगी । माँगहु-१. माँगा, २. माँगने पर भी । माँगे-१. माँगे, २. माँगता है ।
 माँगतो-(सं० मार्गण) मंगन, भिखारी । उ० नाँगे फिरै कहै माँगतो देखि न खाँगे कछु जनि माँगिए थोरो । (क० ७।१५३)
 माँगन-१. माँगने के लिए, २. माँगने की वस्तु, ३. भिखारी । उ० १. सोचिनि बदन-सुकोचिनि हीरा माँगन हो । (रा० ७) माँगन्यो-माँगनेवाले भी ।

माँगने-१. भिखक, मंगन, २. माँगने के लिए । उ० १. नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े । (क० ७।१५४) माँगनेउ-माँगनेवाले भी, भिखक भी । उ० तुलसी दाता माँगनेउ देखियत अबुध अनाथ । (दो० १७०)
 माँगनो-मंगन, भिखारी । उ० रीति-महाराज की नेवाजिचे जो माँगनो सो । (क० ७।२५)
 माँची-(?)-फैली, व्यास हुई ।
 माँजहि-(सं० मार्जन)-माजते हैं, रगड़ते हैं ।
 माँजा-(?)-एक रोग जो जलचरों को बरसाती पानी पीने से होता है । उ० बिकल सकल महामारी माँजा भई है । (क० ७।१७६)
 माँक-(सं० मध्य)-में, मध्य, बीच ।
 माँका-दे० 'माँक' ।
 माँठ-दे० 'माठ' ।
 माँडव-(सं० मंडप)-मंडप, विवाह का मंडप । उ० आले हि बाँस के माँडव मनिगन पूरन हो । (रा० ३)
 माँडवी-(सं०)-राजा जनक के भाई कुशध्वज की बेटी जिसका विवाह भरत से हुआ था । उ० माँडवी-चित्त चातक-नवांछुदवरण, सरन-तुलसीदास-अभय दाता । (वि० ३३)
 माँतहिं-(सं० मत्त)-मस्त था मतवाले हो जाते हैं । माँता-दे० 'माँत्यो' । माँत्यो-१. माता हुआ, मतवाला, २. मस्त हो गया ।
 माँथ-(सं० मस्तक)-माथा, कपाल ।
 माँस-(सं०)-गोशत । उ० धावहिं सठ खग माँसअहारी । (मा ६।४०।५)
 माँह-(सं० मध्य)-में, मध्य ।
 मा-(सं०)-१. माता, जननी, २. लक्ष्मी, ३. नहीं । उ० १. 'देहि मा ! मोहि प्रण प्रेम यह नेम निज राम धनश्याम तुलसी पपीहा । (वि० १५)
 माह-दे० 'माई' ।
 माई-(सं० मातृ)-१. माता, माँ, २. संबोधन का शब्द । उ० १. सत्य कहउँ मोहि जान दे माई । (मा० १।२।३) २. ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई । (मा० २।१६।२)
 माख-(सं० मच्छ)-खीरना, क्रोध । उ० इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदाहि तजि माख । (मा० ६।२४)
 माखा-(सं० मच्छ)-अप्रसन्न हुआ, नाराज हुआ । उ० तेहि पर चढ़ेउ मदनु मन माखा । (मा० १।८७।१) माखिं-(सं० मच्छ)-क्रोध करके । उ० तुलसी खबर-सेवकहि खल डाटत मन माखि । (दो० १४४) माखी (१)-(सं० मच्छ)-क्रुद्ध हुई । माखे-क्रुद्ध हुए, तमतमाए । उ० भटमानी अतिसय मन माखे । (मा० १।२५०।३) माखै-नाराज हो । उ० अब जनि कोउ माखै भटमानी । (मा० १।२५।२।२)
 माखी (२)-(सं० मच्छिका)-मक्खी । उ० भामिनि भइहु दूध कइ माखी । (मा० २।१६।४)
 माखीय-दे० 'माँखी' । उ० राखि कहौं हौं-जो पै तो हैंहौं माखीय की । (वि० २६३)
 माग-(सं० मार्गण)-माँगे, माँगता है । उ० १. कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी । (मा० १।१३३।१) मागउ-माँग, याचना करूँ । मागउ-माँगती, याचना करती । उ०

बिनती प्रभु भोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउ बर आना ।
 (मा० ११२११३) मागसि-मांगता । उ० काहे न मागसि
 अस बरदाना । (मा० ७८८११) मागहि-मागते हैं । उ०
 मनहीं मन मागहि बरु पृह । (मा० २१२२४२) मागहु-
 मांगो, याचना करो । उ० मागहु आजु जुबावहु छाती ।
 (मा० २१२२३) मागा-याचना की । उ० बर दूसर अस-
 मंजस मागा । (मा० २१३२२) मागु-दे० 'मांगु' । उ०
 देवि मागु बरु जो रुचि तोरे । (मा० ११३०१२) मागे-
 मांगा, याचना की । मागेसि-मांगी । उ० मागेसि नीद
 मास पट केरी । (मा० ११७७१७)
 मागध-(सं०)-१. मगध देश का, २. भाट, यश बखानने-
 वाला । उ० २. मागध सूत बंदिगन गायक । (मा० ११
 १३४३)
 माघ-(सं०)-एक महीना जो पूष और फागुन के बीच में
 पड़ता है । उ० माघ मकरगत रवि जब होई । (मा० ११
 ४४१२)
 माचल-(?)-मचला, मचलनेवाला, जिही ।
 माचही-(?)-मचाते हैं । उ० तुलसी सुदित रोम-रोम मोद
 माचहीं । (क० १११४) माची-मची, फैली । उ० कीरति
 जासु सकल जग माची । (मा० ११६१२)
 माछी-(सं० मच्छिका)-मच्छी । उ० जिमि निज बल अलुरुप
 ते माछी उड़इ अकास । (मा० ६११०१ क)
 माजहि-(?)-माजा (पहली वर्षा का फेन) को । उ० माजहि
 खाइ मीन जनु मापी । (मा० २१६४२)
 माऊ-दे० 'माऊ' । उ० पहुँचाएसि छन माऊ निकेता ।
 (मा० ११७११४)
 माऊ-दे० 'माऊ' । उ० कैकह कत जनमी जग माऊ ।
 (मा० २१६४२)
 माठ-(सं० मट्टक)-मटका, बर्तन । उ० स्वामि दसा लखि
 लषन सखा कपि, पिघले हैं आँच माठ मानो विय के ।
 (गी० ४११)
 माणिक-(सं० माणिक्य)-मानिक, लाल ।
 मात (१)-(अर०)-हार, पराजय ।
 मात (२)-(सं० मातृ)-माता, जननी । उ० कनक थार भरि
 मंगलन्हि कमल करन्हि लिएँ मात । (मा० ११३४६)
 मातन्ह-माताओं से । उ० लछिमन सब मातन्ह मिलि
 हरषे आसिष पाइ । (मा० ७१६ ख)
 मातलि-(सं०)-इंद्र का सारथी । उ० हरष सहित मातलि
 लै आवा । (मा० ६१८६११)
 मातहि-(सं० मत्त)-मत्त हो जाते हैं, मतवाले हो जाते हैं ।
 उ० जो अचवैत नृप मातहि तेई । (मा० २१२३१४)
 माति-मतवाली होकर । उ० करमभूमि कलि जनम
 कुसंगति मति बिमोह मद माति । (वि० २३३) माती-१.
 मतवाली हुई, २. मतवाली होकर । उ० १. सहित
 संमाज प्रेम मति माती । (मा० २१२७६३) माते-१. मत-
 वाले हुए, मत्त हुए, २. मतवाले । उ० २. कूजत पिक मानहुँ
 गज माते । (मा० ३१३८३) मात्यो-मतवाले हुए । उ०
 मोह-मंद-मात्यो, रात्यो कुमति कुनारि सों । (क० ७८८२)
 माता-दे० 'मात' । उ० कालकलि-पाप-संताप-संकुञ्ज-सदा
 प्रनत-तुलसीदास तात माता । (वि० २८)

मातु-दे० 'मात' । उ० मोहि कहु मातु तात दुख कारन ।
 (मा० २१४०३)
 मातुल-(सं०)-माता का भाई, मामा । उ० बातुल मातुल
 की न सुनी सिख का तुलसी कपि लंक न जारी । (क०
 ६१५)
 मात्र-(सं०)-१. केवल, २. थोड़ा, कुछ । उ० १. अस्थि
 मात्र होइ रहे सरिरी । (मा० ११७२१२)
 माथ-(सं० मस्तक)-सिर, ललाट, भाल । उ० माथ नाइ
 पूछत अस भयऊ । (मा० ४११३) मु० माथ नाइ-सर
 नवाकर । उ० दे० 'माथ' । माथहि-१. माथ को, २. माथ पर,
 ३. माथ से । माथे-मस्तक पर, माथे पर । उ० तेहि रघुनाथ
 हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै । (गी० २१४०)
 माथा-दे० 'माथ' । उ० जहँ बस श्रीनिवास श्रुति माथा ।
 (मा० ११२८२)
 माधव-(सं०)-१. विष्णु, २. कृष्ण, ३. बैसाख को महीना,
 ४. विंदुमाधव नामक काशी का तीर्थ । उ० १. माधव !
 अब न द्रवहु केहि लेखे । (वि० ११३) ३. जनु संग
 मधु माधव लिए । (जा० ३६)
 माधुरि-दे० 'माधुरी' ।
 माधुरी-(सं०)-१. मधुरता, मिठास, २. सौंदर्य, शौभा,
 ३. मद्य, शराब । उ० १. भायप भलि चहु बंधु की जल
 माधुरी सुबास । (मा० ११४२)
 माधुर्य-दे० 'माधुरी' ।
 मान-(सं०)-१. आदर, इज्जत, २. परिमाण, तोल, ३.
 समान, तुल्य, बराबर, ४. माना, मानता, ५. मान ले,
 मानो, ६. घमंड । उ० १. मान लोक बेद राखिबे को पन
 रघुबर को । (क० ७११२२) ४. विनय न मान खगेस सुनु ।
 (मा० ६१६८) ५. मान सही ले । (वि० ३२) ६. जय
 ताड़का-सुबाहु मथन, मारीच मान हर । (क० ७११२)
 मानइ-दे० 'मानई' । मानई-मानती है, अनुभव करती
 है । उ० उर लाइ उमहि अनेक विधि जलपति जननि
 दुख मानई । (पा० १२१) मानउँ-१. मानें, २. प्रेम करूँ,
 ३. आदर करूँ । मानत-दे० 'मानता' । मानता-मानता
 है, मानते हैं । उ० मानत मनहुँ सतवित ललित धन ।
 (गी० ३११) मानति-मानती है । मानब-मानिष्या । उ०
 देवि करौं कछु विनय सो बिलगु न मानब । (पा० ४८)
 मानबि-मानिष्या । उ० गहि सिध पद कह सासु विनय
 मृदु मानबि । (पा० १२७) मानसि-मानता है । उ०
 मृदु परम सिख देउँ न मानसि । (मा० ७११२१७)
 मानहि-मानते हैं, मान लेते हैं । मानहि-मानो, मान लो ।
 उ० मन मेरे मानहि सिख मेरी । (वि० १२६) मानहीं-
 दे० 'मानहि' । मानहुँ-१. मानो, जैसे, २. मान लो । उ०
 १. पट पीत मानहुँ तड़ित रुचि सुचि । (वि० ४५) मानहु-
 १. मान लो, २. मानो, जैसे । माना-१. स्वीकार किया,
 मान लिया, २. मान । दे० 'मान' । उ० १. नाहिन कछु
 औगुन तुम्हार अपराध मोर मैं माना । (वि० ११४)
 मानि-मानकर । उ० सकल-सौभाग्य-सुख-खानि जिय
 जानि, सठ ! मानि बिस्वास बद् बेद सारं । (वि० ४६)
 मानिअहि-१. मानो, २. मानेगा । मानिबी-दे० 'मानबि' ।
 उ० तुलसी सील सनेह लखि निज किंकारी करि मानिबी ।

(मा० १।३३।६।७० १) मानिवो-मानना, मानिएगा। उ० लंक दाह उर आनि मानिवो। (गी० २।१४) मानिय-१. मानिये, स्वीकार कीजिये, २. मानते हैं। उ० २. मानिय सिय अपराध बिनु। (प्र० ६।७।२) मानियत-मानता है। मानिये-मानो, मानना चाहिए। उ० इनको बिलगु न मानिये बोलहि न विचारी। (वि० ३४) मानिहहि-मानेंगे। मानिहि-मानेंगा, स्वीकार करेगा। मानिहौ-मानेंगा। उ० दे० 'मान्यौ'। मानी-१. अभिमानी, घमंडी, २. मान किया, सम्मान किया, ३. मान ली। उ० १. विद्यमान-दसकठ-भट-मुकुट मानी। (वि० २६ २. मानी राम अधिक जननी तें। (गी० ७।३७) मानु-मान जा, मान ले। उ० सुमिरु सनेह सहितु हित रामहि मानु मतो तुलसी को। (वि० १६४) माने-१. मान्य, माननीय, २. स्वीकार किया, समझा, ३. पूजा की, उपासना की। उ० १. सोम से सील गनेस से माने। (क० ७।४३) २. हरि ते अधिक करि माने। (वि० २३५) मानेहु-१. मानो, जैसे, २. माना, मान लिया। मानो-१. मनु, जैसे, २. मान जाओ, ३. माना। उ० १. मानो देखन तुमहि आई ऋतु बसंत। (वि० १४) ३. लेहु अब लेहु तब कोउ न सिखाओ मानो। (क० २।१७) मान्यौ-माना। उ० मान्यौ मैं न दूसरो न मानत न मानिहौ। (क० ७।६३) मानद-मान था प्रतिष्ठा देनेवाला। उ० मुग्ध-मधु-मथन मानद अमानी। (वि० ५६) मानप्रद-मान था हृजत प्रदान करनेवाला। मानव-(सं०) मनुष्य। मानवाः-बहुत से मनुष्य। उ० ते संसार पतंग घोर किरणैदंति नो मानवाः। (मा० ७।१ ३।१।७।०२) मानवी-स्त्री, औरत। मानसं-मानस को, हृदय को। उ० कामादि दोष हितं क्रुह मानसं च। (मा० १।१।७।०२) मानस-(सं०)-१. हृदय, चित्त, मन, २. मानसरोवर नामक झील। उ० १. बसहि राम सिय मानस मोरे। (वि० १) २. कवि कोविद रघुवर चरित मानस मंजु मराल। (मा० १।१।४ ग) मानसर्नदिनि-(सं०)-मानसरोवर से निकलनेवाली सरयू नदी। उ० नदी पुनीत सुमानसर्नदिनि। (मा० १।३।६।७) मानसर-मानसरोवर नामक झील। मानसिक-(सं०) मन का, दिल का, हृदय का। उ० सुएउ न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ। (गी० २।५७) मानिक-दे० 'माणिक'। उ० सुकहि रामचरित मनि मानिक। (मा० १।१।४) मानुष-मनुष्य, आदमी। उ० मानुष करनि मूरि कहु अहई। (मा० २।१।०।२) मान्य-(सं०)-पूज्य, माननीय। उ० तुलसिदास त्रैलोक्य अमन्य अयो। (क० ३।१) मान्यता-(सं०)-आदर, सम्मान, प्रतिष्ठा। उ० लोक मान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु। (मा० १।१।६।१ क) मापा-(सं०) मापक)-१. नापा, तौला, २. व्याकुल हो गया। उ० २. तखफत विषम मोह मन मापा। (मा० २।१।३।३) मापी (१)-नापी। मापी (३)-(?) मत्त हुई, पागल हुई। उ० माजहि खाइ अजील जनु मापी। (मा० २।५।१२)

माम्-(सं०)-मेरा, हमारा। उ० श्री शंकरः पातु माम्। (मा० २।१।१।७।० १) माय (१)-(सं०) मातृ)-माता, माँ। उ० तुलसी सुखी निसोच राज ज्यो बालक माय बबा के। (वि० २२५) माय (२)-(सं०) माया)-माया। उ० मुनि वेष किये कियो ब्रह्म जीव माय हैं। (गी० २।२८) मायहि-माया को। उ० बहुरि राम मायहि सिरु नावा। (मा० १।२।६।३) मायन-(सं०) मातृ)-मातृका पूजन। उ० बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो। (रा० ५) माया-(सं०)-१. मोह, विषयों का मोह, २. कसूपा, दया, ३. धन, ४. ईश्वर की एक शक्ति जो विद्या और अविद्या दो प्रकार की होती है। अविद्या माया बंधन और विद्या मोक्ष का कारण है। उ० १. तजि माया सेहइ परलोका। (मा० ४।२।३।३) ४. तत्र आक्षिप्त तव विषम मायानाथ। (वि० ५६) मायावी-(सं०)-१. छली, कपटी, २. मय राक्षस का पुत्र। उ० २. मय सुत मायावी तेहि नाऊँ। (मा० ४।६।१) मायिक-(सं०)-माया से उत्पन्न, मिथ्या, झूठ। उ० कहि जगगति मायिक मुनिनाथा। (मा० २।२।४।१) मायो-(?) अंदाज किया, आजमाया। उ० सबनि अपनो बलु मायो। (गी० ५।१) मार (१)-(सं०) मारण)-१. मारो, २. मारते हैं, ३. मारकर। उ० २. मार खोज लै सौह करि करियत लाज न त्रास। (दो० ४।०।६) मारइ-१. मारती है, २. मारे, मार सके। उ० २. तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता। (मा० ३।२।३।१) मारउँ-मारूँ, मार डालूँ। मारत-मारते हैं, धुनते हैं। उ० हाहाकार पुकार सब आरत मारत माथ। (प्र० ५।५।२) मारतहु-मारने पर भी, मारते ही। मारन (१)-मारना, मार डालना। मारब-दे० 'मारबि'। मारबि-मार डालूँगा। उ० तो मैं मारबि कादि कृपाना। (मा० ५।१।०।५) मारसि-मारना। उ० मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही। (मा० ५।१।६।१) मारहि-मारते हैं। मारही-मारते हैं। मारहु-मारो। मारा (१)-मार डाला, बध किया। उ० राम सकुल रन रावन मारा। (मा० १।२।५।३) मारि-१. मार कर, २. लड़ाई। उ० १. मारि कै मार थप्यो जग में। (वि० ४) २. नाहि त सनमुख समर महि तात करिअ हठि मारि। (मा० ६।६) मारिय-मारिय, मार डालिए। मारिहउँ-मारूँगा। उ० तब मारिहउँ कि छाहिहउँ भली भाँति अपनाइ। (मा० १।१।८।१) मारिहि-मारेंगा। मार (१)-मारो, मार डालो। उ० दे० 'मारू (१)। मारू (१)-१. मारो, मार डालो, मार दो, २. लड़ाई का बाजा। उ० १. मारू मारू धरू धरू धरू मारू। (मा० ६।५।३।३) मारे-१. मार डाले, २. मार डालने पर, मारने पर, ३. मारे हुए। उ० २. मरइ न उरग अनेक जतन बलमीकि विविध बिधि मारे। (वि० १।१।५) मारेउँ-मारा। मारेउ-मारा। मारेसि-मारा। मारेहु-१. मारना, २. मारा, ३. मारने पर भी। मारौ-मारूँ, मार डालूँ। उ० जेहि प्रकार मारौ मुनिदोही। (मा० ३।१।३।२) मार्यो-मारा। उ० गहि भूमि पार्यो लात मार्यो बालि सुत प्रभु पहि गयो। (मा० ६।६।७।७।१) मार्यो-१.

मारा, २. मारना । उ० २. मिले रहैं मार्यौ चहैं कमादि सँघाती । (वि० १४७)
 मार (२)-(सं०)-कामदेव । उ० मार-करि मत्त मृगराज त्रय नयन हरे । (वि० ४६) मारन (२)-कामदेवों, काम-देवों का समूह ।
 मारकंडेय-दे० 'मारकंडेय' । उ० मारकंडेय मुनिवर्य हित कौतुकी । (वि० ६०)
 मारखी-(?)-परंपरागत । उ० लोक लखि बोलिए पुनीत रीति मारखी । (क० ११२)
 मारग-दे० 'मार्ग' । उ० हरि मारग चितवहिं मति धीरा । (मा० ११८८२)
 मारगन-(सं० मार्गण)-बाण, तीर । उ० राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल । (मा० ६६१)
 मारगु-दे० 'मारग' ।
 मारतंड-दे० 'मार्तंड' । उ० बेग जीत्यौ मारुत प्रताप मार-तंड कोटि । (क० २६)
 मारव-(सं० मालव)-मालव देश । उ० मरु मारव महिदेव गवासा । (मा० १६६४)
 मारा (२)-(सं० मार)-कामदेव । उ० तुम जो कहा हर जारेउ मारा । (मा० १६०३)
 मारीच-(सं०)-एक राक्षस जो ताड़का राक्षसी का पुत्र तथा रावण का अनुचर था । उ० चतुर्दश-सहस्र-सुभट मारीच-संहारकर्ता । (वि० ४३) मारीचहिं-मारीच को ।
 मारीचा-दे० 'मारीच' ।
 मारु (१)-सं० मार-कामदेव ।
 मारु (२)-(सं० मारण)-चोट । उ० मोटी रोटी मारु । (दो० ४२६)
 मारुत-(सं०)-वायु, हवा । हनुमान वायु के पुत्र थे । उ० मारुतनंदन मारुत को मन को खगराज को बेग लजायो । (क० ६६४)
 मारुति-(सं०)-मारुत के पुत्र हनुमान । उ० जाको मारुति दूत । (दो० १७६)
 मारु (२)-(सं० मार)-कामदेव । उ० मयै पानि पंज निज मारु । (मा० १२४७४)
 मारुडेय-(सं०)-एक अमर ऋषि ।
 मार्ग-(सं०)-पथ, रास्ता ।
 मार्जार-(सं०)-बिलार । उ० मोह-मूषक-मार्जार । (वि० ११)
 मार्तंड-(सं०)-सूर्य ।
 माल-दे० 'माल' । माल (१)-(सं० माला)-१. हार, माला, २. पंक्ति, ३. समूह । उ० १. उरग-नर-मौलि उर-मालधारी । (वि० ११) २. पावन गंग तरंग माल से । (मा० १३२१७) मालनि-मालाओं ने । उ० मालनि मानो है देहनि तें हुति पाई । (गी० १२७)
 माल (२)-(सं० मल्ल)-पहलवान ।
 मालवान-दे० 'माल्यवंत' । उ० मालवान ! रावरे के बावरे से बोल हैं । (क० २१२१)
 माला-(सं०)-१. हार, २. पंक्ति, ३. समूह । उ० ३. सुकृत पुंज मंजुल अलि माला । (मा० १३७४)
 मालिका-(सं०)-१. माला धारण करनेवाला, २. माला,

पंक्ति, अवली । उ० १. विभंगतर तरंग-मालिका । (वि० १७) २. सुभग सौरभ धूप दीप वर मालिका । (वि० ४८)
 मालिनि-(सं० मालिनी)-माली की स्त्री । उ० मंदाकिनि मालिनि सदा सींच । (वि० २३)
 माली-(सं०)-१. फूल या उपवन आदि सींचनेवाला । २. जो माला पहने हो । उ० १. माली मेघमाल, बन माल विकराल भट । (क० २१२) २. नाम दिव सेखर किरणमाली । (वि० २५)
 मालुम-(अर० मालूम)-विदित, मालूम । उ० नाथहि नीके मालुम जेते । (वि० २४३)
 माल्यवंत-(सं०)-रावण का नाना और मंत्री । इसका दूसरा नाम 'माल्यवान' भी था । उ० माल्यवंत अति सचिव सयाना । (मा० २१४०१)
 माष-(सं० मत्त)-क्रोध ।
 माषी-(सं० मत्त) क्रोधित हुई । माषे-क्रोधित हुए । उ० तुलती लखन माषे, रोषे राखे राम रख । (गी० ११८२)
 मास (१)-(सं०)-३० दिनों का एक समय-विभाग, महीना । उ० मास दिवस महँ नाथु न आवा । (मा० २१२७३)
 मास (२)-(सं० मांस)-गोश्त ।
 मासा (१)-दे० 'मास (१)' ।
 मासा (२)-दे० 'मास (२)' ।
 मासु (१)-दे० 'मास (१)' ।
 मासु (२)-दे० 'मास (२)' ।
 मासु (१)-दे० 'मासु (१)' ।
 मासु (२)-दे० 'मास (२)' ।
 माह-दे० 'माह' । उ० जाई राजवर ब्याहि आई राजवर माह । (क० २१४)
 माहली-(अर० महल)-महल में रहनेवाले । उ० कौने हँस किए की सभालु खास माहली । (क० ७१२३)
 माहिं-(सं० मध्य)-में ।
 माहिष्मती-(सं०)-सहस्रबाहु की राजधानी ।
 माहीं-दे० 'माह' । उ० तिभुवन तीनि काल जग माहीं । (मा० २१२२)
 माहुर-(सं० मधुर)-विष, ज़हर । उ० अमिय सजीवन माहुर मीचू । (मा० १३१३)
 माहुर-दे० 'माहुर' । उ० अमिय सजीवतु माहुर मीचू । (मा० १३१३)
 माहूँ-(सं० मध्य)-में । उ० सोचैजनि मन माहूँ । (वि० २७५)
 मिट्ट-(सं० मृष्ट)-मिट जाता है । उ० सुभिरत जाहि मिट्ट अम भारु । (मा० २१८७४) मिटत-मिटता है, नष्ट होता है । उ० तजे चरन अजहूँ न मिटत नित । (वि० ८७)
 मिटति-मिटती है, मिट जाती है । मिटहिं-मिटती है, मिट जाते हैं । उ० करत चरितं धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल । (मा० २१६३) मिटहि-१. मिटता है, २. मिटेगा । मिटा-मिट गया । मिटि-मिटकर । मिटिहहिं-मिटेंगे । मिटिहि-मिटेगा, मिट जाएगा । मिटी-मिट गई । उ० मिटी मीचु लहि लंक संक गई । (गी० २३३०)
 मिटे-मिट गए, समाप्त हो गए । उ० मिटे दोष हुख दारिद दावा । (मा० २१०२३) मिट्यौ-मिटा, दूर हुआ । उ०

मित्थी महा मोह जी को छुटयो पोच । (गी० १८६)
 मित-(सं०)-थोड़ा, कम, परिमित । उ० मित सुखप्रद
 सुनु राजकुमारी । (मा० ३१५३)
 मितभोगी-मितहारी, आहार-विहार में संतुलित । उ०
 अमित बोध अनीह मित भोगी । (मा० ३१५४)
 मिताई-(सं० मित्र)-मित्रता । उ० ईंधन पात किरात
 मिताई । (मा० २१२११)
 मिति-(सं०)-अंत, सीमा, मर्याद । उ० हिंसा पर अति
 प्रीति तिनके पापहि कवन मिति । (मा० ११८३)
 मित्र-(सं०)-दोस्त, बंधु, साथी, संगी । उ० ससि छवि-
 हर रवि सवदन तउ मित्र कहत सब कोइ । (दो० ३२२)
 मित्रहि-मित्र को, दोस्त को । उ० मित्रहि कहि सब कथा
 सुनाई । (मा० ११७११)
 मित्रता-(सं०)-दोस्त, मैत्री ।
 मिथिला-(सं०)-वर्तमान तिरहुत का प्राचीन नाम । जनक
 का राज्य यहीं था । इसी कारण वे 'मिथिलापति' 'मिथिला-
 धनी' तथा मिथिलेश आदि कहे गए हैं । उ० मिथिला
 अवध विशेष तें जगु सब भयउ अनाथ । (मा०
 २१२७०)
 मिथिलेश-(सं० मिथिलेश)-जनक । उ० फेरिअ प्रभु मिथि-
 लेश कियोरी । (मा० २१८२१)
 मिथ्या-(सं०)-झूठ, असत्य । उ० मिथ्या माहुर सज्जनहि ।
 (दो० ३३६) मिथ्यावादी-झूठा, झूठ बोलनेवाला ।
 मिनाक-दे० 'मैनाक' । उ० पूजा पाइ मिनाक पहि । (प्र०
 ११२१२)
 मिल-(सं० मिलन)-मिला, मिलता । उ० कबहुँ न मिल
 भरि उदर अहारा । (मा० ४१२७२) मिलाइ-मिलती है,
 मिल जाती है । उ० तुलसी जसि भवतब्यता तैसी
 मिलइ सहाइ । (मा० ११२६६ ख) मिलाई-१. मिले, २.
 मिलता है, मिल जाती है । उ० गगनु मगन मकु मेवहि
 मिलई । (मा० २१२२११) मिलउँ-मिलूँ, मिल जाऊँ ।
 मिलत-१. मिलता है, २. मिलने पर । उ० २. मिलत एक
 दुख दारुन देहीं । (मा० ११२१२) मिलति-मिलती है ।
 मिलतेउ-मिलता । उ० मिलतेउँ तात कवन विधि
 सोही । (मा० ७१६१२) मिलतेहु-मिलते । उ० जौं तुम्ह
 मिलतेहु प्रथम सुनीसा । (मा० ११८१११) मिलनि-मिलने
 का भाव । उ० बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं । (मा०
 २१२००४) मिलनी-दे० 'मिलनि' । मिलब-१. मिलूँगा,
 २. मिलिएगा । मिलयेसि-मिलाया, मिलवाया । मिलवहिं-
 मिलाते हैं । मिलहिं-१. मिलते हैं, २. मिलें, मिल
 जावें । उ० २. मिलहिं जोगी जरठ तिनहिं दिखाउ
 निरगुन खानि । (क० ५२) मिलहु-मिलो, मिलना ।
 मिला-१. अंत की, २. मिल गया, ३. गले मिला । मिलि-
 मिलकर । उ० मिलि वस पाँच राम पहि जाहीं । (मा०
 २१२४११) मिलिहिं-मिलेंगे । मिलिहिं-मिलेगा । मिली-
 मिल गई । मिलु-मिलो । मिले-१. मिल गए, २. मिलने
 पर । उ० १. मिले सुवित, बृकि कुसल परसपर । (गी०
 ११३५) मिलेउ-मिला । मिलेहु-मिला । मिलौं-मेल करूँ,
 मिलूँ । उ० पुनि मिलौं बैर बिसराई । (क० ५६)
 मिलन-(सं०)-१. मिलाप, सम्मिलन, २. प्राप्ति । उ० १.

कहहुँ जुगल मुनिवर्य कर मिलत सुभग संवाद । (मा०
 ११३३ ख)
 मिलनु-दे० 'मिलन' ।
 मिलाउब-मिलाऊँगा, मिला दूँगा । उ० अस बरु तुम्हहि
 मिलाउब आनी । (मा० ११८०२)
 मिलिक-(अर० मिलिकयत)-जागीर । उ० यह ब्रजभूमि
 सकल सुरपति सों मदन मिलिक करि पाई । (क० ३२)
 मिष-दे० 'मिस' ।
 मिष्ट-(सं०)-मीठा, मधुर ।
 मिस-(सं० मिष)-१. बहाना, हीला, २. हेतु, कारण, ३.
 कपट, छल, ४. स्वाँग, तमाशा, ५. डाह । उ० १. उठी
 सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन । (ब० १८)
 मिसकीनता-(अर०)-गरीबी । उ० लाभ योग छेम की गरीबी
 मिसकीनता । (वि० २६२)
 मिसि-दे० 'मिस' ।
 मिसु-दे० 'मिस' । उ० १. रामहि चले लिवाइ धनुष मख
 मिसु करि । (जा० ४३)
 मीच-(सं० मृच्यु)-मौत, मरण । उ० मीच ते नीच लगी
 अमरता । (मा० १११५)
 मीचु-दे० 'मीच' । उ० नीचु हति महि देव बालक कियो
 मीचु बिहीन । (गी० ७१२४)
 मीचू-दे० 'मीच' ।
 मीजत-(?) १. मीजते है, मसलते हैं, २. मीजते हुए । उ०
 २. लियो जुड़ाइ चले कर मीजत । (क० ४८) मु० कर
 मीजत-पछताते हुए । दे० 'मीजत' । मीजहीं-पीस देते थे ।
 मीजा-१. मला, मसला, २. हाथ फेरा, ठोका । उ० २.
 मीजा गुरु पीठ । (वि० ७६) मीजि-मीजकर, पीस कर ।
 मीजु-दे० 'मीच' । उ० आई मीजु मितत चपत राम नाम
 को । (क० ७१७५)
 मीचू-दे० 'मीच' । उ० अभिअ सजीवनु माहुरु मीचू ।
 (मा० ११६३)
 मीजत- दे० 'मीजत' । उ० अघर दसन वसि मीजत हाथा ।
 (मा० ६३१३) मीजहीं-मीजते हैं, मसलते हैं, पीसते हैं ।
 उ० दाँतन्ह काटि लातन्ह मीजहीं । (मा० ६१८११ छं० १)
 मीजि-मीजकर । उ० मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई । (मा०
 २११४४४) मु० मीजि हाथ-हाथ मीजकर, पछताकर ।
 उ० दे० 'मीजि' । मीजिहैं-मीजेंगे । मु० मीजिहैं हाथ-
 पछताएंगे । उ० मूढ़ मीजिहैं हाथ । (दो० १६५)
 मीठ-(सं० मिष्ट)-१. मीठा, मधुर, २. अच्छा । उ० १.
 मीठ काह कवि कहहि जाहि जेइ भावइ । (पा० ७२) मीठी-
 'मीठ' का स्त्रीलिंग ।
 मीठी-दे० 'मीठ' । उ० १. मीठी अरु कठवत भरो, रौताई
 अरु खेम । (दो० १५)
 मीत-(सं० मित्र)-दोस्त, मित्र । उ० मीत पुनीत कियो
 कपि भालु को । (क० ७१५)
 मीन-(सं०)-१. मछली, २. मीन राशि । उ० १. मीन
 मनोहर ते बहु माँती । (मा० ११३७४) मीन की
 सनीचरी-मीन राशि पर सनीचर होना । इसका फल
 राजा-प्रजा का नाश है । उ० कोढ़ में की खाज सी सनी-
 चरी है मीन की । (क० ७१७७) मीनिहैं-मछली को ।

मीनता-मङ्गलीपन । उ० सीतापति-भक्ति-सुरसरि-नीर मीनता । (वि० २६२)
मीना-दे० 'मीन' । उ० १. पाय पयोनिधि जन मन मीना । (मा० १२७२)
मीनु-दे० 'मीन' ।
मीला-(सं० मिल) १. मिल करके, २. मिला । उ० १. खेल गरुड जिमि अहि गन मीला । (मा० ६६६११)
मीसी-(सं० मिश्रित)-एक से अधिक अनाज से बनी । उ० छोटी मोटी मीसी रोटी । (कृ० २)
मुंज-(सं०)-सरपत, सरई, मूँज । उ० परम पावन पापपुंज-मुंजाटवी-अनल-इव-निमिष-निमूलकर्ता । (वि० ५५)
मुंड-(सं०)-१. कटा सिर, कटा हुआ कपाल, २. सिर, ३. शुंभ राक्षस का सेनापति जिसे दुर्गा ने मारा था । उ० १. रुंड मुंड मय मेदिनि करहीं । (मा० २१९२११) ३. मुंड-मद भंग करि अंग तोरे । (वि० १५)
मुंडित-(सं०) मूड़े हुए । उ० मुंडित सिर खंडित भुज बीसा । (मा० २१९१२)
मुँदरी-(सं० मुद्रिका)-अँगूठी । उ० नाथ हाथ माथे धरेउ, प्रभु-मुँदरी मुँह मेले । (प्र० ३१७११)
मुँह-(सं० मुख)-१. बदन, आनन, २. मुख-विवर । उ० २. गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा । (मा० २१९२११) मु० बोलौ बात मुँह भरि-प्रेम से बोले, भली भाँति बोले । (गी० ७३७) मुँह मसि लाई-मुँह में कालिख लगाकर । (मा० १२६६१४) मुँह मीठ-मधुर बोलनेवाला । (मा० २११७)
मुई-(सं० मरण)-मरी, मर गई, कष्ट सहा । उ० जननी कत भार मुई दस मांस । (क० ७४०) मुए-१. मरे, २. मरने पर, ३. मृतक । उ० १. मुए मरत मरिहैं सकल । (दो० २२४) मुएउ-मरने पर भी । उ० मुएउ न मिदैगौ मेरो मानसिक पड़िताउ । (गी० २१५७)
मुक्ता-(सं० मुक्ता)-मोती ।
मुक्तावहिंगे-(सं० मुक्त)-छुड़ावेंगे । उ० लोकपाल सुरनाग भनुज सब परे बंदि कब मुक्तावहिंगे । (गी० २११०)
मुक्ताफल-(सं० मुक्ताफल)-मोती ।
मुक्ति-दे० 'मुक्ति' ।
मुकुंद-(सं०)-१. कृष्ण, २. विष्णु । उ० २. तीज त्रिगुन पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद । (वि० २०३)
मुकुट-(सं०)-शिरोभूषण, ताज । उ० रत्न हाटक जटित मुकुट मंडित मौलि । (वि० ५१)
मुकुत-(सं० मुक्ति)-मोक्ष मुक्ति । उ० मुकुत जात जब कोइ । (दो० ५३१)
मुकुता-(सं० मुक्ता)-मोती, मौक्तिक । उ० मनि मानिक मुकुता छबि जैसी । (मा० १११११)
मुकुति-(सं० मुक्ति)-मोक्ष, अपवर्ग । उ० मुकुति मनोहर मीसु । (दो० २२२)
मुकुर-(सं०)-शीशा, दर्पण । उ० काई बिषय मुकुर मन लागी । (मा० ११११११)
मुक्ख-दे० 'मुँह' ।
मुक्त-(सं०)-बंधनरहित, जन्म-मरण रहित । उ० नित्य निर्भय नित्य मुक्त निर्मान हरि । (वि० ५३)
मुक्तये-मुक्ति के लिए, छुटकारे के लिए ।

मुक्ताफल-(सं०)-मोती ।
मुक्ताफल-दे० 'मुक्ताफल' ।
मुक्ति-(सं०)-१. छुटकारा, २. मोक्ष, निर्वाण । उ० २. भुक्ति मुक्ति दायिनि भयहरण कालिका । (वि० १६)
मुख-(सं०) मुँह, आनन । उ० का घूँघट मुख मुँहहु नवला नारि । (बा० १६) मुखनि-मुखों से । मुखहिं-मुख से । उ० मुखहिं निसान बजावहिं मेरी । (मा० ६३६१५)
मुखर-(सं०)-१. अप्रिय बोलनेवाला, २. बकधावी, बहुत बात करनेवाला, ३. आवाज़, रव, ध्वनि । उ० २. गिरा मुखर तनु अर्धभवानी । (मा० १२४७३) ३. मधुकर मुखर सोहाई । (वि० ६२)
मुखागर-(सं० मुखाग्र)-ज़बानी, मुँह से । उ० कहेउ मुखागर मूढ़ सन मम संदेस उदार । (मा० २१५२)
मुखिया-(सं० मुख्य)-सरदार, राजा, प्रधान पुरुष । उ० मुखिया मुख सो चाहिए खान-पान को एक । (मा० २३१५)
मुख-दे० 'मुख' ।
मुख्य-(सं०)-प्रधान, खास । उ० मुख्य रुचि होत बसिबे की पुर रावरे । (वि० २१०)
मुख-(सं०)-१. मोहित, २. विस्मित, ३. मूर्ख, ४. अल्प-वयस्क, ५. सुन्दर । उ० ३. मुख-मधुमथन मानद अयानी । (वि० ५६)
मुचत-(सं० मोचन)-छूटते हैं । उ० अति मुचत खम कन मुखनि । (गी० ७१५)
मुट्टी-(सं० मुष्टि)-१. हाथ की मूठी, २. किसी हथियार आदि की मुठिया ।
मुठमेर-(?)-सामना होना ।
मुठमेरी-(?)-आमने-सामने से । उ० चूक न घात मार मुठमेरी । (मा० २१३३२)
मुठिकन्ह-(सं० मुष्टिक)-मूठों से, धूसों से । उ० मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहि । (मा० ६१३३३) मुठिका-धूसा, मुक्का । उ० तब माहत सुत मुठिका हन्यो । (मा० ६६६१४)
मुड़ाई-(सं० मुंड)-मुड़ाकर, मुंडन कराकर । उ० मूढ़ मुड़ाई होहि संन्यासी । (मा० ७१००३)
मुद-(सं०)-हर्ष, आनंद । उ० पंचाक्षरी प्राण मुद माधव । (वि० २२)
मुदा-(सं० मुद)-प्रसन्न । उ० एहि ते तब सेवक होत मुदा । (मा० ७१४४०७)
मुदित-(सं०)-प्रसन्न, हर्षित । उ० पिवत मज्जत मुदित संत समाजा । (वि० ४४)
मुदितौ-प्रसन्नता । उ० मुदितौ मथै बिचार मथानी । (मा० ७११७१)
मुद्रिक-दे० 'मुद्रिका' । उ० देति मोद मुद्रिक न्यारी । (वि० ६३)
मुद्रिका-(सं०)-अँगूठी । उ० तब देखी मुद्रिका मनोहर । (मा० २१३११)
मुधा-(सं०)-ज्यर्थ, निष्पयोजन । उ० मुधा भेद जबापि कृत माया । (मा० ७१७८४)
मुनिदा-(सं० मुनीन्द्र)-मुनियों में श्रेष्ठ । उ० सुनहु सभासद सकल मुनिदा । (मा० १६४११)
मुनि-(सं०)-१. साधु, ऋषि, महात्मा, तपस्वी, २. सात

की संख्या, ३.सप्तमी, ४. सातवाँ। उ० १. मुनि माँगत सकुचाहीं। (वि० ४) ३. मुनि प्रथमादिक बार। (दो० ४५८)
 मुनिन्ह-मुनियों को, मुनिगाय को। उ० कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहि ग्याना। (मा० १।७६।१) मुनिहिं-१. मुनि को, २. मुनि ने।
 मुनिपट-मुनियों का वस्त्र, वल्कल, भोजपत्र। उ० मुनिपट भूषण भाजन आनी। (मा० २।७६।१)
 मुनिहुँ-मुनि की भी। उ० मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ। (गी० २।३२)
 मुनी-दे० 'मुनि'। उ० १. सोह भयो द्रव रूप सही जु है नाथ बिरचि महेश मुनी को। (क० ७।१४६)
 मुनीस-(सं० मुनीश)-मुनियों में श्रेष्ठ। मुनीसन्ह-श्रेष्ठ मुनियों ने। उ० भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए। (मा० १।३३।४)
 मुनीसा-दे० 'मुनीस'। उ० करहु कृपा जन जानि मुनीसा। (मा० १।१८।३)
 मुनीसु-दे० 'मुनीस'।
 मुसुज-(सं०)-मोक्ष की इच्छा रखनेवाला।
 मुथहु-(सं० मरण)-मरने पर भी। उ० मुथहु न माँगब नीच। (दो० ३३५) मुये-१. मरे हुए, मुदें, २. मरे। उ० १. नतु डोलत और मुये धरि देही। (क० ७।३६) मुयेहि-मरने पर, मरने पर भी।
 मुर-(सं०)-एक दैत्य जिसे कृष्ण ने मारा था, इसके पाँच सिर थे।
 मुरछा-(सं० मुच्छा)-बेहोशी, वह अवस्था जिसमें चेतना नहीं रह जाती।
 मुरछि-मूर्च्छित होकर।
 मुरछित-जिसे मुच्छा आ गई हो, बेहोश।
 मुरा-(सं० मुरण)-हिचका, किम्बका। उ० गयउ सभाँ मन नेकु न मुरा। (मा० ६।१६।४) मुरि-१. मुड़कर, २. किम्बककर। मुरे-दे० 'मुरेउ'। उ० २. बड़ो लाभ कन्या की रति को जहँ तहँ महिप मुरे। (गी० १।८७)
 मुरेउ-१. मुड़ गय, विमुख हो गय, २. हिचक गय। उ० १. मुरेउ न मन तनु टरेउ न टारे। (मा० ६।६६।३) मुरै-१. मुरे, मुड़े, २. हिचके।
 मुरारि-(सं०)-'मुर' राक्षस को मारनेवाले, कृष्ण। उ० कस न करहु करुना हरे! हुख हरन मुरारि! (वि० १०६)
 मुरारे-हे कृष्ण! उ० जद्यपि मैं अपराध-भवन हुख सस न मुरारे। (वि० ११०)
 मुरारी-दे० 'मुरारि'। उ० आजु उनीदे आप मुरारी। (क० २२)
 मुरुखाई-(सं० मूर्ख)-मूर्खता। उ० बढ कहत 'मुरुखाई महा'। (पा० ५४)
 मुरुछ-मूर्च्छा, बेहोशी। उ० गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह। (मा० २।४३)
 मुरुछि-मूर्च्छित होकर।
 मुरुछित-(सं० मूर्च्छा)-बेहोश, मूर्च्छित। उ० जोगी अकंठक भए पतिगति सुनत रति मुरुछित भई। (मा० १। ८७। छं० १)
 मुष्टि-(सं०)-घुसा, मूका। उ० मुष्टि प्रहार हनत सब भागे। (मा० १।३८।४)

मुसलाधार-(सं० मुसल)-मुसल के समान मोटी धार का। उ० बरवै मुसलाधार बार बार घोरि कै। (क० १।१६)
 मुसुकाई-(सं० मुस्कान)-मुस्कराकर, हँसकर। मुसुकाई-मुस्कराकर। उ० जागबलिक बोले मुसुकाई। (मा० १। ४७।१) मुसुकाता-मुस्काते हुए। उ० भगिनी मिलीं बहुत मुसुकाता। (मा० १।६३।१)
 मुँठि-(सं० मुँछि)-मूठी, मुट्टी। मुँठि मारि दी-टोना कर दिया। उ० काहु देवतानि मिलि मोटी मुँठि मारि दी। (क० ७। १८३)
 मुँड-(सं० मुँड)-कपाल, सर। उ० मुँड के कमंडलु खपर किये कोरि कै। (क० ६।५०) मु० मुँड चढ़े-गुस्ताख हो गए। (वि० २४६) मुँड मारि-परेशान होकर, दिमाग लड़ाकर। (वि० २७६)
 मुँदि-(सं० मुद्रण)-बंद करके।
 मू-मूल नक्षत्र। उ० आ भ अ मू गुजु साथ। (दो० ४५७)
 मूक-(सं०)-१. लुप, २. गूंगा, न बोलनेवाला, ३. दीन, ४. प्रेत, ५. मत्स्य। उ० २. सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै? (जा० ६७)
 मूकिये-(सं० मूक)-लुप रहिए। उ० पाले तेरे टूक को परेहँ चूक मूकिये न। (ह० ३४)
 मूकी-(सं० मुक्त)-छोड़ दी, त्याग दी। उ० मन मानि गलानि कुबानि न मूकी। (क० ७।८८)
 मूठि-दे० 'मुट्टी'। उ० २. मूठि कुलुखि धार निडुराई। (मा० २।३१।१)
 मुठी-दे० 'मुट्टी'। उ० १. भरि-भरि मूठी मेलिए। (दो० ४५)
 मुँडहि-(सं० मुँड) सिर पर। उ० मुँड लाए मूँडहि चकी अंतहु अहि-रिति तू सुधी करि पाई। (क० ८)
 मूढ-(सं० मूढ)-मूर्ख। उ० मूढ मृषा का करसि बड़ाई। (मा० १।५६।३)
 मूढता-मूर्खता, बेवकूफी। उ० जागि त्यागु मूढतातुरागु श्री हरे। (वि० ७४)
 मूत्र-(सं०)-पेशाब, मूत। उ० सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि। (वि० १३६)
 मूदि-दे० 'मुँदि'। उ० अवन मूदि न त चलिअ पराई। (मा० १।६४।२)
 मूर-(सं० मूल)-१. जड़, २. मूलधन, जमा, पूँजी। उ० २. फिरेउ धनिक जिमि मूर गँवाई। (मा० २।६६।४)
 मूरख-दे० 'मूर्ख'। उ० मूरख अचगुन गाहे। (मा० ३।१)
 मूरति-(सं० मूर्ति)-१. मूर्ति, प्रतिमा, २. शरीर, देह, ३. आकृति, शकल, ४. चित्र, तस्वीर। उ० १. मंगल-मूरति मास्त-नंदन। (वि० ३६) २. मूरति मनोहर चारि विरचि बिरचि। (गी० १।५)
 मूरि-(सं० मूल)-जड़, जड़ी। उ० सुजन सजीवनि मूरि सुहाई। (मा० १।३१।४)
 मूरख-दे० 'मूर्ख'। उ० मूरख हृदय न चेत। (दो० ४८४)
 मूर्ख-(सं०)-बेवकूफ, बालिश, मूढ़।
 मूर्च्छा-(सं०)-बेहोशी, अचेतनता।
 मूर्च्छित-(सं०)-बेहोश, बेसुध।

मूल-(सं०)-१. जड़, २. कारण, हेतु, ३. मूल नाम का १६ वाँ नक्षत्र, ४. प्रधान । उ० १. तथा ३. मूल-मूल सुर बीथि-बोलि । (गी० ११६) २. सकल अमंगल मूल निकंदन । (वि० ३६)

मूलक-(सं०)-मूली । उ० सकौ मेरु मूलक जिमि तोरी । (मा० ११२६३)

मूलिका-(सं०)-जड़ी, औषधि की जड़ । उ० बलिदान पूजा मूलिका मनि साधि राखी आनि कै । (गी० ७१२)

मूषक-(सं०)-चूहा । उ० मोह-मूषक-मार्जार । (वि० ११)

मूसर-(सं०)-मुशल-अनाज कूटने का डंडा । उ० कलपहुम काटत मूसर को । (क० ७१०३३)

मृग-(सं०)-१. पशु, २. हरिण, ३. हाथी, ४. मृगशिरा नक्षत्र, ५. खोज, ढूँढ़, तलाश । उ० १. खग मृग व्याध पषान विटप जड़ । (वि० १०१) २. चारु जनेउ माल मृग-छाला । (मा० ११२६८४) ३. स्तुति-गुन कर-गुन पु-जुग मृग । (दो० ४२६)

मृगछाला-(सं०)-मृग + छल-मृगचर्म, हरिन का चमड़ा । उ० दे० 'मृग' ।

मृगजल-दे० 'मृगतृष्णा' । उ० मृगजल-रूप विषय कारन । (वि० ११६)

मृगतृष्णा-(सं०)-मृगतृष्णा-धूप में जल का ज्ञान । मृग-बारि । उ० मृगतृष्णा सम जग जिय जानी । (दो० १४)

मृगनयनी-(सं०)-मृग + नयन-मृगे की तरह सुंदर आँख-वाली सुंदरी, स्त्री । उ० मृगनयनी के नयन सर, को अस लाग न जाहि ? (दो० २६२)

मृगपति-(सं०)-पशुओं का राजा, सिंह । उ० मृगपति सरिस असंक । (मा० ६१११ ख)

मृगवारि-(सं०)-मृगवारि-भूटा जल, तृष्णा का जल । उ० बूड़ो मृगवारि, खायो जँवरी कौं साँप रे ! (वि० ७३)

मृगमद-(सं०)-कस्तूरी । उ० मृगमद चंदन कुंकुम कीचा । (मा० १११६४४)

मृगया-(सं०)-शिकार, आखेट । उ० मृगया कर सब साजि समाजा । (मा० ११२६१२)

मृगराज-दे० 'मृगराज' । उ० कलुष पुंज कुंजर-मृगराज । (मा० २११०६११)

मृगराज-(सं०)-जानवरों का राजा, सिंह । उ० अतुल मृगराज वपु धरित विहरित अरि । (वि० ५२)

मृगलोचनि-(सं०)-मृग + लोचन-मृग की तरह सुंदर आँखवाली स्त्री । उ० बिधुबदनी सब सब मृगलोचनि । (मा० ११३१८११)

मृगांक-(सं०)-१. वैद्यक की एक दवा, सोने का भस्म, २. चंद्रमा । उ० १. रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो । (क० ११२४)

मृगा-(सं०)-मृग-१. हरिण, २. पशु । उ० १. देखि मृगा मृगनैनी कहै । (क० ३११)

मृगी-(सं०)-हरिणी । उ० मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू । (मा० २१४१२)

मृड-(सं०)-महादेव ।

मृणाल-दे० 'मृनाल' ।

मृत-(सं०)-१. मरा हुआ, २. मिट्टी ।

मृतक-(सं०)-मरा हुआ । उ० मृतक जिआवनि गिरा सुहाई । (मा० १११४२१४)

मृत्तिका-(सं०)-मिट्टी । उ० यथा पट-तंतु घट-मृत्तिका । (वि० ५४)

मृत्युंजय-(सं०)-महादेव, शंकर ।

मृत्यु-(सं०)-मौत, मरण । उ० मृत्यु उपस्थित आई । (वि० १२०)

मृदंग-(सं०)-पखाउज नामक बाजा । उ० बाजहि मृदंग डफ ताल बेनु । (गी० ७१२२)

मृदु-(सं०)-१. मधुर, २. कोमल, नरम । उ० २. तरुन अरुन अंभोज चरन मृदु । (वि० ६३)

मृदुता-(सं०)-कोमलता, सुकुमारता । उ० विटप फूलि-फलि तुन मृदुता हीं । (मा० २१३११४)

मृदुल-(सं०)-कोमल, नरम । उ० मृदुल बनमाल उर आजमानं । (वि० ५१)

मृनाल-(सं०)-मृणाल-कमल का डंठल, कमलनाल । उ० तौ सिवधनु मृनाल की नाई । (मा० ११२६१४)

मृषा-(सं०)-झूठ, मिथ्या । उ० मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई । (मा० ११६१३)

में-(सं०)-मध्य-बीच, मध्य ।

मेंढक-दे० 'मेढक' ।

मेंढुक-दे० 'मेढक' । उ० मेंढुक मकट बनिक बक, कथा सत्य उपखान । (दो० ३६८)

मे-(सं०)-मेरे लिए, मुझे, मुझको । उ० सुखांजुज श्री रघुनंदनस्यमे सदाऽस्तु सा मंजुलमंगलप्रदा । (मा० २१११ श्लो० २)

मेकल(सं०)-विंध्य पर्वत का एक भाग जिससे नर्मदा नदी निकली है । उ० मेकलसुता गोदावरि धन्या । (मा० २१३८२) मेकलसुता-(सं०)-नर्मदा नदी । उ० दे० 'मेकल' ।

मेखल-दे० 'मेखला' । उ० १. कनक जटित मनि नूपुर मेखल । (वि० ६३)

मेखला-(सं०)-१. करधनी; कटिसुत्र, २. जनेऊ, ३. पहाड़ का ढाल, ४. नर्मदा नदी । उ० १. मखि-मेखला कटि प्रवेश । (वि० ६१)

मेखु-दे० 'मेष' । उ० २. मनहुँ विधि जुग जलन विरचे ससि सुपूरन मेखु । (गी० ७१६)

मेघ-(सं०)-१. बादल, अन्न, २. कपास । उ० १. करहिं मेघ तहँ-तहँ नभ छाया । (मा० ३१७३)

मेघडंबर-(सं०)-रावण का छत्र विशेष । उ० छत्र मेघडंबर सिरधारी । (मा० ६१३३३)

मेघनाद-(सं०)-मेघ के समान गरजनेवाला इंद्रजित् जो रावण का पुत्र था । उ० मेघनाद कहूँ पुनि हैंकरावा । (मा० ११३८११)

मेचक-(सं०)-१. काला, श्याम, २. मोरपंख की चंद्रिका । उ० १. धूप धूम नभु मेचक भयऊ । (मा० ११३४७१)

मेचकताई-कालिमा, श्यामता । उ० कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई । (मा० ६१३२२)

मेटल-(सं०)-मिट्टी-मिट्टाते हैं, नष्ट करते हैं । उ० मेटल कटिन कुअंक भाल के । (मा० ११३२४) मेटहु-मेटो,

मिटाओ। उ० मेटहु कुल कलंक कोसखपति। (गी० २।७१) मेटि-मिटा, मिटाकर। उ० मेटि को सकइ। (पा० ७१)
 मेहुकन्हि-(सं० मंडूक)-मेहकों को। उ० जौ मृगपति बध मेहुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि। (मा० ६।२३ ग)
 मेहक-(सं० मंडूक)-दादुर, मेघा। उ० तेरे देखत सिंह को सिंसु-मेहक लीले। (वि० ३२)
 मेढी-(सं० वेणी)-तीन लड़ियों की गुथी चोटी। उ० मेढी लटकन मनि-कनक-रचित। (गी० १।११)
 मेद-(सं०)-१. बसा, चरबी, मज्जा, २. मोटी, भारी। उ० २. मेद महिमा निधान गुन ज्ञान केनिधान हो। (ह० १४)
 मेदिनी-(सं०)-पृथ्वी। उ० मंडि मेदिनी को मंडलीक लीक लोपिहै। (क० ६।१)
 मेध-(सं०)-यज्ञ। उ० कोटिन बाजि मेध प्रसु कीन्है। (मा० ७।२४।१)
 मेधा-(सं०)-बुद्धि, धारण करनेवाली बुद्धि, समझ। उ० मेधा महि गत सो जल पावन। (मा० १।३६।४)
 मेर-दे० 'मैल'।
 मेरवनि-(सं० मैल)-मैल की, मिली। उ० कटि निषंग परि-कर मेरवनि। (गी० ३।५)
 मेरियै-मेरी ही। उ० चूक चपलता मेरियै तू बड़ो बड़ाई। (वि० ३५) मेरियौ-मेरी भी। उ० वै मेरियौ टेव कुटेव महा है। (क० ७।१०।१) मेरी-(सं० मया + प्रा० केरा)-भ्रम, मदीय, हमारी। उ० जिनके भाल लिखी लिपि मेरी। मेरे-मेरे, हमारे। उ० मेरे मन मान है न हर को न हरि को। (ह० ४२)
 मेरु (१)-(सं०)-१. सुमेरु पर्वत जो सोने का कहा गया है, २. पर्वत, ३. माला की बड़ी मनिया। उ० १. सकौ मेरु मूलक हूव तोरी। (मा० १।२५।३।३) २. धौर धकानि सौं मेरु हले हैं। (क० ६।३३)
 मेरु (२)-(सं० मैल)-मैल, मिलाप। उ० करत मेरु की बतकही। (गी० ७।६)
 मेरु (१)-दे० 'मेरु (१)। सुमेरु पर्वत। उ० सकइ उठाइ सुरासुर मेरु। (मा० १।२६।२।४)
 मेरु (२)-दे० 'मेरु (२)।
 मेरो-(सं० मया + प्रा० केरा)-हमारा, मेरा। उ० मेरो अरुचित न कहत लरिकाई बस। (गी० १।८३)
 मेरोह-मेरा ही। उ० मेरोह हिय कठोर करिबे कहँ। (गी० २।८४) मेरोह-दे० 'मेरोह'।
 मैल-(सं०)-मिलने की क्रिया या भाव, संयोग, भेंट।
 मैलह-(सं० मैल)-मैलता है, डालता है। मैलत-डालते हैं। मैलही-पहनते हैं, डालते हैं। उ० धरि गाल फारहि उर बिदारहि गल अँतावरि मैलही। (मा० ६।८।३।२)
 मैला-१. डाला, २. कर लिया। उ० २. सुरत बिभीषन पाछँ मैला। (मा० ६।६४।१) मैलि-डालकर। उ० मैलि जनेऊ लोहि कुदाना। (मा० ७।६६।१) मैलिहि-डालेगी। उ० मैलेहि सीय राम उर माखा। (मा० १।२५।२) मैली-१. डाल दी, २. डालकर। उ० १. सुता कोलि मैली मुनि चरना। (मा० १।१६।४) मैले-डाले, गिराये। उ० पद-सरोज मैले दोड भाई। (मा० १।२६।३) मैलै-

(सं० मैल)-१. मैलते हैं, मिलाते हैं, २. डालते हैं। उ० १. मैलै गरे छुरा धार सौं। (क० २।११) मैलै-डाले, डाल दे। उ० जो बिलोकि रीकै कुँरि तब मैलै जयसाल। (मा० १।१३।१)
 मेष-(सं०)-१. भेंद, मेह, २. पहली राशि। उ० १. बृक बिलोकि जिमि मेष बरूथा। (मा० ६।७०।१) २. मेषादिक क्रम ते गनहिं। (दो० ४५६)
 मेह-(सं० मेघ)-बादल, घटा। उ० राम नाम नव नेह मेह को मन हटि होहि पपीहा। (वि० ६५)
 मै-(सं० मया)-१. उत्तम पुरुष एक बचन सर्वनाम, हम, २. अहंकार। उ० १. मै अरु मोर तोर तैं माया। (मा० ३।१५।१) २. मै तैं मेदयो मोहतम। (वै० ३३)
 मैत्री-(सं०)-मित्रता, दोस्ती, स्नेह।
 मैथिली-(सं०)-जानकी, सीता। उ० श्रीखंड सम पावक प्रवेश कियो सुमिरि प्रसु मैथिली। (मा० ६।१०।६।३।१)
 मैथुन-(सं०) स्त्रीप्रसंग, सहवास, भोगविलास। उ० भय निद्रा मैथुन अहार सब के समान जग जाए। (वि० २०।१)
 मैन-(सं० मदन)-१. मोम, २. कामदेव, ३. प्रेम। उ० १. मैन के दसन कुलिस के मोदक। (क० ५।१) २. मुनि वेष बनाए है मैन। (गी० २।२४) ३. ग्वालि मैन मन मोए। (क० ११)
 मैना-(सं० मेनका या मदन)-पार्वती की माता। उ० सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना। (मा० १।६।८)
 मैनाक-(सं०)-एक पर्वत का नाम। उ० तैं मैनाक होहि श्रमहारी। (मा० ५।१।५)
 मैया-(सं० मातृ)-माता, माँ। उ० सुनु मैया! तेरी सौं करौं। (क० ८)
 मैला-(सं० मलिन)-१. गंदा, मलिन, २. उदास। उ० १. पठए बालि होहि मन मैला। (मा० ४।१।३)
 मो-(सं० मध्य)-मैं, बीच। उ० मन मों न बस्यौ अस बालक जौ। (क० १।२)
 मो (१)-(सं० मम)-मैं, मेरा, मेरे। उ० मो पर कीबी तोहि जो करि लोहि भियारे। (वि० ३३) मोकहँ-दे० 'मोको'। उ० नाहिन नरक परत मोकहँ डर जद्यपि हौं अति हारो। (वि० ६४) मोको-सुकको, मेरे लिए। उ० मोको और और न सुटेक एक तोरिए। (वि० १८।१) मोतें-सुकसे, मेरी अपेक्षा। उ० २. को जग मंद मलिनमति मोतें। (मा० १।२।६)
 मो (२)-(सं० मध्य)-मैं। उ० पर निदक जे जग मो बगरे। (मा० ७।१०।२।५)
 मोहै-(१)-१. भिगोई, २. मोह ली। उ० २. कछुक देवमार्यो मति मोहै। (मा० २।८।३) मोए-भिगोए, डुबोए। उ० बिथकी है ग्वालि मैन मन मोए। (क० ११)
 मोल-(सं०)-मुक्ति, निर्वाण, अपवर्ग। उ० मोच-बितरनि, बिदरनि जगजाल की। (क० ७।१।८)
 मोखे-(सं० मुख)-खिड़कियाँ। उ० नयन बीस मंदिर कैसे मोखे। (गी० ५।१२)
 मोचक-(सं०)-छुड़ानेवाले।
 मोचत (सं० मोचन)-छोड़ते हैं, बहाते हैं। उ० बोरिज लोचन मोचत बारी। (मा० २।३।७।३) मोचति-छोड़ती

हैं, बहाती हैं। उ० मंजु बिलोचन मोचति बारी। (मा० २।५८।४) मोचहि-१. छोड़ती हैं, २. दूर करती हैं। उ० १. उमा मातु मुख निरखि नयन जल मोचहि। (पा० १५६) मोचन-(सं०)-१. छुड़ाना, छुटकारा देना, २. दूर करने-वाला, छुटकारा देनेवाला। उ० २. गण कौसिक आश्रमहि विप्रभय-मोचन। (जा० ४१) मोचनि-मोचनेवाली, छुड़ानेवाली। उ० ससि मुख कुंकुम बरनि सुलोचनि मोचनि सोचनि वेद बखानी। (गी० ६।२०) मोचिनि-(?)—जूता सीनेवाली। उ० मोचिनि बदन सँको-चिनि हीरा माँगन हो। (रा० ७) मोच्छ-(सं० मोक्ष)-मुक्ति, मोक्ष। उ० ग्यान मोच्छ प्रद वेद बखाना। (मा० ३।१६।१) मोट-(दे० 'मोटरी')-१. गठरी, मोटरी, २. बोझ, ३. स्थूल, मोटा, ४. अमीर, धनी। उ० १. चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहाल को। (क० ७।१७) ३. भूमि सयन पट मोट पुराना। (मा० २।२५।३) मोटरी-(तैलग मूटारी)-गठरी, पोटली। उ० निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी। (क० ७।१८३) मोटा-(सं० मुष्ट)-१. दबीज, पतला का उलटा, २. मजबूत, पुष्ट, ३. अधिक। मोटी-'मोटा' का स्त्रीलिंग। उ० २ काहु देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी। (क० ७।१८३) मोटेऊ-मोटे भी। उ० छोटे बड़े खोटे खरे मोटेऊ दूबरे। (वि० २४६) मोती-(सं० मौक्तिक)-एक बहुमूल्य रत्न जो सीपी से निकलता है। उ० कमल-दलन्हि बँडे जनु मोती। (मा० १।१६।१) मोद-(सं०)-प्रसन्नता, हर्ष। उ० देखत विवाद मिटै मोद करषतु हैं। (क० ६।५८) मोदक-(सं०)-१. लड्डू, २. आनंद देनेवाला। उ० १. मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिए। (ह० २०) मोदकन्हि-लड्डुओं से। उ० मन मोदकन्हि कि भूख जुताई। (मा० १।२४।१) मोहु-दे० 'मोह'। उ० नृपहि मोहु सुनि सचिव सुभाषा। (मा० २।५।४) मोर (१)-(सं० मम + प्रा० केरा)-मेरा, मेरी। मोरि-मेरी, हमारी। उ० लखु मति मोरि चरित अषगाहा। (मा० १।८।३) मोरै-मेरे में, मुझमें। उ० मुनि मन हरष रूप अति मोरै। (मा० १।१३।३) मोरे (१)-१. मेरे, अपने, २. मुझको। उ० २. सुंदर मुख मोहि दिखाउ। (क० १) मोर (२)-(सं० मयूर)-मयूर, एक सुंदर पक्षी। उ० १. मोर सिखा बिनु मूरिह पलुहत गरजत मेह। (दो० ३।१६) मोरा (१)-मेरा। उ० खल परिहास हीह हित मोरा। (मा० १।६।१) मोरी (१)-मेरी। उ० तिन्ह महेँ प्रथम रेख जग मोरी। (मा० १।१२।२) मोरा (२)-(सं० मयूर)-मोर, मयूर। उ० जाचक चातक दादुर मोरा। (मा० १।३४।३) मोरी (२)-(सं० मुरग)-मोड़कर। उ० बोली बिहँसि नयन सुँहु मोरी। (मा० २।२७।४) मोरेहु-मेरे भी। उ० मोरेहु मन अस आव। (पा० १।६) मोरे (२)-१. मोड़े हुए, २. मोड़ने पर। मोल-(सं० मूल्य)-१. कीमत, दाम, २. क्रय, खरीद, ३.

दर, भाव, ४. खरीद कर। उ० १. गज गुन मोल अहार बल। (दो० ३८०) मोला-दे० 'मोल'। उ० ४. हास विलास लेत मनु मोला। (मा० १।२३।३) मोह-(सं०)-१. अज्ञान, भ्रम, २. प्रेम, मुहब्बत, ३. माया, ४. मूर्च्छा, बेहोशी। उ० १. मान-मद-मदन-मत्सर-मनो-रथ-मथन मोह-अभोधि-मंदर मनस्वी। (वि० ५५) ३. तुलसिदास प्रभु मोह शंखला छुटहि तुम्हारे छोरे। (वि० ११४) मोहइ-(सं० मोह)-मोहता है। उ० लोचन भाल बिसाल बदन मन मोहइ। (पा० ७५) मोहई-मोहित हो जाते हैं। उ० सहि सक न भार उदार अहिपि बार बारहि मोहई। (मा० ५।३५।४०) २) मोहहि-१. मोहते हैं, मोहित हो जाते हैं, २. मोह को प्राप्त होते हैं। उ० २. जड़ मोहहि बुध होहि सुखारे। (मा० २।१२७।४) मोहहि-दे० मोहहि। उ० १. बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहि। (मा० १।६४।४०) १) मोहा-दे० 'मोह'। १. अज्ञान, २. मोह लेता है। उ० २. छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा। (मा० २।१०५।४) मोहि (१)-मोहकर, अज्ञानवश होकर। मोही-मोह लिया, मोहित कर लिया। मोहै-मोहित हो गए। उ० देखत रूप सकल सुर मोहे। (मा० १।१००।३) मोहेउ-मोहित हो गए। उ० नैन तीर तरु पुलक रूप मन मोहेउ। (जा २०) मोहेहु-दे० 'मोहेउ'। मोहन (सं०)-१. मोहनेवाला, २. कृष्ण। उ० १. सब भाँति मनोहर मोहन रूप। (क० २।१८) मोहनिहार-मोहनेवाला। उ० बदन सुषमा सदन सोभित मदन-मोहनिहार। (गी० ७।८) मोहनी-(सं०)-१. मोहनेवाली, २. विष्णु का वह स्त्री-रूप जो उन्होंने अमृत बाँटते समय असुरों को छलने के लिए धारण किया था। ३. वशीकरण मंत्र। उ० १. तोतरी बोलनि बिलोकनि मोहनी मन हरनि। (गी० १।२५) ३. सिलमोहनी करि मोहनी मन हर्यौ मूरति साँवरी। (जा० १।६२) मोहि-(सं० मम)-१. मुझको, २. मुझ में, ३. मेरे। उ० २. तोहि मोहि नाते अनेक मानिए जो भावे। (वि० ७६) ३. कहेउ भूप मोहि सरिस सुकृत किए काहु न। (जा० १७) मोहि (२)-मुझे, मुझको। उ० देहि मा ! मोहि प्रथ प्रेम यह नेम निज राम धनश्याम, तुलसी पपीहा। (वि १५०) मोहित-१. मुग्ध, २. मूर्च्छित, अचेत। उ० २. काम-मोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह। (वि० २१४) मोहिनी-दे० 'मोहनी'। मोही-मुझे। दे० 'मोहि'। मोही-मुझे, मुझसे। उ० कहिअ बुझाइ कृपा-निधि मोही। (मा० १।४६।३) मोहु-मुझे, मुझ। उ० मोहुँ से कहूँ कतहुँ कोउ तिन्ह कबो कौसलराज। (वि० २१६) मोहु (२)-दे० 'मोह'। उ० १. कोहु मोहु ममता महु ल्यागी। (मा० १।३४।३) मोहु (२)-मुझे। दे० 'मोहि'।

मोह (१)-दे० 'मोह' । उ० १. अस बिचारि, प्रगटउँ निज मोह । (मा० १।४६।१)
 मोह (२)-सुम् । उ० अस मैं अधम सखा सुनु मोह पर रघुवीर । (मा० ५।७)
 मौगी-(सं० मौन)-सुप । उ० सुनि खग कहत अंब मौगी रहि समुक्ति प्रेम पथ न्यारो । (गी० २ ६६)
 मौक्तिक-(सं०)-सुक्ता, मोती ।
 मौन-(सं०)-१. सुप, सूक, २. चुप्पी, सूकता । उ० १. नाहि त मौन रहब दिनु राती । (मा० २।१६।२) मौन-मौन में, चुप्पी में । उ० रूप प्रेम परमित न पर सकहि बिथकि रही मति मौनै । (गी० १।१०२)
 मौनु-दे० 'मौन' । उ० २. हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु । (मा० २।१६०)

मौर-(सं० मुकुट)-१. शिरोभूषण, मुकुट, २. विवाह के अवसर पर पहना जानेवाला सेहरा, ३. बौर, मंजरी । उ० २. कनक रतन मनि मौर लिहे मुसुकातहि हो । (रा०७)
 मौलि-(सं०)-चोटी, सिर । उ० स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा । (मा० ७।१०८।३)
 मौसी-(सं० मातृश्वसा)-माता की बहिन । उ० मातु मौसी बहिनिहूँ तैं सासु तैं अधिकाइ । (गी० ७।३४)
 म्लान-(सं०)-दुखी, उदास, सूखा ।
 म्लेच्छ-(सं०)-१. वे जातियाँ जिनमें वर्णाश्रम धर्म न हो । २. मुसलमान, ३. गंदा, ४. अपवित्र, ५. नीच, पापी ।
 म्हाको-(?) १. मेरा, २. मुझको । उ० १. मंदमति कंत ! सुनु मंत म्हाको । (क० ६।२१)

य

यं-(सं०) जिसको, जिसके ।
 यंता-(सं० यंत)-सारथी ।
 यंत्र-(सं०)-१. तांत्रिकों के अनुसार कुछ विशिष्ट प्रकार से बने कोष्ठक, जंतर, २. औजार, मशीन, ३. बाजा, ४. ताला । उ० १. डाकिनी-शाकिनी-खेचरं-भूचरं यंत्रमंत्र-भंजन प्रबल कल्मषारी । (वि० ११)
 यंत्रणा-(सं०)-१. क्लेश, दुःख, २. दंड, यातना ।
 यंत्रिका-(सं०)-छोटा ताला ।
 यंत्रित-(सं०)-१. कैद, बद्ध, बंद, २. नियमित, ३. ताला लगा हुआ, ताले में बंद । उ० ३. जयति निरुपाधि, भक्ति भाव यंत्रित-हृदय, बंधुहित-चित्रकूटाद्रिचारी । (वि० ३६)
 यंत्रा-(सं० यंत्रिन्)-चाँदी-सोने का तार खींचने का यंत्र । दे० 'जंत्री' ।
 यः-(सं०) जो ।
 यज्ञ-(सं०)-१. एक देवयोनि । ये लोग कुबेर के सेवक तथा उनकी निधियों के रक्षक माने जाते हैं । २. कुबेर । उ० १. यज्ञ भंघर्वं मुनि किन्नरोंग दनुज मनुज मज्जहि सुकृत-पुंज सुत कामिनी । (वि० १८)
 यज्ञराज-(सं०)-यज्ञों के स्वामी कुबेर ।
 यक्ष्मा-(सं० यक्ष्मन्)-क्षय नामक रोग; तपेदिक ।
 यगण-(सं०)-कुंदःशास्त्र में आठ गणों में एक जो एक लघु और दो गुरु मात्राओं का होता है ।
 यगान-दे० 'यगण' । उ० तिनहि यगन कैसे लहइ परे सगन के बीच । (सं० २८६)
 यच्छेस-(सं० यक्षेस)-यज्ञों के राजा कुबेर । उ० तीरथपति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छे तेहि । (क० ७।११२)
 यजन-(सं०)-१. यज्ञ करना, २. पूजा, ३. बलिदान ।
 यजमान-(सं०)-यज्ञकर्त्ता, यथा ।
 यजुः-दे० 'यजुर्वेद' ।
 यजुर-दे० 'यजुर्वेद' ।

यजुर्वेद-(सं०)-चार प्रसिद्ध वेदों में एक जिसमें यज्ञकर्म आदि का वर्णन है ।
 यज्ञ-(सं०)-एक धार्मिक कृत्य जिसमें हवन बलिदान आदि होता है । यजन, अश्वर, क्रतु । यज्ञ कई प्रकार के होते हैं, जिनमें पंचमहायज्ञ, राजसूय यज्ञ, देवयज्ञ, नरमेघ यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ तथा गोमेध यज्ञ आदि प्रधान हैं । उ० साप बस-मुनि बधू मुक्तकृत, विम.हित-यज्ञ रच्छन-दच्छ पच्छकर्त्ता । (वि० ५०)
 यज्ञपुरुष-(सं०)-विष्णु, नारायण ।
 यज्ञेश-(सं०)-विष्णु, नारायण ।
 यज्ञोपवीत-(सं०)-१. जनेऊ, यज्ञसूत्र, २. एक संस्कार जो द्विजातियों में प्रचलित है । अभ्ययन आरम्भ करने के पूर्व यह होता है, इसी समय बालक सर्वप्रथम जनेऊ पहनता है । उ० १. यज्ञोपवीत बिचित्र हेम मय, मुक्तामाल उरसि मोहि भाई । (गी० १।१०६)
 यतत-(सं० यत्न) यत्न करते हैं ।
 यतन-(सं० यत्न)-प्रयास, यत्न, कोशिश ।
 यति-(सं०)-संन्यासी, त्यागी, योगी ।
 यती-दे० 'यति' ।
 यत्-(सं०)-१. जितना, २. जहाँ तक, ३. जो, ४. जिसका, ५. जिससे । उ० ३. बर्म-चर्मासि-धनु-वाण-नुगीरधर, सनु संकट-समन यत्प्रनामी । (वि० ४०) ४. यत्पाद प्लवमेक-मेव हि भवांभोधेस्तितीर्षावता । (मा० १।१। श्लो० ६)
 यत्न-(सं०)-१. उपाय, जतन, तदवीर, २. चिकित्सा, इलाज ।
 यत्र-(सं०)-जहाँ, जिस जगह । उ० यत्र तिष्ठति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छति श्रीराग्निवासी । (वि० ५७)
 यथा-(सं०)-जिस प्रकार, जैसे, ज्यों । उ० चारिभुज चक्र कौमोदकी जलज दूर सरसि जो परि यथा राजहंसम् । (वि० ६१) यथाअर्थ-यथार्थ, ठीक, सत्य । उ० की मुख

पट दीन्हें रहै, यथाअर्थ भाषंत । (वै० ११) यथायिति-
(सं० यथा + स्थिति)-१. जैसी स्थिति, यथार्थ, सत्य, २.
जैसे का तैसा, पूर्ववत् । यथामति-अपनी बुद्धि के अनु-
सार । उ० सिय-रघुबीर-बिबाहु यथामति गावों । (जा०
२) यथायोग्य-जैसा उचित हो, यथोचित । यथाजोग-
दे० 'यथायोग्य' । उ० यथाजोग जेहि भाग बनाई । (मा०
११२६१५) यथाविधि-विधिपूर्वक, विधि से ।

यथार्थ-(सं० यथार्थ)-तत्त्वतः, जैसा होना चाहिए, ठीक ।
यथार्थ-(सं०)-१. ठीक, वाजिब, उचित, २. ज्यों का त्यों,
जैसा का तैसा ।

यथेष्ट-(सं०)-१. इच्छानुसार, यथेच्छ, २. प्रसुर, पर्याप्त,
अधिक ।

यथोचित-(सं० यथा + उचित)जैसा उचित हो, जैसा चाहिए ।
यदपि-दे० 'यद्यपि' ।

यदा-(सं०)-जब, जिस समय ।

यदि-(सं०)-अगर, जो ।

यदुपति-(सं०)-१. श्रीकृष्ण, २. राजा ययाति ।

यद्यपि-(सं०)-अगरचे, हालाँ कि ।

यम-(सं०)-१. प्रसिद्ध देवता जो मृत्यु तथा न्याय या धर्म के
अधिष्ठाता कहे गए हैं और यमराज, तथा धर्मराज आदि
नामों से पुकारे जाते हैं । २. इंद्रियादि को रोकना, निग्रह,
संयम, ३. जोड़ा । उ० १. ब्रह्मद्र-चंद्रार्क-वरुणाग्नि-वसु-
मरुत-यम । (वि० १०) २. नियम यम सकल-सुरलोक-
लोकेश । (वि० १८)

यमदग्नि-(सं०)-एक ऋषि जो परशुराम के पिता थे ।

यमदूत-(सं०)-यमराज के गण जो पापियों को यमलोक
या नरक में ले जाते हैं और वहाँ तरह-तरह की यातना
देते हैं ।

यमधार-(सं०)-ऐसी तलवार जिसके दोनों ओर धार हो ।

यमधारि-(सं०)-यमराज की सेना ।

यमन (१)-(सं०)-संयम, बाँधना, रोकना ।

यमन (२)-(सं० यवन)-१. एक राग, २. म्लेच्छ, मुसल-
मान । कुछ लोगों का मत है कि यवन मूलतः यूनानियों
का नाम था पर यथार्थतः यवन मुसलमानों और यूनानियों
दोनों ही से भिन्न जाति का नाम था । मध्य युग में
इस शब्द का प्रयोग मुसलमानों के लिए हुआ है । उ०
२. गोंड गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल । (दो०
१५६)

यमपुर-(सं०)-यमराज के रहने का स्थान, यमलोक ।

यमनगर-दे० 'यमपुर' ।

यमभट-दे० 'यमदूत' ।

यमराज-(सं०)-यम । दे० 'यम' ।

यमल-(सं०)-१. युग्म, जोड़ा, २. साथ उत्पन्न होनेवाली
संतान या कोई वस्तु, यमज ।

यमलार्जुन-(सं०)-गोकुल के दो अर्जुन वृक्ष जो पुराणों के
अनुसार कुंभर के पुत्र नलकूबर और मणिश्रीव थे और
नारद के शाप से जड़ हो गए थे । कृष्ण ने बालक्रीड़ा में
इन्हें उखाड़कर इनका उद्धार किया ।

यमुना-(सं०)-एक प्रसिद्ध नदी जो ब्रज में से होकर बहती
है । इसका पानी नीला है । यमुना सूर्य की पुत्री और

यमराज की बहिन है । यमराज के वरदान से जो यमुना
की शरण में जाता है उसे यमदूत दंड नहीं देते, अर्थात्
वह मुक्त हो जाता है ।

यम-दे० 'य' । उ० यमाश्रि तो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र
बंधते । (मा० १११ श्लो० ३)

ययाति-(सं०)-राजा नहुष के छः पुत्रों में एक । ययाति शुक
के शाप से वृद्ध हो गए तो इनके छोटे पुत्र पुरु ने अपनी
जवानी देकर इन्हें पुनः युवा बनाया था ।

यव-(सं०)-जौ नाम का अन्न ।

यवन-(सं०)-१. मुसलमान, २. यूनानी । दे० 'यमन' ।
उ० १. श्वपंच खल भिखल यवनादि हरि लोक-गत नाम
बल बिपुल मति मलिन-परसी । (वि० ४६)

यवास-(सं०)-जवास नाम का काँटेदार पौधा ।

यश-(सं०)-१. कीर्ति, नेकनामी, २. बढ़ाई, प्रशंसा,
महिमा ।

यशस्वी-(सं० यशस्विन्)-जिसका यश खूब फैला हो, कीर्ति-
मान, नामवर, यशी ।

यशुमति-दे० 'यशोदा' ।

यष्टी-(सं० यष्टि)-लाठी, लकड़ा, छड़ी, सोटा । उ० परम
दुर्घट पंथ, खल असंगत साथ, नाथ नहि हाथ बर वि-
यष्टी । (वि० ६०)

यस्य-(सं०)-जिसका, जिस किसी का । उ० यस्य गुण गण्य
गनति विमल मति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी ।
(वि० ११)

यह-(सं० पृषः)-निकट की वस्तु का निर्देश करनेवाला एक
सर्वनाम जिसका प्रयोग वक्ता और श्रोता को छोड़कर
और सब मनुष्यों, जीवों तथा पदार्थों के लिए होता है ।
उ० ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की ।

(वि० ३०) यहउ-यह भी । उ० यहउ कहत भल कहिहि
न कोऊ । (मा० २१२०७१) यहू-यह, यह भी, इस । उ०
मोहि सम यहू अनुभयउ न दूजै । (मा० २१३१३) यहै-
यही, यह ही । उ० तुलसी यहै सांति सहिदानी । (वै० ५१)

यहाँ-(सं० इह)-इस जगह, इस स्थान पर । यहाँ-यहीं, इसी
स्थान पर । उ० राम लषन मेरी यहाँ भेंट, बलि जाउँ जहाँ
मोहि मिलि लीजै । (गी० २१२)

यहि-(सं० इह)-यह, इस । उ० तुलसिदास भवत्रास मिटै
तब जब मति यहि सरूप अटकै । (वि० ६३)

याँचा-(सं० याचन)-माँगा ।

या (१)-(फा०)-अथवा, वा ।

या (२)-(सं० इह)-यह, इस । उ० या ब्रज में लरिकां
घने, हौही अन्याई । (कृ० ८) याकी-इसकी । उ० सुनु
मैया ! तेरी सौं करौं याकी टेव लरन की, सकुच बॅचि सी
खाई । (कृ० ८) याके-इसके । उ० सोचै सब याके अघ
कैसे प्रभु छुमिहै । (क० ७१०१) याको-इसको । यातै-
इससे । उ० यातै सबै सुधि भूलि गई । (क० १११०) यामहिं
(१)-(सं० इह)-इसमें । उ० मेरे कहौ थाकु गोरस,
को नवनिधि मंदिर यामहिं । (कृ० ५) याहि-१. इसको,
इसे, २. इसी । उ० १. याहि कहा मैया मुँह लावति ।
(कृ० १२) याही-दे० 'याहि' । उ० २. सब परिवार
मेरो याही लागि, राजाजू । (क० २१८)

याग-(सं०)-यज्ञ, हवन ।
 याचक-(सं०)-माँगनेवाला, भिखारी ।
 याचकता-(सं०)-भिखारीपन ।
 याचत-(सं० याचन)-माँगता है । याचन-माँगना, पाने के लिए प्रार्थना करना । याचने-माँगने, जाचना करने । याचहिं-माँगते हैं ।
 याचना-दे० 'याचन' ।
 यातना-(सं०)-कष्ट, तकलीफ, पीड़ा ।
 याता-(सं० यातु)-चलनेवाला, गमन करनेवाला ।
 यातुधान-(सं०)-राक्षस, निशिचर । यातुधानी-राक्षसी, 'यातुधान' का स्त्रीलिंग । उ० अमित बल परम दुर्जय निसाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-यातुधानी । (वि० ५८)
 यात्रा-(सं०)-सफ़र, जाना ।
 यादव-(सं०)-राजा यदु के बंशज, अहीर ।
 यादवराय-(सं० यादव+राजन)-यदुवंशियों के स्वामी, श्रीकृष्ण ।
 यान-(सं०)-१. गाड़ी, रथ, वाहन, विमान, २. शत्रु पर चढ़ाई करना ।
 यापन-(सं०)-१. चलाना, निर्वाह, २. कालचेप, समय बिताना ।
 याप्य-(सं०)-निर्दनीय, बुरा, अधम ।
 याभ्यां-(सं०) जिन दोनों को, जिनके । उ० याभ्यां विना न पश्यति । (मा० १।१।श्लो० २)
 याम (१)-(सं०)-१. तीन घंटे का समय, पहर, जाम, २. समय, काल, ३. एक प्रकार के देवता ।
 याम (२)-(१)-संयम, परहेज ।
 यामहिं (२)-(१)-दिन की ।
 यामिक-(सं०)-पहरू, पहरेंदार ।
 यामिनी-(सं०)-रात, निशा ।
 यावक-(सं०)-महावर, लाल रंग ।
 यावत्-दे० 'यावद्' । यावद्-(सं०) जब तक, जहाँ तक । उ० न यावद् उमानाथ पादारविद । (मा० ७।१०।८)
 यावज्जीवन-आजीवन, जीवन भर ।
 युक्त-(सं०)-१. एक साथ किया हुआ, जुड़ा हुआ, साथ, २. उचित, ठीक, वाजिब । उ० १. मिलित जलपात्र अज-युक्त हरिचरन रज । (वि० १८)
 युक्ति-(सं०)-१. उपाय, हंग, २. योग, मिलन, ३. कौशल, चातुरी, ४. एक अलंकार ।
 युग-(सं०)-१. जोड़ा, युग्म, २. समय, वक्त, ३. सत्ययुग, त्रेता, द्वापर आदि चार युग, ४. योग, विधान, विधि ।
 युगम-दे० 'युग्म' ।
 युगल-(सं०)-युग्म, जोड़ा, दो, दोनों । उ० युगल पद-पद्म सुख सद्य पद्मालयं । (वि० ५१)
 युग्म-(सं०)-जोड़ा, दो, युग ।
 युतं-(सं०)-युक्त को, सहित को । उ० पाण्यौनाराच चापं कपि निकर युतं बंधुना सेव्यमानं । (मा० ७।१।श्लो० १)
 युत-(सं०)-मिला हुआ, युक्त, सहित । उ० तुलसी या संसार में सौ विचार युत सत । (वै० ११)
 युद्ध-(सं०)-लड़ाई, संग्राम, रण ।
 युधिष्ठिर-(सं०)-पाँच पांडवों में सबसे बड़े । ये बड़े सत्य-वादी और धर्मपरायण थे ।

युवक-(सं०)-तरुण, जवान, युवा ।
 युवति-(सं०)-तरुणी, नवयौवना, युवती । उ० खंग धारा-व्रती प्रथम रेखा प्रकट, शुद्ध-मति-युवति-वतप्रेम-पागी । (वि० ३६)
 युवती-दे० 'युवति' ।
 युवराज-(सं०)-राजकुमार, राजा का वह लड़का जो राज्य का उत्तराधिकारी हो ।
 युवा-(सं० युवन्)-जवान, तरुण ।
 यूथ-(सं०)-१. झुंड, गरोह, दल, २. तिर्यक योनिवाले जीवों का समुदाय । उ० १. साकिनी-डाकिनी-पूतना-प्रेत-बैताल-भूत-प्रमथ यूथ-जंता । (वि० २६)
 यूथप-(सं०)-सेनापति, दलपति ।
 यूथा-दे० 'यूथ' ।
 यूथा-(सं० यूथ)-झुंड, समूह ।
 ये (१)-(सं०)-जो, जो लोग । उ० पठति ये स्तवं इदं । (मा० ३।४।छं० १२)
 ये (२)-यह का बहुवचन, ये लोग । दे० 'यह' । उ० ऐसी मनोहर मूरति ये । (क० २।२०)
 येतु-(१)-१. जो, २. कितु, परंतु । उ० १. येतु भवदंघ्रि-पल्लव-समाश्रित सदा भक्तिरत विगत संसय मुरारी । (वि० ५७)
 येन-(सं०)-१. जिस, जो, २. जिससे । उ० १. येन श्रीराम-नामाश्रितं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं । (वि० ४६) येनकेन-जिस किसी, किसी भी । उ० येनकेन बिधि दीन्हे ही दान करै कल्याण । (दो० ५६१)
 येह-यही । येहि-इसको, इस । येहु-ये भी । उ० आली अवलोकि लेहु, नयननि के फलु येहु । (गी० २।३०)
 यों-(सं० इत्थं) १. इस प्रकार, ऐसे, २. सहज ही, आसानी से, ३. निष्पयोजन, बे मतलब । उ० १. यों सुधारि सनमानि जन किये साधु सिरमौर । (मा० २।२६६) १. मानो प्रतच्छ परबत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो । (क० ६।५५)
 योग-(सं०)-१. कुछ विशेष अवसर, २. उपाय, युक्ति, तद-बीर, ३. समाधि, ४. मेल, संयोग, मिलन, ५. संबंध, लगाव, ६. कवच, बखतर, ७. चित्त की वृत्तियों को रोकने का उपाय, ८. धोखा, झल, ९. प्रयोग, १०. औषधि, ११. वैराग्य, १२. तपस्या, १३. अवसर, सुभीता, १४. एक शास्त्र जिसके प्रतिपादक पतंजलि कहे जाते हैं ।
 योगक्षेम-(सं०)-अप्राप्य की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा करना ।
 योगिनी-(सं०)-१. रण-पिशाचिनी, २. योगाभ्यासिनी, तपस्विनी, ३. भूतिनी, ४. नारायणी, गौरी, शाकंभरी, भीमा, चामुंडा तथा पार्वती आदि ६४ योगिनियाँ, ५. शैलपुत्री, चंद्रघंटा तथा चंडिका आदि ८ देवियाँ, ६. देवी, योगमाया ।
 योगीन्द्र-(सं०)-१. योगियों के स्वामी, योगेश्वर, बड़ा योगी, २. ईश्वर, परमात्मा, ३. शिव, महादेव ।
 योगी-(सं० योगिन्)-योगसाधक, तपस्वी, योगाभ्यासी ।
 योगीश-(सं० योगीश)-१. बड़ा योगी, २. ईश्वर, पर-मात्मा, ३. शिव ।

योगू (१)-(सं० योग्य)-योग्य, लायक ।
 योगू (२)-(सं० योग)-दे० 'योग' ।
 योग्य-(सं०)-१. काबिल, लायक, २. श्रेष्ठ, अच्छा, ३. प्रवीण, चतुर ।
 योग्यता-(सं०)-१. काबिलियत, लायकियत, २. श्रेष्ठता, अच्छाई, ३. चतुराई, प्रवीणता ।
 योजन-(सं०)-दूरी की एक नाप जो किसी मत से दो कोस की, किसी मत से चार कोस की तथा किसी मत से आठ कोस की होती है ।
 योजना-(सं०)-१. व्यवस्था, आयोजन, विन्यास, २. जोड़, मेल, मिलाप ।
 योद्धा-(सं०)-वीर, शूर, बहादुर, लड़ाका ।

योधन-(सं०)-युद्ध, लड़ाई, संग्राम ।
 योनि-(सं०)-१. स्त्रियों की जननेन्द्रिय, भग, २. खान, ३. कारण, हेतु, ४. प्राणियों के विभाग, वर्ग या जाति ।
 योनियाँ ८४ लाख कही गई हैं ।
 योवन-दे० 'यौवन' ।
 योषा-(सं०)-नारी, स्त्री ।
 योषित-दे० 'योषिता' ।
 योषिता-(सं० योषित)-स्त्री, नारी ।
 यौ-(सं० इत्थं)-इस प्रकार, ऐसे ।
 यौतुक-(सं०)-वह धन जो ब्याह में कन्या पक्ष से वर पक्ष को मिले । दहेज, दायज ।
 यौवन-(सं०)-जवानी, तरुणाई ।

र

रँए-दे० 'रए' । उ० ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए । (मा० ३।४६।छं० १)
 रंक-(सं०)-१. धनहीन, गरीब, २. कृपण, कंजूस । उ० १. ऊँचे, नीचे, बीच के, धनिक रंक राजा राय । (क० ७।१७५) रंकतर-अत्यंत दरिद्र । उ० कबहुँ दीन मतिहीन रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी । (वि० ८१) रंकन-'रंक' का बहुवचन, गरीब लोग । उ० तिन रंकन को नाक सँवारत । रंक-निवाज-(सं० रंक + फा० निवाज)-गरीबों पर कृपा रखनेवाला, दीनों का रक्षक । उ० रंक-निवास रंक राजा किये, गये गरब गरि गरि गनी । (गी० ५।३६) रंकन्ह-गरीबों ने । उ० लहि जनु रंकन्ह सुरमनि डेरी । (मा० २। ११४।३) रंकन्हि-दे० 'रंकन्ह' । रंकहि-रंक को, गरीब को । उ० कहु केहि रंकहि करौ नरेसु । (मा० २। ६।१)
 रंका-दे० 'रंक' । उ० १. मानहुँ पारसु पायउ रंका । (मा० २। २३८।२)
 रंकु-दे० 'रंक' । उ० १. सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ । (मा० २।६२)
 रंग-(सं०)-१. वह पदार्थ जिसका व्यवहार रँगने के लिए होता है, २. बदन और चेहरे की रंगत, ३. तमाशा, ४. मौज, विलास, आनंद, ५. हर्ष, प्रसन्नता, ६. वह स्थान जहाँ नृत्य संगीत या अभिनय आदि हो, ७. रणक्षेत्र, ८. राँगा, ९. वर्ष । उ० १. भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग । (वि० १४) ४. प्रजा पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रंग रई है । (वि० १३)
 रंगभूमि-(सं०)-१. वह स्थान जहाँ कोई जलसा हो, २. युद्धस्थल, ३. नाट्यशाला, ४. अखाड़ा । उ० १. रंगभूमि पुर कौतुक एक निहारहि । (जा० १३)
 रंगमगे-(सं० रंग + मग)-रंग में मग हुए, रंगे हुए । उ० सोहत स्थाम जलद मृदु चोरत धातु रंगमगे सुगनि । (गी० २।५०)

रंगा-दे० 'रंग' । उ० १. कुसुमित बिबिध विटप बहुरंगा । (मा० १।१२६।१)
 रंगाले-१. रंगे हुए, रंगवाले, २. रसिया, रसीले, रसिक । उ० १. तिहुँ काल तिनको भलो जे राम रँगीले । (वि० ३२)
 रँगौ-रँग ले, रँगो । उ० चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराळी चाल । (दो० २३३)
 रंच-(सं० न्यंच, प्रा० खंच)-अल्प, थोड़ा । उ० रिपु रिन रंच न राखब काऊ । (मा० २।२२६।१) रंचौ-बिलकुल, थोड़ी भी, जरा भी । उ० बिरचे बरचि बनाइ बाँधी, रुचिरता रंचौ नहीं । (जा० ३६)
 रंचक-थोड़ा, कुछ । उ० संग लिए बिधु बैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है । (क० २।१६)
 रंजन-दे० 'रंजन' । उ० १. सुनीन्द्र संत रंजन । (मा० ३। ४।छं० ४) रंजन-(सं०)-१. प्रसन्न करनेवाला, २. प्रसन्न करने की क्रिया, ३. सुन्दर । उ० १. जनरंजन भंजन सोक भयं । (मा० ६।११।छं० ३) रंजनि-प्रसन्न करनेवाली । उ० छुध विश्राम सकल जन रंजनि । (मा० १।३१।३)
 रंजित-(सं०)-१. जिस पर रंग चढ़ा या लगा हो, रंगा हुआ, २. प्रसन्न, ३. अनुरक्त, प्रेम में पड़ा हुआ । उ० १. तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन-जातक से । (क० १।१)
 रंतिदेव-(सं०)-एक पौराणिक राजा जो अपने दान के लिए प्रसिद्ध हैं ।
 रंभ-(सं०)-छेद, सुराख । उ० अवन रंभ अहिभवन समाना । (मा० १।११३।१)
 रंभा-(सं०)-१. पुराणों के अनुसार एक वेश्या, २. केला । उ० १. रंभादिक सुरनारि नबीना । (मा० १।१२६।२)
 रंजनि-(सं० रजनी)-रात, निशा ।
 रई (१)-(सं० रथ)-दही आदि मथने की मथानी ।
 रई (२)-(सं० रज)-भूसी, गोहूँ की भूसी ।

रई (३)-(सं० रंग)-रँगी, रँगी हुई। उ० प्रजा पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रंग रई है। (वि० १३६)
रए-(सं० रंग)-रँग गए। उ० सकल लोक एक रंग रए। (गी० ११३)

रई (४)-(सं० रंजित)-आनंदित, प्रसन्न।

रउरै-अपने हृदय में, आप में। उ० राम मातु मत जानब रउरै। (मा० २।१८।१) रउरे-(सं० राजपुत्र)-१. आप, २. आपका, आपके। उ० २. रउरे अंग जोगु जग को है। (मा० २।२८।३) रउरेहि-आपको। उ० भलेउ कहत दुख रउरेहि लागे। (मा० २।१६।१)

रक्तबीज-(सं० रक्तवीर्य)-दे० 'रक्तबीज'। उ० रक्तबीज जिमि बाढ़त जाहीं। (वि० १२८)

रक्त-(सं०)-१. रधिर, खून, २. कुंकुम, केसर, ३. लाल, अरुण।

रक्तबीज-दे० 'रक्तबीज'। एक दैत्य का नाम जिसके पराक्रम का पार नहीं था। युद्ध में इसके शरीर से रक्त की जितनी बूँद बनती थीं, उतने ही योद्धा तैयार होते थे। काली ने इसका संहार किया।

रक्तक-(सं०)-रक्षा करनेवाला, पालक।

रक्त्या-(सं०)-बचाव, रखवाली।

रक्षा-दे० 'रक्त्या'।

रक्षित-(सं०)-रखा हुआ, बचाया हुआ, रक्षा किया हुआ।

रख-(सं० रक्ष, प्रा० रक्खण्)-रखो, रखलो। रखि-१. रक्षा करके, २. रखकर। रखिअहिं-१. रखिए, रखें, २. रखेंगे। उ० १. रखिअहिं लखनु भरतु गवनेहि बन। (मा० २।२८।१) रखिउं-रखूँगा, रक्षा करूँगा। रखिहिं-रखेंगे, रक्षा करेंगे।

रखवार-रक्षक, रखवाला। उ० होनिहार का करतार को रखवार जग खरभर पर। (मा० १।८।१)

रखवारा-रक्षक, बचानेवाला। उ० तिन्ह केँ कोप न कोउ रखवारा। (मा० १।१६।२) रखवारे-रक्षा करनेवाले। उ० तेह एहि ताल चतुर रखवारे। (मा० १।३८।१)

रखवारी-१. रखवाली, रक्षा करना, २. रक्षा। उ० १. देखि नयन दूत रखवारी। (मा० १।२२।३) २. अबला अनघ अनवसर अनुचित होति, हेरि करिहँ रखवारी। (कृ० ६०)

रखवारो-रक्षक, रखवाला। उ० तुलसी सबको सीस पर रखवारो रघुराउ। (दो० ४२४)

रगरि-(सं० घर्षण)-हठ, घर्षण, टेक। उ० जन्म कोटि लगी रगर हमारी। (मा० १।८।३)

रघु-(सं०)-राजा दिलीप के पुत्र। राम का जन्म इन्हीं के वंश में हुआ था और इन्हीं के नाम पर राम को राघव, रघुनाथ, रघुनंदन तथा रघुराई आदि नामों से पुकारा जाता है। रघु के नाम के आधार पर तुलसी द्वारा प्रयुक्त राम के अन्य नाम रघुकुल-कल-केहरि, रघुकुल-मनि, रघुकुल दीप, रघुबंसमनि, रघुकुलतिलक, तथा रघुकुल-कैरवचंद आदि हैं। उ० जाह दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाल। (मा० २।३६)

रघुकुल-(सं०) महाराजा रघु का कुल जिसमें राम पैदा

हुए थे। उ० रघुकुलकुमुद सुखद चारु चंद। (गी० १।२८) रघुकुलदीप-रामचन्द्र। रघुकुलदीपहि-रघुकुल के दीप को, रामचंद्र को। उ० रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई। (मा० २।३१।४)

रघुनंद-(सं०)-रामचंद्र। दे० 'रघु'।

रघुनंदन-दे० 'रघुनंद'। उ० तिन्ह केँ मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ। (मा० २।१२६) रघुनंदनस्य-राम का। उ० मुखांजुज श्री रघुनंदनस्य मे सदास्तु सा मंजुल मंगलप्रदा। (मा० २।१ श्लो० २)

रघुनंदनु-दे० 'रघुनंदन'।

रघुनंदू-दे० 'रघुनंद'। उ० बोले उचित बचन रघुनंदू। (मा० २।२६।२)

रघुनाथ-(सं०)-राम। उ० जानकीनाथ रघुनाथ रागादितम-तरणि, तारुण्यतनु तेजधामं। (वि० ५१) रघुनाथहिं-राम को। उ० तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं तरो गयंद जाके अर्द्ध नाथै। (वि० ८३)

रघुनाथा-दे० 'रघुनाथ'। उ० गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। (मा० २।३।१)

रघुनाथु-दे० 'रघुनाथ'।

रघुनायक-रघुनायक को, राम को। रघुनायक-राम। उ० बहुत बंधु सिय सह रघुनायक। (मा० २।१२।४) रघुनायकहि-राम को। उ० बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि। (मा० ७।१६क)

रघुपति-(सं०)-राम। उ० बंदौ रघुपति करुणानिधान। (वि० ६४) रघुपतिहिं-१. राम को, रघुपति को, २. राम का। उ० १. रघुपतिहिं-१. रघुनाथ को, राम को, २. राम का। उ० १. तुम्ह रघुपतिहिं प्रानहु तें प्यारे। (मा० २।१६।१) रघुपतिही-दे० 'रघुपतिहिं'। रघुपतिहु-१. राम का २. राम को भी। उ० १. छुअत दूट रघुपतिहु न दोसू। (मा० १।२७।२) रघुपते-हे राम! उ० नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं बदामि च भवानखिलान्तरात्मा। (मा० ५।१ श्लो० २)

रघुपुंगव-(सं०)-राम। उ० भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे कामादिदोष रहितं कुरु मानसं च। (मा० ५।१ श्लो० २)

रघुवंशनाथम्-रघुवंश के नाथ राम को। उ० नमामि रामं रघुवंशनाथम्। (मा० २।१ श्लो० ३)

रघुवंस-(सं० रघुवंश)-रघु का वंश या कुल। उ० रघुवंसकुमुद सुखप्रद निसैस। (वि० ६४) रघुवंसभूषन-(सं० रघुवंश + भूषण)-राम। उ० आहि रघुवंसभूषन कृपा कर कठिन काल बिकराल-कलि-त्रासस्तम्। (वि० ५६) रघुवंसमनि-(सं० रघुवंशमणि)-राम। उ० सुनि बिनय सासु प्रबोधि तब रघुवंसमनि पितु परिहँ गए। (जा० १८६) रघुवंसराय-(सं० रघुवंशराज)-राम। उ० सुने न पुलकि-तनु, कहे न मुदित मन, किए जे चरित रघुवंसराय। (वि० ८३)

रघुवर-(सं० रघु + वर)-राम। उ० रघुवर सब उर अंतर-जामी। (मा० १।११।१) रघुवरहिं-१. राम को, २. राम की। रघुवरहि-राम की। उ० सुनि सनेहँ साने वचन मुनि रघुवरहि प्रसंस। (मा० २।६) रघुवरौ-वे दोनों

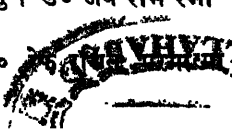
रघुवर, राम और लक्ष्मण । उ० माया मानुष रूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मा हितौ । (मा० ४१११७० १)
 रघुवीर-रघुवीर को । रघुवीर-(सं० रघुवीर)-राम । उ० रघुवीर जस-सुकुता बिपुल सब भुवन षडु पेटक भरे । (जा० १७) रघुवीरहि-राम को, रघुवीर को । उ० लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुवीरहि उर आनि । (मा० ११ २४८) रघुवीरही-दे० 'रघुवीरहि' । रघुवीरै-रघुवीर को, राम को । उ० हृदय-वाउ मेरे, पीर रघुवीरै । (गी० ६१ १५)
 रघुवीरा-दे० 'रघुवीर' । उ० नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुवीरा । (मा० २१७६१२)
 रघुवीर-दे० 'रघुवीर' ।
 रघुवीरू-दे० 'रघुवीर' । उ० जसु न लहेउ विछुरत रघुवीरू । (मा० २११४३३)
 रघुराई-(सं० रघुराज)-राम । उ० दीनबंधु सुखसिंधु कृपाकर, कारुणीक रघुराई । (वि० ८१)
 रघुराउ-राम । उ० प्रेम प्रपंचु कि फूठ-फुर जानहिं मुनि रघुराउ । (मा० २१२६१)
 रघुराऊ-दे० 'रघुराउ' । उ० बिसमय हरष रहित रघुराऊ । (मा० २११२२)
 रघुराज-(सं०)-१. राम, २. दशरथ, ३. राम का राज्य । उ० २. रघुराज-साज सराहि लोचन-लाहु लेत अघाह के । (गी० ११५)
 रघुराजु-दे० 'रघुराज' ।
 रघुराजू-दे० 'रघुराज' । उ० सरल सबल साहिब रघुराजू । (मा० १११३१४)
 रघुराया-(सं० रघुराज)-राम, रघुराज । उ० तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया । (मा० २११३०११)
 रघुरैया-रघुकुल के राजा । उ० मोद-कंद-कुल-कुमुद-चंद्र मेरे रामचंद्र रघुरैया । (गी० १११७)
 रचइ-(सं० रचना)-रचता है । उ० मिलइ रचइ परंपंचु बिधाता । (मा० २१२३३३) रचत-रचते हैं, रचता है । उ० हरष न रचत, विषाद न बिगारत, डगरि चले हैंसि खेलि । (क० २६) रचहिं-रचते हैं, तैयार करते हैं । रचहु-रचो, तैयार करो । उ० रचहु बिचित्र बितान बनाई । (मा० ११२८७३) रचा-रचना की, बनाया । उ० यह सँजोग बिधि रचा बिचारी । (मा० ३११७४) रचि-१. निर्माणकर, बना कर, २. रचे हैं, बनाए हैं, ३. सजाकर । उ० २. कंकन चारु बिबिध भूषन बिधि रचि निज कर मन लाई । (वि० ६२) रचिवे-रचने, रचना करने । उ० रचिवे को बिधि जैसे पालिवे को हरिहर । (ह० ११) रची-निर्माण की, बनायी । उ० कहत पुरान रची केसव निज, कर-करतूति-कला सी । (वि० २२) रचु-१. सजा कर, २. सज्जित कर दे । उ० २. आनि काठ रचु चिता बनाई । (मा० १११२१२) रचे-रचा, सजाया, सज्जित किया । रचेउ-रचा, बनाया । उ० इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना । (मा० ११६४११) रचेन्हि-१. रचा, बनाया, किया, २. रचना चाहिए । उ० १. जेहि रिपुछय सोइ रचेन्हि उपाऊ । (मा० १११७०१४) रचेसि-रचा, किया । उ० मरनु ठानि मन रचेसि उपाई । (मा० ११८६१३) रचै-१. रचना करे,

बनावे, २. रचता है, बनाता है, ३. रचा दिए हैं । उ० २. उर बसि प्रपंच रचै पंचवान । (वि० १४) रच्यौ-रचना की, बनाया । उ० सुभ दिन रच्यौ स्वयंबर मंगल-दायक । (जा० ३)
 रचना-(सं०)-१. बनावट, निर्माण, २. संसार की उत्पत्ति, जगत का निर्माण, ३. पैदा की हुई चीज़, ४. सजावट, ५. ग्रंथ लिखना । उ० २. देखत तव रचना बिचित्र अति समुक्ति मनहिं मन रहिए । (वि० ११११)
 रचित-(सं०)-निर्माण किया हुआ, बनाया हुआ । उ० वपुष ब्रह्मांड सो, प्रवृत्ति-लंका दुर्ग रचित मन-दनुज-मय रूप-धारी । (वि० ५८)
 रच्छ-(सं० रक्षण)-१. रक्षा करे, रखवाली करे, २. रक्षा कीजिए । उ० १. तीरथपति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ-तेहि । (क० ७१११५) रच्छहीं-रक्षा करते हैं, रखवाली करते हैं । उ० करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं । (मा० ११३३३)
 रच्छक-दे० 'रक्षक' । उ० रच्छक कोटि जच्छपति केरे । (मा० १११७६११) रच्छकनि-(सं० रक्षक)-रक्षकों को, रखवालों को । उ० बाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि । (क० ६१२४)
 रच्छन-दे० 'रक्षण' । उ० जयति सुग्रीव-सिच्छादि-रच्छन-निपुन, बालि-बलसालि-बध-मुख्य हेतु । (वि० २५)
 रच्छा-(सं० रक्षा)-रक्षा, हिफाजत । उ० लगे पढ़न रच्छा अचा अधिराज बिराजे । (गी० ११६)
 रज (१)-(सं०)-१. धूल, रेत, मिट्टी, २. रजोगुण, ३. आतंभ, कुसुम, अस्तु, ४. पृथ्वी । उ० १. मिलित जल पात्र अज-युक्त हरिचरन रज । (वि० १८) २. रावन सो राजा रज तेज को निधान भो । (क० ११३२) ४. रज अप अनल अनिल नभ जब जानत सब कोइ । (स० २०३) रजहिं-रज पर, धूल पर । उ० गुर पद रजहिं लाग छरु-भारु । (मा० २१३१५४)
 रज (२)-(सं० रजक)-धोबी, कपड़ा धोनेवाला । उ० तिय निदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई । (वि० १६५)
 रजक-(सं०) धोबी, कपड़ा धोनेवाला ।
 रजत-(सं०)-चाँदी, रूपा । उ० रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानुकर बारि । (मा० ११११७)
 रजधानिय-(सं० राजधानी)-राजधानी, मुख्य नगर । उ० जनु अतुराज मनोज-राज रजधानिय । (पा० ६८)
 रजधानी-दे० 'रजधानिय' । उ० राजा रामु अवध रज-धानी । (मा० ११२५३)
 रजनि-दे० 'रजनी' । उ० १. वाके उए बरति अधिक अँग-अँग दव, वाके उए मिटति रजनि-जनित जरनि । (क० ३०)
 रजनिचर-(सं० रजनीचर)-१. राक्षस, २. भूत, ३. चोर, ४. पहरेदार । उ० १. असुर सुर नाग नर यक्ष गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये । (वि० ५७)
 रजनी-(सं०)-१. रात, निशा, २. हल्दी, ३. लाख, ४. नील का वृक्ष । उ० १. पुरी बिराजति राजति रजनी । (मा० ११३५८२)

रजनीकर-(सं०)-चंद्रमा । उ० संतत दुखद सखी ! रजनीकर । (कृ० ३१)
 रजनीचर-(सं०)-दे० 'रजनिचर' । उ० १. तू रजनीचर नाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जन हौं हौं । (क० ६।१३)
 रजनीचरा-दे० 'रजनिचर' । उ० १. सँग भूत प्रेत पिचास जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा । (मा० १।६५। छं० १)
 रजनीमुख-(सं०)-संध्या, सौम्य ।
 रजनीश-(सं०)-चंद्रमा, निशाकर । उ० ललित लल्लाट पर राज रजनीश कल, कलाधर, नौमि हर धनद-मित्र । (वि० ११)
 रजनीस-दे० 'रजनीश' । उ० तुलसी महीस देखे दिन रजनीस जैसे । (गी० १।६२)
 रजपूत-(सं०) राजपुत्र-१. क्षत्रिय, राजपूत, २. वीर, पराक्रमी । उ० २. पवन को पूत रजपूत रुरो । (ह० ३)
 रजाइ-दे० 'रजाई' । उ० रामदूत की रजाइ माथे भानि लेत हैं । (ह० ३२)
 रजाई-(अर० रजा)-आज्ञा, हुकम । उ० ऐहउँ बेगिहि होउ रजाई । (मा० २।४६।२)
 रजाय-(अर० रजा)-आज्ञा, अनुशासन । उ० राम की रजाय तँ रसायनी समीर सूनु । (क० ५।२५)
 रजायस-दे० 'रजायसु' ।
 रजायसु-(सं०) राजन् + आयसु-आज्ञा, राजाज्ञा, हुकम । उ० पाय रजायसु राय को ऋषिराज बोलाए । (गी० १।६)
 रजु-दे० 'रज्जु' । उ० बाँधिवे को भवगयंद रेनु की रजु बटत । (वि० १२६)
 रजोगुण-(सं०)-प्रकृति का वह स्वभाव जिससे जीवधारियों में भोग-विलास तथा दिखाव की रुचि उत्पन्न होती है । राजस ।
 रजोगुन-दे० 'रजोगुण' । उ० तामस बहुत रजोगुन थोरा । (मा० ७।१०।१३)
 रजु-(सं०)-रस्सी, डोरी, जेवरी । रज्जौ-जेवरी में, रस्सी में । उ० यत्सत्त्वाद् मृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्ग्रमः । (मा० १।१। श्लो० ६)
 रट-(?)-१. रटना, याद करना, २. बार-बार कहना, ३. रटते हैं, रट रहे हैं । उ० ३. राम-राम रट बिकल भुआलू । (मा० २।३७।१) रटत-रटता है, कहता है, बार-बार कहता है । उ० क्वचिर रसना तू राम-राम क्यों न रटत । (वि० १२६) रटति-रटती है, याद करती है, बक बक करती है । उ० कनक-जटित मनि नूपुर मेखल कटितट रटति मधुर बानी । (वि० ६३) रटन-दे० 'रट' । रटनि-दे० 'रट' । उ० २. तव कटु रटनि करउँ पहि काना । (मा० ६।२४।२) रटहि-रटते हैं, बार-बार शब्द करते हैं । उ० रटहि कुभाति कुलेत करारा । (मा० २।१२।२) रटहि-रटो, याद करो । उ० देखु राम-सेवक सुनु कीरति, रटहि नाम करि गान गायं । (वि० ८४) रटहु-रटो, याद करो, भजो । रटि-रटकर, रट-रटकर । उ० तौ सहि निपट निरादर निसि दिन लट ऐसो रटि वटि को तौ । (वि० १६१) रटु-रटो, रटो करो । उ० राम-राम रसु-राम, राम रटु, राम-राम जणु जीहां । (वि० ६५) रटो-१. बोलो, कहो, कहा करो, २. जप किया है, रटा

है । उ० १. तुलसी जो सदा सुख चाहिय तौ रसना निसि बासर राम रटौ । (क० ७।८६) २. नाम रटो, जम बांस क्यों जाउँ, को आइ सकै जम-किंकर नेरे ? (क० ७।६२)
 रटो-(?)-रटा, बोला । उ० जब पाहन मे बन बाहन से, उतरे बनरा 'जयराम' रटो । (क० ६।६)
 रण-(सं०)-लड़ाई, युद्ध । उ० सकुन सानुज सद्ग दलित दशकंठ रण, लोक-लोकप किए रहित शंका । (वि० ४३)
 रणित-(सं०)-बजता हुआ ।
 रत-(सं०)-१. अनुरक्त, आसक्त, २. संसार या सांसारिक विषयों में लीन, ३. लगा हुआ, लीन, तत्पर, ४. मैथुन, प्रसंग । उ० १. स्तीय राम पद होइ न रत को । (मा० २।३०।४।१) २. करमी, धरमी, साधु, सेवक, बिरत, रत । (वि० २५६)
 रतन-(सं०) रत्न-बेशकीमत् पत्थर, हीरा आदि । उ० सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें । (मा० १।२३।४)
 रतनाकर-दे० 'रत्नाकर' ।
 रतनागर-दे० 'रत्नाकर' । उ० तीय रतन तुम उपजिहुं भव रतनागर । (पा० ४६)
 रतनार-(सं०) रक्त-लाल, अरुण । रतनारे-दे० 'रतनार' । उ० नव सरोज लोचन रतनारे । (मा० १।२३।३।२)
 रतहि-(सं०) रति-मुग्ध हो जाते हैं । उ० बड़े रतहि लघु के गुनहिं तुलसी लघुहि न हेत । (सं० ६३४)
 रता-(सं०) रत-आसक्त, रत, लीन । उ० दास रता एक नाम सों, उभय लोक सुख त्यागि । (वै० ४२)
 रति-(सं०)-१. कामदेव की स्त्री । रति प्रजापति की कन्या थी । इसे स्त्री-सौंदर्य का आदर्श मानते हैं । २. प्रेम, प्रीति, ३. मैथुन । उ० १. बालमृगा मञ्जु-खंजन-बिलोचनि, चंद्रवदनि, लखि कोटि रति मार लाजै । (वि० १५) २. सख बहुत रज कछु रति कर्मा । (मा० ७।१०।४।२) रति-प्रद-प्रेम उत्पन्न करनेवाला । रत्यो-रति भी, कामदेव की स्त्री भी । उ० रत्यो रची विधि जो छोलत छवि छूटी । (गी० २।२१)
 रतिआतो-(सं०) रति-प्रीति करता, प्रीतिवान होता । उ० राम-नाम-अनुराग ही जिय जो रतिआतो । (वि० १५१)
 रतिन-(सं०) रत्तिका-रत्तियों के, रत्ती भर के । उ० रतिन के लालचिन प्रापति मनक की । (क० ७।२०)
 रतिनाथ-(सं०)-कामदेव । उ० दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा । (मा० १।८४। छं० १)
 रतिनायक-(सं०)-कामदेव । उ० न डगैं, न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है । (क० २।२७)
 रतिपति-(सं०)-कामदेव । उ० जनु रतिपति ऋतुपति कोसल पुर बिहरत सहित समाज । (गी० १।२)
 रती-(सं०) रति-१. कामदेव की पत्नी, रति, २. सौंदर्य, शोभा, ३. प्रेम, प्रीति, ४. समान, अन्दर, ५. तेज, कांति । उ० ५. बेद लोक सब साखी, काहु की रती न राखी । (वि० २४८)
 रत्न-(सं०)-१. कुछ विशिष्ट बहुमूल्य पत्थर या पदार्थ । नौ रत्नों में हीरा, मोती, पद्मा, माणिक्य, पुखराज नीलम गो-मेद, लहसुनियाँ और मूंगा का नाम लिया जाता है । २.

आभूषण । उ० १. रत्न हाटक-जटित मुकुट मण्डित मौलि
भानुसस-सहस-उद्योतकारी । (वि० ५१)
रत्नाकर-(सं०)-रत्नों की खानि, समुद्र ।
रथ-(सं०)-स्थंदन, यान, गाड़ी । एक विशिष्ट प्रकार की
पुरानी गाड़ी जिसमें घोड़े जोते जाते थे । उ० जयति
भीमार्जुन-ब्याल सूदन-गर्वहर धनजय-रथ आन केतू । (वि०
२८) रथगामी-(सं० रथगामिन्)-रथ पर चढ़कर चलने-
वाला । उ० सारथि पंगु, दिव्य रथ-गामी । (वि० २)
रथहि-रथ को । उ० चले अवध लेइ रथहि निषादा । (मा०
२।१४४।१)
रथांग-(सं०)-१. रथ का पहिया, २. चक्रवा, चक्रवाक ।
उ० २. पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर ।
(मा० २।८३)
रथी-(सं० रथिन्)-रथ पर चढ़ा हुआ, रथारूढ़ । उ० रथी
सारथिन्ह लिए बोलाई । (मा० २।६१।४)
रथु-दे० 'रथ' ।
रद (१)-(सं०)-दाँत, दंत । उ० अधर अरुन रद सुन्दर
नासा । (मा० १।१४७।१)
रद (२)-(अर०)-१. नष्ट, खराब, २. तुच्छ, फीका ।
रदन-(सं०)-दाँत ।
रदपट-(सं०)-ओष्ठ, अधर । उ० रदपट फरकत नयन
रिसौहैं । (मा० १।२५२।४)
रदपुट-दे० 'रदपट' ।
रन-(सं० रण)-युद्ध, लड़ाई । उ० महाबीर-बिदित, जितैया
बड़े रन के । (वि० ३७)
रनबाँकुरो-(सं० रण + वक्र)-रण में कुशल योद्धा, शूर-
वीर । उ० धीर रघुवीर को वीर रन-बाँकुरो । (क० ६।४६)
रनवास-दे० 'रनिवास' ।
रनिवास-(सं० राज्ञी + वास)-रानियों का महल, हरम;
अंतःपुर । उ० जुवति जूथ रनिवास रहस-बस यहि बिधि ।
(जा० १।७०)
रनिवासा-दे० 'रनिवास' ।
रनिवासु-दे० 'रनिवास' ।
रनिवासु-दे० 'रनिवास' । महल की रानियाँ । उ० आयउ
जनक राज रनिवासू । (मा० २।२८।१२)
रनी-(सं० रण)-योद्धा, वीर, लड़ाका । उ० कलुष-कलंक
कल्लेस-कोस भयो जो पद पाय रावन रनी । (गी० ५।
३६)
रवि-दे० 'रवि' । उ० १. रवि आतप भिन्नमाभिन्न जथा ।
(मा० ६।११।१।८) ७ रवि हर दिसि गुन रस नयन ।
(दो० ४५८) रविहि-रवि का, सूर्य का । उ० रविहि राउ,
राजहि प्रजा, बुध व्यवहरहि विचारि । (दो० ५०५) रविहि-
१. सूर्य का, २. सूर्य को, ३. सूर्य ने ।
रबिकर-(सं०)-सूर्य की किरण । उ० महा मोह तम पुंज
जासु बचन रबिकर निकर । (मा० १।१। सो० ५)
रबिकुल-(सं०)-सूर्यकुल, सूर्यवंश । इसी कुल में राम का
जन्म हुआ था । उ० रबिकुल-कैरव-चंद्र भो आनंद-सुधा
को । (वि० १।५२) रबिकुलनंदन-सूर्यकुल के पुत्र या सूर्य
कुल को प्रसन्न करनेवाले । रामचंद्र । उ० दिये बूझि रुचि
रबिकुलनंदन । (मा० १।३३।१३)

रबितनुजा-(सं०)-यमुना नदी । उ० रबितनुजा कइ करत
बड़ाई । (मा० २।११२।१)
रविनंदनि-दे० 'रविनंदिनी' । उ० करम कथा रविनंदनि
बरनी । (मा० १।२।५)
रविमनि-(सं० रविमणि)-सूर्यकांत मणि । उ० जिमि रवि-
मनि द्रव रविहि बिलोकी । (मा० ३।१७।३)
रबिसुत-(सं० रबिसुत)-अश्विनीकुमार । उ० निरखत ही
नयननि निरुपम सुख रबिसुत मदन सोम-दुति निदरति ।
(गी० ७।१७)
रबिसुता-(सं० रबिसुता)-यमुना । उ० जनु रबिसुता सारदा
सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिवेनी । (गी० ७।१५)
रम-(सं० रमण)-१. रम जाना, मिल जाना, लीन हो जाना,
२. रम गया, मिल गया । उ० २. जेहि कर मनु रम जाहि
सन तेहि तेही सन काम । (मा० १।८०) रमु-रमणकर,
क्रीड़ा कर । उ० राम राम रमु, राम राम रदु । (वि० ६५)
रमेउ-रम गया, लीन हो गया । उ० रमेउ राम मनु देवन्ह
जाना । (मा० २।१३३।३)
रमण-(सं०)-१. आनंदोत्पादक क्रिया, क्रीड़ा, २. मैथुन,
सहवास, ३. रमण करनेवाला, पति, ४. कामदेव, ५.
जार, ६. गर्दभ ।
रमणी-(सं०)-स्त्री, सुन्दरी ।
रमणीक-(सं० रमणीय)-सुन्दर, मनभावन ।
रमणीय-(सं०)-सुन्दर, मनोहर । उ० तरुण रमणीय
राजीव लोचन बदन राकेश कर निकर हासम् । (वि०
६०)
रमन-दे० 'रमन' । रमन-दे० 'रमण' । रमण करनेवाले,
पति । उ० विज्ञान-भवन गिरिसुता-रमन । (वि० १३)
रमनि-दे० 'रमणी' ।
रमनीय-दे० 'रमणीय' । उ० निरखत मनहि हरत हटि
हरित अवनि रमनीय । (गी० ७।१६)
रमा-(सं०)-१. लक्ष्मी, कमला, श्री, २. स्त्री । उ० १.
सिद्ध सची सारद पूजहि, मन जोगवति रहति रमा सी ।
(वि० २३)
रमानाथ-(सं०)-लक्ष्मी के पति, विष्णु । उ० रमानाथ जहैं
राजा सो पुर बरनि कि जाइ । (मा० ७।२६)
रमानिकेत-(सं०) विष्णु ।
रमानिकेता-दे० 'रमानिकेत' । उ० हरषि मिले उठि रमा-
निकेता । (मा० १।१२८।३)
रमानिवास-(सं०) विष्णु, लक्ष्मीपति ।
रमानिवासा-दे० 'रमानिवास' । उ० एवमस्तु करि रमा-
निवासा । (मा० ३।१२।१)
रमापति-(सं०)-विष्णु । उ० का अपराध रमापति कीन्हा ।
(मा० १।१२४।४)
रमाबिलासु-(सं० रमा + विलास)-लक्ष्मी का विलास, भोग
और ऐश्वर्य । उ० रमाबिलासु राम अनुरागी । (मा० २।
३२४।४)
रमारमन-(सं० रमा + रमण)-विष्णु । उ० जय राम रमा-
रमन समनं । (मा० ७।१४।१)
रमित-(सं० रमण) सवंब्यापी । उ० 
सह अकार सिय रूप । (स० १५)

रमेश-(सं०)-विलुप्त ।
 रमेश-दे० 'रमेश' । उ० साहिब महेस सदा, संकित रमेश मोहि । (क० १२१)
 रमैया-(सं० रमण) सर्वत्र रमण करनेवाला, भव के हृदय में वास करनेवाला । उ० जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहब राखै रमैया । (क० ७।१३)
 रम्य-दे० 'रम्य' । उ० सदा शंकरं शंप्रदं सज्जनानंददं, शैलकन्यावरं परमरम्यं । (वि० १२) रम्य-(सं०)-मनोहर, सुंदर, रमणीय । उ० परम रम्य उत्तम यह धरनी । (मा० ६।२२)
 रम्यता-(सं०) शोभा, रमणीयता । उ० पुर रम्यता राम जब देखी । (मा० १।२१२।३)
 रये-(सं० रंग)-रँग गये । रयो-रँग गये, रँगे, मिले । उ० धनि भरत ! धनि भरत ! करत भयो मगन मौन रझो मन अनुराग रयो है । (गी० ६।११)
 ररिहा-(सं० रटन)-१. भगवाण, रार करनेवाला, २. मंगन, भिच्छुक ।
 रव-(सं०)-ध्वनि, गुंजार, शब्द, आवाज़ । उ० कटितट रटति चारु किंकिनि, रव अनुपम बरनि न जाई । (वि० ६२)
 रवन-दे० 'रमण' । उ० ३. रवन गिरिजा, भवन भूधराधिप सदा । (वि० ११)
 रवनि-(सं० रमणी)-१. स्त्री, सुंदरी, २. पत्नी, भार्या । उ० २. रति सी रवनि, सिंधु-मेखला-अवनिपति । (क० ७।१६४)
 रवनी-दे० 'रवनि' । उ० २. गर्जत गर्भं सवहिं सुररवनी । (म० १।१८२।३)
 रवा-(फा०)-उचित, योग्य, ठीक । उ० राम को किंकर सो तुलसी समुझेहि भलो कहिबो न रवा है । (क० ७।१६)
 रवि-(सं०)-१. सूर्य, २. मदार का पेड़, ३. अग्नि, ४. नायक, सरदार, ५. रविवार, इत्तवार, ६. १२ की संख्या, ७. द्वादशी । उ० १. बानि बिनायक अंब रवि, गुरु हर रमा रमेश । (प्र० १)
 रवत-(सं० रव)-शब्द करता हुआ । उ० लखि नव नील पयोद रवित सुनि रुचिर मोर जोरी जनु नाचति । (गी० ७।१७)
 रवितनया-(सं०)-यमुना नदी ।
 रविर्नदिनी-(सं०)-सूर्य की पुत्री, यमुना नदी ।
 रविसुवन-(सं० रविसूनु)-दे० 'रविसुत' । उ० सरद-बिधु रवि-सुवन मनसिज-मान-भजनिहार । (गी० ७।८)
 ररिम-(सं०)-किरण ।
 रस-(सं०)-१. अर्क, सार, २. स्वाद के छः रस-मीठा, खट्टा, खारा, चरपरा, कड़ुवा तथा कसैला, ३. आनंद, स्वाद, ४. प्रेम, प्रीति, ५. काव्य के शृंगार, वीर, शांत, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स और रौद्र नामक नौ रस, ६. पारा, ७. छः की संख्या, ८. जल, ९. मकरंद । उ० ३. जयति सीतेस-सेवा सरस, विषय रस-विरस, निरुपाधि, धुरधर्मधारी । (वि० ३८) ७. सुभग सगुन उनचास रस, रामचरितमय चारु । (प्र० ६।७।७) ९. गुंजत मंजु मधुप रस भूले । (मा० २।१२४।४) रसपागी-रस में पती ।

उ० बोली बचन नीति रसपागी । (मा० १।३६।३) रस-रस-धीरे धीरे । उ० रस रस सूख सरित सर पानी । (मा० ४।१६।३) रसानां-रसों की, नव रसों की । उ० वर्षां नामर्थसंघानां रसानां छुंदसामपि । (मा० १।१।१७।१) रसग-दे० 'रसज्ञ' ।
 रसज्ञ-(सं०)-रसिक, रस को जाननेवाला । उ० अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै । (वि० १।६७)
 रसन-दे० 'रसना' । उ० कहै कौन रसन मौन जानै कोइ कोई । (क० १)
 रसना-(सं०)-१. जीभ, जिह्वा, २. करधनी । उ० १. गिरि-हर्हि रसना संसय नाहीं । (मा० ६।३३।५) २. रसना रचित रतन चामीकर । (गी० ७।१७)
 रसभंग-रस या आनंद में भङ्ग, आनंद की समाप्ति, मज़ा किरकिरा होना । उ० रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग । (मा० ६।१३ ख)
 रसम-दे० 'रसमि (२)' ।
 रसमि (१)-(सं० रश्मि)-किरण, मरीचि । उ० रसमि विदित रबि-रूप लखु सीत सीतकर जान । (स० ४५२)
 रसमि (२)-(अर० रसम)-रीति, रिवाज ।
 रसराज-(सं०)-१. सब रसों का राजा, शृंगार रस, २. पारद, पारा । उ० १. जनु बिधु-मुख-छुबि-अमिय को रच्छुक राखे रसराज । (गी० १।१६) २. रावन सो रसराज सुषट-रस सहित लंक खल खलतो । (गी० ५।१३)
 रसरी-(सं० रसना, प्रा० रसणा)-रस्ती, डोरी ।
 रसहीन-आनंद या रसरहित, नीरस । उ० जेहि किये जीव-निकाय बस रसहीन दिन दिन अति नई । (वि० १३६)
 रसां-(सं०)-१. पृथ्वी, ज़मीन, २. जीभ । उ० १. रसा रसातल जाइहि तबहीं । (मा० २।१७।१)
 रसातल-(सं०)-पाताल, पृथ्वी के नीचे का लोक । उ० तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो । (क० ४।१)
 रसायन-(सं०)-वैद्यक में एक प्रकार की दवा जो अपेक्षाकृत अधिक महँगी और शीघ्र लाभ पहुँचानेवाली होती है । रसायनविद्या-बहु विद्या जिसमें धातुओं को शोधना तथा भस्म करना एवं पदार्थों के तत्त्वों और उन तत्त्वों के परमाणुओं आदि का विवेचन रहता है ।
 रसायनी-रसायन शास्त्र का ज्ञाता । उ० राम की रजाय तें रसायनी समीर सूनु । (क० ५।२५)
 रसाल-(सं०)-१. आम, २. पनस, कटहल, ३. जल, ४. जल, ५. रसीला, सरस, रसयुक्त, ६. मधुरभाषी । उ० १. नव रसाल बन बिहरन सीला । (मा० २।६३।४) ४. कहाँ जनम कहँ मरन अपि समुफहि सुमति रसाल । (स० १।६०) ६. राम-सिय-सेवक सनेही साधु सुमुख रसाल । (गी० ७।१)
 रसाला-दे० 'रसाल' । उ० १. सफल पूगफल कदलि रसाला । (मा० १।३४।४) ५. लगे कहन हरिकथा रसाला । (मा० १।६०।३)
 रसिक-(सं०)-१. रस जाननेवाला, रसिया, रस का प्रेमी, २. ऐयाश, ३. प्रेमी, ४. मौजी, मस्त, ५. कवि, काव्य की रचना करनेवाला । उ० १. कवित रसिक न रामपद नेह ।

राँकु-दे० 'राँक' । उ० धनु तोरै सोई बरै जानकी राउ होइ की राँकु । (गी० १८७)

राँची-(सं० रचना)-रची, निर्माण की ।

राँचो-(सं० रंजन) चाहा, प्यार किया । उ० मन जाहि राँचो मिलहि सो घर सहज सुंदर साँवरो । (मा० ११२३६।३०१)

राँड-(सं० रंडा)-१. विधवा, बेवा, २. वेश्या, कसबी । उ० २. ख्याल लंका लाई कपि राँड की सी भोपरी । (क० ६१२७)

राँधा-(सं० रंधन)-पकाया । राँधे-पकाने से । उ० हाँडी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज । (दो० ११६७) राँध्यो-पकाया, चुराया । उ० लंक नहि खात कोउ भात राँध्यो । (क० ६१४)

राइ-(सं० राजा, प्रा० राया)-छोटा राजा, राय । उ० राइ दूसरथ के समथ राम राजमनि । (क० ७१२०)

राई-(सं० राजा)-राजा, प्रधान । यह शब्द प्रायः शब्दों के बाद में लगता है । जैसे रघुराई, यदुराई तथा ऋषिराई आदि । उ० जेहि बन जाइ रहब रघुराई । (मा० २११०४।३) गवने तुरत तहाँ रिपिराई । (मा० ११३३३।२)

राउ-(सं० राजा)-१. राजा, भूपति, २. स्वामी, ३. प्रधान, सरदार । उ० १. कछो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गयो राउ । (वि० १००)

राउत-(सं० राज + पुत्र)-सरदार, शूरवीर । उ० राउत राउत होत फिरि कै जूझै । (वि० १७६)

राउर-(सं० राज + पुत्र)-१. आपका, तुम्हारा, २. राजा, राजकुमार । उ० १. जो राउर आयसु मैं पावौ । (मा० ११२१८।३) २. राउर नगर कोलाहलु होई । (मा० २१२३।४) राउरि-आपकी ।

राऊ-दे० 'राउ' । उ० २. जद्यपि अखिल लोक कर राऊ । (मा० ११५७।३)

राकस-(सं० राक्षस)-राक्षस, निशिचर । राकसनि-राक्षसों ने । उ० खायो हुतो तुलसी कुरोग राऊ राकसनि । (ह० ३५)

राका-(सं०)-१. पूर्णिमा की रात, पूर्णमासी, २. रात, ३. नदी, ४. खुजली, ५. प्रथम रजोवती स्त्री । उ० १. ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी । (मा० २१३२५।३)

राकापति-(सं०)-पूर्णमासी का चंद्रमा, राकेश । उ० राकापति षोडस उअहि तारा गन समुदाइ । (मा० ७।७८ख)

राकेश-(सं०)-पूर्णमासी का चंद्रमा ।

राकेस-दे० 'राकेश' । उ० वृष्णिकुल-कुमुद-राकेस राधारमन कंस-बंसाटवी धूमकेतु । (वि० ५२)

राक्षस-(सं०)-१. निशाचर, दैत्य, असुर, २. पापी, हिंसक ।

राख (१)-(?)-भस्म, खाक ।

राख (२)-(सं० रक्षण)-१. रखवाली करो, २. रख लिया, रखता है, ३. रक्षा करें, ४. रक्षो । उ० २. सनु सयानो सखिल ज्यों राख सीस रिपुनाउ । (दो० ५२०) ३. जेहि राख राम राजिव नयन । (क० ७।११७) राखइ-१. रखता है, २. रक्षा करता है । राखउँ-१. रक्खूँ, २. रक्षा करूँ । राखत-१. रखता है, २. रखवाली करता है, रक्षा करता है । उ० २. अब बिनु मन, तन दहत दया तजि,

राखत रवि हैं नयन बारिधर । (क० ३१) राखति-१. रखती है, २. रखती हूँ । उ० २. राखति मान बिचारि दहत मत । (गी० ५।६) राखन-१. रखने के लिए, २. रखना । उ० १. रायँ राम राखन हित लागी । (मा० २।७६।१) राखव-१. रक्खूँगा, २. रखना चाहिए । उ० २. रिपु रन रंच न राखव काऊ । (मा० २।२२६।१) राखबि-रखना, रखिएगा । उ० तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन । (जा० १८८) राखहि-१. रक्षा करते हैं, २. रखते हैं । उ० १. राखहि सोइ है बरियाई । (क० ५६) राखहु-रखो, रक्षा करो । उ० राखहु राम कान्ह यहि अवसर, दुसह दसा भइ आइ । (क० १८) राखा-रक्खा । उ० तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा । (मा० २।३०।४) राखि-दे० 'राखी' । उ० १. करि करि बिनय कछुक दिन राखि बरातिन्ह । (जा० १८१) २. दले मलिन खल, राखि मख, मुनि सिष आसिष दीन्हि । (प्र० ४।६।३) राखिबे-रक्षा करने, बँचाने । उ० मख राखिबे लागि दूसरथ सों माँगि आत्ममहिँ आने । (गी० १।५४) राखिय-१. रखिए, २. रक्षा कीजिए, रक्षा करनी चाहिए । राखिये-१. रक्षा कीजिए, २. रखिए । उ० १. संकर निज पुर राखिये चितै सुलोचन-कोर । (दो० २३६) २. राखिये नीके सुधारि, नीच को डारिए मारि । (वि० २५८) राखिहहिं-रक्खेंगे, रक्षा करेंगे । राखिहि-रखेगा । उ० तुलसिदास एहि त्रास सरन राखिहि जेहि गीध उधा-रयो । (वि० २०२) राखिहैं-रखेंगे, रक्षा करेंगे । उ० राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे । (क० ७।५०) राखिहौ-रखोगे, घर ही रखोगे । उ० जो हठि नाथ राखिहौ मो कहँ तौ सँग प्राण पठावोंगी । (गी० २।६) राखी (१)-१. रखकर, २. रक्षा करके, ३. रक्खी, ४. रखते । राखु-रक्षा करो । उ० भूप सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु राखु कछो नर-नारी । (वि० ६३) राखे-रक्खा, रख दिया । उ० ठाँव ठाव राखे अति मीती । (मा० २।६०।२) राखेउँ-रक्खे हैं । उ० राखेउँ प्राण जान-किहि लाई । (मा० २।५६।१) राखेउ-रक्खा, रक्खा है । उ० मेदि फो सकइ सो आँकु जो विधि लिखि राखेउ । (पा० ७१) राखेसि-रक्खा । उ० लै राखेसि गिरिखोह महुँ मायौ करि मति भोरि । (मा० १।१७१) राखेसु-१. रक्खा, २. रक्खा गया । राखेहु-रक्खा था । उ० सो भुज बल राखेहु उर घाली । (मा० ६।२६।४) राखै-१. रखते हुए, २. रक्खे । उ० १. नीच ज्यों टहल करै राखै रुख अनुसरै । (गी० १।१७०) २. रोटी लुगा नीके राखै, आगे-हू को बेद भावै । (वि० ७६) राखै-१. रक्षा करता है, २. रक्खे । उ० १. जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहब राखै रमैया । (क० ७।५३) राख्यो-१. रक्खा है, रख लिया है, २. रक्षा की । उ० १. जद्यपि है दारुन-बढ़वानल राख्यो है जलधि गँभीर धीरतर । (क० ३१) २. प्रथम ताडका हति सुबाहु बधि, मख राख्यो द्विज-हितकारी । (गी० ७।३८) राख्यो-दे० 'राख्यो' ।

राखनहार-रक्षा करनेवाला । उ० राखनहार तुम्हार अनुग्रह घर बन । (जा० २८)

राखी (२)-(?)—राख, भस्म ।
 राग-(सं०)—१. मोह, प्यार, आसक्ति, २. मस्सर, ईर्ष्या, द्वेष, ३. संगीत के भैरव, मलार आदि राग, ४. विषयासक्ति । उ० १. राग बस भो विरागी पवनकुमार सो । (क० १११) २. निसि दिन पर-अपवाद वृथा कत रटि रटि राग बदावहि । (वि० २३८) ३ उचटाहि छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान । (गी० ११२) ४. राग को न साज । (क० ७१६) राग-रंग-हँसी खुशी, गाना-बजाना, आनंद । उ० सब की सुमति राम-राग-रंग रहै है । (गी० २१३) रागहि-प्रेम में, राग में । उ० रोष न प्रीतम-दोष लखि, तुलसी रागहि रीकि । (दो० २८४) रागज-राग भी, आसक्ति या प्रेम भी । उ० रागज बिराग, भोग जोग जोगवत मन । (गी० ११८) रागा-दे० 'राग' । उ० १. तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा । (मा० २१२४४) रागिन-रागी लोग । दे० 'रागी' । उ० रागिन पै सीठि डीठि बाहरी निहारिहैं । (क० ७१४) रागिहि-रागी को, सांसारिक विषयों के प्रेमी को । उ० रागिहि सीठ बिसेषि थलु, बिषय-बिरागिहि मीठ । (प्र० २१६१) रागी-(सं० रागिन)-जो विरक्त न हो, संसार से प्रेम रखनेवाला । उ० राजा रंक रागी औ बिरागी, भूरि भागी ये । (क० ७१८) रागु-दे० 'राग' । रागे-(सं० राग)-गाए, गाना आरंभ किया । उ० गायक सरस राग रागे । (गी० ७१२) राघव-(सं०) १. रघु के वंशज, रामचंद्र, २. समुद्र में रहने-वाली एक प्रकार की बड़ी मछली । उ० १. जब द्रव्य दीन दयालु राघव साधु-संगति पाह्यु । (वि० १३६) राघौ-दे० 'राघव' । उ० १. राघौ गीध गोद करि लीन्हों । (गी० ३१३) राचहीं-(सं० रंजन)-अनुरक्त होते हैं, मुग्ध होते हैं । उ० बरचै सुमन सुर रूरे रूप राचहीं । (क० ११४) राचा (?)—अनुरक्त हो गया, लुब्ध हो गया । उ० सो बह मिलिहि जाहि मनु राचा । (मा० ११२३६) राचा (२)-(सं० रचना)-रचना की, रचा । राच्छस-दे० 'राक्षस' । राच्छसी-राक्षसी, राक्षस की स्त्री । उ० त्रिजटा नाम राच्छसी एका । (मा० ११११) राक्षस-(सं० राक्षस)-निश्चर, असुर । उ० राक्षस भयउ रहा मुनि ग्यानी । (मा० ११७६) राज (१)-(सं० राज्य)-राज्य, राजा का प्रदेश । राज (२)-(राजन्)-१. राजा, नरेश, २. राजगीर, धवई, ३. बड़ा । उ० १. राज-अजिर राजत रुचिर । (प्र० ४२१६) राज (३)-(सं० राजन)-राजित, शोभित । उ० ललित लहलाट पर राज रजनीश कल । (वि० ११) राजलखन-(सं० राजन् + लक्षण)-राजा के लक्षण । उ० राजलखन सब अंग तुम्हारे । (मा० २११२२) राजभृषि-दे० 'राजर्षि' । उ० राजभृषि पितु ससुर, प्रभु पति, नू सुमङ्गल खानि । (गी० ७३२) राजकिसोर-(सं० राजकिसोर)-राजा का लड़क, राजपुत्र । उ० भूप सभा भव चाप दलि, राजत राजकिसोर । (प्र० ४७१२)

राजकुअरि-(सं० राजकुमारी)-राजा की पुत्री । उ० रीकिहि राजकुअरि छवि देखी । (मा० ११३४२) राजकुमार-(सं०)-राजपुत्र, राजा का लड़का । राजकुमारी-(सं०)-राजा की पुत्री । उ० संग रमा सोइ राजकुमारी । (मा० ११३६२) राजकुमारा-दे० 'राजकुमार' । उ० तेहि पठए बन राज-कुमारा । (मा० २११६२) राजकुमारि-(सं० राजकुमारी)-राजपुत्री । उ० आनि देखाई नारदहि, भूपति राजकुमारि । (मा० ११३०) राजडगर-(सं० राज + ?)-राजमार्ग, सीधी और बड़ी सड़क । राज-डगरो-दे० 'राजडगर' । उ० गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहि लगत राज-डगरो सो । (वि० १७३) राजत-(सं० राजन)-राजता है, सुशोभित होता है । उ० कसे हैं बनाइ नीके राजत निर्घण हैं । (क० २१५) राजति-शोभती है, सुन्दर लगती है । उ० पुरी बिराजति राजति रजनी । (मा० ११३८२) राजहि-सुंदर लगती है, सुशो-भित है । उ० मन्दिर भई सब राजहि रानी । (मा० ११३०) राजहि-सुन्दर लगता है । राजे (?)-(सं० राजन्)-विराजे शोभित हुए । राजै-शोभा देती है, शोभा दे रही है । उ० पंकज-पानि पहुँचियौ राजै । (गी० ११२८) राजधानी-(सं०)-किसी राज्य का वह प्रधान नगर जहाँ राजा तथा उसके कोष एवं कार्यालय आदि रहते हैं । उ० जयति सौमित्र-सीता-सचिव-सहित चले पुष्पकारुड निज राजधानी । (वि० ४३) राजन-हे राजा । उ० राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार । (मा० २१३) राजनय-(सं०)-राजनीति । राजपूत-(सं० राजपुत्र-श्रेष्ठ पुत्र) । उ० राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है । (क० २१४) राजमराल-दे० 'राजहंस' । राजमराला-दे० 'राजमराल' । उ० संकर मानस राजमराला । (मा० ३१८१) राजमरालिनि-राजहंसिनी, राजमराल की मादा । उ० देखि बधिक-बस राजमरालिनि लषन-लाल छिनि लीजै । (गी० ३१७) राजमहिषी-(सं०) पटरानी, रानी । उ० बारहि मुकुता रतन राजमहिषी पुर-सुमुखि समान । (गी० ११२) राजमारग-(सं० राजमार्ग)-बड़ी सड़क, शासन की ओर से बना प्रधान मार्ग । उ० सो निबह्यो नीके जो जनमि जग राम-राजमारग चलो । (गी० ११४२) राजरोग-(सं० राज + रोग)-वह रोग जो असाध्य हो, तपेदिक, क्षय । उ० रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट उर । (क० ११२५) राजरिषि-दे० 'राजर्षि' । राजर्षि-(सं०)-वह ऋषि जो जन्म से राजा या राज्य कुल का हो । राजसता-(सं०)-रजोगुण, राजसीपन । उ० राजत राजसता अनुज बरद धरनि-धर धीर । (सं० १५३) राजहंस-(सं०)-एक हंस जिसकी चोंच और पैर लाल होते हैं । उ० तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हटि राजहंस से जोरे । (गी० २१८६)

राजा-(सं० राजन्)-१. नरेश, नृप, भूप, २. सम्राट्, चक्रवर्ती राजा, ३. क्षत्रिय, ४. प्रभु, स्वामी, ५. चंद्रमा । उ० १. सुनत राजा की रीति, उपजी प्रतीति मीति । (गी० १।६४)
 राजाधिराज-राजाओं के राजा । उ० खेलत बसंत राजाधि-राज । (गी० ७।२२)
 राजि-दे० 'राजिका' । उ० कुसुमित नव तरु राजि बिराजा । (मा० १।२६।३)
 राजिका-(सं०)-पंक्ति, कृतार ।
 राजित-(सं०) १. विराजित, शोभित, २. आसीन, बैठे हुए ।
 राजिव-दे० 'राजीव' । उ० राजिव दल-नयन, कोमल-कृपा अयन, मयननि बहु छवि अंगनि दूरति । (गी० ५।४७)
 राजी (१)-(अर० राजी)-१. सम्मत, तैयार, २. प्रसन्न । उ० १. तुलसी को न होइ सुनि कीरति कृष्ण कृपाखु-भगति पथ राजी ? (कृ० ६१)
 राजी (१)-दे० 'राजिका' ।
 राजीव-(सं०)-कमल, पद्म । उ० अरुन कर चरन मुख, नयन राजीव, गुन अयन, बहु-मयन शोभानिधान । (वि० ४६)
 राजु-दे० 'राज (१)' । राजा का प्रदेश, राज्य । उ० रासु जाहि बन राजु तजि होइ सकल सुरकाखु । (मा० २।११)
 राजु-दे० 'राजु' तथा 'राज (२)' ।
 राजेंद्र-(सं०)-राजों का राजा, श्रेष्ठ राजा । उ० जयति राज राजेंद्र राजीवलोचन राम-नाम-कलिकामतरु, साम-शाखी । (वि० ४४)
 राजे (२)-(सं० रंजन)-प्रसन्न हुए ।
 राज्य-(सं०)-साम्राज्य, किसी एक शासन के अधीन देश ।
 राट्-(सं०)-राजा, बादशाह । उ० भाले बाल विधुगंले च गरलं यस्पोरसि व्यालराट् । (मा० २।१।१७० १)
 राड्-दे० 'राट्' । उ० १. जग-गुन-मोल, अहार, बल, महिमा जान कि राड् ? (दो० ३८०)
 राट्-(सं० राटि)-१. ऋगडा, रार, दुष्ट, २. ऋगडा, ऋभट्, ३. कायर । उ० १. आपनी न ब्रूमि, ना कहे को राट् रोरे ! (वि० ७१) राट्-कायर भी । उ० राट् राउत होत फिरि कै जूझै । (वि० १७६)
 रात-(सं० रात्रि)-रजनी, निशा ।
 राता (१)-(सं० रत)-अनुरक्त हुआ, लगा, प्रीतियुक्त हुआ । उ० जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता । (मा० १।२०४।१) राती (१)-१. प्रीतियुक्त, अनुरक्त, २. अनुरक्त हुई । राते (१)-प्रीतिमान हुए, अनुरक्त हुए । उ० ऐसे भए तौ कहा तुलसी खु पै जानकीनाथ के रंग न राते । (क० ७।४४) रातेउ (१)-दे० 'राते (१)'
 रातो-(सं० रत)-१. रत हो जावो, लीन हो, २. लीन होते, अनुरक्त हो जाते । उ० २. जो मन प्रीति प्रतीति सौं राम नामहि रातो । (वि० १२१) रात्यो-(सं० रत)-१. आसक्त लीन, २. लीन हुआ । उ० १. जौबन जवति-सैंग रंग रात्यो । (वि० १३६)
 राता (२)-(सं० रक्त)-लाल, अरुण । राती (२)-लाल, सुखे राते (२)-लाल, १. सुखे, २. लाल हो गया । उ० १.

भृकुटी कुटिल नयन रिस राते । (मा० १।२६।३) रातेउ (२)-दे० 'राते (२)' ।
 राति-दे० 'रात' । रातिहि-रात में ही । उ० रातिहि घाट घाट की तरनी । (मा० २।२२।११)
 रातिचर-(सं० रात्रि+चर)-राक्षस, निशिचर । उ० सारे रन रातिचर, रावन सकुल दल । (क० ६।५८)
 राती (३)-दे० 'रात' । उ० होइ अकाञ्च कवनि बिधि राती । (मा० २।१३।२)
 रात्रि-(सं०)-रात, सूर्यास्त से सूर्योदय तक का समय ।
 राधा-(सं०)-१. वृषभानु गोप की पुत्री और कृष्ण की प्रेयसी, २. विशाखा नक्षत्र, ३. अधिरथ की पत्नी जिसने कर्ण को पाला था ।
 राधारमन-(सं० राधारमण)-राधा के प्रेमी कृष्ण । उ० वृष्णकुल-कुमुद-राकेस राधारमन कंस-बंसाटवी-धूमकेतू । (वि० ५२)
 राधो-(सं० आराधना)-आराधना की । उ० साधो कहा-करि साधन तें जो पै राधो नहीं पति पारवती को ? (क० ७।१२६)
 राना-(सं० राट्)-राजा । उ० बापुरे बराक और राजा राना राँक को । (ह० १२)
 रानि-दे० 'रानी' । उ० हँसि कह रानि गाखु बड़ तोरें । (मा० २।१३।४)
 रानिन-रानियों ने । उ० रानिन दिए बसन मनि भूपन, राजा सहन-भँडार । (गी० १।२) रानिन्ह-दे० 'रानिन' । रानिहि-दे० 'रानिहि' । रानिहि-रानी का । उ० कोउ कह दूषन रानिहि नाहिन । (मा० २।३२३।३) रानी-(सं० राज्ञी)-राजपत्नी, महिषी । उ० चेरि छाडि अब होब कि रानी । (मा० २।१६।३)
 राम-राम को । उ० नौमींछ्य जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारुढ रामम् । (मा० ७।१।१७० १) राम-राम । उ० संतत शं तनोतु मम रामः । (मा० ३।११।८) राम-(सं०)-१. रामचंद्र, भगवान, २. बलराम, ३. परशुराम । उ० १. लछिमन रामचरन रति मानी । (मा० १।१६।८) २. राखहु राम कान्ह यहि अवसर दुसह दसा भइ आई । (कृ० १८) ३. बार बार मुनि विप्रवर कहा राम सन राम । (मा० १।२८।२) रामहि-रामको । उ० रामहि सुमिरत, रन भिरत, देत, परत गुरु पाय । (दो० ४२) रामहि-राम को । उ० परम रम्य आरासु यहु जो रामहि सुख देत । (मा० १।२२७) रामो-राम भी । उ० प्रिय रामनाम तें जाहि न रामो । (वि० २२८)
 रामकहानी-१. लंबी कहानी, २. रामायण ।
 रामघाट-(सं० राम+घट)-वह घाट या नदी के किनारे का स्थान जहाँ राम ने स्नानादि किया था । उ० रामघाट कहँ कीन्ह प्रनाम् । (मा० २।१६।७।२)
 रामगिरि-(सं०)-चित्रकूट पर्वत । उ० अटतु रामगिरि बन तापस थल । (मा० २।२८।७)
 रामचंद्र-दे० 'रामचंद्र' । उ० रामचंद्र-मुखचंद्रु निहारी । (मा० २।१।३)

रामचंद्र-दे० 'रामचंद्र' । उ० रामचंद्र पति सो बैदेही ।
(मा० २।६।१४)
रामचंद्र-(सं०)अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र। इनकी माता का नाम कौशल्या और स्त्री का नाम सीता था। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इनके भाई थे, जिनमें इन पर विशेष स्नेह लक्ष्मण का रहता था। राम की कथा के प्रथम लेखक वाल्मीकि हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा हिंदी के विभिन्न ग्रंथों में राम की कथा विभिन्न रूपों में मिलती है। उ० रामचंद्र मुख चंद्र चकोरा । (मा० २।१।१६।३)
रामजिउ-रामचंद्र जी । उ० काहे रामजिउ साँवर, लछिमन गोर हो । (रा० १२)
रामपुर-(सं०)-राम का नगर, अयोध्या । उ० पहुँचे दूत रामपुर पावन । (मा० १।२६।११)
रामपुरी-दे० 'रामपुर' । उ० रामपुरी बिलोकि तुलसी मित्त सब दुख-द्रुद । (गी० ७।२३)
रामबोला-राम शब्द बोलनेवाला । कहा जाता है कि तुलसी का यही नाम था। तुलसी के अनुसार राम ने ही यह नाम रखा था। उ० राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम । (वि० ७६)
रामा (१)-(सं०)-१. सुंदर स्त्री, स्त्री, २. नदी, ३. सीता, जानकी, ४. रुक्मिणी, ५. राधा, ६. लक्ष्मी । उ० ६. रूप-सुख-शील-सीमासि भीमासि रामासि वामासि बर बुद्धि बानी । (वि० १५)
रामा (२)-राम, रामचंद्र । दे० 'राम' । 'रामचंद्र' । उ० कह तुलसिदास सुनु रामा । (वि० १२५)
रामायण-दे० 'रामायण' । उ० श्री मद्रामपदाब्ज भक्ति-मनिशं प्राप्स्यै तु रामायणम् । (मा० ७।१३।१।१७।१)
रामायण-(सं०)-राम के चरित्र से संबंध रखनेवाला ग्रंथ । सामान्यतः वाल्मीकि कृत रामायण और तुलसी कृत रामचरितमानस रामायण कहे जाते हैं। रामायणे-रामायण में । उ० रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि । (मा० १।१७।७)
रामायन-(सं० रामायण)-१. राम के चरित्र से संबंध रखनेवाला ग्रंथ, २. रामकथा । उ० १. रामायन-अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति । (दो० ५४५)
रामु-दे० 'रामू' । उ० मङ्गलमूल रामु सुत जासू । (मा० २।२।३)
रामू-दे० 'राम' । रामचंद्र । उ० अपने बस, करि राखे रामू । (मा० १।२६।३)
रामेश्वर-(सं० रामेश्वर)-दक्षिण भारत के समुद्रतट का शिवलिंग । उ० जे रामेश्वर दरसनु करिहहि । (मा० ६।३।१)
राय-(सं० राजन्)-१. राजा, २. श्रेष्ठ, ३. नायक, सरदार । उ० १. राउर राय रजायसु होई । (मा० २।२६।६।४)
रायमुनी-(सं० राजन् + मुनि)-लाल नामक पक्षी की मादाई । उ० जनु रायमुनी तमाल पर बैठी विपुल सुख आपने । (मा० ६।१०।३।छं० २)
राया-दे० 'राय' । उ० २. संत सहज सुभाउ खगराया । (मा० ७।१२।१७)
रार-(सं० राद)-लड़ाई, भ्रंश, विरोध ।

रारि-दे० 'रार' । उ० घोर रारि हेरि त्रिपुरारि विधि हारे हिये । (क० ६।५६)
रारी-दे० 'रार' । उ० बरषा घोर निसाचर रारी । (मा० १।४।२।३)
राव-दे० 'राय' ।
रावण-(सं०)-लंका का प्रसिद्ध राजा जो राक्षसों का नायक था और जिसे सीता को चुराने के कारण राम ने मारा था। दस मुख होने के कारण इसे 'दसानन' आदि भी कहते हैं। इसे २० भुजाएँ थीं। कुंभकर्ण तथा बिभीषण, इसके भाई, मंदोदरी इसकी स्त्री तथा मेघनाद इसका पुत्र था। उ० नमत पद रावणानुज निवाजा । (वि० ४३)
रावन-दे० 'रावण' । उ० कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जगजान । (मा० १।१२२) रावनहि-रावण को । रावनहि-रावण को । उ० सहित सहाय रावनहि मारी । (मा० ४।३०।५) रावनो-रावण भी । उ० भाजे बीर धीर, अकुलाह उठ्यो रावनो । (क० ५।८)
रावनु-दे० 'रावन' । उ० रावनु जातुधान कुल टीका । (मा० ६।३।३)
रावर-(सं० राजपुत्र)-तुम्हारा, आपका । रावरि-तुम्हारी, आपकी । उ० रघुवर ! रावरि यहै बड़ाई । (वि० १६।५) रावरिये-आपही की । उ० मेरे रावरिये गति है रघुपति बलि जाऊँ । (वि० १।५३) रावरी-दे० 'रावरि' । उ० रावरी पिनाक में सटीकता कहा रही । (क० १।१६) रावरीयै-आपही की । उ० आस रावरीयै, दास रावरो विचारिए । (ह० २।१) रावरे-१. आप, २. आपके । उ० १. तुलसी के ईस राम रावरे सों साँची कहौ । (क० २।८) रावरेऊ-१. आप भी, २. आप के भी । उ० १. रावरेऊ जानि जिय कीजिये जु अपने । (क० ७।७।८) रावरेहु-आपके, तुम्हारे । उ० रावरेहु सतानंद पूत भए माय के । (गी० १।६५)
रावरो-दे० 'रावरो' ।
रावरो-(सं० राजपुत्र)-आपका, तुम्हारा । उ० हित लागि कहौ सुभाय सो बड़ बिषम बैरी रावरो । (पा० ५४) रावरोई-आपका ही । उ० पेट भरौ राम रावरोई गुन गाइकै । (क० ७।६।१)
राशि-(सं०)-१. ढेर, समूह, २. ज्योतिष की १२ राशियाँ, ३. अनाज का ढेर ।
राषा-(सं० रक्षण)-रख लिया । राषे-रखा ।
रास-(सं०)-नाच । एक विशष प्रकार की नाच जो कृष्ण गोपियों के साथ करते थे । उ० नहिंन रास रसिक रस चाख्यो तातें डेल सो डारो । (क० ३४)
रासभ-(सं०)-१. गदहा, गर्दभ, २. खच्चर, अश्वतर । उ० १. पुरोडास चह रासभ खावा । (मा० ३।२६।३)
रासभी-१. गदही, २. खच्चरी । उ० १. बेचिये बिबुध धेनु रासभी बेसाहिण । (क० ७।७६)
रासि-दे० 'राशि' । उ० १. बालि बल-मत्त गजराज-इव केसरी सुहृद-सुग्रीव दुखरासि-भंग । (वि० ५०) रासिन्ह-राशियों, ढेरों । उ० जनु अंगार रासिन्ह पर मृतक धूम रख्यो छाड़ । (मा० ६।५३) रासिहि-समूहों को, राशियों

को । उ० बहु बासना मसक हिमरासिहि । (मा० ७
३०।५)
रासी-दे० 'राशि' । उ० १. चेतन अमल सहज सुखरासी ।
(मा० ७।११७।१)
रासीन्ह-दे० 'रासिन्ह' ।
राहु-(सं०) पुराणानुसार ६ ग्रहों में एक । समुद्र-मंथन से निकले
अमृत को पीने के लिए जब देवता बैठे तो उनमें एक
असुर भी बैठ गया था । ज्यों ही उसने अमृतपान किया
चंद्रमा तथा सूर्य यह भेद जान गये और उन लोगों के संकेत
से विष्णु ने चक्र से असुर को काट डाला । पर, वह अमृत
भी चुका था अतः उसके दोनों कटे भाग जीवित रहे और
वे राहु-केतु कहलाये । तभी से राहु चंद्रमा तथा सूर्य को
ग्रसता है जिसे चंद्रग्रहण और सूर्यग्रहण कहते हैं । राहु की
माता सिंहािका थी जो समुद्र में रहती थी और छाया द्वारा
जीवों को पकड़ लेती थी । उ० अमृत क्षमित निसि
दिवस गगन महीं रिपु राहु बड़ेरो । (वि० ८७)
राहु-दे० 'राहु' । उ० लिखत सुधाकर गा लिखि राहु ।
(मा० २।५५।१)
रिक्त-(सं०)-शून्य, खाली, खोखला, रीता ।
रिगु-(सं० ऋक्)-ऋग्वेद, प्रथम वेद ।
रिच्छ-(सं० ऋच्)-रीछ, भालू । उ० रिच्छ मर्कट विकट
सुम्भ उन्नत । (वि० ५०)
रिच्छेश-दे० 'रिच्छेस' ।
रिच्छेस-(सं० ऋच्छेस)-भालुओं का राजा, जांबवान् । उ०
तब कपीस रिच्छेस विभीषण । (मा० ६।३१।२)
रिच्छेसा-दे० 'रिच्छेस' ।
रिच्छेस-दे० 'रिच्छेस' ।
रिच्छेसा-दे० 'रिच्छेस' । उ० जरठ भयउँ अब कहइ रिच्छेसा ।
(मा० ४।२१।४)
रिक्त्ये-(सं० रक्त्न)-रिक्ताया, रिक्ता लिया, मोह लिया ।
उ० कर-कमलानि बिचित्र चौगानै, खेलन लगे खेल
रिक्त्ये । (गी० १।४३) रिक्त्ये-१. रिक्तावे, प्रसन्न करे, २.
रिक्ताती है, प्रसन्न करती है । उ० २. सो कमला तजि
चंचलता करि कोटि कला रिक्त्ये सुरमौरहि । (क० ७।२६)
रिक्ताइ-(सं० रंजन) प्रसन्न करके, खुश करके । उ० ऐसे गुन गाइ
रिक्ताइ स्वामि सों पाइहै जो मुँह मागिहै । (वि० २२४)
रिक्ताइवो-प्रसन्न करना । उ० उपदेसिबो रिक्ताइवो तुलसी
उचित न होइ । (दो० ४८६) रिक्ताई-रिक्ताया, प्रसन्न किया ।
रिक्ताएँ-रिक्ताने से । उ० कहहु कवनि सिधि लोक रिक्ताएँ ।
(मा० १।१६२।१) रिक्ताए-रिक्ताया, प्रसन्न किया । रिक्तावौ-
रिक्ता सकूँ, प्रसन्न कर सकूँ । उ० तुलसिदास प्रभु सो गुन
नहि जेहि सपनेहु तुमहि रिक्तावौ । (वि० १४२)
रितई-(सं० रिक्त)-रिक्त कर दिया, खाली कर दिया । उ०
दीजै दादि देखि ना तो बलि, मही-भोद-भङ्गल-रितई है ।
(वि० १३१) रितए-१. खाली कर दिये, २. खाली करने
पर । उ० १. उमगि चल्थौ आनंद लोक तिहुँ देत सबनि
मन्दिर रितए । (गी० १।३) रितवहिं-(सं० रिक्त)-खाली
करते हैं । उ० भरहिं अरु रितवहिं । (जा० ८६) रितवै-
खाली करे । उ० रितवै पुनि को हरि जौ भरिहै । (क० ७।
४७) रितौ-खाली करके । उ० सौंवर रूप सुधा भरिबे

कहँ नयन कमल कल कलस रितौ री । (गी० १।७५)
रितु-दे० 'ऋतु' । मौसम । उ० बरपा रितु रघुपति भगति
तुलसी सालि सुदास । (मा० १।१६)
रितुराज-(सं० ऋतुराज)-वसंत ऋतु । उ० सोह मदनु मुनि
बेष जनु रति रितुराज समेत । (मा० २।१३३)
रितुराजू-दे० 'रितुराज' । उ० सो मुद मङ्गलमय रितुराजू ।
(मा० १।४२।२)
रिद्धि-दे० 'ऋद्धि' । उ० रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन
अधिकाइ । (मा० १।६४)
रिध-दे० 'रिद्धि' ।
रिन-(सं० ऋण)-कर्ज । उ० रिपु रिन रंच न राखब काज ।
(मा० २।२२६।१)
रिनियाँ-कर्जदार । उ० देबे को न कछु रिनियाँ हौं धनिक
तु पत्र लिखाउ । (वि० १००)
रिनी-दे० 'रिनियाँ' । उ० तेरो रिनी कबो हौं कपीस सों,
ऐसी मानिहि को सेवकाई । (वि० १६४)
रिनु-दे० 'रिन' ।
रिपु-(सं०) दुश्मन । उ० सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि
करहि बखान । (मा० १।१४ क) रिपुहि-शत्रु को । उ०
रिपुहि जीति आनिबी जानकी । (मा० ६।३२।२)
रिपुता-(सं०) शत्रुता ।
रिपुदवन (सं० रिपु + दमन)-शत्रुओं का नाश करनेवाले
शत्रुघ्न । उ० पवन-सुवन रिपुदवन भरतलाल लखन दीन
की । (वि० २७८)
रिपुदवनू-(सं० रिपु + दमन)-शत्रुघ्न । उ० सिय समीप
राखे रिपुदवनू । (मा० २।२४३।१)
रिपुहन-शत्रुघ्न । उ० सुनि रिपुहन लखि नखसिख खोटी ।
(मा० २।१६३।४)
रिहिा-(?)-गिड़गिड़ाकर माँगनेवाला । उ० रटत रिहिा
आरि और न कौर ही तें काज । (वि० २।१६)
रिषय-(सं० ऋषि)-ऋषि लोग । उ० सुनत बचन बिहसे
रिषय गिरि संभव तव देह । (मा० १।७८)
रिषि-(सं० ऋषि)-मुनि, तपस्वी, ऋषि । उ० सुनु खगेस
नहि कछु रिषि दूषन । (मा० ७।११३।१) रिषिन-दे०
'रिषिन्ह' । रिषिन्ह-ऋषि लोग, ऋषि लोगों ने । उ०
रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी । (मा० १।७८।१) रिषिहिं-
ऋषियों के । उ० बैठे आसन रिषिहि समेता । (मा० १।
१२८।३)
रिष्ट-(सं० हृष्ट)-१. प्रसन्न, २. मोटा-ताजा । रिष्ट-पुष्ट-
स्वस्थ, मोटा-ताजा । उ० रिष्ट-पुष्ट कोउ अति तन खीना ।
(मा० १।६३।४)
रिष्यमूक-दे० 'ऋष्यमूक' । उ० रिष्यमूक पर्वत निचराया ।
(मा० ४।१।१)
रिस-(सं० हृष)-क्रोध, गुस्सा । उ० दास तुलसी रहत क्यों
रिस निरखि नंदकुमार । (क० १४) रिसराते-गुस्से में
लाल । उ० कुटिल नयन रिसराते । (मा० १।२६८।३)
रिसाइ-(सं० हृष)-क्रोधित होकर । उ० सुनि रिसाइ बोले
मुनि कोही । (मा० १।२७।१।१) रिसाई-क्रोधित होकर ।
उ० सुनत दसानन उठा रिसाई । (मा० ५।४१।१) रिसाते-
क्रोध से लाल होते हैं, क्रोधित हैं । उ० सहजहुँ चितवन

मनहुँ रिसाते । (मा० १२६८३) रिसान-रिसाया, क्रोधित हुआ । उ० सुनि दसकठ रिसान अति तेहि मन कीन्ह बिचार । (मा० ६१६६) रिसाना-रुष्ट हुआ, क्रोधित हुआ । रिसानि-रिसाई, रुष्ट हुई । उ० केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई । (मा० २१२१) छं० १) रिसानी-१. क्रोधित हुई, २. क्रोध करना । उ० २. घोर धार श्रुगनाथ रिसानी । (मा० ११४१२) रिसाने-१. क्रोधित हुए, २. क्रोधित होकर, ३. क्रोध करने से । उ० २. दूट चाप नहिं जु रिहि रिसाने । (मा० ११२७८१) रिसाहिं-क्रोधित हो जाते हैं, रुष्ट हो जाते हैं ।
रिसि-दे० 'रिस' । उ० लखन राम बिलोकि सप्रेम महा रिसि ते फिरि आंखि दिखाए । (क० ११२२)
रिसिआइ-क्रोधित होकर । उ० कबहुँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरै । (क० ११४)
रिसौहैं-(सं० रूप)-क्रोधित, नाराज़ । उ० रदपट फरकत नयन रिसौहैं । (मा० ११२५२)
री-(सं०)-अरी, परी । उ० सोहर-गौरि-प्रसाद एक तें, कौसिक-कृपा चौगुने भो री ! (गी० ११०२)
रीछ-(सं० ऋक्ष) भालू । उ० असुभ होइ जिनके सुमिरे तें बानर रीछ विकारी । (वि० १६६)
रीछपति-(सं० ऋक्षपति)-जामवंत । उ० कहइ रीछपति सुनु हनुमाना । (मा० ४३०१२)
रीछराज-दे० 'रीछपति' । उ० रीछराज कपिराज नील नल बोलि बालिनंदन लये । (गी० १३३२)
रीछा-दे० 'रीछ' । उ० जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा । (मा० ६१५०४)
रीफ- (सं० रत्न)-१. खुरी, प्रसन्नता, २. प्रसन्न होकर । उ० १. बावरे बड़े की रीफ बाहन-बरद की । (क० ७१५८) रीफ-१ प्रसन्न होता है, २. प्रसन्न हो । रीफत-प्रसन्न होता है । उ० तुलसी जेहि के रघुनाथ से नाथ, समर्थ सुसेवत रीफत थोरे । (क० ७१४६) रीफहु-१. प्रसन्न हो जाओ, २. प्रसन्न हो जाते हैं । उ० २. तुम्ह रीफहु सनेह सुठि थोरे । (मा० १३४२१) रीफि-१. प्रसन्नता, खुरी, २. प्रसन्न होकर । उ० २. राँकनि नाकप रीफि करै । (क० ७१५३) रीफिहि-रीफेगी । उ० रीफिहि राजकुँरि छबि देखी । (मा० ११३४२) रीफिहु-प्रसन्न हो जाते हो, प्रसन्न हो जाते हैं । रीफेउ-रीफ गया । उ० रीफेउ देखि तोरि चतुराई । (मा० ७१५३) रीफै-रीफे, प्रसन्न हो । उ० जो बिलोकि रीफै कुँरि तब मेलै जयमाल । (मा० ११३१)
रीति-(सं०)-नियम, परिपाटी, व्यवहार, हंग, चाल । उ० यह दिनकर कुल रीति सुहाई । (मा० २११२)
रीती (१)-दे० 'रीति' । उ० लोकहुँ बेद सुसाहब रीती । (मा० ११२८३)
रीती (२)-(सं० रिक्त)-खाली । उ० जोगि जन सुनि मण्डली मों जाइ रीति ढारि । (क० ५३) रीते-(सं० रिक्त)-१. खाली, जो भरा न हो, शून्य, २. तुच्छ, व्यर्थ, सारहीन । उ० १. भये देव सुख संपति रीते । (मा० ११२३)
रीस-दे० 'रिस' ।

रंड-(सं०)-धड़, कबंध, मुंडरहित शरीर । उ० धावाहिं जहँ तहँ रंड प्रचंडा । (मा० ६१३१४) रंडन-रुडों, धड़ों । उ० रंडन के रुंड मूमि मूमि कुकरे से नाचै । (क० ६३१)
र-(सं० अपर)-और ।
रख-(फा० रख)-१. सन्मुख, सामने, ओर, २. इच्छा, ३. इशारा, ४. अनुमति, मर्जी, ५. मुख । उ० १. मनहुँ मधा-जल उमगि उदधि रख चले नदी नद नारे । (गी० ११६६) ३. जो सृजति जगु पालति हरति रख पाइ कृपा-निधान की । (मा० ३१३६१)
रखान-(?)-बढ़इयों का एक हथियार । उ० सुजन सुतर बन ऊष सम खल टंकिका रखान । (दो० ३४२)
रुगदैयाँ-दे० 'रोगदैया' ।
रुचि-(सं०)-चाह, इच्छा । उ० रामकथा पर रुचि मन माहीं । (मा० ११०६१४)
रुचिर-(सं०)-सुन्दर, अच्छा । उ० रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ । (मा० ११२३१४)
रुचिरता-(सं०)-सुन्दरता । उ० भाल तिलकु रुचिरता निवासा । (मा० ११३२७५)
रुचिराई-सुन्दरता, शोभा । उ० बाहेर नगर परम रुचिराई । (मा० ७१२६४)
रुचीं-(सं० रुचि)-अच्छी लगीं, सोहाईं । उ० चातक बतियाँ ना रुचीं अनजल सींचे रख । (दो० ३११) रुचीं-अच्छी लगी, भली लगी । उ० राम-रोष-इरषा-विमोह बस रुची न साधु-समीति । (वि० २३४) रुचै-१. अच्छा लगे, २. अच्छा लगता है । उ० १. जेहि जो रुचै करो सो । (वि० १७३)
रुज-(सं०)-वेदना, कष्ट, रोग । उ० समन सकल भव रुज परिवारु । (मा० ११११)
रुजा-दे० 'रुज' । उ० कृत दूरि महामहि भूरि रुजा । (मा० ७१४२)
रुदन-(सं०)-रोना, रोने की क्रिया । उ० आवत निकट हँसहि प्रभु भाजत रुदन कराहि । (मा० ७१७७ क)
रुदनु-दे० 'रुदन' । उ० घर-घर रुदनु करहिं पुरबासी । (मा० २१५६३)
रुदित-(सं०)-रोता हुआ, उदास । उ० हित मुदित अनहित रुदित मुख छबि कहत कबि धनु जाग की । (जा० ११७)
रुद्र-(सं०)-रुका हुआ ।
रुद्र-(सं०)-१. एक प्रकार के गण देवता जो संख्या में ११ होते हैं । ये शिव के रूप हैं । भयंकर शिव । उ० पाहि भैवरूप रामरूपी रुद्र, बंधु गुरु जनक जननी विधाता । (वि० ११) रुद्रहिं-दे० 'रुद्रहि' । रुद्रहि-रुद्र को । उ० रुद्रहि देखि मदन भय माना । (मा० ११८६२)
रुद्राणी-(सं०)-पार्वती ।
रुद्राष्टक-(सं०)आठ श्लोकों का शिवस्तोत्र । उ० रुद्राष्टक-मिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये । (मा० ७१०८६)
रुधिर-(सं०)-रून, लोह । उ० दलित दसन मुख रुधिर-प्रचारु । (मा० २१६३३)
रुधिरु-दे० 'रुधिर' ।

रुनसुनु-(अनु०)-धुँधरु की आवाज़। उ० कटि किंकिनी
पैजनी पाँचनि बाजति रुनसुनु मधुर रेंगाए। (गी०
१।२६)
रुमा-(सं०)-सुग्रीव की स्त्री।
रुष-(सं० रोष)-क्रोध। उ० सरुष समीप दीखि कैकेई।
(मा० २।४०।१)
रुष्ट-(सं०)-नाराज, रुठा।
रुह-(सं०)-उत्पन्न होनेवाला। यह दूसरे शब्दों के साथ
प्रायः लगता है, जैसे भूरुह तथा जलरुह आदि। उ० जल-
थल रुह फल-फूल सलिल सब करत प्रेम पहुनाई। (गी०
१।२३)
रुँधहु-(सं० रुद्ध)-१. काँटों से घेरो, घेरो, रचा करो, २.
रोको। उ० १. रुँधहु करि उपाय बर बारी। (मा० २।
१७।४) रुँधिवे-घेरने, रचा करने। उ० रुँधिवे को ताहि
सुरतरु काटियतु है। (क० ७।६६) रुँधो-१. घेरा किया,
छेक लिया, २. घिरा हुआ। रुध्वी-दे० 'रुँधो'।
रुख (१)-(सं० वृत्त) पेड़। उ० रुख कलपतरु सागरु
खारा। (मा० २।११६।२)
रुख-(२)-(सं० रुच)-१. रुखा, सूखा, २. कठोर, ३.
निर्दय। उ० १. रुख बदन करि बचन मृदु बोले श्री भग-
वान। (मा० १।१२८)
रुखा-दे० 'रुख (२)। उ० १. सजल नयन कलु मुख
करि रुखा। (मा० ७।८८।३) रुखी-दे० 'रुख (२)।
'रुखा' का स्त्रीलिंग। उ० उतरु न देइ दुसह रिस
रुखी। (मा० २।५१।१)
रुखु-दे० 'रुख'। पेड़।
रुखे-दे० 'रुख (२)। उ० धरम धुरीन विषय रस रुखे।
(मा० २।५०।२)
रुठहि-(सं० रुष्ट)-रुद्ध होते हैं। रुठा-१. नाराज, अप्रसन्न,
२. नाराज हुआ। उ० १. अजहुँ सो देव मोहि पर रुठा।
(मा० ६।६६।४) रुठे-नाराज हुए।
रूप-दे० 'रूप'। उ० १. निर्गुण सगुण विषम सम रूपं।
(मा० ३।११।६) रूप-(सं०)-१. आकार, सुरत, स्वरूप,
२. सौंदर्य, शोभा। उ० १. ब्यापक बिस्वरूप भगवाना।
(मा० १।१३।२) २. गुण के निधान रूपधाम सोम काम
को। (क० १।६) रूपहि-रूप को। रूपादि-रूप, रस,
शब्द, गंध तथा स्पर्श ये पाँच विषय। उ० रूपादि सब
सर्व स्वामी। (वि० ५६)
रूपा-दे० 'रूप'। उ० १. राम ब्रह्म परमारथ रूपा। (मा०
२।६३।४)
रूपिनी-(सं० रूपिणी)-रूपवाली। उ० तब विग्यान रूपिनी
बुद्धि बिसद घृत पाइ। (मा० ७।११७ ख) रूपी-रूपवाली।
उ० तिन्ह महेँ अति दारुन दुखद माथारूपी नारि।
(मा० ३।४३)
रूपु-दे० 'रूप'।
रूरी-(सं० रुढ)-सुन्दर, अच्छी। उ० कीरति सरित छुँ
रितु रूरी। (मा० १।४२।१) रूरे-अच्छे, सुन्दर। उ०
राज समाज बिराजत रूरे। (मा० १।२४।२)
रूरो-अच्छा, सुन्दर। उ० पवन को पूत रजपूत रूरो।
(ह० ३)

रेंगाई-(सं० रिंगण)-चलाई, बढ़ाई। उ० अस कहि संसुख
फौज रेंगाई। (मा० ६।७६।६) रेंगाए-चलाया, ज़मीन से
सटकर चलाया।
रेंड-(सं० अरंड)-रेंडी, अंडी का पेड़। उ० तुलसी बिहाइ
कै बबूर रेंड गोडिये। (क० ७।२५)
रे-(सं०)-एक निरादर या प्रेमसूचक संबोधन। उ० रे हत
भाग्य अग्य अभिमानी। (मा० ७।१०७।१)
रेख-दे० 'रेखा'। उ० १. अल्प तद्वित जुगरेख इंदु महेँ
रहि तजि चंचलताई। (वि० ६२) रेखे-रेखाएँ। उ०
ललित कंध बर भुज बिसाल उर लोहि कंठ-रेखेँ चित चोरे।
(गी० ३।२)
रेखा-(सं०)-१. लकीर, चिह्न, सतर, २. भाग्यरेखा, भाग्य,
प्रारब्ध, ३. गिनती। उ० १. सुमिरत रामचरन जिन्ह
रेखा। (मा० ३।३०।६)
रेखु-दे० 'रेखा'। उ० १. मृकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर
कुंकुम रेखु। (गी० ७।६)
रेणु-(सं०)-धूल, बालू। उ० भरत-राम-सीता चरण रेणु।
(वि० ४०)
रेत-(सं० रेतजा)-धूल, बालू, कण। उ० दोउ कूल दल
रथ रेत चक्र अबत बहति भयावनी। (मा० ६।८७।
छं० १)
रेता-दे० 'रेत'। उ० उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। (मा०
२।१०२।१)
रेनु-दे० 'रेणु'। उ० रेनु रजु बटत। (वि० १२६)
रेनु-दे० 'रेणु'। उ० बिधि हरि हर बंदित पद रेनु। (मा०
१।१४६।१)
रेला-(?)-१. बाढ़, नदी का तेज़ प्रवाह, २. धक्का।
रेवा-(सं०)-नर्मदा नदी। उ० बीच बिंध्य रेखा सुपास थल
बसे हैं परन गृह छाई। (गी० २।८६)
रेणु-रेखा। दे० 'रेखा'। उ० लाँचि न सके लोक-बिजयी
तुम जासु अनुज-कृत-रेणु। (गी० ६।१)
रेसु-दे० 'रोष'। उ० कबहुँ न कियहु सवतिआ रेसु। (मा०
२।४६।४)
रैन-दे० 'रहनि'। रात। उ० अति बल जल बरषत दोउ
लोचन दिन अरु रैन रहत एकहि तक। (गी० ५।६)
रैनि-दे० 'रैन'। उ० कहत कथा सिय राम लषन की बैठेहि
रैनि बिहानी। (गी० २।६८)
रैयत-(अर०)-प्रजा, रिश्ताया। उ० रैयत राज-समाज घर
तन धन धरम सुबाहु। (दो० ५२१)
रौंगदैया-दे० 'रोगदैया'।
रोह-(सं० रुदन)-रोकर, रुदन कर। उ० तो हौँ बारहिँ बार
प्रभु कत दुख सुनावौ रोह ? (वि० २१७) रोहहै-रोवेगा,
रोया करेगा। उ० जनमि जनमि जुग-जुग जग रोहहै।
(वि० ६८) रोहै-१. रोकर, २. रोना प्रारम्भ किया, रुदन
किया। उ० १. निज संताप सुनाएसि रोहै। (मा० १।
१८४।४) रोए-रो दिए, रुदन किए। रोवत-१. रोता है,
२. रोते हुए। उ० २. रोवत करहि प्रताप बखाना। (मा०
६।१०४।२)-रोवनि-रोना, रुदन करना। उ० रोवनि धोवनि
अनखानि अनरसनि डिठि-मुठि निठुर नसाइहौँ। (गी०
१।१८) रोवहिँ-रोते हैं। रोवहीं-रोते हैं। रोवा-१. रोया,

ल

लंक (१)-(सं०)-कमर, कटि। उ० लंक मृगपति ठवनि, कुँवर कोसलधनी। (गी० ७।५)
 लंक (२)-(सं०)-लंका, रावण का राज्य। उ० लंकदाहु देखे न उछाहु रछो काहुन को। (क० ६।१)। लंकहि-लंका को। उ० लंकहि चलेउ सुभिरि नरहरी। (मा० १।४।१)
 लंका-(सं०)-रावण की राजधानी, लंकापुरी। उ० जग विख्यात नाम तेहि लंका। (मा० १।१७।४)
 लंकिनी-(सं०)-लंका की एक राक्षसी। उ० लंकिनी ज्यों जात घात ही मरोरि मारिण। (ह० २३)
 लंकैस-(सं० लंकेश)-रावण। उ० सुनु लंकैस सकल गुन तोरें। (मा० १।४६।१)
 लंगर-(?)-नटखट, ढीठ। उ० लोकरीति लायक न लंगर लबाह है। (क० ७।६७)
 लंगरि-(?)-ढीठ की। उ० गनति किए लंगरि भगराज। (क० १२)
 लंगूर-(सं० लंगूल)-१. बंदर, बड़ी पूँछवाला एक विशेष बंदर, २. पूँछ। उ० २. खोरि खोरि धाह आह बाँधत लंगूर है। (क० १।३)
 लंगूर-दे० 'लंगूर'।
 लंगूल-दे० 'लंगूर'।
 लंघि-(सं० लंघन)-लॉघकर। उ० जलधि लंघि, दहि लंक। (वि० ३१) लंघेउ-लॉघा, लॉघ गए। उ० तुलसी प्रसु लंघेउ जलधि। (म० १।१।७)
 लंपट-(सं०)-१. व्यभिचारी, कामी, लुच्चा, २. झूठा, लबाार। उ० १. लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। (मा० १।११।११)
 लंबित-(सं०)-लंबा। उ० सोभित खवन कनक-कुंडल कल लंबित बिबि भुजमुले। (गी० ७।१२)
 लइ-लेकर। दे० 'लई'। लई-(सं० लभन, हि० लहना)-१. लिया, ग्रहण किया, पाया, २. लेकर, ३. लिवाकर। उ० २. मंगल अरब आँवड़े देते चले लई। (पा० १२८)
 लउ-दे० 'लय'।
 लकड़ी-(सं० लगुड)-पेड़ का कोई स्थूल अंग, काठ। उ० लकड़ी बौआ करछुली सरस काज अनुहारि। (दो० ५२६)
 लकीर-(सं० रेखा ?)-धारी, रेखा।
 लकुट-(सं० लगुड)-लकड़ी, छड़ी, लाठी। उ० निपटहि डौंयति निहुर ज्यों, लकुट कर तें डार। (क० १।४)
 लकुटि-दे० 'लकुट'।
 लकुटी-लकड़ी, छड़ी, लाठी। उ० डारि दे वर-बसी लकुटी बैगि करतें। (क० १।७)
 लक्ष-(सं० लक्ष)-लाख, लक्ष, सौ हजार। उ० लक्ष में पक्खर तिकखन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं। (क० ६।३३)
 लक्षन (१)-दे० लक्ष्मण। उ० ते रन तीर्थनि लक्षन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि वले हैं। (क० ६।३३)

लक्ष्मण (२)-(सं० लक्ष्मण)-चिह्न, लच्छन, लक्ष्मण।
 लक्ष्मण-दे० लक्ष्मण-देखो।
 लक्ष (१)-(सं०)-एक लाख, सौ हजार।
 लक्ष (२)-(सं० लक्ष्य)-१. ध्येय, २. निशाना।
 लक्ष्य (१)-चिह्न, पहचान।
 लक्ष्य (२)-(सं० लक्ष्मण)-राम के भाई लक्ष्मण।
 लक्षित-(सं०)-१. बतलाया हुआ, निर्दिष्ट, २. जाना हुआ, विदित।
 लक्ष्मण-(सं०)-दशरथ के चार पुत्रों में से दूसरे जो शेष के अवतार कहे जाते हैं। इनका विवाह उर्मिला से हुआ था। ये राम और सीता के साथ बन में गए थे, जहाँ इन्हें शक्ति लगी थी। सुमित्रा इनकी माता तथा शत्रुहन छोटे भाई थे। उ० जयति लक्ष्मण, नंत भगवंत भूधर, भुजंगराज, भुवनेश भूभार हारी। (वि० ३८)
 लक्ष्मिनिवास-(सं० लक्ष्मीनिवास)-विष्णु।
 लक्ष्मी-(सं०)-१. विष्णु की पत्नी जो धन की अघिष्ठात्री देवी हैं। इनकी उत्पत्ति समुद्र-मंथन से हुई थी। २. धन, समृद्धि, संपदा।
 लक्ष्य-(सं०)-१. निशाना, २. उद्देश्य, ध्येय, ३. हीला, बहाना।
 लख-(सं० लक्ष)-१. लक्ष्य, निशाना, २. लखो, देखो।
 लखइ-१. देखता है, २. दिखाई देता है। लखत-१. देखता है, निहारता है, २. देखकर, ३. देखते ही। उ० १. सुनत लखत श्रुति नयन बिनु रसना बिनु रस जेत। (वै० ३) २. तुलसी लखत राम-रावन बिबुध, बिधि। (क० ६।४१) लखहि-देखते हैं। लखहु-१. देखो, २. देखते, देखती। उ० १. लखहु न भूप कपट चतुराई। (मा० २।१।३३) लखा-१. देखा, अवलोक, २. जाना, देखा-भाला, ज्ञात। उ० १. सो सरूप नृपकर्ण्य देखा। (मा० १।१३।४।४) लखि-१. देख, देखकर, २. देखा, अवलोक। उ० १. रघुबर बिकल बिहंग लखि, सो बिलोकि दोउ बीर। (दो० २२६) लखियत-देखी जाती है, दिखाई पड़ती है। लखी-१. देखी, जानी, २. समझा, समझ गए, भाँप लिया। उ० १. लखी औ लखाई इहाँ किए सुभ सामें। (गी० १।२५) लखु-देख, देखो। उ० जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौ धरनीधर की। (क० ७।२७) लखे-१. देखे, पहिचाना, जाना, २. देखने पर, जानने पर। उ० १. सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए। (मा० १।३२।१।४) लखेउ-१. देखा, २. पहिचाना। लखै-देखे, जाने, समझे। उ० लखै अघानो भूल ज्यों, लखै जीति में हारि। (दो० ४४३) लख्यौ-देखा। उ० जानकी नाम को नेह लख्यौ, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े। (क० २।१२)
 लखन-दे० 'लक्ष्मण'। उ० राम लखन सम प्रिय तुलसी के। (मा० १।२०।२)
 लखाइ-(सं० लक्ष्य)-दिखला, अवलोकन करा। उ० मेरोई

फोरिबे जोग कपार, किधौ कछु काह लखाइ दियो है ।
(क० ७।१५७) लखाई-दिखाई, दिखाया । उ० लखी औ
लखाई इहाँ किए सुभ सामैं । (गी०२५) लखाए-दिखाया ।
लखाउ-(सं० लक्ष्य)-१. गुप्त भेद, रहस्य, २. लखने
योग्य, जानने योग्य, ३. पहचान, चिह्न रूप में दिया गया
पदार्थ, ४. पता, पता लगाना, प्रकट होना । उ० १. जान
कोउ न जानकी बिनु अगम अलख लखाउ । (गी०७।२५)
२. कियो सीय प्रबोध मुँदरी कियो कपिहि लखाउ ।
(गी० १।४) लखाऊ-दे० 'लखाउ' । उ० ३. और एक
तोहि कहउँ लखाऊ । (मा० १।१६१।२) ४. आपहु बेगि न
होइ लखाऊ । (मा० २।२७।१।४)

लग-(सं० लग्न)-तक, लौं, पास ।

लगत-(सं० लग्न)-१. लगते ही, २. लगता है, जुटता है ।
उ० १. सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि ।
(मा० २।७८) लगति-लगती है । लगनि-लगना,
सटना । उ० नहि बिसरति वह लगनि कान की । (गी०५।११)
लगहि-१. लगते हैं, २. लगे, समझ पड़े । उ० २.
तेहि लघु लगहि भुवन दस चारी । (मा० १।२८।१।४)
लगि (१)-१. तक, पर्यंत, २. लगाकर, ३. लगे, ४.
लिए, वास्ते । उ० १. जहुपति मुखछवि कलप कोटि लगि
कहि न जाइ जाके मुखचारी । (क० २२) २. जिन्ह लगि
निज परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़ ठायैं । (वि०
८३) लगिहहु-लगोगा, लगोगे, लगंगे । लगी-लगा गई, जुड़
गई । उ० तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं । (क० २।२३) लगी-
लगा गई । लगी-लगे । लगीं-दे० 'लगे' । उ० १. आजु
लगें अरु जब तैं भयजैं । (मा० १।१६७।२) लगे-१. तक,
पर्यंत, २. लग गए, चिमट गए, ३. आरंभ किया । उ० १.
जीव चराचर जहँ लगे है सब को हित मेह । (दो० २६४)
२. सकुचि लगे जननी उर धाई । (क० १३) ३. निदरि
लगे बहि काइन । (वि० २१) लग्यो-१. लगा, लग गया,
२. आरंभ किया ३. लगा हुआ । उ० १. लग्यो मन बहु
भाँति तुलसी होइ क्यों रस भंग । (क० २४) २. हुपदसुता
को लग्यो दुसासन नगन करन । (वि० २१३)

लगन-(सं० लग्न)-१. समय, २. उचित समय, लग्न,
साइत, सुहृत्, ३. टीका, ४. लगना, ध्यान लगाना, ५.
प्रेम, ६. मेल, ७. संबंध, ८. विवाहादि होने के दिन ।
उ० २. जोग लगन अह बार तिथि, सकल भए अनुकूल ।
(मा० १।१६०)

लगनवट-(सं० लग्न + वट)-राही या पथिक से प्रेम । उ०
पाही खेती लगनवट अहन कुब्याज, मग खेत । (दो० ४७८)
लगाइ-(सं० लग्न)-लगाकर । उ० लिए उठाइ लगाइ उर
लोचन मोचति बारि । (मा० २।१६४) लगाइय-१.
लगाया, २. लगाकर, ३. लगाइए । लगाई-१. लगाया,
लगा लिया, २. लगाकर । उ० १. कौसल्यां लिए हृदय
लगाई । (मा० २।१६७।१) लगाउ-१. संबंध, नाता, २.
लगाओ, जोड़ो । लगाऊ-१. संबंध, मिलाप, २. साथी,
जो लगा हो, ३. लगाओ । उ० २. जस जस चलिय दूरि तस
तस निज बास न भेंट लगाऊ रे । (वि० १८६) लगाए-
लगाया, जुटाया । लगावत-लगाते हैं । लगावति-लगाती
है, लगाती हैं । लगावहिं-लगाते हैं । लगावा-लगाया,

सटाया । उ० कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा । (मा०
१।३३।२)

लगाव-(सं० लग्न)-संबंध, वास्ता, रिश्ता ।

लागि (२)-(सं० लग्न)-१. लगी, बाँस, २. मछली पक-
ड़ने की बंसी । उ० २. नाम-लागि लाइ, लासा-लखित-
बचन कहि । (वि० २०८)

लगन-(सं०)-दे० 'लगन' ।

लघिमा-(सं० लघिमन्)-१ आठ सिद्धियों में चौथी जिसको
प्राप्त कर लेने पर मनुष्य बहुत छोटा या हलका बन सकता
है । २. लघुत्व, लाघव, छुटाई ।

लघिष्ट-(सं०)-छोटा, नीच, अत्यंत छोटा ।

लघु-(सं०)-१. छोटा, तुच्छ, २. हलका, जो भारी न हो,
३. शीघ्र, तुरत, ४. थोड़ा, ज़रा सा, कम, ५. निकृष्ट,
नीच, खराब, ६. ह्रस्व वर्ण, एकमात्रिक स्वर । उ० ६.
सब लघु लगे लोकपति लोक । (मा० २।२१५।१) लघुन्ह-
छोटे, छोटे आदमी । उ० बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं ।
(मा० १।१६७।४) लघुहिं-लघुओं पर, छोटों पर ।
उ० बड़े रतहिं लघु के गुनहिं तुलसी लघुहिं न हैत ।
(सं० ६३४)

लघुतहिं-लघुता को, छोटाई को । उ० जो लघुतहिं न भितैहो
(वि० २७०) लघुता-(सं०)-१. छोटापन, तुच्छता, छोटाई
२. हलकापन । उ० १. रावरी राम बड़ी लघुता, जस
मेरो भयो सुखदायक ही को । (क० ७।२६)

लच्छ (१)-(सं० लक्ष्मी)-लक्ष्मी, श्री, विष्णु की स्त्री ।
उ० मरकतमय साखा, सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि । (क०
७।११५)

लच्छ (२)-(सं० लक्ष्)-एक लाख, सौ हजार । उ० चार
लच्छ बर धेनु मगाई । (मा० १।३३।१।१)

लच्छ (३)-(सं० लक्ष्य)-निशान । उ० मनहु महिप मृदु
लच्छ समाना । (मा० २।४१।१)

लच्छन-(सं० लक्षण)-१. निशान, लक्षण, २. शुभ गुण,
अच्छे लक्षण । उ० २. लच्छन धाम रामप्रिय सकल
जगत आधार । (मा० १।१६७)

लच्छा-(सं० लक्ष्)-लाख, एक लाख । उ० सत्य-संध छद्दि
सर लच्छा । (मा० ६।६८।२)

लच्छि-(सं० लक्ष्मी)-१. रमा, लक्ष्मी, २. धन । उ० १.
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुखमूल । (मा०
१।२४७)

लच्छिनिवास-दे० 'लक्ष्मिनिवास' ।

लच्छिनिवासा-दे० 'लक्ष्मिनिवास' । उ० दुलहिनि लौ गे
लच्छिनिवासा । (मा० १।१३।२)

लच्छि-दे० 'लक्ष्मी' ।

लच्छिमन-दे० 'लक्ष्मण' । उ० एक जीभ कर लच्छिमन दूसर
शेष । (ब० २७) लच्छिमनहिं-लक्ष्मण को । उ० प्रभु
लच्छिमनहिं कहा समुझाई । (मा० २।२७।४) लच्छि-
मनहुं-लक्ष्मण भी । लच्छिमनहुं-लक्ष्मण भी । उ०
लच्छिमनहुं यह मरसु न जाना । (मा० ३।२४।३)

लच्छिमनु-दे० 'लक्ष्मण' ।

लजाइ-(सं० लज्जा)-१. लज्जित होकर, लजाकर, २.
लज्जित होती है । उ० १. उपमा कहत लजाइ भारती

भाजइ । (जा० १५८) लजाई-दे० 'लजाइ' । लजाए-
१. लज्जित कर दिए, २. लज्जित हो गए । उ० १. वस-
रथपुर छवि आपनी सुरनगर लजाए । (गी० ११६)
लजात-लजाता है, शर्मिंदा होता है । उ० जिन्हू लागि
निज परलोक विगर्थो ते लजात होत ठढ़ ठायँ । (वि०
८३) लजान-लजा गया, शर्मा गया । उ० विधि बस बलउ
लजान । (जा० ६७) लजाना-लजा गया । लजानि-लजा
गई, शर्मा गई । लजानी-दे० 'लजानि' । लजाने-लज्जित
हुए । उ० ब्रज को विरह, अरु संग महर को, कुबेरिहि
बरत न नेकु लजाने । (कृ० ३८) लजायो-१. लज्जित
किया, २. लज्जित हुआ । लजावै-१. लज्जित करे, २.
लज्जित हो । लजाहि-लज्जित होता । उ० ताको कहाय
कहै तुलसी तू लजाहि न माँगत कूकुर कौरहि । (क०
७।२६) लजाहीं-लजाते हैं, लज्जित होते हैं । उ० देखि
दसा मुनिराज लजाहीं । (मा० २।३२६।२) लजै-लज्जित
होता है । उ० तदपि अधम विचरत तोहि मारग कबहूँ न
मूढ़ लजै । (वि० ८६)

लजारू-दे० 'लजालू' । उ० २. जनक-बचन छुए विरया
लजारू के से । (गी० १।८२)

लजालू-(सं० लज्जालु)-१. शर्माला, लजानेवाला, २.
लज्जावती धास, लजानेवाला पौदा ।
लजावनिहारे-लजानेवाला, लज्जित करनेवाले । उ० कोटि
मनोज लजावनिहारे । (मा० २।११७।१)

लज्जा-(सं०)-शर्मा, लाज ।
लज्जित-(सं०)-लज्जायुक्त, शर्मिंदा ।

लट (१)-(सं० लड)-डुबला होकर, कमज़ोर होकर । उ०
तौ सहि निपट निरादर निसिदिन रटि लट ऐसो घटि को
तो । (वि० १६१)

लट (२)-(सं० लट्वा)-केशपाश, लट्टरी, सर के उलभे
बालों का समूह । उ० त्रिविध भाँति को सबद बर विघट
न लट परमान । (सं० ३२२) लटै-लट का बहुवचन, बालों
के उलभे गुच्छे । उ० घुँघुआरी लटै लटकै मुख ऊपर, कुंडल
लोल कपोलन की । (क० १।५)

लट (३)-(सं० लट लकार)-आजकल, वर्तमान समय में ।
उ० तुलसी लट पद तें भटक अटक अपि तु नहिँ ज्ञान ।
(सं० ३७६)

लटकन-(सं० लडन)-१. मस्तक पर पहनने का गहना जिसे
झूमर कहते हैं । २. अन्य कोई भी गहना जो लटकाकर
पहना जाता हो, ३. लटकना, लटकने की क्रिया । उ० १.
गञ्जुआरी अलकावली लसै, लटकन ललित ललाट । (गी०
१।१६) ३. मेढ़ी लटकन मनि कनक-रचित, बाल-भूषण
बनाइ आछे अंग अंग ठए हैं । (गी० १।११)

लटकै-(सं० लडन)-लटकती हैं । उ० दे० 'लटै' ।

लटत-(सं० लड)-१. लखचाता है, २. लटता है, दुबल
होता है, ३. हिम्मत हारता है, झुक जाता है, ४. मुर-
झाता है, ५. आसक्त होता है, रत होता है, ६. मरता है ।
उ० १. परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटत ।
(वि० १२६) ३. मकँट बिकट भट छुटत कटत न लटत
तन जर्जर-भए । (मा० ६।४६।छं० १) लटा-१. दुबल,
निबल, अशक्त, असमर्थ, २. लट गया, दुबल हो गया ।

लटि-१. लटकर, थककर, २. दुबल होकर, ३. लटा हुआ,
थका, हैरान । उ० १. श्री रघुबीर निवारिए पीर, रहौं
दरबार परो लटि लूलो । (ह० ३६) लटी-१. थक गई,
हैरान हो गई, २. दुबल, कमज़ोर, ३. बुरी या झूठी बात
उ० १. रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि मे अंग । (दो०
२८०) लटे-१. पतित, नीचे गिरे, २. दुबल, शिथिल ।
उ० १. लटे लटपटेनि को कौन परि गहैगो ? (वि० २५६)
लट्यो-१. फँसा हुआ, सना हुआ, २. दुबल, कमज़ोर ।
उ० १. कत विमोह लट्यो फट्यो गगन मगन सियत ।
(वि० १३२)

लटपटा-(सं० लट + पट) १. गिरता पड़ता, लड़खड़ाता हुआ,
२. ढीला, जो चुस्त हो, ३. जीर्ण-शीर्ण, टूटा-फूटा, ४.
अस्त-व्यस्त, अड-बंड, ५. अशक्त, बेबस ।

लटू-(सं० लडन)-मुग्ध, मोहित, आसक्त । उ० जा सुख
की लालसा लटू सिध, सुक सनकादि उदासी । (गी० १।८)
लटूरी-(सं० लट्वा)-छोटे छोटे बालों की उलभनी लटें ।
उ० लटकन लसत ललाट लटूरी । (गी० १।२८)

लडकाई-(?)-लडकपन, बचपन ।

लडाइ-(सं० लालन, लाड)-लाडकर, प्यार कर । प्रमुदित
महा मुनिबृंद बंदे पूजि प्रेम लडाइ कै । (मा० १।३२६।
छं० १)

लडाई-(सं० रणन)-युद्ध, संग्राम, संगर ।

लड़ी-(सं० यष्टि, प्रा० लष्टि)-पंक्ति, माला ।

लत-(सं० रति)-आदत, बान, टेव ।

लता-(सं०)-१. बेलि, लतर, बल्ली, २. सुंदर स्त्री ।
उ० १. श्रीफल कुच कंचुकि लताजाल । (वि० १४)

लताभवन-लताओं का भवन, कुंज, लतामंडप । उ० लता-
भवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दीउ भाइ । (मा० १।२३२)

लतिका-(सं०)-छोटी और कोमल लता ।

लतिया-(सं० रति)-बुरी चाल का, कुचाली ।

लत्ता-(सं० लक्तक)-फटा पुराना कपड़ा, चिथड़ा ।

लपक-(अनु० लप)-१. ज्वाला, लपट, लौ, २. प्रकाश, ३.
शोभा, आभा ।

लपट-(?)-१. आग की लौ, ज्वाला, २. गंध, महक । उ०
१. रूपट लपट भरै भवन भँडारही । (क० १।२३) लपटै-
१. ज्वालाएँ, अग्निशिखाएँ, २. गंध, महक । उ० १. चार
खुवा चहुँ ओर चलै, लपटै रूपटै सो तमीचर तौकी ।
(क० ७।१४३)

लपटाइ-१. लिपटकर, २. लपेटे हुए । लपटाई-१. लिपट
जाता है, लिपटता है, २. लपटाकर, ३. लपटता, लप-
टती । उ० १. जनम जनम अभ्यास-निरत चित अधिक
अधिक लपटाई । (वि० ८२) लपटानि-लिपटी हुई, सनी
हुई । उ० परमारथ-पहिचानि-मति लसति विषय लप-
टानि । (दो० २५३) लपटाने-१. लपेटे हुए, २. लिपट
गए । लपटावहिं-१. लिपटाते हैं, २. लपेटे रहते हैं, लप-
टाए रहते हैं । उ० २. भाँग धतूर अहार, छार लपटावहिं ।
(पा० ५७)

लपत-(अनु० लप)-लपकते हैं, लेना चाहते हैं । उ०
साधन बिनु सिद्धि सकल विकल लोग लपत । (वि० १३०)
लपेट-(सं० लिस) १. लपेटने की क्रिया या भाव, २. बंधन

का चक्कर, ३. घुमाव, फेर, ४. घेरा, ५. उलझन, जाल ।
 लपेटनि-लपेटों में । उ० बानर भालु चपेट चपेटनि मारत
 तब हैहै पछितायो । (गी० ६।४)
 लपेटन-(सं० लिप्त)-१. लपेटनेवाली वस्तु, बेटन,
 वेष्टन, २. उलझनेवाली वस्तु, ३. एक घास जो लिपट
 जाती है । ४. झरबेरी, या करील आदि लपटनेवाले पौदे ।
 उ० ३. काँट कुरायँ लपेटन लोटन ठाँवहिँ ठाँउँ बभाऊ रे !
 (वि० १८६)
 लपेटि-१. लपेटकर, लिपटाकर, २. लपेट में । उ० १. लौकी
 लूम लसत लपेटि पटकत भट । (क० ६।४०) २. लेई लपेटि
 लवा जिमि बाजू । (मा० २।२३०।३) लपेटे-१. लपेटा,
 लपेट लिया, २. लपेटे हुए । उ० २. सुनि केवट के बैन
 प्रेम लपेटे अटपटे । (बा० २।१००)
 लवार-(सं० लपन)-फूटा, मिथ्यावादी, गप्पी । उ०
 साँचेहु में लवार भुज बीहा । (मा० ६।३४।४)
 लवारा-दे० 'लवार' ।
 लवार-दे० 'लवार' । उ० लोकरीति-लायक न, लंगर
 लवार है । (क० ७।६७)
 लवेद-(वेद के अनु०)-वेद के विरुद्ध, अवैदिक । उ० साम
 दान भेद विधि, वेदहु लवेद सिद्धि । (ह० २८)
 लवध-(सं०)-प्राप्त, उपार्जित ।
 लविध-(सं०)-प्राप्त, लाभ हाथ में आना ।
 लभ्य-(सं०)-प्राप्त, प्राप्ति के योग्य ।
 लय-(सं०)-१. लगन, प्रेम, २. स्वर-ताल युक्त ध्वनि, ३.
 चित्त की वृत्तियों को किसी एक चीज़ पर लगाना, एका-
 अता, ४. विनाश, प्रलय, ५. लीन, लवलीन । उ० १.
 साधक नाम जपहिँ लय लायँ । (मा० १।२।२) ४.
 भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई । (मा० ३।२८२)
 लयऊ-(सं० लभन)-१. लगा, २. लिया । उ० १. आपन
 नाम कहत तब लयऊ । (मा० १।१६३।४) लये-लिया ।
 लयो-लिया, ग्रहण किया, काटकर लिया । उ० तेरे राज
 राय दूसरथ के लयो । (वि० १६१) लयौ-१. पाया है,
 लिया है, २. रखा है ।
 लयकारी-(सं० लयकारिन्)-लय या प्रलय करनेवाला ।
 लयलीन-(सं० लय + लीन) निमग्न, पूर्णतः लीन । उ० प्रभु
 मनसहिँ लयलीन मनु चलत बाजि छुबि पाव । (मा० १।
 ३।१६)
 लरखरनि-(?)-लड़खड़ाना, डगमगाना । उ० बसति तुलसी-
 हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि । (गी० १।२४) लर-
 खरे-लड़खड़ाए, लड़खड़ाकर गिरे । उ० गजेउ सो गजेउ
 घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे । (जा० १।१७)
 लरत-(सं० रणन)-लड़ते हुए । उ० कोउ न हमारें कटक अस
 तो सन लरत जो सोह । (मा० ६।२३ ख) लरन-लड़ना ।
 उ० तेरी सौँ करौँ ताकी टेव लरन की । (क० ८)
 लरनि-लड़ाई, लड़ना । उ० देखौ देखौ लरन लरनि हनु-
 मान की । (क० ६।४०) लरहिँ-लड़ते हैं, २. लड़ें ।
 उ० २. लरहिँ सुखेन कालु किन होऊ । (मा० १।२८४।
 १) लरही-दे० 'लरहिँ' । लरि-लड़कर । उ० देखहिँ
 परसपर रामकरि संग्राम रिपुदल लरि मरयो । (मा०
 ३।२०।छं० ४) लरिबे-लड़ने, लड़ाई करने । लरौँ-लड़ता

हूँ, तकरार करता हूँ । उ० जल सीकर सम सुनत
 लरौँ । (वि० १४१)
 लराई-(सं० रणन)-युद्ध, लड़ाई । उ० हारे सुर करि
 बिबिध लराई । (मा० १।८२।४)
 लरिकाई(?)-लड़कपन । उ० कैधों कुल को प्रभाव
 कैधों लरिकाई है ? (गी० १।८२)
 लरिकनी-(?)-लड़की । उ० बधु लरिकनी पर धर
 आई । (मा० १।३५।४) लरिकनी-बच्ची, लड़की ।
 लरिकन्ह-१. लड़कों पर, ३. लड़कों ने । उ० १. करब
 सदा लरिकन्ह पर छोडू । (मा० १।३६०।४) २. बात
 असि लरिकन्ह कही । (मा० १।३५।छं० १)
 लरिकपन-लड़कपन । उ० खेलत खात लरिकपन गोचलि ।
 (वि० २३४)
 लरिकवनि-लड़कों से । उ० कहँ सिवचाप लरिकवनि बूरुत ।
 (गी० १।६०)
 लरिका-१. लड़के को, २. लड़के से ।
 लरिका-(?)-लड़का । उ० या ब्रज में लरिका घने हौँही
 अन्याई । (कृ० ८) लरिके-बाल कही, लड़का ही । लरिको-
 लड़के भी । उ० जाके जिए मुए सोच करिहँ न लरिको ।
 (ह० ४२)
 लरिकाइय-लड़कपन ही । उ० जौ बर लागि करहु तपु तौ
 लरिकाइय । (पा० ५१) लरिकाई-लड़कपन में ।
 लरिकाई-लड़कपन । उ० लरिकाई बीती अचेत चित ।
 (वि० ८३)
 लरिकिनी-दे० 'लरिकनी' ।
 ललक-(सं० ललन)-प्रबल अभिलाषा, इच्छा । उ० ऐसेहु
 लाभ न ललक जो तुलसी नित हित हानि । (दो० १७)
 ललकत-(सं० ललता)-लालयित होते हैं ललचाते हैं ।
 उ० ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरौ सुनाज की । (क०
 ६।३०) ललकि-लालच में पड़कर, लालायित होकर,
 दौड़कर । उ० सुत ललाम लालहु ललित लेहु ललकि फल
 चारि । (प्र० ४।४।३)
 ललचानी-(सं० लालसा)-लालच की, लोभे । उ० राम
 प्रसाद-माल जँठनि लागि त्योँ न ललकि ललचानी । (वि०
 १७०) ललचाने-लालच किए । ललचायो-लालच किया ।
 उ० नाथ हाथ कछु नाहिँ लग्यो लालच ललचायो ।
 (वि० २७६)
 ललन-(सं०)-१. प्यारा, २. बच्चा, प्यारा पुत्र, ३. कौतुक,
 तमाशा । उ० २. ललन लोने लेहआ बलि मैया । (गी०
 १।१७) ३. बार बार भरि अंक गोद बै ललन कौन सों
 करिहँ । (गी० २।४)
 ललना-(सं०)-१. स्त्री, सुंदर स्त्री, २. बच्चा । उ० १.
 छुबि ललनागन मध्य जनु सुपमा तिय कमनीय । (मा०
 १।३२३) २. मातु दुलारहिँ कहि प्रिय ललना । (मा०
 १।१६८।४)
 लला-(सं० लालक)-प्यार से बालक आदि के लिए संबो-
 धन, दुलारा, प्यारा । उ० रामलला कर नहछू गाह सुना-
 इय हो । (रा० १)
 ललाइ-(सं० लालसा)-ललचाकर, तरस-तरस कर । उ०
 लटि लालची ललाइ कै । (गी० ५।२८) ललाई (?)-लल-

चाता था। उ० नीच निरादर भाजन कादर कृकर दूकन
लागि ललाई। (क० ७।२७) ललात-१. तरसता, सिंहकता,
ललकता, ललचाता, २. प्रेमकरता है, ३. ललचानेवाला।
उ० १. कूस गात ललात जो रोटिन को। (क० ७।४६)
ललाई (२)-(सं० लाल)-लाली, सुखी।
ललाट-(सं०)-भाल, कपाल। उ० ससि ललाट सुंदर
सिर गंगा। (मा० १।६२।२)
ललाम-(सं०)-१. सुंदर, अच्छा, २. भूषण, ३. रत्न।
उ० राम नाम ललित ललाम कियो लाखनि को। (क०
७।६८) ललामो-ललाम को भी, रत्न को भी। उ० उलटे
पुखटे नाम महातम गुंजनि जितो ललामो। (वि० २२८)
ललामा-दे० 'ललाम'। उ० २. परम सुंदरी नारि ललामा।
(मा० १।१७६।१)
ललित-(सं०)-१. सुंदर, अच्छा, मनोहर, २. बंचल, हिलता
डोलता, ३. कोमल, ४. विरवास, ६. रागिनी विशेष, ६.
एक नृत्य। उ० १. ललित लल्लाट पर राज रजनीश कल।
(वि० ११)
ललितार्थ-शोभा, सुंदरता। उ० दृच्छभाग अनुराग सहित
इंदिरा अधिक ललितार्थ। (वि० ६२)
लली-(सं० लालक)-बालिका, लडकी।
लल्लाट-दे० 'ललाट'। उ० दे० 'ललित'।
लव-(सं०)-१. थोड़ा, रंच, २. समय का अत्यंत थोड़ा
भाग, ३. राम का बड़ा पुत्र। उ० २. लव निमेष परमात्र
जुग बरष कल्प सर चंड। (मा० ६।१। दो० १)
लवण-(सं०)-१. नमक, २. लवणासुर नाम का राक्षस
जिसे शत्रुघ्न ने मारा था। उ० जयति लवणासुरनिधि
कुंभसंभव। (वि० ४०)
लवन-दे० 'लवण'। उ० अस कहि लवन सिधु तट जाई।
(मा० ४।२६।२)
लवनि-(१)-(सं० लवन)-पके खेत की कटाई की मजदूरी
जो फसल (बोझ) रूप में ही दी जाती है। उ० रूप-
रासि बिरची बिरचि मनो, सिला लवनि रति-काम
लही री। (गी० १।१०४)
लवनि (२)-(सं० लवण)-सुंदरता।
लवलीन-(सं० लय + लीन)-लीन, व्यस्त, शर्ल।
लवलेश-(सं०)-लेशमात्र, अत्यल्प।
लवलेशा-दे० 'लवलेश'। उ० नहि तहँ मोह निसा लव-
लेशा। (मा० १।११६।३)
लवा-(सं० लाजा)-बटेर नाम का पत्नी। उ० लवा ज्यौं
लुकात तुलसी रूपे बाल के। (क० ६।६)
लवाई-(सं० लभन)-लिवाकर, लेकर। उ० चले लवाई
समेत समाजहि। (मा० २।२७५।४)
लवाई (?) -हाल की ब्याई हुई गाय। उ० निरखि बच्छ
जसु घेनु लवाई। (मा० ७।६।२)
लवै-(सं० लवन)-काटे, लुने। उ० पाप पुन्य द्वै बीज है
बवै सो लवै निदान। (वि० ५)
लवन-दे० 'लक्ष्मण'। उ० सिय लखु भगिनि लवन कहँ
रूप-उजागरि। (जा० १७३) लवनिहि-लक्ष्मण को।
लवनु-दे० 'लवन'।
लवही-(सं० लवण) देखते हैं। लविही-१. देखूंगा, २. देखकर।

लसंत-(सं० लसन)-बिराजमान है। लस-शोभा देता है।
उ० लस मसि बिहु बदन बिधु नीको। (गी० १।२१)
लसई-शोभा देता है। उ० जनु सधु मदन मध्य रति
लसई। (मा० २।१२३।२) लसत-शोभा देता है, शोभित
है। उ० तड़ित गर्भांग सर्वांग सुंदर लसत। (वि० १५)
लसति-सोहती है, फबती है। उ० लसति हृदय नख खनी।
(गी० ७।१५) लससि-तू शोभायमान होती है। उ० ईससीस
ससि त्रिपथ लससि नभ-पताल-धरनि। (वि० २७) लसहि-
शोभा देते हैं। उ० कहत वचत रद लसहि दमक जनु
दामिनि। (जा० ८०) लसा-शोभित हुई, चमकी। उ०
मानों लसी तुलसी हनुमान हिये जग जीति जराय की
चौकी। (क० ७।१४३) लसै-सुशोभित हैं, शोभा देता
है। उ० स्रम-सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महातम
तारक मै। (क० २।१३) लस्यो-शोभित हुआ। उ०
कागर-कीर ज्यौं भूषन चीर सरिरीर लस्यो तजि नीर ज्यौं
काई। (क० २।२) लस्यो-दे० 'लस्यो'।
लसत-दे० 'लसत'। उ० लसतु भाल बालेंहुकंठे भुजंगा।
(मा० ७।१०८।३)
लसम-(?)-खोटा, दूषित। उ० लसम के लसम तुही पै
दसरथ के। (क० ७।२४)
लसित-शोभित। उ०. कनक-चुनिन सों लसित नहरनी
लिये कर हो। (रा० १०)
लह-(सं० लब्ध)-१. प्राप्त, लब्ध, २. पाता। उ० २.
रामकृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिखाम। (दो० १३३)
लहई-प्राप्त करता है, पाता है। उ० सादर जासु सहइ
नित नासा। (मा० २।१२६।१) लहई-प्राप्त करता है,
पाता है। लहई-प्राप्त करता हूँ। उ० सिसु लीला बिलोकि
सुख लहई। (मा० ७।११४।७) लहत-पाता है। उ०
सकल बड़ाई सब कहाँ तें हलत ? (वि० २५६)
लहतो-पाता, प्राप्त करता। उ० चहतो जो जोई
जोई लहतो सो सोई सोई। (वि० २४६) लहब-
पावंगे। उ० सो फलु तुरंत लहब सब काहूँ। (मा०
१।६३।१) लहहि-पाते हैं। उ० लहहि सकल सोभा
अधिकार्थ। (मा० १।११।१) लहहि-१. पाता है, २.
पाया। लहई-१. पाते हैं, २. पावंगे। लहा-पाया,
प्राप्त किया। उ० झूठो है झूठो है झूठो सदा
जग संत कहंत जे अंत लहा है। (क० ७।३६) लहि-
पाकर। उ० नैन लाहु लहि जनम सफल करि लेखहि।
(जा० २१०) लहिअ-मिलता, पाया जाता। उ० लहिअ
न कोटि जोग जप साधें। (मा० १।७०।४) लहिबो-
पाना, पाओगी। उ० सानुज सेन समेत स्वामिपद निरखि
परम सुद मंगल लहिबो। (गी० ५।१४) लहिय-मिलता,
पाया जाता है। उ० सुख कि लहिय हरि भगति बिनु ?
(दो० १३७) लहिहँ-पावंगे। उ० फल लोचन आपन
तौ लहिहँ। (मा० २।२३) लहिहँ-पाऊँगा। लही-
पाई, प्राप्त की। उ० ऋषि नारि उचारि कियो सठ
केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही। (क० ७।१०) लहे-
प्राप्त किए। उ० कहू कहू लहे फल रसाल बबुर-बीज
बयत। (वि० १३०) लहेउँ-मैंने पाई, पाया। उ०
तुम्हरी कृपा लहेउँ विखामा। (मा० ७।११५।४) लहेउ-

पाया, प्रास किया। उ० नारि बिरह दुख लहेउ अपारा। (मा० ११४६४) लहेऊ-दे० 'लहेउ'। लहै-१. पावें, प्रास करें, २. प्रास करते हैं, पाते हैं। उ० २. जाके बिलोक्त लोकप होत बिसोक लहै सुर लोग सुठैरहि। (क० ७। २६) लहै-पावे, प्रास करे, प्रास करता है। उ० जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै। (मा० ११९२। छं० ३) लहो-पाया, प्रास किया। उ० नाहिनै काहु लहो सुख प्रीति करि इक अंग। (क० ५४) लहौ-पाऊँ, प्रास करूँ। लहौंगो-प्रास करूँगा। उ० बारि तिहारो निहारि मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो। (क० ७। १४७) लह्यो-पाया, प्रास किया। उ० हौ तो बलि जाउँ राम नाम ही ते लह्यो हौ। (वि० २६०)

लहकौरि-(सं० लाभ + कवल)-विवाह की एकरीति जिसमें दूल्हा और दुल्हिन एक दूसरे के मुँह में कौर डालते हैं। उ० लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहै। (मा० १। ३२७। छं० २)

लहर-(सं० लहरी)-तरंग, हिलोरा।

लहरि-दे० 'लहर'। उ० दुखद लहरि कुतक बहु ब्राता। (मा० ७। ६३। ३)

लहरी-मनमौजी, मस्त।

लहलहात-(अनु०)-१. लहलहाते हुए, २. लहलहाता है। उ० १. राम मारगन गन चले लहलहात जनु क्याल। (मा० ६। ६१) लहलहे-सरसता से भरे। उ० लहलहे लोयन सनेह सरसई है। (गी० १। ६४)

लहालहे-(अनु०)-हरे भरे। उ० देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे। (जा० १। १८)

लांगल-(सं०)-खेत जोतने का हल।

लांगूल-(सं०)-पूँछ।

लाँधि-(सं० लंघन)-लाँघकर, कूदकर। उ० जलधि लाँधि दहि लंक प्रबल बल। (वि० ३२) लाँघे-कूदे, पार हुए।

लाँछन-(सं०)-१. कलंक, दोष, २. निशान, चिह्न। उ० २. आज श्रीबत्स-लाँछन, उदारम्। (वि० ६१)

ला-(सं० लभन ?)-ले आ। लाइ-१. लगा, लगा दे, २. लगाकर, लगा, ३. ले आकर। उ० २. राम कुचरचा करहि सब सीतहि लाइ कलंक। (प्र० ६। ६४) लाइए-लगा दीजिये। उ० सकल गिरिन दव लाइए बिनु रधि राति न जाइ। (दो० ३। ८६) लाइय-१. लाइए, २. लगाइए। लाइयत-लगाते हैं। उ० बलुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत। (क० ७। ६६) लाइयो-लगाया, लगा लिया। उ० सब भौति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो। (मा० ६। १२१। छं० २) लाइहउ-दे० 'लाइहौ'। लाइहौ-१. लगाऊँगा, २. लाऊँगा। उ० १. कृपानिकेत पद मन लाइहौ। (मा० ३। २६। छं० १) लाई (१)-१. ले आई, २. लगा दी, ३. डाल दी, ४. लगाकर। उ० ३. कान्ह ठगौरी लाई। (क० ८) ४. राखेउ प्रान जान किहि लाई। (मा० २। ६१) लाउब-लावेंगे। उ० तिन निज ओर न लाउब भोरा। (मा० १। ११) लाएँ-लाकर, लगाकर। उ० चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। (मा० १। ११। ७। २) लाय (१)-१. लाकर, लगाकर। लायउ-

लगाया। उ० मुनि मनसहु ते अगम तपहि लायउ मनु। (पा० ३। ८) लाया-१. ले आया, २. लगाया। लाये-१. लगाए, २. ले आए, ३. पकड़े हुए। उ० १. तरु जे जानकी लाये ज्याये हरि करि कपि। (गी० ३। ६) २. कौसल्या कल कनक अजिर महे सिखवति चलन अँगुरियाँ लाये। (गी० १। २६) लायो-१. लगाया हुआ, २. लगा रखा है। उ० २. भजहि न अजहुँ समुक्ति तुलसी तेहि जेहि महेस मन लायो। (वि० २००) लावती-लगाती है, मिलाती है। उ० चंद की किरन पीवें पलकें न लावती। (क० १। १३) लावहि-लगाते हैं, लाते हैं। उ० रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहि। (मा० २। २३। २) लावहि-१. लाता है, २. ला। उ० २. बाद-बिबाद-स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि। (वि० २। ३७) लावहु-लाओ, लगाओ। उ० गहरु जनि लावहु। (जा० ३। २) लावा (१)-लाया।

लाई (२)-(सं० लगन)-लिए, वास्ते।

लाक (१)-(सं० लंक)-कमर, कटि।

लाक (२)-(?)-भूसा।

लाकरी-(सं० लागुड)-लकड़ी। उ० पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी। (क० ४६)

लाख (१)-(सं० लख)-सौ हजार। उ० आकर चारि लाख चौरासी। (मा० १। ८। १) लाखन-लाखों, बहुतेरों, बहुत। उ० १. हने भट लाखन लखन जातुधान के। (क० ६। ४८) लाखनि-लाखों। उ० राम नाम ललित ललाम कियो लाखनि को। (क० ७। ६८)

लाख (२)-(सं०)-लाह, लाही।

लाग-(सं० लगन)-१. प्यार, २. बैर, ३. मेल, ४. लगा, लगे, संयुक्त हो, ५. होड़, चढ़ाउपरी, ६. तक, ७. लिए। उ० ४. सचिव बोलि सठ लाग बचावन। (मा० २। ६। २) लागइ-१. लगता है, २. लगे। लागई-दे० 'लागइ'। लागउ-लगता हूँ। उ० बार बार पद लागउ बिनय करउँ दससीस। (मा० २। ३। ६ क) लागत-लगता है। उ० असुरन कह लखि लागत जग अधियार। (ब० ३। ६) लागति-लगती है। लागहि-लगती है। लागहि-लगता है। लागहीं-१. लगती हैं, लगते हैं, २. लगते थे। उ० २. संधानि धनु सर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उडि लागहीं। (मा० ६। ८। २। छं० १) लागहु-१. लागो, लगे, २. लगा। लागी-लगा। उ० भलेउ कहत दुख रउरेहि लागी। (मा० २। १। १) लागि-दे० 'लागी'। उ० ४. लखु लागि बिधि की निपुनता। (१) ७. बौरे बरहि लागि तप कीन्हा। (मा० १। ६। ७। १) लागिअ-लगा जाय, आक्रमण किया जाय। उ० केहि बिधि लागिअ करहु विचारा। (मा० ६। ३। १) लागिहि-१. लगा, २. लगेगा। उ० २. नहि लागिहि कछु हाथ तुम्हारें। (मा० २। ६। ३) लागी-क. लाग का स्त्रीलिंग, दे० 'लाग', ख. विरोधी। उ० क. ४. जमुना ज्यों ज्यों लागी बादन। (वि० २। १) क. ७. जनमत जगत जननि दुख लागी। (मा० ७। १। ६। २) लागु-१. लग जा, २. लग गया। उ० १. जो जिय चहसि परम सुख तो यहि मारग लागु। (वि० २। ३) २. जेहि अनुराग लागु चितु सोइ हितु आपन।

(पा० ३७) लागे-१. लगे, २. लगे हुए, ३. लगने पर, ४. लगने से, ५. वास्ते, लिए। उ० १. बोली सुमंत्रु कहन अस लागे। (मा० २।८१३) लागेउ-१. लगे, २. लगा, ३. लगने से। लागेउ-दे० 'लागे'। लागेसि-१. लगा, २. लगा है, उ० १. लागेसि अधम पचारै मोही। (मा० ६।७४३) २. लागेसि अधम सिखावन मोही। (मा० १।२४।२) लागेहु-लगने से ही। उ० तुलसिदास बड़े भाग मन लागेहु तें सब सुख पूरति। (क० २८) लागै-लगे, लगता है। उ० जौ पाँचहि मत लागै नीका। (मा० २।१।२) लागयो-लगा, लगा है। उ० तनु-तड़ाग बल बारि सूखन लाग्यो परी कुरुपता काई। (क० २६)

लागू-१. आधार, सहारा, २. शत्रुता, दुश्मनी, ३. पीछे चलनेवाला। उ० १. राम सखा कर दीन्हें लागू। (मा० २।२१६।२)

लाघव-फुरती से। उ० अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा। (मा० १।२६१।३) लाघव-(सं०)-१. लघुता, हलकापन, २. फुर्ती, शीघ्रता, ३. पटुता, सफाई।

लाघौ-दे० 'लाघव'। उ० ३. धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ बान के। (क० ६।४८)

लाज-(सं० लज्जा)-१. शर्म, लज्जा, २. इज्जत, मर्यादा। उ० १. लाज गाज उनवनि कुचाल कलि। (क० ६१)

लाजत-लज्जित होता, शर्माता है। उ० अच्छे मुनि बेध धरे लाजत अनंग हैं। (क० २।१५) लाजहिं-लज्जित होते हैं। उ० लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम। (मा० १।१४६) लाजि-लज्जित होकर। उ० तुलसी ज्यों रवि के उदय, तुरत जात तम लाजि। (वै० ६१) लाजे-लज्जित हुए, शर्मिंदा हुए। उ० गनि बिलोकु खगनायक लाजे। (मा० १।३१६।४) लाजवंत-लज्जाशील। उ० लाजवंत तव सहज सुभाऊ। (मा० ६।२६।३)

लाजा (१)-दे० 'लाज'। उ० रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा। (मा० ६।२८।४)

लाजा (२)-(सं०)-धान का लावा, खील। उ० अच्युत अंकुर राजत लाजा। (मा० १।३४६।३)

लाठी-(?)-वह अवस्था जिसमें गर्मी थकावट या बीमारी आदि से मुँह का थूक तथा होंठ आदि सूख जाते हैं। उ० सूखाहिं अघर लागि मुँह लाठी। (मा० २।१४५।२)

लाड़-(सं० लालन)-प्यार, दुलार।

लाड़िले-(सं० लालन)-दुलारा, दुलरुवा। उ० लाल लाड़िले लखन हितु हौ जन के। (वि० ३७)

लाड़ू-(सं० लडक)-लड्डू, मोदक। उ० सुख के निधान पाए हिय के निधान लाए ठा के से लाड़ू खाए प्रेम मधु झाके हैं। (गी० १।६२)

लात-(?)-पैर, पद, गोड़। उ० लंकिनी ज्यों लात घात ही मरोरि मारिए। (ह० २३) लातन्ह-लातों, लातों से। लातनिह-लातों से। उ० लातनिह हति हति चले पराई। (मा० ६।७६।२)

लाता-दे० 'लात'। उ० ताहि इदय महुँ मारेसि लाता। (मा० ६।४३।४)

लाभ-(सं०)-नफा, फायदा, मुनाफा। उ० जो विचारि व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान। (दो० ४७१)

लाभु-दे० 'लाभ'। उ० हानि लाभु जीवतु मरनु जसु अप-जसु विधि हाथ। (मा० २।१७१)

लामी-(सं० लंब)-लंबी, बड़ी। उ० तुलसी की बाँह पर लामी लूम फेरिए। (ह० ३४)

लाय (२)-(सं० अलात)-जलाकर। उ० गोपद पयोधि करि, होलिका ज्यों लाय लंक निपट निसंक पर पुर गल-बल भो। (ह० ६)

लायक-(अ० लायक)-योग्य, समर्थ। उ० सेवक-सुख-दायक, सबल सब लायक। (वि० ३७)

लाल (१)-(सं० लालक)-१. दुलारा, प्यारा, २. पुत्र, बेटा, प्यारा बालक। उ० १. लाल लाड़िले लखन हित हौ जन के। (वि० ३७)

लाल (२)-(सं०)-१. एक रत्न, २. रक्तवर्ण, सुर्ख। उ० २. कल कदलि जंघ पद कमल लाल। (वि० १४)

लालच-(सं० लालजा)-लोभ, वृष्णा। उ० नाथ हाथ कहु नाहिं लख्यो लालच ललचायो। (वि० २७६)

लालचिन-लालच करनेवालों को। उ० रतिन के लालचिन प्रापति मनक की। (क० ७।२०) लालची-(सं० लालसा) लोभी, वृष्णा वाला। उ० तिन्ह की मति रिस राग मोह मद लोभ लालची लीलि लई है। (वि० १३६)

लालत-(सं० लालन)-प्यार करता है, दुलारता है। उ० लाल कमल जनु लालत बाल मनोजनि। (जा० ७१)

लालन-१. बच्चा, प्यारा, २. पालन करना, पोषण। उ० २. लालन जोग लखन लयु लोने। (मा० २।२००।१)

लालहीं-प्यार करते हैं, रचा करते हैं। उ० पितु मातु प्रिय परिवार हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं। (पा० ६)

लालि-लालन करके, प्यार करके। उ० कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह। (क० ७।११६) लाली (१)-लाजा, प्यार किया, पालन किया, रचा की। उ० कल्पबेलि जिमि बहु विधि लाली। (मा० २।६६।२) लाले-लालन किया, पाला, प्यार किया। उ० लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी। (वि० २६३)

लालसा-(सं०)-प्रबल इच्छा, मनोरथ। उ० एक लालसा बदि उर माहीं। (मा० १।१४६।२)

लाला-(सं० लाल)-लाल, अरुण। उ० नील सघन पल्लव फल लाला। (मा० २।२३७।२)

लालित-दुलारा, प्यारा, प्यार किया या पाला हुआ। उ० जनक सुता कर पल्लव लालित विपुल बिलास। (गी० ७। २१)

लालित्य-(सं०)-सुन्दरता, मनोहरता।

लाली (२)-सुर्खी, अरुणिमा।

लावक-(सं०)-लवा पत्नी। उ० तीतर लावक पदचर जूथा। (मा० ३।३८।४)

लावय्य-(सं०)-सुन्दरता। उ० अखिल लावय्य गृह। (वि० ५०)

लावय्यता-(सं०)-सुन्दरता।

लावनिता-सुन्दरता; लावय्य। उ० तुलसी तेहि औसर लाव-निता दस, चारि नौ, तीनि इकीस सबै। (क० १।७)

लावन्य-दे० 'लावन्य' । उ० नीलकंठ लावन्य निधि सोह बाल बिभु भाल । (मा० १११०६)
 लावा (२)-(सं०)-लवा नाम का पत्नी, बटेर । उ० जनु सचान बन रूपटेड लावा । (मा० २१२६३)
 लावा (३)-(सं० लाजा)-खील, लावा विवाह की एक रीति में भी काम आता है । कहीं-कहीं उस रीति को भी 'लावा' कहते हैं । उ० सिंदुर बंदन होय लावा होन लागीं भाँवरी । (जा० १६२)
 लासा-(सं० लस)-एक चिपकनेवाली वस्तु, गोंद । उ० नाम-लगी लाह, लासा-ललित-बचन कहि । (वि० २०८)
 लाह (१)-(सं० लाचा)-पेड़ों की लाख, गोंद । उ० जाकी आँच अबहूँ लसत लक लाह सी । (क० ६१३३)
 लाह (२)-(सं० लाभ)-लाभ, प्राप्ति, फायदा ।
 लाहु-दे० 'लाह (२)' । उ० सुवन लाहु उछाहु दिन-दिन । (गी० ७३२)
 लाहु-दे० 'लाहु' । उ० मुदित भए लाहि लोयन लाहु । (मा० २११०८५)
 लिंग-(सं०)-१. पुरुष का चिह्न, २. शिवलिंग । उ० २. ज्योति रूप लिंग लई, अननित लिंग भई । (क० ७१८२)
 २. लिंग थापि करि विधिवत पूजा । (मा० ६१२३)
 लिए (१)-(सं० लभन)-लिए हुए, साथ लेकर । उ० ने जनवासहि कौसिक राम लभन लिए । (जा० १३६) लिय (१)-१. लिया, ग्रहण किया, २. लगाया । लिया-१. ले लिया, ग्रहण किया, २. कहा । उ० २. खायो खोंची माँगी में तेरो नाम लिया रे । (वि० ३३) लिये (१)-१. लेने पर, ले लेने पर, २. लिया । उ० १. लिये लाय मन साथ । (मा० २१११८) लियो-लिया, प्राप्त किया । उ० लियो सकल सुख हरि अंग संग को । (क० २५) लिहे-लिये, लिये हुए । उ० दरजिन गोरे गात लिहे कर जोरा हो । (रा० ६) ली-'लिया' की स्त्रीलिंग । उ० कारन कृपालु मैं सबै के जी की थाह ली । (क० ७१२२) लीजत-लेते, लेते हैं । उ० लीजत क्यों न लपेटि लवा से । (ह० १८) लीजिए-अपना-इए, ग्रहण कीजिए । उ० यह तनय मम सम बिनय बल कल्याणप्रद प्रभु लीजिए । (मा० ४१०६०२) लीजे-लीजिए । लीजै-लीजिए । उ० असमंजस में मगन हौं लीजै गहि बाहीं । (वि० १४७) लीन (१)-लिया । लीन्ह-लिया, ग्रहण किया । लीन्हा-लिया, ग्रहण किया । लीन्ही-ली, ले ली । उ० लीन्ही परीच्छा-कवन विधि कहहु सत्य सब बात । (मा० ११५५) लीन्ही-दे० 'लीन्ही' । लीन्हे-१. लिए, २. लेने पर । उ० १. बोलि सकल सुर सावर लीन्हे । (मा० ११००११) लीन्हेउ-१. लिए, २. लेने पर, लेने पर भी । लीन्हेसि-लिया, ले लिया । उ० कौतुक हीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ । (मा० १११७६) लीन्हीं-लिया, ले लिया । उ० लीन्हीं छीनि दीन देख्यो दुरति दहत हौं । (वि० ७६) लीबी-लीजिए । उ० याते बिपरीत अनहितन की जानि लीबी । (गी० ११६४) लीबो-खेना है । उ० अब तौ कटिन कान्ह के करतब, तुम्ह हौं हँसति कहा कहि लीबो ? (क० ९)
 लिए (२)-(सं० लभ)-वास्ते ।
 लिखइ-(सं० लिखन)-लिखता है । लिखत-लिखते हुए ।

उ० लिखत सुधाकर गा लिखि राहु । (मा० २१५११)
 लिखा-१. लिखा हुआ, २. लिख दिया । उ० १. जो विधि लिखा लिखार । (मा० ११६८) २. जो विधि लिखा लिखार । (मा० ११६८) लिखि-लिख । उ० लिखत सुधाकर गालिखि राहु । (मा० २१५११) लिखिय-लिखिए, लिखना चाहिए । लिखी-१. लिखी हुई, २. लिखा । लिखे-१. लिखा, २. लिखने पर, ३. लिखा हुआ । उ० ३. चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े । (मा० २१३५३)
 लिखाइ-(सं० लिखन)-लिखाकर । उ० ललित लगन लिखाइ कै । (पा० ६२)
 लिखित-(सं०)-लिखा हुआ । उ० चित्र लिखित कपि देखि डेराती । (मा० २१६०२)
 लिपि-(सं०)-अक्षर, लेख । उ० तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहु गनक की । (क० ७१२०)
 लिय (२)-१. खिए, वास्ते, २. वजह, कारण । उ० १. कहि प्रनामु कछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह । (मा० २१५२२)
 लिये (२)-१. वास्ते, २. कारण ।
 लिलाट-(सं० ललाट)-मस्तक, भाल, ललाट ।
 लिलार-दे० 'लिलाट' । उ० दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाउ जहँ पाउब तहीं । (मा० ११६७१ छं० १)
 लीक-(सं० लिख)-१. रेखा, लकीर, २. नियम, परंपरा, ३. सबक, पगडंडी, ४. गाड़ी के पहिए का निशान, ५. निश्चय, ६. मर्यादा । उ० १. मानो प्रतच्छ परबत की नभ लीक लसी, कपि यों धुकि धायो । (क० ६१५४) ५. आगम निगम पुरान कहत करि लीक । (ब० ६०)
 लीका-दे० 'लीक' । उ० ६. अजहूँ गाव श्रुति जिनकी लीका । (मा० ११४२११)
 लीख-दे० 'लीक' । पक्की बात, लकीर । उ० विश्वंभर श्री-पति त्रिभुवन-पति वेद-विदित यह लीख । (वि० ६८)
 लीचर-(?)-१. सुस्त, काहिल, निकम्मा, २. जल्दी न छोड़नेवाला, ३. लीचरपन, अशक्ति, शिथिलता । उ० ३. बाहुक-सुबाहु नीच, लीचर मरीच मिलि । (ह० ३६)
 लीन (२)-(सं०)-तन्मय, विलीन, मग्न । उ० सब विधि हीन मखीन दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं । (वि० ११४)
 लीलहि-(सं० लीला)-१. लीला को, तमाशा को, करनी को, कृत्य को २. खेल में । उ० १. जो मन लाहु न सुन हरि लीलहि । (मा० ७१२८२) २. अति उत्तंग गिरि पादप लीलहि लीहि उठाइ । (मा० ६११) लीलहि-१. लीला में, तमाशा में, खेल में, २. लीला को । लीला-(सं०)-१. क्रीड़ा, तमाशा, खेल, कौतुक, २. विचित्र काम । उ० १. निज इच्छा लीला वपु धारिनि । (मा० ११६८२)
 लुक-(सं० उल्का)-गर्म हवा, लू ।
 लुकाई-(सं० लोप)-१. लुकाकर, छिपकर, २. छिपे, ३. छिपता है । लुकाई-१. लुकता है, छिपता है, २. लुककर, छिपकर । उ० २. तरु पल्लव-महँ रहा लुकाई । (मा० ५११) लुकात-छिप जाता है । उ० लवा ज्यों लुकात तुलसी रूपेटे बाज के । (क० ६१६) लुकाने-छिप गए, लुके । उ०

कपटी भूप उलूप लुकाने । (मा० २५२१) लुके-छिप गय । उ० उदित भानुकुल-भानु लखि, लुके उलूक नरेस । (मा० ११२१५)

लुगाई-(सं० लोक)-खी । उ० थकित होहि सब लोग लुगाई । (मा० ११२०४४)

लुटत-(?)-लोट रहा है । उ० जनु महि लुटत सनेह समेटा । (मा० २१२४३३)

लुटि-(सं० लुट)-लूट में । उ० नयन लाभ लुटि पाई । (गी० ११२३)

लुनाई-(सं० लावण्य)-सौंदर्य । उ० दे० 'लुभाई' ।

लुनिअ-(?)-काटो, लूनो । उ० बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा । (मा० २१६१३) लुनिअ-काटिअ । उ० हौं रहीं मौन ही, बयो सो जानि लुनिअ । (ह० ४४) लुनिहै-काटेगा । उ० लुनिहै सोई सोई जोई जेहि बई है । (गी० ११८४)

लुस-(सं०)-छिपा हुआ, गुप्त ।

लुबधक-(सं० लुब्ध)-लालची, लोभी ।

लुबुध-(सं० लुब्ध)-लालची, लोभी । उ० लुबुध मधुप इव तजह न पासू । (मा० १११७१२)

लुब्ध-(सं०)-लालची, लोभी । उ० जाके पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर । (वि० २०७)

लुभाई-(सं० लोभ)-लुब्ध होकर, लालच करके । उ० बदन-मनोज सरोज-लोचननि रही है लुभाई लुनाई । (गी० ११५३) लुभान-लोभ गया, मोह में पड़ा । लुभाने-१. लुब्ध रहते हैं, २. लोभ में पड़कर, मोहित होकर । उ० मुक्ति निरादर भगति लुभाने । (मा० ७११११४) लुभाहिं-लुभाते हैं, लोभ करते हैं । उ० जे परम सुगतिहु लुभाहिं न । (वि० २०७)

लूक-(सं० उल्का)-१. दूटा तारा, २. चिनगारी, लपट । उ० १. सुमिरि राम, तकि तरकि तोयनिधि लूक लूक सो आयो । (गी० २११)

लूकट-(सं० उल्का) अधजला ।

लूका-(सं० उल्का)-१. जलती आग, लपट, २. चिनगारी ।

लूगा-(?)-कपड़ा, वस्त्र । उ० रोटी लूगा नीके राखैं, आगे हू को बेद भाषैं । (वि० ७६)

लूट-(सं० लुट)-छीनना, अपहृत करना ।

लूटक-लूटनेवाले, हरनेवाले । उ० तून कटि मुनिपद लूटक पटनि के । (क० २११६)

लूटन-(सं० लुट)-लूटने, छीनने । उ० चले रंक जनु लूटन सोना । (मा० २१३२११) लूटीं-लूट लीं, ले लीं । उ० रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं । (मा० २११७१२) लूटे-लूट लिपू, छीन लिपू ।

लूनिहै-(?)-काटेगा, पायेगा ।

लूम-(सं०)-पूँछ, हुम । उ० जनु लूम लसति सरिता सी । (वि० २२)

लूरति-(सं० लूनन)-लटकती है, झूलती है । उ० उरसि रुचिर बन माल लूरति । (गी० २१४७)

लूलो-(सं० लून)-कटे पाँव या हाथ का, लंज, असमर्थ, बेकार । उ० रहीं दरबार परो लटि लूलो । (ह० ३६)

लेह-(सं० लभन)-लेती है । उ० उतर देह न लेह उसासू । (मा० २१३३३) लेहहउं-लेऊँगा, लूँगा । लेहहहिं-लेंगे । उ० रखिहहिं भवन कि लेहहहिं साथो । (मा० २१७०३३) लेहहिं-लेगी । उ० जानेहु लेहहि मागि चबेना । (मा० २१३०३३) लेई-१. लेकर, २. लिया, ले लिया । लेउं-लूँ, ले लूँ । लेउ-ले, लो । उ० जानि लेउ जो जाननि हारा । (मा० २१३७११) लेऊँ-लूँ, प्राप्त करूँ । उ० आखु राम सेवक जसु लेऊँ । (मा० २१२३०२) लेत-लेता है, प्राप्त करता है । उ० लेत कोटि गुन भरि सो । (वि० ३६४३३) लेति-लेती हैं । उ० बारहिं बार लेति उर लाई । (मा० ११७२१४) लेन-लेने । उ० चले लेन सादर अगवाना । (मा० ११६५११) लेना-ले लेना, ग्रहण करना । उ० झूटह लेना झूटह देना । (मा० ७३६१४) लेब-लेंगे । उ० लेब भखी बिधि लोचन लाहू । (मा० १३१०३३) लेबा-१. लेता है, २. लूँगा । उ० १. जाइ अवध अब यहू सुखु लेबा । (मा० २१४६३३) २. सो प्रसादु में सिर धरि लेबा । (मा० २१०२१४) लेहउं-लूँगा । उ० लेहउं दिनकर बंस उदारा । (मा० ११८७११) लेहिं-लेते हैं । उ० जरहिं बिषमजर खेहि उसासा । (मा० २१२१३३) लेहि-१. लेने, ले ले, २. लो, ले लो । उ० १. मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे । (वि० ३३) लेहीं-१. लेते हैं, २. लें । लेहु-लो, ग्रहण करो । उ० लेहु अब लेहु तब कोऊ न सिखाओ मानो । (क० २११७) लेहु-दे० 'लेहु' । लै-१. लेकर, ग्रहण कर, २. स्वागत करके, अगवानी करके । उ० १. पानि सरासन सायक लै । (क० २१२७) २. दुलाहिन लै गे लच्छि निवासा । (मा० ११३६१२) लैहें-१. लेंगे, २. लावेंगे । उ० २. सहज कृपालु बिलंब न लैहें । (गी० २१५१) लैहैं-लूँगा, लगाऊँगा । उ० रामलखन उर लैहैं । (गी० ६१ १६)

लेख-(सं०)-लिखा हुआ, रचना ।

लेखई-(सं० लेखन)-१. लिखता है, २. देखता है, समझता है, ३. अनुमान करता है । उ० २. तुलसी नृपति भवितव्य-ताबस काम कौतुक लेखई । (मा० २१२५१०१) लेखऊँ-१. लिखूँ, २. समझूँ, जानूँ । लेखति-जानती है, समझती है । लेखहिं-गिनते हैं, समझते हैं । उ० साधन सकल सफल, करि लेखहिं । (मा० २१३४१४) लेखहि-जाने, गिने, समझे, माने । लेखहीं-जान रहे हैं, जानते हैं, समझते हैं । उ० अवलोकि रघुकुल कमल रवि छवि सुफल जीवन लेखहीं । (मा० ११३१६१०१) लेखहू-देखो । लेखा-(सं० लेख)-१. गणित, हिसाब, २. गणना, गिनती, ३. लकीर, ४. देवता, ५. आदर, ६. देखा, समझा, ७. समझकर । उ० २. करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा । (मा० २१२००१४) ७. आदर कीन्ह पिता सम लेखा । (मा० २१३६३३) लेखि-१. देखकर, २. गिनकर, ३. जानकर, समझकर । उ० ३. नीके कै निकाई देखि जनमन सफल लेखि । (गी० २१२२) लेखिय-देखिए, समझिए । लेखी-दे० 'लेखि' । उ० ३. सुदित सफल जग जीवन लेखी । (मा० ११३४१२) लेखें-१. देखे, २. जाने, ३. गिनती में, गणना में । उ० ३. भयउं भाग भाजन जन लेखें । (मा० २१८८३३) लेखीं-

देखूँ, जानूँ, समझूँ। उ० तब निज जन्म सफल करि लेखौँ। (मा० ७११०७)

लेखक-(सं०)-लिखनेवाला, ग्रंथकर्ता।

लेखन-१. लिखना, चित्र आदि बनाना, २. देखना। उ० १. सो समाज चित्त-चित्रसार लागी-लेखन। (गी० १। ७३)

लेखनी-(सं०)-कलम। उ० महि पत्री करि सिंधु मसि तरु लेखनी बनाइ। (वै० ३५)

लेख्या-(सं०) लेह-बछड़ा। उ० ललन लोने लेख्या बलि मैया। (गी० ११७)

लेवैया-(सं०) लभन-लेनेवाला। उ० तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया। (क० ७। ५२)

लेश-(सं०)-श्रद्धा, अल्प। उ० प्रजापाल अति नेद बिधि कतहुँ नही अषलेस। (मा० ११५३)

लेशइ-(सं०) लेश्य-जलावे, बारे। लेसै-जलावे। उ० एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यान मय। (मा० ७। ११७घ)

लेशु-दे० 'लेश'।

लेशा-दे० 'लेश'। उ० नहिँ तहँ मोहनिसा लवलेसा। (मा० १११६।३)

लौ-दे० 'लौ'।

लौइ-(सं०) लोक-लोग। उ० तेज होत तन तरनि को अचरज मानत लौइ। (वै० ५५)

लौई-दे० 'लौइ'। उ० हम नीके देखा सब लौई। (वै० ४०)

लोक-(सं०)-१. संसार, २. संसार की रीति, ३. तीन लोक, स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल, ४. लोग। उ० २. लोक कि बेद अदरो। (वि० २७२) ३. लोकगन लोक संताप-हारी। (वि० २५) ४. बिकल बिलोकि लोक काल कृत पियौ है। (क० ७। १७२) लोकउ-लोक भी। उ० पाइहि लोकउ बेदु बढाई। (मा० २। २०७।१) लोकहि-लोक को। उ० निज लोकहि बिरचि गो देवन्ह इहइ सिखाइ। (मा० १। १८७) लोकहुँ-लोक में भी। उ० लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। (मा० २। १८।३) लोकहु-दे० 'लोकहुँ'। लोके-लोक में, इस संसार में। उ० भजंतीह लोके परेवा नरायाँ। (७। १०। ८। ७)

लोकप-(सं०)-१. राजा, २. दिग्पाल। उ० १. लोकप होहिँ बिलोकत जासू। (मा० २। १४०। ४)

लोकपति-दे० 'लोकप'।

लोकपाल-दे० 'लोकप'।

लोका-दे० 'लोक'। उ० ३. चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। (मा० १। २७। १)

लोकि-(सं०) लोकन-लोककर, ऋषटकर। उ० जात जरे सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सौं बिष लोकि लियो है। (क० ७। १५७)

लोकु-दे० 'लोक'।

लोकू-दे० 'लोक'। उ० हरष बिषाद बिबस सुरलोकू। (मा० २। ११। २)

लोग-(सं०) लोक-मनुष्य, जन। उ० नगर लोग सब अति

हरषाने। (मा० १। १६। १) लोगन्ह-लोगों, लोग। लोगन्हि-लोगों से। उ० पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी। (मा० २। ११। ८। ३)

लोगा-दे० 'लोग'। उ० देखि हरष बिसमय बस लोगा। (मा० २। २। १५। ४)

लोगाई-(सं०) लोक-स्त्रियाँ। उ० बृदं बृदं मिलि चलीं लोगाईं। (मा० १। १६। ४। २) लोगाई-स्त्री, औरत। उ० कहहि परसपर लोग लोगाई। (मा० २। १। १। २)

लोगु-दे० 'लोग'।

लोगू-दे० 'लोग'। उ० सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू। (मा० २। ३। १। ८। १)

लोचन-दे० 'लोचन'। आँखवाले। उ० प्रफुल्ल कंज लोचन। (मा० ३। १। ४। ३) लोचन-(सं०)-आँख। उ० लोचन सिमुन्ह देहु अमिय घूटी। (गी० २। २। १)

लोचना-आँखवाली। उ० सारंग सावक लोचना। (जा० २०७)

लोचनि-दे० 'लोचना'। उ० बिधु बदनीं मृग सावक लोचनि। (मा० १। २। ६। ७। १)

लोचहि-(सं०) लोचन-देखते हैं, खोजते हैं, इच्छा रखते हैं। उ० गिरजा जोग झरहि बर अनुदिन लोचहि। (पा० १०)

लोटन-(?)-आड़ी, झुरमुट।

लोदा-(सं०) लोष्ट-सिल पर पीसने के लिए पत्थर, बड़ा। उ० फोरहि सिल लोदा सदन आगे अढकु पहार। (दो० ५६०)

लोथिन-(सं०) लोष्ट-शवों, लाशों। उ० लोथिन सौं लोहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ। (क० ६। ४६)

लोन-(सं०) लवण-१. नमक, २. सुंदरता, ३. सुंदर। उ० ३. करि सिंगार अति लोन तो विहँसति आई ही। (रा० १०)

लोना-दे० 'लोन'। उ० ३. साँवर कुअँर सखी सुठि लोना। (मा० १। २। ३। ३। ४)

लोनाई-सुन्दरता। उ० देखत लोनाई लघु लागत मदन हैं। (गी० २। २। ६)

लोनी-(सं०) लवण-सुन्दर।

लोनु-दे० 'लोन'।

लोनै-सुन्दर। उ० लालन जोग लखन लघु लोने। (मा० २। २। १०। १)

लोप-१. नाश, क्षय, २. गुप्त होना, अदृश्य होना, ३. लुप्त हो गया। उ० ३. कौन पाप कोप लोप प्रगट प्रभाय को। (ह० ३१) लोपत-(सं०) लुप्त-लुप्त कर देता है। लोपति-१. मेटली है, २. मिट जाती है। उ० २. लोपति बिलोकत कुलिपि भौंड़े भाल की। (क० ७। १। ८। २)

लोपिहँ-मिट दूंगे। लोपी-लुप्त कर दी है, लोप दी है। उ० कलि सकोप लोपी सुचाख। (वि० १। ६। ५) लोपै-मिट जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं। उ० तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की। (क० ७। २०)

लोपित-लुप्त, अदृश्य, नष्ट। उ० कोपित कलि, लोपित मंगल-मगु। (वि० २। ४)

लोभ-(सं०)-लालच, लृप्णा। उ० लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं। (क० ७। १। ७। ४)

लोभइ-१. लुभा जाता है, मोहित हो जाता है, २. लोभ ही । उ० २. लोभइ ओढ़न लोभइ बासन । (मा० ७१४०१)
 लोभहि-दे० 'लोभइ' । लोभा-१. दे० 'लोभ' । २. मोहित हो गये, ३. लुभा लिया । उ० १. लगे संग लोचन मनु लोभा । (मा० १२१६११) २. जनु चकोर पूरन ससि लोभा । (मा० १२०७३) लोभाई-१. लोभे, लुब्ध हुए, २. लुब्ध हो जाता है । उ० १. जहाँ जाइ मन तहँइ लोभाई । (मा० १२१३११) लोभान-लुभाया, लुब्ध । उ० करत बतकही अरुज सन मन सिय रूप लोभान । (मा० १२३१) लोभानी-मोहित हुई, लुब्ध हुई । उ० हरि-बिरंचि हरपुर सोभा कुलि कोसलपुरी लोभानी । (गी० ११४) लोभाने-मोहित हुए । लोभाये-लुभा गये, मोहित हो गये । लोभाहिं-मोहित होते हैं । लोभे-लोभे हुए, लुब्ध । उ० नव सुमन माल सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधुकरा । (गी० ७११६)
 लोभारे-लुभावने, मनोहर । उ० बय किसोर घन तदित बरन तनु नख सिख अंग लोभारे । (गी० ११८६)
 लोभि-दे० 'लोभी' । उ० लोभि लोलुप कल कीरति चहई । (मा० १२६७२)
 लोभिहि-(सं० लोभिन्)-लोभी को । उ० कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि । (मा० ७१२८२) लोभी-लोभ करनैवाला, लालची । उ० लोभी लंपट लोलुप चारा । (मा० २१६८२)
 लोभु-दे० 'लोभ' । उ० लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति । (मा० २३१)
 लोभ-(सं०)-केश, रौवाँ । उ० लसत लोभ विद्युलता ज्वाल माला । (वि० २८)
 लोभश-(सं०)-एक ऋषि जो अमर कहे गये हैं ।
 लोभस-दे० 'लोभश' । उ० चिरजीवन लोभस ते अधिकावे । (क० ७१४३)
 लोयन-(सं० लोचन)-आँख, नेत्र । उ० सुदिन भए लहि लोयन लाहु । (मा० २११८५) लोयननि-नेत्रों को । उ० लोयननि लाहु देत जहाँ-जहाँ जैहैं । (गी० २३७)
 लोयल-दे० 'लोयन' ।

लोल-(सं०)-१. चंचल, २. सुन्दर । उ० १. राजत लोयन लोल । (मा० १२५८)
 लोलदिनेस-(सं० लोल + दिनेश)-'लोलार्क' नाम का काशी में एक पवित्र कुंड । उ० लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन करनघंट घंटा सी । (वि० २२)
 लोला-(सं० लोल)-१. सुन्दर, २. चंचल । उ० २. कल कपोल श्रुति कुंडल लोला । (मा० १२४३२)
 लोलुप-(सं०)-लालची । उ० लोभी लंपट लोलुप चारा । (मा० २१६८२)
 लोलुपता-(सं०)-लालच, लोभ । उ० इरिषा परुषाच्छर लोलुपता । (मा० ७१०२४)
 लोवा-(सं० लोमश)-लोमड़ी । उ० लोवा फिरि-फिरि दरसु देखावा । (मा० १३०३३)
 लोह (१)-(सं० लोभ)-लोभ, लालच । उ० तब तें बेसा-हो दाम लोह कोह काम को । (क० ७७०)
 लोह (२)-(सं० लौह)-१. लोहा, २. शस्त्र, हथियार । उ० १. तुलसी कृपा रघुबंस मनि की लोह लै नौका तिरा । (मा० २१२५१) ७०१) मु० लोह लेऊँ-लवूँ, लड़ाई करूँ । उ० सनमुख लोह भरत सन लेऊँ । (मा० २१६०११)
 लोहारिनि-(सं० लौहकार)-लोहार की स्त्री । उ० विहंसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो । (रा० ५)
 लोहित-(सं०)-१. लाल. सुख, २. मंगलग्रह । उ० १. लघु लघु लोहित ललित हैं पद । (गी० १११६)
 लोहू-(सं० लोह)-खून, रधिर ।
 लो-(सं० लग्न)-तक । उ० सुत मानहिं मातु-पिता तब लौ ।
 लौ-(सं० लग्न)-तक, तलक । उ० मेरे पन की लाज इहाँ लौ । (गी० ६१५)
 लौकिक-(सं०)-सांसारिक, लोक, सम्बन्धी । उ० तेहि अम यह लौकिक व्यवहारू । (मा० २१८७४)
 ल्याइ-(सं० लभन)-लिवाकर ले आकर । ल्याए-ले आए, ले आए हैं । उ० करि बिनती गिरजहि गृह ल्याए । (मा० ११८२१) ल्यायो-ले आए । उ० अस कहि लक्ष्मिन कहुँ कपि ल्यायो । (मा० ६१८३३) ल्यावों-ले आता हूँ ।

व

वंक-(सं० वक्र)-टेढ़ा, वक्र ।
 वंचक-(सं०)-ठगा, धूर्त ।
 वंचकता-(सं०)-ठगाई, धूर्तता ।
 वंचन-(सं०)-धोखा, छल, ठगना ।
 वंचनता-दे० 'वंचना' ।
 वंचना-(सं०)-दे० 'वंचन' ।
 वंचित-(सं०)-१. ठगा हुआ, २. रहित, शून्य ।

वंत-(सं० वृत्ति) वाला । उ० नयनवंत रघुवरहि बिलोकी । (मा० २१३६१)
 वंति-दे० 'वंत', चाली ।
 वंतु-दे० 'वंत' । वाला । उ० जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए । (मा० ११८२१)
 वंदन-(सं०)-सिद्ध ।
 वंदि-(सं० वंदना)-१. वंदना करके, २. भाट ।

वंदित-दे० 'वंदित' । उ० मनोज वैरि वंदितं । (मा० ३। ४। छं० ४) वंदित-(सं०)-पूज्य, आदरणीय । उ० केशवं क्लेशहं केश-वंदित-पदद्वंद-मंदाकिनी-मूल भूतं । (वि० ४६) वंदिता-'वंदित' का स्त्रीलिंग । पूज्या । वंदिते-हे पूजनीया । उ० मुकुटमनि-वंदिते ! लोकत्रयगामिनी । (वि० १८) वंदितौ-वंदना किए गए दोनों । उ० कोस-लेन्द्र पद कञ मञ्जुलौ कोमलावजमहेश वंदितौ । (मा० ७।१। श्लो० २)

वंदिनी-(सं०)-१. पूज्या, २. जो कैंद में हो । 'वंदी' का स्त्रीलिंग । वंदे-नमस्कार या वंदना करता हूँ । उ० भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ । (मा० १।१। श्लो० १)

वंद्य-(सं०)-वंदनीय, वंदना करने योग्य ।

वंद्यते-(सं०)-वंदित होता है, वंदन किया जाता है । उ० यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते । (मा० १।१। श्लो० ३)

वंश-(सं०)-१. बाँस २. संतान, संतति, ३. कुल, परिवार, ४. बाँसुरी । उ० ३. भ्रुज दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्य वंश-निकंदनं । (वि० ४४)

वंशी-(सं०)-१. मुरली, बासुरी, २. खान्दानवाला ।

व(१)-(सं०)-१. वायु, २. समुद्र, ३. वरुण, ४. कल्याण, चैम ।

व(२)-(सं० वा)-१. अथवा, किंवा, वा, २. और ।

वक-(सं०)-एक पक्षी, बगला ।

वकुल-(सं०)-मौलश्री का पेड़ या पुष्प ।

वक्ता-(सं०)-बोलने या व्याख्यान देनेवाला ।

वक्त्र-(सं० वक्तृ)-मुख । उ० वक्त्र-आलोक त्रैलोक्य-सोका-पहं, माररिपु-हृदय-मानस-मरालं । (वि० ४१)

वक्रः-(सं०)-१. टेढ़ा, कुटिल, २. टेढ़ापन, कुटिलाई । उ० १. यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते । (मा० १।१। श्लो० ३)

वक्रोक्ति-(सं०)-१. टेढ़ी बात, ताना, व्यंग्य, २. एक अलंकार जिसमें काकु या श्लेष से अर्थ में परिवर्तन हो जाता है ।

वक्षस्थल-(सं० वक्षःस्थल)-छाती, सीना ।

वचांसि-(सं० वचन)-बहुत से वचन । उ० विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे । (मा० ७।१२२५)

वचन-(सं०)-१. वाणी, वाक्य, कथन, उक्ति, २. बात, बोल, ३. व्याकरण के अनुसार शब्द के रूप में वह विधान जिससे एकत्व और बहुत्व का बोध हो । उ० २. कंठ दर, चिह्नक वर, वचन गंभीरतर, सत्य संकल्प सुर त्रास नासं । (वि० ४१)

वज्रलता-दे० 'वत्सलता' ।

वज्र-(सं०)-१. इंद्र का एक अस्त्र, जो दधीचि की हड्डी का बना था । २. बिजली, ३. हीरा, ४. अनिरुद्ध का पुत्र, ५. माला, ६. फौलाद, ७. सेंहुड़ ।

वज्रसार-(सं०)-अर्थात् कठोर, हीरे का हीर ।

वट-(सं०)-बरगढ़ का पेड़ । दे० 'बट' ।

वटिका-(सं०)-टिकिया, बटी, गोली ।

वटी-दे० 'वटिका' ।

वटु-(सं०)-१. ब्रह्मचारी, २. बालक । उ० १. बहु वेष पेथन पैमपन व्रत नेम ससि लेखर गप । (पा० ४४)

वत्-(सं०)-समान, तुल्य ।

वत-दे० 'वत्' । उ० युगल पद नूपुरा मुखर कलहंस वत । (वि० ६१)

वत्सलं-वात्सल्य रखनेवाले को । उ० १. नमामि भक्त वत्सलं । (मा० ३।४। छं० १) वत्सल-(सं०)-१. प्यार करनेवाला, प्रेमी, वत्सवत् प्यार करनेवाला, बच्चे के प्यार से भरा हुआ, २. दयालु, कृपालु ।

वत्सलता-(सं०)-१. पुत्रप्रेम, स्नेह, छोह, २. दया, कृपा ।

वद-(सं० वद्)-१. कहो, कह, बोलो, २. कहते हैं, ३. कहाकर । उ० १. मानि विस्वास वद् वेदसारं । (वि० ४६) वदति-१. कहता है, कहती है, २. कहती हुई । उ० १. वदति इति अमल मति दास तुलसी । (वि० ४७)

वदामि-मैं कहता हूँ । उ० निश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे । (मा० ७।१२२) नाग्या स्पृहा रघुपते हृदये-ऽमदीये सत्यं वदामि च भवानखिलांतरात्मा । (मा० १।१। श्लो० २) वदि (१) १. कहकर, २. शर्तें बदकर ।

वदन-(सं०)-१. मुँह, मुख, २. अगला भाग, ३. कथन, बात कहना । उ० १. रवन गिरिजा, भवन भूधराधिप सदा, श्रवण कुंडल, वदन-छवि अनूपं । (वि० ११)

वदनि-(सं० वदन)-मुखवाली । वदि (२)-(सं० अवदिन)-कृष्ण पक्ष ।

वध-(सं०)-हत्या, जान से मार डालना ।

वधिक-(सं० वधक)-हिंसक, व्याधा ।

वन-(सं०)-१. जंगल, विपिन, २. उपवन, ३. जल, ४. आलय, घर । उ० १. प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा नमस्ते वनवास दुःखतः । (मा० २।१। श्लो० २)

वनचर-(सं०)-१. वन में रहनेवाले, जंगली, २. बंदर, ३. मछली आदि जलचर ।

वनज-(सं०)-१. कमल, २. चंद्रमा ।

वनदेव-(सं०)-वन का अधिष्ठाता देवता ।

वनमाल-(सं०)-दे० 'वनमाल' ।

वनमाला-दे० 'वनमाल' ।

वनवास-(सं०)-वन या जंगल में रहना, वन में जाना । उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा नमस्ते वनवास दुःखतः । (मा० २।१। श्लो० २)

वनिज-(सं० वाणिज्य)-व्यापार, रोजगार ।

वनिता-(सं०)-१. स्त्री, महिला, २. स्त्री, पत्नी ।

वन्य-(सं०)-बनैला, जंगली, वनचर ।

वपत-दे० 'वपत्' ।

वपन-(सं०)-१. बीज बोना, २. केश-मुंडन ।

वपुस-(सं० वपुस्)-दे० 'वपु' ।

वपुष-दे० 'वपु' । उ० वपुष ब्रह्मांसो, प्रवृत्ति-लंका दुर्ग रचित मन-दनुज-भय रूपधारी । (वि० ५८)

वपु-(सं० वपुस्)-शरीर, देह । उ० कंठु-कंपूर-वपु-धवल निर्मल मौलि । (वि० ४६)

वमत-दे० 'वमत' ।

वमन-(सं०)-१. उल्टी, कै, उगलना, २. उलटनेवाला ।

वयं-(सं०)-हम लोग, हम सब । उ० धीर-गंभीर-मन-वीर कारक तत्र के वराका वयं बिगत सारा । (वि० ६०)

वय-(सं० वयस)-अवस्था, उम्र ।
 वयस-दे० 'वय' ।
 वरं-श्रेष्ठ को । उ० वंदेऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपाल च्छा-
 मयिम् । (मा० १११ श्लो० १) वरः-श्रेष्ठ । उ० सुरवरः
 सर्वाधिपः सर्वदा । (मा० २११ श्लो० १) वर-(सं०)-
 १. श्रेष्ठ, उत्तम, २. पति, दूल्हा, ३. सुन्दर, ४. वरदान,
 किसी देवता या बड़े से माँगा हुआ मनोरथ । उ० १.
 शोभाह्वयौ वर धन्विनौ । (मा० ४११ श्लो० १) वरौ-
 दोनों श्रेष्ठ को । उ० माया मातुष-रूपिण्यौ रघुवरौ सद्धर्म-
 वमौ हितौ । (मा० ४११ श्लो० १)
 वरजित-दे० 'वर्जित' ।
 वरण (१)-(सं०)-१. चुनना, २. निमंत्रण देना, ३.
 विवाह करना ।
 वरण (२)-(सं० वर्षा)-१. जाति, २. रंग ।
 वरद-(सं०)-वर देनेवाला, जो वर दे ।
 वरदान-(सं०)-वर, किसी देवता या बड़े का प्रसन्न होकर
 कोई सिद्धि या अभिलषित वस्तु देना ।
 वरन (१)-(सं० वर्षा)-१. रङ्ग, २. जाति, ३. अक्षर ।
 वरन (२)-(सं० वरण)-दे० 'वरण (१)' ।
 वरनसंकर-दे० 'वर्णसंकर' ।
 वरनि (१)-१. वर्णन करनेवाली, २. वर्णन करना ।
 वरनि (२)-(सं० वर्षा)-रङ्गवाली ।
 वरनि (३)-सं० वरण-पतिवाली, सधवा ।
 वरहि-दे० 'वर्ही' ।
 वराह-दे० 'बराह' ।
 वराह-दे० 'बराह' ।
 वराक-(सं०)-१. बेचारा, दीन, २. तुच्छ, नाचीज़ ।
 वराट-(सं०)-कौड़ी ।
 वराटिका-(सं०)-कौड़ी ।
 वरासन-(सं०)-श्रेष्ठ आसन, उच्चासन ।
 वरिष्ठ-(सं०)-श्रेष्ठ, पूजनीय ।
 वरुण-(सं०)-१. जल के देवता, २. पानी, ३. सूर्य, ४.
 एक पेड़ । उ० १. ब्रह्मोद्-चन्द्रार्क-वरुणाग्नि-वसु-मरुत-थम ।
 (वि० १०)
 वरुणा-(सं०)-एक नदी जो काशी के पास है ।
 वरुणालय-(सं०)-समुद्र ।
 वरुथ-(सं०)-१. सेना, २. समूह ।
 वरुथिनी-(सं०)-सेना, फौज़ ।
 वर्ग-(सं०)-१. एक ही प्रकार के जीव या चीजों का समूह,
 कौटि, श्रेणी, २. परिच्छेद, प्रकरण ।
 वर्जित-(सं०)-मना किया हुआ, मना, निषिद्ध ।
 वर्ण-(सं०)-१. रङ्ग, २. अक्षर, हर्फ, ३. ब्राह्मण, क्षत्रिय
 आदि, ४. वर्ण, जाति । उ० ३. जयति वर्णाश्रमाचार-
 पर-नारि नर । (वि० ४४)
 वर्णसंकर-(सं०)-दोगला, अपने पिता से इतर का पुत्र ।
 वर्णन-(सं०)-१. बखानना, कहना, २. चित्रण, रंगना, ३.
 गुणकथन, तारीफ़ ।
 वर्णानाम्-वर्णों का । उ० वर्णानामर्थे संवानी रसोनी
 कुंठसाग्नि । (मा० १११ श्लो० १)
 वर्णित-(सं०)-१. वर्णन किया हुआ, कथित, २. प्रशंसित ।

वर्तमान-(सं०)-उपस्थित समय, जो समय चल रहा है ।
 वर्ति-(सं०)-१. बत्ती, दीपक की बत्ती, २. सुरमा लगाने
 की सलाई, ३. वाला, रहनेवाला । उ० ३. यन्माया-वश
 वर्तिविरवमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा । (मा० १११ श्लो० ६)
 वर्तिका-दे० 'वर्ति' । उ० १. असुभ-सुभकर्म घृत-पूर्ण दस
 वर्तिका । (वि० ४७)
 वर्त्म-(सं०)-पथ, राह, रास्ता ।
 वर्द्धन-(सं०)-१. वृद्धि, उन्नति, २. उन्नति करनेवाला,
 बढ़ानेवाला । उ० २. सज्जनानन्द वर्द्धन खरारी । (वि० ५५)
 वर्द्धित-(सं०)-बढ़ा हुआ, उन्नत ।
 वर्द्धन-दे० 'वर्द्धन' ।
 वर्म-(सं०)-१. कवच, जिरहबस्त्र, २. घर । उ० १. वर्म-
 चर्मासि-धनु-वाण-तुण्डीरधर । (वि० ४०) वर्मों-वर्मों का
 द्विवचन । दे० 'वर्म' । उ० माया मातुष रूपिण्यौ रघुवरौ
 सद्धर्मवमौ हितौ । (मा० ४११ श्लो० १) वर्मधारी-कवच
 धारी, जिरहबस्त्र पहननेवाला ।
 वर्य-(सं०)-श्रेष्ठ ।
 वर्ष-(सं०)-१. साल, संवत्, २. वर्षा ।
 वर्षण-(सं०)-पानी बरसना, पानी पड़ना ।
 वर्षा-(सं०)-१. बारिश, वृष्टि, २. वर्षाकाल, बरसात ।
 वर्षासन-(सं० वर्ष + अशन)-वर्ष भर पर भोजन करनेवाला ।
 वर्हि-दे० 'वर्ही' ।
 वर्हिण-दे० 'वर्ही' ।
 वर्हीं-(सं० वर्हिन)-मोर, मयूर ।
 वलय-(सं०)-१. कंकण, २. चूड़ी, ३. वेष्टन ।
 वलाहक-(सं०)-१. बादल, घटा, २. पर्वत ।
 वलि-(सं०)-१. बलिदान, २. बलिदान की सामग्री, ३.
 एक दैत्य जिसे विष्णु ने वामन अवतार धारण कर डला
 था ।
 वल्कल-(सं०)-झाल, बोकला ।
 वल्मीकि-(सं०)-१. बाँबी, बिल, २. दीमकों का लगाया
 मिट्टी का ढेर, ३. वाल्मीकि मुनि ।
 वल्लभ-प्रिय को, प्यारे को । उ० भजामि भाव वल्लभं ।
 (मा० २११ श्लो १०) वल्लभ-(सं०)-प्यारा, प्रियतम ।
 उ० वल्लभ उरमिला के, सुलभ सनेहवस । (वि० ३७)
 वल्लभां-वल्लभा को, प्यारी को, प्रिया को । उ० सर्व-
 श्रेयस्करिणी सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् । (मा० १११
 श्लो० ५) वल्लभा-(सं०)-प्यारी, स्त्री ।
 वल्लि-(सं०)-लता, बैँवर ।
 वश-(सं०)-काबू, अधिकार । उ० यन्माया वशवर्ति विश्व-
 मखिलं ब्रह्मादि देवासुरा । (मा० १११ श्लो० ६)
 वशवर्ति-वशवर्ती, वशीभूत । उ० यन्माया वशवर्ति विश्व-
 मखिलं ब्रह्मादि देवासुरा । (मा० १११ श्लो० ६)
 वश्य-(सं०)-१. वश में, काबू में, २. वश में आने या
 रहनेवाला ।
 वसंत-(सं०)-वर्ष की छः ऋतुओं में प्रथम जिसके अंतर्गत
 चैत और वैशाख के महीने आते हैं ।
 वसन-(सं०)-वस्त्र, कपड़ा । उ० वर वसन नील नूतन
 तमाल । (वि० १३)
 वसिष्ठ-दे० 'वसिष्ठ' ।

वसीले-(अर० वसीला)-१. अवलंब, सहारा, २. जरीये, द्वारा। उ० २. साहेब कहुँ न राम से, तोसे न वसीले। (वि० ३२)
 वसुंधरा-(सं०)-दे० 'वसुधा'।
 वसु-(सं०)-१. आठ देवताओं का एक गण, २. आठ की संख्या, ३. रत्न, ४. ध्रुव, ५. सोम, ६. किरण, ७. कुबेर, ८. शिव, ९. विष्णु, १०. सूर्य।
 वसुधा-(सं०)-पृथ्वी, धरा।
 वस्तु-(सं०)-पदार्थ, चीज, द्रव्य।
 वस्त्र-वस्त्र को, कपड़े को। उ० शोभाढ्य पीत वस्त्रं सर-सिजनयनं। (मा० ७।१।श्लो० १) वस्त्र-(सं०)-कपड़ा, वसन।
 वह-वहन करनेवाला, होनेवाला।
 वह-(सं०) अथ, प्र० ओ० एक सर्वनाम जिससे तीसरे व्यक्ति या किसी अन्य की ओर संकेत किया जाता है। उ० वह सोभा समाज सुखकहत न बनइ खगंस। (मा० ७।१२ क) वहि-वही। उ० तुलसी जासों हित लगे वहि अहार वहि देह। (दो० ३।१३)
 वहित्र-(सं०) वहित्य-नाव, जहाज़। उ० सर्वदा दास तुलसी-आसनिधि वहित्रं। (वि० ५०)
 वहिं-(सं०)-आग।
 वाङ्मा-(सं०)-इच्छा, अभिलाषा।
 वाङ्मि-(सं०)-चाहा हुआ, इच्छित।
 वा (१)-(सं०)-अथवा, या। उ० तिनके सम बैभव वा विपदा। (मा० ७।१४।७)
 वा (२)-(सं०)अथवा-उस। उ० लागैगी पै लाज वा बिराज-मान बिरुदाहि। (क० ७।१७७) वाके-उसके। उ० वाके उप मिटति रजनि-जनित जरनि। (क० ३०) वाहि-उसे, उसको। उ० वाहि न गनत बात कहत करेरी सी। (क० ६।१०)
 वाक्य-(सं०)-जुमला, बात। उ० वाक्य ज्ञान अत्यंत निपुण भवपार न पावै कोइ। (त्रि० १२३)
 वागीश-(सं०)-१. बृहस्पति, २. ब्रह्मा।
 वाच-(सं०) वाच-वाणी, भाषा।
 वाचक-(सं०)-शब्द, अर्थबोधक। उ० सिद्धि साधक साध्य वाच्य वाचक रूप। (वि० ५३)
 वाच्य-(सं०)-स्पष्ट अर्थ, अर्थ। उ० दे० 'वाचक'।
 वाजी-(सं०) वाजिन-घोड़ा।
 वाटिका-(सं०)-बगीचा, उपवन।
 वायाप्रस्थ-(सं०) वानप्रस्थ-तीसरा आश्रम।
 वायी-(सं०)-१. सरस्वती, शारदा, २. बोली, वचन। उ० १. मंगलानां चकर्तारौ वंदे वायी विनायकौ। (मा० १।१।श्लो० १)
 वात-(सं०)-वायु, हवा। उ० दे० 'वातजात'।
 वातजातं-(सं०)-वायु के पुत्र हनुमान को। उ० रघुपति प्रियभक्त वातजातं नमामि। (मा० १।१।श्लो० ३)
 वात्सल्य-(सं०)-बच्चों का छोटों के प्रति प्रेम भाव, माता-पिता का संतति के प्रति प्रेम।
 वाद-(सं०)-विवाद, शास्त्रार्थ।
 वानर-(सं०)-बंदर। वानराणाम्-बंदरों के। उ० सकल

गुण निधानं वानराणामधीशं रघुपति प्रियभक्तं वातजातं नमामि। (मा० १।१।श्लो० ३)
 वानीर-(सं०)-बैत। उ० हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीर वर। (वि० १८)
 वापी-दे० 'वापिका'।
 वापिका-(सं०)-बावली, छोटा जलाशय।
 वाम-(सं०)-१. बायाँ, २. कुटिल, टेढ़ा। उ० १. सीता समा-रोपित वामभागम्। (मा० २।१।श्लो० ३)
 वामता-(सं०)-टेढ़ाई, कुटिलता।
 वामदेवं-दे० 'वामदेव'। उ० १. काम मद मोचनं तामरत-लोचनं वामदेवं भजे भावगम्यं। (वि० १२) वामदेव-(सं०)-१. शंकर, २. एक ऋषि।
 वामन-(सं०)-विष्णु का १५वाँ अवतार जो बलि को छलने के लिए हुआ था। उ० वेद विख्यात वर देस वामन बिरज। (वि० ५५)
 वायस-(सं०)-कौआ, काक।
 वारण-(सं०)-रोकना, निषेध, मनाही।
 वारपार-(सं०) वार + पार-आदि अंत, ओर छोर। उ० जहँ धार भयंकर वार न पार न बोहित नाव न नीक खेवैगा। (क० ७।५२)
 वाराणसी-(सं०)-काशी, बनारस।
 वारापार-(सं०) वार + पार-अंत, ओर-छोर। उ० महिमा अपार काहुँ बोल को न वारापार। (क० ७।१२६)
 वारि-(सं०)-पानी।
 वारिचर-(सं०)-मछली आदि पानी के जीव।
 वारिज-(सं०)-कमल।
 वारिद-(सं०)-बादल, मेघ।
 वारिधर-(सं०)-१. बादल, २. समुद्र।
 वारियहि-(?)-न्यौछावर करेंगे, उतारा करेंगे।
 वारीश-(सं०)-समुद्र।
 वारे-(?)-वाले। उ० बिकट भृकुटि कच घूघर वारे। (मा० १।२३।३।२)
 वाल्मीकि-(सं०)-आदि कवि, रामायण के प्रथम लेखक। पहले ये किरातों के संग में चोरी, लूट आदि करते थे। एक बार सप्तर्षियों के संदेश से इन्हें ज्ञान हुआ और तब से ये भगवान के भक्त हो गये।
 वास-(सं०)-१. स्थान, रहने का स्थान, २. बु, महक, ३. रहना, निवास। उ० ३. वनवास दुःखतः। (मा० २।१।श्लो० २)
 वासर-(सं०)-दिन।
 वासव-(सं०)-१. इंद्र, २. कृष्ण।
 वासवधनु-इंद्रधनुष।
 वासा-(सं०) वास-निवास। दे० 'जनवासा'।
 वासिनः-निवासी लोग। उ० विविक्त वासिनः सदा। (मा० ३।४।छं० ८) वासिन्ह-वासियों, निवासियों। वासी-(सं०) वासिन-निवासी।
 वासुदेव-(सं०)-वसुदेव के पुत्र कृष्ण।
 वास्तव-(सं०)-थथार्थ, ठीक।
 वाहिनी-(सं०)-१. नदी, २. सेना।
 विंदु-(सं०)-१. बूँद, २. शुन्य, सिकर, ३. वीर्य।

विदुमाधव-(सं०)-१. विष्णु, २. प्रयाग में स्थित एक मूर्ति ।
 विध्य-(सं०)-विध्याचल नाम का पर्वत ।
 वि-(सं०)-विशेषता या अलगाव का भाव रखनेवाला एक उपसर्ग । जैसे विकराल या वियोग आदि ।
 विकट-(सं०)-१. भयानक, भयंकर, २. क्रूर, भीषण, ३. दुःखद ।
 विकराल-(सं०)-भयानक, भयंकर ।
 विकल-(सं०)-व्याकुल, आतुर ।
 विकलता-(सं०)-आकुलता, घबराहट ।
 विकल्प-(सं०)-१. संदेह, आति, २. अनिश्चय ।
 विकार-(सं०)-बिगड़ना झुराबी ।
 विकाश-(सं०)-१. खिलना, २. प्रकाश ।
 विकास-(सं०)-१. उन्नति, बढ़ती, २. प्रसार, फैलाव ।
 विकृत-(सं०)-बिगड़ा हुआ, भद्दा ।
 विकृति-(सं०)-विकार, बिगड़ना ।
 विक्रम-दे० 'विक्रम' । उ० प्रलंब बाहु विक्रमं । (मा० ३। ४। ३) विक्रम-(सं०)-१. बल, ताकत, पराक्रम, २. विष्णु ।
 विक्षेप-(सं०)-१. फेंकना, २. व्याघात, बाधा ।
 विखंडन-(सं०)-१. झुरी तरह नष्ट करना, २. झुरी तरह नष्ट करनेवाला ।
 विख्यात-(सं०)-प्रसिद्ध, मशहूर ।
 विख्याति-(सं०)-कीर्ति, ख्याति ।
 विगत-(सं०)-१. बीता हुआ, २. रहित, शून्य ।
 विग्रह-दे० 'विग्रह' । उ० २. विशुद्ध बोध विग्रहं । (मा० ३। ४। ३) विग्रह-(सं०)-१. लड़ाई, भगड़ा, २. शरीर, स्वरूप ।
 विघटन-(सं०)-तोड़ना, नष्ट करना ।
 विघटित-(सं०)-तोड़ा हुआ, नष्ट किया हुआ ।
 विघातक-(सं०)-नष्ट करनेवाला ।
 विघ्न-(सं०)-बाधा, व्याघात, अंतराय ।
 विचक्षण-(सं०)-चतुर, पंडित, निपुण ।
 विचल-(सं०)-चंचल ।
 विचार-(सं०)-भावना, ख्याल ।
 विचित्र-(सं०)-अद्भुत, असाधारण, विलक्षण ।
 विच्छेद-(सं०)-१. अलगाव, अलग होना, वियोग, भेद, २. नाश ।
 विजन-(सं०)-निर्जन, जनशून्य ।
 विजय-(सं०)-१. जीत, कृतक, २. भगवान के एक द्वारपाल का नाम ।
 विजयी-(सं०) विजयिन्-जयी, जीतनेवाला ।
 विश-(सं०)-पंडित, चतुर, प्रवीण ।
 विशता-(सं०)-प्रवीणता, कुशलता ।
 विज्ञान-(सं०)-विशेष ज्ञान । उ० विज्ञान धामावुभौ । (मा० १। १। १। १) विज्ञानौ-दोनों विज्ञान स्वरूप, दोनों विज्ञान । उ० वंदे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ । (मा० १। १। १। ४)
 विज्ञानी-(सं०) विज्ञानिन्-विज्ञान जाननेवाला, विशेष ज्ञानी ।

विट्-(सं०)-१. नीच, धूर्त, खल, २. जार, ३. भँड़ारा ।
 विटप-(सं०)-पेड़ ।
 विडंब-(सं०)-१. पाखंड, मझारी, धूर्तता, २. दुर्दशा ।
 विडंबना-(सं०)-१. नकल उतारना, हँसी उड़ाना, अपमान करना, २. निंदा, अपमान ।
 विड-दे० 'विट' ।
 विडाल-(सं०)-बिल्ली ।
 वितरण-(सं०)-१. दान, बाँटना, २. त्याग, ३. पार होना, तरण ।
 वितक-(सं०)-तर्क, विशेष रूप से तर्क ।
 वितान-(सं०)-१. मंडप, २. तंबू ।
 वित्त-(सं०)-धन ।
 विद-(सं०) विद् १. जाननेवाला, विद्व, २. ज्ञान ।
 विदग्ध-(सं०)-विद्वान्, पंडित ।
 विदित-(सं०)-ज्ञात, जाना हुआ ।
 विदिशा-(सं०) विदिश्-दिशाओं के कोण, आग्नेय, ईशान आदि चार कोण ।
 विदीर्ण-(सं०)-फाड़ा हुआ, चीरा हुआ ।
 विदुर-(सं०)-धृतराष्ट्र के छोटे भाई जिनकी उत्पत्ति एक दासी से हुई थी । ये बड़े धर्मात्मा थे । जब कौरवों पांडवों से मेल कराने के लिए कृष्ण हस्तिनापूर आए तो दुर्योधन का निमंत्रण अस्वीकार कर इन्हीं के घर रुखा-सूखा भोजन किया था ।
 विदुष-(सं०)-प्रवीण, पंडित, जानकार । विदुषी-(सं०)-विद्यावती स्त्री ।
 विदूषक-(सं०)-१. निंदक, २. मसखरा, भौंड, नकल करनेवाला ।
 विदेश-(सं०)-परदेश, अन्य देश ।
 विदेह-(सं०)-जनक ।
 विद्-(सं०)-जाननेवाला ।
 विद्ध-(सं०)-छेदा हुआ ।
 विद्यमान-(सं०)-उपस्थित, मौजूद ।
 विद्या-(सं०)-१. ज्ञान, शास्त्रज्ञान, २. शिक्षा ।
 विद्याधर-(सं०)-एक प्रकार के देवता ।
 विद्यार्थी-(सं०)-छात्र, पढ़नेवाला ।
 विद्यालय-(सं०)-स्कूल, पाठशाला ।
 विद्युत्-(सं०)-बिजली । उ० मौलि संकुल जटामुकुट-विद्युच्छटा । (वि० १०)
 विद्रुम-(सं०)-मूंगा, प्रवाल ।
 विद्वान्-(सं०)-पंडित, विद्यावान ।
 विधवा-(सं०)-पतिहीना स्त्री, राँड़ ।
 विधाता-(सं०)-ब्रह्मा । विधात्री-ब्रह्मा की स्त्री ।
 विधान-(सं०)-नियम, परिपाटी, प्रणाली ।
 विधायक-(सं०)-विधान करनेवाला, नियामक ।
 विधि-(सं०)-१. वे कर्म जिनके करने की आज्ञा धर्मशास्त्र देते हैं । २. ब्रह्मा, ३. नियम, प्रणाली । विधिवत-नियमानुसार, यथोचित । विधौ-विधि में, रीति में । उ० मोहा-म्होधर पूगपाटन विधौ स्वः संभवं शंकरं । (मा० ३। १। १। १)

विधुः-(सं०)-चंद्रमा, शशि । उ० भाले बालविधुराले च गरलं । (मा० २।१।श्लो० १)
विध्वंस-(सं०)-नाश, विनाश ।
विनता-(सं०)-दत्त की कन्या और कश्यप की स्त्री । गरुड इनके पुत्र थे ।
विनय-(सं०)-विनती, शील, नम्रता ।
विनष्ट-(सं०)-नष्ट, खराब ।
विनश्वर-(सं०)-नष्ट होनेवाला ।
विना-(सं०)-बिला, विहीन, नहीं । उ० याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वांतस्थमीश्वरम् । (मा० १।१।श्लो० २)
विनायक-(सं०)-गणेश । विनायकौ-गणेश की । उ० वंदे वाणी विनायकौ । (मा० १।१।श्लो० १)
विनाश-(सं०)-नाश, ध्वंस ।
विनिन्दक-(सं०)-विशेष निंदा करनेवाला ।
विनिपात-(सं०)-१. पतन, अधःपात, २. दुःख, विषाद ।
विनिमय-(सं०)-लेनदेन, अदल-बदल ।
विनिश्चित-(सं०)-निश्चित, तय । उ० विनिश्चितं बदाभि ते न अन्यथा वचांसि मे । (मा० ७।१२२ ग)
विनीत-(सं०)-नम्र, सुशील ।
विनोद-(सं०)-१. हँसी, मज़ाक, २. मनोरंजन, ३. तमाशा, कौतुक ।
विपक्ष-(सं०)-विमुख, विपरीत पक्ष ।
विपत्ति-(सं०)-दुःख, आफ़त ।
विपथ-(सं०)-बुरा रास्ता ।
विपद्-(सं०)-विपद्-दुःख, आपदा ।
विपरीत-(सं०)-उलटा, विरुद्ध, प्रतिकूल ।
विपर्यय-(सं०)-विरोध, उलटा, हृष-उधर ।
विपश्चित-विद्वान्, बुद्धिमान् ।
विपाक-(सं०)-परिणाम, फल ।
विपिन-(सं०)-१. जंगल, वन, २. उपवन, वाटिका ।
विपुल-(सं०)-१. प्रचुर, अधिक, बहुत, २. गंभीर, अगाध । उ० १. कलिमल विपुल विभंजन नामः । (मा० ३।१।श्लो० १)
विप्र-(सं०)-१. ब्राह्मण, द्विज, अजामिल, ३. शुक्राचार्य, ४. विश्वामित्र । उ० १. शोभाह्वो वर धन्विनौ श्रुतिनुतौ गौविप्रवृद् प्रियौ । (मा० ४।१।श्लो० १) विप्रेण-ब्राह्मण द्वारा, ब्राह्मण से । उ० रुद्राष्टकामिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये । (मा० ७।१०।श्लो० ६)
विफल-(सं०)-निष्फल, व्यर्थ ।
विबुध-(सं०)-देवता ।
विभंग-(सं०)-१. नाश, नष्ट, २. उपल, पत्थर, ३. चंचल ।
विभंजन-(सं०)-१. नाश करना, २. तोड़नेवाला, नष्टकर्ता । उ० २. कलिमल विपुल विभंजन नामः । (मा० ३।१।श्लो० १)
विभक्त-(सं०)-बँटा हुआ ।
विभव-(सं०)-१. संपदा, धन, ऐश्वर्य, २. मोक्ष ।
विभा-(सं०)-१. प्रकाश, आभा, २. शोभा, ३. किरण ।
विभाग-(सं०)-भाग, हिस्सा, खंड ।
विभाति-(सं०)-विभा-शोभित है, शोभायमान है । उ० यस्यांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके । (मा० २।१।श्लो० १)

विभीषण-(सं०)-रावण का भाई । यह राम का भक्त था और रावण की मृत्यु के बाद लंका का राजा बनाया गया था ।
विभु-विभु को, सर्वव्यापक को । उ० वेदांतवेद्यं विभुम् । (मा० १।१।श्लो० १) विभु-(सं०)-सर्वव्यापी, प्रभु ।
विभो-हे विभु, हे भगवान् ।
विभूति-(सं०)-संपत्ति, ऐश्वर्य ।
विभूषणः-विभूषित, शोभायमान । उ० सोऽयं भूति विभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा । (मा० २।१।श्लो० १)
विभूषण-(सं०)-१. गहना, २. शोभा ।
विभेद-(सं०)-दुर्भाव, फूट ।
विभ्रम-(सं०)-घबराहट ।
विमर्ष-(सं०)-विचार, परामर्श ।
विमलं-दे० 'विमल' । उ० माया मोह मलापहं सुविमलं । (मा० ७। अंतिम श्लोक)
विमल-(सं०)-शुद्ध, साफ़, निर्मल ।
विमलता-(सं०)-निर्मलता, स्वच्छता ।
विमत्त-(सं०)-अधिक उन्मत्त ।
विमाता-(सं०)-विमातृ-दूसरी माँ, मैमा ।
विमात्र-(सं०)-विमातृ-सौतेला ।
विमान-(सं०)-हवाई जहाज़, वायुयान ।
विमुख-(सं०)-विरोधी, प्रतिकूल ।
विमोह-(सं०)-विशेष मोह, अज्ञान ।
वियत-(सं०)-आकाश ।
वियोग-(सं०)-छुदाई, विरह ।
वियोगिनि-विरह से पीड़ित स्त्री । वियोगी-(सं०)-वियोगिन्-बिरही, अपनी प्रियतमा से छूटा हुआ ।
विरचि-(सं०)-ब्रह्मा ।
विरक्त-(सं०)-वैरागी, त्यागी, संसार से उदास ।
विरचित-(सं०)-बनाया, निर्मित ।
विरज-(सं०)-रजोगुण से रहित, शुद्ध, निर्दोष ।
विरत-(सं०)-निवृत्त, विरक्त, वैरागी ।
विरति-(सं०)-वैराग्य, त्याग, उदासीनता ।
विरद-(सं०)-१. यश, कीर्ति, २. ख्याति, प्रसिद्धि ।
विरस-(सं०)-रसहीन, नीरस ।
विरह-(सं०)-वियोग, छुदाई ।
विराग-(सं०)-वैराग्य, उदासीनता ।
विराट (१)-(सं०)-विराट्-ब्रह्म का वह रूप जिसका शरीर संपूर्ण विश्व है ।
विराट (२)-(सं०)-१. एक देश, २. मत्स्य देश के राजा जिनके यहाँ अज्ञातवास के समय पांडव थे ।
विराध-(सं०)-एक राक्षस जिसे लक्ष्मण ने मारा था ।
विरुज-(सं०)-स्वस्थ, रोगरहित ।
विरुद्-(सं०)-यशगान, प्रशस्ति ।
विरुद्ध-(सं०)-प्रतिकूल, विपरीत, विरोधी ।
विरोध-(सं०)-१. शत्रुता, म्गड़ा २. बैर, अनैक्य ।
विलंब-(सं०)-देर, अतिकाल ।
विलंबित-(सं०)-जिसमें देर हुई हो ।
विलक्षण-(सं०)-विचित्र, असाधारण ।
विलसद्-(सं०)-वि+लसन) सुशोभित, सुंदर लगता हुआ,

शोभायमान । उ० केकीकंठाभनीलं सुरवर विलसद्विप्र
पादाब्ज चिह्नं । (मा० ७।१।श्लो० १)
विलाप-(सं०)-रौना, रुदन ।
विलास-(सं०)-१. प्रसन्न करनेवाली क्रिया, २. आनंद,
३. भोगविलास, ४. हिलना-डोलना, ५. हाव-भाव, नाज़-
नखरा ।
विलासिनी-(सं०)-१. विलास करनेवाली, नारी, २. वेश्या ।
विलीन-(सं०)-१. नष्ट, २. लुप्त ।
विलोचन-(सं०)-आँख, नेत्र ।
विलोम-(सं०)-उल्टा, विपरीत ।
विलोल-(सं०)-१. विशेष चंचल, २. सुंदर, ३. लालची ।
विवर-(सं०)-बिल, छेद ।
विवरण-(सं०)-१. बयान, वर्णन, २. गुण कथन ।
विवर्ण-(सं०)-रंगहीन, फीका, बदरंग ।
विवर्ध-(सं०)-१. बढ़ा हुआ, २. बढ़ जाता है ।
विवर्द्धन-(सं०)-१. वृद्धि करनेवाला, २. बढ़ना ।
विवश-(सं०)-१. लाचार, मज़बूर, २. धशीभूत, परवश ।
विवाद-(सं०)-वाक्कलह, शास्त्रार्थ ।
विवाह-(सं०)-ब्याह, शादी ।
विविक्त-(सं०)-पुकांत, निर्जन । उ० विविक्त वासिनः सदा ।
(मा० ३।१।छं० ८)
विविध-(सं०)-अनेक प्रकार का ।
विविचार-(सं०)-विशेष विचार ।
विद्विध-(सं०)-देवता ।
विवेक-(सं०)-ज्ञान, विचार, सत्यासत्य का विचार । उ०
भूलं धर्मतरोर्विवेक धलधैः पूर्वेन्दुमानंददं । (मा०
३।१।श्लो० १)
विवेकी-(सं०-विवेकिन्)-विचारवान, ज्ञानी ।
विशद-(सं०)-१.विस्तीर्ण, विस्तृत, बड़ा, २. साफ़, स्पष्ट,
व्यक्त, ३. सुंदर ।
विशाल-दे० 'विशाल' । उ० १. चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं
विशालं । (मा० ७।१०।श्लो० ४) विशाल-(सं०)-१.
बड़ा, फैला हुआ, २. सुंदर, अच्छा, ३. प्रसिद्ध ।
विशाल-(सं०)-तीर, वाण ।
विशिखान- (सं०)-धनुष ।
विशुद्ध-(सं०)-अधिक शुद्ध । उ० विशुद्ध बोध विग्रहं ।
(मा० ३।४।छं० २)
विशेष-(सं०)-१.जो सामान्य या साधारण न हो, २.अधिक ।
विशोक-(सं०) १. शोक रहित, २. विशेष शोकयुक्त ।
विश्राम-(सं०)-आराम, चैन ।
विश्वंभर-(सं०)-विष्णु ।
विश्वं-(सं०)-संसार, जगत् । उ० यन्माया वशवर्ति विश्व
मखिलं ब्रह्मादिवेवासुरा । (मा० १।१।श्लो० ६)
विश्वनाथ-(सं०)-१. संसार के स्वामी, २. महादेव,
शंकर ।
विश्वस्त-(सं०) विश्वास के योग्य ।
विश्वत्मा-(सं०)-विष्णु ।
विश्वस-(सं०)-१. यकीन, यतवार, २. भरोसा, सहारा ।
उ० १. भवानी शंकरौ चंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ ।
(मा० १।१।श्लो० २)

विष-(सं०)-ज़हर, गरल ।
विषम-(सं०)-१. जो सम न हो, असमान, २. कठिन, ३.
तीव्र, ४. भयंकर, विकट । उ० १. निर्गुण सगुण विषम
समरूपं । (मा० ३।१।श्लो० ६)
विषमता-(सं०)-१. असमानता, २. कठिनता, दारुणता ।
विषय-(सं०)-१. वस्तु, चीज़, २. भोग-विलास, वासना,
३. जो इंद्रियों से जाना जाय ।
विषयक-(सं०)-संबंधी, विषय का ।
विषया-(सं०) भोग की वस्तुएँ ।
विषयी-(सं०-विषयिन्)-भोग में रत, विलासी, कामुक ।
विषाण-(सं०)-सींग ।
विषाद-विषाद का, दुःख का । उ० शमन सुकर्कश तर्क
विषादः । (मा० ३।१।छं० ५) विषाद-(सं०)-दुःख,
खेद ।
विष्टा-(सं०)-मल, पाखाना ।
विष्णु-(सं०)-परमात्मा का एक रूप जो सृष्टि का पालन
करता है । इनकी स्त्री लक्ष्मी है । विष्णु के २४ अवतार
कहे गए हैं । उ० विष्णु-पदकंज मकरंद-इव अंबु बर बहसि ।
(वि० १८)
विस्तर-दे० 'विस्तार' ।
विस्तार-(सं०)-फैलाव, प्रसार ।
विस्तृत-(सं०)-लंबा-चौड़ा, फैला हुआ ।
विस्मय-(सं०)-आश्चर्य, अचंभा ।
विस्मित-(सं०)-आश्चर्यान्वित ।
विस्मृति-(सं०)-भूल, बिसरना ।
विस्व-(सं०-विश्व)-संसार ।
विहंग-(सं०)-१. पक्षी, चिड़िया, २. बादल, ३. वाण,
४. सूर्य, ५. चाँद, ६. कागसुमुडि ।
विहंगम-(सं०)-पक्षी, चिड़िया ।
विहंगिनि-(सं०)-मादा पक्षी ।
विहरण-(सं०)-भ्रमना, भ्रमण ।
विहार-(सं०)-खेल, क्रीडा ।
विहारी-(सं०-विहारिन्)-विहार करनेवाला । विहारिणौ-
दोनों विहार करनेवालों को । उ० सीताराम गुणग्राम
पुण्यारण्य विहारिणौ । (मा० १।१।श्लो० ४)
विहित-(सं०)-उचित, जिसका विधान किया गया हो ।
विहीन-(सं०)-रहित, शून्य ।
विह्वल-(सं०)-१. व्याकुल, घबराया, २. प्रसन्न ।
वीचि-(सं०)-तरंग, लहर । उ० वितर्क वीचि संकुले ।
(मा० २।१।श्लो० ७)
वीणा-(सं०)-सितार की तरह का एक बाजा ।
वीथिका-दे० 'वीथी' ।
वीथी-(सं०)-गली, मार्ग, सड़क ।
वीर-(सं०)-१. शूर, बहादुर, २. सहेली, सखी, ३. भाई,
आता ।
वीरता-(सं०)-बहादुरी, शूरता ।
वीरभद्र-(सं०)-शंकर का एक अनुचर ।
वीर्य-(सं०)-१. बीज, बीया, २. शक्ति, पराक्रम, ३. प्रताप,
तेज, ४. शुक्र, रेतस ।
वीर्यवान-(सं०)-शक्तिशाली ।

वृन्द-(सं०)-समूह, मुँड । उ० सुरारि वृन्द भंजन । (मा० ३।४।४० ४)
 वृन्दकानन-दे० 'वृन्दावन' ।
 वृन्दारक-(सं०)-देवता ।
 वृन्दावन-(सं०)-मथुरा के पास का एक प्रसिद्ध तीर्थ ।
 वृक-(सं०)-१. भेड़िया, २. गीदड़, ३. कौवा, ४. चित्रिय, ५. आग ।
 वृकोदर-(सं०)-जिसके उदर में 'वृक' नाम की आग हो । भीम ।
 वृत्र-(सं०)-एक असुर जिसे इंद्र ने दधीचि की हड्डियों के वज्र से मारा था ।
 वृत्तान्त-(सं०)-समाचार, हाल ।
 वृत्त-(सं०)-१. गोल, वेरा, २. पैदा हुआ, ३. श्लोक, ४. चीता, व्यतीत, ५. जीवनी, चरित्र, ६. हड़, कठिन ।
 वृत्ति-(सं०)-१. रोजी, आजीविका, २. मन का संसरण, मनोवृत्ति, ३. सूत्र का अर्थ, टीका ।
 वृथहि-व्यर्थ ही । उ० बहि बय वृथहि अतीति । (वि० २३४)
 वृथा-(सं०)-व्यर्थ, बेमतलब । उ० सुख साधन हरि विमुक्त वृथा । (वि० ८४)
 वृद्ध-(सं०)-१. बूढ़ा, पुराना, जरठ, २. पंडित, ३. शिला-जीत ।
 वृद्धि-(सं०)-बढ़ती, लाभ, उन्नति ।
 वृश्चिक-(सं०)-बिच्छू ।
 वृष-(सं०)-१. बैल, साँड़, २. एक राशि, ३. चूहा, ४. अंडकोश ।
 वृषकेतु-(सं०)-महादेव ।
 वृषभ-(सं०)-बैल, साँड़ । उ० दहन इव धूमध्वज वृषभ-यानं । (वि० १०)
 वृषभानु-(सं०)-राधिका के पिता ।
 वृषली-(सं०)-१. दुराचारिणी, कुलटा, २. वह कुमारी जो रजस्वला हो गई हो ।
 वृषासुर-(सं०)-भस्मासुर नाम का राक्षस ।
 वृष्टि-(सं०)-वर्षा, बारिश ।
 वृष्णि-(सं०)-१. यादवंश, कृष्ण के वंश का नाम, २. उस वंश का आदि पुरुष ।
 वृहत्-(सं०)-बड़ा, भारी, महान् ।
 वेग-(सं०)-१. प्रवाह, बहाव, २. तेजी, शीघ्रता, ३. बल, ताकत ।
 वेणी-(सं०)-चोटी ।
 वेणु-(सं०)-१. बाँस, २. बाँसुरी, ३. एक राजा का नाम ।
 वेतस-(सं०)-बैत ।
 वेताल-(सं०)-१. एक प्रकार के भूत, पिशाच, २. शिव के गण, ३. द्वारपाल, संतरी ।
 वेत्ता-(सं०)-जाननेवाला, जानकार ।
 वेद-(सं०)-हिंदुओं के आदि धर्म-ग्रंथ जो संख्या में ऋक्, साम, यजुर्, और अथर्वन्-चार हैं । उ० विभुं ध्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं । (मा० ७।१०।१)
 वेदांत-(सं०)-वेद के अंतिम भाग जिनमें उपनिषद् तथा आरण्यक हैं । इनमें आत्मा, परमात्मा तथा जगत का निरूपण है । उ० वेदांत वेद्यं विमुम् । (मा० १।१। श्लो० १)

वेद्यं-जानने योग्य को । उ० वेदांत वेद्यं विमुम् । (मा० १।१। श्लो० १)
 वेश-(सं०)-पोशाक, कपड़ा-लत्ता ।
 वेष-दे० 'वेश' ।
 वै (१) (१)-१. एक अव्यय जो 'निश्चय' या 'भी' या 'ही' अर्थ में लगाया जाता है । उ० १. गज बाजिघटा भले भूरि भटा, बनिता सुत भौह तकै सब वै । (क० ७।४१)
 वै-(२)-वे । दे० 'वह' ।
 वैकुण्ठ-(सं०)-१. स्वर्ग, २. विष्णु, ३. मोक्ष ।
 वैतरणी-(सं०)-एक पौराणिक नदी जो यम के द्वार पर है ।
 वैताल-(सं०)-भाट, वंदीजन ।
 वैदभि-(सं०)-विदर्भ नगरवाली, रुक्मिणी ।
 वैदिक-(सं०)-१. वेद सम्बन्धी, २. वेद विधि के अनुसार ।
 वैदेही-(सं०)-सीता ।
 वैद्य-(सं०)-दवा करनेवाला ।
 वैनतेय-(सं०)-विनता की संतान, गरुड़ ।
 वैभवं-दे० 'वैभव' । उ० प्रभोऽप्रमेय वैभवं । (मा० ३।४। छं० ३) वैभव-(सं०)-ऐश्वर्य, धन, संपदा ।
 वैराग्य-(सं०)-विषय-त्याग, विरक्ति । उ० वैराग्यांजुज-भास्करं ह्यध्वनध्वातापहं तापहम् । (मा० ३।१। श्लो० १)
 वैरि-दे० 'वैरी' । उ० मनोज वैरि वंदितं । (मा० ३।४। छं० ५)
 वैरी-(सं०)-शत्रु, दुश्मन ।
 वैरोचन-(सं०)-राजा बलि के पिता का नाम ।
 वैशेषिक-(सं०)-छः दर्शनों में एक । इसमें पदार्थों का विचार और द्रव्यों का निरूपण है ।
 वैष्णव-(सं०)-विष्णु का भक्त ।
 वैसा-(वह + सा)-उसके समान ।
 व्यंग्य-(सं०)-१. ताना, चुटकी, बोली, २. विकलांग, ३. अंगहीन ।
 व्यंजन-(सं०)-१. पकवान, खाने की अच्छी अच्छी चीजें, २. स्वरहीन वर्ण, जैसे क् ख् आदि, ३. अंग, अवयव, ४. चिह्न, निशान ।
 व्यक्त-(सं०)-प्रकट, स्पष्ट ।
 व्यक्ति-(सं०)-प्राणी, मनुष्य ।
 व्यग्र-(सं०)-ब्याकुल, परेशान ।
 व्यतिक्रम-(सं०)-१. उलट-फेर, २. विघ्न, बाधा ।
 व्यतिरेक-(सं०)-१. अभाव, छोड़कर, बिना, २. भेद, अलग-गाव, पृथक्ता, ३. दोष, अपराध ।
 व्यतीत-(सं०)-बीता, गत, गुजरा ।
 व्यथा-(सं०)-पीड़ा, कष्ट ।
 व्यथित-(सं०)-पीड़ित, दुखी ।
 व्यभिचार-(सं०)-लंपटता, छिनरई, दूसरे की स्त्री या दूसरे के पति के साथ संभोग ।
 व्यय-(सं०)-१. खर्च, २. नाश, क्षय ।
 व्यर्थ-(सं०)-निरर्थक, बेकार ।
 व्यलीक-(सं०)-१. अपराध, क्रूर, २. दुःख, ३. डाँट-डपट ।

व्यवस्था-(सं०)-१. प्रबंध, २. धर्म-निर्णय, धर्मशास्त्र निर्णय, ३. धार्मिक कानून ।
 व्यवहार-(सं०)-१. बरताव, आपस का बरताव, २. रोज-गार, ३. लेन-देन, ४. झगडा ।
 व्यसन-(सं०)-१. विपत्ति, आफत, २. विषयों के प्रति आसक्ति, ३. कुटेव, बुरी आदत, ४. किसी प्रकार का शौक ।
 व्यसनी-(सं० व्यसनिन्)-जिसे किसी चीज का व्यसन या शौक हो । नशेबाज ।
 व्यस्त-(सं०)-१. व्याकुल, घबराया, २. काम में लीन ।
 व्याघ्र-(सं०)-बाघ, शेर । व्याघ्रिणी-शेरनी, बाघिन ।
 व्याध-(सं०)-१. शिकारी, बहेलिया, २. वाल्मीकि मुनि ।
 व्याधि-(सं०)-रोग, बीमारी ।
 व्यापक-व्यापक को । उ० विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं । (मा० ७।१०।१) व्यापक-(सं०)-जो दूर तक फैला हो, असीमित ।
 व्याप्त-(सं०)-समाया, फैला, घुसा ।
 व्याप्य-(सं०)-व्यापने योग्य ।
 व्याल-(सं०)-१. सर्प, २. हाथी, ३. दुष्ट, शठ, ४. शेष-

नाग । उ० १. काल व्याल कराल भूषणधरं । (मा० ६।१।श्लो० २)
 व्यालफेन-(सं०)-अफ्रीम ।
 व्यालराट्-(सं०)-शेषनाग । उ० भाले बाल विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् । (मा० २।१।श्लो० १)
 व्यालारि-(सं०)-गरुड ।
 व्याली-(सं०)-१. सर्पिणी, २. महादेव, शंकर ।
 व्यास-(सं०)-१. महाभारत लिखनेवाले ऋषि, २. खेत के बीच की या गोल लकीर ।
 व्योम-(सं०)-आकाश, गगन ।
 व्रजति-(सं०)-जाते हैं । उ० व्रजति नात्र संशयं । (मा० ३।४।छं० १२)
 व्रज-(सं०)-मथुरा के आस पास का प्रदेश ।
 व्रजन-(सं०)-धूमना, झटन ।
 व्रण-(सं०)-घाव, फोड़ा ।
 व्रत-(सं०)-१. उपवास, लंघन, २. प्रण, अनुष्ठान, ३. संयम, परहेज ।
 व्रतबंध-(सं०)-जनेऊ, यज्ञोपवीत ।
 व्रात-(सं०)-समूह, दल, झुंड ।
 व्रीडा-(सं०)-लाज, लज्जा, संकोच ।

श

शं-(सं०)-१. कल्याण, भंगल, २. सुख, ३. शांति । उ० १. संतत शं तनोतु मम रामः । (मा० ३।१।१।८)
 शंक-दे० 'शंका' ।
 शंकर-दे० 'शंकर' । उ० सदा शंकरं, शंप्रदं, सज्जनानंदं, शैलकन्यावरं, परमरम्यं । (वि० ११) शंकरः-शंकर, शिव । उ० खलानां दुंड कृद्योऽसौ शंकरः शंतनोतु मे । (मा० ६।१। श्लो० ३) शंकर-(सं०)-१. कल्याणकारी, २. शिव, महादेव, ३. शंकराचार्य । उ० २. वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम् । (मा० १।१। श्लो० ३)
 शंका-(सं०)-१. खौफ, खटका, २. आशंका, संशय, शक ।
 शंकित-(सं०)-डरा हुआ, भयभीत ।
 शंख-(सं०)-एक समुद्री जीव जो बड़े घोंघे की तरह का होता है और पूजा आदि के समय बजाया जाता है, कंबु । उ० शंखेन्द्राभमतीव सुन्दरतनुं शाहूल चर्माश्वरं । (मा० ६।१। श्लो० २)
 शंबर-(सं०)-एक राक्षस जो इंद्र के बाण से मारा गया था ।
 शंबरारि-(सं०)-शंबर का शत्रु कामदेव, मदन ।
 शंबल-(सं०)-राहखर्च ।
 शंभु-(सं०)-१. शंकर, शिव, २. ब्रह्मा । उ० शंभु जायासि जय-जय भवानी । (वि० १२) शंभुना-शिव ने, शंकर ने । उ० यत्पूर्वं प्रमुखाकृतं सुकविना श्री शंभुना दुर्गमं । (मा० ७।१३। श्लो० १) शंभो-हे शंभु ! हे शंकर ! उ० प्रभो पाहि आपन्नाभामीश शंभो । (मा० ७।१०।८।८)

शकुन-(सं०)-१. किसी काम के समय दिखाई देनेवाले लक्षण जो उस कार्य के सम्बन्ध में शुभ या अशुभ माने जाते हैं । २. पक्षी, खग, ३. शुभ लक्षण ।
 शकुनि-(सं०)-पक्षी, चिड़िया ।
 शक्ति-(सं०)-१. बल, ज़ोर, सामर्थ्य, २. भगवती, देवी, ३. बरछी ।
 शक्र-(सं०)-१. इंद्र, मघवा, २. कुरैया का वृह ।
 शक्रजित-(सं० शक्रजित्)-मेघनाद, इंद्रजीत । दे० 'इंद्र' ।
 शचि-(सं०) इंद्र की पत्नी, इंद्राणी ।
 शची-दे० 'शचि' । उ० शची पति प्रियानुजं । (मा० ३। ४।६)
 शठ-(सं०)-१. दुष्ट, पाज़ी, २. टग, कपटी, वंचक, ३. सूख, बेवकूफ ।
 शत-(सं०)-सौ, एक सैकड़ा । उ० शिरसि संकुलितं कलकूटं पिंगलं जटा-पटलं शतं कोटिं विद्युच्छटाभं । (वि० ११)
 शत्रु-(सं०)-१. बैरी, दुश्मन, रिपु ।
 शत्रुघ्न-(सं०)-राम के भाई । शत्रुघ्न सुमित्रा के पुत्र तथा लक्ष्मण के सगे भाई थे । इनका विशेष प्रेम भरत पर था । इनकी स्त्री का नाम श्रुतकीर्ति था ।
 शत्रुसूदन-(सं०)-शत्रु को नाश करनेवाला, शत्रुघ्न । उ० जयति दाशरथि समर-समरथ सुमित्रासुवन शत्रुसूदनं रामं भरत बंधो । (वि० ३८)
 शत्रुघ्न-दे० 'शत्रुसूदन' ।

शत्रुसाल-दे० 'शत्रुसूदन' ।
 शपथ-(सं०)-१. कसम, सौगंद, २. प्रतिज्ञा, प्रण, ३. शाप ।
 शब्द-(सं०)-१. ध्वनि, नाद, रव, वह जो कान से आद्य
 हो । तर्कशास्त्र में शब्द गुण के २४ भेदों में एक है । २.
 बचन, बोल ।
 शब्दब्रह्म-(सं०)-१. वेद, श्रुति, २. ब्रह्मा । उ० १. शांत
 निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुण शब्द-ब्रह्मैक परब्रह्म ज्ञानी ।
 (वि० ५७)
 शम-(सं०)-१. शांति, चैन, २. मोक्ष, ३. मन को विषयों
 की ओर से रोकना, ४. क्षमा, ५. उपचार, दवा । उ० १.
 सत्य-शम-दम-दया-दान-शीला । (वि० ४४)
 शमन-शमन करनेवाले को, नाशक को । उ० वंदे ब्रह्मकुलं
 कलंक शमनं श्री राम भूप प्रियम् । (मा० ३।१। श्लो० १)
 शमन-(सं०)-१. दूर करना, शांत करना, २. शमन करने-
 वाला, दूर करनेवाला । उ० २. जयति ऋषि-मख-पाल,
 शमन सज्जन शाल, शापवश-मुनि बधू-पापहारी । (वि०
 ४३) शमनि-संहार करनेवाली, शांत करनेवाली ।
 शयन-(सं०)-१. निद्रा लेना, सोना, २. शैया, सेज, पलंग,
 ३. सोनेवाले । उ० २. नील पर्यंक कृत शयन । (वि० १८)
 शर-(सं०)-१. बाण, तीर, २. सरकंडा, सरपत । उ० १.
 चर्म अस्त्र शूल धर, डमरु शर चाप कर । (वि० ११)
 शरणा-(सं०)-बाण से, तीर से ।
 शरणा-(सं०)-१. बचाव, रक्षा, २. घर, मकान, ३. आश्रम,
 सहारा, ४. शरणागत । उ० ४. दास तुलसी शरणा सानु-
 कूलं । (वि० १२)
 शरद-(सं०)-एक ऋतु जिसमें श्वर और कार्तिक के महीने
 होते हैं ।
 शरम-(फ्रा० शर्म)-लाज, हया ।
 शरासन-(सं०)-धनुष, चाप । उ० पाणौ बाण शरासनं कटि
 लसत्सूचीर भारं वरम् । (मा० ३।१। श्लो० २)
 शरीर-शरीर में । उ० मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं ।
 (मा० ७।१०।३) शरीर-(सं०)-देह, बदन, गात ।
 शर्करा-(सं०)-चीनी, शक्कर ।
 शर्म (१)-(फ्रा०)-लाज, लज्जा ।
 शर्म (२)-(सं०)-कल्याण, सुख । उ० अंभोजकर-चक्रधर
 तेज-बल शर्म-राशी । (वि० ६०)
 शर्व-(सं०)-संहारकर्ता । उ० शर्वः सर्वगतः शिवः शशि-
 निभः श्री शंकर पातु माम् । (मा० २।१। श्लो० १)
 शर्व-(सं०)-संहार करनेवाला, शंकर ।
 शर्वरी-(सं०)-१. रात, निशा, २. स्त्री, ३. हल्दी । उ०
 १. सघन-तम-घोर-संसार-भर-शर्वरी । (वि० ५५)
 शर्वरीनाथ-दे० 'शर्वरीश' ।
 शर्वरीश-(सं०)-चंद्रमा । उ० मंगल-मुद-सिद्धि सदनि, पर्व
 शर्वरीश-वदनि । (वि० १६)
 शव-(सं०)-लाश, मुर्दा ।
 शवर-(सं०)-कोरू किरात आदि जंगली जातियाँ ।
 शवरी-(सं०)-प्रसिद्ध भीलनी स्त्री जिसने जूटे बेरों से
 राम का स्वागत किया था ।
 शशांक-(सं०)-चंद्रमा, शशि । उ० गंगा शशांकं प्रियम् ।
 (मा० ६।१। श्लो० २)

शशि-(सं० शशिन्)-चंद्रमा । उ० शर्वः सर्वगतः शिवः
 शशिनभः । (मा० २।१। श्लो० १)
 शशिन-दे० 'शशि' ।
 शशी-दे० 'शशि' ।
 शस्त-(सं०)-प्रशंसित ।
 शस्त्र-(सं०)-१. हथियार, आयुध, २. उपाय । उ० १.
 तस कांचन-वस्त्र शस्त्र विद्या-निपुण सिद्धसुर-सेव्य पाथोज-
 नाभं । (वि० ५०)
 शांत-(सं०)-१. स्थिर, अचंचल, स्थिरचित्त, २. नम्र,
 विनीत, ३. नवरसों में से एक । उ० १. शांत निरपेक्ष
 निर्मम निरामय अगुण । (वि० ५७)
 शांतये-शांति के लिए । उ० मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरतं
 स्वान्तस्तमः शांतये । (मा० ७।१३।१। श्लो० १) शांति-
 (सं०)-शांत रहने का भाव, स्थिरचित्तता । उ० तावत्सुखं
 शांति संताप नाशं । (मा० ७।६।७)
 शांतिपाठ-(सं०)-किसी कार्य के आरम्भ में मंत्र आदि का
 देवताओं के आशीर्वाद के लिए पढ़ा जाना ।
 शाक-(सं०)-१. हरी तरकारी, सब्जी, २. एक द्वीप का नाम ।
 शाकिनि-(सं०)-डाहून, चुड़ैल ।
 शाखा-(सं०)-डाली, डार ।
 शाखामुग-(सं०)-बंदर ।
 शाप-(सं०)-अभिशाप, सराप, श्राप । उ० शापवश-मुनि-
 बधू-पापहारी । (वि० ४३)
 शायक-(सं०)-बाण, तीर ।
 शारङ्ग-(सं० सारंग)-विष्णु का धनुष । उ० जयति सुभग
 शारंग-सु-निखंग-सायक-सक्ति चारु-चर्मासि-वर वर्मधारी ।
 (वि० ४४)
 शारदी-(सं० शरद)-शरद ऋतु की ।
 शार्ङ्ग-(सं०)-विष्णु का धनुष ।
 शार्ङ्गधर-(सं०)-विष्णु ।
 शार्ङ्गल-(सं०)-१. सिंह, बाघ, २. उत्तम, श्रेष्ठ, ३. राक्षस ।
 उ० १. शंखेद्वाभमतीव सुन्दर तनुं शार्ङ्गल चर्माबरं ।
 (मा० ६।१। श्लो० २)
 शाल-(सं०)-एक वृक्ष ।
 शालि-(सं०)-धान ।
 शाली-(सं० शालिन्)-वाला, भरा ।
 शालूर-(सं०)-मेढक ।
 शाल्मली-(सं० शाल्मलि)-सैमल वृक्ष ।
 शाश्वत-शाश्वत को, अमर को । उ० जगद्गुरुं च
 शाश्वतं । (मा० ३।१। श्लो० ६) शाश्वत-(सं०)-१.
 लगातार, २. नित्य, अमर ।
 शासन-(सं०)-१. आज्ञा, आदेश, २. राज्य, अधिकार, ३.
 दंड ।
 शास्त्र-(सं०)-धर्मग्रंथ, कुछ लोग न्याय, सांख्य, योग आदि
 छः दर्शनों को शास्त्र तथा कुछ लोग शिंघा, कल्प, व्या-
 करण अर्थशास्त्र आदि १८ को शास्त्र कहते हैं ।
 शिशपा-(सं०)-१. शीशम का पेड़, २. अशोक का वृक्ष, ३.
 शरीफा ।
 शिंघा-(सं०)-१. सीख, उपदेश, २. विद्या, पढ़ाई ।
 शिखर-(सं०)-चोटी, शृंग ।

शिखा-(सं०)-चोटी ।
 शिखी-(सं०)-मोर ।
 शिथिल-(सं०)-१. ढीला, २. खुला, ३. सुस्त, थका, ४. निर्बल, ५. विह्वल ।
 शिर-(सं०)-सिर, कपाल । शिरसि-सिर पर, कपाल पर ।
 उ० शिरसि संकुलित कलजूट पिंगल जटा । (वि० ११)
 शिरा-(सं०)-नाड़ी, नस ।
 शिरोमणि-(सं०)-उच्च, श्रेष्ठ ।
 शिला-(सं०)-१. पत्थर, पाषाण, २. गौतमी, अहल्या ।
 शिलीमुख-(सं०)-१. नीर, २. भौरा, अमर ।
 शिल्प-(सं०)-कला, विद्या, कारीगरी, हुनर ।
 शिवः-दे० 'शिव' । उ० २ शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्री शंकरः पातुमाम् । (मा० २।१। श्लो० १) शिव-(सं०)-१. शंकर, महादेव, २. कल्याण करनेवाले, ३. मंगल, कल्याण । शिवकरं-कल्याणकारी । उ० पुष्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्ति-प्रदं । (मा० ७। अंतिम श्लो०)
 शिवि-(सं०)-एक पौराणिक धर्मात्मा राजा जो अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध हैं ।
 शिविर-(सं०)-छावनी, पड़ाव, रावटी, तंबू ।
 शिशुपाल-(सं०)-एक राजा जो कृष्ण की बूढ़ा के पुत्र थे ।
 शिष्ट-(सं०)-सदाचारी, शीलवान, सभ्य ।
 शिष्य-(सं०)-जो शिचा ग्रहण करे, विद्यार्थी, चेला ।
 शीघ्र-(सं०)-तुरंत, सत्वर, जल्द ।
 शीत-(सं०)-१. ठंडा, सदै, २. जाड़ा, सर्दी ।
 शीतल-(सं०)-१. ठंडा, सदै, २. शांत, स्थिर ।
 शीर्ष-(सं०)-शीश, सर, माथा ।
 शील-(सं०)-१. उत्तम स्वभाव, शिष्टता, २. लज्जा, संकोच, ३. वाला, प्रवृत्त । उ० ३. कृपालु शील कोमलं । (मा० ३।४। श्लो० १)
 शीश-(सं०)-सर, कपाल । उ० सहस्र शीशावली स्रोत सुरस्वामिनी । (वि० १८)
 शुभ-(सं०)-एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था । उ० शुभ निःशुभ कुंभीश रणकेशरिणि । (वि० १५)
 शुक्र-(सं०)-१. तोता, २. शुक्रदेव मुनि ।
 शुक्र-(सं०)-१. शुक्रवार, २. शुक्राचार्य जो दैत्यों के गुरु थे । ३. वीर्य, ४. अग्नि ।
 शुक्ल-(सं०)-श्वेत, सफेद ।
 शुचि-(सं०)-१. पवित्र, शुद्ध, २. सफेद, ३. निष्कपट, झलहीन । उ० १. पटपीत मानहु तद्वित रुचि शुचि नौमि जनकसुता-चरं । (वि० ४५)
 शुचिता-(सं०)-पवित्रता ।
 शुद्ध-(सं०)-१. स्वच्छ, पवित्र, २. निर्दोष, अवगुण रहित, ३. निष्कपट, झलरहित ।
 शुद्धता-(सं०)-पवित्रता ।
 शुद्धि-(सं०)-शोधन, सफाई ।
 शुन्य-(सं०)-रिक्त, खाली ।
 शुभं-मंगलमय, शुभ । उ० माया-मोह मलापहं सुविमलं प्रेमाक्षरं शुभम् । (मा० ७। अंतिम श्लो०) शुभं-(सं०)-

१. मंगल, कल्याण, भला, २. श्रेष्ठ, उत्तम, ३. छाग, बकरा ।
 शुभ्र-(सं०)-१. निर्मल, स्वच्छ, सफेद, २. पवित्र, शुद्ध ।
 शुषेण-(सं०)-एक वैद्य जिन्होंने शक्ति लगाने के बाद लक्ष्मण का उपचार किया था । बालि की स्त्री तारा इनकी पुत्री थी ।
 शुष्क-(सं०)-सूखा, नीरस ।
 शूकर-(सं०)-ब्राह्म, सूअर । शूकरी-मादा सूअर ।
 शूद्र-(सं०)-चौथा वर्ण ।
 शूर-(सं०)-वीर, बहादुर ।
 शूरता-(सं०)-वीरता, बहादुरी ।
 शूर्प-(सं०)-सूप, छाज ।
 शूर्पणखा-(सं०)-एक प्रसिद्ध राक्षसी जो रावण की बहन थी । लक्ष्मण ने इसके नाक कान काटे थे । इसके नाखून सूप की तरह थे ।
 शूल-(सं०)-१. बरछे की तरह का एक अस्त्र, २. दर्द, ३. झंडा, पताका, त्रिशूल । उ० १. चर्म-असि शूलधर । (वि० ११) २. दे० 'शूलिन' ।
 शूलिन-(सं०)-त्रिशूलधारण करनेवाले । उ० लोकनाथं शोकशूल निर्मूलिनं, शूलिनं मोहतम-भूरि-भातुं । (वि० १२)
 शूलिन-(सं०)-त्रिशूलधारी शंकर ।
 शृंगला-(सं०)-१. जंजीर, २. बेड़ी, ३. क्रम, सिलसिला, ४. कतार, श्रेणी । उ० २. मोह शृंगला छुटिहि तुम्हारे छूरे । (वि० ११४)
 शृंग-(सं०)-१. सींग, २. पहाड़ की चोटी, शिखर ।
 शृंगवेरपुर-(सं०)-एक प्राचीन स्थान जहाँ राम के समय में निषादराज की राजधानी थी । यह स्थान प्रयाग के पास है ।
 शृंगार-(सं०)-१. बनाव सजना, साज-बाज । शरीर के शृंगार १६ प्रकार के कहे गये हैं २. काव्य का एक रस । उ० २. जयति शृंगार-सर-तामरस-दाम-द्युति देह । (वि० ४४)
 शृंगी-(सं०)-शृंगिन्-एक प्रसिद्ध ऋषि जो लोमश के शिष्य थे । इन्हीं के शाप से परीक्षित को सर्प ने काटा था ।
 शृगाल-(सं०)-गीदड़, सियार ।
 शेखर-(सं०)-१. सिर, माथा, कपाल, २. मुकुट, किरीट, ३. सिर पर रक्खी जानेवाली माला ।
 शेष-(सं०)-१. बची, बाकी, २. सर्पराज जिनके सहस्र फन कहे गये हैं । ३. लक्ष्मण, ४. बलराम । उ० २. शेष सर्वेश आसीन आनंदवन, प्रणत-तुलसीदास-त्रासहारी । (वि० ११)
 शैल-(सं०)-पर्वत, पहाड़ । उ० हेमशैलाभवेहं दनुजवन कृशातुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् । (मा० १।१। श्लो० ३)
 शैलकुमारी-(सं०)-पार्वती ।
 शैव-(सं०)-शिव का भक्त ।
 शैवाल-(सं०)-सेवार ।
 शैशव-(सं०)-लबकंपन ।
 शोक-(सं०)-चिंता, सोच, खेद, दुःख । उ० जरत सुर

असुर नरलोक शोकाकुलं मृदुलचित्त अजित कृत गरल पानं । (वि० ११)
 शोण-(सं०)-१. शोणभद्र नाम का महानद, २. एक फूल, ३. लाल रंग ।
 शोणभद्र-(सं०)-नदी विशेष ।
 शोणित-(सं०)-खून, रुधिर ।
 शोथ-(सं०)-सूजन, फूलना ।
 शोध-(सं०)-१. खोज, अनुसंधान, तलाश, २. बदला, ३. श्रद्धा चुकाना ।
 शोभा-(सं०)-सुंदरता, सौंदर्य, कांति, दीप्ति । उ० आज विदुषापगा-आप पावन परम मौलिमालेव शोभा विचित्रं । (वि० ११)
 शोषक-(सं०)-१. शोषण करनेवाला, सोखनेवाला, २. वायु, ३. सूर्य ।
 शौर्य-(सं०)-१. शूरता, वीरता, २. बल, पराक्रम ।
 शमशान-(सं०)-मरघट, मसान ।
 श्याम-(सं०)-१. काला, साँवला, २. कृष्ण, ३. रात, ४. हल्दी । उ० १. श्याम-नव-तामरस-दाम-श्रुति वपुष-कृषि । (वि० ६०)
 श्यामकर्ण-(सं०)-काले कान का घोड़ा ।
 श्यामल-(सं०)-श्यामवर्ण, साँवला । उ० नीलांबुज श्यामलकोमलांगं । (मा० २।१।श्लो० ३)
 श्यामा-(सं०)-१. सोलह वर्षीया सुंदरी, २. पत्नी-विशेष, ३. यमुना नदी, ४. रात, ५. साँवली ।
 श्येन-(सं०)-बाज़ ।
 श्रंग-दे० 'श्रंग' ।
 श्रद्धा-(सं०)-आदर, विश्वास मिश्रित सम्मान का भाव । उ० भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ । (मा० १।१।श्लो० २)
 श्रम-(सं०)-१. परिश्रम, मेहनत, २. थकावट, ३. कष्ट । उ० ३. भवश्रम सोषक तोषक तोषा । (मा० १।४।३।२)
 श्रमहारी-थकावट दूर करनेवाला । उ० तैं मैनाक होहि श्रमहारी । (मा० २।१।५)
 श्रमकण-दे० 'श्रमबिंदु' ।
 श्रमबिंदु-(सं०) श्रमबिंदु-पसीना । उ० भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए । (मा० १।२।३।२)
 श्रमित-(सं०)-थका, श्रांत । उ० श्रमित भूप निद्रा अति आहं । (मा० १।१७।१)
 श्रवण-(सं०)-१. कान, २. सुनना, ३. टपकना, गिरना, ४. कान से भगवान के गुण सुनना । इसका नवधा भक्ति में स्थान है । उ० २. जयति रामायण श्रवण-संजात-रोमांच लोचन सजल-सिथिल बानी । (वि० २६)
 श्रवन-दे० 'श्रवण' । उ० १. श्रवन-नयन-मन मग लगे । (वि० २७।६) ४. श्रवनादिक नव भक्ति इकाहीं । (मा० ३।१।४)
 श्रवनपूर-(सं०) श्रवण + फुल्ल-कान का गहना, कर्णफूल । उ० जब ते श्रवनपूर महि लसेऊ । (मा० ६।१।४।३)
 श्रांत-(सं०)-थका, श्लथ ।
 श्राद्ध-(सं०)-पिंडदान, मृत्यु के बाद का शास्त्रोक्त तर्पण आदि ।

श्राप-(सं०) श्राप-सराप, अभिशाप । उ० सुभिरत हरिहि श्राप गति बाधी । (मा० १।१२।५।२)
 श्री-(सं०)-१. लक्ष्मी, २. संपत्ति, धन, ३. कल्याण, ४. सौंदर्य, ५. वाणी । उ० १. श्री बिमोह जिमु रूपु निहारी । (मा० १।१३।०।२) ४. सकल-सीभाग्य-संयुक्त त्रैलोक्य श्री । (वि० ६१)
 श्रीखंड-(सं०)-चंद्रन । उ० बेनु करील श्रीखंड बसंतहि दूषन मूषा लगावै । (वि० ११४)
 श्रीनिवास-(सं०)-१. विष्णु, २. वैकुण्ठ । उ० १. जहँ बस श्रीनिवास श्रुति माथा । (मा० १।१२।२।२)
 श्रीपति-(सं०)-विष्णु । उ० विश्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवन-पति वेद-बिदित यह लीख । (वि० ४८)
 श्रीफल-(सं०)-१. बेल, सिरफल, २. नारियल । उ० १. श्रीफल कुच कंचुकि लताजाल । (वि० १४)
 श्रीमत्-(सं०)-श्रीमान्, शोभायुक्त । उ० श्रीमच्छम्भु-मुखदु सुंदरवरे संशोभितं सर्वदा । (मा० ३।१।श्लो० २)
 श्रीरंग-दे० 'श्रीरमण' । उ० देहि सत्संग निज अंग श्रीरंग, भवभंग-कारन, सरन-सोकहारी । (वि० ५७)
 श्रीरमण-(सं०)-लक्ष्मी के पति, विष्णु ।
 श्रीरमन-दे० 'श्रीरमण' । उ० तीज त्रिगुन-पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद । (वि० २०३)
 श्रीवत्स-(सं०)-१. विष्णु के वत्सस्थल का चिह्न, २. विष्णु । उ० १. सुभग श्रीवत्स केयूर कंकनहार किंकिनी-रटनि कटितट रसालं । (वि० ५०)
 श्रीहत-तेजहीन, निष्प्रभ । उ० श्रीहत भए भूप धनु दूटे । (मा० १।२।६।३।३)
 श्रुत-(सं०)-सुना हुआ । उ० तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी । (मा० १।१।१।४।३)
 श्रुति-(सं०)-१. वेद, २. कान, ३. सुनना, ४. ध्वनि, शब्द । उ० १. जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा । (मा० १।१।२।२।२) २. कल कपोल श्रुति कुंडल लोला । (मा० १।२।४।३।२)
 श्रेणि-दे० 'श्रेणी' ।
 श्रेणी-(सं०)-१. पंक्ति, कतार, २. समूह, ३. गली, बीथी ।
 श्रेनि-दे० 'श्रेणी' ।
 श्रेनी-दे० 'श्रेणी' । उ० १. जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी । (मा० १।२।३।२।१) २. देव दनुज किन्नर नर श्रेनी । (मा० १।४।४।२)
 श्रेयस्-(सं०)-कल्याणकर । श्रेयस्करि-कल्याण करनेवाली को । उ० सर्वश्रेयस्करि सीता नतोऽहं रामवत्सलभाम् । (मा० १।१।श्लो० ५)
 श्रेष्ठ-(सं०)-१. उच्च, अच्छा, उत्तम, २. जेठ, बड़ा ।
 श्रोता-(सं०) श्रोत-सुननेवाला, सुनवैया । उ० ते श्रोता बक्ता समसीला । (मा० १।३।०।३)
 श्रोत्र-(सं०)-कान, कर्ण ।
 श्लाघा-(सं०)-१. प्रशंसा, तारीफ, २. इच्छा, चाह ।
 श्लेष-(सं०)-१. मिलाव, संयोग, २. एक अलङ्कार ।

श्वपच-(सं०)-चांडाल, डोम । उ० श्वपच खल भित्तल यवनादि हरिलोकगत नाम बल विपुल मति मलिन परसी । (वि० ४६)

श्वशुर-(सं०)-पति या पत्नी का पिता ।

श्वास-(सं०)-१. साँस, दम, २. प्राण, प्राणवायु ।

श्वेत-(सं०)-उज्ज्वल, शुक्ल, सफ़ेद ।

ष

ष-(सं०)-१. श्रेष्ठ, उत्तम, २. केश, बाल, ३. हृदय, उर ।

षट्-दे० 'षट्' । उ० मागोसि नोद मास षट् केरी । (मा० ११७७।४) षटविकार-(सं० षट् + विकार)-काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और अहंकार, ये छः विकार कहे जाते हैं । उ० षट विकार जित अनघ अकामा । (मा० ३।४५।४)

षटरस-(सं० षट् + रस)-मीठा, तीता, खट्टा, खारा, कड़ुवा और कसैला ये छः व्यंजन के रस हैं । उ० षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै । (वि० १२३)

षट्पद-(सं० षट्पद)-अमर, भौरा ।

षट्बदन-(सं० षट्बदन)-महादेव के पुत्र कार्तिकेय । उ० तब जनमेउ षट्बदन कुमारा । (मा० ११०३।४)

षट्-(सं०)-गिनती में ६, छः ।

षडंग-(सं० षट् + अंग)-वेद के ६ अंग - शिक्षा, कल्प, न्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद ।

षडभि-(सं०)-जिसके छः चरण हों । अमर, भौरा । उ० चिक्कन विकुरावली मनो षडभि-मंडली । (गी० १।२२)

षडवर्ग-दे० 'षडवर्ग' ।

षडानन-(सं०)-दे० 'षट्बदन' । उ० जय गजबदन षडानन माता । (मा० १।२३।३)

षडवर्ग-छः विकार । दे० 'षटविकार' । उ० छुठि षडवर्ग करिय जय जनकसुता पति लागि । (वि० २०३)

षडानन-दे० 'षडानन' ।

षण्मुख-दे० 'षण्मुख' ।

षण्मुख-(सं० षट् + मुख)-कार्तिकेय । दे० 'षट्बदन' । उ० षण्मुख जन्मु सकल जगजाना । (मा० ११०३।४)

षठ्-(सं०)-छठ्ठा, छठवाँ ।

षीर-(सं० क्षीर)-१. दूध, २. पानी ।

षेम-(सं० क्षेम)-कुशल, कल्याण ।

षेमा-दे० 'षेम' ।

षोडश-(सं०)-सोलह, १६ ।

षोडस-(सं० षोडश)-सोलह, १६ । उ० राकापति षोडस उवाहँ, तारागन समुदाह । (दो० ३८६)

स

सं-(सं० सम्)-१. सम्यक् प्रकार से, २. कल्याण, भला । संक-(सं० शंका)-१. संदेह, शंका, २. भय, डर । उ० १. सोच बिकल कपि भालु सब, दुहँ दिसि संकट संक । (प्र० १।१।२)

संकट-(प्रा०)-विपत्ति, आफ़त, मुसीबत, क्लेश, दुःख । उ० जयति गतराज-दातार, हरतार-संसार-संकट, दनुज-वर्षहारी । (वि० २८) संकटनि-संकटों का समूह । उ० सोच संकटनि सोच संकट परत, जर । (क० ७।७५) संकटहारी-संकटों को हरनेवाला, दुःखों को दूर करनेवाला । उ० सुमिरे संकटहारी, सकल सुमंगलकारी, पालक कृपालु आपने पत के । (वि० ३७)

संकर-दे० 'संकर' । संकर (१)-(सं० शंकर)-१. कल्याणकारी, २. शिव, महादेव । उ० २. संकर सरोष महामारि ही तै जानियत । (क० ७।६३) संकरहि-महादेव को, शंकर को । उ० जिमि संकरहि गिरिराज गिरिजा, हरिहि श्री सागर वई । (जा० १।६२) संकरहि-१. शंकर से, २. शिव को । उ० १. तहँ सती संकरहि बिबाहीं । (मा० १।६८।३)

संकर (२)-(सं०)-मिला हुआ, दो के मिश्रण से बना हुआ ।

संकल्प-दे० 'संकल्प' । उ० २. कन्यादान बिधान संकल्प कीन्हेउ । (जा० १।६१)

संकलित-(सं०)-१. इकट्ठा किया हुआ, संगृहीत, २. चुना हुआ । उ० १. दीनता प्रीति संकलित ऋदुबचन सुनि । (गी० ५।४३)

संकल्प-(सं०)-१. दृढ़ विचार, पक्का इरादा, प्रण, प्रतिज्ञा, इकरार, २. किसी पुण्य कार्य को आरंभ करने के पूर्व एक विशिष्ट मंत्र का उच्चारण करते हुए अपना दृढ़ विचार प्रकट करना ।

संकल्पि-संकल्पपूर्वक दान करके । दे० 'संकल्प' । उ० संकल्पि सिय रामहि समर्पी सील सुख सोभा मई । (जा० १।६२)

संकष्ट-(सं० सं + कष्ट)-सब प्रकार का कष्ट, आपदा, क्लेश । उ० भक्त संकष्ट अवलोकि पितुवाक्य-कृत गमन किय गहन वैदेहि-भर्ता । (वि० ५८)

संका-(सं० शंका)-१. संशय, संदेह, २. भय, डर ।
 उ० २. देखि प्रताप न कपि मन संका । (मा० १।२०।४)
 संकाश-(सं०)-समान, सदृश । उ० तुषाराद्रि संकाश गौरं
 गभीरं । (मा० ७।१०।२३)
 संकास-दे० 'संकाश' ।
 संकि-(सं० शंका)-शंकित होकर, डरकर । उ० साँसति
 संकि चली, डरपे हुते किंकर ते करनी मुख मोरे । (क०
 ७।४८)
 संकित-(सं० शंकित)-डरा हुआ, शंकित । उ० साहिब
 महेस सदा, संकित रमेस मोहिं । (क० १।२१)
 संकुचित-(सं०)-सिकुड़ा हुआ, संकोच युक्त । उ० सेष
 संकुचित संकित पिनाकी । (क० ६।४४)
 संकुल-(सं०)-१. संकीर्ण, घना, २. भरा हुआ, आपूर्ण,
 ३. पूरा, समस्त, बिलकुल, ४. युद्ध, लड़ाई, ५. भीड़, ६.
 असंगत वाक्य । उ० २. काल कलि-पाप-संताप-संकुल-
 सदा-प्रनत-तुलसीदास-तात-भाता । (वि० २८)
 संकुलित-(सं०)-१. भरा हुआ २. घना, ३. बँधा हुआ ।
 उ० ३. शिरसि संकुलित कलकूट पिंगल जटा-पटल शत-
 कोटि विद्युच्छटाभं । (वि० ११)
 संकुला-(सं०)-भरी हुई । संकुले-भरे हुए में, पूर्ण में ।
 उ० वितर्क बीच संकुले । (मा० ३।४।४०७)
 संकेत-(सं०)-इशारा, इंगित । उ० सुरक्ष जानकी जानि
 कपि, कहे सकल संकेत । (प्र० १।३।१)
 संकेला-(सं० सकल)-एकत्र किया । उ० प्रथम कुमत करि
 कपट्टु संकेला । (मा० २।३०।२) संकेलि-एकत्र करके,
 बटोर करके । उ० बिरची विधि संकेलि सुषमा सी । (मा०
 २।२३।७३)
 संकोच-(सं०)-१. सिकुड़ने की क्रिया, खिंचाव, २. लज्जा,
 शर्म, ३. भय, ४. आगा-पीछा, हिचकिचाहट, ५. कमी,
 न्यूनता । उ० ५. नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल
 संकोच । (मा० २।२५।२)
 संकोची-१. संकोच करनेवाला, लज्जायुक्त स्वभाववाला,
 २. संकोच में डाल दिया । उ० १. चुपहि रहे रघुनाथ
 संकोची । (मा० २।२७।२) २. बार बार गहि चरन
 संकोची । (मा० २।१२।३)
 संकोचु-दे० 'संकोच' ।
 संकोचू-दे० 'संकोच' । उ० २. छाड़ि न सकहि तुम्हार
 संकोचू । (मा० २।४।४)
 संक्षेप-(सं०)-थोड़े में, मुहत्तर । संक्षेपहिं-थोड़े में, थोड़े
 में ही ।
 संख-दे० 'शंख' । उ० आँकि मृदंग संख सहनाई । (मा०
 १।२६।१)
 संग-दे० 'संग (१)' । उ० १. खग मृग मुदित एक संग
 बिहरत सहज बिषम बद्ध बैर विहाई । (गी० २।४६)
 संग-(१)-(सं०)-१. साथ, २. सोहबत, मेल, ३. विषयों के
 प्रति होनेवाला अनुराग, ४. वासना, आसक्ति, ५. वह
 स्थान जहाँ नदियाँ मिलती हैं । उ० १. पुरवासी नृप
 रानिन संग दिये मन । (जा० ३।१) ४. नक्र-रागादि-
 संकुल मनोरथ सकल संग संकल्प-बीची-बिकारम् । (वि०
 ५८)

संग (२)-(फ़ा०)-पत्थर ।
 संगत-(सं० संगति)-१. साथ, मित्रता, २. उचित बात ।
 संगति-(सं०)-१. संग, साथ, २. मैत्री, दोस्ती । उ० १.
 प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी ।
 (मा० १।१०।४० १)
 संगम-(सं०)-१. दो वस्तुओं के मिलने की क्रिया, मिलाप,
 संयोग, २. नदियों के मिलने का स्थल । उ० १. संगम
 करहि तलाव तलाई । (मा० १।८।११)
 संगमु-दे० 'संगम' । उ० २. संगमु सिंहासन सुठि सोहा ।
 (मा० २।१०।२४)
 संग-दे० 'संग (१)' । उ० ४. बैठे हृदयँ छादि सब संग ।
 (मा० ३।८।४)
 संगिनि-साथ देनेवाली । उ० मातु विपति संगिनि तैं
 भोरी । (मा० १।१२।१)
 संगिनौ-मित्र, संगी, साथी । उ० जानकी कर सरोज
 लालिती चितकस्य मनभृंग संगिनौ । (मा० ७।१।२।०२)
 संगी-(सं० संग)-साथी, मेली, मित्र । उ० निज संगी निज
 सम करत, दुजन मन दुख दून । (वि० १८)
 सँगु-दे० 'संग' । उ० १. सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु
 कि रहिहि धाम । (मा० २।४६)
 संग्या-दे० 'संज्ञा' । उ० पेखि रूप संग्या कहव गुन सु-
 बिबेक बिचार । (स० ४६३)
 संग्रह-(सं०)-एकत्रीकरण, बटोरना, ग्रहण । उ० संग्रह
 त्याग न बिनु पहिचाने । (मा० १।६।१)
 संग्रहिय-जमा करना चाहिए, सुरक्षित रखना चाहिए । उ०
 का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु बिबेक बिचारि । (दो०
 ३।५) संग्रहे-संग्रह करने से, ग्रहण करने से । उ० जग
 हँसिहै मेरे संग्रहे, कत एहि डर डरिप । (वि० २७१)
 संग्रहो-१. अपना लिया, अपने साथ रक्खा, २. संग्रह
 किया । उ० १. को तुलसी से कुसेवक संग्रहो, सठ सब
 दिन साइँ द्रोहै । (वि० २३०)
 संग्रही-(सं० संग्रहिन्)-१. एकत्र करनेवाला, संग्रह करदे-
 वाला, २. भविष्य के लिए रखनेवाला । उ० २. नहिं
 जाचत नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं खेइ । (दो०
 २६०)
 संग्राम-(सं०)-युद्ध, लड़ाई । उ० जिन्हके गुमान सदा
 सालिम संग्राम को । (क० १।६)
 संघ-(सं०)-१. समूह, ढेर, २. दल । संघानाम्-समूहों
 के । उ० वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि ।
 (मा० १।१।२।० १)
 संघट-(संघटन)-१. संयोग, मिलन, संघटन, जमघट, जमा-
 वड़ा, २. संघर्ष, रगड़, झगड़ा, ३. दैवयोग, संयोग, इत्तफ़ाक,
 ४. व्यूहाकार । उ० १. सकल संघट पोच, सोच बस
 सर्वदा दास तुलसी बिषय-गहन अस्तम् । (वि० ५६) ४.
 सुभट-मकंद-भालु-कटक-संघट सजत । (वि० ४३) संघट-
 विधाई-(सं० संघटन + विश्वान्)-एकत्र करनेवाला । उ०
 रिच्छ-कपि-कटक-संघटविधाई । (वि० २५)
 संघटन-दे० 'संघट' ।
 संघटित-(सं० संघटन)-टकराते, टकराते हैं । उ० सुर विमान
 हिमभाजु भाजु संघटित परस्पर । (क० १।११)

संघट्ट-(सं०)-१. मिलावट, मिलन, संयोग, २. गढ़न, बनावट, रचना ।
 संघट्टन-१. मिलाना, संयोग, साथ, २. रचना, गढ़ना ।
 संघर्षन-दे० 'संघर्षण' । उ० अति संघर्षन जौ कर कोइ । (मा० ७।११।१।८)
 संघर्षण-(सं०)-रगड़, घिसाव ।
 संघर्षन-दे० 'संघर्षण' ।
 संघात-(सं०)-१. समूह, ढेर, २. संबंध, मेल, साथ । उ० १. दुष्ट विदुधारि-संघात-महिभार-अपहरन अवतार कारन अनूप । (वि० ५०)
 संघाता-दे० 'संघात' । उ० १. सोइ जल अनल अनिल संघाता । (मा० १।७।६)
 संघाती-(संघात)-साथी, साथ देनेवाला, संगी । उ० ब्रह्म जीव सम सहज संघाती । (मा० १।२०।२)
 संघार-दे० 'संहार' ।
 संघारा-१. दे० 'संघार', २. मार डाला । उ० २. अनुज निखाचर कटकु संघारा (मा० १।२०।८।३) संघारि-दे० 'संघारि' ।
 संघारा-सं०संहार १. दे० 'संघार', २. नाश-किया । उ० १. तप बल संघु करहि संघारा । (मा० १।१६।३।२)
 संघारि-मारकर, नाशकर । उ० सकुल संघारि जातुधान धारि, जंबुकादि । (क० ६।२) संघारे-संहार किए, नाश किए । उ० ते सब सुरन्ह समर संघारे । (मा० १।१७।११)
 संचय-(सं०)-समूह, राशि, ढेर ।
 संचरत-(सं० संचरण)-१. उत्पन्न करती है, २. प्रकाशित होती है, ३. फैलती है । उ० ३. सरद चौदनी संचरत चहुँ दिसि आनि । (ब० ४।१)
 संचहि-(सं० संचय)-जमा करती है । उ० जोगिनि भरि भरि खपर संचहि । (मा० ६।८।८।४) संचही-एकत्र करते हैं । उ० कटकटहि जंबुक भूत प्रेत पिसाच सर्पर संचही । (मा० ३।२०।६।१)
 संचार-(सं०)-१. गमन, चलना, भ्रमण, पर्यटन, २. प्रचलन । उ० १. पग अंतर मग अगम जल जलनिधि जल संचार । (स० १।२६)
 संचालन-(सं०)-१. चलाना, परिचालन, २. फैलाना ।
 संचित-(सं०)-एकत्र किया हुआ, इकट्ठा किया हुआ ।
 संछेप-दे० 'संछेप' ।
 संछेप-दे० 'संछेप' । उ० ताते में संछेप बखानी । (मा० १।६।२।२) संछेपहि-दे० 'संछेपहि' । उ० तेहि हेतु मैं बृष-केतु सुत कर चरित संछेपहि कहा । (मा० १।१०।३।६।१)
 संजम-(सं० संयम)-नियम, परहेज, अथवा वस्तुओं से दूर रहना । उ० तुलसी सब संजमहीन सबै इक नाम अधार सदा जन को । (क० ७।८७)
 संजात-(सं०)-१. उत्पन्न, पैदा, २. पुत्र, ३. प्राप्त । उ० १. श्रीमिजा-दुःख-संजात-रोषांतकृत जातनाजतु-कृत-जातु-धानी । (वि० २।६)
 संजाता-दे० 'संजात' ।
 संजीवनी-(सं०)-एक प्रकार की कल्पित औषधि । कहते हैं कि इसके सेवन से मरा हुआ मनुष्य जी उठता है ।

उ० जयति संजीवनी-समय-संकट हनुमान धनु बान महिमा बखानी । (वि० ३।६)
 संजुक्त-(सं० संयुक्त)-सहित, समेत । उ० जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे । (मा० ७।१३।६।१)
 संजुग-(सं० संयुत)-संग्राम, युद्ध । उ० जानत जे रीति सब संजुग समाज की । (क० ६।३०)
 संजुत-(सं० संयुक्त)-जुड़ा हुआ, साथ । उ० सुति-संमत हरि-भक्ति पथ, संजुत-विरति-विवेक । (दो० ५५५)
 सँजोइल-(सं० सज्जा)-सावधान, तैयार, सुसज्जित ।
 सँजोऊ-(सं० सज्जा)-सजाओ, ठीक करो । उ० बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ । (मा० २।१३।१०।१) सँजोया-सजाया, परोसा । सँजोवन-सामान सजाने, तैयारी करने । उ० अस कहि भेंट सँजोवन लागे । (मा० २।१३।३।१)
 संजोग-(सं० संयोग)-भौका, अवसर, संयोग । उ० अस संजोग इस जब करइ । (मा० ७।११।७।४)
 सँजोगू-संयोग, अवसर । उ० जौ विधि बस अस बने सँजोगू । (मा० १।२२।२।४)
 संज्ञा-(सं०)-नाम ।
 सँडस-(सं० संदंश)-सँडसी, छुड़ों की बनी विशेष वस्तु जिससे चूल्हे पर से गरम बर्तन आदि उतारते हैं ।
 संत-(सं० सत्)-साधु, संन्यासी, विरक्त, भक्त । उ० संत संतापहर विश्व विश्राम कर राम कामारि-अभिराम कारी । (वि० ५५) संतन-संत का बहुवचन, संतों । उ० पवनतनय संतन-हितकारी । (वि० ३।६) संतराज-संतों में श्रेष्ठ । उ० संतराज सो जानिए, तुलसी या सहिदानु । (बै० ३।३)
 संतत-(सं०)-सर्वदा, लगातार, निरंतर । उ० महामोह सरिता अपार महँ संतत फिरत बह्यो । (वि० ३।२)
 संतति-(सं०)-१. बालबच्चे, संतान, २. प्रजा, रिआया ।
 संतस-(सं०)-१. तपा, जला, दग्ध, २. दुखी, पीड़ित, ३. थका । उ० १. रामविरहाके संतस-भरतादि नरनारि-सीतलकरन-कल्प साखी । (वि० २।७)
 संताप-(सं०)-१. जलन, आँच, २. दुःख, कष्ट, व्यथा, ३. मानसिक कष्ट । उ० २. देहि अवलंब करकमल कमला-रमन दमनदुख समन-संताप-भारी । (वि० ५।८) ३. सोवत सदने सहै संसृति-संताप रे । (वि० ७।३)
 संतुष्ट-(सं०)-जिसको संतोष हो गया हो, तृप्त । उ० सत्य-कृत सत्यरत सत्यव्रत सर्वदा पुष्ट संतुष्ट संकष्टहारी । (वि० ५।३)
 संतोष-(सं०)-संतुष्टि, सब, कनायत, तोष, तुष्टि । उ० विगत दुखदोष, संतोष सुख सर्वदा, सुनत गावत राम-राज लीला । (वि० ४।४)
 संतोषि-संतोष देकर, तुष्ट करके । उ० जाचक सकल संतोषि संकर उमा सहित भवन चले । (मा० १।१०।२।६।१)
 संतोषु-दे० 'संतोष' ।
 संतोषु-दे० 'संतोष' । उ० रामनाम-प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम संतोषु । (वि० १।५।६)
 संत्रास-(सं० + त्रास) सब प्रकार का भय, डर । उ० त्यागि सब आस संत्रास भवपास-असि-निसित हरिनाम जपु दास तुलसी । (वि० ४।६)

संदग्ध-(सं०)-अच्छी तरह जला हुआ । उ० जयति धर्मासु
संदग्धसंपति-संकुल-सदा-मनत तुलसीदास तात-माता ।
(वि० २८)
संदीपनी-(सं०)-उद्दीप्त करनेवाली । उ० यह बिराग-संदी-
पनी, सुजन सुचित सुनि लेहु । (वि० ६२)
संदेश-(सं०)-हाल, खबर, संवाद ।
संदेस-(सं० संदेश)-हाल, खबर, संवाद । उ० तुव दरसन,
संदेस सुनि हरि को बहुत भई अवलंब प्रान की । (गी०
१११)
संदेस-दे० 'संदेस' । उ० पितु संदेसु सुनि कृपानिधाना ।
(मा० २१६७१)
संदेस-दे० 'संदेस' । उ० कह सुमंत्रु पुनि भूप संदेसु ।
(मा० २१६६३)
संदेह-दे० 'संदेह' ।
संदेह-(सं०)-संशय, शंका, शक, अनिश्चय । उ० शोक-
संदेह-पाथोद-पटलानिलं । (वि० ४६)
संदेहा-दे० 'संदेह' । उ० जाइअ बिनु बोलेहुँ न संदेहा ।
(मा० ११६२३)
संदेह-दे० 'संदेह' । उ० मिलन कठिन मन भा संदेह ।
(मा० ११६८३)
संदोह-(सं०)-समूह, ढेर । उ० सुख संदोह मोह पर ग्यान
गिरा गोतीत । (मा० ११६६१)
संध-(?)-१. प्रतिज्ञा, २. मर्यादा, ३. स्थिति, ४. बैठ-
हुआ, ५. युक्त, ६. प्रतिज्ञावाले । उ० ६. सत्यसंध तुम्ह
रखुकुल माहीं । (मा० २१३०२)
संधान-दे० 'संधाना' उ० भौह कमान संधान सुठान जे
नारि-बिलोकनि-बान तें बाँचे । (क० ७११८)
संधाना-(सं० संधान)-धनुष पर बाण चढ़ाने की क्रिया ।
उ० तुरत कीन्ह नृप सर संधाना । (मा० ११२७१)
संधाने-चढ़ाया, जोड़ा । उ० सुमन चाप निजसर संधाने ।
(मा० ११८७१)
संधानो-(सं० संधानिका)-अँचार, चटनी । उ० पान, पक-
वान बिधि नाना को, संधानो सीधो । (क० १२३)
संधि-(सं०)-१. मेल, मिलाप, जोड़, २. दरार, छेद, ३.
छल, प्रपंच । संधिहि-संधि में । उ० असइ राहु निज
संधिहि पाई । (मा० ११२३८१)
संध्या-(सं०)-१. शाम, साँझ, सायंकाल, २. एक विशेष
प्रकार का मंत्रजाप जो प्रायः प्रातः और सायं किया जाता
है । उ० २. संध्या करन चले दोउ भाई । (मा०
११२३७३)
संन्यासी-(सं०)-विरक्त, साधु । उ० जैसे बिनु बिराग
संन्यासी । (मा० ११२५१२)
संपत्-दे० 'संपत्ति' ।
संपत्ति-(सं० संपत्ति)-धन, दौलत । उ० क्यों कहौ चित्र-
कूट-गिरि संपत्ति महिमा मोह मनोहरताई । (गी० २१४६)
संपत्ति-(सं०)-धन, दौलत । उ० रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख
नित नूतन अघिकाइ । (मा० ११६४)
संपदा-(सं० संपद)-१. धन, दौलत, २. ऐश्वर्य, वैभव ।
उ० १. संपदा सकल मुद मंगल को घर है । (क० ७।
१३६)

संपन्न-(सं०)-१. पूरा किया हुआ, पूर्ण, सिद्ध, २. धनी,
मालदार । उ० १. सब लच्छन संपन्न कुमारी । (मा०
११६७२)
संपाति-(सं०)-एक गीध का नाम जो गहड़ का ज्येष्ठ पुत्र
और जटायु का भाई था । उ० सुनि संपाति बंधु कै करनी ।
(मा० ४१२७६)
संपाती-दे० 'संपाति' । उ० जनु जरि पंख परेउ संपाती ।
(मा० २११४८४)
संपादन-(सं०)-१. करना, पूरा करना, २. प्रदान करना,
३. ठीक करना । उ० २. सुख संपादन समन विषादा ।
(मा० ७१३०११)
संपुट-(सं०)-१. डिब्बा, डिविया, पात्र, २. अंजुलि ।
उ० १. संपुट भरत सनेह रतन के । (मा० २३१६३) २.
सिरु नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किएँ ।
(मा० १३२६११)
संपूर्ण-(सं०)-समस्त, पूरा, परिपूर्ण ।
संप्रति-(सं०)-इस समय ।
संप्रदं-(सं० शं + प्रदं)-कल्याण के दाता ।
संबंध-(सं०)-लगाव, संपर्क, वास्ता ।
संबत-दे० 'संबत्' ।
संबर (१)-(सं० शंबल)-कलेवा, पाथेय, रास्ते का खर्चा ।
उ० संबर निसंबर को, सखा असहाय को । (वि० ६६)
संबर (२)-दे० 'शंबर' । उ० मनहु संबरारि मारि, लखित
मकर-जुग बिचारि । (गी० ७७)
संबलं-दे० 'संबर' । उ० धर्म-कल्पहुमाराम, हरिधाम-पथि
संबलं, मूलमिदमेव एकं । (वि० ४६) संबल-दे०
'संबर' । उ० जे श्रद्धा संबल रहित नहि संतन्ह कर साथ ।
(मा० ११३८)
संबाद-(सं० संवाद)-बातचीत, वार्तालाप । उ० कहिहउँ
सोइ संवाद बखानी । (मा० १३०११)
संबुक-दे० 'शंबुक' । उ० मुक्ता प्रसव कि संबुक काली ।
(मा० २१२६१२)
संभव-(सं०)-१. उत्पत्ति, जन्म, पैदाइश, २. मुमकिन,
होने लायक, ३. उचित, ४. उत्पन्न, पैदा । उ० ४. श्रुति
संभव नाना सुभ कर्मा । (मा० ७१४६१)
संभार-(सं० संभार)-१. रत्ना, बचाव, हिफाजत, सहाय,
मदद, २. स्मरण, सुधि, याद, ३. गणना, गिनती, ४.
सँभालते हैं । उ० १. करि संभार, कोसलराय । (वि०
२२०) ४. सुभिरत सुलभ, दास दुख सुनि हरि चलत
तुरत पट पीत संभार न । (वि० २०६) संभारहिं-१. सँभा-
लते हैं देख-रेख करते हैं । उ० १. सुनु सठ-सदा
रंक के धन ज्यो छन छन प्रभुहिं संभारहिं । (वि० ८५)
संभारा-१. दे० 'सँभार', २. सँभाल लिया । उ० १. रघु-
नायक करहु संभारा । (वि० १२५) संभारि-१. सँभाल-
कर, २. यादकर । उ० २. करि बिलापु रोदति बद्धति
सुता सनेहु संभारि । (मा० ११६६) संभारिए-१. सँभा-
लिये, २. याद कीजिये । उ० २. केसरीकुमार बल आपनो
संभारिए । (ह० २२) संभारिय-दे० 'सँभारिये' । उ०
१. तासों रारि निवारिये, समय सँभारिये आपु । (दो०
४३२) संभारी-१. सँभालकर, २. सजाकर, सुसजित

कर । उ० १. देहु जाहि जोहू चाहिष् सनमानि सँभारी ।
 (गी० ११६) सँभारे-१. सँभालकर, सावधानी से, २.
 सँभाल दिष्ट । उ० १. जे गावहि यह चरित सँभारे ।
 (मा० ११३८१) सँभारेहु-१. सँभाल दिष्ट, २. सँभाल ।
 सँभारो-सँभाला, रचा की । उ० जानत निज महिमा मेरे
 अघ तदपि न साथ सँभारो । (वि० १४) सँभार्यो-१.
 सँभाला, २. स्मरण किया । उ० २. सम दम दया दीन
 पालन सीतल हिय हरि न सँभार्यो । (वि० २०२)
 सँभारन-(सं० सँभार)-सँभालना, सँभालने उ० लगे
 सँभारन निज निज अनी । (मा० ६१५१२) ।
 संभावना-(सं०)-१. कल्पना, भावना, २. किसी बात के
 हो सकने का भाव, सुमकिन होना, ३. दुविधा, संदेह,
 अनिश्चय ।
 संभावित-(सं०)-विख्यात, प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित । उ० संभावित
 कहुँ अपजस लाहू । (मा० २१६१४)
 संभाषन-(सं० संभाषण)-बातचीत, कथोपकथन । उ०
 कियो न संभाषन काहुँ । (वि० २७५)
 संभु-(सं० शंभु)-शंकर, महादेव ।
 संभूत-(सं०)-उत्पन्न, पैदा । उ० जयति अंजनी-गर्भ-अंभोधि
 संभूत-विभु । (वि० २५)
 संभ्रम-(सं०)-१. जल्दी, आतुरता, २. भ्रम, धोखा, ३.
 उस्साह, हौसला, ४. घबराहट व्याकुलता, ५. आदर,
 मान, गौरव । उ० ४. संभ्रम चलि आई सब रानी । (मा०
 ११३३११) ५. जा दिन बंध्यौ सिंधु त्रिजटा सुनु तू संभ्रम
 आनि मोहि सुनैहै । (गी० ५१५०)
 संभ्राज-(सं०संभ्राज)-पूर्णतः सुशोभित । उ०राम संभ्राज-
 सोभा-सहित सर्वदा तुलसि मानस-रामपुर-बिहारी ।
 (वि० २७)
 संमत-(सं० सम्मत)-अनुमत, स्वीकृत । उ० सृति-गुरु-
 साधु-सुसृति-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी । (वि० १२०)
 संमति-(सं०सम्मति)-राय, इच्छा, विचार ।
 संमुख-(सं०सम्मुख)-सामने, आगे ।
 संमोह-(सं०सम्मोह)-भारी या पूर्ण मोह । उ० पूरनानंद-
 संदोह अपहरन-संमोह-अज्ञान-गुन सन्नपातं । (वि०
 ५३)
 संयम-(सं०)-१. परहेज, त्याग, २. [इन्द्रियनिग्रह, ३.
 बाँधना, बंधन । दे० 'संजम' ।
 संयमी-संयम या परहेज रखनेवाला ।
 संयुक्त-(सं०)-मिला हुआ, लगा हुआ, समेत, साथ ।
 उ० सकल-सौभाग्य-संयुक्त-त्रैलोक्य श्री, दक्षदिशि रुचिर
 बारीश कन्या । (वि० ६१)
 संयुग-(सं०)-लड़ाई, युद्ध ।
 संयुतं-सहित को । उ० सीता लक्ष्मण संयुतं पथिगतं रामा-
 मिरामं भजे । (मा० ३११ श्लो० २) संयुत-(सं०
 संयुक्त)-युक्त, मिला हुआ, मिश्रित । संयुताः-युक्त होकर ।
 उ० स्वदीय भक्ति संयुक्ताः । (मा० ३११ श्लो० १२)
 संयोग-(सं०)-१. मेल, लगाव, सम्बन्ध, २. दैवयोग, इत्त-
 फ्राक, ३. होनहार । दे० 'संजोग'
 संवत्-(सं०)-वर्ष, साल, संवत्सर ।
 संवर-(सं० संबल)-राहस्य, कलेवा ।

सँवराए-(सं० संवरान)-सुधरवाए, सजवाए । उ० प्रथमहिं
 गिरि बहु गृह सँवराए । (मा० ११६१४)
 सुवाद-(सं०)-बातचीत, कथोपकथन ।
 सँवारत-(सं०संवरान)-१. रचते समय, सँवारते समय, २.
 सँवारता है, सुधारता है, बनाता है, ३. सँवारते हुए,
 सजाते हुए । उ० १. मनहुँ भाजु-मंडलहि सँवारतु धर्यो
 सुत बिधि-सुत बिचित्र मति । (गी० ७१७) सँवारब-
 सँभारुंगा, सिद्ध करुंगा, बनाऊंगा । उ० सब बिधि तोर
 सँवारब काजा । (मा० ११३६१३) सँवारहिं-१. सँवा-
 रते हैं, ठीक करते हैं, २. सँभालकर, रचकर । उ० बकि
 जनि उठहि बहोरि, कुजगुति सँवारहि । (पा० ७३)
 सँवारा-रचा, बनाया, ठीक किया । सँवारि-सँभाल-
 कर, सँवारकर, रचकर । उ० काहे को कहत बचन
 सँवारि । (कृ० ५३) सँवारित-ठीक बनाया हुआ,
 जड़ा हुआ, रचा हुआ । उ० सुतिय सुभूपति भूषियत
 लोह-सँवारित हेम । (दो० ५०६) सँवारी-सुधारी, सजाई,
 बनाई । उ० रूपरासि बिधि नारि सँवारी । (मा०
 ३१२२५) सवारि-१. सजाकर, २. सजाए, रचे । उ० १.
 इच्छामय नर बेप सँवारि । (मा० ११३५२११) सँवारे-
 सँवारा, सुधारा, शृंगार किया, चिकनाया । उ० दिष्ट बसन
 गज बाजि साजि सुभसाज सुभाति सँवारे । (गी० ११४४)
 सँवारेउ-१. दे० 'सँवारेहु', २. सँवारा । सँवारेहु-सँवा-
 रिपुगा, बनाइपुगा । उ० काजु सँवारेहु सजग सब सहसा
 जनि पतिआहु । (मा० २१२२)
 संशय-(सं०)-१. संदेह, शंका, शुबहा, २. भय, डर, ३.
 चिंता । उ० १. दास तुलसी चरण शरण संशयहरण देहि
 अलंब वैदेहि भर्ता । (वि० ४४)
 संशोभितं-पूर्णरूप से शोभित । उ० श्रीमच्छंभु मुखेन्दु
 सुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा । (मा० ४११२लो० २)
 संसउ-दे० 'संशय' । उ० १. नाथ एक संसउ बड़ मोरे ।
 (मा० ११४५४)
 संसय-दे० 'संशय' । उ० १. प्रेम तांबूल, गतसुल संसय
 सकल विपुल-भववासना-बीज-हारी । (वि० ४७)
 संसर्ग-(सं०)-१. संग, साथ, २. संबंध, लगाव, ३. स्त्री-
 पुरुष का सहवास । उ० १. संत संसर्ग त्रय वर्ग पर परम-
 पद प्राप, निःप्राप्य गति त्वयि प्रसने । (वि० ५७)
 संसर्गा-दे० 'संसर्ग' । उ० १. प्रीति सदा सज्जन संसर्गा ।
 (मा० ७१६१४)
 संसार-(सं०)-जगत, दुनिया, जग । उ० संसार कंतार
 अति घोर गंभीर घन गहन तरु कर्म-संकुल मुरारी । (वि०
 ५६)
 संसारा-दे० 'संसार' ।
 संसारी-(सं० संसारिन्)-संसार का, संसार में रहनेवाला,
 जिसे आवागमन तथा सुख-दुःख की यातना सहनी पड़े ।
 उ० तबते जीव भयउ संसारी । (मा० ७११७३)
 संसार-दे० 'संसार' ।
 संसारु-दे० 'संसार' । उ०होइहि सब उजारि संसारु । (मा०
 ११७७४)
 संसृत-(सं०)-जन्मा हुआ । उ० संसृत मूल सूलप्रद नाना ।
 (मा० ७१७३)

संसृति-(सं०)-१. आवागमन, जन्ममरण, २. संसार । उ०
१. कियो कृपालु अभय कालहु तें गइ संसृति साँसति
धनी । (गी० १।३६)
संस्कृत-(सं०)-१. जिसका संस्कार किया गया हो, शुद्ध
किया गया, २. संस्कृत भाषा, देववाणी । उ० २. का
भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच । (दो० १७२)
संहरता-दे० 'संहर्ता' ।
संहर्ता-(सं० संहर्तृ)-संहार करनेवाला, नाशकर्ता । उ० जो
कर्ता पालक संहर्ता । (मा० ६।७।२)
संहार-(सं०)-नाश, प्रलय, ध्वंस । उ० उद्भवस्थिति संहार
कारिणी, क्लेशहारिणीम् । (मा० १।१।१।० ५)
संहारा-(सं० संहार)-१. दे० 'संहार', २. नाश किया ।
संहारि-मार करके । उ० सिंहिका संहारि, बलि, सुरसा
सुधारि कुल । (ह० २७) संहारे-नष्ट किये, मारे । उ०
हाथिन सौ हाथी मारे, घोड़े घोड़े सौ संहारे । (क० ६।
४०)
सः-(सं०)-बह । उ० सोऽयं भूति विभूषणः सुरवरः सर्वा-
धिपः सर्वदा । (मा० २।१।१।० १)
स-(सं०)-१. सहित, समेत, २. शिव, ३. विष्णु, ४. वायु,
५. सूर्य, ६. जीवात्मा, ७. चंद्रमा, ८. कांति, प्रभा, ९.
पत्नी, १०. तुल्य, बराबर, ११. सम्मुख, सामने । उ० १.
साजिके सनाह गज गाह सउझाह दल । (क० ६।३१)
सहल-(सं० शैल)-पर्वत, पहाड़ । उ० मत्त भट-मुकुट-दस-
कध-साहस-सहल-सृंग-बिहरनि जनु बज्र टांकी । (क० ६।
४४)
सई-(?)-१. वृद्धि, बढ़ती, २. एक नदी जो गोमती से
मिलती है, ३. सिफारिश, ४. उद्योग, कोशिश । उ० १.
परमारथ स्वारथ-साधन भए अफल सकल नहि सिद्धि सई
है । (वि० १।३६) २. सई तीर बसि चले बिहाने । (मा०
२।१।६।१)
सक (१)-(अर०शक)-शुबहा, संदेह । उ० राम चाप तोरब
सक नाहीं । (मा० १।२।४।१)
सक (२)-(सं० शक्य)-सकेगा, संभव है, सकते हैं । उ०
सक सर एक सोषि सत सागर । (मा० १।२।६।१) सकइ-
सकता है, समर्थ है । उ० करि न सकइ कछु निज प्रभु-
ताई । (मा० ७।१।१।४) सकउँ-सकूँ, सकता हूँ, सकती
हूँ । उ० परवँ कूप तुअ बचन पर सकेवँ पूत पति त्यागि ।
(मा० २।२।१) सकत-सकता है, समर्थ है । सकति (१)-
१. सकती है । सकसि-समर्थ हो, सके । उ० जौ मम चरन
सकसि सठ टारी । (मा० ६।३।४।५) सकहिँ-सकते हैं । उ०
सकहिँ न खेइ एक नहिँ आवा । (मा० २।२।७।२) सकहीं-
दे० 'सकहिँ' । सकहु-सको । सकिअ-सकें, सकती । उ०
बुधि बल सकिअ जीति जाही सौं । (मा० ६।६।३) सके-
१. सका, २. हो सका । सकेउ-सका । उ० बिधि न
सकेउ सहि मोर दुखारा । (मा० २।२।६।१।१) सकै-दे०
'सकेउ' । सकै-सके, सकता है । उ० बिपति सकै को टारी ?
(वि० १२०) सकयो-समर्थ हुआ, सका । उ० नाम सकयो
नहिँ धोइ । (दो० १।३१)
सकति (२)-(सं० शक्ति)-ताकत, बल । उ० सकति खारो
कियो चाहत मेवहु को बारि । (क० १।३)

सकरुण-(सं०)-करुणा के साथ, दीनता के साथ ।
सकरुन-दे० 'सकरुण' ।
सकलंक-(सं० स + कलंक)-कलंक के साथ, जिसमें कोई
दाग हो । उ० जनसु सिंधु पुनि बंधु बिधु दिन मलीन
सकलङ्क । (मा० १।२।३७)
सकलंकु-दे० 'सकलंक' ।
सकलंकु-दे० 'सकलंक' । उ० जेहिँ ससि कीन्ह सरुज सक-
लंकु । (मा० २।१।१।२)
सकल-(सं०)-सर्व, समस्त, कुल । उ० चहि कलि-
काल सकस साधन तरु है तम-फलनि फरो सो । (वि०
१।७३)
सकाई-(सं० शक्य)-सके, समर्थ हो । उ० जिमि थल बिनु
जल रहि न सकाई । (मा० ७।१।१।३) सकाहिँ (१)-
सकते हैं ।
सकाना-(सं० शंका)-डरा, डर गया । उ० छत्रिय तनु धरि
समर सकाना । (मा० १।२।८।२) सकानी-१. सकुचाई,
२. संशंकित हुई, डरी । उ० २. कोलाहलु सुनि सीय
सकानी । (मा० १।२।६।३) सकाने-१. सकुचाए, २.
डरे । सकाहिँ (२)-१. संशंकित होते हैं, डरते हैं, २. सकु-
चते हैं । उ० १. राम सीय सनेह बरनुत अगम सुकबि
सकाहिँ । (गी० ७।२।६)
सकाम-(सं० स + काम)-कामना सहित, किसी इच्छा के
साथ । उ० जे सकाम नर सुनहिँ जे गावहिँ । (मा० ७।१।१।२)
सकारे-(सं० सकाल)-प्रातःकाल, सबेरे । उ० अवधेस
के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे । (क०
१।१)
सकिलि-(?)-सिमटकर, बटुरकर, इकट्ठा होकर, सरकर ।
उ० सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन । (मा० १।३।६।४)
सकुच-(सं० संकोच)-१. लाज, संकोच, २. डर, भय, ३.
सकुचकर । उ० १. चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे । (मा०
२।२।६।३) सकुचउँ-सकुचता हूँ, संकोच करता हूँ । सकु-
चत-१. सकुचते हुए, संकोच करते हुए, २. लज्जित होता
है, संकोच करता है, ३. सिद्धता है, बटुरता है । उ०
१. सकुचत बोलत बचन सिले से । (मा० २।३।०।२) २.
मिले मुदित बूझि कुसल परसपर सकुचत करि सनमान हैं ।
(गी० १।३।५) सकुचति-सकुचती है, संकोच करती है ।
सकुचनि-१. संकोच करने का भाव, २. संकोचवश, संकोच
में, ३. संकोच का बहुवचन । उ० २. कहि न सकति
कछु सकुचनि सिय हिय सोचइ । (जा० १।१२) सकु-
चव-सकुचंगा, सकुचना । सकुचहिँ-संकोच करते हैं,
सकुचाते हैं । उ० सकुचहिँ मुनिहिँ समीत बहुरि फिरि
आवहिँ । (जा० ३।८) सकुचाइ-१. सकुचाकर, संकोच-
कर, २. सकुचाता है, संकोच करता है । उ० १. आँच
पथ उफनात सींचत सखिल ज्यों सकुचाइ । (गी०
७।३।६) सकुचाई-१. सकुचावे, २. संकोचवश । उ० १. बहु
संपति मागत सकुचाई । (मा० १।१।४।३) सकुचाउँ-
सकुचाता हूँ, संकोच खाता हूँ । उ० पूँछहु मोहिँ कि रहैं
कहैं मैं पूँछत सकुचाउँ । (मा० २।१।२।७) सकुचाउँगो-
सकुचाऊँगा, लज्जित होऊँगा । उ० सरनागत सुनि बेगि
बोखिहैं, हौं निपटहिँ सकुचाउँगो । (गी० १।३।०) सकु-

चात-१. सकुचाता, २. सकुचाते हैं, संकोच करते हैं ।
सकुचान-१. सकुचाए, २. संकोच करना । सकुचाना-
सकुच गया, संकोच करने लगा । उ० अंगद बचन सुनत
सकुचानर । (मा० ६।२१।२) सकुचानि-१. सकुचाए हुए,
२. सकुचाई । उ० २. रामहि मिलत कैकई हृदयें बहुत
सकुचानि । (मा० ७।६क) सकुचानी-दे० 'सकुचानि' ।
सकुचाने-दे० 'सकुचानी' । सकुचाहि-दे० 'सकुचाहीं' ।
सकुचाही-१. सकुचाते, २. संकोच करते हैं । सकुचाहु-
सकुचाता हूँ, संकोच करता हूँ । उ० बिलोकि अब तैं सकु-
चाहु सिहाहूँ । (वि० २७५) सकुचि-१. लज्जित होकर,
संकोच करके, २. डरकर, ३. सिक्ककर । उ० १. सुनि
सकुचि सोचहि जनक गुरु पद बंदि रघुनंदन चले । (जा०
१०८) सकुचिहि-सकुचाएगा, संकोच करेगा । सकुची-
संकुचित हो गया, संकोच में पड़ गया । सकुचे-संकोच में
पड़े । सकुचेउ-संकुचित हुए, शर्माए । सकुच्यो-दे०
'सकुचेउ' ।

सकुन-दे० 'सकुनि' । उ० १. मदन सकुन जनु नीड़ बनाए ।
(मा० १।३४६।३)

सकुनि-(सं० शकुनि)-१. पत्नी, चिड़िया, २. दुर्योधन का
मामा । उ० ३. सभा सुजोधन की सकुनि, सुमति सरा-
हनं जोग । (दो० ४१८)

सकुल-(सं०)-कुल के सहित, खान्दान के साथ । उ०
सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगो । (वि० २११)

सकृत-(सं०)-१. एक बार, २. केवल, एक मात्र । उ० १.
सकृत प्रनामु किहँ अपनाए । (मा० २।२६६।२) २. जहँ
तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल । (मा० २।
२८१)

सकेलि-(सं० संकेल)-खींचकर; बटोरकर । उ० उपजी,
सकेलि, कपि, खेलही उखारिए । (ह० २४) सकेली-एकत्र
करके, बटोरकर । उ० आयउँ इहाँ समाजु सकेली । (मा०
२।२६८।३)

सकोच-(सं० संकोच)-१. संकोच, २. लाज, शर्म, ३.
घटती, कमी । उ० २. सदा अभागी लोग जग कहत सकोचु
न संक । (म० ६।६।४)

सकोचइ-(सं० संकोच)-१. संकोच करती है, २. डरती है ।
उ० १. गौरि गनेस गिरीसहि सुमिरि सकोचइ । (जा०
११२) सकोचहीं-१. भय खाते, भय खाते हैं, २. संकोच
करते थे । उ० १. नर नारि हरष विवाद बस हिय सकल
सिवहि सकोचहीं । (जा० ६०)

सकोचा-दे० 'सकोच' ।

सकोचु-दे० 'सकोच' ।

सकोप-कोप के साथ, क्रोध के साथ । उ० अरुन
नयन शुकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप । (मा०
१।२६७)

सकोपा-दे० 'सकोप' ।

सकोरे-(सं० संकुचन)-सिकोड़े, चढ़ाए । उ० तकत सुभौह
सकोरे । (गी० ३।२)

सकोहा-(सं० स + क्रोध)-दे० 'सकोप' । उ० रावन आवत
सुनेउ संकोहा । (मा० १।१८२।३)

सक्ति-(सं० शक्ति)-१. शक्ति, बल, २. एक अस्त्र, बरछी ।

उ० २. सक्ति चारु-चर्मांसि-बरबर्म-धारी । (वि० ४४)
सक्तिन्ह-१. शक्तियों, २. बरछियों ।

सक्र-(सं० शक्र)-इंद्र, मधवा । उ० बहुरि सक्र सम विन-
वउँ तेही । (मा० १।३।५) सक्रहि-इंद्र को । सक्रहि-
इंद्र को ।

सक्रजित्-(सं०)-इन्द्रजीत, मेघनाद ।

सकारि-(सं०)-इंद्र का शत्रु मेघनाद, इंद्रजित् । उ० कुंभ-
करन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सकारि । (मा० ६।२७)

सखन्ह-(सं० सखिन्)-सखाओं को । उ० प्रथम सखन्ह
अन्हवावहु जाई । (मा० ७।११।१) सखहि-मित्र को । उ०

सखहि सनेह बिबस मग भूला । (मा० २।२३।३)

सखहि-सखा को, मित्र को । सखा-मित्र, दोस्त । उ०
सखा बचन मम मूषा न होई । (मा० ४।७।१२) सखाउ-

सखा भी, मित्र भी । उ० सिसुपन ते पितु मातु बंधु गुह
सेवक सचिव सखाउ । (दो० ४५६)

सखि-(सं० सखिन्)-संगिनी, सहेली ।

सखिन-१. सखियों को, २. सखियाँ । उ० १. तब सुवाहु सूदन
जस सखिन सुनाथउ । (जा० ८७) सखिन्ह-दे० 'सखिन' ।

सखी-(सं० सखिन्)-सहेली, संगिनी । उ० सुनि
प्रियबचन सखी मुख गौरि निहारे । (मा० ५३)

सगर-(सं०)-एक प्रतापी राजा । इनके ६० हजार पुत्र कपिल
के शाप से भस्म हो गये थे । उन्हीं की मुक्ति के लिए गंगा

पृथ्वी पर लाई गई । उ० जहु कन्या धन्य, पुण्यकृत सगर
सुत । (वि० १८)

सगरे-(सं० सकल)-सब, सम्पूर्ण । उ० तनु पोषक नारि
नरा सगरे । (मा० ७।१०।२।५)

सगर्भ-(सं० स + र भँ)-तात्पर्य युक्त, जिसमें कुछ भीतर
हो । उ० नारद बचन सगर्भ सहेतु । (मा० १।७।२।२)

सगा-(सं० स्वक्)-स्वजन, अपना ।
सगाई-१. ब्याह, २. संबंध, नाता, सगापन । उ० २. निबहै
भरि देह सनेह सगाई । (क० ७।५८)

सगुण-(सं०)-परमात्मा का वह रूप जो सत, रज, तम
आदि गुणों से युक्त रहता है । अवतार लेने पर या

साकार होने पर भगवान सगुण कहे जाते हैं । यह रूप
निर्गुण का उलटा है ।

सगुन (१)-दे० 'सगुण' । उ० अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन
सगुन ब्रह्म सुमिरामि नर भूप रूपं । (वि० ५०) सगुनहि-

सगुन में, दे 'सगुण' । ३. सगुनहि अगुनहि नहि कहु
भेदा । (मा० १।११।६।१)

सगुन (२)-(सं० शकुन)-शकुन, शुभ लक्षण, शुभ । उ०
उठे भूप आमरषि सगुन नहि पाथउ । (जा० ६८) सगु-

ननि-शकुनों, शकुनों ने । उ० सगुननि साथ दयो । (गी०
१।४५)

सगुनिअन्ह-शकुन जाननेवालों ने । उ० कहेउ सगुनिअन्ह
खेत सुहाए । (मा० २।१६।२।२)

सगे-(सं० स्वक्)-संबंधी लोग, अपने लोग, परिवार के ।
उ० सजन सगे प्रिय लागहि जैसे । (मा० १।२४।१)

सघन-(सं०)-घना, गफिन । उ० सघन-तम-वोर-संसार-
भर । (वि० ५५)

सच-(सं० सत्य)-सत्य, तथ्य, सही ।

सचराचर-(सं०) स्थावर और जंगम सहित । उ० जो सहस-
सीसु अहीसु महि धरु लखनु सचराचर धनी । (मा०
२।१२६६० १)
सचाई-(सं० सत्य) सत्यता, सच्चाई ।
सचान-(सं० संचान)-बाजु पत्नी । उ० जनु सचान बन
भूपटेड लावा । (मा० २।२६।३)
सचि (१)-दे० 'सची' ।
सचि (२)-(सं० संचित)-संचित करके । उ० राखी सचि
कूबरी पीठ पर । (क० ४१)
सचिव-(सं०)-मंत्री, आमाल्य । उ० उपल किये जलजान
जेहि सचिव सुमति कपि भालु । (मा० १।२८ क) सचि-
वन्ह-मंत्रियों । सचिवहि-मंत्री को ।
सची-(सं० शची)-हंदायी । उ० जिमि वासव बस अमर
पुर सची जयंत समेत । (मा० २।१४१)
सचु-(?)-आनंद, प्रसन्नता । उ० हंसहि संभुगन अति सचु
पाएँ । (मा० १।१३४।२)
सचेत-चेतयुक्त, सावधान, होशियार । उ० हनुमान पहि-
चानि भये सानंद सचेत हैं । (क० ५।२६।१)
सचेतन-(सं० स + चेतन) १. चेतनायुक्त, बुद्धिमान्, २. चेतन
जीव । उ० २. को कहि सकइ सचेतन करनी । (मा० १।८५।२)
सचेता-दे० 'सचेत' ।
सच्चिदानंद-(सं०)-सत्, चित् और आनंद स्वरूप भगवान् ।
उ० कुंद-हुंदु-कर्पूर-गौर, साच्चिदानंद धन । (क० ७।१५०)
सच्चिदानंदा-दे० 'सच्चिदानंद' ।
सच्छिदानंदु-दे० 'सच्चिदानंद' ।
सज-(सं० सज्जा)-सजा रहे हैं, तैयार कर रहे हैं । उ०
मोकहँ तिलक साज सज सोऊ । (मा० २। १८२।१)
सजत-सजता है, बनता है, सँवरता है । उ० सुभट
मकँट-भालु-कटक-संचट-सजत । (वि० ४३) सजन-१.
सजने, २. सजाने । सजहि-सजाते हैं । उ० सजहि सुमं-
गल साज । (जा० १४६) सजही-सजते हैं । सजहि-
सजता है । सजहु-सजो, तैयार हो जाओ । सजि-१. सज
कर, २. सजाकर, ३. जमाकर । उ० ३. सजि प्रतीति
बहु बिधि गढ़ि छोली । (मा० २।१७।२) सजे-सज गए,
तैयार हो गए । सजेउ-१. दे० 'सजे', २. सजाया । उ०
२. भूप सजेउ अभिषेक समाजु । (मा० २।८।१)
सजग-(सं० स + जागरण)-होशियार, चैतन्य । उ० होहु
सजग सुनि आयसु मोरा । (मा० १।२६०।१)
सजन-(सं० स्वजन)-१. प्रिय, प्रियतम, २. संबंधी,
नातेदार । उ० सजन सगे प्रिय लागहि जैसे । (मा०
१।२४२।१)
सजनी-(सं० सत् + जन)-सहेली, सखी । उ० जहाँ
सजनी रजनी रहिहैं । (क० २।२३)
सजल-(सं० स + जल) जलयुक्त, जलपूर्ण । उ० सजल कठौता
कर गहि कहत निषाद । (ब० २५)
सजाइ (१)-(सं० सज्जा)-सजाकर । उ० भूप भूषन बसन
बाहन राज साज सजाइ । (गी० ७।३६) सजायउ-
सजाय, तैयारी की । उ० भूधर भोर बिदा करि साज
सजायउ । (पा० १५५)
सजाइ (२)-(क्रा० सजा)-दंड, सजा ।

सजाई (१)-दे० 'सजाइ (१)' ।
सजाई (२)-दे० 'सजाइ (२)' । उ० तौ बिधि देइहि हमहि
सजाई । (मा० २।१६।३)
सजाति-सजातीय, कुटुंबी ।
सजाय-दे० 'सजाइ (२)' । उ० पैहहि सजाय ननु कहत
बजाय तोहि । (ह० २६)
सजीव-(सं०) जीता, जीवसहित । उ० जे सजीव जग
अचरचर नारि पुरुष अस नाम । (मा० १।८४)
सजीवन-(सं० संजीवन)-संजीवनी जड़ी जो जीवन प्रदान
करनेवाली कही गई है । उ० गौरि सजीवन मूरि मोरि
जिय जानवि । (पा० १५७)
सजीवनि-दे० 'सजीवन' ।
सजोइल-दे० 'सँजोइल' । उ० सुर सजोइल साजि सुबाजि,
सुसेल धरे बगमेल चले हैं । (क० ६।३३)
सज्जन-(सं० सत् + जन)-अच्छा व्यक्ति, अच्छे लोग । उ०
सज्जन चख भूषन निकेत भूषन मनिगन समेत । (गी०
७।४)
सज्या-(सं० शय्या)-बिछौना, सेज । उ० बलकल भूषन
फल असन तृन सज्या हुम प्रीति । (दो० १६२)
सटुकि-दे० 'सुटुकि' ।
सठ-(सं० शठ)-दुष्ट, पाज़ी । उ० सठ सहि सांसति पति
लहत सुजन कल्लेस न काय । (दो० ३३२) सठन्ह-१. शठों,
दुष्टों, २. दुष्टों को । सठन्हि-शठों को । उ० कलिकाल
तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को । (मा०
२।३२६।६० १) सठहि-शठ को, दुष्ट को । सठहु-१. शठ
को भी, दुष्ट को भी, २. अरे मूर्खों । उ० २. सठहु
तुम्हार दरिद्र न जाई । (मा० ६।८।२)
सठई-शठता, दुष्टता । उ० नंदनंदन हो निपट करी सठई ।
(क० ३६)
सठु-दे० 'सठ' ।
सठता-दे० 'सठई' । उ० सो सुनि गुनि तुलसी कहत, हठ
सठता की रीति । (दो० २०३)
सठताई-दुष्टता, शठता ।
सडसिन्ह-(सं० संदेश)-सँदसियों से । उ० प्रति उत्तर
सडसिन्ह मनहुँ काइत भट दससीस । (मा० ६।२३ ७०)
सत (१)-(सं० सप्त)-सात । उ० सत पंच चौपाई मनोहर
जानि जो नर उर धरे । (मा० ७।१३०।६० ३)
सत (२)-(सं० शत)-१. सौ, सैकड़ा, २. बहुत, अधिक ।
उ० १. सत कोटि नाम फल पायेउ । (जा० १३०) २.
कहिसि कथा सत सबति कै । (मा० २।१८)
सत (३)-(सं० सत्य)-१. सत्य, २. अच्छा, सुंदर । उ०
२. उतपति पांडुतनय की करनी सुनि सतपथ डरयो ।
(वि० २३६)
सततं-(सं०)-सर्वदा, हमेशा । उ० धन्यास्ते कृतिनः पिबंति
सततं श्रीराम नामामृतम् । (मा० ४।१ श्लो० २) सतत-
दे० 'सततं' ।
सतपत्र-(सं० शत्रपत्र)-कमल ।
सतरंज-(क्रा० शतरंज)-एक प्रसिद्ध खेल, शतरंज । उ०
सतरंज को सो राज, काठ को सबै समाज । (वि० २४६)
सतर-(सं० सत्वर)-शीघ्र, तुरत ।

सतरभौहैं-(सं० सतजन+भ्रू)-कूपित, क्रोधयुक्त। उ० काण्डहू पर सतरभौहैं, महरि मनहि बिचार। (क० १४)
 सतराइ-(सं०सतजन) अकड़कर, क्रोधित होकर। उ० सोई सतराइ जाइ जाहि रोकिए। (क० २।१७)
 सतरूपहि-सतरूपा ने, सतरूपा को। सतरूपा-(सं० शतरूपा)-स्वायंभू मनु की स्त्री का नाम। उ० स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। (मा० १।१४२।१)
 सतर्क-(सं०)-सावधान, सचेत।
 सतसंगति-(सं०सत + संगति) अच्छी संगति, अच्छों का संग। उ० सत संगति संसृति कर अंता। (मा०७।४२।३)
 सतां-(सं०)-सज्जनों का, सज्जनों की। उ० यो ददाति सतां शंभुः कैवल्यमपि दुर्लभम्। (मा० ६।श्लो० ३)
 सताइहै-(?) १.सतावेगा, कष्ट देगा। उ०सुरतरु-तर तोहि दुःख दारिद सताइहै। (वि० ६८) सतावहि-सताते हैं। सतावै-सताता है, कष्ट देता है। उ० जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित दारुन भव-बिपति सतावै। (वि० ११६)
 सतानंद-(सं० शतानंद)-महाराज जनक के गुरु और पुरोहित का नाम। उ० सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पंहि जाइ। (मा० १।२३६)
 सतावन-(?)-सतानेवाला, कष्टदायक। उ० मानव-दानव देव-सतावन रावन घाटि रच्यो जग माहीं। (क० ७।१३२)
 सतासी-(सं०सस)-सत्तासी, अस्सी और सात। उ० बीतें संबत सहस सतासी। (मा० १।६०।१)
 सति-(सं० सत्य)-१. सत्य, सच्चा, २. सीधा, सरल, ३. अच्छा। उ० १. लखि नहिं सकति कपट सतिभाऊ। (क० १२) ३. बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। (मा० १।४।१)
 सतिहि (१)-१. सच्चे को, २.सच्चे ने
 सतिहि (२)-१.पार्वती को, २. पार्वती ने। सती-(सं०)- १.साध्वी, पतिव्रता, २. दक्ष प्रजापति की कन्या जिनका विवाह शिव से हुआ था। ३. मरे पति के साथ जलनेवाली स्त्री। उ० १. परम सती असुराधिप नारी। (मा० १।१२३।४) ३. घर ही सती कहावती जरती नाह-बियोग। (दो० २२४)
 सतुआ-(सं० सक्तुक)-भुने अन्न का चूर्ण। उ० सोनित सौं सानि सानि गूदा खाद सतुआ से। (क० ६।२०)
 सतोगुन-सत्व गुण, तीनों गुणों में प्रथम और श्रेष्ठ। उ० त्याग पावक सतोगुन प्रकासं। (वि० ४७)
 सत्-(सं०)-१. सत्य, २. अच्छा, सुंदर। उ० सच्चिदानंद धन कर नर चरित उदार। (मा० ७।२२) सत्कर्म-अच्छा काम, पुण्य कार्य।
 सत्कार-(सं०)-आदर, ज्ञातिरदारी।
 सत्तारि-(सं०)-सत्तर, साठ और दस। उ० जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा। (मा० १।१२६।४)
 सत्य-(सं० सत् + थ)-सत्य और शुभ।
 सत्य-(सं०)-यथार्थ, सच। उ० सत्य संकल्प सुरवास-नासं। (वि० २१)
 सत्यकेतु-(सं०)-कैक्य का राजा जिसके पुत्रों के नाम प्रतापभावु तथा अरिमर्दन थे। उ० सत्यकेतु तहँ बसइ करेसू। (मा० १।१२३।१)

सत्यता-(सं०)-सच्चाई, यथार्थता। उ० जासु सत्यता तें जड़ माया। (मा० १। ११७।४)
 सत्रु-(सं० शत्रु)-वैरी, दुश्मन। उ० सत्रु न काहू करि गनै। (वै० १३)
 सत्रुसमन-(सं० शत्रु + शमन)-शत्रुघ्न। उ० राम भरत लछिमन ललित सत्रुसमन शुभ नाम। (प्र० ४।३।२)
 सत्रसालु-शत्रुघ्न। उ० तेसेई सुभग सँग सत्रसालु। (गी० १।४०)
 सत्रुसूदन-शत्रुघ्न। उ० लखनु सत्रुसूदन एक रूपा। (मा० १।३११।४)
 सत्व-(सं०)-१. सत्ता, अस्तित्व, २. सार, तत्व, ३. सत्व गुण, उ०३.सुद्ध सत्व समता बिग्याना। (मा०७।१०४।१)
 सत्वर-(सं०)-शीघ्र, जल्द।
 सत्वात्-सत्ता से। उ० यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं। (मा० १।१। श्लो० ६)
 सद-(सं० सत्)-अच्छा, श्रेष्ठ। उ० सदगुन सुरगन अंब-अदिति सी। (मा० १।३१।७)
 सदई-(सं० सदा)-नित्य ही, हमेशा ही। उ० उथपे थपन उजार-बसावन गई-बहोर बिरद सदई है। (वि० १३६)
 सदन-(सं०)-१. घर, मकान, धाम, २. पानी, ३. विराम, स्थिरता, ४. एक प्रसिद्ध कसाई भक्त। उ० १. करउ अनु अह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन। (मा० १।१। सो० १)
 सदननि-घरों में, मकानों में, स्थानों में। उ० सुर-सदननि तीरथ, दुरिन निपट कुचालि कुसाज। (दो० २२८)
 सदनि-'सदन' (=मकान, भवन, स्थान) का स्त्रीलिङ्ग। उ० मंगल-मुद-सिद्धि-सदनि। (वि० १६)
 सदन-दे० 'सदन'।
 सदय-(सं०) दयालु, दयायुक्त। उ०सदय-हृदय तप निरत प्रणतानुकूलम्। (वि० ६०)
 सदल-(सं०) सेना सहित। उ० सदल सलपन हैं कुसल कृपालु कोसलराउ। (गी० २।४)
 सदसि-सभा में। उ० जनक नृप-सदसि-सिवापभंजन। (वि० २०)
 सदस्य-(सं०)-सभासद, मँबर।
 सदा-(सं०)-१. नित्य, हमेशा, सर्वदा, २. निरंतर, लगा-तार। उ० १. रवन गिरिजा भवन भूधराधिप सदा। (वि० ११) सदाई-सदा ही, सर्वदा ही। उ० बिषय भोग पर प्रीति सदाई। (मा० ७।११।८।८)
 सदाचार-(सं०)-उत्तम आचरण, अच्छा आचार। उ० सदाचार जप जोग बिरागा। (मा० १।८।४।४)
 सदासिव-(सं० सदाशिव)-शंकर, महादेव।
 सदस-(सं० सदश)-समान, अतुल्य, बराबर। उ० भानुसत-सहस उद्योतकारी। (वि० २१)
 सदैव-(सं०)-सर्वदा, हमेशा। उ०जघपि अचध सदैव सुहा-वनि। (मा० १।२६६।३)
 सदा-(सं०)-घर, धाम। उ० युगल पद-पद्म सुखसन्न पद्मालयं। (वि० २१)
 सद्य-(सं०)-तुरत, शीघ्र, आज ही, अभी। उ० मनहुँ विरह के सद्य धाय हिचे लखि तकि तकि धरि धीरज तारति। (गी० २।१६)

सधवा-(सं० स + धव)-सुहागिन, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।
 सन (१)-(सं० शय)-एक प्रसिद्ध पौधा जिसकी छाल की रस्सियाँ आदि बनती हैं। उ० सन इव खल पर बंधन करहै। (मा० ७।१२१।६)
 सन (२)-(सं० संग)-१. साथ, २. से। उ० २. मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सुसुकरखेत। (मा० १।३० क)
 सनक-(सं०)-ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक। उ० सिद्ध सनकादि योगीन्द्रचन्द्रारका। (वि० १२)
 सनकार-(सं० संकेत)-इशारा करना, संकेत करना। उ० समय सुकरना सराहि सनकार दी। (क० ७।१२३)
 सनकारे-इशारा किया। उ० सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रूख पाह। (मा० २।१६६)
 सनमान-(सं० सम्मान)-आदर, सत्कार, प्रतिष्ठा। उ० केहि करनी जन जानि कै सनमान किया रे। (वि० ३३)
 सनमानत-१. आदर करते हुए, २. आदर करते हैं। उ० १. जनकहि एक सिहाहि देखि सनमानत। (जा० १४)
 सनमानहि-आदर करती हैं। उ० बार-बार सनमानहि रानी। (मा० १।३२१।४) सनमाना-१. आदर किया, २. सनमान, सम्मान, आदर। उ० १. सहित बरात राउ सनमाना। (मा० १।३०६।३) सनमानि-आदर करके। सनमानी-१. आदर किया, २. आदर करके। उ० १. दच्छ ब्रास काहुँ न सनमानी। (मा० १।६३।१) सनमाने-सम्मान किया। उ० ते भरतहि भेंटत सनमाने। (मा० १।२६।४) सनमानेउ-आदर किया। उ० नृप सुनि आगे आइ पूजि सनमानेउ। (जा० १३।१)
 सनमानु-सम्मान, आदर। उ० कीन्ह संभु सनमानु जनम-फल पाइन्हि। (पा० ८४)
 सनमानू-दे० 'सनमान'।
 सनमुख-(सं० सम्मुख)-सामने, सम्मुख। उ० जेहि न होइ रन सनमुख कोई। (मा० १।१८०।४)
 सनाए-(सं० संघम्)-सनवा दिए, मिलवा दिए। उ० भरि-भरि सरवर बापिका अरगजा सनाए। (गी० १।६)
 सनातन-(सं०)-१. शाश्वत, नित्य, २. ब्रह्मा के पुत्र एक ऋषि।
 सनाथ-(सं०)-१. नाथ सहित, सुरक्षित, २. कृतार्थ, कृत-कृत्य। उ० २. भए देव सकल सनाथ। (मा० ६।११३।२)
 सनाथा-दे० 'सनाथ'। उ० २. निरखि बदन सब होहि सनाथा। (मा० ४।२२।१)
 सनाह-(सं० सन्नाह)-बखतर, कवच। उ० साजि कै सनाह गज गाह झुउछाह दल। (क० ६।३१)
 सनाहु-दे० 'सनाह'। उ० सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु। (मा० २।१६०)
 सनाहै-(सं० स + नाथ)-पतियों सहित। उ० जस अमर-नाग-नर-सुमुखि सनाहै। (गी० ७।१३)
 सनि-(सं० शनि)-१. शनिश्चर, २. शनिश्चर दिन।
 सनीचरी-(सं० शनैश्चर)-शनिवार। शु० मीनकी सनीचरी-मीन राशि पर शनीचर का आना जो अशुभ है। इससे राजा और प्रजा की हानि होती है। उ० कोढ़ में की खाडु सी सनीचरी है मीन की। (क० ७।१७७)

सनेह-(सं० स्नेह)-प्रेम, प्यार। उ० सुख सनेह सब दियौ दूसरथहि खरि खलेल थिर थानी। (गी० १।४)
 सनेहा-दे० 'सनेह'। उ० भए मगन सिव सुनत सनेहा। (मा० १।८२।२)
 सनेही-१. स्नेही, प्रेमी, २. तेल युक्त। उ० १. जे तुलसी के परम सनेही। (वि० ३६) २. परत कोरहू मैलि तिल तिली सनेही जानि। (दो० ४०३)
 सनेहु-दे० 'सनेह'।
 सनेहू-दे० 'सनेह'।
 सन्निपात-(सं०)-१. त्रिदोष, सरसाम, २. समूह, ढेर। उ० २. पूरनानंद-संदोह अपहरन-संमोह-अज्ञान-गुन सन्निपातं। (वि० ५३)
 सन्मान-(सं० सम्मान)-आदर, सम्मान।
 सन्मुख-(सं० सम्मुख)-१. सामने, आगे, २. साक्षात्, प्रत्यक्ष, ३. अनुकूल।
 सन्यपात-दे० 'सन्निपात'। उ० गुनकृत सन्यपात नहिं केही। (मा० ७।७१।१)
 सन्यास-दे० 'संन्यास'।
 सपत-दे० 'सप्त'। उ० सपत ऋषिन्ह विधि कहेउ बिलंब न लाइय। (पा० १।३६)
 सपच्छ-(सं० स + पच्छ)-पंखवाला, पच्छयुक्त। उ० जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा। (मा० ३।१८।२)
 सपच्छा-दे० 'सपच्छ'।
 सपथ-(सं० शपथ)-सौगंद, कसम। उ० तोहिं स्याम की सपथ जसोदा आइ देखु गृह मेरे। (क० ३) सपथनि-कसमों से, शपथों से। उ० क्यों हौं आछु होत सुचि सपथनि कौन मानिहै साँची? (गी० २।६२)
 सपदि-(सं०)-तुरन्त, उसी समय। उ० सपदि होहि पच्छी चंडाला। (मा० ७।११२।८)
 सपन-(सं० स्वप्न)-सपना, स्वप्न। उ० लखन सपन यह नीक न होई। (मा० २।२२६।४) सपनहूँ-सपने में भी। उ० मेरे ही सुख सुखी सुख अपनो सपनहूँ नाहि। (गी० ७।२६)
 सपना-दे० 'सपन'। सपने-स्वप्न, सपना। उ० सपने कै सौतुक सुख-सस सुर सौंचत देत निराइ कै। (गी० ५।२८) सपनेहूँ-दे० 'सपनेहूँ'। उ० सपनेहूँ दोस न लेसु न काहु। (मा० २।२६।३) सपनेहु-सपने में भी। सपनेहु-स्वप्न में भी। उ० सोवत सपनेहूँ सहै संसति संताप रे। (वि० ७३)
 सपनो-दे० 'सपन'। उ० सपनो सो अपनो न कछु। (गी० ५।३०)
 सपरन-(सं० स + पर्य)-पत्नों सहित।
 सपरब-(सं० स + पर्य)-गाठों सहित। उ० सरल सपरब परहि नहिं चीन्हे। (मा० १।२८।१)
 सपुर-(सं० स + पुर) पुरवासियों के साथ। उ० देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ। (जा० १००)
 सपूत-(सं० सु + पुत्र)-योग्य पुत्र, सुपुत्र। उ० सूर, सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआहै। (वि० १७५)
 सपेला-(सं० सर्प)-साँप का बच्चा। उ० डरपावै गहि स्वल्प सपेला। (मा० ६।५१।४)

सपोल-दे० 'सपेला' ।
 सप्त-(सं०)-सात । उ० सप्त प्रश्न मम कहहु बखानी ।
 (मा० ७।१२।१७)
 सप्तक-(सं०)-सात वस्तुओं का समूह । उ० प्रथम सर्ग जो
 सप्त रह दूजे सप्तक होइ । (प्र० १)
 सप्तद्वीप-(सं० सप्तद्वीप)-पुराणानुसार-जंबू, कुश, प्लक्ष,
 शात्मलि, क्रौंच, शाक और पुष्पार नामक सप्तद्वीप । उ०
 सप्तद्वीप भुजबल बस कीन्हे । (मा० ७।१२।४४)
 सप्तधातु-(सं०)-रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और
 शुक्र ये सप्तधातु हैं जिनसे शरीर बना है । उ० सातै
 सप्तधातु निमित्त तनु करिय विचार । (वि० २०३)
 सप्तरिषि-दे० 'सप्तर्षि' । उ० तबहि सप्तरिषि सिव पहि
 आपु । (मा० १।७७।४)
 सप्तर्षि-(सं०)-कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम,
 यमदग्नि और वसिष्ठ, ये सात ऋषि ।
 सप्तसागर-(सं०)-लवण, इन्दु, दधि, क्षीर, मधु, मदिरा,
 और घृत के सात समुद्र । उ० भूमि सप्तसागर मेखला ।
 (मा० ७।२२।१)
 सप्तावरन-(सं० सप्त + आवरण)-आत्मा के जल, पवन,
 अग्नि, आकाश, अहंकार, महत्त्व और प्रकृति नामक सात
 आवरण । उ० सप्तावरन भेद करि जहाँ लगै गति मोरि ।
 (मा० ७।७६।ख)
 सफरी-(सं० शफरी)-मछली । उ० सफरी सनमुख जल-
 प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी । (वि० १६७)
 सफल-(सं०)-१. कृतकार्य, कामयाब, २. फलयुक्त । उ०
 १. नैन लाहु लहि जनम सफल करि लेखहि । (जा०
 २।१।१) २. सफल पूगफल कदलि रसाला । (मा० १।
 ३४४।४)
 सब-(सं० सर्व)-सभी, पूरे, संपूर्ण । उ० सब सोच-विमो-
 चन चित्रकूट । (वि० २३) सबह-सभी, सब ही । सबनि-
 १. सबने, २. सबको, ३. सब पर, ४. सब, सभी । उ० १.
 मंगल कलस सबनि साजे । (गी० ६।२३) सबन्ह-दे०
 'सबन्हि' । सबन्हि-सब, सभी । उ० पत मिस लोचनलाहु
 सबन्हि कहँ दीन्हेउ । (जा० ७६) सबन्हौ-सबको ।
 सबहि-१. सबको, २. सबने । उ० १. सबहि समरथाहि
 सुखदप्रिय । (दो० ७४) २. आपन आपन साज सबहि
 बिलगायउ । (पा० १०६) सबहि-१. सभी, २. सबको ।
 उ० १. सबहि को पाप बहावों । (गी० ६।८) सबही-दे०
 'सबही' । सबही-१. सभी, २. सभी को । उ० १. बायस
 इत्र सबही सन डरई । (मा० ७।११२।७) २. कपि थाप्यौ
 सो माखुम है सबही । (क० ७।१०२) सबै (१)-१. सभी,
 २. सभी को, ३. सबसे । उ० १. दिये जगत जहँ लगि
 सबै सुख गज रथ घोरे । (वि० ८) ३. तुलसी तेहि औसर
 लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै । (क०
 १।७)
 सबद-(सं० शब्द)-शब्द, आवाज़ । उ० डोलै लोल बृक्षत
 सबद डोल तरना । (क० ७।१४८)
 सबदी-(सं० शब्द)-संतों के उपदेश । उ० साखी सबदी
 दोहरा कहि किहनी उपखान । (दो० २६४)
 सबरि-(सं० शवरी)-शवरी नामक भीलनी । उ० कीस,

केवट, उपल, भालु, निसिचर, सबरि, गीध सम-दम-दया-
 दान हीने । (वि० १०६)
 सबरी-दे० 'सबरि' ।
 सबल-(सं०)-बलवान, बलयुक्त । उ० सेवक सुखदायक
 सबल सब लायक । (वि० ३७)
 सबील-(अर०)-१. प्रबंध, २. रास्ता, मार्ग । उ० १. कहँ
 मैं बिभीषन की कछु न सबील की । (क० ६।२२)
 सबु-दे० 'सब' । सबुइ-सभी, सब । उ० बेगि बिलंबु न
 करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु । (मा० २।४)
 सबेर-दे० 'सबेरो' ।
 सबेरा-दे० 'सबेरो' ।
 सबेरे-दे० 'सबेरो' ।
 सबेरो-(स + वेला)-प्रतः, सबेरा । उ० सनेह सों राम को
 होइ सबेरो । (क० ७।३६)
 सबै (२)-(सं० सबय)-एक उमर के । उ० सखा अरु बीर
 सबै । (क० १।७)
 सबद-(सं० शब्द)-१. शब्द, २. आवाज़, ३. वाक्य, बोल ।
 सभ-(सं० सर्व + ही)-सब, सभी । उ० सभ कै सकति
 संधुं धनु भानी । (मा० १।२६।२।३) सभहि-सभी को ।
 सभदरसी-(सं० सर्व + दर्शिन) सर्वदर्शी, सर्वज्ञ ।
 सभहि-सभा को । उ० सकल सभहि हठि हटकि तब । (मा०
 १।६३) सभा-(सं०)-मंडली, पंचायत, समाज । उ० संत
 सभा चहुँदिसि अँबराई । (मा० १।३७।६)
 सभासद-(सं०)-सभा में बैठनेवाले, दरबारी । उ० राज
 समाज सभासद समरथ । (क० ६०)
 सभीत-(सं०) डरा हुआ, भयभीत । उ० समुक्ताये उर लाइ
 जानि सनेहँ सभीत । (मा० २।७२)
 सभीता-दे० 'सभीत' ।
 सम-विषमतारहित को । उ० समं सुसेन्य मन्वहं । (मा०
 ३।४।छं० १०) सम-(सं०)-१. समान, तुल्य, बराबर,
 २. सीधा, ३. ठीक, समदर्शी, ४. एकसा, सीधा, ६. मन
 का विषयों से रोकना, ७. एकरस । उ० २. फरसा सेल
 बाँस सम करहीं । (मा० २।१६।१।३) ४. तुम्ह सम सील
 धीर मुनि ग्यानी । (मा० १।२७।२)
 समउ-(सं० समय)-समय, वक्त । उ० देव देखि भल
 समउ मनोज बुलायउ । (पा० २८)
 समज-(सं०)-सामने, सम्मुख ।
 समग्र-(सं०)-सारा, संपूर्ण ।
 समचर-(सं०) समान आचरण करनेवाला । उ० नाद निदुर
 समचर सिखा सलिल सनेह न सूर । (वि० १।११)
 समफ-(?)-१. बुद्धि, अकल, २. सम्मत, राय ।
 समफत-१. समफता है, विचारता है, २. जानिने में ।
 समता-(सं०)-१. सम या बराबर होने का भाव, २. सब-
 को बराबर समफना । उ० २. तुलसी यह मत संत को
 बोले समता माहि । (वै० १३)
 समत्य-समर्थ । उ० समत्य हाथ पाय को, सहाय असहाय
 को । (ह० ३१)
 समदरसी-(सं० समदर्शिन) सबको बराबर समफनेवाला ।
 उ० समदरसी जानहि हरि लीला । (मा० १।३०।३)
 समदि-(?)-१. आदर-सत्कार करके, २. पूजा करके ।

उ० १. सब बिधि सबहि समदि नर नाहु । (मा० १। ३५११)

समहक-समदर्शी । उ० दक्ष, समहक स्वहक विगत-अति स्वपर- मति परमरति तब विरति चक्रपानी । (वि० ५७)

समधी-(सं० संबंधी)-१. पति और पत्नी के पिता आपस में समधी होते हैं । २. संबंधी । उ० १. सम समधी देखे हम आजू । (मा० १।३२०।३) २. समधी सकल सुआसिनि गुरु तिय पावनि । (जा० २।१४)

समनं-दे० 'समन' । उ० १. जय राम रमा रमनं समनं । (मा० ७।१४।४० १) समन-(सं० शमन)-१. शमन करनेवाला, २. नाश, ध्वंस, ३. यमराज । उ० ३. मातु मृत्यु पितु समन समाना । (मा० ३।२।२) समनि-नाश करनेवाली । उ० सगर सुवन साँसति समनि । (वि० २०)

समनी-दे० 'समनि' । उ० तुलसिदास कल कीरति गावत जो कलिमल समनी । (गी० ७।२०)

समय-(सं०)-१. काल, अवसर, वेला, २. समय पर, ३. सुहृत्, साइत । उ० १. समय न धोखो लैहौ । (गी० ३।१३) २. समय सब ऋषिराज करत समाज साज समीति । (गी० ७।३५) समयन-समयों पर, समय पर । उ० तिन्ह समयन लंका दई, यह रघुबर की रीति । (दो० १।६२) समयहि-समय ने ही । उ० समयहि साधे काज सब । (दो० ४।४८)

समर-(सं०)-संग्राम, लड़ाई । उ० ऐसे समय समर संकट हौं तज्यो लखन सो आता । (गी० ६।७)

समरथ-(सं० समर्थ)-सामर्थ्यवान, समर्थ । उ० असुर-सुर सर्व सरि समर समरथ सूर । (ह० ३)

समरथ-सामर्थ्यवान । उ० समरथ को करि जतन निवारे । (कृ० ५७)

समरपित-(सं० समर्पित)-दी हुई, समर्पित, अर्पित । उ० सुथल समरपित कीन्हि । (प्र० ४।६।३)

समरपी-समर्पित किया, दिया । उ० भवहि समरपी जानि भवानी । (मा० १।१०।१।१) समरपेउ-समर्पित कर दिया । उ० मनसहि समरपेउ आपु गिरिजहि, बचन मृदु बोलत भए । (पा० ४५)

समर्थ-समर्थवान, समर्थ । उ० स्वामी सुसील समर्थ सुजान सो तोसो तुही दसरथ दुलारे । (क० ७।१२)

समर्थ-(सं०)-१. सामर्थ्यवान, शक्तिशाली, योग्य, २. शक्ति, बल ।

समर्पई-(सं० समर्पण)-सौंपती है, देती है । उ० सेए सोक सम पई, बिमुख भए अभिराम । (दो० २।२८) समर्पि-सौंपकर । उ० प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं । (मा० ७।१०।३।१) समर्पी-समर्पण कर दी । उ० संकल्प सिय रामहि समर्पी सील सुख सोभा मई । (जा० १।६२) समर्पे-समर्पित किया । समर्पे-१. समर्पित किया, दिया, २. अर्पण करे ।

समसीला-समान शीलवाले । उ० ते श्रोता बकता समसीला । (मा० १।३०।३)

समस्त-(सं०)-सब, कुल, संपूर्ण । उ० सुचि सेवक तुम राम के रहित समस्त विकार । (मा० १।१०।४)

समा-(सं० समान)-समान, बराबर । उ० संसार मई

पुरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा । (मा० ६।६०। ४० १)

समाइ-(सं० समावेश)-घुसता है, समाता है । उ० सो सहेतु ज्यों बक्रगति ब्याख न बिले समाइ । (दो० ३।३४)

समाई-घुसी, घुसती है । उ० उपमा हिय न समाई । (वि० ६२) समाउ-समाऊँ, समाऊँगा । उ० ठाउँ न समाऊँ कहाँ सकल निरपनो । (क० ७।७८) समाउ-१. घुसता है, घुसे, २. प्रवेश, ३. शक्ति, बल, ४. समता, साम्य । उ० १. इतौ न अनत समाउ । (वि० १००) ४. पै हिये उपमा को समाउ न आयो । (क० ६।५४)

समात-१. समाता, अटता, २. लय हो जाता । उ० १. बोले मनुकरि दुंदवत प्रेम न हृदय समात । (मा० १।१४।५) २. तेहि में समात मातु भूमिधर बालि के । (क० ७।१७३) समाता-समा जाता, अटता । समाति-समाती, समाती थी । उ० मिलनि परसपर बिनय अति, प्रीति न हृदय समाति । (मा० १।३४०) समाती-दे० 'समाति' । उ० बाचत प्रीति न हृदय समाती । (मा० १।६।१।३) समातै-समाता है । उ० कौसल्या के हर्ष न हृदय समातै हो । (रा० २) समातो-१. समाता, अटता, स्थान पाता, २. आदर पाता । उ० २. सीतापति-सनमुख सुखी सब ठाँव समातो । (वि० १।५१) समान(१)-(सं० समावेश)-प्रवेश किया । समाना-(१)-घुसा, पैठा । समानी-घुसी, पैठी । समाने-१ घुसे, पैठे, २. पैठे हुए । उ० २. नीकेई लागत मन रहत समाने । (क० ३।८) समाहिं-समाते हैं, समा जाते हैं, डूब जाते हैं । उ० सुमिरि सोच समाहिं । (गी० ७।२६) समाहिगे-समा जाएँगे, डूबेंगे, अटेंगे । उ० समाहिगे कहाँ मही । (क० ६।८) समाहीं-१. प्रवेश पाते, प्रवेश पाते हैं, २. सायुज्य मुक्ति पाते हैं । उ० २. बेद विदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं । (वि० ४) समैहै-डूब जाएँगे, समा जायेंगे । समैहै-(सं० समावेश)-समा जाएँगा, डूब जाएँगा । उ० निरखि हृदय आनंद समैहै । (गी० १।५०)

समागत-(सं०)-१. सभा, २. आए हुए लोग ।

समागम-(सं०)-१. आगमन, आना, २. मिलना, ३. समुदाय, समाज । उ० २. मुनि मुनि आज्ञु समागम तोरे । (मा० १।१०।५।१) ३. गावत सुरमुनि संत समागम । (मा० ७।५।१।३)

समाचार-(सं०)-वृत्तांत, हाल । उ० समाचार सब सखिन जाइ घर घर कहे । (पा० ३३)

समाज-(सं०)-१. लोगों का समूह, २. समूह, ३. सभा, मंडली, परिषद, ४. उत्सव, जलूस या कोई अन्य समारोह, ५. तैयारी, ६. सामान । उ० ३. राजत राज समाज मई कोसल राज किसोर । (मा० १।२४२) ४. सिव समाज जब देखन लागे । (मा० १।६५।२) समाजहि-१. समाज को, २. समाज में ।

समाजा-दे० 'समाज' ।

समाजी-किसी समाज या मंडली के लोग । उ० बरषि सुमन सुरगन गावत जस हरषमगन मुनि सुजन समाजी । (कृ० ६१)

समाजु-दे० 'समाजु' । उ० ६. सब समाजु सजि सिधि पल माहीं । (मा० २।२१।४)

समाजू-दे० 'समाजू' । उ० ४. बरनब राम विवाह समाजू ।
 (मा० १४२१२) ५. बेगि करिअ बन गवन समाजू ।
 (मा० २१६८२)
 समाधान-(सं०)-१. ढाढ़स, धीरज, शांति, २. प्रश्न या
 शंका का यथोचित उत्तर । उ० १. समाधान तब भा यह
 जाने । (मा० २१२२७३) समाधानु-दे० 'समाधान' ।
 समाधि-(सं०)-१. ध्यान में लीन, गहरा ध्यान, आसन
 लगाकर ध्यानस्त होना, २. नींद, ३. मृत व्यक्ति को
 ज़मीन में गाड़ना । उ० १. सुनि गुनगान समाधि
 बिसारी । (मा० ७१४२१४) ३. समाधि कीजै तुलसी को
 जानि जन फुरकै । (ह० ४३)
 समाधी-दे० 'समाधि' । उ० १. सहज बिमल मन लागि
 समाधी । (मा० ११२५१२)
 समान (२)-(सं०)-१. बराबर, एकसा, २. पाँच प्राणों में
 एक । उ० १. चलह जोंक जिमि बक्रगति जछपि सखिल
 समान । (दो० २१७)
 समाना (२)-बराबर. समान । उ० पुनि प्रनवउँ पृथुराज
 समाना । (मा० ११४१५)
 समाप्त-(सं०)-खतम, पूरा ।
 समाप्ति-(सं०)-अंत, नाश ।
 समारोह-(सं०)-१. भीड़, जमावड़ा, २. उत्सव ।
 समास-(सं०)-संक्षेप में, खुलासा । उ० कपि सब चरित
 समास बखाने । (मा० ६१६०१)
 समिति-(सं०)-१. मिश्रता, २. सभा, बैठक, ३. समाज ।
 समिती-दे० 'समिति' ।
 समिध-(सं०)-१. आग, २. होम की लकड़ी जो चार
 प्रकार की कही गई है—१. आम, २. पीपल, ३. ढाक, ४.
 झोंकर ।
 समिधि-दे० 'समिध' । उ० २. समिधि सेन चतुरंग सुहाई ।
 (मा० ११२८३१२)
 समीचीन-(सं०)-१. प्राचीन, पुराना, २. सच्चा, ३.
 उत्तम, अच्छा । उ० ३. गनिहि गुनिहि साहिब लहै सेवा
 समीचीन को । (वि० २७४)
 समीचीनता-१. उत्तमता, अच्छाई, २. पुरानापन, प्राची-
 नता, ३. सच्चाई, श्रेष्ठता । उ० १. सनमुख होत सुनि
 स्वामि समीचीनता । (वि० २६२)
 समीति-(सं० समिति)-१. सभा, समाज, समूह, २. मेल,
 मैत्री । उ० १. रागद्वेष इरषा बिमोह बस रुची न साधु
 समीति । (वि० २३४)
 समीती-दे० 'समीति' ।
 समीप-(सं०)-नजदीक, पास, सन्निकट । उ० यह भरत खंड
 समीप सुरसरि थल भलो संगति भली । (वि०
 १३५)
 समीपा-दे० 'समीप' ।
 समीर-(सं०)-१. हवा, वायु, २. प्राण । उ० १. विषय
 समीर बुद्धि कृत भोरी । (मा० ११११८८) । समीरन-
 प्राणों, प्राणों को ।
 समीरा-दे० 'समीर' ।
 समीहा-(?)-इच्छा, चाहा । उ० उत्तपति पालन प्रलय
 समीहा । (मा० ६११३३)

समुचित-(सं०)-१. योग्य २. यथार्थ ।
 समुक्त-(?)-१. बुद्धि, अज्ञान, २. समझो, ३. समझो ।
 समुक्त-समझता है । समुक्त-समझूँ । समुक्त-सम-
 झते हैं । समुक्ति-समझना । समुक्त-समझूँगा, सम-
 झिएगा । समुक्ति-(?)-१. बुद्धि, ज्ञान, २. समझ करके,
 जान करके, ३. समझो, ४. याद करके, ५. बुद्धि में ।
 उ० २. जाको बालबिनोद समुक्ति जिय डरत दिवाकर
 भोर को । (वि० ३१) ५. समुक्ति परत न । (वि० १३४)
 समुक्तिबो-समझ लेना, समझलो । समुक्तिहि-समझ ले ।
 समुक्तिब-समझिए, समझना चाहिए । समुक्तिहि-
 समझेंगे । समुक्ति-समझा, बुझा । समुक्ति-बुझो, समझो ।
 समुक्ति-समझे, जाने । उ० बिजु समुक्ति निज अघ परि-
 पाऊ । (मा० २१२६१३) समुक्ति-समझे ।
 समुक्ताइ-(?)-१. समझाकर, २. समझाया । समुक्ताइबी-
 समझाइएगा, समझा देना । उ० प्रीति रीति समुक्ताइबी
 नतपाल कृपाहुहि परमिति पराधीन की । (वि० १७८)
 समुक्ताइय-समझाता हूँ । (वि० ११६) समुक्ताइ-दे०
 'समुक्ताइ' । समुक्ताउ-समझाओ । समुक्ताएसि-समझाया ।
 समुक्ताय-समझाकर, बुझाकर । समुक्तायऊ-समझाया ।
 समुक्ताव-समझाओ, समझाना । समुक्तावत-समझाता है ।
 समुक्तावति-समझाती है । समुक्तावहि-समझाते हैं ।
 समुक्तावा-समझाया, बतलाया । उ० एहि विधि राम
 सबहि समुक्तावा । (मा० २१८१११) समुक्ताहै-समझावेंगे ।
 उ० कै समुक्तिबो कै यें समझैहैं हारेहु मानि सहीजै ।
 (क० ४५)
 समुदाइ-दे० 'समुदाय' । उ० राकापति षोडस उवहि
 तारागन समुदाइ । (दो० ३८६)
 समुदाई-दे० 'समुदाय' । उ० वेद पढ़हि जिमि बटु समुदाई ।
 (मा० ४११५११)
 समुदाय-(सं०)-समूह, झुंड ।
 समुद्रव-उत्पन्न, पैदा । उ० ब्रह्मांभोधि समुद्रवं । (मा०
 ४११२७०) समुद्रव-(सं०)-१. उत्पत्ति, जन्म, २.
 उत्पन्न ।
 समुद्र-(सं०)-सागर, सिंधु । उ० छवि समुद्र हरि रूप
 बिलोकी । (मा० १११४८३)
 समुहाई-(सं० समुख)-१. सामने, आगे, २. चले । उ०
 अतिभय त्रसित न कोउ समुहाई । (मा० ६१६१५)
 समुहान-१. सामने की ओर, आगे, २. चलने को तैयार ।
 उ० १. जनु हुकाल समुहान । (प्र० १७७२)
 समुहानी-सामने की ओर चलीं, समुख हुईं । उ० राम
 सरूप सिंधु समुहानी । (मा० ११४०१२) समुहाहि-दे०
 'समुहाही' । समुहाही-सामने आती है या आते हैं । उ०
 तिन्हहि न पापपुंज समुहाही । (मा० २११६४३)
 समूल-(सं०)-जड़ से ।
 समूला-दे० 'समूल' । उ० फरत करिनि जिमि हतेउ
 समूला । (मा० २१२१४) समूलें-जड़ से । उ० अपडर
 डरेउं न सोच समूलें । (मा० २१२६७२)
 समूह-(सं०)-झुंड, ढेर, समुदाय । उ० धूम समूह निरखि
 चातक ज्यों । (वि० ३०)
 समूहा-दे० 'समूह' ।

स्मृति-स्मृति, स्मरण ।
 समृद्धि-(सं०)-धनवान, ऐश्वर्यशाली ।
 समृद्धि-(सं०)-बढ़ती, उन्नति । उ० सुरराज सो राज समाज
 समृद्धि विरंचि धनाधिप सो धन भे । (क० ७।४२)
 समेत-(सं०)-सहित, संयुक्त । उ० फिरि आवइ समेत
 अभिमाना । (मा० १।३६।२)
 समेता-दे० 'समेत' ।
 समेते-दे० 'समेत' । उ० खगमृग सुर नर असुर समेते ।
 (मा० १।१८।२)
 समै-(सं० समय)-समय, वक्त, अवसर । उ० सुनि कै
 सुचित तेहि समै समैहैं । (गी० २।३७)
 समोई-(?)-मिलाकर । उ० करत कछु न बनत हरि हिय
 हरष सोक समोई । (गी० १।१५) समोई-मिला, लगा ।
 उ० तामें तन मन रहे समोई । (वै० ५२)
 समौ-(सं० समय)-समय, अवसर, प्रसंग । उ० देहि गारि
 लहकौरि समौ सुख पावहि । (जा० १।६७)
 सम्यक्-(सं० सम्यक्)-१. अच्छी प्रकार, अच्छी तरह से,
 २. पूरा, सब । उ० २. सम्यक म्यान सकृत कोउ लहई ।
 (मा० ७।१४।२)
 सय-(सं० शत)-सौ । उ० दिन-दिन सयगुन भूपति
 भाऊ । (मा० १।३६।२)
 सयन (१)-(सं० शयन)-१. सोनेवाला, २. सोना, शयन,
 ३. शय्या, सेज । उ० १. करउ सो मम उर धाम सदाँ छीर
 सागर सयन । (मा० १।१। सो० ३)
 सयन (२)-(सं० सज्जन)-इशारा, संकेत । सयनहिं-इशारे
 से, संकेत से । उ० सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे । (मा०
 १।२५।२)
 सयान-(सं० सज्जन)-१. चतुर, होशियार, २. उन्न में
 अधिक । उ० १ जो भलै भगवान सयान सोई । (मा०
 ७।३३।३) सयाने-दे० 'सयान' १. चतुर लोग, २. बड़े
 लोग ।
 सयानप-चतुरता, होशियारी, विवेक । उ० भूप सयानप
 सकल सिरानी । (मा० १।२५।३)
 सयाना-दे० 'सयान' । सयानी-'सयाना' का
 स्त्रीलिंग ।
 सयानि-दे० 'सयानी' । उ० २. नृप लखि कुँवरि सयानि
 बोलि गुरु परिजन । (जा० ८)
 सयानो-दे० 'सयान' ।
 सयुत-(सं० संयुक्त)-संयुक्त, समेत ।
 सयो-(सं० शत)-सौओं की । उ० पाँचहि मारि न सौ सके
 सयो सँहारे भीम । (दो० ४२८)
 सर (१)-(सं० सरस्)-ताल, तालाब । उ० तुलसीदास
 कब नृषा जाय सर खनतहि जनम सिरान्यो । (वि० ८८)
 सरनि-तालाबों में । उ० सरनि विकसित कंज । (गी० १।
 ३५)
 सर (२)-(सं० शर)-१. बाण, तीर, २. चिता । उ० १.
 तिलक लखित सर शुकुटी काम कमानै । (जा० ५०) २.
 पहि बिधि सर रचि । (मा० ३।८।४) सरनि-बाणों से ।
 उ० सरनि मारि कीन्हैसि जर्मर तन । (मा० ६।७।३।५)
 सरन्ह-बाणों, तीरों ।

सर (३)-(फ़ा०)-सिर, शीश ।
 सरई-(सं० सरण)-पूर्ण होगी, पूर्ण हो जायगी । उ० थोरे
 धनुष चाँड़ नहि सरई । (मा० १।२६।२) सरत-पूरा होता,
 निकलता । उ० आगम विधि जप जाग करत नर सरत न
 काज खरो सो । (वि० १७३) सरै-पूरा पड़े, होवे, बने ।
 सरो-हो, हो जाय, पूरा हो । उ० प्रीति प्रतीति जहाँ
 जाकी तहँ ताको काज सरो । (वि० २२६)
 सरक-(?)-शराब की खुमार । उ० सरक सहेतु है । (क०
 ७।८२)
 सरकस(फ़ा०)-प्रबल, उहँड ।
 सरखत-(फ़ा०)-१. परवाना, आज्ञापत्र, २. ऋण की लेन-
 देन संबंधी कागज । उ० १. तुलसी निहाल कै कै दियो
 सरखतु है । (क० ६।५८)
 सरग-(सं० स्वर्ग)-१. नाग, बैकुण्ठ, देवलोक, २. आकाश ।
 उ० १. पात पात को सींचियो न करु सरग तरुहेत ।
 (दो० ४५२) २. चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहार । (ब०
 १६) सरगहुँ-स्वर्ग में भी । उ० तहँ गये मद मोह लोभ अति
 सरगहुँ मियति नसावत । (वि० १८५)
 सरगु-दे० 'सरग' । उ० १. सरगु नरकु जहँ लगि व्यव-
 हारु । (मा० २।६२।४)
 सरजू-सरयू नदी । उ० सरजू तीर सम सुखद भूमि-थल, गनि
 गनि गोइयाँ बाँटि लये । (गी० १।४३)
 सरजू-(सं० सरयू)-सरयू नदी जिसके किनारे अयोध्या
 नगरी है । उ० मज्जाहि सज्जन वृंद बहुपावन सरजू नीर ।
 (मा० १।३४)
 सरद-(सं० शरद)-एक ऋतु, क्वार और कार्तिक का
 महीना । उ० बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई । (मा० १।
 ४२।३)
 सरन-(सं० शरण)-१. शरण, पनाह, संरक्षिता, २. शरणा-
 गत का रक्षक, शरण देनेवाला, ३. शरणागत, जो शरण
 में आये । उ० १. असित कलि ब्याल राख्यौ सरन सोऊ ।
 (वि० १०६) २. सबही को तुलसी के साहिब सरन भो ।
 (क० ६।५६) ३. सरन सोकहारी । (वि० ५७) सरनहि-
 १. शरण में, २. शरण को ।
 सरना-दे० 'सरन' । उ० १. तब ताकिसि रघुनायक सरना ।
 (मा० ३।५६।१)
 सरनाई-(सं० शरण)-शरण, पनाह । उ० जौ सभीत आवा
 सरनाई । (मा० १।४४।४)
 सरनागत-(सं० शरणागत) शरण में आया हुआ । उ० सरना-
 गत पालक कृपाळु । (गी० १।२२)
 सरनाम-(फ़ा०) प्रसिद्ध, मशहूर । उ० तुलसी सरनाम
 गुलाम है राम को । (क० ७।१०६)
 सरपि-(सं० सर्पिस्)-घी, घृत । उ० सुरभी सरपि सुंदर स्वाद
 पुनीत । (मा० १।३५८)
 सरब-(सं० सर्व)-सब, सभी, सर्वस्व । उ० पृही दरबार है
 गरब तें सरब हानि । (वि० २६२)
 सरबग्य-(सं० सर्वज्ञ)सब कुछ जाननेवाला, सर्वज्ञ । उ० अंतर-
 जामी रामु सिय तुह सरबग्य सुजान । (मा० २।२५६)
 सरबद-(सं० सरोवर)-सरवर, तालाब । उ० भूपति नृषित
 बिलोकि तेहि सरबरु दीन्ह देखाइ । (मा० १।१५८)

सरबस-दे० 'सरबसु' ।
 सरबसु-(सं० सर्वस्व)-सब, सब कुंझ, पूरा । उ० प्रिया
 प्राण सुत सरबसु मोरें । (मा० २।२६।३)
 सरभंग-(सं० शरभंग)-एक ऋषि जिनका दर्शन वनवास
 के समय राम ने किया था । उ० सादर पान करत अति
 धन्य जन्म सरभंग । (मा० ३।७)
 सरभंगा-दे० 'सरभंग' । उ० पुनि आए जहँ मुनि सर
 भंगा । (मा० ३।७।४)
 सरम-(फ्रा० शर्म)-लाज, शर्म । उ० तेहि प्रभु को होहि
 जाहि सबही की सरम । (वि० १३१)
 सरयू-(सं०)-एक प्रसिद्ध नदी जिसके किनारे अयोध्या
 है ।
 सरल-(सं०)-१. सीधा, जो ठेढ़ा न हो, २. सच्चा, ईमान-
 दार । उ० १. राउर सरल सुभाउ । (मा० २।१७) सरलै-
 १. सज्जन को भी, २. सरल ही को, सीधे या सच्चे ही
 को । उ० १. तुलसी सरलै संत जन । (वै० ८)
 सरलता-(सं०)-सिधाई, सज्जनता ।
 सरव-दे० 'सरौ' । उ० सरव करहि पाइक फहराहीं ।
 (मा० १।३०२।४)
 सरवदा-दे० 'सर्वदा' ।
 सरवर-(सं० सरोवर)-तालाब । उ० सभा सरवर लोक
 कोकनद कोकगन । (गी० १।७१)
 सरवरी-(सं० शर्वरी)-रात, निशा ।
 सरवरीनाथ-(सं० शर्वरीनाथ)-चंद्रमा, शशि ।
 सरवाक-(सं० शरवाक)-प्याला, संपुट । उ० उतरि
 पयोधि पार सोधि सरवाक सो । (क० १।२१)
 सरषत-दे० 'सरखत' ।
 सरस-(सं०)-१. रसीला, रसयुक्त, २. तालाब, ३. प्रेम
 के साथ, ४. श्रेष्ठ, उत्तम, ५. रसिक, ६. भीगा,
 सिक, ७. अनुरक्त, ८. सुंदर । उ० १. सुखि सुबास
 सरस अनुरागा । (मा० १।१।१) ६. राम सनेह सरस
 मन जासु । (मा० २।२७।२) ८. पहिरे पटभूषन सरस
 रंग । (गी० ७।२२)
 सरसई (१)-सरसता है, हरा भरा होता है ।
 सरसई (२)-(सं० सरस्वती)-सरस्वती । उ० सुरसरि
 सरसई दिनकर कन्या । (मा० २।१३।२)
 सरसई-(सं० सरस)-१. बढ़ानेवाली, २. सरसता, ३.
 कृपा । उ० १. सुखन की सुखमा सुखद सरसई है ।
 (गी० १।८४)
 सरसाई-१. अधिकता, २. उत्तमता, ३. सरसता, रसीला
 पन ।
 सरहना-(सं० श्लघन)-सराहना, प्रशंसा । उ० गिरिवर
 सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ । (पा० १६)
 सरसि-दे० 'सरसी' ।
 सरसिज-(सं०)-कमल, नीरज । उ० मनहुँ साँक सर-
 सिज सकुचानो । (मा० १।३३।१)
 सरसी-(सं०)-तालाब । उ० सरसी सीपि कि सिंधु
 समाई । (मा० २।२५।२)
 सरसीरह-(सं०)-कमल, पद्म । उ० धर्म सकल सरसीरह
 बूँदा । (मा० ३।४३।३)

सराध-(सं० श्राद्ध)-मृत पुरुष के लिए किया गया श्राद्ध,
 पिंडदान आदि ।
 सराधा-दे० 'सराध' । उ० द्विज भोजन मख होम सराधा ।
 (मा० १।१८।१४)
 सराप-(सं० शाप)-श्राप, शाप, बददुआ । उ० तिन्हहि
 सराप दीन्ह अति गाढ़ा । (मा० १।१३।४)
 सराफ-(अर० सराफ)-सोने चाँदी का व्यापारी । उ० बैठे
 बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते । (मा० ७।
 २।८।१)
 सरावग-(सं० श्रावक)-बौद्ध संन्यासी । उ० स्नान सरावग
 के लहे लघुता लहै न गंग । (दो० ३८३)
 सरासन-(सं० शरासन)-धनुष । उ० छुअत सरासन सलभ
 जरैगो ये दिनकर-बंस दिया रे । (गी० १।६६)
 सरासन-दे० 'सरासन' ।
 सरासुर-(सं० शरासुर)-चाणासुर । उ० सकइ उठाइ सरा-
 सुर मेरु । (मा० १।२६।२।४)
 सराह-(सं० श्लाघन)-१. सराहते हैं, सराहना करते हैं, २.
 सराहना की । उ० १. देखि सराह महासुनि राज । (मा०
 १।३६।२) सराहइ-१. सराहते हैं, २. सराहना करने
 लगी । उ० १. बकिहि सराहइ मानि मराळी । (मा० २।२०।
 २) सराहत-सराहते हैं, सराहती हैं, सराहते हुए ।
 सराहन-सराहने, सराहना करने । सराहसि-१. सराहना
 करती रही, २. सराहना करती थी, ३. सराहना करती
 है । उ० २. तुहँ सराहसि करसि सनेहु । (मा० २।३२।४)
 सराहि-सराहते हैं, सराहना करते हैं । उ० देखि प्रेम
 ब्रत नेसु सराहि सज्जन । (पा० ४०) सराहा-सराहना
 की । सराहि-सराहना करके, सराह कर । उ० सुमन बरषि
 हृषे सुर मुनि मुदित सराहि सिहात । (गी० ३।१७)
 सराहिय-१. सराहिए, २. सराहना की जाती है । उ० २.
 सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीखु । (दो०
 ३३८) सराहियत-सराहना की जाती है । सराहिबे-
 सराहने, सराहना करने के लिए । उ० साँकरे के सेईबे
 सराहिबे सुमिरबे को । (क० ७।२२) सराही-सराहा,
 सराहना की, २. सराहना करके । उ० २. यान करहि
 निज सुकृत सराही । (मा १।३४।३) सराहु-सराहना
 करो, प्रशंसा करो । उ० सुकृत निज सियराम रूप बिरंचि
 मतिहु सराहु । (गी० १।६५) सराहु-दे० 'सराहु' ।
 सराहे-सराहा, सराहना की । उ० स्नाद्ध कियो गीध को
 सराहे फल सबरी के । (क० ७।१५) सराहेहु-सराहा ।
 सराहै-सराहना करते हैं । उ० सुनि सत्रु सुसाहिब सील
 सराहै । (क० ७।१०)
 सरि-दे० 'सरिता' । उ० निरखि सैलसरि बिपिन बिभागा ।
 (मा० १।१२।१) सरिहि-१. नदी में, २. नदी को ।
 सरिही-दे० 'सरिहि' ।
 सरित-दे० 'सरिता' । उ० जासु समीप सरित पथ तीरा ।
 (मा० २।२२।३) सरितन्ह-नदिवाँ । सरितहि-१. नदी
 को, २. नदी में ।
 सरिता-(सं० सरित्)-नदी । उ० लूम लसति सरिता सी ।
 (वि० २२)
 सरिवरि-(सं० सरि + प्रक्ति)-बराबरी, प्रतियोगिया ।

उ० हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा । (मा० १।२८२।३)
 सरिस-(सं० सदश)-समान, तरह । उ० कीट जटिल तापस सब सरिस-पालिका । (वि० १७)
 सरिसा-दे० 'सरिस' । उ० कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा । (मा० २।१२।२)
 सरिसु-दे० 'सरिस' ।
 सरी-(सं०)-१. तालाब, २. चरमा, भरना, ३. नदी । उ० ३. बह समीप सुरसरी सुहावनि । (मा० १।१२।१)
 सरीर-(सं० शरीर)-देह, बदन, शरीर । सरीर लस्यौं तजि नीर ज्यों काई । (क० २।२) सरारन्धि-शरीरों, शरीरों पर, शरीरों से । सरीरहि-शरीर को । सरीरही-दे० 'सरीरहि' । सरीरै-शरीर को । उ० पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेमपुलक बिस्तराय सरीरै । (गी० ६।१५)
 सरीरा-दे० 'सरीर' । उ० सजल बिलोचन पुलक सरीरा । (मा० २।११।२)
 सरीरु-दे० 'सरीर' ।
 सरीरु-दे० 'सरीर' । उ० जनु कठोरपनु धरें सरीरु । (मा० २।४।१।२)
 सरीसा-दे० 'सरिस' । उ० सुनहु लखन भल भरत सरीसा । (मा० २।२३।१।४)
 सरु-(सं० सरस)-तालाब, सरोवर । उ० सकज-सुकृत सरसिज को सरु है । (वि० २२५)
 सरुख-(सं० स + रोष)-क्रोधयुक्त । उ० दीन्ही मोहि सरुख सजाइ । (गी० ७।३०)
 सरीकता-(अर० शरीक)-साक्षा, साक्षीपन । उ० रावनी पिनाक में सरीकता कहाँ रही । (क० १।५६)
 सरुष-दे० 'सरुख' । उ० बोले भृगुपति सरुष हँसि । (मा० १।२८२)
 सरुहाए-(?)-बंगा किया, ठीक किया । उ० समुक्ति रहनि सुनि कहनि बिरह व्रन अनष अमिय औषध सरुहाए । (क० ५०)
 सरुप (१)-(सं०)-रूपयुक्त, आकारवाला ।
 सरुप (२)-(सं० स्वरूप)-स्वरूप, रूप, देह, आकार । उ० जब मति यहि सरुप अटकै । (वि० ६३)
 सरुपा-दे० 'सरुप' ।
 सरैन-दे० 'शरेण' । उ० मृग लोग कुभोग सरैन हिण्ट । (मा० ७।१।४।४)
 सरोज-(सं०)-कमल, अरवि । उ० सेवहु सिवचरन-सरोज रेनु । (वि० १३) सरोजनि-कमलों, कमलों से । उ० काक पच्छ ऋषि परसत पानि सरोजनि । (जा० ७।१)
 सरोजा-दे० 'सरोज' । उ० चीरि कोरि पचि रचे सरोजा । (मा० १।२८८।२)
 सरोरुह-(सं०)-कमल । उ० नाम प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो । (वि० २२८)
 सरोवर-(सं०) तालाब, ताल । उ० पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा । (मा० ३।३।३।३)
 सरोष-(सं० स + रोष)-क्रोध के साथ । उ० सुनि सरोष भृगुनायक आए । (मा० १।२६३।१)

सरोषा-दे० 'सरोष' । उ० बंदौं खल जल सेस सरोषा । (मा० १।४।४)
 सरौं-(?)-डंड, कसरत ।
 सर्करा-(सं० शर्करा)-चीनी, शकर । उ० ज्यों सर्करा मिलै सिक्ता महँ । (वि० १६७)
 सर्ग (१)-(सं० स्वर्ग)-बैकुण्ठ, नाक ।
 सर्ग (२)-(सं०)-खंड, भाग । उ० प्रथम सर्ग जो सेष रह । (प्र० १)
 सर्प-(सं०)-साँप, अहि । उ० रूपादि सब सर्प स्वामी । (वि० २६)
 सर्पराज-(सं०)-शेषनाग । उ० जनु कमठ खपर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी । (मा० २।३।२।४।४।१)
 सर्पि-वी, घृत ।
 सर्पी-(सं० सर्पिस्)-दे० 'सर्पि' । उ० लखित सर्पी समान । (क० २।२०)
 सर्व-(सं० सर्व)-सब, कुल, पूरा । उ० कृपा करहु अब सर्व । (मा० १।७।४)
 सर्वग्य-(सं० सर्वज्ञ)-सब कुछ जाननेवाला । उ० त्रिकालग्य सर्वग्य तुम्ह । (मा० १।६६)
 सर्वसु-(सं० सर्वस्व)-सब, कुल । उ० हरि लीन्हेसि सर्वसु अरु नारी । (मा० ४।६।६)
 सर्वा-दे० 'सर्व' ।
 सर्वरीनाथ-दे० 'सरवरीनाथ' । उ० सरद सर्वरीनाथ मुख सरद सरोरुह नैन । (मा० २।१।१६)
 सर्म-(सं० शर्म)-कल्याण, सुख ।
 सर्व-दे० 'सर्व' । सर्व-(सं०)-सब, कुल । उ० सर्व सर्वस सर्वाभिरामं । (वि० ५३)
 सर्वज्ञ-(सं०)-सब कुछ जाननेवाला । उ० शुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंदचारी । (वि० ५६)
 सर्वतोभद्र-(सं०)-सब प्रकार से कल्याण स्वरूप । उ० सकल सौभाग्यप्रद सर्वतोभद्र-निधि । (वि० ५३)
 सर्वत्र-(सं०)-सब कहीं । उ० चंद्रः सर्वत्र वंद्यते । (मा० १।१।२।३)
 सर्वथा-(सं०)-सब प्रकार से ।
 सर्वदा-(सं०)-हमेशा, सदा । उ० सर्वदा राम भद्रांशु-गता । (वि० ३८)
 सर्वरि-दे० 'सर्वरी' ।
 सर्वरी-(सं० शर्वरी)-रात, निशा ।
 सर्वरीस-(सं० शर्वरीश)-चंद्रमा ।
 सर्वस-दे० 'सर्वस्व' । उ० जासु नाम सर्वस सदासिव पार्वती के । (गी० १।१२)
 सर्वस्व-(सं०)-सब कुछ, पूरा ।
 सर्वा-दे० 'सर्व' । उ० बधुन समेत चले सुर सर्वा । (मा० १।६।१।१)
 सलज्ज-(सं०)-लज्जा के साथ । उ० कह अंगद सलज्ज जग माहीं । (मा० ६।२।३।३)
 संलभ-(सं० शलभ)-भुनगा, उबनेवाला छोटा कीड़ा । उ० जातहि जासु समीप, जरहि मदादिक सलभ सब । (मा० ७।१।७।४)

सलाक-(सं० शलाका)-सलाह, शलाका। उ० कनक सलाक कला ससि दीप सिखाउ। (ब० ३१)
 सलिल (सं०)-पानी, जल। उ० चरन सलिल सब भवन सिंचावा। (मा० ११६६।४)
 सलिलु-दे० 'सलिल'।
 सलीले-(सं० स + लील)-लीला में, खेल में, तमाशा में। उ० ऋषटे पटके सब सूर सलीले। (क० ६।३२)
 सलोक-(सं० श्लोक)-१. छंद, २. यश, कीर्ति।
 सलोना-(सं० स + लावण्य)-सुन्दर, अच्छा। सलोनि-दे० 'सलोनी'। उ० रूप सलोनि तबोलिनि। (रा० ६)
 सलोनी-अच्छी। सलोने-अच्छे, सुन्दर। उ० सलोने भे सवाई हैं। (गी० १।६६)
 सर्वदरसी-(सं० समदर्शी)-सबको बराबर समझनेवाला। उ० सर्वदरसी जानहि हरि लीला। (मा० १।३०।३)
 सर्वराए-(सं० सज्जा)-सँवारा, साजा।
 सव-(सं० शव)-मुदा, लाश। उ० जीवत सव समान तेइ प्राणी। (मा० १।११३।३)
 सवति-(सं० सपत्नी)-सौत, सपत्नी। उ० जरि तुम्हारि चह सवति उपारी। (मा० २।१७।४)
 सवतिआ-सवत का, सौत का। उ० दे० 'रेसु'।
 सवर-(सं० शबर)-एक जाति।
 सवरि-दे० 'शवरी'। उ० कीस, केवट, उपल, भालु निसि-चर सवरि गीघ सम। (वि० १०६)
 सवरिका-दे० 'शवरी'।
 शवरी-(सं० शवरी)-एक भीलनी। दे० 'शवरी'। उ० शवरी के आश्रम पगु धारा। (मा० ३।३४।३)
 सवांग-(सं० सु + अंग)-नकल बनाना, नाटक। उ० हिलि मिलि करत सवांग समारस केलि हो। (रा० १८)
 सवाई-(सं० सपाद)-सवाया, सवा गुना। उ० दोना बाम करनि सलोने भे सवाई हैं। (गी० १।६६)
 सवार-(फ़ा०)-चढ़ा हुआ, घोड़े पर चढ़ा हुआ।
 सवारी-(फ़ा०)-वाहन, यान।
 सवारे-(सं० स + बेला)-सवेरे। उ० जगावति कहि ग्रिय बचन सवारे। (गी० २।५२)
 सविता-(सं०)-१. सूर्य, २. आक, मदार, ३. बारह की संख्या। उ० १. जनु जननी सिंगार सविता है। (गी० ७।१३)
 सवेरे-(सं० स + बेला)-१. प्रातः, २. पहले से, जल्दी। उ० २. जो चितवनि सौधी लगे चितइये सवेरे। (वि० २७३)
 सवेरो-दे० 'सवेरे'। उ० २. ताते कहत सवेरो। (वि० १४३)
 ससंक-(सं० स + शंका)-शंका के साथ। उ० झूठे अघ सिय परिहरी तुलसी साईं ससंक। (दो० १६६)
 ससंकित-डरा हुआ। उ० सब लंक ससंकित सोर मचा। (क० ६।१५)
 ससंका-ससंकित हो गया। ससंकेउ-शंकायुक्त हुआ। उ० सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारु। (मा० १।८६।१)
 सस (१)-(सं० शशि)-चंद्रमा।
 सस (२)-(सं० शशक)-खरगोश। उ० जिमि हरि-बधुहि छुद्र सस चाहा। (मा० ३।२८।८)

ससक-(सं० शशक)-खरगोश। उ० सिंह बधुहि जिमि ससक सिआरा। (मा० २।६७।४)
 ससांक-(सं० शशांक)-चंद्रमा। उ० बिगत सर्वरी ससांक किरन हीन। (गी० १।३५)
 ससि (१)-(सं० शशि)-१. चंद्रमा, २. चंद्रवार, ३. एक। उ० १. ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा। (मा० १।६२।२)
 २. ससि सुरसरि सुर गाइ। (प्र० १।१।२) ३. ससि सर नव दुइ। (दो० ४५६) ससिहि-चंद्रमा को। ससिहि-दे० 'ससिहि'।
 ससि (२)-(सं० शस्य)-खेती। उ० परसुधर विप्र ससि जलदरूप। (वि० ५२)
 ससिसेखर-(सं० शशिशेखर)-शिव, शंकर। उ० बटु वेध पेषन पेमपन व्रत नेम ससि सेखर गपु। (पा० ४५)
 ससु-दे० 'सस'।
 ससुर-(सं० श्वसुर)-पति या पत्नी का पिता। उ० सिव कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहि कियो। (मा० १।१०१। छं० १)
 ससुरारि-(सं० श्वशुर + आलय)-ससुर का घर। उ० ससुरारि पिआरि लगी जब तें। (मा० ७।१०१।३)
 ससुरारी-दे० 'ससुरारि'।
 ससुर-ससुराल में। उ० मइके ससुरें सकल सुख। (मा० २।६६)
 सस्र-(सं० शस्र)-हथियार। उ० अस्त्र-शस्त्र छँडैसि बिधि नाना। (मा० ६।६२।२)
 सस्त्री-(सं० शस्त्रिन्)-शस्त्रधारी। उ० सस्त्री मर्मा प्रभु सठ धनी। (मा० ३।२६।२)
 सहँगे-(सं० सुलभाष्य)-सस्ता, जो महँगा न हो। उ० मनि मानिक महँगे किए सहँगे तृन जल नाज। (दो० ५७३)
 सह (१)-(सं० सहन)-सह, सह सके। सहइ-सहता है, सहे। सहई-सहता है। सहउ-सहूँ, सहन करूँ। सहऊँ-सहूँ, सहा करूँ, सहता हूँ। सहत-१. सहते हैं, २. सहते हुए, ३. सहता। उ० ३. सहत हौं। (वि० ७६) सहतेउ-सहता। सहनि-सहना, झेलना। उ० सील गहनि सबकी सहनि। (बै० १७) सहहि-सहते हैं। सहहु-सहो। सहहु-१. सहो, २. सहते हो। सहि-सहकर। सहिबे-सहना। सहियतु-सहना पढ़ता। सही-सहा, बर्दाश्त किया। उ० अब बनि सब सही है। (क० ४२) सहे-सहा, बर्दाश्त किया। सहँगो-सहन करेगा। उ० तुलसी परमेसुर न सहँगो। (क० ४२) सहै-सह, सहना। उ० बाली रिपु बल सहै न पारा। (मा० ४।६।२)
 सह (२)-(सं०)-सहित, समेत। उ० बसहु बन्धु सिय सह रघुनायक। (मा० २।१२।४)
 सहगामिनहि-सहगामिनी को। दे० 'सहगामिनी'। उ० ३. सहगामिनिहि बिभूषन जैसे। (मा० २।३७।४) सहगामिनी-(सं०)-१. स्त्री, २. पतिव्रता, ३. जो पति के साथ सती हो।
 सहचर-(सं०)-साथ रहनेवाला। सहचरी-१. पत्नी, २. सहेली।
 सहज-(सं०)-१. सहोदर भाई, सगा भाई, साथ का पैदा, २. आसान, सरल, ३. स्वभाविक, स्वाभाव के। उ० ३.

चेतन अमल सहज सुख रासी । (मा० ७११७१)
 सहजहि-स्वभाव से ही, बिना किसी विशेषता के । उ०
 सहजहि चले सकल जग स्वामी । (मा० १२२२)
 सहजेहि-दे० 'सहजहि' ।
 सहदानि-(?)-निशान, चिह्न । उ० 'मातु कृपा कीजै सह-
 दानि दीजै' सुनि सीय । (क० १२६)
 सहन (१)-(सं०)-सहन करना, बर्दाश्त ।
 सहन (२)-(अर०)-आँगन, स्थान ।
 सहनमँडार-कोष, खजाना । उ० जिय की परी सँभार सहन-
 मँडार को । (क० ११२)
 सहनाइन्ह-शहनाइयों से । उ० सुघर सरस सहनाइन्ह
 गावहि । (गी० ७२१) सहनाई-(फा० शहनाई)-एक
 बाजा, नरुमी । उ० साँफ मृदंग संख सहनाई । (मा०
 १२६३१)
 सहम-(फा०)-१. डर, २. डरकर । उ० १. समुक्ति सहम
 मोहि अपडर अपने । (मा० १२६११) २. मुख सूखत सहम
 ही । (क० १२८) सहमत-डर जाते हैं । उ० सुनत सहमत
 सूर । (क० ६४३) सहमि-डरकर, भयभीत होकर । उ०
 कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी । (मा० २२०११)
 सहमी-१. डरी, २. सन्नाटा छा गया । उ० सहमी सभा ।
 (गी० १२३) सहमे-१. डर गए, २. सकुच गए । सह-
 मेउ-दे० 'सहमे' । उ० जनु सहमेउ करि केहरि नादा ।
 (मा० २१६०१२) सहमै-१. डर गए, २. डर जाते हैं ।
 सहर-(सं० शहर)-नगर, शहर । उ० बूझिए न ऐसी गति
 संकर-सहर की । (क० ७१७०)
 सहरी-(सं० शफरी)-मछली । उ० पात भरी सहरी, सकल
 सुत बारे-बारे । (क० २१८)
 सहरु-दे० 'सहर' ।
 सहल-(सं० सरल)-आसान, सुगम ।
 सहवासी-(सं० सह + वास)-१. साथी, २. पड़ोसी । उ० २.
 सहवासी काचो गिलाहि । (दो० ४०४)
 सहस-(सं० सहस्र)-हज़ार । उ० भूप सहस दस एकहि
 बारा । (मा० १२२५११) सहसमुख-शेषनाग । सहसबाहु-
 सहस्रार्जुन जिसे परशुराम ने मारा था । सहसभुज-दे०
 'सहसबाहु' । उ० सहसभुज मत्त गजराज रनकेसरी ।
 (क० ६१७) सहसानन-शेषनाग ।
 सहसा-(सं०)-एकाएक, अकस्मात् । उ० सहसा जनि पति-
 आइ । (मा० २२२)
 सहसाखी-हज़ार नेत्रों से, सहस्र आँखों से । उ० जो परदोष
 लखहि सहसाखी । (मा० ११४२)
 सहस्र-(सं०)-हज़ार । उ० कथन उर्विधर करत जेहि सहस्र
 जीहा । (गी० १२१२)
 सहाइ-(सं० सहाय)-१. सहायता, २. सहायक, ३. सहा-
 यता पाकर । उ० १. पाइ सो सहाइ लाल । (क० ७११४२)
 सहाई-दे० 'सहाइ' । उ० १. ईस्वर करिहि सहाई । (मा०
 १२३११)
 सहाय-(सं०)-१. सहायता, २. सहायक । उ० १. करिहिहि
 कीस सहाय तुम्हारी । (मा० ११३७४) २. राम सहाय
 सही दिन गाढ़े । (क० ७१४४)
 सहाया-दे० 'सहाय' ।

सहारा-(सं० सहाय)-योगदान, आश्रय ।
 सहावहु-(सं० सहन)-सहन करा लीजिए । सहावै-सहन
 कराता है । उ० तुलसी सहावै बिधि सोई सहियतु है ।
 (क० २४)
 सहि (२)-(फा० सहीह)-सत्य, सचमुच । उ० देखौ सपन
 कि सौतुख ससि सेखर सहि । (पा० ७७)
 सहित-साथ, समेत । सहित-(सं०)-साथ, समेत । उ०
 बरसत सुमन सहित सुर सैर्यौ । (क० १६)
 सहिदानी-(?)-निशान, चिह्न । उ० तुलसी यहै साँति
 सहिदानी । (वै० २१)
 सहिदानु-दे० 'सहिदानी' । उ० तुलसी या सहिदानु ।
 (वै० ३३)
 सही-(फा० सहीह)-१. ठीक, २. सच्चा, सत्य । उ० २.
 तौ जानिहौ सही सुत मोरे । (गी० २१११) मु० सही भरी-
 गवाही दी । (क० १११६)
 सहेली-(सं० सह + एली)-सखी, साथ में रहनेवाली । उ०
 गावहि छुबि अबलोकि सहेली । (मा० १२६४४)
 सहोदर-(सं०)-सगा भाई । उ० मिलै न जगत सहोदर
 आता । (मा० ६६१४)
 साँइ-(सं० स्वामी)-१. मालिक, २. पति, ३. भगवान् ।
 उ० १. स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँइ
 दोहाई । (वि० १७१)
 साँकरे-(सं० संकीर्ण)-१. संकट में, कष्ट पड़ने पर, २.
 कठिनाई, संकट । उ० १. साँकरे सबै पै राम राम रावरे
 कृपा करी । (क० ७१६७) २. साँकरे समय । (वि० ३४)
 साँख्य-(सं०)-कपिल रचित एक दर्शन जिसमें प्रकृति को
 विश्व का मूल कारण माना गया है । उ० साँख्य सास्त्र
 जिन्ह प्रगत बखाना । (मा० ११४२४)
 साँग-(?)-बछी, सेल । उ० गोली साँग सुमंत्र सर ।
 (दो० २१६)
 साँगि-दे० 'साँग' । उ० लागत साँगि बिभीषन ही । (गी०
 ६२)
 साँगी-दे० 'साँग' ।
 साँच-(सं० सत्य)-१. सत्य, ठीक, २. उचित, वाजिब ।
 साँचे-सच्चे ।
 साँचही-(सं० संचय)-जमा करते हैं, एकत्र करते हैं ।
 साँचा-दे० 'साँच' । उ० २. तुम जो करहु कहहु सब साँचा ।
 (मा० २१२७४) साँची-सच्ची । उ० साँची कहीं कलि-
 काल । (क० ७१०१)
 साँचि-सच्ची, सत्य । उ० साँच सनेह साँचि रुचि जो हठि
 फेरइ । (पा० ६६) साँचिय-सच्ची ही । उ० कहहि हम-
 साँचिय । (पा० ११६) साँचिये-सचमुच । उ० साँचिये
 पढ़ैसो सही । (वि० २२४)
 साँचु-दे० 'साँच' ।
 साँचो (१)-सच्चा ।
 साँचो (२)-(?)-साँचा, मिट्टी या लकड़ी का साँचा जिससे
 दूसरी चीज़ें बनाई जाती हैं । उ० सोभाको साँचो । (गी०
 २२०)
 साँफ-(सं० संख्या)-शाम, संध्या । उ० मनहुँ साँफ सरसीरुह
 सोना । (मा० १३६८१)

साँठि-(?)—१. अढ़े रहे, २. सटे रहे । उ० १. नाथ सुनी भृगु-
नाथ कथा बलि बालि गए चलि बात के साँठि । (क० ६।२८)
साँत-दे० 'शाँत' । उ० ३. धरे सरीर साँत रस जैसे ।
(मा० १।१०७।१)
साँति-१. दे० 'शाँति', २. दे० 'शाँतिपाठ' । उ० २. साँति
पढ़हि महिसुर अनुकूला । (मा० १।३१६।३)
साँती-दे० 'साँति' ।
साँद्र-(सं०)-सघन, घन, जलयुक्त । उ० साँद्रानंद पायोद
सौभाग तनु पीतांबर सुंदरं । (मा० ३।१।२।० २)
साँधा-(सं० संधान)-१. साधा, संधान किया, निशान
मिलाया, २. मिला दिया । उ० १. ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा ।
(मा० २।१।१६) २. तेहि यहँ विप्र मांस खल साँधा ।
(मा० १।१७३।२) साँधो-दे० 'साँधा' ।
साँप-(सं० सर्प)-सर्प, काल । उ० भूइ गति साँप छूँ दुरि
केरी । (मा० २।२।१२) साँप छूँ दुरि गति-ऐसी दुशा
जिसमें किसी ओर भी जाना खतरे से खाली न हो ।
दे० 'साँप' । साँपनि-साँपों । उ० साँपनि सो खेलैं ।
(क० २।११) साँपनि-सर्पिणी । उ० रसना साँपनि
बदन बिल । (दो० ४०)
साँपसभा-(सं० सर्प + सभा)-दिव्य परीक्षा जिसमें आग
आदि द्वारा किसी के निर्दोष होने का निश्चय किया
जाता है । उ० साँप-सभा साबर लबार भए । (वि० ७२)
साँवर-(सं० श्यामल)-काले रंग का, श्यामल । उ० साँवर
कुँवर सखी सुठि लोना । (मा० १।२३।४) साँवरे-दे०
'साँवर' । साँवरेहि-साँवर को, कृष्ण को । उ० ढीली
करि दाँवरी दावरी साँवरेहि देखि । (क० १६)
साँवरि-दे० 'साँवरी' ।
साँवरी-श्यामली, काली । उ० विदेहु मूरति साँवरी । (मा०
१।३२४।४) ४)
साँवरो-दे० 'साँवर' ।
साँस-(सं० श्वास)-श्वास, प्राण ।
साँसति-(सं० शासन)-१. ताड़ना, २. कष्ट, यातना, दुर्दशा ।
उ० १. साँसति करि पुनि करैं पसाऊ । (मा० १।८।२)
२. साँसति भय भारी । (वि० ३४)
साँसारिक-(सं०)-संसार संबंधी ।
साँ-(सं०)-वह (स्त्रीलिंग) । उ० सा मंजुल मंगलप्रदा ।
(मा० २।१।२।० २)
साँई-(सं० स्वामी)-१. भगवान, २. स्वामी, मालिक, ३.
पति, भर्ता । उ० २. पापसि रोमनि साँई दोहाई । (मा०
२।१।८।२)
साँई-दे० 'साँई' । उ० सठ सब दिन साँई द्रोहै । (वि०
२३०)
साँउज-(?)-जंगली जानवर । उ० सकल कलुष कलि
साँउज बाना । (मा० २।१३।२)
साकं-(?)-सहित । उ० नौमि श्रीराम सौमित्र साकं ।
(वि० २१)
साक-(सं० शाक)-शाक, तरकारी । उ० करहि अहार
साक फल कंदा । (मा० १।१४।१) साकबनिक-
तरकारी बँचनेवाला, कुँजड़ा । उ० साकबनिक मनि गुन
गन जैसे । (मा० १।३।६)

साका-(सं० शाका)-१. संवत्, २. प्रसिद्धि, ३. कीर्ति,
४. वीरता । साके-दे० 'साका' । उ० २. जुग जुग जग
साके के । (क० ६१) साको करिहै-वीरता का काम
करेगा । उ० लरिहै मरिहै करिहै कछु साको । (क०
१।२०)
साची-(सं०)-गवाह ।
साकार-(सं०)-आकार सहित ।
साकिनि-दे० 'शाकिनि' । उ० पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि
साकिनि समेत । (वि० १६)
साख-(सं० शाखा)-१. डाली, शाखा, २. बात, विचार ।
उ० १. मरिहै तरु साखा । (मा० १।८।४) २. को करि
तर्क बढ़ावइ साखा । (मा० १।२।४)
साखामृग-(सं० शाखामृग)-बंदर । उ० सठ साखामृग
जोरि सहाई । (मा० ६।२।१)
साखि (१)-(सं० साची)-गवाही । उ० साखि निगमन
भने । (वि० १६०)
साखि (२)-(सं० शाखिन)-पेड़ ।
साखी (१)-(सं० साची)-१. गवाही, २. संतों के दोहे ।
उ० २. साखी सबदी दोहरा । (दो० २२४)
साखी (२)-(सं० शाखिन)-पेड़ ।
साखोच्चार-दे० 'साखोच्चार' । उ० जोरि साखोच्चार
दोड
कुल गुर करै । (मा० १।३२।३)
साखोच्चार-(सं० शाख + उच्चार)-वंशवर्णन ।
साग-दे० 'साग' ।
सागर-(सं०)-समुद्र, उदधि । उ० सागर ज्यों बल बारि
बढ़े । (क० ६।६)
सागर-दे० 'सागर' ।
सागु-(सं० शाक)-साग, भाजी । उ० सागु खाइ सत
बरस गँवाए । (मा० १।७।२)
साच-दे० 'साँच' ।
साज-(सं० सजा)-१. सामान, २. टाट-बाट, ३. सामान,
तरह । उ० १. दुर्लभ साज सुलभ करि पावा । (मा०
७।४।४) २. बिघटै मृगराज के साज लरै । (क० ६।
३६)
साजक-सजानेवाले, सँभालनेवाले । उ० साजक बिंगरे
साज के । (गी० २।२६)
साजत-(सं० सजा)-साजते हैं, साजते । उ० साजत भए ।
(जा० १।८) साजहि-साजते हैं । उ० साजहि साजू ।
(मा० २।१।८।३) साजा-१. सजाया, २. साज । उ० २.
दे० 'साजन (२)' । साजि-सजाकर । उ० साजि साजि ।
(जा० ६) साजिय-साजिए, साजना चाहिए । साजी-१.
सजाया, सज्जित किया, २. सजाकर । उ० २. बरषहि
सुमन सुभ्रंजलि साजी । (मा० १।१६।१।४) साजू-साजो ।
साजू-१. दे० 'साज', २. साजो । साजे-साजे, सजाया ।
उ० मंगल दिवस दसहुँ दिसि साजे । (मा० १।६।१।४)
साजन (१)-(सं० सज्जन)-१. पति, प्रियतम ।
साजन (२)-(सं० सज्जा)-तैयारी, बनाना, सजाना । उ०
लगे चलन के साजन साजा । (मा० २।३।३)
साजुज्य-दे० 'सायुज्य' । उ० सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि ।
(मा० ६।३।१)

साटक-(?)—भूसी, छिलका, निकम्मी वस्तु। उ० सब फोकेट साटक है तुलसी। (क० ७।४१)

साटि-(?)—सटाकर, जोड़कर। उ० बार कोटि सिर काटि साटि लटि रावन संकर पै लई। (गी० ५।३८)

साठ-(सं० षष्टि)—तीस का दूना, ६०।

साठसाती-(सं० स+अठ+सप्त)—साठे सात वर्ष की शनि की दशा। यह दशा जिस पर आती है उसकी बड़ी बुरी दशा होती है। उ० समय साठसाती सरिस नृपहि प्रजहि प्रतिफल। (प्र० ३।२।४)

साढ़ी-(?)—सलाई जो दूध औंढने पर ऊपर जम जाती है। उ० आपु काढ़ि साढ़ी लई। (गी० ५।३७)

सात-(सं० सप्त)—७, छः से एक अधिक। उ० छली न होइ स्वामि सनमुख ज्यौं तिमिर सात ह्य जान सों। (गी० ५।३३)

सातई-(सं० साप्तमी)—सप्तमी, सप्तमी तिथि।

सातव-(सं० सप्त)—१. सातवाँ, २. सातो।

साती—सात। दे० 'साठसाती'।

सातै—सप्तमी, सातवीं तिथि। उ० सातै सप्त धातु निर्मित तनु। (वि० २०३)

सात्विक-(सं०)—सत्वगुण से युक्त, सतोगुणी, सीधा, सच्चा। उ० सात्विक श्रद्धा धेतु सुहाई। (मा० ७।११७।५)

साथ-(सं० सहित)—संग, सहित, समेत। उ० खल असंगत साथ। (वि० ६०)

साथरी-(?)—बिछौना, कुश आदि का बना बिछौना। उ० साथरी को सोइबो ओढ़िबो। (क० ७।१२५)

साथा—दे० 'साथ'।

साथी-(सं० सहित)—संगी, मित्र, साथ में रहनेवाला। उ० स्वारथ के साथी मेरे हाथ सों न लेवा देई। (वि० ७५)

साथु—दे० 'साथ'।

साथू—दे० 'साथ'। उ० केहि सुकृती सन होइहि साथू। (मा० २।५८।२)

सादर-(सं०)—आदर के साथ। उ० सदा सुनिहि सादर नर नारी। (मा० १।३८।१)

सादें-(फ्रा० सादः)—सीधे, साधारण। उ० सहित समाज साज सब सादें। (मा० २।३१।२)

साध (१)-(?)—इच्छा, लालसा। उ० ब्याध अपराध की साध राखी। (वि० १०६)

साध (२)-(सं० सिद्ध)—सिद्ध करेगा, सिद्ध होगा। उ० सीय स्वयंवर समउ भल सगुन साध सब काज। (प्र० १।४।१) साधत—साधते हैं, सिद्ध करते हैं। साधा—१. सिद्ध किया, २. मिलाया। उ० १. अब लागि तुमहि न काहूँ साधा। (मा० १।१३।२) साधि—साधकर, सिद्धकर। साधी—१. सिद्ध की, २. साधने योग्य। उ० २. अकथ अनादि सुसासुक्ति साधी। (मा० १।२।१।१) साधै—सिद्ध करने से, साधना करने से। साधे—१. सिद्ध किये, २. प्राप्त किये। उ० १. बिनु साधे सिधि होइ। (दो० १७।१) साध्यो—सिद्ध किया। उ० सुर काज न साध्यो। (गी० २।३)

साधक-(सं०)—साधना करनेवाला, सिद्धि प्राप्त करने के

लिए तप करनेवाला। उ० साधक बलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम को। (पा० ३६) साधको—साधक भी। उ० सुनत सिहात सब सिद्ध साधु साधको। (क० ७।६८)

साधन-(सं०)—१. उपाय, यत्न, अभ्यास, २. कारण। उ० १. साधन करिय विचारहीन मन। (वि० १।१५) २. तुलसी देखु कलाप गति साधन धन पहिचान। (दो० ५३५)

साधना-(सं०)—१. किसी कार्य को सिद्ध करने की क्रिया, २. भोग आदि का अभ्यास, तपस्या, संयम।

साधु-(सं०)—१. सज्जन, २. भक्त, विरक्त, संत, साधक, ३. सच्चा, ४. सीधा, भोला, ५. धन्य। उ० १. खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। (मा० १।६।१) २. साधु समाज तजि। (वि० २४१) ४. साधु भयो चाहत। (दो० ३) ५. साधु साधु कहि ब्रह्म बखाना। (मा० १।१८।४) साधुन्ह—साधुओं। साधु साधु—धन्य धन्य, वाह वाह। उ० साधु साधु बोले सुनि ज्ञानी। (मा० २।१२६।४)

साधुता—सज्जनता, साधुपना।

साधू—दे० 'साधु'।

साध्य-(सं०)—सिद्ध होने योग्य, सुगम। उ० सिद्ध साधक साध्य वाच्य-वाचक रूप। (वि० ५३)

सानंद-(सं०)—आनंद के साथ। उ० साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकेई गेहूँ। (मा० २।२४)

सान-(सं० शाण)—१. वह पत्थर जिस पर अस्त्र तेज करते हैं, २. तेज, बाढ़। उ० १. धरी कूबरी सान बनाई। (मा० २।३१।१)

साना-(सं० संधम्)—सना हुआ, मिठा हुआ। उ० बिधि प्रपंतु गुन अवगुन साना। (मा० १।६।२) सानि—मिलाकर, सानकर। उ० बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेम रस सानि। (मा० १।११।६) सानी—मिली हुई, सनी हुई। उ० सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत व्याकुल भए। (मा० २।१७।६) साने—१. सने हुए, २. सान दिए। उ० १. जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलि-मल-साने। (वि० २३५) सान्यो—१. सन गया, २. सान दिया। उ० १. जनम अनेक किए नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो। (वि० ८८)

सानुकूल—दे० 'सानुकूल'। सानुकूल-(सं० स+अनुकूल)—१. प्रसन्न, राजी, २. सुवाफिक, ३. कृपालु। उ० २. सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। (मा० १।३०।२) सदासो सानुकूल रह मोपर। (मा० १।१७।४)

साप-(सं० शाप)—बददुवा, शाप, श्राप। उ० साप अनु-ग्रह होइ जेहि नाथ थोरेहीं काल। (मा० ७।१०।८ घ)

सापत-(सं० शाप)—शाप देता है। सापे—१. शाप देते हैं, २. शाप देने से।

सापा—दे० 'साप'।

साबर-(सं० शाबर)—१. शिव, २. एक मृग।

साम-(सं० सामन्)—१. तीसरा वेद, सामवेद, २. राजा के चार उपायों में से एक जिसमें भीठी बातों द्वारा शत्रु को अपने पक्ष में करते हैं। ३. संध्या, ४. चमा, ५. मेल, संधि, ६. समर्थ। उ० १. साम गाताग्रनी। (वि० २७)

२. फलि कामतह साम साली । (वि० ४४) १. राम सों साम किय नित है हित । (क० ६।२८)
 सामग्री-(सं०)-चीज, वस्तु, सामग्री ।
 सामरू-दे० 'सामरि'
 सामरि-(?)-समरू, बुद्धि, ज्ञान ।
 सामध-(सं० संबधी)-समधियों का, समधियों को । उ० सामध देखि देव अनुरागे । (मा० १।३२०।२)
 सामरथ-दे० 'सामरथ्य'
 सामरथ्य-(सं०)-शक्ति, योग्यता, पराक्रम । उ० यह सामरथ्य अछुत मोहि त्यागहु नाथ तहाँ कहु चारो ? (वि० ६४)
 सामीप्य-(सं०)-समीपता, घनिष्ठता ।
 सामुक्ति-दे० 'सामरि' । उ० अकथ अनादि सुसामुक्ति साधी । (मा० १।२१।१)
 सामुहै-(सं० सम्मुख)-सामने, सम्मुख । उ० हूँ न सकत सामुहै सकुच बस । (गी० २।७०)
 सामुहो-(सं० सम्मुख)-सामने, सम्मुख । उ० तुलसी स्वारथ सामुहो । (दो० ४८१)
 सामै-मेल ही, संधि करना ही । उ० इहाँ किये सुभ सामै । (गी० १।२१)
 सामो-(फा० सामान)-सामान, सामग्री । उ० बालिमीकि अजामिल के कहु हुतो न साधन सामो । (वि० २२८)
 साय-(?)-जाय या शांत हो । उ० कृपासिंधु बिलोकिए जन-मन की सौलति साय । (वि० २२०)
 सायक-दे० 'सायक' । सायक-(सं०)-१. बाण, तीर, २. तलवार । उ० १. सुनत नृपहि जनु लागहि सायक । (मा० २।३७।३) सायकन्हि-बाणों, शरों ।
 सायका-दे० 'सायक' ।
 सायकु-दे० 'सायक' ।
 सायर-(सं० सागर)-समुद्र, सागर । उ० चलित महि मेरु उच्छ्रलित सायर सकल । (क० ६।४४)
 सायुज्य-(सं०)-मुक्ति का एक भेद जिसमें आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है ।
 सारंग-दे० 'सारंग' । सारंगधर-दे० 'सारंगधर' । सारंगपानि-दे० 'सारंगपानि' ।
 सारंग-(सं०)-१. धनुष, २. विष्णु का धनुष, ३. मृग, ४. बादल, ५. एक राग, ६. साँप, ७. मोर की बोली, ८. शंख । उ० २. चक्र सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति विशाला । (वि० ४६) ३. सारंग सावक लोचना । (जा० २०७) सारंगधर-(सं०)-विष्णु । उ० चक्रेउ सुमिरि सारंगधर आनिहि सिद्धि सकैल । (प्र० ३।७।१) सारंगपानि-उ० सुमिरत श्री सारंगपानि छन में सब सोच गयो । (गी० १।४५)
 सार-(सं०)-१. सत्व, हीर, गूदा, सत, २. खबरदारी, ३. पूछ, ४. खबरदारी, ५. पलंग, शय्या, ६. बल, पराक्रम । उ० १. पर उपकार सार श्रुति को । (वि० २०२) २. भरत सौगुनी सार करत हैं । (गी० २।८७) ३. जनकी कहु क्यों करिहैं न सँभार जो सार करै सचराचर की । (क० ७।२७)

सारखी-दे० 'सारिखी' । उ० राम से न बर हुलही न सीध सारखी । (क० १।१५)
 सारथि-दे० 'सारथी' । उ० सारथि पंगु दिव्यरथ गामी । (वि० २)
 सारथिन्ह-सारथिओं । सारथी-(सं०)-रथ हाँकनेवाला । उ० तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वारथ सारथी । (पा० १२१)
 सारद (१)-(सं० शारदा)-१. सरस्वती, भारती, २. काव्य, कविता । उ० १. सिद्ध सची सारद पूजहि । (वि० २२)
 सारद (२)-(सं० शरद)-शरद का । उ० सारद ससि सम-तुंड । (गी० ७।१६)
 सारदा (१)-दे० 'सारद (१)' । उ० १. अहि सारदा गन-पति गौरि मनाइय हो । (रा० १)
 सारदा (२)-दे० 'सारद (२)' ।
 सारदी-(सं० शरद)-शरद ऋतु में होनेवाली । उ० कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी । (मा० ४।१६।५)
 सारदूल-(सं० शार्दूल)-बाघ, व्याघ्र । उ० सारदूल को स्वाँग कर कृकर की करतूति । (दो० ४१२)
 सारस-(सं०)-१. एक बड़ा पक्षी, २. चंद्रमा, ३. कमल । उ० १. पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर । (मा० २।८३) ३. जटा मुकुट सिर सारस नयननि । (गी० ३।२)
 सारा (१)-(सं० सरण)-किया, पूरा किया । उ० जातहि राम तिलक तेहि सारा । (मा० १।५४।१) सारो-पूरा किया । सार्यो-बनाया, पूरा किया, सँभारा । उ० काज कहा नरतनु धरि सार्यो । (वि० २०२)
 सारा (२)-(सं० सार)-सार, तत्व । उ० अति पावन पुरान श्रुति सारा । (मा० १।१०।१)
 सारा (३)-सब, समस्त, पूरा ।
 सारा (४)-सार, संभार । उ० करिहहि सासु ससुर सम सारा । (मा० २।६१।१)
 सारिका-(सं०)-मैना पक्षी । उ० सुक सारिका जानकी ज्याये । (मा० १।३३।१)
 सारिखी-(सं० सदृश)-तरह, सदृश । सारिखे-दे० 'सारिखी' । उ० तुम सारिखे गलित अभिमाना । (मा० १।१६।१।१)
 सारिखो-दे० 'सारिखी' ।
 सारी (१)-(सं०)-सारिका पक्षी, मैना । उ० साधु असाधु सदन सुक सारी । (मा० १।७।५)
 सारी (२)-(सं० शाटिका)-साड़ी, धोती । उ० सोह नवल तनु सुंदर सारी । (मा० १।२४।१)
 सारु-दे० 'सार' ।
 सारो-(सं० सारी)-मैना पक्षी । उ० सुक सों गहवर हिये कहै सारो । (गी० २।६६)
 सार्वभौम-(सं०)-संपूर्ण पृथ्वी का ।
 साल (१)-(सं० शूल)-कष्ट, दुःख । सालति-छेदती है, चुभती है । उ० सुरभि सुखद असुरनि उर सालति । (गी० ७।१७) साला (१)-कष्ट दिया ।
 साल (२)-(सं० शाला)-मकान, घर, स्थान । उ० हिंडोल साल बिलोकि सब अचल पसारि पसारि । (गी० ७।१८)

साल (३)-(सं०)-शाल वृक्ष जो लंबा होता है। उ० साल ते बिसाल। (क० ११३)
 साला (२)-दे० 'साल (२)'
 साली (१)-दे० 'शाली'। उ० चले सकोच महाबल साली। (मा० ६७०३)
 साली (२)-(सं० शालि)-धान। उ० ईति भीति जस पाकत साली। (मा० २१२३१९)
 सालु-(सं० शूल)-दर्द, पीड़ा। दे० 'साल'। उ० भा कुबरी उर सालु। (मा० २१३)
 सालक-(सं० शूल)-कष्ट देनेवाला, दुखदाई।
 सावँकरन-(सं० श्यामकर्ण)-बह घोड़ा जिसका सारा शरीर सफ़ेद और एक कान काला होता है। उ० साँवकरन अगनित हय होते। (मा० ११२६६३)
 सावत-(सं० सामंत)-वीर, सामंत, पराक्रमी। उ० सावँत गो मन् भावत भोरे। (क० ६१५७)
 सावक-(सं० शावक)-१. बच्चा, शिशु, २. मृग तथा चिड़िया आदि का बच्चा। उ० २. केहरि सावक जन तन बन के। (मा० १३२१४)
 सावज-(?)-बनेला पशु जिसका शिकार किया जाता है। उ० पातक के ब्रात घोर सावज सँहारिहै। (क० ७१४२)
 सावत-(सं० सपत्नी)-डाह, ईर्ष्या। उ० लोभ अति सरगहुँ मिटत न सावत। (वि० १८२)
 सावधान-(सं०)-सचेत, सतर्क, चौकस। उ० सावधान सुनु सुमति भवानी। (मा० ११२२१२)
 सावधानी-चौकसी, सावधानता।
 सावन-(सं० श्रावण)-सावन का महीना। उ० सावन सरित सिंधु हल सूप सों घेरइ। (पा० ६६) सावनो-१. सावन में भी, २. सावन के महीने को भी। उ० १. जलद ज्यों न सावनों। (क० १८)
 सावि-(सं० साची)-गवाह, साची।
 साष्टांग-(सं०)-हाथ, पैर, जाँघ, हृदय, आँख, सिर, वचन और मन ये आठ अंग। इन आठ अंगों से भूमि पर लेटकर प्रणाम करना साष्टांग प्रणाम कहलाता है।
 सासक-दे० 'सासकु'।
 सासकु-(सं० शासक)-दंड देनेवाला, शासन करनेवाला। उ० सबको सासकु सब में सब जामें। (गी० ११२५)
 सासति-१. शासन, २. शिक्षा करना, ३. दंड देना। उ० ३. सासति करि पुनि करहि पसाऊ। (मा० ११८१२)
 सांसनु-(सं० शासन)-आज्ञा। उ० सुरपति सांसनु वन मनो मारुत मिलि धाए। (गी० ११६)
 सासु-(सं० श्वश्रु)-पति या पत्नी की माँ। सासुन्ह-सासु गण।
 सासु-दे० 'सासु'। उ० बोलि न सकहि प्रेम बस सासु। (मा० ११३३६१४)
 सासु-(सं० शास्त्र)-वेदांत योग तथा न्याय आदि ज्ञः ग्रंथ। दे० 'सांख्य'।
 सास्वत-(सं० शाश्वत)-अमर।
 साह-(फा० शाह)-स्वामी, बड़ा, मालिक। उ० साह ही को गीत-गीत होत है गुलाम को। (क० ७१०७)
 साहनी-(सं० सेनानी ?)-१. घुड़साल के अध्यक्ष, २.

नौकर, चाकर, ३. पारिषद, ४. दारोगा, ५. सेनापति। उ० १. भरत सकल साहनी बोलाए। (मा० ११२६८२)
 साहब-(अर० साहिब)-स्वामी, मालिक।
 साहस-(सं०)-हिम्मत, हौसला। उ० साहस अनृत चपलता माया। (मा० ६१६१२)
 साहसिक-साहसी, हिम्मती। उ० दीनबन्धु कृपा सिंधु साहसिक सील सिंधु। (गी० ११६०)
 साहसी-हिम्मती, निर्भीक, निडर। उ० बीर रघुबीर को समीर सूनु साहसी। (क० ७१३३)
 साहि-(फा० शाह)-बादशाह, स्वामी। उ० राम बोला नाम हों गुलाम राम साहि को। (क० ७१००)
 साहिब-दे० 'साहब'। उ० साहिब सरोषु दुनी दिन-दिन दारदी। (क० ७१८३) साहिबहिं-साहब को, स्वामी को। साहिबिनि-साहब की स्त्री। उ० मेरी साहिबिनि सदा सीस पर बिलसति। (क० ७१३६)
 साहिबी-स्वामित्व, मालिकपन। उ० सुखभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीताराम। (दो० २७०)
 साहित-(सं० सहित)-१. मिलना, प्रेम करना, २. सामग्री, ३. साहित्य। उ० १. साहित प्रीति प्रतीति दित। (प्र० ७। ११)
 साहु-दे० 'साह'। उ० तुला पिनाक साहु नृप। (गी० १। १२)
 साहेब-दे० 'साहब'। स्वामी, मालिक। उ० साहेब सुभाय कपि साहेब सँभारिए। (ह० २०)
 साहेबी-(अर० साहब)-प्रभुता, ठकुरई, हाकिमी।
 साहँ-(सं० सम्मुख)-दरवाजे के बाजू। उ० द्वार बिसाल सोहार्ह साहँ। (गी० ७१३)
 सिंगरौर-(सं० शृङ्गवेरपुर)-एक स्थान। उ० सो जामिनि सिंगरौर गवाँई। (मा० २१२१११)
 सिंगार-(सं० शृङ्गार)-शृङ्गार, सजावट। उ० सिंगार सिंसु तरु। (गी० ११२४)
 सिंगारा-दे० 'सिंगार'।
 सिंगारु-दे० 'सिंगार'।
 सिंगारु-दे० 'सिंगार'।
 सिंघल-दे० 'सिंहल'। उ० जनु सिंघल वासिन्ह भयउ। (मा० २१२३३)
 सिंधिनिहि-(सं० सिंह) १. सिंहीनी को, २. सिंहीनी के लिए। उ० १. सहमि परेउ लखि सिंधिनिहि मनहुँ वृद्ध गजराछु। (मा० २१३६)
 सिंचाई-(सं० सिंचन)-सिंचवाया। सिंचावा-सिंचवाया, छिड़काया। उ० चरन सलिल सनु भवनु सिंचावा। (मा० ११६६१४) सिंचि-सिंचित होकर, सींची जाकर।
 सिंदूर-(सं०)-एक लाल रङ्ग जिसे सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ माँग में लगाती हैं। सिंदूरबंदन-माँग में सिंदूर डालने की रीति। उ० सिंदूरबन्दन होम लावा होन लागी भाँवरी। (जा० १६२)
 सिंधु-(सं०)-समुद्र, सागर। उ० सिंधु मेखला अवनि पति। (ह० १) सिंधुसुत-१. जलधर दैत्य, २. चंद्रमा। उ० १. सिंधुसुत गर्व गिरि वज्र गौरी संभव दह मख अखिल विधंस कर्ता। (वि० ४६) सिंधुसुता-लक्ष्मी।

सिंधो-हे सिंधु । उ० काव्य कौतुक कला कोटि सिंधो ।
(वि० २८)
सिंधुर-(सं०)-हाथी । उ० सिंधुर मनि माल । (गी० ११८८)
सिंधुपा-(सं० शिशापा)-शीशम का पैड़ । उ० तह सिंधुपा
मनोहर जाना । (मा० २१८१२)
सिंह-(सं०)-१. श्रेष्ठ, उत्तम, २. शेर, बबर । उ० २.
सिंह बहुहि जिमि ससक सियारा । (मा० २१६७४)
सिंहल-(सं०)-लंका ।
सिंहासन-(सं०)-राजा या देवता के बैठने का आसन ।
उ० सुभग सिंहासनासीन सीतारामन । (गी० ७६)
सिंहिका-(सं०)-एक राक्षसी जो राहु की माता थी यह
समुद्र में रहती थी और छाया से जीवों को पकड़कर खा
जाती थी । उ० सिंहिका सँहारि, बलि, सुरसा सुधारि
छल । (ह० २७)
सिञ्चनि-(सं० सीवन)-सिंहाई, सीवन । उ० सिञ्चनि सुहा-
बनि टाट पटोरे । (मा० १११४६)
सिञ्चरें-(सं० शीतल)-ठंडे, शीतल । उ० सिञ्चरें बचन
सुखि गए कैसैं । (मा० २१७१४)
सिकता-(सं०)-बालू, रेत । उ० बारि मये घृत होइ सिकता
ते बरु तैल । (मा० ७१२२ क)
सिकोरी-(सं० संकुचन)-सिकोड़ी ।
सिखंड-(सं० शिखंड)-मोर पत्नी । उ० सिरनि सिखंड सुमन
दल मंडन । (गी० ११४४)
सिख (१)-(सं० शिखा)-उपदेश, शिखा । उ० सिख आसिष
हित दीन्हि सुहाई । (मा० २१२८७३)
सिख (२)-(सं० शिखा)-चोटी, शिखा । उ० नख सिख
देखि राम कै सोभा । (मा० ११२३४२)
सिखइ-(सं० शिखा)-१. सिखाकर, २. सीख रहा है । उ०
२. सिखइ धनुष विद्या बर बीरु । (मा० २१४१२)
सिखइअ-शिखा दीजिए । सिखई-सिखाई है, सिखा रहा
है । उ० कै ये नई सिखी सिखई हरि निज-अनुराग-
बिछोहीं । (क० ४१) सिखन-सीखने को । उ० नगर
रचना सिखन को बिधि । (गी० ७१२३) सिखब-१.
सीखूंगा, सीखिएगा । सिखयो-१. सिखाया, २. सिखाया
हुआ । उ० २. देत सिख, सिखयो न मानत, मूढ़ता असि
भोरि । (वि० १५८) सिखवो-सिखाओ, शिखा दो ।
सिखि-सीख । उ० जौ लौं हो सिखि लेउँ बन रिषि रीति
बसि दिन चारि । (गी० ७१२६) सिखे-१. सीखे, २. सीखने
से ।
सिखर-(सं० शिखर)-१. चोटी, पर्वत की चोटी, २. मकान
का ऊपरी भाग । उ० १. बहु मनि छत गिरि नील-सिखर
पर कनक वसन रहिराई । (वि० ६२) सिखरनि-शिखरों,
शिखरों पर ।
सिखा-(सं० शिखा)-चोटी । उ० अरुनसिखा धुनि कान ।
(मा० ११२२६)
सिखाइ-(सं० शिखा)-शिखा देकर, सिखलाकर । उ० जनक
जानकिहि भेटि सिखाइ सिखावन । (जा० १६१) सिखाई-
सिखाया, सिखलाया । सिखाए-सिखलाए, बतलाए ।
सिखाव-१. सिखलाते हैं, २. सिखाओ । सिखावत-१.
सिखाते हुए, २. सिखाते हैं । सिखावहि-सिखाता, सिख-

लाता है । सिखावहि-सिखाते हैं, सिखलाती हैं । उ० चतुर
नारि बर कुँवरिहि रीति सिखावहि । (जा० १६७) सिखा-
वहु-सिखलाओ, बतलाओ । सिखावा-१. उपदेश, २.
उपदेश दिया । उ० १. मनु हठ परा न सुनउ सिखावा ।
(मा० ११७८३)
सिखावन-शिखा देना, उपदेश देना । उ० राजकुमारि सिखा
वन सुनहु । (मा० २१६११)
सिखि (१)-(सं० शिखिन्)-मोर, सिखिन-मोर गण ।
सिखिनि-मोरनी । उ० मनहुँ सिखिनि सुनि बरिद बानी ।
(मा० २१२६५१२)
सिखि (२)-(सं० शिखा)-उपदेश । उ० जौ लौं हौं सिखि
लेउँ । (गी० ७१२६)
सिखी (१)-सिखी हुई ।
सिखी (२)-(सं० शिखिन्)-१. मोर, २. आग ।
सिगारि-(सं० समग्र)-सब, संपूर्ण । सिगारियै-संपूर्ण को ही,
सबको ही । उ० सिगारियै हौं हौं खैहौं । (क० २)
सित-(सं०)-१. श्वेत, सफेद, २. उज्वल, चमकीला, ३.
साफ, ४. शुद्ध, ५. चाँदी, ६. शुक्ल । उ० १. सित सुमन
हास लीला समीर । (वि० १४) ६. सित पाख बाढ़ति
चंद्रिका । (पा० ६)
सितलाई-(सं० शीतल)-शीतलता । उ० गोपद सिंधु अनल
सितलाई । (मा० ११२११)
सिथिल-दे० 'शिथिल' । उ० ५. रोमांच लोचन सजल
सिथिल बानी । (वि० २६)
सिद्ध (१)-(सं०)-१. जिसका साधन हो चुका हो, प्राप्त,
२. मुक्त, ३. परिपक्व, पका, ४. ज्ञानी, महात्मा, ५. एक
देव जाति । उ० ४. मुनिधीर योगी सिद्ध संतन । (मा०
११५१ छं० १) ५. हहरि-हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै ।
(क० ६१४२) सिद्धाः-सिद्ध लोग । उ० थाभ्यां बिना न
पर्यंति सिद्धाः स्वांतस्थमीश्वरम् । (मा० १११
श्लो० २)
सिद्ध (२)-(१)-सीधा, भोजन बनाने की आटा, दाल
आदि सामग्री । (मा० ११३३३२)
सिद्धांत-(सं०)-मत, उसूल, नियम । उ० बरनहुँ रघुवर
बिसद जसु च्युति सिद्धांत निचोरि । (मा० १११०६)
सिद्धि-(सं०)-१. आठ सिद्धियाँ-अग्निमा, महिमा, गरिमा,
लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, इशित्व और बशित्व, २. काम
पूरा होना, सफलता, कामयाबी, ३. मंत्र की सिद्धि । उ०
१. जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अविद्या नास ।
(मा० २१२६)
सिधरिहहि-(१)-जाएँगे, सिधारेंगे । उ० ते तजु तजि मम
लोक सिधरिहहि । (मा० ६१३११)
सिधाई-(१)-गई, चली गई । उ० पुनि त्रिजटा निज भवन
सिधाई । (मा० ६१००११) सिधाए-गए, चले गए । उ०
सब मुनीस आत्मनि सिधाए । (मा० ११४५१२) सिधायो-
गया । उ० बहुरि विभीषन भवन सिधायो । (मा० ६।
११७१२) सिधावहि-जाते हैं । सिधावहीं-जाते हैं । सिधा-
वहु-जाओ । सिधावा-गया, चला गया । सिधैहैं-जावेंगे ।
सिधारेंगे । उ० सहित कुशल निज नगर सिधैहैं । (गी०
११५१)

सिधारहि-(?)—जायेंगे, सिधारेंगे। सिधारहि—चली जावे, चली गई। उ० भइ बदि बार आलि कहुँ काज सिधारहि। (पा० ७३) सिधारि—चला जा। सिधारिए—जाइए, चले जाइए। सिधारा—गाया। सिधारी—चली गई, गमन किया। सिधारे—गए, चले गए। उ० गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ के। (क० २।६)

सिधि—दे० 'सिद्धि'। उ० १. रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। (मा० २।२।२)

सिधि—दे० 'सिधि'। उ० सिधि दधीचि हरिचंद्र कहानी। (मा० २।४८३)

सिमिटि-(?)—सिकुड़ना, बटुरना। उ० होत सिमिट इक पासा। (वि० ६२)

सिय—(सं० सीता)—सीता, जानकी। उ० सिय आता के समय भौम तहँ आयउ। (जा० १६६) सियरमन—(सं० सीता + रमण)—राम।

सियत—(सं० सीवन)—१. सीता है, २. सीने में। उ० २. सियत मगन। (वि० १३२) सियनि—सिलाई। उ० अप-निहि मति बिलास अकास महुँ चाहत सियनि चलाई। (क० ५१) सियो—मिलाया, बनाया, सिला, टाँका। उ० तुलसिदास बिहरयो अकास सो कैसे जात सियो है। (गी० ६।१०)

सियरे—(सं० शीतल)—१. ठंडा, २. छाँह, छाया, ३. कच्चा। उ० २. सुन्दर बदन ठाढ़े सुरतरु सियरे। (गी० १।४१)

सिया—(सं० सीता)—जानकी, सीता। उ० तेरे स्वामी राम से स्वामिनी सिया रे ? (वि० ३३)

सियार—(सं० शृगाल)—स्थार, गीदड़। उ० खर सियार बोलाई प्रतिक्ला। (मा० २।१५८३)

सिर—(सं० शिरस्)—१. शीश, सर, २. श्रेष्ठ, ३. चोटी। उ० १. सिर का काँधे ज्यों बहत। (वि० १३३) सिरउ—सिर भी। सिरनि—सिरों पर। उ० गिरि निज सिरनि सदा नून धरहीं। (मा० १।१६७।४) सिरन्ह—सिरों, सिरों पर। सिरन्हि—दे० 'सिरन्ह'। सिरसि—सिर पर। उ० सिरसि टिपारो लाल। (गी० १।४१)

सिरजहि—(सं० सृजन)—बनाते हैं, बनावें। उ० जगदीस जुवति जिनि सिरजहि। (पा० २५) सिरजा—बनाया, निर्माण किया। उ० साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरजा। (मा० १।१५।३)

सिरताज—(सं० शिरस् + फा० ताज)—शिरोमणि, श्रेष्ठ। उ० जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज। (मा० १। ३२६)

सिरमनि—शिरोमणि, श्रेष्ठ। उ० पुरजन सिरमनि राम-लला। (गी० १।१६)

सिरमौर—दे० 'सिरमौर'।

सिरमौर—(सं० शिरस् + मुकुट)—१. सरताज, शिरोमणि, श्रेष्ठ, २. स्वामी, ३. राजा। उ० १. जैसे सुने तैसेई कुँवर सिरमौर हैं। (गी० १।७१)

सिररुह—(सं० शिरोरुह)—बाल। उ० बिथुरित सिररुह-बरुथ कुंचित बिच सुमन जूथ। (गी० ७।३)

सिरस—(सं० शिरीष)—एक पेड़ जिसका फूल अत्यंत कोमल

होता है। उ० सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा। (मा० १। २५८।३)

सिरा—(सं० शिरस्)—१. सिर, २. अंत, छोर, ३. नाक। उ० १. भटन्ह के उर भुज सिरा। (मा० ३।२०। छं० १)

सिराइ—(सं० शीतल ?)—१. शांत होगा, २. समाप्त होगा, ३. शांत होता है, शीतल होता है। उ० २. पाप तेहि परिताप तुलसी उचित सहे सिराइ। (गी० ७।३०) सिराई—१. चुके, खतम हो, २. शांत हो ठंडा, हो। सिरात्रो—१. समाप्त करूँ, २. शीतल करूँ। सिराति—१. ठंडी होती, शीतल होती, २. बीतती। उ० २. भई जुग सरिस सिराति न राती। (मा० २।१५५।२) सिराती—दे० 'सिराति'। सिरान—१. शीतल हो गया, २. पूरा हो गया। उ० १. सब सुख सुकृषु सिरान हमारा। (मा० २। ७०।२) सिराना—१. शीतल हो गया, २. बीत गया, ३. पूरा हो गया। सिरानी—बीती, समाप्त हुई। उ० राम कृपा भवनिसा सिरानी। (वि० १०५) सिराने—१. शीतल हुए, २. डूबे, ३. समाप्त हुए। सिरानो—समाप्त हो गया, तथ हो गया। उ० चले कहत चाय सों सिरानो पथ छन में। (क० ५।३१) सिरान्यो—बीत गया। उ० सर खनतहि जनम सिरान्यो। (वि० ८८) सिरावइ—दे० 'सिरावै'। सिरावै—१. ठंडा करे, शीतल करे, २. शांत करे। उ० १. बुद्धि सिरावै ज्ञान घृत। (मा० ७।११७)

सिरावौ—१. संतोष कर लेता हूँ, २. शांत करता हूँ। सिराहि—१. बीतते हैं, २. पूरे होते हैं, ३. शांत होते हैं। सिराहि—१. बीते, २. ठंडा हो। सिराहीं—१. बीते, ज्यतीत हो, २. शांत हो, ३. नाश हो। उ० १. रघुबर चरित न बरनि सिराहीं। (मा० ७।५२।२) ३. करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। (वि० १२८)

सिरिजा—(सं० सृजन)—रचा, बनाया, उत्पन्न किया। उ० ताकर दूत अनल जेहि सिरिजा। (मा० ५।२३।४)

सिरिस—दे० 'सिरस'।

सिरु—दे० 'सिर'।

सिरोमनि—दे० 'शिरोमणि'। उ० भगत सिरोमनि मनिहैं। (वि० ६५) सिरोमने—हे शिरोमणि, हे श्रेष्ठ।

सिल—(सं० शिला)—१. पत्थर, २. वह पत्थर का टुकड़ा जिस पर लोढ़े से चीजें पीसते हैं। उ० २. फोरहि सिल लोढ़ा सदन लागे अहुक पहार। (दो० ५६०)

सिलनि—शिलाओं पर, पत्थरों पर। उ० सीतल सुभग सिलनि पर तापस करत जोग जप तप मन लाई। (गी० २।४६)

सिला—(सं० शिला)—१. पत्थर, २. सिल, सिलौटी, ३. अहिल्या। उ० १. सिला सप्रेम भई है। (गी० २।७८) ३. कौसिक सिला जनक संकट हरि। (गी० ५।३७)

सिलिपि—(सं० शिल्प)—शिल्पकारी, कारीगरी। उ० खेती बनि विद्या वनिज सेवा सिलिप सुकाज। (प्र० ७।२।७)

सिलीमुख—(सं० शिलीमुख)—१. वाण, २. बंदर, ३. भौरा। उ० १. या ३. चलि रघुबीर सिलीमुख धारी। (मा० ६।६ २।४)

सिलोक—(सं० श्लोक)—श्लोक। उ० पुन्यसिलोक तात सर तोरें। (मा० २।२६३।३)

सिल्पि-(सं शिल्पी)-शिल्पी । उ० सिल्पि कर्म जानहि नल नीला । (मा० ६।२३।३)
 सिव-दे० 'शिव' । उ० सेव सिव देव ऋषि अखिल मुनि तत्त्वदरसी । (वि० ४७) सिवहि-शिव को ।
 सिवता-(सं शिवता)-शिवत्व, कल्याणकरता ।
 सिवा-(सं शिवा)-पार्वती, गौरी । उ० सिवा समेत संभु सुक नारद । (वि० ३६)
 सिवि-(सं शिवि)-एक राजा । दे० 'शिवि' ।
 सिविका-(सं शिविका)-पालकी, डोली ।
 सिष-(सं शिषा)-१. सीख, शिष्या, २. शिष्य । उ० २. सुचि सेवक सिष निकट बोलाए । (मा० २।२१३।२)
 सिष्य-(सं शिष्य)-शिष्य, चेला । उ० साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए । (मा० २।१०६।२)
 सिसकत-(अनु० सी सी)-रोता है, सिसकता है । उ० सिसकत सुर बिधि हरिहर हैं । (गी० २।४५)
 सिसिर-(सं शिशिर)-शिशिर ऋतु, माघ-फागुन का महीना । उ० सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू । (मा० १।४२।१)
 सिमु-(सं शिशु)-१. लड़का, बालक, बच्चा, २. छोटा । उ० १. सिमु अरनि अरो । (वि० २२६) २. सिमु तरु फरयो है अद्भुत फरनि । (गी० २४) सिमुन्ह-लड़को, लड़कों को । उ० लोचन सिमुन्ह देहु अमिय घूटी । (गी० २।२१)
 सिस्न-(सं शिस्न)-लिंग, पुरुषेन्द्रिय । उ० सिस्नोदर पर जमपुर त्रासन । (मा० ७।४०।१)
 सिहाई-(सं ईश्या ?)-ईश्या करते थे, ललचते थे । उ० श्रवधराज सुरराज सिहाई । (मा० २।३२४) सिहाउं-सिहाता हैं, ललचाता हैं । सिहाऊ-१. बढ़ाई करे, २. ईश्या करे । उ० १. थापिय जन सब लोग सिहाऊ । (मा० २।२२।४) सिहात-१. प्रसन्न होते हैं, २. ईश्या करते हैं, ३. प्रशंसा करते हैं । उ० १. चक्रपानि चंडीपति चंडिका सिहात । (क० ६।४१) ३. विबुध सिद्ध सिहात । (ह० २) सिहाहि-१. प्रसन्न होते हैं, २. ईश्या करते हैं, ३. सराहना करते हैं । उ० ३. लोकप सकल सिहाहि । (गी० १।२) सिहाहि-ईश्या करती है । उ० रति सिहाहि लखि रूप गान मुनि भारति । (पा० १३१) सिहाही-१. ईश्या करते हैं, २. सराहना करते हैं । सिहाहूँ-प्रसन्न होता हूँ । उ० बिलोकि अब तें सकुचाहु सिहाहूँ । (वि० २७५)
 सिहोरे-(सं सेहुंड)-एक कटिदार पेड़ । उ० तुलसी दलि रूँधयो चहैं सठ साखि सिहोरे । (वि० ८)
 सीक-(सं ईषीका)-पतला तृण । उ० सीक धनुष हित सिखन सकुचि प्रभु लीन । (ब० १६)
 सीच-(सं सिचन)-१. सींचती है, २. सींचनेवाली । उ० १. मंदाकिनि माखिनि सदा सींच । (वि० २३) सींचत-१. सींचता है, २. सींचने से । उ० २. आँच पय उफनात सींचत । (गी० ७।३६) सींचति-छिड़कती है, सींचती है । सींचा-छिड़का, जल से सराबोर किया । सींचि-१. सींचकर, छिड़ककर, २. सींचा । उ० १. बीथी सींचि, सुगंध सुगंध गारवि । (जा० २०४) सींचिये-पानी दीजिए । सींची-सींच दिया, सींचा । उ० बीथी सींची चतुर सम । (मा० १।२६६) सींचु-पानी दो, सींचो ।

सींचो-१. सींचा, २. जो सींचा गया हो, पाला-पोसा । उ० १. बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो । (वि० ७२)
 सींच-(सं सीमा)-हृद, सीमा, मर्यादा । उ० नेह देह सुधि सींच गई । (गी० ५।३८)
 सी (१)-(सं सीचन)-सीकर, सी । उ० सेवक को परदा फटे तू समरथ सीखे । (वि० ३२)
 सी (२)-(सं सम)-समान, तरह । उ० मन जोगवति रहति रमा सी । (वि० २२)
 सी (३)-(सं सीता)-सीता, वैदेही । उ० मूल हुहूँ को दयालु दूलह सी को । (वि० १७६)
 सीक-दे० 'सीक' ।
 सीकर-(सं)-जल की बँद, छींटा । उ० जल सीकर महि रजगनि जाहीं । (मा० ७।५२।२) सीकरनि-बँदों से । उ० कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिधु बिनसाइ । (मा० २।२३।१)
 सीख-(सं शिष्या)-शिष्या, पाठ, उपदेश । उ० छुमा रोष के दोष गुन मुनि मनु मानहि सीख । (दो० ४२७)
 सीखि-(सं शिष्या)-१. दे० 'सीख', २. सीखकर, ३. सीखो । उ० १. सीखि लई । (क० ७।६२)
 सीची-(सं सिचन)-सींचा, सींच दिया । सीचेउ-सींचा । सींचे-(सं सिद्ध)-तपे, आँच सहे । उ० लै करसी प्रयाग कब सींचे । (वि० २४०)
 सीठ-(सं शिष्ट)-नीरस, फीका, सिट्टी । उ० रागिहि सीठ विसेवि थलु । (प्र० २।६।१) सीठि-दे० 'सीठ' । उ० तौलौ सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि । (दो० ८३) सीठे-दे० 'सीठ' । उ० हूँ जाते सब सीठे । (वि० १६६)
 सीत-(सं शीत)-१. शीतल, ठंडा, २. पाला, ३. जाड़ा, ४. ओस । उ० ३. सीता सीत निसा सम आई । (मा० ५।३६।५)
 सीतल-(सं शीतल)-१. ठंडा, २. शीतल, शांत । उ० १. मुनि प्रसंगु भए सीतल गाता । (मा० २।४५।४) २. तुलसी ऐसे सीतल संता । (बै० ४७)
 सीतलता-(सं शीतलता)-शीतलता, ठंडक । उ० सीतलता ससि की रहि सब जग छाड़ । (ब० ३३)
 सीतलताई-दे० 'सीतलता' । उ० तन पूजियो होत सीतलताई । (क० ७।५८)
 सीतहि-सीता को । सीतहि-१. सीता को, २. सीता ने । सीता-सीता को । उ० सर्वश्रेयस्करि सीतां । (मा० १।१। श्लो० ५) सीता-(सं)-जनक की पुत्री और राम की स्त्री । एक बार जनक के राज्य में वर्षा नहीं हुई । उन्होंने यज्ञ किया और अपने हाथ से हल चलाया । हल जोतते समय एक घड़ा निकला जिससे एक अपूर्व कन्या प्राप्त हुई । हल की रेखा को सीता कहते हैं । उसमें से निकलने के कारण कन्या का नाम 'सीता' पड़ा । उ० सीतान्वेषण तरपरी पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौहिनः । (मा० ४।१।श्लो० १) सीतापति-रामचंद्र । उ० सीतापति सनमुख समुक्ति । (दो० १७१) सीतापतिहि-राम को । सीतारमण-रामचंद्र । सीते-हे सीता । उ० सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा । (म० ३।२६।५) सीतेस-(सं सीतेश)-रामचंद्र । उ० जयति सीतेस सेवा सरस । (वि० ३८)

सीदत-(सं० सीदति)-दुख पाता है। उ० तुलसिदास सीदत निसदिन देखत मुहारि निडुराई। (वि० ११२) सीदहिं-दुखी होते हैं, कष्ट पाते हैं। उ० फूलें फूलें खल सीहिं साधु पल पल। (क० ७।१७१)

सीधमान-दुःखी, संतप्त। उ० साधु सीधमान जानि रीति पाप पीन की। (क० ७।१७७)

सीध-(सं० सिद्ध ?)-बेपका अन्न। आटा, चावल, दाल आदि। उ० तहँ तहँ सीध चला बहु भाँती। (मा० १। ३३३।२)

सीधा-(?)-सरल, सामने, सादा, भोला। सीधे-दे० 'सीधा'। उ० लिए छरी बेंत सीधे विभाग। (गी० ७। २२)

सीधो-दे० 'सीधा'। उ० पान पकवान बिधि नाना को सधानो सीधो। (क० २।२३)

सीप-(सं० शुक्ति, प्रा० सुक्ति)-सीपी, एक समुद्री जीव। उ० हृदय सिंधु मति सीप समाना। (मा० ३।११।४)

सीपर-(फ्रा० सिपर)-ढाल। उ० लागति साँगि बिभीषन-पर सीपर आपु भये हैं। (गी० ६।२)

सीपि-दे० 'सीप'। उ० सरसीं सीपि कि सिंधु समाई। (मा० २।२५।२)

सीपी-दे० 'सीप'।

सीम-(सं० सीमा)-हृद, अवधि, मर्यादा।

सीमा-दे० 'सीम'। उ० रूप सुख शील सीमाऽसि भीमासि। (वि० १५)

सीय-(सं० सीता)-जानकी, सीता। उ० सीय ज्योंही ल्योंही रहैं। (गी० ५।७) सीयरवन-(सं० सीता + रमण)-रामचंद्र।

सीया-दे० 'सीय'।

सील-दे० 'शील'। उ० १. सील-समता-भवन विषमता-मति-समन। (वि० ५५) ३. धरमसील पहिं जाहि सुभाई। (मा० १।२६३।२) सीलन्ह-शीलों। सीलहिं-शील को।

सीलता-(सं० शीलता) परायणता, आचरण करना।

सीला (१)-दे० 'शील'। उ० १. हेतु रहित परहित रत सीला। (मा० ३।४६।४)

सीला (२)-(सं० शिला)-अहत्या। उ० कौने कियो समाधान सनमान सीला को। (वि० १८०)

सीलु-दे० 'सील'।

सीव-दे० 'सीव (१)'

सीव (१)-(सं० सीमा)-सीमा, हृद, मर्यादा। उ० दर श्रीव सुख सीव। (वि० ६१)

सीव (२)-(सं० शिव) शिव।

सीस-(सं० शीश)-सिर, शीश। उ० सीस उचारि दिवाई धाहैं। (गी० ७।१३) सीसनि-सिरों पर। सीसन्ह-सिरों पर। उ० देहि सुलोचन सगुन कलस लिए सीसन्ह। (पा० ६०)

सीसा-दे० 'सीस'। उ० पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। (मा० २।११।२)

सीसु-दे० 'सीस'।

सीसु-दे० 'सीस'।

सुंड-(सं० शुंड)-सूँड़, हाथी का हाथ और नाक। उ० नाग सुंड सममुज चारी। (वि० ६३)

सुंदर-दे० 'सुंदर'। उ० शिवं सुंदरं सच्चिदानंद कंदं। (वि० १२) सुंदर-(सं०)-अच्छा, बढ़िया, उमदा, खूब-सूरत, हचिर, रमणीय। उ० मनिकर्निका बदन ससि सुंदर। (वि० २२)

सुंदरता-(सं०)-खूबसूरती, अच्छाई, सौंदर्य। उ० जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई। (मा० १।६६।छं० १) सुंदरताहु-सुंदरता को। उ० नयन सुखमा अयन हरत सरोज सुंदर-ताहु। (गी० १।६५)

सुंदरताई-सुंदरता, खूबसूरती। उ० हरि सन मागौं सुंदर-ताई। (मा० १। १३२।१)

सुंदरि-१. सुंदरी, अच्छी, २. स्त्री, सुंदर स्त्री, ३. सुंदरियाँ। ३. गारौं मधुर स्वर देहिं सुंदरि विंग्य बचन सुनावहीं। (मा० १।६६।छं० १)

सुंदरी-१. अच्छी, खूबसूरत, २. सुंदर स्त्रियाँ। उ० २. सुर सुंदरी करहिं कल गाना। (मा० १।६१।२)

सु-(सं०)-सुंदर, अच्छा। सुंदरता या अच्छाई बोधक एक उपसर्ग जो अन्य शब्दों के पूर्व लगाया जाता है। जैसे सुगति, सुकाल, सुगान, सुग्रंथ, सुगोह तथा सुगुरु आदि। उ० बाजहिं निसान सुगान नभ चढ़ि बसह बिधु भूवन चले। (पा० १०८)

सुअ-(सं० सुत)-पुत्र, लड़का। उ० कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिसुख गतलाज। (मा० २।१७८)

सुअन-(सं० सुत)-पुत्र, लड़का, बेटा।

सुअर-(सं० शूकर)-सूवर, शूकर। उ० खर स्नान सुअर सकाल सुख। (मा० १।६३।छं० १)

सुआरा-(सं० सुपकार)-रसोइया। उ० लागे परूसन निपुन सुआरा। (मा० १।६६।४)

सुआसिनि-(?)-सौभाग्यशालिनी, सधवा। उ० जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। (मा० १।३४।३)

सुक-(सं० शुक)-सुग्गा, तोता। उ० चारु भू नासिका सुभग सुक आननी। (गी० ७।५)

सुकठ-(सं०)-सुग्रीव। उ० फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली। (मा० १।२६।३)

सुकल-(सं० शुक्ल)-१. श्वेत, सफ़ेद, २. उजेला। उ० २. सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता। (मा० १।६१।१)

सुकिय-दे० 'सुकुत'। उ० गये निवटि फल सकल सुकिय के। (गी० ४।१)

सुकुमार-(सं०)-कोमल अंगवाला। उ० सुठि सुकुमार कुमार दोउ। (मा० २।८१) सुकुमारी-(सं०)-कोमल शरीर वाली। उ० तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। (मा० २।५८।४)

सुकुमारि-दे० 'सुकुमारी'। उ० सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनक सुता सुकुमारि। (मा० २।८१)

सुकुत-(सं०) पुण्य कर्म, अच्छा काम। उ० सुकृत सुखेत सुख सालि फूलि फरिगे। (गी० २।३२)

सुकुती-पुण्य कर्म करनेवाला। उ० केहि सुकुती सन होइहिं साथू। (मा० २।५८।२)

सुकुतु-दे० 'सुकुत'।

सुकैत-(सं०)-ताड़का का पिता । उ० रिषि हित राम सुकैत सुता की । (मा० २४।२)
 सुकैत-दे० 'सुकैत' । सुकैतसुता-ताड़का ।
 सुक्र-(सं० शुक्र)-१. वीर्य, बीज, २. शुक्राचार्य । उ० १. दृच्छ सुक्रसंभव यह देही । (मा० १।६४।३)
 सुख-(सं०) आराम, दुःख का उलटा । उ० तपु सुखप्रद दुःख द्रोप नसावा । (मा० १।७३।१) सुखकारी-सुख देनेवाला । सुखद-सुख देनेवाला । सुखदाई-सुख देनेवाला । सुखदाता-सुख देनेवाला । सुखदायक-सुख देनेवाला । सुखदायनी-सुख देनेवाली । सुखमय-सुखयुक्त, सुख से भरी । उ० सुखमय ताहि सदा सब आसा । (मा० ७।४६।३) सुखहि-सुख को । सुखहि-सुख को । सुखेन-सुखपूर्वक । उ० जरहि सुखेन कालु किन होऊ । (मा० १।२६४।१)
 सुखमा-दे० 'सुषमा' । उ० सुखमा सुरभि छीर दुहि मयन अमिय मय कियौ दही री । (गी० १।१०४)
 सुखाई-(सं० शुष्क)-सूखे, सूख जाय । सुखानी-सूख गई । उ० कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी । (मा० २।२०।१) सुखने-सूख गए, सूखे । सुखानेउ-१. सूखे हुए भी, २. सूखे । सुखाहि-दे० 'सुखाही' । सुखाही-सूखते हैं, सूख जाते हैं ।
 सुखारी-(सं० सुख)-सुखी, प्रसन्न । उ० सब बिधि सब पुर लोग सुखारी । (मा० २।१।३) सुखारे-सुखी । सुखी-आनंदित, प्रसन्न । उ० होइ सुखी जौ एहि सर परई । (मा० १।३।१४)
 सुगंध-(सं०)-अच्छी महक । उ० छिरकैं सुगंध भरे मलयरेतु । (गी० ७।२२)
 सुगढ़-अच्छे गढ़े हुए । उ० सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका । (गी० ७।१७)
 सुगति-(सं०)-१. मरने के उपरांत होनेवाली अच्छी गति, मोक्ष । उ० सुगति साधन भई उदर भरनि । (वि० १।८४) सुगतिहु-मोक्ष से भी । उ० सुगतिहु लुभाहि न । (वि० २०७)
 सुगम-(सं०)-सरल, आसान । उ० सुनि-मन-अगम सुगम माइ बाप सो । (वि० ७१)
 सुगम-दे० 'सुगम' ।
 सुगाइ-(?)-संदेह करता है, संदेह करेगा । उ० तुम्हहि सुगाइ मालु कुटिलाई । (मा० २।१८४।३)
 सुग्रीव-सुग्रीव ने । सुग्रीव-(सं०)-बालि का भाई जो राम का भक्त था । उ० कारन कवन बसह बन मोहि कहहु सुग्रीव । (मा० ४।५) सुग्रीवहि-१. सुग्रीव को, २. सुग्रीव ने । सुग्रीवहु-सुग्रीव भी । सुग्रीवपुर-किष्किंधा पुरी ।
 सुग्रीवाँ-दे० 'सुग्रीव' । १. सुग्रीव ने, २. सुग्रीव को ।
 सुचाली-अच्छी चालवाला, सदाचारी । उ० मैं साजु सुचाली । (मा० २।२६।१२)
 सुचि-(सं० शुचि)-पवित्र । उ० सुचि अवनि सुहावनि आंलवांल । (वि० २३)
 सुचित-(सं० सु + चित्) १. सावधान, २. निश्चित, ३.

ध्यान से । उ० १. सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी । (मा० १।३६।१)
 सुचितई-निश्चितता । उ० सफल मनोरथ भो सुख सुचितई है । (गी० १।६४)
 सुचिता-दे० 'शुचिता' । उ० मकरंदु जिन्ह को संसु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई । (मा० १।३२४।४० २)
 सुचिमत-(सं० शुचि + चत्)-पवित्र ।
 सुच्छम-(सं० सूक्ष्म)-छोटी, छोटी सी । उ० अति रसज सुच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै । (वि० १।६७)
 सुछंद-(सं० स्वच्छंद)-स्वतंत्र, स्वाधीन, मौजी । उ० करहि जोग जप जाग तप आत्मनि सुछंद । (मा० २।१३४)
 सुजनी-(सं० सु + जन)-सखी, सजनी । जो दुख में पायो सुजनी । (क० २५)
 सुजान-(सं० सजान)-चतुर, सधाना । उ० कह तुलसिदास सुतु सिव सुजान । (वि० १४)
 सुजाना-दे० 'सुजातु' ।
 सुजानि-दे० 'सुजान' ।
 सुजानु-दे० 'सुजान' । उ० आगे को गोसाईं स्वामी सबल सुजातु है । (क० ७।८०)
 सुजानू-दे० 'सुजान' ।
 सुजोधन-(सं० सुयोधन) दुर्योधन । युधिष्ठिर दुर्योधन को इसी नाम से पुकारते थे ।
 सुजोर-(सं० सु + क्रो + जोर)-मजबूत, सुदृढ़ । उ० सरल बिसाल बिराजहीं विदुम खंभ सुजोर । (गी० ७।१६)
 सुक्काउ-(?)-१. सुक्काओ, लखाओ, २. समझाइए । उ० २. तेरेहि सुक्काए सुके अरु सुक्काउ सो । (वि० १।८२)
 सुक्काए-सुक्काए से, बतलाने से । उ० दे० 'सुक्काउ' ।
 सुटकि-(?)-पतली छड़ी से मारकर । उ० चपरि चलेउ हय सुटकि नृप हाँकि न होइ निबाहु । (मा० १।१५६)
 सुठान-(?)-भली प्रकार से । उ० भौह काम संधान सुठान (क० ७।११८)
 सुठारी-(?)-सुंदर । उ० अंगुरियन्ह मृदुल सुठारी हो । (रा० १५)
 सुठि-(सं० सुठु)-सुंदर, मनोहर, अच्छा । उ० सफल मनोरथ भयउ गौरि सोहइ सुठि । (पा० ७६)
 सुठर-(सं० धार)-अनुकूल । उ० बिधि के सुठर होत सुठर सुदाय के । (गी० १।६५)
 सुतंत्र-(सं० स्वतंत्र)-आज्ञाद, स्वाधीन । उ० भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी । (मा० ७।४५।३)
 सुत-(सं०)-लड़का, बेटा । उ० सुत की मीति प्रतीति मीत की । (वि० २।६८)-सुतन-१. लड़कों, २. लड़कों को । सुतन्ह-पुत्रों । उ० आवत सुतन्ह समेत । (मा० १।३०७) सुतहि-सुत को, पुत्र को ।
 सुता-(सं०)-लड़की, पुत्री । उ० कैकयसुता हृदय अति दाह । (मा० २।२४।४)
 सुतहार-(सं० सूत्र + हार)-खाट बुननेवाला, बढ़ई । उ० कनक रतन मय पालनो रच्यो मनहुँ मार सुतहार । (गी० १।१६)
 सुत-दे० 'सुत' ।
 सुदरसन-(सं० सुदर्शन)-१. मछली, २. सुदर्शन चक्र जो

विष्णु का हथियार है। उ० १. नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी अरु चाप। (दो० ४६०)
 सुदरसनपानि-(सं० सुदर्शनपाणि)-विष्णु। उ० ज्यों धाप गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि। (गी० ६।६)
 सुदाम-दे० 'सुदामा'। उ० ध्रुव प्रह्लाद विभीषण कपिपति जड़ पतंग पांडव सुदाम को। (वि० ६१) सुदामहिं-सुदामा को।
 सुदामा-(सं०)-एक दीन ब्राह्मण जो कृष्ण का सहपाठी था। उ० साखि सखा सब सुबल सुदामा। (कृ० १२)
 सुदामिनि-दे० 'सुदामिनी'।
 सुदामिनी-(सं० सौदामिनी)-बिजली। उ० साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी। (क० २।१४)
 सुदि-(सं० शुक्ल + दिवस)-उजाला पाख। उ० जय संवत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु। (पा० ५)
 सुदद-दे० 'सु + दद'-मज्जुत, अच्छा। उ० सुदद ज्ञान अवलंबि। (गी० ५।६)
 सुद-दे० 'शुद्ध'। उ० १. सर्वदा सुद सर्वज्ञ स्वच्छंदचारी। (वि० ५६)
 सुदता-(सं० शुद्धता)-पवित्रता। उ० सुदता लेस कैसो। (वि० १०६)
 सुद्धि-(सं० शुद्धि, -शुद्ध होने का भाव, सफाई)। उ० सुद्धि हेतु च्युति गावै। (वि० ८२)
 सुध-(?) -सृति, स्मरण, याद, चेत।
 सुधरत-(सं० शोधन ?)-सुधरता है, सँभलता है। सुधरहिं-सुधर जाते हैं। उ० सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। (मा० १।३।५) सुधरे-सुधर गया। सुधरेगी-सुधर जायगी।
 सुधरिए-सुधारिए। उ० अब मेरियो सुधरिए। (वि० २७१)
 सुधा-(सं०)-अमृत। उ० मुए करै का सुधा तड़ागा। (मा० १।२६।१।१)
 सुधाइह-दे० 'सुधाइह'। उ० कतहुँ सुधाइह ते बड़ दोषू। (मा० १।२८।१।३)
 सुधाई-सुधापन, सिधाई। उ० देखि तात तव सहज सुधाई। (मा० १।१६।१।२)
 सुधाकर-(सं०)-१. चंद्रमा, २. कपूर। उ० १. जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर। (मा० ७।६।१।३)
 सुधाकर-दे० 'सुधाकर'।
 सुधार-(सं० शोधन ?)-बनाव, ठीक करना, दुरुस्तगी।
 सुधारत-(सं० शोधन ?)-सुधारता है, सँभलता है। उ० मयन सुधारत सायक। (जा० ६४) सुधारा-ठीक किया, सँभाला। सुधारि-१. सुधार कर, २. सुधारते। उ० १. सुधारि आपू। (वि० २७१) सुधारिए-सँभालिए। उ० सुधारिए आगिलो काज। (गी० १।८२) सुधारिबी-सुधारिएगा। सुधारिहिं-सुधारेंगे। सुधारे-ठीक किए, सँभाले।
 सुधि-(सं०)-स्मरण, याद। उ० हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। (मा० १।२५।३)
 सुधी-(सं० सु + धी)-बुद्धिमान, पंडित, विज्ञ। उ० साहिब सुधी सुसील-सुधाकर है। (वि० २।५५)
 सुन-(सं० श्रवण)-सुनो। सुनइ-सुनता है। उ० जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई। (मा० २।४६।४) सुनउँ-सुनूँ, सुनता हूँ। सुनऊँ-सुनता हूँ। सुनत-१. सुनता है, २.

सुनते हुए, ३. सुनने से। उ० ३. सुनत समुक्थित थोरे। (कृ० ४४) सुनतहिं-सुनते ही। सुनतहिं-दे० 'सुनतहिं'।
 सुनति-१. सुनती, २. सुनते हुए। सुनतिउँ-मैं सुनती। सुनतेउँ-मैं सुनता। सुनहिं-१. सुना, २. सुनेगा। उ० १. सुनहि सती तब नारि सुभाऊ। (मा० १।५१।३) सुनहीं-सुनते हैं। सुनहु-सुनो, श्रवण करो। उ० सुनहु तात मायाकृत। (मा० ७।४१) सुना-श्रवण किया। सुनि-१. सुनो, २. सुन कर। उ० २. सुनिकै सुचित तेहि समै। (गी० २।३७) सुनिअ-१. सुनो, २. सुना जाता है। उ० २. सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल। (मा० २।२८।१) सुनियत-सुना जाता है। सुनियति-सुनी जाती है। सुनिहहिं-सुनेंगे। सुनिहहुँ-सुनेगा। सुनी-सुना, श्रवण किया। सुनु-सुनो। सुने-१. सुना, २. सुनने पर, ३. सुनते ही। उ० २. काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिए धाप। (क० १।२२) सुनेउँ-सुना, श्रवण किया। सुनेउ-सुना। सुनेऊँ-सुना। सुनेहिं-सुना। उ० रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा। (मा० १।२७।२।२)
 सुनाइ-(सं० श्रवण)-सुनाकर, श्रवण कराकर। उ० अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई। (मा० ५।३८) सुनाइय-१. सुनाकर, २. सुनाया। सुनाई-१. सुनाकर, २. सुनाया। उ० १. दे० 'सुनाइ'। सुनाउ-सुनाओ। सुनात-सुनाई पढ़ता। सुनाऊँ-सुनाओ। सुनाएसि-सुनाया। सुनाएहु-सुनाना। सुनायउ-सुनाया। सुनायहु-१. सुनाया, २. सुनाना। सुनाये-१. सुनाया, २. सुनाने पर। सुनायेउ-सुनाया। सुनायेहि-१. सुनाने पर, २. सुनाया। सुनायो-सुनाया। सुनाव-सुनाओ। सुनावत-सुनाते हैं। सुनावहीं-सुनाते हैं। सुनावहु-सुनाओ। सुनावा-सुनाया। उ० का सुनाइ विधि काह सुनावा। (मा० २।४८।१)
 सुनैया-सुननेवाला। उ० जनम फल तोतरे बचन सुनैया। (गी० १।६)
 सुपच-(सं० श्वपच)-भंगी, मेहतर।
 सुपन-(सं० स्वप्न)-स्वप्न।
 सुपनखाँ-(सं० शूर्पणखा)-रावण की बहन ने। उ० जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा। (मा० ३।२।१।३)
 सुपास-(?) -१. सुख देनेवाला, २. सुख, सुभीता। उ० २. बसै सुवास सुवास होहि सब। (कृ० ४८)
 सुपासा-दे० 'सुपास'।
 सुपासी-दे० 'सुपास'।
 सुपासू-दे० 'सुपास'। उ० १. तुम कहँ बन सब भाँति सुपासू। (मा० २।७।५।४)
 सुपेती-(फा० सफेदी)-१. सफेदी, उज्वलता, २. सफेद चादरें। उ० २. कोमल कलित सुपेती नाना। (मा० १। ३।६।१।१)
 सुफल-(सं० सफल)-कामयाब, सफल। उ० चले लोक लोचननि सुफल करन है। (क० २।१७)
 सुफलक-(सं० श्वफलक)-अक्रूर के पिता। सुफलकसुत-अक्रूर। उ० हँ मराल सुफलकसुत लै गयो छीर नीर बिलगाई। (कृ० २।५)
 सुबट्ट-(सं० सु + बट्ट)-सुंदर मार्ग। उ० चउहट्ट-हट्ट सुबट्ट बीधी। (मा० ५।३। छं० १)

सुवरन-(सं० सुवर्ण)-सोना, स्वर्ण। उ० हौं सुवरन कुवरन कियो। (वि० २६६)
 सुवस-(१)-(सं०स + वास)-अच्छा निवास, सुंदर स्थान। उ० सुवस बसउ फिरि सहित समाजा। (मा० २।२७३।७)
 सुवस (२)-(?)-सुख पूर्वक। उ० समाधानु करि सुवस बसाए। (मा० २।३२३।३)
 सुबाहु-(सं०)-१. धतराष्ट्र का पुत्र और चेदि का राजा, २. सेना, ३. एक राक्षस जो रावण का अनुचर था। उ० २. बन धन धरम सुबाहु। (दो० १२१) ३. पावक सर सुबाहु पुनि मारा। (मा० १।२१०।३)
 सुबेल-(सं०)-एक पर्वत। उ० इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। (मा० ६।११।१)
 सुभ-दे० 'शुभ'। उ० १. असुभ-सुभ कर्म घृत-पूर्ण दुस वर्तिका। (वि० ४७) सुभद-कल्याणदाई। सुभदाई-कल्याणदाई।
 सुभग-(सं०)-सुंदर, मनोहर। उ० नील नव वारिधर सुभग सुभ कांतिकर। (वि० ११)
 सुभगता-(सं०)-सुंदरता, सौंदर्य। उ० जागइ मनोभव सुपहुँ मन बन सुभगता न परै कही। (मा० १।५६। ४० १)
 सुभाइ-(सं० स्वभाव)-१. स्वभाव, २. स्वाभाविक, सहज। उ० २. जुवति जुथ महँ सीय सुभाइ बिराजइ। (जा० ११५)
 सुभाउ-दे० 'सुभाइ'। उ० १. सुनि सीतापति सील सुभाउ। (वि० १००)
 सुभाऊ-दे० 'सुभाइ'।
 सुभाए-स्वभाव स, स्वाभाविक रीति से। उ० सुभग सुदेस सुभाए। (गी० १।२६)
 सुभागी-सौभाग्यवती, सधवा। उ० सील सनेह सुभाय सुभागी। (मा० २।२२२।४)
 सुभाय-स्वभाव से ही। उ० सुभायँ सुहाए। (मा० २। २६१।४) सुभाय-(सं० स्वभाव)-आदत, प्रकृति, स्वभाव। उ० सुभाय सही करि। (वि० २७७)
 सुभाव (१)-(सं० स्वभाव)-स्वभाव, प्रकृति। उ० कहौं सुभाव न कुलहि प्रसंसी। (मा० १।२५४।२) सुभावहि-स्वभाव से ही।
 सुभाव (२)-(सं० सु + भाव)-अच्छा विचार। उ० सुभाव कहै तुलसी। (क० ७।४२)
 सुभावु-दे० 'सुभाव (१)'
 सुभ्र-(सं० शुभ्र)-निर्मल, सफेद। उ० फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। (मा० ४।१३।३)
 सुमंत-(सं० सुमंत्र)-राजा दशरथ का मंत्री और सारथी। सुमंत्र-दे० 'सुमंत'। उ० गए सुमंत्र तब राउर माहीं। (मा० २।३५।२)
 सुमंत्रु-दे० 'सुमंत'। उ० सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए। (मा० २।४।१)
 सुमन-(सं०)-फूल। उ० सुमन बरसि सुर घन करि छाहीं। (मा० २।३१।१) सुमनि-फूलों से।
 सुमरन-(सं० स्मरण)-१. याद, स्मरण, २. भजन। सुमित्रहि-१. सुमित्रा को, २. सुमित्रा से। सुमित्रा-(सं०)-

दशरथ की रानी और लक्ष्मण-शत्रुघ्न की माता। उ० सुमित्रा सुवन शत्रु सुदन राम-भरत बंधो। (वि० ३५)
 सुमिर-(सं० स्मरण)-१. यादकर, २. याद करो। सुमिरत-१. स्मरण करते ही, स्मरण करते हुए, २. स्मरण करता है। उ० १. सुमिरत संकट सोच विमोचन। (वि० ३०) सुमिरन-सुमिरना, याद करना। सुमिरहि-स्मरण करते हैं। सुमिरही-स्मरण करते हैं। सुमिरहु-याद करो। उ० हिथँ सपेम सुमिरहु सब भरतहि। (मा० २।२६१।४) सुमिरामि-स्मरण करता हूँ। सुमिरि-याद करके। उ० सुमिरि अवधपति। (मा० १।१।३) सुमिरिबे-स्मरण करने। उ० साँकरे के सेइबे सराहिबे सुमिरिबे को। (क० ७।२२) सुमिरिये-याद कीजिए। सुमिरु-याद करो। सुमिरे-स्मरण करने से। उ० सुमिरे सहाय। (ह० ३६) सुमिरेसि-याद किया। सुमिरेसु-स्मरण करना। उ० सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही। (मा० ७।५५।१) सुमिरेहु-याद करना। सुमिरौ-याद करता हूँ। उ० पद-सरोज सुमिरौ। (वि० १४१)
 सुमुखि-१. सुंदर मुखवाली, सुंदरी, २. हे सुंदरी। उ० २. तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। (मा० १।१२१।३)
 सुमृति-(सं० स्मृति) स्मृति अन्ध, धर्मशास्त्र। उ० सोधि सुमृति सब बेद पुराना। (मा० २।१७०।३)
 सुमेर-दे० 'सुमेरु'। उ० गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी। (मा० ७।१६।४)
 सुमेरु-(सं०)-१. एक पर्वत, २. माबे की बड़ी मनियाँ। उ० गरुड सुमेरु रेनु सम ताही। (मा० १।१२।२)
 सुमेरु-दे० 'सुमेरु'।
 सुयोधन-(सं०)-दुर्योधन। दे० 'सुजोधन'।
 सुर-(सं०)-देव, देवता। उ० सिद्ध सुर सुनि मनुज सेव्यमानं। (वि० १०) सुरअपगा-गंगा नदी। सुरगाथ-कामधेनु। सुरगुरु-बृहस्पति। उ० सुर गुरु संग पुरंदर जैसे। (मा० १।३०२।१) सुरतक-कल्प वृक्ष। उ० जौ मन भयौ चहै हरि सुरतरु। (वि० २०५) सुरदावन-१. रावण, २. असुर। सुरधनु-इंद्रधनुष। सुरन-देवों, देवोंने। सुरन्ह-देवों ने, सुरगण। उ० सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। (मा० २।२६१।३) सुरनदी-१. गंगा, २. आकाश गंगा। सुरनाथ-इंद्र। सुरनायक-इंद्र। सुरप-इंद्र। सुरपति-इंद्र। उ० तौ सुरपति कुरराज बालि सौं। (वि० ६७) सुरपाल-इंद्र। उ० भगत सिरोमनि भरत तँ जनि डरपहु सुरपाल। (मा० २।२१६) सुरपुर-(सं०)-१. स्वर्ग, २. इंद्र पुरी। उ० १. नरक परौ बरु सुरपुर जाऊ। (मा० २।४१।१) सुरबीथि-आकाश गंगा। उ० स्वामि सुरति सुरबीथि विकासी। (मा० २।३२।३) सुरबेलि-कल्पलता। उ० पुरी सुरबेलि केलि काटत किरात कलि। (क० ७।१६६) सुरराज-(सं०)-इंद्र। सुरराजु-दे० 'सुरराज'। उ० रामु सनेह कौच बस कह ससोच सरराजु। (मा० २।२२।४) सुररुख-(सं० सुर + वृक्ष)-कल्पवृक्ष। उ० निज संपति रूखलजाए। (मा० १।२२७।३) सुरति-(सं० स्मृति)-याद, स्मरण। उ० गुरु के बचन सुरति करि रामचरन मन लाग। (मा० ७।११० क)

सुरधुनी-(सं०)-गंगा । उ० भरत सभा सादर सनेह सुर-
धुनी में । (क० ७।२१)
सुरभि-(सं०)-१.सुगंध, २. चैत का महीना, ३. गाय, ४.
सुंदर, ५. सुगंधित । उ० १.सुरभि पल्लव सो कहू किमि
पावै । (वि० ११४) ३. स्याम सुरभि पय विसद अति ।
(मा० ११०ख) ५. सीतल मंद सुरभि बह बाज । (मा०
११५११२)
सुरभी-दे० 'सुरभि' ।
सुरमनि-(सं० सुर + मणि)-१. चिंतामणि, २. कौस्तुभ
मणि । उ० १. परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटल ।
(वि० १२६)
सुरस-(सं० सु + रस)-रसीला और सुस्वादु । उ० कंद-
मूल फल सुरस अति । (मा० ३।३४)
सुरसरि-(सं०)-गंगा । उ० सुरसरि तरंग निर्मल । (वि०
१७०) सुरसरिही-गंगा में ।
सुरसरी-गंगा । उ० जयति जय सुरसरी जगदाखिल
पावनी । (वि० १८)
सुरसा-(सं०)-एक प्रसिद्ध नागमाता, जिसने हनुमान को
समुद्र पार करने के समय रोका था । उ० सुरसा नाम
अहिन की माता । (मा० ५।२।१)
सुरा-(सं०)-मदिरा, शराब । उ० असुर सुरा विष संकरहि
आपु रमा मनिचारु । (मा० १।१३६)
सुराई-(सं० शूर)-वीरता, शूरता । उ० हमरे कुल इन पर
न सुराई । (मा० १।२७३।३)
सुराती-(सं० सु + रात्रि)-सुंदर रात, पूर्णमासी की रात ।
उ० ससि समाज मिलि मनहुं सुराती । (मा० १।१५।५)
सुरचि-(सं०)-१. अच्छी रुचि, २. राजा उत्तानपाद की
छोटी स्त्री जिसके कारण वे भ्रुव का अनादर करते थे ।
उ० १.सुरचि सुवास सरस अनुरागा । (मा० १।१।१) २.
सुरचि कछो सोइ सत्य तात । (वि० ८६)
सुरेश-(सं०)-१. इंद्र, २. देवों के स्वामी ।
सुरेस-दे० 'सुरेश' । उ० १. मुनिगति देखि सुरेस डेराना ।
(मा० १।१२।३) सुरेसहि-इंद्र को । उ० देखि प्रभाउ
सुरेसहि सोचू । (मा० २।२।७।४)
सुरेसा-दे० 'सुरेश' । उ० हिय हरषे तब सकल सुरेसा ।
(मा० १।१०।१२)
सुलगइ-(?)-जलती है, सुलगती है । उ० अवाँ अनल इव
सुलगइ छाती । (मा० १।१६।०।४)
सुलच्छनि-१. अच्छे लक्षण का, २. दे० 'सुलच्छनि' । उ०
२. सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी । (मा० १।६।७।४)
सुलच्छनि-(सं० सु + लक्षण)-अच्छे लक्षणों या गुणों-
वाली ।
सुलभ-(सं०)-सहज में मिलने योग्य । उ० सब विधि
सुलभ जपत जिसु नाम । (मा० १।११।२।२)
सुलाखि-(क्रा० सुराख)-झेद करके । उ० और भूप परखि
सुलाखि तौलि तौइ लेत । (क० ७।२४)
सुलोचनि-सुंदर आँखोंवाली, सुंदरी । उ० बार बार कह
राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि । (मा० २।२५)
सुवन-(सं० सुत)-पुत्र, लड़का । उ० सुवन लाहु उछाह दिन
दिन देवि अनहित हानि । (गी० ७।३२)

सुवरन-(सुवर्ण)-सोना, कंचन ।
सुवार-दे० 'सुआर' ।
सुशील-(सं० सु + शील)-अच्छे स्वभाव का, शांत ।
सुषमा-(सं०)-सुंदरता । उ० नयन सुषमा निरखि नागारि
सफल जीवन लेखु । (गी० ७।६)
सुशुति-(सं०)-जीव की चार अवस्थाओं में से एक ।
सुषेण-(सं०)-एक वानर जो वरुण का पुत्र, वालि का ससुर
और सुश्रीव का वैद्य था ।
सुसील-(सं० सु + शील)-अच्छे स्वभाववाला । उ० सुंदर
सहज सुसील सयानी । (मा० १।६।७।१)
सुसीलता-अच्छा स्वभाव । उ० मुनि सुसीलता आपनि
करनी । (मा० १।१२।७।२)
सुसीला-दे० 'सुसील' ।
सुसीलु-दे० 'सुसील' । उ० समुक्ति सुमित्राँ रामसिय रूप
सुसीलु सुभाउ । (मा० २।७।३)
सुसुकत-(अनु० सी सी)-सिसकी भरता है । उ० कछु न
कहि सकत, सुसुकत सकुचत । (क० १७) सुसुकि-सिसकी
भरकर । उ० सुसुकि सभित सकुचि रखे मुख । (क० ६)
सुहव-(?)-सूहा राग । उ० सारंग गुंड मलार सोरठ सुहव
सुघरनि बाजहीं । (गी० ७।१६)
सुहाइ-(सं० शोभा)-शोभित हो, अच्छा लगें । सुहाई-१.
अच्छा लगानेवाला, २. अच्छा लगता है । उ० २.रूपरासि
गुन सील सुहाई । (मा० २।५।१) सुहाई-अच्छी लगी ।
सुहाउँगो-अच्छा लगूँगा । उ० ज्यों साहिबहि सुहाउँगो ।
(गी० ५।३०) सुहाए-अच्छा लगे, अच्छा लगते हैं । उ०
बिनथी बिजथी रघुबीर सुहाए । (क० १।२२) सुहाती-
अच्छी लगती । सुहान-अच्छी लगी, अच्छा लगा ।
सुहाना-अच्छा लगा । सुहाने-१. अच्छे, २. अच्छे लगे ।
सुहावा-अच्छा लगा, अच्छा लगता है । उ० आश्रम परम
पुनीत सुहावा । (मा० १।१२।५।१) सुहाहि-अच्छे लगते
हैं । सुहाही-अच्छे लगते हैं ।
सुहावन-अच्छा, सुंदर । सुहावनि-अच्छी, सुंदर । उ० बह
समीप सुरसरी सुहावनि । (मा० १।१२।५।१)
सुहद-(सं० सुहृत्)-१. शुद्ध हृदयवाला, २. मित्र । उ०
१. भूप सुहद सो कपट सयाना । (मा० १।१६।०।३) २.
तन धन भवन सुहद परिवारा । (मा० ५।४८)
सूकर-(सं० शूकर)-१. बाराह अवतार, २. सूअर । उ०
१. मीन कमठ सूकर नरहरी । (मा० ६।११।०।४) २.
सूकर स्वान सगाल सरिस जन । (वि० १४०)
सूकरखेत-(सं० शूकर + खेत)-एक पवित्र स्थान जो मथुरा
जिले में है । सोरों । उ० मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा
सो सूकरखेत । (मा० १।३० क)
सूकी-(सं० शुष्क)-सूख गया । उ० पिता भय साँसति
सागर सूकी । (का० ७।६०)
सूक्ष्म-(सं०)-१. थोड़ा, अल्प, २. छोटा, ३. पतला ।
सूख-(सं० शुष्क)-१. सूखे, सूख जाय, २. सूख गया ।
उ० कंडु सूख सुख आव न बानी । (मा० २।३।१)
सूखत-१. सूख जाता है, २. सूखने के समय । उ० २.
जलु जलचर गन सूखत पानी । (मा० २।५।१।३) सूखाह-
सूखते हैं, सूख जाते हैं । सूखि-१. सूखकर, २. सूख गई ।

उ० २. सहसि सूखि सुनि सीतलि बानी । (मा० २।२४।१)
 सूत्र-(?)—१. शंका, २. चिंता ।
 सूच-(सं० सूचना)—सूचना दे दी । उ० अन्न अहिवात सूच जनु भावी । (मा० २।२४।४) सूचत-सूचना होती है, सूचित करते हैं । सूचति-प्रकट करती है । उ० सूचति कटि केहरि गति मराल । (वि० १४)
 सूचक-(सं०)—जतलानेवाला । उ० प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी । (मा० १।२३।४)
 सूच्छम-(सं० सूक्ष्म)—दे० 'सूक्ष्म' ।
 सूक्त-(?)—सूक्ता है । उ० सूक्त जुआरिहि आपुन दाऊ । (मा० २।२३।१) सूक्त-सूक्ता है, दिखाई देता है । उ० मोहि अस सूक्त । (पा० २०) सूक्त-दिखाई देता है । सूक्तहि-दे० 'सूक्त' । उ० सूक्त रंग हरो । (वि० २२६)
 सूक्ति-१. सूक्कर, २. सूक्कने का भाव । सूक्क-दिखाई पड़े, दिखाई पड़ता है । उ० नहि सूक्क कछु धमधूसर को । (क० ७।१०३)
 सूत (१)-(सं०)—१. एक जाति, २. सारथी । उ० १. नट भाट मागध सूत जाचक । (जा० १।८०) २. सूत बचन सुनतहि नरनाह । (मा० २।१५३।३)
 सूत (२)-(सं० सूत्र)—डोरा, तागा । उ० धर्यो सूत बिधि सुत बिचित्र मति । (गी० ७।१७)
 सूत (३)-(सं० शयन)—सोता है । उ० जिमि टिटिभ खग सूत उताना । (मा० ६।४०।३) सूतत-सोने से, सोकर । उ० सूतत जागू । (मा० ६।५६।४) सूतहि-सोते हैं । उ० जोहि निसि सकल जीव सूतहि । (वि० ११६) सूता (१)—सोया । सूतिहौं-सोऊंगा । उ० पसारि पाँय सूतिहौं । (क० ७।६६)
 सूता (२)-दे० 'सूत (१)' तथा 'सूत (२)'
 सूत्रधार-दे० 'सूत्रधार' । उ० राम सूत्रधार अंतरजामी । (मा० १।१०५।३)
 सूत्रधार-(सं०)—प्रधान नट, नाटक का आरंभ में सामने वाला पात्र ।
 सूदन-(सं०)—नष्ट करनेवाला । उ० जय कबंध सूदन । (क० ७।११४)
 सूदनु-दे० 'सूदन' ।
 सूधी-(सं० सूदन)—मारा, नष्ट किया । उ० ससि समर सूधी राहु । (गी० १।६५)
 सूद्र-(सं० शूद्र)—अत्यज, अछूत, हरिजन ।
 सूद्र-दे० 'सूद्र' । उ० सोचिअ सूद्र विप्र अवमानी । (मा० २।१७।३)
 सूध-(?)—सीधा, सरल । उ० सूध बूध मुख करिअ न कोहू । (मा० १।२७७।१) सूधिये-सीधे, साफ़ साफ़ । उ० सूधिये कहतु हौं । (क० ७।११७) सूधी-सीधी, सरल, स्पष्ट । उ० सूधी करि पाई तू । (क० ८) सूधे-१. सीधे, सरल, २. शुद्ध । उ० २. सूधे मन सूधे बचन । (दो० १।५२)
 सूधौ-दे० 'सूधे' । उ० १. सूधौ सत भाय कहे मिटति मली-नता । (वि० २६२)
 सून-(सं० शून्य)—१. खाली, रिक्त, २. निर्जन, पुरांत ।

उ० १. सूने परे सून से मनो मिटाए आँक के । (गी० १।६२)
 सूना-(सं० शून्य)—१. खाली, रिक्त, २. शून्य, उजाड़ । सूने-दे० 'सूना' । उ० सूने सकल दसानन पारा । (मा० १।८२।४)
 सूनु-(सं०)—पुत्र, बेटा । उ० राम की रजाय तें रसायनी समीर सूनु । (क० २।२५)
 सुन्य-(सं० शून्य)—खाली, रिक्त । उ० सुन्य भीति पर चित्र रंग नहि । (वि० १११)
 सूप (१)-(सं० शूर्प)—अनाज फटकने का पात्र । उ० भरि गे रतन पदारथ सूप हजार हो । (रा० १६)
 सूप (२)-(सं०)—१. दाढ़, २. रसोई । उ० १. सूपोदन सुरभी सरपि । (मा० १।३२।८) २. सूपसाख जस कछु ब्यवहारा । (मा० १।६६।२)
 सूपकार-(सं०)—रसोइया, पाचक ।
 सूपकारी-दे० 'सूपकार' । उ० बोलि सूपकारी सब लीन्हें । (मा० १।३२।४)
 सूपनखा-(सं० शूर्पणखा)—एक राक्षसी जो रावण की बहन थी । उ० सूपनखा कुरुप कीन्ही । (गी० ७।३८)
 सूपसाख-(सं० सूपशाख)—खाना बनाने की विद्या । उ० दे० 'सूप (२)'
 सूर (१)-(सं०)—१. सूर्य, रवि, २. अंधा । उ० १. बिंध्य की दचारि कैधों कोटि सत सूर हैं । (क० २।३)
 सूर (२)-(सं० शूर)—वीर । उ० गरुअ गुनरासि सरबग्य सुकृती सूर । (वि० १०६) सूरनि-वीरों । उ० सूरनि उछाह कूर कादर डरत हैं । (क० ६।४६)
 सूरति (१)-(सं० स्मृति)—याद, स्मरण । उ० भई है मगन नहिं तनिको सूरति । (गी० २।४७)
 सूरति (२)-(फ़ा०)—१. शकल, रूप, २. सौंदर्य, ३. प्रकार । उ० २. शेष नहिं कहि सकत अंग अंग सूरति । (क० २।८)
 सूर-दे० 'सूर' ।
 सूर्य-(सं०)—रवि, भास्कर ।
 सूल-(सं०)—१. दढ़, कण्ठ, पीड़ा, २. त्रिशूल । उ० १. समय गये चित सूल नहिं । (क० २।४) २. अनायास अनुकूल सूलधर । (गी० २।२८)
 सूलधर-(सं० शूलधर)—शंकर । उ० दे० 'सूल' ।
 सूलपानि-(सं० शूलपाणि)—शंकर ।
 सूला-दे० 'सूल' । उ० १. मिटी मलिन मन कलपित सूला । (मा० २।२६७।१)
 सूली-(सं० शूलिन्)—शंकर ।
 सूखला-दे० 'शूखला' ।
 सूंग-(सं० शृंग)—१. सींग, २. पर्वत-शिखर । उ० २. भुजा बिटप सिर सूंग समाना । (मा० ६।१६।३) सूंगनि-सींगे, चोटियाँ । सूंगन्ह-दे० 'सूंगनि' ।
 सूंगवेरपुर-दे० 'शृंगवेरपुर' । उ० सूंगवेरपुर पहुँचे जाई । (मा० २।८७।१)
 सूंगार-(सं० शृंगार)—बनाव, शोभा ।
 सूंगी-(सं० शृंगी)—१. एक बाजा, २. एक ऋषि । उ० २. सूंगी रिबिहि बसिष्ठ बोलावा । (मा० १।१८।३)

सृजह-(सं० सृजन)-बनाता है, उत्पन्न करता है। उ० तपबल तें जग सृजह बिधाता। (मा० १।१६३।१) सृजत-बनाता है, रचता है। उ० सुभग सेज कत सृजत बिधाता। (मा० २।११६।४) सृजति-रचती है। सृजि-रचकर। उ० सृजि निज जस सुर तरु तुलसी कह अभिमत फरनि फरत को। (गी० ६।१२) सृजे-रचे, बनाये। सृजेउ-रचा, उत्पन्न किया। सृज्यो-रचा। उ० घोर हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं विधि बाँध। (गी० ७।३१)

सृष्टि-(सं०)-संसार, जगत। उ० मंत्र जापक जाप्य सृष्टि छव्या। (वि० ६३)

सैंत-(सं० संहति)-बिना मूल्य का, मुफ्त। सैंतिहुँ-मुफ्त भी। उ० कूर कुसाहिब सैंतिहुँ खारे। (क० ७।१२)

सैंदुर-दे० 'सिंदुर'।

से-(सं० सम)-समान, तरह, सा। उ० रघुबर के से चरित। (वि० १६)

सेइ-(सं० सेवा)-सेवा करके, सेकर। उ० जाके चरन विरंचि-सेइ सिधि। (वि० ८६) सेइअहि-सेवा करेंगे। सेइवे-सेवा करने। सेइय-सेइए। सेई-सेवा की है। उ० नाहिन साधु सभा जेहि सेई। (मा० २।२३।१४) सेए-१. सेवा की, २. सेवा करने से। उ० १. सेए सीताराम नहि। सेयो-सेवा की। (दो० ६६)

सेख-(सं० शेष)-सर्पराज।

सेखु-दे० 'सेख'। उ० निगम सेखु सुक संकर भारति। (गी० ७।१६)

सेज-(सं० शय्या)-सेज, पलंग। उ० जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। (मा० १।६६।३)

सेत-(सं० श्वेत)-सफ़ेद, धवल। उ० मन मेचक तनु सेत। (वि० १६०)

सेतु-(सं०)-१. पुल, २. मर्यादा। उ० १. सेतु भवसागर को हेतु सुख सार को। (वि० ६६)

सेतुबंध-(सं०)-१ एक तीर्थ जिसे राम ने बनाया था। २. सेतु का बनाना। उ० २. कृत सेतुबंध बारिधि-दमन। (क० ७।११५)

सेतु-दे० 'सेतु'।

सेन (१)-दे० 'श्येन'। उ० बिबिध चितवृत्ति खग-निकर सेनोलूक काक बक गुध्र आमिष-अहारी। (वि० ५६)

सेन-(सं० सेना)-फ़ौज़। उ० हिय हरषे सुरसेन निहारी। (मा० १।६५।२)

सेनप-(सं०)-सेनापति। उ० सेवक सेनप सचिव सब। (मा० २।२४२)

सेना-(सं०)-फ़ौज़। उ० जातुधान सेना सब मारी। (मा० १।११।२)

सेनापति-(सं०)-फ़ौज़ का मालिक। उ० जथा जोग सेनापति कीन्हे। (मा० ६।३६।३)

सेनानी-(सं०)-सेनापति।

सेमर-(सं० शालमलि)-एक वृक्ष या उसका फूल। इसके फल के सौंदर्य को देखकर तोता उस पर चोंच मारता है पर उसमें रुई देखकर निराश हो जाता है। उ० बभ्रत विनहि पास सेमर-सुमन-आस। (वि० १६७)

सेर-(सं० सेट)-एक तौल। १६ छुटाँक। उ० कहिय सुमेह कि सेर सम। (मा० २।२८८)

सेल (१)-(सं० शल)-भाला, बरछा, साँग। उ० फरसा बाँस सेल सम करहीं। (मा० २।१६१।३)

सेल (२)-(?)-साफ।

सेला (१)-दे० 'सेल (१)। उ० १. सनमुख राम सहउ सो सेला। (मा० ६।६४।१)

सेला (२)-दे० 'सेल (२)।

सेल्ही-दे० 'सेल (२)। उ० आँतनि की सेल्ही बाँधे। (क० ६।५०)

सेव-सेवा करते हैं, सेवा करती है। उ० अग्रम सो नारि जो सेव न तेही। (मा० ३।५।३) सेवइ-सेवा करती है, सेवा करता है। सेवउ-सेवा करूँ। सेवत-सेवा करते हैं। उ० सेवत सुरपुर वासी। (वि० २२) सेवतहुँ-सेवा करने पर भी। सेवहि-१ सेवा करते हैं, २. सेवन करते हैं, ३. खाते हैं। उ० ३. परूसन लगे सुवार विबुध जन सेवहि। (पा० १।५३) सेवहि-सेवा कर। उ० सेवहि तजे अपनपौ चेतै। (वि० १।२६) सेवहु-सेवा करो। उ० सेवहु सिव-चरनसरोज। (वि० १३) सेवि-१. सेवनीय, २. सेवित, ३. सेवा करके।

सेवक-(सं०)-नौकर, दास। उ० सेवक सकुच सोच उर अपने। (मा० २।२६।३) सेवकनि-सेवकों, सेवकों को, सेवकों ने। सेवकन्ह-दे० 'सेवकनि'। सेवकहि-सेवक को। सेवकहि-सेवक पर। उ० को साहिब सेवकहि नेवाजी। (मा० २।२६।३) सेवकि-सेविका, नौकरानी। उ० सेवकि जासु रमा घर की। (क० ७।२७)

सेवकाई-१. (सं० सेवक)-नौकरी, चाकरी, २. उपासना, सेवा। उ० २. करि पूजा सब विधि सेवकाई। (मा० १।२१७।४)

सेवकिनी-दासियाँ। उ० जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। (मा० ७।२४।३)

सेवकी-दासी। उ० हय गय सुसेवक सेवकी। (पा० १।४७)

सेवकु-दे० 'सेवक'।

सेवा-(सं०)-१. नौकरी, टहल, चाकरी, २. उपासना। उ० १. ऐसेहू साहब की सेवा सों होत चोर रे। (वि० ७।१)

२. कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा। (वि० २)

सेवार-(सं० शैवाल)-एक घास। उ० संबुक् भेक सेवार समाना। (मा० १।३८।२)

सेवाल-दे० 'सेवार'।

सेवित-दे० 'सेवित'। सेवित-(सं०)-सेवा किया गया। उ० सिद्ध सुर वृंद योगींद्र सेवित सदा। (वि० २६)

सेवी-(सं० सेविन्) १. दास, २. पुजारी, भक्त। उ० १. लुम गुरु विम धेनु सुर सेवी। (मा० १।२६।३)

सेव्य-उपासना या सेवा करने योग्य को। उ० ब्रह्मा-शंभु-फणीन्द्र सेव्यमनिशं। (मा० १।१।१।०)

सेव्य-(सं०)-सेवा करने योग्य, उपासना करने योग्य। उ० सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि। (मा० ७। ११६ क)

सेव्यमानं-सेवित, सेवा किये गये। उ० सिद्ध सुर मुनि मनुज सेव्यमानं। (वि० १०)

सेष—(सं० शेष) १. बाकी, शेष, २. सर्पराज, ३. थोड़ा, न्यून ।
 उ० १. सप्त सप्त तजि सेष को । (प्र० १) २. जिनके
 विमल विवेक सेस महेस न कहि सकत । (वै० ३४)
 सेषसयन—(सं० शेष + शयन)—विष्णु ।
 सेषा—दे० 'सेष' ।
 सेषु—दे० 'सेष' ।
 सेस—दे० 'सेष' ।
 सेसु—दे० 'सेष' । उ० २. सकल धरम धरनीधर सेसु । (मा०
 २३०६११)
 सै—(प्रा० संतो)—से । उ० करब कवन विधि रिपु सैं जूझा ।
 (मा० ६१८४)
 सैतति—(सं० संचय)—भर भर कर रख छोड़ती है । उ० लेत
 भरि भरि अंक सैतति । (गी० ११२५)
 सै—(सं० शत)—सौ । उ० संबत सौरह सै एकतीसा । (मा० १।
 ३४२)
 सैन (१)—(सं० संज्ञपन)—इशारा, संकेत । उ० बरज्यौ प्रिय
 बंधु नयन की सैन । (गी० १।८७) सैनहि—इशारे से । उ०
 सैनहि कह्यो चलहु सजि सैन । (गी० २।२१)
 सैन (२)—(सं० शयन)—सोना । उ० सैन किए देखा कपि
 तेही । (मा० २।४४)
 सैन्य—(सं०)—सेना, कटक ।
 सैना—दे० 'सेना' ।
 सैयाँ—(सं० स्वामी)—पति, मालिक, राजा । उ० बरसत
 सुमन सहित सुरसैयाँ । (कृ० १६)
 सैल—दे० 'शैल' । उ० समर सैल-संकास रिपु त्रासकारी ।
 (वि० २०)
 सैलकुमारी—(सं० शैलकुमारी)—पार्वती । उ० बोले मुनि सुनु
 सैलकुमारी । (मा० १।७८।१)
 सैलजहि—पार्वती को । उ० जाइ बिबाहहु सैलजहि । (मा०
 १।७६) सैलजा—(सं० शैलजा)—पार्वती ।
 सैलनदिनि—(सं० शैल + नदिनी)—पार्वती । उ० अनिमादि
 सारद सैलनदिनि । (गी० १।२)
 सैलराज—(सं० शैलराज) हिमालय पर्वत । उ० सैलराज
 बड़ आदर कीन्हा । (मा० १।६६।३)
 सैला—दे० 'सैल' । उ० भागों तुरत तजौ यह सैला । (मा०
 ४।१३)
 सैवल—(सं० शैवाल)—पानी की एक घास । उ० रोम राजि
 सैवल छुबि पावति । (गी० ७।१७)
 सैसव—(सं० शैशव)—शिशुता, लड़कपन, २ से १० वर्ष की
 उम्र । उ० कौमार सैसव अरु किसोर । (वि० १३६)
 सौ (१)—(प्रा० सुतो)—द्वारा, से । उ० सोनित सौं सानि
 सानि । (क० ६।२०)
 सौ (२)—(सं० सम)—समान । उ० समरथ कोउ न राम
 सौं । (दो० ४४८)
 सौंथे—(सं० सुगंध)—अच्छे, सोंधा महँकते हुए । उ० खात
 खूनसात सौंथे दूध की मलाई है । (क० ७।७४)
 सौंही (१)—(सं० सम्मुख)—सामने, आगे, प्रत्यक्ष ।
 सौंही (२)—सं० शोभा)—सुंदर लगते हैं ।
 सौ (१)—(सं० सः)—१. वह, वही, २. वेही । उ० १. सौ
 बल गयो किधौं भये अब गर्व गहीले । (वि० ३२)

सौ (२) (१)—इस कारण से । उ० सायक हे मृगुनायक सो
 धनु । (क० १।२२)
 सौ (३)—(सं० सम)—समान, तरह । उ० मनियत महामुनी
 सौ । (क० ७।७२)
 सोआइहौं—(सं० शयन)—सुलाऊँगा, सुलाऊँगी । उ० सब
 सुमुख सोआइहौं । (गी० १।१८)
 सोइ (१)—(सं० सः)—वही । उ० सोइ कछु कहहु मदन
 मद मोचन । (मा० १।८६।३)
 सोइ (२)—(सं० शशन)—सोकर । सोइबो—१. सोना, २.
 सोओगे । उ० १. सोइबो जो राम के सनेह की । (क०
 ७।८३) सोइये—सो जाहए । उ० सोइये लाल लाबिले
 रघुराई । (गी० १।१६) सोइहै—सोवेगा । सोइहौं—सोऊँगा ।
 सोई (१)—सो गई । सोउ—सो जाओ । सोए—१. सो गए,
 २. सोते हुए, ३. सोने में । उ० ३. बैठे-उठे जागत-
 बागत सोए सपने । (क० ७।७८) सोय—सोकर । सोयो—
 सोया, सोता रहा । उ० मोहमय कुहु-निसा बिसाल काल
 बिपुल सोयो । (वि० ७४) सोव—सोता । उ० सो किमि
 सोव सोच अधिकई । (मा० १।१७०।१) सोवइ—सोता
 है । सोवत—१. सोया हुआ, सोते, २. सोते समय । उ०
 २. अब सख सोवत सोउ नहि भीख मागि अब खाहि ।
 (मा० १।७६) २. सोवत सपनेहु सहे संवृति संताप रे ।
 (वि० ७३) सोवतहि—सोते ही में । उ० पहुँचै हउँ सोव-
 तहि निकेता । (१।१६६।४)
 सोई (२)—(सं० सः)—वही । उ० सोई खँवर तेइ सुवा ।
 (दो० २२६)
 सोउ—(२)—(सं० सः)—वह भी । उ० तुलसी साज राख्यो
 सोउ । (वि० २।१४)
 सोऊ—(२)—(सं० सः)—वह भी । उ० राख्यो सरन
 सोऊ । (वि० १०६)
 सोक—(सं० शोक)—रंज, गम, क्षोभ । उ० समनि सोक
 संताप पाप रुज । (वि० २२)
 सोकहत—(सं० शोकहत)—शोक का मारा हुआ । उ० सकल
 लोक अवलोकि सोकहत सरन गए भय डारी । (वि०
 १६६)
 सोका—दे० 'सोक' ।
 सोकु—दे० 'सोक' ।
 सोकू—दे० 'सोक' ।
 सोख—(सं० शोषण)—सोखने या सुखानेवाला । उ० अन-
 हित सोनित सोख सो । (दो० ४००)
 सोखइ—(सं० शोषण)—१. सोखता है, २. सुखाता है ।
 सोखई—सोखूँ, सोख लूँ । सोखा—सोख लिया । सोखि-
 सोखकर । उ० सोखि कै खेत कै बाँधि सेतु करि उतरिबो
 उदधि न बोहित चहिबो । (गी० २।१४) सोखे—सोख
 लिये । उ० पुरषनि सागर सजे खने अरु सोखे । (गी०
 २।१२) सोखेउ—सोखे, सोख लिए ।
 सोग—(सं० शोक)—दुःख, चिंता, शोक । उ० जागै भोगी
 भोग ही, बियोगी रोगी सोग बस । (क० ७।१०६)
 सोच—(सं० शोच)—१. चिंता, फ़िक्र, २. ध्यान, ध्याल,
 ३. सोचने का भाव । उ० १. सोच सहित परिवार विदेह
 महीपहि । (जा० १।११)

सोचइ-(सं० शोच)-सोचता है। सोचत-१. सोचते हैं, २. सोचते हुए, चिन्ता करते हुए। उ० सोचत बंधु समेत प्रभु। (दो० २२७) २. सोचत भरतहि रैनि बिहानी। (मा० २।२५।४) सोचति-१. सोचते हुए, २. सोचती है। सोचतु-सोचते हैं। उ० कुलगुरु सचिव साधु सोचतु बिधि को न बसाइ उजारी ? (गी० २।६६) सोचन-१. सोचने की क्रिया, सोचना, २. सोचने। उ० २. तनु धरि सोच लागु जनु सोचन। (मा० २।२५।४) सोचनि-१. 'सोच' का बहुवचन, सोचों को चिन्ताओं को, २. सोचने का भाव। उ० १. मोचनि-सोचनि बेद बखानी। (गी० ६।२०) सोचहि-सोचते हैं। सोचहि-१. सोचता है, २. ध्यान रखता है। उ० १. तथा २. जो सोचहि ससिकलहि सो सोचहि रौरहि। (पा० ६१) सोचही-सोचती हैं। उ० छिनु छिनु निरखि रामहि सोचही। (जा० ६०) सोचा-१. दे० 'सोच', २. सोच किया, चिन्ता की, ३. विचारा। सोचि-सोचकर। सोचिअ-१. सोचिए, समझिए, २. सोच करना चाहिए। उ० १. सब बिधि सोचिअ पर अंपकारी। (मा० २।१७।३।२) सोचनीय-सोचने योग्य, विचारने योग्य। उ० सोचनीय सब ही बिधि सोई। (मा० २।१७।३।२) सोचाई-(सं० शोच)-विचार कराया, शौर कराया। उ० सुदिनु सुनखतु सुवरी सोचाई। (मा० १।६१।२) सोचू-दे० 'सोच'। सोचू-दे० 'सोच'। उ० १. सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। (मा० २।४०।४) सोदर-(सं० सहोदर) सहोदर, एक माँ-बाप के लड़के। सोध-(सं० शोध)-१. खोज, तलाश, २. तलाश करना। उ० १. सीय सोध कपि भालु सब। (प्र० ३।६।३) सोधा-खोजा, छान डाला। उ० तात धरम मतु तुम सञ्जु सोधा। (मा० २।६२।१) सोधि-खोजकर, ढूँढकर, देखवाकर। उ० सुदिन सोधि सब साज सजाई। (मा० २।३।१।४) सोधिय-देखो। उ० आगे करि मधुकर मथुरा कहँ सोचिय सुदिन सयानी। (क० ४६) सोधेउँ-खोज डाला, खोजा। उ० सोधेउँ सकल विस्व मन माहीं। (मा० २।२।१।१) सोध्यो-शोध दिया, शुद्ध कर दिया। उ० अंजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक है। (ह० ४०) सोधक-(सं० शोधक)-शोध करनेवाला। उ० छोरी अनायास, साधु सोधक अपान को। (गी० १।८६) सोधाइ-(सं० शोध)-ठीक कराकर, विचार द्वारा निश्चित कराकर। उ० सुख पाइ बात चलाइ सुदिनु सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै। (पा० ६२) सोधाए-देखवाया, शोधवाया। उ० नामकरन रघु।रनि के नृप सुदिन सोधाए। (गी० १।६) सोधु-(सं० शोध)-१. पता, २. पता लगानेवाले। उ० १. अब लागि नहिं सिय सोधु लह्यौ है। (गी० ४।२) सोधै (१)-(सं० सुगंध)-अनेक प्रकार की सुगंधित वस्तुएँ। सोधै (२)-(सं० शोध)-रास्ता। सोन (१)-(सं० शीणभद्र)-सोन नदी। सोन (२)-(सं० शोण)-लाल, रक्तवर्ण। उ० सुभग सोन सरसीरुह लोचन। (मा० १।२।१।३) सोन (३)-(सं० स्वर्ण)-सोना, सुवर्ण, कंचन। उ० सोन सुगंध सुधा ससि सारु। (मा० २।२८।१)

सोना-दे० 'सोन (२)। उ० मनहुँ साँक सरसीरुह सोना। (मा० १।३२।१) सोनित-(सं० शोणित)-खून, रुधिर। उ० बसन सकल सोनित-समल। (प्र० ३।२।२) सोने-(सं० स्वर्ण) सोना, स्वर्ण। उ० इन्ह तें लही दुति मरकत सोने। (मा० २।१।६।४) सोनो-(सं० स्वर्ण)-सोना, सुवर्ण। उ० गोरे को बरन देखे सोनो न सखोनो लागे। (क० २।१।६) सोपान-(सं०)-सीढ़ी, नसेनी। उ० विष्णु सिखलोक-सोपान सम सर्वदा बढ़ति तुलसीदास बिसद बानी। (वि० ४६) सोपाना-दे० 'सोपान'। उ० एहिं महँ रुचिर सस सोपाना। (मा० ७।१२।६।२) सोपि-वह ही, वह भी। उ० सो दासी रघुबीर कै समुकेँ मिथ्या सोपि। (मा० ७।७।१) सोभ-(सं० शोभा)-शोभायमान। सोभत-शोभित होता है। उ० सोभत लखि बिधु बढ़त जिमि। (मा० २।७) सोभति-शोभायमान होती है। सोभिहँ-शोभायमान होंगे। उ० अनुज सहित सोभिहँ कपिन महँ। (गी० २।६०) सोभा-(सं० शोभा)-सौंदर्य, शोभा। उ० पुर सोभा अवलोकि सुहाई। (मा० १।६।४) सोभित-(सं० शोभित)-शोभित, सुशोभित। उ० पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवल धार। (वि० १७) सोभ-(सं०)-१. चंद्रमा, २. अमृत, ३. एक प्रकार का यज्ञ, ४. एक लता जिसके रस का पहले पान किया जाता था। उ० १. राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम। (मा० ३।४२ क) ३. कौन धौँ सोमजाजी अजामिल अधम। (वि० १०६) सोमदिन-सोमवार, चंद्रवार। उ० राम अनुग्रह सोमदिन, प्रसुदित प्रजा सुराज। (प्र० ७।१।४) सोय-(सं० सः) वह, वही। सोर-(फ्रा० शोर)-शोर, हल्ला। उ० आयौ आयौ आयौ सोई बानर बहोरि भयो सोर चहुँ ओर। (क० ६।६) सोरठ-(सं० सौराष्ट्र)-एक राग। उ० सारंग गुंड मलार सोरठ सुहब सुधरनि बाजहीं। (गी० ७।१।६) सोरठा-(सं० सौराष्ट्र)-४८ मात्राओं का एक छंद जो अपने स्वरूप में दोहे का उलटा होता है। उ० छंद सोरठा सुंदर दोहा। (मा० १।३।७।३) सोरह-(सं० षोडश)-सोलह। उ० सोरह भाँति पूजि सनमाने। (मा० २।६।२) सोरा-दे० 'सोर'। उ० रिपुदल बधिर भयउ सुनि सोरा। (मा० ६।६।१) सोरू-दे० 'सोर'। सोरू-दे० 'सोर'। उ० गे रघुनाथ भयउ अति सोरू। (मा० २।८।१) सोवनिहारा-सोनेवाला। उ० मोह निसाँ सञ्जु सोवनिहारा। (मा० २।६।१) सोष-(सं० शोषण)-सोखनेवाला। उ० अनहित सोनित सोष सो, सोहित सोषनहार। (दो० ४००)

सोषक-(सं०शोषक)-सोखनेवाला । उ०सोषक भातु कृसानु-
महि पवन एक घन दानि । (दो० ३४६)
सोषनहाद-सोखनेवाला । उ० दे० 'सोष' ।
शोषहि-(सं० शोषण)-सोखते हैं । सोषिहैं-सोखेंगे । उ०
समुद्र सातो सोषिहैं । (क० ६१२)
सोसि-(सं० सः+असि)-सो हो । उ० जोसि सोसि तव
चरन नमामी । (मा० ११६११३)
सोह-(सं० शोभा)-शोभा पाये, शोभायमान हो । उ० कोउ
न हमारें कटक अस तोसन लरत जो सोह । (मा० ६।
२३ ख) सोहइ-शोभा पाता है । उ० कुँवरि लागि पितु
काँध ठाढ़ि भइ सोहइ । (पा० १३) सोहई-शोभित हो,
विराजमान हो । उ० सुरधेनु ससि सुरमनि सहित मानहुँ
कल्पतरुसोहई । (जा० १७१) सोहत-शोभित होते हैं,
शोभा दे रहे हैं । उ० सोहत स्याम जलद मृदु घोरत
धातु रंगमगे श्रंगनि । (गी० २।५०) सोहहिं-सोहते हैं,
शोभा देते हैं । सोहहीं-शोभित हैं, शोभा दे रही हैं । उ०
जनु दमक दामिनि, रूप रति मृदु निदरि सुन्दरि सोहहीं ।
(जा० ८१) सोहा-सुशोभित हैं, सोहते हैं । उ० सोह
बहुरंग कमलकुल सोहा । (मा० २।३७३) सोहिहैं-शोभित
होंगे । उ० को सोहिहैं और को लायक रघुनायकहि
बिहाय कै । (गी० १।६८) सोहीं-सुशोभित हो रही हैं,
शोभित हैं । उ० भरी प्रमोद मातु सब सोहीं । (मा० १।
३५०।३)
सोहर-(सं० शोभन ?)-१. शोभा दिखाने का समय, २.
एक राग जो बच्चा पैदा होने पर गाया जाता है । उ० १.
लखि लौकिक गति संशु जानि बड़ सोहर । (पा० १२४)
सोहाई-(सं०शोभा)-सुंदर लगता है । सोहाए-अच्छे लगे ।
सोहाति-अच्छी लगती है । सोहाती-दे० 'सोहाति' । सोहाते-
दे० 'सोहातो' । उ० दे० 'सोहातो' । सोहातो-अच्छा लगते,
सुहाते हैं । उ० राम सोहाते तोहि जौ तू सर्बहि सोहातो ।
(वि० १५१) सोहान-रुचा, अच्छा लगा । उ० संशु दीन्ह
उपदेस हित नहि नारदहि सोहान । (मा० १।१२७)
सोहाना-अच्छा लगा । उ० माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना ।
(मा० २।४०।४) सोहानि-अच्छी लगी । उ० सिख सीतलि
हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि । (मा० २।७८)
सोहानी-अच्छी लगी । उ० एक बात नहि मोहि सोहानी ।
(मा० १।११४।४) सोहावा-अच्छा लगा । सोहाहीं-१.
अच्छे लगते हैं, २. शोभा देते हैं । उ० १. रामहि ते
सपनेहुँ न सोहाहीं । (मा० १।१०४।३)
सोहाग-(सं० सौभाग्य)-१. सिद्ध, २. सधवा रहने की
अवस्था । उ० १. अनुराग भाग सोहाग सील सरूप बहु
भूषन भरीं । (जा० १८)
सोहागिल-(सं०सौभाग्य)-सौभाग्यवती, सधवा । उ०स्वामि
सोहागिल, भाग बड़, पुत्र काजु कल्याण । (प्र० ५।४।५)
सोहावन-(सं० शोभा)-सुन्दर, शोभायमान । उ० नगर
सोहावन लागत बरनि न जातै हो । (रा० २) सोहावति-
अच्छी लगनेवाली । उ० जँवत बदेउ अनंद सोहावनि
सोनिसि । (जा० १७६)
सोहिलो-(१)-मंगल गीत, बधावा । उ०सहेली सुनु सोहिलो
रे ! (गी० १।२)

सोहैं-(सं० सम्मुख)-सामने । उ० सरजु तीर निरखहु
सखि सोहैं । (गी० ७।४)
सौ-(सं० सौगंध)-शपथ, सौगंद । उ० बलिराम रावरी
सौ रही रावरी चहत । (वि० २५६)
सौघाई-(सं० स्वर्घ)-सस्ती । उ०एक कहहि ऐसिउं सौघाई ।
(मा० ६।८८।२)
सौघे-(सं० स्वर्घ)-सस्ते । उ० महँगे मनि कञ्चन किये सौघे
जग जल नाज । (दो० १४६)
सौज-(सं० सज्जा)-सामान । उ० तुलसी समिध सौज
लंक-जज्ञकुंड लखि । (क० ५।७)
सौतुल-(सं०सम्मुख)-सामने, सम्मुख, साक्षात् । उ० देखौं
सपन कि सौतुल ससि सेखर, सहि । (पा० ७७)
सौदर्य-(सं०)-सुन्दरता, सुघराई । उ० सकल-सौभाग्य-
सौदर्य-सुषमारूप । (वि० ४४)
सौधी-(सं० सुगंध)-अच्छी, भली, रुचिकर । उ० जौ चित-
वनि सौधी लगै चितइए सबेरे । (वि० २७३)
सौपि-(सं० समर्पण)-सौंपकर । उ० पतिन्ह सौपि बिनती
अति कीन्हि । (मा० १।३३६।४) सौपिय-सौंपिए, दे दीजिए ।
सौपिये-समर्पण कीजिए, सुपुर्द कीजिए । सौपी-समर्पण
की, दी । सौपु-समर्पण करो । उ० अजहुँ यहि भाँति
सौपु सीता । (क० ६।१७) सौपे-दिये, दे दिये, समर्पण
किये । सौपेसि-सौपा, दिया । उ० सौपेसि मोहि तुम्हहिं
गहि पानी । (मा० ६।६।१।८) सौपेहु-सौपा, दिया । सौप्यो-
सुपुर्द किया, समर्पण कर दिया ।
सौह (१)-(सं० सौगंध)-शपथ, कसम । उ० हौं किये कहौं
सौह साँची सीय पीय की । (वि० २६३)
सौह (२)-(सं०सम्मुख)-सामने । उ०राम की सौह भरोसा
है राम को । (क० ७।३६)
सौहैं-दे० 'सौह (१)' । उ० तुलसी न तुम्ह सो
राम प्रीतसु कहतु हौं सौहैं किपुँ । (मा० २।२०।१।
छं० १)
सौगंद-(सं० सौगंध)-कसम, शपथ ।
सौच-(सं० शौच)-शुद्धता, शौच । उ० सकल सौच करि
जाय नहाये । (मा० १।२२७।१)
सौज-(सं० सज्जा)-धर का सामान, सामग्री । उ० एक
काढ़ै सौज एक धौज करै कहा ह्वै है । (क० ६।६)
सौजन्य-(सं०)-सज्जनता, शराफत ।
सौ-(सं० शत)-एक शत, १०० । उ० राम के रोप न राखि
सकैं तुलसी बिधि, श्रीपति, संकर सौ रे । (क० ६।१२)
सौति-(सं० सपत्नी)-दूसरी माता, विमाता । उ० मैं न
लखी सौति सखी ! अगिनी ज्योँ सेई है । (क० २।३)
सौतुल-दे० 'सौतुल' ।
सौदा-(अर०)-क्रय-विक्रय की वस्तु । उ० सुहद-समाज
दगाबाजि ही को सौदा सूत । (वि० २६४) सु०सौदा सूत-
खेन-देन का व्यवहार । उ० दे० 'सौदा' ।
सौदामिनी-(सं०)-बिजली ।
सौध-(सं०)-भवन, प्रासाद । उ० अथव सौध सत सरिस
पहारु । (मा० २।६६।५)
सौभग-सुन्दर, अच्छा । उ० सान्द्रानंदपयोद सौभगतनुं
पीतांबर सुंदरं । (मा० ३।१। श्लो० १)

सौभागिनी-सौभाग्यशालिनी स्त्रियाँ । उ० सौभागिनीं बिभूषण
हीना । (मा० ७।६६३)
सौभाग्य-(सं०)-१. अच्छा भाग्य, २. सोहाग, अहिवात,
३. सुख, ४. कल्याण, कुशल । उ० १. सकल सौभाग्य
सुख खानि जिय जानि सठ । (वि० ४६)
सौमित्र-(सं०)-सुमित्रा के पुत्र, लक्ष्मण । उ० भरत अनुज
सौमित्र समेता । (मा० ७।१६।१)
सौमित्रि-सौमित्र की, लक्ष्मण की । उ० सिय सौमित्रि राम
छुबि देखाहै । (मा० २।१३४।४)
सौर-(सं०)-सूर्य सम्बन्धी ।
सौरज-(सं० शौर्य)-वीरता, शूरता । उ० सौरज धीरज
तेहि रथ चाका । (मा० ६।८०।३)
सौरभ-(सं०)-१. सुगंध, २. केशर, ३. आम का पेड़ । उ०
१. सुभग सौरभ धूपदीप वर मालिका । (वि० ४८) ३.
सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नील मनि कोरि । (मा०
१।२८८)
सौहार्द-(सं० सस्मुख)-आगे, सामने । उ० तोहि लाज
गाल बजावत सौहार्द । (क० ६।१३)
स्कंध-(सं०)-१. कंधा, २. पेड़ का धड़, ३. न्यूह, ४.
युद्ध ।
स्तंभ-(सं०)-१. खंभा, थूनी, २. रुकाव, अटकाव ।
स्तंभन-(सं०)-रुकाव, अटकाव ।
स्तन-(सं०)-पयोधर, चूची ।
स्तब्ध-(सं०)-१. चुप, स्तब्ध, हक्का-बक्का, २. रुका,
कुंठित, ३. स्थिर, दृढ़ ।
स्तवं-(सं०)-स्तुति को, प्रशंसा को । उ० पठंति स्तवं ये
इदं । (मा० ३।४। छं० १२)
स्तुति-(सं०)-प्रार्थना, स्तव ।
स्तुत्य-(सं०)-प्रशंसनीय, बड़ाई के योग्य ।
स्तोत्र-(सं०)-स्तव, प्रार्थना, स्तुति ।
स्त्री-(सं०)-१. नारी, औरत, २. पत्नी ।
स्थल-(सं०)-भूमि, जगह ।
स्थाणु-(सं०)-१. ठूठा वृक्ष, २. शिव, महादेव ।
स्थान-(सं०)-जगह, ठौर, ठिकाना ।
स्थापन-(सं०)-बैठाना, जमाना, थापना ।
स्थापित-(सं०)-जिसकी स्थापना की जा चुकी हो ।
स्थावर-(सं०)-अचल, जड़ ।
स्थित-(सं०)-ठहरा, ठिका, बैठा ।
स्थिति-(सं०)-१. ठहराव, होना, स्थित होना, २. स्थित
रखना, पालन । उ० २. उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं
क्लेशहारिणीम् । (मा० १।१। श्लो० ४)
स्थिर-(सं०)-अचल, अटल ।
स्थूल-(सं०)-मोटा ।
स्नेह-(सं०)-१. प्रेम, प्यार, २. तेल, घी ।
स्नेहता-(सं०)-प्रेम करने का भाव स्नेह ।
स्पर्श-(सं०)-छुना ।
स्पष्ट-(सं०)-खुला, साफ़ ।
स्पृहा-(सं०)-इच्छा, वांछा, अभिलाषा । उ० नान्या स्पृहा
रघुपते हृदयेऽस्मदीये । (मा० २।१। श्लो० २)
स्फटिक-(सं०)-बिहोर पत्थर ।

स्फुरत्-(सं०स्फुरण)-१. काँपता है, २. सुशोभित है । उ० २.
स्फुरन्मौलि कल्लोखिनी चारु गंगा । (मा० ७।१०८।३)
स्मर-(सं०)-१. कामदेव, २. स्मरण, याद ।
स्मरण-(सं०)-याद, सुधि, स्मृति ।
स्मरामहे-(सं०)-हम याद करते हैं ।
स्मृति-(सं०)-१. याद, स्मरण, २. धर्मशास्त्र ।
स्यंदन-(सं०)-रथ, वाहन । उ० स्यंदन, गयंद, बाजिराजि
भले भले भट । (क० ७।१६३)
स्य-(सं०)-का, की । उ० मुखांबुज श्री रघुनंदनस्य । (मा०
२।१। श्लो० २)
स्यानी-(सं० सज्जान)-चतुर, होशियार । उ० स्यानी सखी
हठि हौं बरजी । (क० ७।१३३)
स्याम-(सं० श्याम)-१. कृष्ण, २. काला, ३. काला
बादल । उ० १. क्यों न सुजोधन बोध कै आपु स्याम
सुजान ? (दो० ४८३) २. स्याम घन गुन बारि छुबि मनि
मुरलि तान तरङ्ग । (क० ५४)
स्यामता-(सं० श्यामता)-कालापन, नीलिमा । उ० तव
मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास । (मा० ६।
१२ क)
स्यामल-(सं० श्यामल)-काले रङ्ग का । उ० स्यामल गौर
किसोर मनोहरता निधि । (जा० ३५)
स्यामा-दे० 'श्यामा' । उ० २. स्यामा बाम सुतर पर
देखी । (मा० १।३०३।४)
स्यार-(सं० शृगाल)-गीदड़, सियार ।
स्यो-(?)-सहित । उ० तेहि उर क्यों समात विराट वपु
स्यो महि सरित सिंधु गिरि भारे । (क० ५७)
स्रक्-(सं० स्रक्)-पुष्पमाल, आला । उ० स्रक् चंदन बनि-
तादिक भोगा । (मा० २।२१५।४)
स्रग-दे० 'स्रक्' । उ० स्रग सुगंध भूषित छुबि छाए । (मा०
१।३५५।१।१)
स्रजत-(सं० स्रजन)-१. बनाता है, २. बनाता हुआ, ३.
बनाते ही ।
स्रद्धा-दे० 'श्रद्धा' ।
स्रम-(सं० श्रम)-१. परिश्रम, २. थकावट, ३. तपस्या, ४.
पसीना । उ० १. करम धर स्रम-फूल रघुवर विनु । (वि०
२६४)
स्रमकन-(सं० श्रमकण)-पसीने की बूँद । उ० अति मुचत
स्रमकन मुखनि । (गी० ७।१८)
स्रमविंदु-(सं० श्रमविंदु)-पसीने की बूँद । उ० स्रमविंदु
मुख राजीव लोचन । (मा० ६।७। छं० १)
स्रमित-(सं० श्रमित)-थका हुआ । उ० स्रमित भूप निद्रा
अति आई । (मा० १।१७०।१)
स्रमु-दे० 'स्रम' । उ० १. तौ अभिसत फल पावहिं करि
स्रमु साधक । (पा० ३५)
स्रव-(सं० स्रवण)-बहता हो, बहे । उ० जनु स्रव सैल गेह
की धारा । (मा० ३।१८।१) स्रवइ-बहता है, गिरता है ।
श्रवत-गिरता है । उ० रजनिचर-धरनि धर गर्भ-अभंक
स्रवत । (क० ६।४४) स्रवहिं-१. टपकते हैं, गिरते हैं, २.
बहती हैं । उ० १. गर्भ स्रवहिं अवनप रवनि । (मा० १।
२७६) २. स्रवहिं सकल सरिताऽमृत धारा । (मा० १।

१६१२) खवै-१. बरसायें, बरसाने लगें, २. गिरे । उ० बिधु बिष खवै खवै हिमु आगी । (मा० २।१६६।१)
 खवन-(सं० श्रवण)-१. कान, २. सुनना । उ० १. खवन कुंडल मनहुँ गुरु कवि करत बाद बिसेषु । (गी० ७।६)
 खवनन्हि-कानों । उ० मुख नासा श्रवनन्हि की बाटा । (मा० ७।६७।२)
 खष्टा-(सं०)-१. रचनेवाला, २. ब्रह्मा । उ० १. मंत्र-जापक जाप्य खष्टा । (वि० ५३)
 खाद्ध-दे० 'आद्ध' । उ० खाद्ध कियो गीध को । (क० ७।१५)
 खाप-(सं० शाप)-शाप, बददुआ ।
 खी-(सं० श्री)-१. लक्ष्मी, २. धन, ३. ऐश्वर्य ।
 ख्रुति-(सं० श्रुति)-१. कान, २. वेद, ३. श्रवण से आगे तीन नक्षत्र । उ० २. ख्रुति संमत हरि-भक्ति पथ । (दो० ५५५) ३. ख्रुति-गुन कर-गुन पु-जुग-मृग हय । (दो० ४५६)
 खुवा-(सं०)-हवन आदि में आहुति देने के लिए बनी लकड़ी की कलछी । उ० चाप खुवा सर आहुति जानू । (मा० १।२८३।१)
 खेनि-(सं० श्रेणी)-पंक्ति, कतार । उ० नील कमल सर खेनि मयन जनु डारइ । (जा० ६२)
 खेनी-दे० 'खेनि' । उ० जनु तहँ बरिस कमल सित खेनी । (मा० १।२३२।१)
 खोत-(सं०)-सोता, धारा, प्रवाह । उ० जनु सहस शीशा-बजी खोत सुरस्वामिनी । (वि० १८)
 खोता-(सं० श्रोत)-सुननेवाला, कथाप्रेमी ।
 खः-(सं०)-१. आकाश, २. स्वर्ग । उ० १. खः संभव शंकर । (मा० ३।१।१खो० १)
 ख- (सं०)-अपना, निज का । उ० जस कछु कहहि स्वमति अनुमाना । (मा० १।१२१।२)
 खई-(सं० सः)-सोही, वही ।
 खकं-(सं०)-स्वकीय, अपनी । उ० प्रयाति ते गति खकं । (मा० ३।४।८)
 खच्छंद-(सं०)-स्वतंत्र, स्वधीन । उ० सुद्ध सर्वज्ञ खच्छंद-चारी । (वि० ५६)
 खच्छ- (सं०)-निर्मल, साफ़ ।
 खच्छता-(सं०)-सफ़ाई, निर्मलता । उ० सोइ खच्छता करइ मलहानी । (मा० १।३६।३)
 खजन-(सं०)-१. बंधु, संबंधी, २. मित्र ।
 खतंत्र-(सं०)-स्वाधीन, स्वच्छंद । उ० परम स्वतंत्र न सिर पर कोई । (मा० १।१३०।१)
 खतः-(सं०)-अपने से ।
 खपच-(सं० शपच)-चांडाल, डोम । उ० खपच सबर खस जमन जइ । (मा० २।१६४)
 खपर-(सं० स्व + पर)-अपना-पराया, मेरा-तेरा । उ० खपर मति परमति तब बिरति चक्रपानी । (वि० ५७)
 खपन-(सं०)-सपना, स्वप्न ।
 खभाव-(सं०)-प्रकृति, आदत । उ० रामनाम सो खभाव अनरागिहै । (वि० ७०)

खयं-(सं०)-आप, अपने आप । उ० खयं सिद्ध सब काज नाथ मोहि आदर दियउ । (मा० ६।१७ ख)
 खयंवर-दे० 'स्वयंवर' । उ० सीयं स्वयंवर कथा सुहाई । (मा० १।४१।१)
 खयंभू-(सं०)-अपने से होनेवाला, ब्रह्मा ।
 खयंवर-(सं०)-कन्या को अपने आप वर चुनने के लिए रचा गया उत्सव विशेष । उ० सोकि स्वयंवर आनहि बालक बिनु बल । (जा० ८६)
 खर-(सं०)-१. ध्वनि, शब्द, रव, २. अकार आदि वे वर्ण जो व्यंजनों से भिन्न हैं ।
 खरग-दे० 'स्वर्ग' ।
 खरूप-(सं०)-१. रूप, आकार, २. सुंदरता, ३. अपना रूप ।
 खरूपहि-अपने रूप को, आत्म को । उ० कर्म कि होहि खरूपहि चीन्हें । (मा० ७।११२।२)
 खर्ग-(सं०)-देवलोक, वह लोक जहाँ मोक्ष प्राप्त करने पर आत्माएँ जाती हैं । उ० खर्ग सोपान विज्ञान-ज्ञानप्रदे । (वि० १८) खर्गउ-खर्ग भी । उ० खर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई । (मा० ७।४४।१)
 खर्या-(सं०)-सोना, सुवर्ण ।
 खर्याकार-(सं०)-सोनार ।
 खर्न-दे० 'स्वर्ण' । उ० खर्न सैल-संकास कोटि रवि-तरुन-तेज घन । (ह० २)
 खल्प-(सं०)-१. थोड़ा, ज़रा, तनिक, २. छोटा । उ० १. बहुरज स्वल्प सत्व कछु तामस । (मा० ७।१०४।२) २. डरपावै गहि स्वल्प सपेला । (मा० ६।५१।४) स्वल्पउ-थोड़ा भी । उ० एहि स्वल्पउ नहि ब्यापिहि सोई । (मा० ७।१०६।४)
 खबस-दे० 'स्ववश' । उ० १. राजा रामु स्वबस भगवान् । (मा० २।२५४।१)
 खवश-(सं०)-१. स्वतंत्र, स्वच्छंद, २. अपने वश में ।
 खस्ति-(सं०)-कल्याण हो, मंगल हो ।
 ख्वांग-(?)-१. अनुकरण, बनावटी वेश, नकल, २. मँडौती, ३. तमाशा । उ० १. ख्वांग सुधो साधु को, कुचालि कलि ते अधिक । (वि० २५२)
 ख्वांतः-अपना अंतःकरण । उ० ख्वांतः सुखाय तुलसी रघु-नाथ गाथा । (मा० १।१खो० ७)
 ख्वांति-दे० 'स्वाति' । उ० ख्वांति सनेह सलिल सुख चाहत । (वि० १६१)
 ख्वागत-(सं०)-१. सत्कार, २. कुशल-खेम । उ० २. ख्वागत पूँछि निकट बैठारे । (मा० ३।४१।६)
 ख्वाति-(सं०)-एक नक्षत्र । उ० ख्वाति सारदा कहहि सुजाना । (मा० १।११।४)
 ख्वाती-दे० 'स्वाति' ।
 ख्वाद-(सं०)-जायका, सवाद । उ० ख्वाद तोष सम सुगति सुधा के । (मा० १।२०।४)
 ख्वादित-ख्वाद पाए हुए । उ० बसे जो ससि-उछंग सुधा-ख्वादित कुरंग । (वि० १६७)
 ख्वाडु (१)-(सं० ख्वाद)-जायका, सवाद ।
 ख्वाडु (२)-(सं०)-मधुर, मीठा ।

स्वाधीन-(सं०)-स्वतंत्र, मुक्त । उ० पराधीन देव ! दीहौं, स्वाधीन गुसाईं । (वि० १४६)
 स्वान-(सं० श्वान)-कुत्ता । उ० स्वान कहे तें कियौ पुर बाहिर, जती गयंद चदाई । (वि० १६५)
 स्वाना-दे० 'स्वान' । उ० रोवाहिं खर सकाल बहु स्वाना । (मा० ६।१०२।४)
 स्वामि-दे० 'स्वामी' । उ० १. भलो निबाहेउ मुनि समुक्ति स्वामि धर्म सब भाँति । (दो० २०४)
 स्वामिनि-दे० 'स्वामिनी' । उ० २. जब तें कुमत मुना मैं स्वामिनि । (मा० २।२।१३)
 स्वामिनी-(सं०)-१. मालकिन, २. हे मालकिन । उ० १. समस्त लोक स्वामिनी, हिम शैलबालिका । (वि० १६)
 स्वामिहि-स्वामी को, मालिक को । स्वामी-(सं०स्वामिन्)- १. मालिक, २. प्रभु, ईश्वर, ३. पति, भर्तार । उ० १. स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँई दोहाई । (वि० १७१)
 स्वार्थभुव-(सं०)-पहले मनु जो ब्रह्मा से उत्पन्न कहे गए हैं ।
 स्वार्थभू-दे० 'स्वार्थभुव' । उ० स्वार्थभू मनु अरु सतरूपा । (मा० १।१४२।१)
 स्वारथ-दे० 'स्वार्थ' । उ० स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ।

(मा० ४।१२) स्वारथहि-स्वार्थ ही । उ० स्वारथहि प्रिय स्वारथ सो काते, कौन बेद बखानई । (वि० १३५)
 स्वारथी-स्वार्थी, मतलबी । उ० अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी । (वि० ३४)
 स्वारथु-दे० 'स्वारथ' ।
 स्वार्थ-(सं०)-अपना भला, अपना मतलब ।
 स्वास-(सं० श्वास)-साँस । उ० छाड़इ स्वास कारि जनु साँपनि । (मा० २।१३।४)
 स्वाहा-(सं०)-एक शब्द जिसका प्रयोग देवताओं को हविष्य देने के समय किया जाता है । उ० स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनै हनुमान हैं । (क० ५।७)
 स्वीकार-(सं०)-अंगीकार, मंज़ूर ।
 स्वेच्छा-(सं०)-१. अपनी अभिलाषा, २. स्वाधीनता ।
 स्वैद-(सं०)-पसीना । उ० सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वैद कन जाल । (मा० २।११।५)
 स्वैदज-(सं०)-पसीने से उत्पन्न होनेवाले जूँ आदि जीव ।
 स्वै-(सं० सः)-वह, वही । उ० सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ । (क० २।५)
 स्वैर-(सं०)-स्वेच्छानुसार बर्तनेवाला, दुराचारी ।
 स्वैरी-(सं० स्वैरिन्)-स्वेच्छाचारिणी, व्याभिचारिणी ।
 स्वैहँ-(सं० शयन)-सोवेंगे । उ० बारि बयारि विषम हिम आतप सहि बिनु बसन भूमितल स्वैहँ । (गी० ६।१८)

ह

हँकरावा-(सं० हक्कार)-झुलवाया, झुलाया । उ० मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा । (मा० १।१८२।१)
 हँकार-(सं० हक्कार)-आवाज़ लगाकर झुलाने की क्रिया या भाव, हाँक, पुकार ।
 हँकारही-झुला रहे हैं । उ० आराम रम्य पिकादि खग रच जनु पथिक हँकारही । (मा० ७।२६। छं० १) हँकारा- १. झुलावा, २. झुलाया । उ० १. गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा । (मा० १।१६३।४) हँकारि-झुलाकर । उ० जाचक लिए हँकारि दीन्हि निझावरि कोटि बिधि । (मा० १।२६५)
 हँकारी-१. झुलाकर, २. झुलाई, झुलाया, ३. झुलाई हुई । उ० २. सुचि सेवक सब लिए हँकारी । (मा० १।२४०।४) हँकारे-झुलाए ।
 हँता-(सं० हंतृ)-मारनेवाला, बधिक, नाशक । उ० जयति दुसकठ-घटकरन-बारिदनाद-कदन-कारन, कालनेमि-हंता । (वि० २५)
 हँस-(सं०)-१. बत्तख के आकार का एक जल-पक्षी । मराल । यह नीर-नीर विवेक तथा मोती चुगने के लिए प्रसिद्ध है, २. आत्मा, ३. परमात्मा, ४. सूर्य, ५. सफेद, ६. श्रेष्ठ । उ० १. संत हँस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार । (मा० १।६) ४. हँस बंसु दसरथु जनक राम लखन से भाइ । (मा० २।१६१) हँसहिं-हँस को । उ० उ० हँसहिं

बक दादुर चातक ही । (मा० १।६।१) हँसनि-हँस पक्षी की मादा । उ० जसु तुम्हार मानस बिमल हँसनि जीहा जासु । (मा० २।१२८)
 हँसत-(सं० हसन)-१. हँसते हैं, २. मज़ाक उड़ाते हैं । उ० २. आप महापातकी हँसत हरि हरहू को । (क० ७।६६)
 हँसनि-हँसना, हँसने की क्रिया, या भाव । उ० अरुन अधर द्विज पाँति अनूपम ललित हँसनि जनु मन आकरपति । (गी० ७।१७) हँसब-हँसना । उ० हँसब ठठाइ फुलाउब गाला । (मा० २।३५।३) हँसहिं-१. हँसते हैं, २. हँसेंगे । उ० १. हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही । (मा० १। ६।१) हँसहिं-हँसता है । हँसा-मुस्कराया, प्रसन्न हुआ, हँसने लगा । उ० कहि अस बचन हँसा दससीसा । (मा० ६।२४।५) हँसि-हँसकर, प्रसन्न होकर । उ० गाधि सूनु कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरह सुक । (मा० १। २७।५) हँसिबे-हँसने । उ० हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी । (मा० १।६।२) हँसिहहिं-हँसेंगे, मुस्कराएँगे । उ० हँसि-हहिं कूर कुटिल कुविचारी । (मा० १।८।५) हँसिहहु-हँसोगे । उ० हँसिहहु मुनि हमारि जइताई । (मा० १। ७।८) हँसिहै-हँसेगा, हँसी उड़ायेगा । उ० जग हँसिहै मेरे सअहे, कत एहि डर डरिए ? (वि० २७।१) हँसे-हँसने लगे, मुस्कराए । उ० ते सब हँसे मष्ट करि रहहू । (मा०

१३७५) हँसेउ-हँसे, हँसने लगे। हँसेहु-१. हँसे, हँसी की, २. हसना। उ० १. या २. हँसेहु हमहि सो जेहु फल बहुरि हँसेहु सुनि कोउ। (मा० १। १३५) हँसेहौ-हँसी कराऊंगा। उ० परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस हँ न हँसेहौ। (वि० १०५) हँस्यो-१. हँसा, २. मेरी हँसी उड़ाई गई। उ० २. परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन निज बस हँ न हँसेहौ। (वि० १०५) हंसा-दे० 'हंस'। उ० १. जो भुसुंडि मन मानस हंसा। (मा० १।१४६।३) हंसी-हंसिनी, हंस की स्त्री। उ० खीर नीर विवरन गति हंसी। (मा० २।३१४।४) हइ (१)-(सं० हत)-मार गया, मारा। उ० कलप बेलि बन बहत बिषम हिम जनु हइ। (पा० ३२) हई-(सं० हत)-मारी, नाश कर दी। उ० बेद-मरजाद मानौ हेतु बाद हई है। (गी० १।८४) हए-१. बजाए गए, बजे, २. पीटे, मारे, नाश किए, ३. मारे हुए। उ० १. सदन-सदन सोहिलो सोहावनो नभ अरु नगर निसान हए। (गी० १।३) २. संग्राम अंगन सुभट सोवहि रामसर निकरन्हि हए। (मा० ६।८८।८) हइ (२)-(सं० भवन, प्रा० होत)-है। उ० बरनि सकै छबि अतुलित अस कबि को हइ? (जा० १२०) हगि-(?) -मल करके, विष्टा करके। उ० काक अभागे हगि भर्यो महिमा भई कि थोरि। (दो० ३८४) हटक-(?) -रोक, निषेध, डाँट। हटकहु-(?) -मना करो, रोक, रोक दो। उ० तुम्ह हटकहु जौ चहहु उवारा। (मा० १।२७४।२) हटकि-१. मना करके, बरजकर, रोककर, २. डाँटकर। उ० १. डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटक हटकि मन जात। (मा० ३।३७।ख) २. सकल सभहि हटि हटकि तब बोलौ बचन सक्रोध। (मा० १।६३) हटके-मना किया, बरजा। उ० बिहँसि हिये हरषि हटके लषन राम। (गी० १।८३) हटकेउ-दे० 'हटके'। हटक्यौ-रोका, बरजा। उ० करत राम-विरोध सो सपनेहु न हटक्यौ ईस। (वि० २१६) हटत-(?) -१. हटता है, हटता जाता है, २. मना करता है। उ० २. लालच लखु तेरो लखि तुलसी तोहि हटत। (वि० १२३) हटि-रोककर, मनाकर। उ० नयन नीरु हटि मंगल जानी। (मा० ३।१६।१) हट्ट-(सं०)-१. हाट, बाज़ार, २. दूकान, ३. रास्ता। उ० १. चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहुबिधि बना। (मा० १।३।८) हठ-(सं०)-१. अड, जिद्द, २. ज़बरदस्ती, ज़ोरावरी। उ० १. बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस पर्यो कीर की नाई। (वि० १२०) हठनि-हठ, हठ का बहुवचन। उ० हठनि बजाय करि डीठि पीठि दई है। (क०७।१७५) मु० हठनि बजाय-हठ करके। उ० दे० 'हठनि'। हठजोग-(सं० हठयोग)-हठ से चित्त की वृत्ति को रोकना। एक योग जिसमें अत्यंत कठिन आसनो और मुद्राओं का विधान है। उ० द्रवहि हठजोग दिए भोग बलि प्रान की। (वि० २०६) हठसील-(सं० हठ + सील)-हठी, हठीला। हठसीलहि-

हठी को। दे० 'हठसील'। उ० यह न कहिअ सठ ही हठ-सीलहि। (मा० ७।१२८।२) हठहि-हठ करते हैं, हठते हैं। हठि-१. मना कर दो, बरज दो, २. हठ करके, जिद्द करके, ३. बलपूर्वक। उ० २. देखु जनक हठि बालकु पृहु। (मा० १।२८०।३) ३. नाहि त सम्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि। (मा० ६।६) हठै-१. हठ करने से, २. हठ करने में। उ० १. हिये हेरि हठ तजहु हठै दुख पैहहु। (पा० ६२) हठी-(सं० हठि)-हठ करनेवाला, जिद्दी, टेकौ। उ० तुम कहि रहे, हमहुँ पचि हारी, लोचन हठी तजत हठ नाहीं। (क० ५८) हठीले-दे० 'हठी'। उ० भूमि परे भट भूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले। (क० ६।३२) हठीलो-दे० 'हठी'। उ० तुलसी को साहिब हठीलो हनुमान भो। (ह० ११) हड़ावरि-(सं० अस्थि + अवलि)-हड्डियों का समूह। उ० राम-सरासन तँ चले तीर रहे न सरीर हड़ावरि फूटी। (क० ६।५१) हत-(सं०)-१. बध किया हुआ, मारा गया, २. शून्य, विहीन। उ० २. भयउ तजहत श्री सब गई। (मा० ६।३५।२) हतइ-(सं० हत)-१. मारा, २. मारते, ३. मारता है। उ० १. प्रभु ताते उर हतइ न तेही। (मा० ६।६६।७) हतई-मारता है। हतउँ-हट्ट, मारुँ। उ० तेहि सर हतउँ मूढ़ कहँ काली। (मा० ४।१८।३) हतहि-मारते हैं। हतहु-मारो, मारिए। उ० हतहु नाथ खल नर अघरासी। (मा० ५। ६०।३) हति (१)-मारकर, हतकर। उ० प्रथम तावका हति सुबाहु बधि, मख राख्यो द्विज-हितकारी। (गी० ७।३८) हते (१)-मारे, नष्ट किये। उ० सुकुत न भये हते भगवाना। (मा० १।१२३।१) हतेउ-मारा, नष्ट किया। उ० फरत करिनि जिमि हतेउ समूला। (मा० २।२६।४) हतेसि-मार डाला। उ० बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। (मा० ४।६।४) हतै-मारे। उ० सन्मुख हतै गिरा-सर पैना। (वै० ४६) हतो (१)-मारा। हत्यो-मारा। उ० अतुलित बल भृगराज-मनुज तनु दनुज हत्यो श्रुति साखी। (वि० ६३) हतभागी-दे० 'हतभाग्य'। उ० मानहुँ मोहि जानि हत-भागी। (मा० ५।१२।५) हतभाग्य-(सं०)-भाग्यहीन, अभाग्य। उ० सार-रहित हत-भाग्य सुरभि पल्लव सो कहुँ कहँ पावै। (वि० १४४) हताश-(सं०)-निराश, नाउम्मेद। हति (२)-(सं० भू)-थी, हुती। उ० महारीज बाजी रची प्रथम न हति। (वि० २४६) हते (२)-थे। हतो (२)-था। हथवाँसहु-(सं० हस्त + वास)-कब्जे में कर लो, हाथ में कर लो। उ० हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिअ वाटारोहु। (मा० २।१८६) हथा-(सं० हस्त)-हाथ जिससे ऐपन लेकर दीवार पर थापा जाता है। उ० अपनो ऐपन निज हथा, तिय पूजहि निज भीति। (दो० ४५४)

हथिसार-(सं० हस्तिन् + शाला)-हाथी बाँधने का घर । उ० हाथी हथिसार जरे घोरे घोरसारहीं । (क० १२३)

हथेरी-(सं० हस्त + तल)-हथेली, गदोरी । उ० हाथ लंका लाइहैं तोरहैगी हथेरी सी । (क० ६१०)

हद-(अर०)-सीमा, मर्यादा । उ० कायर क्रूर कपूतन की हद तेउ गरीब नेवाज नेवाजे । (क० ७११)

हन-(सं० हनन)-१. ध्वंस, क्षय, नाश, २. मार, चोट, हिंसा, ३. मारना । हनइ-१. मारता है, २. मारे, ३. मार डालेगा । उ० ३. लक्ष्मिनु हनइ निमिप महुँ तेते । (मा० १४४४) हनत-१. मारता है, हनता है, २. मारता हुआ । उ० १. हनत गुनत गनि गुनि हनत जगत ज्योतिषी-काल । (दो० २४६) हनहिं-१. मारते हैं, २. पीटते हैं, बजाते हैं । उ० २. सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना । (मा० १३०६१२) हनि-१. मारकर, २. बजाकर । उ० १. लेत केहरि को बयर ज्यों भेक हनि गोमाय । (वि० २२०) २. हनि देव हुंदुभी हरषि बरषत फूल । (गी० ११६४) हनिय-१. मारिए, २. मारना चाहते । उ० २. निकट बोलि न बरजिए बलि जाउँ हनिय न हाय । (वि० २२०) हनी-नष्ट किया, मारा । उ० कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार । (मा० २१६३) हने-१. मारे, २. बजाए, ३. मारने से, ४. बजाने से । उ० २. हरषि हने गहगहे निसाना । (मा० ११२६६१) हनेउ-मारा, मारा हो । उ० दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू । (मा० २१२६३) हनेऊ-मारा, मार डाला । हनेसि-मारी । उ० अस कहि हनेसि मारु उर गदा । (मा० ६१६४४) हन्यो-मारा, हना । उ० सँभारि श्री रघुवीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो । (मा० ६१६५१७० १)

हनन-(सं०)-मारना, बध करना, हत्या करना ।

हनु (१)-(सं०)-जबड़ा, दाढ़ की हड्डी ।

हनु (२)-(सं० हनन)-मारनेवाला, नाश करनेवाला ।

हनुथल-(सं० हनु + स्थल) ठोड़ी के नीचे का भाग । उ० मंजुल चिखक मनोरम हनुथल, कल कपोल नासा मन मोहति । (गी० ७१७)

हनुमंत-दे० 'हनुमान' । उ० हनुमंत-हृदि विमल-कृत परम मंदिर सदा दास तुलसी सरन-सोकहारी । (वि० ५१)

हनुमंतहि-हनुमान को । उ० प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई । (मा० ६१२१११)

हनुमंता-दे० 'हनुमान' । उ० कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता । (मा० ६१३११)

हनुमत-दे० 'हनुमान' । उ० हनुमत जन्म सुफल करि माना । (मा० ४२३१६)

हनुमद्-दे० 'हनुमान' ।

हनुमान-(सं० हनुमत)-महावीर, जो केसरी नाम के बंदर की स्त्री अंजना के गर्भ से पवन के पुत्र थे । एक मत से शंकर के वीर्य से इनकी उत्पत्ति हुई थी । हनुमान बड़े वीर और बज्रांगी कहे गये हैं । सीता को खोजना, लंका जलाना तथा संजीवनी वृद्धी के लिए पूरा पर्वत उठा लाना इनके मुख्य कार्य हैं । राम के ये अनन्य भक्त थे । उ० दुसह साँसति सहन को हनुमान जयायो जाय । (गी० ७३१)

हनुमाना-दे० 'हनुमान' । उ० महावीर बिनऊँ हनुमाना । (मा० ११७१५)

हनुमानू-दे० 'हनुमान' । उ० जिमि जग जामवंत हनुमानू । (मा० १७१४)

हनु-१. दे० 'हनु' । २. हनुमान । उ० २. जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनु समेत । (मा० १४४४)

हनुमंत-दे० 'हनुमान' । उ० रघुपति ! देखो आयो हनुमंत । (गी० ११६)

हनुमान-दे० 'हनुमान' । उ० हनुमान अंगद रन गाजे । (मा० ६१४७३)

हवि-(सं० हविस)-हविष्य, हवन करने की सामग्री । उ० यह हवि बाँटि देहु नृप जाई । (मा० ११८६४४)

हबूब-(अर० हबाब)-१. पानी का बबूला, बुल्ला, २. निस्सार बात, तरवहीन बात । उ० १. बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है । (क० ७१०८)

हम-(सं० अहम्)-१. हम सब, २. अहंकार का भाव । उ० १. हम सन सत्य मरसु किन कहहु । (मा० १७८२)

हमहिं-हमें । उ० कंत सिख देइ हमहिं कोउ माई । (मा० २१४११) हमहीं-हमें, हमको । उ० तहँ तहँ हँसु देउ यह हमहीं । (मा० २१४३३) हमहुँ-हमें भी, हमको भी । उ० हमहुँ निदुर-निरुपाधि-नेह निधि विज भुजबल तरिबे हो । (क० ३६) हमहुँ-मैं भी, हम भी । उ० हमहुँ उमा रहे तेहि संग । (मा० ६१८१११) हमैं-हमको, हमें । उ० अब तौ दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहैं कौन ? (दो० १६४)

हमरि-(प्रा० अरुह करको)-१. हमारी, मेरी, २. हम सब की । उ० १. हमरि बेर कस भयो कृपिनतर । (वि० ७)

हमरिऔ-हमारी भी । उ० तुलसी सहित बन बासी सुनि हमरिऔ । (गी० २१३४)

हमरें-हमारे । उ० हमरें बयर तुम्हउ बिसराई । (मा० १६२११) हमरें-हमारे, हम लोगों के । उ० जे हमरें अरि मित्र उदासी । (मा० २१३११) हमरेंउ-हमारा मेरा । उ० जाकरि तैं दासी सो अबिनासी हमरेंउ तोर सहाई । (मा० ११८४७० १)

हमार-(प्रा० अरुह करको)-हमारा, मेरा । उ० सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृवा हमार । (मा० ११३२)

हमारा-मेरा, हम लोगों का । उ० पूजिहि विधि अभिलाषु हमारा । (मा० २१११२) हमारी-दे० 'हमारि' । उ० छुमिअ देवि बडि चूक हमारी । (मा० २१६४४) हमारें-हमारे में, मेरे में । उ० ज्यों तिषु कूठ हमारें भाएँ । (मा० २११२३) हमारे-में, हम लोगों के । उ० नहिं भलि बात हमारे भाएँ । (मा० ११६२४)

हमारि-हमारी, मेरी । उ० हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई । (मा० १७८२)

हय-(सं०)-१. घोड़ा, अश्व, २. नक्षत्र । उ० १. राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला । (मा० ६१२४७) २. नृ ति-गुन कर-गुन, पु-जुग-भृग हय, रेवती, सखाउ । (दो० ४५६)

हये-(सं० हत)-१. मारे, नष्ट किए, २. पीटे, बजाए । उ० १. गएँ गँवाह गरुर पति, धनु मिस हये नरेस । (प्र० ११५१५) हयो-दे० 'हयौ' । उ० किए सुखो कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारें रिपु हयो । (मा० ६१०६७० १) हयौ-हत्या

की, मारा । उ० महा मोह-रावन विभीषण ज्यों हयो हौं ।
(वि० १८१)
हर (१)-(सं०)-१. शंकर, महादेव, २. हरनेवाला, दूर करनेवाला, ३. बध करनेवाला, ४. एक राक्षस जो विभीषण का मंत्री था, ५. ले जानेवाला, ६. एकादशी, ग्यारह, ७. ग्यारहवाँ । उ० १. मार करि-मत्त-शृगराज त्रयनयन हर नौमि अपहरन-संसार ज्वाला । (वि० ४६) २. त्रैलोक्य-सोकहर, प्रमथराज । (वि० १३) ३. यातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालामिहर । (वि० २७) ६. रवि हर दिसि गुन रस नयन । (दो० ४५८) हरनि (१)-महादेव का बहुवचन । उ० महिमा की अवधि करसि बहु विधि-हरि-हरनि । (वि० २०) हरहि-महादेव में । उ० एकउ हरहि न बर गुन, कोटिक दूषन । (पा० ५६)
हर (२)-(सं० हल)-जोतने का एक प्रसिद्ध औजार, हल । उ० तौ जमभट साँसति हर हम से दूषम खोजि खोजि नहते । (वि० ६७)
हर (३)-(सं० हरण)-हरेगा, काटेगा । उ० जो हमारं हर नासा काना । (मा० २१५२३) हरह-हर लेता है । उ० हरह धर्म बल बुद्धि विचारा । (मा० ६३७४) हरई-हरता, हरण करता है । उ० हरइ लिष्यघन सोक न हरई । (मा० ७१६१४) हरउ-हरण करे, हरे । उ० हरउ भगत मन कै कुटिलाई । (मा० २१०४) हरत-१. हरता है, छीनता है, दूर करता है, २. हरनेवाला । उ० १. हरत सकल कलि कलुष गलानी । (मा० १४३२) हरति-१. नाश करती है, छीनती है, चुराती है, २. संहारती हुई, नाश करती हुई । उ० १. हरति सब आरती आरती राम की । (वि० ४८) हरहि-दूर करते हैं, हर लेते हैं । उ० हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा । (मा० ११२१४) हरही-हस्ते हैं, हस्ते थे । उ० निज छबि रति मनोज महु हरही । (मा० २१११) हरहु-दूर कीजिए । हरहु-हर लीजिए, दूर कीजिए । उ० उग्र साप मुनिवर कर हरहु । (मा० ३१३१) हरिबे-हरना, हरना था । उ० तौ अतुलित अहीर अबलनि को हठि न हियो हरिबे हो । (क० ३६) हरिय-हरिए, काटिए । उ० करि कृपा हरिय भ्रम फंद काम । (वि० १४) हरिये-१. दूर कीजिए, २. दूर करूँ । उ० २. कहो अब नाथ ! कौन बल तै संसार-सोक हरिए । (वि० १८६) हरिहउ-हलूंगा, हर लूँगा । उ० हरिहउ सकल भूमि गरु आई । (मा० ११८७४) हरिहि (१)-हरेगा, दूर करेगा । २. सुर, नर, मुनि करि अभय दनुज हति हरिहि धरनि गरुआई । (गी० ११३) हरिही-चुरावेगा, हर ले जायगा । उ० तासु नारि निसिचर पति हरिही । (मा० ४२८४) हरिहै (१)-(सं० हरण)-१. हरेगे, दूर करेगे, २. हर लगे, चुरा लगे । उ० १. तुलसीदास भरोस परम करना-कोस प्रभु हरिहै विषम भवभीर । (वि० १६७) हरी (१)-(सं० हरण)-१. दूर कर दी, २. चुरा ली, ले ली, हर ली, ३. हरने वाली । उ० १. बोलत बोल समृद्धि सुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है । (क० ७१८०) हरे-१. हर लो, दूर कर दो, २. छीन लो, ले लो । उ० १. हरे विधि बेगि जनक जइताई । (म० १२४६२) हरे-१. चुराये, चुरा लिये, हर लिए, २. हरे गए, चुराए

गए, ३. नाश किए, हरे । उ० १. धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे । (मा० ११८५) २. मंडपु बिलोकि विचित्र रचनाँ रहिरताँ मुनिमन हरे । (मा० १३२०४) ३. दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे । (वि० ११६) हरेऊ-हरा, हर लिया । उ० तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ । (मा० ११२०११) हरे-१. हरता है, दूर करता है, २. हरने पर, दूर करने पर, ३. हरण करे, चुरावे, ४. हर लेता है, हरण कर लेता है । उ० ४ नृप नहुष ज्यों सब के बिलोकत बुद्धिबल बरबस हरे । (जा० ६६) हरो-१. हर जाय, चोरी हो जाय, २. हर लिया । उ० १. हरो धरो गाड़ो दियो धन फिर चढ़े न हाथ । (दो० ४५७) हरयो-दूर किया । उ० सब भूपन की गरब हरयो हरि, भंज्यो संभु-चाप भारी । (गी० ७३८)
हरकी-(?)-मना किया, हटकी । उ० कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी । (क० ७१७०)
हरखइ-(सं० हर्ष)-प्रसन्न होता है । उ० सुनि जिय भयउ भरोस रानि हिय हरखइ । (जा० ८८)
हरखानी-प्रसन्न हुई ।
हरगिरि-शंकर का पर्वत, कैलाश । उ० हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू । (मा० २१२५३)
हरण-हरण करनेवाले । उ० चरन-नख-नीर त्रैलोक्य पावन परम, विबुध जननी-दुसह-शोक हरण । (वि० ५२) हरण-(सं०)-१. हरना, लेना, २. दूर करना, ३. हरनेवाला, लेनेवाला, ४. संहार, नाश, ५. ले जाना, वहन करना । हरता-(सं० हर्ता)-१. हरनेवाला, दूर करनेवाला, २. चोर, लुटेरा । उ० १. जो करता भरता हरता, सुर साहिब, साहब दीन दुखी को । (क० ७१४६)
हरतार-१. हरनेवाला, २. नाश करनेवाला, महादेव । उ० २. करतार भरतार हरतार कर्म काल । (ह० ३०)
हरद-दे० 'हरदि' । उ० हरद दूब दधि अच्छत माला । (मा० ११२६१४)
हरदि-(सं० हरिद्रा)-१. हल्दी, २. ब्याह में हल्दी लगाने की रीति । उ० २. प्रथम हरदि बेदन करि मगल गावहि । (जा० १२६)
हरन-दे० 'हरण' । उ० २. विष्णु यश-पुत्र कल्की दिवाकर उदित दास तुलसी हरन विपति-भारं । (वि० ५२) ५. सिंधु तरन कपि गिरि हरन काज साँह हित दोउ । (दो० ४४५)
हरनहार-हर्ता, नाश करनेवाला । उ० सुमिरे हरनहार तुलसी की पीर को । (ह० १०)
हरना-(सं० हरण)-हरनेवाला, दूर करनेवाला । उ० गाहे पाहि प्रनतारति हरना । (मा० ११३८१) हरनि (२)-हरनेवाली । उ० भक्ति-भुक्ति-दायिनि, भयहरनि, कालिका । (वि० १६)
हरनिहार-नाश करनेवाला, हर्ता । उ० हर से हरनिहार जैं जाके नामैं । (गी० ५२५)
हरनी-हरनेवाली । उ० चितवनि चारु मार मनु हरनी । (मा० ११२४३३)
हरनू-हरनेवाले । उ० कहत सुनत दुख दूषन हरनू । (मा० २१२३१)

हरपुर-शिव का स्थान, १. कैलास, २. काशी। उ० १. हरि विरचि हरपुर सोभा कुलि कोसलपुरी लोभानी। (गी० ११४)

हरपुरी-काशी, बनारस। उ० तुलसी बसि हरपुरी रामजपु जो भयो चहै सुपासी। (वि० २२)

हरवा-(सं० हार)-माला, हार। उ० चंपक-हरवा अँग मिलि अधिक सोहाइ। (ब० ११५)

हरष-(सं० हर्ष)-प्रसन्नता, खुशी। उ० जयति सिंहासनासीन सीतारामन निरखि निर्भर-हरष नृत्यकारी। (वि० २७)

हरषइ-प्रसन्न होते हैं, प्रसन्न होता है। उ० देखि चरित हरषइ मन राजा। (मा० ११२०५१४) हरषई-१. प्रसन्न होता है, २. प्रसन्न होने लगा। उ० १. किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई। (मा० ६१६७। छं० १) हरषत-१. प्रसन्न होता है, प्रसन्न होते हैं, २. प्रसन्न होते हुए। उ० १. बरषत करषत आपुजल, हरषत अरषनि भानु। (दो० ४५५) हरषतु-प्रसन्न होते, खुश होते। उ० पुलक सररीर हिये हेतु हरषतु हैं। (क० ६१५८) हरषहि-प्रसन्न होते हैं। उ० नगर कोलाहल भयउ नारि नर हरषहि। (जा० २०३) हरषि-प्रसन्न होकर। उ० निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिँ आन्यो। (वि० ८८) हरषिहै-हर्षित होगा, प्रसन्न होगा। उ० प्रसु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै। (वि० २६८) हरषी-प्रसन्न हुई। उ० आप देखन चाप मख सुनि हरषी सब नारि। (मा० ११२२१) हरषी-प्रसन्न हुई। उ० पद-नख देख देवसरि हरषी। (मा० २११०१३) हरषे-प्रसन्न हुए। उ० सुनि सुबचन हरषे दोउ आता। (मा० २१२५६२) हरषेउ-प्रसन्न हुआ। उ० हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। (मा० १११६१४)

हरषवंत-प्रसन्न, आनंदमग्न। उ० हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद। (मा० १११६४)

हरषाइ-दे० 'हरषाई'। उ० मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ। (मा० १११५८) हरषाई-प्रसन्न होकर, खुश होकर। उ० चलीं उमा तप हित हरषाई। (मा० ११७३४) हरषाऊँ-हर्षित होता हूँ। उ० बाल चरित बिलोकि हरषाऊँ। (मा० ७१७१२) हरषाती-हर्षित होती, प्रसन्न होती। उ० सुनि हरि चरित न जो हरषाती। (मा० १११३४) हरषान-हर्षित हुआ प्रसन्न हुआ। उ० राका ससि रघुपति पुरी सिंधु देखि हरषान। (मा० ७३ ग) हरषाना-प्रसन्न हुए, हर्षित हुए। उ० सेन बिलोकि राउ हरषाना। (मा० १११५४२) हरषानी-प्रसन्न हुई। उ० दुख दंपतिहि उमा हरषानी। (मा० ११६८१) हरषाने-प्रसन्न हुए। उ० नगरलोग सब अति हरषाने। (मा० ११६११) हरषानेउ-प्रसन्न हुए। उ० दीन्हि लगन कहि कुसल राउ हरषानेउ। (जा० १३१) हरषाहीं-हर्षित होते हैं, प्रसन्न होते हैं। उ० बाल सखा सुनि हियँ हरषाहीं। (मा० २१२४१)

हरषित-आनंदित, प्रसन्न। उ० घर घर मंगलचार एक रस हरषित रंक गनी। (गी० ७१२०)

हरषु-दे० 'हरप'। उ० सुनि मन भयउ न हरषु हरसू। (मा० २११४६४)

हरहाई-(?)-वह गाय जो बड़ी नटखट हो और खेत चरती फिरे। उ० जिमि कपिलहि घालइ हरहाई। (मा० ७। ३६११)

हरसू-दे० 'हरास'। उ० २. बय बिलोकि हियँ होइ हरसू। (मा० २१५६२)

हराम-(अर०)-निषिद्ध, विधि-विरुद्ध, अनुचित। उ० गिरो हिये हहरि 'हराम हो हराम हन्यो' हाय हाय करत परीगो काल फँग मैं। (क० ७१७६)

हरावहि-हराते हैं। उ० करहि आपु सिर धरहि आन के बचन विरचि हरावहि। (क० ४)

हरास-(फा० हिरास)-१. भय, डर, २. दुःख, शोक, उदासी। उ० ३. धनुष तोरि हरि सब कर हरेउ हरास। (ब० १५)

हरि-१. भगवान् को, २. बंदर को, ३. पापों के हरने-वाले को। उ० १. वन्देऽहंतम शेष कारण परं रामाख्यमी-शंहरिम्। (मा० ११११लो० ६) हरि-(सं०)-१. भक्तों का दुःख हरनेवाले भगवान्। विष्णु या उनके राम-कृष्ण आदि अवतार, अ. विष्णु, आ. राम, इ. कृष्ण, २. इंद्र, ३. साँप, ४. मेढक, ५. सिंह, ६. घोड़ा ७. सूर्य, ८. चाँद, ९. तोता, १०. बंदर, हनुमान, ११. यमराज, १२. हवा, १३. मोर, १४. कोयल, १५. हंस, १६. धनुष, १७. पर्वत, १८. हाथी, १९. कामदेव, २०. हरा रंग, २१. हरने-वाला। उ० १. अ. नित्य निर्मम, नित्य मुक्त निर्मान हरिज्ञान धन सच्चिदानंद मूलं। (वि० ५३) ५. अज्ञान-राकेस-प्रासन बिर्धतुद गर्व-काम-करिमत्त हरि दूपनारी। (वि० ५८) १. इं. हरि परे उचरि। (क० ३६) १०. झाड़ गये हरि-जूथ देखि उर पूरि प्रमोद रझो है। (गी० ४१२) १६. आकरष्यो सिथ-मन समेत हरि हरष्यो जनक-हियो। (गी० ११८८) १९. जनु हर डर हरि विविध रूप धरि रहे बर भवन बनाई। (वि० ६२) हरिउ-विष्णु भी। उ० हित कै न माने विधि हरिउ न हरु। (वि० २५०) हरिहि-१. कृष्ण को। उ० १. द्रोण बिदुर भीषम हरिहि कहैं प्रपंची लोग। (दो० ४१८)

हरिअरइ-(सं० हरित)-हरा ही हरा। उ० गाधि सूनु, कह हृदयँ हंसि सुनिहि हरिअरइ सुभ। (मा० ११२७५)

हरिचंद-(सं० हरिश्चंद्र)-अयोध्या के एक प्रसिद्ध राजा जिन्होंने अपना सारा राज्य और धन विश्वामित्र को दान दे दिया था। ये अपनी सत्यवादिता के लिए प्रसिद्ध हैं। उ० सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। (मा० २१६१२)

हरिजन-(सं०)-भगवान् का भक्त, दास। उ० सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। (मा० ११२७३।३)

हरिजान-दे० 'हरियान'। उ० भेषज पुनि कोटिन्ह नहिँ रोग जाहिँ हरिजान। (मा० ७१२१ ख)

हरिण-(सं०)-मृग, हिरन।

हरित-(सं०)-१. हरा, २. हरा या सुराया हुआ। उ० १. हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराय के फूल। (मा० ११२८७) हरितमणि-हरे रंग की मणि, पत्ता।

हरिता-(सं०)-विष्णुत्व, विष्णुता। उ० हरिहि हरिता, बिधिहि विधिता, सिवहि सिवता जो दई। (वि० १३५)

हरिधनु-भगवान् का धनुष, इंद्रधनुष। उ० बकराजि

राजति गगन, हरिधनु तद्वित दिक्षि दिक्षि सोहर्ही । (गी० ७।१६)
 हरिधाम-बैकुंठ, स्वर्ग । उ० अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम । (मा० ३।३२)
 हरिन-(सं० हरिण)-हिरन, भृगु । उ० हेम हरिन कहँ दीन्हेउ प्रभुहि देखाइ । (ब० २६) हरिनवारि-मृग तृष्णा, झूठा पानी जो रेगिस्तान में पशुओं की मृत्यु का कारण बनता है । उ० पायो केहि घृत बिचारु हरिनवारि महत । (वि० १३३)
 हरिपद-(सं०)-विष्णु का पद, परमपद, बैकुंठ । उ० मैं जानी हरिपद-रति नाहीं । (वि० १२७)
 हरिप्रीता-(सं०)-ज्योतिष में एक सुहृत् का नाम । उ० सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता । (मा० १।१६१।१)
 हरिबाहन-(सं० हरि + वाहन)-विष्णु की सवारी गरुड़ ।
 हरियान-(सं०)-विष्णु की सवारी, गरुड़ ।
 हरिसंकरी-(सं० हरि + शंकर)-विष्णु और शंकर की सम्मिलित स्तुति का पद जो विनयपत्रिका में है । उ० रुचिर हरिसंकरी-नाम मंत्रावली द्वंद्व दुख-हरनि आनंदखानी । (वि० ४६)
 हरिहाई-दे० 'हरहाई' ।
 हरिहित-(सं०)-बीरबहुटी, इंद्रबधुटी । उ० जनु खद्योत-निकर हरिहित-गन आजत मरकत-सैल-सिखर पर । (गी० ६।१६)
 हरिहँ-(सं० हारि)-१. थक जायँगे, २. हार जायँगे ।
 हरी (२)-(सं० हरि)-१. विष्णु, हरि, २. सिंह, ३. बंदर, हनुमान ।
 हरी (३)-(सं० हरित)-हरे रंग की ।
 हरीस-(सं० हरीश)-बंदरों के राजा, १. सुग्रीव, २. हनुमान । उ० २. देखि दसा ब्याकुल हरीस, श्रीषम के पथिक ज्यों धरनि तरनि-तायो । (गी० ६।१६)
 हरीसा-दे० 'हरीस' । उ० १. कह प्रसु सुनु सुग्रीव हरीसा । (मा० ४।१२।४)
 हर (२)-(सं० लघुक, हिं० हलका)-जो भारी न हो, हलका ।
 हर (३)-(सं० हर)-महादेव, शंकर । उ० लसै जटा जूट जनु रूख बेध हरु है । (क० ७।१३६)
 हरुअ-(सं० लघुक)-१. हलका, २. लुच्छ । उ० १. होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी । (मा० १।२५।५) २. निज गुन गरुअ हरुअ अति मानहि, मन तजि गर्व । (गी० ७।२१) हरुए-१. हलके, २. धीरे से । उ० २. लखन पुकारि, राम हरुए कहि मरतहु बैर सँभार्यो । (गी० ३।६)
 हरुआई-हलकापन, हलुकई । उ० देह बिसाल परम हरुआई । (मा० ६।२६।१)
 हरैया-हरनेवाला, हरनेवाले । उ० भूमि के हरैया उखरैया भूमि-धरनि के । (गी० १।२३)
 हरो-(सं० हरित)-हरा, हरित । उ० मोहि तो सावन के अंधहि ज्यों सूक्त रंग हरो । (वि० २२६)
 हर्ता-(सं०)-हरनेवाला, अपहरण करनेवाला । उ० भीषणा-कार, भैरव भयंकर, भूत-भैत-प्रमथाधिपति विपति हर्ता । (वि० ११)

हर्ष-(सं०)-प्रसन्नता, खुशी ।
 हलंत-(सं०)-वह स्वर जिसमें कोई स्वर न मिला हो, शुद्ध व्यंजन । उ० छत्र मुकुट सब विधि अचल तुलसी जुगल हलंत । (सं० १५१)
 हल-(सं० हल)-शुद्ध व्यंजन जिसमें कोई स्वर न मिला हो । पाणिनि में 'हल्' प्रत्याहार में सब स्वर आ जाते हैं । उ० हल जम-मध्य समान जुत यात अधिक न आन । (सं० २७१)
 हलक-(अर० हलक)-गला, कंठ । उ० समर समर्थ, नाथ ! हेरिण हलक में । (क० ६।२५)
 हलधर-(सं०)-हल को धारण करनेवाले, बलराम । उ० जीह जसोमति हरि हलधर से । (मा० १।२०।४)
 हलबल-(सं० हल + बल)-खलबली । उ० गाज्यो सुनि कुरुराज दल हलबल भो । (ह० ५)
 हलराइहौ-(सं० हिलोल)-गोद में लेकर डुलाऊँगी । उ० गोद बिनोद मोदमय मूरति हरि-हरि हलराइहौ । (गी० १।१८) हलरावति-हाथ पर लेकर हिलाती हैं । उ० बाल-केलि गावति हलरावति पुलकति प्रेम-पियूष पिये । (गी० १।७) हलरावै-हिलाती डुलाती है । उ० लौ उज्जंग कबहुँक हलरावै । (मा० १।२०।४)
 हलाकी-(अर० हलाक)-मारनेवाला, क्रांतिल, बध करनेवाला । उ० उधो जू ! क्यों न कहँ कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी । (क० ७।१३४)
 हलावहिं-(सं० हिलोल)-हिलाते हैं, हिला रहे हैं । उ० खाहि मधुर फल विटप हलावहिं । (मा० ६।१३)
 हबि-(सं० हविस)-हवन की वस्तु, वह वस्तु जो आग में किसी देवता के निमित्त डाली जाय । उ० यह हबि बाँटि देहु नृप जाई । (मा० १।१८।४)
 हलाहल-(सं०)-वह प्रचंड विष जो समुद्र-मंथन के समय समुद्र से निकला था और जिसका शंकर ने पान किया था ।
 हलाहलु-दे० 'हलाहल' । उ० मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत भे, अजर अमर हर अँचइ हलाहलु । (वि० २४)
 हलोरि-लहरें उठाकर, हिलोरा मारकर । उ० कपीस कृषो बातघात बारिधि हलोरि कै । (क० ६।२७)
 हलोरे-(अनु० हलहल)-तरंग, लहर । उ० सोहै सितासित को मिलिवो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे । (क० ७।१४४)
 हवन-(सं०)-किसी देवता के निमित्त आग में दी हुई आहुति, होम ।
 हवाले-(अर० हवाला)-सुपुर्द, जिम्मे । उ० आउ करउँ खलु काल हवाले । (मा० ६।६०।४)
 हव्य-(सं०)-हवन की सामग्री ।
 हसि-(सं० भवन्)-अहसि, है । उ० का अनमनि हसि कह हँसि रानी । (मा० २।१३।३)
 हसेउँ-(सं० हसन)-हँसा । उ० हसेउँ जानि विधि गिरां असाँची । (मा० ६।२६।१)
 हस्त-(सं०)-१. हाथ, कर, २. हस्त नक्षत्र । उ० १. अस स्वामी एहि कह मिलिहि परी हस्त असि रेख । (मा० १।६७)

हस्तामलक-(सं०)-हाथ में आँवले की तरह, स्पष्ट ।
 हस्तिनी-(सं०)-हथिनी, मादा हाथी । उ० बस्ती हस्ती
 हस्तिनी देति न पति रति दानि । (सं० १६५)
 हस्ती-(सं०)-हाथी, गज । उ० दे० 'हस्तिनी' ।
 हहर-(?)-हर, भय, आस ।
 हहरत-(?)-डरकर, घबराकर । उ० हहरत हारत रहित
 बिंद रहत धरे अभिमान । (सं० ३६४) हहरि-घबराकर,
 चौककर, भौचक्का होकर, डरकर । उ० हहरि हहरि हर सिद्ध
 हँसे हेरि कै । (क० ६।४२) हहरी-भयभीत हो गई, घबरा
 गई । उ० नाथ भलो रघुनाथ मिले, रजनीचर-सेन हिये
 हहरी है । (क० ६।२६) हहरु-घबराओ, डराओ । उ०
 तुलसी तू मेरो हारि हिये न हहरु । (वि० २५०) हहरे-
 घबराए, डरे । उ० सब सभित संपाति लखि हहरे
 हृदय हरास । (मं० ३।७५) हहरयो-घबड़ा गया, डर
 गया । उ० तौ मन में अपनाइए तुलसिहि कृपा करि, कलि
 बिलोकि हहरयो हौं । (वि० २६७)
 हहरात-(?)-१. डरते हैं, भयभीत, होते हैं, २. डरते
 हुए, हाथ हाथ करते हुए । उ० १. देखे हहरात
 भट काल तें कराल भो । (क० ५।४) २. उछरत उतरात
 हहरात मरि जात । (क० ७।१७६) हहरानी-१. घबरा
 गई, २. डरी हुई, घबराई । उ० २. हहरानी फौजें
 महरानी जातुधान की । (क० ६।४०) हहरानु-घबराया,
 डर गया । उ० पाहर रुई चोर हेरि हिय हहरानु हैं ।
 (क० ७।५०) हहराने-हहराने लगी, ज़ोर से चलने लगी ।
 उ० लपट रूप हहराने हहराने बात । (क० ५।५)
 हहा-(अनु०)-१. विनती, चिरौरी, गिड़गिड़ाहट, २.
 प्रसन्नता का शब्द, अहा, ३. ठठाकर हँसने का शब्द ।
 उ० १. दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी । (क० ७।६७)
 २. नाचत बानर भालु सबै तुलसी कहि हारे ! हहा
 भइया, हो रे ! (क० ६।५७) ३. तुलसी सुनि केवट के बर
 बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है । (क० २।७)
 हहिं-(सं० भवन्, प्रा० होन, हिं होना)-हैं, अर्हाहि । उ०
 हहिं पुरारि तेउ एक-नारि व्रत-पालक (जा० १०४) हहु-
 हो । उ० जानति हहु बस नाहु हमारें । (मा० २।१४।३)
 हा (१)-था । उ० एक जनम कर कारन एहा । (मा० १
 १२४।२) ही (१)-थी । उ० बड़ी अचलंब ही सो चले
 तुम तोरि कै । (क० ५।२६)
 हाईं-(?)-१. लिए, २. भाँति । उ० १. ताहि बाँधिजे को
 धाईं, ग्वालिनी गोरस हाईं । (क० १।७)
 हाँक-(सं० हँकार)-१. पुकार, चिल्लाहट, २. युद्धनाद,
 ललकार, ३. गर्जन, ४. हाँककर, साथ लेकर, ५. बुला-
 कर, पुकार कर । उ० २. हाँक सुनत दसकंध के भए बंधन
 वीले । (वि० ३२) ३. हनुमान-हाँक सुनि बरवि फूल ।
 (गी० ५।१६) ४. तुम्ह तौ काखु हाँक जनु लावा । (मा०
 १।२७।१) हाँकहु-१. हाँको, २. पुकारो, ३. ललकारो ।
 हाँकि-१. हाँक लगाकर, बुलाकर, २. ललकार कर, ३.
 ललकारा, ४. गर्जन करके, ५. साथ लेकर । उ० २.
 भूमि परे भट भूमि कराहत हाँकि हने हनुमान हठीले ।
 (क० ६।३२) ३. चपरि चलेउ हय सुद्धकि नृप हाँकि न
 होइ निबाहु । (मा० १।१५६) हाँकी-हाँक, आगे बढ़ा,

चला । उ० सोक सिथिल रथु सकइ न हाँकी । (मा०
 २।१४३।२) हाँके-१. ललकारने पर, २. हाँक कर आगे
 बढ़ाया, हाँका । उ० २. कौन की हाँक पर चौक चंडीस
 बिधि, चंडकर थकित फिरि तुरंग हाँके । (क० ६।४५)
 हाँकेउ-हाँका, आगे बढ़ाया । उ० रथु हाँकेउ हय राम
 तन हेरि हेरि हिहिनाहि । (मा० २।६६)
 हाँड़ी-(सं० माँढ)-हँडिया, मिट्टी की बटलोई । उ० हाँड़ी
 हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज । (दो० १६७)
 हाँती-(सं० हात)-दूर, समाप्त, खतम । उ० भीर प्रतीति
 प्रीति करि हाँती । (मा० २।३१।३)
 हाँसा-हँसी, मुस्कान । उ० कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा ।
 (मा० १।२४३।३) हाँसी-(सं० हास)-हँसी, ठट्टा ।
 हा (२)-(सं०)-१. दुःख या शोकसूचक शब्द, २. आर-
 चयसूचक शब्द, ३. हनन करनेवाला, मारनेवाला, नाश
 करनेवाला । उ० १. हा जग एक वीर रघुराया । (मा०
 ३।२६।१) ३. रघुवंस बिसूपन दूषन हा । (मा० ६।११।१
 छं० ४)
 हाईं-(सं० घात)-१. दशा, अवस्था, २. ढंग, घात, तौर,
 ३. दूटा, खंडित । उ० ३. परम कृपाल जो नृपाल लोक
 पालन पै, जब धनु हाईं हँ है मन अनुमानि कै । (क०
 ६।२६)
 हाट-(सं० हट्ट)-बाज़ार, दूकान । उ० हाट बाट नहिं जाइ
 निहारी । (मा० २।१५।१)
 हाटक-(सं०)-१. सोना, स्वर्ण, २. धत्रा । उ० १. रत्न-
 हाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भानुसत-सहस-उद्योत-
 कारी । (वि० ५१)
 हाटकपुर-(सं० हाटक + पुर)-सोने की नगरी, लंका । उ०
 नाधि सिंधु हाटकपुर जारा । (मा० ५।३३।४)
 हाटकलोचन-(सं० हाटक + लोचन)-हिरण्यनाभ । दे०
 'हिरण्यनाभ' । उ० कनककसिपु अरु हाटकलोचन । (मा०
 १।२२।३)
 हाड़-(सं० हड्ड)-१. हड्डी, अस्थि, २. वंश या जाति की
 मर्यादा, कुलीनता । उ० निज मुख मानिक सम दसन,
 भूमि परे ते हाड़ । (दो० ३३०)
 हाड़ा-दे० 'हाड़' । उ० १. विष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा ।
 (मा० ६।५२।२)
 हाता (१)-(सं० हरण)-हरनेवाले, नष्ट करनेवाले । उ०
 जयति पाथोधि पापान-जलजान-कर जातुधान-प्रचुर-हरण-
 हाता । (वि० २६)
 हाता (२)-(अर० इहातः)-अहाता, घेरा ।
 हाता (३)-(सं० हात)-१. अलग, दूर किया हुआ, हटाया
 हुआ । हाते-अलग, दूर । उ० नाते सब हाते करि राखत
 राम-सनेह-सगाईं । (वि० १६४)
 हाती-(सं० हत)-मारी, नष्ट कर डाली ।
 हातो-दूर, अलग । उ० हातो कीजै हीय तें भरोसो भुज
 बीस को । (क० ६।२२)
 हाथ-(सं० हस्त)-कर, पाणि, हस्त । पाँच कर्मद्वियों में
 से एक । उ० कृपापाथनाथ लोकनाथ नाथ सीतानाथ,
 तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओढ़िये ? (क० ७।२५)
 मु० देहिं हाथहिं-सहारा देते हैं । उ० फरकि बाम भुज

नयन देहिं जनु हाथहिं । (जा० ११३) म० हाथ मीजिबो-
हाथ मलना, पछताना । उ० हाथ मीजिबो हाथ रह्यो ।
(गी० २।८४)
हाथा-दे० 'हाथ' । उ० रघुकुलतिलक जोरि दौड हाथा ।
(मा० २।५२।१)
हाथी-(सं० हस्तिन्)-एक प्रसिद्ध दीर्घकाय जानवर जिसे
एक लंबी सूंड होती है । करी, कुंजर ।
हाथु-दे० 'हाथ' । उ० बहइ न हाथु दहइ रिस छाती ।
(मा० १।२७।१)
हान-दे० 'हानि' ।
हानि-(सं०)-१. क्षति, नुकसान, २. नाश, क्षय, अभाव,
३. अनिष्ट, अपकार, डुराई । उ० १. पूजा लेत देत
पलटे मुख हानि-लाभ अनुमाने । (वि० २३६) हानिकर-
(सं०)-हानि करनेवाला, जिससे नुकसान पहुँचे । उ०
मुक्ति जन्म महि जानि ध्यान खानि अघ हानिकर । (मा०
४।१।सो० १)
हानी-दे० 'हानि' । उ० १. जिन्ह के सूक लाडु नहिं हानी ।
(मा० १।११।१२)
हाय-(सं० हा)-दुःख और शोक सूचित करनेवाला एक
शब्द । उ० हाय हाय सब सभा पुकारा । (मा० १।
२७।३)
हायन-(सं०)-वर्ष, संवत्सर ।
हार (१)-(सं० हारि)-१. पराजय, शिकस्त, विरोधी की
जीत, २. शिथिलता, श्रान्ति, थकावट, ३. कष्ट, पीड़ा ।
हार (२)-(सं०)-माला । उ० संसार-सार, भुजगेंद्रहार ।
(वि० १३)
हार (३)-(?)-१. बन, जंगल, २. चरागाह, गोचारण
भूमि । उ० १. बानर विचारो बाँधि आन्यो हटि हार
सौं । (क० ५।११)
हारत-(सं० हारि)-१. हारता है, २. हारते हुए । उ० २.
हारत हू न हारि मानत, सखि, सठ सुभाव कंदुक की
नाई । (क० ५६) हारति-हार जाती है, थक जाती है ।
उ० सितति न दुसह ताप तउ तनु की, यह विचारि अंत-
गति हारति । (गी० ५।१६) हारहिं-हारते हैं, हार जाते
हैं । उ० हारहिं अमित सेव सारद क्षुति गिनत एक एक
छन के । (वि० ६६) हारहि-हारे, नष्ट करे, खोवे । उ०
हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत । (वि० १३०)
हारा-हार गया, हार चुका । उ० अब मैं जन्मु संसु हित
हारा । (मा० १।८।११) हारि (१)-(सं० हारि)-१. हार,
पराजय, २. पराजित होकर, हारकर, ३. हारो, पस्त-
हिम्मत हो । उ० १. हारत हू न हारि मानत । (क०
५६) २. जंग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराज ।
(दो० ४३३) ३. राम सुमिरि साहसु करिय, मानिय हिये
न हारि । (प्र० ५।१३) हारी (२)-(सं० हारि)-१. हार
गया, २. हारकर, पराजित होकर, ३. हार, पराजय, ४.
थकावट । उ० १. फिरहिं रासु सीता मैं हारी । (मा०
६।३।४५) २. चले चाप कर बरबस हारी । (मा० १।
२५।१२) ४. मोहि मग चलत न होइहि हारी । (मा० २।
६।७।१) हारे-१. हार गए, पराजित हो गए, २. हारने
पड़े । उ० १. जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघु-

राज । (दो० ४३३) २. हारे हरष होत हिय भरतहि ।
(गी० १।४३) हारेउ-हार गया । उ० हृदयै हेरि हारेउ
सब ओरा । (मा० २।२६।१४) हारेउ-१. हार गया, २.
हारने पर भी । उ० १. लखि न परेउ तप कारन बहु हिय
हारेउ । (पा० ५३) हारेहु-दे० 'हारेउ' । उ० २. जा रिपु
सौं हारेहु हँसी, जिते पाप परितापु । (दो० ४३२) हारो-
१. हारा, हार गया, २. हारा हुआ, पराजित । उ० २. नाहिं
न नरक परत मोकहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो । (वि०
६४) हार्यो-दे० 'हारो' । उ० १. हौं हार्यो करि जतन
बिबिध विधि अतिसय प्रबल अजै । (वि० ८६)
हारि (२)-(सं० हरण)-हरनेवाला । उ० विमल विपुल
बहसि बारि सीतल त्रयताप हारि । (वि० १७)
हारिणीम्-हरनेवाली को । उ० उद्धरस्थिति संहारकारिणीं
क्लेशहारिणीम् । (मा० १।१।रखो० ५)
हारिनि-हरनेवाली ।
हारिनी-(सं० हारिणी)-हरनेवाली, दूर करनेवाली । उ०
भक्त-हृदि-भवन अज्ञान-सम-हारिनी । (वि० ४८)
हारी (२)-(हारिन्)-हरनेवाला, दूर करनेवाला । उ०
मंगल भवन अमंगलहारी । (मा० १।१।०।१)
हाल-(अर०)-१. दशा, अवस्था, २. समाचार । उ० १.
जैसी हाल करी यहि डोटा छोटे निपट अनेरे । (क० ३)
हाला-दे० 'हाल' । उ० १. कनककसिपु कर पुनि अस
हाला । (मा० १।७।११)
हालिहै-(सं० हल्लन)-हिलेगा, काँपेगा । उ० मसक है कहे
'भार मेटे मेह हालिहै' । (क० ७।१२०)
हाव-(सं०)-भाव, हाव-भाव, नज़रा ।
हास-दे० 'हास' । उ० ४. तरुण रमणीय राजीव लोचन
बदन राकेश, करनिकर हासम् । (वि० ६०) हास-(सं०)-
१. हँसना, हँसने की क्रिया, २. विनोद, मज़ाक, ३. हँसी,
४. मुस्कान, ५. उपहास, ६. काव्य का एक रस, हास्य
रस । उ० १. अवलोकनि बोलनि मिलनि मीति परसपर
हास । (मा० १।४२) ३. सित सुमन हास लीला समीर ।
(वि० १४) ६. तिन्ह कहे सुखद हास रस पृह । (मा०
१।६।२)
हासा-दे० 'हास' । उ० ४. इंद्रकर-कुंदमिव मधुर हासा ।
(वि० ६१)
हाहा-(अनु०)-हाय हाय, हा । उ० हाहा करि दीनता
कही द्वार द्वार बार बार । (वि० २७६)
हाहाकार-(सं०)-कुहराम, भय और चबराहट की चिल्ला-
हट । उ० हाहाकार भयउ जग भारी । (मा० १।८।७।४)
हाहाकारा-दे० 'हाहाकार' । उ० भयउ सकल मख हाहा-
कारा । (मा० १।६।४।४)
हिंकरि-(?)-हिनहिनाकर, हींसकर । उ० हिंकरि हिंकरि
हित हेरहिं तेही । (मा० २।१४।३।४)
हिंडोरा-दे० 'हिंडोल' । उ० पलंग पीठ तूजि गोद हिंडोरा ।
(मा० २।५।६।३)
हिंडोल-(सं० हिंदोल)-झूला, हिंडोला । उ० हिंडोल-
साल बिलोकि सब अंचल पसारि पसारि । (गी० ७।१८)
हिंडोलना-(सं० हिन्दोल)-झूले, हिंडोले । उ० गृह गृह
रचे हिंडोलना महि गच काँच सुदार । (गी० ७।१६)

हिंस-(?)—घोड़ों के बोलने का शब्द । उ० रथरव बाजि हिंस चहुँ ओरा । (मा० ११३०११)
 हिसक-(सं०)—मारनेवाला, बधिक । उ० कृपारहित हिंसक सब पापी । (मा० १११७६४)
 हिंसा-(सं०)—१. जीवहत्या, बध, २. पीड़ा देना, सताना, ३. हानि पहुँचाना, अनिष्ट करना । उ० १. हिंसारत निषाद तामस बहु पसु समान बनचारी । (वि० १६६)
 हिस-(सं०)—हिंसा करनेवाला, बधिक ।
 हि (१)—(सं० हृदय)—हृदय, दिल ।
 हि (२)—१. निश्चय ही, अवश्य, २. को । उ० १. वैराग्यां-
 बुज आस्करं ह्यघघनध्यातापहं तापहम् । (मा० ३११११०१)
 २. हंसहि बक दादुर चातकही । (मा० ११६११)
 हिआउ-(सं० हृदय)—हिम्मत, साहस । उ० कासों कहौं काहूँ सों न बढ़त हिआउ सो । (वि० १८२)
 हितं-दे० 'हित' । हित-(सं०)—१. लिपु, निमित्त, २. उपकार, भलाई, नेकी, ३. मित्र, सखा, संबंधी, कल्याणकर्ता, ४. प्यारा । उ० १. सीक धनुष, हित सिखन, सकुचि प्रभु लीन । (ब० १६) २. भूत-द्रोह-कृत मोहबन्धु हित आपन मैं न बिचारों । (वि० ११७) ३. उपजी प्रीति जानि प्रभु के हित, मनहुँ राम फिरि आए । (गी० २।६३) ४. तिय सो जाय जेहि पति न हित । (क० ७।११६) हितकर—कल्याणकारी, लाभकर । हितनि—१. हितैपियों, भलाई चाहनेवालों, २. भलाईयों, नेकियों । उ० १. हितनि के लाह की, उछाह की बिनोद मोद । (गी० १।६४) हितौ—कल्याण करनेवाले दोनों । उ० माया मानुष रूपियौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ । (मा० ४।१११०१)
 हितकारि-दे० 'हितकारी' । उ० बहुरि तिहि विधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि । (गी० ७।२६)
 हितकारी-(सं० हितकारिन्) उपकारी, हितैषी, भलाई करनेवाला । उ० समय साँकरे सुमिरिए समरथ हितकारी । (वि० ३४)
 हितता-(सं०)—भलाई, उपकार । उ० स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँइ द्रोहाई । (वि० १७१)
 हितु-(सं० हित)—भलाई चाहनेवाला, मित्र, संबंधी । उ० तात, मात, गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो । (वि० ७६)
 हित्-दे० 'हितु' । उ० कुदिन हितु सोहित सुदिन, हित अन-हित किन होइ । (दो० ३२२)
 हितै-दे० 'हितु' । उ० बिनय करौं अपभयहुँ ते तुम्ह परम हितै हौ । (वि० २७०)
 हितैहै-(सं० हित)—प्रेमयुक्त करेगी, ललचायेगी, लालायित करेगी । उ० अनुज सहित सोचिहैं कपिन महीं, तनु-छवि कोटि मनोज हितैहैं । (गी० १।६०) हितैहौं—अच्छा लगूँगा, अनुकूल पड़ूँगा, हितकारी हूँगा । उ० ब्राह्मण ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्यों ही तिहारे हिये न हितैहौं । (क० ७।१०२)
 हिम-(सं०)—१. पाला, तुषार, ओस, २. बर्फ, ३. ठंड, जाड़ा, ४. हेमंत ऋतु, ५. शीतल, ठंडा, ६. जाड़े की ऋतु । उ० २. या ४. हिम (४) हिम (२) सैल सुता सिव ब्याह । (मा० १।४२।१) ५. सुर विमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर । (क० १।११) ६. मोहमदमदन-पाथोज-हिम

जामिनी । (वि० १८) हिमउपल—बर्फ का पत्थर, ओला । उ० जिमि हिम उपल कृषी दल गरहीं । (मा० १।४।४)
 हिमकर-(सं०)—चंद्रमा । उ० हेतु कृसानु भानु हिमकर को । (मा० १।१६।१)
 हिमगिरि-(सं०)—हिमालय पर्वत । उ० हिमगिरि गुहा एक अति पावनि । (मा० १।१२।११)
 हिमवंतु-दे० 'हिमवान' । उ० कह सुनीस हिमवंत सुनु जो विधि लिखा लिलार । (मा० १।६८)
 हिमवंतु-दे० 'हिमवान' । उ० १. तब मयना हिमवंत अनंदे । (मा० १।६६।१)
 हिमवान-(सं० हिमवत्)—१. हिमाचल, पार्वती के पिता, २. हिमालय पर्वत, ३. कैलाश पर्वत, ४. सुमेरु पर्वत, ५. चंद्रमा । उ० ५. पावक, पवन पानी, भानु, हिमवान, जम, काल लोकपाल मेरे डर डौंवाडोल हैं । (क० ६।३१)
 हिमवाना-दे० 'हिमवान' । उ० सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना । (मा० १।१०।३।१)
 हिमाचल-(सं०)—१. हिमालय पर्वत, २. पार्वती के पिता, हिमवान । उ० २. जनमी जाइ हिमाचल गेहा । (मा० १।८३।१)
 हिमु-दे० 'हिम' । उ० १. बिधु बिष चवै चवै हिमु आगी । (मा० २।१६६।१)
 हियँ-(सं० हृदय)—हृदय में । उ० हर हियँ रामचरित सब आए । (मा० १।१११।४) हिय-१. हृदय, दिल, २. मन, चित्त । उ० १. निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई । (वि० ६२) हिये-हृदय में । उ० नाग नर किन्नर बिरंचि हरि हर हेरि, पुलक सरीर हिये हेतु हरषतु हैं । (क० ६।६८) हियो-दे० 'हियौ' । उ० १. तौ अतुलित अहीर अबलनि को हठि न हियो हरि बे हो । (क० ३।६) हियौ—१. हृदय, २. हृदय भी । हियरे-हृदय पर, हृदय में । उ० जानि परै सिय हियरे जब कुंभिलाइ । (ब० ५) हिया-हृदय, दिल । उ० जो तो सों हो तौ फिरौ मेरो हेतु हिया रे । (वि० ३३) हियाउ-दे० 'हिआउ' । हियाव-दे० 'हिआउ' । हिरण्य-(सं०)—सोना । हिरण्यकशिपु-(सं०)—प्रह्लाद का पिता एक दैत्य जिसे विश्व ने नृसिंह अवतार धारण कर मारा था । दे० 'प्रह्लाद' तथा 'नृसिंह' । हिरण्यगर्भ-(सं०)—जिसके पेट में सुवर्ण हो, ब्रह्मा । हिरण्याक्ष-दे० 'हिरन्याच्छ' । हिरदय-(सं० हृदय)—हृदय, चित्त, मन । उ० जनु हिरदय गुन-ग्राम-थुनि थिर रोपहि । (जा० ६५) हिरन्य-दे० 'हिरण्य' । हिरण्याक्ष-दे० 'हिरन्याच्छ' । उ० हिरण्याक्ष आता सहित मधु कैटभ बलवान । (दो० १।१५) हिरण्याच्छ-(सं० हिरण्याक्ष)—एक दैत्य जो हिरदयकशिपु का भई था । उ० हिरण्याच्छ आता सहित मधु कैटभ बलवान । (मा० १।६।४८ क) हिराई-(सं० हरण)—खो जाता है, गायब हो जाता है । हिलि-(सं० हल्लन)—हिलकर, मिलजुल कर । उ० बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई । (मा० २।३२०।३)

हिलोर—(सं० हिलोर) —जहर, तरंग, वीचि ।
 हिलोरे—हिलोरा खे, तरंगित हो । उ० राम-प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृग-जल-जलधि हिलोरे । (वि० १६४)
 हिसक—दे० 'हिसका' ।
 हिसका—(सं० ईष्या) —१. ईष्या, डाह, २. देखादेखी, स्पर्धा, चढ़ाउपरी का भाव ।
 हिसिया—दे० 'हिसका' । उ० २. जौ अस हिसिया करहि नर जड़ बिबेक अभिमान । (मा० १६६)
 हिहिनात—(अनु०) —हिनहिनाते हैं । उ० बार बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे । (गी० २।८६) हिहिनाहि—दे० 'हिहिनाही' । उ० रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहि । (मा० २।६६) हिहिनाही—हिनहिनाते हैं । उ० देखि दखिन दिसि हय हिहिनाही । (मा० २।१४ २।४)
 ही—१. में, २. ही । उ० १. हाथी हथिसार जरे घोरे घोर-सारही । (क० १।२३)
 हीचे—(सं० कर्षण, हिं खींचना) —खींच लिए, खींचा, बटोरा, सिकोड़ा ।
 हीस—(?)—घोड़े के हिनहिनाते का शब्द ।
 ही (२)—(?)—१. को, २. निश्चयवाचक शब्द, अवश्य, उ० १. हंसहि बक दादुर चातकही । (मा० १।६१) २. पुलक सरीर सेना करत फहमही । (क० ६।८)
 हा (३)—(सं० हृदय) —हृदय, दिल । उ० दुर्लभ देह पाइ हरिपद भञ्जु करम बचन अरु ही तें । (वि० १६८)
 हीचे—हिचकती है, दुबकती है । उ० कहत सारदहु कर मति हीचे । (मा० २।२३२)
 हीन—(सं०) —१. रहित, शून्य, खाली, बिना, २. दरिद्र, कंगाल, ३. त्यक्त, छोड़ा, ४. अधम, निर्दिष्ट, ५. लघु, छोटा, थोड़ा । उ० १. मनि बिनु फनि, जलहीन मीन तनु त्यागइ । (पा० ६७)
 हीनता—(सं०) —१. शून्यता, रहितता, २. कमी, ३. क्षुद्रता, ४. ओझपन, बुराई । उ० २. होइगी न साईं सों सनेह-हित हीनता । (वि० २६२)
 हीनमति—मूर्ख, बेवकूफ । उ० इक हौं हीन मलीन हीनमति विपति-जाल अति घेरो । (वि० १४३)
 हीना—दे० 'हीन' । उ० १. अगुन अमान मातु पितु हीना । (मा० १।६७।४) हीनी—दे० 'हीन' । उ० १. कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी । (मा० २।२२३।३)
 हीनू—दे० 'हीन' । उ० १. सकल कला सब बिद्याहीनू । (मा० १।६।४)
 हीने—हीन थे, रहित थे । उ० सबरि गीधसम-दम-दया-दान-हीने । (वि० १०६)
 हीय—(सं० हृदय) —हृदय, दिल । उ० मूँदे आँखि हीय में, उचारे आँखि आगे ठाढ़ो । (क० ५।१७)
 हीर—(सं०) —१. हीरा नाम का रत्न, २. सार, गुदा । उ० २. करत चरत तेइ फज बिनु हीर । (वि० १३७)
 हीरक—(सं०) —दे० 'हीरा' । उ० सिरसि हेम-हीरक-मानिक-मय मुकुट-प्रभा सख सुवन प्रकासति । (गी० १।१७)
 हीरा—(सं० हीरक) —एक बहुमूल्य पत्थर जो अपनी चमक

और कड़ाई के लिए प्रसिद्ध है, बज्रमणि । उ० गज गो तुरग हेम गो हीरा । (मा० १।१६।४) हीरै—हीरे को । उ० सोभा सुख छति लाहु भूप कहँ, केवल कांति मोल हीरै । (गी० ६।१५)
 हीर—(?)—भी । उ० ऐसे हौँ जानति भृंग । (कृ० ५४)
 हीर—(सं०) —हूँ, स्वीकारसूचक शब्द, हाँ ।
 हुंकारि—(सं० हुंकार) —शब्द करके, हुंकार करके । उ० हेरँ न हुंकारि भरै फल न रसाल । (गी० ३।६)
 हुंकार—(सं०) —गर्जन, डरावना शब्द । उ० दिन अंतपुर रख स्रवत थन हुंकार करि धावत भई । (मा० ७।६। ६० १)
 हुंति—दे० 'हुति' । उ० १. सासु ससुर सन मोरि हुंति, बिनय करबि परि पाय । (मा० २।६८)
 हु—(?)—हू, भी ।
 हुआहिं—हू हू शब्द करते हैं । उ० खाहिं हुआहिं अवाहिं, दपइहिं । (मा० ६।८८।५)
 हुत—होम किया, आहुति दिया । उ० तेन तप्त हुत दत्त-मेवाखिल, तेनसर्वकृत कर्मजाल । (वि० ४६) हुत—(सं०) —१. आहुति किया हुआ, २. आहुति की घृत आदि वस्तुएँ, ३. आग ।
 हुतासन—(सं० हुताशन) —अग्नि, आग । उ० राम-प्रताप हुतासन कच्छ विपच्छ समीर दुलारो । (ह० १६)
 हुत—(प्रा० हितो) —१. ओर से, तरफ से, २. की ।
 हुते (१)—(सं० भवन) —थे । उ० संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन है जनु औधहु ते पहुनाई । (क० २।२) हुतो (२)—था, रहा । उ० जनु हुतो पुरारि पढ़ायो । (गी० २।६१) हे (१)—थे । उ० हे हम समाचार सब पाए । (कृ० ५०) हैं—१. एक आश्चर्यसूचक शब्द, २. सम्मति या निषेधसूचक शब्द, ३. है का बहुवचन । उ० ३. हैं दयालु दुनि दस दिसा दुख-दोष-दलन छम । (वि० २७५) है—'होना' का वर्तमानकालिक एक वचन रूप । उ० मातु काज लागी लखि डाटत, है बायनो दियो घर नीके । (कृ० १०) हो (१)—१. होवे, २. था । उ० २. मन में मंजु मनोरथ हो, री ! (गी० १।१०२) होइ—१. होय, होवे, २. होकर, ३. होती है । ४. होगी । उ० २. होइ प्रसन्न दीन्हैउ सिव पद निज । (वि० ७) होइअ—होइए, हो लीजिए । उ० होइअ नाथ अस्व अस-वारा । (मा० २।२०३।३) होइहउ—होईगा । उ० होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे । (मा० १।१५२।१) होइहहिं—होंगे । उ० भये जे अहाँ जे होइहहिं आगें । (मा० १।१४।३) होइहहु—होगे, हो जाओगे । उ० होइ-हुहु मुकुट न पुनि संसारा । (मा० १।१३।६।४) होइहिं—होंगे । होइहि—होगा । उ० होइहि सोइ जो राम रचि राखा । (मा० १।२।४) होई—दे० 'होइ' । उ० १. काजु हमार तासु हित होई । (मा० ६।१७।४) होई—होई, हूँ । उ० कवि न होई नहि बचन प्रबीनू । (मा० १।६।४) होउ—दे० 'होइ' । उ० १. पेहउँ बेगिहि होउ रजाई । (मा० २।४।२) होऊ—दे० 'होइ' । उ० १. कह तापस नृप पेसेइ होऊ । (मा० १।१६।१) होएहु—हो, होओ । उ० होएहु संतत पियहि पिआरी । (मा० १।३३।२) होत-

(सं० भवन)-१. शक्ति, सामर्थ्य, २. होते हुए, ३. होता है, बन जाता है, हो जाता है, हो रहा है । उ० २. जिन्हें लगी निज परलोक विगारयो ते लजात होत ठाढ़ उयें । (वि० ८३) ३. जलचरवृद्ध जाल-अंतरगत होत सिमिति झुक पासा । (वि० १२) होति-होती है । उ० काल-चाख हेरि होति हिये घनी घिन । (वि० २५३) होती-१. होती थी, हो जाती थी, २. रहती । उ० २. होती जो आपने बस रहती एक ही रस । (वि० २४६) होते-१. थे, २. रहते । उ० १. सावैकरन अगनित हय होते । (मा० १। २६१३) होतेउँ-होता हुआ, होता, बनता । उ० तौ पुनि करि होतेउँ न हँसाई । (मा० १।२५२।३) होतौ-होता, हो जाता । उ० जो तोसाँ होतौ फिरौ मेरो हेतु हिया रे । (वि० ३३) होन-होना, होने । उ० सिद्ध बंदन होम लावा होन लागीं भाँवरी । (जा० १६२) होनउ-दे० 'होनेउ' । होने-१. होंगे, होनेवाले हैं, २. होनहार, जिनका भविष्य अच्छा हो । उ० १. देखि तियनि के नयन सफल भए, तुलसीदासहू के होने । (गी० १।१०५) २. होत हरे होने बिखानि दल सुमति कहति अनुमानिहैं । (गी० १।७८) होनेउ-होना ही, होने का ही । उ० भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं । (मा० १।२६४।३) होनो-होना, हो जाना । उ० होनो दूजी ओर को, सुजन सराहिय सोइ । (दो० ३६१) होब-१. होऊँगा, होऊँगी, २. होगी, हो जायगा, ३. हो जाओगे । उ० १. चेरि छावि अब होब कि रानी । (मा० २। १६३) होयहु-होगा, हो जाएगा । होसि-होवो, हो जावो, बनो । उ० जनि दिनकर कुल होसि कुठारी । (मा० २।३४।३) होहिं-१. होते हैं, २. हों, ३. होंगे । उ० १. मूढ़ मोह बस होहिं जनाई । (मा० २।२२८।१) होहिंगे-होवेंगे । उ० हूँ गये, हैं जे होहिंगे आगे तेह गनियत बड़ भागी । (वि० ६५) होहिं-१. हो जा, बन जा, २. हो । उ० १. राम नाम-नच नेह-मेह को मन हठि होहिं पपीहा । (वि० ६५) होहीं-१. हैं होती हैं, हो रही हैं, २. हों । उ० १. मधुकर कान्ह कहा ते न होहीं । (कृ० ४१) होही-१. होवे, हो, २. हो जाओ, हो । उ० २. सुनहि सुमुखि जनि बिकल होही । (गी० २।१६) होहु-होओ, हो जाओ । उ० होहु प्रसन्न देहु बरदान । (मा० १।१४।४) होहु-हो, होओ, बनो । उ० सोक कलंक कोठि जनि होहु । (मा० २।५०।१) हौं (१)-(सं० भवन, प्रा० होन)-१. हूँ, २. हो, होवे । उ० १. जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु । (मा० २।१४६) हौं-१. हो, २. हो, होवो । हौं-१. होकर, हो करके, २. रहकर, ३. हो । उ० १. जरि जाउ सो जीवन, जानकीनाथ जियै जग में तुम्हरो बिन हूँ । (क० ७।४०) २. पर्याकुटी करि हौं कित हूँ ? (क० २।११) ३. तौ नवरस, षटस-रस अनरस हूँ जाते सब सीठे । (वि० १६६) हूँ हैं-होंगे, हो जायँगे । उ० हूँ हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे । (क० २।२८) हूँ है-हो जायगा, होगा । उ० हूँ है जब तब तुम्हहिं तें तुलसी को भले रो । (वि० २७२) हूँ हौं-१. होऊँगा, हो जाऊँगा । उ० १. जोपै हौं मातु मते मँहँ हूँ हौं । (गी० २।६२) हुते (२)-(सं० हुत)-होमकर दिए, जला दिए । हुतो (२)-

आहुति दी, जलाया । हुनिए-हवन कीजिए, जलाइए । उ० बिषम-बियोग-अनल तनु हुनिए । (कृ० ३७) हुने-जलाए, हवन किए । उ० हुने अनल अति हरप बहु बार साखि गौरीस । (मा० १।२८) हुनै-१. हवन करते हैं, २. हवन करना, होमना । उ० १. स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनै हनुमान हैं । (क० ५।७) हुनर-(फ़ा०)-१. कारीगरी, कला, २. चातुरी, चतुराई । उ० १. इन्हकर हुनर न कवनिहुँ ओरा । (मा० ७। ३१।३) हुमकि-(?)-उमंग से, उछलकर, कूदकर । हुमगि-दे० 'हुमकि' । उ० १. हुमगि लात तकि कूबर मारा । (मा० २।१६३।२) हुलसत-(सं० उल्लास)-उल्लसित होता है, प्रसन्न होता है । उ० सुमिरत हिय हुलसत तुलसी अनुराग उमंगि गुन गाए । (गी० ७।१४) हुलसति-उल्लसित होती है, प्रसन्न होती है । उ० खल बिलसत हुलसत हुलसति खलहँ है । (वि० १।३६) हुलसि-प्रसन्न होकर, हुलास में आकर । उ० हुलसि हुलसि हिये तुलसिहुँ गाये हैं । (गी० १।७२) हुलसी-१. सुखी, २. खुशी, उल्लास, ३. तुलसीदास की माता का नाम, ४. उत्साहित हुई, प्रसन्न हुई, खुशी हुई, ५. विकसित हुई, उदित हुई । उ० ३. तुलसीदास हित हियँ हुलसी सी । (मा० १।३६।१) ५. संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी । (मा० १।३६।१) हुलसे-आनंदित हुए, प्रसन्न हुए । उ० राम सुभाव सुने तुलसी हुलसे अलसी हमसे गलगाजे । (क० ७।१) हुलसे-१. ऋषि करता है, २. उमड़ता है, उल्लसित होता है । उ० १. स्याम सरीर पसेऊ लसे, हुलसे तुलसी छवि सो मन मोरे । (क० २। २६) २. राखिहैं राम सो जासु हिये तुलसी हुलसे बल आखर दू को । (क० ७।६०) हुलस्यो-उमंग उठा, उल्लसित हुआ । उ० सुख मूल दूखहु देखि दंपति पुलकतन हुलस्यो हियो । (मा० १।३२४। छं० ३) हुलसानी-१. आनंदित हो उठीं, २. उमंगित हो गईं, उमड़ आईं । उ० २. भगत बछलता हियँ हुलसानी । (मा० १।२१८।२) हुलास-१. आनंद, हर्ष, २. उत्साह, उल्लास । हुलासा-दे० 'हुलास' । उ० चले सकल मन परम हुलासा । (मा० ६।१०८।२) हुलासु-दे० 'हुलास' । उ० १. सुदित मातु परिछन चलीं उमगत हृदय हुलासु । (प्र० १।७।१) हुलासु-दे० 'हुलास' । उ० १. देहु लेहु सब सवति हुलासु । (मा० २।२२।३) २. प्रीति कहत कबि हियँ न हुलासु । (मा० २।३२०।१) हुल (१)-(सं० अहम)-मैं । हुल (२)-(?)-भी । उ० ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेए बपु बचन हिये हूँ । (वि० १७०) हुल (३)-१. स्वीकृतिवाचक शब्द । हुल (१)-भी । उ० कर्म हू के कर्म, निदान हू के निदान हौ । (क० ७।१२६) हुक-(सं० हिका)-पीड़ा, कसक । हृति-(सं० हृत)-बुलाना, आह्वान ।

हृह-दे० 'हृहा' । उ० जय जय जय रघुवंसमनि धाप कपि
हृह । (मा० ६।६६)
हृहा-प्रसन्नता का शब्द । उ० सुनि कपि भालु चले करि
हृहा । (मा० ६।१।५)
हृह- (सं० हृह) - १. हृदय, दिल, २. कुंड । हृदि-१. हृदय
में, मन में, २. कुंड में । उ० १. हर हृदि मानस बाल
मरालं । (मा० ३।११।४)
हृहउ-दे० 'हृदय' । उ० हृहउ न बिदरेउ पंक जिमि बिछु-
रतु प्रीतसु नीरु । (मा० २।१४६)
हृदय-हृदय में, मन में । उ० कहहु नाथ गुन दोष सब एहि
के हृदय बिचारि । (मा० १।१३०) हृदय-(सं०)-दिल,
कलेजा । उ० सुमति भूमि थल हृदय अगाधु । (मा०
१।३६।२) हृदये-हृदय में, मन में । उ० नान्या स्पृहा रघु-
पते हृदयेऽस्मदीये । (मा० ५।१।१।२)
हृदयेसा-(सं०)-१. हृदय का स्वामी, पति, प्यारा, २. अंत-
र्यामी, हृदय की बात जाननेवाला ।
हृदयेसा-दे० 'हृदयेसा' । उ० २. अज अद्वैत अगुन हृदयेसा ।
(मा० ७।११।१२)
हृषीकेश-(सं० हृषीकेश)-इंद्रियों के स्वामी, विष्णु । उ०
हृषीकेश सुनि नाउं जाउं बलि, अति भरोस जिय मोरे ।
(वि० १।९)
हृष्ट-(सं०)-प्रसन्न, आनंदित । उ० हृष्ट पुष्ट तन भए
सुहाए । (मा० १।१४५।४)
हे (२)-(सं०)-संबोधन का चिह्न । उ० हे खग मृग हे मधु-
कर श्रेनी । (मा० ३।३०।५)
हेठ-(?) - १. नीचे, अधः, २. नीच, अधम । उ० १. हेठ
दाबि कपि भालु निसाचर । (मा० ६।७।१४)
हेत-दे 'हेतु (१)' । उ० १. है एकै दूजो नहीं द्वैत आन के
हेत । (सं० १।६२)
हेता-दे० 'हेतु (१)' । उ० १. जग माहीं विचरत एहि
हेता । (वै० ६)
हेति-(सं० हा + इति)-इस प्रकार, हाय इस प्रकार । उ०
गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हेति पुकारि । (मा०
६।७०)
हेतु (१)-(सं०)-१. कारण, लिए, २. उत्पादक,
पैदा करनेवाले ३. प्रयोजन, मतलब । उ० १. भयउ
समय जेहि हेतु जेहि सुनु सुनि मिटिहि बिषाद । (मा०
१।४७)
हेतु (२)-(सं० हित)-स्नेह, प्रेम । उ० पुलक सरीर हिये हेतु
हरषतु हैं । (कं० ६।५८)
हेतुवाद-(सं०-हेतुवाद)-१. तर्क-वितर्क, तर्क विद्या, २.
नास्तिकता । उ० २. बेद-भरजाद मानौ हेतुवाद हई है ।
(गी० १।८४)
हेतु (१)-दे० 'हेतु (१)' । उ० १. सहित सहाय जाहु मम
हेतु । (मा० १।१२।३)
हेतु (२)-दे० 'हेतु (२)' । उ० अस्तुति सुरह कीहि अति-
हेतु । (मा० १।८३।४)
हेमंत-(सं०)-छः ऋतुओं में एक जो अगहन और पूस में
पड़ती है । शीतकाल ।
हेम-(सं०)-सोना, स्वर्ण । उ० हेम जलज कल

कलित मध्य जनु मधुकर मुखर सोहाई । (वि०
६२)
हेय-(सं०)-छोड़ने योग्य, त्याग्य ।
हेरंब-(सं०)-गणेश । उ० छमुख-हेरंब-अंबासि जगदंबिके ।
(वि० १।५)
हेरइ-(?) - देखती है । उ० सीय सनेह-सकुच-बस पिय तन
हेरइ । (जा० १२१) हेरत-१. देखता है, देखते
हैं, २. देखने पर, ३. देखते ही, ४. दूँदते हुए, खोजते
हुए । उ० ३. जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ।
(मा० २।२३।४) ४. बालक भभरि भुलान
फिरहि घर हेरत । (पा० १।३) हेरनि-देखना, देखने का
भाव या क्रिया । उ० हेरनि हँसनि हिय लिये हैं चोराई ।
(गी० २।४०) हेरहि-देखते हैं, खोजते हैं । उ० अदकि
परहि फिरि हेरहि पीछे । (मा० २।१४।३) हेरा-१. देखा,
२. खोजा, ढूँढा । उ० १. धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा । (मा०
२।३८।२) हेरि-१. ढूँढकर, खोजकर, २. देख, देखकर,
३. विचारकर । उ० १. जो बरी नटनागर हेरि हलाकी ।
(कं० ७।१३।४) २. काल चालि हेरि होति हिये वनी
घिन । (वि० २।५३) हेरिये-१. देखिये, निहारिए, २.
खोजिये, ढूँढिए । उ० १. अपनी ओर हेरिये । (हं० ३।४) २.
समर समर्थ, नाथ ! हेरिये हलक में । (कं० ६।२५) हेरी-
देखी, देखा । उ० पल्लव-सालन हेरी, प्रान बलभा न
टेरी । (गी० ३।१०) हेरे-१. देखे, देखा, २. देखते हैं, ३.
खोजा, ढूँढा, ४. देखने पर, दयादृष्टि डालने पर, ५. खोजने
पर । उ० ४. तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की । (कं०
७।२०) ५. तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौ
हेरे । (वि० १।८७) हेरै-१. ढूँढे, खोजे, २. देखते हैं । उ०
२. बार बार हेरै मुख औध-मृगराज के । (कं० १।८)
हेरो-१. देखो, २. देखा । उ० २. ओचट उलटि न हेरो ।
(वि० २।७२)
हेराई-दे० 'हिराई' । उ० जेहि जानें जग जाइ हेराई ।
(मा० १।११।११)
हेला-(सं० हेला)-१. अवहेलना, तिरस्कार, २. त्याग ।
हेलया-सहज ही में, खेल ही में । उ० हेलया दलित
भूभार भारी । (वि० ४।४) हेलाँ-खेल में ही । उ० जेहि
बारीस बँधायउ हेलाँ । (मा० ६।१।३) हेला-(सं०)-१.
तिरस्कार, अनादर, २. क्रीडा, खेलवाड, दिह्यगी, ३.
खेल में ही । उ० ३. जेहि जलनाथ बँधायउ हेला । (मा०
६।३।७।१)
हेली-(सं० हेला)-१. हे सखी, २. सहेली, सखी, ३. बुला-
कर । उ० २. हेरि, हेरि, हेरि ! हेली हिय के हरन हैं ।
(गी० २।२६)
हेल-(सं० हल्लन)-पार हो, तैर जा ।
हो (२)-संबोधन का एक चिह्न । उ० प्रेमपियूप रूप उडु-
पति बिनु कैसे हो ! अलि पैयत रबि पाहीं । (कं०
५।८)
होइ-(?) - बाजी, शर्त ठहराव । उ० मुख चंद सों चंद सों
होइ परी है । (कं० ७।१८०)
होता-(सं० होत)-हवन करनेवाला ।
होनहार-(सं० भवन)-१. होनेवाला, भविष्य, आवी, २.

अच्छे लक्षणवाला । उ० १. होनहार सहजान सब बिभव बीच नहिं होत । (स० १५६)
 होनिहार-वे० 'होनहार' । उ० १. होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा । (मा० १८४।छं० १)
 होनिहारा-दे० 'होनहार' । उ० १. जानत हौं कछु भल होनिहारा । (मा० ११५६।४)
 होनी-(सं० भवन)-१. उत्पत्ति, २. होना, ३. होनेवाली ।
 उ० १. निज निज मुखनि कही निज होनी । (मा० १३।२)
 ३. बीती हैं ब्रय किसोरी, जोबन होनी । (गी० २।२२)
 होम-(सं०)-हवन, यज्ञ । उ० तरपन होम करहिं बिधि नाना । (मा० २।१२।४)
 होरी-(सं० होलिका)-१. होली का त्यौहार, २. घास-फूस का वह समूह जो होली के पूर्व रात में जलाया जाता है ।
 ३. एक राग । उ० १. कानन दलि होरी रचि बनाइ । (गी० ५।१६)
 होलिका-(सं०)-१. होली नाम का त्यौहार, २. घास आदि का वह समूह जो होली में जलाया जाता है । उ० २.

गोपद पयोधि करि, होलिका ज्यों लाय लंक । (ह० ६)
 होलिय-वे० 'होलिका' । उ० २ त्रिविध सूल होलिय जरै । (वि० २०३)
 हौ (२)-(सं० अहम्)-मैं, हम । उ० बरु मारिष मोहिं, बिना पग घोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू । (क० २।६)
 हौं हूँ-मैं भी ।
 ह्याँ-(सं० इह)-यहाँ, इस जगह । उ० ऊधो ! यह ह्याँ न कछु कहिबे ही । (कृ० ४०)
 हृद-(सं०)-बड़ा ताल, कुंड, सरोवर । उ० जनम कोटि को कँदेलो हृद-हृदय थिरातो । (वि० १५१)
 ह्रस्व-(सं०)-१. लघु मात्रा, २. झोटा ।
 हास-(सं०)-१. घाटा, टोटा, लुकसान, हानि, २. अवनति, ३. थकावट, ४. क्षय, नाश ।
 ह्लाद-(सं०)-आनंद, खुशी, प्रसन्नता ।
 हलन-(सं०)-१. चलना, २. महादेव, ३. ब्रह्मा, ४. विष्णु, ५. सरस्वती, ६. गणेश, ७. लक्ष्मी, ८. दुर्गा ।